श्री महाराज हरिदासजी की वाणी सटिप्पणी

व

अपर निरंजनी महात्माओं की रचना के अंशांश

भूमिका, टिप्पणी लेखक व सम्पादक
मंगलदास स्वामी

प्रकाशक
निखिल भारतीय निरंजनी महा सभा

प्राप्तिस्थान
दादूमहाविद्यालय मोतीडूंगरीरोड़ जयपुर सिटी (राजस्थान)

मुख्य विक्रेता
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
बोरड़ी का रास्ता

प्रकाशक
निखिलभारतीयनिरंजनीमहासभा
दादूमहाविद्यालय
मोतीडूंगरीरोड, जयपुर

प्रथम संस्करण १९६२

मुद्रक
मातृभूमि प्रिंटिंग प्रेस
चौड़ा रास्ता, जयपुर

नाथजी (बालकरामजी) महाराज की प्रणाली

१. महाराज हरिपुरुषजी (हरिदासजी)
२. नाथजी महाराज (बालकरामजी) शिष्य
३. शिवरामदासजी
४. सुषरामदासजो
५. सहजरामजी
६. बालकदासजी
७. नन्दरामदासजी
८. श्यामदासजी
९. गिरधारोदासजी
१०. भंडारी पोकरदासजी
११. भंडारी रघुवरदासजी
१२. भंडारी जयरामदासजी

मेरा निवेदन

सन्त साहित्य में मेरी श्रद्धा है। जब मैने दादूपन्थी सम्प्रदाय के कुछ साहित्य का सम्पादन किया तभी से मेरी इच्छा थी कि निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक महाराज श्री हरिदासजी की वाणी का एक उत्तम संस्करण निकाला जाय। इनकी वाणी का एक संस्करण महन्त देवादासजी जोधपुर ने प्रकाशित किया था पर उसमें प्रूफ सशोधन की काफी कमी थी तथा कठिन शब्दों के या प्रादेशिक शब्दो के पर्यायों का अभाव था इसलिए पाठक ठीक से वाणी का ज्ञान प्राप्त नही कर सकता था। इन कमियों के निराकरण के साथ वाणी प्रकाशन की भावना ने प्रेरणा की और मैं महाराज हरिदासजी की वाणी के शुद्ध व प्राचीन प्रतियों की तलाश मे लगा। संभावित स्थानों पर जा जाकर मैने निरंजनी साहित्य की खोज की तथा आवश्यक पुस्तकों की प्राप्ति की। इन प्राप्त पुस्तकों में दो अठारहवी सदी की लिखित है शेष उन्नीसवी शताब्दी की। अठारहवी सदी की दो पुस्तकों में एक पूर्वार्द्ध की तथा एक उत्तरार्द्ध की है। मैने इन प्राप्त पुस्तकों में पांच पुस्तकें मूल पाठ के लिये चुनी जो कि मुझे अधिक शुद्ध प्रतीत हुई। इन पांच पुस्तको के आधार से मूल पाठ की प्रेस कापी तैयार की। पाठभेद प्रेस कापी में रखे गये। पाठभेद मे ध्यान देने पर प्रतीत हुआ कि अधिकांश पाठों का अन्तर लेखक की लेखन शैली का है।

वस्तुतः पाठभेद कम है पर यह निर्णय करना दुष्कर था कि कौनसा पाठान्तर वास्तविक है तथा कौनसा लेखन शैली के कारण से है। इस कमी के साथ यह भी कमी रही कि एक शब्द का पाठभेद कई बार आगया। प्रेसकापी तैयार होने पर यह समस्या आई कि शब्द पर्याय तथा कठिन साषियों का स्पष्टीकरण कैसे हो।

महाराज हरिदासजी की वाणी में नाथ वाणियों को शैली है ऐसा मेरा ध्यान है। महाराज की वाणी में यौगिक क्रियाओं से सम्बन्धित विवरण पर्याप्त है। अनेक स्थल विपर्यय के भी है। प्रचलित ठेठ प्रादेशिक शब्दो का भी प्रयोग पर्याप्त है। इस स्थिति में मेरे जैसा अल्पज्ञ यह स हस कैसे करता कि इस की सम्यक् पाद टिप्पणियां तथा विपर्यय वाक्यों के सम्यग् अर्थ तैय्यार हो जायेगे। मैं इसी असमंजस मे था कि सन्त बजरंगदासजी ने मुझे अतीव प्रेरणा दी कि वाणी का प्रकाशन होना ही चाहिये। उनने स्वकीय सहयोग का आश्वासन दिया तथा विद्वद्धीर महात्मा परमानंदजी से सहयोग मिलने की आशा बंधाई। सन्त बजरंगदासजी जयपुर आये और डेढ़ मास ठहरे। मैने तथा उनने संयुक्तरूप से पादटिप्पणी तैयार की कुछ विपर्यय अर्थवाली साषियों के खुलासे के प्रागरूप भी तैय्यार किये। तद्पश्चात् कोलिये ग्राम मे महात्मा परमानदजी महाराज सन्त बजरंगदासजी तथा अमरपुरुषजी महाराज की बगीची के स्थानाधिपति सन्त भोलादासजी तथा मैं एकत्रित हुये और पूर्वक्त पादटिप्पणियें तथा साषियो के खुलासे तथा शेष रहे भाग को निर्णीत किया। इस पूर्ति में प्रमुखता महात्मा परमानन्दजी महाराज की रही। अब भूमिका का कार्य विवेचनात्मक खंड का शेष था वह पूरा करना था और मुद्रण के लिये अर्थ का प्रश्न शेष था। आर्थिक प्रश्न की पूर्ति के लिये सन्त बजरंगदासजी तथा भोलादासजी ने सोत्साह हाथ बढाया। उनने स्वयं तथा प्रेरणा कर साढे तीन हजार रुपये मेरे पास भेज दिये। पुस्तक के प्रकाशन मे छै सात हजार के व्यय का मेरा अनुमान था मैंने तदर्थ प्रयास किया। नि. भा. निरंजनी साधुसभा के अनेकों सदस्यों ने मेरी प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया और आवश्यक अर्थ की पूर्ति हो गई।

पुस्तक का प्रकाशन अच्छा हो यह भावना तो थी ही पर प्रेस वालों की अनवस्था भी ध्यान में थी पुस्तक प्रकाशन के लिये प्रेस को तथा प्रेस मालिक को कितनी सावधानी आवश्यक है इस को

ठीक से कोई प्रामाणिक प्रेस ही पूरा करता है । मैने यह पुस्तक मातृभूमि प्रेस के मालिक पं० दामोदरलाल से बातचीत कर उन्हें देदी । यह प्रेस अभी प्रारंभिक दशा में ही है । प्रेस मालिक की भावना तो उत्तरदायित्वपूर्ण है पर साधनों की कमी है तथा टाइप जो प्रयोग में आया है उस की ढलाई में ही कुछ न्यूनतायें थी अत: पुस्तक जैसी उत्तम छपनी चाहिये थी वह अभिलाषा अधूरी ही रही । प्रूफ करेक्सन में भी कुछ असावधानी रही, अतः शुद्धि-पत्र भी लगाना पडा ।

पुस्तक की प्रस्तावना सन्तसाहित्य के मर्मज्ञ व प्रेमी पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए., एल.–एल. बी. से लिखने की प्रार्थना की गई और उन्होने सहर्ष प्रार्थना स्वीकार करली । प्रस्तावना किस गंभीरता से लिखी गई है यह पाठकों को पढ़ने से प्रतीत होगा । पुस्तक मे जो कमियां रही है वे मेरी है तथा इसमें कुछ उपादेयता है वे सहयोगियों के सहयोग का फल है अत. मैं उपर्युक्त सभी सज्जनों का परम आभारी हूँ । विशेषतः महात्मा परमानंदजी व पं० परशुरामजी तथा दानदाताओं का जिससे सन्तसाहित्य प्रेमी सज्जनों के समक्ष यह उपादेय भेट उपस्थित की जा रही है । पुस्तक के उत्तर खंड में प्राप्त निरंजनी सन्तसाहित्य का अंशाश दिया गया है जिससे जिज्ञासुजन चाहें तो उस पर विशेष ध्यान दे सकें ।

निवेदक, मंगलदास स्वामी

श्री दादूमहाविद्यालय, जयपुर
सम्वत् २०१६ मार्गशीर्ष कृष्णा १२ शनिवार
२४ नवम्बर १९६२

महाराज हरिदासजी की वाणी की
विषय सूची

उत्तर खण्ड

उत्तरखंड समाप्त

श्री महाराज हरिदासजी की वाणी सटिप्पणी

व

अपर निरंजनी महात्माओं की रचना के अंशांश

भूमिका, टिप्पणी लेखक व सम्पादक

मंगलदास स्वामी

प्रकाशक

निखिल भारतीय निरंजनी महा सभा

प्राप्तिस्थान

दादूमहाविद्यालय मोतीडूंगरीरोड़ जयपुर सिटी (राजस्थान)

मुख्य विक्रेता

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स

बोरड़ी का रास्ता

विषय-सूची

★

भूमिका शुद्धिपत्र

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
३	२२	की	•
३	२६	दिसे	दिस
१२	७	स	से
२०	१	मोरा	मोटा
२०	८	याज	पाज
२०	९	हृषित	हर्षित
२१	४	अधिकाश	अधिकांश
२४	२०	घरों	धरा
२४	२१	विसवी तेवरस	विश वोते वरस
४५	२३	गद	गर्द
४६	१४	निमित	निर्मित
५०	१३	उत्तराद्ध	उत्तरार्द्ध
५५	४	जे	ज
८५	२७	थ	थे।
८५	३०	गया	गया है
८९	१६	धरि	धरि
८९	२२	धरण	घरण
८९	२२	धरा	घटा
८९	२३	बूढै	बूठै
९१	२७	फिरया	फिरिया
९५	४	मुल्लव करे	मुल्ला बकरे
९७	८	सदा वसहु	सदा उर वसहु
१०५	२६	उदा	उदास
१०७	२३	सरक्षण	संरक्षण
११८	२५	आयेह	आये है

महाराज हरिदासजी की वांणी का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
१६	६	तुम्हरो	तुम्हारो
४२	१	मूढि	मूठि
५६	१८	सत्य	सप्त
६०	३	सकला	सगला
७६	१०	घीरज	धीरज
७८	५	जडै	झडै
८१	५	कुवुधिकरि	कुबुधि करि
३२४	११	अवघू	अवधू
१२४	१५	अवघू	अवधू
१३६	११	षढि	पढि
१८५	१८	आघ "	आध
१६०	४	परि	हरि
१६०	५	करिपे रे	करिये रे
१६३	४ टि०	लूघा	लूधा
१६७	४ टि०	तडपती	तडफती
२१४	१	अगहि	गहि
२१४	१	गम	अगम
२४१	८	षोलै	बोलै
२४१	२ टि०	ढद्द	हठ
२५६	१ टि०	टेतू	तूटे
२६०	५ टि०	मापकि	मायिक
३५६	५	जालि	जलि
३६७	१६	मिल्वा	मिल्या
३७१	६	जषै	जपै
३७२	११	आषो	आपो
३७३	८	षरम	परम
३८१	६	षरम	परम
३८२	२०	फोइ	कोइ

॥ इति ॥

॥ वाणी प्रकाशन का आय-व्यय विवरण ॥

सहायक दान दाताओं के नाम

१२७०) संत भोलादासजी कोलिया
११०१) संत वजरंगदासजी खाटू
११३०) संत भोलादासजी वजरगदासजी के प्रयास से
२५१) सन्त आशारामजी खाटू
१०१) सन्त जानकीदासजी कोलिया
१०१) ठाकुर कानसिहजी नीमी
१०१) सरजूबाई वडी खाटू
१०१) अयोध्या बाई जायल
१०१) भागीरथी बाई जायल
१००) पाराबाई नीमी
७५) सुजानगढ के तीन दाताओ से
५१) सन्त हेमदासजी पाली
५१) सन्त कल्याणदासजी नीमी
५१) रुकमा बाई जायल
२५) चुन्नी बाई सुजानगढ
२१) सन्त पीतमदासजी लाडणू

११३०)

व्यय विवरण

२९२९-७५ मातृभूमि प्रेस को छपाई के
२२८७-५८ प्रभुलाल टकसाली को कागज
८३५-७६ ब्लाक व चित्र छपाई के
८९७-४९ जिल्द बन्धाई व सामान
११-२४ प्रकीर्ण व्यय मजदूरी आदि
५०-०० पुस्तको के भेजने आदि के खर्च के लिए

६९४०-७१ व्यय का योग
६२०-२९ वचत शेष

७५६१-०० पूर्ण योग

५०१) स्वामी मगलदास जयपुर
४००) पुजारी माधोदासजी नवलगढ़
३०१) महन्त तुलसीदासजी जोधपुर
२५१) वैध्य प्रेमदासजी फलोधी
२५१) वैद्य गोपालदासजी विसाऊ
२५०) सन्त विष्णुदासजी केरू
२५०) सन्त सरजूदास जी डूंगरगढ
२०१) महन्त उत्तमरामजी वडू
२००) महन्त बालमुकन्दजी डीडवाना
१५१) सन्त नृसिंहदासजी नागौर
१०१) सन्त घोटूदास जी झूंझणू
१०१) सन्त जानकीदासजी माधोदासजी वालोतरा
१०१) सन्त महादेवदासजी सुलताना
१०१) सन्त सीतारामजी वाटेडू
१०१ सन्त पोकरदासजी खीवसर
१००) महन्त लालदासजी वालोतरा
५१) सन्त सम्पतरामजी नागौर
५१) वैध पुरुषोत्तमदासजी नागौर
५१) सन्त ईसरदासजी नागौर
५१) सन्त भक्तिरामजी खेतोलाव
५१) सन्त ब्रह्मदासजी दुगोली
५१) सन्त हनुमानदासजी भगू
५१) सन्त लक्ष्मणदासजी काँटिया
५१) सन्त छोटूदासजी अड्का
५०) सन्त जानकीदासजी बीकानेर
५०) सन्त गोपालदासजी बीकानेर
५०) सन्त नारायणदासजी बीकानेर
५०) सन्त आत्मारामजी बीकानेर
२५) सन्त प्रयागदासजी नागौर
२५) सन्त मोहनदासजी नागौर
२१) सन्त दयारामजी पनलावा
२१) सन्त हीरादासजी खीवसर

७५६१)

उत्तरखण्ड विविध महात्माओं की रचना का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
५	६	कल्यानकारी	कल्याणकारी
५	१६	सत्य	सप्त
१६	४	मुरति	सुरति
१८	६	मै	भै
२०	१२	लोपना	लोयना
४८	१८	दरीपा	दरिया
६०	३	दाह	दह
६१	१६	अभयग्रान्थागार	अभयग्रन्थागार
६७	१२	सुकल	सुफल
७३	२०	धापै	श्रापै
७४	१०	सारंगप्रान	सारंगपाणि
७६	२७	लिविडतमनिशायां	निविडतमनिशायां
८१	१	पुन्प	पुन्य
८१	१३	भमंत	मेमंत
६१	१	मेटिये	भेटिये
६४	८	अघाध	अगाध
१०१	७	रजाइण	रसाइण
१०२	२५	बहीयो	बहियो
१०६	२६	ससीषे	सरीषे
१०८	२५	बिष	बीष
१२०	२३	सषनौ	सपनौ
१२१	२	अनराग	अणराग
१२१	८	षरि	परि
१२२	६	षाइ	पाइ
१२३	२३	हाँथि	हाथि
१३२	१०	गुर्	गुरु
१३८	२३	षीयो	पीयो
१४४	१३	चरपर	चटपट
१४६	६	रामनन्दं	रामानन्द
१५२	१	किश्न	शिश्न
१५७	५	प्राप्त्य	प्राप्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
१५६	१५	व्यक्तिरेक	व्यतिरेक
१६७	६	परमत्वाग	परमत्याग
१६७	१६	सानिष्य	सान्निध्य
१६६	१६	षडी	घडी
१७१	६	ताहि	नाहि
१७३	२०	संतदासा	संतदसा
१८६	१७	धनूं	घणूं
१६०	२	झूठा	झूठ
१६०	४	अरू	अरु
१६०	१२	वीवज	बीजज
१६४	२१	भंड	भड़
२०३	४	सतरुगु	सतगुरु
२०५	२४	अमरपुरुजी	अमरपुरुषजी
२१२	१	द्वैद्रन	द्वंदन
२१३	२२	नृवाणापद	नृवांणपद
२२३	१६	विचारै	विचरै
२२६	१७	कह	कट
२२७	२२	प्राण	प्रांणी
२३०	१६	रूपा	रुघा
२४६	१२	मिठाई	मिटाई
२५७	५	समाघि	समाधि
२६०	६	सिघ	सिध
२६०	२२	घना	धना
२६१	१६	भावपार	भवपार

॥ इति उत्तरखण्ड ॥

प्रस्तावना

उत्तरी भारत की संत-परम्परा के निर्माण मे निरंजनी सप्रदाय का बहुत बडा हाथ रहा है। इसके अग्रणी संतो मे से अनेक उच्चकोटि के महात्मा हो चुके है और इसका साहित्य भी यथेष्ट उन्नत एवं समृद्ध कहा जा सकता है। इसके अनुयायियो की संख्या कमसे कम राजस्थान प्रांत के अंतर्गत, कभी अल्प नही रही है और, इसमे सदेह नही कि, वे कई सौ वर्षो से वहां अपनी साधना मे सदा निरत चले आये है। इसके सिवाय इस संप्रदाय की कतिपय अपनी ऐसी विशेषताए भी रही है जिनके कारण इसे संत-परम्परा के तीन अन्य प्रमुख संप्रदायो (अर्थात् संत कबीर, नानक एवं दादूदयाल के नामो से प्रचलित पंथों) के समकक्ष स्थान देने की प्रवृत्ति देखी जाती है तथा जिनके आधार पर इसकी देन का समुचित मूल्याकन भी किया जा सकता है। परंतु आश्चर्य है कि आज तक इस धार्मिक वर्ग का कोई इतिहास नही लिखा गया और न इसके किसी प्रमाणिक परिचयमात्र के देने का भी कभी कोई प्रयास किया गया। जिन लोगो ने कभी विभिन्न धार्मिक पुरुषो के जीवन चरित लिखने का प्रयत्न किया उन्होने भी इसके सतो की ओर पूरा ध्यान नही दिया और न, जिन्होने हिन्दी-साहित्य के इतिहास लिखे है, उन्होने ही कभी इसके साहित्य का उचित उल्लेख किया है। स्वय निरंजनी लोगो तक को भी कदाचित् इस बात का कभी अनुभव नही हुआ कि वे इस कार्य की ओर प्रवृत्त हो, अपने पथ-प्रदर्शको की तथ्यपूर्ण जीवनी लिखे, उनके विशिष्ट ग्रंथो को प्रकाशित करे तथा, अपनी मान्यताओ की विशद व्याख्या करते हुए, ऐसी पुस्तको की रचना करे जिनसे न केवल इसका पर्याप्त परिचय मिल सके, प्रत्युत जिनके द्वारा अन्य लोग लाभान्वित भी हो सके। फलत आवश्यक सामग्री के अभाव मे, अभी तक इसकी कभी पूरी जानकारी नही हो पायी है और जो कुछ इसके विषय मे पता चल सका है वह इतना अधूरा भी रहा है कि जिसके कारण कभी कभी अनेक प्रकार की भ्रातियो को प्रश्रय तक मिलता आया है।

जहां तक पता चलता है निरंजनी सप्रदाय के विषय मे सर्वप्रथम चर्चा करने वाले दादू-पथी राघोदास थे जिन्होने स० १७१७ वा सन् १६४० ई० मे, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल' की रचना की थी। जिस पर, पीछे सं० १८५७ वा सन् १८०० मे, चत्रदास ने अपनी टीका लिखी। राघोदास के अनुसार जिस प्रकार परमात्मा के 'सगुण रूप, नाम एवं ध्यान' की पद्धति मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, रामानुज एवं निम्बार्क ने चलाई और उन चारो 'महतो' ने अपने-अपने चार संप्रदायो की स्थापना की, उसी प्रकार उसके 'अगुन अरूप एवं अकल' तत्त्व का प्रचार, इस जगत् के अंतर्गत, कबीर, नानक, दादू एवं जगन के द्वारा हुआ और

इन चारों 'महंतों' ने भी अपने-अपने चार पंथ प्रतिष्ठित किये ।[1] उन्होने इन चारों पंथों मे से जगन वाले को, आगे, 'निरंजनी पथ' के नाम से अभिहित किया है, उसके 'द्वादश' प्रमुख महतो के नाम दिये है तथा उनके निवास स्थानो और उनकी कुछ विशेषताओ तक की ओर संकेत किया है ।[2] उनका कहना है कि ये बारहो महंत कबीर के 'भाव' की 'रक्षा' अथवा उनके मत का समर्थन करते थे जिस कारण इन्हे उनसे अधिक भिन्न भी नही कहा जा सकता । परन्तु राघोदास द्वारा दिये गए निरंजनी संप्रदाय के इस परिचय से हमे पूरा संतोष नही होता । इससे न तो उक्त बारह निरंजनी महापुरुषो के जीवन-काल पर ही कोई प्रकाश पडता है, न उनके पारस्परिक सम्बन्धो का पता चलता है और न यही ज्ञात हो पाता है कि उनकी रचनाएं कौन-कौन थी अथवा अपने पंथ के संगठन और विकास के निमित्त उन्होने कितना तथा किस रूप मे कार्य किया । इसके सिवाय, मूल 'भक्तमाल' अथवा उसकी टीका के अन्तर्गत, जिस प्रकार स्थल निर्देश किया गया है उसके सहारे किसो भौगोलिक संगति का बिठाना सरल नही है और न यहा पर अन्य भी कोई ऐसी बात पायी जाती है जिस से किसी ऐतिहासिक तथ्य की छान बीन का प्रयत्न किया जाय । उपर्युक्त 'जगन' शब्द स्वभावतः किसी ऐसे व्यक्ति विशेष का नाम होना चाहिए जिसे इस पंथ के प्रवर्तन का श्रेय दिया जा सके, किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर, हमारे लिए इस प्रकार का निश्चय करना भ। प्राय· असम्भव-सा ही प्रतीत होता है ।

इसी प्रकार निरंजनी संप्रदाय के सबंध मे लिखने वाले एक अन्य लेखक स्व० बडथ्वाल रहे है जिन्होने, इसके उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करके, उसके आधार पर इसके सिद्धात एवं साधना के विषय मे अपना मत प्रकट किया है । डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल (स० १९५८-२००१ वि०) संत-साहित्य के विशेषज्ञ थे और उन्होने, इस विषय के हो आधार पर, अपनी 'दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री' नामक थीसिस तैयार कर, उसे, 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' मे अर्पित किया और वहां से स० १९९० (सन् १९३३ ई०) मे डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की थी । यह शोध-प्रबंध सन् १९३६ ई० में, अपने मूल अंग्रेजी रूप मे. प्रकाशित हुआ[3] और उसकी 'प्रस्तावना' मे डा० बडथ्वालने निरंजनी सप्रदाय के सबंध मे अपने कुछ विचार प्रकट किये जिन का बहुत कुछ समर्थन उन्होने आगे चलकर, अपने सन् १९४०ई० के एक हिन्दी भाषण द्वारा भी किया ।[4] अपनी उक्त 'प्रस्तावना' के अंतर्गत उन्होने बतलाया कि निर्गुण संप्रदाय (अर्थात् संत परम्परा) से निरंजनी संप्रदाय प्राय उसी प्रकार भिन्न ठहराया जा सकता है

---

१. राघोदास की 'भक्तमाल', पद्य ३४१ । २. वही पद्य ४२९-४४ । ३. अब इसका एक हिन्दी अनुवाद भी 'हिन्दी काव्य मे निर्गुण संप्रदाय' के नाम से 'अवधपब्लिशिंग हाउस लखनऊ' से सं० २००७ मे प्रकाशित हो चुका है ? देव 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), वर्ष ४५ सवत् १९९७, पृष्ठ ७१-८८ ।

जिस प्रकार सूफी सप्रदाय, क्योकि ये दोनो "अपने-अपने मूल धर्मो की ओर से शातिपूर्वक संतुष्ट जान पडते है" तथा 'ये (निरजनी लोग) परंपरागत सामाजिक अनुशासन के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करना नही चाहते जिस प्रकार की प्रवृत्ति सूफियो मे भी देखी जा सकती है, किन्तु जिसके उदाहरण, 'निर्गुण संप्रदाय' वालो के समाज मे, बहुत कम मिल सकते है। डा० बडथ्वाल ने निरजनी सप्रदाय को नाथ संप्रदाय का एक विकसित रूप" कहा है और इसे "एक प्रकार से नाथ सप्रदाय एवं निर्गुण संप्रदाय का मध्यवर्ती"[1] भी ठहराया है। उन्होने अपने भाषण मे, स्वामो हरिदास, तुरसीदास, कान्हडदास, सेवादास और मनोहरदास जैसे निरजनियो की रचनाओं के आधार पर, अपने उक्त मत का समर्थन करने की चेष्टा की है और उनसे कुछ उद्धरण भी प्रस्तुत किये है।[2] परन्तु डा० बडथ्वाल ने इस सप्रदाय के उदय, इसके प्रवर्तक अथवा इसके विभिन्न कवियो के निश्चित काल का निर्धारण करना, कदाचित्, अधिक आवश्यक नही समझा, प्रत्युत उन्होने स्व० जगद्धर शर्मा गुलेरी तथा, स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा जैसे लोगो के मतो का हवाला देकर ही, मौन धारण कर लिया।

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने भी निरंजनी संप्रदाय का आरंभ होने आदि के संबंध मे कोई निश्चित तिथि नही दी है। उन्होंने अपने सपादित ग्रन्थ 'सुन्दर-ग्रन्थावलो' (खड १) मे, संत सुन्दर दास जो (छोटे) का 'जीवन-चरित्र' लिखते समय, प्रसगवश, उनके समकालीन महापुरुषो को चर्चा के सिलसिले मे, हरिदासजी का उल्लेख किया है। उन्होने लिखा है, हरिदासजी निरंजनी भी सुन्दरदास जी के समकालीन थे। यद्यपि निरजनी तो इस बात को नही मानते है, परन्तु दादू संप्रदाय मे यह बात प्रसिद्ध है कि ये हरिदास जी प्रथम प्रागदासजी के शिष्य हुए, फिर दादूजी के। फिर कबीर और गोरखपंथ मे हो गये। फिर अपना निराला पंथ चलादिया[3]। "यह स्पष्ट है कि स्व० शर्मा जीने यहा अपने कथन का आधार दादू संप्रदाय मे उपलब्ध किसी प्रसिद्धि को ही बनाया है और उन्होने यहा पर उक्त 'जीवन, चरित्र' मे ही दी गई उस टिप्पणी का उल्लेखतक भी नही किया है जिसमे हरिदासजी के सं० १६५६ मे प्रागदासजी का शिष्य होने और उनके सं० १६७० 'के मि० फागन सुदि ६' को 'रामसरणि' होने आदि की चर्चा की गई है।[4] हो सकता है कि उन्हे उक्त टिप्पणी मे उल्लिखित सारी-बातो मे, स्वय ही पूरी आस्था न रही हो और उन्होने अपने उपर्युक्त कथन को अधिकतर अपने अनुमान पर ही आधारित कर दिया हो, इस संबंध मे यहा पर केवल इतना उल्लेखनीय है कि हरिदासजी निरजनी के दादू-शिष्य प्रागदासजी का शिष्य होने तथा उनका सं० १६७० की फागुन सुदी ६ को, देहांत होने जैसी बातो की चर्चा उक्त टिप्पणी वाले उन ऐसे पुराने 'पत्रो' में भी

१. 'प्रस्तावना' हिन्दी सस्करण पृ० घ. ड. २. 'भाषण (पत्रिका, पृ० ७६-८८)। ३. 'सुन्दर गन्थावली' (प्रथम खण्ड) (कलकत्ता, सं० १९८३)पृ० ९२। ४.वही, पृ० २८।

पाई जाती हे जिनके विषय मे "जीर्ण कागदा की नकल उतारी है चत्रदास" जैसा लिखा है और जिस पर, इसी कारण, कुछ सावधानी के साथ विचार किया जाना चाहिए। 'निरंजनी पथ' और उसके प्रवर्तक स्वा० हरिदासजी की चर्चा श्री मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' मे की है [1] और लगभग उन्ही बातो को उन्होने फिर अपनी एक अन्य पुस्तक 'राजस्थान का पिगल-साहित्य' मे भी दोहरा दिया है। इस दूसरी पुस्तक मे उन्होने स्वा० हरिदासजी का 'गोलोक वास' होना 'सं० १७००' मे, किसी समय माना है।[2] इस प्रकार इनका मत स्व० शर्मा के मत से मिलता जुलता-सा है।

स्वा० हरिदासजी के शरीर त्यागने के सं० १७०० को ठीक स्वीकार करके 'श्री हरिपुरुषजीकी वांणी' के संपादक ने भी, उसका उल्लेख किया है। [3] परन्तु इधर कुछ दिनो से, कतिपय नवीन सामग्रियो के प्रकाश मे, सारी बातो पर विचार करने वाले लेखक उसके तथ्य होने मे संदेह प्रकट करते भी दीख पडते है। उदाहरण के लिए 'सूर-पूर्व व्रजभाषा और उसका साहित्य' के लेखक डा० शिवप्रसाद सिह ने हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि 'हरिदासजी की परचई' के लेखक हरिरामजी ने (जिनका समय अठारहवीं शताब्दी का अंतिम चरण सिद्ध होता है) यह लिखा है कि स्वामी हरिदासजी ने सं० १५१२ मे अवतार धारण किया था। सं० १५५६ मे, बसत पंचमी के दिन, उन्हे हरि ने, गोरख रूप धारण करके, ब्रह्मज्ञान की दीक्षा दी थी और, सं० १६०० के फागुन मास की सुदी षष्ठी को, डीडवाणे में उन्होने परमधाम को प्राप्त किया था। इसी प्रकार नवलगढ मे लिखित किसी पूर्णदास के उल्लेख से पता चलता है कि उन्होने सं० १४७४ मे जन्म लिया था और उनका देहान्त स० १५९५ मे हुआ था जिस बात का समर्थन 'मंत्र राज प्रभाकर' ग्रन्थ के १३वे उल्लास मे किये गये एक उल्लेख द्वारा भी, हो जाता है। पूर्णदास तथा 'मंत्रराज प्रभाकर' के रचयिता का समय बीसवी शताब्दी बतलाया जाता है, किंतु, इस प्रकार के कतिपय अन्य प्रसगो के भी आधार पर, डा० सिह का यह परिणाम निकालना कि "हरिदास निरंजनी विक्रमी स० १६०० के पहले अवश्य विद्यमान थे", [4] इस सबंध मे, हमारे लिए कम मूल्य का नही कहा जा सकता। इसके सिवाय, एक अन्य लेखक डा० हीरालाल माहेश्वरी ने तो, इस प्रकार की सामग्रियो के आधार पर, अपना यह मत भी प्रकट किया है "मंत्र-राज प्रकाश (संभवतः 'प्रभाकर') तथा सुन्दरदास आदि के कथन से किन्ही ऐसे हरिदासजी के संप्रदाय-प्रवर्तक होने की पुष्टि होती है, जो निश्चय ही इन

---

१. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (सम्मेलन प्रयाग, स० २००६ पृष्ठ २३६। २. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' (उदयपुर, १९५२ ई०) पृष्ठ २०८९। ३. श्री हरिपुरुषजी की वाणी, (जीवन चरित्र) जोधपुर, स० १९८८ पृ० 'त'। '४ डा० शिवप्रसाद सिंह : सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (वाराणसी, १९५८ ई) पृ० १९७९।

हरिदास (हरीसिंह) से भिन्न है और इनसे पूर्व हुए है [१] और इसके समर्थन मे उन्होने झावर मल शर्मा के किसी लेख [२] का भी हवाला दिया है। यहा पर उक्त हरीसिंह (हरिदास) से लेखक का अभिप्राय स्पष्टत उन हरिदासजी से ही है जिन्हे साधारणत प्रवर्तक माना जाता आया है। इनके विषय मे लेखक ने फिर कहा है, "ये हरिदास निरंजनी सम्प्रदाय के मूलप्रवर्त्तक नही थे। इन्होने तो मूलप्रवर्त्तक के नाम से, पूर्व-परम्परा से आते हुए, निरजनी संप्रदाय की श्री वृद्धि की।" [३] जिससे दो हरिदासो के होने की संभावना प्रकट की गई है।

डा० माहेश्वरी द्वारा, दो हरिदासो के विषय मे, प्रकट किये गये मत के कारण इस प्रश्न का उठना भी स्वाभाविक है कि 'क्या यह निरजनी सप्रदाय जिसके सबंध मे हम विचार कर रहे है बहुत पुराना है?' और यदि नही तो, "क्या कोई दूसरा सम्प्रदाय ही तो इस नाम का नही था जिसके अनुकरण अथवा समानांतर मे इसे किसी समय प्रवर्त्तित वा चालू किया गया।' [१] इसके सिवाय, हमारे लिए, इस सम्बंध मे, इस बात पर भी विचार करना पड सकता है कि ऐसे किसी सम्प्रदाय के प्रचलित हो पडने की पृष्ठभूमि क्या हो सकती है? किस रूप मे इसके उदय होने की सम्भावना हो सकती है? तथा उस दृष्टि से इसका, संतमत के साथ, कोई लगाव भी हो सकता है वा नही? इसके लिए यदि हम चाहे तो, स्वयं 'निरंजन' शब्द के पुराने प्रयोगो पर भी विचार कर सकते है, उसके अर्थ की व्यापकता तथा क्रमिक विकास की ओर ध्यान दे सकते है और फिर, अंत मे, इस बात का पता लगाने का भी प्रयत्न कर सकते है कि, जिस समय के लिए हम स्वा० हरिदास के अविर्भाव का होना निश्चित करना चाहते है उस समय की, वस्तु स्थिति क्या हो सकती है।

'निरजन' शब्द का एक प्राचीन प्रयोग 'मुण्डकोपनिषद्' मे किया गया मिलता है जहा पर कहा गया है :—

"यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं, कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय, निरंजनः परमं साम्यमुपैति॥"

अर्थात्, जब साधक ज्योतिर्मय कर्त्ता, ब्रह्मयोनि ईश्वर को देखता है तब वह विवेकी पुण्य एवं पाप को दूर करके, निर्मल बन कर, परम साम्य पालेता है। अतएव, 'निरंजन' शब्द यहा पर उस साधक के लिए प्रयुक्त जान पड़ता है जो बधन का हेतु बनने वाले पाप एवं पुण्यमय कर्मो का त्याग कर देता है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् के अंतर्गत एक स्थल पर कहागया है :—

---

१. डा० हीरालाल माहेश्वरी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (कलकत्ता १९६०) पृ० २९२। २. 'मरुभारती', वर्ष ४ अङ्क १, अप्रेल, १९५६। ३. राजस्थानी भाषा और (साहित्य) पृ० २९२। ४. 'मुण्डकोपनिषद्' (३,१,३)

निष्कलं निष्क्रियं शांतं, निरवद्यं निरंजनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं, दग्धेन्धनमिवानलम् ॥"[१]

अर्थात् (मै उसकी शरण लेना चाहता हू जो) किसी अवयव से रहित अथवा अखंड है निष्क्रिय वा कूटस्थ है, शात है, अनिन्द्य है तथा निर्लेप है, जो मोक्ष प्राप्ति के लिए परम सेतु है और जो देदीप्यमान अग्नि के समान है। इस कारण 'निरंजन' शब्द का प्रयोग यहां पर उस परमदेव का विशेषण बनाकर किया गया पाया जाता है जिसे साधारणत· परमात्मा भी कहा जाता है। यदि हम बौद्ध सिद्धो की अपभ्रंश रचनाएं देखते है तो वहां पर हमे "सुण णिरञ्जण मकरु विचार"[२] अर्थात् 'शून्यतो निरंजन है, उसका विचार न करो' में 'निरजन' शब्द का प्रयोग शून्य की व्याख्या करने वाले के रूप मे सिद्ध तेलोपा (सभवतः ६६० ईस्वी शताब्दी) द्वारा किया गया मिलता है और फिर, इसी प्रकार,

"लोऊह गब्व समुब्बहइ, हउँ परमत्थे पवीण ।
कोड़िह मज्झे एकु जई, होइ णिरञ्जणलीण ॥[३]

अर्थात् 'लोग इस बात का गर्व करते है कि हम परमार्थ के रहस्य से परिचित है, किन्तु, सच तो यह है कि, करोड़ो मे से कही कोई एकमात्र ही निरंजन (सहज काय) की दशा उपलब्ध कर पाता है (सभवत· ८४० ई० वाले सिद्ध कण्हपा का दोहा देखते है तो, वहा पर इसे किसी स्थिति विशेषवत् प्रयुक्त पाते है। अतएव, कह सकते है कि यहा पर भी, हमे उक्त दोनो प्रकार के प्रयोग देखने को मिलते है।

इसी प्रकार हमे जैन मुनियो की रचनाओं मे भी 'निरंजन' शब्द के लगभग ऐसे ही प्रयोग किये गये मिलते है। उदाहरण के लिए मुनि रामसिह (सभवतः १००० ईस्वी शताब्दी) ने अपने 'पाहुड दोहा' मे एक स्थान पर कहा है ·—

"देह महेली एक वढ़ तउ सत्तावइ ताम ।
चितु णिरंजणु हरिणसिहु, समरस होइ ण जाम" ॥[४]

अर्थात् 'हे मूढ, यह देहरूपी महिला तुझे तभीतक सताती है जबतक निरंजन (निर्मल) मन परमात्मा के साथ समरस नही हो जाता' जहां पर इसे चित्त का विशेषण बना दिया गया दीख पड़ता है। परन्तु अन्यत्र जहां पर उन्होने,

"कम्मु पुराइउ सो खवइ, अहिणव बेसुण देइ ।
परमणिरंजणु जो णवइ, सो परम प्पउ होइ ॥" [५]

---

१. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (६-१६) । २. 'तेलोपा दोहाकोश' (दो० १४) ३. 'कण्हपा दोहाकोश' (दो० १) । ४. 'पाहुडदोहा' (कारजा स० '१६६०) दो० ६४, पृ० २० । ५. वही, दो० ७७ पृ० २४ ।

अर्थात् जो पुराने कर्म को खपा देता है और नये का प्रवेश नही होने देता तथा जो परमनिरंजन (देव) को नमस्कार करता है वह स्वयं परमात्मरूप हो जाता है, कहा है वहा पर इसे स्वय उस 'देव' के लिए प्रयुक्त किया है। योगी इन्दु (समवतः १००० ईस्वी शताब्दी) नामक एक अन्य जैन मुनि ने भी कहा है·—

जे जाया झाणग्गिए कम्म कलंक डहेवि।
णिच्च णिरंजण णाणमय ते परमप्प णवेवि॥"[१]

अर्थात् जिन लोगोने ध्यानाग्नि द्वारा कर्म कलंक को दग्ध करके नित्य निरंजन और ज्ञानमय की दशा प्राप्त करली है उन (सिद्धों) को नमस्कार है। जहा पर इसका प्रयोग, सिद्धत्व की दशा के लिए, हुआ है। परन्तु उन्होने ही जहां पर इसे

"परमणिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खु कि झायहिं सव्व॥"[२]

अर्थात् सभी लोग परमनिरंजन मे मन को स्थित करके मोक्ष का ध्यान किया करते है मे प्रयुक्त किया है वहां पर यह देव का वाक है।

योग सबधी नाथपथी ग्रन्थो एवं नाथ कवियो की उपलब्ध रचनाओ के अंतर्गत भी, हमे लगभग इसी प्रकार के प्रयोग मिलते है। 'शिवसहिता' नामक ग्रन्थ मे एक स्थल पर कहा गया है—

"निखिलोपधिहीनो वै यदा भवति पूरुषः।
तदा विवक्ष्यतेऽखण्डज्ञानरूपी निरंजनः॥"[३]

अर्थात् जब साधक सभी उपाधियो से रहित हो जाता है उस समय वह अपने को ज्ञान रुपी अखंड निरंजन कह सकता है। परन्तु उसी मे अन्यत्र इस प्रकार भी कहा गया मिलता है—

"यावन्नोत्पद्यते ज्ञानं साक्षात्कारे निरंजने।
तावत्सर्वाणि भूतानि दृश्यंते विविधानि च" ॥[४]

अर्थात् जब तक हमारा ज्ञान निरंजन (परमात्मा) के साक्षात्कार को उपलब्ध नही कर लेता तबतक विविध जीवो मे भेद-दृष्टि रहा करती है। जिससे जान पडता है कि प्रथम श्लोक मे जहा इसे साधक की स्थिति की विशेषता के रूप मे कहा गया है वहां दूसरे मे यह स्वयं परमात्मा रूप है। इसी प्रकार, गुरु गोरखनाथ (समवतः ११ वी ईस्वी शताब्दी) के नाम से उपलब्ध रचनाओ मे से 'गोरष गणेस गुष्टि' के अंतर्गत जहा उनकी ओर से, अपने लिए, "अम्हे निरजन जोगी,

---

१. 'प्रमात्म प्रकाश' (बम्बई, १९३७ ई०) दो० १ पृ० ५। २. वही, (अ०२) दो०८ पृ० १३४। ३. 'शिवसहिता' (बम्बई) अ० १ श्लो० ९८। ४. वही,अ० २ श्लो०४८।

अतीत गुरु चेला"[१] कहागया मिलता है वहा उन्ही के नाम से प्रकाशित बानियों मे से एक 'सवदी' की पक्ति "सोई निरजन डाल न मूल, सर्व व्यापीक सुषम न अस्थूल"[२] रूप मे भी पायी जाती है और 'निरजन' शब्द के इस प्रकार के अर्थ सूचित करने वाले अन्य अनेक स्थल भी मिलते है जिनमे से कुछ मे "आऊं नही जाऊं निरजननाथ की दुहाई"[३] के जैसे भाव तक प्रकट किये गये दीख पडते है। नाथपंथी चौरंगीनाथ ने भी अपनी एक सबदी मे "सेइवा निरंजन निराकारं"[४] और पृथ्वीनाथ ने (जिन्हे कबीर का परवर्ती माना जाता है) तो, निरजन के नाम पर, एक श्री निरंजन निरवाण ग्रन्थ[५] नामकी पृथक् रचना ही प्रस्तुत की है जो कदाचित, उनके किसी 'प्रिथीनाथ छत्रधार मत महापुराण' नामक ग्रन्थ का एक अंश है और जिसमे नाथपंथ की साधना एव सिद्धात की अनेक बातो का समावेश किया गया है।

ऐसा लगता है कि, नाथपंथियों का प्रचार अधिक बढ जाने की दशामे, 'निरंजन' शब्द को विशेष लोकप्रियता मिल गई और इसका प्रयोग ऐसे लोगो द्वारा भी किया जाने लगा जिनकी साधना उनकी जैसी ज्ञानपरक वा योगपरक नही कही जा सकती थी, प्रत्युत जो भक्ति-साधना को महत्व देते थे तथा जिनमे से कुछ लोग कभी-कभी सगुणोपासना तक को अपना लिया करते थे। हम देखते है कि उनदिनो महाराष्ट्र के नामदेव जैसे 'वारकरी' सत अपने अपने हिन्दी पदो मे "सेवीले गोपाल राइ अकुल निरंजन"[६] जैसा कहने लगते है और स्वामी रामानन्द जैसे 'रामावत वैष्णव' अपनी 'रामरक्षा' के अतर्गत "पिडप्राण की रक्षा श्रीनाथ निरजन करे"[७] जैसा भी कह डालते है। इसके सिवाय यहा पर यह भी उल्लेखनीय जान पडता है कि उस समय से इस शब्द का प्रयोग केवल परत्मामा के लिए, अथवा विशेषकर उसके ही प्रसंग मे, किया जाने लगता है और अब किसी साधक की मन' स्थिति अथवा दशा आदि के लिए, यह उतना प्रयुक्त नही होता। उदाहरण के लिए संत कबीर साहब इसका जितना प्रयोग 'अकल निरजन', 'आदि निरजन', अलख निरजन', निरजनराइ' अथवा 'राम-निर्रंजन' जैसे रूपो मे करते है और इसे 'ब्रह्म', 'सति' एवं 'नाम' का पर्याय समझते जान पडते है उतना अन्य किसी भी प्रकार से नही करते। गुरु नानकदेव इस सम्बन्व मे, 'आदि निरंजन', 'नामनिरंजन', 'सतिनिरंजन', 'सबद निरंजन', 'नाथनिरंजन', 'ततुनिरंजन' और 'अकुलनिरजन' जैसे प्रयोग करते दीख पड़ते है

१. 'गोरख बानी' (सम्मेलन, प्रयाग), पृ० २२२। २. वही पृ० ३९। ३. वही, पृ० ११६। ४. 'नाथसिद्धो की बनिया' (काशीनागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) पृ० ४८। ५. वही, पृ० ८५-६। ६. हिन्दी को मराठी सन्तो की देन (ले० आचार्य विनयमोहन वर्मा 'विहार राष्ट्रभाषा परिषद् सन् १९५७ ई० पटना) पृ० २६२। ७. 'रामानद को हिन्दी रचनाए' (सं० स्व० डा० बडथ्वाल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० २०१२) पृ० ३।

और स्वा० हरिदासजी को भी हम अधिकतर 'नाथनिरंजन', 'अलखनिरंजन', 'निरंजनदेव', 'निरंजनराम' 'निरंजनराई', 'नाव निरंजन' और 'निरंजन निराकार' जैसी शब्दावली को ही काम मे लाते हुए पाते है। "दसवै द्वरि निरंजन जोगी, हम गुरगम तैं पाया" मे जहां पर इन्होंने 'निरंजनजोगी' का प्रयोग किया है वहाँ पर भी हमे किसी अन्य प्रकार का अनुमान करने की आवश्यकता नही जान पडती। यह अवश्य है कि स्वा० दादूदयाल की रचनाओं के अन्तर्गत हमें 'निरंजन थान', 'निरजन वास', 'निरंजन हाट', 'निकटि निरंजन' अथवा "अंजन छाडे रहे निरंजन' और 'निरंजन जोगी जाणि ले चेला' जैसे प्रयोग भी मिलते हैं किन्तु इससे हमारे कथन मे उतना अंतर आता नही प्रतीत होता। संत दादूजी की 'बानी' मे हमे 'दादू नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवत' जैसा 'मंगलाचरण' तथा उपयुक्त विविध प्रयोगों के उदाहरण भी प्रचुरता से मिलते है और इसके सिवाय ये स्वयं हमारे विवेच्यकाल से कुछ परवर्ती मे भी लगते जान पडते है।

जिस समय की हम चर्चा कर रहे है उस समय तक अभी नाथ-पंथ का पभाव बहुत अधिक था और, यदि उसमे कुछ ह्रास के आने के लक्षण पाये जाते थे तो, वह भी केवल इसी रूप मे कि उनकी योगसाधना एवं वेदातपरक सिद्धातो मे से प्रथम को ही पहले जैसा प्रश्रय मिलना कम होने लगा था द्वितीय के अपनाये जाने मे कहीं किसी प्रकार की भी कमी नही दीख पडती थी। योग साधना का व्यावहारिक रूप जैसे हमारी आखो से क्रमशः ओझल पडता जा रहा था और उसकी शब्दावली का प्रयोग भी, अधिकतर परम्परागतमात्र-सा, लगने लगा था, जहा बेदात-परक सिद्धातों की लोकप्रियता यहां तक बढती जारही थी कि उन्हे भक्ति साधना को महत्व देने वाले भक्तो एवं प्रेम साधना को अपनाने वाले सूफियो तक की रचनाओ मे, निजी मान्यताओ के रूप मे, स्थान मिलता जारहा था। उस काल के नामदेव, कबीर और नानक जैसे सतो अथवा जायसी और मंझन जेसे सूफियों को, उनके योग साधना-विषयक विविध वर्णनो के होते हुए भी, किसी प्रकार सहसा 'योगी' कह देने की प्रवृत्ति नही होती, किन्तु उन्हे 'निर्गुणी विचारक' मान लेना हमें स्वाभाविक सा लगता है। योग साधना उन दिनों क्रमश· जैसे पुरानी सी पडती जारही थी और उसका स्थान भक्तिसाधना लेती जारही थी, किन्तु, जहां तक सैद्धातिक विचारधारा का प्रश्न है, इसके औपनिषदिक रूप मे स्वीकृत किये जाने मे उस समय किसी प्रकार की कमी लक्षित नही होती। इस बात के उदाहरण हमें उत्कल प्रदेश तक मे भी मिलते है जहा पर उन दिनो 'पचसखा' नामक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त अपनी रचनाओ मे प्रकट थे और, जहापर बौद्ध धर्म का कुछ न कुछ अवशिष्ट अंश रह जाने के कारण, वे उसकी विशिष्ट शब्दावली तक का प्रयोग करने मे कोई हिचक नही मानते थे तथा इसके आधार पर उन्हे कभी कभी बौद्ध मत-प्रभावित भी मान लिया जाता है। बलरामदास (ज० स० १५२६)

× प्रस्तुत पुस्तक (जोगसमाधि ग्रंथ) पृ० ५३।

जगन्नाथदास (ज० सं० १५४७) तथा यशोवतदास (ज० सं० १५४९) और अनंतदास (ज० स० १५५०) की कविताओ मे हमे इस प्रवृत्ति के उदाहरण प्रचुर मात्रा मे मिलते है और हम इन्हे, अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की, अरूप, अलेख, अदेही, निराकार, व निरंजन के अतिरिक्त, 'शून्य' शब्द के द्वारा भी अभिहित करना उचित समझते हुए, पाते है जिस कारण इनका साहित्य आज तक भक्तिधारा की 'ज्ञानमिश्रां वा योगमिश्राम्' उपधारा को उदाहृत करने वाला कहा जाता है[1] और वह उसी प्रकार किंचित् विशिष्ट माना जाता है जिस प्रकार हिंदो का निर्गुण भक्ति वाला 'ज्ञानाश्रयी' साहित्य।

ऐसे ही समय हम, राजस्थान प्रांत मे, जंभनाथ वा जभोजी (ज० सं० १५०८) तथा जसनाथ जी (ज० सं० १५२९) जैसे कुछ महापुरुषों को भी अपने यहां उपदेश देते और अपने मतोका प्रचार करते हुए पाते है। ये लोग अपने को सीधे गुरु गोरखनाथ द्वारा अनुप्राणित बतलाते है, योगसाधना को विशेष महत्व प्रदान करते है तथा उन सिद्धातो को भी स्वीकार करते जान पडते है जिन्हें वेदातपरक कहा गया है। इनकी तथा संत कबीर जैसे संतों की विचारधाराओं मे हमें कोई वैसा उल्लेखनीय या मौलिक अन्तर लक्षित नही होता है। उपलब्ध रचनाओं मे अन्तर्निहित बातो का कुछ तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमे केवल ऐसा लगता है जैसे सतो ने जहां अपने समय की नवीन भक्तिमयी प्रवृति को हृदय खोलकर अपनाया है और उसके अनुसार वे अपने निर्गुणी सिद्धातो को किंचित् भिन्न रूप देने तक प्रतीत होते है वहा जभोजी एव जसनाथजी अपनी नाथ-पथी मान्यताओ द्वारा इतने अधिक अभिभूत हैं कि उन पर कोई नया आन्दोलन विशेष प्रभाव नही डाल पाता। ये अधिकतर उन योग-साधको जैसे ही सोचते है, उन जैसे ही कार्य करते है और उनके ही जैसा जीवन भी पसन्द करते है। ये उन्ही की भाति एकांतप्रिय है, निवृत्ति-मार्गी है तथा, कदाचित्, साधनानिरत भी रहा करते है। ये बहुत कुछ उन्ही के आदर्श को सर्वाधिक महत्व भी देते है। जैसा जसनाथ जी ने एक स्थल पर कहा है, "पैला आसन दिढक रहैला से पूरा परवाणी" अर्थात् पूरा प्रमाणित तपस्वी तो वही है जो पहिले अपने आसन पर दृढ़ रहेगा अथवा जिसे घूम-घूम कर उपदेश देते फिरने की वैसी आवश्यकता का अनुभव न होगा। इनका यह भी कहना था कि 'मनकर लेखण तनकर पोथी, हरगुण लिखो[2] पिराणी' अर्थात् हे प्राणी, तुम मन रूपी लेखनी से शरीर रूपी पुस्तक पर भगवान् के गुण लिखो क्योकि, वास्तव में, उसी एकमात्र के प्रति अनन्यभाव को बनाये रखना हमारे लिए परमावश्यक है। उस परमात्मा को संबोधित करते हुए जभनाथ जी भी एक स्थल पर कहते है। 'इस अपार संसार मे, किस विधि उतरूं पार। अनन्य भगत मै आपका, निश्चल लेहु उबार।[3]' अतएव, इन दोनों की रचनाओ

---

१ राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ (उत्कल प्रातीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कटक) पृ. १३८। २.सिद्ध चरित्र (रतनगढ, सं० २०१३). पृष्ठ १३३ ३. संतभाल (महर्षि शिवव्रत लाल कृत, इलाहाबाद) पृष्ठ १५७।

के अन्तर्गत हमें भक्ति भावना के उदाहरण तो मिल जाते है, किन्तु वैसी भक्ति साधना भी नही पायी जाती जैसी संतवानियों मे उपलब्ध है। ये लोग अपने समय मे प्रवाहित भक्तिधारा की ओर उन्मुख अवश्य जान पडते हैं, किन्तु ये इसके साथ ही उसके प्रवाह मे पडने की ओर प्रवृत भी नही प्रत त होते जिसके आधार पर यह परिणाम निकाल लेना भी कदाचित्, अनुचित न कहा जाय कि, यद्यपि उन दिनो की सैद्धांतिक दृष्टि लगभग एक ही जैसी क्यों न लगती रही हो, जहां तक साधना-विशेष के अपनाने का प्रश्न है, सभी साधक केवल एक ही मार्ग का अवलवन पसन्द नही करते थे। जिन लोगो के ऊपर अभी तक नाथ-पन्थ का प्रभाव अधिक रह गया था वे उसकी परम्परागत साधना को ही महत्व देते थे और उनकी ओर से भक्ति साधना को अभी तक गौण स्थान दिया जाता था, किन्तु अन्य लोग क्रमशः प्रथम का न्यूनाधिक परित्याग भी करते जा रहे थे। फलत., हम इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते है कि, उन दिनो के इन महापुरुषों मे हमे जो कुछ अन्तर दीख पडता है उसे हम उक्त मात्रा भेद का ही परिणाम कह सकते है, इसके लिए हमे उनकी मौलिक विचारधारा के उदय तक भी पहुंचने की वैसी आवश्यकता नही। यहा पर केवल इतना और भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की दशा, सम्भवतः सम्वत् १६०० के लगभग तक, अथवा इसके कुछ ही आगे तक, बनी रह पायी और उसके अनन्तर भक्ति साधना मे लोकप्रियता के फलस्वरूप आई हुई समन्वयात्मक वृत्ति और सांप्रदायिकता का प्रचार एक साथ आगे बढा तथा जिस मानसिक संतुलन को सब किसी ने तब तक एकसा बनाये रखने की चेष्टा की थी उसमे अस्थिरता आने लगी। उस समय प्रचलित सगुणवादी भक्ति-साधना द्वारा इस प्रवृति को विशेष बल मिला। फलतः जिस मनः स्थिति वा मनोदशा को पहले हम किसी मनोवैज्ञानिक तथ्यमात्र के ही रूप में प्रकट कर दिया करते थे उसकी ओर अब किसी भौतिक स्थानविशेष जैसा भी निर्देश किया जाने लगा। उदाहरण के लिए जब 'निरजन' शब्द स्पष्टतः पुरुष वाचक बन गया तो उसे केवल ब्रह्मवत् अनुभव करने की मानसिक दशा का भी सूचक समझना स्वभावत. उसी प्रकार उपयुक्त नही रह गया जिस प्रकार उपनिषदों के समय मे मान लिया जाता था। अब, नवीन परिस्थिति के अनुसार, उस निरंजन पुरुष के किसी 'वास', 'थान', वा 'हाट' तक की भी कल्पना की जाने लगी, तथा उसके निकट लगे रहने को अभिलाषा प्रदर्शित की जाने लगी जैसा हम, अभी इसके पूर्व, स्वा० दादूदयाल की रचनाओ से, निरंजनसबधो प्रसंगों के कतिपय उद्धरण देने के प्रसंग मे भी, देख आये हैं।

इस प्रकार, यदि उक्त निष्कर्ष किसी प्रकार साधार एवं स्वीकार-योग्य ठहराया जा सके उस दशा मे, हमारे लिए यह अनुमान करना भी अस्वाभाविक नही कि स्वा० हरिदास का आविर्भाव, संभवतः, स्वा० दादूदयाल के पहले हुआ होगा तथा यदि, वास्तव में, उन्हे ही निरंजनी संप्रदाय का प्रवर्तक भी सिद्ध किया जा सके तो उसे दादू-पथ से प्राचीनतर भी मान लिया जा सकता है। तदनुसार

उनके जीवन काल के सं०१७०० अथवा उसके और आगे तक जाने की भी उतनी संभावना नही रह जायगी जितनी उसके सं० १६०० तक ही पहुँच पाने के लिए हो सकती है और फलत. यह असभव नही कि उनका जन्म सं०१५१२ मे हुआ हो तथा उनके देहात का समय सं० १६००[1] वा १५६५ रहा हो। इसे स्वीकार करने में हमें कुछ कठिनाइयो का सामना अवश्य करना पड सकता है जिस कारण उन पर विचार कर लेना भी उचित होगा। सबसे बडा प्रश्न हमारे सामने यह आ सकता है कि यदि, वास्तव मे, उनका देहात- सं० १६०० तक हो गया था उस दशा मे, इस बात का समाधान क्या होगा कि, स्वयं उनकी ही एक साखी के अंतर्गत, सम्राट अकबर के मर चुकने की जैसी चर्चा आती है, जब कि उसका देहात सं० १६६२ में हुआ था। जैसे,

"छ चकवै मुचकन्द कहां, कहां विक्रम कहां भोज ॥
सावंत हथी चौहाण कहां, कहां अकबर नौरोज ॥१८॥"[2]

अर्थात् (कालने सब किसी को ग्रस लिया), अब न तो प्रसिद्ध छ चक्रवर्ती राजा (वेनु, वलि, कंस, दुर्योधन, पृथु और विक्रम) रह गये, न मुचकुंद व विक्रम और भोज रहे और न चौहान वंशी सामंत पृथ्वीराज अथवा नौरोज के लिए प्रसिद्ध अकबर ही बच सके। ❀ यहा पर यदि साखी का पाठ सर्वथा शुद्ध और प्रामाणिक हो और यह प्रक्षिप्त भी सिद्ध न की जासके उस दशा मे, यदि इसके रचयिता का अभिप्राय यहां पर सम्राट् अकबर से ही हो तो, उसे इसका पूर्ववर्ती ठहराया जा सकता है, इसमे संदेह नही। परन्तु, जहा तक पता है, सम्राट् अकबर के नामके साथ अन्यत्र कही 'नौरोज' का विशेषण देखने मे नही आता और न, इस शब्द के केवल किसी महान् धार्मिक उत्सव का वाचक होने मात्र के ही कारण, इसके विशिष्ट प्रयोग की यहा पर कोई उपयुक्तता ही प्रतीत होती है। अतएव, हो

---

१. प्रस्तुत पुस्तक, 'भूमिका'-भाग, पृष्ठ ५६।

२. प्रस्तुत पुस्तक (भरम विधूंस जोग ग्रंथ सा० १८), पृष्ठ ८२।

❀ यहा पर 'छ चकवै' के अंतर्गत यदि विक्रम का नाम लिया जाता हो तो, साखी मे फिर आये हुए 'विक्रम' शब्द के कारण, द्विरुक्ति का दोष पाया जा सकता है। प्रसिद्ध चक्रवर्तियो की सख्या जहा ७ की बतलायी जाती है वहा इस प्रकार कहा गया है—"भरतार्जुन मान्धातृ, भगीरथ युधिष्ठिरा.। सगरो नहुषश्चैव सप्तते चक्रवर्तिन." जिस मे उक्त 'छ चकवै' में से किसी काभी नाम नही है। वैसी दशा मे 'नौरोज' शब्द का प्रयोग संभवत. उसी प्रकार हुआ होगा जिस प्रकार 'दादा भाई नौरोजी' मे दीख पड़ता है और 'नौरोज' यदि स्वय व्यक्ति वाचक संज्ञा हो उस दशा मे 'अकबर' शब्द का ही अर्थ 'महान्' वा 'बड़ा' किया जा सकता है।—ले०।

सकता है कि 'अकबर नौरोज' यहां किसी अन्य व्यक्ति का सूत्र कहो। 'नौरोज' 'पारसी धर्म का एक महान् पर्व है जिससे यह शब्द किसी प्राचीन ईरानी सम्राट् की ओर भी संकेत कर सकता है जिसका नाम आजकल प्रसिद्ध नही है।

इसी प्रकार एक दूसरा प्रश्न उठाया जा सकता है कि दादू-पंथी लोगों के यहां ऐसा माना जाता है कि हरिदासजी स्वा० दादू दयाल के शिष्य प्रागदास के शिष्य थे और इसके लिए कतिपय पुराने 'पत्रो' का प्रमाण भी दिया जाता है जिसकी चर्चा हम इसके पूर्व कर आये है। उन 'पत्रो' मे हरिदासजी के नाम के आगे 'निरंजनी' शब्द लगाया गया है और उनके प्रागदास का शिष्यत्व स्वीकार करने का सं० १६५६ भी दिया गया है। इसके सिवाय वहां पर इस बात को भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया मिलता है कि "हरिदासजी निरजनी स० १६७० के मि० फागण सुदी ६ रामसरणि हुआ"। मूलपत्रो का राघोदास की 'भक्तमाल' के टीकाकार चत्रदास द्वारा लिखा गया होना उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि करता है। अतएव, उन पत्रो को पूरा महत्व दिया जा सकता है और, उनके अनुसार किसी हरिदास निरंजनी का देहांत सं० १६७० मे मान लेने पर, उपर्युक्त स्वा० हरिदास का इन से भिन्न समझना तथा इस प्रकार दो हरिदासो का होना और एक का दूसरे से ७० वर्ष आगे तक जीवित रहना यह सभी स्वाभाविक हो जाता है। परन्तु, यदि दो हरिदास रहे हो तो किसी ने आज तक इस बात का उल्लेख क्यो नही किया ? 'चत्रदास' यदि वास्तव मे वे ही है जिन्होने 'भक्तमाल' की टीका लिखी थी तो उन्हे हम 'हरिदास निरजनी के विषय मे कोई ऐसी भूल कर बैठने का दोष भी सहसा नही दे सकते। उन चत्रदास को इस बात का पूरा पता रहा होगा कि हरिदासजी "नृमल नृवाणी निराकार को उपासवान" थे तथा वे "नृगुणी उपासिकै" निरंजनी कहे गये थे।[1] यदि इनके संबंध मे पहले प्रागदास का शिष्य होना, फिर स्वयं दादू जी से दीक्षा ग्रहण करना तथा, अन्त मे, क्रमशः कवीर-पथ एवं गोरख-पथ का अनुयायी होना भी प्रसिद्ध था तो इस बात का भी और वहां पर कुछ सकेत क्यो नही किया गया ? और यदि ऐसे दो 'हरिदास' निरंजनी' हुए और उनके आविर्भाव-कालो के बीच केवल कुछ ही दिनो का अन्तर था तो इस बात की ओर भी उनका ध्यान क्यो नही गया ? अतएव' जबतक उक्त मूल 'पत्रो' का भली भाति निरीक्षण नही किया जाता तथा इस बात का भी अंतिम निश्चय नही कर लिया जाता कि वास्तव मे, उनके लेखक वे ही चत्रदास थे जिन्होने 'भक्तमाल' की टीका लिखी थी तब तक उनके आधार पर इस बात को भी स्वीकार कर लेना कि संभवतः दो हरिदास निरजनी रहे होगे हमे उचित नही प्रतीत होता क्योकि ऐसे निष्कर्ष किसी भ्रांति के कारण भी बन जा सकते है।

परन्तु, यदि हम स्वामी हरिदासजी का आविर्भाव-काल स० १६०० तक स्वीकार करले तथा यह भी मानले कि जिस 'हरिदास निरंजनी' की चर्चा उपर्युक्त

---

१. राघोदास की 'भक्तमाल' मनहर छद स० ४३६।

पत्रो मे की गई कही जाती है वे, वास्तव मे, कोई ग्रोर व्यक्ति रहे होंगे ग्रौर उन्हें, किसी भ्रातिवश, इनका स्थान दिलाने की चेष्टा की जाती होगी उस दशा मे भी, यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या ये ही निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी रहे होगे ? राघोदास ने, ग्रपने प्रसिद्ध 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ के ग्रन्तर्गत इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्त क का नाम 'जगन' दिया है जिस बात की चर्चा हम इसके पहले भी कर ग्राये है। इसके सिवाय उन्होने इन 'जगन' का नाम, कवीर, नानक एवं दादू के साथ, चार 'महंतो' को निर्गु णी पथ-प्रवर्तको मे गिनाया हैं। उन्होने इन चारो ही 'महंत नृगुनीन की पद्धति' ग्रथवा पद्धति को स्वयं निरंजन के मूलस्रोत से 'मिली' हुई ठहराया है ग्रौर इस बात को उसी प्रकार प्रकट भी किया है जिस प्रकार उन्होने रामानुजाचार्य की पद्धति को लक्ष्मी से उत्पन्न, विष्णुस्वामो वाली को शकर से प्रसूत मध्वाचार्य वाली को ब्रह्मा से उद्भूत एवं निम्बार्काचाय वाली को सनकादि से निकली होना बतलाया है तथा इन चारो निर्गु णियों में से भी नानक एवं दादूदयाल को जिन्होने 'रवि' एवं 'शशि' के समान प्रकाशमान भी कहा है। परन्तु उन्होने इन चारों पंथो का परिचय फिर पृथक् पृथक् भी दिया है ग्रौर उसे, क्रमश नानक, कबीर, दादू एवं जगन के ग्रनुसार उसी प्रकार निर्दिष्ट किया है, इस प्रकार 'जगन' की पद्धति व 'निरंजनी पथ' का वर्णन, छप्पै स० ४२६ से लेकर मनहर स० ४४४ तक मे, पृथक रूप से किया गया मिलता है ग्रौर उसके ग्रारम्भ (ग्रर्थात् छप्पै सं० ४२६) मे ही लपट्यौ १. जगन्नाथ, २ स्याम, ३. कान्हड, ४. ध्यानदास, ५. षेम, ६. नाथ, ७. जगजीवन, ८. तुरसी, ९. ग्रांन, १०. पूरण, ११. मोहनदास व १२. हरिदास के नाम देकर, इन बारहो 'महन्त निरंजनी' के विषय मे कहा गया है कि ये सभी लोग 'कबीर के भाव' को 'रखते' वा उसका समर्थन किया करते थे। फिर इन्ही बारहों के नाम, किंचित् क्रम परिवर्तन के साथ ग्रागे मनहर सं० ४४४ मे भी दिये गये है ग्रौर वहा इनके वास-स्थानों तक का नाम निर्देशन कर दिया गया है। हम वहां पर यह भी देखते हैं कि पहले 'जगन्नाथदासजी लपट्या की टीका' ग्रर्थात् ईश्वी सं० ५५२ मे, सम्भवतः उक्त 'जगन' का ही कुछ विस्तृत परिचय दिया गया है ग्रौर फिर, क्रमश. ग्रानन्ददास, स्यामदास, कान्हड़दास, पूरणदास, हरिदास, तुरसीदास, मोहनदास, ध्यानदास, षेमदास, नाथ एवं जगजीवनदास के भी विषय मे लगभग उसी प्रकार कहा गया है तथा इनमें से ग्रानन्ददास के ग्रतिरिक्त, सभी के लिए 'टीका' शब्द ही लिखा गया।* फलतः उक्त 'जगन' एवं 'लपट्यो जगन्नाथ' को एक ही व्यक्ति के नाम मान लेने तथा उसको हरिदास से भिन्न समझने के लिए हमे यथेष्ट ग्राधार मिल सकता है।

* मेरे इस पूरे कथन को स्व० हरिनारायण शर्मा (जयपुर) की उस हस्तलिखित प्रति पर ग्राधारित समझना चाहिए जिसे उन्होने मेरे पास किसी समय स० २००७ मे भेजने की कृपा की थी ग्रौर जिसका चत्रदास के शिष्य नन्दराम के शिष्य गोकलदास द्वारा सं० १८६१ मे लिखा जाना उसके ग्रन्तिम पद्य द्वारा सिद्ध है। —लेखक

नाथजी (बालकरामजी) महाराज की प्रणाली

१. महाराज हरिपुरुषजी (हरिदासजी)
२. नाथजी महाराज (बालकरामजी) शिष्य
३. शिवरामदासजी
४. सुषरामदासजो
५. सहजरामजी
६. बालकदासजी
७. नन्दरामदासजी
८. श्यामदासजी
९. गिरधारोदासजी
१०. भंडारी पोकरदासजी
११. भंडारी रघुवरदासजी
१२. भंडारी जयरामदासजी

परन्तु, इतना होने पर भी, हमे राघोदास द्वारा बतलाये गये निरञ्जनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक 'जगन' के विषय मे पर्याप्त जानकारी नही प्राप्त होती, ५५२ वे इन्दव द्वारा केवल इतना ही पता चल पाता है कि नियमानुसार सदा नाम मे निरत रहने के कारण, उनमे अलौकिक शक्ति आ गई थी, ब्रह्म के साथ उनका सम्बन्ध उच्चकोटि का था तथा इस जगत् मे वे वास्तव मे, 'जगन्नाथ' कहलाने योग्य थे। मनहर सं० ४४५ मे उनको किसी 'थरोली मे' रहने वाला बतलाया गया है जिसका हमे अभी तक कोई निश्चित भौगोलक परिचय उपलब्ध नही है, किन्तु उसापद्य में निर्दिष्ट किये गय •रिदास के वासस्थान 'डीडवाणा' के विषय मे हमे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि, ग्रन्थ के ४२६ के छप्पै में जहा १२ निरजनी महतो के नाम गिनाये गये है वहा पर भी, लपट्यौ जगनाथ' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ही किया गया है, किन्तु, अन्य पद्यो मे तथा इन बारहो का पृथक् वर्णन करते समय भी, शेष ११ के लिए कोई निश्चित क्रम नही दिया गया जान पड़ता। इसके सिवाय, निरंजनी हरिरामजी की परचई मे कहे गये।

"घाट वाढ़ इनमें नहीं अधिकारी निजधाम के।
द्वादस महन्त निरंजनी सदा उर वसहु हरिराम के ॥"

से ऐसा भी लगता है कि इन वारहो को प्राय· एक समान श्रेष्ठ समझा जाता रहा होगा। किन्तु इस पूरे पद्य के आरम्भ मे ही हरिदासजी का नाम आया है और इसमे जगन्नाथ का अन्तिम अर्थात् १२वा स्थान दिया गया है। जहा तक पता चलता है इन वारहो मे से कुछ को हरिदासजी के शिष्य-रूप मे भी परिचय दिया जाता है, किन्तु उनमे, कदाचित् जगन्नाथ का नाम नही है। राघोदास की 'भक्तमाल' का ३४२ वा छप्पै इस प्रकार है—

"नानक कवीर दादू जगण राघो परमातम जपे।
नानक सूरज रूप भूप सारे परकासे।
मवचा दास कवार ऊसर सूसर वरषाले ॥
दादू चंद सरूप अमी करि सवको पोषे।
वरन निरंजनी मनौ त्रिषा हरि जीव संतोषे ॥
ये च्यारि महंत चहूं चक्कवै च्यारि पंथ निरगुण भये।
नानग कवीर दादू जगन, राघो परमातम जपे ॥३४२॥

जिसमें, क्रमशः गुरु नानकदेव को सूर्य, संत कवीर को इंदु तथा दादूदयालजी चंद्रमा कह कर, उनके द्वारा सबका कल्याण किया जाना बतलाया गया है, किन्तु यहां पर, चौथे निर्गुण-पंथ के स्थापित करने वाले महापुरुष की भी प्रशंसा, उसी प्रकार नामोल्लेख करके, की गई नही पायी जाती, प्रत्युत उसके लिए रची गई

पंक्ति "वरन निरंजनी मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे" का अर्थ उतना स्पष्ट भी नही हो पाता। इस छप्पै की प्रथम एव अंतिम पंक्तियो मे नानक, कवीर, दादू एवं जगन जैसे चार नाम स्पष्ट रूप मे दिये गये है और, फिर उन्हे दुहराते हुए, क्रमशः उनमे से प्रथम तीन वाले महापुरूषो के विषय मे, कुछ न कुछ कह दिया गया है। किन्तु उनमे से चौथे नाम 'जगन' को भी उसी प्रकार दुहराया गया नही दिख पडता, प्रत्युत उसके द्वारा अभिहित किये जाने वाले का केवल प्रशंसात्मक वर्णन मात्र कर दिया गया ही मिलता है जिससे, स्पष्टता के अभाव में, भ्राति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत पुस्तक के संपादक स्वा॰ मंगलदासजी ने, इसके लिए लिखी अपनी 'भूमिका' (पृ॰ ६६) मे, उक्त पक्ति मे आये हुए 'हरि' शब्द को स्वा॰ हरिदासजी का सूचक माना है और उसका अर्थ यो किया है "हरिदासजी ने संसार के विविध भोग पदार्थो को तृषा से पीडित मनुष्यो को निरंजन के विवेचन द्वारा संतोषे–सुखी किये।" और उन्होंने यह भी कह दिया है कि इस शब्द का अर्थ यहा पर 'हरन–दूर करना' नही है। परन्तु हमे ऐसा लगता है कि यहां पर, 'हरि' का अर्थ 'हरिदास' न करके उसका स्वाभाविक रूप मे 'दूर करके' अर्थ लगाना ही अधिक सुसंगत कहला सकता है। यदि यह न किया जाय तो फिर पद्य को प्रथम एवं अंतिम पक्तियो मे किया गया 'जगन' शब्द का प्रयोग नितात निरर्थक हो जायगा। हम अभी देख आये है कि इसके द्वारा अभिहित किये जाने वाले महापुरुष हरिदासजो भिन्न भिन्न व्यक्ति है जिस कारण यह इनका वाचक नही समझा जा सकता प्रत्युत यह किसी ऐसे अन्य पुरुष के लिए यहा प्रयुक्त हो सकता है जिसके बिषय मे वहां पर, नामोल्लेखन करके, केवल संकेत मात्र ही कर दिया गया है। अतएव, हमारी समझ मे उपर्युक्त पक्ति का अर्थ यदि "और निरजन को वरन करने वाले अथवा इष्टवत् स्वीकार करने वाले महापुरुष ने मानो समस्त प्राणियो की 'त्रिषा' दूर करके अथवा उनकी अभिलाषाओ की पूर्ति करके, उन्हे सतुष्ट कर दिया" किया जाय तो, यह कही अधिक युक्तिसगत हो सकता है। उस दशामे जो शब्द जहा प्रयुक्त है उसके वहा होने की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है और चारों 'महंतों' का न्यूनाधिक उल्लेख भी हो जा सकता है। हमारे यहां 'वरन निरंजन' की जगह 'वरन निरंजनी' पाठ मिलता है जिस दशा मे 'वरन' शब्द का अर्थ ('विघ्न हरन' एव 'मंगल करन' के क्रमशः 'हरन' एवं 'करन' की भाति 'हरनेवाला' एव 'करने वाला' जैसे 'वरण करने वाला न करके) यहां 'वरणीय' का 'वरेण्य का अभिप्राय-सूचक 'श्रेष्ठ' वा 'वारिष्ठ' भी कर दिया जा सकता है। राघोदासजो ने 'जगन' का नाम, छप्पै ४२६ मे अंतर्गत, द्वादश निरजनी लोगों में, संभवत· 'जगनाथ' के ही रूप मे लिया है। इसी नाम से इनका परिचय, फिर ५५२ वे इंदव मे, दिया गया है तथा, ४४४ वे मनहर मे, इनके वासस्थान का 'करोली' नाम से निर्देश भी किया गया है। अत एव, हमे यहां पर सहसा किसी 'भूल' का होना समझ लेने अथवा 'जगन' शब्द' के स्थान हर 'जुहरि' की उपयुक्तता मानने की भी कोई वैसी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

हो सकना है कि 'द्वादश निरंजनी' द्वारा सूचित किये जाने वाले प्रसिद्ध बारह निरजनी महापुरुषो के विषय मे पृथक् रूप से वर्णन करने की परम्परा राघोदासजी के समय अथवा उसके कुछ पहले से चली हो जब तक उनमे से कालानुसार अंतिम क जीवन-काल भी बीत चुका हो। इसके सिवाय यह भी संभव है कि उन बारहो मे से सर्वप्रथम अथवा पथ के मूल प्रवर्त्तक का आविर्भाव-काल उस समय से सैकडो वर्ष पूर्व व्यतीत हो चुका हो। कम से कम हमे अभी तक उन सभी के किशी एक सुदीर्घ काल के अतर्गत क्रमश· प्रकट होने अथवा समसामयिक रहने तक का भी कोई निश्चित पता नही है उनका हमे केवल कुछ प्रशंसात्मक परिचय मात्र ही मिलता है और उनके स्थानो की ओर किया गया कुछ संकेत भी मिलता है जिनसे हमारा पूरा काम नही चल पाता। उनमे से जिन लोगो की कुछ रचनाएँ उपलब्ध है अथवा जिनकी चर्चा कही अन्यत्र भी प्रासंगिक रूप मे कर दी गई दीख पडती है उनके भी जीवन-काल के विषय मे हम, यथेष्ट सामग्री के अभाव मे, असदिग्ध निर्णय नही कर पाते। ऐसी दशा मे, यदि 'जगन' वा जगन्नाथ, वास्तव मे निरजनी सप्रदाय के मूल प्रवर्त्तक रहे हो तो, उनका समय, स्वभावत बहुत पहले व्यतीत हो जाने के कारण, तथा इस लिए भी कि उनकी न तो अभी तक हमे कोई रचना उपलब्ध हो पाई है और न उनके विषय मे कोई प्रासंगिक उल्लेख तक भी मिल सका है, निर्धारित करना अत्यत कठिन है। स्वा० हरिदासजी के आविर्भाव-काल के सम्भवत· विक्रम की सोलहवी शताब्दी मे होने का अनुमान अभी हम कुछ ही पहले कर चुके है। राघोदासजी की 'भक्तमाल' के ४३६ वे मनहर मे, 'हरिदासजी की टीका' शीर्षक के नीचे इनके विषय मे कहा गया है कि

"नृमल नृबांणी निराकार कौ उपासवान
नृगुणी उपासिकै निरंजनी कहायौ है"

अर्थात् इन्होने निर्मल निर्वाण एवं निराकार की निर्गुणोपासना द्वारा 'निरजनी' की उपाधि पायी जिससे विदित होता है कि अपनी साधना विशेष के कारण संभवत इन्होने ही सर्वप्रथम निरंजनी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा भी की होगी अथवा इस सम्बन्ध मे यहाँ तक भी अनुमान किया जा सकता है कि, इनकी इस 'निरंजनी' उपाधि के आधार पर ही, कदाचित् उस पथ का नाम भी प्रचलित हुआ हो। इस बात की पुष्टि हमे इस रूप में भी होती जान पडती है कि अनेक लेखक जिनमे से कई की चर्चा स्वा० मंगलदासजी ने अपनी 'भूमिका' मे की है) इन्हे स्पष्ट शब्दो मे उस मत का प्रवर्तक मानते आये है। परन्तु स्वयं राघोदासजी की 'भक्तमाल' के अन्तर्गत किये गये कतिपय स्पष्ट उल्लेखो के कारण (जिन पर हम अभी अपना कुछ विचार प्रकट कर चुके है) इसके पूर्ण तथ्य होने में हमे संदेह भी होने लगता है। अतएव, हमे यहाँ पर इस प्रकार भी अनुमान करना पड जाता है कि किसी जगन के इस निरजनी संप्रदाय के मूलप्रवर्तक होने की प्रसिद्धि, सभवत· राघोदासजी के समय मे पहले से भी रही होगी जिसका उल्लेख, अपनो रचना के अन्तर्गत, कर देना उन्हे आवश्यक जान पड़ा होगा। ऐसी दशा मे हमे तो यह भी

संभव सा ही लगता है कि दादू-शिष्य छोटे सुन्दरदासजी ने अपनी एक पंक्ति मे जो

'कोउ कहै हरिदास हमारेजु यौं करि ठानत वाद विवादू'[1]

कह दिया है वह भी कदाचित्, किसी ऐसे मतभेद की ओर ही सकेत करता होगा जिसका सम्बन्ध निरंजनी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक वाले उक्त प्रश्न के साथ रहा हो। परन्तु इसमे संदेह नही कि, स्वा० हरिदासजी को इसका सस्थापक मानने के पक्ष में कही अधिक मत उपलब्ध होते है जिस कारण इसे ही स्वीकार करने की आज कल प्रवृत्ति भी देखी जाती है।

स्वामी हरिदासजी के सम्बन्ध मे अभी तक प्राप्त साहित्य तथा उनकी अपनी रचनाओ के आधार पर भी हमे उनका यथेष्ट परिचय नही मिलता, परन्तु फिर भी जितना पता चल पाता है वह भी अन्य निरजनी महात्माओ के विषय मे प्राप्त हमारी जानकारी की अपेक्षा कही अधिक होगा उनके लिए कहा गया मिलता है कि उनका प्रारंभिक जीवन किसी लुटेरे के जैसा था, कितु, किसी महात्मा द्वारा प्रभावित होकर, उन्होने अपने शस्त्रादि जंगल के कुंए मे डाल दिये और 'तीखी डूंगरी' मे पहुँच कर ईश्वर-चिन्तन मे लीन रहने लगे तथा, अत मे, उन्होने सिद्धि भी प्राप्त करली। फिर वहा से चलकर उन्होने केई स्थानो का भ्रमण किया तथा, अधिकतर डीडवाणे मे रहते हुए, अपना चोला छोडा। उन्होने अपने विषय मे एक स्थल पर कहा है –

"नाथ निरंजन देषि, अंति संगी सुषदाई।
गोरष गोपीचन्द, सहजि सिधि नौ निधि पाई॥
नामैं दास कबीर, रांम भजतां रस पीया।
पीपै जन रै दास, वड़ै छकि लोहा लीया॥
अणभै 'वस्त' संभालिकरि, जन हरीदास लागा तहीं।
राम विमुष दुविध्या करै, ते निरबल पहुँचै नहीं॥१३॥[2]

अर्थात् नाथ निरंजन को ही अपना वास्तविक हितैषी मान कर गोरष और गोपीचन्द ने अपनी सहज साधना मे सफलता प्राप्त की तथा नामदेव एवं कबीर ने राम की भक्ति का रसपान किया अथवा पीपा एवं रैदास जैसे लोगो ने भी भरपूर लाभ उठाया। तदनुसार जन हरिदास को स्वानुभूति-जन्य बोध हो गया और यह उसीमे सदा निरत रहने लगे। जिन्हे इसमे विश्वास का संवल नही, वे सिद्धि नही प्राप्त कर सकते इससे स्पष्ट है कि उन्होने कोई ऐसा मार्ग अपनाया जिसमे नाथ पंथ एवं संत-परम्परा के मतो व साधनाओं का पूर्ण सामजस्य था जिस कारण एक ओर जहां उन्होंने "जन हरिदास नाथ का बालक, रहै नाथ की छाया"[3] कहा, वहां, दूसरी ओर, उन्हे "करडा पथ कबीर का सो हम लीया सोधि"[4] कह डालने

---

१. 'सुन्दर ग्रन्थावली' (पृ० ३८५) २. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० २६५। ३. वही, पृ० ३६७। ४. वही, पृ० ३८८।

में भी, किसी प्रकार के विरोध का अनुभव नही हुआ। स्वा० हरिदास का मत अत्यंत सुसंगत और श्रेयस्कर जान पडा तथा उनके उत्कृष्ट व्यक्तित्व ने भी लोगों को आकृष्ट किया जिस कारण उनके अनुयायियो की संख्या बढने लगी। चाहे उन्होने, अपने उक्त मार्ग के आधार, निरजनी संप्रदाय का संगठन पहले पहल स्वय किया हो अथवा उन्होने ऐसे किसी नाम से पूर्व प्रचलित परम्परा को अपनाकर उसे सुव्यवस्थित रूप दे दिया हो तथा फिर उनके शिष्यो प्रशिष्यो ने इसे आगे और भी प्रचारित किया हो, इसमे सदेह नही कि, उनका विशिष्ट प्रभाव इसके ऊपर सदा बना रहा और उन्हे इसका मूल प्रवर्त्तक तक भी स्वीकार किया गया।

स्वा० आचार्य क्षितिमोहन सेन ने संभवत किसी ऐसे ही निरंजनी मत के अवशिष्ट अंश का अब तक उडीसा प्रांत मे पाया जाना तथा उसके द्वारा भारत के मध्यवर्ती एवं पूर्वीय क्षेत्रो का प्रभावित होना भी बतलाया है।[१] उन्होने उसके प्रभाव का अब तक सिलहट के किसी 'जगमोहनी संप्रदाय' और विशेषकर उसके 'विठंगल मठ' के ऊपर लक्षित होने की भी चर्चा की है[२]। परन्तु उन्होने ऐसे किसी प्रभाव के न तो रूप को निश्चित किया है और न, राजस्थान के अंतर्गत इस समय प्रचलित प्रस्तुत निरजनी सप्रदाय के सिद्धातो एवं साधनाओ के साथ उसकी किन्ही मान्यताओं की तुलना करके, कोई निष्कर्ष निकालने का ही प्रयत्न किया है जिस कारण हमे इस बात का ठीक पता नही चल पाता कि यह वस्तुत उसका किसी प्रकार ऋणी ठहराया भी जा सकता है वा नही। इसी प्रकार, आज-कल राजपूताने मे वर्तमान निरंजनी साधुओ के किसो 'एक सप्रदाय' की चर्चा करते हुए, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उसके "प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान् (निर्गुण) उपासक" का नाम लिया है[३]। किन्तु हमे यहा पर भी यह स्पष्ट नही होता जान पडता कि उक्त सप्रदाय और यह निरंजनी संप्रसाय दोनो एक और अभिन्न कहे जा सकते है तथा, यदि ऐसा हो उस दिशा मे, उक्त प्रवर्त्तक 'स्वामी निरानद' का परिचय क्या है। इसके सिवाय, साधुओ के विभिन्न अखाडो का वर्णन करते समय, प्रो० घुरये ने किसी 'निरजनी अखाडे की भी चर्चा की है और उसकी स्थापना का, कच्छ प्रदेश के माण्डवी नामक स्थान मे, सन् ९०४ ई० मे, किया जाना कहा है तथा इस अखाडे के ही प्रधान केन्द्र वर्तमान समय मे प्रयाग मे पाया जाना भी बतलाया है,[४] कितु हमे यहा पर भी यह पता नही चलता कि उसका इससे कोई सम्बन्ध है या नही। अतएव, हमे अभी तक इस बात का कोई भी निश्चित प्रमाण प्राप्त नही। जिसके आधार पर, किसी 'निरजनी' शब्द के साथ जुडे हुए नाम वाले पूर्व प्रचलित सप्रदाय के साथ, इसका किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। 'निरंजन' और 'निरंजनी' जैसे

---

१. क्षितिमोहन सेन: 'मिडीवल मिस्टीसिज्य आफ इ डिया' (लदन, १९२९ई०) पृ० ७०। २. नही पृ० १७०। ३. प० हजारीप्रसाद द्विवेदी: 'कबीर' (बम्बई, १९४२ ई०) पृ० ५२। ४. प्रो. जी. एस. धुरिये। इन्डियन साधूजी वम्बई १९५३ ई. पृ. ११७-११८

शब्द बहुत पहले से प्रचलित रहे है जिस कारण यह असंभव नही कि कभी इनके साथ जुड़े हुए नाम की कोई संस्था वा कुछ संस्थाए वर्तमान रही हो और उनका लोप अभी तक भी न हो पाया है, किन्तु केवल इसी लिए उनके साथ इसका सम्बन्धित भी होना अनिवार्य नही है। इस सम्बन्ध मे अधिक से अधिक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि, स्वा० हरिदासजी के समय मे भी कदाचित् कोई ऐसा सम्प्रदाय रहा होगा जो निरजनी सम्प्रदाय जैसे किसी नाम से प्रचलित रहा होगा और वह चाहे किसी 'जगन' 'जगन्नाथ' वा लपट्यौ जगन्नाथ' द्वारा प्रवर्तित रहा होगा अथवा उसे किसी अन्य महापुरुष ने भी चलाया होगा तथा इन्होने उसका उन्नयन अवश्य किया होगा।

नवीन अनुसंधानो द्वारा अब यह क्रमश प्रकट होता जा रहा है कि निरंजनी सम्प्रदाय के प्रचारको मे अनेक महान् पुरुष हो गए है और उनमे से कई ने एक विशाल निरंजनी–साहित्य की रचना भी की है जिसके आधार पर हमें अब उसका वास्तविक परिचय मिल सकता है ऐसे साहित्य के अन्तर्गत कुछ 'परची' 'भक्तमाल' एवं 'जीवन–चरित्र' कहलाने वाली रचनाएँ मिली है जिनमे, किसी न किसी रूप मे, स्वामी हरिदासजी तथा उनके सहयोगियो और अनुयायियो के विषय मे न्यूनाधिक प्रकाश पड़ता है तथा इसी प्रकार निरजनी सन्तो की वाणियाँ उनके द्वारा अनुवादित रचनाएँ एवं कतिपय फुटकल ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए है जिनसे उसमे सहायता मिलती है। इन दूसरी कोटि की रचनाओ मे से भी ऐसी वाणियो को अधिक महत्व दिया जा सकता है जो विशिष्ट महात्माओं की है तथा जिनके गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन के सहारे हमे इस पन्थ के गूढ़ रहस्यो एवं साधनाओ को समझ पाना सरल हो सकता है। यह बड़े खेद की बात है कि अभी तक हमे इनमे

से सभी वाणी रचयिताओं का जीवन-काल तक विदिन नही हो पाया है जिसका हम उसके आधार पर अभी निरंजनी सम्प्रदाय के मतविशेष के क्रमिक विकास का स्वरूप निर्धारित करने मे असमर्थ है और हम, इसी प्रकार उसके अभाव मे, इस बात का भी पूरा निश्चय नही कर पा रहे है कि इस धार्मिक वर्ग का ऐतिहासिक परिचय कैसे दिया जाय। यदि यथेष्ट प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सके अथवा यदि तब तक केवल उपर्युक्त 'द्वादश निरजनी महन्तो' तक के विषय मे भी हमे अच्छी जानकारी हो सके तथा उनकी अनमोल कृतियो को प्रकाश मे लाया जा सके उस दिशा मे भी; हमे विश्वास है कि हम इस सम्प्रदाय का बहुत कुछ परिचय पालेगे और इस पर विचार करते समय, हमे फिर विविध भ्रांतियों का सामना नही करना पडेगा। तब, सम्भवतः हमे इस बात को भी स्वीकार करने के लिए पूरा आधार मिल जायगा कि इस सम्प्रदाय को सन्त परम्परा के चार सर्वप्रमुख पन्थो मे वह स्थान मिलना चाहिए जिसकी ओर दादू-पन्थी 'भक्तमाल' रचनाकार राघोदास ने, आज से प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले, संकेत किया था।

निरंजनी सम्प्रदाय के साहित्य का प्रकाशन बहुत दिनो तक हमे केवल भगवानदास निरंजनी एवं निपट निरजन जैसे एकाध व्यक्तियो की रचनाओ तक ही सीमित जान पडता था और आज से कुछ दिन पूर्व सं० १९८८ में, वैष्णव साधु देवादास की ओर से स्वा० हरिदासजी की वाणियो का एक संग्रह भी श्री हरि-पुरुषजी की वाणी, नाम से, जोधपुर से, प्रकाशित हुआ था। इस विषय के जिज्ञासुओं को केवल इतनी ही सामग्री से स्वभावत 'पूरा सन्तोष नही हो पाता था तथा इसके जिस विशाल वाणी-सग्रह की चर्चा वे कभी-कभी सुना करते थे उसके अवलोकन की इच्छा, इसके कारण और भी प्रबल होती जा रही थी। अत.एव स्वामी मंगलदासजी ने, उसे प्रकाश मे लाने का काम अपने योग्य हाथो मे लेकर, उनका बहुत बडा उपकार किया है। उनके द्वारा सम्पादित 'महाराज श्री हरिदास जी की वाणी' के साथ न केवल अधिक पाद टिप्पणिया प्रकाशित है, अपितु कही-कही उनकी कतिपय पंक्तियो का किया गया सरल अनुवाद भी मिलता है तथा, इसके अतिरिक्त सबके पहले एक विस्तृत 'भूमिका' भी दी गई पायी जाती है जो उल्लेखनीय है।

जोधपुर वाले उपर्युक्त संस्करण मे उसकी प्रस्तावना के रूप मे, केवल स्वा० हरीदासजी का एक 'संक्षिप्त जीवन चरित्र' दिया गया था तथा उसके आगे "हमारे श्री स्वामीजी के गद्दीधरो की नामावली' जोड दी गई थी, किन्तु इन दोनो मे से किसो को भी पर्याप्त नही कहा जा सकता था। श्री स्वामीजी की 'भूमिका' तथा उसके आगे का 'परिशिष्ट' उनसे कही अधिक सतोषप्रद है। इसके सिवाय, उक्त 'वाणी' के अनतर और 'उत्तरखण्ड' के अन्तर्गत जो 'निरंजनी सम्प्रदाय के अन्य रचनाकारो की रचना के कुछ अंश प्रकाशित हुए है उनकी भी उपादेयता कम नही है। जब तक सभी निरजनी सन्त कवियो की सारो उपलब्ध रचनाएं प्रकाश मे नही आजाती तब तक इन्हे यथेष्ट महत्व दिया जा सकता है। इन अंशो के पहले दिये गये रचनाकारो के सक्षिप्त परिचयो से उनके विषय मे हमारी जानकारी भी बढ जाती है। इस 'खण्ड' के एकाध स्थल ऐसे है जहाँ साधारण पाठको को कुछ भ्राति भी हो जा सकती है तथा उसके निराकरण की आवश्यकता का अनुभव हो सकता है। उदाहरण के लिए उसके पृष्ठ ३ पर स्वामी तुरसीदासजी निरंजनी के लिए 'गुसांई तुरसीदासजी' मुद्रित दीख पडता है जो भ्रातिकारक हो सकता है और इसी प्रकार, उसके पृष्ठ ८४ पर जो, 'पद–३ राग आसावरी' के नाम से रचना प्रकाशित है उसके नीचे किसी एक पाद टिप्पणी के अभाव मे, यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि जिस पद्य को हम पढ रहे है वह, कदाचित् स्वामी रामानन्द के शिष्य समझे जाने वाले पीपाजी द्वारा रचित न हो। सिखधर्म के प्रसिद्ध 'गुरुग्रन्थ साहब' मे, 'राग-धनासरी' के अन्तर्गत, इस पद का एक रूप, उन्ही की रचना कहला कर, पाया जाता है जिस कारण उसके साथ इसकी तुलना करके किसी उपलब्ध निष्कर्ष की सूचना दे देना अधिक समीचीन कहला सकता है। इसके सिवाय, उसके पृष्ठ ८१–४ पर जो 'चिन्तामणि यौग ग्रन्थ' प्रकाशित है उसके विषय मे भी कहा

जाता है कि यह उन्हीं की रचना होगी ×। अतएव, इस बात का भी कुछ समाधान अपेक्षित होगा।

जोहो, स्वामी मंगलदासजी का यह महत्वपूर्ण कार्य सर्वथा अभिनन्दनीय है और हमे आशा है कि, इसका समुचित स्वागत होगा।

पं० परशुराम चतुर्वेदी
एम. ए. एल. एल. बी. बलिया (उ. प्र.)

× 'संतवाणी' (वर्ष ६ अङ्क ६, संवत्, १६६१ ई०), 'संतसाहित्य परिषद', आरा (बिहार प्रांत) पृ० ६-११।

स्वामी हरिदासजी का परिचयात्मक विवरण

भूमिका

१. सामयिक स्थिति.

भारत मे चौहान वंश की राज्य-समाप्ति के साथ ही मुसल्मानों के आधिपत्य की जडे जमने लगी। भारतीय राजाओं के आपसी-विग्रह ने मुसल्मानी साम्राज्य की दृढता मे और सहारा लगाया। लोदी वंश के पश्चात् मुगलो ने बादशाहत जमाई तथा वे स्वयं भारत मे ही निवास करने लगे। सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी मे मुगल शासन अपनी विशेषताएँ लिये हुए था। एक नई धार्मिक प्रवृत्ति का भारतीय संस्कृति मे समावेश होने की कशमकश चलने लगी। 'एकेश्वरवादी मुस्लिम संस्कृति तथा विविध देवादि को मान्यता देने वाली भारतीय संस्कृति की विचारधाराओ में बडा अन्तर था। मूर्तिपूजा भारतीय संस्कृति का एक आवश्यक अङ्ग थी वहा मुस्लिम संस्कृति मे बुतपरस्ती को अत्यन्त हेय माना गया था। भारतीय संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति मे धार्मिक रीति-रिवाज सर्वथा एक दूसरे से विपरीत होने के कारण संघर्ष अनिवार्य था। 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति के अनुसार मुस्लिम संस्कृति को राजसेवी हिन्दू भी अपनाने लगे थे। भारतीयों के लिए यह समय अत्यन्त ही विकट था। जबर्दस्ती धर्म-परिवर्त्तन या परिवर्त्तित धर्म वालों का समाज से बहिष्कार, मठ-मन्दिरो का ध्वस आदि नित्य की घटनाएँ थी। हिन्दू राजाओ ने मुस्लिम बादशाह की मान्यता स्वीकार करली थी। केवल मेवाड के महाराणा को छोडकर अन्य राजस्थान के राजा बादशाहत के अङ्ग बन गये थे। धार्मिक भावनाओ का दाढ्र्य डगमगाने लगा था। भारतीय जन-समुदाय उचित मार्ग-दर्शन के लिए व्याकुल था। देश की पराधीनता से मुक्ति तथा अपनी धार्मिक प्रवृत्तियो को नि:संकोच पूरा करने की लालसा तीव्र होते हुए भी उभय क्षेत्रो मे व्यवस्थित मार्ग-दर्शन का अभाव था। प्रशासक की धर्मनीति का प्रशासितो पर प्रभाव पडना अनिवार्य है। राज्यसत्ता के दृष्टिकोण का प्रभाव प्रजा के सामाजिक जीवन पर पड़ना अनिवार्य है। लाखो मनुष्य राज्य के आश्रित होते है, उनके परिवार तथा सम्बन्धी भी लाखो की संख्या मे होते है। इन आश्रित मनुष्यो को इच्छा या अनिच्छा से राज्य के दृष्टिकोण का समर्थन करना होता है। शासको की धर्मान्धता भी विभिन्नधर्मी प्रजा के लिए एक दारुण दु:खमय अभिशाप से कम नही होता है।

भारत में मुसल्मानी राज्यकाल मे हिन्दू प्रजा को कैसी-कैसी विपत्तियो का सामना करना पडा—यह इतिहास के तथ्यों से जाना जा सकता है। अनवस्थित प्रशा-

मेरा निवेदन

सन्त साहित्य में मेरी श्रद्धा है। जब मैने दादूपन्थी सम्प्रदाय के कुछ साहित्य का सम्पादन किया तभी से मेरी इच्छा थी कि निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक महाराज श्री हरिदासजी की वाणी का एक उत्तम संस्करण निकाला जाय। इनकी वाणी का एक संस्करण महन्त देवादासजी जोधपुर ने प्रकाशित किया था पर उसमें प्रूफ सशोधन की काफी कमी थी तथा कठिन शब्दों के या प्रादेशिक शब्दो के पर्यायों का अभाव था इसलिए पाठक ठीक से वाणी का ज्ञान प्राप्त नही कर सकता था। इन कमियों के निराकरण के साथ वाणी प्रकाशन की भावना ने प्रेरणा की और मैं महाराज हरिदासजी की वाणी के शुद्ध व प्राचीन प्रतियों की तलाश मैं लगा। संभावित स्थानों पर जा जाकर मैने निरंजनी साहित्य की खोज की तथा आवश्यक पुस्तकों की प्राप्ति की। इन प्राप्त पुस्तकों में दो अठारहवी सदी की लिखित है शेष उन्नीसवी शताब्दी की। अठारहवी सदी की दो पुस्तकों में एक पूर्वार्द्ध की तथा एक उत्तरार्द्ध की है। मैने इन प्राप्त पुस्तकों में पांच पुस्तकें मूल पाठ के लिये चुनी जो कि मुझे अधिक शुद्ध प्रतीत हुई। इन पांच पुस्तको के आधार से मूल पाठ की प्रेस कापी तैयार की। पाठभेद प्रेस कापी में रखे गये। पाठभेद मे ध्यान देने पर प्रतीत हुआ कि अधिकांश पाठों का अन्तर लेखक की लेखन शैली का है।

वस्तुतः पाठभेद कम है पर यह निर्णय करना दुष्कर था कि कौनसा पाठान्तर वास्तविक है तथा कौनसा लेखन शैली के कारण से है। इस कमी के साथ यह भी कमी रही कि एक शब्द का पाठभेद कई बार आगया। प्रेसकापी तैयार होने पर यह समस्या आई कि शब्द पर्याय तथा कठिन साषियों का स्पष्टीकरण कैसे हो।

सन, सर्वदा चलती रहने वाली लडाइयाँ, आपसी अविश्वास तथा अनेकता की भावना से भारत जैसे विशाल देश के नागरिक अपनी पराधीनता तथा विवशता के निराकरण का मार्ग पाने के लिए छटपटा रहे थे। ऐसे संघर्ष-काल मे आवश्यकता थी दृढव्रती वीरो तथा आत्मजयी महात्माओ की, जिससे कि भारतीय जनता की अनवस्थित विचलित दशा मे परिवर्तन लाया जा सके।

इसी संघर्ष-काल मे महाराणा सागा, कुम्भा, प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, जसवन्तसिह जैसे वीरों का आगमन हुआ—साथ ही रामानन्द, नानक, कबीर, नामदेव, रैदास, पीपा, दादू, हरिदास, चैतन्य महाप्रभु, तुलसी, सूर, मीरा आदि महात्मा व भक्तगणो का प्रादुर्भाव हुआ। वीरो ने देश की स्वतन्त्रता का प्रयास किया तथा अपने चारित्रिक बल से निर्जीवो मे स्वाधीनता की भावना को जागृत किया। महात्मा तथा भक्तो ने धार्मिक प्रवृत्तियो तथा नैतिकता का संरक्षण किया, जिससे कि देश के सामाजिक जीवन मे धर्म तथा नीति को स्थैर्य प्रदान करने मे भारी सहायता मिली। महात्माओ की शृङ्खला, जिसका आरम्भ चौदहवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था, बराबर बीसवी शताब्दी तक चलता रहा है। इसी शृंखला मे निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा हरिदासजी हुए है, जिनको हरिपुरुषजी तथा दयालजी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। राजस्थान जैसे वीर-प्रसव भूमि मानी गई है उसी तरह यह सन्त-प्रसव भूमि भी है। भक्तो की गणना मे भी राजस्थान पीछे नही है। पीपा, धन्ना, मीरा, पयह्वारीजी, जसनाथ, हरिदास, दादू, चरणदास, हरनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि अनेक महात्मा भक्त राजस्थान की देन है। इन्ही मे हमारे आलोच्य महात्मा हरिदासजी है जिनका कि आगे विवेचन किया जा रहा है।

२. हरिदासजी का जन्मस्थान व आविर्भाव

हरिदासजी के जन्मस्थान के बारे मे प्राय· सभी लेखक एकमत है। उनका जन्मस्थान डीडवाना से पश्चिमोत्तर :"कापडोद" ग्राम माना गया है। यह राजस्थान के नागौर जिले मे है। इसकी तहसील डीडवाना मे है। डीडवाने से नागौर जाने वाली सडक पर कोलिया ग्राम आता है। कोलिया से यह ग्राम उत्तर-पूर्व मे है। इस ग्राम मे ही महात्मा हरिदासजी का आविर्भाव हुआ था। उस समय यह क्षेत्र मांडलिक शासन मे था, वैसे यह जोधपुर राज्य के क्षेत्र मे था जिसका अपर नाम-"नवकोटि मारवाड" भी कहा जाता था। माडलिक शासन से अभिप्राय जागीर क्षेत्र से है। कोलिया मे उस समय शांखले राजपूतों का अधिकार था। सुना जाता है कि उस समय कोलिया के नीचे बारह गाँव थे—मतलब बारह गाँवो की जागीरी कोलिया के अधिपति के अधीन थी। अधिपति थे शाखले राजपूत। कापडोद भी उसी जागीर का गाँव था।

हरिदासजी की जाति

महात्मा हरिदासजी की जाति की बाबत भी विशेष मतभिन्नता नही है। उनको प्राय· सभी ने शाखला राजपूत माना है और उनका नाम हरिसिंहजी कहा गया है। ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है कि कोलिया की जागीर शाखलों की थी। उन्ही के अधीन अन्य ग्रामो के साथ कापडोद गाँव भी था। जागीर प्रथा मे यह रिवाज प्रचलित था कि जागीर के अधिपति का बडा पुत्र उस जागीर का अधिपति बनता है, शेष सन्तानें छुटभइयो के रूप मे रहने है। उनको कुछ भू-भाग जागीर मे दे दिया जाता है। इस तरह इन छुटभइयो की परम्परा-वृद्धि मे प्राप्त भूभाग के हिस्से होते जाते है। अन्त मे ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि उनके पास या तो बहुत छोटा अंश भूमि का रह जाता है या रहता ही नही। ऐसे परिवार उस जागीर के ग्रामो मे जहाँ-तहाँ निवास कर लेते है। सम्भव है इसी तरह की स्थिति के कुछ राजपूत परिवार कापडोद के निवासी थे, उन्ही मे से किन्ही के पुत्र रूप मे हरिसिंहजी ने जन्म लिया था। उनके माता-पिता का नाम क्या था? इसकी जानकारी का कोई आधार नही है। हमे यही मानना है कि कापडोद ग्राम मे शाखला राजपूत के घर हरिदासजी का जन्म हुआ। जब तक इससे भिन्न कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, तब तक यही तथ्य समझा जाना चाहिए।

इस प्रसंग के प्राप्त प्रमाण इस रूप मे है—

श्री रघुनाथदासजी की परचई

इनने भी डीडवाने मे ही आपके प्रकट होने का उल्लेख किया है इसका अभिप्राय· यह है कि ग्राम कापडोद मे ही शांखला कुल मे आपका जन्म हुआ—इस मत का समर्थन आपने किया है। डीडवाने मे आपके प्रकट होने से अभिप्राय है, साधना द्वारा आत्मपरिचय की दृढ की धारणा के पश्चात् परम महात्मा के रूप मे आपका प्रथम आविर्भाव अर्थात् जन-साधारण के समक्ष आने का स्थान डीडवाना ही है, जैसा कि परिचई के द्वितीय विश्राम के प्रारम्भ मे कहा गया है —

प्रथम डीडपुर प्रकटे आई, वरस चमाल ग्रह मांझ रहाई।
पछिम दिसे भाखर है सोई, तहां जंगल में रहने जोई॥
एक दिना प्रभु की गति भई, अन्तरजामी आग्या दई।

अमरपुरुषजी के पोता शिष्य दर्शनदासजी के शिष्य प्यारेरामजी का "भक्त-माल" रचनाकाल (१८८३)

मनहर—दरसन गुरु दया कीन्हीं प्यारे को जो आज्ञा दीन्हीं,
इष्ट अनुक्रम सें जु भक्तमाल गाइये।

भक्तमाल घणी और सन्ता कीन्हीं ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी सो तो मन नहिं भाइये।
गुरु आप आज्ञा दिये ताते भक्तमाल किये,
अठारह सै तियासी बात यह कहाइये ।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होती ताहिं,
गुरां आप रीझ कर परचा जो बताइये ।

दोहा— जन प्यारे राम की विनती सुण लीज्यो सब सन्त ।
पची पीवे चूंच भर, सागर को नहिं अन्त ॥ १ ॥

अमरपुरुषजी सेवादासजी महाराज के शिष्य थे। ये हरिदासजी महाराज की छठी पीढी मे तथा प्यारेरामजी आठवी पीढी मे हुए थे। उनकी बनाई भक्तमाल मे वे लिखते है—

मनहर—कापडोद गांव माहिं हरिदास अवतरे,
महिमा कौन वार पार कहाँ लग गाइये।
शांखलां के कुल माहिं, आप जो औतार लियो,
चोधरण चुंगाये थनां वंस जो कहाइये ।
बोबाँ को आकार नाहिं भुजा लाम्बी गिरिया लग,
देह को प्रकाश मानों मणि भलकाइये ।
सूर सोहै तेज जाको दीपत मुखारबिन्द,
देखत आनन्द होइ नैन न खिचाइये ।
लीला जो है दिव्य कछु नर का सा चिन्ह करे,
द्रव्यवान देख के पकड़ ताकूँ लाइये ॥ ३ ॥

सम्वत् १९२८ मे प्रकाशित रामचन्द्र गुजराती के शिष्य आशारामजी दाधीच ब्राह्मण डीडपुरनिवासी द्वारा रचित परिचय मे—

छन्द लावणी—सन्त हरिपुरुष हुये सुमहान, जिनों का सारा सुनो बयान।
नगर इक सुन्दर है डिडवान,
तहां से पश्चिम दिशि गिरि जान।

तिन सै क्रोशार्ध बसै एक ग्राम,
जिनों का कापड़ोद् है नाम ।

दोहा—उसी ग्राम के बीच में क्षत्री हुआ बलवान ।
हरिसिंह था नाम जिनों के दया नहिं उर म्यान ॥
पाप तिनकै करणा आसान, जिनों का सारा सुनो बयान ॥१॥

मंत्र-प्रभाकर-रामबक्स मोहतारचित—प्रथम प्रकाशन संवत् १९२२ द्वितीया-वृत्ति संवत् १९६३ उल्लास १२ वा—

छन्द पद्धरी–श्री द्यालु नाम हरिपुरुष जान, प्रगटे सु डीडवाणे महान ।
राम कला अवतार अंस, धन्य मातु पितु क्षत्री वंश ।
कापडोद् निज जन्म भौम, भये प्रगट सु सांखल कौम ।

बालोतरा निवासी स्वामी जानकीदासजी रचित 'जीवन-चरित्र' रचनाकाल संवत् १९६२, पृष्ठ ३—

चौपाई—तब हरिदास धर्यो अवतारा, करण सकल जीवन उद्धारा ।
मारु सुदेश जिला जोधाणें, कापडोद् शुभ ग्राम बखाने ।
तहाँ के ठाकुर अति रणधीरा, वल बुधि निधी भक्त हरिजी रा ।
जाति सांखला सूरजवंशी, राजपूत कुल सब अवतंसी ।

दोहा— तेहिकी त्रिया भक्त हरि रूप-शील-गुणखानि ॥
ताके उदर सु अवतरे करण जगत कल्याण ॥१॥

उक्त चारो रचनाकारो के उल्लेख से स्पष्ट है कि हरिदासजी का जन्मस्थान कापडोद ग्राम है तथा वे क्षत्रिय वंश शाखला गोत्र मे उत्पन्न हुये थे। उक्त रचनाकारो मे दो साधु तथा दो सद्गृहस्थ है। इनकी रचनाओं से हमे यही प्रतीत होता है कि इनने हरिदास जी महाराज के विषय मे परम्परा से जैसा सुना-समझा वैसा ही निरूपण किया है।

आधुनिक साहित्यकारों मे से मिश्रबन्धुओ ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' मे इनकी कोई चर्चा ही नही की है। मोतीलालजी मेनारिया ने "राजस्थानी भाषा और साहित्य" मे इनका अति संक्षिप्त विवरण दिया है। "उत्तरीय भारत की सन्त परम्परा

के लेखक पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम० ए०, एल एल बी० ने उक्त पंथ पर पर्याप्त विवेचन किया है। उनने भी इनके जन्मस्थान तथा जाति परम्परानुसार उपर्युक्त ही स्वीकार किये है।

फारसी मे लिखी 'दविस्ता नुल मुजाहिब' मे शायद इनको क्षत्रिय की बजाय जाट लिखा है, पर इस लिखने की प्रामाणिकता का कोई आधार नही है। प्यारेरामजी ने चौधरण के थन चूंगने का उल्लेख किया है। उसका यह अभिप्राय है कि प्राचीन काल मे माता के पर्याप्त दूध न होने पर धाय (विमाता) रखने की प्रथा प्रचलित थी। हरिदासजी (हरिसिहजी) की माता के पर्याप्त दूध न होने पर किसी चौधरण (जाटणी) को धाय (विमाता) रखी गयी। उसके स्तनपान करने का उल्लेख प्यारे-रामजी ने किया है। उक्त विमाता के सम्बन्ध के कारण किन्ही ने उनको जाट लिख दिया हो– ऐसा सम्भव है। सम्भव है ऐसा ही किसी जनश्रुति के कारणवश "दविस्तानुलमुजाहिब" कार ने उल्लेख किया हो। मेरे विचार से जो निरूपण हरिदासजी के जन्मस्थान तथा जाति के बारे मे अति बहुपक्ष ने किया है, वही ठीक है। जब तक इस बारे मे अन्य कोई अकाट्य प्रमाण सामने नही आवे, तब तक यही तथ्य समझना उचित है।

३. हरिदासजी का काल

हरिदासजी के कालविषयक प्रश्न मे पर्याप्त उलझनें है। उनका सम्बन्ध पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी से था या सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी से, इसका तथ्यपूर्ण निश्चय कर देना सहजसाध्य नही है क्योकि इस विषय मे जो प्राचीन स्पष्ट संकेत है, उनका ऐतिहासिक तथा कालिक स्थिति के साथ उचित सम्बन्ध स्पष्ट होना चाहिये, तभी उस काल को निर्भ्रान्त काल माना जा सकता है। इस प्रसंग मे जिन जिन प्रमाणो के उल्लेख या अनुमान किये गये है, उन सबको लेकर ही ऊहापोह से विचार करना सगत होगा।

इस विषय मे पहिले विभिन्न लेखको के मतों को देख लेना उपयुक्त है।

(क) मिश्रबन्धु

शिवसिह सरोज के पश्चात् हिन्दी साहित्यिको के परिचय तथा कालादि का निरूपण मिश्रबन्धुओ ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' मे करने का प्रयास किया है। पर मेरे विचार से उनने सन्त साहित्य पर उतना ध्यान नही दिया, जितना अन्य साहित्य पर दिया है। उनके लिखे 'विनोद' मे वस्तुतः अधिकाश सन्तों के कालादि तथा रचना पर जो लिखा गया है, वह विनोदात्मक ही है। कबीर का सम्बन्ध तो उत्तर प्रदेश से ही है, अतः उनका निरूपण सम्यक् किया गया तो कोई विशेषता नही। अन्य संतो के निरूपण, जैसे दादूजी, सुन्दरदासजी आदि के

निरूपण सम्यक् रूप मे नही हो पाये है। विशेषत राजस्थान मे होने वाले सन्त-प्रवरो का शायद उनको न तो पूरा परिचय था, न उनके साहित्य का अनुशीलन। अत राजस्थान के अनेक महान् सन्तो का उनने उल्लेख तक नही किया है। महात्मा हरिदासजी भी उन उपेक्षित सन्तो मे ही है क्योकि 'विनोद' मे उनके बारे मे कोई विवेचन नही है।

(ख) अपर लेखक

मिश्रबन्धुओ के पश्चात् हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक माननीय पं० रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' पर ध्यान जाता है। आपने अपने इस ग्रन्थ मे कालानुबन्ध से हिन्दी इतिहास का निरूपण किया है। वैसे विषय-सम्बन्ध से भी विवेचन किया गया है। उस ग्रन्थ मे आपने आदिकाल, पूर्व मध्य काल, उत्तर मध्यकाल, आधुनिक काल, ऐसे काल को चार भागो मे विभक्त किया है। संख्या दो पूर्व मध्य काल मे ही प्रकरण दो मे "निर्गुण धारा ज्ञानाश्रयी शाखा" का विवरण दिया गया है। इस प्रकरण मे कबीर, रैदास, नानक, दादू और सुन्दरदास की रचनाओ तथा उनके जीवन-काल के बारे मे शुक्लजी ने अपने विचार प्रकट किये है। निर्गुण धारा के अन्य सन्तो का इस ग्रन्थ मे भी उल्लेख नही किया गया है। समझ मे नही आता कि एक ऐसे प्रकाण्ड लेखक ने भी, जबकि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा, निर्गुण धारा के अन्य सन्तो का इस प्रकरण मे समावेश क्यो नही किया ?

संभव है, ग्रन्थ की विस्तारभीति से ऐसा किया गया हो, पर जब ग्रन्थ हिन्दी के इतिहास से ही सम्बन्धित है, तब चाहे संक्षप मे ही सही, निर्गुण धारा के उन महान् सन्तो का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिये था जिनने अपनी अनुभूतिमय रचना से हिन्दी के एक विशेष अंग की पूर्ति की। निर्गुणवाद का निरूपण करने वाले पर्याप्त संख्या मे ऐसे महात्मा हुये है जिनने जन-समाज के मानस में नैतिक स्तर बनाये रखने मे बहुत महत्वशाली योग दिया है। उनकी वाणियों ने साधारण मनुष्यो को अपना जीवन ऊंचा उठाने मे पथप्रदर्शन का कार्य किया है। सन्त साहित्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। साहित्य से अभि-प्राय यही नही है कि वह काव्यमय ही हो। संभव है, शुक्लजी ने या तो राज-स्थानी सन्त साहित्य का ठीक से पता न होने से या फिर सन्त वाणियो को काव्या-नुशासन से बाहर मान उपेक्षा कर दी हो।

उनने निर्गुण धारा मे दादूजी तथा दादूजी के शिष्य सुन्दरदासजी को ही स्थान दिया है, जब कि राजस्थान के अन्य अनेको रचनाकार सन्तो का उसमे नाम तक नही आया है। राजस्थान मे नाथो, सिद्धो तथा दादूपंथी, निरंजनी,

चरणदासी, दरियायी–सीथल–खेडापा रामस्नेही, शाहपुरा रामस्नेही, वेनामी आदि कई सम्प्रदायो के सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य तथा उनके अनुयायी महात्माओ ने हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की है। क्या उनके नाम हिन्दी इतिहास मे नही आने चाहिएँ थे ? इसका समर्थन कोई भी विवेकशील नही करेगा। रज्जबजी, सन्तदास, जगजीवरण, जगन्नाथदास, दरियाव, वाजिद, बखना, भीषजन, चत्रदास, खेम, राघोदास, हरिदास, सेवादास, तुलसी, कल्याणदास, हरिराम, रूपदास, आत्मारामदास, रामभजन, दूल्हेराम, हरिदास, चेतनदास, मुरलीराम, चम्पाराम, चरणदास, हरिरामदास, रामचरण, रामदास, जैमलदास, दयालदास मंगलदास, स्वरूपदास आदि अनेको महान् सन्त राजस्थान की अन्यतम विभूतियाँ है। इन महान् साधको ने निरपेक्षभाव से अपनी अनुभूतिपरक रचनाओं से हिन्दी के भडार मे अनुपम साहित्य की देन प्रदान की है। हिन्दी साहित्य मे इनका गौरवपूर्ण स्थान अंकित होना चाहिये। जैसा कि अनुमान किया जा सकता है– शुक्लजी को राजस्थान की इन सन्त विभूतियो का तथा इनकी रचनाओ का परिचय न होने से ही उनकी 'निर्गुण धारा' अधूरी संकलित हुई है।

(ग) हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति

"हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति" के लेखक विजयेन्द्र स्नातक, क्षेमचन्द्र सुमन की भी यही स्थिति है। वे भी सन्त साहित्य से या तो सर्वथा अनभिज्ञ होंगे या इस पर कुछ लिखे गये पूर्व लेखको के आधार पर उनका ज्ञान आधारित है।

(घ) आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेनजी ने भी "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास" लिखा। इनकी कृति उपर्युक्त सब कृतियों से अधिक विस्तृत है। इनने राजस्थान के अनेक सन्तों का तथा उनकी कृतियो का अपने ग्रन्थ मे उल्लेख किया है। यह वस्तुत कुछ इतिहास के अश की पूर्ति करता है। इसमे विवरण सम्बन्धी पर्याप्त भूले अवश्य है जो कि उनसे होना अनिवार्य था। कारण उनका सम्पर्क साधु सम्प्रदाय से शायद ही अधिक हुआ हो। आचार्यजी की इस कृति मे भी निरंजनी सम्प्रदाय को स्थान नही मिला है। उनने भी इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का कोई विवरण नही दिया है, अतः उनके काल आदि का प्रश्न इस कृति मे कैसे आता ?

(ङ) उदयपुर के मा० मोतीलालजी मेनारिया एम ए. ने "राजस्थानी भाषा और साहित्य" नामक पुस्तक लिखी है। उनने भी अपनी इस कृति मे पंचम प्रकरण सन्त साहित्य का लिखा है। उक्त प्रकरण मे राजस्थान के प्रमुख पथप्रवर्त्तकों तथा कुछ उनके पूर्ववर्ती सन्तों का उल्लेख किया गया है। निरजनीपंथप्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का भी उक्त प्रकरण में अन्त में अतिसंक्षिप्त विवरण दिया है।

उसमे उनके आविर्भाव, जन्मस्थान, साधनास्थान, काल आदि का कोई निरूपण नही है, केवल उनके देहावसान का सम्वत् १७०२ लिखा है जो कि लगभग विशेषण-मय है ।

(च) बलियानिवासी पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए., एल एल. बी. ने "उत्तरभारत की सन्तपरम्परा" नाम का एक अति उपयोगी ग्रन्थ लिखा है, उसमे प्रमुख रूप से सन्तपन्थ व उनके काल तथा कृतियो का ही निरूपण किया है । चतुर्वेदीजी ने यथाशक्य इस निरूपण मे वास्तविकता तक पहुँचने का प्रयास किया है। इस उपेक्षित अंग पर उनने समुचित प्रकाश डाला है। निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का निरूपण करते हुए इनने उन मतो का भी विवेचन किया है, जिनका सम्बन्ध डा० बडथ्वालजी, माननीय क्षितिमोहन सेन, डा० हजारीप्रसादजी द्विवेदी व पुरोहित हरिनारायणजी बी. ए. जयपुर से है। इनने जाति, जन्मस्थान तथा दीक्षाकाल वही माना है, जैसा ऊपर लिखा गया है। जन्म तथा मृत्यु-काल के विषय मे इनका ऊहापोह विचारणीय है । इनने उन पक्षो की संगति पर सम्यक् ध्यान देकर युक्तियुक्त ढंग से विचार किया है। कालनिर्णय मे प्रबल बाधा इनके समक्ष स्वामी हरिदासजी की वह साखी है जिसमे हरिदासजी महाराज ने छैचकवे सम्राटो का उल्लेख किया है और उनमे अकबर का नाम आया है। अकबर का राज्यकाल स्पष्ट है। अपनी कृति मे यदि स्वयं महाराज हरिदासजी अकबर का निरूपण करते है तो सामान्यत यही ध्यान जायगा कि रचनाकार ने जिनका नाम लिया है, रचनाकार का अधिक से अधिक उनके सम-काल या उत्तरकाल मे रहना सिद्ध होता है—उधर चतुर्वेदीजी ने दादूजी के शिष्य सुन्दरदासजी तथा राघोदासजी के मत का भी ध्यान रखा है। उनने परम्परागत प्रचलित समय को भी अनुपयोगी नही माना है। चन्द्रधरजी गुलेरी द्वारा नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे लिखे गये लेख का काल भी उनके सामने था, उनने इन सबको सामने रखते हुए अन्त मे यही भाव व्यक्त किया है कि उनका काल सोलहवी के उत्तरकाल व सत्रहवी के उत्तरकाल के मध्य का ही होना संगत रह सकता है । उनने अपनी ओर से कोई निष्कर्ष इस विषय मे निश्चित नही किया ।

(छ) पचोली वंशीलालजी, जो डीडवाणे के एक योग्य नागरिक है, जिनका परम्परा से जोधपुर राज्य के शासन से तथा निरंजनी साधुओ से लम्बे समय से सम्बन्ध चला आ रहा है, वे महाराज हरिदासजी का काल सोलहवी सदी तक ही मानते है। उनके विचार से हरिदासजी का आविर्भाव पन्द्रहवी सदी के अन्तिम चरण मे और अवसान सोलहवी सदी के अन्तिम चरण मे हुआ था। उनका कथन है कि उनकी समाधि का निर्माण भी सोलहवी सदी के अन्त मे हो गया था। उनने जोधपुर राज्य से जो सनदे आदि निरंजनी सम्प्रदाय को मिली, उनका

विवरण भी दिया है। इनके कथन का मतलब है कि महाराज हरिदासजी का स्वर्गारोहण सोलह सौ से पहले हो गया था।

(ज) हिस्ट्री ऑफ जोधपुर मे भी निरंजनी पंथ का उल्लेख किया गया है। उसमें स्वामी हरिदासजी से सम्वत् सोलह सौ के पश्चात् उक्त पथ के चलने का निर्देश है। उसमे हरिदासजी की जो जीवनी लिखी गई है, वह किसी श्रुत आधार पर ही लिखी गई है। उसमे उनकी विरक्ति का जो कारण दिया गया है, उसकी परम्परा से संगति नही बैठती।

(झ) फारसी मे लिखी गई "दबिस्तानुलमजाहिब" मे भी स्वामी हरिदासजी का निरूपण किया गया है। उसमे इनको शाखले गोत के जाट तथा जन्मस्थान भी कापडोद से भिन्न लिखा है। इसमें इनके वैराग्य का कारण शिकार मे 'गर्भवती हिरणी मारना' लिखा है। इसमे इनका मृत्युकाल सम्वत् १७०२ लिखा गया है।

इस तरह निरंजनी सम्प्रदाय के मूलपुरुष महाराज हरिदासजी के विषय मे जो विभिन्न दृष्टिकोण ज्ञात हुए है उनका संक्षेप मे ऊपर विवरण दिया गया है। उक्त विवरणो से उनकी जाति, जन्मस्थान, वैराग्योत्पत्ति, गृहत्याग तथा जन्म-मृत्यु काल मे विभिन्नताएं सामने आती है—अब इस विषय मे परम्परागत तथा सन्तो की रचना से जो प्रकाश पड़ता है, उसका दिग्दर्शन कराया जाता है।

कालिक प्रमाण—

हरिदासजी के जीवन-चरित्र व परची लेखको मे क्रमागत ये लेखक सामने आते है—स्वामी हरिरामदासजी परचीलेखक, २. स्वामी रघुनाथदासजी परचीलेखक, ३. प्यारेरामजी भक्तमालकार, ४. पूर्णदासजी परचीलेखक, ५. रामबगसजी महता कृत मन्त्रराज प्रभाकर जीवन-चरित्र ६. रामचन्द्रजी गुजराती चरित्र-लेखक और ७. स्वामी जानकीदासजी चरित्रलेखक। हमने इन लेखको के नाम कालक्रम से दिये है। इनमे पाच लेखक निरञ्जनी सम्प्रदाय के है, दो सद्गृहस्थ है।

पहिले लेखक स्वामी हरिरामजी है। ये सुशिक्षित तथा साधक महात्मा थे। इनकी 'परमार्थ पंचसतसई' तथा 'छन्दरत्नावली' उत्तम रचनाएं है। इनने स्वाम हरिपुरुषजी महाराज के पांच चमत्कारों का 'पंच परचई' नाम से निरूपण किया है। इनका रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण है। इसकी प्रामाणिकता इन्ही के लिखे उस दोहे से स्पष्ट है जो इनकी छन्दरत्नावली की समाप्ति पर लिखा है—

सम्वत् शर नव मुनि शशि, नभ नवमी गुरू मान ॥
नगर डीड हद कूप तहँ, ग्रन्थ जन्म थल जान ॥ १ ॥

इस दोहे मे सम्वत् का निर्देश है। उससे सम्वत् १७९५ सिद्ध होता है। सम्वत् के लिये निर्दिष्ट अङ्क उल्टे गिने जाते है-तदनुसार शशि एक, मुनि सात, नव नौ, शर पांच-इस तरह छन्दरत्नावली का रचनाकाल १७९५ मे है। परमार्थ पंचसतसई यह छन्दरत्नावली से पहिले की रचना है। इनने और भी रचना की है। मेरे संग्रह मे जो पुस्तक है उसमे इनके फुटकर नब्वे कुण्डलिये तथा पचास विरह के कुंडलिये लिखे है। बीकानेर निवासी स्वामी नरोत्तमदासजी के संग्रह मे एक गुटका मैने देखा था उसमे इनकी अन्य रचनाये है। मेरे पास जो इनके ग्रन्थों का गुटका है उसका लेखनकाल सं० १८५३ माघ बदी ३ है। इनने पंच परचई मे केवल हरिपुरुषजी के चमत्कारो का वर्णन किया है। इनकी रचना मे कही काल का उल्लेख नही है। परचईकार तथा भक्तमाल—लेखकों ने काल के महत्व को कोई स्थान नही दिया है। हरिदासजी की इस परचई से हरिपुरुषजी की अलौकिकता का ही दिग्दर्शन होता है। वे इस परचई का आरंभ इस तरह करते है-

प्रथम पीपली प्रत्यक सिला नागोर विशेषो,
नयो गेन्द अजमेर फुनिंग पुनि टोडे पेषो।

गिरि सों गागर गिरी नीझर राख्यो सारो,
देवी को सिष करी जार विष विप्र उधारो॥

सिंह परचो आमेर राव राजा सव जांणे,
अपंग विप्र पंथ चल्यो शाह सुत जियो सिंघाणे।

शिर पर कर गोरषनाथ को, ठौर ठौर परचा दियौ॥
जन हरिपुरुष निरंजनी, त्याग वैराग सब सिरे कियौ॥१॥

अन्त मे यह दोहा कहा है—

इह श्री दयालजी की, पंच परचई नाम॥
अनत और परचा भया, कहै दास हरिराम॥१॥

उनकी वाणी के विषय मे वे कहते हैं—

मनहर—हरिपुरुष दयाल जीवन को किये निहाल,
गुरू गोरष प्रताप गिरा यह उचारी है।

महाराज हरिदासजी की वाणी में नाथ वाणियों को शैली है ऐसा मेरा ध्यान है। महाराज की वाणी में यौगिक क्रियाओं से सम्बन्धित विवरण पर्याप्त है। अनेक स्थल विपर्यय के भी है। प्रचलित ठेठ प्रादेशिक शब्दो का भी प्रयोग पर्याप्त है। इस स्थिति में मेरे जैसा अल्पज्ञ यह स हस कैसे करता कि इस की सम्यक् पाद टिप्पणियां तथा विपर्यय वाक्यों के सम्यग् अर्थ तैय्यार हो जायेगे। मै इसी असमंजस मे था कि सन्त बजरंगदासजी ने मुझे अतीव प्रेरणा दी कि वाणी का प्रकाशन होना ही चाहिये। उनने स्वकीय सहयोग का आश्वासन दिया तथा विद्वद्धीर महात्मा परमानंदजी से सहयोग मिलने की आशा बंधाई। सन्त बजरंगदासजी जयपुर आये और डेढ़ मास ठहरे। मैने तथा उनने संयुक्तरूप से पादटिप्पणी तैयार की कुछ विपर्यय अर्थवाली साषियों के खुलासे के प्रागूरूप भी तैय्यार किये। तद्पश्चात् कोलिये ग्राम मे महात्मा परमानदजी महाराज सन्त बजरंगदासजी तथा अमरपुरुषजी महाराज की बगीची के स्थानाधिपति सन्त भोलादासजी तथा मैं एकत्रित हुये और पूर्वक्त पादटिप्पणियें तथा साषियो के खुलासे तथा शेष रहे भाग को निर्णीत किया। इस पूर्ति में प्रमुखता महात्मा परमानन्दजी महाराज की रही। अब भूमिका का कार्य विवेचनात्मक खंड का शेष था वह पूरा करना था और मुद्रण के लिये अर्थ का प्रश्न शेष था। आर्थिक प्रश्न की पूर्ति के लिये सन्त बजरंगदासजी तथा भोलादासजी ने सोत्साह हाथ बढाया। उनने स्वयं तथा प्रेरणा कर साढे तीन हजार रुपये मेरे पास भेज दिये। पुस्तक के प्रकाशन मे छै सात हजार के व्यय का मेरा अनुमान था मैंने तदर्थ प्रयास किया। नि. भा. निरंजनी साधुसभा के अनेकों सदस्यों ने मेरी प्रार्थना पर उचित ध्यान दिया और आवश्यक अर्थ की पूर्ति हो गई।

पुस्तक का प्रकाशन अच्छा हो यह भावना तो थी ही पर प्रेस वालों की अनवस्था भी ध्यान में थी पुस्तक प्रकाशन के लिये प्रेस को तथा प्रेस मालिक को कितनी सावधानी आवश्यक है इस को

वेद रु पुराण सब कतेब कुरांण काव्य,
सोधि सोधि मंत्र तंत्र बांध्यों भ्रम भारी है ॥
ऋषीश्वर तपेश्वर मुनीश्वर जोगेश्वर,
ठाढेश्वर ऊर्धबाहु भ्रमवश ख्वारी है ।
गोरष सिष दयाल प्रगटे हरीपुरुष,
बावन सिष सहित हरि प्रीति प्यारी है ॥

उपर्युक्त उद्धरणो से यह व्यक्त होता है कि निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिपुरुषजी थे, वे गोरषनाथजी के शिष्य थे। उनने कई तरह के चमत्कार दिखाये थे। काल-सम्वत् का इनने कोई उल्लेख नही किया है। इनका अपना काल अठारहवी शताब्दी के द्वितीय चरण से चतुर्थ चरण तक का माना जा सकता है, जैसा कि छन्द रत्नावली के दोहे से सिद्ध है। संभव है ये महाराज सेवादासजी के समकालीन हो। सेवादासजी हरिपुरुषजी महाराज की छठी पीढी मे हुए है। तदनुरूप हरिरामदासजी भी छठी या सातवी पीढी मे माने जाने चाहिए।

स्वामी सेवादासजी का जन्म सम्वत् १६९७ मे हुआ था और उनका देहावसान सम्वत् १७९८ मे हुआ—ऐसा निरूपण सेवादासजी के पोताशिष्य स्वामी रूपदासजी ने "सेवजी की परचई" मे किया है—

सतरह सौ अठाणवें, वद पडवा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधारिया, किया ब्रह्म में वास ॥१॥
सोलह सौ सताणवें, चैत सुदी नवमी दिन ॥
ता दिन बाजा बाजिया, प्रगटे सेवा जन ॥२॥
ईश कला अवतार जन, राजगुरू घर सन्त ॥
रूपदास जन का कहूँ, महिमा बहुत अनन्त ॥३॥
जैसे जल में जल मिले, ऐसी संतन रीति ॥
रूपदास जन का कहूं, जिनके या परतीति ॥४॥
अठारा सौ बत्तीस में, वदि वैशाषां जोइ ॥
बारस तिथि गुरुवार दिन, परचई पूरण होइ ॥५॥

घटती बढती मातरा, अच्छर तुक अनुसार ॥
हरिजन सकल सुधारिज्यों, जन रूपदास बलिहार ॥६॥

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि सेवजी महाराज सतरहवी शताब्दी के अन्त मे उत्पन्न हुए। अठारहवी शताब्दी के अन्त मे शान्त हुए। रूपदासजी अमरपुरुषजी के शिष्य थे। अमरपुरूषजी सेवजी महाराज के शिष्य थे। मतलब-हरिदासजी महाराज के पश्चात् आठवी पीढी मे रूपदासजी हुए। उनने वाणी की रचना की है। उन्हीने सेवजी महाराज की परचई बनाई और उसका रचनाकाल सम्वत् अठारह सौ बत्तीस था। सेवजी महाराज के गुरु स्वामी दयालदासजी का अवसान सम्वत् १७४५ मे हुआ-ऐसा विवरण ब्रह्मभाट की बही मे है, जो कि संगत ही प्रतीत होता है। सेवजी ने सोलह वर्ष की आयु मे दीक्षा ली-ऐसा परचई से विदित होता है।

षोडश वरस देह जब जोई, अगम ग्यांन गुण समझै कोई ॥
गैबी पुरूष गैब सूं आये, मिल मिल पूछें सन्त सवाये ॥

यह सम्वत् सतरह सौ तेरह आता है। दीक्षा लेने के पश्चात् सेवजी गुरुसानिध्य मे बत्तीस वर्ष रहे। हरिरामदासजी के पूरे काल का अभी कोई प्रमाण सामने नही है सिवाय छन्दरत्नावली के अन्तिम दोहे के। उनकी परम्परा भी अज्ञात है। हरिरामदासजी की परचई पहिली रचना है, जिसमे हरिदासजी महाराज के विषय का उपर्युक्त विवेचन है।

रघुनाथदासजी की परचई—

कालक्रम से दूसरे परचईलेखक स्वामी रघुनाथदासजी है, जो कि सेवजी के शिष्य महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे। ये रूपदासजी के गुरु-भाई थे और उसी काल मे थे, जिसमे रूपदासजी थे। इनने अपनी परचई मे निर्माण-काल तो नही दिया है पर इनकी लिखी हुई वाणी की पुस्तक मेरे थाभायती स्थान वडू मे है। उस पुस्तक का लेखन-काल सम्वत् १८२३ है। उस समय उनकी आयु तीस से चालीस वर्ष के बीच की मानी जाय तो उनका काल अठारह सौ पन्द्रह से लेकर अठारह सौ साठ तक का माना जा सकता है। परचई का रचना-काल अठारह सौ पचीस से चालीस के बीच का अनुमान किया जा सकता है। उनकी परचई से भिन्न और रचना भी होनी चाहिए पर वह अभी प्रकाश मे नही आई है। इनकी परचई मे हरिदासजी का निधनकाल दिया है, जन्मकाल नही है। पर उपदेशकाल के समय की आयु का उल्लेख किया गया है। उनके उद्धरण निम्नलिखित है—

आरम्भ—

दोहा— नमो नमो निज देवकूं, सतगुरु को शिर नाई।
सव सन्तन कूं बंदि के, परची कहूँ सुनाई ॥१॥

चौपाई— यती अमरदास गुरुदेव प्रणामा,
भक्तिहित दीजे मोहि स्वामां।

स्वामी सेव पुरुष को धाऊं, ता परसाद अकल अति पाऊँ।
ऐसी शक्ति नांहि कछु मेरी, चाहत कृपा संत जन केरी।
परचा कहने की मन भई, देव निरंजन आज्ञा दई।
ता तैं सबहिन को शिर नाऊँ, जन हरिपुरुष की परचई गाऊँ।
हरीदास है हरि उनहारा, जीव तारन कूं लियो अवतारा।
आए आप निरंजन सांई, हरि हरिदास अन्तर कछु नांई।
अलष पुरुष सूं चित बित लायो, गोरष ग्यान समझ कै पायो।
प्रथम डीडपुर प्रगटै आई, वरस चमाल घर मांहि रहाई।
पछिम दिस भाषर है सोई, तहाँ जंगल में रहते जोई।
एक दिनां प्रभु की गति भई, अन्तर्यामी आज्ञा दई।
गोरष ग्यान देण कूं आए, अपणे जांण कृपा करि धाए।
गोरष बुद्धि फेर तिहिं काला, वचन एक तब कह्यो दयाला।
हूं तेरा कपड़ा हर लेऊं, पीछै तो कूं जावण देऊँ।
तब गोरष बोले इहि वाता, कोण भरोसे हरे विष्याता।
तिरिया पुत्र बूझ के आई, पीछै ये सब ले तुम जाई।
तब ये घर पूछण कूं आये, त्रिया पुत्र वैठे तहां पाये।
देख उन्हें इन वचन उचारा, बुरी भली कै संग हमारा ॥
तब उन कह्यो संग को जैहे, किये किये सब अपने पैहे।
हम तो तेरे वासे आए, बुरी भली में नहीं बँधाये ॥
तब इन ग्यान अन्तर में पाया, गोरषनाथ पै दौड रु आया।
दरसण करत फिरी मति जब ही, अन्तर्ध्यान भये प्रभु तब ही ॥
जब ही चलि भाषर में आए, गुफा हेरि हरिध्यान लगाए।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि हरिदासजी चवालीस वर्ष की आयु तक गृहस्थ थे। लूट-खोस का काम करते थे। एक दिन गोरखनाथजी के रूप मे एक महात्मा आये। उनको भी इनने लूटने की तैयारी की। महात्माने उपदेश दिया कि इस बुरे काम का फल तुम्हीको भोगना होगा, जिस कुटुम्बके लिए तुम यह जघन्य कर्म करते हो वह कुटुम्ब इसके फलभोग मे कोई हिस्सा नही बँटायेगा। हरिसिहजी ने इसका विरोध किया तो महात्मा ने घर जाकर कुटम्बियो से पूछ कर निश्चय करने को कहा। तब हरिसिंहजी ने महात्मा को वृक्ष से बाँध घर जाकर सम्बन्धियो से पूछा कि मै जो धन-माल लूट कर तथा हत्या करके लाता हूँ, उसके पाप मे तुम भी भागीदार हो या नही ? सम्बन्धियो ने इन्कार करते हुए ज्ञात किया कि हम तो तुम्हारे आश्रित हैं, यह तुमारा काम है कि तुम हमारा भरण-पोषण करो। कैसे काम से अर्थोपार्जन करो–यह निश्चय करना तुम्हारा काम है। यह उत्तर सुनते ही उनका कौटुम्बिक मिथ्यामोह समाप्त हो गया। वे शीघ्रता से लौटे, महात्मा के पास आए तथा उनको बन्धनमुक्त कर, उपदेश ले, पास की पहाड़ी मे जा आत्म-चिन्तन करने लगे। आत्मपरिचय के पश्चात् उनने जहाँ-जहाँ भ्रमण किया तथा चमत्कार दिखाये, आगे परचई मे उनका विस्तृत निरूपण है। परचईकार उनके चमत्कारोंका विवरण देकर उनके ब्रह्मलीन होनेका निरूपण करते है, वहाँ इस रूपमे काल का निर्देश करते है–

चौपई–प्रथम बहुत दिन यूं हो गइया, बरष चमाल तें चेतन भइया।
चमाल बरस बैराग कमाया, ता पीछे हरि माँहि समाया ।।

सम्वत् सोलह सै जु सईका, ऋतु वसन्त आनन्दमई का।
फागण सुदी षष्टमी जाना, जन हरिदास हरि मांहि समाना ।।

मिले निरंजन मांही दासू, काल झाल सब काटी पासू।
अरस परस हरि माँहि समाया, सो जस जन रघुनाथे गाया ।।

शहर डीडपुर उत्तम धामू, तहां स्वामी कीयौ विश्रामूं।
सबै सिष वियोग अति करिहै, सेवग चित चरणों में धरि है।।

उक्त चौपाईसे स्पष्ट है कि आरभ के चवालीस वर्ष हरिसिहजी (हरिदासजी) के व्यर्थ गये, पश्चात् चवालीस वर्ष साधना कर उनने आत्मसाक्षात्कार किया तथा अपने अनुभव तथा उपदेश द्वारा दुखी संतप्त प्राणियोका उद्धार किया। इस तरह अठ्यासी वर्ष की आयुका उपभोग कर सम्वत् सोलह सौकी फागण सुदी षष्ठी को इस नश्वर शरीर का डीडवाणे मे परित्याग कर दिया। इससे व्यक्त होता है कि

हरिदासजीका जन्म करीब पन्द्रह सौ बारह के तथा अवसान सोलह सौ में हुआ। वे अठ्यासी वर्ष जीवित रहे।

लेखक परचई की समाप्ति इस तरह करते है—

चौपई—इतनी कथा कही मैं देवा, तुम अगाध मैं लष्यो न भेवा।
तुमरी गति मति तुमही जानों, अलप बुद्धि है कहा वषानों ॥
निराकार की किरपा भई, सन्त समीगम परची कही।
जन अमरपुरुष के मस्तक हाथ, रुच रुच गावे जन रघुनाथ ॥

दोहा—रघुनाथदास जन का कहे, हरिगुण अनंत अपार।
अमरपुरुष परताप तैं, कछु इक कियो विचार ॥
परची हरीदासकी, भई संपूरण सोई।
घाट वाध यामें कोई, शुद्ध करि लीजो जोई ॥

परचईकर्त्ता ने अन्त मे व्यक्त कर दिया है कि जैसी जितनी उनकी जानकारी थी, तदनुरूप उनने परचई कही है। कही यदि घाट-वाध ,(कमी-वेशी) या अन्य भूल रह गई हो तो विज्ञजन उसमे सुधार कर ले। रघुनाथदासजी पहले लेखक है, जिनने हरिदासजी महाराजके समयसम्बन्धी काल पर प्रकाश डाला है। उनका जन्म, जाति, स्थान, गाँव आदि का जो पीछे निरूपण किया गया है, उसका समर्थन है।

प्यारेरामजीकृत भक्तमाल—

निरंजनी सम्प्रदायके तीसरे लेखक स्वामी प्यारेरामजी है। जिनने भक्तमाल की रचना की है। कालक्रमसे भक्तमाल का रचनाकाल सम्वत् १८८३ है, जैसा कि रचनाकार स्वय निरूपण करते है—

दर्शन गुरु दया कीन्ही प्यारे कूं जू आज्ञा दिन्हीं,
इष्ट अनुक्रम से जु भक्तमाल गाइये।
भक्तमाल घणी और संता कीन्हीं ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी मोहे मन नहिं भाइये।
गुरु आप आज्ञा दिये ता ते भक्तमाल किये,
अठारै से तियासी वात यह कहाइये।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होता ताहि,
गुरां आप रीझ कर प्रचा जो बताइये ॥२०४॥

दोहा— लीज्यो सन्त सुधार के, घटती बढती मात ।
तोतर वांणी बाल की, समझ जात है मात ।।
जन प्यारे की बीनती, सुण लीज्यों महाराज ।
चार जुगा में सन्त भये, ते मेरे सिरताज ।।

प्यारेरामजी ने अपनी भक्तमाल मे अपनी सम्प्रदाय के कई महात्माओ का विशेष निरूपण किया है जिनका कि अन्य भक्तमाल-लेखकोने नाम-निर्देश तक नही किया । जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है अमरपुरुषजी महाराजके शिष्य दर्शनदासजी ने, जिनके कि प्यारेरामजी शिष्य थे, उक्त प्रकारकी भक्तमाल लिखने की प्रेरणा की । गुरुजी के निर्देशानुसार इनने हरिपुरुषजी, षेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी, अमरपुरुषजी निरंजनी महात्माओका निरूपण कर पश्चात् अन्य महात्माओका विवेचन किया है । प्यारेरामजी ने अन्य भक्तमालकारो की तरह काल का उल्लेख नही किया है केवल सेवादासजीके स्वर्गारोहण के सम्वत्का उल्लेख किया है । बतीस मनहर छन्दो मे हरिपुरुषजी के विविध परचो का तथा उनके भ्रमण का दिग्दर्शन कराया है । उनके जन्म, साधु बनने, तथा अवसानके समयके विषयमे कुछ नही लिखा गया । उनमे हरिपुरुषजीके आदि-अन्त के बारे मे इस तरह उल्लेख किया है—

मनहर—कापड़ोद गाँव तहाँ हरिपुरुष अवतरे,
महिमा अपार पार कहाँ लग गाइये ।
है प्रसिद्ध डीडपुर जहां जप तप कियो,
गाढ़ेशाह सेवा करि मेलो जू रचाइये ।
आवत वसन्त ऋतु आनंद अपार होय,
हजारों ही कोसन के सन्त चलि आइये ।

× × ×

सांखला के कुल माहिं आप जो जनम लियो,
चोधरण चूंगे थना वंश जू कहाइये ।
सूर सो प्रचंड तेज दिव्य है मुखारविन्द,
देखत आनन्द होइ नैनन खिंचाइये ।।

× × ×

डीडवाणे कोल्या बीच खोसल्यो कूवो कहाय,
तहाँ आप बैठे रहे घोड़े चढ़ आइये ।
माल जो ले जाय कोई ताहि पै धराये डाँण,
बणियां को रूप धरि गोरष तहाँ आइये ॥
गोरष वचन बोले एता तुम पाप करो,
आगे लेखो होई जब छूटो कैसे जाइये ।
पूछो क्यों न घर जाय कौन तेरो संगी होय,
तब घर जाय आप बूझना कराइये ।
तुम कियो पुण्य-पाप तुमही भोगोगे सब,
और को जू कैसे आवे ऐसे जू कहाइये ॥
उदासी जो होय करि पीछे आप आये तहाँ,
आवत ही पाँव परे चरण चित लाइये ।
अब आज्ञा करो आप सोई मैं तो शीश धरूँ,
गोरष बोले घर त्याग तीखो पर जाइये ॥

× × ×

फागण वसन्त ऋतु चाँदनी जु छठ ताहि,
ता दिन अडग आप ध्यान जु लगाइये ।
सब ही जु देव आये बीणासुर नभ छाये,
चार भुजा धार करि प्रभु आप आइये ।
चारों हाथ माथे धरि माँगो माँगो कहे ऐसे,
अखंड भगति तोहि और कहा चाहिये ।
भावे तो कैलाश जाओ भावे जाओ ब्रह्मलोक,
भावे तो वैकुण्ठ ताहि इच्छा जहाँ जाइये ।
तब स्वामी परे पाँय मेरे नहीं और चाह,
ऐसी कही स्वामी तब ज्योति में मिलाइये ॥

ये प्यारेरामजी के जीवन-सम्बन्धी उद्धरण हैं। इनसे ग्राम, जाति, गृहस्थकार्य, संसार से वैराग्य का कारण, गोरषनाथजी से उपदेश, तीखी डूँगरी पर तप करना, पश्चात् परिभ्रमण करते हुए विविध क्षेत्रो मे विविध प्रकार के चमत्कारमय कार्यो को करते हुए अपनी अनुभूति से प्राप्त सफलतानुसार प्राणियों को उपदेश देकर अन्त मे डीडवाणे आकर ब्रह्मलीन हुए–यह सब स्पष्ट है। अवसान से सम्बन्धित फाल्गुन शुक्ला षष्ठी स्थान डीडवाणे का उल्लेख है, सम्वत् का उल्लेख नहीं है। इस तरह इन तीन निरजनी महात्माओ की प्राचीन कृतियो मे हरिरामदासजी व प्यारेरामजी ने उनके जीवन के परचई भाग का निरूपण किया। काल-सम्बन्धी स्थिति मे उनसे कोई जानकारी नही मिलती–केवल रघुनाथदासजी की परचई में काल का निरूपण है। उसमे गृहत्याग का काल तथा अवसान-काल का स्पष्ट उल्लेख है। इनसे आगे के परवर्त्ती लेखको ने अपनी कृतियो मे काल का निरूपण किया है। कृतियो का दिग्दर्शन इस रूप में है।

पूर्णदासजी की परचई—

बीसवी शताब्दी के लेखको मे नवलगढ निवासी स्वामी पूर्णदासजी का रचना-काल सम्वत् १६१० से चालीस तक का माना जा सकता है। जिस गुटके मे इनकी परचई लिखी हुई है उसका लेखन-काल सम्वत् १६४५ वैशाख सुदी ४ मंगलवार है। इससे सिद्ध है कि रचनाकाल इससे पहिले ही का होना चाहिए। अन्य परचई-लेखको की तरह इनमे भी हरिदासजी महाराज के यात्रा-काल मे जो चमत्कारी कार्य हुए उनका उसी तरह निरूपण किया है। पूर्णदासजी ने काल-सम्बन्धी उल्लेख किया है वह तथा जो नवीन कल्पना गुरु-सम्बन्धी की है–उन्ही प्रकरणों को उद्धृत करना संगत है :—

छप्पय–चौवदै सै चौहतरे, जन्म लियो हरिदास ॥
सांखल के घर अवतरे, छतरी वंश निवास ॥

छतरी वंश निवास, तेजमय मूरति राजे ॥
छतरी होय सो सूर, मात को दूध न लाजे ॥

मिलिया गोरषनाथ हरि, दीयो ज्ञान प्रकाश ॥
चौवदै सै के चोहतरे, जन्म लियो हरिदास ॥

हरिपुरुष हरि की कला, सांखल घर अवतार ॥
चोधरण का थण चूंगिया, सांवत के आकार ॥

सांवत के आकार, पाल कर मोरा कीया ।।
जन कापड़ोद के धणी, देष कर खोले लीया ।।
बारह गाँव गढ़ वारणों, तेजपुंज तव सार ।।
हरि पुरुष हरि की कला, सांखल घर अवतार ।।

दोहा—हरिदास जी आविया, गलतै सन्तन धाम ।।
प्रयागदासजी गुरु मिल्या, करी प्रेम परणाम ।।१।।
प्रयागदास को गुरु किया, हरीदास महाराज ।।
इष्ट भाव के कारणें, करी धरम की याज ।।२।।
कंठी माला तिलक ही, प्रयागदासजी दीन्ह ।।
हर्षित हो हरिदासजी, भक्तिभाव से लीन्ह ।।३।।

छप्पय—पन्द्रह सै के पिचाणवे, कियो जोति में वास ।
फागण सुदि की छठ तिथि, परम जोति परकास ।
परम जोति परकास, शब्द सतगुरु का जाण्याँ ।
इष्ट निरंजन देव, ताहि में तत्व पिछाण्याँ ।
बीसा सो वपु राखिके, जन हरीदास निज दास ।
पन्द्रह सै के पिचाणवे, कियो जोति में वास ।।१।।

× × ×

पद— गाढा की छबिरासी अद्भुत भाई, काऊ से वरणी न जाई ।।टेक।।
हरिपुरुष हरि आप निरंजन, जन यो धाम बसाई ।।
पूर्णदास कहे कर जोड्याँ, सन्त चरण शिर नाई ।।

पूर्णदासजी के उक्त उद्धरणों से हरिदासजी का जन्मकाल १४७४ और अवसान-काल १५९५ ठहरता है। जाति से शाखला क्षत्रिय, शूरवीर और सुन्दर। इनकी तेजस्विता देख कापडोद के ठाकुर ने, जिसके बारह गाव और थे, इनको गोद लिया। ये गुरु की खोज मे गलते गये। वहा इनने प्रयागदासजी को अपना गुरु किया। उनने दीक्षित कर इनको कंठी-मालातिलक प्रदान किया। इनने गुरु-उपदेश के अनुसार ईश्वर-चिन्तन किया, अन्य संसारी जनो को उपदेश दिया, धर्म की रक्षा की तथा एक सौ बीस वर्ष देह रखकर अन्त मे परमेश्वर की शरण प्राप्त की।

पूर्णदासजी व्यक्त करते है कि हरिदासजी ने वैष्णव सन्त प्रयागदासजी से दीक्षा ग्रहण की तथा कंठीमाला-यज्ञोपवीत आदि प्राप्त किये। आपका यह लिखना केवल कल्पना से सम्बन्धित है। उनने यह कल्पना शायद इस कारण मे की हो कि उनके समय मे अधिकांश निरजनी महात्मा मन्दिर-पूजक तथा सगुणोपासक हो गये थे। रहन-सहन मे भी वे वैष्णवो का अनुगमन करने लग गये थे। प्राय: ही महात्मा श्रीतिलक, यज्ञोपवीत धारण करते थे। उपासना भी देवालयो के कारण सगुण हो गई थी। इस स्वरूप को देख कविवृत्ति पूर्णदासजी ने सोचा होगा कि इनका गुरु-सम्बन्ध किन्ही योग्य वैष्णव-महात्मा से जोड देना उचित है। सोलहवी शताब्दी मे महात्मा पयहारी कृष्णदासजी गलते मे पधारे थे। उनके शिष्य अग्रदासजी हुए, जिनका काल सत्रहवी शताब्दी का मध्यभाग है। अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी थे, जिनका कार्यकाल सत्रहवी शताब्दी का अन्तिम चरण था। इन्ही प्रयागदासजी से हरिदासजी ने गुरुदीक्षा ग्रहण की–यह पूर्णदासजी ने उल्लेख किया है। साथ ही उनने हरिदासजी का कार्यकाल संवत् १४७५ से १५६५ माना है। हरिदासजी ने चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की थी––ऐसा सभी पक्षो का मानना है। इस विचार से देखे तो यह समय १५१५ से १५२५ के बीच का आता है। उस समय तो महात्मा पयहारी कृष्णदासजी का ही पदार्पण गलते मे न हुआ हो। प्रयाग-दासजी पयहारी कृष्णदासजी के शिष्य अग्रदासजी के शिष्य थे। जिनका कार्यकाल सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूर्व नही आता, इस स्थिति मे प्रयागदासजी से हरिदासजी के दीक्षा लेने की कैसे संगति बैठ सकती है। स्वय पूर्णदासजी के कालो-ल्लेख से ही उनकी कल्पना असंगत हो जाती है।

प्रयागदासजी से दीक्षा लेने के विपरीत दूसरा सबल प्रमाण है स्वय महात्मा हरिदासजी। उनने जिस वाणी की रचना की है उसमे पद-पद पर निर्गुण उपासना का समर्थन है। उनकी एक यही साखी प्रमाण मे पर्याप्त है। वे कहते है कि —

पाहन को कर्त्ता कहे, ताका काला मुँह ॥
हरिदास जन यूँ कहे, मोहे साहब की सुँह ॥१॥
ज्यूँ मूरति त्यूँ ही शिला, राम बसै सब माँहि ॥
जन हरीदास पूरण ब्रह्म, घाटि वाधि कहुं नांहिं ॥२॥
नहिं देवल सूँ वैरता, नहिं देवल सूँ प्रीति ॥
किरतम तजि गोविंद भजै, यह साधां की रीति ॥३॥

ये साखी भाग "मर्म-विध्वंस अङ्ग" की तीन साखी है। उससे आगे "भेष" का अङ्ग है उससे स्पष्ट है कि वे मूर्ति-पूजा तथा भेष-विशेष धारण करने के परम

ठीक से कोई प्रामाणिक प्रेस ही पूरा करता है। मैने यह पुस्तक मातृभूमि प्रेस के मालिक पं० दामोदरलाल से बातचीत कर उन्हें देदी। यह प्रेस अभी प्रारंभिक दशा में ही है। प्रेस मालिक की भावना तो उत्तरदायित्वपूर्ण है पर साधनों की कमी है तथा टाइप जो प्रयोग में आया है उस की ढलाई में ही कुछ न्यूनतायें थी अत: पुस्तक जैसी उत्तम छपनी चाहिये थी वह अभिलाषा अधूरी ही रही। प्रूफ करेक्सन में भी कुछ असावधानी रही, अतः शुद्धि-पत्र भी लगाना पडा।

पुस्तक की प्रस्तावना सन्तसाहित्य के मर्मज्ञ व प्रेमी पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए., एल.–एल. बी. से लिखने की प्रार्थना की गई और उन्होने सहर्ष प्रार्थना स्वीकार करली। प्रस्तावना किस गंभीरता से लिखी गई है यह पाठकों को पढ़ने से प्रतीत होगा। पुस्तक मे जो कमियां रही है वे मेरी है तथा इसमें कुछ उपादेयता है वे सहयोगियों के सहयोग का फल है अत. मै उपर्युक्त सभी सज्जनों का परम आभारी हूँ। विशेषतः महात्मा परमानंदजी व पं० परशुरामजी तथा दानदाताओं का जिससे सन्तसाहित्य प्रेमी सज्जनों के समक्ष यह उपादेय भेट उपस्थित की जा रही है। पुस्तक के उत्तर खंड में प्राप्त निरंजनी सन्तसाहित्य का अशाश दिया गया है जिससे जिज्ञासुजन चाहें तो उस पर विशेष ध्यान दे सकें।

निवेदक, मंगलदास स्वामी

श्री दादूमहाविद्यालय, जयपुर
सम्वत् २०१९ मार्गशीर्ष कृष्णा १२ शनिवार
२४ नवम्बर १९६२

विरोधी थे। यदि वे वस्तुत. ही वैष्णव-सन्त प्रयागदासजी मे ही दीक्षित होते तथा उनके उपदेशानुसार साधना करते तो वे निर्गुण उपासना का इतना प्रबल समर्थन न कर सगुणोपासना का समर्थन करते। सगुणोपासना का खंडन तो कदापि नही करते। उपर्युक्त दोनो सबल प्रमाणो के पश्चात् पूर्णदासजी की परचई का यह भाग संगत नही है—यह स्पष्ट है। पूर्णदासजी से भिन्न ग्रन्थ किन्ही जीवनी-लेखको ने इनको वैष्णव-सम्प्रदाय से दीक्षित नही लिखा है। अत. हम पूर्णदासजी के इस उद्धरण का यही अर्थ मानते है कि उनने न तो ऐतिहासिक-तथ्य तथा न काल-सम्बन्ध व न स्वयं दीक्षित महाराज हरिदासजी के भावो का ध्यान रखा, केवल प्रचलित स्थिति सामने आई उसी को इस रूप मे सम्बन्धित कर देने का प्रयास किया जिसकी संगति का कोई आधार नही है। अतः यह पक्ष केवल काल्पनिक-मात्र है।

"मंत्रराज-प्रभाकर" ले०—रामबगसजी महता, रचना-काल संवत् १९४४-४५

महता रामबगसजी ने "मंत्र-राज प्रभाकर" नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसके दो भाग है। ग्रन्थ का विषय है—"राम नाम मंत्र" सर्वोपरि है। ग्रन्थ-लेखक के उपदेष्टा गुरु अर्जुनदासजी निरजनी महात्मा थे। अतः उनने अपने ग्रन्थ का अन्तिम १२वा उल्लास निरंजनी-सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक महात्मा हरिपुरुषजी (हरिदासजी) के सम्बन्ध का लिखा। उनके लिखने का आधार सप्रदाय की परम्परा व जनश्रुति है। उनने लिखा है :—

छन्द पद्धरि—श्री द्यालु नाम हरिपुरुष जान, प्रगटे सुडीडवाणे महान।
राम कला अवतार अंस, धन्य मातु पितु क्षत्री वंश।
कापड़ोद निज जन्मभूम, भये प्रगट सु सांखल कौम।
चवदा शत संवत् सप्त चार, प्रगटे सुदेश मुरधर मझार।
कर रहे खड्ग बल खोसलूट, नहिं शंका लेश रह्यो राव रूठ।
कर्मयोग एक दिन अजान, मिले ताहि गोरख महान।
पुनि राम मंत्र उपदेश कीन, जप करत भजनबल ब्रह्म चीन।

× × ×

साखी—ऊँचो डूँगर विषमता, जल को नाहिं निवास।
हरिदास हरिमिलन को, किया शिखर पर वास।
एकादश मिल हरिदास, जिन परम जोति में कियो वास।

× × ×

दोहा—पन्द्रह सौ पंचानवे, सुद फाल्गुण छठ जाण ।
विंशा सो वपु राख के, पहुंचे पद निर्वाण ।।

महताजी के लिखित ये उद्धरण व्यक्त करते है कि हरिदासजी का जन्म-स्थान, जाति, कार्य, उपदेश, साधना व जीवन-काल उसी रूप के है जैसे परचईकारो ने लिखे है । इनने अपनी ओर से किसी नई दृष्टि को व्यक्त नही किया है ।

रामचन्द्र गुजराती रचित "दयालु-चरित्र" लेखन-काल १९४४-४५ प्रकाशन-काल १९४६ ।

पं० रामचन्द्रजी संस्कृत के योग्य विद्वान् थे, उनने संस्कृत तथा हिन्दी-पद्यो मे "दयालु-स्तोत्र" तथा दयालु-महिमा का वर्णन किया है । दयालु-स्तोत्र जो कि संस्कृत मे है उसमें चौदह पद्य है । हिन्दी पद्यो मे जो कि रामचन्द्रजी के शिष्य आशारामजी दाधीच रचित है, दयालु-महिमा तथा उनके जीवन पर भी संक्षेप मे प्रकाश डाला गया है । संख्या मे ये पद्य सत्रह है । उक्त दोनो की रचना के दोनो तरह के पद्य निम्नरूप मे है—जिनसे हरिपुरुषजी महाराज के महत्व का दिग्दर्शन होता है ।

पुण्यैर्जन्मान्तरीयै समधिगतमहासाधुसत्संगलब्ध-
स्वात्मानंदावबोधोदयसरणिरलं शान्तमानान्तरायः ।
अध्यासीनो विविक्तं बहुदिनममलं यो जपन् रामनाम,
प्रापत्सद्योगसिद्धिं गुरुमहमनघं संश्रये श्रीदयालुम् ।।१।।
वाणीं वेदांतसारां गहनतरमहाज्ञानरत्नोज्ज्वलां यो,
व्यातेने व्याहतात्मा ग्रथितगुणभरां स्वानुभूतिप्रचाराम् ।
संसाराम्भोधिभीतांश्चरणशरणगान्मानवान्वीतमाना-
नुद्धर्तुं साधुवर्यं शमसुखनिरतं श्रीदयालुं भजेऽहम् ।।२।।

हिन्दी पद्य—नगर एक सुन्दर है डिडवान, तहाँ से पश्चिम दिशि गिरि जान ।
तिन सै क्रोशार्द्ध बसै एक ग्राम, जिसका कापडोद है नाम ।

दोहा— उसी ग्राम के बीच में, क्षत्री हुवा बलवान ।
हरीसिंह था नाम जिनों का, दया नहीं उर म्यान ।

तिहि परबत ऊपर नित आवे, हिसा कर लूट खोस खावे।
मार नर दिये कूप कई डार, ताहि लख आये सिरजनहार।
आये श्रीकमलापति, विप्र रूप को धार।
क्षत्री द्विज को देख, खड्ग निज करी म्यान से बार।
आय कहा लूटँ तेरा माल, मार कै द्वेऊँ कूप में डाल।
वचन सुन बोले विप्र तत्काल, बली तू मेरा वचन समाल।
माई बाप अरु कुटुंब को, घर जा पूछो आप।
हिसा करूं लूट खोसूं सो, कौन भोगसी पाप॥
वचन सुण बांध विप्र का हाथ, गया घर हरिसिंह उस स्यात।
जाय घरकां को पूछी बात, उतर दियो स्त्री भगिनी पितु मात॥

दोहा—इस कलियुग जुग बीच में, सुन हो सुघड़ कुमार।
जो अघ करसी वोही भोगसी, इसमें फरक न तार।

फेर पीछा आया द्विज पास, होय के मन में बहुत उदास।
पड़ा चरणों में होय निरास, पाहि गोविंद मैं तेरो दास॥
धर्यो सिर कर-सरोज कर्तार, जपो हरिनाम राम हर बार।
श्रेष्ठ उपदेश श्रवण सुन सार, ध्यान दृढ़ लियो यही उर धार।

दोहा—गिरि शिखिर ठाढ़े करै, हरिभक्ति निरब्याज।
निसदिन प्रेम मगन मन होके, हरिपुरुष महाराज।

× × ×

नाम दोनों को चढो परवान, सुकके बावन चेला हुए आन।
सभी को दीनो निश्चल ग्यान, धरो जाय उत्तर घरों में ध्यान।

दोहा—शतक विंशवीं तेवरस, हरिपुरुष मनमान।
तजणैं लगे शरीर को, जप गाढ़ो निज गुरु जान।
पन्द्रह सै पिच्याणवैं, फागण सुद छठ जांण।
जा दिन से मेला भरे, या है सांची सहनांण॥

उक्त हिन्दी-रचना प० रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य आशाराम दाधीच कृत है। इससे भी स्थान, जाति, पेशा, जीवन-काल पूर्ववत् ही सामने आते है। इनने उपदेश देने वाले गुरु गोरखनाथ के स्थान पर परमपिता जगन्नियन्ता को विप्ररूप धर उपदेश देने का उल्लेख किया है, इनका यह उल्लेख भी पूर्णदासजी की तरह काल्पनिक है। यह कल्पना शायद इसी विचार से की गई कि उनके समय मे प्राय. ही निरंजनी महात्मा तिलक, कंठी, यज्ञोपवीत धारण कर मन्दिर-पूजा करने लग गये थे। साधु-वर्ग की उस स्थिति का गोरखनाथजी के निर्गुण भक्ति उपदेश से सामंजस्य नही बैठाया जा सकता था इसीसे इस तरह की कल्पना की गई। इनने भी अन्तिम काल पन्द्रह सौ पचानबे ही लिखा है। आयु भी एक सौ बीस वर्ष की लिखी है इसमे जन्म-काल भी चौदह सौ पिचहत्तर अपने आप आ जाता है।

स्वामी जानकीदासजी बालोतरा रचित "जीवन-चरित्र" रचना-काल सं० १९६२

बालोतरा निवासी महात्मा रामरतनदासजी के सुयोग्य शिष्य जानकीदासजी ने दोहे-चौपाई मे महाराज हरिदासजी के जीवन-चरित्र की रचना की। उनने अपने इस जीवन-चरित्र मे प्रमुखतया हरिपुरुषजी के चमत्कारी परचो का विस्तार से वर्णन किया है। उनने इनके जन्मस्थान, कार्य आदि का भी निरूपण किया है उसके आवश्यक अङ्ग नीचे दिये जाते है जिनसे हरिपुरुषजी महाराज के जीवन पर प्रकाश पडता है। वे लिखते है —

चौपाई—तब हरिदास धर्यो अवतारा, करण सकल जीवन उद्धारा।
मारु सुदेस जिला जोधाणे, कापडोद शुभ ग्राम बखाने॥
तहाँ के ठाकुर अति रणधीरा, बलबुधि निपुण भक्त हरिजी रा।
जाति शांखला सूरजवंशी, राजपूत कुल सब अवतंसी॥

दोहा—तेही की तिरिया भगत हरि, रूप शील गुण खानि।
ता के उदर सु अवतरे, करन जगत कल्याणि॥

× × ×

चौ०—दिलवायो हरिसिंह जू नामा, हृष्ट-पुष्ट तनु परम ललामा।
इहिं विधि बाल अवस्था बीती, तरुणाई आई मनचीती।
केऊ ग्राम के ठाकुर भारी, तिन कन्यागुण रूप अपारी।
होवत भयो ब्याह तिन संगा, धूमधाम सू भरे उमंगा॥

दोहा- एक समै हरिसिंहजी, चंचल चढ़े तुरंग।
जात भए बन भूरि जहां, करण शिकार उमंग ॥

चौपाई-करण लगे शिकार मुद मानी, तिहिं क्षण आये गोरख ग्यानी।
लख हरिसिंह जू कियो प्रणामा, तब बोले गोरख मतिधामा।
इन जीवन को तुम मत मारो, जीव हिंस्या पातक अति भारो।
जितने रोम तासु तन माही, तितना सहस नरक भुगताहीं।
जीव बदलो छूटत नहिं भाई, तातें तजहु हिंसा दुखदाई।
देखहु जग में थोरा जीना, काहे पातक करो मलोना।

× × ×

सुनत ही वचन भयो विरागी, उपजी हरिचरण अनुरागी।
कर गोरख को डंड प्रनामा, तुरत चले गिरि गुहा ललामा।
कर पद्मासन बैठे स्वामी, भजन लगे हरि अन्तरयामी।
अडिग समाधि लगी तिहि वारा, ररंकार धुनि होत अपारा।

दोहा—इहिं विधि हरिपुरुषजी, योग समाधि दृढ़ धार।
भजन कियो परब्रह्म को, काम क्रोध मद मार।

चौपाई-फागन शुक्ला षष्ठी आई, उत्सव होन लग्यो अधिकाई।
बावन शिष्य स्वामी जू केरे, सम्मुख बैठे मुख सब हेरै ॥
इहिं विधि कहत कहत निज ज्ञाना, देख परचो नभ मांहिं विमाना।
तव प्रभु ब्रह्मरंध्र मग भेदी, रवि शशि उदय केर मग छेदी।
जात भये निज धाम मंझारी, दिव्य बाज बाजै तेहि वारी।
संवत सोलह सो सई कै, हरिपुरुष गये धाम हरि कै ॥
संवत चवदा सो पचहत्तर, जन्म लियो हरिदास जु बुधवर।
जो यह कथा सुनैं अरु गावै, सो जन निजानंद पद पावे ॥

दोहा- संवत उनईसा कही, साल वासटै जान।
फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी, भई समापत मान ॥

उक्त जीवन-चरित्र के उपर्युक्त उद्धरणो से ज्ञात होता है कि ग्राम, जाति तथा काल का निरूपण इसमे भी वैसा ही हुआ है जैसा अन्य परचईकारो व जीवनी-लेखको ने लिखा है। इस जीवन-चरित्र मे जिन बातो की भिन्नता है वे इस तरह हैं। जन्म, पेशा तथा उपदेशोपलब्धि का निरूपण भिन्न तरह का है। इसमे हरिसिहजी का जन्म कापडोद के जागीरदार ठाकुर के घर होना लिखा है। पेशा भी डाकेजनी का नही लिखा गया है। कारण, जब वे जागीरदारके प्रिय पुत्र है तब उनको अभाव किस चीज का रहता। इसमे एक केऊ ग्राम के ठाकुर की सुपुत्री से इनके विवाह का भी उल्लेख है। इसमे वैराग्योत्पत्ति का हेतु भी हिरणी का शिकार लिखा है। उपदेश देने वाले परम पिता परमेश्वर को लिखा गया है। मेरी समझ से उक्त विभिन्नताओ का विशेष महत्व नही है। कारण इनसे प्रमुख आधारो मे कोई अन्तर नही आता। सम्भव है चरित्र-निर्माता महात्माजी ने हरिसिहजी को एक साधारण राजपूत व डाकू का रूप देना अपनी गुरुभक्ति की भावना से उचित नही समझा। समय लम्बा निकल जाने तथा सगुणोपासना की प्रधानता सम्प्रदाय मे आ जाने से उनने गुरु परम्परा भी नाथो की लिखना ठीक नही समझा होगा। मेरी समझ मे उक्त विभिन्नताओं का हेतु सम्प्रदाय की सामयिक स्थिति के आधार से बनी मनो-भावना ही थी अत इन विभिन्नताओ को इसी दृष्टि से देखा जाना संगत है।

इस तरह उपर्युक्त परचई लेखको व जीवन-चरित्र-लेखको का दृष्टिकोण हमारे सामने आया है। आगे हम उन विभिन्न सम्प्रदायो के रचनाकार महात्माओ की हरिदासजी महाराज के विषय मे क्या धारणा थी—उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते है।

राजस्थान मे विभिन्न सन्त-मतो का आविर्भाव हुआ। उनके आचार्य व उनके परवर्त्ती महात्माओ का जिस-जिस काल से सम्बन्ध था तदनुसार कालक्रम से ही हम यहाँ उनके उक्त उद्धरणो को उपस्थित करते है। हरिदासजी के विषय मे एक यह विवाद भी प्रस्तुत है कि वे दादूजी के शिष्य प्रयागदासजी वियाणी के शिष्य थे। पश्चात् वे नाथ महात्माओ के सहवास मे आये। दादूजी का काल निर्णीत है। वे सम्वत् १६०० मे उत्पन्न हुये तथा १६६० मे उनका स्वर्गारोहण हुआ।

उनके बावन शिष्य होना प्रसिद्ध है जिनका सम्बन्ध सम्वत् १६३० से १६६० तक चलता रहा है। दादूजी के तीन शिष्य वखनाजी, जग्गाजी व छोटे सुन्दरदासजी ने अपनी रचनाओ मे हरिदासजी का स्मरण किया है। दो पोताशिष्य खेमजी तथा चैनजी ने भी अपने निर्मित साहित्य मे उनका उल्लेख किया है। स्वामी प्रहलाददासजी के पोताशिष्य स्वामी राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल मे निरंजनी सम्प्रदाय के द्वादश महन्तो का विवरण दिया है। इनके क्रमशः उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

दादूशिष्य वखनाजी—

वखनाजी नराणे ग्राम के रहने वाले तथा दादूजी के नैष्ठिक शिष्यो मे थे। इनका अवसान सम्वत् सत्रह सौ से पहिले ही हो गया था। इनकी समाधि त्रिपोलिये के पास नराणे मे बनी हुई थी। इनने वाणी की रचना की थी। ये स्वयं अच्छे संगीतज्ञ भी थे, इनने साखी तथा पदो की रचना की है। उनकी मुद्रित वाणी के पृष्ठ ११८, पद-९६ मे वे लिखते है—

वो घर बोलगी उलगाणो ?
जिहिं ध्रु प्रहलाद निवाजियो, वैकुंठ तणो दियो थांणो ।।टेक।।

× × ×

जाके नामा सेन कबीरा, पींपा धना अहीरा।
सूरदास रैदासा , सगलां की पूरे आसा ।।
जाके दत्त गोरष रूपो आदू, गोपीचन्द भरथरी दादू।
सोझा बीझल रिदासा, जन नानक चरन निवासा ।।
जाके भगत शिरोमणि सारा, तहाँ दीसै दै दै कारा।
सब मांही राम बिराजै, तिहिं घर सदा बधावा बाजै ।।
जिहि घर वरतण एती, सो जाणी जाइ न केती।
सेस सहस मुख गावै, वे भी पार न पावै ।।
सो अनत लोक को राजा, घण हरसाँ बाजै बाजा।
अविनासीं राजा कहिये, वषना तिहिं घर औलग रहिये ।।

इस पूरे पद के अठारह छन्द है। इसमे उस विभु-व्यापक ब्रह्म की महत्ता तथा उनके अनुगामी महात्माओं का निरूपण किया है। कबीर, नामदेव, नानक, रैदास आदि अपने से पहिले हुए महात्माओं में ही हरिदासजी की गणना की है। इससे स्पष्ट है कि वखनाजी के रचना-काल से पहिले हरिदासजी हो चुके थे। वखनाजी का रचना-काल संवत् १६५० से ८० तक का माना जा सकता है।

"दादूशिष्य जग्गाजी", समय—संवत् १६५० से १६८०

उनने लघु रूप मे भक्तमाल लिखी है, उनके पद्य भी है। भक्तमाल मे उनने अतीत-महात्माओं का निरूपण किया है। उससे सम्बन्धित अंश इस रूप मे है:—

भक्तमाल—नामदेव कबीर तिलोचन धूरि स्वामी,
इनहु कह्यो भज अन्तर्यामी।
रामानन्द सुषा श्रीरंगा,
नानक कह्यो रहु हरि के संगा॥
पींपा सोंझा धना रैदासा,
राम राम की बंधाई आसा।
सुकाल सेठ जनक राँका बाँका,
इनहू दियो हरिनाम का नाका॥
वीझल वेणी नापा हरिदास,
इनहु कह्यो हरि तेरे पास॥

× × ×

गुरु गुरु भाई सबमें बूझ्या, तिनकै ग्यान परमपद सूझ्या।
जगिये साध सिध सुण्याँ ते जाँच्या, दियौ रामधन दुख सब वाच्या॥
जनम जनम का टोटा भाग्या, अखै भंडार विलसने लाग्या।
भक्तिमाल सुनै अरु गावै, जोनि संकट बहुरि न आवैं॥

इनके एक पद्य मे भी एक साखी है—

जैसी कबीरजी हरिदास निवाज्यो अनभै घट उपजाई।
ऐसे दीनदयाल दादूजी, अनाथ निवाजै आई॥१॥

उपर्युक्त भक्तमाल तथा पद के उद्धरण से व्यक्त होता है कि इनके पहिले ही हरिदासजी हो चुके थे, और वह काल इनके जीवन से पहिले ही का होना चाहिये।

दादूजी के सबसे लघु-शिष्य छोटे सुन्दरदासजी—इनका जन्म-संवत् १६५३ तथा ब्रह्मविलय-काल १७४६ है। इनका रचना-काल संवत् १६८० से अन्त समय तक का मानना चाहिए। इनने भी अपने अष्टक तथा पद्य मे महाराज हरिदासजी का उल्लेख किया है।

पृष्ठ ८८२ पद संख्या—५

महासूर जिनको जस गाऊँ , जिन हरि सौं लौ लाई रे ।
मन मेंवासी कियो आप बसि , और अनीति उठाई रे ।।टेर।।

× × ×

गोरषनाथ भरथरी सूरा , कमधज गोपीचन्दा रे ।
चरपट कांणेरी चौरंगी , लीन भये तज द्वन्दा रे ।।
रामानन्द कियो सूरा तन , काशीपुरी मँझारी रे ।
लोक उपासक शिव के होते , आनि भक्ति विस्तारी रे ।।
नामदेव अरु रंका बंका , भयो तिलोचन सूरा रे ।
भक्ति करी भय छाँड़ि जगत को , बाजहिं तिनके तूरा रे ।।
कलियुग माँहिं कियौ सूरा तन , दास कबीर निसंका रे ।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक मैं , जीत लियो गढ़ बंका रे ।।
जन रैदास साधि सूरा तन , विप्रनि मार मचाई रे ।
सौंझा पीपा सेन धना तिन , जीती बहुत लराई रे ।।
अंगद भुवन परस हरदासा , ग्यान गह्यो हथियारा रे ।
नानक कान्हा वेण महाभट , भलौ बजायौ सारा रे ।।

× × ×

आदि अन्त कीयो सूरा तन , युग युग साध अनेका रे ।
सुन्दरदास मोज यह पावै , दीजै परम विवेका रे ।।

उक्त पद्य का प्रारम्भिक भाग नही दिया गया है, जिसमे अति-प्राचीन ऋषि-मुनियो व महात्माओं का निर्देश है। प्रस्तुत पद्य-भाग मे उनके समय मे जीवित किन्हीं भी महात्माओ का उल्लेख नही आया है। जिनका नामोल्लेख है, वे अतीत के ही महात्मा है। उन्ही मे हरिदासजी का नाम आया है। इसका अभिप्राय यह स्पष्ट है कि सुन्दरदासजी के रचना-काल से पर्याप्त पहिले ही हरिदासजी हो चुके थे। इन्ही का दूसरा उदाहरण "सवैया" ग्रन्थ के गुरुदेव अङ्ग का पाँचवाँ छन्द है—

कोउक गोरष को गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू ।
कोउक कंथर कोउक भरथरि कोउ कबीर को राषत नादू ।।

कोउ कहै हरिदास हमारै जु यौं करि ठानत वाद-विवादू ।
और तो सन्त सबै शिर ऊपर सुन्दर के उर हैं गुरु दादू ॥

उक्त सवैये मे विभिन्न पन्थो की ओर संकेत है। उन्ही मे महात्मा हरिदासजी का भी उल्लेख किया गया है। मतलब—सुन्दरदासजी के समय मे हरिदासजी के अनुयायियो ने निरञ्जनी पन्थ की परम्परा प्रचलित कर ली थी। इसका सीधा अभिप्राय है कि सुन्दरदासजी के समय मे निरञ्जनी-पथ प्रचलित था तथा उसके संस्थापक हरिदासजी को हुए अवश्य ही कुछ समय बीत चुका था। उपर्युक्त दोनो ही उद्धरण इसी अर्थ मे स्पष्ट है।

रज्जवशिष्य षेमदासजी, ग्रन्थ "रंभा-शुकसम्वाद" (काल १६८० से १७४०)

रज्जबशिष्य षेमदासजी की कई रचनाएं है। "रंभा-शुकसवाद" के प्रारंभ मे उनने गुरु तथा महात्माओ की वन्दना की है। उक्त वन्दना मे जिनके नामोल्लेख है, उनमे हरिदासजी का नाम भी है।

दोहा— सीस नवाऊँ गुरु चरण, पुनि विनऊँ सब साध।
निराकार की भक्ति है, सो द्यो बुद्धि अगाध ॥

चौपाई—निराकार प्रणमति नित कीजै, रसना विमल गाइ गुन लीजै ॥
गुरु रज्जव दादू परम देवा, नाम कबीर करें हरि सेवा ॥
गोरष भरथरि गोपीचन्दा, ध्रु प्रहलाद सकलहूँ वन्दा।
पींपा धना सेन रैदासा, सोंझा सोम सुनो हरिदासा ॥
सब कर कृपा देहिं जो ग्यानूँ, तौ कीजै सुष कथा बखानूँ ॥

षेमजी ने अपने पूर्व हुए महात्माओ की वन्दना की है उन्ही मे हरिदासजी भी है।

दादूजी के पोताशिष्य चैनजी, रचना—"भक्तमाल" (काल १६७० से १७३०)

उद्धरण—रामानन्द कबीर पीपौ परसू, गलगला सुरसुरा पावे हरसू।
मति सूद्र रैदास पद्मावती सेवा, बोले सुरिया भजै हरि देवा ॥

महाराज हरिदासजी की वाणी की

विषय सूची

नानक नरसी परमानन्द सूरं , मुकुन्द सेन र वलवल पूरं ।
सुखानन्द अरु माधो गुसाईं , कीता नामा सुमिरैं साईं ॥
चत्रनाथ चत्रभुज हरि की आसा, छीगू किसनदास कील्ह हरिदासा ।
जोगानन्द विमलानन्द मुनिमन हाथू, नरसो वादरौ धुडी सब साथू ॥

भक्तमाल का आरंभ— ×× ××

दोहा— सीस नाइ वंदन करूँ , गुरु गोविंद उर आनि ।
सकल संत को जोरि कर, कहूँ सु नाव बखान ॥

गोरष-जन्म-लीला—

चौपाई—खुले सुदिल के सकल कपाटू , अरु पावे अनभै की बाटू ।
उपजै बोध बुद्धि परकासू , होइ तिमिर को सहजैं नासू ॥
सम्वत् सोलह सै चौरासी , गोरष जन्मलीला परकासी ।
निरमल वचन करूँ विसतारू , उत्तम कथा कहूँ निज सारू ॥
अस्तुतिं करै जोर कर चैन , उचरै वांणी दिह निज नैंन ।

चैनजीकी रचना के क्रम मे पहिले साषी-शब्द भाग है। उसके पश्चात् ग्रन्थ-रचना है। भक्तमाल ग्रन्थ-रचना मे गोरख जन्म-लीला से पहिले है। गोरख जन्म-लीला की रचना भक्तमाल के पश्चात् है और उसका रचना-काल स्वयं रचनाकार ने ही १६८४ व्यक्त किया है। चैनजी ने भी अपनी भक्तमाल मे भूतपूर्व तथा सम-सामयिक महात्माओ का वर्णन किया है। हरिदासजी भूतपूर्व महात्माओ की शृङ्खला मे प्रदर्शित किये गये है। इससे स्पष्ट है कि चैनजीके समयसे पर्याप्त पहिले हरिदासजी का निधन हो चुका था तथा उनके पश्चात् निरञ्जनी-सम्प्रदाय का सम्यक्-स्वरूप बन गया था। इस तरह उपर्युक्त तीन दादूजी के शिष्यो व दो पोता-शिष्यो के उद्धरण हरिदासजी के विषयके आ चुके है। आगे हम दादूजीके शिष्य प्रहलाददासजी के पोता-शिष्य स्वामी राघोदासजी की भक्तमाल मे निरूपित हरिदासजी-संबंधी उद्धरण उपस्थित करते है। राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल मे अन्य सम्प्रदायों के महात्माओ तथा भक्तो का निरूपण कर तदनन्तर "गुरु-प्रणाली" नाम से दादूजी महाराज उनके शिष्य तथा कुछ पोता-शिष्यो का निरूपण किया है। उसके पश्चात् निरञ्जनी-सम्प्रदाय का व तद्गत बारह महात्माओ का निरूपण किया है। उन्ही मे

अनन्यतम स्थान महाराज हरिदासजी का है। भक्तमाल का रचना-काल स्वयं राघोदासजी ने ही अन्त मे दे दिया है। वह इस रूप में है—

दोहा— सम्वत् सत्रह सै सत्रे होतरा, शुक्र पच्छ शनिवार।
तिथि तृतीया आषाढ़ सुदि, राघौ कियो उचार ॥१॥

"सत्रह सै सत्रे होतरा" का अर्थ स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी ने सत्रह सौ सत्तर लिखा है। सत्रेहोतरा का अर्थ सत्रह भी हो सकता है। जैसा कि पहिले सत्रह शब्द से सिद्ध है। पुरोहितजी ने राघोदासजी को सुन्दरदासजी के समकालीन भी लिखा है और लिखा है प्रहलाददासजी के शिष्य। पर वे प्रहलाददासजी के शिष्य नही थे। वे प्रहलाददासजी के शिष्य हरिदासजी (हापोजी) के शिष्य थे। जैसा कि वे स्वयं लिखते है :—

मम गुरु माथे पर स्वामी हरिदास जू है,
परम गुरु स्वामी प्रहलाद बड़ी निद्धि है।

यदि राघोदासजी की भक्तमाल का रचना-काल सम्वत् १७७० मानें तो फिर सुन्दरदासजी के वे समसामयिक थे—इस पर भी विशेष विचार की आवश्यकता है। यहाँ इस पर विशेष कुछ नही लिखना है। राघोदासजी हरिदासजी के शिष्य व प्रहलाददासजी के पोता-शिष्य थे। इनने निरञ्जनी-सम्प्रदाय के वर्णन का इस तरह आरम्भ किया है—"अब राषेंहि भाव कबीर को, इम एते महन्त निरजनी।"

लपट्यो जगन्नाथ श्याम कान्हड़ अनुरागी,
ध्यानदास अरु षेम नाथ जगजीवन त्यागी।
तुरसी पायो तत्व आन सौं भयो उदासी,
पूरण मोहनदास जानि हरिदास निरासी ॥

राघो समरथ राम भज माया अंजन भंजनी।
अब राषेंहि भाव कबीर को, इम एते महंत निरंजनी ॥१॥

हरिदासजी के विषय में—

जत सत रहणि कहणी करतूत बड़ौ,
हर ज्यूँ कह र हरिदास हर गायो हे।

विरक्त वैरागी अनुरागी लिव लागी रहै,
अरस परस चित चेतन सूँ लायो है ॥
नृमल निर्वाणी निराकार को उपासवान,
निरगुण उपास कै निरंजनी कहायो है ॥
राघो कहै राम जप गगन मगन भयो,
मन वच क्रम करतार यों रिझायो है ॥१॥

हरिदासजी के परचे—

प्रथम पीपली प्रसिद्ध सिला नागौर विशेषो ।
नयो गयंद अजमेर फुनग टोडे पण पेषो ॥
गिरि सूँ गागर गिरी नीर राख्यो घट सारा ।
देवी को सिष करीं ज्यायो विष पित्र उधारो ॥
सिंहपरचौ आमेर राव राजा सब जाँणे ।
अपंग विप्र पथ चल्यो साह सुत जियो सिंघाणे ॥
सिर पर कर श्री गोरषनाथ को ठौर ठौर परचो दियो ।
जन हरिदास निरंजनी त्याग वैराग सिरे कियो ॥१॥

राग—सीधू : कडषैं पद—

सूरवीर सरदार शिरोमणि, दल माँझी ददकार लड़े ।
रामानन्द कबीर नामदेव, रहे फौज मध जीत षड़े ॥५॥
वाग उपाड़ि पड़े परदल मधि, गढ़ कोटन सों जाइ अड़े ।
पींपा धना सैन अरु सोंझा, भवन परस प्रचंड लड़े ॥६॥
काम क्रोध मद मोह मछर, मार तड़ातड़ गर्द किये ।
दादूदास हरिदास रु नानग, ये ग्यानी औगार हिये ॥७॥

× × ×

अनन्य भक्त अष्टांग जोग करि, उलटि आप सूँ आप लड़े ।
'राघो' वंदि चरणरज जिनकी, जो बि स्वामी रे काम पड़े ॥८॥

राघोदासजी द्वारा निरूपित "भक्तमाल" मे जो उपर्युक्त विवरण है, उससे सिद्ध हो जाता है कि भक्तमाल की रचना के समय राजस्थान मे निरंजनी-सम्प्रदाय का सम्यक् प्रसार था और उसके प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी नामदेव, कबीर, नानक और रैदास की श्रेणी मे सम्मिलित थे।

यहां तक के उद्धरण दादू-पन्थी सम्प्रदाय के महात्माओं के है, जिनका आरम्भ सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होकर अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चला गया है। हरिदासजी के औचित्य तथा उनके काल-निर्णय मे इनका क्या विशेष उपयोग है? यह हम पूर्वापर पक्षो को लेकर आगे विवेचन करेगे वही दिग्दर्शन करायेगे।

अब मैं दादू-पन्थी सम्प्रदाय के पश्चात् होने वाले सम्प्रदाय-प्रवर्त्तको व उनके अनुयायियो के उद्धरण देना संगत समझता हूँ, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनके विचार मे हरिदासजी का क्या स्थान था तथा उनका काल व निरंजनी-सम्प्रदाय का क्या रूप था?

वैष्णव सम्प्रदायान्तर्गत रामानन्दजी के शिष्य अग्रदासजी की पाचवी पीढी मे दांतडा मे महात्मा सन्तदासजी हुए है। उनकी वाणी का रचना-काल सम्वत् १७६० से १७६० तक का आनुमानिक है। उनकी वाणी का प्रकाशन शाहपुरा के रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक योगसिद्ध महात्मा रामचरणजी की वाणी के साथ प्रकाशित है।

ग्रन्थ—"ब्रह्मध्यान" पृ० ५१—प्रकाशित वाणी—महाराज रामचरणजी की—

ध्रुव प्रहलाद वे ही सुख मिलिया, चौरासी का बन्धन खुलिया।
दास कबीर गुरु रामानन्दा, वा सुख सूँ मिल किया आनंदा॥
वा सुख सूँ मिल रहिया नामा, जाका निहचै सरिया कामा।
पीपा धना और रैदासा, वा सुख सूँ मिल किया विलासा॥
वा सुख नानक कान्है पाया, राम नाम निहचै कर धाया।
विष्णु सूरजन माधोदासा, वा सुख माँहिं कीन्हा वासा॥

× × ×

दास मुरार मलूका जंगी, वे भी था वा सुख का संगी।
हरिदास वाजिंद विचारा, वे भी मिल गया सुख की धारा॥

दादू रज्जब परसा ग्यानी, वा सुख सूँ मिलिया निज ध्यानी।
राँका बाँका कालू कूबा, वा सुख मांही वे भी डूबा॥

× × ×

सन्तदास दासन के दासा, जिन कथिया ब्रह्मध्यानप्रकाशा।
सीख विचार र ध्यावे रामा, निज पद में ता का विसरामा॥

महात्मा सन्तदासजी सम्वत् १८०६ मे ब्रह्मलीन हुए जैसा कि उक्त कुण्डलिये से सिद्ध होता है—

दोहा— अठारह सै षट् वरस में संत भये निरकार।
बुद फागण तिथि सप्तमी वार सनीसरवार॥
वार सनीसरवार डार के अनित सरीरा।
प्रथम ही मिल रहे जैसे घट भरियो नीरा॥
परापरै पद लीन था, भिन दृष्टि रूप आकार।
अठारै सै षट् वर्ष मैं सन्त भये निरकार॥

उपर्युक्त उद्धरण मे जिन अतीत महात्माओ की ब्रह्मलीनता निरूपित की है, उन्हीमे महात्मा हरिदासजी का उल्लेख है।

सिंहस्थल (सींथल) रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक महाराज श्रीहरिरामदासजी (काल १७४० से १८३५)

हरिरामदासजी महाराज का पद—मुद्रित रामस्नेही धर्मप्रकाश (पृ० १४५ पद १० वाँ)

रे नर राम नाम सुमरी जै।
या सूँ आगे संत उधरिया, वेदाँ साख भरी जै॥टेर॥
या सूँ ध्रू प्रहलाद उधरिया, करणी साच करी जै॥
या सूँ दत्त मछंदर उधरे, गोरख ग्यान गही जै॥
या सूँ गोपीचन्द भरथरी, पैले पार लँघी जै॥
या सूँ रंका बंका उधरे, आपा अजर जरी जै॥

या सूँ रामानन्द उधरिये , पींपा जुग जुग जी जै ॥
या सूँ दास कबीर नामदे , जम की जाल करी जै ॥
या सूँ जन रविदास उधरिये , मीराँ बात बनी जै ॥
या सूँ कालू कीता उधरे , वास अमरपुर कीजै ॥
या सूँ जन हरिदास उधरिये , दादू दीन भनी जै ॥
जन हरिराम कहै सबही कूँ , जपताँ ढील न कीजै ॥

शाहपुरा–रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य श्रीरामचरणजी महाराज
(काल १७७६ से १८५५–रचना-काल १८१० से १८५५)

उद्धरण—रामचरणजी महाराज की प्रकाशित वाणी, पृष्ठ ६६६ (धमाल)

भैया ऐसो नगर मैं छाड़ूँ नाहिं, जाकै अनंत कोटि जन बसे हैं माहिं ॥टेर॥
जहाँ शिव सनकादिक शेष साध , मुनि नारद शारद ध्रुव प्रह्लाद ।
कमला ऊमा हनूमान , जहाँ नेति नेति कहै निगम ग्यान ॥
जहाँ ऋषभदेव जड़भरत भाय , तहाँ नव जोगेश्वर जनक राय ।
कपिलदेव अरु वालमीक , जहाँ ध्यान धरें शुक अम्बरीष ॥
जहाँ रामानन्द नींमानन्द नाम , तहाँ मध्वाचार्ज विष्णु श्याम ।
और सिखां लियां संग साथ , इन चारन पकर्यो सब को हाथ ॥
जहाँ गोरष भरथरी गोपीचन्द , तहाँ नानक फरीदा अरु वाजिंद ।
महमूद दादू करि निवास , जहाँ सहित एकादश हरीदास ॥
अल्प अकल गिणती न आय , या पद की महिमा कही न जाय ।
अगम पुरी भरपूर वास , जहाँ घर घर आनंद सुख विलास ॥
जहाँ सब सन्तन कों पाय सीत , चरणाँ जल रज सूँ गयो है भीत ।
मैं सन्तदास को पनईदास , राखो रामचरण कूँ चरणाँ पास ॥

महाराज रामदासजी, सिंहस्थल (सींथल) रामस्नेही-सम्प्रदाय की खेडापा शाखा के प्रवर्त्तक—आप महाराज हरिरामदासजी के शिष्य थे ।

आपका काल—सं० १७८३ से १८५५ रचना-काल १८३५–५५

उद्धरण–रामस्नेही धर्मप्रकाश–रचना भक्तमाल–पृ० २०३–२१२

दास कबीर मगन मतवारा, सहज समाधि वणी इक धारा ।
सब सन्तन में चकवै हूवा, ब्रह्मविलास कबहू नहिं जूझा ॥५२॥

× × ×

कमाल-कमाली हरिगुण गाया, सुख सागर में सहज समाया ॥५३॥

× × ×

राम राम रैदास उचरिया, रोम रोम में नीझर झरिया ॥५४॥
काढ़ि जनेऊ विप्र जिमाया, शालग स्वामी मुखाँ बुलाया ॥५७॥

× × ×

दादूदास राम का प्यारा, चार पन्थ ले किया पसारा ।
बावन शिष्य हुए उजियागर, अनुभव वांनि मिले सुखसागर ॥८१॥

दास गरीब गुरू घर आया, भेदी भेद ब्रह्म का पाया ॥
रज्जब पिया रामरस भारी, सतगुरु सेती प्रीति पियारी ॥८२॥

× × ×

गोरखनाथ मछंदर जोगी, रग रग भेद लिया रस भोगी ॥
कोटि निनाणूँ राजा हूवा, गाया राम अगम घर बूझा ॥९३॥

हरीदास पूरा गुरु पाया, नाम निरंजन पंथ कहाया ॥
बारह शिष्य मिले सुख माँई, पाडा माता चेली आई ॥९४॥

द्वादश पंथ संत बडभागी, छाप निरंजन माया त्यागी ॥
अंजन त्याग निरंजन ध्याये, ता तें निरंजन पंथ कहाये ॥९५॥

जगजीवन तुरसी अरु सेवा, राम रसायन पीया मेवा ॥
भुवन भेव भक्ति का पाया, खांडे खेर तणे लोहवाया ॥९६॥

महाराज श्री रामदासजी के शिष्य दयालदासजी कृत भक्तमाल—
(रचना-काल १८४५ से १८८०)

निरंजनी सम्प्रदाय-विवरण—

हरिदास पुनि स्यामदास तुलसी धन पूरन ।
जगन्नाथ जन षेमदास मोहन मन चूरण ।।
कानड़ ध्यान जू दास भया जग जीवण पारा ।
आनदास अनाथ भाल तथ अरथ विचारा ।।

राम सुमर मन जीत जग षट् सरोज उर भंजनी ।
अंजन तज निरंजन मिले पंथ द्वादश निरंजनी ।।४१५।।छंद से

राम मिलण के काज नमो ऐसो व्रतधारी ।
षट् रस रसना त्याग त्याग माया मोह न्यारी ।।
निंद्या वैर न विरोध छाँड़ि संसारव्यवहारा ।
घट विच अधरा थाप खोलियाँ दशवाँ द्वारा ।।

जींव सीव मिल ध्यान धर परम धाम विश्राम तत ।
ग्यान विज्ञान विचारणा हरिदास अवधूत मत ।।४१६।।

हरिदासजी के बावन शिष्यों के विषय में—

ऊधव नारायणदास षेम पोकर निज दासा ।
भैरवान नरूदास विष्णुदास व सुखरासा ।।
श्री रामदास पुनि षेम ध्यान तुरसी शिवरामा ।
नरहरि तुरसीदास दास पीपा सिद्धकामा ।।

सारंग सूँधादास भन अमरदास हरिपद लह्या ।
हरिदास पद परस जन बावन परचै सिष भया ।।

जैतराम पुनि उधवा नारायण रामकृष्ण जन ।
दास प लाद संतोष दास जोगी जीता मन ।।

रूपराम हिंरदैराम दास भिष्यारी माना ।
रामसुख जयराम धरम धुन आतम जाना ।।

बालकदास नरसिंह जन हरि दरगा पाई फतै ।
राम सुमर गुरुपद परस दयाल बाल साचै मतै ।।४१८।।

केसोदास पुनि नाथ तीन मणि-राम जू दासा ।
हरी भगत भगवान स्याम बालक सुषरासा ।।
वनमाली निज दास दास चतरा वन मोहन ।
सूरतराम हरिकृष्णदास शीतल अघ षोवण ।।

बलराम मनसाराम जन सीताराम परवानिये ।
हरिदास पदरज परस बावन सिष सुष जानिये ।।४१९।।

हरिदासजी की छठी पीढी–सेवादासजी के विषय में—

सेवादास सतगुरु-कृपा—

साच सबद गुरु परस आतमा तत्व विचारा ।
जगतजाल भवकाल आण निरव्रत मन धारा ।।
साच वाच सुदिष्टि ग्यान गुण रतन प्रकासी ।
कोमल साध स्वभाव दया धीरज गुणरासी ।।
भगति दान सनमान कर पंथ लह्यो निराकार को ।
सेवादास सतगुरु कृपा ध्यान धर्यो ररंकार को ।।४२०।।

निरंजनी व दादू-पन्थी सम्प्रदाय से पीछे स्थापित सम्प्रदायो के आचार्यों तथा उनके शिष्यो के उपर्युक्त उद्धरण है। इन उद्धरणो से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इनके जीवन-काल से पूर्व निरंजनी-सम्प्रदाय का पर्याप्त विस्तृत रूप बन गया था तथा इन सबने अपने पूर्ववर्त्ती महात्माओं का जहा ससम्मान निरूपण किया है, उन्ही मे हरिदासजी का भी नाम है। महाराज रामदासजी व दयालदासजी की भक्तमाल में महाराज हरिदासजी के विवरण के साथ-साथ बारह निरंजनी महन्तों का तथा हरिदासजी के बावन शिष्यो में से अनेको के नामोल्लेख किये है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि राघोदासजी ने जिन बारह निरंजनी महन्तो का निरूपण किया है,

उनमे प्रमुख स्थानीय हरिदासजी महाराज थे तथा शेष एकादश उनके अनुगामी व शिष्यत्व-भावना वाले थे।

महाराज रामदासजी तथा दयालदासजी ने अपनी-अपनी भक्तमाल मे सेवादासजी का भी निरूपण किया है। सेवादासजी हरिदासजी से छठी पीढी मे थे। उनका जन्म सोलह सौ सताणवे तथा अवसान-काल सत्रह सौ अठाणवे, उनके पोता-शिष्य रूपदासजी ने अपनी रचना "सेवादासजी की परचई" मे लिखा है। रामदासजी महाराज का काल १७८३ से १८५४ तक का है व उनका रचना-काल १८१५ से माना जा सकता है। उनके समय मे सेवादासजी की ख्याति भी उसी रूप मे हो चुकी थी जैसे पहिले के साधक महात्माओ की। ये सब अवतरण देने का मेरा यह लक्ष्य है कि इनके प्रकाश मे हम उन मतभेदो पर विचार कर सके, जो भिन्न-भिन्न लेखको ने प्रकट किये है। आगे के प्रकरण मे उन मतभेदो पर ही विचार करना है।

मतभिन्नताएँ और उनकी समीक्षा—

प्रारम्भ में जहाँ जन्म, जाति, स्थान, उपदेश तथा उनके काल पर विचार किया गया है, वहाँ पर परपक्षों का दिग्दर्शन कराते हुए उनके उचित-अनुचित पर संक्षेप मे विवेचन किया गया है। कुछ प्रश्नो पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। अत· इस प्रकरण मे उन-उन मतभिन्नताओ का इसी दृष्टिसे विचार किया जा रहा है—

उत्तरी-भारत की सन्त-परम्परा मे माननीय पं० परशुरामजी चतुर्वेदी ने निरंजनी-सम्प्रदाय के विवेचन मे प्रारम्भ मे जिन सम्भावनाओ का दिग्दर्शन कराया है, उन्ही को क्रमशः लेना संगत है।

प्रश्न १—उडीसा मे प्रचलित निरंजनी-सम्प्रदाय का राजस्थान में स्थापित निरंजनी-सम्प्रदाय से सम्बन्ध—

लेखक—क्षितिमोहन सेन "मिडीवल मिस्टिसिज्म ऑफ इण्डिया" पृ० ७०

आचार्य क्षितिमोहनजी सेन ने पूर्व मे उडीसा में प्रचलित निरंजनी-सम्प्रदाय के राजस्थान मे स्थापित निरंजनी-सम्प्रदाय से सम्बन्ध होने की कल्पना शायद नाम-साम्य के कारण की है। फिर वह सम्भावना के ही रूप में है न कि सिद्धान्त के रूप मे। इस सम्भावना का महाराज हरिदासजी द्वारा स्थापित निरजनी-सम्प्रदाय से कतई किसी तरह का सम्बन्ध नही है। राजस्थान का यह सम्प्रदाय यही स्थापित हुआ तथा इसके प्रवर्त्तक स्वामी श्री हरिदासजी महाराज ही हैं। इसमे विशेष ननु-नच को स्थान नही है।

चान्द्रायण

साषी भाग

प्रश्न २—इसी विषय के प्रतिपादन मे आचार्य हजारीप्रसादजी द्वारा लिखित 'कबीर' का उद्धरण दिया गया है। उनने व्यक्त किया है कि उडीसा के निरजनी-पंथ के प्रवर्त्तक भगवान् निरंजन माने गये है। पर उनके काल, रचना व सिद्धान्तों का कोई रूप सामने नही है। अत. पूर्व और पश्चिम के इन दो पन्थो के कब और कैसे सम्बन्ध स्थापित हुए—यह स्पष्ट नही कहा जा सकता। उक्त उद्धरण से उपर्युक्त तथ्य का ही पोषण होता है कि राजस्थान का यह निरंजनी सम्प्रदाय किसी अन्य निरंजनी सम्प्रदाय से पोषित नही है।

प्रश्न ३—निरजनी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक क्या जगन (जगन्नाथदासजी) माने जायें ? जैसा कि भक्तमालकार ने लिखा है।

तीसरा प्रश्न है निरजनी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक के सम्बन्ध का और वह इस आधार पर उठाया गया है कि राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल मे चार निर्गुण पंथो के प्रवर्त्तको के नाम दिये है, उनमे नानक, कबीर, दादू, जगन का निर्देश है। भक्तमालकार ने आगे पन्थ-वर्णन की जगह बारह निरंजनी महन्तो का निरूपण किया है। उन बारह मे जगन किसी का नाम नही है। चतुर्वेदीजी ने कल्पना की है कि बारह निरंजनी महन्तो के निरूपण मे सर्वप्रथम "लपट्यो" जगन्नाथदासजी का वर्णन है। ये ही जगन्नाथदासजी 'जगन' नाम से ऊपर लिखे गए है। कल्पना सर्वथा निराधार तो नही है। जगन्नाथ–जगन मे साम्य तो माना जा सकता है पर जगन्नाथ-दासजी के वर्णन मे ऐसा कोई निरूपण नही है, जिससे यह सिद्ध हो कि इन्होने निरंजनी-सम्प्रदाय की स्थापना की। जगन्नाथजी के निरूपण से स्पष्ट होता है कि वे अत्यन्त त्यागी तथा तितिक्षु थे। जहाँ हरिदासजी का निरूपण किया है, वहाँ उनको निर्गुण उपासक तथा निरंजनी कहलाने का उल्लेख है। जैसा कि छप्पय का तृतीय चरण है—

जत सत रहणि कहणी करतूत बड़ौ,
हर ज्यूं क हर हरिदास हरि गायो है।
विरक्त वैरागी अनुरागी लव लागीं रहै,
अरस परस चित चेतन सूँ लायो है ॥
निर्मल निर्वाणी निराकार को उपासवान,
निरगुण उपास कै निरंजनी कहायो है।
राघो कहै राम जपि गगन मगन भयो,
मन वच कर्म करतार यों रिझायो है ॥२८॥

तृतीय चरण के उल्लेख मे स्पष्ट है कि हरिदासजी महाराज के लिए ही निरंजनी विशेषण लगा कर उनको निरंजनी शब्द के साथ उद्‌बोधन किया जाने लगा। इन्ही के विविध परचो (करामातो) का निरूपण किया गया है। डीडवाणा आवास-स्थान इन्ही का था। अत. स्वतः सिद्ध है कि डीडवाणे मे सम्बन्धित निरंजनी पन्थ के प्रवर्त्तक द्वादश निरंजनी महन्तो मे महाराज हरिदासजी ही है। उक्त निरंजनी अपने को "हरिदासोत" भी कहते है—यह कथन भी इस तथ्य का दिग्दर्शक है। राघोदासजी ने बारह महन्तो का जो निरूपण किया है, सभी को वैसे निरंजनी नाम से व्यक्त किया है। अत. नानक, कबीर, दादू, जगन मे जो जगन शब्द है—या तो अन्य किसी महात्मा के लिए प्रयुक्त है, या यह शब्द लेख की अशुद्धि से आया है। यदि जगन निरंजनी-पन्थ प्रवर्त्तक था तो उसका निरूपण नानक, कबीर, दादूजी के पश्चात् आना चाहिए था। जगन यदि जगन्नाथदासजी के लिए प्रयुक्त हुआ है तो उनके वर्णन मे निरञ्जनी-पन्थ का सम्बन्ध जगन्नाथजी से व्यक्त होना चाहिए था। पर भक्तमाल मे नानक, कबीर और दादूजी के वर्णन के पश्चात् निरञ्जनी-पन्थ वर्णन से निरञ्जनी-सम्प्रदाय का निरूपण किया गया है और उस निरूपण मे उन बारह निरञ्जनी-महात्माओ का वर्णन है, न कि जगन का तथा न ही जगन्नाथदासजी का। बारह महन्त-वर्णन मे प्रथम या पहिला नाम जगन्नाथदासजी का है और हरिदासजी का नाम पाँचवे नम्बर मे है—पर जैसा कि मैने ऊपर हरिदासजी के वर्णन का छप्पय दिया है उससे तथा डीडवाणे मे आवास-सम्बन्ध हरिदासजी का है। जगन्नाथदासजी का आवास-स्थान थिरोली लिखा है।

मनहर—थिरोली में जगन्नाथ स्यामदास दत्तवास
कान्हड़ जू चाड़सू में नीके हरि ध्याये हैं।
आनदास लिवाली मोहनदास देवपुर
सेरपुर तुरसी जू वांणी नीकी ल्याये हैं॥
पूरण भंभोरे रहे षेमदास सिवहाड़
टोडा मध नाथजू परम पद पाये हैं॥
ध्यानदास म्हार भये डीडवाणे हरिदास
दास जगजीवण सू भादवे लुभाये हैं॥१॥

उक्त छन्द मे बारह निरञ्जनी-महन्तो या महात्माओं के निवास-स्थानों का विवरण दिया है। इसमें डीडवाणे मे रहने का उल्लेख हरिदासजी ही का है। बारह महन्तों के निरूपण में हरिदासजी को छोडकर और किन्ही की करामातों का दिग्दर्शन

नही कराया है। उनकी अपनी-अपनी विशेषता का दिग्दर्शन है। हरिदासजी का निरूपण है वही—यह विवरण दिया है—

प्रथम पीपली प्रसिद्ध सिला नागौर विशेषो।
नयो गयंद अजमेर फुनिग टोडे पण पेषो॥
गिरि सूँ गागर गिरी नीर राख्यो घट सारो।
देवी को सिष करी ज्यायो त्रिष पित्र उधारो॥
सिंहपरचौ आमेर राव राजा सब जाँणे।
अपंग विप्र पथ चल्यो साह सुत जियो सिंघाणे॥
सिर पर कर प्रयागदास को गोरषनाथ को मत लियो॥
जन हरिदास निरंजनी ठौर ठौर परचो दियो॥२६॥

उक्त करामातो के दिग्दर्शन से हरिदासजी सिद्ध पुरुष थे—यह व्यक्त होता है। इस पद्य मे भी हरिदासजी के साथ निरञ्जनी शब्द का प्रयोग हुआ है। निरञ्जनी-पंथ का प्रमुख-स्थान भी डीडवाणा ही है। अतः करामाती सिद्ध पुरुष हरिदासजी से ही नरञ्जनी-सम्प्रदाय चला इसमे न किसी तरह के संशय को स्थान हे और न किसी प्रमाण की आवश्यकता है। "जगन" शब्द के प्रयोग के विषय मे जैसा मैंने ऊपर लिखा है कि वह लेखन की न्यूनता-मात्र है।

४—हरिदासजी, दादूजी के शिष्य—प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य थे।

चौथा प्रश्न है हरिदासजी किसके शिष्य थे? भक्तमालकार के परचो के निरूपण करने वाले छप्पय मे "सिर पर कर प्रयागदास को" इस चरण मे प्रयागदासजी का कर सिर पर रखने का उल्लेख है। इसी के आधार से तथा प्रयागदासजी के शिष्य-नामों मे हरिदासजी का नाम किसी पत्र मे लिखा होने से पुरोहितजी ने हरिदासजी को प्रयागदासजी का शिष्य होना लिखा है। पर उसकी पूर्वापर संगति का उनने कोई उल्लेख नही किया। प्रयागदासजी के आठ-दस शिष्यो मे एक नाम हरिदासजी भी है, उसका यह अर्थ कदापि नही हो सकता कि वे ये ही हरिदासजी थे। नामसाम्य तो हमे सैंकडो-हजारो जगह मिलता है। नामसाम्य से यह नही सिद्ध होता कि अमुक नाम वाला व्यक्ति यही है। महाराज दादूजी के एक सौ बावन शिष्यों मे भी कई एक के नाम हरिदासजी आये है। प्रहलाददासजी के शिष्य भी हरिदासजी थे। मतलब, केवल नामसाम्य व नामोल्लेख से हरिदासजी दादूजी महाराज के शिष्य प्रयागदासजी के शिष्य नही हो सकते। दूसरे, हमने पीछे वखनाजी, जग्गाजी, खेमजी व चैनजी के उद्धरण दिये है। उनने अपने उद्धरणो में हरिदासजी

का उल्लेख किया है। उनका काल सत्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। वखनाजी तथा चैनजी की रचना सम्वत् १६८५ मे पहिले की है। पुरोहितजी ने हरिदासजी का दीक्षा-काल १६५६ लिखा है। साथ ही उनने लिखा है कि प्रयागदासजी के शिष्यत्व का परित्याग कर ये कबीर-पथी हुए, फिर नाथो से दीक्षित। मतलब, इस शृङ्खला से दो-दो, चार-चार वर्ष का अन्तर भी माने तो उनका नाथो से सम्बन्ध १६६५ से बाद का सिद्ध होता है। पुरोहितजी ने इनका मृत्युकाल भी १६७० लिख दिया है। उधर वखनाजी व चैनजी की रचनाओ मे नानक, कबीर, नामदेव, रैदास आदि महात्माओ के साथ इनका उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वखनाजी व चैनजी की रचना से पहिले ही इनका देहावसान ही नही हो गया, इनकी सिद्धियो से प्रसिद्धि भी पर्याप्त हो गई व इनके अनुयायियो की अच्छी सख्या हो गई थी। अतः पुरोहितजी के उक्त निरूपण की संगति युक्तियुक्त नही बैठती। अब भक्तमाल-कार के "सिर पर कर प्रयागदास का" क्या अभिप्राय समझा जाय ? इसकी महत्ता तो इससे जुडे हुए आगे के पद से व्यर्थ हो जाती है—जिसमे लिखा है कि "गोरखनाथ को मत लियो" शिष्यत्व जब प्रयागदासजी का था, तब गोरखनाथजी का मत अप-नाने का क्या अर्थ है ? भक्तमालकार के हमने पीछे जो उद्धरण दिये है वहा उनके एक पदभाग का उद्धरण है जो राग सीधू कडपै पद का है। इस पद मे एक युद्ध के रूपक का निरूपण है—आध्यात्मिक अभ्यासी महात्माओ ने किस तरह काम, क्रोधादि शत्रुओ तथा जागतिक-प्रलोभनो से त्याग-वैराग्य की दृढता द्वारा टक्कर ली तथा कैसे उनने जन्म-मृत्यु रूप काल से विजय पाई। इस पद मे बारह चरण है। इसमे प्राचीन ध्रुव-प्रह्लादादि-भक्तो के निरूपण के साथ रामानन्दजी से लेकर आधुनिक महात्माओ का निरूपण किया है। उसमे सातवाँ चरण इस तरह है—

दादूदास हरिदास रु नानग , ये ग्यानी ओघाट हिये ॥
काम क्रोध मद मोह मछर , मार तड़ातड़ गद किये ॥७॥

इससे अधिक और क्या स्पष्ट होगा कि राघोदासजी ने यहा हरिदासजी को नानक, दादूजी, कबीरजी आदि के समान ही स्मरण किया है। यहां यह शंका की जा सकती है कि ये हरिदासजी और कोई महात्मा होगे। इसका प्रत्युत्तर है कि राजस्थान में ही नही, राजस्थान से बाहर भी ऐसा कोई और "हरिदासजी" महात्मा प्रख्यात नही है जिसके नाम पर पन्थ या सम्प्रदाय चला हो। यहाँ हमे सुन्दरदासजी की गुरुवन्दनाष्टक मे लिखी हुई उस उक्ति पर ध्यान देना चाहिए जो इस रूप मे लिखी हुई है—

"कोई कहे हरिदास हमारे जु यों सब ठानत वाद-विवादू।"

यहाँ विविध पन्थो के निरूपण का प्रसङ्ग है। इसीमे उक्त पंक्ति द्वारा निरंजनी-पन्थ व उनके प्रवर्त्तक का निर्देश है, अत बखनाजी, जग्गाजी, खेमजी, चैनजी ने अपनी-अपनी रचनाओ मे हरिदासजी का उल्लेख किया है। वे यही हरिदासजी है, इसमे अन्य विकल्प को कोई स्थान नही है। राजस्थान मे यही सिद्ध महात्मा हरिदासजी हुए है जिनके पश्चात् निरंजनी सम्प्रदाय चला। स्वय राघोदासजी ने ही अपनी भक्तमाल मे उक्त पन्थ का निरूपण किया है जिसमे निरंजनी विशेषण व कई चमत्कारी सिद्धियाँ प्रदर्शित करने वाले यही हरिदासजी है। प्रयागदासजी का कर सिर पर रखने वाले वाक्य का स्वत ही अन्य उद्धरणो से महत्व नही रहता, न वह युक्ति पर ठीक उतरता है। सम्भव है ऐसा उल्लेख कुछ साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किया गया हो। क्योकि राजस्थान मे सन्त-परम्परा मे "दादूपंथी और निरंजनी ही प्राचीन है।

इसी प्रसङ्ग मे उस मत पर भी विचार करना सङ्गत है जो कि स्वामी पूर्णदासजी नवलगढ परचई-लेखक स्वामी जानकीदासजी बालोतरा-निवासी ने अपने निर्मित हरिपुरुषजी के जीवन-चरित्र मे व्यक्त किया है। इन दोनो ने हरिदासजी को पयहारी कृष्णदासजी के शिष्य अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी से दीक्षा लेने का उल्लेख किया है। अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी का काल सम्वत् १६५० से पीछे आता है। यदि इन्ही से हरिदासजी ने दीक्षा ली है तो उनका दीक्षाकाल सोलह सौ साठ-सत्तर के बीच आता है। दीक्षा मे तिलक-माला-कण्ठी लेने तथा सगुणोपासना अपनाना अनिवार्य था। क्योकि वैष्णव-सम्प्रदाये सभी सगुणोपासक ही है और उनने भक्तिमार्ग पर ही बल दिया है। हरिदासजी ने यदि इनसे दीक्षा ली होती तो वे निर्गुण उपासक नही होने चाहिए थे। पर वे परम निर्गुण उपासक थे। उनने तिलक-माला-कण्ठी-मूर्ति आदि का तीव्रता से खण्डन किया है। इस स्थिति मे हरिदासजी ने वैष्णव-मत मे दीक्षा ली—यह कैसे संगत-माना जाय ? दूसरे, काल का मेल भी नही बैठता। हरिदासजी अग्रदासजी के काल से पहिले ही ब्रह्मलीन हो गए थे। फिर पूर्णदासजी तथा जानकीदासजी ने ऐसा क्यो उल्लेख किया ? हम इस पर सक्षेप मे इनके प्रमाणरूप उद्धरणो को जहाँ पहिले स्थान दिया है, वही विवेचन कर आये है। यहाँ थोडा और विस्तार से विचार किया जाता है—

मेरे विचार से हरिदासजी के पश्चात् खेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी व अमरपुरुषजी इन छः महापुरुषो की परम्परा तक निरंजनी सम्प्रदाय निर्गुण उपासक ही रहा। यह काल सत्रहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध तक आता है। इसके पश्चात् मन्दिर, बगीची आदि स्थान अपनाने से मूर्तिपूजा का प्रारम्भ हुआ, साथ ही फिर तिलक-माला-कण्ठी-जनेऊ आदि अपनाये गए। इस परिवर्तित स्थिति को प्राचीनता से मिलाने के विचार से ही उक्त

दोनो लेखकों ने वैष्णव-सम्प्रदाय से सम्बन्ध जोड प्रयागदासजी से दीक्षा लेने का उल्लेख किया। उधर हरिदासजी आमेर मे पहुँचे, तब वे अपनी साधना से सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। सिंह का परचा आमेर ही का है। कालसाम्य का अभाव, वाणी मे प्रबलता से निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन तथा तिलक-माला-कण्ठी, मूर्ति आदि के खडन से सिद्ध हो जाता है कि पूर्णदासजी व जानकीदासजी का वैष्णव-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने का उल्लेख काल्पनिक व निराधार है। उसकी कोई युक्तिसङ्गत प्रामाणिकता नही है। सारांश–हरिदासजी महाराज ने न तो प्रयागदासजी दादूजी महाराज के शिष्य से, न ही अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी से दीक्षा ली। वे आरम्भ से ही गोरखनाथजी से या उनकी परम्परा के किन्ही सिद्ध नाथ-महात्मा से दीक्षित हुए–यही संगत है।

जाति-सम्बन्धी मतभेद, जो "दविस्तानुलमुजाहिब" के लेखक ने व्यक्त किया है, इसका संक्षेप मे हम प्रारम्भ मे निराकरण कर आये है। अत· पुन उस पर और कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नही है।

रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य आशारामजी दाधीच ने भी अपने द्वारा रचित जीवन-चरित्र मे "हरिदासजी" के उपदेष्टा विप्ररूपधारी परमेश्वर को बताया है। जैसे एक विशेष परिस्थिति से प्रेरित हो पूर्णदासजी तथा जानकीदासजी ने वैष्णव-महात्मा से उपदेश दिलाने का उल्लेख किया है, उसी तरह यह आशारामजी की कल्पना है। हरिदासजी के उपदेशक दादूजी के शिष्य प्रयागदासजी थे या अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी थे या विप्ररूपधारी परमात्मा थे—इस सबका औचित्य स्वयं महाराज हरिदासजी ने ही निरस्त कर दिया है। जबकि वे अपनी वाणी मे स्पष्ट उल्लेख करते है—

गुरु हमारे गोरष बोलिये, पाडा हमारी चेली ॥
सत का शब्द सहज घर खेलूँ, इहिं विधि दुरमति पेली ॥३॥

× × × गुरुदेव का अंग

मांई मूँडूँ सिद्ध की, भजूँ निरंजन नाथ ॥
हरिदास जन यूँ कहै, सिर गोरष का हाथ ॥५॥

× × × गुरुदेव का अंग

जन हरिदास नाथ का बालक, रहे नाथ की छाया ॥
पूर्ण ब्रह्म परम सुषदाता, निरभै निरंजन राया ॥६॥

× × × गुरुदेव का अंग

"घट में गोरष ज्ञान विचार"

× × × ज्ञान-उपदेश जोग-ग्रन्थ

पिंड ब्रह्मण्ड में दोय सिध, ज्ञान अरु गोरष लहिए ॥
जन हरिदास भ्रम छाँड़ि, ज्ञान गोरष तहाँ रहिए ॥

× × × ज्ञान-उपदेश जोग-ग्रन्थ

गोरष भवण गवण करि जीवे, सुख में सींगी बाजै ॥

× × ×

अवधू ऐसा ज्ञान विचारा ?
ज्यौ में अलख अकल अविनाशी, सुरति सु यह मति जागी ॥
गोरष गोपी परसि पर निरभै, अनहद सींगी बाजी ॥

× × ×

जग सोवे गोरष जन जागे, ऐसा परम निधानी ॥

× × ×

सूता गोरष लिया जगाय, जन हरिदास ताकी बल जाय ॥

× × ×

जाणैं जोग भोग नहिं जाणैं, नाथ इसी विधि खेलै ॥
जन हरिदास गोरष सत सन्मुख, अमी महारस भेलै ॥

यह कुछ पंक्तियाँ महाराज हरिदासजी की वाणी से उद्धृत की गई है। इनसे सिद्ध हो जाता है कि हरिदासजी महाराज गोरखनाथजी या उनके किन्ही योग्यतम अनुयायी से दीक्षित हुए थे। विकल्प में इस विचार से लिख रहा हूँ कि गोरखनाथजी के काल का समन्वय हरिदासजी से बैठता है या नही—यह अभी संदिग्ध है। वैसे तो गोरखनाथजी अजर-अमर भी माने जाते है।

स्वयं हरिदासजी की वाणी की रचना भी यह सिद्ध करती है कि उनने वाणी की रचना मे भी नाथ-वाणियों का अनुगमन किया है। उनने आरम्भ से लघु-ग्रन्थों की रचना की है। उन सबके आमुख मे प्रकरण नाम दिये गए है। वे सब नाम माला जोगग्रन्थ, ज्ञान-उपदेश-जोगग्रन्थ इस तरह दिये गए है। सभी के अन्त में

जोगग्रन्थ अवश्य दिया गया है। इनमे से कई ग्रन्थों की रचना भी नाथ-वाणियो के सदृश है।

जैसे—प्राणमात्रा जोगग्रन्थ है—

रहता सो भाई बहता सो वहणा,
अवधू उलटा गोता मार आकास में रहणा।
अरथ की अन्ध्यारि मिथ्या न भाखवा,
निरंजन मात्रा जतन सू राखवा॥

मनचरित्र जोगग्रन्थ—

प्र०—स्वामीजी कौंण अंधारा कौंण उजास,
कौंण अस्थान निज करण प्रकाश।
कौंण अस्थान मन रहे समाय,
कौंण अस्थान मन भूखा जाय॥

उ०—अवधू त्रिविध अंधारा ज्ञान उजास,
नाभि कँवल निज किरण प्रकाश।
ता अस्थान मन रहे समाय,
इन्द्रिय अस्थान मन भूखा जाय॥

सूर-समाधि जोगग्रन्थ—

साग धक धूणि भुज मुख हाथ फेरताँ।
आज के द्योस की बाट नित हेरताँ॥
कोट दौड़े बुरज दुसमणां दलां खेरताँ।
भौमि वापे तणो देखिजे फेरतां॥
जेर जोगी मरद आपणी जेरताँ।
जन हरिदास साहिब सन्मुख सही सूर तिण वेर का।
सूर समाधि अगाध व्रत जन हरिदास मन मांहि।
पैला न भाजै भला आपण भाजि न जाहिं॥६॥

अन्य महात्माओं की वाणियो मे इस तरह जोगग्रन्थ नही मिलेगे, न ही इस प्रकार की रचना मिलेगी। इन रचनाओ मे नाथ-वाणियो का आदर्श स्पष्ट है। तीसरा एक व्यावहारिक आधार भी है। वह है डीडवाणे मे जोगामंढी नाम से नाथो का स्थान। जिसकी महत्ता को निरंजनी सम्प्रदाय ने सैकडो वर्षो तक मान्यता दी।

डीडवाणे मे जहाँ महाराज हरिदासजी (हरिपुरुषजी) का समाधि-स्थान है, वहाँ वसन्त-पंचमी से सायकाल धमाल-फाग-होरी आदि का गायन आरम्भ हो जाता है, जो कि फाल्गुन सुदी ६ तक बराबर चलता है। पहिले बहुत से महात्मा वसन्त-पंचमी को डीडवाणे पहुचते थे और वे वहाँ महाराज हरिदासजी की निधन-तिथि (फाल्गुन सुदी ६) तक धमाल-होरी-फाग, सत्संग, भजनो का आनन्द लेते थे। मेरी बाल्यावस्था तक इस धमाल के प्रारम्भ करने से पहिले, वसन्त-पचमी को समागत तथा आगत साधु प्रात. जोगामढी जाते थे तथा वहाँ नारियल भेट करते थे, अबीर-गुलाल चढाते तथा वही धमाल का आरम्भ करते थे। यह क्रम हरिदासजी महाराज के ब्रह्मलीन होने से लेकर बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध -भाग तक चलता रहा है। इस व्यावहारिक रिवाज से सिद्ध होता है कि हरिदासजी महाराज को जिन नाथ महात्मा ने या गोरखनाथजी ने उपदेश दिया था। उनके आवास का सम्बन्ध इस जोगामढी स्थान से है। यह स्थान पर्याप्त प्राचीन है। इस तरह स्वय हरिदासजी महाराज के कथन, वाणी की रचना तथा व्यावहारिक-पद्धति का प्रचलन–ये इतने सुस्पष्ट प्रमाण है कि इनके पश्चात् हरिदासजी के गुरु कौन थे ? उनने किससे दीक्षा ली ? इस विषय मे किसी तरह की शंका-समाधान की आवश्यकता नही रहती। हरिदासजी के उपदेष्टा नाथ थे—यह सिद्धान्त युक्तियुक्त व सप्रमाण सिद्ध है।

स्वामी हरिदासजी का काल—

अब हम काल-सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करते है। हरिदासजी का काल कबसे कब तक का माना जाय–यह प्रश्न विवादग्रस्त है। इसमे जो-जो विरोधाभास है, उनको प्रमाण व युक्ति की कसौटी पर परख कर निश्चय करना है। काल के बारे मे किन-किन का क्या अभिमत है तथा उस अभिमत का आधार क्या है—इसको भी सम्यक् परखने की :आवश्यकता है। वैसे हरिदासजी के कुछ जीवन-चरित्र लिखने वालो ने तो उनका जन्म-काल सम्वत् १४७५ तथा निधन-काल सम्वत् १५९५ लिखा है। पुराने परचई-लेखको मे केवल रघुनाथदासजी ने काल का उल्लेख किया है। वह इस रूप मे है—चवालीस वर्ष घर मे रहते हुए गृहस्थ-जीवन बिताया। पश्चात् चवालीस वर्ष भजन-तप-साधना-सिद्धि व भ्रमण मे बिताए। इनने मृत्युकाल सम्वत् १६०० फाल्गुन शुक्ला ६ लिखा है। इनके विचारानुसार अठ्यासी वर्ष हरिपुरुषजी ने शरीर रखा। इस विधि से उनका जन्म-काल १५१२ आता है। हरिरामजी तथा प्यारेरामजी ने काल का कोई उल्लेख नही किया है।

मन्त्रराज-प्रभाकर के लेखक, परचई-लेखक पूर्णदासजी, रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य ग्राशारामजी दाधीच तथा जानकीदासजी ने सम्वत् १४७५ मे जन्म तथा १५९५ मे ब्रह्मलीन होना लिखा है। 'जोधपुर की हिस्ट्री' मे सम्वत् सोलह सौ से निरञ्जनी सम्प्रदाय का प्रारम्भ लिखा है। पचोली - वंशीलालजी जिनका वंश-परम्परागत मारवाड राज्य से प्रशासनिक सम्बन्ध है तथा उनको मारवाड राज्य द्वारा दी गई निरंजनी सम्प्रदाय की सनदो की विशेष जानकारी है, उनका मत भी यही है कि हरिपुरुषजी का देहावसान सोलह सौ से पहिले हो गया। एक प्राचीन पत्र स्वामी सम्पतरामजी की पुस्तको मे था। उसमे कबीरजी ग्रादि कई महात्माग्रो के जन्म-काल व निधन-काल के ज्ञापक-दोहे लिखे हुए है, उसमे भी महाराज का काल वही चौदह सौ पिचहत्तर व पन्द्रह सौ पचाणवे लिखा है। उपर्युक्त सभी लेखक मानते है कि हरिपुरुषजी की ग्रायु एक सौ बीस वर्ष की रही। परचई-लेखक रघुनाथ-दासजी के ग्रनुसार ग्रायु ग्रठहत्तर वर्ष की रही।

"दविस्तानुलमुजाहिब" के लेखक ने हरिपुरुषजी का निधन-काल सम्वत् १७०२ लिखा है। जोधपुर से वाणी का प्रकाशन हुग्रा है, उसमे लिखे गए जीवन-चरित्र मे भी सम्वत् १७०० निधन-काल लिखा है। हिन्दी-साहित्यकारो का उल्लेख हम पीछे कर ग्राए है, उनने इनके काल के सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है। उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा के लेखक माननीय श्री परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए, एल-एल. बी ने उनके काल के बारे मे प्राप्त सभी मतो का उल्लेख किया है। पर उनने निश्चित कोई मत इस विषय मे व्यक्त नही किया। उनने गुलेरीजी, पुरोहित हरिनारायणजी ग्रादि के मतो का उल्लेख किया, पर स्वयं हरिदासजी महाराज की छै चकवै वाली साखी मे ग्रकबर के नाम का उल्लेख देखकर उनका विचार किसी एक मत पर टिका नही। चन्द्रधरजी गुलेरी एम ए. के नागरी-प्रचारिणी पत्रिका मे लिखे गये लेख मे, जो कि सम्वत् १९७७ के ग्रङ्क मे निकला है—उनने उसमे हरिदासजी का रचना-काल सम्वत् १५२० से १५९७ तक का माना है। पुरोहित हरिनारायणजी ने "सुन्दर-ग्रन्थावली" की भूमिका मे सम्वत् १६५६ दीक्षाग्रहण-काल व सम्वत् १६७० इनका ग्रवसान-काल लिखा है।

काल-निर्णय मे विशेष बाधक श्री हरिपुरुषजी की वह साखी है, जिसमे छ चक्रवर्त्तियों का उल्लेख किया गया है।

छै चकवै मुचकंद कहाँ, कहाँ विक्रम कहाँ भोज ॥
सामंत पृथ्वी चौहाण कहाँ, कहाँ ग्रकबर नोरोज ॥

—हरिदास वाणी
भ्रमविध्वंस जोगग्रन्थ

उत्तरखंड समाप्त

उपर्युक्त मत-मतान्तरो से हमारे सामने चार मत ऐसे आते है जो १६७०, १७००, १७०२ और १६५० से १६७०–७५ तक आता है। इन चारो मतो पर क्रमशः विचार करना उपयुक्त रहेगा।

सम्वत् १६७० अवसान-काल हरिपुरुषजी का था–यह अभिमत पुरोहित हरिनारायणजी बी. ए. जयपुर का है। उनके इस मत का समर्थक है–एक प्राचीन पत्र की नकल जिसमे प्रयागदासजी के शिष्यो का विवरण दिया है। उसमे हरिदासजी निरंजनी का भी उल्लेख है। अवश्य प्रयागदासजी के आठ-दस शिष्यो मे हरिदासजी भी एक शिष्य थे और सम्भव है उनका देहावसान भी सोलह सौ सत्तर मे हुआ हो। मेरी बाल्यावस्था मे मैने पुराने महात्माओ से सुना था कि बडे भंडार के क्षेत्र मे दादू-पन्थियो के कोई स्मारकस्थान है। सम्भव है प्रयागदासजी के किन्ही शिष्यो के स्मृतिरूप कोई चबूतरी या छत्री हो। पर प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य हरिदासजी थे, वे ये ही निरंजनी-सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक हरिदासजी थे—ऐसा युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। क्योकि प्रयागदासजी के समकक्ष दादूजी के शिष्य वखनाजी, जग्गाजी व सुन्दरदासजी ने अपनी रचनाओ मे हरिदासजी महाराज का समादर के साथ नानक, कबीर, नामदेव, रैदास आदि महात्माओं के समकक्ष-कोटि मे स्मरण किया है। सन्तो के परिचयात्मक साहित्य मे नाभादासजी की भक्तमाल के पश्चात् राघोदासजी की भक्तमाल का स्थान है। राघोदासजी ने सगुण चार सम्प्रदाय के भक्तो का निरूपण करने के पश्चात् नानक, कबीर, दादू तथा निरञ्जनी सम्प्रदाय का निर्गुण उपासकों मे निरूपण किया है। यदि हरिदासजी प्रयागदासजी के ही शिष्य थे तो फिर निरञ्जनी सम्प्रदाय का दादू-पन्थी सम्प्रदाय से भिन्न अस्तित्व ही कहाँ से आया और निरञ्जनी हरिदासजी का निरूपण क्यो किया गया ? इसके समाधान मे पुरोहितजी ने लिखा है कि सम्वत् १६५६ मे हरिदासजी ने प्रयागदासजी से दीक्षा ली। बाद मे वे नाथो के अनुयायी बन गये और १६७० मे उनका देहावसान हो गया। जैसा पीछे मैने शिष्यत्व के प्रश्न पर विचार करते हुए स्वयं हरिदासजी के ही वे उद्धरण दिये है जिनमे उनने गोरखनाथजी से ज्ञान ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख किया है। ईश्वर-चितन मे लगने वाले मरात्माओ की वृत्ति ऐसी उच्छृङ्खल नही होती कि वे तीसरे दिन गुरु बदलते रहे। सभी महात्माओ ने अपमे उपास्य ईश्वर से भी अधिक गुरु को महत्व दिया है। अत· हहिदासजी वस्तुतः प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य होते तो वे अपने को गोरखनाथ से ज्ञान लेने का कदापि उल्लेख नही करते। यहाँ यही मानना होगा कि पुरोहितजी ने नामसाम्य के कारण ही हरिदासजी को प्रयागदासजी का शिष्य लिख दिया है। उनने उन उल्लेखो पर ध्यान नही दिया जो जग्गाजी, वखनाजी, सुन्दरदासजी, रज्जब शिष्य खेमजी, जनगोपाल-शिष्य चैनजी तथा भक्तमाल-रचनाकार राघोदासजी ने अपनी-अपनी कृतियो मे किया है। यहाँ उन उद्धरणों को पुनः देने की आवश्यकता नही। वे सब पीछे तत्-तत् प्रसङ्ग मे उद्धृत है।

दूसरे दो मत है–"दबिस्तानुलमजाहिब" व जोधपुर से प्रकाशित वाणी मे जीवन-चरित्र देने वाले साधु देवादासजी का। मजाहिब लेखक ने सम्वत् १७०२ हरिदासजी का अवसान-काल लिखा है, जन्म-काल लिखा नही। जोधपुर से प्रकाशित वाणी मे जीवन-चरित्र मे–जन्म सोलहवी शताब्दी तथा अवसान-काल सम्वत् १७०० फा० शु० ६ लिखा है। दोनो ही लेखको ने किस आधार से यह काल लिखा है उसका कोई विवेचन नही है। देवादासजी ने तो स्वीकार भी किया है कि जीवन-चरित्र की प्रामाणिक सामग्री है नही, जो कुछ सुना है उसी के आधार पर लिखा जाता है। केवल श्रुत आधार की काल के बारे मे विशेष प्रामाणिकता नही मानी जा सकती। जबकि उसके विरुद्ध पडने वाले प्रमाण अधिक सहेतुक हो। जिन उपपत्तियो से पुरोहितजी के कालोल्लेख का समन्वय नही बैठता, तब उनके लिखे काल से भी ३०-३२ वर्ष और आगे के काल की संगति का उन प्रमाणो से कैसे मेल बैठ सकता है? अतः इन तीनो कालो के विषय मे यही कहा जा सकता है कि इनका औचित्य अन्य प्राप्त प्रमाणो से संगत नही है।

अब हम छै चकवै वाली साखी पर आते है। वह साखी स्वयं हरिदासजी की है। प्रकरण है भ्रमविध्वंस का। उसमे निरूपण किया गया है कि बडे-बड़े सामन्त, महान् योद्धा व विपुल धन-सम्पत्ति वाले सम्राट् सब समाप्त हो गये। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कंस, शिशुपाल, पाण्डव और कौरवो की असारता व्यक्त करते हुए ही अन्त मे यह साखी आती है। इस साखी के पूर्वार्द्ध मे मुचकुन्द, विक्रम, भोज का उल्लेख आता है। उत्तरार्द्ध मे पृथ्वीराज, अकबर व नोरोज का उल्लेख है। नोरोज अकबर का विशेषण नही है–ऐसा हो तो फिर छः चक्रवर्त्ती न रहकर पाँच ही रह जायँ। अत. अकबर तथा नोरोज को दो भिन्न-भिन्न सम्राट् मानने चाहिए। मेरे विचार से यहाँ अकबर का जो उल्लेख है, वह मुगल सम्राट् न होकर कोई अन्य अकबर होना चाहिए। क्योकि यदि मुगल सम्राट् अकबर ही इस उल्लेख मे माना जाय तो फिर हरिदासजी का अवसान सत्रह सौ के करीब ही आता है। कारण, अकबर का अवसान सम्वत् १६६४ मे हुआ। हरिदासजी ने अपनी रचना मे उसके मरने से पहिले–जीवन-काल मे ही उसका उल्लेख अपनी वाणी मे किया हो तो भी सम्वत् सोलह सौ पचास से पहिले का यह उल्लेख नही माना जा सकता। स्वामीजी की रचना जब सोलह सौ पचास के आस-पास ठहरती है तो फिर उनका निधन भी सोलह सौ सत्तर-अस्सी के करीब आता है। ऐसा मानने से फिर जिन-जिन महात्माओं नें, जिनका कि काल सोलह सौ चालीस से नब्बे तक का है। बखनाजी, जग्गाजी, चैनजी व खेमजी ने अपनी-अपनी रचनाओ मे हरिदासजी को नानक, कबीर, रैदास के साथ स्मरण किया है—वह असंगत है या समसामयिक मानकर उनका उल्लेख किया है। उनने जो उल्लेख अपनी रचनाओं मे किया है वह समसामयिक मानकर नही किया, क्योकि समसामयिक स्थिति मे न तो सम्प्रदाय ही का कोई स्वरूप माना

जा सकता है, न उनका ही। अत. उक्त रचनाकारो ने हरिदासजी का उल्लेख उनके निधन के पश्चात् तथा उनकी सम्प्रदाय बन जाने पर ही किया है—यह युक्तियुक्त पक्ष है। हरिदासजी की छठी पीढी मे महात्मा सेवादासजी हुए है, जिनकी परचई पोता-शिष्य रूपदासजी ने लिखी है। उनने सेवादासजी का जन्म-काल इस तरह लिखा है—

सोलह सौ सताणवें, चैत सुदि नौमी दिन ॥
ता दिन बाजे बाजिये, प्रगटै सेवा जन ॥
ईश्वरकला अवतार जन, राजगुरु घर संत ॥
रूपदास जन का कहूँ, महिमा बहोत अनंत ॥
नवव्याकरण भागवत पढ़ि, पायो सतगुरु ज्ञान ॥
महा विरक्त वैराग होय, धार्यो निरगुण ध्यान ॥
सतरा सो अठाणवे, वद पड़वा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधाइया, कियो ब्रह्म में वास ॥४॥

रूपदासजी की परचई की उक्त चार साखियोसे सेवादासजी का निश्चित काल-ज्ञान होता है—सोलह सौ सताणवे उनका जन्म-काल, सत्रह सौ ग्यारह दीक्षा-काल व सत्रह सौ अठाणवे अवसानकाल। यदि हरिदासजी का ही हम सोलह सौ सत्तर-अस्सी तक रहना माने तो फिर क्या खेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी ये सब चार पीढियाँ दस वर्ष मे ही समाप्त हो गई। इन चारो के निधनकाल निम्न रूप से भाट की बही मे दर्ज है। खेमजी संवत् १६१२ जेठ सुदी ६, चत्रदासजी सवत् १६६४ वैशाख बदी ११, पोकरदासजी का देहावसान संवत् १६६६ और दयालदासजी १७४५ मे। दयालदासजी के ही शिष्य सेवादासजी थे। उक्त कालक्रम मे कोई असगति प्रतीत नही होती। अत. यह मानना कि हरिदासजी सोलह सौ सत्तर-अस्सी तक रहे, उक्त कालो से विपरीत पड़ता है। अतएव यही मानना होगा कि छै चकवै की साखी मे उद्धृत अकबर मुगल साम्राज्य वाला न होकर कोई अन्य अकबर होना चाहिए। इसी तरह नौरोज भी कोई और प्राचीन सम्राट होना चाहिए। ऐसा मानने ही से दादूपन्थी लेखकों व निरजनी लेखको के मतो का औचित्य रहता है, अन्यथा सब मतो के उल्लेख असम्बद्ध होते हैं, जिसका कि कोई अकाट्य विरोधी प्रमाण नही है। अब हम कुछ फुटकर रचनाएँ नीचे उद्धृत करते हैं जिनका सम्बन्ध कालक्रम से है—

बालोतरे से प्राप्त—

चौदह सो पिचोहतरे, जन्म लियो हरिदास ।।
सांखल के घर अवतरे, क्षत्रिय वंश निवास ।।
क्षत्रिय वंश निवास, तेजस्वी मूर्ति विराजै ।।
क्षत्रिय सूर न होय, मात को दूध जे लाजै ।।
पीछे गोरखनाथ जी, दीन्हों ज्ञान प्रकाश ।।
चौदह सो पिचहोतरे, जन्म लियो हरिदास ।।१।।
पन्द्रह सो पिचाणवे, कियो जोति में वास ।।
फागण सुदि की षष्ठमी, परम जोति प्रकाश ।।
परम जोति प्रकाश, भेद सब सतगुरु जान्या ।।
अलख निरंजन इष्ट, ताहि का तत्व पिछान्या ।।
बीसा सो वपु राखियो, जन हरिदास निज दास ।।
पन्द्रह सो पिचाणवे, कियो ज्योति में वास ।।२।।

सम्पतरामजी का प्राचीन पाना—

पन्द्रह सौ बारोतरे, फागण सुदी छठ सार ।।
बैराग ग्यान भक्ति कूँ, लियो हरी अवतार ।।
पन्द्रह सै के बारह गये, हरि धारचो अवतार ।।
ज्ञान भक्ति वैराग्य दे, जीव किये भव पार ।।
पन्द्रह से छप्पन समय, वसन्त पंचमी जान ।।
तव हरि गोरष रूप धरि, आय दियो ब्रह्मग्यान ।।
सोलह सैरे सई के, छठि सुदि फागण मास ।।
परम धाम भये प्रापती, नगर डीड हरिदास ।।४।।

कालपोषक दो मुख्य विचार है—पहिला संवत् १४७५ से १५९५। दूसरा संवत् १५१२ से १६००। परचई-लेखको मे सबसे पुराने हरिरामजी है। पर उनने

काल का उल्लेख किया नही । उनके पश्चात् है रघुनाथदासजी । इनने वही काल लिखा है जो प्राचीन पत्र-साखियो मे है। जोधपुर हिस्ट्री का भी यही मत है। चन्द्रधरजी गुलेरी के लेख गत काल का समन्वय भी इसी काल से बैठता है और यही उपयुक्त भी बैठता है । अत. मै उपर्युक्त सब विवरणो के ऊहापोह के पश्चात् इसी पक्ष पर पहुंचता हूँ कि हरिदासजी महाराज का काल सोलहवी शताब्दी ही ठीक है। उनका जन्म-काल पन्द्रह सौ बारह, दीक्षाकाल पन्द्रह सौ छप्पन, निधन-काल संवत् सोलह सौ । जब तक इसके विपरीत कोई अकाट्य सपुष्ट प्रमाण उपस्थित नही होता, तब तक यही काल मानना उचित व संगतिपरक है।

॥ इति परिचयखण्ड ॥

विवेचनात्मक उत्तरखण्ड

भूमिका

१. संक्षिप्त-जीवनी

परिचय-खण्ड मे महाराज श्री हरिपुरुषजी (हरिदासजी) के जीवन का विस्तार मे विश्लेषण आ गया है, पर वह शृङ्खलाबद्ध नही है। इसलिए यहाँ पुनः संक्षिप्त जीवनी का उल्लेख किया जा रहा है।

हरिदासजी का जन्म सम्वत् १५१२ मे हुआ। वे शाखला गोत्र के क्षत्रिय थे। ग्राम कोलिया उस समय शाखला क्षत्रियो की जागीर का प्रमुख स्थान था। कोलिया से उत्तर-पूर्व दो कोस पर कापडोद ग्राम था। यह कापड़ोद ग्राम ही महाराज हरिपुरुषजी की जन्मस्थली है। आज भी यह ग्राम आबाद है। शाखलो के भी कुछ घर अब भी है। प्राचीन समय मे क्षत्रियो का आजीवन भूमि-अधिकार से या लूट-डकैती से चला करता था। हरिसिहजी का बाल-जीवन अन्य बालको की तरह ही व्यतीत हुआ। उनके माता-पिता का नाम ज्ञात नही हुआ है। वयस्क होने पर उनका विवाह हो गया तथा गृहस्थी के पालन के लिए उनने भी डकैती का मार्ग अपनाया। डीडवाणे से कोलिये को आने वाले मार्ग मे जगल मे एक कुआ था, जिसकी संज्ञा पीछे से खोसल्या कुआ हुई, वही उनके लूटने का प्रमुख स्थान था।

कालक्रम से एक दिन एक महात्मा का उधर आने का संयोग हुआ। हरिसिहजी ने उनको भी लूटने के विचार से रोका। महात्मा ने उनको समझाया कि मनुष्य-जन्म पाकर यह पाप-कर्म कर रहे हो—इसका फल कौन भोगेगा ? हरिसिहजी ने कहा कि जो लूट के माल से मेरा कुटुम्ब पेट भरता है, वही इस पाप का फल भोगेगा। महात्मा ने कहा—इसकी जाँच तो करो। तब हरिसिहजी ने महात्मा को एक पेड से बाँध दिया तथा घर आकर कुटुम्बियो से पूछा कि कहो, मै जो यह लूट-डकैती करके नर-हत्या से धन लाता हूँ, उस पाप के भागीदार कौन होगे ? कुटुम्बियो ने उत्तर दिया कि 'जो हत्या-लूट करेगा, वही उस पाप का भागीदार होगा।' इस उत्तर ने हरिदासजी की सहज मानवीय भावना को उद्वेलित किया। वे वापिस लौटते हुए अपने इस कुकर्म पर विचार करने लगे। महात्मा के पास आने तक उनका अन्तर्मन बदल गया। उनको अत्यन्त आत्मग्लानि हुई। महात्मा को खोल, विनयान्वित हो, उनसे क्षमा माँगी तथा अपने कल्याण के लिए मार्गप्रदर्शन की प्रार्थना की।

महात्मा ने आध्यात्मिक-पथ का उपदेश दिया तथा आत्मचिन्तन मे लगने का निर्देश कर अन्तर्धान हो गए। श्रुत-परम्परा मे इन्हे गोरखनाथजी कहा जाता है। उक्त उपदेश प्राप्त हुआ उस समय उनकी अवस्था चवालीस वर्ष की थी—स्त्री-पुत्रादि कुटुम्ब भी था। आपने महात्मा मे उपदेश प्राप्त करते ही अपने शस्त्रादि उसी "खोसल्ये कुए" मे डाल वहाँ से दो-तीन कोस पर पहाडी प्रदेश की सबसे बडी पहाडी 'तीखी डूँगरी' की ओर प्रस्थान कर दिया। उस पहाडी मे पहुचकर ईश्वर-चिन्तन मे लग गए। तीव्र वैराग्य की उत्पत्ति हो गई और वे अनवरत आत्मचिन्तन मे लग गये।

उनका निरन्तर आत्मचिन्तन पर्याप्त समय तक इस डूँगरी पर चला। जब स्थितप्रज्ञ की स्थिति हो गई व चिन्तन का कार्य स्थायी वृत्ति मे सम्यक् स्थान पा गया, तब आप अपनी अनुभूति के अनुसार जन-समुदाय को मार्ग-प्रदर्शन के लिए भ्रमण को निकल पड़े। अनेक स्थानो का भ्रमण कर अन्तिम समय के समीप डीडवाणे मे आये तथा यही सम्वत् सौलह सौ की फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को वे ब्रह्मलीन हो गए। इस तरह आयु का पूर्वार्द्ध सासारिक जीवन मे व्यतीत हुआ और उत्तरार्द्ध आत्मचिन्तन मे लगा। अठ्यासी वर्ष की आयु का उपभोग कर, संसार को शुभ सदेश प्रदान कर वे अपनी विशुद्ध साधनानुभूति के निचोडरूपी "अनुभव वाणी" को हमे प्रदान कर गए जिसके आधार से हम भी आज तक सन्मार्ग प्राप्त कर रहे है। उनका नश्वर शरीर चला गया, पर उनकी अनुभूति आज भी अक्षुण्ण है।

डकैती का कार्य निर्दयता की पराकाष्ठा है। आजीविका के लिए हरिसिहजी ने यह मार्ग अन्धानुकरण से अपनाया था। वे प्रतिदिन खोसल्ये कुए के पास के जगल मे छिपे रहते थे और इन्तजार करते रहते थे इक्के-दुक्के पथिक का। मुसाफिर ही उनका शिकार था और उस शिकार का धन-दौलत थी उनकी आजीविका की पूर्ति का साधन। उनने इस काम को करते समय कभी यह नही सोचा था कि यह काम अच्छा नही है। कुटुम्ब भी प्रसन्न था उनके इस पैदावार के सिलसिले से। मनुष्य मे सत्संस्कार भी दबे रहते है, कदाचित् उनको अंकुरित करने का कोई हेतु आ जाय तो मनुष्य की चालू परिस्थिति मे बहुत बडा अन्तर हो जाता है। हरिसिहजी के जीवन को बदलने का भी एक दिन मौका आ गया। दैवात् उस पथ पर एक दिन एक आत्मजयी महात्मा आ निकले। हरिसिहजी ने नित्यकर्मानुसार उनको भी रोका। महात्मा ने विचारा कि एक मानव किस तरह रास्ता भूल गया है। सर्वोत्कृष्ट मानव शरीर पाकर तथा बुद्धि व विचार की क्षमता रखते हुए भी प्रलोभन तथा अपने उत्तरदायित्व को ठीक से निर्वाह करने का सही मार्ग न पकड पाने से यह हिंसा तथा तस्करकर्म मे ही अपना श्रेय मानने लग गया है। महात्मा का हृदय दयार्द्र होता ही है। उनका ध्येय प्राणिमात्र का कल्याण है। महात्मा ने निश्चय

किया कि इसको इस जघन्य पापकर्म मे हटाना चाहिए। उनने हरिसिंहजी को सम्बोधित कर उनकी अन्तर्निहित सद्भावना को जागृत किया कि हे मानव ! कुलीन क्षत्रिय वंश मे जन्म लेकर तू प्राणिमात्र का रक्षक होने के स्थान पर इस कर्म से भक्षक बन गया है—यह किसलिए ? इस चौरकर्म से धनोपार्जन कर झूठी ममता मे जिस कुटुम्ब को अपना मान उसका पालन-पोषण करता है, क्या वह भी तेरे इस पापकर्म के फलभोग मे तेरा साथी है ? इस प्रश्न पर तुमने कभी विचार किया है। हरिसिंहजी ने तपाक से उत्तर दिया—जिनके भरण-पोषण के लिए ही मैने यह कार्य अपनाया है तथा उन्ही की आरामदारी के लिए मै दिन-रात जो कष्ट उठा रहा हूँ—वे मेरे इस कर्म के फलभोग मे क्या भागीदार नही होगे ? अवश्य ही मेरे वे साथी है। महात्मा ने प्रेरणात्मक-भावना से उनको प्रेरित किया कि तुमने यह मिथ्या विश्वास कैसे अपनाया है ? क्या कभी तुमने अपने कुटुम्ब से इस बात की चर्चा की है ? नही की है तो आज यह परीक्षा तो कर लो कि वस्तुत: तुमने जो धारणा बना रखी है—वह ठीक है या गलत। हरिसिंहजी के मन मे संशय पैदा हुआ कि हमने इसका निर्णय तो कभी नही किया, आज देख तो ले कि कुटुम्ब की भावना क्या है ? वे महात्मा को वही बाँधकर कुटुम्ब के पास गए तथा उक्त प्रश्न किया। कुटुम्बियो ने प्रत्युत्तर दिया कि दुनिया मे क्या कभी ऐसा हुआ है कि करेगा कोई और भरेगा कोई ? हम तो तुम्हारे आश्रित है, तुम चाहे जैसे कमाओ, हमारा भरण-पोषण तुम्हारे जिम्मे है। जिस कार्य से तुम धनोपार्जन करोगे उसका परिणाम तो तुम्ही को भोगना होगा—कर्म मे कोई किसी का भागीदार नही बन सकता। हरिसिंहजी की चिरकाल से प्रसुप्त सद्भावना जागृत हुई। कुटुम्ब की झूठी ममता के बन्धन हिल उठे। वे आत्मग्लानि से सन्तप्त, उन्ही पैरो वापिस लौटकर महात्मा को खोल, उनके चरणो मे नतमस्तक हो प्रार्थना करने लगे कि हे महात्मन् ! मेरा कल्याण कीजिए। मुझे वह सत्पथ बतलाइए, जिस पर चलकर मै इस मानव शरीर द्वारा कल्याण प्राप्त कर सकूँ। महात्मा ने हरिसिंहजी के व्यामोह को विगलित देख उपदेश दिया और सकेत किया कि तेरा कल्याण आत्मचिन्तन मे है। महात्माजी की यही प्रेरणा हरिसिंहजी के गृह-त्याग का कारण बनी। उनने उसी क्षण शस्त्र-पाती कुएँ मे डाल सामने दिखाई देने वाली 'तीखी डूँगरी' का रास्ता लिया। इस तरह महात्मा का मिलन उनका उपदेशहेतु बन हरिसिंहजी के जीवन को आध्यात्मिक-चिन्तन का साधक बना दिया।

२. साधना

कापड़ोद के डकैत हरिसिंहजी अब हरिदासजी हो गए थे। उनने 'तीखी डूँगरी' को अपना चिन्तन-स्थान बनाया। डूँगरी के शिखर पर ही उनने अभ्यास आरम्भ कर दिया। वृक्ष और पहाड़ी के टोले ही उनके चिरसङ्गी बने। दीक्षा-गुरु

गोरखनाथजी थे या कोई आत्मनिष्ठ अन्य नाथ-महात्मा ? उनने साधना का क्या मार्ग बतलाया-यह तो स्पष्ट नही है। पर हरिदासजी महाराज ने साधना के पश्चात् जो अपनी अनुभूत वाणी रची, उसके विविध प्रसङ्गों से पता लग जाता है कि उनने साधनाकाल मे योग और निर्गुण-भक्ति का आधार लिया। चित्तवृत्ति के निरोध के लिए योग के विविध मार्ग है—हठयोग, राजयोग और लययोग। उनने हठयोग की कौन-कौन सी क्रियाये की या अन्य किस योग-मार्ग का अवलम्बन लिया, इस विकल्प मे इतना ही स्पष्ट विदित होता है कि—आसन का अभ्यास तो हुआ ही, प्राणायाम का अभ्यास भी किया गया है। देह और मन के निग्रह मे उक्त दोनो साधन अत्यावश्यक है। आसन से शरीर को काबू मे किया जा सकता है। सामान्यतः शरीर निरन्तर एक रूप मे नही रखा जा सकता। उसके चलने-फिरने, बैठने, सोने आदि के विविध कर्म है, पर आसन का अभ्यास उसके इन विविध कर्मो को एक रूप मे बदल देता है। इसी तरह मन के उत्थान तथा अनेकताओ का सम्बन्ध प्राण से है। प्राण की क्रिया को कुम्भक के अभ्यास से स्थिर किया जा सकता है। जब प्राण स्थिर हो जाते है, तब मनोवृत्ति मे भी स्थिरता आ जाती है। प्राण और देह पर साधक का पूरा अधिकार हो जाने पर साधक को स्वस्वरूप की अनुभूति सहज मे ही हो जाती है। वृत्ति द्वारा विविध विषयोपभोग मे लगी इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो शरीरपिण्ड मे होनेवाली विविधताओ के आनन्द लेने लगती है। साधको की अनुभूति से प्रतीत होता है कि शरीर मे स्थित षट् या अष्ट चक्रो, इडा, पिगला, सुषुम्णा, वंक-नाल, त्रिकुटि, शून्य स्थान, अमृत-निर्भर, अनहद नाद, दिव्य-प्रकाश आदि अनेक आश्चर्यकारक आधार है, जिनकी ओर वृत्ति का प्रवाह मुड जाने पर वृत्ति मे बाह्य संसार के किसी भी पदार्थ की वासना उत्पन्न नही होती। प्राणायाम का महत्व सर्वविदित है, जिसका कि आर्य-सस्कृति मे दैनिक-जीवन मे अनिवार्य उपयोग आव-श्यक माना गया है। प्राणायाम का अभ्यास प्राण के प्रवाह को ठीक रखने का एक-मात्र साधन माना गया है। यदि कोई व्यक्ति नियमत. थोडा सा भी प्राणायाम का साधन अपनाए हुए है तो उसके चमत्कारी फल से वह व्यक्ति अपरिचित नही रह सकता। आध्यात्मिक-साधना मे तो यह अपना विशेष स्थान रखता ही है-समाधि का यह अनिवार्य अंग है। समाधि ही वह अवस्था है, जब वृत्ति का स्वस्वरूप मे विलय होता है और यही वह परमानन्ददायिनी अवस्था है, जिसकी कि सब प्रकार की साधना के निर्देशको ने परम प्रशंसा की है। जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है कि हरिदासजी महाराज की वाणी के प्रसङ्ग मे ही उनकी साधना की कुछ झलक हमारे सामने आ जाती है। जैसा कि उनके निम्न वाक्यो से व्यक्त होता है—

जोगी ज्ञानखड्ग कर धारे, मनसा जीति मनोरथ मारे ॥
आसण छाँड़ि अनत नहिं जाय, ता संगि रमें निरंजन राय ॥

डूगरी

विषय-सूची

पूर्व–खण्ड

उत्तर–खण्ड

★

कापडोद

कापडोदग्राम

विषय विष तजौ भजौ हरिवीर , सुनि मंडल में निरभै नीर ॥
ऊंच नीच सब सूँ सम भाय , मन वच कर्म रहो मन लाय ॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी , जुरा न जन्म भोग नहिं रोगी ॥
खरच्याँ घटे न दीयाँ जाय , सोई वित चित में रह्या समाय ॥

साधक जोगी को क्या करना है ? उसको वासनामय शत्रुओ को जीतने के लिए क्या तैयारी करनी है ? कैसे वह उस अलौकिक धन की प्राप्ति कर सकता है जो न घटता है, न विभाजित होता है ? हरिदासजी कहते है—

वैस निरन्तर अलख जगावे , आसण अमर अगम भर पावे ।
भूखा रहे न धापि न खाय , मनसा चले न पर घरि जाय ॥
ब्रह्म अग्नि में काया दहै , मन चंचल निहचल होय रहै ।
काम क्रोध का भड़े जंजीर , परम सिद्ध जहाँ जाल न कीर ॥
वार पार नहिं अगम अछेह , धरती वरषे अम्बर तेह ।
निर्मल धार अपार अनन्त , ता सुष लाग रहे सव सन्त ॥
निगम अगम गुरुगम मग होय , पवन निर्लेप अम्बर धोय ॥
रमताराम निरंजन राय , राषी वसत साह कूँ खाय ॥
जग में यहै जोग संग्राम , कोई करो आपणां काम ।
ए पासा चोपड़ ए सारी , अबकै जीति जाहू भावे हारि ॥

जोगसंग्राम-ग्रन्थ—८

उपर्युक्त उद्धरण मे व्यक्त किया गया है कि साधक को अपने साधन-काल मे सुस्थिर आसन से रह ज्ञान खड्ग ले काम-क्रोधादि प्रबल रिपुओ को मार, मनसा को वश मे करना चाहिये, तभी वह उस चिरन्तन सुख की उपलब्धि कर सकता है जिस सुख मे अब से पहिले के साधक-सन्त निवास कर रहे है। इस जोगसंग्राम मे सफल होने पर ही साधक का लक्ष्य पूरा हो सकता है—इस साधन को अपनाकर कोई भी साधक अपना काम कर सकता है। इसी से मिलती-जुलती भावना निम्न पदो से व्यक्त होती है—

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरे , जाता मनकूँ उलटा फेरे ।
महादेव का मता पिछाणै , मन दशों दिशा सूँ उलटा आंणे ॥

मनसा देवी सबकूं खावे, हमको मनसा साच बतावे।
हम जोगी जोग जुगति जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे ॥
पवन गोट का पारा बांधे, उलटि सुरति गगन को सांधे।
काम क्रोध का मूल उपारे, गगन मंडल में आसण धारे ॥
अगम पियाला भर भर पीवे, अरूप रूप विचारत जीवे।
हरि सुखसिधु तहाँ भय नाहीं, हरिजन हँस वसे ता मांहि ॥

उक्त उद्धरण भी जोगसग्राम की भावना का ही द्योतन करता है। हरिदासजी ने अपने लिए तथा आध्यात्मिक साधक के लिए दोनों ही स्थानो मे जोगी शब्द का प्रयोग किया है। जोगी से–यहाँ यही अभिप्राय है कि देहस्थित चेतनतत्व को उसके मूलाधार अखण्ड ब्रह्मवाच्य-चेतन से मिलाने की साधना करना। इस पथ के पथिक को पथभ्रष्ट करने वाले षड्रिपुओ मे काम-क्रोध का प्राबल्य माना है। काम से अभिप्रेत विषय की सभी प्रकार की कामना से है, जिसका हम चाह शब्द से भी व्यवहार किया करते है। वैसे काम स्त्री-सभोग के अर्थ मे भी रूढ है, पर यहाँ ज्ञानेन्द्रियो की सभी वासनाओ को लेकर काम शब्द का प्रयोग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी निर्देश किया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥
(गीता अध्याय ३)

भगवत्प्रयुक्त रजोगुणसमुद्भव काम शब्द की नीलकण्ठी टीकाकार ने इसी भाव को व्यक्त करने वाली व्याख्या की है। वे कहते है—

काम एष इति। एष प्रसिद्ध काम "सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीय" इति श्रुतेरिदं मे भूयादिदं मे भूयादिति तीव्राभिलाषहेतुभूतश्चेतसोऽनवस्थितत्वापादको वृत्तिविशेष.। इसी अभिप्राय का पोषण मधुसूदनी तथा श्रीधरी मे हुआ है। क्रोध भी काम का ही परिवर्तित रूप कहा गया है। कामना के विघात तथा अहङ्कार के आवेग से काम ही क्रोध का रूप धारण करता है। अत काम-क्रोधरूपी शत्रु को विजित करना साधक के लिए अत्यावश्यक है। हरिदासजी ने अपनी वाणी मे इसी विचार से काम-क्रोध की समाप्ति का उल्लेख किया है।

साधन-काल मे एकाग्रवृत्ति बने रहने के लिए आवश्यक है कि वे गुण-धर्म जो वृत्ति मे क्षोभ पैदा करने के हेतु है, सबसे पहिले निवृत्त किये जायँ, अन्यथा साधनाजन्य क्लेश को प्रसन्नता से सहन करने की क्षमता उत्पन्न नही होती। बिना ऐसी

क्षमता के साधक का लम्बे समय तक कठोर साधना मे लगे रहना कैसे सम्भव बने ? अतः कामादि शत्रुओ को परास्त कर देह तथा मन को वश मे कर लेने से ही साधक वृत्तिनिरोध की भूमिका सम्पादन करने मे समर्थ बनता है।

हरिदासजी ने ऐसा ही किया। वे काम, क्रोध, अहङ्कारादि विकारी भावो से मुक्त हो शरीर-मन पर पूरा निग्रह रखते हुए मनोजयी बने। साधन के प्रारम्भ मे वृत्ति के आधार के लिए किसी अवलम्बन की साधक को आवश्यकता रहती है, तदर्थ नामजप का अवलम्बन अत्यन्त उपयोगी रहता है। निर्गुण हो या सगुण दोनो ही प्रकार के भक्तो ने नामजप को प्रमुख साधन के रूप मे अपनाया है। योगियो ने त्रिकुटि, अनहद नाद को वृत्ति का अवलम्बन माना है। प्रणव का जप-सोहं का जप प्राण के आवागमन के साथ करने का भी निर्देश हे। निर्गुण सन्त-साधको ने परम शुद्धस्वरूप समष्टिव्यापक शुद्धब्रह्म को "राम" शब्द से गृहीत कर उसी के जप का अभ्यास किया तथा उसी का उपदेश किया है। उनके विचार से राम वही है जो अशेष-प्राणी-अप्राणी सृष्टि मे व्याप्त है। दृश्य-अदृश्यसृष्टि का कोई भी भाग उसकी व्यापकता से विरत नही है—वह सबमे है, सब उसमे है, वही उनका उपास्य राम है। ब्रह्म के व्यवहार के लिए अनेक नाम वेदोपनिषदो, स्मृतियो, पुराणो मे प्रयुक्त हुए है। ब्रह्म से उस व्यापक-चेतन का संकेत है-जो जाति, गुण, धर्म, काल, कर्मादि की किसी उपाधि से आवृत नही। इसी ब्रह्म का उपयुक्त वाच्य-शब्द निरंजन भी है। हरिदासजी ने अपनी रचना में स्थान-स्थान पर ब्रह्मवाचक इस निरंजन शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनने जप के लिए निरंजन राम को अपना उपास्य बनाया। इसके प्रमाणभूत उनके कुछ वचन इस तरह है—

भजि करुणानिधि करतार नांम नारायण लीजै।
भजि निरामूल निरसिध काम आरम्भ यह कीजै॥
भजि अलख निरंजननाथ, छाँडि विष अमृत पीजै।
भजि परम उदार अपार ज्ञान गहि ध्यान धरीजै॥
जन हरिदास वारपार कीमत नहिं राम नाम मोटो रतन।
उरमंडण उर धारि प्रेम प्रीति दीजै जतन॥१६॥

× × ×

परम ग्यान पर ध्यान परम गुरु गुरुगमि गावौ।
राग दोष रस पांच रखै मन तहां न चावौ॥
काम क्रोध अभिमान कुपह कांटा मत लावौ।
अलख भजन उर धरौ मरो मति मौत चुकावौ॥

जन हरिदास मन गहि पवन ब्रह्म अगनि विष वन दहौ ।
अगम वस्तु अन्तरि अगह तहाँ उनमनि लागा रहौ ॥८॥
(कवित्त)

उक्त दो पदो मे अलख भजन, ब्रह्म अग्नि, अलख निरंजन, राम नाम मोटो रतन—ये शब्द है जो उपर्युक्त धारणा को सिद्ध करते है। निरजन राम का और भी स्पष्टीकरण देखिए—

अलख निरंजन उर बसै, राम नाम निज भेद ॥
राम विसारयां होत है, सही कन्ध का छेद ॥१॥
हरि अपार पार को नांहीं, साधू जन खेलै ता मांही ।
जन हरिदास भज केवल राम, निरमल नाम तहाँ विसराम ॥

हमारी आतमा ए रामसनेही जांणि,
आदि अंत था हरि सब सोई, तूँ तासूँ ग्रांणक वांणि ॥टेर॥
जाति वरण कुल नांहीं जाके, सो निकुला निरधार ।
ऊँडो अथघ थाघ नहिं आवे, नहीं वार नहिं पार ॥

× × ×

सतगुरु दीया भेद बताय, रहै राम दूजा सब जाय ।
धरी देह तेता आकार, सो क्यूँ कहिये सिरजनहार ॥
जाके रागद्वेष कछु व्यापै नाहिं, सोई रमता राम सकल घट मांहिं ॥

उक्त उद्धरणो से निरंजन-राम का सम्यक् समर्थन हो जाता है। वाणी में ऐसा कोई प्रकरण नही है जिसमे महाराज हरिदासजी ने परब्रह्म का ही रामनाम से वर्णन न किया हो। हरिदासजी ने अपने साधन-काल के आरम्भ मे गुरु-उपदेशानुसार इसी व्यापक ब्रह्मस्वरूप-चेतन का रामनाम से स्मरण किया, उसी का ध्यान किया, उसी में वृत्ति को आरूढ कर अपनी साधना को सफल बनाया।

हमारी आर्य-संस्कृति के मूलाधार वेद, उपनिषद्, स्मृतियां, पुराण, गीता आदि सभी ने उस अशेष व्यापक चेतन-तत्व का—जो किसी भी उपाधि से आवृत नही है—"ब्रह्म" शब्द से निरूपण किया है। जैसा कि श्रुतियो तथा गीता के उद्धरणों से प्रमाणित होता है—

सर पाडादेवी जी का मन्दिर

पीपली मन्दिर

भूताबावडी, नागौर

श्रुति में—सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

× × ×

सच्चिदानन्दात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ।

× × ×

अहं ब्रह्मास्मीति अनुसंधानं कुर्यात् ।

× × ×

मायाकार्यमिमं भेदमस्ति चेद् ब्रह्मभावनम् ।
देहोऽहमिति दुःखं चेद् ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥

× × ×

ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत् सदा मुनिः ।
आत्मनमात्मनः साक्षात् ब्रह्मबुद्ध्या सुनिश्चलम् ॥
देहजात्यादिसंबन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान् ।
वेदशास्त्रपुराणानि पदपांसुमिव त्यजेत् ॥

× × ×

भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क्व मुक्तिः क्वेह वा सुखम् ।
अद्वितीयं ब्रह्मतत्वं न जानन्ति यदा तदा ॥

× × ×

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।
यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्वमेव त्वमेव तत् ॥

× × ×

सर्वव्यापारमुत्सृज्य अहं ब्रह्मेति भावय ।
अहं ब्रह्मेति निश्चित्य त्वहंभावं परित्यज ।

× × ×

सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्सितव्यम् ।
त्वं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते ॥

त्वमेवाहमहमेव त्वम् ।

× × ×

स्वतः पूर्णः परात्ममात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यमरामर्शात्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ॥
एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ।

× × ×

ब्रह्मशब्देन तद् ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ।
मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः ॥
अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ।

× × ×

रामपरक श्रुति—आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वं पदार्थवान् ।
तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्वविदो विदुः ॥
नमस्त्वमर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते ॥

× × ×

उपर्युक्त ब्रह्मनिरूपक-श्रुतियों का दिग्दर्शनमात्र है। सब उपनिषद् ब्रह्म ही का निरूपण करते हैं। अब कुछ उद्धरण "गीता" के दिये जाते है—

गीता— एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ॥७२॥

× × × [गीता अध्याय २]

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

× × × [गीता अध्याय ३]

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥२४॥

× × × [गीता अध्याय ४]

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

× × × [गीता अध्याय ५]

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥२१॥

× × × [गीता अध्याय ५]

योन्तःसुखोऽन्तरारामः तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

× × × [गीता अध्याय ५]

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

× × × [गीता अध्याय ७]

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् !
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥
अनन्त देवेश जगन्निवास !
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

× × × [गीता अध्याय ११]

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम-
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

× × × [गीता अध्याय ११]

भूमिका शुद्धिपत्र

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति-संख्या	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
३	२२	की	•
३	२६	दिसे	दिस
१२	७	स	से
२०	१	मोरा	मोटा
२०	८	याज	पाज
२०	९	हृषित	हर्षित
२१	४	अधिकाश	अधिकांश
२४	२०	घरों	धरा
२४	२१	विसवी तेवरस	विश वीते वरस
४५	२३	गद	गर्द
४६	१४	निमित	निर्मित
५०	१३	उत्तराद्ध	उत्तरार्द्ध
५५	४	जे	ज
८५	२७	थ	थे।
८५	३०	गया	गया है
८९	१६	धरि	धरि
८९	२२	धरा	घरा
८९	२२	धरा	घटा
८९	२३	बूढै	बूठे
९१	२७	फिरया	फिरिया
९५	४	मुल्लव करे	मुल्ला बकरे
९७	८	सदा वसहु	सदा उर वसहु
१०५	२६	उदा	उदास
१०७	२३	सरक्षण	संरक्षण
११८	२५	आयेह	आये है

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥२॥

× × × [गीता अध्याय १३]

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥३–४॥

× × × [गीता अध्याय १४]

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

× × × [गीता अध्याय १८]

उक्त गीता के उद्धरण उसी ब्रह्म चेतन तत्व का निरूपण करते है, जिनका पीछे श्रुतिवाक्यों मे निरूपण है । कबीर, नानक, दादू, हरिदास, हरिनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि सब महात्माओ ने इसी निर्गुण-चेतन को ही रामनाम से सम्बोधित करते हुए स्वय आराधना की है तथा इसी राम का स्मरण-ध्यान करने का उपदेश दिया है । मैने पीछे व्यक्त किया है कि–इन निर्गुण उपासक सन्त-भक्तो ने श्रुति-निरूपित शुद्ध व्यापक-चेतन-ब्रह्म को निरंजन शब्द से भी व्यवहार किया है। स्वामी हरिदासजी ने तो निरजनरूप राम का ही चिन्तन किया था । उनके पश्चात् निरंजनी-सम्प्रदायके सन्त भी अपने स्मरण तथा जप मे राम के साथ निरजन शब्द को जोड़ राम निरञ्जन हरि निरञ्जन इसी नाम का चिन्तन करते आए है। इस निरञ्जन शब्द की उपासना के कारण ही यह सम्प्रदाय निरञ्जनी कहलाया, न कि कबीरजी के बाद उनकी परम्परा के सन्त कबीर-पन्थी तथा दादूजी के पश्चात् उनकी परम्परा के सन्त व सम्प्रदाय दादू-पन्थी कहलाते है। वैसे हरिदासजी के अनुयायी-सन्तो की संज्ञा हरिदास-पन्थी होनी चाहिए थी, पर निरञ्जन की उपासना के कारण वे हरिदास-पन्थी न कहलाकर निरञ्जनी कहलाए। सम्भव है कि हरिदासजी की साधना पर उपदेशदाता गोरखनाथजी या अन्य नाथ-महात्मा का प्रभाव भी हुआ हो, जैसा कि नाथ-वाणियों में अलख तथा निरञ्जन शब्द का बहुप्रयोग मिलता है। हम नाथ-

वाणियो के उद्धरण यहाँ नही दे रहे है, पर जिनने नाथ-वाणियो का अवलोकन किया है, उनसे यह बात छिपी नही है। हरिदासजी की वाणी मे नाथ-वाणियो का अनुगमन है, यह हम वाणी-विवेचन-प्रसङ्ग मे करेगे। यहाँ तो इतना ही व्यक्त करना है कि हरिदासजी ने अपनी साधना के प्रारम्भ मे जिस रामनामजप को आधार बनाया, वह निरञ्जनरूप राम था न कि अवताररूप धारण करनेवाला राम। हरिदासजी धीरे-धीरे अपनी साधना मे सफलता प्राप्त करते हुए आगे बढते गए। जब मन विषय-वासना के विष से मुक्त हो गया तथा उसका सम्बन्ध विषय-प्रवृत्त इन्द्रियो से न रह कर आत्मतत्व से हो गया तब वह मन जागतिक-पदार्थों से उदासीन होकर आत्म-तत्व के रसास्वादन मे लग गया। मनोनुबन्ध से इन्द्रियो के सहचार से विविध भोग-वासनाएँ जागृत होती थी, उनका उच्छेद हो गया। काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, राग-द्वेषादि परम शत्रुओ से वे मुक्त हो गए। जब त्रिगुणात्मक-भावना से वृत्ति हट कर सुरति-निरति रूप से उस एक ही आधारभूत आत्मतत्व मे स्थिर होगई तब सभी प्रकार के अनिष्टहेतु समाप्त हो गये। महाराज हरिदासजी निश्चल मन और स्थिर-वृत्ति से आत्मनिष्ठ होकर साधना की सुदृढ़ भूमिका मे आ गए, तब फिर उन्हे नाम-जप के आधार की आवश्यकता नही रही। साधना की यह दशा ही सिद्धि का हेतु होती है। साधक मे जब त्रिपुटी का सामञ्जस्य हो जाता है तब फिर साध्य, साधक व साधना की विभिन्नता नही रहती। गुरु-निर्देशानुसार आत्मसंयम मे दृढ रहकर हरिदासजी ने वह अवस्था प्राप्त कर ली और वे साधक से सिद्ध-कोटि मे आ गए। वे अविद्या के विकारो से ग्रसित जीव-भाव की स्थिति से निकल ब्रह्मभाव की स्थिति मे आ गए। अब वे एक सामान्य हरिदास मानव न रहकर विश्वव्यापक अखण्ड निर्मल चेतन ब्रह्मतत्व मे ही समाहित हो गए थे और उसी के स्वरूप हो गये थे। इस तरह वे अपनी दृढ़ तथा कठोर साधना से साधक से सिद्ध बनने मे सफल हुए।

३. गाढा विहाणी—

जिस समय महात्मा के उपदेश से हरिदासजी को अपने स्वार्थी कौटुम्बिक जनो से अत्यन्त ग्लानि हुई तथा वे वैराग्य के उद्वेग से अपने डकैत जीवन का परित्याग कर आत्मचिन्तन के विचार से 'तीखी डूँगरी' पर आए तब उनके पास ऐसा कोई साधन नही था कि वे अपने जीवनयापन को बिना किसी तरह की विघ्न-बाधा से चला सके। आरम्भ मे उन्हे किस तरह की कठिनाइयाँ आई होगी, क्योकि वे अपने निर्दय कर्म से उस क्षेत्र से तो परिचित थे ही। सम्भव है उनके कुटुम्बियों ने पूरा प्रयास किया होगा कि वे अपने कौटुम्बिक जीवन मे ही वापिस आए। पर उन पर उनका कोई असर नही हुआ और वे उस निर्जन स्थान मे ही अपना डेरा लगा अपनी साधन-क्रिया मे सलग्न हो गए। इस 'तीखी डूँगरी' के इधर उधर और भी पहाड़ियाँ है। पहाड़ियो के बीच के नाले-खोले तथा झाडियो के कारण यह

स्थान और भी भयावह था। सामान्यतः वह स्थान एक तरह से चोर-डाकुओं का आश्रयस्थान था। इस तरह के स्थान मे नागरिको का आवागमन कैसे सम्भव होता। हरिदासजी ने कितने समय तक इस स्थान पर एकाकी रहकर अपने आहार-पानी की क्या व्यवस्था की ? इसको ठीक से कहना शक्य नही है। संभव है उनकी इस तरह की कठोर साधना के आस-पास के ग्रामक्षेत्रो तक चरवाहो द्वारा समाचार पहुचे हो और श्रद्धालु मनुष्यो ने उनके आहार-पानी की व्यवस्था की हो। ऐसे ही श्रद्धालु मनुष्यो मे' सर्वोपरिगणनीय स्थान गाढा बियाणी का है। गाढा जी डीडवाणे के रहने वाले थे। 'तीखी डूँगरी' डीडवाणे से तीन कोस दूर है। वे नित्य नियम से प्रात काल घर से भोजन तथा एक जल की गगरी लेकर डूंगरी पहुँचते और महाराज के दर्शन कर भोजन-पानी रख वापिस लौट आते। उनका यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जब तक कि हरिदासजी महाराज डूंगरी पर साधना करते रहे। हरिदासजी महाराज का शायद पहला चमत्कार इस गाढे भक्त को ही मिला। चमत्कार की घटना इस तरह है—एक दिन ग्रीष्म ऋतु मे गाढाजी नित्यनियमानुसार भोजन व जल की गगरिया लिये डूँगरी पर चढ रहे थे कि उनके पैर फिसल गये जिससे वे गिर गये साथ ही भोजन व जल का पात्र भी गिर गया। भोजन तो किसी पात्र मे व्यवस्थित होने से सुरक्षित रह गया पर मिट्टी की गगरिया पहाड के पत्थर पर पड़ कैसे सुरक्षित रहती ? वह फूट गई पानी सब बह गया। भोजन का समय हो ही गया था गाढाजी को जल नष्ट होने का परम क्लेश हुआ। वे सोचने लगे कि यदि वापिस चलकर डीडवाणे से पुनः जल लाता हूँ तो आज का दिन समाप्त हो जायगा और महात्मा भूखे-प्यासे कितना कष्ट पायेंगे। यदि केवल भोजन ही लेकर चलूँ तो जल की समस्या कैसे हल होगी ? इस तरह की पशोपेश में कुछ समय बिता क्षीण और दुःखी मन से केवल भोजन लेकर ही वह डूंगरी पर पहुच गये। महाराज को नमस्कार किया। भोजन आगे रख खड़े ही रह गये। महाराज ने उन्हे खिन्न-उदास देख पूछा कि गाढाजी ! आज क्या कारण है ? इतने उदास क्यो हो ? गाढ़ाजी ने उत्तर दिया महाराज दुर्भाग्य से या मेरी असा-वधानी से आज जल की गागर यहाँ ऊपर आकर फूट गई और सारा जल बह गया। अब आप कैसे तो भोजन करेंगे और कैसे जल की व्यवस्था होगी इस क्लेश से मैं अत्यन्त-खिन्न हूँ। महाराज सब स्थिति समझ गये। सहज भाव से उनने कहा—गाढाजी, इसका ऐसा क्लेश करना ठीक नही है। गागर तो फूटी नही है शायद आपको भ्रान्ति हो गई हो। जाइये देखिये तथा गागर भरी है ले आइये। गाढाजी स्तंभित से हुए उनके मन मे सकल्प हुआ कि गागर तो फूट ही चुकी महाराज उसके भरी होने का कैसे निर्देश कर रहे है ? गाढाजी बोले–महाराज गागर तो फूट ही गई उसके तो छोटे-छोटे टुकड़े हो गये। उसमे अब पानी रहन कैसे सम्भव है ? आप तो अब भोजन करिये। महाराज ने पुनः शान्त-चित्त से निर्देश किया कि आप जायँ तो सही,

गागर भरी न मिले तो वहाँ तक जाने का ही श्रम है। गागर गिरी वह स्थान चोटी से बहुत दूर नही था, कठिनाई से फर्लाङ्ग भर की दूरी होगी। गाढाजी संशयात्मक भावना से चले और जहाँ गागर गिरी थी वहाँ पहुचे—देखते है कि वस्तुतः गागर वही की वही है और स्वच्छ जल से भरी है। गाढाजी के हर्ष का पारावार नही रहा। उन्हे जो आत्मग्लानि गागर गिरने से हो रही थी, वह परम हर्ष मे बदल गई। वे गागर उठा शीघ्र से ऊपर आए तथा जल की गागर रख अत्यन्त श्रद्धा से महाराज के चरण पकड लिये। महाराज ने सान्त्वना दी तथा घर लौटने का निर्देश किया। गाढ़ाजी हर्षोन्मत्त से वापिस घर को चल दिये और महाराज की इस सिद्धि का बार-बार स्मरण करने लगे।

हरिदासजी महाराज के प्रति गाढ़ाजी की वैसे ही अत्यन्त श्रद्धा थी, पर इस चमत्कारी घटना के पश्चात् तो वे उनके अनन्य श्रद्धालु-सेवक बन गए। गाढाजी नि.संतान थे—उनके कोई पुत्र-पुत्री उत्पन्न नही हुए थे। दूसरे, अवस्था भी अब बुढापे की ओर जा रही थी। वे डीडवाणे से तीन कोस नित्य आने-जाने मे भी कुछ क्लेश मानने लग गए थे। हरिदासजी महाराज की साधना सिद्ध हो गई थी, इसलिए अब महाराज भी डूँगरी पर ही रहना अनिवार्य नही समझते थे। गाढाजी ने महाराज की प्रसन्नता देख अपनी दोनो ही आकाक्षाएँ उनके सामने रखी। महाराज ने उनकी दोनो ही इच्छा पूर्ण होने का निर्देश कर दिया। डूँगरी का परित्याग कर महाराज डीडवाणे पधार आये। उनने नगर से उत्तर की ओर जङ्गल मे आसन कर लिया। गाढ़ाजी को अब घर से एक मील आने-जाने का रह गया, वे उसी तरह भोजन और जल वहाँ पहुँचाने लगे। समय पाकर उनके सन्तान भी हो गई, जिसका नाम द्वारिकादासजी सुना जाता है। गाढाजी ने महाराज के निवास-स्थान के पास एक कूप भी बना दिया, जो गोमती कूप के नाम से अब भी भंडारजी महाराज के स्थान के पास अच्छी स्थिति मे मौजूद है। इस तरह गाढ़ाजी की भक्तिभावना व सेवा का क्रम डूँगरी की तरह यहाँ भी उस समय तक चलता रहा, जब तक महाराज का शरीर रहा। डूँगरी का परित्याग कर डीडवाणे पधार आने के पश्चात् महाराज यदा-कदा भ्रमणार्थ जाने लगे। इच्छानुसार भ्रमण कर पुनः डीडवाणे पधार आते थे। डीडवाणे पधारते ही गाढाजी द्वारा उसी प्रकार सेवा का क्रम प्रारम्भ हो जाता था। गाढाजी की इस परम निष्ठा तथा प्रेम के कारण ही महाराज ने उनके नाम की निरन्तर स्मृति के लिए इस स्थान की संज्ञा ही गाढा हो जाने का निर्देश कर दिया था। बावन बीघे का यह भूमि-क्षेत्र आज भी गाढा नाम से प्रसिद्ध है। राज्य के सर्वे विभाग मे भी इसका दाखिला गाढा के नाम से ही है। इस तरह सेवक और स्वामी का यह ओतप्रोत सम्बन्ध सोलहवी शताब्दी से आरम्भ हो आज इक्कीसवी शताब्दी तक उसी क्रम से अक्षुण्ण चल रहा है।

४. भ्रमण व चमत्कार-प्रदर्शन

महाराज हरिदासजी डीडवाणे मे निवास कर कुछ काल के लिए राजस्थान के भ्रमण को निकल पडे। उनके भ्रमण का ठीक-ठीक निरूपण तो शक्य नही है, पर परचईकार रघुनाथदासजी ने अपनी परचई मे जैसा उल्लेख किया है, उसी आधार से उनकी भ्रमण-यात्रा का निरूपण किया जा रहा है। राजस्थान भ्रमण का विवरण आरम्भ करने से पहिले एक स्थानीय घटना का निरूपण करना आवश्यक है जिसका सम्बन्ध डीडवाणे नगर से है। महात्माओ के परचई-लेखको का मुख्य लक्ष्य उन द्वारा किये गए अलौकिक चमत्कारी कार्यो का निरूपण करना रहा है। उसी का अनुसरण महाराज हरिदासजी के तीनो परचई-लेखको ने किया है। तीनो मे प्रमुखता मै रघुनाथदासजी को देता हूँ। उनने ही महाराज की परचई कुछ विस्तार से लिखी है। उसमे जन्म-मृत्यु, आयु, काल आदि का विवरण भी है। पिछले प्रकरण मे व्यक्त किया जा चुका है कि गाढा वियाणी के आग्रह से महाराज 'तीखी डूँगरी' से डीडवाणे आ गए थे। डूँगरी पर तो गागर का चमत्कारी परचा गाढे को दिखाया ही गया था—डीडवाणे मे भी इसी तरह की एक चमत्कारी-घटना घटित हुई थी। महाराज हरिदासजी नगर मे किसी के यहाँ भिक्षा पाने जा रहे थे। रास्ते मे एक स्थान पर एक गृहस्थ अपना घर बनवा रहा था। घर की भूमि मे एक पीपल का वृक्ष भी था—वैश्य उसके कटवाने का विचार कर रहा था। पीपल के कटने की बात को लेकर कुछ अन्य नागरिक भी एकत्रित हो गए थे। एकत्रित व्यक्तियो मे कुछ पीपल को काट देने की राय दे रहे थे, कुछ न काटने की। महाराज हरिदासजी ने भी उधर से निकलते यह चर्चा सुनी, उनने भी व्यक्त किया कि पीपल न काटा जाय। वैश्य ने नम्रता से निवेदन किया कि महाराज इसको न काटने से आगे जब इसकी वृद्धि होगी, तब इसके विस्तार तथा मूल (जड़) शाखाओ से, स्थान को क्षति पहुँचना अनिवार्य है। महाराज ने कहा—इसकी वृद्धि के भय-वश ही इसको काटना चाहते हो तो यह तथा तुम्हारा वश दोनो ही वृद्धि नही करेगे। ये इसी रूप में रहेगें, अतः इसको काटना नही। महाराज इतना कहकर चले गए। वैश्य दुविधा में उलझ गया, अन्त मे पीपल न काटने का ही निश्चय रहा। वह पीपल अद्यावधि तक उसी रूप मे अवस्थित है। अब उस स्थान को मन्दिर का रूप प्राप्त हो गया है। आज भी हम उक्त पीपली-मन्दिर मे जाकर उस पीपली को देख सकते है, जो सवा-चार सौ—साढे चार सौ वर्षों से उसी रूप में वर्तमान है।

उक्त घटना के पश्चात् जैसा ऊपर लिखा है, महाराज की राजस्थान-यात्रा आरम्भ हुई। वे डीडवाणे से पश्चिम की ओर चले। पैदल यात्रा करने वालो के लिए कोई निश्चित संकेत नही रहता। मौज आई जितना चले, जहाँ इच्छा हुई वहाँ ठहर गए। महाराज हरिदासजी की वैसे बाहरी स्थानों में चर्चा भी हो गई थी कि वे

हरिपुरुष जी महाराज की समाधि

समाधि-प्रवेश द्वार, डीडवाना

एक खूँखार डाकू से पलट कर महान् सिद्ध पुरुष हो गए है। उनका तप-तेज भी साधारण नागरिक को आकर्षित करने वाला था। वे जहाँ जिस ग्राम मे ठहरते, वहाँ सत्सग तथा आध्यात्मिक चर्चा भी अवश्य चलती। वे जन-साधारण मे आध्यात्मिक-चिन्तन की भावना को जागृत करते रहते थे। धीरे-धीरे चलते-चलते वे नागौर मे जा पहुंचे। नागौर उन दिनो एक स्वतन्त्र राज्य था। राष्ट्रकूट (राठौड) क्षत्रिय वहाँ राज्य करते थे। नगर के पश्चिम मे कुछ दूरी पर एक सुन्दर बावडी थी। बावडी मे मधुर जल का स्रोत भी था। पर बावडी पर भूत-निवास की चर्चा फैल जाने से लोगो का आना-जाना नही था। नगर से दूर होने तथा जङ्गल मे होने से महाराज को वह स्थान उपयुक्त लगा। उनने बावडी पर ही आसन लगा लिया। रात्रि मे बावड़ी पर रहने वाले भूत ने विविध चेष्टाएँ, महाराज को भयभीत करने की की। पर उनकी दृष्टि से तो सभी तरह की भेद-भावना समाप्त थी, अत. भूत की चेष्टाओं का उन पर क्या प्रभाव होता ? वे आत्मचिन्तन मे मस्त थे। भूत ने समझ लिया कि यह कोई साधारण प्राणी नही है। अन्यथा मेरे द्वारा की गई वीभत्स चेष्टाओं से प्रभावित हुए बिना रहता नही। अन्त मे भूत ने महाराज से अपने उद्धार की प्रार्थना की। महाराज ने वाणी के प्रारम्भिक ग्रन्थ 'ब्रह्मस्तुति' का पाठ करने का उपदेश किया, इसीसे भूत का अनिष्ट-योनि से छुटकारा हुआ तथा उस बावडी के लिए जो एक भीतिभरी भावना फैली हुई थी, उसका भी निवारण हो गया। नागरिक महाराज के पास सत्सग के लिए आने लगे। कुछ दिन तक ज्ञान-चर्चा कर महाराज नागौर से आगे मेडते की ओर प्रस्थान कर गए। नागौर की इस भूत-बावड़ी का बहुत थोड़ा सा ऊपरी भाग आज भी दिखाई पड़ता है। उस ऊपरी अंश को छोड शेष पूरी बावड़ी मिट्टी से भर गई है और भूमि के गर्भ मे है।

नागौर से चलकर मेडते मे कुछ काल ठहर आगे अजमेर की ओर महाराज ने प्रस्थान किया। रास्ते मे आने वाले ग्रामो मे आवास करते हुए सत्संग-ज्ञान-चर्चा से जन-साधारण की मनोभावना मे आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति को जागृत करते जाते थे। धीरे-धीरे यात्रा करते हुए, पुष्कर होकर कालान्तर मे अजमेर पहुच गए। अजमेर उस समय यवन प्रशासकों के प्रशासन मे था। हिन्दू और इस्लामन-धर्मों की दो संस्कृतियो का वह एक तरह से संघर्ष-काल था। शासक के नाते मुसलमानों का प्राधान्य तो था ही; धार्मिक मतभिन्नता भी गहरी थी। हिन्दू-धर्म की प्रतीक-उपासना का एकेश्वरवादी इस्लाम-धर्म मे कोई स्थान नही था। मूर्ति-पूजा को मुसलमान बुतपरस्ती मानते थे। उनकी मान्यता थी कि खुदा को छोड इस तरह पाषाण-मूर्तियो की उपासना ईश्वर से गद्दारी है, इसलिए वे एक तरह से हिन्दुओं को काफिर समझते थे। यह भावना एक तरह से व्याप्त होने के कारण हिन्दू-धर्मी सन्त-महात्माओ के प्रति भी उनका दृष्टिकोण प्रतिगामी रहना स्वाभाविक था।

महाराज अजमेर पहुंचे । शायद उस समय के अजयमेरु (अजमेर) नगर मे कुछ बाहर जहाँ आजकल दौलत बाग है, सामान्य जंगल के क्षेत्र मे ठहर गए । धीरे-धीरे नागरिको को पता लगने पर महाराज के पास पर्याप्त नागरिको का आवागमन होने लगा । अधिकारियो के पास भी चर्चा हुई । उनको एक हिन्दू-फकीर का इस तरह महत्व बढना शायद अच्छा न लगा होगा । सम्भव है किसी सकेत से या अनायास एक मदोन्मत्त हाथी उधर आ निकला—लोगो ने महाराज से आग्रह किया आसन छोड़ने का, पर सन्त जन को भीति किसकी ? उनका हृदय सब प्राणियों की ओर प्रेममय रहता है । लोग भय से इधर-उधर हो गए, महाराज स्वस्थान पर उसी तरह बैठे रहे । हाथी समीप आया—उसकी मस्ती न मालूम कहाँ गई ? उसने अपना मस्तक महाराज के चरणो पर रख दिया । महाराज ने उसके मस्तक पर अपना दयार्द्र-कर फेर शान्त और सीधे रहने का निर्देश किया । कहते है कि उसके पश्चात् उस हाथी ने जो कि पहले बडा बदमिजाज था, प्राणियों का हनन करता था—कभी किसी प्राणी पर आक्रमण नही किया । हाथी का यह परिवर्त्तन देख नागरिकों की श्रद्धा महाराज में और बढी तथा उस स्थान पर एक भाटे का हाथी बनाकर रख दिया, अब तक भी वह स्मारक 'हाथी-भाटे' के नाम से प्रसिद्ध है । वह स्थान अब नगर मे आ गया है तथा निरजनी सन्तो के अधिकार में है । इस घटना के कुछ काल पश्चात् अजमेर मे निवास करते हुए वे सिद्ध अजयपाल से तथा परशुरामजी व खोजीजी मे भी मिले, ऐसा निरूपण परचईकार ने किया है ।

अजमेर से पुन· प्रवास-यात्रा आरम्भ हुई । घूमते हुए किसी ग्राम मे एक चारण मे विविध चर्चा चली—इसी प्रसग मे "बारहपदी जोगग्रन्थ" का निरूपण हुआ व चारण को उपदेश भी । आगे चलते-चलते टोडा रायसिह पहुच गए । टोडा रायसिह भी बहुत प्राचीन कस्बा है । उस समय उसकी प्राकृतिक शोभा भिन्न रूप मे ही रही होगी । टोडे मे महाराज ने जहाँ आसन किया, वहाँ एक सर्प की बाँबी का मुख था । कहावत थी कि–यह सर्प कोई भोमिया है तथा किसी खजाने पर रहता है । सर्प अति भयङ्कर भी था । सर्प का नाम ताषो लिखा गया है, शायद यह तक्षक का अपभ्र श रूप है । महाराज तो निश्चिन्तता से अपने ध्यान मे मग्न थे ही उन्हे यह ज्ञात नही था कि: आज आसन किसी सर्प की बाँबी पर लग गया है । रात्रि मे सर्प बाँबी से निकला तो बाँबी पर एक तेजस्वी महात्मा को बैठे देखा । महाराज का ध्यान तो अन्तर्निहित था, उन्हे पता नही था कि बाँबी से सर्प निकल उनके सम्मुख ही स्थित है । सर्प का स्वभाव वैसे क्रोधी होता ही है, पर ताषो ने महाराज को ध्यानावस्थित देख किसी प्रकार का रोष नही किया व वैसे ही बैठा रहा । कुछ काल पश्चात् जब महाराज ने नेत्र खोले तो सामने एक भयङ्कर सर्प को देखा । महाराज ने अपने साधन-काल मे अहिंसा-वृत्ति की दृढ़ता प्राप्त कर ली थी । जैसा कि योग-दर्शनकार का निर्देश है—

सूत्र— अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ॥३५॥

(साधन-पाद)

महाराज की मनोजयी-दशा तथा सत्वोद्रेक के कारण उनके समक्ष आने वाले प्राणी पर उनका प्रभाव अवश्य ही पड़ता था। सर्प की मनोवृत्ति भी बदली, वह शान्त तथा धीरभाव से अपनी जगह पर बैठा रहा। महाराज ने निर्देश किया कि जिस भूगर्भ के धन पर तू रक्षा के रूप मे आरूढ है यह निरर्थक है। इस व्यामोह का परित्याग कर एकत्रित सम्पत्ति को सत्कर्म मे आने दे, ताकि तेरा कल्याण हो। ताषो ने महाराज का निर्देश ध्यान से सुना तथा अपनी मनोवृत्ति का परिवर्त्तन कर उस योनि से मुक्त हुआ। महाराज ने कुछ दिन टोडे मे निवास किया। ईश्वर-चिन्तन, सत्सग व उपदेश द्वारा जन-कल्याण का लक्ष्य भी साथ-साथ चलता रहा।

टोडे से प्रस्थान कर महाराज उत्तर दिशा मे चल दिये। वे स्थान-स्थान पर आवास करते हुए, सत्संग से अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए भ्रमण मे प्रवृत्त थे। कहते है कि इस यात्रा मे महाराज हरिदासजी को एक सिद्ध महात्मा भी मिले। इस आइस सिद्ध ने जब सुना कि एक अच्छे महात्मा इस ओर भ्रमण-यात्रा कर रहे हैं, तो आइस ने महाराज हरिदासजी की परीक्षा करनी चाही कि देखे इनमे कैसा महात्मापन है ?

आइस ने सिंह का रूप बनाया और महाराज के सामने पहुंचा। महाराज हरिदासजी सिद्ध आइस की भावना को समझ गए। जब सिह रूप मे आइस महाराज के सामने आया, तो महाराज ने उसको 'खर' नाम से सम्बोधित किया, जिससे कि सिह का धारण किया हुआ रूप खरस्वरूप मे बदल गया। एक-दो दिन व्यतीत हो जाने पर जब आइस सिद्ध वापिस अपने स्थान पर नही गए, तब शिष्यो ने गुरु की तलाश की। प्रमुख शिष्य महाराज हरिदासजी के समीप पहुंचे। महाराज ने शिष्यो से कहा कि आप लोग किनको तलाश कर रहे हो ? सिद्धजी तो देखो—वे खर बने हुए घास चर रहे है। शिष्यों ने गुरुजी की स्थिति देख महाराज हरिदासजी के चरण पकड़ लिये। महाराज ने पुनः उनको स्वस्वरूप मे हो जाने का निर्देश किया और सिद्धजी पुनः स्वस्वरूप में बदल गए। आइस ने महाराज की करामात देख उनकी वन्दना की। हरिदासजी महाराज ने सिद्ध को संकेत किया कि इस तरह हरिजनो के साथ संघर्ष करना संगत नही। आत्मचिन्तन ही साधु का मुख्य कर्त्तव्य है, उसी में संलग्न रहना चाहिए।

सिद्ध आइस को इस तरह चमत्कार दिखा महाराज ने पुनः अपनी यात्रा की और धीरे-धीरे चलते जोबनेर पहुंच गए। जोबनेर उस समय अच्छा कस्बा था।

महाराज हरिदासजी की वांणी का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
१६	६	तुम्हरो	तुम्हारो
४२	१	मूढि	मूठि
५६	१८	सत्य	सप्त
६०	३	सकला	सगला
७६	१०	घीरज	धीरज
७८	५	जडै	झडै
८१	५	कुवुधिकरि	कुबुधि करि
१२४	११	अवघू	अवधू
१२४	१५	अवघू	अवधू
१३६	११	षढि	पढि
१८५	१८	आघ"	आध
१६०	४	परि	हरि
१६०	५	करिपे रे	करिये रे
१६३	४ टि०	लूघा	लूधा
१६७	४ टि०	तडपती	तडफती
२१४	१	अगहि	गहि
२१४	१	गम	अगम
२४१	८	षोलै	बोलै
२४१	२ टि०	ढह	हढ
२५६	१ टि०	टेतू	तूटे
२६०	५ टि०	मापकि	मायिक
३५६	५	जालि	जलि
३६७	१६	मिल्वा	मिल्या
३७१	६	जषै	जपै
३७२	११	आषौ	आपौ
३७३	८	षरम	परम
३८१	६	षरम	परम
३८२	२०	फोइ	कोइ

॥ इति ॥

महाराज ग्राम से बाहर एकान्त स्थान मे विराज गए। धीरे-धीरे ग्रामवासी महाराज के पास आने-जाने लगे और सत्संग द्वारा लाभ उठाने लगे। पूरे कस्बे मे महाराज को लेकर यह चर्चा चल गई कि एक बहुत ही अच्छे महात्मा यहाँ पधारे है। उस समय जोबनेर मे एक वैष्णव महात्मा भी थे, जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा कस्बे मे थी। इन महात्मा के पास भी महाराज हरिदासजी की महिमा सुनाई पड़ी। महात्मा ने सोचा कि यदि यह महात्मा अधिक दिन यहाँ रहेगे तो सम्भव है अपनी मान्यता तथा प्रतिष्ठा मे कमी आए। महात्मा ने न मालूम क्यो ? एक दिन ऐसा संकल्प किया कि इनको क्यों न विष दे दिया जाय ? यह विचार उठते ही महात्मा ने एक विषमिश्रित जल का पात्र अपने शिष्य को देकर कहा कि जाओ उन महात्मा के पास और उन्हे ज्ञात करो कि आपके गुरु गोरखनाथजी ने यह जलपात्र प्रसादरूप मे भिजवाया है, सो इसका पान करो। महात्माजी के शिष्य ने, निर्देशानुसार वह पात्र ले जाकर महाराज के आगे रख दिया तथा जैसा गुरुजी ने कहा था वैसे ही उनको निवेदन कर दिया। महाराज हरिदासजी सब बात समझ गए। शिष्य ने जो जलपात्र रखा था, उठा कर सब विषगर्भित-जल का पान कर लिया और पात्र उनको वापिस कर दिया तथा शिष्य से कहा कि आप महात्माजी से जाकर कह देना कि गुरु महाराज द्वारा भेजा हुआ वह अमृत-रस बडा ही सुस्वादु था। शिष्य ने लौटकर ज्ञात कर दिया कि महात्मा ने बड़ी प्रसन्नता से उस जल का पान कर लिया और यह पात्र वापिस कर दिया है। गुरुजी ने मन मे विचारा कि रात को ही महात्माजी परमधाम पहुंच जायेगे। दूसरे दिन वैष्णव-सन्त यह समाचार सुनने को आतुर थे कि समागत महात्मा ब्रह्मलीन हो गए। पर वैष्णव महात्मा की मनोवृत्ति पूरी न हुई। महाराज हरिदासजी पर उस विषवारि का कोई प्रभाव नही हुआ। वे नित्य की तरह ही प्रसन्न मुद्रा मे आत्मचिन्तन मे सलग्न थे। प्रसंग से बातचीत मे जब वैष्णव-महात्मा को पता लगा कि वे महात्मा तो बड़े आनन्द मे है तथा प्रतिदिन की तरह ही आत्म-चिन्तन व सत्संग मे रत है। वैष्णव-महात्मा को अपनी कृति पर बडी ग्लानि हुई, वे हरिदासजी महाराज के पास गए तथा अपने द्वारा किये गए उस निंद्य-कर्म के लिए उनने अत्यन्त नम्रता से क्षमायाचना की तथा प्रार्थना की कि वे उन पर अनु-ग्रह करे, जिससे उनकी मनोवृत्ति आत्मचिन्तन मे संलग्न हो। हरिदासजी महाराज ने कहा कि महात्मन् ! ईर्ष्या-द्वेष को आश्रय मत दो—भेदबुद्धि का परित्याग करो। सब सृष्टि एक ही चिरन्तन-शक्ति मे समाहित है। जाति, धर्म, गुण-भेद से भेद करना सङ्गत नहीं। सबसे प्रेम करो, सबको अपना ही स्वरूप समझो। वैष्णव-महात्मा पर महाराज के इन वाक्यो का प्रभावोत्पादक असर हुआ। उनने अपनी सब भौतिक सम्पत्ति महात्माओ की सेवा मे लगा देने का निश्चय किया। बहुत विशाल सन्त-सम्मेलन किया गया और अपनी सब सम्पत्ति का उसमे उपयोग कर दिया गया। वैष्णव सन्त-महात्मा हरिदासजी मे परम श्रद्धा रखने लगे।

महाराज हरिदासजी को जोबनेर मे पर्याप्त समय हो गया था, अत· महाराज ने अपनी यात्रा पुन' प्रारम्भ कर दी । वे जोबनेर से भ्रमण करते आमेर आ गए। आमेर उन दिनों कछवाहों की राजधानी थी। महाराज ने आमेर मे आकर एक गहन पहाडी पर आसन किया। उन दिनों इन पहाडों मे घने जंगल तथा अनेकों जलस्रोत थे। सिह-व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओ का भी यहाँ प्रवास व आवागमन रहता था। महाराज ने जिस डूँगर पर आवास किया था, वहाँ भी सिंह-व्याघ्रो का प्रति-दिन आवागमन होता था।

रात्रि को महाराज ध्यानावस्थित थे। घूमते हुए एक सिह आया। उसने महाराज को देखा। उनकी अहिंसामय शान्त शीतल दृष्टि पड़ते ही सिंह की हिंसा-वृत्ति का निवारण हो गया, सिह भी कुछ समय तक वही बैठा रहा। प्रात काल का समय होने लगा तो सिह जंगल मे चला गया, महाराज वही विराजे रहे। चरवाहों द्वारा नागरिको को महाराज के पहाड़ पर विराजने का पता लगा। लोगो का आवा-गमन होने लगा। लोगो को पता था कि इस स्थान पर रात्रि मे हिसक प्राणी आते है अतः उनने महाराज को नीचे चलने का बहुत आग्रह किया। पर महाराज के तो हिसा-वृत्ति का लवलेश शेष नही था, अत· वे वही विराजे रहे। लोगो को भी ज्ञात हो गया कि रात्रि मे हिसक पशु आते है, पर वे महाराज के पास वैसे ही बैठे रहते है–जैसे कि अहिसक प्राणी बैठा करते है। कुछ दिन आमेर मे निवास कर महाराज ने पुन· अपनी यात्रा आरम्भ की। वे आमेर से खेतड़ी की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ते मे एक ग्राम मे महाराज विश्राम कर रहे थे—वहाँ कुछ ग्रामवासी महाराज के दर्शनार्थ आए, उनमे एक पगु ब्राह्मण भी था। सन्त-महात्माओ के प्रति चिरकाल से भारतीय जनता परम श्रद्धा रखती आई है। पंगु ब्राह्मण मे भी उस श्रद्धा के अकुर थे। उसके स्फुरणा हुई कि क्या महात्मा के प्रसाद से मेरा यह पंगु-दोष निवृत्त नहीं हो सकता? विप्र की इस स्फुरण के साथ ही महाराज का ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हुआ। महाराज ने उसकी दैन्य-दशा देख ब्राह्मण को सम्बोधित किया कि हे विप्र देवता! ऐसे अक्रिय कैसे बैठे हो, खडे होओ तो। महात्मा की अमोघ वाणी ने अपना प्रभाव दिखलाया। विप्र के पैर–जो वर्षो से अक्रिय थे, सक्रिय हो गए। विप्र खडा हो गया ओर अन्य मनुष्यो की तरह चलने-फिरने लगा। स्वामीजी आगे चलकर सिघाणे ग्राम पहुंचे। वहाँ कुछ दिन का आवास रहा। ग्राम के अनेकों नर-नारी महाराज के दर्शन व प्रवचन से लाभ उठाते थे। उन सत्संगी पुरुषो मे ग्राम के एक शाहजी भी थे। शाहजी ग्राम के सभी कार्यों मे सहयोग देते थे, धर्मात्मा प्रवृत्ति के पुरुष थे। शाहजी के एक ही पुत्र था। दैवयोग से शाहजी के उस पुत्र का अचानक देहावसान हो गया। महाराज हरिदासजी ग्राम मे किसी सज्जन के भोजन करने को पधार रहे थे। रास्ते मे ही शाहजी का घर था। शाहजी के घर पर ग्राम-जनों की भारी भीड़ लग गई थी, सभी लोग शोकातुर थे, रोना-पीटना

मच रहा था। महाराज ने साथ चलने वाले भक्त मे इस कारुणिक-दृश्य का कारण पूछा। उसने बताया कि महाराज ! आपके परम श्रद्धालु-धर्मात्मा अमुक शाहजी के इकलौते पुत्र का देहावसान हो गया है। सारे ही ग्राम मे इस घटना से परम शोक छा गया है। महाराज ने उक्त समाचार सुने, उनका दयार्द्र-हृदय द्रवित हो गया। वे शाहजी के घर गए, महाराज को आए देख शाहजी ने धैर्य अपनाकर महाराज का स्वागत किया। महाराज ने शाहजी से कहा—आज क्या बात है ? किस कारण सारा घर तथा समागत-जन शोक-संतप्त है ? शाहजी ने उत्तर दिया—महाराज कुछ नही, आपका जो एक बच्चा था वह चल बसा है। उसी के कारण सब ओर शोक छाया हुआ है। महाराज ने मृत बच्चे के पास बैठ, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए सम्बोधित कर कहा कि—भाई ! इतने क्या सोये हो ? उठो, अब सोने का समय नही है। बच्चा आँख खोलकर तुरन्त खडा हो गया। शाहजी, परिवार व एकत्रित जन-समुदाय बच्चे को जीवित देख परम हर्ष मे मग्न हो गए। महाराज शाहजी के घर से निकल, जिस सज्जन के घर निमन्त्रित थे, वहाँ चले गए। ग्राम मे घर-घर महाराज के इस चमत्कार की ही चर्चा होने लगी, महाराज ने अब अधिक ठहरना उचित नही समझा। दूसरे दिन सिघाणे से पुनः यात्रा प्रारम्भ कर दी। सिघाणे से चलते हुए खेतड़ी, सीकर आदि का भ्रमण करते हुए पुनः डीडवाणे आ गए। सम्भव है उनने और क्षेत्रो का भी भ्रमण किया होगा। उपर्युक्त भ्रमण का निरूपण रघुनाथदासजी कृत परचई मे आया हुआ है। इन भ्रमण-स्थानो का परचईकार ने उल्लेख किया है, उन सब स्थानों मे चमत्कारी-घटनाओ का सम्बन्ध था। चमत्कारी-घटनाएँ सत्य मानी जायँ या काल्पनिक ? आज के इस युग मे इस विषय पर मतभेद हो सकता है। योगी और आत्मजयी महात्माओ मे अलौकिक-शक्ति आ जाती है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के युग मे भी ऐसी अनोखी घटनाएँ घटित होती रहती है। अतः उपर्युक्त घटनाओ को कपोल-कल्पना ही माना जाय ऐसा आग्रह क्यों किया जाय ? घटनाओ को बाद दे दिया जाय तो भी इन स्थानो के भ्रमण मे तो किसी प्रकार की शङ्का नही है। इस भ्रमणवृत्ति से सिद्ध होता है कि हरिदासजी महाराज ने आत्मनिष्ठ होने के पश्चात् राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र मे भ्रमण किया और अपनी साधना तथा अनुभूति से लोक-कल्याण के लिए पर्याप्त प्रयास किया। उनकी भ्रमण-यात्रा डीडवाणे से ही आरम्भ हुई थी और डीडवाणे मे ही आकर समाप्त हुई। यह यात्रा इनकी एक-कालिक है या भिन्न-भिन्न-कालिक—इसका कोई प्रामाणिक उत्तर नही है। परचईकार के उल्लेख से तो यह एककालिक ही प्रतीत होती है, यदि एककालिक न हो तो भिन्न-भिन्न-कालिक होने पर भी यात्रा के औचित्य में किसी तरह का अन्तर नही आता। पुनः डीडवाणे पहुंचने के पश्चात् महाराज डीडवाणे ही विराजे। किस काल से किस काल तक यह यात्रा हुई, इसका काल मेरी समझ से १५७० से १५८५ माना जाना सङ्गत है। रघुनाथदासजी के उल्लेख से

उनका जन्म १५१२, गृहत्याग तथा साधना का आरम्भ १५५६, साधना की पूर्ति १५७०, डीडवाणे आना तथा वहाँ निवास १५८०, पश्चात् यात्रा। यात्रा से वापसी के पश्चात् अन्तिम समय तक डीडवाणे निवास। सम्वत् १६०० मे ८८ वर्ष की आयु मे देहत्याग। गाढाजी का देहावसान महाराज से पहिले हुआ या पश्चात्–इसका कोई प्रामाणिक आधार नही है।

५. वाणी, भाषा और विषय—

वाणी—महात्माओ की रचना की संज्ञा "वाणी" है। जैसे प्रामाणिकता के विचार से आर्ष-रचना का महत्व है, इसी तरह पहुंचे हुए महात्माओ का अनुभव-निचोड जिस रचना मे आता है–वह रचना आर्ष-रचना के सदृश मानी जाती है। भाषा-साहित्य मे उसके लिए "वाणी" शब्द का प्रयोग है।

इस शब्द का नाथ-सिद्धो की रचना के लिए शायद सबसे पहिले प्रयोग प्रचलित हुआ है। उसके पश्चात् महात्मा कबीर, नानक, हरिदास, दादू आदि महान् सन्तो की रचना के लिए इस शब्द का व्यवहार हुआ।

महाराज हरिदासजी की "वाणी" मे क्या निरूपण किया गया है तथा उनकी भिन्न-भिन्न क्या रचनाएँ है? यह ठीक से समझने के लिए उनकी रचना की पूरी तालिका दे देना उचित प्रतीत होता है।

वैसे उनकी रचना का प्रारम्भ "लघुग्रन्थावली" से है। सैतालीस ग्रन्थो के पश्चात् उन्नीस राग-रागनियो मे एक सौ बयासी पद है। पदो के अन्त मे तीन आरती है। कडखा बारह आठ रेखते है। कवित्त सोलह, कुण्डलियाँ १०६ और चान्द्रायण चौसठ है। अन्त मे साखी भाग है, चौतीस अंगो की तीन सौ चार साखी है। चार श्लोक भी आए है, जिसकी प्रकरणानुसार तालिका इस रूप मे है—

लघु ग्रन्थावली—

१–ब्रह्मस्तुति, २–मूलमंत्र जोगग्रन्थ, ३–नाममाला, ४–नाम-निरूपण, ५–निरंजन-लीला, ६–साधुचाल, ७–अगाध अचरज, ८–जोगसंग्राम, ६–अष्टपदी, १०–वन्दना, ११–निराकार-वन्दना, १२–निरपषमूल, १३–प्राणप्रसिद्ध परमात्मापूजा, १४–समाधि-जोग, १५–योगध्यान, १६–प्राणमात्रा, १७–आत्म-अभ्यास, १८–उत्पत्ति-हेतु, १६–शब्द-परीक्षा, २०–वीरा रस-वैराग, २१–भ्रमविध्वंस, २२–उपदेश-चितावणी, २३–मनचरित, २४–मनमद-विध्वंस, २५–मनहर, २६–मनप्रसङ्ग, २७–मनमत प्रकार, २७–मन उपदेश, २६–व्यावला, ३०–तोडरमल, ३१–अमृतफल, ३२–ज्ञान-उपदेश, ३३–वारजोग, ३४–हंस-प्रमोद, ३५–बडी तिथि, ३६–लघुतिथि,

३७–चालीसपदी, ३८–चतुर्दशपदी, ३९–तीसपदी, ४०–बारहपदी, ४१–बावनी, ४२–सूर-समाधि, ४३–सूरसमाधि अर्थ, ४४–प्रवृत्ति-निवृत्ति, ४५–माया छन्द, ४६–जोगमूल सुखजोड, ४७–ज्ञान-अज्ञान परीक्षा। इन सैतालीस लघुग्रन्थो मे दो—वन्दना व निराकार-वन्दना केवल गद्य में हैं, शेष पैंतालीस छन्दोबद्ध है। पद्यबद्ध अधिकाश ग्रन्थ साखियो में है। शेष मे दो-तीन तरह के छन्दो का प्रयोग हुआ है। विषय-निरूपण प्राय. ग्रन्थ के नामानुसार हुआ है। किसी-किसी ग्रन्थ का निरूपण रूपक द्वारा किया गया है। कृषि, युद्ध, मद्य-निर्माण आदि को आधार बना आध्यात्मिक विषय का विवेचन किया गया है। ग्रन्थो के नामकरण, छन्द तथा विषय-निरूपण की शैली से सिद्ध होता है कि महाराज हरिदासजी की ये रचनाएँ नाथ-वाणियो का अनुकरण करती हैं। प्रश्नोत्तर-रूप मे विषय-विवेचन करना, अवधू के सम्बोधन से विषय-विवेचन करना नाथ-वाणियो की प्रमुखता है। हरिदासजी महाराज ने इन लघुग्रन्थो मे उसी पद्धति को अपनाया है।

पद—

ग्रन्थो के पश्चात् पद-रचना है। पद-रचना का विश्लेषण इस रूप मे है—१–राग गौड़ी पद गुणतीस, २–राग भैरव पद दो, ३–राग रामकली पद दस, ४–राग आसावरी पद अठारह, ५-रागसोरठ पद छब्बीस, ६-राग भैरों पद उन्नीस, ७–राग विलावल पद चौदह, ८–रागगूजरी पद एक, ९–राग टोडी पद एक, १०–राग का लंगडा पद एक, ११–राग नट पद छः, १२–राग मल्हार पद तीन, १३–राग सारंग पद छः, १४–राग वसन्त पद आठ, १५–राग अडाणो पद दो, १६–राग कान्हडा पद ४, १७–राग मारू पद ग्यारह, १८–राग केदारो पद ४, १९–राग विहंगड़ो (विहाग) पद दो, २०–राग धनाश्री पद पन्द्रह, अन्त मे तीन आरती है। कडखा व रेखता ये पद भाग मे ही सम्मिलित समझने चाहिए। इनकी संख्या बारह, आठ, बीस है।

कवित्त, कुण्डलियाँ, चान्द्रायण—

पदों के पश्चात् सोलह कवित्त है। विभिन्न प्रकरणो पर एक सौ नौ कुण्डलियाँ हैं। अंग विशेष पर चौसठ चान्द्रायण है।

साखी भाग—

वाणी का चौथा अंग साखी भाग है। जिसका विश्लेषण इस रूप मेंहै—१–गुरुदेव का अंग, दस साखी। २–गुरु-सिख पारख अंग, तेरह साखी। ३–सुमिरण का अग, बारह साखी। ४–विरह का अंग, छः साखी। ५–परचै का अंग, पन्द्रह साखी। ६–चितावणी अंग, उन्तीस साखी। ७–मन का अंग, बीस साखी। ८–माया का अंग, चौबीस साखी। ९–चाणक का अंग, अठाईस साखी। १०–भ्रमविध्वंस का

अंग, तेरह साखी। ११–भेष का अंग, सात साखी। १२–साच का अंग, दो साखी। १३–साधु का अंग, अठारह साखी। १४–मध का अंग, एक साखी। १५–उपदेश का अग, सात साखी। १६–विचार का अंग, एक साखी। १७–विश्वास का अंग, ग्यारह साखी। १८–पतिव्रता का अंग, छ साखी। १९–विरक्त का अंग, दो साखी। २०–सूरातन का अंग, चौबीस साखी। २१–कर्त्ता का अग, दस साखी। २२–सजीवन का अंग, तीन साखी। २३–दया-निर्वैरिता का अंग, एक साखी। २४–साध-महिमा का अंग, छ साखी। २५–करुणा का अग, एक साखी। २६–कामी नर का अंग, चौदह साखी। २७–साधु परीक्षा का अग, सात साखी। २८–साधु संगति का अग सात साखी। २९–हेतु प्रीति का अग, तीन साखी। ३०–निन्दा का अंग, तीन साखी। ३१–भय का अंग, एक साखी। ३२–कुशवद का अंग, एक साखी। ३३–दुविधा का अग, चार साखी। ३४–चितकपटी का अंग, चार साखी। इस तरह चौतीस अगो मे तीन सौ चार साखियाँ है। अन्त मे चार श्लोक भी दिये गए है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हरिदासजी महाराज की संपूर्ण वाणी चार भागो मे विभक्त है—१–लघुग्रन्थ, २–पद, ३–कुण्डलियाँ, कवित्त व चान्द्रायण। ४–साखी भाग। उक्त चतुर्विध रचना मे सबसे बड़ा पहिला भाग है। पूरी रचना का जोड़ अनुमानत: तीन हज़ार है।

भाषा—

वाणी की भाषा उस समय की हिन्दी कही जा सकती है। हम यहाँ भाषा के विकास-क्रम का विशद निरूपण आवश्यक नही मानते। किस तरह सस्कृत से प्राकृत, पैशाची व अपभ्र श भापा का रूप बना। अपभ्र श मे भी फिर प्रदेश-विशेष-मे बोल-चाल की भाषा के मिश्रण से भाषाओ के प्रायोगिक-रूपो मे अन्तर आया। महाराज़ हरिदासजी का जन्म तथा कार्यक्षेत्र राजस्थान का मारवाड उपप्रान्त है। उक्त प्रदेश मे बोली जाने वाली मारवाडी राजस्थानी भाषा के शब्द भी हरिदासजी महाराज की रचना मे आने अनिवार्य थे। मेरी समझ मे हरिदासजी की वाणी मे हिन्दी का जैसा रूप है, वह आगे चलकर खडी बोली के रूप मे कही जाने वाली हिन्दी भाषा के अधिक निकट है। राजस्थान मे जितने भी महात्मा-सन्त रचनाकार हुए है, प्रायः उनकी भाषा का एक-सा ही रूप सामने आता है। जो महात्मा कुछ शिक्षित थे, उनकी भाषा मे कुछ प्राजलता अधिक है। अधिकाश सन्त-महात्मा साधक थे, उनने विधितः सस्कृत आदि भाषाओ का अध्ययन किया हो–ऐसा प्रतीत नही होता। फिर भी उनकी रचनाओ मे भाषा का जो रूप सामने आता है, वह विशेष भाषाशास्त्र के सिद्धान्तो से विपरीत नही है। हरिदासजी महाराज संस्कृत भाषा के जानकार थे या पठित थे–ऐसा प्रतीत नही होता। पर उनकी अधिकाश रचना सुसम्बद्ध है। कही-कही छन्दो के प्रयोग मे मात्रा या वर्णो का ठीक से प्रयोग नही हुआ है। व्याकरण के सिद्धान्तो का निर्वाह सम्यक् रूप से होना सम्भव नही, क्योकि जब वे व्याकरण

के सम्यक् जानकार नही तो उसके प्रयोग मे भूले रह जाना स्वाभाविक है। भाषा के शाब्दिक प्रयोग-भेद से दो रूप माने गए है--डिगल और पिगल। डिंगल भाषा वह है-जो प्राकृत के अधिक समीप है। पिगल भाषा का वह रूप है, जिसमे अप-भ्रंश शब्दो के प्रयोग बहुत कम होते है। हरिदासजी महाराज की रचना भाषा के पिंगलरूप मे आती है। लघुग्रन्थो मे एक-दो रचनाएँ कुछ ऐसी है, जिनमे कुछ डिगल का सा आभास होता है। भाषा की वास्तविकता तो आप जब उनकी वाणी का अनु-शीलन करेगे तो आप ही आपको प्रतीत हो जाएगी ? फिर भी यहाँ कुछ उद्धरण दे देना आवश्यक है, जिससे भाषा-शैली का स्वरूप हमारी समझ मे अच्छी तरह आ सके।

ऊँच नीच निरभै मते, कोई भजो मुरारि ॥
भवसागर तिरवो कठिन, हरि नांव उतारे पारि ॥
नारायण के नांव की, मैं वलिहारि जाव ॥
भृङ्गी कीट पतङ्ग ज्यूँ, दुरे दूसरो नांव ॥
अलष अगम अविगत कहो, कहो निरंजन राम ॥
अरत कहो अलिपत कहो, अंत धणी सूँ काम ॥
गुरु हम सूँ ऐसी करी, जैसी गुरु सूँ होय ॥
अगम ठौर आनंद सदा, पला न पकड़े कोय ॥

ये रचना की चार साखियाँ है। पहिली साखी मे 'तिरवो' शब्द के स्थान पर "तिरना" कर दे तो मेरी समझ से यह विशुद्ध खडी बोली का रूप बन जाता है। तीसरी साखी मे "धणी" शब्द ठेठ मारवाडी का प्रयुक्त हुआ है। 'धणी' शब्द मालिक या स्वामी के लिए प्रयोग किया जाता है। यदि 'धणी' शब्द के स्थान पर 'प्रभु' शब्द का प्रयोग कर लिया जाय तो पूरी साखी विशुद्ध खडी बोली मे परिणत हो जाती है। चौथी साखी के प्रथम व द्वितीय चरण मे "सूँ" का प्रयोग है, इसको "सै" मे बदल देने पर यह साखी भी विशुद्ध खडी बोली मे परिणत हो जाती है। उक्त उद्धरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी में हिन्दी के जैसे रूप का प्रयोग रचनाओ मे हुआ है, उस पर व्रजभाषा का प्रभाव रहा है। उक्त काल का हिन्दी-साहित्य प्राय: ही व्रजभाषा की प्रधानता से युक्त था। राजस्थान मे हिन्दी-भाषा का जो रूप चला उसमे व्रजभाषा तथा गुजराती भाषा का मिश्रित रूप देखने मे आता है--

गहि गुरु ग्यान अगम कूँ ध्यावे, अगम अथाह थाह कोई पावे।
घट घट अघट सकल घट सोई, गुरगम तास लहै जन कोई ॥

उलटा खेल सहज घर आवे, धुनि में ध्यान तहाँ मन लावे ।।
अवगति अगम अगम गम कीया, नौ ग्रह पलट गगन रस पीया ।।
ता रस मुनि जन रया समाय, ता रस मनवा उलटि न जाय ।।
आपा गलि मिटिया अभिमान, अब हम जाण्यां जान सुजान ।।
दरिया रूप वार नहिं पारं, तामें मच्छा प्राण हमारं ।
काल न जाल नहीं भै नेरा, भूले न खेले मांज वसेरा ।।

सहज पियाला परम सुख, भरि भरि पीवे प्राण ।
आतम अंतरि देषिये, अवगति का अहनांण ।।

उक्त उद्धरण मे यदि "कूँ" "तास" "ता" "जाण्या" "भूले" "माज" इन शब्दो के स्थान पर "को" "ताहि" "तिहि" "जाना" "माँहि" इन शब्दो का प्रयोग हो तो यह पद बदल कर आधुनिक-हिन्दी के बहुत समीप आ जाता है । उक्त पद्य मे 'जाण्या' तथा 'भूले' शब्द मारवाडी के है । पद्य मे शब्द-योजना तथा प्रवाह अर्थ को व्यक्त करने मे स्पष्ट है । भाषा का स्वरूप जैसा है, उससे यह नही कहा जा सकता कि रचनाकार सर्वथा ही अशिक्षित है । पद्य अपने आपमे पूर्ण है, छन्द की पूर्ति है, अर्थानुबोध स्पष्ट है, भाषा मे चुस्ती है, शब्द-योजना प्रदेशानुबन्ध से सङ्गत है ।

पद्—गाफिल नींद न करिए रे ?

जीवण नहीं मरण शिर ऊपर ता मरणे से डरिए रे ।।टेर।।
रजनी मोह नींद भर सूता, परम भेद नहीं पाया रे ।
अति अभिमान वदत नहिं काहू, हीरा सा जन्म गमाया रे ।।
गहि गुरु ज्ञान जागि जिव जोगी, झूठे भरम भुलाना रे ।
हरि सूँ विमुख नाच नाना विधि, छाडि तजे सुलताना रे ।।
आयौ थौ तूँ सांचे सौदे, काचे लागो भाई रे ।
अठवाडा हम बिछड़त देख्या, जागो राम दुहाई रे ।।
अब तूँ समझि देषि निसि वीति, पैंडा करणा ल्योई रे ।
तस्कर बहुत दूर घर तेरा, साथी संग न कोई रे ।।
जन हरिदास राम भजि भाई, देखि देखि पगि धरणा रे ।
हरि दरबार झूठ नहिं भावे, तिल तिल लेषा भरणा रे ।।

यह एक पद का उद्धरण है। भाषा का रूप प्रादेशिक प्रयोग से स्पष्ट है। ता, तिस, काहू, सुं, आयौ थौ, पैडा, आदि शब्दप्रयोग व्रजभाषानुबन्धी है। भावाभिव्यक्ति मे कोई न्यूनता नही है।

सूरसमाधि जोगग्रन्थ—

आपणे आपणे गह मरचां बोलतां।
घणां अमला कियां आंखि नहिं खोलता ॥
खाणकां वायकां और कूँ छोलता।
सारधारा मँही देखि तन तोलता ॥
मूँछ गहि सापुरस न्याय हसि बोलता।
आज का दयौस नें खडग सत मोलता ॥
पडिया लग करि दाहिणों, वांवे भुज गहि ढाल।
आप अखाड़ै आयके, सब कों दीसै माहल ॥

इस पद मे प्रादेशिक भाषा की प्रधानता है ; साथ ही यह डिगल रचना के अधिक समीप है। पद मे प्रयुक्त शब्दो से अर्थ को सरलता से नही जाना जा सकता। पद मे दुरूहता है। उपर्युक्त चार उद्धरणो से वाणी मे प्रयुक्त भाषा शैली का स्वरूप हमारे सामने आ जाता है। राजस्थान के अन्य महात्मा दादू, हरिनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि की रचनाओ की अपेक्षा हरिदासजी की रचनाओ मे प्रादेशिक शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। जैसा कि निम्नलिखित शब्दो से प्रतीत होता है—

मारवाड़ी भाषा के शब्द—

सारिषो, गुडै, सवला, वापडा, निवेडा, रिण, टूक व्है, मूछाला, ददकारता, वाथौ, दाखिओ, परणवाना, वाग, पैला, पिसण, माल्हता, घणां, थोडा, वावडै, घुरे, खसै, कायरा, चुडला, भाजसी, कुंजरा, धमके, उरा, भलका, हेरता, काने, पगडा, हुडकणी, सूंधो, पलान, बूडा, ऊंडो, थाघ, दाघा, काठे, खूंणे, मैंगल, आंणिवा, अस्थान, भाडा, भैचक, खिरे, अपूठे, मांडे, पूठा, डाव, मंडया, काची, जामै, सीम, ब्रटपाडे, रूंधा, लूंणहरामी, मेवासा, नाह।

उपर्युक्त कुछ शब्दों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट ध्यान मे आ जाता है कि रचनाकर ने अपनी भावना व्यक्त करते समय बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दो की उपेक्षा नही की, प्रत्युत उनका स्थान स्थान पर प्रयोग कर अपनी

प्रादेशिकता को सम्यक् सिद्ध कर दिया है। हरिदासजी राजस्थान के थे, अत. राजस्थानी मे व्यवहृत होने वाले शब्दो का प्रयोग उनकी वाणी मे होना अनिवार्य था। वाणी मे प्रयुक्त भाषा का क्या रूप है? इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन ऊपर किया जा चुका है। बहुत विस्तृत विवेचन की इसलिए आवश्यकता नही है कि पाठक-जन वाणी का अनुशीलन करेगे तो भाषा की विभिन्न स्थिति उनके सामने स्वतः आ जायगी अत. एतद्विषयक जो निरूपण किया गया है, वह पर्याप्त है।

वाणी में विषयनिरूपण—

विवेच्य विषयों का वर्गीकरण किया जाय तो उनको दो भागों मे बाँटा जा सकता है—पहिला पारमार्थिक व दूसरा व्यावहारिक। इन्ही को अपर शब्दो मे कहे तो आध्यात्मिक-भौतिक नाम से भी कह सकते हैं। आध्यात्मिक विषय मे उन प्रतिपाद्य विषयो का समावेश समझना चाहिए, जिनमे चेतन तथा जड तत्वो की वास्तविकता का निरूपण कर मानवीय जीवन की सार्थकता के एकमात्र लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष का निरूपण किया जाता है। व्यावहारिक या भौतिक विषयो मे वे सब विषय सम्मिलित है, जिनमे जागतिक भौतिक पदार्थो की उत्पत्ति, विकास तथा उनकी प्राप्ति व प्रयोग का विवेचन रहता है। दोनो ही विषयो का प्रतिपादन ससार मे अनादिकाल से चला आ रहा है। विश्व की सभी भाषाओ मे इन्ही दोनो वर्गगत विषयो का विवेचन चलता रहता है। हमारे देश के साहित्य मे भी सहस्रो वर्षो से ये विषय प्रतिपादित होते रहे है। वेद, वेदाग, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि के रूप मे जो हमारा उच्चतम साहित्य है, उसमे इन उभय वर्गो पर विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार किया गया है।

महात्मा हरिदासजी ने संसार की असत्यता व नि सारता समझ महात्मा के निर्देश से गृहत्याग किया था। उनके मानस मे कौटुम्बिक स्वार्थपरायणता के विपरीत असत्य संसार से उदासीनता व आत्मतत्व की प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी, अतः अपनी साधना के पश्चात् उनमे आध्यात्मिक-भावना की ही प्रधानता रहना अनिवार्य था। अस्तु, उनकी वाणी मे एकान्ततः आध्यात्मिक विषय का ही प्रतिपादन हुआ है।

महात्मा हरिदासजी एक साधक थ, वे लेखक या रचनाकार नही थे। अतः उनकी वाणी मे हम एक परम साधक की अनुभूति का ही सम्यक् दिग्दर्शन देख पाते है। वाणी मे उनने अपनी साधना का भी दिग्दर्शन कराया है तथा साधना से वे जिस निश्चय पर पहुँचे, उसका निरूपण किया गया हैं।

आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रमुखतया तीन स ाधन-मार्ग निश्चित किये गए है—ज्ञान, भक्ति व कर्म। इन त्रिविध मार्गों से साधना द्वारा आत्मस्वरूप

॥ वाणी प्रकाशन का आय-व्यय विवरण ॥

सहायक दान दाताओं के नाम

१२७०) संत भोलादासजी कोलिया
११०१) संत वजरंगदासजी खाटू
११३०) संत भोलादासजी वजरगदासजी के प्रयास से
२५१) सन्त आशारामजी खाटू
१०१) सन्त जानकीदासजी कोलिया
१०१) ठाकुर कानसिहजी नीमी
१०१) सरजूबाई वडी खाटू
१०१) अयोध्या बाई जायल
१०१) भागीरथी बाई जायल
१००) पाराबाई नीमी
७५) सुजानगढ के तीन दाताओ से
५१) सन्त हेमदासजी पाली
५१) सन्त कल्याणदासजी नीमी
५१) रुकमा बाई जायल
२५) चुन्नी बाई सुजानगढ
२१) सन्त पीतमदासजी लाडणू
११३०)

व्यय विवरण

२६२६-७५ मातृभूमि प्रेस को छपाई के
२२८७-५८ प्रभुलाल टकसाली को कागज
८३५-७६ ब्लाक व चित्र छपाई के
८२७-४६ जिल्द बन्धाई व सामान
११-२४ प्रकीर्ण व्यय मजदूरी आदि
५०-०० पुस्तको के भेजने आदि के खर्च के लिए

६६४०-७१ व्यय का योग
६२०-२६ वचत शेष

७५६१-०० पूर्ण योग

५०१) स्वामी मगलदास जयपुर
४००) पुजारी माधोदासजी नवलगढ़
३०१) महन्त तुलसीदासजी जोधपुर
२५१) वैध्य प्रेमदासजी फलोधी
२५१) वैद्य गोपालदासजी विसाऊ
२५०) सन्त विष्णुदासजी केरू
२५०) सन्त सरजूदास जी डूंगरगढ
२०१) महन्त उत्तमरामजी वडू
२००) महन्त बालमुकन्दजी डीडवाना
१५१) सन्त नृसिंहदासजी नागौर
१०१) सन्त घोटूदास जी झूंझणू
१०१) सन्त जानकीदासजी माधोदासजी वालोतरा
१०१) सन्त महादेवदासजी सुलताना
१०१) सन्त सीतारामजी वाटेडू
१०१ सन्त पोकरदासजी खीवसर
१००) महन्त लालदासजी वालोतरा
५१) सन्त सम्पतरामजी नागौर
५१) वैध पुरुषोत्तमदासजी नागौर
५१) सन्त ईसरदासजी नागौर
५१) सन्त भक्तिरामजी खेतोलाव
५१) सन्त ब्रह्मदासजी दुगोली
५१) सन्त हनुमानदासजी भगू
५१) सन्त लक्ष्मणदासजी काँटिया
५१) सन्त छोटूदासजी अडूका
५०) सन्त जानकीदासजी बीकानेर
५०) सन्त गोपालदासजी बीकानेर
५०) सन्त नारायणदासजी बीकानेर
५०) सन्त आत्मारामजी बीकानेर
२५) सन्त प्रयागदासजी नागौर
२५) सन्त मोहनदासजी नागौर
२१) सन्त दयारामजी पनलावा
२१) सन्त हीरादासजी खीवसर
७५६१)

की प्राप्ति व चिरन्तन आनन्द की उपलब्धि की जा सकती है। ज्ञान मे तात्विक निश्चय, भक्ति मे विविध उपासना व कर्म मे योग का समाहार है।

महाराज हरिदासजी ने आत्मानन्द की प्राप्ति की-वह संयुक्त दो साधनों के द्वारा उन्हे प्राप्त हुई—ऐसा उनकी वाणी के अनुशीलन से कहा जा सकता है। वे दो साधन थे-निर्गुण भक्ति तथा योग। अत. वाणी मे प्रमुखतया इन्ही विषयो का विशद विवेचन हुआ है।

निर्गुण भक्ति तथा योग—

भक्ति शब्द का व्यावहारिक प्रयोग तो मेरी समझ से सगुणोपासना के ही लिए है। भक्ति शब्द का मूल अर्थ है सेवा। सेवा अभेद मे नही की जा सकती है। सेव्य और सेवक दो होने से ही सेवा की सार्थकता होती है। सगुणोपासना के आधार से ही नवधा-भक्ति का निरूपण किया गया है। अर्चन, स्मरण, कीर्त्तन आदि तभी किये जा सकते है, जब हम अपने उपास्य को अपने से भिन्न माने। इसीलिए भक्ति-समर्थको ने अद्वैत सिद्धान्त को न अपना, द्वैत सिद्धान्त को स्वीकार किया। द्वैत तथा अद्वैत के सिद्धान्तो पर भारतीय शास्त्रो मे बहुत विस्तृत विवेचन हुआ है। जैमिनि, बादरायण, कपिल, कणाद, गौतम, पातञ्जलि आदि दार्शनिको ने अपने-अपने दर्शनों मे द्वैत-अद्वैत विषयो का निरूपण किया है। अद्वैत के निरूपणकर्त्ता महर्षि बादरायण है। महर्षिकृत इस दर्शन का नाम वेदान्त-दर्शन है। यह दर्शन एकान्तत. अद्वैतपरक है, उसकी स्थापना भगवान् शङ्कराचार्य ने की। अत. इसका अब 'शङ्कर-वेदान्त' के नाम से भी व्यवहार होता है। दार्शनिको के मतभेद तथा उनका विवेच्य विषय अत्यन्त गम्भीर है। उस पर यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नही। महात्माओ ने भक्ति को तो अपनाया पर द्वैतपरक भक्ति को उनने नही माना। उनकी भक्ति अद्वैतपरक है, इसीलिए उसकी संज्ञा निर्गुण भक्ति हुई। निर्गुण भक्ति का अभिप्राय मेरी समझ से यह है कि अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार एक ही नित्यसत्य-तत्व मे अनन्य निष्ठा रखना। महात्माओं ने इसी अद्वैत ब्रह्मतत्व मे अपनी परम श्रद्धा स्थापित की अतः ये निर्गुण भक्त कहलाए। महाराज हरिदासजी ऐसे ही निर्गुण भक्त थे। उनने अपनी वाणी मे स्थान-स्थान पर इस परम तत्व की उपासना व इसका चिन्तन करने का निर्देश किया है। इस तत्व की उपासना मे न पूजा की, न अर्चना की आवश्यकता है, इसमे केवल अपनी मनोवृत्ति को तन्निष्ठ करने की आवश्यकता है। वृत्ति मे विविध विकल्पो का उत्पत्ति-विनाश होता रहता है। वृत्ति के इस चांचल्य का निवारण करने के लिए मन तथा इन्द्रियो को अधीन करना आवश्यक है-तदर्थ योग की साधना की आवश्यकता हुई। योग की साधना के भी कई रूप है—राजयोग, लययोग, हठयोग आदि। महात्माओं ने योग की साधना मे प्रमुखतया राजयोग का

आश्रय लिया है। कोई-कोई क्रिया हठयोग की भी अपनाई गई है। सबसे अधिक प्राण के नियन्त्रण पर बल दिया गया है। प्राण का नियन्त्रण–प्राणायाम साध्य है। अत. प्राणायाम का योग मे विशद निरूपण है। इसी से फिर सविकल्प, निर्विकल्प समाधियो की पूर्ति होती है। महात्माओ ने मनोनिरोध के लिए ही प्राण साधना को अपनाया और इडा, पिगला व सुषुम्ना पर नियन्त्रण कर उन्मनि दशा को प्राप्त किया। इस दशा को सहजावस्था भी कहा गया है। जब वृत्ति निश्चल हो जाती है, तब उसमे किसी प्रकार का सङ्कल्प-विकल्प नही होता। क्षोभ की तरगे नही उठती, यही वृत्ति की सहज दशा है, यह दशा उत्पन्न होने पर ही साधक स्थितप्रज्ञ बनता है। स्थितप्रज्ञ अवस्था का भगवान् कृष्ण ने गीता के द्वितीय अध्याय के पचपनवे श्लोक से बहत्तरवे श्लोक तक सम्यक् निरूपण करते हुए स्थितप्रज्ञ दशा को ही ब्राह्मी स्थिति बतलाया है–यही मुक्तावस्था है। महात्माओ ने अपनी साधना मे निर्गुण भक्ति तथा योग द्वारा इसी अवस्था की प्राप्ति की थी। अत उनकी वाणी मे साधन के निरूपण मे इन्ही दोनो का स्थान-स्थान पर प्राबल्य प्रकट होता है। हम यहाँ एतद्विषयक कुछ वाणी के बचन सङ्कलित करते है ताकि आप उनसे उक्त कथन का औचित्य जान सके—

निर्गुण नाम–

राम भजे तो आनन्द होय।

दीनानाथ दयाल दयानिधि, चिंताहरण सकल विधि सोय ॥टेर॥

हरिदासजी का राम कैसा है? ध्यान दे—

परम उदार अपार अखंडित, पूर्णब्रह्म भजन कर लोय।
औसर एसो वहौडि नहिं पावे, हरि विन कवहूँ भला न होय॥
आनन्दरूप अखिल अविनाशी, करणहार करता रस जांणी।
जहाँ तन धरे तहां ही साथी, प्रेम प्रीति कर ताहि पिछाणी॥
नारायण निर्वाण निरख नित, गरवहरण गोविन्द उरधारी।
जन हरिदास भजो अविनाशी, गुरगम यो ही ज्ञान विचारी॥

अवधू ऐसा ज्ञान विचारा।
है हरि अकल सकल विच व्यापी, रहे सकल तै न्यारा ॥टेर॥
ल्यौ में अलख अकल अविनाशी, सुरति सु यह मति जागी।
गोरष गोपी परसिपर निरभे, अनहद सींगी वाजी॥

निजपुर प्राण वसे निति निहचल, पवन सुरति सति माला।
ब्रह्म छोल में झूलैं खेलैं, पीवे अगम पियाला ॥
निकट नाथ निज रूप निरन्तर, नाम निरंजन राया।
जन हरिदास तिनहीं को वंदो, मन फिर मनहिं समाया ॥

भज मन अकल देव मुरारी।
नांव गहि रे नांव गहि, हरि लेत उतारे पारि ॥टेर॥
निकट नांव निजरूप बड निधि, सुखसिंधु वार न पार।
ता सिंधु मांहि वसे हंसा, चुगे मोती चार ॥
अगम अगाध अपार नरहरि, निरख रे दिल मांहि।
दास जन तहां सदा सनमुखि, हिन्या हीरा खांहि ॥
जहां गांव न ठांव न वरण वाडी, मन पकड़ रे निधि जोय।
जन हरिदास रसना राम रटि हूँ, पीव सदा संग सोय ॥

उपर्युक्त तीन पदों मे नाम के विशेषणो पर ध्यान दीजिये। उक्त विशेषणों से स्पष्ट है कि हरिदासजी का उपास्य वही अगाध ब्रह्म है, जिसको हम सत्-चित्-आनन्दरूप से निर्देश करते है। "आनन्द रूप अखिल अविनाशी, 'ब्रह्म छोल में झूलै खेलै, "निरख रे दिल माहि" ये तीन पदो की तीन पंक्तियाँ किस विशेष का संकेत करती है—यह स्पष्ट है। आगे साधना मे योग के अनुसरण को व्यक्त करने वाले भी दोतीन पद उद्धृत किये जाते हैं—

मन रे उलटि सहज घरनाया ? तव लग वादि वक्या वोराया ॥टेर॥
नाभि कँवल में पवन निरोधे, तो सत गुरु का चेला।
मन गहि पवन अगम घर खेलूँ, करूँ अगम सूँ मेला ॥
उलटा खेलि गगन में पेसूँ, सुरति सहज घर धारूँ।
परम जोति सूँ हिलमिल खेलूँ, एसा अरथ विचारूँ ॥
जन हरिदास निरभै निधि परसूँ, परम सिन्धु में न्हाऊँ।
जठर अगनि में प्राण न होमूँ, आवागमन चुकाऊँ ॥

अणबोल्या गावे जे कोई , अजपा जाप निरन्तर होई ।।टेर।।
भजौ निरंजन भरम गमाय , जुरा न व्यापै काल न खाय ।
जोनी संकट आवे नांहि , प्राण समावे हरिपद माँहि ।।
सुषमनि फेरि घेरि घर आनें , अरथ विचारे अगम पिछाणे ।
मूल कँवल में पवन निरोधे , तब मन कूँ मनही परमोधे ।।
त्रिविध ताप तज सहज विचारे , जागि न सोवै जीति न हारे ।
त्रिवेणी तट बैसे जाय , धुनि में ध्यान रहे लौ लाय ।।
आसा मेट निरास संभारे , सून्यमंडल में आसण धारे ।
सात समंद मधि डारे धोय , जन हरिदास जोगी जन सोय ।।

×

अब हम रामभजन सुख पाया ।
काम किवांडी जड़ी जतन सूँ , मोह मता मुरझाया ।।टेर।।
विकसत कँवल सबद सत सुनिया , सुनि मंडल में सारं ।
वरसै सुन्नि गगन रस भीजे , सदा अखंडित धारं ।।
चन्द सूर एकै रथ बैठा , पवन विरोले वाई ।
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ।।
स्यो धरि सकति सकति सूँ मेरा , भरम गया भै भागा ।
गगनमंडल में वसै उडांगर , ऊँचे आरंभ लागा ।।
निराकार निरलेप निरन्तरिं , महल मिलै वनमाली ।
सुख में सीर अखिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ।।
घट घट अघट अगह अविनाशी , वंकनालि रस पाया ।
पांचू थकत छक्या रस खेलै , आनन्द अरथ समाया ।।
नवधण धरा गरक गुण तीनूं , रामरतन धन नेरा ।
वूठै मेह पहम रुति पलटै , सुख में रहे वसेरा ।।
है हरि अकल सकल की शोभा , जागि लहै सो जीवै ।
जन हरिदास तातै रावलिया , अगम पियाला पीवै ।।

उपर्युक्त तीन पदो मे साधन-काल मे महात्मा हरिदासजी ने योग का आश्रय लिया तथा आगे भी साधक को यदि वह निर्गुण उपासना का इच्छुक है तो योग का आश्रय लेना चाहिए-यह व्यक्त होता है। उदाहरण और देने की मै आवश्यकता नही समझता। उक्त उदाहरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि महाराज की वाणी मे निर्गुण भक्ति तथा योग का पर्याप्त निरूपण है, अत. यही वाणी का मुख्य विवेच्य विषय सिद्ध होता है।

६. सैद्धान्तिक पक्ष—

वाणी के स्वरूपज्ञान के पश्चात् पाठक को यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि महात्मा हरिदासजी ने व्यावहारिक-जीवन के लिए क्या सिद्धान्त स्थिर किये तथा पारमार्थिक-जीवन के लिए क्या साधना तथा क्या लक्ष्य रखे ?

जैसा मै पीछे व्यक्त कर आया हूँ कि हरिदासजी के उपदेशक गुरु महात्मा गोरखनाथजी या अन्य कोई नाथ-महात्मा थे। उनने अपनी साधना मे वही मार्ग अपनाया, जैसा कि नाथ सिद्ध महात्मा अपनाते आये थे। वाणी की रचना मे भी नाथ-वाणियो का अनुगमन किया गया है, तब सैद्धान्तिक पक्ष पर नाथ-सिद्धो की मान्यताओ का प्रभाव न होता यह कैसे हो ?

मेरी मान्यता है कि पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर अब तक की शताब्दियो मे जितने भी निर्गुण सन्त-साधक हुए है, उन पर नाथ-सिद्धो की विचारधारा का प्रभाव किसी न किसी अंश तक अवश्य पडता रहा है। निर्गुण भक्त-साधको की परम्परा का प्रारम्भ कबीरजी से हुआ है। कबीरजी के समकक्ष तथा उनसे पीछे होनेवाले महात्माओ ने कबीरजी का अनुगमन किया है। कबीरजी केवल एक सन्त या साधक ही नही थे, वे उच्च कोटि के विचारक भी थे। कबीरजी ने कुछ सिद्धान्त नाथ-सिद्धो के स्वीकार किये जैसे केवल शास्त्रीय पक्ष की ही मान्यताओ से जीवन को बाँध दिया जाय—यह युक्तियुक्त नही है। किसी पक्षविशेष से युक्त ही धर्म धर्म है, ऐसा कहना या मानना असंगत है। जातीय भेदभाव व ऊँच-नीच की कल्पना असगत है, यदि उसका निरूपण किन्ही शास्त्रो मे हुआ हो। इसीलिए स्वयं कबीरजी ने तथा परवर्त्ती सभी निर्गुण साधक-सन्तो ने वेद, कुरान, सापेक्ष धर्म तथा जातिवाद से अपना मतभेद व्यक्त किया है। कबीरजी ने कुछ अपनी स्वकीय विचारधाराएँ भी व्यक्त की है। कबीरजी के पश्चात् या समकाल मे होनेवाले महात्माओ का झुकाव इसी रूप मे देखा जाता है कि वे नाथ-सिद्धो तथा कबीरजी के निश्चयो से सहमत है।

अवतारवाद—

महात्मा हरिदासजी की वाणी मे आप देखेगे कि उनने सगुण भक्ति को मान्यता नही दी। इसलिए अर्चन, पूजन, कीर्त्तनादि तथा अवतारवाद का उनने

कोई महत्व स्वीकार नही किया। उनकी धारणा है कि दस अवतार या चौबीस अवतारों की केवल कल्पना है। जो परम चेतन-सत्ता, जिसको हम व्यापक ब्रह्म के नाम से स्मरण करते है, वह बराह, मत्स्य, हयग्रीव, नृसिह, वामन आदि के रूप मे अवतार धारण करे--इसका कोई औचित्य नही है। उन्हे ईश्वरावतार मानकर उस व्यापक-विशेष चेतन-सत्ता (ब्रह्म) की अवज्ञा करनी है। उनके विचार मे परम सत्ता-चेतन ब्रह्म अवतार-विशेष के रूप मे अवतरित नही होना चाहिए। जिनको हम अवतार संज्ञा देते है, वे अन्य सृष्टि के प्राणियो की तरह ही उत्पन्न हुए है। उनमे अपनी साधना से कुछ विशेषताएँ आयी—यह दूसरी बात है। अवतारो के विषय मे गोरखनाथजी, कबीरजी व हरिदासजी की रचना के निम्न अंश देखिए—

तुझ पर वारि हो अणघड़िया देवा।
घड़ी मूरति को सब कोई सेवै, ताहि न जांणे भेवा ।।टेर।।
तूँ अविनासी आदू कहिए, मोहिं भरोसा पड़िया।
सब संसार घड्या है तेरा, तूँ किनहूँ नहिं घड़िया ।।१।।
दश औतार औतिरिया तिरिया, वै पण राम न होई।
कमाई अपणी उनहूं पाई, करता औरे कोई ।।२।।
तूँ पूरण ब्रह्म पुरुष प्रिथमी का, सूरति मूरति सारा।
श्रवणों सुण्या न नैनां देख्या, तेरा घडने हारा ।।३।।
तूँ तो आप आप तैं हूवा, तूँ देष्या उजियारा।
गोरष कहै गुरु के सबदां, तूँ ही घड़ने हारा ।।४।।

(पद ५८ गोरख वाणी पृ० १५४)

तिंहि साहब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटिके होहु सनाथा।
दशरथ कुल अवतरि नहि आया, नहिं लंका के राव सताया।
नहि देवकि के गरभहिं आया, नहीं जसोदा गोद खेलाया।
प्रिथमी रमन दमन नहिं करिया, पैठ पताल बली नहिं छलिया।
नहिं बलिराज से मांडल रारि, नहिं हिरनाकुस वधल पछारी।
होय वराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्रि न करिया।
नहिं गोवरधन कर नहिं धरिया, नहिं ग्वालन संग वन वन फिरया।
गंडक सालिगराम न सिला, मच्छ कच्छ होय नहिं जला हिला।

द्वारावती शरीर न छाड़ा, लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा।
साखी—कहहिं कबीर पुकार कै, वा पथ मति भूल ॥
जिहि राखे अनुमान कै, थूल नहीं अस्थूल ॥
(रमैणी बीजक पृ० ८४–८५)

दस औतार दसूँ ए देसो, औरां और चढावे।
सो बाजीगर भला क नांही, एक कूँ करे गमावे ॥टेर॥
परम पुरष का पार न पावे, आसा सूँ रस लूधा।
सूधा राह सहज नहिं छोड्या, ऊजड़ पड्या अलूधा ॥१॥
निराकार निरभै रे सन्तो, जो आकार सजावे।
हीडागर हीडा को बोड़े, सो भी धणी कहावे ॥२॥
तरंग सिन्धु सो भी हरि नांहि, निहचै जाय विलावै।
जन हरिदास अविनासी भजतां, भौजल निकट न आवे ॥३॥
(वाणी पद भाग पृ० २०१)

सतगुरु दीया भेद बताय, रहै राम दूजा सब जाय ॥
धरी देह तैता आकार, सो क्यूँ कहिए सिरजनहार।
जाकै राग-द्वेष कछु व्यापै नाँहीं, सोइ रमता राम सकल घट माँही।
भक्ति हेत कोइ भक्त पठाया, आप अगाध यहाँ नहिं आया।
पहरयाँ भेष मिटी भषभूरी, नैडा राम बतावे दूरी ॥२॥
दस ओतार कहो क्यूँ भाया, हरि अवतार अनन्त करि आया।
जल थल जीव जिता अवतारा, जल ससि ज्यूँ देखो तत सारा ॥३॥
हरि अपार पार को नाँहीं, साधू जन खेले ता माँहीं।
जन हरिदास भज केवल राम, निरमल नांव तहाँ विसराम ॥४॥
(वाणी पद भाग पृ० २८८)

उपर्युक्त चार पदोमें एक गोरखनाथजी का व एक कबीरजी का तथा दो हरिदासजी के है। चारो पदों मे एक ही भाव है कि परमपिता परब्रह्म परमेश्वर अवतार धारण नही करता। हरिदासजी की वाणी मे अनेक स्थानो मे इसी आशय का निरूपण है। हम और उदाहरण नही देते–उनका 'चालीसपदी ग्रन्थ' इसी भावना से ओतप्रोत है।

मूर्त्तिपूजा—

जब अवतारवाद को हरिदासजी ने स्वीकार नही किया—तब मूर्त्तिपूजा मे उनकी निष्ठा होने का प्रश्न ही नही उठता। क्योकि मूर्त्तिपूजा का आधार ही सगुणोपासना है। अवतार की मान्यता को लेकर ही राम-कृष्णादिको की मूर्त्तियो व मदिरो का निर्माण हुआ। मूर्त्तिपूजा का औचित्य है या नही, यह पर्याप्त विवादग्रस्त विषय है। जड वस्तु को परम चैतन्य के रूप मे मानना व देखना संगतिपरक नही। मूर्त्तियाँ मनुष्यो के द्वारा बनाई जाती है। मूर्त्तियो के रचयिता कारीगर सामान्य मनुष्य होते है। अत. महात्माओ ने उस परब्रह्म परमेश्वर को मूर्त्ति मे अवरुद्ध करना उचित नही माना। उनकी तो मान्यता है कि वह परमपिता परमेश्वर अणु-अणु मे व्याप्त है। कौन सा ऐसा क्षेत्र है, कौन सी ऐसी जगह है, जहाँ उसका अभाव है ? हरिदासजी ने इस विषय मे अपनी क्या सम्मति व्यक्त की है—उसको देखने पर उनकी भावना को समझने मे कोई बाधा नही होगी। वे कहते है—

ज्यूँ मूरति त्यूँ ही सिला, राम बसे सब माँहि ॥
जन हरिदास पूरण ब्रह्म, घाट वाधि कछु नाँहि ॥१॥

माणस परमेश्वर किया, सो तो करता नाँहि ॥
जन हरिदास करता पुरसि, व्यापि रह्या सब माँहि ॥२॥

नहिं देवल सूँ वैरता, नहिं देवल सूँ प्रीति ॥
कृत्रिम तज गोविन्द भजे, या साधाँ की रीति ॥३॥

लोक दिखाओ मत करै, हरि देखे त्यूँ देख ॥
जन हरिदास हरि अगम हैं, पूरण ब्रह्म अलेख ॥४॥

जन हरिदास साची कहै, साहबजी की सौंह ॥
पाहन को करता कहै, ताका काला मौंह ॥५॥

देवल माँहीं देव है, घट घट धरया बणाय ॥
जन हरिदास या चूँध है, तूँ गुण गोविन्द का गाय ॥६॥

हरिदासजी के उपर्युक्त वाक्यो मे मूर्त्तिपूजा सम्बन्धी उनकी भावना का चित्र स्पष्ट सामने आ जाता है। उनका तर्क है कि यदि मूर्त्ति मे भगवान् साक्षात् रूप में विराजमान है तो उस शिला मे, जिससे मूर्त्ति बनती है, परमेश्वर क्यो नही है ? मूर्त्ति मनुष्य द्वारा ही बनाई जाती है, अत. मनुष्यकृत मूर्ति उस परमेश्वर का प्रातिनिध्य कैसे करे ?—जो मनुष्य का स्वयं निर्माणकर्त्ता है। हरिदासजी मूर्त्तिपूजा को

लोक-दिखावा मानते है। उनका निर्देश है कि कृत्रिममूर्त्ति मे परमेश्वर को खोजने की अपेक्षा उसकी सर्वत्र व्यापकता विद्यमान है, उसी मे अपना ध्यान लगाना ठीक है। हरिदासजी के मत मे अवतारवाद और मूर्त्तिपूजा का कोई औचित्य नही है।

धर्मविशेष और जातीयता—

निर्गुण सन्त साधको ने इन दो पक्षो के विरुद्ध बहुत बल दिया है। धर्म को पक्षापक्षी मे बॉटना तथा जातीयता के आधार पर मनुष्य-मनुष्य मे भेद करना वे सर्वथा असंगत समझते है, क्योकि उनका व्यावहारिक आधार आत्मतत्व है। महात्माओ ने प्राणिमात्र के लिए एक धर्म माना है, जिसको हम प्राणिमात्र का धर्म या मानव-धर्म नाम से कह सकते है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि विभिन्न धर्मो की कल्पना का कोई तात्विक आधार नही है, सब धर्मो मे प्राणि-मात्र के हित की धारणा अपनाई गई है, जो कुछ भेद माना गया है वह विविध रूढ़ियो पर अवलम्बित है। महात्माओ ने तथ्य की ओर ही ध्यान दिया है। तथ्य मे परिवर्तन की आवश्यकता नही। रूढ़ियो मे कालानुबन्ध से पुन पुन परिवर्त्तन होता रहता है, इन्ही के कारण एक-एक धर्म मे और उपधर्मो की कल्पना बनती है। उदाहरणतः सनातन धर्म इसमे फिर शैव, शाक्त वैष्णव धर्मो की कल्पना। इसी तरह रूढ़ियो की हेरा-फेरी से सापेक्षिक धर्म विशेषों मे उपधर्मो की उत्पत्ति होती रहती है। इसका परिणाम फिर आगे जाकर वर्गवाद मे पनपता है, जिससे विश्वकल्याण का मार्ग रुक जाता है। वर्गवाद की प्रबलता का परिणाम फिर आपसी सघर्ष को जन्म देता है। इतिहास के पृष्ठों मे इस संघर्ष से उत्पन्न विश्वयुद्धों के भयानक चित्र अङ्कित है।

महात्माओ की दृष्टि आत्मा पर होती है। आत्मा मे न विभिन्न धर्म है, न विशेष जाति, अत वे सब प्राणियो के साथ आत्म-बन्धुभाव से व्यवहार करने के समर्थक होते है। उनके सामने न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान, न कोई बौद्ध है, न कोई ईसाई। न वे किसी को ब्राह्मण मानते है, न वे किसी को शूद्र। न उनके सामने कोई संन्यासी है न कोई शेख, उनके सामने एक ही चेतन तत्व है जिससे उनमे सजीवता है। इस चेतन तत्व से सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर किसी भी प्राणी का धर्म व जाति उसका अस्तित्व कायम नही रख सकते। अतः वे सब निःसार व काल्पनिक हैं। विश्व-कल्याण, देशोन्नति या समाज के उत्थान का आधार यह महात्माओं का सिद्धान्त बने, तभी सबका उत्कर्ष बढ़ सकता है, अन्यथा धर्म विशेष और जाति-विशेष का यह विष न विश्व मे शान्ति रख सकता हैं, न मनुष्य-मनुष्य को समीप ला सकता है, अतः सन्त साधको ने धर्मविशेष तथा जातीयता को अनुपादेय बताया है तथा उसमे वस्तुतः विचार किया जाय तो औचित्य भी है।

उक्त विषयो पर उनका दृष्टिकोण क्या है? तदर्थ नीचे कुछ उक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

हिन्दू तुरक एक कल लाई, राम रहीम दोय नहिं भाई ॥
यहाँ बामण वहाँ मुल्लव करे, वेद कतेब कथे विसराम।
राम संभारि दूर कर मैं तैं, आखरि एक अलह सूँ काम ॥
ये सब जीव उपाया साहब, ता सूँ मार पड़ो क्यों दूरि।
जन हरिदास यह अरथ विचारे, ता सूँ खालिक सदा हजूरि ॥
पाँच तत्व का पूतला, रज वीरज की बूँद।
एकै घाटी नीसरया, बामण छत्री सूद ॥
शूद्र वैश छत्री विप्र, विद्या विसतार न वादं।
नहिं हिन्दू नहिं तुरक, सराह नहि सबद न साधं ॥
चारि वरण का मूल कहाँ, हरि परम सनेही पीव।
हारि जीत भुरकी पड़ी, तहां अलूधा जीव ॥
विविध धर्म तपस्या विविध, चलत देह के भाय।
सु तो पंथ कोई और है, जहाँ सात समद लंघि जाय ॥

उपर्युक्त साखियो का अर्थ स्पष्ट है।

नामस्मरण—

महात्मा हरिदासजी ने निर्गुण-भक्ति को अपनाया था। अतः भक्ति मे नाम-चिन्तन का आधार भी लिया जाता है और पिछले साधको को मार्ग-दर्शन मिलता है। स्वयं हरिदासजी ने भी नामस्मरण को आरम्भ मे अपनाया था, ऐसा प्रतीत होता है और वह नाम था—निरञ्जन राम का। वाणी के प्रायः सभी प्रकरणो मे जहाँ भी प्रसङ्ग आया है, महाराज हरिदासजी ने निरञ्जन शब्द का प्रयोग किया है। मै पीछे "साधना" के विवेचन मे इस विषय पर पर्याप्त लिख आया हूँ, पुनः उसके उल्लेख की आवश्यकता नही है। निरञ्जन शब्द व्यापक विशुद्ध (माया-अविद्या रहित) ब्रह्म के लिए विशेषण रूप मे प्रयुक्त होता है।

श्रुतियों मे तथा दर्शनों मे जहाँ तत्व-विवेचन किया गया है, वहाँ ब्रह्म के निरूपण में यही उल्लेख किया गया है कि वह केवल एक ही विशुद्ध तत्व के रूप मे

उत्तरखण्ड विविध महात्माओं की रचना का

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
५	६	कल्यानकारी	कल्याणकारी
५	१९	सत्य	सप्त
१६	४	मुरति	सुरति
१८	६	मै	भै
२०	१२	लोपना	लोयना
४८	१८	दरीपा	दरिया
६०	३	दाह	दह
६१	१९	अभयग्रान्थागार	अभयग्रन्थागार
६७	१२	सुकल	सुफल
७३	२०	घापै	श्रापै
७४	१०	सारंगप्रान	सारंगपाणि
७९	२७	लिविडतमनिशायां	निविडतमनिशायां
८१	१	पुन्प	पुन्य
८१	१३	भमंत	मेमंत
९१	१	मेटिये	भेटिये
९४	८	अघाध	अगाध
१०१	७	रजाइण	रसाइण
१०२	२५	बहीयो	बहियो
१०६	२६	ससीषे	सरीषे
१०८	२५	बिष	बीष
१२०	२३	सषनौ	सपनौ
१२१	२	अनराग	अणराग
१२१	८	षरि	परि
१२२	६	षाइ	पाइ
१२३	२३	हाँथि	हाथि
१३२	१०	गुर्	गुरु
१३८	२३	षीयो	पीयो
१४४	१३	चरपर	चटपट
१४६	९	रामनन्दं	रामानन्द
१५२	१	किश्न	शिश्न
१५७	५	प्राप्त्य	प्राप्त

अशेष ब्रह्माण्ड मे व्यापक है। निर्गुण शब्द भी एक तरह से इसी बात को व्यक्त करता है कि जो तत्व गुण-धर्मरहित है, वह निर्गुण-शब्दवाच्य है। यहाँ गुण शब्द प्रकृति के त्रिगुणात्मक रूप के लिए व्यवहृत है। जहाँ कपिल ने जड प्रकृति को एक तत्व के रूप मे स्वीकृत किया है, वहाँ अन्य दार्शनिको ने माया-अविद्या नाम से जड का निरूपण किया है। निर्गुण तथा निरञ्जन एक ही अर्थ को सिद्ध करते है कि वह परब्रह्म व्यापक तत्व गुणरहित अंजन (माया-अविद्या) रहित है। हरिदासजी का राम यह निरञ्जन राम था। हरिदासजी ने इस नाम को क्यो अपनाया ? इसका सीधा प्रत्युत्तर यह है कि हरिदासजी के गुरु गोरखनाथ या कोई नाथ-महात्मा थे, उनने ब्रह्म को "अलख निरञ्जन" शब्द से सम्बोधित किया है। कबीरजी ने भी नाम-चिन्तन मे "निरञ्जन राम" का निर्देश किया है। हरिदासजी ने भी उसी का अनुगमन किया है। मै यहाँ नाथवाणी, बीजक या हरिदासजी की वाणी के उद्धरण देकर लेख-वृद्धि करना संगत नही मानता। उक्त महात्माओ ने "अलख निरञ्जन" या "निरंजन राम" का नाम-चिन्तन अपनाया, अतः निरंजनी सम्प्रदाय मे आज तक नामस्मरण मे "अलख निरजन सब दुखभंजन—राम निरंजन हरि निरंजन" का व्यवहार प्रचलित है। साधना का हम पीछे दिग्दर्शन कर आये है। मेरे विचार मे हरिदासजी के सिद्धान्त पक्ष मे जो वैशिष्ट्य है वह ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। सगुणोपासना, मूर्त्तिपूजा, धर्मविशेष, जातीयता, विविध देवी-देवता—इन पक्षो को हरिदासजी ने स्वीकार नही किया। वे व्यापक मानव-धर्म के अनुयायी थे, उसी का उपदेश किया। प्राणिमात्र मे स्नेह, अपने मे अकिचनता या परम गरीबी, सब प्राणियो के साथ आत्मिक सम्बन्ध, उस अचिन्त्य व्यापक चित्‌शक्ति मे अनन्य श्रद्धा—यह ही उनका लक्ष्य या ध्येय था, इसकी पूर्ति उनने निरंजन राम के स्मरण-चिन्तन से तथा यौगिक-साधना द्वारा मन-इन्द्रियो को वश मे करके की।

७. द्वादश-महन्त निरंजनी—

राघोदासजी कृत भक्तमाल मे द्वादश निरंजनी-महन्तो का विवरण है। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि उक्त विवरण मे दिये सभी महात्मा निरंजनी थे। उक्त बारह निरंजनी महात्माओ का क्रम इस तरह है—१–लपट्यौ जगन्नाथ, २–श्यामदास, ३–कान्हडदास, ४–ध्यानदास, ५–खेम, ६–नाथजी, ७–जगजीवन, ८–तुरसीदास, ९–आनदास, १०–पूर्णदास, ११–मोहनदास, १२–हरिदास। इस क्रम मे हरिदासजी का नाम अन्त ही अन्त मे है। पर जहाँ बारहो का भिन्न-भिन्न वर्णन किया है उस वर्णन-क्रम मे हरिदासजी छठे है। इससे स्पष्ट है कि भक्तमालकार ने उक्त विवरण मे नामोल्लेख किये है, उनका पहिले या पीछे, बड़े-छोटे से सम्बन्ध नही है। उनके विचार से उक्त बारह महात्मा ही निरंजनी सम्प्रदाय में प्रमुखस्थानीय थे। इसी भाव का समर्थन स्वामी हरिरामजी के इस कथन से होता है—

जन हरिदास हरि सुमर दास तुरसी तत्त पाया।
श्याम तजी सब श्यामता पद पूरण ध्याया ॥
ध्यान धरत हरि मिले नाथ मतिनाथ ही गाया।
कान्हड़दास कृपालु खेम पुनि षेम समाया ॥
मोहन भजे मुरारि दास जगजीवन सिद्धवर।
आनदास जगन्नाथ भये प्रभु के अनुचर ॥
घाटवाध इनमें नहीं अधिकारी निज धाम के।
द्वादश महन्त निरंजनी सदा बसहु हरिराम के ॥१॥

राघोदासजी की भक्तमाल का रचनाकाल १७७० माना जाय, तो हरिरामजी का काल भी अठारहवी शताब्दी है। जैसा उनने स्वरचित 'छन्द रत्नावली' के अन्त मे काल का निर्देश किया है—

सम्वत् सर नव मुनि शशि नभ नवमी गुरु मानि।
नगर डीड दृढ़ कूप तहिं ग्रन्थ जन्मथल जानि ॥

अङ्कगणना के विपरीत क्रम से १७९५ का सम्वत् 'छन्द रत्नावली' की रचना का है। मतलब—राघोदासजी व हरिरामजी समसामयिक से ही थे। हरिरामजी ने अपने इस पद्य मे सभी को उच्च महात्मा के रूप मे स्मरण किया है। निरजनी सम्प्रदाय मे दर्शनदासजी के शिष्य प्यारेरामजी ने भी भक्तमाल की रचना की है। उसमे उनने हरिदासजी महाराज को छोड शेष एकादश का स्थानादि सहित इस तरह निरूपण किया है—

जगन्नाथ थिरोली में थिरता जु पाय रहे,
पूर्णदास पूरे मत भंभोर रहाइये।
तुरसीदास शेरपुर सार सार काढ लियो,
टोडा माँहि नाथ जिन निरंजन गाइये ॥
श्यामदास दत्तवास दुविध्या को दूर कर,
आनदास लुहाली में सदाई रहाइये।
मोहनदास मोह तजि देवपुर रहे आय,
कान्हड़दास चाड़सू परचो जिन पाइये ॥

महर जू सामोद माँहिं ध्यानदास धरचो ध्यान,
जगजीवण भादवे मेलो जू रचाइये ।
षेमदास सिवहाड़ साचो मत जिन थाप्यो,
बारै ठौर बारे म्हंत ऐसी विधि गाइये ।

अन्तिम चरण मे 'बारै' का उल्लेख है ।* बारहवे डीडवाणे हरिदासजी है, जिनका निरूपण विस्तार से भक्तमाल के आरम्भ मे किया है । प्यारेरामजी की भक्त-माल का काल १८८३ है ।

हरिरामदासजी महाराज के शिष्य रामदासजी, उनके शिष्य दयालदासजी, जिनकी पर्याप्त रचनाएँ है, उनने भी भक्तमाल की रचना की है । उनका काल १८४० से १८८० है । उनकी भक्तमाल मे जहाँ निरजनी सम्प्रदाय का निरूपण प्रारम्भ हुआ है, उनने भी पहिले द्वादश निरंजनी महात्माओ का परिचय दिया है—

हरिदास पुनि श्यामदास तुरसी धन पूरण ।
जगन्नाथ जन षेमदास मोहन मन चूरण ।।
कानड़ ध्यान जू दास भया जगजीवन पारा ।
आनदास जू नाथ भाल तथ अरथ विचारा ।।
राम सुमर मन जीत जग षट् सरोज उर मंजनी ।
अंजन तज निरंजन मिले पंथ द्वादश निरंजनी ।।४१५।।छंद.

इनने महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो का भी परिचय नामोल्लेख से किया है । हरिदासजी से छठी पीढी मे हुए परम सन्त महात्मा सेवादासजी का भी उक्त भक्तमाल मे निरूपण है । उपर्युक्त सभी सन्त-लेखको ने इन बारह सन्तो को निरंजनी निर्गुणोपासक भक्त माना है । हरिदासजी निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने गए है । राघोदासजी ने इनका विवरण करते हुए व्यक्त किया है कि ये सब कबीरजी मे श्रद्धा रखने वाले थे । उनकी उक्ति यह है—

"अब राषहिं भाव कबीर को इम एते महन्त निरंजनी"

जैसा मै पहिले निवेदन कर आया हूँ कि कबीरजी के पश्चात् हुए सभी महात्माओ ने उनको परम श्रद्धा से स्मरण किया है तथा अनेको महात्माओ ने उनमें गुरुभाव भी प्रदर्शित किया है । राघोदासजी ने अपने छप्पय के अन्तिम चरण मे इसी का संकेत किया है ।

जगन्नाथजी, तुरसी, श्याम, खेमदासजी आदि निरंजनी ही थे—यह तो सिद्ध है। पन्थ-प्रवर्त्तक हरिदासजी महाराज हुए—यहभी स्पष्ट है। "उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा" के माननीय लेखक पं० परशुरामजी चतुर्वेदी ने राघोदासजी की भक्तमाल के आधार पर चार निर्गुण सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक नानक, कबीर, दादू, जगन —माने है। जगन नाम से उधर द्वादश महन्त निरंजनी मे कोई है नही, अत. चतुर्वेदीजी ने सम्भावना की कि शायद राघोदासजी ने लपट्यो जगन्नाथ के नाम से प्रथम जिनका निरूपण किया है, दूसरे छप्पय मे उन्ही का संक्षेप "जगन" कर लिया गया है और वे ही निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक कहे जा सकते है। चतुर्वेदीजी ने स्वयं ही आगे इस सम्भावना को अप्रामाणिक मान लिया है। मेरी समझ से राघोदासजी के छप्पय को ध्यान से देखा जाय तो इस सम्भावना का निराकरण हो जाता है।

राघोदासजी का छप्पय इस रूप मे है—

नानक सूरज रूप भूप सारे परकासे।
मघवा दास कबीर ऊसर सूसर वरषा से॥
दादू चन्द सरूप अमी कर सबको पोषे।
वरन निरंजन मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे॥
ये चार महन्त चहुँ चक्कवै च्यारि पंथ निरगुन थपे।
नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे॥३४२॥

उक्त छप्पय मे चारो निर्गुण मत-प्रवर्त्तको का नामोल्लेख है। जैसे नानक को सूरज रूप, कबीर को इन्द्र रूप और दादू को चन्द्र रूप व्यक्त कर चौथी लाइन मे "हरिदासजी" का हरि नाम से उल्लेख है जैसा कि "वरन निरंजन मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे" से स्पष्ट है। हरि से यहाँ अभिप्रेत हरिदासजी है न कि हरि का अर्थ यहाँ हरना—दूर करना है। यदि हरना—दूर करना अर्थ मानते है तो फिर आगे जो "ये चार महन्त चहुं चकवै" की सङ्कलना कैसे ठीक बैठेगी? क्योकि नानक, कबीर, दादू ये तो तीन ही हुए। चौथी लाइन का अर्थ यह कर लेते है कि इन तीनो ने निरंजन का निरूपण कर सन्ताप रूपी तृषा से पीडित प्राणियो की तृषा की निवृत्ति की, तो चौथा फिर कौन आयेगा? अत यहाँ चतुर्थ लाइन मे हरि शब्द का प्रयोग हरिदासजी के लिए ही व्यवहृत है। कारण, उन्होने प्रमुखतया निरंजन का निरूपण ही अपनी वाणी मे विशेष किया है। मेरी समझ से छप्पय की चतुर्थ लाइन का यही अर्थ है—हरिदासजी ने संसार के विविध भोग-पदार्थो की तृषा से पीड़ित मनुष्यो को निरंजन के विवेचन द्वारा संतोषे—सुखी किये। तभी "ये चार महन्त चहुं चक्कवै" की

सार्थकता होती है। इसी छप्पय की अन्तिम पंक्ति मे "नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे" लिखा है। यहाँ चौथे हरिदासजी होने चाहिए थे, पर नाम जगन का आया है। आगे जहाँ राघोदासजी ने द्वादश महन्तों का निरूपण किया है, वहाँ किसी जगन का वर्णन नही है। अत यहाँ जगन पद मे या तो लेखक की भूल से दिया गया है या अन्य कोई भूल हुई है। मेरी समझ से जगन की जगह "जु हरि" ऐसा शब्द होना चाहिए था। जिससे पीछे की तथा आगे के वर्णन की सङ्गति बैठती है। राघोदासजी ने द्वादश महन्तो के निरूपण मे हरिदासजी के लिए ही निरजनी विशेषण का प्रयोग किया है, जिससे निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रूप मे हरिदासजी को माना जाय। मैने भूमिका के परिचय खण्ड मे इस पर पर्याप्त विचार किया है, अत. उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही है। निरजनी सम्प्रदाय मे आरती के साथ धमाल तथा गुदडी के गाने की पद्धति चिरकाल से प्रचलित है। गुदडी एक लावणी भजन है, जिसके रचयिता भाऊदासजी नाम के निरजनी महात्मा हुए है, इनके कुछ अन्य भजन भी है। यह गुदडी भजन हरिदासजी महाराज की गुदडी को लक्ष्य कर रचा गया है। इसका प्रारम्भ है—

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुम्हारी पातक जारणी ॥
सतगुरु चरण रंज मैं धारूँ, गुरु गोरष का ज्ञान विचारूँ।
तीखे शिखर ध्यान हरि धार्‍या, भर्म कर्म सब दूर निवार्‍या ॥
कठिन साँकड़ा मौतज फन्दा, हरिदास जन हरि का बन्दा।
एक पलक में सब तज दीन्हा, काम क्रोध ममता मारणी ॥१॥

इस पद मे उपर्युक्त रूप की आठ कड़ियाँ है। सातवी कड़ी मे उन द्वादश महात्माओं का उल्लेख किया गया है—

कानड़ मोहन षेम हजूरी, आनदास पूर्ण मत पूरी।
श्याम साँकड़े ध्यान लगाया, जगजीवन तुरसी तत्त पाया ॥
नाथ ध्यानजी है अवधूता, जगन्नाथ केवल पद पहुँता।
जिनकी पदरज जो कोई ध्यावे, जन्म जन्म अघ हारणी ॥७॥

× × ×

नरीदासजी नरहरि दूजा, दास नारायण पीपा सूँगा।
परशुराम शारंग मत वाला, धन्य मनोहर पोकर काला ॥

विरक्तवाडा

श्री सेवादासजी महाराज की समाधि

श्री अमरपुरुषजी महाराज की समाधि, डीडवाना

महरवान मन की गति जानी , बावन शिष्य भये परवाणी ।
जन भाऊदास के शीश विराजै, ऐसा यह सन्त निरंजणी ॥८॥

उक्त दो पद्यों मे हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे से कुछ प्रमुख शिष्यो के नाम दिये गए है । द्वादश निरंजनी सन्तो मे हरिदासजी से शेष एकादश का पहिले उल्लेख किया है, पश्चात् औरो का । इससे प्रतीत होता है कि ये-तुरसी आदि एकादश महात्मा भी हरिदासजी मे गुरुभाव रखते थे, चाहे वे उनके ही शिष्य हो या साथी । दूसरी परम्परा गाढे मे जहाँ हरिदासजी महाराज की समाधि है, उसके चारो ओर पहिले इन सब सन्तो की बारह साले यानी तिबारे बने थे । इसका सार यह है कि सबका यहाँ गाढे मे ही निवास था और इनके उत्तराधिकारी भी सब डीडवाणे से ही सम्बन्ध रखते है । खेमजी, नाथजी, मोहनदासजी व पूर्णदासजी हरिदासजी के ही शिष्य थे । खेमजी ने तो "वैराग्य लच्छी ग्रन्थ" के अन्त मे स्वय लिखा है—

"गुरु मेरे हरिदास , कियो जिन ब्रह्म प्रकाश"

नाथजी भी शिष्य थे । परम्परा से व गुरुमान्यता तथा व्यावहारिक-अब तक के सम्बन्ध से अन्यो के लिए यह तो कहा ही जा सकता है कि वे हरिदासजी महाराज में गुरुभाव रखने वाले थे । भाऊदासजी ने गुदडी की रचना की, उस समय सम्प्रदाय में प्रचलित विचारधारा से एकादश निरजनी महात्मा हरिदासजी के अनुगामी थे तथा बावन शिष्यो मे अग्रणी थे । खेमजी, नाथजी, मोहनदासजी, पूर्णदासजी, जग-जीवनजी आदि का शिष्यत्व सिद्ध है । अतः जब तक अन्य कोई विरोधी प्रमाण सामने न आए, तब तक इन एकादश महात्माओ के लिए यही निश्चय रखना सङ्गत है कि ये हरिदासजी के शिष्य तथा अनुगामी थे ।

८. शिष्य-प्रशिष्य—

हरिदासजी के जीवनकाल मे अनेकों उनके शिष्य हो गए थे । उनके सब शिष्य तथा शिष्यो के शिष्य कितने थे ? इसकी वास्तविक संख्या का कोई आधार नही है । परम्परा-प्रचलित उनके बावन प्रमुख शिष्य माने गए हैं, जिनकी परम्पराएँ पर्याप्त समय तक चलती रही है । बावन शिष्यो की प्रधानता का एक और कारण भी माना जा सकता है—सन्यासियो के पश्चात् चार वैष्णव सम्प्रदायो का आविर्भाव है । वैष्णवो मे बावन द्वारा माने जाते है । मेरे विचार से इन बावन द्वारो का अनुकरण वैष्णव सम्प्रदाय से पीछे बनने वाले सम्प्रदायो ने बावन शिष्यो के रूप मे किया है । प्रायः ही कई सम्प्रदायो मे सम्प्रदायाचार्यो के पश्चात् उनके बावन शिष्य होने की परम्परा प्रचलित है । दादूजी के भी बावन शिष्य प्रमुख गिनाये गए हैं ।

महाराज हरिदासजी के हो सकता है बावन से भी अधिक शिष्य हों, पर परम्परागत व्यवहार मे बावन का ही प्राधान्य है और इन बावन की 'थांभा' संज्ञा की गई थी। जैसा ऊपर द्वादश निरजनी महन्तो के विवरण-प्रसङ्ग मे भाऊदासजी की "गुदडो" के दो चरणो मे इक्कीस नामो का उल्लेख कर आगे "बावन शिष्य भये परवाणी" कह कर शेष इकतीस के नाम "गुदडो" मे व्यक्त नही किये गए है। पुराने साधुओं की परम्परा से सुने-लिखे नाम है, उन्ही की मान्यता सङ्गत है। वैसे निरञ्जनी सम्प्रदाय का एक वही भाट भी है जिसकी बही मे भी बावन शिष्यों के नाम लिखे है। हम यहाँ दोनो ही सूचियाँ दे रहे है। सम्भव है-अनेको नाम दोनो सूचियो मे हो व कुछ नामो में विभिन्नता हो।

साधुपरम्परा के आधार की सूची—

१–खेमदासजी बड़ा, २–महरबानजी, ३–ऊधोदासजी, ४–टीकूदासजी, ५–गोविन्ददासजी, ६–सुन्दरदासजी, ७–चरणदासजी, ८–सारगदासजी नागौरी, ९–कल्याणदासजी, १०–नरहरिदासजी तपस्वी, ११–दयालदासजी वैद्य, १२–रामदासजी पीपावंशी, १३–नारायणदासजी खीची, १४–दयालदासजी काबरा, १५–भगवानदासजी, १६–नारायणदासजी नारनौली, १७–केवलदासजी, १८–अमरदासजी, १९–मोहनदासजी बडा, २०–रामदासजी निराकारी, २१–नरीदासजी, २२–भगवानदासजी मथरिया, २३–नारायणदासजी काबरा, २४–ठाकुरदासजी मेडीवाला, २५–भगवानदासजी चेल्यो, २६–गोपालदासजी गोकली, २७–श्दामदासजी वलीवाला, २८–खेम हजूरी, २९–खेमदासजी खाटरा, ३०–जगन्नाथदासजी काबरा, ३१–कल्याणदासजी लाम्बे, ३२–वोहिथदासजी, ३३–राघोदासजी पीपावशी, ३४–राघोदासजी अवधूत, ३५–रामदासजी इवाणी, ३६–दयालदासजी विजैवर्गी, ३७–पूर्णदासजी डोकरा, ३८–परमानन्दजी डोकरा, ३९–नरहरिदासजी नामावंशी, ४०–ध्यानदासजी, ४१–मनोहरदासजी, ४२–पेखादासजी, ४३–ध्यानदासजी दूसरा, ४४–रामदासजी लोहाटी, ४५–ध्यानदासजी विजैवर्गी, ४६–दयालदासजी पीपावंशी, ४७–नारायणदासजी मेवाडा, ४८–बलरामदासजी भँवर, ४९–मोहनदासजी ज्ञानी, ५०–मथुरादासजी पूर्विया, ५१–गोपालदासजी हरड और ५२–गोपालदासजी धनावंशी।

सन्त-परम्परा से उपर्युक्त बावन शिष्यो की नामावली है। महाराज के कुछ और शिष्यो के नाम भी सन्त-परम्परा से प्राप्त है, वे इस रूप मे है—१–केसोदासजी रीरीवाला, २–बालकदासजी (नाथजी), ३–खेमदासजी तोषणीवाल, ४–विष्णुदासजी, ५–तुरसीदासजी चूलीका, ६–दास सूँघाजी, ७–दास पीपाजी, ८–जोगीदासजी, ९–ईसरदासजी नरीयवंशी, १०–वेणीदासजी ठाडेश्वरी, ११–दयालदासजी कावरा, १२–श्यामदासजी, १३–श्यामदासजी धाकर, १४–परसदासजी, १५–दयालदासजी गरसरावत, १६–राघोदासजी संन्यासी, १७–महरदासजी काबरा, १८–महर-

दासजी पीपावंशी, १९–श्यामदासजी काबरा, २०–सुखरामदासजी विजैवर्गी, २१–जयमलरामजी, २२–माधोदासजी अग्रवाल, २३–विष्णुदासजी सोढाणी, २४–नाथी बाई मालपाणी और २५–रामा बाई नागौरवाली ।

ब्रह्मभाट की बही के आधार की सूची—

१-खेमदासजी बडा, स्थान--काला डेहरा । २-३–रामदासजी, महरवानजी, ग्राम–चौमू । ४–ऊधोदासजी, खानपुर । ५–भगवानदासजी, लाडनूँ । ६–सारग-दासजी, नागौर । ७-८–चत्रदासजी, मनोहरदासजी, ग्राम–साँभर । ९–नारायण-दासजी खीची, जोधपुर । १०-११-१२–महरुमदासजी, गोविन्ददासजी, विष्णुदासजी, ग्राम–भावरी । १३–नारायणदासजी, ग्राम–नारनौल । १४–नरहरीदासजी, ग्राम–नारेली । १५-१६–केवलदासजी, श्यामदासजी, पचेवर । १७–नरीदासजी, फतेहपुर (शेखावाटी) । १८–राघोदासजी, झुंझुनूँ । १९-२०-२१–दयालदासजी, रामदासजी, खेमदासजी, देवगाँव । २२-२३-२४–छोटे खेमजी, भगवानदासजी, मथुरादासजी, ग्राम-आसोप । २५-२६–सूरदासजी, वनमालीदासजी ग्राम--नीमेड । २७--नारायणदासजो ग्राम--वामण । २८--बालकदासजी (नाथजी) डीडवाणे । २९-३०--पहलाददासजी, टीकूदासजी, ग्राम--चूला । ३१-३२--नारायणदासजी काबरा, रामदासजी निराकारी, स्थान--ढढेरू । ३३-३४-३५-३६-३७--टीकू, घीसा, केसोदासजी, काला, चरणदासजी, ग्राम--ढढेरू । ३८--कल्याणदासजी । ३९--पिडदासजी । ४०--रूपदासजी । ४१--मोहन-दासजी । ४२--दास पीपाजी । ४३--दास सूँघाजी । ४४--पाडा देवी । ४५--रघुनाथ-दासजी । ४६--दामोदरदासजी । ४७--मुन्दरदासजी । ४८--टीकूदासजी । ४९- गोविन्द-दासजी । ५०--परमानन्दजी । ५१--गाढाजी वियाणी ।

उपर्युक्त दोनो सूचियो मे आठ-दस नामो का अन्तर है, शेष नामो मे साम्य है। अत· दोनो ही सूचियो की उपादेयता है, ऐसा स्वीकार करना संगत है। भाऊ-दासजी ने अपने गुदडी भजन मे जिन इक्कीस नामो का उल्लेख किया है। वे इन दोनो सूचियों मे आ गए है।

यह अनुमान करना अनुचित नही है कि महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे अनेको ऐसे थे कि जिनके अनेको शिष्य बन गए थे। उनके नामो का पता लगने का कोई साधन नही है। उक्त शिष्य नामावली की परम्परा मे आज भी सैकडो स्थान विद्यमान है जिनमे उनकी परम्परा प्रचलित है। जैसे हरिदासजी महाराज के शिष्य बडे खेमजी उनकी परम्परा मे इस समय भी सैकडो स्थान तथा कई सौ सन्त मौजूद है। खेमजी महाराज की सातवी पीढी में महान् सिद्ध महात्मा अमरपुरुषजी महाराज हुए है। उनके छियानवे शिष्य थे और सब ही सिद्ध-कोटि के महात्मा हुए। गाढे मे जो विरक्तवाडा संज्ञा से स्थान-विशेष है, वह सब अमरपुरुषजी महाराज के शिष्यों की

पृष्ठ	पक्ति	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
१५६	१५	व्यक्तिरेक	व्यतिरेक
१६७	६	परमत्वाग	परमत्याग
१६७	१६	सानिष्य	सान्निध्य
१६६	१६	षडी	घडी
१७१	६	ताहि	नाहि
१७३	२०	संतदासा	संतदसा
१८६	१७	धनूं	घणूं
१६०	२	झूठा	झूठ
१६०	४	अरू	अरु
१६०	१२	वीवज	बीजज
१६४	२१	भंड	भड़
२०३	४	सतरुगु	सतगुरु
२०५	२४	अमरपुरुजी	अमरपुरुषजी
२१२	१	द्वैद्रन	द्वंदन
२१३	२२	नृवाणापद	नृवांणपद
२२३	१६	विचारै	विचरै
२२६	१७	कह	कट
२२७	२२	प्राण	प्रांणी
२३०	१६	रूपा	रुघा
२४६	१२	मिठाई	मिटाई
२५७	५	समाघि	समाधि
२६०	६	सिघ	सिध
२६०	२२	घना	धना
२६१	१६	भावपार	भवपार

॥ इति उत्तरखण्ड ॥

परम्परा से सम्बन्धित है। इनकी नामावली को किसी ज्ञानराय नामक चारण ने पद्यों मे निरूपित किया है वह इस रूप मे है—

चौपाई—विरकत साध सन्त है भारी, ज्ञान के पूरण अधिकारी।
तासु सिष है अति ब्रह्मचारी, अमरदास निरंजनी अवतारी॥
बड़ो सिष षेमजी है नाम, केवल एक राम सूँ काम।
दास प्रहलाद पूरण सन्त, बीच के जुग में केवल मन्त॥
दास मंगल है साध सवाई, आषण कियो जोधपुर माँई।
कंठी बांध र पाट बैठायो, नारायणदास तिलक निज पायो॥
नरहरदास पूरण साध, खाटू बैठा मतै अगाध।
जीवणदास विहारीदास, कोड़ी एक न राषै पास॥
दामोदरदास देवीदास, की जिन सभी कल्पना नास।
रतनदास रु कृपाराम, हरि बिन और न कोई काम॥
रूपदास सन्त है भारी, अनभै वाणी विसतारी।
हरजीदास दास भगवान, सन्त जन राखै उनका मान॥
मोहनदास नाम दो सिष, माधोदासजी पूरण रिष।
देईदास निरंजनराम, रतनदास अरु शिवराम॥
टीकमदास अरु बुधदास, राम भजत है श्वासोश्वास।
पूरणदास जू जगराम, निहचै भजे हरि को नाम॥
परमानन्द साध दो भारी, निसदिन हरि की कथा उचारी।
वेणीदास मनोहरदास, विचरै जग में रहे उदास॥
मनोहरदास केवलदास, थिर मन रहे बारह मास।
तुलसीदास अरु केसो, पन्थ गहि साध कै तैसो॥
सुखरामदास दास जैराम, निरभै भजै प्रभु को नाम।
राघोदास दास मुनिलाल, रातें रहैं हरि के ध्याल॥
रामजीदास दास मलूक, बासी खाय माँग र टूक।
कोमलदास मुकुन्ददास, सुन्दर रहै जगत उदास॥

कोलिया समाधि स्थान

कोलिया बगीची

रामकिसनजी महाराज

मोतीरामजू सूरतराम, निसदिन एक हरि सूँ काम।
रामजीदास दासआनन्द, देवादास कोई न फन्द॥
किरपादास अगरधर भेष, जग में विचरै राषै टेक।
मगनीराम है केसोदास, वे नहिं पड़े जम की पास॥
शीतलदास अगमदास, वे नहिं पड़े जम की पास।
सदाराम दास है लिषमी, भजन सूँ काटी वार विषमी॥
हेमदास है गरीबदास, राम भजै सब बात उदास।
रामजनदास दास है भूधर, विचरे धरा मुलक इहिं मुरधर॥
कुशलदास अरु लाल ही दास, जुगलदास जग रहै उदास।
लछीराम पुनि सहज ही राम, निहचलदास सरै सब काम॥
षेमदास पुनि तिलोकदास, मेटी उनने जम की त्रास।
हरवंशदास चरण निज दास, राम रटत है बारह मास॥
दयाराम अरु दास जयराम, दरसणदास जपै निज नाम।
निर्मलदास दास भगवान, थिर ये रहे न एकै स्थान॥
मेघदास है हिरदै राम, भजन करत है आठों याम।
भक्तराम है जगन्नाथ, दास गोपाल है जिनके साथ॥
विशनदास है उदयराम, राम भजै कर गुरु के काम।
बलरामदास है अतीतराम, आँख मूँद भजै हरि नाम॥
मयाराम है संगदास, राम भजै वन करै वास।
हरभक्तराम पुनि दीपदास, राम रटैं ये एक श्वास॥
चरणदास दास है केसो, काहू सूँ नहिं राषै लेसो।
कानड़दास दास है साजन, ता कै गुरु को माने राजन॥
सहजराम अरु कृपाराम, भगवत भजन और नहिं काम।
कृपादास है चैनराम, वन वास करै फिर रटेराम॥

दोहा— बाई बीजाँ वामणी, छोटो खाटू वास॥
राम भजन सूँ कामहै, जग सूँ रहे उदा।

हरिदास के पंथ में, अमरदास है सिष ॥
छिनवें मूरत साध हैं, विरकत पूरे रिष ॥२॥

चौपाई—अमरदास के शिष्य सुप्यारे, वन में रहें जगत सूँ न्यारे ।
ज्ञानराय निज करे डंडोत, सब सन्तन कूँ पावाँधोक ॥

दोहा— ज्ञानराय के वंश में, जनम्यो है दानूँ राय ।
दोनों कर जोड़े वीनती, सन्तों के चरणाय ॥२८॥

उक्त विवरण अमरपुरुषजी महाराज के शिष्यो का है । अमरपुरुषजी महाराज का काल सत्रह सौ पिचहत्तर से अठारह सौ बयालीस तक का है । अमरपुरुषजी का जन्म सत्रह सौ पचपन, वैराग्य-धारण सत्रह सौ पिचहत्तर, स्वर्गारोहण अठारह सौ बयालीस, कार्तिक बदी चौदस । यह एक खेमजी की परम्परा का दिग्दर्शन है । नाथजी, शारंगदासजी, महरवानजी, नारायणदासजी आदि हरिदासजी के अन्य शिष्य-प्रशिष्यो का बहुविस्तार है, अत. उसका निरूपण शक्य नही है । आगे हम परिशिष्ट मे कुछ तालिकाएँ देगे, जिससे इस पर विशेष प्रकाश पडेगा । हरिरामदासजी महाराज सीथल रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक के पोताशिष्य महाराज दयालदासजी ने भी अपनी भक्तमाल मे हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो के नामोल्लेख किये है । यह नाम परम्पराप्राप्त नामावली व ब्रह्मभाट की बही की नामावली से अधिकाश मिलते है, अतः उनका उल्लेख भी यहाँ नही किया गया है ।

६. सम्प्रदाय का प्राक्मध्य उत्तररूप—

किसी भी महात्मा का सम्प्रदाय चलाने का लक्ष्य नही हुआ करता । वे तो व्यक्तिशः ही जन-कल्याण के लिए नि.स्वार्थ भाव से प्रयास करते है । अपनी अनुभूति तथा धार्मिक लक्ष्यों की वास्तविकता को बताकर जन-समुदाय की भ्रान्त धारणाओं का निराकरण ही उनका एकमात्र ध्येय रहता है । ऊँचे आदर्श वाले महान् पुरुषो के पुनीत आचरण तथा निर्मल विचारधारा से आकर्षित सैंकड़ों-सहस्रो व्यक्ति उनके सानिध्य मे आते है उनमे से अनेकों मायिक-पदार्थो का मोह त्याग आत्मकल्याण के लिए उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लेते है । धीरे-धीरे इन्ही शिष्यो की परम्परा एक सम्प्रदाय व एक पन्थ का रूप ग्रहण कर लेती है ।

महाराज हरिदासजी का निरञ्जनी पन्थ या सम्प्रदाय इसी तरह बना । आरम्भ मे इसमे वे ही साधक सम्मिलित हुए, जो हरिदासजी की कथनी-करणी से प्रभावित हुए । यह इस पन्थ का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है । इस प्राक्रूप के समय मे जितने भी महाराज के शिष्य-प्रशिष्य हुए, वे अपने-अपने घर-कुटुम्ब व धन-

सम्पत्ति का त्याग कर परम वीतराग-भावना से ओतप्रोत थे। अत. ये सभी सिद्ध-पुरुष तथा "निर्मानमोहा जितसंगदोषा" थे। न इनको घर की आवश्यकता थी—क्योकि घर तो ये स्वकीय छोड-छोडकर आए थे। न इनको धन की, कुटुम्ब की, पद की, मान की चाह थी। ये थे त्याग-वैराग्य की मस्ती वाले फकीर। आत्मचिन्तन ही इनका लक्ष्य था—त्याग ही इनका भूपण था। न इनमे किसी तरह की बनावट थी, न था दम्भ-कपट। एक गुदडी तथा एक पात्र—यही इनकी साज-सज्जा थी। हरिदासजी महाराज का अवसानकाल सम्वत् पन्द्रह सौ पिचानवे या सोलह सौ सूचित है। एक शताब्दी तक सम्प्रदाय का यही रूप चला। इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि निरञ्जनी सम्प्रदाय के स्थानो मे शायद ही कोई स्थान हो जो सत्रहवी शताब्दी का बना हुआ हो। सबसे पुराने स्थान डीडवाणे मे होने चाहिए। महाराज हरिदासजी की समाधि तथा प्रमुख एकादश महात्माओ की शालाएँ-ये सब सत्रहवी शताब्दी के अन्त मे या अठारहवी के आरम्भ मे बनी हुई होनी चाहिए। अठारहवी शताब्दी के तो अनेको स्थान उपलब्ध है। अत. इस स्थान बनने की प्रवृत्ति से यही अनुमान होता है कि जब तक सम्प्रदाय मे-परम त्यागी, अत्यन्त वैराग्यवान् महात्मा रहे, तब तक प्रवृत्ति का कोई भी कार्य सम्पन्न नही हुआ। अत. हरिदासजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् की एक शताब्दी तक का काल प्राक्काल के रूप मे माना जा सकता है, जिसमे न स्थानो का निर्माण था, न ही अन्य किसी प्रकार के संग्रह की प्रवृत्ति को स्थान था। यह इस सम्प्रदाय का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काल कहा जा सकता है, जिसमे सभी महात्मा परम त्याग-वैराग्य से सम्पन्न थे।

मध्यकाल—सम्वत् १७०१ से १८७५—

अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दी के तीन चरण निरञ्जनी सम्प्रदाय का मध्यकाल माना जा सकता है। इसी काल मे इस सम्प्रदाय का पर्याप्त विस्तार हुआ। इसी काल मे बहुत से आध्यात्मिक-साहित्य के सरक्षण तथा निर्माण का कार्य भी हुआ। महाराज के समसामयिक तुरसीदासजी, मोहनदासजी, जगजीवनजी, खेमजी, ध्यानदासजी की रचनाएँ उपलब्ध है। महाराज हरिदासजी की वाणी की तरह ही मोहनदासजी व तुरसीदासजी की वाणियाँ है। तुरसीदासजी की वाणी हरिदासजी महाराज की वाणी से शायद दुगुनी बडी है। मोहनदासजी की वाणी हरिदासजी की वाणी से छोटी है। जगजीवनजी की रचना अभी पूरी प्राप्त नही है। जितना अंश प्राप्त हो रहा है, उससे यह अनुमान तो अवश्य होता है कि इनकी रचना पर्याप्त होनी चाहिए। खेमजी की रचना बहुत थोडी प्राप्त है। ध्यानदासजी की रचना भी जो उपलब्ध है, वह खेमदासजी की रचना से कुछ अधिक है। कल्याणदासजी की रचना पर्याप्त है। मतलब—महाराज हरिदासजी के समसामयिक व शिष्यगणो में अधिकतः साधक व आत्मजयी महात्मा थे। उनमे से कुछ ने अपनी अनुभूति को अपनी रचनाओं द्वारा भी व्यक्त किया था।

महाराज हरिदासजी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके सहयोगी तथा शिष्यो मे से कोई उनका उत्तराधिकारी हुआ या आचार्य-परम्परा प्रचलित हुई—ऐसा कोई प्रामाणिक आधार सामने नही है। क्योंकि महाराज के साथियो व शिष्यो में भी कोई इस तरह की भावना थी नही कि कोई महाराज हरिदासजी के स्थान पर आचार्य या महन्त बने। अल्पाश मे कोई किसी का नाम इङ्गित करता है तो उसका कोई प्रमाण नही। वैसे व्यवहार मे स्पष्ट है कि पूरे निरञ्जनी सम्प्रदाय का कोई महन्त नही है।

जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है कि महाराज हरिदासजी के शिष्य बडे खेमजी का परिवार इस सम्प्रदाय मे सबसे अधिक विस्तृत हुआ। उनकी सातवी पीढी मे सेवादासजी महाराज के शिष्यो मे अमरपुरुषजी महाराज अत्यन्त तेजस्वी व महात्मा तथा परम प्रभावशाली व्यक्ति हुए। उनके शिष्यो-प्रशिष्यो की सख्या कई सैकड़ो मे थी। उनके शिष्यो मे भी अनेको महात्मा ऐसे हुए, जिनके शिष्य-प्रशिष्यो का बडा परिवार बन गया। डीडवाणे मे विरक्त बाडा इसका प्रबल प्रमाण है। उक्त बाडा अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यो का ही स्थान है। मैने स्वयं इस बाडे मे सम्वत् १९९० के समय करीब पाँच-छः सौ साधुओ को देखा है। अमरपुरुषजी महाराज की इस परिवार-वृद्धि मे बाडे के महन्तो की परम्परा प्रारम्भ हुई। संख्या-बल व स्थान-बाहुल्य के कारण ये बाडे के महन्त ही आगे चलकर सब निरञ्जनी-सन्तो मे महन्त के रूप मे मान्यता पाने लगे।

खेमजी महाराज की तरह ही नाथजी महाराज की परम्परा मे भी साधुओ का बाहुल्य रहा और भी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यो मे पर्याप्त वृद्धि के कारण इस मध्यकाल मे सम्प्रदाय का स्वरूप पर्याप्त विवर्द्धित हुआ तथा उसका विस्तार भी काफी हुआ। राजस्थान मे प्राय. सभी रियासतो मे निरञ्जनी सन्तो के स्थानो की स्थापना हुई। कुछ स्थान राजस्थान से बाहर भी स्थापित हुए, पर अधिक वृद्धि राजस्थान मे, राजस्थान मे भी जोधपुर-मारवाड़ का स्थान सबसे आगे है। मारवाड का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही था कि जहाँ इस सम्प्रदाय के साधुओ का स्थान स्थापित न हुआ हो। वृद्धि और ह्रास कालज स्वभाव है।

जिस तरह सोलहवी शताब्दी से इस सम्प्रदाय का आरम्भ हो धीरे-धीरे अभिवृद्धि हुई, वह अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दी मे पराकाष्ठा पर पहुँची। जब अधिक विस्तार हुआ, अधिक स्थान बने। अधिक प्रचार हुआ तो फिर जन-सम्पर्क की अधिकता से समाज मे कई तरह की कमजोरियो ने अपना स्थान बनाना आरम्भ किया। त्याग-वैराग्य मे न्यूनता आने लगी, जागतिक-भावनाओ का प्राबल्य हुआ, पूजा-प्रतिष्ठा ने अहङ्कार की अभिवृद्धि की और आध्यात्मिक-जीवन के स्थान पर लौकिक-

भावनाप्रधान जीवन ने धीरे-धीरे प्रवेश प्रारम्भ किया। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पश्चात् वृद्धि का रूप रुका तथा ह्रास का श्रीगरोश हुआ।

उत्तरकाल—१८७५ से अब तक—२०१८ तक—

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे वृद्धि का प्राबल्य रुका, पर उस समय भी सैकडो महात्मा इस रूप मे थे कि जिनके कारण सम्प्रदाय के महत्व मे अधिक कमी नही आई। बीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध तो अधिक ह्रास वाला नही कहा जा सकता। संख्या मे साधुता मे पूर्वापेक्षा न्यूनता का श्रीगरोश हुआ, वह धीरे-धीरे पनप रहा था। बीसवी शताब्दी का उतरार्द्ध एक तरह से इस सम्प्रदाय का ह्रासकाल कहा जा सकता है। डीडवाणे के मेले पर जहाँ अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दी मे साधु कई सहस्रो की संख्या मे उपस्थित होते थे, वह संख्या प्रबल वेग से न्यून हो रही थी। बीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे यह संख्या घटते-घटते एक सहस्र के आसपास ही आ गई।

इस कमी के कई कारण माने जा सकते है। मुख्य कारण तो यही था कि धीरे-धीरे प्रशस्त साधुओ की कमी होती जा रही थी। जैसे त्यागी-वैरागी व भजनीक महात्मा पिछले काल मे अधिक संख्या मे सम्प्रदाय मे थे, अब वैसे महात्माओ की संख्या अत्यल्प हो गई थी। दूसरा हेतु, बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे प्लेग, इनफ्लुएञ्जा आदि महामारियो का प्रकोप। इससे सैकडो ही साधुओ की सहसा न्यूनता हो गई। तीसरा, विचारधारा का परिवर्त्तन—लोगो मे नवीन विचारसरणी के संस्कार प्रवेश कर रहे थे। सामाजिक नेताओ का तथा राजनैतिक नेताओ का रुख साधुवर्ग के सर्वथा विपरीत था। वे जनसमुदाय के समक्ष बिना किसी सम्यक् जानकारी के विविध प्रकार के आक्षेपो का आरोप करते रहते थे। साधुवर्ग का जनसमाज मे महत्व होने के कारण अनेको जातियो ने नकली साधु बन जनता को ठगने का सिलसिला जारी कर दिया। चोर, उचक्के, खूनी व्यक्ति अपने अपराध को छिपाने के लिए साधु का वेष बना पुलिस को धोखा देने लगे। इस तरह विविध प्रकार के कारण मिलकर न केवल निरञ्जनी सम्प्रदाय का ही; अपितु अशेष साधुवर्ग का ह्रास करने लगे। जिन साधु-समाजो मे संख्या लाखो तक थी, उनका ह्रास होते हुए भी वह वैसा प्रतीत नही हो सकता था, जैसे सन्यासी वैष्णव सन्त-समाज। जिनकी संख्या सहस्रो तक ही थी, उनका ह्रास अत्यधिक प्रतीत होने लगा। वह क्रम अब भी जारी है। अब साधु बनने की प्रवृत्ति तो बहुत ही न्यून है, जो बने हुए है उनका ह्रास दिन-दिन होना अवश्यम्भावी है।

जब निरञ्जनी सम्प्रदाय अपनी वृद्धि तथा महत्व मे अच्छी स्थिति मे था, तब इसका व्यावहारिक सौकर्य के विचार से सात मण्डलो मे विभाजन किया गया था।

उनकी संज्ञाएँ निम्न थी—१–डीडवाणा मण्डल, २–शेखावाटी मण्डल दो, ३–मेड़ता मण्डल, ४–बीकानेर मण्डल, ५–नागौर मण्डल और ६–जोधपुर मण्डल। आज भी ये मण्डल तो उसी रूप मे है पर अब इन मण्डलों के साधुओ की संख्या जहाँ सहस्रो थी, वहाँ सैंकडो और जहाँ सैकडो थी वहाँ अब कुछ इकाइयो मे रह गई है। इस तरह आरम्भ, मध्य तथा उत्तरकाल का रूप हमारे सामने है। सम्भव है जो स्थिति आज है, तदनुसार इक्कीसवी शताब्दी के अन्त तक निरञ्जनी सम्प्रदाय का अस्तित्व नगण्य सा ही रहेगा—ऐसा अनुमान करना असङ्गत नही है।

१०. निरञ्जनी सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन—

हिन्दी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने वाले सज्जनो से यह छिपा नही है कि हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाएँ प्राकृत के अपभ्रंश भाषावर्ग मे प्रारम्भ हुई थी। मेरा जहाँ तक ध्यान है–महात्माओ द्वारा भाषा मे अपने विचारो को व्यक्त करने का आरम्भ नाथ-सम्प्रदाय से आरम्भ हुआ है। राजस्थान मे अभी तक प्राचीन साहित्य के अन्वेषण का कार्य जिस तत्परता मे होना आवश्यक है, उस तरह से होना आरम्भ नही हुआ है। सन्त-साहित्य की ओर तो और भी कम से कम ध्यान दिया जाता है। इस स्थिति का सामान्य दिग्दर्शन मै भूमिका के पूर्व खण्ड मे कर आया हूँ।

राजस्थान मे सोलहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक के काल मे कई साधु-सम्प्रदायो का जन्म हुआ है। निर्गुण भक्ति-उपासना का आरम्भ जब से हुआ, तब से नाथो, योगियो तथा कबीर, नानक, हरिदास, दादू, हरिरामदास, रामचरण, दरियाव, रामदास आदि महात्माओ ने इस धारा को अपने-अपने अनुभव रूपी स्नेह-सलिल से सिंचित कर इसका राजस्थान मे पर्याप्त पोषण किया। निर्गुण भक्ति मे मन्दिर, छुआछूत, शैव, वैष्णव, शाक्त, तान्त्रिक आदि के आपसी विवाद को कोई स्थान नही है। उस परब्रह्म परमेश्वर को जिस किसी नाम से चिन्तन करना मात्र इस भक्ति का ध्येय रहता है। जिस समाज मे उपासना की एक-रसता नही रहती, वह समाज एक रूप से संगठित नही रहता—जब समाज का सगठित एक रूप नहीं रहता तो वह न तो अपने धर्म की सुरक्षा कर सकता, न अपने देश की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकता। उपासना की विविधता समाज को विविध वर्गों मे बाँटकर उनमे नीच-ऊँच, छुआछूत आदि की कलुषित भावनाएँ उत्पन्न कर देती है। सगुणो-पासना मे इसीलिए विविध वर्गो का रूप सामने आता है। महात्माओ ने, सिद्ध-योगियो ने इसी दोष को ध्यान मे रख उस अचिन्त्य शक्ति को निर्गुण रूप मे स्मरण करने पर ही अपना सारा प्रभाव लगाया। यह बात उनने अपनी ओर से की हो ऐसा नही है। अपने यहाँ तो अनन्त काल से परमेश्वर को निर्गुण, अरूप, निर्धर्म निर्देश करते ही आए है। वेद-उपनिषदो ने इसका अत्युत्तम निरूपण किया है। उत्तर-मीमांसा

दर्शन तो इसी के निरूपण मे बना है। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" सूत्र मे उपलक्षित ब्रह्म क्या है? वह अशेष ब्रह्माण्ड मे व्यापक अचिन्त्य-चेतनसत्ता ही निर्गुण ब्रह्म है। महात्माओ ने इसी ब्रह्म को अपनी उपासना का लक्ष्य बनाया। निरजनी सम्प्रदाय की तो संज्ञा ही इस अर्थ को स्पष्टतः व्यक्त करती है, क्योकि विशुद्ध ब्रह्म का ही अपर-पर्याय निरञ्जन शब्द है। सब प्रकार के प्रकारो का नाम ही अंजन या माया है। उससे रहित आत्मशक्ति का नाम निरञ्जन है। उस निरंजन की उपासना करने के कारण ही इस सम्प्रदाय की संज्ञा निरंजनी हुई है।

निरञ्जनी सम्प्रदाय के महात्माओ की अब तक जितनी भी रचनाएँ प्राप्त हुई है, वे सब हिन्दी भाषा मे ही है। केवल दो स्तोत्र ही अब तक की रचना मे ऐसे सामने आए है जो संस्कृत मे है—एक है डीडवाणा निवासी पडित रामचन्द्रजी गुजराती कृत तथा दूसरा स्तोत्र है किसी कालिदास कवि कृत। रचनाकारो मे सब संस्कृत से अनभिज्ञ थे—ऐसा नही है। कई महात्मा सस्कृत के अच्छे विद्वान् होते हुए भी उनने रचना हिन्दी मे की। प्राप्त रचनाकारो का काल सोलहवी शताब्दी से बीसवी शताब्दी तक का है। रचनाकारो की रचना का संक्षिप्त परिचय दो रूपो से दिया जा सकता है—पहिला कालक्रम से व दूसरा विषयक्रम से।

मेरी समझ से कालक्रम की अपेक्षा विषयक्रम अधिक उपयुक्त है। अत॰ तदनुसार संक्षेप मे उसका विवरण उपस्थित किया जाता है—

विषयक्रम से अब तक प्राप्त साहित्य के तीन वर्ग किये जा सकते है, जैसे—१—वाणियाँ, २—अनुवाद और ३—स्वतन्त्र रचनाएँ। सन्त-साहित्य मे वाणियो का प्रथम स्थान है, उस रचना मे रचयिता महात्मा के अनुभव की प्रतिच्छाया स्पष्ट सामने आती है। वाणी-रचना मे प्रमुखत॰ दो विभाग रहते है–साखी भाग, पदभाग। साखी भाग मे प्रकरणानुसार विषय-निरूपण किया जाता है, जैसे—गुरुदेव का अंग, गुरुमहिमा का अंग, स्मरण का अंग, साधु का अंग, माया का अग व काल का अंग। अंग शब्द प्रकरण-निर्देशक है। स्मरण, साच, काल, माया आदि विषय-निर्देशक शब्द हैं। अनेको महात्मा वाणियो मे कुछ ग्रन्थ विशेष भी लिखते है। कवित्त, झूलना, सवैया, छप्पय, पवगम आदि कई छन्दो मे भी रचनाएँ मिलती है। पद भाग मे राग-विशेष मे पद-रचना होती है।

आत्मतत्वानुसन्धानकर्त्ता साधक-महात्माओ मे अधिकाश ने वाणियाँ ही लिखी हैं और वे ही महात्माओ की रचना मे उत्कृष्ट स्थान रखती है। दूसरे वर्ग मे अनुवाद के ग्रन्थ है, जो या तो किसी पुराण-गाथा से सम्बन्धित है या फिर किसी आध्यात्मिक विषय की रचना का अनुवाद है। स्वतन्त्र रचनाओ मे विविध विषयो का समावेश है पर वे है—या तो सन्त परिचय ज्ञापक या नैतिक आध्यात्मिक विषय का निरूपण

प्रस्तावना

उत्तरी भारत की संत-परम्परा के निर्माण मे निरंजनी सप्रदाय का बहुत बडा हाथ रहा है। इसके अग्रणी संतो मे से अनेक उच्चकोटि के महात्मा हो चुके है और इसका साहित्य भी यथेष्ट उन्नत एवं समृद्ध कहा जा सकता है। इसके अनुयायियो की संख्या कमसे कम राजस्थान प्रांत के अंतर्गत, कभी अल्प नही रही है और, इसमे सदेह नही कि, वे कई सौ वर्षो से वहां अपनी साधना मे सदा निरत चले आये है। इसके सिवाय इस संप्रदाय की कतिपय अपनी ऐसी विशेषताए भी रही है जिनके कारण इसे संत-परम्परा के तीन अन्य प्रमुख संप्रदायो (अर्थात् संत कबीर, नानक एवं दादूदयाल के नामो से प्रचलित पंथों) के समकक्ष स्थान देने की प्रवृत्ति देखी जाती है तथा जिनके आधार पर इसकी देन का समुचित मूल्याकन भी किया जा सकता है। परंतु आश्चर्य है कि आज तक इस धार्मिक वर्ग का कोई इतिहास नही लिखा गया और न इसके किसी प्रमाणिक परिचयमात्र के देने का भी कभी कोई प्रयास किया गया। जिन लोगो ने कभी विभिन्न धार्मिक पुरुषो के जीवन चरित लिखने का प्रयत्न किया उन्होने भी इसके सतो की ओर पूरा ध्यान नही दिया और न, जिन्होने हिन्दी-साहित्य के इतिहास लिखे है, उन्होने ही कभी इसके साहित्य का उचित उल्लेख किया है। स्वय निरंजनी लोगो तक को भी कदाचित् इस बात का कभी अनुभव नही हुआ कि वे इस कार्य की ओर प्रवृत्त हो, अपने पथ-प्रदर्शको की तथ्यपूर्ण जीवनी लिखे, उनके विशिष्ट ग्रंथो को प्रकाशित करे तथा, अपनी मान्यताओ की विशद व्याख्या करते हुए, ऐसी पुस्तको की रचना करे जिनसे न केवल इसका पर्याप्त परिचय मिल सके, प्रत्युत जिनके द्वारा अन्य लोग लाभान्वित भी हो सके। फलत आवश्यक सामग्री के अभाव मे, अभी तक इसकी कभी पूरी जानकारी नही हो पायी है और जो कुछ इसके विषय मे पता चल सका है वह इतना अधूरा भी रहा है कि जिसके कारण कभी कभी अनेक प्रकार की भ्रातियो को प्रश्रय तक मिलता आया है।

जहां तक पता चलता है निरंजनी सप्रदाय के विषय मे सर्वप्रथम चर्चा करने वाले दादू-पथी राघोदास थे जिन्होने स० १७१७ वा सन् १६४० ई० मे, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भक्तमाल' की रचना की थी। जिस पर, पीछे सं० १८५७ वा सन् १८०० मे, चत्रदास ने अपनी टीका लिखी। राघोदास के अनुसार जिस प्रकार परमात्मा के 'सगुण रूप, नाम एवं ध्यान' की पद्धति मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी, रामानुज एवं निम्बार्क ने चलाई और उन चारो 'महतो' ने अपने-अपने चार संप्रदायो की स्थापना की, उसी प्रकार उसके 'अगुन अरूप एवं अकल' तत्त्व का प्रचार, इस जगत् के अंतर्गत, कबीर, नानक, दादू एवं जगन के द्वारा हुआ और

करने वाली । उपर्युक्त तीनो विषयो से सम्बन्धित रचनाओ का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है—

१. विषय—वाणियाँ

निर्गुणपरा भक्ति वाले उपासक आत्मनिष्ठ महात्माओ ने अपनी रचनाए वाणी रूप मे की है । उनका एक ही लक्ष्य था—स्वस्वरूप का परिचय । अतः उनने अपने साधना-सिद्ध जो भी विचार व्यक्त किये, वे वाणी संज्ञा से ही प्रचलित है । निरञ्जनी सम्प्रदाय के जिन-जिन महात्माओ ने वाणियाँ लिखी, उनका प्रारम्भ महाराज हरिदासजी की वाणी से होता है ।

हरिदासजी महाराज की वाणी—

महाराज हरिदासजी की वाणी का परिचय इसी भूमिका के खण्ड मे सम्यक् आ चुका है, अत. उस पर विशेष लिखने की आवश्यकता नही । महाराज की वाणी का रचनाकाल सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है । जैसा कि पीछे व्यक्त किया जा चुका है ।

तुरसीदासजी की वाणी—

महाराज तुरसीदासजी हरिदासजी महाराज के समसामयिक थे । भक्तमाल-कार राघोदासजी ने जिन द्वादश निरञ्जनी महापुरुषो का अपनी भक्तमाल मे निरूपण किया है, उन्ही मे एक तुरसीदासजी है । ये शेरपुर मे रहते थे-ऐसा व्यक्त किया गया है । तुरसीदासजी क्या हरिदासजी के शिष्य थे या निरजन की उपासना करने के कारण निरञ्जनी कहलाये । इस पर यहाँ अधिक विचार सम्भव नही । भाऊदासजी की रचना "गुदडी" मे तो उनने जगजीवनजी, श्यामदासजी, तुरसीदासजी आदि को महाराज हरिदासजी के ही शिष्य कहे है । वे कहते है—

कानड़ मोहन षेम हजूरी, आनदास पूर्ण मत पूरी ॥
श्याम सांकड़े ध्यान लगाया, जगजीवण तुरसी तत पाया ॥

× × ×

महरवान मन की गति जाणी, बावन शिष्य भये परमाणी ॥
जन भाऊदास के सीस विराजै, यह सब सन्त निरंजनी ॥

उपर्युक्त पद्य स्पष्ट है । फिर भी तुरसीदासजी की रचना मे गुरुरूप में हरिदासजी का उल्लेख न मिलने से यह तर्क उठता है कि वे गुरु थे; तो उनका उल्लेख आवश्यक था । तर्क असंगत नहीं-उनने गुरुरूप में कबीरजी का उल्लेख भी किया है ।

अत· इस प्रसंग पर तुरसीदासजी की वाणी के उद्धरणो का निरूपण होगा, वही कुछ विवेचन संगत रहेगा। निरञ्जनी सम्प्रदाय की पंच-वाणियो मे तुरसीदासजी की वाणी को स्थान दिया गया है, साथ ही इनकी वाणी मिलती भी निरंजनी सम्प्रदाय में है। इनका रचनाकाल महाराज हरिदासजी के समसामयिक होने से सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही कहा जा सकता है। इनकी वाणी के अन्य वाणियो की तरह ही दो भाग है। साखी भाग मे दो सौ प्रकरणों मे चार हजार दो सौ दो साखियाँ कही गई है। चार लघुग्रन्थ है, उँन्तीस रागनियो मे चार सौ इकतालीस पद कहे गए हैं। कुल रचना अनुष्टुप् श्लोक या दोहे के रूप मे छः हजार व इससे कुछ ऊपर हो सकती है। इनकी वाणी मे योग तथा वेदान्त के विषयो का विस्तार से विवरण है। भाषा भी एकान्ततः ग्रामभाषा नही है।

जगजीवनजी, मोहनदासजी, ध्यानदासजी, कल्याणदासजी, सेवादासजी, नरीदासजी, आत्मारामजी, रूपदासजी की भी वाणियाँ प्राप्त है। इनमे से कल्याणदासजी, सेवादासजी, मोहनदासजी की वाणियाँ प्राप्त हैं। वे साखी-पद भाग से युक्त है। कल्याणदासजी व मोहनदासजी महाराज हरिदासजी के शिष्य थे–ऐसा विदित होता है। मोहनदासजी द्वादश निरञ्जनी महापुरुषो मे है। सेवादासजी हरिपुरुषजी महाराज की छठी पीढी में दयालदासजी महाराज के शिष्य थे। विस्तार के विचार से इनकी वाणी भी तुरसीदासजी की वाणी से भी कुछ बडी है, जैसा कि विभिन्न रचनाओ से स्पष्ट है। साखी भाग मे अंग ५७, साखी ३५६१ है। ग्रन्थ संख्या दस है। कुण्डलियाँ अंग ३४, संख्या तीन सौ निन्नानवे है। छप्पय बीस, सवैये चार, चान्द्रायण अंग बारह, संख्या एक सौ चोतीस है। रेखते अंग नौ, सख्या चवालीस। पद भाग राग इक्कीस, पद चार सौ दो है। इस प्रकार सम्पूर्ण रचना का जोड़ दोहे-छन्द से आठ हजार से ऊपर जाता है। इनका जन्मकाल सम्वत् सोलह सौ सतानवे व अवसानकाल सत्रह सौ अठानवे है। अतः रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए। सेवादासजी महाराज की रचना सुन्दर है।

मोहनदासजी व कल्याणदासजी की वाणियाँ पूरी प्राप्त नही है। जितना अंश देखने मे आया है उसी से सिद्ध होता है कि इनकी रचनाएँ और भी होनी चाहिएँ। इनका काल सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध व सत्रहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। क्योकि वे महाराज हरिदासजी के शिष्य होने के नाते उनके समक्ष रहे हैं। महाराज हरिदासजी का काल सम्वत् पन्द्रह सौ बारह से सोलह सौ तक का है। सम्वत् पन्द्रह सौ छप्पन तक वे गृहस्थ थे। सम्वत् पन्द्रह सौ छप्पन के अन्त मे उनने गृह-परित्याग कर नाथजी से दीक्षा ग्रहण की थी। अतः मोहनदासजी व कल्याणदासजी आदि का सम्बन्ध हरिदासजी महाराज से पन्द्रह सौ साठ-सत्तर के पश्चात् ही होना संगत है।

दोनों की प्राप्त रचनाओ मे साखी भाग–ग्रन्थ, चान्द्रायण तथा पद मिले है। कल्याणदासजी की रचना ग्राम जावले वाली वाणी मे पर्याप्त है। ग्राम कोलिये की बडी वाणी मे भी कल्याणदासजी की रचना प्राप्त है, पर वह जावले वाली पुस्तक से न्यून है। इनकी पूरी रचना दोनो वाणियो मे नही है। मोहनदासजी की रचना अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के "अभय" पुस्तकालय मे एक गुटके मे है—अन्य कोई प्रति उपलब्ध नही है। प्राप्त प्रति मे जो रचना है, वह पूरी है—ऐसा प्रतीत नही होता।

जगजीवनजी व ध्यानदासजी भी महाराज हरिदासजी के समकालीन थे। द्वादश निरजनी महन्तो मे इनकी गणना है। निरजनी सम्प्रदाय की परम्परा से ये महाराज हरिदासजी के शिष्य थे। अत· इनका रचनाकाल भी सोलहवीं शतो का उत्तरार्द्ध व सत्रहवीं का पूर्वार्द्ध मानना चाहिए। उक्त दोनो सन्तो की अब तक प्राप्त रचना अपूर्ण है। मेरे सग्रह की तीन-चार पुस्तको मे इनकी जो रचना उल्लिखित है, उसमे साखी-ग्रन्थ–पद भाग है। जगजीवनजी की प्राप्त रचना से ध्यानदासजी की रचना और भी न्यून है। जब तक पूरी रचना सामने नही आए–रचना की विभिन्नता व सख्या के विषय मे कुछ कहना संगत नहीं है।

नरीदासजी—

नरीदासजी महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे थे। इनकी रचना का संग्रह केवल फतेहपुर के बड़े अस्थल मे ही मिला है, और कही किसी पुस्तक मे अब तक देखने मे नहीं आया है। उक्त पुस्तक मे भी जो रचना इनकी है, वह अपूर्ण है। रचना का आरम्भ पदो से है। उन्नीस राग-रागनियो मे ग्यारह सौ बानवे पद है। उन्नीसवी रागनी मे मारू के पद अट्ठावन अङ्कित है। साखी, ग्रन्थ, चान्द्रायण, रेखता, कवित्त, सवैये आदि भी इनने रचे या नही—यह नही कहा जा सकता। पदों की रचना सरस है। काल इनका सत्रहवी शताब्दी का मध्यकाल समझना चाहिए।

आत्मारामजी—

महाराज आत्मारामजी सिद्ध पुरुष थे। इनकी रचना से ध्वनित होता है कि ये सुशिक्षित भी थे। महाराज विजयसिहजी इनमे अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। उनने अपने जोधपुर राज्य के नागौर आदि सभी किलो मे इनकी छतरियाँ बनवाई थी। इनका देहावसान सम्वत् अठारह सौ पन्द्रह-सोलह मे हुआ था। इनकी रचना भडारी जयरामदासजी, डीडवाणे की एक प्रति मे उपलब्ध है। कुछ रचना बाड़े के महन्तजी के संग्रह की एक प्रति मे भी है, पर पूरी रचना किसी मे भी नही है। प्राप्त रचना में इनके कुण्डलियाँ, सवैये, चान्द्रायण तथा पद उपलब्ध है। साखी भाग नहीं जैसा है। कुण्डलियों मे ही कही-कही साखियाँ आई है। इनकी रचना में नीति का

निरूपण सुन्दर है। मारवाडी भाषा के शब्दप्रयोग भी पर्याप्त हुए है। ये महाराज हरिदासजी के किस शिष्य की परम्परा मे थे—यह विदित नही है। इनका रचना-काल अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध है, क्योकि उन्नीसवी के प्रारम्भ मे तो ब्रह्मलीन हो गए थे।

रूपदासजी—

रूपदासजी की भी रचना वाणी के रूप मे प्राप्त है। रूपदासजी महाराज हरिदासजी की आठवी पीढ़ी मे हुए है। इनकी जो रचना प्राप्त है, वह पूरी है या नही—यह सशयास्पद है। रूपदासजी की परम्परा का स्थान बालोतरे मे है। सन्त जानकीदासजी, जिनने महाराज हरिदासजी का पद्यमय जीवन-चरित्र लिखा है, इन्ही की परम्परा मे है। रूपदासजी की रचना ग्राम लाघडिया स्थान की एक प्रति मे प्राप्त है। उसमे उनकी ५३५ साखियाँ, कुण्डलियाँ एक सौ पैतीस, चान्द्रायण तेईस, सवैये चौदह, रेखते उन्तीस तथा पद उन्यासी है। उक्त प्रति मे रूपदासजी की रचना के अन्त मे फुटकर वाणी सम्पूर्ण इस उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनकी उक्त प्रति मे उल्लिखित रचना पूरी नही है। रूपदासजी सुशिक्षित थे, साथ ही साधक-सन्त थे। उनने सेवादासजी की परचई भी पद्य मे लिखी है। उनकी रचनाओ का अनेकों पुस्तको मे उल्लेख मिलता है। रचना का क्रम सङ्गत है। काल इनकी रचना का अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। क्योकि इनने सेवादासजी की परचई के अन्त मे सम्वत् अठारह सौ तीस मे उसकी पूर्त्ति का उल्लेख किया है।

इस तरह उपर्युक्त महाराज हरिदासजी सहित दस निरजनी सन्तो की वाणियाँ प्राप्त है। यहाँ इनका सामान्य परिचयमात्र दिया है। इनका विवेचन प्रसङ्गानुसार किया जायगा।

२. अनुवाद-रचनाएँ—

वाणियो की रचना के पश्चात् दूसरा वर्ग अनुवाद-रचनाओ का है। इस वर्ग में अधिक रचनाएँ नही है। अब तक जो साहित्य देखने मे आया है, उसमे तीन ग्रन्थ अनूदित सामने आए है—१-अध्यात्मरामायण, २-वैराग्यवृन्द और ३-कार्तिक-माहात्म्य। तीनो पुस्तको के रचनाकार स्वामी भगवानदासजी निरञ्जनी हैं। ये सुशिक्षित तथा साधक महात्मा थे। इनकी रचनाओ से प्रतीत होता है कि ये संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। कारण, जिन तीन पुस्तको का इनने पद्यानुवाद किया है, वे तीनो ही मूलत· सस्कृत-साहित्य की पुस्तके है। अध्यात्मरामायण प्रमुखतया वेदान्त-विषय का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है। इसका पद्यानुवाद जैसा किया गया है, उससे सिद्ध हो जाता है कि अनुवादक उक्त विषय का सम्यक् ज्ञाता है; साथ ही

भावाभिव्यक्ति मे कुशल है। 'वैराग्यवृन्द' यह 'भर्तृहरि-शतक' का पद्यानुवाद है। भर्तृहरि-शतक की रचना संस्कृत वाङ्मय मे अपना विशेष स्थान रखती है। उसका पद्यानुवाद साधारण शिक्षित व्यक्ति से होना सम्भव नही। सस्कृत-श्लोक के पूरे भाव को हिन्दी पद्य मे ले आना कुशल रचनाकार का ही काम है। वैराग्यवृन्द का पद्यानुवाद व्यक्त करता हैं कि उसका रचनाकार विज्ञ तथा भावाभिव्यक्ति मे कुशल है। भर्तृहरि का प्रथम पद्य व उसका अनुवाद देखिए—

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानंतचिन्मात्रमूर्त्तये ॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

अनुवाद-कवित्त—देस काल भेद नाँहि वस्तु सो प्रछेद कांही
मनहर अनंत सरूप आं ही चिदानन्द रूप है।
आप ही को आपु जानैं आप अनुभो प्रमानै
जैसे मणि जोति नामै निर्मल अनूप है॥
तेज हूं ते तेजरूपी शीतल सदा अनूप
व्यापक विविध भूत महाराज भूप है।
कर ले नमसकार भगवान उर धार
नीकै कै निहार सो तो तेरो ही सरूप है॥१॥

संस्कृत-श्लोक के निहित भाव का हिन्दी पद्य में स्पष्टीकरण कर दिया गया है। रचना मे उचित प्रवाहमय भाव-व्यञ्जना का सम्यक् विकास है। तीनो शतकों का यह पद्यानुवाद अभी प्राचीन संग्रह की ही विभूति है। इसके प्रकाशन की तो बात ही क्या कही जाय ? शायद इस रचना का अभी तो साहित्यकारों को परिचय ही नहीं है। रचनाकाल सम्वत् सत्रह सौ तीस है। कार्त्तिक-माहात्म्य भी इसी तरह हिन्दी पद्यो मे अनूदित किया गया है। उसका रचनाकाल सम्वत् सत्रह सौ बयालीस है। अध्यात्मरामायण का काल इसके बाद का है। अनुवाद-वर्ग मे ये ही तीन रचनाएँ दृष्टिगत हुई है। तीनो के रचयिता एक ही है—स्वामी भगवानदासजी निरञ्जनी। इनकी अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ भी है।

३. वर्ग तृतीय—विभिन्न विषयों की रचनाएँ

उपर्युक्त दो विषयों मे ग्यारह रचनाकारों के नाम आए है; शेष सोलह रचनाकार ऐसे है, जिन्होने स्वतन्त्र रचनाएँ की है। अब तक के अन्वेषण से इन सत्ताईस महात्माओ की रचनाकार के रूप मे जानकारी मिली है। ग्यारह महात्माओं

की रचना का संक्षिप्त विवरण ऊपर आ गया है, शेष का विवरण आगे दिया जा रहा है। कालक्रम से इनके नाम इस तरह आते है—

१–खेमजी, २–भगवानदासजी, ३–मनोहरदासजी, ४–रामजीदासजी, ५–लालदासजी, ६–हरिरामदासजी, ७–सन्तदासजी, ८–अमरपुरुषजी, ९–जगरामदासजी, १०–चतुर्भुजदासजी, ११–रूपदासजी, १२–रघुनाथदासजी, १३–प्यारेरामजी, १४–रतनदासजी, १५–भाऊदासजी, १६–उदयरामजी, १७–पूर्णदासजी और १८–जानकीदासजी। भगवानदासजी व रूपदासजी के नाम वाणी, रचना व अनुवाद विषय मे आए हुए है। दुबारा नाम इसलिए आए कि इनकी अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ भी है।

उक्त सोलह सन्तों की रचना मे सामान्य-विशेष सभी तरह की रचनाएँ हैं। उक्त वर्ग मे पहिला नाम खेमजी का है, जो कि महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे है। खेमजी की रचनाएँ—१–चिन्तामणि, २–वैराग लच्छी ग्रन्थ तथा पद मिले है। इनकी और भी रचना है या नही—यह निश्चय से नही कहा जा सकता।

भगवानदासजी रचित अमृतधारा, विचारमाला, अनभै हुलास—ये तीन ग्रन्थ और प्राप्त हैं। तीनों ही मे वेदान्त के विषय का निरूपण है। मेरी समझ से भाषा-साहित्य मे वेदान्त विषयक-निरूपण का यह अन्यतम प्रयास था।

भगवानदासजी के समकालीन ही मनोहरदासजी हुए है। ये भी शिक्षित व्यक्ति थे। इनके दो ग्रन्थ प्राप्त हुए है—१–षट् प्रश्नोत्तरी, २–सप्त-भूमिका।+षट्-प्रश्नोत्तरी गद्य-पद्यात्मक है—विषय वेदान्त है। सप्तभूमिका मे साधना के अंग है। इनकी रचना और भी होनी चाहिए। खेमजी का काल सत्रहवी शताब्दी तथा भगवानदासजी व मनोहरदासजी का रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। रामजीदासजी की रचना बहुत कम प्राप्त है। ये महाराज हरिदासजी के शिष्य या साथी मोहनदासजी के शिष्य थे। कुछ सवैया पद ही इनके प्राप्त है। लालदासजी की एक चितावणी प्राप्त है, और रचना होना संदिग्ध है। हरिरामदासजी सुशिक्षित तथा साधक सन्त थे। वे साहित्य तथा छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उनने छन्दशास्त्र से सम्बन्धित "छन्द रत्नावली" पद्यमय निर्मित की। दूसरा ग्रन्थ उनका "परमार्थ-पंच-सतसई" है। यह परमार्थ सम्बन्धी यानी नैतिकता के जीवन से सम्बन्धित विषयो पर अच्छा प्रकाश डालती है। और भी इनकी फुटकर रचनाएँ है। काल इनका अठारहवी शताब्दी है। इनकी 'परमार्थ पचसतसई' प्रकाशित होने तथा जनसमुदाय के हाथ मे जाने जैसी है। सन्तदासजी का एक अष्टकमात्र प्राप्त है। अमरपुरुषजी सेवादासजी के शिष्य थे। इनके मात्र ९ पद प्राप्त है। जगरामदासजी व चतुर्भुजदासजी ये आत्मारामजी के शिष्य थे। इनकी भी फुटकर रचनाएँ है। रूपदासजी की

+ इनके चार ग्रन्थ और मिले है।

वाणी से भिन्न सेवादासजी की परचई और है। रघुनाथदासजी ने हरिदासजी महाराज की परचई रची है। इनके फुटकर पद भी हैं। प्यारेरामजी ने भक्तमाल की रचना की है। रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। रतनदासजी की होलियाँ तथा धमाल व भाऊदासजी की गुदडी प्राप्त है। उदयरामजी की रचना "सारसंग्रह" है। यह निरञ्जनी सम्प्रदाय के महात्माओ की वाणियो का एक तरह से संग्रह है। प्रमुखतया हरिदासजी, तुरसीदासजी और सेवादासजी के एक विषयात्मक वचनो का अंगानुक्रम से संग्रह है। रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दी का अन्त व बीसवी का प्रारंभ काल है। पूर्णदासजी व जानकीदासजी ने हरिदासजी महाराज का जीवन-चरित्र लिखा है। काल पूर्णदासजी का बीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। जानकीदासजी का उत्तरार्द्ध है। इस तरह अब तक प्रकाश मे सत्ताईस महात्माओ की रचनाओ का यह संक्षिप्त परिचय है। सब रचनाएँ हिन्दी भाषा मे है। विषय-विचार व स्वानुभव के अनुसार इनका कितना महत्व है—यह उन सज्जनो से छिपा नही है, जिनने सन्त-साहित्य का कुछ रसास्वादन किया है। इन सन्तो की हिन्दी-साहित्य को यह महत्व-मय देन अनुपम है। हिन्दीसेवियो ने हिन्दी-साहित्य के रीति, भक्ति, काव्य, छन्द, नाटक, कथा-कहानी, उपन्यास, इतिहास आदि विषयो पर जितना ध्यान दिया है, वहाँ सन्त-साहित्य की एक तरह से उपेक्षा-सी की गई है। कुछ साहित्य-सेवियो ने इधर ध्यान दिया है। उनकी तरह और भी साहित्य-प्रेमियो को राजस्थान के इन सन्तों की हिन्दी-साहित्यसेवा का मूल्याङ्कन करना चाहिए, अन्यथा यह अलभ्य साहित्य धीरे-धीरे क्षीण होता हुआ प्रलुप्त न हो जाय। इस खतरे को न होने देना—यह राज्य तथा साहित्य-सम्पत्ति की रक्षानिमित्त बनी संस्थाओ का प्रमुख कर्त्तव्य है। आशा है वे राजस्थान मे उपेक्षित सन्त-साहित्य की अब और उपेक्षा नही करेगे।

११. उपसंहार—

महाराज हरिदासजी की जीवनी तथा निरञ्जनी सम्प्रदाय का परिचयात्मक विवरण उपर्युक्त दो भागो मे समाप्त हुआ है। हरिदासजी महाराज के परिचय मे आए विवरण के कुछ अंश सम्प्रदाय-परिचय मे पुनः आये है। विषय के स्पष्टीकरण के विचार से ही ऐसा किया गया है। उक्त दोनो विवरण लिखे गए है—उनमे इस बात का ध्यान रखा गया है कि केवल अपनी कल्पना के आधार पर किसी तथ्य को आधारित न किया जाय। प्रमाण व युक्तियुक्त विवेचन मे जिसका औचित्य प्रतीत हो, उसी को मान्यता दी जाय। काल को छोडकर अन्य सब विषय मेरी समझ से निर्भ्रान्त है। काल के बारे मे मतभेद हो सकता है, पर जिस मत को गृहीत किया गया है वह साधार है। आधारो की प्रामाणिकता को तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती, जब तक उसके विपरीत वैसे ही आधार प्रमाण सहित न हो।

महाराज की वाणी की रचना का विशद विवेचन इसलिए नही किया गया है कि वाणी सम्पूर्ण दी जा रही है। वाणी का स्वाध्याय करते समय यह ध्यान मे

रखना आवश्यक है कि यह कोई काव्य-ग्रन्थ नही है—यह महात्माओ की सहज वाणी से निकली उनके अनुभव की प्रतिध्वनि है। हरिदासजी की गणना साहित्यकारो मे नही है; उनकी गणना है आत्मानुभूति करने वाले वीतराग-साधको मे। अत उनकी रचना मे भाषा, छन्द, भाव, अलङ्कारादि साहित्यिक अङ्गो के परिपुष्ट रूप देखने की भावना न रख यह, देखना है कि उनने जिन तथ्यो का निरूपण किया है वे तथ्य उनके जीवन मे कहाँ तक व्यवहृत हुए। इसीसे उनकी प्रामाणिकता व अनुभूति को आँकना है। तभी हम उनके विषय मे तथ्य के अधिक समीप पहुच सकेगे।

प्रत्येक व्यक्ति का सोचने-विचारने का अपना तरीका होता है। अतः एक व्यक्ति का विचार सर्वमान्य नही माना जाता। भारतीय सस्कृति मे इसीलिए आर्ष-वाक्य ही प्रमाण माने जाने का निर्देश है। आर्ष वे व्यक्ति है, जिनका जीवन सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो गया है—विश्व उनका कुटुम्ब है, विश्व का कल्याण ही उनका लक्ष्य है। अपने लिए जिनको किसी भी प्रकार की इच्छा नही है। राग और द्वेष रूपी कल्मष का कोई किञ्चित् अंश शेष नही है। ऐसे महापुरुष ऋषिपुङ्गवो के वाक्य निर्भ्रान्त कहे जा सकते है।

मेरी विचाराभिव्यक्ति मेरी समझ के अनुसार है। अतः यह प्रामाणिक समझी जाय—ऐसी मेरी भावना नही है। सम्भव है मेरे कथोपकथनो मे कही सदोपता हो, तदर्थ ज्ञात होने पर उसका परिशोध करना मै अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। हरिदासजी महाराज के जीवनवृत्त व निरञ्जनी सम्प्रदाय का परिचयात्मक यह विवेचन कैसा है? यह सन्तप्रेमी साहित्यिको की भावना पर निर्भर है।

भाद्रपद शुक्ला १० सम्वत् २०१८
ता० २०-९-१९६१ सन्
(दादू महाविद्यालय, जयपुर।)

मङ्गलदास स्वामी

परिशिष्ट

॥ निरंजनी सम्प्रदाय का प्राप्त साहित्य ॥
लेखकों के नाम व उनकी रचनाएं

संख्या	रचयिता का नाम	रचनाएं	काल	मुद्रित-अमुद्रित	विशेष
१	श्रीमान् महात्मा हरिदासजी (हरिपुरुषजी)	वाणी (साषी, कुण्डलिया पद भाग) लघुग्रन्थ संख्या ४६	सोलहवी का अंतिम चरण	मुद्रित प्रथम संस्करण	मंदिर कुञ्जविहारीजी जोधपुर के महात्मा देवादासजी द्वारा सम्वत् १६८८ मे जोधपुर से प्रकाशित।
२	,, स्वामी तुरसीदासजी	वाणी (साषी पद भाग) लघुग्रन्थ ४	सोलहवी का अन्त सत्रहवी का आरम्भ	अमुद्रित	गुसाई तुरसीदासजी द्वादश निरञ्जनी महात्माओ मे है। (इनका केन्द्रस्थान शेरपुर कहा गया है।)
३	,, स्वामी जगजीवणजी	लघु ग्रन्थ दो तथा पद प्राप्त है	,, ,,	अमुद्रित	इनकी और रचनाएं भी होनी चाहिए, ये भी द्वादश मे है।
४	,, स्वामी ध्यानदासजी	लघु ग्रन्थ ३ तथा चान्द्रायण प्राप्त है	,, ,,	अमुद्रित	इनकी ये ही रचनाएँ है, ऐसा न मान और रचनाएँ मिलने की संभावना है। (द्वादशमे)
५	,, स्वामी मोहनदासजी	वाणी (साषी पद भाग प्राप्त है)	,, ,,	अमुद्रित	ये भी द्वादश निरञ्जनी महात्माओ मे है।
६	,, स्वामी षेमदासजी	इनका एक ग्रन्थ तथा कुछ पद मिले है, एक चितावणी है।	सत्रहवी सदी	अमुद्रित	हरिदासजी महाराज के शिष्य द्वादश महन्तो मे भी।
७	,, स्वामी नरीदासजी	इनकी प्राप्त रचना पद भाग १६ रागो मे प्राप्त है वह अपूर्ण है।	सत्रहवी का उत्तरार्द्ध	अमुद्रित	ये महाराज हरिदासजीके बावन शिष्योमे है फतेहपुर शेखावाटीमे इनका स्थान है।

इन चारों 'महंतों' ने भी अपने-अपने चार पंथ प्रतिष्ठित किये।[1] उन्होने इन चारों पंथों मे से जगन वाले को, आगे, 'निरंजनी पथ' के नाम से अभिहित किया है, उसके 'द्वादश' प्रमुख महतो के नाम दिये है तथा उनके निवास स्थानो और उनकी कुछ विशेषताओ तक की ओर संकेत किया है।[2] उनका कहना है कि ये बारहो महंत कबीर के 'भाव' की 'रक्षा' अथवा उनके मत का समर्थन करते थे जिस कारण इन्हे उनसे अधिक भिन्न भी नही कहा जा सकता। परन्तु राघोदास द्वारा दिये गए निरंजनी संप्रदाय के इस परिचय से हमे पूरा संतोष नही होता। इससे न तो उक्त बारह निरंजनी महापुरुषो के जीवन-काल पर ही कोई प्रकाश पडता है, न उनके पारस्परिक सम्बन्धो का पता चलता है और न यही ज्ञात हो पाता है कि उनकी रचनाएं कौन-कौन थी अथवा अपने पंथ के संगठन और विकास के निमित्त उन्होने कितना तथा किस रूप मे कार्य किया। इसके सिवाय, मूल 'भक्तमाल' अथवा उसकी टीका के अन्तर्गत, जिस प्रकार स्थल निर्देश किया गया है उसके सहारे किसी भौगोलिक संगति का बिठाना सरल नही है और न यहा पर अन्य भी कोई ऐसी बात पायी जाती है जिस से किसी ऐतिहासिक तथ्य की छान बीन का प्रयत्न किया जाय। उपर्युक्त 'जगन' शब्द स्वभावतः किसी ऐसे व्यक्ति विशेष का नाम होना चाहिए जिसे इस पंथ के प्रवर्तन का श्रेय दिया जा सके, किन्तु उपलब्ध सामग्री के आधार पर, हमारे लिए इस प्रकार का निश्चय करना भ। प्राय· असम्भव-सा ही प्रतीत होता है।

इसी प्रकार निरंजनी संप्रदाय के सबंध मे लिखने वाले एक अन्य लेखक स्व० बडथ्वाल रहे है जिन्होने, इसके उपलब्ध साहित्य का अध्ययन करके, उसके आधार पर इसके सिद्धात एवं साधना के विषय मे अपना मत प्रकट किया है। डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल (स० १९५८-२००१ वि०) संत-साहित्य के विशेषज्ञ थे और उन्होने, इस विषय के ही आधार पर, अपनी 'दि निर्गुण स्कूल आफ हिन्दी पोएट्री' नामक थीसिस तैयार कर, उसे, 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' मे अर्पित किया और वहां से स० १९९० (सन् १९३३ ई०) मे डी० लिट् की उपाधि प्राप्त की थी। यह शोध-प्रबंध सन् १९३६ ई० में, अपने मूल अंग्रेजी रूप मे. प्रकाशित हुआ[3] और उसकी 'प्रस्तावना' मे डा० बडथ्वालने निरंजनी सप्रदाय के सबंध मे अपने कुछ विचार प्रकट किये जिन का बहुत कुछ समर्थन उन्होने आगे चलकर, अपने सन् १९४०ई० के एक हिन्दी भाषण द्वारा भी किया।[4] अपनी उक्त 'प्रस्तावना' के अंतर्गत उन्होने बतलाया कि निर्गुण संप्रदाय (अर्थात् संत परम्परा) से निरंजनी संप्रदाय प्राय उसी प्रकार भिन्न ठहराया जा सकता है

---

१. राघोदास की 'भक्तमाल', पद्य ३४१। २. वही पद्य ४२९-४४। ३. अब इसका एक हिन्दी अनुवाद भी 'हिन्दी काव्य मे निर्गुण संप्रदाय' के नाम से 'अवधपब्लिशिग हाउस लखनऊ' से सं० २००७ मे प्रकाशित हो चुका है? देव 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), वर्ष ४५ सवत् १९९७, पृष्ठ ७१-८८।

८	,, स्वामी मनोहरदासजी	१. षट्प्रश्नोत्तरी, २. शतप्रश्नोत्तरी ३. ज्ञानमंजरी, ४. वेदान्त-परिभाषा ५. ज्ञानचूर्ण वचनिका, ६. सप्तभूमिका	अठारहवी का पूर्वार्द्ध	अमुद्रित	ये सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल के है, इनकी रचनाएँ प्रशस्त है। रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का पुर्वार्द्ध है।
९	,, स्वामी भगवानदासजी	१. अमृतधारा, २. वैराग्यवृन्द, ३ अध्यात्म रामायण, ४ कार्तिक-माहात्म्य।	,, ,,	मुद्रित अमुद्रित	इनका समय सतरहवी शताब्दी का उत्त-रार्द्ध व अठारहवी का पूर्वार्द्ध—सम्भव है इनकी रचना और मिले।
१०	,, स्वामी सेवादासजी	वाणी (साखी, पदभाग, कवित्त, चान्द्रायण) लघु ग्रन्थ संख्या १०।	अठारहवी सदी	अमुद्रित	ये खेमजी की पाँचवी पीढी मे हुए, इनका रचनाकाल अठारहवी सदी है। गुसाई तुरसीदासजी के समान ही इनकी रचना है।
११	,, स्वामी आत्मारामजी	वाणी (कवित्त, कुण्डलिया, इन्दव आदि तथा पद।	,, ,,	अमुद्रित	अब तक की प्राप्त रचना पूरी नही है, इनकी और रचना है।
१२	,, कल्याणदासजी	वाणी (साषी पद भाग, लघु ग्रन्थ ग्यारह।	सत्रहवी-सदी	अमुद्रित	इनकी भी जो रचना मिली है, वह पूर्ण नही है। और भी रचना है। लेखनकाल १८२६।
१३	,, हरिरामदासजी	१ परमार्थ पंच सतसई, २. छन्द रत्नावली, ३. हरिदासजीको परचई ४. कुण्डलियां १४७।	अठारहवी सदी	छन्द रत्नावली मुद्रित है, शेष रचना अमुद्रित है	परमार्थ पञ्चसतसई की जो प्रति है, उसका लेखनकाल १८५२ है।
१४	,, रामजीदासजी	सवैया पद गुरुमहिमा के।	अठारहवी सदी	अमुद्रित	ये मोहनदासजी के शिष्य थे, इनकी और रचना अप्राप्त है।

संख्या	रचयिता का नाम	रचनाएँ	काल	मुद्रित-अमुद्रित	विशेष
१५ ,,	जगरामदासजी	गुरुवन्दना के छप्पय व पद	अठाहरवी सदी	अमुद्रित	ये महात्मा सिद्ध आत्मारामजी के शिष्य थे। सम्भव है इनकी और भी रचना हो।
१६ ,,	चतुर्भुजदासजी	गुरु-महिमा की साखिया	,, ,,	,,	,, ,, ,,
१७ ,,	अमरपुरुषजी महाराज	केवल कुछ पद	उन्नीसवी सदी	,,	ये महाराज सेवादासजी के शिष्य, सिद्ध व महान् महात्मा थे।
१८ ,,	रघुनाथदासजी	हरिदासजी महाराज की परचई	,, ,,	,,	ये महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे।
१९ ,,	रूपदासजी	१. वाणी (साखी, पद, चाद्रायणादि) २. सेवजी की परचई।	,, ,,	,,	ये भी महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे, इनकी रचना पर्याप्त तथा प्रशस्त भी है।
२० ,,	प्यारेरामजी	भक्तमाल।	,, ,,	,,	ये अमरपुरुषजी के पोताशिष्य दर्शनदासजी के शिष्य थे।
२१ ,,	उदयरामजी	सारसंग्रह।	उन्नीसवी बीसवी सदी	अमुद्रित	इस ग्रन्थ मे हरिदासजी, सेवजी, तुरसी, कबीरजी आदि महात्माओ की रचना का संग्रह है।
२२ ,,	सन्तदासजी	अष्टक गुरुवन्दना मात्र।	,, ,,	,,	इनकी अन्य कोई रचना अब तक तो प्राप्त नही है।
२३ ,,	रतनदासजी	पद होलियाँ।	,, ,,	,,	इनकी होलियाँ तथा धमाले भी है।
२४ ,,	भाऊदासजी	गूदडी।	,, ,,	मुद्रित	इनकी अभी तक तो यही रचना प्राप्य है।
२५ ,,	कोमलदासजी	हरिपुरुषजी की परचई।	बीसवी सदी	अमुद्रित	छन्द, दोहे व चौपाइयो मे रचना है।
२६ ,,	पूणदासजी	,, ,, ,,	,, ,,	अमुद्रित	ये नवलगढ़ शेखावाटी के रहने वाले थे।

२७	,,	पं० रामचन्द्रशर्म्मा गुजराती	दयालुस्तोत्र (संस्कृत मे रचना)	बीसवी सदी	मुद्रित	ये डीडवाणे के ही निवासी थे। मुद्रण-काल १८४८।
२८	,,	आशारामजी दाधीच	दयालुपुरुषमहिमा।	,, ,,	,,	ये पंडित रामचन्द्रजी के शिष्य थे तथा डीडवाणे के ही निवासी थे।
२९	,,	कालीदासजी	दयालु अष्टक (संस्कृत मे)।	,, ,,	अमुद्रित	रचयिता का ठीक पता नही है।
३०	,,	स्वामी जानकीदासजी	श्री हरिपुरुष जीवन-चरित्र	,, ,,	मुद्रित	ये निरञ्जनी संत बालोतरा निवासी है। रचनाकाल १८६२।

॥ महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यों में से कुछ शिष्यों की परम्परा ॥

षेमजी की परम्परा

१ महाराज हरिदासजी
२ षेमजी बडा
३ चत्रदासजी
४ पोकरदासजी
५ दयालदासजी
६ सेवादासजी
७ अमरपुरुषजी
८ नारायणदासजी
९ दोनदासजी
१० जीवणदासजी
११ श्रीरामदासजी
१२ गोविन्दरामजी
१३ हनुमानदासजी
१४ बालमुकुन्दजी (वर्त्तमान)
डीडवाणा

शारंगदासजी की परम्परा

१ महाराज हरिदासजी
२ शारंगदासजी
३ जगजीवणजी
४ राघोदासजी
५ भूधरदासजी
६ चेतनदासजी
७ देवादासजी
८ जुगलदासजी
९ जानकीदासजी
१० अखैरामजी
११ चैनरामजी
१२ पीताम्बरदासजी
१३ केशोदासजी
१४ आशारामजी (वर्त्तमान)
नागौर

पींपाजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ पीपाजी
३ शीतलदासजी
४ ऊधोदासजी
५ गरीबदासजी
६ मानदासजी
७ जैरामदासजी
८ सन्तदासजी
९ हरिकिसनदासजी
१० श्यामदासजी
११ शीतलदासजी (२)
१२ नवलदासजी
१३ चतरदासजी
१४ हनुमानदासजी
१५ रामदासजी
१६ नृसिंहदासजी (वर्त्तमान)
नागौर

मोहनदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ मोहनदासजी महाराज
३ भगवानदासजी
४ वनमालीदासजी

५ पोकरदासजी नागा
६ प्रेमगौडजी
७ बालकिसनजी (लोटनजी)
८ जयरामदासजी
९ आत्मारामजी
१० अगमदासजी
११ भरतदासजी
१२ वल्लभदासजी
१३ चन्द्रदासजी
१४ पूर्णदासजी (वर्त्तमान)
डीडवाणा

*नरहरदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ नरहरदासजी
३ कल्याणदासजी
४ लिषमीदासजी
५ गङ्गादासजी
६ मनीरामजी

* यह विवरण भाट की बही के आधार पर है। संभव है नरहरदासजी व कल्याणदासजी के बीच दो पीढी के नाम नही आये है।

७ कल्याणदासजी
८ नारायणदासजी
९ आशानन्दजी
१० रामदासजी
११ परमेसजी
१२ भरतदासजी (बीकानेर)

नारायणदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ नारायणदासजी
३ हरीरामजी
४ रूपदासजी
५ सीतलदासजी
६ लक्ष्मणदासजी
७ गङ्गादासजी
८ नृसिहदासजी
९ मनशारामजी
१० वलरामदासजी
११ किसनदासजी
१२ आशारामजी
१३ पीताम्बरदासजी×

× इनके पश्चात् एक पीढी और हो गई है— (जोधपुर)

महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे से कइयो की परम्परा अभी तक चल रही है जैसा ऊपर व्यक्त किया है। महाराज के शिष्य नाथजी, परसरामजी, जगजीवणजी, नारायणदासजी, महरवानजी आदि को परम्पराएँ भी विद्यमान है। इनकी प्रणालिया यथा वत् प्राप्त न होने मे नही दी गई है।

हरिदासजी महाराज के कुछ शिष्यो की परम्परा का विशेष विस्तार हुआ, जैसे षेमजी, नाथजी, महरवानजी आदि। इनमे भी षेमजी की परम्परा अधिक विस्तृत हुई।

॥ निरञ्जनी सम्प्रदाय के कुछ महापुरुषों की नामावली ॥

१ महाराज हरिदासजी
२ षेमजी
३ नाथजी
४ जगजीवणजी
५ ध्यानदासजी
६ तुरसीदासजी
७ मोहनदासजी
८ जगन्नाथदासजी
९ श्यामदासजी
१० ग्रानदासजी
११ कानडदासजी
१२ पूर्णदासजी
१३ कल्याणदासजी
१४ नरीदासजी
१५ पीपाजी
१६ नारायणदासजी
१७ परसरामजी
१८ शारंगदासजी
१९ महरवानजी
२० नारायणदासजी (नारनौल)
२१ मनोहरदासजी
२२ पोकरदासजी
२३ दयालदासजी
२४ सेवादासजी
२५ ग्रात्मारामजी
२६ ग्रमरपुरुषजी
२७ हरिरामदासजी
२८ रूपदासजी
२९ रामदासजी
३० बालकदासजी

विद्वान् साधक

१ मनोहरदासजी
२ भगवानदासजी
३ हरिरामदासजी
४ सेवादासजी
५ रूपदासजी
६ रमतारामजी महाराज
७ मगनीरामजी महाराज
८ मधुसूदनजी महाराज
९ महन्त हनुमानदासजी
१० पुरुषोत्तमदासजी
११ घनश्यामदासजी
१२ पं० मोतीरामजी
१३ पं० माधोदासजी
१४ पं० लक्ष्मणदासजी

योगी–साधक–भजनीक

१ नाथजी
२ तुरसीदासजी
३ सेवादासजो
४ ग्रमरपुरुषजी
५ दरसणदासजी
६ मुनिजी महाराज
७ ग्रात्मारामजी
८ नारायणदासजी
९ प्रेमदासजी
१० प्रह्लाददासजी
११ मनोहरदासजी
१२ राघोदासजी
१३ भक्तरामजी
१४ तुलसीदासजी
१५ रामाकिसनजी

॥ भाऊदासजी की गुदड़ी ॥

(हरिपुरुषजी के शिष्यों पर प्रकाश)

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥
सतगुरु चरण रंज में धारूँ , गुरु गोरष का ग्यान विचारूँ ।
तीषे सिषर ध्यान हरि धारया, भर्म कर्म सब दूर निवारया ॥
कठिन साँकड़ा मौतज फन्दा , हरीदास जिन हरि का वन्दा ।
एक पलक में सब तज दीन्हा , काम क्रोध ममता मारणी ॥१॥

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

कठिन पन्थ सन्तों का मारग , सतगुरु शब्द सुनाया तारग ।
पाँवर जीव कील में केता , सतगुरु शरणै आया जेता ॥
सतगुरु शरण अभय पद पाया, ग्यान घटा अमृत झर लाया ।
नाम प्रताप ऐसो है भाई , आवा जू गमन निवारणी ॥२॥

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

कनक कामणी नदियाँ भारी , जा में वह गये सब नर नारी ।
उनको तिरकर जो कोई भागा , केवल नाम निरंतर लागा ॥
मोह द्रोह माया मद लूटे , सतगुरु शरणाँ आये छूटे ।
कठिन पन्थ सन्तों का मारग , खाँडे की धार दुधारणी ॥३॥

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

धन्य भूमि वह सन्त विराजे , नगर डीडपुर शोभा राजे ।
जाके दर्शन जो कोई आवे , मनवांछित मुक्ति फल पावे ॥
वेर वेर दर्सन वलिहारी , सन्त शिरोमणि मंडली भारी ।
दर्सन सेती सब दुख नासै , गूदड़िया सन्त उधारणी ॥४॥

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

फागण सुद छठ का मेला , त्यागी तपसी होवे भेला ।
शीतल कोमल पर उपकारी , भजन भूमिका लागै प्यारी ॥
ऐसे सन्त बड़े अवधूता , बाना तो विरकत गुदड़ी धारणी ॥५॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

रामानन्द के दास कबीरा , नामदेव भक्तन में शूरा ।
कलियुग में नीसान बजाया , निराकार का पन्थ चलाया ॥
निर्गुण भक्ति करी कलियुग में, युग युग में भक्ति वधारणी ॥६॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

कानड़ मोहन खेम हजूरी , आनदास पूर्ण मत पूरी ।
श्याम साँकड़ै ध्यान लगाया , जगजीवण तुरसी तत पाया ॥
नाथ ध्यानजी है अवधूता , जगन्नाथ केवल पद पहुँता ।
जिनकी पदरज जे कोई धारे , जन्म जन्म अघ जारणी ॥७॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

नरीदास जन नरहरि दूजा , दास नारायण पींपा सूँधा ।
परसराम शारंग मतवाला , जन मनोहर पोकर काला ॥
महरवान मन की गति जांणी, बावन शिष्य भये परवाणी ।
जन भाऊदास के सीस विराजै, यह सब सन्त निरंजणी ॥८॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

॥ सन्तदासजी कृत अष्टक ॥

धन्य धन्य स्वामी हरिदासजी दयालु पदवी हरि दई ।
मरुधर अपावन भूमि ताको प्रगट पावन कर दई ॥
आदि निरंजन पन्थ पकड्यो पाप ताप निकंदना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥१॥
ज्ञान गोरष मिले जब तें मूठ काठी कर गई ।
कर भजन ले वैराग्यपूर्ण सुरति हरि में रम रही ॥
काया कसणी देय भलि विधि जोग जुगति जानंदना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥२॥
पांच तत्व गुण रचित माया तहां मन नहिं लाइयो ।
निर्गुण रमताराम व्यापक ब्रह्म उर मधि धाइयो ॥
पवन परचै सदा अरचै भाव भक्ति चित चंदना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥३॥
जोति जगमग घूरे अनहद आतमा हरि पद छिवे ।
पांच सखि भर देत प्याला हरिदास जन हरिरस पिवे ॥
दत्त गोरख कबीर नामदेव छके सनक सनंदना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥४॥
निवृत्ति, ग्यान, विचार, शील संतोष भलि विधि धारियो ।
प्रवृत्ति, मोह, अज्ञान, मत्सर काम क्रोध जु मारियो ॥
देव निरंजन गादि दीन्ही पटा वगस्या अति घना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥५॥
जो जीव जगप्रवाह तें टल शरण तुमरी आइहैं ।
करि भजन ले वैराग्य ग्यान विचार हरिपद पाइहैं ॥
पांच कोटि जू जीव तुम संग काटिहै कर्म बंधना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥६॥

जोबनेर में भक्त कपटी जहर पी समझाइयो।
अजयमेरु में मस्त हस्ती चरण शीश नवाइयो ॥
नागौर प्रेत स सर्प टोडे सिंह को पलट्यो मना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥७॥
डीडपुर में डूँगरी ज्यूँ गागरी गिरि राखिहै।
देवि को दीक्षा दई जन हरीदास हरि आप है ॥
विप्र पंगु पंथ चाल्यो शाहसुत आनंद घना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥८॥
वर्ष सौ पीछे जु तिन तें प्रगट सेवादासजी।
करि भजन ले वैराग्यपूर्ण नाम दृढ़ विश्वासजी ॥
पंथ निरंजन प्रगट जग में सब ही सन्त सुलक्षणा।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रजपद वंदना ॥९॥
यह अष्टक स्वामी हरिदासजी को पढ़े सुने अरु गावही।
जन्म जन्म के पाप नासे भक्ति मुक्ति फल पावही ॥
सन्तदास जू सदा सुखिया मिलै हरि आनंद घना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ॥१०॥

॥ इति सन्तदासजी कृत अष्टक सम्पूर्ण ॥

जिस प्रकार सूफी सप्रदाय, क्योकि ये दोनो "अपने-अपने मूल धर्मो की ओर से शातिपूर्वक संतुष्ट जान पडते है" तथा 'ये (निरजनी लोग) परंपरागत सामाजिक अनुशासन के प्रति अपना विरोध प्रदर्शित करना नही चाहते जिस प्रकार की प्रवृत्ति सूफियो मे भी देखी जा सकती है, किन्तु जिसके उदाहरण, 'निर्गुण संप्रदाय' वालो के समाज मे, बहुत कम मिल सकते है। डा० बडथ्वाल ने निरजनी सप्रदाय को नाथ संप्रदाय का एक विकसित रूप" कहा है और इसे "एक प्रकार से नाथ सप्रदाय एवं निर्गुण संप्रदाय का मध्यवर्ती"[१] भी ठहराया है। उन्होने अपने भाषण मे, स्वामो हरिदास, तुरसीदास, कान्हडदास, सेवादास और मनोहरदास जैसे निरजनियो की रचनाओं के आधार पर, अपने उक्त मत का समर्थन करने की चेष्टा की है और उनसे कुछ उद्धरण भी प्रस्तुत किये है।[२] परन्तु डा० बडथ्वाल ने इस सप्रदाय के उदय, इसके प्रवर्तक अथवा इसके विभिन्न कवियो के निश्चित काल का निर्धारण करना, कदाचित्, अधिक आवश्यक नही समझा, प्रत्युत उन्होने स्व० जगद्धर शर्मा गुलेरी तथा, स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा जैसे लोगो के मतो का हवाला देकर ही, मौन धारण कर लिया।

स्व० पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने भी निरंजनी संप्रदाय का आरंभ होने आदि के संबंध मे कोई निश्चित तिथि नही दी है। उन्होंने अपने सपादित ग्रन्थ 'सुन्दर-ग्रन्थावलो' (खड १) मे, संत सुन्दर दास जो (छोटे) का 'जीवन-चरित्र' लिखते समय, प्रसगवश, उनके समकालीन महापुरुषो को चर्चा के सिलसिले मे, हरिदासजी का उल्लेख किया है। उन्होने लिखा है, हरिदासजी निरंजनी भी सुन्दरदास जी के समकालीन थे। यद्यपि निरजनी तो इस बात को नही मानते है, परन्तु दादू संप्रदाय मे यह बात प्रसिद्ध है कि ये हरिदास जी प्रथम प्रागदासजी के शिष्य हुए, फिर दादूजी के। फिर कबीर और गोरखपंथ मे हो गये। फिर अपना निराला पंथ चलादिया[३]। "यह स्पष्ट है कि स्व० शर्मा जीने यहा अपने कथन का आधार दादू संप्रदाय मे उपलब्ध किसी प्रसिद्धि को ही बनाया है और उन्होने यहा पर उक्त 'जीवन, चरित्र' मे ही दी गई उस टिप्पणी का उल्लेखतक भी नही किया है जिसमे हरिदासजी के सं० १६५६ मे प्रागदासजी का शिष्य होने और उनके सं० १६७० 'के मि० फागन सुदि ६' को 'रामसरणि' होने आदि की चर्चा की गई है।[४] हो सकता है कि उन्हे उक्त टिप्पणी मे उल्लिखित सारी-बातो मे, स्वय ही पूरी आस्था न रही हो और उन्होने अपने उपर्युक्त कथन को अधिकतर अपने अनुमान पर ही आधारित कर दिया हो, इस संबंध मे यहा पर केवल इतना उल्लेखनीय है कि हरिदासजी निरजनी के दादू-शिष्य प्रागदासजी का शिष्य होने तथा उनका सं० १६७० की फागुन सुदी ६ को, देहांत होने जैसी बातो की चर्चा उक्त टिप्पणी वाले उन ऐसे पुराने 'पत्रो' में भी

१. 'प्रस्तावना' हिन्दी सस्करण पृ० घ. ङ. २. 'भाषण (पत्रिका, पृ० ७६-८८)। ३. 'सुन्दर गन्थावली' (प्रथम खण्ड) (कलकत्ता, सं० १९९३)पृ० ६१। ४.वही, पृ० २८।

श्री हरि पुरुष जी महाराज, डीडवाना

श्रीदयालवे नमः

महाराज श्री हरिदासजी की वाणी

ग्रन्थ-ब्रह्मस्तुति*

ग्यान न ध्यान अवीह अजाप, अरत अतत न माइ न बाप ॥
जगदीस अरीस निकंप निघात, हतोज हतोज विशंभर तात ॥१॥

अवीह=भयरहित। अरत=अरक्त। अतत=पञ्चतत्व नही। अरीस=क्रोधरहित। निकंप=स्थिर। निघात=कालादि चोटरहित। हतोज=ऐसा।

अमुरीद अपीर अहेत अहाथ, अदुष असुष निरंजन नाथ ॥
अहुंमेव न टेव असेव अदेव, अबात अघात असिंभ अभेव ॥२॥

अमुरीद=किसी का शिष्य नही। अपीर=गुरुरहित। अहेत=हेतहीन, ममता-रहित। निरञ्जन=मायारहित। अहुंमेव=प्रमाणरहित। टेव=आदत। अदेव=देवता-रहित। असिभ=अजन्मा।

निरलेप निसाज निहचोभ निसोभ, निहकाम निजाम निरास निर्लोभ ॥
निर्मूल निसूल निरसिंध त्रिधंध, अजीत अतीत अबन्ध अकन्ध ॥३॥

निहचोभ=आकांक्षारहित। निजाम=जन्मरहित। निरसिंध=संयोगरहित। त्रिधंध=जिसका स्वयं काम नही। अतीत=कालादिक्रमरहित। अकन्ध=देहहीन।

निद्रोह निछोह निमोह निसास, निपंक निसंक निडंक निरवास ॥
निरंक निटंक निरवंट नितास, अनन्त सनन्त ब्रह्म प्रकास ॥४॥

निपंक=मलरहित। निरंक=निरक्षर। निरवंट=अविभक्त। निटंक=तोलहीन। नितास=निर्भय। सनन्त=उपाधिभेद से शान्त।

पाठभेद—मूलपाठ का आधार पांच पुस्तकें है। उनके लेखनकाल के क्रम से १-२-३-४-५ इन अंको में व्यक्त किया है। पाठ का भेद किन प्रतियो मे है—यह "शब्द" के आगे दिये अंकों से जानिये।

निरलोभ=३-४-५। नि ॅ के स्थान मे नृ=३-४-५।

---

* महाराज हरिदासजी निर्गुण उपासक हुए है। निर्गुण चित्शक्ति को शास्त्रों ने ब्रह्म शब्द से प्रतिपादित किया है। इसलिए महात्मा हरिदासजी सर्वप्रथम अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। ब्रह्मस्तुति मे उस व्यापक अधिष्ठान चेतन का विविध रूपों मे स्मरण किया गया है।

अमान अथान अरुति अवाट , अचिंत अनंत अथित अघाट ।।
निदोष निपोष अरेह अथाट , गोपाल गुवाल अमित अपाट ।।५।।

अवाट=बिना रास्ते। अथित=स्थानरहित। अरेह=सीमारहित। अथाट=आडम्बर-विहीन। अमित=अपार। अपाट=स्थायी विस्तार नही।

दयाल अकाल अजाल विराट , अभाल अपाल अताल निराट ।।
सालूम मालूम लतीफ गुंजार , हकीम• फहीम सतार जवार ।।६।।

विराट=सर्वव्यापी। अभाल=अदृष्ट। अपाल=सीमाहीन। अताल=अथाह। निराट=वस्तुत., बिलकुल। सालूम=सत्यस्वरूप। मालूम=ज्ञानस्वरूप। लतीफ=आनन्दमय। गुञ्जार=गर्जना करने वाला। हकीम=चिकित्सक। फहीम=सर्वज्ञ। सतार=कुलीन। जवार=महापराक्रमी।

बेचगुनि बेचुनि लहंग करीम , बेआदि बेदादि षुदाइ रहीम ।।
बेसवेह बेनिवेह बेनिगेह बेताब , बेनिमुनि बेहूनि षांना न षराब ।।७।।

बेचगुनि=रंगरहित। बेचूनि=अनुपम। लहंग=निहंग। करीम=कृपालु। बेदादि=सर्वोपरि सुनने वाला। षुदाइ=खुदा, परमात्मा। रहीम=दयालु। बेसवेह=निराकार। बेनिवेह=अजन्मा। बेनिगेह=दृष्टि से न दिखने वाला। बेताव=शान्तस्वरूप। बेनिमुनि=उपमारहित। बेहूनि=कहा न जाय। षाना=श्रेष्ठ। षराब=बुरा।

खहूह अरूह अगम इलाज , नापैद नाकैद षुदीन अवाज ।।
हजूरिन दूरिन वैरिन मार , षालिक मालिक अथाह अपार ।।८।।

खहूह=विश्वम्भर। अरूह=अन्त.करणरहित। अगम=शोकरहित, अगम्य। इलाज=औषधरूप। नापैद=अनुत्पन्न। नाकैद=बन्धनरहित। षुदीन=स्वयं मे स्थित। अवाज=शब्द से आगे। हजूरि न=सामने नही, अप्रत्यक्ष। दूरि न=दूर नही। वैरि न=शत्रु नही। मार=काल, मृत्यु। षालिक=कर्त्ता।

हाजिर नाजिर सहसदयाति , औजूद जहूद न जीवन जाति ।।
हिरस विरस न जेर गुमान , सिरजनहार विरध न ज्वान ।।९।।

हाजिर=प्रकट। नाजिर=नजर मे आने वाले। सहसदयाति=अव्यक्त स्वरूप। औजूद=देहरहित। जहूद न=मजहबरहित। हिरस विरस न=हर्ष-शोकरहित। जेर=दुर्बल नही। गुमान=गर्वविहीन।

सालूम मालूम सवै सुलतान , षालिक मालिक अजव निसांन ।।
जाहिर माहिर सदैव बशीर , अलैव अलाह अमुरींद अपीर ।।१०।।

पाठभेद—अथिति=३-४।

माहिर=सर्वज्ञ, प्रवीण । सदैव=नित्य, अविनाशी । बशीर=सहायक । अलैव=अलख । अलाह=देशकाल-परिच्छेदरहित ।

परवरदिगार निरविकार निगर्व गनिय , दानाई साहिब फुनान फनिय ॥
राजक रजाइ सुरजन सूर , सबजांन अमान अखंडित नूर ॥११॥

गनिय=महाधनी । दानाई=सर्वश्रेष्ठ । फुनान फनीय=अविनाशी । राजक=रिजक देने वाला । रजाइ=आज्ञा, कृपा । सुरजन=देवरूप ।

रजा न सजा तन तोष न त्रास , हठ हार न जीत अभ्यास न नास ॥
वेरजान वेरान हैरान मुकाम , कलाम न ताम न सीत न घाम ॥१२॥

वेरजान=अकाम । वेरान=महाशून्य । हैरान=चकित । मुकाम=आश्रयस्थान । कलाम न=अकथनीय । ताम न=अधिष्ठान नही ।

उदार अपार अजार अरूप , अषार अलार असार अधूप ॥
अधूप अदेह अधर अडर , अषिर अतिर अछेह अमर ॥१३॥

अजार=अजर । अषार=अक्रोधी । अलार=पीछा करने वाला नही । असार=निरालम्ब । अधूप=त्रिविध तापहीन । अधर=आधारहीन । अषिर=अखंडित । अतिर=अलंघनीय । अछेह=अपार । अमर=नित्य ।

अरेष अदेष अभेष निजोग , अलेष अरीझ अषीज निभोग ॥
अवीज अनाथ अवाथ निरोग , अलष अभष अजष अलोग ॥१४॥

अरेष=असीम । अदेष=अदृश्य । निजोग=सम्बन्धहीन । अषीज=अक्रोधी । निभोग=वासनाहीन । अवाथ=अगृहीत । अभष=कालरहित । अजष=शान्त । अलोग=सबसे अलग, देशरहित ।

अदष अपष अचष अवोट , अभूल अभाल अडोल अचोट ॥
अतोल अमोल अवोल निषोट , अझोल अभेद अछेद अलोट ॥१५॥

अदष=अकथनीय । अचष=स्वादरहित । अवोट=अछूत । अभूल=अज्ञान विहीन । अभाल=अदृश्य । अडोल=स्थिर । अचोट=आघातहीन । अबोल=अनिर्वचनीय । निषोट=मलविक्षेपरहित । अझोल=अकम्पित । अछेद=अखण्ड । अलोट=अपरिवर्त्तनीय ।

अभंग अरंग असाथ असंग , अजेर अजोर अफेर अजंग ॥
असूर अकूर अमिल अमोड , हरिनंट सनंट अनंत अथोड ॥१६॥

अभग=अविभाजित । असाथ=एकाकी । अजेर=दौर्बल्यरहित । अजोर=किसी

पर बल नही करना । असूर=स्वयंप्रकाश । अक्रूर=दयालु । अमोड=बदलने वाला नही । हरिनंट=बाजीगर । सनंट=परम नट । अथोड़=अनल्प ।

असोच अपोच अलोच गंभीर , अबद्ध न सिद्ध धराधर पीर ॥
असोस अदोस अलिप अगाध , तोहि वार न पार अचोर न साध ॥१७॥

अपोच=कायर नही । अलोच=आलोचना से रहित । गंभीर=गहरा । अबद्ध=बन्धनरहित । धराधर=पृथ्वी को धारण करने वाला । पीर=औलिया । असोस=शोषणहीन । अदोस=विकाररहित । अलिप=अलिप्त । अगाध=अथाह । अचोर=चोर नही ।

अछीन अदीन अभूष अपान , विश्वंभर नाथ अनाथ अदान ॥
अहर अपर अचर निधाह , अमर अधर अजर अथाह ॥१८॥

अछीन=क्षयरहित । अनाथ=जिसका कोई स्वामी नही । अदान=दानदाता नही । अहर=हरण न किया जा सके । अपर=परात्पर । निधाह=सन्तापहीन । अजर=जरारहित ।

अचढ अपड़ पुरुष न नारि , अभ्फर अभार अधार बिचारि ॥
अपैर अनैर निवैर निषंड , नितोज नितोज रच्यो ब्रह्मंड ॥१९॥

अचढ़ अपड़=चढने-पडने से रहित । अभ्फर=स्रावहीन । अपैर=पैररहित । अनैर=न्यारा नही । निषंड=अविभाजित । नितोज नितोज=सत्यस्वरूप ।

सरवंग संवूह वयम विथार , जहां स तहां मुकता दरवार ॥
इला नहिं अंव न तेज न वाइ , अकास न वास जुरा नहिं ताइ ॥२०॥

सरवंग=सर्वव्यापक । संवूह=समष्टिरूप । वयम=व्ययहीन । विथार=पीडा-रहित । जहाँ से तहाँ=सर्वत्र । मुकता दरबार=मुक्तद्वार । इला=पृथ्वी । अंब न=पानी नही । वाइ=वायु । वास=निवास । ताइ=उसके ।

अविहड़ अजड़ अपड़ अगढ़ , अघड़ अनड़ अभड़ अजढ़ ॥
विनांण प्रवाण वप नांव न नेह , अगणित निहार उछाह अछेह ॥२१॥

अविहड=वियोगरहित । अजड़=मूल बिना । अघड़=बनावट विहीन । अनड़=अनाड़ीपन नही । अभड़=योद्धा नही । अजड़=ज्ञानस्वरूप, जड़ता रहित । विनांण-प्रवाण=परम चतुर । वप=अशरीरी । नांव न=संज्ञाहीन । निहार=हार नही, थके नही । उछाह=उत्साहरहित । अछेह=अन्तरहित ।

पाठभेद—अवंग=३-४-५ । अव्यंद=२ । अघूत=५ ।

अकाज न राज अठग विचारि , गहर गंभीर समाधि मुरारि ॥
अदेह असाज अगेह अविद , असलि अहल अचल अजिंद ॥२२॥

अकाज=कार्यहीन। न राज=जिस पर कोई राजा नही। समाधि=निश्चल दशा। मुरारि=निरञ्जन। असाज=कोई सामग्री नही। असलि=वास्तविक, सही। अहल=अकम्पित। अजिद=जीवभाव नही।

गरीबनिवाज समंद निगाज , मछ कछ न नीर न कीर न साज ॥
भयानन भूत औधूत न धूत , उदास न तास पिता नहिं पूत ॥२३॥

समंद निगाज=समुद्रवत् गम्भीर। भयानन=महाकालवत्। भूत न=पञ्चभूत नही। धूत न=धूर्त नही। उदास न=सब सृष्टि पर ध्यान देने वाला।

मठ मोनि न जोनि न स्याम न सेत , न मोह न दोह न क्रोध न हेत ॥
अलिंग असंग निअंग निसोर , रहैति कहैति जनम न जोर ॥२४॥

अलिंग=चिह्नरहित। निअंग=अवयवविहीन। रहैति=रहणी नही। कहैति=कहणी नही।

अदत अमत अवत अजत , अगिर अतिर असर अहत ॥
निराकार अपार अरुष न रुष , रसराज न रैत न दुष न सुष ॥२५॥

अदत=अदेय। अमत=मतमतान्तररहित। अवत=वाणीरहित। अजत=अजेय।

रस वेद कतेब न रोज न राग , सुष सेझ न दुष अनीद अजाग ॥
निगम अगम त्रिविध न त्रास , तत आनंदमूल अनंत प्रकास ॥२६॥

रस वेद=वेद का पक्ष नहीं। कतेब न=कुरान का हुक्म नही। रोज न=रोना नही, रोजे नही। न राग=गाना नही। सेझ=शय्या। निगम अगम=वेदशास्त्र नही। त्रिविध=तीन गुण नही। त्रास=भय। तत=तू।

सुष आदि अनादि विजोग न सोग , वप वोट न चोट अजिग अजोग ॥
इकलस पुरिस हरि ऊँच न नीच , तन ताप न तेज विघन न बीच ॥२७॥

विजोग=वियोग। न सोग=शोक नही। वोट=आड नही। चोट=प्रहार। इकलस पुरिस=एकरस रहने वाला। बीच=मध्य नही।

तूँ पाक अछाक अछिय अभेव , निरंजन नाथ इहै तोहि टेव ॥
निरसिंध निरधार अरथ न आंन , परम पुरुष पयोधर पान ॥२८॥

पाक=पुनीत। अछाक=अतृप्त। इहै=यह। तोहि टेव=तेरी आदत। अरथ न आन=दूसरा कोई धन नही। पयोधर पान=तूँ स्तनपान नही करता, अजन्मा।

पाठभेद—अछिक-२। यहै-३-४। पुरिष-२।

अभूष अरूष अजर जहाज, तोहि काम न क्रोध न लोभ न लाज ॥
तत आस उदास अहेत न हेत, जष जोनि न जीव रगत न रेत ॥२९॥

अरूष=स्निग्ध, रोक्ष्यहीन। अजर जहाज=जीर्ण न होने वाला वाहन। तत=तत्व नही। जोनि न=कोई योनि नही। रगत=रज। रेत=वीर्य नही।

अधर अकर सुखाँ सुखरासि, समाधि अगाध इह अरदासि ॥
अहल अचल अपल अवैद, अपार विचार अधार अकैद ॥३०॥

अकर=करणीरहित। इह अरदासि=यही प्रार्थना। अहल=अज्ञेय। अपल=कालातीत। अधार=निराधार। अकैद=बन्धन-विहीन।

दोहा— जन हरिदास अरचित अनंत, गिणती ग्यांन न कोइ ॥
साध जांण सुमरिण करै, मन आलंबन होइ ॥३१॥
साची माला सुरति की, लै सुनि समाना चित्त ॥
धुनि मांहि धन पाइया, राम सरीषा वित्त ॥३२॥
जन हरिदास अवगति अगम, रहै सकल तैं दूरि ॥
सतगुरु मिले तो पाइए, हरि जहाँ तहाँ भरपूरि ॥३३॥

जाण=समझ। आलबन=आधार। लै=लय। सरीषा=समान।

॥ इति ब्रह्मस्तुति समाप्त ॥

पाठभेद—सुमरण-५। आलंबन-१। धुन्य मांही-२। पाइये-२।

॥ अथ मूलमन्त्र जोगग्रन्थ ॥

दोहा—सुर नर मुनि द्रिगपाल दिनि, रोम सिध थिर नांहि ॥
येक सकति की पलक में, कितना आवै जांहि ॥१॥
अलष पलक लागे नहीं, हरि सकल भवन पतिराइ ॥
अणहूवा सो रहेगा, जो हूवा सो जाइ ॥२॥
पारब्रह्म सूँ प्रीति परम निज भेद विचारे ॥
ज्ञान षड्ग ले हाथि आंन अनरथ अरि मारे ॥३॥
साजनिवाजि निरभै करण, हरि सुरनर सबका ईस ॥
नाथ निरंजन परदुषहरण, जहाँ तहाँ जगदीस ॥४॥
उपजि न विनसै येक रसि, हाजिर जहाँ हजूर ॥
पूरण ब्रह्म अकास ज्यौं, जहाँ तहाँ भरपूर ॥५॥
लकड़ी काटी कटत है, अगनि न काटी जाइ ॥
दार अगनि ज्यों परम गुरु, जहाँ तहाँ समिभाइ ॥६॥
फूल वास तिल मैं दुरी, तिल का तैल फुलेल ॥
हरिजन हरि ऐसे मिल्या, अरस परस यहु षेल ॥७॥
वार पार मधि नाहिं, राम भजि भेद बताया ॥
जहाँ तहाँ गोपाल, गाइ ज्यौं आगे गाया ॥८॥
नाराइण निरवांण, ताहि कोइ विरला जांणै ॥
धागै लागा जाइ, आप कूँ आप पिछांणै ॥९॥
हारि जीति हठ सुपठ, निकट निज वसत न दरसै ॥
झूठ तहाँ जाइ दुरै, फिरै तो पारस परसै ॥१०॥
निरसंसै निरदंद, जोर नहि जेर न जरणां ॥
नादविंद नहिं जीव, जनम नहिं अवधि न मरणां ॥११॥

पाठभेद—दुषहरन–१–३–५। एकरसि–३–४–५। ज्यूँ–२–३–४–५। नृवाण–३–५। निकटि–२–३–४–५। बस्त–३–४–५।

शब्दार्थ—दिनि=सूर्य। रोमसिध=लोमस ऋषि। साजनिवाज=सब सिद्धि देने वाला। दार=काष्ठ। दुरी=समाई। धागै लागा=सुरति द्वारा। जेर=दौर्बल्य।

निराकार निहचल अचल, हरि अभराभरण अनंत ॥
परम ग्यान पर ध्यान दे, हरि सुपह लगावे सन्त ॥१२॥

तरवर अगम अरुति, बीज अंकुर नहि आया ॥
पंचतत नहिं पोष, फूल फल डाल न छाया ॥१३॥

निरालंब निरलेप, निडर निरभै निहकामी ॥
निरामूल निहकर्म, सुतौ हरि अन्तरजामी ॥१४॥

ब्रह्मविचार अपार अजीत, अरि लगै न नरहरि ॥
अखिल अतिर सुचि सुथिर, गया भजतां भै थरहरि ॥१५॥

परगट परमगति परममति, परमनाथ परपोष ॥
परम सनेही परम सुष, अलैह अगैह निरदोष ॥१६॥

अषिर अपर बेहद सुथिर, अजर अमर निज नाथ ॥
अधर सुधर मीठा मधुर, चितहित मनकरि हाथ ॥१७॥

अछल अमल अनहित अटल, अकल सकल बलि जांव ॥
ए सब करि सबतैं अगम, बहुड़ि अकरता नांव ॥१८॥

अधर गहर विसंभर अकर, तन धन सुत वनिता नहिं प्रीति ॥
भजि इकलस एक अनेक गत, रजा तहाँ रस रीति ॥१९॥

अलिप अछिप जहाँ तहाँ छिप्या, छाया पड़े न छोह ॥
सकल भवनपति सतिसदा, निरामोह निरदोह ॥२०॥

अहत अमित अवगति अजित, अनंत सनंत मुरारि ॥
चिदानन्द अरिचित अरत, चित मांही चित धारि ॥२१॥

पाठभेद—मूल–१। क्रम–२–३–४–५। प्रगट–३–४–५। अलह-अगहै–४–५। अक्षर–५। ये–२। यकलस–३–४। अहित–५। अहैत–४। अजत–४–५।

शब्दार्थ—अभराभरण=न भरने वाले को भर देने वाला। सुपह=सन्मार्ग। अरुति=बेमौसम। अरि=शत्रु। भै=भय। थरहरि=कम्पायमान। अषिर=अक्षर। अकल=कलन रहित, कलारहित। इकलस=निरन्तर। रजा तहाँ रसरीति=ईश्वर आज्ञा में रहे तभी उस आत्मरस-प्राप्ति की रीति आती है। छाया पड़े न छोह=उस निराकार में न माया की छाया पडती है, न गुणों के सम्बन्ध से कोई क्षोभ होता है। सतिसदा=सर्वदा सत्य। सनंत=अन्तरहित। अरचित=अनिर्मित। अरत=अनाशक्त।

रस रोग भोग जोगी नहीं, निरादेह निरवास ॥
वरणबिबरजित कहि अकहि, उदर उबर नहिं सास ॥२२॥
अघट सनट नहिं करमपट, भरम न कोई भेष ॥
घट धरि घड्या न अब घटै, अपरंपार अलेष ॥२३॥
प्राणनाथ अकरण करण, भगवंत धरणीधर हरि ॥
राम नाम गोविन्द भजौ, परपंच पष परिहरि ॥२४॥
अलख निरंजन अवगति राम, निराकार निरभै विसराम ॥
हरीदास जन यूँ कहै, ररंकार मूल निज नाम ॥२५॥
मूलमंत्र सतगुरु दिया, दुष सुष दोइ दुरचा सराप ॥
आठ पहर की उनमनी, अंतरि अजपा जाप ॥२६॥
ग्यान ध्यान यहु दान, नांव उनमानि ज्यौं लीजै ॥
गरब छाडि गोविन्द भजौ, भजि इम्रित पीजै ॥२७॥
नांव धरूं तौ में डरूं, वहुड़ि भजन तहाँ नाँव ॥
जन हरीदास की बीनती, वाप राम बलि जांव ॥२८॥
बेकीमति कीमति कहा, भजि परपंच पष तजि दोइ ॥
जन हरीदास हरि सुमिरताँ, काँटा लगै न कोइ ॥२९॥

॥ इति मूलमन्त्र जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अव घडै–४–५। गोविद–३–४–५। न्यरभै–२। त्रिभै–१। यो–४–५। विष तज अमृत पीजं–५। वहौडि–२–३–४। सुमरता–१–४–५।

शब्दार्थ—उदर=जन्म लेना। उबर=बचना। सनट=सुनृत्यकर्त्ता। घड्या=बनाया, रचा। दुरचा=हरचा, छिपा। उनमनी=अन्तर्वृत्ति। यहु=यही। नांव धरूं तो मै डरूं वहुडि भजन तहाँ नाव=परब्रह्म का कोई नाम नही, उसके नामकरण से मै डरता हूँ–फिर भी स्मरण के लिए नाम की कल्पना की जाती है। पष तज दोइ=द्वैत का पक्ष त्याग। कांटा=जन्ममरणरूप, दु ख-सुखरूप।

पाई जाती हे जिनके विषय मे "जीर्ण कागदा की नकल उतारी है चत्रदास" जैसा लिखा है और जिस पर, इसी कारण, कुछ सावधानी के साथ विचार किया जाना चाहिए। 'निरंजनी पथ' और उसके प्रवर्तक स्वा० हरिदासजी की चर्चा श्री मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तक 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' मे की है [1] और लगभग उन्ही बातो को उन्होने फिर अपनी एक अन्य पुस्तक 'राजस्थान का पिगल-साहित्य' मे भी दोहरा दिया है। इस दूसरी पुस्तक मे उन्होने स्वा० हरिदासजी का 'गोलोक वास' होना 'सं० १७००' मे, किसी समय माना है।[2] इस प्रकार इनका मत स्व० शर्मा के मत से मिलता जुलता-सा है।

स्वा० हरिदासजी के शरीर त्यागने के सं० १७०० को ठीक स्वीकार करके 'श्री हरिपुरुषजीकी वांणी' के संपादक ने भी, उसका उल्लेख किया है। [3] परन्तु इधर कुछ दिनो से, कतिपय नवीन सामग्रियो के प्रकाश मे, सारी बातो पर विचार करने वाले लेखक उसके तथ्य होने मे संदेह प्रकट करते भी दीख पडते है। उदाहरण के लिए 'सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य' के लेखक डा० शिवप्रसाद सिह ने हमारा ध्यान इस बात की ओर दिलाया है कि 'हरिदासजी की परचई' के लेखक हरिरामजी ने (जिनका समय अठारहवीं शताब्दी का अंतिम चरण सिद्ध होता है) यह लिखा है कि स्वामी हरिदासजी ने सं० १५१२ मे अवतार धारण किया था। सं० १५५६ मे, बसत पंचमी के दिन, उन्हे हरि ने, गोरख रूप धारण करके, ब्रह्मज्ञान की दीक्षा दी थी और, सं० १६०० के फागुन मास की सुदी षष्ठी को, डीडवाणे में उन्होने परमधाम को प्राप्त किया था। इसी प्रकार नवलगढ मे लिखित किसी पूर्णदास के उल्लेख से पता चलता है कि उन्होने सं० १४७४ मे जन्म लिया था और उनका देहान्त स० १५९५ मे हुआ था जिस बात का समर्थन 'मंत्र राज प्रभाकर' ग्रन्थ के १३वे उल्लास मे किये गये एक उल्लेख द्वारा भी, हो जाता है। पूर्णदास तथा 'मंत्रराज प्रभाकर' के रचयिता का समय बीसवी शताब्दी बतलाया जाता है, किंतु, इस प्रकार के कतिपय अन्य प्रसगो के भी आधार पर, डा० सिह का यह परिणाम निकालना कि "हरिदास निरंजनी विक्रमी स० १६०० के पहले अवश्य विद्यमान थे", [4] इस सबंध मे, हमारे लिए कम मूल्य का नही कहा जा सकता। इसके सिवाय, एक अन्य लेखक डा० हीरालाल माहेश्वरी ने तो, इस प्रकार की सामग्रियो के आधार पर, अपना यह मत भी प्रकट किया है "मंत्र-राज प्रकाश (संभवतः 'प्रभाकर') तथा सुन्दरदास आदि के कथन से किन्ही ऐसे हरिदासजी के संप्रदाय-प्रवर्तक होने की पुष्टि होती है, जो निश्चय ही इन

---

१. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (सम्मेलन प्रयाग, स० २००६ पृष्ठ २३६। २. मोतीलाल मेनारिया : 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' (उदयपुर, १९५२ ई०) पृष्ठ २०८९। ३. श्री हरिपुरुषजी की वाणी, (जीवन चरित्र) जोधपुर, स० १९८८ पृ० 'त'। '४ डा० शिवप्रसाद सिंह : सूर-पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य (वाराणसी, १९५८ ई) पृ० १९७९।

॥ अथ नाममाला जोगग्रन्थ ॥

भजि करुणांनिधि करतार , करम भै भरम निवारण ॥
समरथ सिरजनहार , बिवधि जम का फंद जारण ॥१॥
केसो रमताराम , हाथ जन कै सिर धारण ॥
नाराइण गोपाल , संत राषण रिप मारण ॥२॥
परम सनेही नाथ , त्रिविध गुण गहर गुदारण ॥
अबिनासी हरि अषिल , करण निरविष दुषदारण ॥३॥
इनका करो प्रहार , रघुनाथ निज आँषि उधारण ॥
गैवलि करि गोविंद , चिंता अरि विरष उपारण ॥४॥
अपरंपार अपार , पार भौसिंध उतारण ॥
तुम नरहरि निरवंस , वंस तोहि साध सुष कारण ॥५॥
निरसंसै सूँ प्रीति , ताहि संसो क्यों ग्रासै ॥
जहां अजपा तहां वैसि , बात अणभै अभ्यासै ॥६॥
नट निरभै निरभेष , अरीझ हरि रीझै नाँहि ॥
निरमल निकट हजूरि , अगहि अभि अंतर माहि ॥७॥
परम रीति पर प्रीति , परम निधि आपण स्वामी ॥
जुरा काल भै हरण , ऊरण निरभैं निज नामी ॥८॥

पाठभेद—सम्रथ–३–४ । बिबिधि–४ । रुघनाथ–४–५ । भौस्यंध–२ । स्यों–१ । क्यूँ–२–५ । नृमल–३–४ । अगह–३–४–५ ।

शब्दार्थ—नाममाला जोगग्रन्थ=निरञ्जननाममाला के निरूपण का ग्रन्थ । जन कै= साधक भक्त की । त्रिविध गुण गहर गुदारण=त्रिगुणात्मक गंभीर माया को हटाने वाला । इनका=कामादि षड्रिपुओं का । गैबलि=हस्ती की तरह बल दो । तुम नरहरि निरवंस , वंस तोहिं साध सुष कारण=हे नरहरि ! आप निर्वंश है–सन्तानरहित है, पर साधु जन आपकी सन्तान है तथा आपको सुख पहुंचाते है—आप अपने भक्तो तथा साधकों से ही प्रसन्न रहते है । जहाँ अजपा तहाँ वैसि , बात अणभै अभ्यासै=जिस हृद्गुहा में अजपा-जाप का स्थान है, वही वृत्ति को स्थिर कर अभ्यास द्वारा आत्मानुभूति करिये । नट=जगन्निर्माता नट है । अभि अन्तर=हृदय की जानने वाले, बाह्य तथा अन्तर की जानने वाले । पर प्रीति=अतिस्नेह । आपण=अपनी । जुरा=बुढ़ापा ।

परम पुरिष परकास, लहै कोई गुरु गम सूरा ।।
सोई ब्रह्म सचराचर, सकल विश्वव्यापी पूरा ।।९।।
परम तेज परजोति, परम दुषभंजण सोई ।।
परमसुनि परदेव, जीव जागि सुमिरै नहिं लोई ।।१०।।
परम ग्यान पर ध्यान हरि, परम सुष साच बतावे ।।
परम जोग पर भोग हरि, परम गति ले पहुँचावे ।।११।।
निरालंब निरलेप, अचल चरणां चित धारं ।।
हरि निरगुण निरछेह, वार नहि लाभै पारं ।।१२।।
अकल अभेद अछेद, निरूप निरभै घर पाया ।।
निराकार निरवाण, प्राण मन तहाँ समाया ।।१३।।
अवगति अगम अलेष, ताहि कोई विरला परसै ।।
अजोनी असथिर अचिंत, अभि अंतरि दरसै ।।१४।।
अदिष्टि अषिर अरूप, अथाह निरमोह स न्यारं ।।
निरामूल निरधार, निकुल निरपष निज सारं ।।१५।।
परमतत्त परभेद, सकल जुग मंड़ण जोगी ।।
पारब्रह्म हरि अषिल, रस रोग रसना नहिं भोगी ।।१६।।
अधर अजर समि भाय, जीव सब जलि थलि पोषै ।।
अकह निरंजन देव, साध सुमिरै मन चोषै ।।१७।।

पाठभेद—आतम–३ । गुर–२–३–४–५ । विस्व–२–३ । विस–४ । भंजन–३–४–५ । घर के स्थान पर "पद"–३ । नृवांण–२–५ । प्रसै–१ । अस्थिर–४–५ । अदिष्ट–१ । निरमोह सूँ–४ । प्रभेद–१ । जग–४ । सम–४–५ । अकहि–३ । साधु–१ ।

शब्दार्थ—परकास=ज्ञानज्योति । गम=भेद । लोई=हे जीव । निरछेह=नि.सीम । लाभै=मिले । परसै=स्पर्श करे । असथिर=स्थिर । निकुल=वंशविहीन । परभेद=(परम ज्ञान) परम भेद या अभेदी भेदरहित । रसरोग=जो रसास्वाद का इच्छुक नही–जो इन्द्रियभोग रहित है । सम भाय=सबका मित्र । पोषै=पोषण करे । अकह=अकथनीय । चोषै=अच्छे, शुद्ध मन से ।

अहत अबीज अनेक, निरास निरभै सुष सारं ॥
अकरम अरत अलोक, विरषा रस इमृत धारं ॥१८॥
येकमेक भरपूरि, दूरि तोहिं कहूँक नेरा ॥
निज तरवर निरसिंध, प्राण तहाँ पंषी मेरा ॥१९॥
अषंड षंड ब्रहमंड, सकल में साच लुकाया ॥
जन हरीदास हरि अघट, आथि गुर गम तै पाया ॥२०॥
जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूँ, हरि पठवै तहाँ जाँव ॥
जन हरीदास की बीनती, मैं हरि नहिं छाडूँ हरि नाँव ॥२१॥

॥ इति नाममाला जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अहैत-४। ब्रषा-२। इम्रत-३-५। एकमेक-३-४-५। निड़रा-४। ब्रह्मंड-१-५। गुरु-१। छाड़ौ-१-५।

शब्दार्थ—येकमेक=ओतप्रोत, व्याप्त। निज तरवर=माया अविद्यारहित ब्रह्मरूप निज तरवर-आप ही ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाले अश्वत्थ वृक्ष हो "प्राण तहाँ पंषी मेरा" वहाँ सद्-असद् वृत्तिमय पंखों से रहित प्राणमय मेरा पक्षी निवास करता है। आथि=अर्थ, तत्व, अन्त में।

॥ नामनिरूप जोगग्रन्थ ॥

नाम निरूप परम सुष, जांखे बिरला कोइ ॥
जन हरीदास ताकूँ भजै, तबही आनंद होइ ॥१॥
परापरै पूरणब्रह्म, फेरि तहाँ मन लाइ ॥
गरब छाँड़ि गोविन्द भजो, जनम अमोलक जाइ ॥२॥
सतगुरु मिले तो पाइये, हरि परम सनेही तात ॥
बहौड़ि बहौड़ि लाभै नहीं, इह औसर इह घात ॥३॥
भै छाँड़ो निरभै भजो, गुणाँ रहित गोपाल ॥
अगम ठौर आनंद सदा, जुरा जनम नहिं काल ॥४॥
जोगारंभ का मूल है, हरि अवगति अपरंपार ॥
सुषसागर समरथ धणी, सबका सिरजनहार ॥५॥
निरभै पद नर करि चढ्या, मनिष जनम भल देह ॥
निराकार निसदिन भजौ, हरि अगणित अनंत अछेह ॥६॥
मनिष जनम षरचै रषे, हरि बिण दूजी ठौर ॥
सास उसासां नांव लै, नर दौरि सकै तो दौर ॥७॥
जागि जीव सोवे कहा, प्रथम मोह तजि मांण ॥
साध मुलक तहाँ वास करि, जम ले सकै न दांण ॥८॥
भगति करौ भगवंत की, मन दीन्हा सिधि होइ ॥
मन विण दीन्हा मन लड्डू, षाइ न धाया कोइ ॥९॥
पाप पुनि दोन्यौं बिरष, तहाँ करै मन पान ॥
मन ये दोन्यौं तरवर तजै, तब पावे भगवान ॥१०॥

पाठभेद—भजो-२-५। ग्रब-१। बहुडि-१। यह-३-४-५। रहैत-२-४। रहत-३-५। जन्म-३। अविगति-१। सम्रथ-२-३-५। चढ्यो-१। दौडि-१। डाण-४-५। दोन्यू-३-५। ए-३-४-५।

शब्दार्थ—बहौड़ि=बहुरि, पुन.। औसर=मौका। घात=ताक। करि चढ्या=हाथ लगा। प्रथममोह=अनादि अज्ञान। माण=मान, अहङ्कार। दाण=(दड) कर। धाया=तृप्त हुआ।

भरम छांड़ि निरभै मतै, निरभै बसत विचारि ॥
गुरु आषिर कर बांण धरि, मोह महा रिप मारि ॥११॥
करि धारण केसौ भजौ, समझि न कीजै सोच ॥
यहु औसर चलि जायगा, बहौड़ि न लाभै पोच ॥१२॥
राम भजौ विषया तजौ, घर मांही घर एक ॥
ता घर स्यूँ लागा रहौ, छांड़ो द्वार अनेक ॥१३॥
हरि सुमिरण हिरदै धरो, विथा न पहुँचै वीर ॥
काइर टलि कांनै चल्या, लग्या न सुष को सीर ॥१४॥
परम पुरिष मै रिप भजौ, लता न लागै लोइ ॥
अवधि घटै ग्रासै जुरा, हरि भजतां होइ स होइ ॥१५॥
नांव विसंभर नाथजी, लष चौरासी प्रतिपाल ॥
सब काहू की करत है, ता तैं राम दयाल ॥१६॥
मन सजन तो सूँ कहूँ, मानौं साच हदीस ॥
काल जाल लागै नहीं, सुमिरतां जगदीस ॥१७॥
ऊँच नीच निरभै मतै, कोई भजौ मुरारि ॥
भौसागर तिरबो कठिन, हरि नाँव उतारै पारि ॥१८॥
भूधर तैं बाजी रची, बाजी मांहि कलाम ॥
षट दरसण षोजत फिरैं, पषापषी विसराम ॥१९॥
कालहरण करता पुरिस, सुमिरताँ गुण एह ॥
चित माँही चित ले रहो, ज्यूँ बहौडि न धरिये देह ॥२०॥
वनमाली भजताँ भला, जुरा जनम नहिं तोहि ॥
मैं नहिं छाँड़ो राम को, राम न छाँड़ै मोहि ॥२१॥

पाठभेद—बस्त–१-३। अक्षर–३। सूँ–३-४-५। कायर–२। पुरुष–१-४-५। होय–३। प्रतपाल–२-५। तोस्यो–१। कह्यो–१। द्रसण–१। येह–२। च्यत–२। धरिए–४-५।

शब्दार्थ—आषिर=अक्षर, उपदेश। करि धारण=धारणा, श्रद्धासहिता। पोच=डरपोक, कायर। विथा=पीडा। काइर=डरपोक, पोच। कांनै=एक ओर, टाला देना। लता=लात, धक्का। लोइ=लोक। हदीस=निश्चित शब्द। कलाम=हद कर दी।

वात हाथ रघुनाथ कै, सदा साध कै साथि ॥
पैलै अंगि छाड़ै नहीं, जाकौ पकड़ै हाथि ॥२२॥
नाराइण के नाँव की, मैं बलिहारी जाँव ॥
भृङ्गी कीट पतंग ज्यूँ, दुरै दूसरो नाँव ॥२३॥
परमानन्द के आसरै, जाइ पड़ै जब जीव ॥
हरि महरि निजर देषै जबै, तबै जीव सूँ सीव ॥२४॥
सकल वियापी संगि बसै, हरि समरथ सिरजनहार ॥
साहिब ही तैं पाइये, साहिब का दीदार ॥२५॥
अविनासी आसण अमर, अजरावर नग एक ॥
राम दया तैं पाइये, हरि सुमिरण भाव विवेक ॥२६॥
इलम पढ़ै पढ़ आरबी, च्यारि पढ़ै मुष वेद ॥
सदगति सुख सब तैं अगम, सब कोई करै उमेद ॥२७॥
अषिल तुम्हारी बंदगी, बहोत करे वहौं भाइ ॥
अलाह कृष्ण अरिहंत कहै, कोई कहैं षुदाइ ॥२८॥
सब कोई चाहे तुझकूँ, तूँ तौ सब ही माँहि ॥
तुम ही तैं तुम पाइये, बन्दे तैं कुछ नांहि ॥२९॥
पारब्रह्म परदुषहरण, प्राण तहाँ मन लाइ ॥
भेद सहित भै रिप भजौ, हरि गाई जै त्यूँ गाइ ॥३०॥
मिहरि कहौ मीरां कहौ, कोई कहौ अनंत ॥
निराधार निरगुण कहौ, तथा कहौ भगवंत ॥३१॥

पाठभेद—रुघनाथ–४-५ । जाकू–२-३-४-५ । कै–४ । ज्यो–१ । अंगी–२ । मिहिरि–१ । मैहैरि–४ । संम्रथ–३-४ । चारि–१ । बहु–१ । अलहा–३-५ । अल्ह–४ । तुझि कूँ–३-४ । सहत–३-५ । सहैत–४ । महरि–३ ।

शब्दार्थ—पैलै=दूसरे के, अन्त तक । पैलै अंग=प्रथम अंग, चरण । महरि=दया, अनुग्रह । सीव=ब्रह्म । नग=अमूल्य रत्न । विवेक=सत्यासत्य विचार । इलम=विद्या । आरबी=अरबी, कुरान । भेदसहित=सत्यासत्य विवेक सहित । मिहरि=दयालु । मीरां=महान् ।

निरामूल निरपष कहौ, वहौ निरषर नांव ॥
निरमोही निरदुंद कहौ, वा अरचित की बलि जाँव ॥३२॥

अलष अगम अवगति कहौ, कहौ निरंजन राम ॥
अरत कहौ अलपत कहौ, अंत धणी सूँ काम ॥३३॥

धरती धारण अमरवर, नांव दया द्यौ ज्ञान ॥
आत्म अंतर राषिये, धणी तुम्हरौ ध्यान ॥३४॥

अपणी अपणी अकलि लै, सब को पठवै पांण ॥
पार न लाभै पैर तां, इहै रजा रहमांण ॥३५॥

हारि जीत सुष दुष रहत, निगम अगम रस एक ॥
हरि ज्यूँ का त्यूँ ही देषिये, यौ ही बड़ा बमेक ॥३६॥

कहा अतोल को तोलिये, अलष अभेद अदेह ॥
ग्यान ध्यान मति गति अगम, अजपा राम अछेह ॥३७॥

निराकार निरभै निड़र, निरामूल निज नाथ ॥
भुज अनंत लोचन अनंत, परै न पहुंचे हाथ ॥३८॥

जहाँ तहाँ हरि देषिये, वार पार मधि नाँहि ॥
सकल बियापी संगि बसै, ताहि छाड़ि मति जाँहि ॥३९॥

मोह दोह मैं तैं मनी, काम क्रोध भ्रम दूरि ॥
मन उनमनि लागा रहै, तहां बस्त भरपूरि ॥४०॥

चित चंचल निहचल भया, मन कै पड़ै न राइ ॥
हरि निरगुण निरभै मतै, जहाँ तहाँ समि भाइ ॥४१॥

पाठभेद—निरदुंद–१ । अविगति–१ । अलपति–१ । धणी स्यूँ–१ । आतम–२-४ । अहै–२ । रहमान–२-३-४ । रहैत–२-३ । ज्यौ–१ । त्यौ–१ । तोलिए–३-४-५ । देषिए–४-५ । बसत–२-४ । च्यत–२ ।

शब्दार्थ—अरचित=अनिर्मित, अनादि । अलपत=निर्लिप्त । धणी=स्वामी । पाण=बल, ताकत । रजा=हुक्म । मनी=अहंकार, मान्यता । बस्त-अलभ्य वस्तु, परब्रह्म ।

हरि चिंतामणि सबमें बसै , जाणें विरला कोइ ।।
राम दया तब जाणिये , साध कहै त्यूँ होइ ।।४२।।
गंग जमन मधि मुकति फल, सतगुरु दिया बताइ ।।
मन लोभी लालचि पड्या , ता सुष में रह्या समाइ ।।४३।।
अनंत साध आगे भया , परसि परसि भौ पार ।।
जन हरीदास सिर कै सटै , जहाँ तहाँ दीदार ।।४४।।

।। इति नामनिरूपण जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। अथ निरञ्जनलीला जोगग्रन्थ ।।

गाइ गाइ गावे कहा , गावण मांहि विमेक ।।
एक गाइ दह दिसि गया , एकां परस्या एक ।।१।।
गुर हम स्यूँ एसी करी , जैसी गुर तैं होइ ।।
अगम ठौड़ आनंद सदा , पला न पकड़ै कोइ ।।२।।
गुर निरभै चेला निड़र , गुर निराकार सब माँहि ।।
चेला तन धरि तहाँ मिल्या , सो तन धरि नाचै नांहि ।।३।।
प्रगट परम गुर पारब्रह्म , परम सनेही सोइ ।।
आप दिषावे आप कूँ , करम किवाड़ी षोइ ।।४।।
राषणहारा राषि तूँ , आप आपणें हाथि ।।
भी फिरि मन चाले नहीं , ऊठि और के साथि ।।५।।

पाठभेद—च्यंतामणि–२ । :त्यौ–१ । मुक्ति–३ । लालच–४-५ । प्रसि–१ । दिहि–३ । दिस–४-५ । हम सूँ–३-४-५ । सूँ–२ । ठौर–१ । परगट–१-५ । उठि–१-५ ।

शब्दार्थ—गंग जमन मधि मुकति फल=इडा-पिंगला के बीच सुषुम्ना में प्राण आधारित करने पर मुक्तिरूपी फल मिलता है । ता सुख मे=विषय-वासना के सुख मे । भौ=संसार । दीदार=दर्शन, आत्मपरिचय । परस्या=मिला, प्राप्त किया ।

साजिनिवाजि निरभैकरण, भरम विथा भै दूरि ॥
परम पुरष परदुषहरण, हरि जहाँ तहाँ भरपूरि ॥६॥
अरस परस आनंद सदा, थक्या आंन सब गोंण ॥
हरि समरथ सुष निभर भरि, कीमत करै स कौंण ॥७॥
निरगुण का गुण का कहूँ, कथिये कहा अकथ ॥
अकल तुम्हारे आसिरे, सकल भवन समरथ ॥८॥
गंग जमन मधि एकरस, सुष में सुरति निवास ॥
जोगारंभ लागा रहै, त्रिवेणी तटि वास ॥९॥
परापरै परसिध पुरष, माया रहैत अभंग ॥
सेवग की सेवा करै, साध तहाँ परसंग ॥१०॥
नानाविधि सुणि सुणि असुणि, बहु विधि करै विचार ॥
जन हरीदास लहि लहि अलहि, हरि अवगति अपरंपार ॥११॥
त्रिविध ताप संसौ न सूल, परमभेद आनंदमूल ॥
उदै न अस्त आवे न जाइ, सकल वियापी सहज भाइ ॥१२॥
मोह दोह आसा न पास, बरणबिबरजित सुयंप्रकास ॥
काम क्रोध त्रिष्ना न ताप, ग्यान ध्यान जोगी न जाप ॥१३॥
तात मात सांसो न संक, साह वैद रोगी न रंक ॥
घट घटा रसना न रीति, ऊँच नीच परसै न प्रीति ॥१४॥
निरालंब निरलेप राइ, रहण डसण वप नहीं ताहि ॥
धरणी गिगनि समंद न हीर, जल ज्वाला मछी न कीर ॥१५॥

पाठभेद—गोंन-२-३-५। सू-२-३। निरगुन-१। भुवन-१। येकरस-२। रहत-३-४-५। वहो-३-५। अपरम-४। त्रिवधि-२-३-५। असत-२-५। संसो-१। ग्यगनि-२।

शब्दार्थ—साजनिवाजि=सब सामग्री का दाता। भरम=सत् मे असत्, असत् में सत्। विथा=जन्म-मृत्यु की पीड़ा। भै=द्वैतभय। थक्या=हारा। गंग जमन=मन प्राण, इडा पिंगला। जोगारंभ=चित्तवृत्तिनिरोध। त्रिवेणी=त्रिकुटी। अभंग=अविभक्त। त्रिविध ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। सांसो=सशय। रसण डसण= रसना का स्वाद।

पुरिष नारि श्रवणां न सास , षांन पान इन्द्री न आस ।।
गुण गीत नाद न्यारा न नेह , हरि वृद्ध बाल छोटा न छेह ।।१६।।
तेजपुंज निहचल निवास , बाहरि भीतरि ज्यूँ आकास ।।
जन हरीदास भजि सहज भाइ, सकल वियापी राम राइ ।।१७।।

अस्तुति इंदव छन्द

सुतो हरि हुवा न होसी न आवे न आया , हितहीन बितहीन भूषा न धाया ।।
ग्यानेन ध्यानेन वरणै न भेषं , अकजै न काजे न रूपे न रेषं ।।१८।।
सिध ही न साधेन सेवा न पूजा , गुरहीन चेला न एकै न दूजा ।।
घटहीन पटहीन नटहीन बाजी , नैडा न न्यारा न रूसै न राजी ।।१६।।
नादेन विंदेन सिधि न गाई , छलहीन बलहीन मारै न षाई ।।
धरती न गिगने न चंदे न सूरा , सिलतान सिन्धेन वोछा न पूरा ।।२०।।
उपजे न विनसै न त्रिधै न वालं , करणा न क्रोधं न काया न कालं ।।
घरहीन बनिता न वस्ती न सून्यं , रसिया न रोगी पापै न पुन्यं ।।२१।।
जपहीन तपहीन कुलहीन लाजै , मतिहीन मुगधै न रुतहीन गाजै ।।
मरिहीन मारै न जीवैन जौरा , रनहीन वनहीन वाड़ी न भौंरा ।।२२।।
आदे न अंतहीन वारै न पारं , वीजै न वकला न मीठा न षारं ।।
वंधहीन मुकता न कलपै न कहरं, निरभै न भैहीन मिश्री न जहरं ।।२३।।
जरणा न जोगी न इच्छया न वाचै, नरहीन नारी न हीरा न काचै ।।
गुणहीन गाथा न भरमै न भेदं , तनहीन त्रासै न कंधहीन छेदं ।।२४।।

पाठभेद—त्रिध–१ । सहजि–२-३ । गुरु–१ । गगने न–४-५ । वृद्धे न–३-४ । पुनि–४ । मुग्धै–१ । अंछया–४ ।

शब्दार्थ—छेह=अन्त, पार । सहज भाइ=स्वभाव, सहजवृत्ति से । रूसै=नाराज । सिलता=सरिता, नदी । सिन्धे=समुद्र । मुगधै=मोहित । रुत=ऋतु, मौसम । जौरां=बल, मद । कहर=काल, क्रोध । वाचै=वाणी का विषय । कंध=(धड़) ग्रीवा ।

हरिदास (हरीसिह) से भिन्न है और इनसे पूर्व हुए है[१] और इसके समर्थन मे उन्होने भावर मल शर्मा के किसी लेख[२] का भी हवाला दिया है। यहा पर उक्त हरीसिह (हरिदास) से लेखक का अभिप्राय स्पष्टत उन हरिदासजी से ही है जिन्हे साधारणत प्रवर्तक माना जाता आया है। इनके विषय मे लेखक ने फिर कहा है, "ये हरिदास निरंजनी सम्प्रदाय के मूलप्रवर्त्तक नही थे। इन्होने तो मूलप्रवर्त्तक के नाम से, पूर्व-परम्परा से आते हुए, निरजनी संप्रदाय को श्री वृद्धि की।"[३] जिससे दो हरिदासो के होने की संभावना प्रकट की गई है।

डा० माहेश्वरी द्वारा, दो हरिदासो के विषय मे, प्रकट किये गये मत के कारण इस प्रश्न का उठना भी स्वाभाविक है कि 'क्या यह निरजनो सप्रदाय जिसके सबंध मे हम विचार कर रहे है बहुत पुराना है?' और यदि नही तो, "क्या कोई दूसरा सम्प्रदाय ही तो इस नाम का नही था जिसके अनुकरण अथवा समानांतर मे इसे किसी समय प्रवर्त्तित वा चालू किया गया।'[१] इसके सिवाय, हमारे लिए, इस सम्बंध मे, इस बात पर भो विचार करना पड सकता है कि ऐसे किसी सम्प्रदाय के प्रचलित हो पडने की पृष्ठभूमि क्या हो सकती है? किस रूप मे इसके उदय होने की सम्भावना हो सकती है? तथा उस दृष्टि से इसका, संतमत के साथ, कोई लगाव भो हो सकता है वा नही? इसके लिए यदि हम चाहे तो, स्वयं 'निरंजन' शब्द के पुराने प्रयोगो पर भी विचार कर सकते है, उसके अर्थ की व्यापकता तथा क्रमिक विकास की ओर ध्यान दे सकते है और फिर, अंत मे, इस बात का पता लगाने का भी प्रयत्न कर सकते है कि, जिस समय के लिए हम स्वा० हरिदास के अविर्भाव का होना निश्चित करना चाहते है उस समय की, वस्तु स्थिति क्या हो सकती है।

'निरजन' शब्द का एक प्राचीन प्रयोग 'मुण्डकोपनिषद्' मे किया गया मिलता है जहा पर कहा गया है :—

"यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं, कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्।
तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय, निरंजनः परमं साम्यमुपैति॥"

अर्थात्, जब साधक ज्योतिर्मय कर्त्ता, ब्रह्मयोनि ईश्वर को देखता है तब वह विवेकी पुण्य एवं पाप को दूर करके, निर्मल बन कर, परम साम्य पालेता है। अतएव, 'निरंजन' शब्द यहा पर उस साधक के लिए प्रयुक्त जान पड़ता है जो वधन का हेतु बनने वाले पाप एवं पुण्यमय कर्मो का त्याग कर देता है। इसी प्रकार श्वेताश्वतर उपनिषद् के अंतर्गत एक स्थल पर कहागया है :—

---

१. डा० हीरालाल माहेश्वरी 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' (कलकत्ता १९६०) पृ० २९२। २. 'मरुभारती', वर्ष ४ अङ्क १, अप्रेल, १९५६। ३. राजस्थानी भाषा और (साहित्य) पृ० २९२। ४. 'मुण्डकोपनिषद्' (३,१,३)

वपहीन त्रिनसै न ग्रभै न मूलं , मंत्रै न वैरी न संसै न सूलं ॥
रिणहीन राजा न सेन्या न साथी , मुलकै न माया न असहीन हाथी ॥२५॥
राचै न विरचै न रीझै न रोवे , मनहीन मौनी न मैला न धोवे ॥
रहता न बहता फूटा न सारं , सुषहीन दुषहीन चिंता न चारं ॥२६॥
थितहीन थांनै न आसा न पासं , बैठा न चलिहै न देवे न दासं ॥
सूद्र न षत्रीन विप्रेन बंसै , गिरहीन तरहीन सरहीन हंसैं ॥२७॥
जरणा न षीजै न कणहीन छोहो , इंद्री न धाते न मांसै न लोही ॥२८॥

दोहा— वारपार मति गति अगम , परै न पहुँचै हाथ ॥
जन हरीदास सो कौंण है , भरे आभ सूँ बाथ ॥२९॥
मसि कागद पहुँचै नहीं , अगम ठौड़ है लोइ ॥
जन हरीदास ऐसी कथा , जाणें विरला कोइ ॥३०॥
जन हरीदास अवगति अगम, जहाँ भ्रांति नहिं छोति ॥
हम बात तहाँ की लिखत हैं , कर लेषणि विण दोति ॥३१॥

॥ इति निरञ्जनलीला जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—मित्रै-१ । च्यंता-२ । थितिहीन-१ । छत्रीन-२ । विनि-४ ।

शब्दार्थ—मत्रै=मित्र, सखा । रिण=युद्धभूमि । अस=अश्व, घोडा । राचै=आसक्त, अनुरक्त । विरचै=विरक्त । थित=स्थिति । पास=बन्धन । षीजै=क्रोध करे । छोही=छिलका, तुस । आभ=आकाश, बादल । मसि=स्याही । छोति=छुआछूत, अस्पृश्यता । दोति=दवात ।

।। अथ साधचाल मोतीदाम छंद ग्रन्थ ।।

पाँच अटकि उलटा चलै, डोरै लागा जाय ।।
येक दिहाड़ै साच मैं, सहजै रहै समाय ।।१।।

आपा का ईंधण करै, काम क्रोध फुनि छार ।।
येक दिहाड़ै साँच में, सहजि मिलै भरतार ।।२।।

आपै न चढणाँ, वादै न करणाँ ।।
निरति सूँ चालिवा, सुरति सूँ बोलिवा ।।३।।

काम कूँ ग्रासिबा, मिथ्या न बोलिवा ।।
तीनि गुण षाइबा, रवि ससि मेलिबा ।।४।।

परम पद पाइबा, नौ नाथ नाथिबा ।।
सात सागर सोषिवा, नौसे नदी उलटिवालिबा ।।५।।

प्राण पुरिस पोषिवा, बहत्तर छाजा न षेलिवा ।।
दुष सुष मेटिबा, सुर तैतीस तारिबा ।।६।।

अहुं मेव मारिवा, गिगन चढ़ गरजिवा ।।
इन्द्र उपदेसिवा, अथाह थाधिवा ।।७।।

अदिष्ट विचारिवा, कोड़ी सूँ न षेलिवा ।।
हीरा न हारिबा, अरथ का नेत्र उघाड़िबा ।।८।।

अनरथ न पालिवा, सील संतोष की सनाह अंगि पहरिवा ।।
सुमिरण की सौंज लेवा, अगम कूँ चालिवा ।।९।।

पाठभेद—एक–३-४-५ । खेलिवा–१ ।

शब्दार्थ—अटकि=रोककर । डोरे=सुरति रूप धागे से । दिहाडे=दिन । आपा=गर्व । निरति=निरख कर, देखकर, निराधार वृत्ति । सुरति=ध्यानमय, साधार वृत्ति । रवि=प्राण, इडा । ससि=मन, पिंगला । नौ नाथ=नवद्वार । सागर=रसादि सप्त धातु । नदी=नाडियां । बहत्तर=बहत्तर कोठे । अहु=आपा । गगन चढ गरजिवा=निराधार वृत्ति से अनहद नाद । थाघिवा=थाह लेना । कोडी=मायिक पदार्थ । हीरा=मनुष्यजन्म (ब्रह्मरत्न) । अरथ=सत्यज्ञान । सनाह=कवच ।

धरचा में अधर दरसिवा , सुष कै स्यंधि पैसिवा ॥
परम जोति परसिवा , पाँच परमोधिवा ॥१०॥
मेर चढ़ि बोलिवा , काया गढ़ सोधिवा ॥
मन कूँ कंचन ज्यूँ तोलिवा, सुरति सहज घर आंणिवा ॥११॥
मान अमान एक करि जांणिवा, काची सराफी षोटा न लेंणा ॥
मंहगे मोल का मन है रे , अवधू सुँहगा न देंणा ॥१२॥
सतगुरु सबदां षेलिवा , कलस मैं कूप आंणिवा ॥
नीर उलटेगा पालि सोषेगा , तब परापरै परमभेद जाणिवा ॥१३॥
विहंगम उलटेगा मालै में आवेगा, त्रिछ कुँ ग्रासिवा परमभेद पावेगा ॥
मैं तैं मेटिवा मेर में वसुधा रोपिवा, गगनमंडल की गुफा में पेसिवा ।१४।
धोषे न धोषिवा मूलकँवल दिष्टि रोपिवा, पीव का मिलाप कूँ तरसिवा ॥
अगम पियाला पीयवा , अलेष पुरस परसिवा ॥१५॥
अलेषं अथाहं उंडौ अपारं , वसुधा न गगनं ज्वाला न धारं ॥
पाणी न पवन वारै न पारं, चंदै न सूरं द्योसे न राती ॥१६॥
काया न माया न पूजा न पाती, संसै न सोगं न भोगं न रोगं ॥
जोगैं न वाणीं न , जाण्यों न जांणी ॥१७॥

पाठभेद—प्रम–१ । सरापी–३-४-५ । गिगनि–१ । दिसटि–३-४ ।

शब्दार्थ—धरचा मे अधर दरसिवा=स्थूल शरीर मे आत्मतत्व देखना । पाँच= ज्ञानेन्द्रियाँ। परमोधिवा=उपदेश देना । (अन्तर्मुख करना) सुरति=वृत्ति । काची= नकली । सुँहगा=सस्ता । ऊँडो=गंभीर, गहरा ।

मेर चढि बोलिवा=दशम द्वार मे प्राण का निरोध कर अजपा जाप करना ।

१३ वी साखी=सतगुरु के शब्दो को धारण कर प्राणरूपी कलश मे ब्रह्मनिश्चय-रूपी कूप लाना । वृत्तिप्रवाहरूपी नीर उलटेगा, आत्मपरक होगा तब विविध वासना-मय पाल समाप्त होगी और परापर विशुद्ध चेतन का रहस्य जानेगा ।

१४ वी साखी—मनरूपी पक्षी बाहर से पलटकर अन्तर्मुखी होगा । माले में–अपने आत्मस्वरूपरूपी घोसले मे आवेगा तब विविध भोगेच्छारूपी वृक्ष को उखाड़ेगा और आत्मज्ञानरूपी परम रहस्य का भेद पावेगा ।

मेर मे–दशम द्वार मे वृत्तिमय वसुधा को स्थित करना । गगनमंडल हृदयरूपी गुफा मे मन का प्रवेश कर समाधिस्थ होना ।

नमो देव करणामई , परमदेवाय नमो ॥
अथघ थाघ्यो न जाइ , अगम भेवाय नमो ॥१८॥
पार उर वार तिस थाह नांहि नमो , मोह ममता नहीं धूप छांही नमो ॥
समद गिगन नांहि जड़ता जोगं नमो, मेर गिरवर नहीं भोग रोगं नमो ।१९।
डाँण डाकर नहीं घणो थोड़ै नमो , ग्वाल नहीं ग्वालणी कंस जोड़ं नमो।२०।
जनम जठरा नही व्रिध वालं नमो , आइ जावे नहीं नदी नालं नमो ॥
उठि वैठे नहीं जागि सोवे नमो , आदि नहीं अंत नहीं व्रिघ्न होवे नमो ।२१।
परसि परिवार नहीं रोसे रंगं नमो, निकट निरलेप निज साध संगं नमो ॥
गहर गुण रूप गुण तीन नांही नमो, षंड ब्रह्मंड सब तुझ मांही नमो ॥२२॥
गहर गलता न करमो न काया नमो, अगम असथांन निज भेद पाया नमो ॥
अमर असथूल वरणं न वासं नमो, सकल सिरि साच आसा न पासं नमो ।२३।
सवद नहीं स्वाद सरवंग सांई नमो, करण करतार मैं तुझ तांई नमो ॥
वाद बकवाद विटरूप नाँही नमो, परम निज रूप सर्वज्ञ सांई नमो ॥२४॥
दिष्टि नहिं मुष्टि देवै न दासं नमो, डाल नहीं मूल नहीं नांव नासं नमो ॥
अमर अजरा जनमैं न जाया नमो , अषंड करणामई राम राया नमो ॥२५॥
जन हरीदास अंतरि अगहि , परम भेद निज रूप ॥
बाहरि सुषसागर मैं अणसरचा , ते उलटि न झाँकै कूप ॥२६॥

॥ इति साधचाल मोतीदाम छंद जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—वैसे-१ । विघ्न-१ । गहैर-३-४ । अस्थान-१-५ । अस्थूल-१ ।

शब्दार्थ—अथघ=अथाह । डांण डाकर=दंड, टैक्स, लाग । रोसे=क्रोध । विट-रूप=विकृत रूप, बहुरूपिया । अणसरचा=प्रवेश नही किया । झाके=देखे

॥ अथ अगाध अचरज जोगग्रन्थ ॥

गोरष हणूँ भरथरी सुषदेव , सिध सनकादिक सुषसारं ॥
नारद संकर मुनि ब्रह्मादिक , अगणित साध परस भये पारं ॥१॥
चंद सूर कीया दोइ दीपक , करि तारामंडल करतारं ॥
अनंत लोक विसपाल विसंभर , सकल' सह्याया तो सारं ॥२॥
रूप न रेष भरम नहिं भंजन , ताहि भजौं भजि भ्रमजारं ॥
बेद कतेब कहै दोइ बाताँ , दोइ आगै नर निसतारं ॥३॥
ग्यांन न ध्यान पाप नहिं पुनियर, अधर अलेष नहिं चकचालं ॥
भेद अभेद अरीझ अछेदं , सुनि सदा रस रहतालं ॥४॥
राज न रीति प्रीति नहिं परषत , कलपि न झलकै करतारं ॥
रमता राम सकल विसव्यापी , निरषि निरषि सो निरधारं ॥५॥
निज निरसिध अगहै अभि अंतरि, अकल अनूप नहिं त्रिध वालं ॥
धरणि अकास व समंद सुमेरं , लष चौरासी प्रतिपालं ॥६॥
उपजि न विनसै जागि न सोवे , आलस नींद न आकारं ॥
पुरष न नारि करै नहिं क्रीड़ा , अगम अगोचर ततसारं ॥७॥
गाँव न ठाँव विघन नहिं वासं , सास उसास न नौद्वारं ॥
पूरण ब्रह्म परम सुषदाता , आस उदास न आचारं ॥८॥
× नौ से नदी बैहतरि छाजा , इन्द्री पांच न चित चारं ॥
पेट न पीठि नैन नहिं नासा , हाथ न पांव न घट धारं ॥९॥
जोति न छोति सूँनि नहि संकट , तेजस पुंज न भूभारं ॥
भेष अरेष अलेष अदेषं , आदि अषंडित अघजारं ॥१०॥

पाठभेद—दीपग–२-३-४। चितचालं–२। विस्व–१।

शब्दार्थ—हणूँ=हनुमान। विसपाल=जगतपालक, दुःख से रक्षा करने वाला। कतेब=कुरान। चकचालं=चक्र की तरह घूमने से रहित। विस=विश्व, व्याप्त। वासं=निवास, लेशमात्र। छोति=स्पर्श रहित। अरेष=असीम, निराकार।

× नौ से नदी=नौसे नाड़ियाँ। वैहतरि छाजा=बहत्तर कोठे।

वार न पार मुनि नहि वकता , अगहि अकहि तहाँ धुनि धारं ॥
ऊँच न नीच वरण नहि अवरण, कहर न व्यापै तसकालं ॥११॥
अवगति अगम अगैह अभि अंतर, नाथ निरञ्जन निरकारं ॥
गरजै गगन मगन मन उनमनि , निसदिन दरसै दीदारं ॥१२॥
निज निरलेप सकल जुग करता , सकलस पोषै सुष न्यारं ॥
सकल निरंतर सरमन व्यापै , आनंदरूप अगम पारं ॥१३॥
दिष्टि न मुष्टि ग्यान नहि गुष्टि , संकट व्रत न विणजारं ॥
नेह न गेह भोग नहि रोगं , जटा न जोगी नभ नालं ॥१४॥
सीत न धूप मीन नहिं पांणी , कीर न डालै किस जालं ॥
स्याम न सेत रगत नहिं रेतं , तरवर मूल न तिसडालं ॥१५॥
भवण न गवण पिता न सहोदर , मोह न दोह न परिवारं ॥
परम उदार परम निधि निरभै , निज चिंतामणि चितधारं ॥१६॥
अरध न उरध जोग नहिं जापं , अजर अजोनी ×तसभालं ॥
अगम अथाह परम सुषसागर , नाथ अनाथं प्रतिपालं ॥१७॥
ज्यूँ आकास सकल भंजन जल , सब मैं दीसै आकारं ॥
हाथ गह्या कांई गहत न आवे , यूँ सब घट मैं घटधारं ॥१८॥
निरभै निरवांण अषिल अविनासी, अबरण बरण न विसतारं ॥
दीरघ लघु लोभ षिम्यां नहि षींजै, हरि निरसिध निकट न्यारं ॥१९॥
निरगुण निरधात गात गुण नांहीं , निज निरमूलस निज सारं ॥
जोग न भोग पाप नहिं पुंनियर , पूत अऊतन परिवारं ॥२०॥

पाठभेद—अगह-अकह—१-३-४ । सुरमन—१ । गुष्टं—१ । तसडालं—१ । च्यंतामणि—२ । ज्यो—१ । यो—१ ।

शब्दार्थ—मुनि=मौनि । कहर=क्रोध । तसकालं=काल का काल । सरम=श्रम, थकावट । गुष्टि=गोष्ठी, विचार द्वारा । व्रत=वृत्ति-आजीविका । विणजारं=व्यापार । नालं=अल्प नही । कीर=धीवर । रेतं=वीर्य । काई=कुछ । गहत=पकड़ मे । निरधात=रजवीर्य रहित । ×तसभालं=उसको देखो ।

वल नहिं अवल निरूप निरषर , सदा सनेही सुषसारं ॥
निड़र निराट विराट अनंत हरि , सब कुछ करि सब तैं न्यारं ॥२१॥

अधर अरूप अथाह अजूंनी , अनंत अमूरति अवजारं ॥
दीनदयाल काल नहिं करणा , त्रिविधि न व्यापै ततसारं ॥२२॥

हरपति प्राण सदा संगि समरथ , परसि परमतत भै पारं ॥
उदै न अस्त आंन नहिं अटपट , तरवर मूल न इलधारं ॥२३॥

सुभ नहिं असुभ गिणत नहिं अगणित, भष नहिं अभष मधुर षारं ॥
विक्रत नहिं विकल अकल अभि अंतर, तन मनसा मन तहाँ धारं ॥२४॥

इम्रत नहिं जहर कहर नहिं करणा मनहिं अमर न औतारं ॥
नर नहिं अनर अजर अमरानंद , है पण सारां सिरसारं ॥२५॥

वल नहिं अवल अचल नहिं चंचल, धर नहिं अधर न अहंकारं ॥
लालच नहिं लोभ भ्रम नहिं निहभ्रम, नट बाजी करि नट न्यारं ॥२६॥

निरमल निरछोह निरास निरंतरि , निज तत तहाँ निज मन धारं ॥
संकट नहि सरम करम नहिं अकरम, भरम न व्यापै तिस भारं ॥२७॥

परम जोति परकास परमसुष , अगम अगम सोई उर धारं ॥
ऊँच न नीच वरण नहिं अवरण, गति नहिं अगति न है कारं ॥२८॥

सकल वियापी अलष अप्रंपर , लष नहिं अलष न मैं मारं ॥
परम उदार अपार अषंडित , रटि रसना रटि ररंकारं ॥२९॥

अगैह अकैह उर तैं अघजारण , सूँनिमंडल में सहज प्रकास ॥
जन हरिदास पति परसि परमसुष , अरिदल जीति अभैपुर वास ॥३०॥

॥ इति अगाध अचरज जोगग्रन्थ संपूर्ण ॥

पाठभेद—अजोनी–१ । समरथ–२-३-४ । विकरत–१-३-४ । अमृत–१ । अमर–३ । भरम–२-३-५ । प्रकास–१-५ । वर्ण–१ । अपरंपर–१ । सूँन–१ ।

शब्दार्थ—निराट=निपट, कतई, बिल्कुल । अजूनी=अजन्मा । करणां=करुणा । आंन=अन्य । इलधारं=पृथ्वी का धारक । निरछोह=क्रोधरहित । अप्रंपर=अपरम्पार ।

॥ अथ जोगसंग्रामजोगग्रन्थ ॥

जोगी ग्यान षड्ग करि धारै, मनसा जीति मनोरथ मारै ॥
आसण छाड़ि अनत नहिं जाइ, ता संगि रमै निरंजन राइ ॥१॥
दीरघ रोग विवोग निवारै, कौड़ी सटै न हीरा हारै ॥
परधन हरै डरै नहि लोइ, आपा डारै तो यूँ होइ ॥२॥
विषया विष तजौ भजौ हरि वीर, सूँनिमंडल में निरभै नीर ॥
ऊँच नीच सब सूँ समभाइ, मन वच कम तहाँ मन लाइ ॥३॥
निरभै नृवांण परम सुषसार, आदि अनादि वार नहिं पार ॥
जुरा न व्यापै काल न षाइ, हम कूँ सतगुर दिया बताइ ॥४॥
अलष अभेद गहर गुणग्रामी, प्रांणनाथ हरि अंतरजामी ॥
कोई ग्यानी लहै ग्यान गुर औरं, षीर नीर ज्यूँ सब ही ठौर ॥५॥
भजि भगवंत असुर अरि मारि, सूँनिमंडल में मंढ़ी सँवारि ॥
ताली लागी बैठा मांहि, गंग जमन जल पीवै नांहि ॥६॥
मोह द्रोह मैं तैं करि दूरि, रमता राम रह्या भरपूरि ॥
व्यापक अंगनि बसै सब मांहि, गुर विण गैला लाभै नांहि ॥७॥
अप्रवांण निधि अगम विचारै, आप तिरै साथी संगि तारै ॥
पवन पियाला उलटा धरै, भरि भरि पीवै अजराजरै ॥८॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी, जुरा न जनम भोग नहिं रोगी ॥
परच्याँ घटै न दिया जाई, सोई वित चित में रह्या समाई ॥९॥

पाठभेद—यो-१-३। स्यो-१। ल्यौ-३। निरवाण-१-५। षाय-१। सतगुरु-१। सतगुरि-२। प्राननाथ-१। अंतरिजामी-१। ज्यौ-१। सून-१। गुरुविण-१। द्रोह-१। संग-१-५।

शब्दार्थ—अनत=अन्य, दूसरी जगह। दीरघ रोग विवोग निवारं=आत्मतत्व के वियोगरूपी दीर्घ रोग का निवारण करे, जन्ममृत्युरूपी दीर्घ रोग। परधन हरे= साधना द्वारा ब्रह्म के सत् चित् आनन्दरूपी धन को प्राप्त करे। नृवाण=गतिरहित, मोक्षरूप। गुरऔर=गुरु सम्मुख। ताली=लगन, समाधि। अप्रवाण=प्रमाणरहित। वित=धन।

८ वी साखी—पवन पियाला उलटा धरे=प्राण को सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे स्थित करे।

काल न जाल जीव नहिं जाया , नट ज्यूँ घट धरै न घट धरि आया ।।
पूरण ब्रह्म परसि पति प्रांण , दुरमष पड़ै न जम ले डांण ।।१०।।
ग्रह बैराग न विरह विवोगी , पाप पुनि परवेस न भोगी ।।
उलटी सुरति सूँनि मैं धारि , तब जाइ दरसै देव मुरारि ।।११।।
थिर नहिं अथिर अरूप अछाया , निरगुण निरधार निरंतर पाया ।।
गरजै गिगन मगन मन लोई , हरि कूँ भजै सो हरि सम होई ।।१२।।
षिर नहिं अषिर सरम नहि सोग, वप नहिं विथा वैद नहिं रोग ।।
जहाँ प्रगटै तहाँ ऐसी करै , अवरण अगनि विथा वन चरै ।।१३।।
आस उदास मोह नहि माया , ग्यान विग्यान धूप नहिं छाया ।।
करम किंवाड़ी कल सूँ षोई , है तो सही लहैज कोई ।।१४
संकट नहि सरम भरम नहि भेद , जठरा नहि जुरा कंध नहि छेद ।।
सकल वियापी सब तैं दूरि , अवगति जहां तहां भरपूरि ।।१५।।
छल नहिं अछल चिंत नहिं चाही, घट पट अघट भरम नहिं ताही ।।
तज अभिमान अगैह यूँ गहणाँ, जागि लागि नर उनमनि रहणाँ ।१६।
ड़र नहिं निड़र निरगुण निजरूप, उदै न अस्त सीत नहिं धूप ।।
घर नहि अघर पुरष नहिं नारि , परपंच प्रीति जीति नहिं हारि ।।१७।।

पाठभेद—गृह–१-३ । प्रवेस–१-५ । गिगनि–१ । स्यों–१ । यौ–१ । असत–२-३ । पुरिष–१ । प्रपंच–१ ।

शब्दार्थ—षिर नहि अषिर=क्षराक्षररहित । सरम=श्रम, थकावट । वप=वपु, शरीर । कल=कला-अभ्यास, ज्ञान-कर्म-भक्ति । चाही=चाहना ।

११ वीं साखी—उलटी सुरति सूंनि मे धारि=वृत्ति को अन्तर्मुख कर शून्य-ब्रह्मस्थान में धारण करे ।

१२ वी साखी—गरजै गिगन मगन मन लोई=अनहद नाद मे लगकर मन मगन-मस्त हो जाय ।

१३ वी साखी—जहां प्रगटै तहां ऐसी करै , अवरण अगनि विथा मन चरै=जिस घट मे ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है, उस घट मे ऊपर कथित स्थिति उत्पन्न हो जाती है । ज्ञानाग्नि वर्णविहीन है–उसका स्थूल रूप नही है, उसके प्रकट होते ही सासारिक व्यथाओ का वन दग्ध हो जाता है ।

नरहरि भजन अहोनिसि करै, ताहि जालै अगनि न मारचा मरै ॥
संकटि पड्याँ साथ रुघनाथ, जहां तहां जन कै सिर हाथ ॥१८॥
उलटा षेलि अपूठा आवे, जैसी भूष तिसा भरि भावै ॥
निरभै निज नांव निरंतरि रहणा, सापणि डसै न परलै बहणा ॥१९॥
अनरथ अनंत तहां जीव जाइ, ता कूँ सरप सदा संगि षाइ ॥
जहर दाढ़ि कंठ लागी दोइ, राम भज्यां नर निरविष होइ ॥२०॥
बैसि निरंतर अलष जगावै, आसण अमर अगम घर पावे ॥
भूषा रहै न धापि न षाइ, मनसा चलै न परघरि जाइ ॥२१॥
ब्रह्म अगनि मैं काया दहै, मन चंचल निहचल होइ रहै ॥
काम क्रोध का झड़ै जंजीर, परमस्यंध जहाँ जाल न कीर ॥२२॥
वार पार नहि अगम अछेह, धरती वरसै अंबर तेह ॥
नृमल धार अपार अनंत, ता सुषि लाग रहै सब संत ॥२३॥
निगम अगम गुर गमि गम होइ, पवन नीर लै अंबर धोइ ॥
रमताराम निरंजन राइ, राषी बसत साह कूँ षाइ ॥२४॥
परम उदार अपार अनंत, अवरण वरण अगैह भगवंत ॥
उलटी गंग जमन मैं आंणि, तोहि पिछांणैं ताहि पिछांणि ॥२५॥

पाठभेद—जिन–१। अनर्थ–१। कठि–२-४। परमसिंध–३-४-५। निरमल–१। सुष–३-५। अवर्ण–१। वर्ण–१।

शब्दार्थ—सापणि=माया। अनरथ अनत तहाँ जीव जाइ=अनन्त संसारी-पदार्थो में जीव जाता है। सरप=काल रूपी सर्प। ब्रह्म अगनि=ब्रह्मज्ञान। झडै=झड जाय।

२० वीं साखी—जहर दाढि कंठ लागी दोइ=रागद्वेष रूपी दो जहर भरी दाढ मन में लगी हुई है।

२३ वी साखी—धरती बरसै अबर तेह=धरती–सद्वृत्ति हृदयाकाश मे आत्मानन्द की वर्षा करती है, उसकी सरसता हृदय मे बैठती है।

२४ वी साखी—पवन नीर लै अबर धोइ=प्राणायाम साधना रूपी जल से हृदय के कल्मष की शुद्धि करे, मन निर्मल करे। राषी बसत साह कूँ षाइ=वासनामय साहूकाररूपी मन सांसारिक-भोगो की इच्छा रखता है–वह इच्छा या वासना ही उसका काल है, भोगो के फल प्राप्त करने को जन्ममृत्युमय कारण बनता है।

२५ वी साखी—उलटी गंग जमन मै आणि=मन रूपी गङ्गा को यमुना रूपी प्राण मे लगाओ।

निष्कलं निष्क्रियं शांतं, निरवद्यं निरंजनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं, दग्धेन्धनमिवानलम् ॥"[१]

अर्थात् (मै उसकी शरण लेना चाहता हू जो) किसी अवयव से रहित अथवा अखंड है निष्क्रिय वा कूटस्थ है, शात है, अनिन्द्य है तथा निर्लेप है, जो मोक्ष प्राप्ति के लिए परम सेतु है और जो देदीप्यमान अग्नि के समान है। इस कारण 'निरंजन' शब्द का प्रयोग यहां पर उस परमदेव का विशेषण बनाकर किया गया पाया जाता है जिसे साधारणत· परमात्मा भी कहा जाता है। यदि हम बौद्ध सिद्धो की अपभ्रंश रचनाएं देखते है तो वहां पर हमे "सुण णिरञ्जण मकरु विचार"[२] अर्थात् 'शून्यतो निरंजन है, उसका विचार न करो' में 'निरजन' शब्द का प्रयोग शून्य की व्याख्या करने वाले के रूप मे सिद्ध तेलोपा (सभवतः ९६० ईस्वी शताब्दी) द्वारा किया गया मिलता है और फिर, इसी प्रकार,

"लोऊह गब्व समुब्बहइ, हउँ परमत्थे पवीण ।
कोड़िह मज्झे एकु जई, होइ णिरञ्जणलीण ॥[३]

अर्थात् 'लोग इस बात का गर्व करते है कि हम परमार्थ के रहस्य से परिचित है, किन्तु, सच तो यह है कि, करोड़ो मे से कही कोई एकमात्र ही निरंजन (सहज काय) की दशा उपलब्ध कर पाता है (सभवत· ८४० ई० वाले सिद्ध कण्हपा का दोहा देखते है तो, वहा पर इसे किसी स्थिति विशेषवत् प्रयुक्त पाते है। अतएव, कह सकते है कि यहा पर भी, हमे उक्त दोनो प्रकार के प्रयोग देखने को मिलते है।

इसी प्रकार हमे जैन मुनियो की रचनाओं मे भी 'निरंजन' शब्द के लगभग ऐसे ही प्रयोग किये गये मिलते है। उदाहरण के लिए मुनि रामसिह (सभवतः १००० ईस्वी शताब्दी) ने अपने 'पाहुड दोहा' मे एक स्थान पर कहा है·—

"देह महेली एक वढ़ तउ सत्तावइ ताम ।
चितु णिरंजणु हरिणसिहु, समरस होइ ण जाम" ॥[४]

अर्थात् 'हे मूढ, यह देहरूपी महिला तुझे तभीतक सताती है जबतक निरंजन (निर्मल) मन परमात्मा के साथ समरस नही हो जाता' जहां पर इसे चित्त का विशेषण बना दिया गया दीख पड़ता है। परन्तु अन्यत्र जहां पर उन्होने,

"कम्मु पुराइउ सो खवइ, अहिणव बेसुण देइ ।
परमणिरंजणु जो णवइ, सो परम प्पउ होइ ॥"[५]

---

१. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (६-१६)। २. 'तेलोपा दोहाकोश' (दो० १४) ३. 'कण्हपा दोहाकोश' (दो० १)। ४. 'पाहुडदोहा' (कारजा स० '१६६०) दो० ६४, पृ० २०। ५. वही, दो० ७७ पृ० २४।

ग्रिह वन नहि तहाँ मठ छाइ , वंकनालि इंम्रत रस षाइ ।।
ग्यान गुफा मैं आरंभ करै , जोगी जीवै जोरां मरै ।।२६।।
भौ सागर ड़र अनंत अपार , ता तिरिवे कौ इहै विचार ।।
मन विष छाड़ि विसंभर भजौ , काम क्रोध विषया विष तजौ ।।२७।।
परमानंद परम सुषसार , ताहि भजौ भज तजौ विकार ।।
जामण मरण जुरा भै डरणा , अब मरि साहिब मारग सिर धरणां ।२८।
काहू सूरवीर का काम , काइर कदे कहै नहिं राम ।।
मांड़ि संग्राम घाव घटि सहै , परदल जीति परम गति लहै ।।२९।।
जुग मैं इहै जोग संग्राम , कोई करौ आपणां काम ।।
ए पासा चौपड़ि ए सारि , अबकै जीत जाहु भावै हारि ।।३०।।
जन हरीदास कहै मंत एह , वड़ निधि हाथ चढी नर देह ।।
गोविन्द भजौ राम की आंण , वहौड़ि न लागै जम का वांण ।।३१।।

।। इति जोगसंग्रामग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—गिरह–१ । भव–१ । तरिवे–१ । ये–२ । वहुडि–१ ।
शब्दार्थ—वंकनालि=श्रुति, सुषुम्ना । मंत=मन्त्र । एह=यही । आण=सौगन्ध ।

२६ वी साखी—ग्रिह वन नही तहाँ मठ छाइ=शरीररूपी, घर संसाररूपी वन को छोड, भौतिक पदार्थो का त्याग कर आत्मरूप चेतन मे घर बनावे, स्थिति करे । वंकनालि इम्रत रस षाइ=मेरुदण्डगत सुषुम्ना द्वारा प्राण को सहस्रारदल–ज्ञान-चक्र में स्थिर कर समाधिस्थ हो आत्मस्वरूपप्राप्ति रूपी परमानन्ददायी अमृत रस का पान करे । अब मरि साहिब मारग सिर धरणा=अब जीवन्मृत हो परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग को ही शिरोधार्य कर ।

॥ अथ अष्टपदी जोगग्रन्थ ॥

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरैं, जाता मन कूँ उलटा फेरैं ॥
महादेव का मता पिछांणैं, मन दसूँ दिसा तैं उलटा आंणैं ॥१॥
मनसा देवी सब कूँ षावे, हम कूँ मनसा सांच बतावैं ॥
हम जोगी जोग जुगति गमु जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे ॥२॥
पवन गोटि का पारा बांधे, उलटी सुरति गिगन कूँ सांधैं ॥
काम क्रोध का मूल उपाड़ै, गगनमंडल मैं आसण धारैं ॥३॥
अगम पियाला भरि भरि पीवैं, रूप अरूप विचारत जीवैं ॥
हरि सुषसिंध तहाँ भै नांहीं, हरिजन हंस बसै ता मांही ॥४॥
परम जोति अंतर मन राषै, ×हरि हीरा विण चूणि न भाषै ॥
जन हरीदास निज निरषिये, मन की ठौड़ उठाइ ॥
सुरति सुलटि उलटा चढ़ै, तौ अगम तहां चलि जाइ ॥१॥
लहिये अगम निगम तैं आगे, अंतरि नींद नेत जब जागे ।
*ससिहर कै घर सूर समावे, उलटि कवल कँवलापति पावे ॥
सब मैं राम दूर हरि नांहि, ज्यूँ ज्वाला काष्ठ घृत पै मांहिं ।
यहु निज सुष जाग्या सो जांणै, सूता अरथ कहां सूँ आंणै ॥

पाठभेद—सुषस्यध-२ । सिसहरि-१ । ज्यौ-१ । कासट-२ । स्यो-१ ।

शब्दार्थ—हेरूँ=खोजी, तलाश करने वाला । महादेव का मता पिछाणे=शकर का मत है-निरन्तर चिन्तन, उसको पिछाणे, जाने । मनसा=लालसा, चाह । अपूठी=वापिस । आणे=लावे । सुलटि=सुलझ । नेत=नेत्र । ससिहर=चन्द्रमा के स्थान, इडा-नाडी मे । सूर=सूर्य, पिगला नाडी । कँवल=हृदयकमल-षट् कमल को ऊर्ध्वमुख हो । पै=पय, दूध ।

दूसरी साखी—बहती नदी अपूठी आणै=ज्ञानेन्द्रियो की विषयो की ओर जाने वाली वृत्ति रूप नदी को आत्मस्वरूप प्राप्ति की ओर मोडे-अन्तर्मुख करे ।

तीसरी साखी-पवन गोटि का पारा बाँधै=प्राणप्रवाह को प्राणायामादि की साधना से स्थिर कर उसकी गुटिका द्वारा चञ्चलतामय मनरूपी पारे को बाँधे, निश्चल करे ।

× हरि हीरा विण चूणि न भाषै=विशुद्ध स्थिर हुआ मनरूपी हस स्वस्वरूप-चिन्तन रूप हीरे-मोतियो को छोड़ सासारिक भोगरूपी चुग्गे को अब नही खाता ।

* ससिहर के घर सूर समावे=दशम द्वार मे इडा नाडीरूप चन्द्रमा सहस्रारदल-ज्ञानचक्र मे स्थित है, वहाँ प्राणरूपी सूर्य को समाहित करे, स्थिर करे ।

अगम अथाह वार नहिं पारं, ता का कैसा भेद विचारं।
वरण विवोग रोग नहि जाना, परम भेद ऐसा असथांना ॥
सकल समीपी सकल सुहावा, तीन लोक त्रिभवनपति रावा।
सुषमनि उलटि गगन मैं आंणी, सुनिमंडल मैं षेलै प्रांणी ॥
सुषमनि परमसिंध मैं भूलै, तारुति कँवल केतकी फूलै।
नाभि सरोवर निज जल नेरा, मन मतवाला भूलै मेरा ॥
भागा भरम भेद जब पावा, तब मन उलटि सहज घरि आवा।
गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण।
जन हरीदास हरिसिंध मैं, षेलै साध सुजांण ॥२॥
सो अणभै जोगी नांव अनंता, जटा न जूट पांच नहिं तंता ॥
सकल समीपि अकल निज नांमी, प्रांण अधार गहर गुणग्रामी।
आदि अंति हरि की हरि जांणै, सुनि रूप वहु वाणिक वांणै ॥
आदि न अंति लहै कोई भेवा, सुरति संबाहि परमसुष लेवा ॥
जुरा न जनम आइ नहिं जावा, अगम अथाह थाह को पावा।
तेरू समद तिरण व्रत धरि है, वार न पार कहां लगि तिरि है ॥

पाठभेद—प्रम-१-२। अस्थाना-१। तीनि-४। त्रिभुवन-१। केतगी-१-२। घर-३-४-५। व्रषा-१-२। समीप-५। वहो-५। जन्म-३। लूँ-२। तरि-१।

शब्दार्थ—असथाना=अगम स्थान। तारुति=उस समय। कँवल=हृदयकमल। केतकी=ऋतंभरा प्रज्ञा, त्रिकालज्ञ। निज जल=आत्मानन्द। भूलै=स्नान करे। छीलर=ओछा पानी। निवांण=निचाई। अणभै=अनुभव। तंता=तत्व। सकल समीपी=सबका साक्षी। वहु वाणिक=विविध रचना।

गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण=गगन-दशम द्वार मे जब प्राण का स्थैर्य हो अनहद नाद की गर्जना के तत्रस्थ चन्द्रमा द्वारा अमृत की वर्षा होने लगी, तब निवांण-नीचे अकिञ्चन विषय-भोग सब छीलर-महत्वहीन हो गये, निष्प्रभ हो गये।

पंषी उलटि गिगन कूँ धावै , ऊँचा अगम कौंण गम पावै ।
×चेला पांच मिलावणि मेलै , सो परम जोग का घर मैं षेलै ।।
अगम भेद आगा लगू , हरि परम सनेही सोइ ।
अब मन तहाँ विलंबिया , उलटि न पूठा होइ ।।३।।
तस नांव निरंजन अवगति राया, परम उदार परम सुष छाया ।
तरवर अकल अगम फल हूवा , चंचा चोल रहै तहाँ सूवा ।।
कामी काग वहाँ नहि आवै , आसा कीचि उलटि तहाँ जावै ।
सकल समीपि अकल निज पावा , अवरण वरण भिन नहिं भावा ।।
सब सूँ एक रंक क्या राणा , दुष पावे तै करम बंधाणा ।
करम बंधाइ बहुत दुष पावै , चढ्या दिसावरि षोटा षावै ।।
षोटा षाइ मूल मति हारै , रषेन बूड़सि कुल कै गारै ।
कुल करतूति कहाँ लौं करिहौं , जांमि जांमि जामौं फिरि मरिहौं ।।
परपंच प्रीति मोह नहिं दोहा , सरणि उधार परम सुष सोहा ।
हरि सफसफा गहर गंभीरं , नहिं सो षीर नहीं सो नीरं ।।
निरभै निरगुण निज निराकारं , मीठा नहीं नहीं सो षारं ।
तिस परिवार पिता नहि माया , ना ग्रिह करै न काहू जाया ।।
आदि अंत ना उपज न आया , जो उपज्या सो सहज विलाया ।
सहजि विलाया तै सति नांही , ऐसे समझि देषि मन मांही ।।
नहिं आवै नहिं जाइगा , आवै जाइस और ।
निराकार निज रूप है , सो व्यापि रह्या सब ठौर ।।४।।

पाठभेद—मिलावनि–३-४। मिलावन–५। जोति–३-४-५। अविगति– १। उहाँ–१-३-५। भिन्न–१। कर्म–१। रिषेन–१। फुनि–१। त्रिगुण–२। न्यज–२। गिरह–१। सहज–१।

शब्दार्थ—रषेन=रखना, कदाचित्। बूडसि=डूबेगा। गारै=कीच। करतूति=करणी। सफसफा=शुद्ध, माया-अविद्यारहित। ग्रिह=घर। जाया=पैदा किया। विलाया=विलीन हुआ।

×चेला पाँच मिलावणि मेले=जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय रूप मन के चेले है, विषय-प्रवृत्ति मे भिन्न-भिन्न तरह की प्रवृत्तियो में प्रवृत्त होते हैं, उनको मिलावण मेले–एक स्थान मे आत्मस्वरूप की ओर लगावे। जहाँ पाँचों ही एक स्वस्वरूप रूप विषय मे ही रत हो जायँ–लग जायँ।

तहाँ सीत न धूप गांव नहिं ठांम, परम सनेही मन विश्राम ।
दिष्टि अदिष्ट भेद अभेदं, तरवर डाल मूल नहि छेदं ॥
अजर अरीझ आस नहिं पासं, उतपति षपति नांव नहिं नासं ।
व्यापक ब्रह्म मोह नहिं माया, वेहद पञ्चा भेद भल पाया ॥
प्रगट गुपत गुपत गोपालं, संकर इष्ट काल का कालं ।
अगम अरूप सांसौ नहिं सोगं, नांव निरषर भोग न रोगं ॥
हरि है हेम वार नहिं पारं, समद गगनन वेद विचारं ।
मूल अमूल करम नहिं काया, अंतरि अगह परम सुष पाया ॥
सकल समीपि सकल सुष, सकल भवनपति राइ ।
अब मन तहाँ विलंबिया, सो सुष मैं रह्या समाइ ॥५॥
या औसर हरि का होइ रहिये, भवण रच्या सो भूधर कहिये ।
नांव विसंभर विसपति रावा, पूरण ब्रह्म परसि पति पावा ॥
×करता करण चरण चित धारं, दामणि दिष्टं जोति उजारं ।
निज निरलेप निकटि निराकारं, अगम अषंडित अगम विचारं ॥
*ससि परकास्यां तिमिर विलाया, मन भया मगन परम सुष पाया ।
देवाधरदेव तहाँ मन धरिहूँ, मन गहै पवन इहै व्रत करिहूँ ॥
हरि निरस्यंघ निकुल निरधारं, अंतरि निरंतरि निकटि न न्यारं ।
निधि पाई निरभै भया, निधि परम सनेही राम ॥
प्राणी मांही पैसि करि, मनि पाया विसराम ॥६॥

पाठभेद—ठांव-३-५। दिसटि-२। गुप्त-३। इसट-२। निरक्षर-३-४। अगहिं-२। भुवण-१। प्रसि-१। च्यत-२। निकट-१। प्रकास्यां-१। हौ-१। न्यकुल-२। न्यधि-२। विश्राम-३-४।

शब्दार्थ—दिष्टि अदिष्टि=रूपरहित। अरीझ=अनासक्त। पासं=बन्धन। सांसो=संशय। सोगं=शोक। हेम=सुवर्ण की तरह शुद्ध, शीतल। विलंविया=लगा। भवण=संसार। देवाधरदेव=देवताओं का उपास्य देव। गहै=पकड़े। निकुल=वंशविहीन, अजाति।

× वही कर्त्ता है, वही करण साधन है, उसी के चरणो मे चित्त लगाओ।

* ससि-मन ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित होने पर मल, विक्षेप, संशयरूपी तिमिर नष्ट हो गया।

गहि गुर ग्यान अगम कूँ ध्यावै , अगम अथाह थाह कोई पावै ।
घटि घटि अघट सकल घट सोई , गुर गमि तास लहै जन कोई ॥
उलटा षेलि सहज घरि आवै , धुनि मैं ध्यान तहाँ मन लावै ।
अविगति अगम अगम गमि कीया , नौ ग्रह पलटि गिगन रस पीया ॥
जा रसि मुनि जन रह्या समाई , ता रसि रुचि मन उलटि न जाई ।
आपा गलित मिथ्या अभिमाना , अब हम जान्यां जान सुजाना ॥
दरिया रूप वार नहिं पारं , ता मैं मछला प्राण हमारं ।
काल न जाल नहीं भै नेरा , भूलै षेलै मंभि वसेरा ॥
सहजि पियाला परम सुष , भरि भरि पीवै प्रांण ।
आतम अंतरि देषिये , अवगति का अहिनांण ॥७॥
सो परमेसुर प्रथमी प्रतिपालं , करम विपाक हरण अघजालं ।
पारब्रह्म चरणां चित धरिहूं , हरिपति छाँड़ि और नहि वरिहूं ॥
तात न सीत नहीं सो पारं , जुराहरण जगदीस हमारं ।
गुणग्राही गोविंद गुण गावा , भजि भजि राम परमपद पावा ॥
परमस्थंब मैं प्राणी डारं , उनमनि लागा प्रेम वधारं ।
आतम परआतम सूँ मेलौ , परमहंस सूँ हिलिमिलि षेलौ ॥
परमजोति आचार विचारं , परमसुनि मिलि प्राण उधारं ।
जन हरीदास हरि अगम है , अथघ न थाघ्यो जाइ ॥
तहाँ नामा दास कबीर सा , केता रह्या समाइ ॥८॥

॥ इति अष्टपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—ऊँचो अगम कौंण गम पावै–१ । गम–३-५ । नौग्रिह–३-४ । नवगृह–५ । जाण्या-जाण-सुजाण–१ । मंभ–२-५ । प्रान–३-५ । प्रमेसुर–१ । वरहूं–५ । जुरा-हरन–५ ।

शब्दार्थ—गुर गमि=गुरु उपदेश से । धुनि=अनहद नाद । नौग्रह=पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्त करण । आपा गलित=देहाध्यास नष्ट । मछला=मच्छी रूप । मंभि=भीतर । अविगत=विगतरहित, अविवेच्य । अहनांण=निशान, चिह्न, प्रतिरूप । तात=गर्म ।

॥ अथ वन्दना जोगग्रन्थ ॥

नमो नमो परब्रह्म, परमगुर नमसकार।
आतमा अभ्यास, परमात्मा प्राणनाथ॥
परम पुरिष निरंजन निराकार, निरामय निरविकार निरास।
अविनासी निराधार एकंकार, अपरंपार उदार॥
पारब्रह्म करणहार करतार, जगत गुर अंतरजामी।
अजनमा सरवजांणणहार, अजपा जाप ब्रह्म अगनि प्रकास॥
अनेक असाध रोग जारणहार, अलिप अछिप निरालंब।
निरलेप निरदंद निरमूल निरसिंघ, परमजोग परमभोग परमगति निरगुण ब्रह्म॥
प्रममत प्रमग्यान प्रमध्यान, प्रमतेज प्रमजोति।
प्रमधाम प्रमविश्राम, अधर अमल × अहल अजर॥
अतिर अथिर अषिर अपर, अषर अधर मीठा मधुर।
अरंग अभंग निअंग, निमोह निछोह निभोग॥
निजोग निरूति निरोग, संजोग विजोग न सांसा नांही सोग।
हुवा न हौसी न आवै न आया न, जनमै न जीवै न छाया न माया न॥
जागै न सोवै न भूषा न धाया न, उठै न बैसै न रीझै न क्रोधम।
जपहीन तपहीन, ध्यानै न बोधम॥
इन्द्री न ततहीन गातै न घातै न, वनिता न सुतहीन जनमै न तातै न।
अलष पुरष की आठौं पहर, करै वंदना कोइ॥
जन हरीदास कालबांण लागैं नहीं, हरि भजि निरमल होइ॥१॥
मन उनमनि लागा रहै, कहाँ संभ्या कहाँ प्रात॥
जन हरीदास ता साध कूँ, जम करि सकै न घात॥२॥

पाठभेद—नमस्कार–१। प्रमातमा–२। श्रव–२-४। अल्यप–२। प्रमजोग प्रमभोग प्रमगति–१-२। पुरुष–१। आठूँ–१।

शब्दार्थ—अलष पुरस=ब्रह्म। घात=प्रहार। × अहल=कम्पनरहित।

सिध साधक की वंदना, ग्यान ध्यान धरि देष ॥
जन हरीदास एक अमरफल कर चढ्यो, अपरंपार अलेष ॥३॥

॥ इति वंदना जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरञ्जन निराकार वंदना ॥

नमो नमो परब्रह्म परम गुर आतमा अभ्यास,
प्रमातमा आलोकन ।
आनंद परमानंद सिध साधिक नमसकार,
नमो नमो रमताराम नारायण नरस्यंघ ॥
सकल निरंतरि नरहरि निरवाण निरविग्रह,
नमो नमो निरामय निरविकारं ।
स्वयंब्रह्म सकल वियापी, निरंजन निराकारं ।
जन हरीदास वंदते एकाकारं, अविनासी अपरंपार उदारं ॥

॥ इति निरञ्जन निराकार की वन्दना समाप्त ॥

॥ अथ निरपषमूल जोगग्रन्थ ॥

गुर सिष सूँ समझाइ करि, भजन बताया राम ।
या सेवा या वन्दगी, यहु आरंभ यहु काम ॥१॥

पाठभेद—आतमा–२-५ । प्रमातमा–३-४ । नमस्कार–१ । सुयंब्रह्म–३-४-५ । स्यूँ–१ । याह–१ ।

शब्दार्थ—एक अमर फल=स्वस्वरूप प्राप्ति रूप । आलोकन=अवलोकन, देखना ।

झूठा सुष संसार का, कलई का सा रंग।
हौड़ा हौड़ी पड़त है, तामैं जीव पतंग ॥२॥

काहे कूँ परदुष सहे, दूर पड़ैगा जाइ।
मनिषा जनम अनूप है, मन सकै तौ हरि गुण गाय ॥३॥

काम क्रोध त्रिसना तजौ, त्रिविधि ताप गुण देह।
सांई का सुमिरण करौ, परम सयाणप एह ॥४॥

मन अपणां सूँ कहत हूँ, अपणा ग्यान विचार।
गोविंद भजि भरमै कहा, धसि मति डूबै धार ॥५॥

विष पीवै इम्रत कहै, कनक कटोरा मांहि।
याह मरणै की सौंज है, पीवैस जीवै नांहि ॥६॥

निसवासुरि ग्रासै जुरा, मन सोवै कहा गँवार।
लालच तजि मैं तैं मनी, भजि राम नाम ततसार ॥७॥

पाँचो इन्द्री फेरि करि, सुरति सहज घर धारि।
अनंत साध आगै चल्या, सोई राह संभारि ॥८॥

मोह दोह की अगनि मुंषि, दाभ्रत है जीव जाइ।
जलत जलत भरमत फिरत, यौं ही गया विलाइ ॥९॥

सूतां सरवस जात है, जागिर करौ विचार।
हरि परम सनेही परमसुष, अगम वार नहिं पार ॥१०॥

जोगी जागै जुग सोवै, मोह महल मैं जाइ।
मोह महल मैं सरप है, जब सोवै तब षाइ ॥११॥

सोवण का सुष और है, जागण का सुष और।
जब जाग्या तब एकरस, तहाँ साधाँ की ठौर ॥१२॥

पाठभेद—मानषा-३। त्रिष्ना-३-४-५। देह-२। निसवासुर-३-४-५। सर्प-३।

शब्दार्थ—होडा होडी=देखादेखी। परदुख=परपदार्थजन्य दुःख। सयाणप=चातुर्य। धसि=प्रवेश कर। कनक कटोरा=मनुष्य देह। दाभ्रत=जलता। सूतां=मोह-निद्रा मे। सरप=वासनारूपी सर्प। जागण=विवेक-विचार से सचेष्ट रहना।

जीव जोगी जागै सदा, कबहूँ सोई न जाइ।
इंहि आरंभ लागा रहै, धुनि मैं ध्यान लगाइ ॥१३॥

माया के रसि रसक हैं, बात कहत हैं दोइ।
राम रसायण अजब है, पीवेस रसिया होइ ॥१४॥

कहूं स्वामी कहूँ सेवगी, माया ही परि मूँठि।
लड़त जुड़त यूँ ही करत, गया किता ही ऊठि ॥१५॥

मरकट का कर कब गह्या, मूंठि दई फंद माही।
मूठी छांड्या छूटि है, तौ घर घर नाचै नांही ॥१६॥

कुंजर कै भै मैं ड़रूँ, सो ड़र सह्या न जाइ।
काम हेति परवसि पड्या, बेड़ी लागी पाइ ॥१७॥

काहू कै रस रहत का, काहू कै रस काम।
काहू कै रस जोग का, हरि जन कै रस राम ॥१८॥

काहू कैं रस ग्यान का, काहू कैं रस नाद।
काहू कैं रस भांमिणी, काहू कै रस वाद ॥१९॥

काहू कै रस मांनि का, काहू कै रस भेष।
काहू कै रस वैरता, ×सदा निरंतरि रेष ॥२०॥

कोइला जलि काला भया, वहौड़ि कसोटी षांहि।
अगनि दिपां तैं प्रजलै, कसर रही कछु मांहि ॥२१॥

कसरि मानि जहाँ तहाँ वसै, जांणै विरला कोइ।
साँध्या आटै लूँण ज्यूँ, कैसे न्यारा होइ ॥२२॥

जिन सूँ हरि किरपा करी, अपणै अंगि लगाइ।
तिनकै अंतरि हरि वसै, हरि विण कछु न सुहाइ ॥२३॥

पाठभेद—अहि–१। यहि–४। लाग्या–१। फंध–५। परजलै–३। सूँध्या–४-५। ज्यौं–१। स्यूँ–१। हरि विन–४-५।

शब्दार्थ—जोगी=साधक, सचेत। दोइ=द्वैतभाव। मूंठि=हाथ, पकड। रहत=रहनी, बनावटी रूप। भांमणि=स्त्री। वाद=विवाद। वहौड़ि=पुनः। सांध्या=मिलाया।

अर्थात् जो पुराने कर्म को खपा देता है और नये का प्रवेश नही होने देता तथा जो परमनिरंजन (देव) को नमस्कार करता है वह स्वयं परमात्मरूप हो जाता है, कहा है वहा पर इसे स्वय उस 'देव' के लिए प्रयुक्त किया है। योगी इन्दु (समवतः १००० ईस्वी शताब्दी) नामक एक अन्य जैन मुनि ने भी कहा है·—

जे जाया झाणग्गिए कम्म कलंक डहेवि।
णिच्च णिरंजण णाणमय ते परमप्प णवेंवि ॥"[१]

अर्थात् जिन लोगोने ध्यानाग्नि द्वारा कर्म कलंक को दग्ध करके नित्य निरंजन और ज्ञानमय की दशा प्राप्त करली है उन (सिद्धों) को नमस्कार है। जहा पर इसका प्रयोग, सिद्धत्व की दशा के लिए, हुआ है। परन्तु उन्होने ही जहां पर इसे

"परमणिरंजणि मणु धरिवि, मुक्खु कि झायहिं सव्व ॥"[२]

अर्थात् सभी लोग परमनिरंजन मे मन को स्थित करके मोक्ष का ध्यान किया करते है मे प्रयुक्त किया है वहां पर यह देव का वाक है।

योग सबधी नाथपथी ग्रन्थो एवं नाथ कवियो की उपलब्ध रचनाओ के अंतर्गत भी, हमे लगभग इसी प्रकार के प्रयोग मिलते है। 'शिवसहिता' नामक ग्रन्थ मे एक स्थल पर कहा गया है—

"निखिलोपधिहीनो वै यदा भवति पूरुषः।
तदा विवच्यतेऽखण्डज्ञानरूपी निरंजनः ॥"[३]

अर्थात् जब साधक सभी उपाधियो से रहित हो जाता है उस समय वह अपने को ज्ञान रुपी अखंड निरंजन कह सकता है। परन्तु उसी मे अन्यत्र इस प्रकार भी कहा गया मिलता है—

"यावन्नोत्पद्यते ज्ञानं साक्षात्कारे निरंजने।
तावत्सर्वाणि भूतानि दृश्यंते विविधानि च" ॥[४]

अर्थात् जब तक हमारा ज्ञान निरंजन (परमात्मा) के साक्षात्कार को उपलब्ध नही कर लेता तबतक विविध जीवो मे भेद-दृष्टि रहा करती है। जिससे जान पडता है कि प्रथम श्लोक मे जहा इसे साधक की स्थिति की विशेषता के रूप मे कहा गया है वहां दूसरे मे यह स्वयं परमात्मा रूप है। इसी प्रकार, गुरु गोरखनाथ (समवतः ११ वी ईस्वी शताब्दी) के नाम से उपलब्ध रचनाओ मे से 'गोरष गणेस गुष्टि' के अंतर्गत जहा उनकी ओर से, अपने लिए, "अम्हे निरजन जोगी,

---

१. 'प्रमातम प्रकाश' (बम्बई, १९३७ ई०) दो० १ पृ० ५। २. वही, (अ०२) दो०८ पृ० १३४। ३. 'शिवसहिता' (बम्बई) अ० १ श्लो० ६८। ४. वही, अ० २ श्लो०४८।

तन मांही तीरथ भला, तहाँ मन निरमल होइ।
पाँचो इन्द्री फेरि करि, झूलै विरला कोइ ॥२४॥
काया मांही कँवलदल, तहां बसै करतार।
अवरण वरण अकैह अगैह, अगम वार नहिं पार ॥२५॥
काया मांही कँवलदल, तहां बसै भगवंत।
जन हरीदास षेलै तहां, कोई कोई विरला संत ॥२६॥
पवन पलटि निरभै भया, गगन पहूँता जाइ।
काल चोट चूकै नहीं, अंति पड़ै भै आइ ॥२७॥
धरम नेम तीरथ वरत, अट पट पूजा आंन।
जोग जिग तपस्या तुला, ए जन कै जहर समांन ॥२८॥
दिष्टि रूप दीसै जिकौ, एक सवद विसतार।
ऊँच नीच अवरण वरण, मैं तैं मोह विकार ॥२९॥
कहुं इम्रत कहुँ कहुँ जहर, कहुँ नाहर कहुँ गाइ।
कहुं मारै कहुँ मारिये, कहुँ षाजै कहुँ षाइ ॥३०॥
कहुँ हिंदू कहुँ घटि तुरक, वाल त्रिध कहुं कैद।
कहुँ नारी कहुँ घटि पुरष, कहुँ रोगी कहुं वैद ॥३१॥
कहुं सूकर कहुँ स्वान गति, मोर म्रिघ उर काग।
कहुं जोगी कहुँ भोगिया, कहुँ रोवै कहुँ राग ॥३२॥
सुद वैस षत्री विप्र, कहुँ मछली कहुँ नीर।
कहुं निरभै निरवैरता, कहुं जाली कहुं कीर ॥३३॥
हैवर षर कुंजर गहर, कहुं काइर कहुं सूर।
कहुं राजा होइ रिण मैं मंड्या, दहुं दिसि वाजै तूर ॥३४॥

पाठभेद—पांचू–२-५। अवर्ण–१। वर्ण–१। अकह–५। अगह–५। तपसा–१। जक्यो–१। इमरत–१। जहैर–२। मिरग–१। मृघ–३-४। शुद्र–१। क्षित्री–१। नृभै–५। गहैर–२-४।

शब्दार्थ—कँवलदल=हृदयकमल, अष्टदल। पवन=प्राण। ए जन के जहर समान=ये आत्मचिन्तक साधक के लिए विषतुल्य है। म्रिघ=मृग। हैवर=घोड़ा।

सीत उसन विरषा कहुँ, जड़ चेतन बहु जाति।
कहुँ दिनकर अंबर अरक, कहुँ ससिहर कहुँ राति ॥३५॥
करामाति दे ले कहुँ, पैकंबर कहुँ पीर ॥
गुपत प्रगट विचरत फिरत, करि दीरघ सुलप सरीर ॥३६॥
अठ सिधि नव निधि सुभ असुभ, कहुँ कंचन कहुँ काच ॥
कहुँ धीरज हरि ध्यान मैं, कहुँ निकलप विट वाच ॥३७॥
अरथ गरथ आगम सुगम, सिध साधै गहि ठौड़ ॥
राम भजन सुष अगम है, ए सब वैलि दौड़ ॥३८॥
धर अंबर तारा तिमर, गिर सर समंद अथाह ॥
कहुँ दाता कहुँ षोसिलैं, कहुँ तोटा कहुँ लाह ॥३९॥
सवद सवद पैनें चलै, सवद सवद कूँ षाइ ॥
सवद सवद कूँ पोष दे, सवदै सवद समाइ ॥४०॥
दोइ सवद दीसै दुरसि, एक कहै सो कौंण ॥
अषिर सवद अवगति मिलै, सिषर दसूँ दिस गौंण ॥४१॥
वेद सवद का भेद है, ब्रह्म सवद सुष और ॥
ब्रह्म सवद पै वेद की, कहौ कहाँ लौं दौर ॥४२॥

पाठभेद—नौनिधि–४-५। धीरजि–२-४। ठौर–३-५। पोषिदे–२। दुरस–१-४। दिसि–१। कहांलूँ–१।

शब्दार्थ—अरक=सूर्य। ससिहर=चन्द्रमा। सुलप=छोटा, अल्प। अरथ=अर्थ। गरथ=ग्रन्थ, शास्त्र। आगम=पुराणेतिहास। वेलि=समीप की, उरली। तोटा=घाटा, नुकसान। लाह=लाभ, फायदा। पैने=तीखे।

४१ वी साखी—दोइ सवद दीसै दुरसि=द्वैतपरक शब्द दु:खदायी है। कोई साधक ज्ञानी ही एक ब्रह्म का निरूपण करता है।

ब्रह्म निश्चयात्मक अक्षर शब्द से अव्यक्त मे मिलता है। सिषर भेदजनक शब्द से, भ्रमित मन दसों दिशाओं मे विविध वासनाओं मे उलझता है।

४२ वी साखी—वेद त्रिगुणात्मक विषय का निरूपण करता है कर्म का निरूपण करता है अतः वह भेदपरक है। ब्रह्म के निरूपण करने वाले शब्द अभेदक हैं, उनका सुख अक्षय है।

वेद सवद की मूढि मन , जहां तहां चलि जाइ ॥
अगम सवद सूँ मन मिलै , तौ अटपट कछु न सुहाइ ॥४३॥
सपतपुरी भरमत फिरै , नौ ऊँषर भरमै और ॥
राधा रस गोपीचरित , इहै वेद की दौर ॥४४॥
अघट कहत है घट धरया , घट घट अघट न होय ॥
वेद कथा सठ समझि मन , इष्ट कहत हैं दोइ ॥४५॥
दुवध्या दिल तैं दूर करि , इहै जाणि जीव मांहि ॥
माया का गुण अनंत है , परमेसुर दोइ नांहि ॥४६॥
साध सुमरि सदगति भया , परापरै पति येक ॥
परमेसुर दोइ कहत है , मन अपणां की टेक ॥४७॥
मन सज्जन तोसूँ कहूँ , समझिर करौ विचार ॥
यहु कछु उदबुद देषिये , दोइ कहै करतार ॥४८॥
भगति हेति हरि वप धरया , भरम करण कूँ दूरि ॥
करता सवलक भरम धूँ , भरम रह्या भरपूरि ॥४९॥
इहै दैत दुनिया इहै , मारै पोसे पांहि ॥
समरथ की वाजी रची , घटै वधै कछु नाहिं ॥५०॥
वाजी सूँ वाजी रमै , करि करि नाना रूप ॥
कहुँ ग्रासै कहुँ ग्रासिये , सहर साह कहुँ भूप ॥५१॥
नहिं हिन्दू सूँ वैरता , नहिं मुसलमान सूँ प्रीति ॥
सब कछु करि सबतैं अगम , याह साहिब की रीति ॥५२॥

पाठभेद—स्यूँ–१ । भ्रम–३-४ । चयरित–२ । यहै–३ । दुविध्या–१ । एक–३-४-५ । तोस्यूँ=१ । भगत हेत–५ । सम्रथ–२-३-४ । कुछ–२-१ ।

शब्दार्थ—दुवध्या=संशय । दैत=द्वैत, मैं-तैं ।

४३ वी साखी—कर्मनिरूपक वेदवाक्यों से मूर्ख मन इधर-उधर हो सकता है। जब मन एकात्मक निरूपक शब्द निश्चय से आत्मनिष्ठ हो जाता है तब फिर उसको वासनामय अटपट विविध प्रवृत्तियाँ अच्छी नही लगती ।

सप्तपुरी—अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका ॥
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैते मोक्षदायिकाः ॥१॥

नौ ऊषर=नौ क्षेत्र–कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्रादि ।

तुरक कहै मका भला, जहां साहिब की ठौर ॥
हिंदु जाइ मथुरा बस्या, इहै दहुँ की दौर ॥५३॥
हिंदु थापै देहरा, मुसलमान मसीति ॥
पषा पषी जग पचत है, इहै दहूँ की रीति ॥५४॥
मुसलमान रोजा करै, हिंदू ग्यारसि आंन ॥
मैं बड़ मैं बड़ होत है, इहै बड़ा हैरांन ॥५५॥
हिंदू चाल्या तीरथां, तुरक पीर तहां जांहि ॥
दिल मांही दीदार था, गोता मारया नांहि ॥५६॥
जिबह किया बकरी भिसति, लिषी कतेबा मांहि ॥
तौ अपणां गला कटाइ करि, भिसति वसै क्यूँ नांहि ॥५७॥
अपणै करि कांटा चुभै, तब काढ्यां ही सुष होइ ॥
यूँ साहिब सूँ वैरान है, बात कहत हैं दोइ ॥५८॥
काजी का बेटा मरै, तब काजी कै उरि पीर ॥
यूँ परमेसुर सबका पिता, भला न मानैं वीर ॥५९॥
गाइ भिसति मुरगी भिसति, जिवह किया जीव और ॥
ए दोजिग मैं दुरत हैं, नहीं भिसति मैं ठौर ॥६०॥
मनिष मरै तब जालिये, जालिर न्हावण जांहि ॥
हिन्दू की करणी कहा, जे मारि मड़ा कूं षांहि ॥६१॥
भैंरू आगै बाकरा, भैंसा मारै जाइ ॥
×चाँवड़ चिन्ता डाकणी, मांही बैठी षाइ ॥६२॥

पाठभेद—जुग–१। दुहुं–१। क्यौं–१-३। यौं–१। भिस्ति–२-३-४-५। ज्यवह–२। जिवहि–१। ये–२। जग–१। मिनष–५। च्यंता–२।

शब्दार्थ—दहुँ=दोनों। जिवह=कुर्बानी, कत्ल। भिसति=स्वर्ग। कतेबां=कुरान। वैरान=विमुख। दोजिग=नरक। दुरत=गिरते। मड़ा=मृत, मुर्दा, मेडा। चाँवड=देवी।

× चाँवड–चाह विविध भोग की वासनारूपी चिन्ता वही डाकिणी है–आयु को खाती रहती है।

पषा पषी मन छाड़ि कै, निरपष होइ सुष देष ॥
निरपष सूँ निरषष मिलै, तौ पूरण ब्रह्म अलेष ॥६३॥
पषा पषी सब को मिलै, निरपष मिल्या न जाइ ॥
जौ कबहुं निरपष मिलै, तौ निरपष पष कूं षाइ ॥६४॥
नहिं उपजै नहिं षपेगा, नहिं आवै नहिं जाइ ॥
सब कुछ करि सब तैं अगम, जहाँ तहाँ रह्या समाइ ॥६५॥
मन सबका असवार है, पैंड़ा करे अनेक ॥
मन उपरि असवार है, विरला कोई एक ॥६६॥
जन हरीदास मैदान मैं, मन अपणां दौड़ाइ ॥
दिसूं दिसा सूं फेरि करि, अगम तहाँ लै लाइ ॥६७॥
जन हरीदास मन माछली, माया का जल मांहि ॥
जब बिछुरै तब ही मरै, ता तैं बिछुरै नांहि ॥६८॥
जो हूवा सो ना रहै, था सो रह्या समाइ ॥
जन हरीदास आछै मतै, तहाँ रहौ लै लाइ ॥६९॥

॥ इति निरपषमूल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ प्राणपसिद्धि परमात्मापूजा जोगग्रन्थ ॥

औधू जोगी जुग तैं न्यारा,
घटै न वढै सदा ज्यूं का त्यूं, रहै सकल तैं न्यारा ॥१॥
पहली हुवा न पीछे विनसै, जागि तहाँ मिलि रहिये ॥
जांमण मरण जुरा भै जमडंड, काहे कूं सिर सहिये ॥२॥

पाठभेद—रह्यौ-१ । दसौ-१ । विछुड़ै-५ । जग तै-३-५ । ज्यौ-१ । त्यौ-१ ।

शब्दार्थ—असवार=चालक । पैडा=विविध वासनामय मार्ग । दसूँ दिसा=भौतिक पदार्थों की ओर । बिछुरै=अलग हो । आछै मतै=मुक्ति की चाह, आत्म-जिज्ञासा । औधू=मन, साधक, शिष्य । जोगी=जगनिर्माता ।

तरवर संसार विवधि फल लागा, जीव तहाँ सब जीवै ॥
उपजै षपै वसै ताही मैं , मगन हुवा रस पीवै ॥३॥
कहिये कहा कौंण यह मानैं , यहु रस सब कूँ भावै ॥
एक आध सापणि का सुत ज्यूं , अदिष्टि होइ सुष पावै ॥४॥
यहु सुष तजै न वा सुष लागै, जागति जाइ न जाणी ॥
पहुंचै कौंण दूरि बेगमपुर , बीचि गहर गुण पांणी ॥५॥
सवद सुणैं सुणि सांच पिछाणैं, जोग मूल गहि जागै ॥
उलटा षेलि परमसुष पहुँचै , माया बांण न लागै ॥६॥
निरपष वसत निजरि मैं राषै , पष दोन्यौ पर षोवै ॥
सरम सिला अरि उर तै षेसै , अचला उदरि न सोवै ॥७॥
काया करम भरम करि कांनै , निज विश्रांम न लहिये ॥
आतम कै असथांनि न पहुँचै, तब लग परलै वहिये ॥८॥
पष की पासि पचत है सबको , सत पुरषां सुष दूजा ॥
वाहरि भेष दसा तन मिरतग, उरि आदर की पूजा ॥९॥

पाठभेद—काहि–१ । कुंण–१ । याहि–१ । येक–२ । अदिष्ट–२ । अदृष्ट–५ । इहु–२-४ । षेल–५ । वस्त–३-४ । निजर–५ । दोन्यू–४ । उदर–३-४ । विसरांम–३ । आत्म–२-५ । प्रलै–१ । पास–१ । पहुँचत–१ । मृतग–३-४ । मृतक–५ । उर–३-५ ।

शब्दार्थ—विवधि फल लागा=वासना, लोभ, मोह-मदादि । बेगमपुर=अमरापुर, मुक्तिस्थान । गहर=गम्भीर । गुण=त्रिगुणात्मक संसार । उलटा षेलि=आत्ममय मनोवृत्ति से । निरपष वसत=निर्गुण ब्रह्म । कांनै=एकओर । परलै=जन्ममृत्यु के प्रवाह मे । पासि=बन्धन । पचत=पचाती, खाती ।

४थी साखी—जैसे सर्पिणी के बच्चों मे से कोई उस परिधि या घेरे से निकल जाता है, वही बचता है । अन्यथा जो घेरे मे रहते है, उनको सर्पिणी खा जाती है । इसी तरह वासना के घेरे से जो प्राणी निकल जाते है वही स्वस्वरूप मे निष्ठ हो जीते है, अन्यथा विविध कर्मो के फल भोगने को जन्मते-मरते रहते हैं ।

७ वी साखी—सरम सिला अरि उर तै षेसै=सरम सिला लोकाचार रूपी भावनामय शत्रु को उर से दूर करे, तभी जन्ममृत्यु से बचे ।

९ वी साखी–वाहरि भेष दसा तन मिरतग=बाहर से देखने पर तो साधक मे भी कोई न कोई भेष दिखाई पड़ता है, पर अन्तर से मन को मृतक बना लिया—संकल्प-विकल्परहित कर लिया है ।

नर औतार जात है हरि विणि, स्रनी सेझ न सोई ॥
यांह बातां कोइ पार न पहुँता, साध कहै सब कोई ॥१०॥
यहु सुष छांड़ि और सुष आगै, बात अगम की कहिये ॥
है हरि अगम निगम तैं न्यारा, गुर गमि होइ तौ लहिये ॥११
जैसे कहै रहै भी तैसे, चित मैं भरम न आंणै ॥
पैंडा करै मरै नहिं मारचा, पंथ पुरातम जांणै ॥१२॥
पहुंचै विथा न विष वन पैसे, वप तजि वसत विचारै ॥
निरभै नाथ भजै भजि निरभै, बाजी सूँ षेल न हारै ॥१३॥
वसि दरबारि मरिसि मां हठ करि, अगम तहां मन दीजै ॥
राम विसारि सोइमां हरि भजि, अवधि घटै तन छीजै ॥१४॥
अंतरि और कहै कछु औरै, अरथ और ही बूझै ॥
सवद कहै ताहि राह न चालै, साच सवद मैं सूझै ॥१५॥
ना दुष गहै न सुष को सोधै, अगम अरथ उर धारै ॥
गहि गुर ग्यान मोह तजि मैं तैं, काम क्रोध रिप मारै ॥१६॥
सतगुर सबद आथि संग साथी, झूठै भरमि न लागै ॥
नौ षंड पुहुमि उलटि मन उनमनि, नांव निडर ले जागै ॥१७॥
निरभै वसत सकल विस्वव्यापी, घट तजि अघट विचारै ॥
जोगी मरै न जोरां जीवै, हीरा जनम न हारै ॥१८॥

पाठभेद—हरि विन–३-५। इहां–२। या–५। पहुंचै–३। इहु–२। चिति–१। पुरात्म–१-३ ५। वनि–२-४। वस्त–३-४। दरवार–१। मरसि–३-४। कूँ–२-३। पहौमि–२-४। विस–१-५। जन्म–३।

शब्दार्थ—आणै=लावे। पैंडा करे=साधना द्वारा मुक्ति मार्ग की पूर्ति करे। पुरातम=प्राचीन, वास्तविक। वप तज=देहाध्यास छोड़। मरिसि मां=मरेगा नहीं। सोधे=षोजे। बूझै=समझै। आथि=अन्त मे। नौषंड पुहुमि=नवद्वार वाली देह, नौ खंड वसुधा। जोरां=जबरन।

१३ वी साखी–पहुंचै विथा न विष वन पैसे=विष—विषयरूपी जहर से दूर रहे, वासना के जङ्गल में प्रवेश करे नहीं तो त्रिविध ताप की कोई पीड़ा नही पहुंचती।

आसण अचल मेर गिर उपरि , मन हसती गहि बांधा ॥
उलटा चल्या सवोड़ि पहूँता , पैंडे पार न लाधा ॥१९॥
सासि उसासि अगम अरि जीत्या, जागि परम गुर पाया ॥
अधर अरेष अथाह अषंडित , नांव निरंजन राया ॥२०॥
वसुधा जीति वास हम कीया , षबर षालिक की जांणी ॥
अरथ विचारि अंक भरि उलटा , सुष में सुरति समांणी ॥२१॥
जोगी जागि न सोवै निसदिन , ग्यान गुफा में आया ॥
भैंरूं कीलि कसर सब काढ़ी , सूता वीर जगाया ॥२२॥
ग्यान गूदड़ी सहज निरालंब , पिसण पवन गहि बांधी ॥
गंग जमन मधि आसण अवधू , चेलै सतगुरु लाधी ॥२३॥
अषिल अछेद निरूप निड़र घर , फेरि तहाँ मन लाया ॥
नलिनी का सूवा की नांई , आपैं आप बंधाया ॥२४॥
ना विष गहै न इंम्रत छाड़ै , पाप पुनि दोइ दूजा ॥
साध धरमि अंतर नहिं पाड़ै , तौ अवगति की पूजा ॥२५॥
आलस करै न आरंभि लागै , ता कूँ जमराइ न मारै ॥
अजरा जरै अरीझ रिझावे , जीतण कूँ षपै न हारै ॥२६॥

पाठभेद—आसन–१ । ऊपरि–३ । हस्ती–३-४ । षलक–१ । भैरो–५ । कील– १ । सहज्य–२ । मध्य–२ । औधू–३-४ । अमृत–१ । धरम–३-४ ।

शब्दार्थ—मेर गिरि=गगनमंडल । सवोड़ि=किनारे, अन्तिम लक्ष्य पर । सास-उसास=प्राणस्थैर्य द्वारा । वसुधा=देह, पृथ्वी, जगत् । षालिक=खलक का स्वामी ब्रह्म । समांणी=समाई । भैरूं=क्रोध । कीलि=वश मे कर । पिसण=कामादि चोर । पवन गहि=समाधिस्थ हो । दूजा=न्यारा, अलग । साध धरम=साधक के कर्त्तव्य मे । पाडै=पड़ने पर ।

२३ वी साखी—गंग जमन मधि आसण अवधू=इडा-पिगला के बीच सुषुम्ना मे प्राण का आसन करना, प्राणप्रवाह करना ।

२६ वी साखी—आलस करै न आरभि लागै=साधना मे आलस्य न करे, न ही सासारिक वासनाओ या प्रवृत्तियो मे उलझे । अजरा जरै अरीझ रिझावे=सूक्ष्म संस्कार की वासनाओ को जारै—पचा ले, शुद्ध चिन्तनस्वरूप परमतत्व जो किसी वस्तु से रीझता नही—प्रसन्न नही होता उसको विरहरूपी परम प्रेम से रिझावे ।

निरभै भया गया डर डरतां, साच सवद मैं पाया ॥
चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा, तहां कछु अलष लषाया ॥२७॥
चंद सूर समि सुरति सहज घरि, अरथि अलूधी आसा ॥
परम जोति परकास परमसुष, तहाँ हमारा बासा ॥२८॥
मन निहचल निरभै सुष लागा, रहै, सकल तैं न्यारा ॥
गंगा मूल अमूल अधर घर, तहाँ पड़ि रह्या विचारा ॥२६॥
जहाँ जहाँ वरण तहाँ बहु बंधण, काल कहर की छाया ॥
अवरण अगम सुगम जब समझ्या, तन ही मैं तत पाया ॥३०॥
सत रज तम गुण रजा रहत रस, तहाँ विलंब्या चीया ॥
चेला पाँच पसरताँ थाका, रस ही मैं रस पीया ॥३१॥
कहन सुनन सुष तैं सुष आगै, अगम सहै रहै लोई ॥
तहाँ वसै ताहि दाँण न लागै, पहुँचै विरला कोई ॥३२॥
या मन तै मन और अगम है, सकल वियापी सारा ॥
परम सुनि परवाण न कोई, निज विश्राम हमारा ॥३३॥
साथ संवाहि सहज घरि राषै, वंकनालि रस पीवै ॥
इला पिंगला सुषमनि समि करि, परचै लागा जीवै ॥३४॥
राम दयाल देव करणां मैं, परम तत पति पूरा ॥
अरस परस आनंद अभि अंतरि, बाजै अनहद तूरा ॥३५॥

पाठभेद—निहिचल-२-४। पड़-५। वहौ-२। अवर्ण-३। रहैत-४। सह-३-४। न्यज-२। विसराम ५। समाहि-१। प्यंगला-२। अभ्य-२।

शब्दार्थ—अरथि=आत्मतत्व। अलूधी=लगी रहे। आसा=चाह। वरण=वर्ण, जातिभेद। रजा=छूटा। रहत रस=नित्य सत्य आत्मतत्व। चीया=विशुद्ध मन। पाँच=पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ। पसरताँ=विषयो मे जाते। थाका=थका, विरत हुआ। सहै=सो, वह। दांण=दण्ड, कर। परवाण=नापतोल। साथ संवाहि=साथियो को संभाल। वंकनाल=मेरुदण्ड।

२७ वी साखी—चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा=नाथ—निश्चल मन ने चेला—चलने वाली इन्द्रियो को अन्तर्मुख कर हृदयगुहा में प्रवेश किया।

२६ वी साखी—गंगा मूल अमूल अधर घर=परम आनन्दरूपी गंगा की धारा का मूल वह अमूल परब्रह्म है।

परम जोति परकास परमसुष, आतम अंतरि लहिये ॥
करम कपाट भरम करि कांनै, अगम तहाँ मिल रहिये ॥३६॥
आसण छाँड़ि पराँ विणि उड़िया, अलष त्रिष घर पाया ॥
रस फल षाइ बहुड़ि मन रसिया, रस ही मांहि समाया ॥३७॥
उलटा पवन आकासि पहुँता, अकर तहाँ कर दिया ॥
परम उदार अपार अषंडित, वास तहाँ हम कीया ॥३८॥
आसा मेटि निरास निरंतरि, गुर गमि गैला लाधा ॥
×बादल विण बीज व्यौम मैं चमकै, घण वरिषा वन दाधा ॥३९॥
इंद्री मन प्राण अरथ कै आसणि, अगम तहाँ फिरि लागा ॥
धुनि मैं ध्यान परसि पद निरभै, भरम गया भै भागा ॥४०॥
मन निहचल निरधार निरंतरि, मछ मूँवा विण पांणी ॥
पष दोऊँ परला मैं डूबा, धुनि मैं धजा समांणी ॥४१॥
*आसण अनंत फिरै था फेर्या, गावै था सो गाया ॥
पारस परसि भया मन कंचन, निज विश्राम समाया ॥४२॥
जोग न भोग जुरा भै जीत्या, भूलि पड्या भै नांही ॥
शून्यमंडल मैं सकल वियापी, प्राण वसैं ता मांही ॥४३॥

पाठभेद—आतम-३-४। परां विन-३-५। उड्या-१। त्रिष-३-४। विरष-५। न्यरास-२। विणि-२। विरषा-३। यन्द्री-२। आसण-५। न्यरंतरि-२। विणि-२-३। दौड-१। न्यज-२। विस्राम-२। विसराम-५। सुनि-४-५।

शब्दार्थ—परां विणि=माया, ममतारूपी पङ्खो के बिना। अलष त्रिष=अगोचर समष्टि चेतनरूपी। आकासि=दशम द्वार। लाधा=मिला, पाया। मछ=मन मीन। विण पांणी=वासनारूपी जल बिना। पष=पक्ष, समर्थन। धुनि=अन्तर्नाद, अनहद-शब्द। धजा=वलवृत्ति। भूलि पड्या भै नाही=वह भूलकर भी संसार की भोगवासना मे नही आता, न ही जन्ममृत्यु के भय से त्रस्त होता है।

× व्योम-दशम द्वार मे निराधार वृत्ति से बिना बादल के ज्ञानज्योतिरूपी बिजली चमकने लगी। परमानन्द प्राप्तिरूप वर्षा से वासनारूपी वन का विनाश हो गया।

* मन के विषयप्रवृत्तिरूपी अनन्त आसन थे, जिनमें वह भ्रमित था, उसको निश्चल कर अन्तर्मुख किया।

अतीत गुरु चेला"[१] कहागया मिलता है वहा उन्ही के नाम से प्रकाशित वानियो मे से एक 'सवदी' की पक्ति "सोई निरजन डाल न मूल, सर्व व्यापीक सुषम न अस्थूल"[२] रूप मे भी पायी जाती है और 'निरजन' शब्द के इस प्रकार के अर्थ सूचित करने वाले अन्य अनेक स्थल भी मिलते है जिनमे से कुछ मे "आऊं नही जाऊं निरजननाथ की दुहाई"[३] के जैसे भाव तक प्रकट किये गये दीख पडते है। नाथपंथी चौरंगीनाथ ने भी अपनी एक सबदी मे "सेइवा निरंजन निराकारं"[४] और पृथ्वीनाथ ने (जिन्हे कबीर का परवर्ती माना जाता है) तो, निरजन के नाम पर, एक श्री निरंजन निरवाण ग्रन्थ[५] नामकी पृथक् रचना ही प्रस्तुत की है जो कदाचित, उनके किसी 'प्रिथीनाथ छत्रधार मत महापुराण' नामक ग्रन्थ का एक अंश है और जिसमे नाथपंथ की साधना एव सिद्धात की अनेक बातो का समावेश किया गया है।

ऐसा लगता है कि, नाथपंथियों का प्रचार अधिक बढ जाने की दशामे, 'निरंजन' शब्द को विशेष लोकप्रियता मिल गई और इसका प्रयोग ऐसे लोगो द्वारा भी किया जाने लगा जिनकी साधना उनकी जैसी ज्ञानपरक वा योगपरक नही कही जा सकती थी, प्रत्युत जो भक्ति-साधना को महत्व देते थे तथा जिनमे से कुछ लोग कभी-कभी सगुणोपासना तक को अपना लिया करते थे। हम देखते है कि उनदिनो महाराष्ट्र के नामदेव जैसे 'वारकटी' सत अपने अपने हिन्दी पदो मे "सेवीले गोपाल राइ अकुल निरंजन"[६] जैसा कहने लगते है और स्वामी रामानन्द जैसे 'रामावत वैष्णव' अपनी 'रामरक्षा' के अतर्गत "पिडप्राण की रक्षा श्रीनाथ निरजन करे"[७] जैसा भी कह डालते है। इसके सिवाय यहा पर यह भी उल्लेखनीय जान पडता है कि उस समय से इस शब्द का प्रयोग केवल परत्मामा के लिए, अथवा विशेषकर उसके ही प्रसंग मे, किया जाने लगता है और अब किसी साधक की मन स्थिति अथवा दशा आदि के लिए, यह उतना प्रयुक्त नही होता। उदाहरण के लिए संत कबीर साहब इसका जितना प्रयोग 'अकल निरजन', 'आदि निरजन', अलख निरजन', निरजनराइ' अथवा 'राम-निर्रजन' जैसे रूपो मे करते है और इसे 'ब्रह्म', 'सति' एवं 'नाम' का पर्याय समझते जान पडते है उतना अन्य किसी भी प्रकार से नही करते। गुरु नानकदेव इस सम्बन्व मे, 'आदि निरंजन', 'नामनिरंजन', 'सतिनिरंजन', 'सबद निरंजन', 'नाथनिरंजन', 'ततुनिरंजन' और 'अकुलनिरजन' जैसे प्रयोग करते दीख पड़ते है

---

१. 'गोरख वानी' (सम्मेलन, प्रयाग), पृ० २२२। २. वही पृ० ३९। ३. वही, पृ० ११६। ४. 'नाथसिद्धो की वनिया' (काशीनागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) पृ० ४८। ५. वही, पृ० ८५-६। ६. हिन्दी को मराठी सन्तो की देन (ले० आचार्य विनयमोहन वर्मा 'विराट् राष्ट्रभाषा परिषद् सन् १९५७ ई० पटना) पृ० २६२। ७. 'रामानद की हिन्दी रचनाएं' (सं० स्व० डा० वडथ्वाल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, स० २०१२) पृ० ३।

संकट नहिं सरम करम नहि अकरम, धरे अधर घर पाया ॥
ता सुषि लागि सहज घर मूंनि , बोलै नहीं बुलाया ॥४४॥
ग्यांन न ध्यांन जोग नहिं भोगी , नहिं तहाँ गरू न चेला ॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ , अरिचित नाथ अकेला ॥४५॥
पूरण ब्रह्म अलष हरि अरिचित , रूप अरूप अछाया ॥
षीर नीर ज्यूँ सकल निरंतरि , ना तस काल न काया ॥४६॥
राग दोष रस मैं तैं नांही , जीव जनम नहिं जोगी ॥
अंग न भंग निरंग निरषर , ना तहाँ वैद न रोगी ॥४७॥
अरत अथाह उजागर अर रिपु , सतगुरि साच बताया ॥
मनसा चलै न यहु मन छाड़ै , प्रांणनाथ पति पाया ॥४८॥
वप नहिं विथा वरण नहिं अवरण, ग्यांन ध्यांन नहिं दूजा ॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी , तहाँ हमारी पूजा ॥४९॥
ग्यांन विचार वमेक अगम गति , वार पार नहिं लहिये ॥
हरि दरिया सुष देषि दसौं दिसि , तहाँ ठग्या सा रहिये ॥५०॥
जलि थलि जहाँ तहाँ करणा मैं , रहै सकल तैं न्यारा ॥
जन हरीदास मन ता सुषि लागा , गुरगमि अगम विचारा ॥५१॥
सब देवां सिरि देव दयानिधि , छिपै न काहू छाया ॥
जन हरीदास मन ता सुषि लागा , सतगुरि साच बताया ॥५२॥

॥ इति प्राणप्रसिद्धि परमात्मापूजा जोगग्रन्थ ॥

पाठभेद—अक्रम–४। मौनी–३-५। ज्यौ–१। त्यौ–१। अरिच्यत–२। अरचित–३। जन्म–४। न्यरंग–२। अरि–३-५। इहु–४। विवेक–१। दसूँ–२-४। गुरुगमि–१। सतगुरु–१। सतगुर–५।

शब्दार्थ—सरम=सुख। मूंनि=मगन, दत्तचित्त। अरचित=अनादि। ना तस=नहीं उसको। अर रिपु=काम-क्रोधादि शत्रुओं का शत्रु। वप=शरीर। ठग्या सा=लुभाया हुआ, फिदा। छाया=आवरण।

॥ अथ जोगसमाधि जोगग्रन्थ ॥

अवधू जोगी जुग तैं न्यारा,
पद निरवांण निरंतरि बैठा, चिंता का करि चारा ॥१॥
सबद विचारि सहज घरि षेलै, नांव निरंतरि जागै ॥
×मनसा डाकणि मारती मारै, तौ नगरी चोर न लागै ॥२॥
इन्द्री कसै धसै मन दह दिसि, मन कूँ अटकि न राषै ॥
तन पाटण तहाँ मन मैवासी, नांनां विधि रस चाषै ॥३॥
चिता कूँ चिंता फिरि ग्रासै, अगनि अगनि कूँ सोषै ॥
जल विणि न्हाइ निरंतरि षेलै, अब मन पड़ै न धोषै ॥४॥
तन जीतै ताकूँ तत दरसै, तत रहै गुणां तै जूवा ॥
जाणेगा कोई जोगेसुर, जा घट परचा हूवा ॥५॥
अधर अगम कोई विरला पहुँचै, सतगुरि साच बताया ॥
जा सुष कूँ हम न्यारा कहता, सो सुष नैड़ा पाया ॥६॥
दांणी मारि दांण मैं दीया, अपणा मूल न हारं ॥
पूँजी रहै विणज त्यूँ विणजूँ, पैंड़ा अगम अपारं ॥७॥
ना ग्रिह करूँ न वन वसि भरमूँ, घर मांही घर पाया ॥
सो घर सकल घरां तै न्यारा, ता घरि प्रांण समाया ॥८॥

पाठभेद—औधू–१। नृवाण–२-४। ड़ाकण–५। दिहि–४। विन–३-४। तब–१। द्रसै–१। त्यौ–१। विणजौ–५। ग्रह–२-५। करौ न–२। भ्रमूं–५।

शब्दार्थ—निरवांण=गतिरहित, मुक्त। चिन्ता=वासना। कसै=निग्रह करे। धसै=प्रवेश करे। अटकि न=निरोध कर। पाटण=नगर। मैवासी=गढ़पति, अधिपति। चिता=भोगवासना। चिंता=चिन्तन, आत्मचिंतन। अगनि=संतापाग्नि। अगनि=ज्ञानाग्नि। जल विण न्हाइ=भोगवासनामय जल को त्याग आत्मानन्द रस मे स्नान करे। तत=आत्मतत्व। जूवा=जुदा। नैडा=पास, समीप। दाणो=दण्ड दिलाने वाला, चञ्चल मन। दाण=कर। पूंजी=नामचिन्तनरूपी सम्पत्ति। पैंडा=मार्ग, राह।

× मनसा—चाह या वासनारूपी डाकिनी सब प्राणियो को भोग भोगने में प्रवृत्त कर मृत्युबन्धन मे डालती है। जो साधक वासनारूपी डाकिनी से छुटकारा पा लेता है, उस साधक के मनुष्य-जीवनरूपी नगरी मे काम, क्रोध, लोभादि चोर नही लग सकते।

प्रगटी सुवधि कुवधि कण षूटा , भरम गया भै हारी ॥
अंजन मांहि निरंजन दरसै , अण भै कथा विचारी ॥९॥

नीच करम न्यारा हम न्यारा , भया अचंभा भारी ॥
पैंडे चलूँ न काँटा लागै , उलटीं पंथ सँवारी ॥१०॥

गुणगत गया मिल्या मोहि निरगुण, निरगुण सुष वार न पारा ॥
सहज समाधि पवन गहि पांचू , हम दहूँ पषा तैं न्यारा ॥११॥

मैं मेरा मन अकलि उजालै , अगम तहां लै लाया ॥
उलटा चल्या अनल का सुत ज्यूँ , सहजै सूँनि समाया ॥१२॥

पैंडे चलेस पारि पहुँचै , वेसि रहै सो हारै ॥
अरथ कियां अनरथ सब छूटै , ऐसा अरथ विचारै ॥१३॥

सील संतोष दया दरबारी , षिमा हमारै दाई ॥
ग्यांन विचार वमेक सिंघासण , सुष मैं सुरति समाई ॥१४॥

×निरभै डंड निरास अधारी , कंथा अजर अपारं ॥
भिष्या अगम निरंतरि डीवी , आसण सूंनि हमारं ॥१५॥

जोग विचारि जुरा हम जीती , अगम वसत सो पाई ॥
निरभै भया निरंतरि मेला , उलटी ताली लाई ॥१६॥

पूरब छाड़ि पछिम नहि षेलौं , कजली वन बिष वारी ॥
*देस कांवरू कर गहि तौलौं , सींगी सूंनि हमारी ॥१७॥

पाठभेद—चलौं न–१-५ । ले–४-५ । वैठि–२-३ । छिमा–१ । जोगि–१ । लायी–१ ।

शब्दार्थ—सुवधि=तात्विक मति । कुवधि=कुमति, भोगवासनामय मति । अंजन=माया, माया का कार्य । पैंडे चलूँ=आत्मचिन्तन के मार्ग चलूँ । दहूँ=दोनो । अकलि उजालै=कलनरहित ब्रह्मप्रकाश मे । अनल=अनल पक्षी । वेसि रहे=बैठ रहे, साधना को त्याग दे । कंथा=ब्रह्मरूपी गूदड़ी । डीवी=पात्र । पूरब=ज्ञानसूर्य । पछिम=अज्ञान-तम । कजली वन=भोगो का जङ्गल ।

× निर्भयतारूपी डंड डंडा–आशाहीन भावना का आशा ।

* वासनाजन्य भोगमय संसारसुख को ज्ञान-विचाररूपी तुला मे तोलूँ ।

आसा का ईंधण हम कींया , चिंता अगनि बुझांणी ।।
×नदी निवासै वहती थाकी , चल्या अपूठा पांणी ।।१८।।
※काम हमारे कागद बांचै , आषर अगम विचारै ।।
यहु मत गहैस पारि पहूंचै , बैसि रहै सोई हारै ।।१९।।
मंझ देस तहाँ मंढी हमारी , तन बाघंबर कीया ।।
धूंई ध्यान सहज की मुद्रा , अगम पियाला पीया ।।२०।।
मेरडंड का मारग लाधा , उलटा पवन चढ़ाया ।।
दसवैं द्वारि निरंजन जोगी , हम गुरगम तैं पाया ।।२१।।
तेरह तीन प्रांण घर चौथे , परम सूनि मन पूरा ।।
+सोषी भया पिसण पिसण भया सोषी, गढ़ पड़ि सकै न चूरा ।।२२।।
दषिण देस दूरि हम छाड्या , उतर हमारा वासा ।।
निरभै भया निरंतरि मेला , अणभैपद अभ्यासा ।।२३।।
जोगी सदा सहजि घर षेलै , =वसुधा गहि वसत विचारी ।।
जा गिरवर तैं गंगा निकसै , ता गिरि गुफा हमारी ।।२४।।

पाठभेद—च्यन्ता-२ । अगन्य-२ । इहु-२ । पार-१-५ । तेरै-३ । दक्षण-३-४-५ ।

शब्दार्थ—आसा=आगन्तुक भोग । चिन्ता=वासनारूपी चिन्ता । यहु मत=आत्मविचार । बैसि रहे=सासारिक भावो मे लिप्त रहे । मंझ देस=हृदयमन्दिर । धूंई ध्यान=ध्यानरूपी धूणी । तेरह=अष्ट प्रकृति पंचभूत । तीन=सत, रज तम—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति । चौथे=तुर्यावस्था मे । पिसण=लुटेरे, शत्रु । दषिण देस=संसार । उतर=अध्यात्म देश । गिरवर=दशम द्वार, सर्वोपरि ब्रह्म । गंगा=आनन्दरूप गङ्गा ।

× आशा-तृष्णा की नदी जो संसार के भोगो की ओर बही जा रही थी, बंद हो गई तथा उलट कर आत्मस्वरूप की ओर बहने लग गई ।

※ काम मोक्षरूपी भावना हमारे कागद वाचै—वेद, उपनिषदादि का स्वाध्याय करे ।

+ विषयसुख जो पहिले सोपी—सुखदायी मित्र लगते थे, वे अब पिसण—शत्रु हो गए है । जो विवेक विचारादि पहिले शत्रु से लगते थे, वे अब अति मित्र से लगने लगे हैं ।

= वसुधा—बुद्धि को गहि स्थिर कर वसत—सत्य ज्ञानमय वस्तु का विचार किया ।

इला पिंगुला सुषमनि मेला, त्रिवेणी तटि न्हाया ॥
जोग समाधि प्राण ले सूता, जागै नहीं जगाया ॥२५॥

×अरथ विचारि अगनि मैं पैठा, नऊँ नाथ संगि लीया ॥
*आइस बलै अंगीठी तापै, ऊपरि आसण कीया ॥२६॥

+सात समंद मोती फिरि सोष्या, मछ मूवा विण पांणी ॥
गोपी तजि कान्ह अगम कूँ चाल्या, अनभै कथा पिछांणी ॥२७॥

मरकट पै वाजीगर नाचै, सब्द निरंतरि बाधा ॥
पूरा बासण कदे न झलकै, जौ झलकै तौ आधा ॥२८॥

तीतरि वाज पगां तलि रौंध्या, छाली विग्रह चारै ॥
गूँगा अरथ अगम का बूझै, बहरा अरथ विचारै ॥२९॥

पाठभेद—पिंगला-१ । सुषमन-१-५ । अगम-३ । आय-५ । उपरि-१-२ ।

शब्दार्थ—अगनि=ब्रह्माग्नि । नऊँ नाथ=पांच ज्ञानेन्द्रियां, चारों अन्तःकरण ।

× अरथ विचारि—तात्विक विषय विचार ज्ञानज्योति में प्रवेश किया । नऊँ-नाथ—चारों अन्तःकरण व पांचों ज्ञानेन्द्रियों को साथ लिया ।

* आइस—मन जोगी के विकार जल रहे हैं—वह ज्ञानज्योति से तप रहा है, निखर रहा है ।

+ विवेकरूपी मोती ने षड्रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष तथा अहङ्कार रूपी सातों समुद्रों का शोषण कर लिया । कुवृत्ति रूपी मछलियां मर गईं । विविध वृत्तिरूपी गोपियो को विशुद्ध मनरूपी कान्ह अगम स्वस्वरूप की ओर ले चला । तब जो अध्यात्मज्ञान कथारूप मे सुनते थे, उसको स्वकीय अनुभव में जान लिया ।

२८ वीं साखी—निरन्तर अनहद शब्द मे बँधा हुआ वृत्ति वाला जीव वाजीगर मन रूपी मरकट को वश में कर नाच रहा है—प्रसन्न हो रहा है ।

२९ वीं साखी—संतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को पैरों तले रौद दिया । अकिंचनतारूपी बकरी ने अहङ्काररूपी व्याघ्र को चर लिया—खा लिया ।

सांसारिक पदार्थो से उदासीन मौनी—मनरूपी गूँगा अगम इन्द्रियातीत आत्म-पदार्थ के अर्थ को बूझै—जाने । लौकिक-वार्त्ता सुनने से विरत बहरा मन ही आत्म-तत्व के अर्थ को विचारता है ।

पिंगुला ऊठि पगां विण चाल्या , आंधै लोचन लाधा ॥
तरवर पात फूल फल डाला , बीज समूला षाधा ॥३०॥
धूजै धणक उलटि सर लागा , लोग तमासै आया ॥
मुरगी वपरी जिबैह मुलांना , काजी न्यौंति बुलाया ॥३१॥
चींटी कै मुष मेर समानां , मूसै गिली मंजारी ॥
दादर सरप समंद मैं डारचा , लौंकी परि असवारी ॥३२॥
मकड़ी का सिर माषी तोड्या , जंबक स्यंघ जगाया ॥
कुंजरिं मग्र दंत तव चूरया , हिरणी चीता षाया ॥३३॥
रवि ससि पकड़ि दाढ़ तलि राष्या, नकटी नाथि नचाई ॥
सुसा हमारै षेती राषै , वाड़ी मिरघ न षाई ॥३४॥

पाठभेद—विणि–२-४ । धनक–३-५ । वपडी–१ । ज्यवह–२ । न्यू ति–४-५ । समांणां–१ । सिंघ–३-४ । हिरनी–१ । मृघन–४-५ ।

३० वी साखी—चञ्चलता–कल्पनारूपी पैरो से हीन पगुल मन –ऊठि–सजग हो आत्माभिमुख हो गया । अज्ञान और अविवेक नेत्रों से विहीन अन्धे मन ने विवेक विचार रूपी नेत्र प्राप्त किये । निर्भ्रान्ति सत्य ज्ञानरूपी बीज ने अज्ञानरूपी वृक्ष के वासनाजन्य प्रवृत्ति, विषयभोग, कामक्रोधादि पत्ते फल-फूल डाल सहित खा लिये ।

३१ वी साखी—गुरु–उपदेश रूपी वाण उलट अन्तर मे लगा तो मनरूपी धनुष धूजने लगा । शील, सन्तोष, त्याग, वैराग्यादि गुण रूपी लोग पलटे हुए मन के चरित्ररूपी तमाशे को देखने आए । निश्चल बुद्धि रूपी मुर्गी ने मलिन मुल्लारूपी मन को जिबह किया–कत्ल किया, आत्मतत्व जीवरूपी काजी को निमन्त्रित कर बुलाया ।

३२ वी साखी—अन्तर्मुखवृत्तिरूपी चीटी के मुख मे अहङ्काररूपी मेरु समाया–विलीन हो गया । आत्मविचाररूपी मूसे ने वासनारूपी बिल्ली को निगल लिया । लयरूप वृत्ति पर आधारित नाम चिन्तनरूपी दादुर–मेढक ने संशयरूपी सर्प को ज्ञान-समुद्र मे डाल दिया ।

३३ वी साखी—परा भक्तिरूपी मक्खी ने मायारूपी मकडी का सिर तोड दिया । परम प्रेममय जम्बुक ने जीवात्मारूपी सिंह को जगाया–सचेष्ट किया । वैराग्य-रूपी मस्त हाथी ने मोहरूपी मगर को चूर-चूर कर दिया । शीलमय वृत्तिरूपी हिरणी ने कामरूपी चीते को खा लिया ।

३४ वी साखी—रवि-शशि–प्राण तथा मन को साधना द्वारा वशीभूत कर माया रूपी नकटी के ज्ञान की नाथ डाल नचाई । षट् साधना रूपी खरगोश ने आध्यात्मिक अभ्यासरूपी खेती की रखवाली की । जिससे विषय विकाररूपी मृग उस बाड़ी को किसी तरह का नुकसान न पहुंचा सके ।

मांनि अमांनि अगनि दोई दीरघ, सुर नर असुर संघारचा ॥
बो मारग जीतण कूँ षपता , सो पैंडा हम हारचा ॥३५॥

अकल अभेद अछेद अषंडित, निरामूल निरधारं ॥
इंहा न उहाँ निकटि नहिं न्यारा, अगम वार नहिं पारं ॥३६॥

सोई निरभै निज नाथ सदा संगि मेरे, जुरा मरण भै भागा ॥
अनहद सबद गिगन मैं गरजै , मूलकँवलि मन लागा ॥३७॥

उपजि न विनसै जुरा न व्यापै , ना सो मरै न मारै ॥
षिजै न षेलै जागि न सोवै , सोई निरगुण इष्ट हमारे ॥३८॥

ना तस मोह दोह पण नांही , ना तस काल न काया ॥
ना सो पुरष नारि भी नांही , ना तस धूप न छाया ॥३९॥

जोग न भोग न्यकटि नहिं न्यारा, उदै असत दोइ नांहीं ॥
मैं तैं तजे भजेगा सोई , व्याप रह्या सब मांही ॥४०॥

घणा कहूँ तो कहणि न आवे, थोड़ा कहूँ तो षारा ॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ, रहै सकल तैं न्यारा ॥४१॥

जन हरिदास पति परस परमसुष, झड्या सहज में ताला ॥
जोग समाधि जुरा नहिं व्यापै, जा घटि अगम उजाला ॥४२॥

जुरा न व्यापै जोगियां , चिंता काल न षाई ॥
करम भरम धुंई किया , सुष मैं रह्या समाई ॥४३॥

सुष अगाध सब तैं अगम , पहुंचै विरला कोई ॥
जन हरीदास तहाँ षेलिये , तब ही आनंद होई ॥४४॥

पाठभेद—सिघारचा–३-५ । वहां–२-५ । न्यकटि–२ । उपज्यन–२ । तस्य–१ । निकट–३-४ । च्यंता–२ । षाय–१-४ ।

शब्दार्थ—गिगन=शून्यमण्डल, दशम द्वार । मूलकँवल=हृदयकमल । षिजै न= क्रोध न करे । ना तस=नहीं । मैं=मेरा । तैं=तेरा । झड्या=पड़ा, गिरा । धूंई किया= जलाया, भस्म किया ।

जोग भेष सतगुरु दिया, आतम कूँ उपदेस ॥
जन हरीदास मन तहाँ वसे, जहाँ संतन का परवेस ॥४५॥
जोग समाधि अगाध व्रत, पारब्रह्म सूँ प्रीति ॥
जन हरीदास तहाँ षेलिये, तन मन त्रिसना जीति ॥४६॥

॥ इति जोगसमाधि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ जोगध्यान जोगग्रन्थ ॥

दूर देस तहाँ सौदा मेरा, सतगुरि आय जगाया ॥
पैंडे चलूँ न काँटा लागै, उलटी राह बताया ॥१॥
×मन घर प्रांण प्रांण घर मनसा, बंकनालि में बाई ॥
अगम अर्थ सोई कथा कहत हूँ, सतगुरि वसत बताई ॥२॥
तन पाटण तहाँ वास हमारा, नौ दरबार जड़ाया ॥
सूँनिमंडल में जोति चमकै, उलटा पवन चढ़ाया ॥३॥
*आवध विन संग्राम करम विण आरंभ, त्रिगुण सषी सुत षाया ॥
=जटा पंषि पाणी में पैठी, मीन सूनि घर पाया ॥४॥

पाठभेद—चलो न–१ । सून्य–२ ।

शब्दार्थ—दूरदेश=ब्रह्मलोक । पैंडे चलूँ न=विषय-वासना के मार्ग चलूँ नही । काँटा=चुभन, विषय अप्राप्तिजन्य संताप । उलटी राह=अन्तर्मुखवृत्ति । नौ दरवार=नौ दरवाजे । आवध=शस्त्र । त्रिगुण सषी=सद्‌बुद्धि । सुत=ज्ञानरूपी पुत्र ।

× मन का घर–हृदय वहाँ प्राण को ले जाय, प्राण का घर नाभि–वहाँ मनसा-वृत्ति को ले जावे । वंकनाल मे प्राण का वहन करना इस अभ्यास से अगम पदार्थ मिलता है ।

* आध्यात्मिक संग्राम बिना शस्त्र का है, आत्म-परिचय का साधन लौकिक-कर्म से निवृत्त वृत्ति से है । निश्चल वृत्तिरूपी आत्मसखी के ज्ञानरूपी पुत्र ने त्रिगुणात्मक धर्मो के भावो को खाया–समाप्त किया ।

= विवेकमय-बुद्धिरूपी मयूरी ने आत्मप्रेम रूपी पानी मे प्रवेश किया । सुरति वृत्तिरूपी मीन ने सूनि घर–दशम द्वार मे स्थान पाया ।

+राजा भयो रैत रैत भई राजा, ऊपर आसण कीया ॥
=रुति पलथ्यां रस फीका लागै, येकै रस वस जीया ॥५॥
मीठा जहाँ तहाँ मन लागा, फल करि गहूँ न षारा ॥
घरि घरि चैन राज रस येकै, निरभै नगर हमारा ॥६॥
निरगुण निज भेद सकल तैं न्यारा, सकल निरंतर दरसै ॥
घटि घटि अघट करम पट लागा, विरला कोई परसै ॥७॥
ऊँनिण आइ आकास गिरास्या, विणि विरषा रुति आई ॥
ता रुति साष सहज में निपजै, षेती विष वावन लागै काँई ॥८॥
कांटी झड़ै प्राण कण निपजै, विणि परचै कण छीजै ॥
डूबै उदिकन अगनिन ग्रासै, ऐसा आरंभ कीजै ॥९॥

पाठभेद—एकै-४-५। फल कर-३-५। ऊंन्यण-४। ऊंनण-५। ग्रास्या-१। गराग्या-३। विण-२। विण-४। प्रचै-१। बूडै-१।

+ अज्ञानावस्था मे मन राजा था, वह ज्ञानावस्था मे प्रजा बन गया। बुद्धि, विवेक, विचारादि जो मन के राज्य मे प्रजावत् थे, वे अब राजा हो गए। यानी मन, इन्द्रियों के सचालक हो गए। ऊपर—शून्यमंडल दशम द्वार मे निवास किया।

= रुति पलट्या—संसार में लगी वृत्ति बदली-आत्मपरक हुई। ऋतु-परिवर्त्तन हुआ तब संसारी पदार्थों का रस फीका लगने लगा। येकै रस वस-आत्मानन्द रूपी एक ही रस मे लगकर जीया-जन्ममृत्यु से छूट कर अमर हुआ।

७ वी साखी—निर्गुण तत्व अपने भेदरहित सबसे-जड प्रपंच से न्यारा है पर सब मे सर्वदा दिखाई देता है। घट घट मे-सब प्राणियो मे वही अघट चेतन तत्व व्याप्त है। कर्मजन्य अज्ञान का पर्दा आडा आया हुआ है अतः जो कोई विरला साधक कर्म-बन्धनो से मुक्त होता है वही उस तत्व को परसता है-प्राप्त करता है।

८ वी साखी—विरहरूपी ऊंनिण-अग्नि ने आकर हृदयाकाश को व्याप्त किया, उत्कट आत्मप्रेम रूपी वर्षा बिना ऋतु के आई। उस स्थिति मे सहज ही आध्यात्मिक खेती की उत्पत्ति हुई, उस खेती को अब विषय-वासना रूपी झोला कभी लगने का नही।

९ वी साखी—हे साधक! साधना का ऐसा आरम्भ करिए, जिससे कर्मरूपी कांटी झड़ जाय, प्राणसाधना से आत्मपरिचय रूप कण की उत्पत्ति हो। यदि आत्म-तत्व की प्राप्ति नही हुई तो जीवनरूपी कण बिना लक्ष्य प्राप्ति के नष्ट हो जायगा। इसलिए ऐसे साधन मे लगो, जिससे न तो भवसागर मे डूबो, न ही कालाग्नि से ग्रसित हो।

गिरवर मैं धात धात मैं गिरवर , गिरवर धात न पाया ।।
भेष भरोसे मति कोई भूलै , जब लग यहु मत नाया ।।१०।।
चौमासे दोइ चात्रिग ग्रास्या , निरपषि निजरि समाया ।।
सात समद मोती मैं वास्या , मरजीवा ले आया ।।११।।
नवघण घटा वरसती थाकी , भार अठारह पाई ।।
चिंता षिवणि गाजै गत आपौ , वसुधा गिगन समाई ।।१२।।
गागरिका पांणी कूवा पीवै , भया अचंभा भारी ।।
उलटी नेज अगम सूँ लागी , पड़ि फूटी पणिहारी ।।१३।।

पाठभेद—इहु-२ । चात्रग-२ । निरपष-३-४ । नौघण-१ । स्यूँ-१ ।

१० वी साखी—गिरवर-सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ चेतनतत्व के धातु त्रिगुणात्मक, पंचभूतात्मक, स्थूल तत्व आश्रित है । धातु स्थूल तत्वो में चेतन व्याप्त है, पर चेतन-तत्व स्थूल देहादि का नाशक नही है, उनका नाश कर्मानुबन्धिकालजन्य है । केवल भेष से काल की चपेट टल जाय ऐसी भूल कोई न करे । काल जब ही जीता जायगा, जब साधना मे आत्मज्ञान की प्राप्ति की जाय ।

११ वी साखी—एकाग्र आत्मरत वृत्तिरूपी चातुर्मास दशा ने अज्ञान तथा मोहरूपी दो चात्रग पक्षियों को ग्रसित किया, जिससे द्वैत बुद्धि का निवारण हो। निरपष—धर्म, जाति, कुलादि का पक्ष निवृत्त हो व्यापक समत्व दृष्टि प्राप्त हुई । विशुद्ध मन रूपी मोती मे साधना की सत्य भूमिका सिद्ध हुई । इस तरह-मरजीवा-जीवन्मृतक साधक जीवन्मुक्त अवस्था को ले आया-प्राप्त हुआ ।

१२ वी साखी—नवघण—पाँचों इन्द्रियाँ व चारो अन्त.करणरूपी बादलों की घटायें बरस-बरस थक गईं । भार अठारह—आठ महत् दस लघु सिद्धियाँ पुष्ट हुईं । चिंता षिवणि—वासना रूपी बिजली की गरज व प्रधानता समाप्त हुई । गत आपौ-अहंकार नष्ट हुआ । वसुधा वृत्ति गगन-दशम द्वार मे स्थिर हुई अर्थात् समाधिदशा प्राप्त हुई ।

१३ वी साखी—आत्मतत्वरूपी कूआ देहध्यासरूपी गागर का पानी पीने लगा, जिससे अति आश्चर्य हुआ, उलटी नेज-वृत्तिरूपी नेज-डोरी अन्तर्मुख आत्मा-भिमुख हुई । अगम सूँ-ब्रह्म से लगी, ब्रह्मनिष्ठ हुई । वासनामय पणिहारी पड़ी-खत्म हुई, तब भोगरूपी गगरी भी फूट गई ।

श्रौर स्वा० हरिदासजी को भी हम अधिकतर 'नाथनिरंजन', 'अलखनिरंजन', 'निरंजनदेव', 'निरंजनराम' 'निरंजनराई', 'नाव निरंजन' और 'निरंजन निराकार' जैसी शब्दावली को ही काम मे लाते हुए पाते है। "दसवै द्वरि निरंजन जोगी, हम गुरगम तैं पाया" मे जहां पर इन्होंने 'निरंजनजोगी' का प्रयोग किया है वहाँ पर भी हमे किसी अन्य प्रकार का अनुमान करने की आवश्यकता नही जान पडती। यह अवश्य है कि स्वा० दादूदयाल की रचनाओं के अन्तर्गत हमें 'निरंजन थान', 'निरजन वास', 'निरंजन हाट', 'निकटि निरंजन' अथवा "अंजन छाडे रहे निरंजन' और 'निरंजन जोगी जाणि ले चेला' जैसे प्रयोग भी मिलते हैं किन्तु इससे हमारे कथन मे उतना अंतर आता नही प्रतीत होता। संत दादूजी की 'बानी' मे हमे 'दादू नमो नमो निरंजनं नमस्कार गुरुदेवत' जैसा 'मंगलाचरण' तथा उपयुक्त विविध प्रयोगों के उदाहरण भी प्रचुरता से मिलते है और इसके सिवाय ये स्वयं हमारे विवेच्यकाल से कुछ परवर्ती मे भी लगते जान पडते है।

जिस समय की हम चर्चा कर रहे है उस समय तक अभी नाथ-पंथ का पभाव बहुत अधिक था और, यदि उसमे कुछ ह्रास के आने के लक्षण पाये जाते थे तो, वह भी केवल इसी रूप मे कि उनकी योगसाधना एवं वेदातपरक सिद्धातो मे से प्रथम को ही पहले जैसा प्रश्रय मिलना कम होने लगा था द्वितीय के अपनाये जाने मे कहीं किसी प्रकार की भी कमी नही दीख पडती थी। योग साधना का व्यावहारिक रूप जैसे हमारी आखो से क्रमशः ओझल पडता जा रहा था और उसकी शब्दावली का प्रयोग भी, अधिकतर परम्परागतमात्र–सा, लगने लगा था, जहा बेदात-परक सिद्धातों की लोकप्रियता यहां तक बढती जारही थी कि उन्हे भक्ति साधना को महत्व देने वाले भक्तो एवं प्रेम साधना को अपनाने वाले सूफियो तक की रचनाओ मे, निजी मान्यताओ के रूप मे, स्थान मिलता जारहा था। उस काल के नामदेव, कबीर और नानक जैसे सतो अथवा जायसी और मंझन जैसे सूफियों को, उनके योग साधना-विषयक विविध वर्णनो के होते हुए भी, किसी प्रकार सहसा 'योगी' कह देने की प्रवृत्ति नही होती, किन्तु उन्हे 'निर्गुणी विचारक' मान लेना हमें स्वाभाविक सा लगता है। योग साधना उन दिनों क्रमश. जैसे पुरानी सी पडती जारही थी और उसका स्थान भक्तिसाधना लेती जारही थी, किन्तु, जहां तक सैद्धातिक विचारधारा का प्रश्न है, इसके औपनिषदिक रूप मे स्वीकृत किये जाने मे उस समय किसी प्रकार की कमी लक्षित नही होती। इस बात के उदाहरण हमें उत्कल प्रदेश तक मे भी मिलते है जहा पर उन दिनो 'पचसखा' नामक प्रसिद्ध वैष्णव भक्त अपनी रचनाओ मे प्रकट थे और, जहापर बौद्ध धर्म का कुछ न कुछ अवशिष्ट अंश रह जाने के कारण, वे उसकी विशिष्ट शब्दावली तक का प्रयोग करने मे कोई हिचक नही मानते थे तथा इसके आधार पर उन्हे कभी कभी बौद्ध मत-प्रभावित भी मान लिया जाता है। बलरामदास (ज० स० १५२६)

× प्रस्तुत पुस्तक (जोगसमाधि ग्रंथ) पृ० ५३।

मेरडंड वाई चढ़ छेद्या , जलमल अगनि ग्रास्या ॥
मिट गया त्रिबधि तिमिर या तन तैं, परम सूर परकास्या ॥१४॥
सीमरता सकला जुग सूता , पडदा परहा न होई ॥
उदै कँवल तहाँ अगनि वलत है , जागि न देषे कोई ॥१५॥
सत रज तम गुण काम क्रोध मद, मोह, दोह कस दीया ॥
पांणी जलै अगनि जल सोषै , ऐसा आरंभ कीया ॥१६॥
मुद्रा सबद सुबधि कंठि सींगी , ग्यांन चक्र करि धारं ॥
चेला पांच जटा सिरि जरणां , आसण सूनि हमारं ॥१७॥
पैंडा अधर अगम उरिं अंतरि , उदबुद कथा अभेदं ॥
पिम्यां षड़ग लै ऐसे षेलूँ , जनम मरण सिरि छेदं ॥१८॥

पाठभेद—मेरदड-१ । सुवुधि-१ । षेलौ-१ । जन्म-४ ।

१४ वी साखी—वाई प्राण-मेरुदण्ड सुषुम्ना मार्ग द्वारा गगनमडल मे पहुचा, प्रदीप्त योगाग्नि ने वासना के जल व भोग के कालुष्य का शोषण किया, देह के त्रिविध ताप निवृत्त हो गए-मल, विक्षेप, अध्यासरूपी तिमिर-अज्ञानान्धकार का भी निवारण हुआ और परम सूर-विशुद्ध ब्रह्मतेज का प्रकाश फैला ।

१५ वी साखी—सासारिक भोग-विलासमय शीत से त्रस्त सब संसार सो रहा है-अज्ञानरूपी अन्धकार का पर्दा दूर नही हो रहा है । उदै कँवल-नाभिकमल मे ज्ञानज्योति जल रही है पर कोई जागकर-सचेत होकर देख नही रहा है ।

१६ वी साखी—त्रिगुणात्मक अन्त-करण के धर्म, काम, क्रोध, मोह आदि सब को कस दिये-काबू मे कर लिये । ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो विषयवासना के जल को जला रही है-शोषण कर रही है । ऐसा आरंभ कीया-इस तरह की साधना मे लगा हूँ ।

१७ वी साखी—साधक रूपक द्वारा अपना भेष बता रहा है । शब्द-अनहद शब्द का श्रवण मुद्रा है, कण्ठ मे अजपा-जाप होता है वह सीगी है, ज्ञानरूपी चक्र वही हाथ मे कडा है, पांचो ज्ञानेन्द्रिया है वे ही शिष्यवर्ग है, जरणां है वही सिर पर जटा है, शून्य-गगनमंडल मे वृत्ति की स्थिति वही आसन है ।

१८ वी साखी—पैंडा-मार्ग हमारा अधर निरालंबी है, चेतन से सम्बन्धित है, अगम-इन्द्रियातीत स्वस्वरूप है वही हृदय में निवास करता है । यह अभेदरूपी ज्ञानकथा उदबुद-अद्भुत है । क्षमारूपी खड्ग को ले जन्ममृत्यु के कारणरूप काल का सिर काट देता हूँ ।

अजपा जाप मंत्र मैं सीष्या, लोभ लहरि सब झाड़ं ॥
काली नागणि डसण न पावै, गिणि गिणि डाढ उपाड़ं ॥१६॥
पाणी मैं पैसि न परसूँ पांणी, अगनि बस अगनि न ग्रासं ॥
गुणां पैस निरगुण होइ निकसूँ, आसा वसि रहूं निरासं ॥२०॥
आरंभ करूँ कर रहूं निरारंभ, जीवण कूँ षपूँ न हारूँ ॥
छाडूँ साथ न साथी राषूँ, ना मैं मरूँ न मारूँ ॥२१॥
अटक्यां रहूँ न आण्यां आऊँ, चालूँ नहीं चलाया ॥
सोऊँ सहज न हठ करि जागूँ, भूषा रहूं न धाया ॥२२॥

पाठभेद—प्रसौ–१। गिरास–२-४। निकस्यूँ–१। करौ–१-५। रहौ–१। कौ–१। षपौ–१। हारौ–१। छाडौ–१। राषौ–१। मरौ–१। मारौ–१।

१६वी साखी—मैने अजपा जाप वृत्तिमय चिन्तन का मन्त्र सीखा है। लोभ-लालसा की लहरे सब झाड झडक दी है–दूर कर दी है। मायारूपी काली नागिन अब काट नही सकती, उसकी विषय-वासना–काम क्रोधादि सब डाढ जडें गिन-गिन कर निकाल दी है।

२०वी साखी—रज-वीर्यरूपी पानी से उत्पन्न इस देह मे रहकर भी देहाध्यास रूप पानी का स्पर्श नही करता। काम-क्रोधादि की इस देह मे अग्नि जलती रहती है, पर मै उस काम-क्रोधादि विषयवासनादि अग्नि से ग्रसित नही हूँ। त्रिगुणात्मक शरीर मे रहकर भी मै निर्गुण होकर उससे तटस्थ हूँ। विविध आशा वाले मन के साथ रहते हुए भी मै सब आशाओ से मुक्त हूँ।

२१वी साखी—साधना रूपी कर्म का आरम्भ करता हूँ, पर वह कर्म निष्काम है। अत. आरम्भ दिखते हुए भी निरारम्भ है। मुक्त होने के प्रयास मे हूँ, इसमे आने वाली बाधाओ से हारूँगा नही। अपने आत्मस्वरूप का साथ छोड़ूँगा नही. ज्ञानेन्द्रियो को अन्तर्मुख कर साथ रखूँगा। न मै काल-कवलित होऊँगा, अभेदभावना मे किसी का मे मारक भी नही।

२२वी साखी —कामादि प्रवृत्तियो से रुकूँ नही, लोभ-लालसा के बुलाने पर आऊँ नही, मन के चलाने से चलूँ नही, सहज दशा प्राप्त कर समाधि मे सोऊँ। सासारिक प्रवृत्तियो के दुराग्रह से जागूँ नही, अपनी साधना छोड़ूँ नही, स्वस्वरूप-प्राप्ति के परमानन्द से तृप्त रहूं पर उससे धापूँ नही–विरत नही होऊँ।

ज्यूँ आकास महज गुण ग्रासै , गुण कोई व्यापै नांही ॥
अवधू तन मन ऐसे राषै ज्यूँ, चंदा जल मांही ॥२३॥
साहिब अघट साध सब घट धर , कीमति कहत न आवै ॥
वार पार कोई मधि न जांणै , सब कोई अगम बतावै ॥२४॥
परमपुरिप परग्यांन परमसुष , परापुरैं पति पाया ॥
जन हरीदास मन उनमनि लागा, सहजैं सुनि समाया ॥२५॥
पारब्रह्म पति परम सनेही , समद रूप सब मांही ॥
जन हरीदास साध सुषि लागा , धार पार कछु नांही ॥२६॥

॥ इति जोगध्यान जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ प्राणमात्रा जोगग्रन्थ ॥

ॐ प्राणमात्रा सुणौं हो साधौ ,
हरि भजन का भेद , कांम क्रोध का करिवा छेद ॥
एकपहि राषिवा पाँच साथी , मन मैमंत मारिवा हाथी ॥१॥
मैं तैं मोह दल जीतिवा जोगी , जुरा भै मेटिवा पवन रस भोगी ॥
सबद की गूदड़ी सास सब धागा , अचाहि की सूई लै सींवणै लागा ॥२॥

पाठभेद—ज्यों–२ । कहैत–२ । उनमन–२ । पंच–१ ।

शब्दार्थ—प्राणमात्रा=प्राण का काल से नियन्त्रण । एकपहि=एक स्थान, एकाग्र । मैमंत=मस्त । मैं तैं=मेरा तेरा । पवन रस भोगी=प्राणसमाधि रस । अचाहि=अनिच्छा ।

२३वी साखी–जैसे आकाश में विविध वर्णों की प्रतीति होते हुए भी आकाश सब वर्णों से अलिप्त रहता है–ऐसे ही आत्मसाधना मे लगा साधक अपने तन-मन को सब विषय-भोगों से अलिप्त रखे जैसे जल, मे चन्द्रमा ।

निरास मैं मुद्रा सील संतोष सति चेला, ध्यांन की धूई तहां सिधां का मेला ॥
दया धीरज डड साच करि गहिवा, विचार कै आसण उनमनि रहिवा ॥३॥
सवद की सींगी सहज की माला, जत का कोपीन तहाँ जोग का ताला ॥
निरमोह मढी निहचल वासा, जरणां की जटा सिरि देषिवा तमासा ॥४॥
निरास उड़ाणी अकल की छाया, अधर उठि चालिवा तजिवा काम क्रोध काया॥
भेद सिर टोपी तन बाघंवर, निरगुण जो घोटा सुनि वस्ती न घर ॥५॥
×पाताल का पांणी आकास कूँ चढ़ाइवा, कलपना सरपणी पवन मुषि षाइवा ॥
सतगुर सवद लै अगह अगम उर धारिवा, ग्यांन का चक्र लै काल कूँ मारिवा
वारह सोलहकला लै एक घरि आणिवा, जोगका मूल यह जुगति सब जांणिवा।
गुर का सवद लै भौंरा जगाइवा, सरप वंवई तजि अगम तहाँ जाइवा ।७।
देषि पग धरिवा दया पंथ करिवा, उद्र भरि न सोइवा धात करि न धरिवा ॥
भैभीत नग्री मोहनी माया, कामना मिटी तब जोग पंथ पाया ॥८।
रहता सो भाई वहता सो वहणां, अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहणां ॥
अरथ की अंधारी मिथ्या न भाषिवा, निरंजन मात्रा जतन सूँ राषिवा ॥९॥

पाठभेद—दड-१। वसती-२। अपणी-१-५। अगेह-१। बारह-३-५। देषि पाव धारिवा-१। उदर-१। नगरी-१। अर्थ-४-५।

शब्दार्थ—भेद=रहस्य, ज्ञान, तथ्य। वारह=सूर्य की कला, पिंगला। सोलह=चन्द्रमा की सोलह कला, इडा। इडा-पिंगला को एक घर सुषुम्ना मे आणिवा—लाना। भौरा=जीवात्मारूपी भ्रमर। सरप ववई=संशय का मूल। देषि=ज्ञानदृष्टि से। दया पंथ करिवा=मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहना। उद्र भरि=अति आहार कर। धात करि न धरिवा=सोना, चादी आदि धातु को लेना नही। भयभीत नग्री=देह रूपी नगरी कालभय से भयभीत है। रहता=एकाग्र मन। वहता=चंचल मन। अरथ की अंधारी=रूप, रस, शब्दादि विषयो का अन्धकार न आने देना।

× पाणी—शुक्ररूपी द्रव जो स्वभावत अधोगति है, जिसके निकलने का स्थान मूत्रेन्द्रिय है। उस पाताल स्थान से वीर्य को आकाश मे चढाना—ऊर्ध्व रेता होना। मन की चंचलतारूपी सर्पिणी को प्राणायाम की साधना द्वारा समाप्त करना, सतगुरु के उपदेशानुसार पकड़ मे न आने वाले इन्द्रियातीत चेतन तत्व की स्वानुभूति करना, नित्यानित्य विवेक रूपी चक्र से काल पर विजय पाना।

डीवी मवूरी ओर कूँ न देवा, आकास की भिष्या भाव सूँ लेवा ॥
*वाई न झलकै भरम सब छाड्या, परमतत परसतां मेर मधि गाड्या ॥१०॥
वंमि निरंतरि आरंभ करिवा, काया कमडल अमीरस भरिवा ॥
×चिंता डाकणी फिरि गई लाजैं, अनहद सींगी गगन सुर बाजैं ॥११॥
जीवता मरैं सु जुगि जुगि जीवैं, अगम का पियाला छक्या रस पीवैं ॥
उरम धुरम सुषमना भोगी, अकल तरवर तहाँ वसै प्राणनाथ जोगी ॥१२॥
जन हरीदास सतगुर सबद कहै त्यौं कीया, अकलि कै आसरै अगम गढ़ लीया
माध सब ही बसैं तहां मैं नांही, जन हरीदास मन सुरति प्राण वसै ता मांही॥
जन हरीदास चेत्या सतगुर चितावै, सोवै सो षोवै जागै सो पावै ॥१३॥

॥ इति प्राणमात्रा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ आत्माअभ्यास जोगग्रन्थ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन जल तेज न लोई ॥
अगम ठौड़ करसण तहां, चोर कर लगै न कोई ॥१॥
पांणी विणि पांणी, अतिर हाथां विणि तिरणां ॥
वारिन रहणां थाकि, पारि जाइ वहुड़ि न फिरणां ॥२॥

पाठभेद—जुग जुग–५। अकल–३-४। श्रुति–४। वार न–३-५। पार–३। वहौडि–३-४-५।

शब्दार्थ—डीवी=पात्र। आकास की भिष्या=अनायास प्राप्त भिक्षा। उरम धुरम=इडा पिंगला। अकल=कलनरहितचेतन। अकलि कै=साधना द्वारा, शुद्ध बुद्धि में। चेत्या=सावधान हुआ। अगम ठौड=परमधाम, आत्मनिष्ठ। करसण=कृषि, खेती। वारिन=इसी किनारे, संसार मे ही। पार जाइ=पार पहुच, आत्मसाक्षात्कार कर। वहुड़ि=वापिस, पीछा।

* वाई न झलकै—प्राण अनवस्थित न हो यौगिक क्रियानुसार ही उसका प्रवाह रहे।

× विषयभोग की वासनारूपी चिन्ता लज्जित होकर चली गई।

एकै साथी साथि, गया साथी गत दूजा ॥
देवलि देवलि पैसि, पसरि मन करे न पूजा ॥३॥
हारि जीति दोइ देस, तहां सब जीव का वासा ॥
देषि तमासा डरया, वहौड़ि मोहि आवै हासा ॥४॥
चिता की लगै न ओट, वोट सतगुर की आया ॥
सतगुर साहस धीर, सु तौ सतगुर तैं पाया ॥५॥
ग्यांन सिंघासणि वैसि, एक आरंभ हम कीया ॥
ब्रह्म अगनि परजालि, पवनमुषि परवत दीया ॥६॥
गया पाप परचंड, त्रिवधि मैं तैं भ्रम भागा ॥
उलटा गोता मारि, प्रांण निरभै सुषि लागा ॥७॥
पाँच सषी लै साथि, परम सुषसागरि झूल्या ॥
विवधि वेलि फल झड्या, कँवल विणि पाणी फूल्या ॥८॥
डाल समाया मूल, काम यहु सतगुर कीया ॥
त्रिवेणि असथांनि, जड़ां मैं पावक दीया ॥९॥
×गंग जमन मधि वेसि, चंद घरि सूर समाया ॥
परम जोति परकास, अगम गुरगम तैं पाया ॥१०॥

पाठभेद—स्यिघासणि–१। प्रजाल–१-५। प्रवत–१। प्रचंड–१। भरम–१-५। नृभै–२-४। विविधि–१। असथान–५।

शब्दार्थ—देवलि देवलि=मन्दिर-मन्दिर। हासा=हसी। वोट=आड़, ओट। एक आरंभ=आत्मचिन्तन। परजालि=प्रज्वलित कर, जलाकर। पवनमुषि=प्राण-सिद्धि। परवत दीया=अहङ्कार हटाया। पाँच सषी=अन्तर्मुखी पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ। झूल्या=स्नान किया, ओत-प्रोत हुआ। विवधि वेलि=वासनामय लता। कँवल विणि पानी फूल्या=हृदयकमल बिना विषयभोगरूपी पानी के प्रफुल्लित हुआ। डाल समाया मूल=डाल रूपी जीव मूल व्यापक ब्रह्म मे समाया। त्रिवेणी असथांनि जडां मै पावक दीया=तीन गुणो के प्रपञ्चरूप भौतिक भावनाओ की जड़ मे ज्ञान की अग्नि लगाई।

× गंग जमन–श्वास-प्रश्वासरूपी प्राण सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे समाय

घेनि धाम परहरचा, पसरि पांणी नहिं पीवै ॥
परम सूँनि घरि धसै, कुपह केरड़ा न जीवै ॥११॥
अरचित अरत अभंग, नाथ निरभै निरभेदं ॥
जहाँ तहाँ भरपूरि, पूरि लै आस उमेदं ॥१२॥
वार पार मधि नांहि, छिपै नहिं काहू छाया ॥
अदिष्टि अथिर अरूप, अगह उरि अंतरि पाया ॥१३॥
तहाँ सापणि नहि संचरै, ड़हकि दोइ डंक न धारै ॥
प्रथम चढ़ै नहिं जहर, =मंत्र गारडू न मारै ॥१४॥
भैंरू न लगै न भोग, सीस भोपी नहिं तौलै ॥
देवल विणि देव अभेव, तहां कुलफ कोइ जड़ै न षोलै ॥१५॥
अरध छांड़ि उरधै चढ्या, राग विणि रागनि वाजै ॥
ब्रह्म अगनि आभरण, सबद विणि सींगी वाजै ॥१६॥
तुला नहीं तहाँ तुल्या, विप्रा विणि वेद पढाया ॥
अगनि विना अस होम, पुनि विण पुन्य समाया ॥१७॥

पाठभेद—घ्येन–२। प्रहरचा–१। अक्षर–३-५। अगहि–४। डहक–३। पुन्य–२।

शब्दार्थ—घेनि धाम परहरचा=स्थिर वृत्तिरूपी गाय ने सासारिक घर का परित्याग किया–मोह छोडा। पसरि पांणी नहि पीवै=वृत्ति अब सासारिक पदार्थों मे जा विषयभोग के पानी को नही पीती। कुपह=कुमार्ग। केरडा=बछडा। सापणि=वासना, माया। डहकि=उचककर। दोइ डंक=राग, द्वेषमय। गारडू=सतगुरु, मंत्र-दाता। भैरू=काल। भोपी=माया। कुलफ=कुन्दा, साँकल। अरध=नीचे। उरधै=ऊपर, ऊँचा। आभरण=गहने, आभूषण। तुला=विचार, तकडी।

१७ वी साखी—बिना तकड़ी के विचाररूपी तुला मे तुला। बिना पंडितो के सतगुरु उपदेश से वेद–आत्मज्ञान पढ़ा। बिना बाहरी अग्नि के ज्ञानाग्नि मे सब प्रकार की वासनामय सामग्री का होम किया। जप, तप, दानादि पुण्य कर्म किये बिना परम पुण्य-स्वस्वरूप की प्राप्ति की।

आरंभ विणि आरंभ, करम विणि करम स कीजै ॥
विणि तपस्या तप तहाँ, पाठ विणि पाठ पढीजै ॥१८॥

ईंधण विणि ईंधण, अगनि विणि अगनि स जारै ॥
विण ही निद्रा नींद, भूष विणि भूष संभारै ॥१९॥

नव नाथ लै साथि, मेर चढ़ि आसण धारया ॥
जोगारंभ विणि जोग, भोग विणि भोग विचारया ॥२०॥

नीर न झलकै पारा मारया, यहु आरंभ हम कीया ॥
ठगता जिकै सुतौ ठग ठावा, पकड़ि अगनि मुषि दीया ॥२१॥

पाठभेद—अग्नि-१ । इहु-२ । ज्यके-२ ।

१८ वी साखी—बिना किसी स्थूल क्रिया के आत्मचिन्तन का आरम्भ किया । स्थूल कर्मो के बिना चिन्तन, ध्यान, समाधि आदि कर्म मे लगा । तितिक्षामय पञ्चाग्नि आदि तप को छोड मन.संयम का तप होने लगा । बाहरी वाणी के पाठ बिना धारणा वृत्ति से स्वस्वरूपरूपी पाठ निरन्तर पढने लगा ।

१९ वी साखी—काम, क्रोध, लोभ, मोहादि ईंधन वाली विषयाग्नि को छोड त्याग, वैराग्य, शील, जरणा आदि की ईंधन वाली ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर सम्पूर्ण कर्म जलावे । बाह्य निद्रा-सुषुप्ति के बिना समाधिरूप योगनिद्रा ले । भोग-पदार्थो की भूख को छोड ब्रह्मानन्द रस की भूख जागृत करे ।

२० वी साखी—अन्तर्मुख पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ, चारो अन्त.करण-ये नव नाथ साथ ले मेर चढ-सुषुम्ना द्वारा प्राण को दशम द्वार मे पहुचा, आसन धारया-प्राण को स्थिर किया । बिना यम-नियमादि अष्टाग योग की साधना के राजयोगरूपी योग के अभ्यास मे लगे । सांसारिक भोगो के बिना स्वस्वरूप प्राप्ति रूप परम भोग भोगने का निश्चय किया ।

२१वी साखी—नीर न झलकै-मन में चचलता न रहे, पारा मारया-वीर्य का पाचन कर ऊर्ध्वगामी बनाया । हमने यह साधन प्रारम्भ किया । लोभ, मोह तृष्णा, काम आदि ठग मन को ठगने वाले थे, उन सबको ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध किया ।

जन हरीदास सतगुर का चेला, ड़रै न सोवै जागै ॥
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन, तौ नगरी चोर न लागै ॥२२॥

॥ इति आत्माअभ्यास जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उतपति अहेत जोगग्रन्थ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन जल तेज न पांणी ॥
द्योस नहीं जदि राति, तदि कहि कौंण विनांणी ॥१॥

सात समद मरजाद, नहीं गिर भार अठारा ॥
चौरासी लष जाति, नहीं जदि मंडल तारा ॥२॥

आदि सकति नहिं सेस, विष्ण ब्रह्मा नहिं आया ॥
जनम जुरा नहिं मौत, जीव नहिं काल न काया ॥३॥

पुरष नारि रस पाँच, हाट पाटण न पसारा ॥
दामणि गिगनि न गाज, नहीं विरषा घण धारा ॥४॥

पाठभेद—कूंण-१ । गिरि-१ । विष्णु-१ । विसन-२ । पुरिष-१ । पाटणि ४ । वरिषा-३ । वृषा-५ ।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश । द्योस=दिन । विनांणी=चतुर, विशेषज्ञ । रस पाँच=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय पाँच । हाट=बाजार, दुकान । पाटण= नगर, कायानगरी । दामणि=विषय-वासनामय बिजली । गाज=गर्जना । घण=बादल ।

२२ वी साखी—महाराज हरिदासजी कहते है कि सतगुरु-कृपा से अब न तो षड्रिपुओं का भय है । अज्ञान निद्रा में सोवें नही, योग-साधना द्वारा सदा सजग रहते हैं । सर्वदा सहजावस्था में वृत्ति को स्थिर किये हुए हैं, तब अब इस काया नगरी मे काल-कर्मादि चोर कोई नही लग सकतें ।

गरड़ नौ कुली नाग, मंत्र गारड्ड न गहरं ।।
डसण नहीं अरु डंक, नहीं इम्रत नहिं जहरं ।।५।।
वीरविदोष न पोष, भूत डाकणि नहिं भेदं ।।
भैंरू जोगनि भोग रस रोग, रसना नहि कंध न छेदं ।।६।।
सात वार रुति तीन, घड़ी महूरत नहिं लोई ।।
पहर दिन पष मास, वरस जुग वरणन कोई ।।७।।
षुध्या त्रिसा नभ नींद, सेज सुष सोभ न घर ही ।।
नहिं वैरी नहिं मित्र, नहीं निरभै नहि डर ही ।।८।।
सुद्र वैस षत्री विप्र, विद्या त्रिसतार न वादं ।।
नहिं हिंदू नहिं तुरक, सरा नहि सवद न स्वादं ।।९।।
नहीं चंद नहिं सूर, हारि हठ जीति न मनही ।।
मुकति सिधि नव निधि, चित नहि चाहि न धन ही ।।१०।।
सिध साधिक जोगी जती, पीर नहीं पैकंबर ।।
नहीं कुतब नहिं गौस, दत्त नहि देव दिगंबर ।।११।।
नहिं तपस्या जिग जाप, नहीं करता नहिं कीया ।।
नहीं जोर नहिं जेर, जोग गोरष नहि लीया ।।१२।।
नहीं सूर नहिं गाइ, जवै तन तेग न तूटा ।।
नहीं हेत मुष हाथ तदि, स्वाद कहुँ लिया न छूटा ।।१३।।
नहि पाप नहीं पुंनि, दया निरदै नहिं माया ।।
नहीं मोह नहिं द्रोह, दूत दुसह नहि दुष सुष छाया ।।१४।।

पाठभेद—इमरित–१। त्रस–१। विस्तार–१। मुक्ति–५। डिगंवर–३-४। ज्यग–२। जग–३। निरदय–३।

शब्दार्थ—नौ कुलि=नौ वंश सर्पो के। डसण=काटना। वीरविदोष=तान्त्रिक। कंध=ग्रीवा, धड। रुति=सर्दी, गर्मी, वर्षा। षुध्या त्रिसा=भूख-प्यास। नभ=नाभी, गहरी। सरा=कुरान की दण्डनीति। जवै=जिबह, हलाल। तेग=करद, छोटी तलवार। निरदै=निर्दयी, क्रूर।

जगन्नाथदास (ज० सं० १५४७) तथा यशोवतदास (ज० सं० १५४९) और अनंतदास (ज० स० १५५०) की कविताओ मे हमे इस प्रवृत्ति के उदाहरण प्रचुर मात्रा मे मिलते है और हम इन्हे, अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की, अरूप, अलेख, अदेही, निराकार, व निरंजन के अतिरिक्त, 'शून्य' शब्द के द्वारा भी अभिहित करना उचित समझते हुए, पाते है जिस कारण इनका साहित्य आज तक भक्तिधारा की 'ज्ञानमिश्रा वा योगमिश्राम्' उपधारा को उदाहृत करने वाला कहा जाता है[1] और वह उसी प्रकार किंचित् विशिष्ट माना जाता है जिस प्रकार हिंदी का निर्गुण भक्ति वाला 'ज्ञानाश्रयी' साहित्य।

ऐसे ही समय हम, राजस्थान प्रांत मे, जंभनाथ वा जभोजी (ज० सं० १५०८) तथा जसनाथ जी (ज० सं० १५२९) जैसे कुछ महापुरुषों को भी अपने यहां उपदेश देते और अपने मतोका प्रचार करते हुए पाते है। ये लोग अपने को सीधे गुरु गोरखनाथ द्वारा अनुप्राणित बतलाते है, योगसाधना को विशेष महत्व प्रदान करते है तथा उन सिद्धातो को भी स्वीकार करते जान पडते है जिन्हें वेदातपरक कहा गया है। इनकी तथा संत कबीर जैसे संतों की विचारधाराओं मे हमें कोई वैसा उल्लेखनीय या मौलिक अन्तर लक्षित नही होता है। उपलब्ध रचनाओं मे अन्तर्निहित बातो का कुछ तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमे केवल ऐसा लगता है जैसे सतो ने जहां अपने समय की नवीन भक्तिमयी प्रवृति को हृदय खोलकर अपनाया है और उसके अनुसार वे अपने निर्गुणी सिद्धातो को किंचित् भिन्न रूप देने तक प्रतीत होते है वहा जभोजी एव जसनाथजी अपनी नाथ-पथी मान्यताओ द्वारा इतने अधिक अभिभूत हैं कि उन पर कोई नया आन्दोलन विशेष प्रभाव नही डाल पाता। ये अधिकतर उन योग-साधको जैसे ही सोचते है, उन जैसे ही कार्य करते है और उनके ही जैसा जीवन भी पसन्द करते है। ये उन्ही की भाति एकांतप्रिय है, निवृत्ति-मार्गी है तथा, कदाचित्, साधनानिरत भी रहा करते है। ये बहुत कुछ उन्ही के आदर्श को सर्वाधिक महत्व भी देते है। जैसा जसनाथ जी ने एक स्थल पर कहा है, "पैला आसन दिढक रहैला से पूरा परवाणी" अर्थात् पूरा प्रमाणित तपस्वी तो वही है जो पहिले अपने आसन पर दृढ़ रहेगा अथवा जिसे घूम-घूम कर उपदेश देते फिरने की वैसी आवश्यकता का अनुभव न होगा। इनका यह भी कहना था कि 'मनकर लेखण तनकर पोथी, हरगुण लिखो[2] पिराणी' अर्थात् हे प्राणी, तुम मन रूपी लेखनी से शरीर रूपी पुस्तक पर भगवान् के गुण लिखो क्योकि, वास्तव में, उसी एकमात्र के प्रति अनन्यभाव को बनाये रखना हमारे लिए परमावश्यक है। उस परमात्मा को संबोधित करते हुए जभनाथ जी भी एक स्थल पर कहते है। 'इस अपार संसार मे, किस विधि उतरूं पार। अनन्य भगत मै आपका, निश्चल लेहु उबार।[3]' अतएव, इन दोनों की रचनाओ

---

१ राष्ट्रभाषा रजत जयन्ती ग्रन्थ (उत्कल प्रातीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कटक) पृ. १३८।
२.सिद्ध चरित्र (रतनगढ, सं० २०१३). पृष्ठ १३३ ३. संतभाल (महर्षि शिवव्रत लाल कृत, इलाहाबाद) पृष्ठ १५७।

नहीं मील संतोष, गहर मति गुरू न चेला ॥
नहीं ग्यांन नहिं ध्यांन, आप तदि अलष अकेला ॥१५॥
नहीं विरह वैराग, नहीं सेवग नहि स्वामी ॥
षट् दरसण पष नहीं, तदि आथि अरचित वहु नांमी ॥१६॥
महल दरगह सेझ सुष, नहिं, वहौ नारी छंदा ॥
नहीं जोघ जर कंवर, नहीं गै गौड़ि करंदा ॥१७॥
नहिं पाइक नहीं फौज, चूक नहिं चाल न धरही ॥
सूंब जाचिग दातार, नहीं कौड़ी नहि कर ही ॥१८॥
रैंत नहीं राजा नहीं, दैत नहीं देवाइर ॥
नहिं षत्री नहि षड़ग, सूर रिण तूर न काइर ॥१९॥
नहीं नाद नीसांण, है न बहता गैवा वल ॥
नहिं सांवत नहिं सूर, मींछ रिण हांकन कावल ॥२०॥
तदिस अषंडित राम, आथि अव साथी सोई ॥
सब जीवां का जीव, तास गति लषै न कोई ॥२१॥
जहाँ तहाँ गोपाल, गोप सब मैं गोपालक ॥
नहीं जोर नहिं ज्वान, नहीं बूढा नहिं वालक ॥२२॥
सिरजनहार अपार, नांव नाराइण लीजै ॥
निरामूल निरस्यंघ, तहाँ फिरि सरवस दीजै ॥२३॥
ये सब करि सब तैं अगम, हरिजन हरीदास निरभै निड़र ॥
प्रांण हंस मोती चुगै, मांनसरोवर मंझि घर ॥२४॥

पाठभेद—इकेला–५। अरिचित–४। वहौ–३-४। वहु–१। जरकंव–३-४। जाचिक–१। आदि–३। फिर–३। ए–३-४।

शब्दार्थ—षट् दरसण=जोगी, जंगम, सेवड़े, बौद्ध संन्यासी, शेष। जरकँवर=धन, सन्तान। गै गौड़ि करंदा=मस्ती वाले हाथी नहीं। पाइक=दास, सेवक। गैवावल=दैवी वल। सूंब=सूम। जाचिग=मांगने वाला। दैत=दैत्य। देवाइर=देवता। रिण=रणभूमि। तूर=तुरही। सांवत=अति शूरवीर। मीछ=सेनापति। कावल=उल्टा, विपरीत। तदिस=तहाँ। आथि=आखिर. अन्त में। मंझि=मध्य, बीच।

जन हरीदास उदवुद कथा, परमगति गुर गमि लहिये ॥
वर वन गिरि तर कंदरा, राम राषै तहाँ रहिये ॥२५॥

॥ इति उतपतिअहेत जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सवदपरीछा जोगग्रन्थ ॥

भगत जंगम जोगी जती, सोफी कहा संन्यास ॥
माया की छाया छक्या, निरभै ठौड़ निरास ॥१॥
बाद कियां वित घटत है, ×अपत परमदत जाइ ॥
मनिष जनम धरि हरि भजै, मन फिरि मनहीं समाइ ॥२॥
राग दोष मैं तैं मनी, जहां तहां मन देत ॥
प्राणनाथ पति छांड़ि करि, भार सगै सिर लेत ॥३॥
ग्यांन आंषि माया मुदित, जीव जागि सकै तौ जागि ॥
अपणा पला छुड़ाइ करि, पतित परम सुष लागि ॥४॥
विप्र वेद काजी इलम, दहूँ पपा दोइ तात ॥
वीचि समंद उभा इथां, कहै तहां की वात ॥५॥
जैन धरम कांटा करम, भरम करि सकै न दूरि ॥
चिदानंद सब तैं अगम, जहां तहां भरपूरि ॥६॥
च्यारि वरण का मूल कहां, हरि परम सनेही पीव ॥
हारि जीति भुरकी पडी, तहां अलूंधा जीव ॥७॥

पाठभेद—गिर-२-३। जहाँ-२। परम दत-३-४। सिरि-३-४। दहौ-५। चारि-१।

शब्दार्थ— तर=तरु, वृक्ष। छक्या=धापा, तृप्त हुआ। ग्यान आँषि माया मुदित=ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त है पर अज्ञान से ढके हुए है। इलम=कुरान, विद्या। दहूँ पषा=दो पक्ष, हिन्दू-मुसलमान। इथा=यहा। काटा=शूल, कर्मबन्धन की झाडी। च्यारि वरण=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। अलूंधा=उलझा।

× अपत-अर्पित प्राप्त मनुष्य जन्मरूपी परम दत-परम धन जाइ-व्यर्थ जा रहा है।

षट् दरसण सोध्या सबै, सु तौ और ही रीति ॥
ऊलामालों जहां तहां, पषा पषी विपरीति ॥८॥
गावण सूं रोवण भला, रोवण गावण मांहि ॥
राम वियोगी जीव कै, तलफि तलफि मरि जांहि ॥९॥
लाष गरंथ का अरथ यह, कोटि पदां पद सेष ॥
साहिब सबतैं सनमुषि सदा, तूं सनमुष होइ देष ॥१०॥
अनंत माषि साधां कही, मांहि रतनपति राम ॥
उलटा गौता मारि करि, करो आपणां काम ॥११॥
तज तनसुष चोवा चंदन सूंधो, सब अंगि हीरा हेम उजास ॥
सु तौ सिंगार कोइ और है, जहां मिटै काल की त्रास ॥१२॥
सिला बैसि तपस्या करै, कंद मूल षणि षाइ ॥
वा तपस्या कोइ और है, जहां त्रिवधि ताप सब जाइ ॥१३॥
वहौ विधि भोजन लेत है, दुरचा देह की वोट ॥
वौह भौजन कोई और है, तहां मिटै काल की चोट ॥१४॥
धर्म नेम तीरथ विरत, प्रीति हेत मन मांहि ॥
सु तौ तीरथ कोई और है, जहां सबै पाप झड़ि जांहि ॥१५॥
चारत लै देही डंडै, अन आंवलि करि षात ॥
सु तौ चारत कोई और है, जहां काम क्रोध भ्रम जात ॥१६॥
पांच अगनि साधै सु तौ, फल ताकै तहां जाइ ॥
ब्रह्म अगनि प्रगटी नहीं, डाल मूल सब षाइ ॥१७॥
देह पेह निरगुण दसा, अनफा सूं निरगुण लेत ॥
निरभै पदि पहुँता नहीं, लग्या कौण सूं हेत ॥१८॥

पाठभेद—विवोगी-४-५। इहै-२। यहै-३। साष-२। षिणि-२। वहु-१। तोर्थ-५। व्रत-१। आमल-५। भरम-१-५। पद-३-५। स्यूं-१।

शब्दार्थ—उल्टा गोता=वृत्ति अन्तर्मुख करि। सूंधो=इत्र। हैम=सोना। उजास=प्रकाश। षणि=खोद कर। वहौ=अनेक, विविध। दुरचा=छिपा। वोट=ओट, आड़। चारत=व्रत विशेष, चान्द्रायणादि। डंडै=दण्ड दे, कष्ट दे। आंवलि=मलिन। अनफा सू=विनानफे, निष्काम। पहुँता=पहुंचा। हेत=प्रेम, स्नेह।

विवधि धरम तपस्या विवधि, चलत देह कै भाइ ॥
सु तौ पंथ कोई और है, तहां सात समंद लंघि जाइ ॥१९॥

सतगुर सबदां मन बध्या, घाटि उतारचा आथि ॥
दूजा लाडू दूरि गया, एकै लाडू हाथि ॥२०॥

चिंतामणि दरई तहां, सु तौ सबै सुष लेत ॥
वा चिंतामणि कोई और है, प्रगट परम पद देत ॥२१॥

धाह अगनि मुष प्रजलै, तांवा लीया ताइ ॥
सु तौ तावा कंचन भया, जब पारस परस्या जाइ ॥२२॥

स्याह लाल जरदा सुपेद, गिरवरि सुत हाथि हजूरि ॥
लोह पलटि कंचन करै, सो पारस कहूँ दूरि ॥२३॥

हीरा की सोभा कहा, सु तौ चौर ले जाइ ॥
वो हीरा कोई और है, उलटि चौर कूँ षाइ ॥२४॥

मांनि अमांनि दोइ गरव गत, प्रगट परमपद हाथि ॥
कांमधेन सुरही सबै, सु तौ कांमधेन तहां साथि ॥२५॥

मन मरजीवा तन समद, उलटा गोता षाइ ॥
हीरा ले न्यारा रह्या, षारा जल न सुहाइ ॥२६॥

चंदन तरवर की संगति, बसै स चंदन होइ ॥
अरस परस गति एक है, नांव धरण कूँ दोइ ॥२७॥

चंदन तरवर विवधि वन, चंदन मिलै न काहू रंगि ॥
और व्रिछ चंदन भया, मिलि चंदन कै संगि ॥२८॥

पाठभेद—परगट-४ । मुषि-३ । परजलै-३ । सपेत-४-५ । गिरवर-४-५ । वोह-१ । ग्रव-१ । कांमधेनि-३-५ । येक-२ । विविधि-१ । व्रिष-१ । विरछ-३ ।

शब्दार्थ—सात समंद=षड् विकार, काम-क्रोधादि तथा सातवां अहङ्कार । दूजा लाडू=सासारिक पदार्थ । दरई=द्रवित, प्रसन्न । धाह=लपट, ज्वाला । हीरा की सोभा कहा सु तौ चौर ले जाइ=उस मनुष्य-जन्मरूपी हीरे की क्या शोभा है ? जिसको काम, क्रोधादि चोर चाहे जिधर ले जाय । सुरही=गाय ।

कलप व्रिछ सब तैं अगम, सतगुरि दिया बताइ ॥
ज़ा परस्यां दोजग दुरै, काम क्रोध भ्रम जाइ ॥२९॥
दत्त आपै दालिद गमै, मन का तोटा दूरि ॥
सु तौ दाता सब तैं अगम, जहां तहां भरपूरि ॥३०॥
जात लगी जोगी ठग्या, भज़न करत सब साध ॥
सब देवां सिरि देव है, हरि अपरंपार अगाध ॥३१॥
सुष सीतल इम्रत सुधा, मन करत प्रेम धरि पांन ॥
सु तौ चंद कोई और है, प्रगट हरै अभिमांन ॥३२॥
कँवल विगसि प्रगटी किरणि, घट मैं अघट उजास ॥
पछिम दिसि ऊगा अरक, नष सिष नाभि प्रकास ॥३३॥
आठ पहर इम्रत सुधा, अरस परस रस एक ॥
सु तौ इन्द्र कोई और है, दूजा इन्द्र अनेक ॥३४॥
जनम जुरा घट पट नहीं, जम की लगै न गाज ॥
सु तौ राजा कोई और है, जा का सब परि राज ॥३५॥
सब देवां सिरि देव है, सब साहां सिरि साह ॥
सब सुलितांना सिरि सुलतांन है, हरि पूरण ब्रह्म अथाह ॥३६॥
लष चौरासी जीव जहाँ तहां, नाना विधि दीदार ॥
ए सब करि सब तैं अगम, अनंत जोग विसतार ॥३७॥
वसै कहां नांहीं कहां, कौंण सकै औगाहि ॥
वार पार कीमति नहीं, नांव धरत है ताहि ॥३८॥

पाठभेद—भरम-१। दाल्यद-२। द्दालद-५। इमरित-१। येक-२। सुलताना-५। ये-२। विस्तार-४।

शब्दार्थ—परस्या=स्पर्श किये। दत आपै=आनन्दरूपी धन दे। दालिद गमै=गरीबी जाय। सु तौ=वह। जात लगी जोगी ठग्या=जो साधक पुजने लगता है, वह ठगा जाता है। कँवल विगसि=नाभिकमल खिला। प्रगटी किरणि=ज्ञान-ज्योति जगी। पछिम दिसि=आत्मनिष्ठ दशा। ऊगा=उदय हुआ। अरक=सूर्य, ज्ञानभानु। इम्रत सुधा=चन्द्रकिरण। साहां=साहूकार। सुलतान=बादशाह। दीदार=आकार, दर्शन। औगाहि=पता लगा सके।

नांव धरूँ तौ मैं डरूँ, हरि अपरंपार अछेह ।।
सुत तात मात वनिता नहीं, गांव देस नहिं देह ।।३९।।
जन हरीदास पति का वरत, अपणैं हिरदै धारि ।।
पर पांणी लागै नहीं, उलटी पंथ सँवारि ।।४०।।
परमसिध परवांण क़हां, वहौ कीमति करत गये हारि ।।
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै वसत विचारि ।।४१।।

।। इति सवदपरीछा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। अथ वीरारस वैराग जोगग्रन्थ ।।

क्या कहिये कहणी कहा, रजमां रहणी मांहि ।।
सो साहिब के हाथि है, दे तौ अचरिज नांहि ।।१।।
रहणी तो जे हरि भजै, रहै निरन्तरि लागि ।।
वलता बुझै अंगार सब, वहौड़ि न झलकै आगि ।।२।।
को चरचै को वंदिजै, को निंदै गहि छार ।।
षेलै साध समाधि मैं, कलपै नहीं लगार ।।३।।
जौ कलपै तौ कसर है, कछु किरची मन मांहि ।।
अगम तहाँ पड़दा इहै, निज तत परस्या नांहि ।।४।।
ज्यूँ हम देषैं त्यूँ कहैं, ऊँची करि करि वांहि ।।
कुरंग स्यंघ वैसे नहीं, एक त्रिछ की छांहि ।।५।।

पाठभेद—धरौं–१-५। डरौं–१-४। व्रत–१। परमस्यंघ–१। न्यज–२। सिंघ–३-४। येक–३-४।

शब्दार्थ—पति=ब्रह्म। वरत=व्रत। परवांण=परिमाण, नाप-तोल। रजमा=महल। चरचै=पूजे। वंदिजै=वन्दना करे। कलपै=तरसता रहे। =कसर=कर्मों। किरची=अस, सदोषता। इहै=यही। निजतत=आत्मतत्व। कुरंग=मृग। स्यंघ=सिंह।

दुनिया सूँ वांई दई, परमेसुर सूँ प्रीति ॥
साधाँ का सुष अगम है, याह कछु उलटी रीति ॥६॥

करम कठिन रहणी कठिन, कठिन साध की टेक ॥
ज्याँह वाताँ साँई मिलै, सो कोई कठिन विवेक ॥७॥

विरह चोट लागी नहीं, साध सवद सुष दूरि ॥
काम क्रोध मैं तैं मनी, पग दे सक्या न चूरि ॥८॥

या वेदनि कटिवौ कठिन, जांणै विरला कोइ ॥
दया जहां आरंभ नहीं, आरंभ दया न होइ ॥९॥

दया देस तहां वास करि, निरभै पद भजि रांम ॥
धीरज मैं धन मिलेगा, यहि औसर यहु कांम ॥१०॥

मन चंचल निहचल भया, गळ्या ग्यांन की पालि ॥
जाग्या सो भरमै नहीं, सूता पड़ै जंजाल ॥११॥

×पाणी मांहि पैसि करि, धरै निरन्तर ध्यान ॥
मन मछली चितवत रहै, वड़ी विपति यहु ग्यांन ॥१२॥

अगम तहाँ पहुँता नहीं, गुण इन्द्रया का प्रतिपाल ॥
गुर भीवर सिष माछली, तकि तकि म्हैलै जाल ॥१३॥

साध तहां सुरभष सदा, हरि सुमिरण सूँ हेत ॥
ष्याल पळ्या षर षात है, जा का सूँना षेत ॥१४॥

पाठभेद—परमेश्वर-३-५। व्यरह-२। तहाँ-१। न्यहचल-५। प्रितपाल-३। मध्य-१।

शब्दार्थ—टेक=जिद, आग्रह। वेदनि=पीडा। दया=अहिंसा। आरंभ=सकाम कर्म, यज्ञादि। गळ्या=रुप गया। भीवर=मछुवा। सुरभष=सुकाल, जमाना। ष्याल पळ्या=संसार के खेल मे पड जाने से। षर=गधा।

× बगुला पानी मे बैठ निरन्तर ध्यान करता है पर उस ध्यान का लक्ष्य मछली की हिंसा है। अतः इस तरह वक-ध्यान लगाने से लक्ष्य-प्राप्ति नही हो सकती।

प्रांण सनेही सोइ मां, सुमरि सनेही रांम ॥
अलप आव आलस कहा, सुपना का सा कांम ॥१५॥
बार बार तो सूँ कहूँ, तूँ करै न अपणा काज ॥
गोविंद भज जीवण इसा, जिसा वील का राज ॥१६॥
काल कहर चितवत रहै, तकि तकि रोपै डांण ॥
डांण पड्यां कहि कहा करै, अज्या सिंघ सूँ मांण ॥१७॥
गोरू ग्वाल ही छाड़ि करि, षेत विडाणा षाइ ॥
मार सहै संकटि पड़ै, संकटि पड़ि पछिताइ ॥१८॥
आप सराहै आप कूँ, चाहे मांनि सुहाय ॥
साहिब साध न आदरै, यौ ही बड़ा अभाग ॥१९॥
साध तहां निरवैरता, जहां वैर तहां प्रेत ॥
परमेसुर पति छांड़ि करि, नरक जांण सूँ हेत ॥२०॥
मन मरकट मति छाड़ै नहीं, कूरम मति सूँ दूर ॥
उलू आंषि अछौप है, तौ दोस कहा कहि सूर ॥२१॥
चिंता की डाली भई, सुसा प्रांण ता मांहि ॥
काम क्रोध आंध्या अड्या, मरणा सूझै नांहि ॥२२॥
पांच स्वान पांचूं दिसा, आइ पहूँता वीर ॥
कुवधि काल चितवत रहै, तकि तकि मारै तीर ॥२३॥
मोह पासि करि काल कै, फांध्या सब संसार ॥
मिरघ तहां पगि मति धरै, यौ ही अरथ विचार ॥२४॥

पाठभेद—सुमिरि–१। सुमर–५। कहौ–१-५। जीवन–३। क्या–३-५। अजा–१। नरकि–२। मत–३-४। च्यंता–२। कुबुधि–१।

शब्दार्थ—सोइमां=सोवे मत। आव=आयु। वील=जुगनू। डाण=दाव, मौका, कर। गोरू=गाय-बैल। विडाणा=दूसरो का, औरो का। आदरै=सत्कार करे। मरकट मति=चंचल बुद्धि। कूरम मति=अन्तर्वृत्ति। अछौप=अदृश्यता, नही देखना। डाली=छबड़ी, पीजरा। अड्या=अटका, रुका। पांच स्वान=काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय। फांध्या=फँसाया। मिरघ=मन मृग।

रांवण सूँ मन मति मिलै, न करि कंस सूँ प्रीति ॥
ब्रह्मा का वर छाड़ि दै, संकर का वर जीति ॥२५॥
तिण परि किण की वोस की, जीवण ऐसा जांणि ॥
रांम सनेही सुमरि मन, सुरति सहज धरि आंणि ॥२६॥
विष तरवर नैं फल जड़ै, सो फल विष ही होइ ॥
ताकूँ साध न आदरै, कोटि करै जै कोइ ॥२७॥
भरम छाड़ि भरमै कहा, करम कठिन छिन वात ॥
राम कहत झड़ि जांहिगा, ज्यूँ तरवर का पात ॥२८॥
निसप्रेही निरभै मतै, सूंनि सुधा रस षाइ ॥
उलटा षेलि आकास मैं, सुष मैं रहै समाइ ॥२९॥
लोकारंजन होत है, मनिष जनम का भंग ॥
हिरस धका दे जात है, इहै स काचा रंग ॥३०॥
जहाँ आपौ तहाँ ऊरमी, हरस तहाँ विभचार ॥
ए दोन्यों मोटी व्यथा, संतौ करौ विचार ॥३१॥
राम रसाइण अजब है, दूजा रस करि दूरि ॥
या वेदन कूँ हरि जड़ी, है हाजरां हजूरि ॥३२॥
नैडा है न्यारा नहीं, न्यारा नैडा नांहि ॥
परमेसुर सब तैं अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ॥३३॥

पाठभेद—भ्रघ–२। मृघ–२। मृग–५। जाइगा–५। न्यस–२। हरसि–१। हरस–२। अहैस–३। ये–२। व्याप–१।

शब्दार्थ—किणकी=फुंहार, लघुबिन्दु। निसप्रेही, निःस्पृह बेलाग। सूंनि-सुधारस षाइ=निराधार वृत्ति से आत्मनिष्ठ हो परमानन्द रूपी अमृत का पान करे। उलटा षेलि आकास मैं=अन्तर्मुखवृत्ति हृदयाकाश मे स्थिर करे। लोकारंजन=जाति-कुल व्यवहार में। हिरस=चाह, आसक्तिमय प्रेम। ऊरमी–षट्ऊर्मि=हर्ष, शोक, लोभ, मोह, मद, इर्ष्या। मोटी=बड़ी, महान्। दूजा रस=भोग-वासनामय रस। हाजरां हजूरि=सब काल मौजूद।

साखी २५-वी रावण सूं मन मत मिलै=कामरूपी रावण क्रोधरूपी कंस से सम्बन्ध मत जोड। ब्रह्मा का वर=सांसारिक पदार्थों की ममता छोड़। शंकर का वर=रजोगुण की भावनाओ को जीत।

मन मैला हरि निरमला, मन चंचल हरि थीर ॥
मन थिर होइ न हरि मिलै, सांभलि आतम वीर ॥३४॥

अवगति भजि आलस कहा, इहै बाधक फंद जांणि ॥
रांम विसारयां होत है, मनिष जनम की हांणि ॥३५॥

ज्यूँ मकड़ी माषी गहै, कंठ पकड़ि ले जाइ ॥
यूँ निगसावा जीव कूँ, काल विधूंसै आइ ॥३६॥

माया दीपक देषिये, रांम न सूझै पीव ॥
आप अंधारे आपकै, पड़ि पड़ि दाझै जीव ॥३७॥

धरम नेम तीरथ वरत, तुला तुलत है जाइ ॥
छाज बजावे डोकरी, ऊँट षेत कूँ षाइ ॥३८॥

राजा की चौरी करै, दुरै रंक की वोट ॥
रंक वोट कहि क्यूँ टलै, कहर काल की चोट ॥३९॥

षांट गाइ करि वारणै, सुषी न देष्या कोइ ॥
लात मारि चलि जात है, भाजन का भग होइ ॥४०॥

जल माया जिव माछली, षुसी वसै ता मांहि ॥
काल कीर वाँसै वहै, निहचै छाड़ै नांहि ॥४१॥

लोक लाज सिर देत हैं, देत न लावै वार ॥
सिर साहिब कूँ सौंपतां, तूँ क्यूँ करै विचार ॥४२॥

सती जलै सूरा मरै, कठिन वात पल कांम ॥
निसप्रेही निज साधकै, राति द्योस संग्राम ॥४३॥

पाठभेद—नृमला–२। आत्म–४-५। यहै–३ एह–५। बधिक–१। विधौसे–१-५। दीपग–२-५। व्रत १। क्यौ–३-४। लोग–१। दिवस–१।

शब्दार्थ—मैला=वासना से कलुषित। थीर=स्थिर, निश्चल। निगसावा=स्वामिहीन, गुरुहीन, विना सहायक, निस्सहाय। विधूंसै=नाश करे। माया दीपक=भौतिक दृष्टि से। ऊँट=अहंकाररूपी ऊँट। दुरै=छिपै, ओट ले। भाजन=वर्त्तन। वांसै वहै=साथ चलता है। राति द्योस=रातदिन।

के अन्तर्गत हमें भक्ति भावना के उदाहरण तो मिल जाते है, किन्तु वैसी भक्ति साधना भी नही पायी जाती जैसी संतवानियों मे उपलब्ध है। ये लोग अपने समय मे प्रवाहित भक्तिधारा की ओर उन्मुख अवश्य जान पडते हैं, किन्तु ये इसके साथ ही उसके प्रवाह मे पडने की ओर प्रवृत भी नही प्रत त होते जिसके आधार पर यह परिणाम निकाल लेना भी कदाचित्, अनुचित न कहा जाय कि, यद्यपि उन दिनो की सैद्धांतिक दृष्टि लगभग एक ही जैसी क्यों न लगती रही हो, जहां तक साधना-विशेष के अपनाने का प्रश्न है, सभी साधक केवल एक ही मार्ग का अवलवन पसन्द नही करते थे। जिन लोगो के ऊपर अभी तक नाथ-पन्थ का प्रभाव अधिक रह गया था वे उसकी परम्परागत साधना को ही महत्व देते थे और उनकी ओर से भक्ति साधना को अभी तक गौण स्थान दिया जाता था, किन्तु अन्य लोग क्रमशः प्रथम का न्यूनाधिक परित्याग भी करते जा रहे थे। फलत., हम इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते है कि, उन दिनो के इन महापुरुषों मे हमे जो कुछ अन्तर दीख पडता है उसे हम उक्त मात्रा भेद का ही परिणाम कह सकते है, इसके लिए हमे उनकी मौलिक विचारधारा के उदय तक भी पहुंचने की वैसी आवश्यकता नही। यहा पर केवल इतना और भी उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की दशा, सम्भवतः सम्वत् १६०० के लगभग तक, अथवा इसके कुछ ही आगे तक, बनी रह पायी और उसके अनन्तर भक्ति साधना मे लोकप्रियता के फलस्वरूप आई हुई समन्वयात्मक वृत्ति और सांप्रदायिकता का प्रचार एक साथ आगे बढा तथा जिस मानसिक संतुलन को सब किसी ने तब तक एकसा बनाये रखने की चेष्टा की थी उसमे अस्थिरता आने लगी। उस समय प्रचलित सगुणवादी भक्ति-साधना द्वारा इस प्रवृति को विशेष बल मिला। फलतः जिस मनः स्थिति वा मनोदशा को पहले हम किसी मनोवैज्ञानिक तथ्यमात्र के ही रूप में प्रकट कर दिया करते थे उसकी ओर अब किसी भौतिक स्थानविशेष जैसा भी निर्देश किया जाने लगा। उदाहरण के लिए जब 'निरजन' शब्द स्पष्टतः पुरुष वाचक बन गया तो उसे केवल ब्रह्मवत् अनुभव करने की मानसिक दशा का भी सूचक समझना स्वभावत. उसी प्रकार उपयुक्त नही रह गया जिस प्रकार उपनिषदों के समय मे मान लिया जाता था। अब, नवीन परिस्थिति के अनुसार, उस निरंजन पुरुष के किसी 'वास', 'थान', वा 'हाट' तक की भी कल्पना की जाने लगी, तथा उसके निकट लगे रहने को अभिलाषा प्रदर्शित की जाने लगी जैसा हम, अभी इसके पूर्व, स्वा० दादूदयाल की रचनाओ से, निरंजनसबधो प्रसंगों के कतिपय उद्धरण देने के प्रसंग मे भी, देख आये हैं।

इस प्रकार, यदि उक्त निष्कर्ष किसी प्रकार साधार एवं स्वीकार-योग्य ठहराया जा सके उस दशा मे, हमारे लिए यह अनुमान करना भी अस्वाभाविक नही कि स्वा० हरिदास का आविर्भाव, संभवतः, स्वा० दादूदयाल के पहले हुआ होगा तथा यदि, वास्तव में, उन्हे ही निरंजनी संप्रदाय का प्रवर्तक भी सिद्ध किया जा सके तो उसे दादू-पथ से प्राचीनतर भी मान लिया जा सकता है। तदनुसार

अजब बात पैंडा अगम , जीव जागि सकै तो जागि ॥
मन मज्जन तोहूँ कहूं , यहु वीरा रस वैरागि ॥४४॥

कजली वन रेवा नदी , गै राषै मन मांहि ॥
ऐसे हरि सूँ मन मिलै , तौ फिरि विछुड़ै नांहि ॥४५॥

पैंडे मरै तौ परमसुष , पहुँता हरि समि होइ ॥
जन हरीदास हरि भजन की , घाटी लहै न कोइ ॥४६॥

जन हरीदास कहि क्यूँ दुरै , रांम भजन रस रीति ॥
भृकुटी मांही देषिये , जाकै जैसी प्रीति ॥४७॥

॥ इति वीरारस वैरागजोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ भरमविधूंस जोगग्रन्थ ॥

आलम षलक ऊपरै षालिक , करता करण वरण विसतार ।
वसुधा तुया अगनि तत वाई , रवि ससि सोभा भार अठार ॥१॥
चौदा भवण गवण गुण ग्रामी , तारामंडल रचण त्रिय लोक ।
सागर सपत अष्ट गिर परवत , नदी निवासै वहै अलोप ॥२॥
स्यो सम्भि सक्ति विष्ण ब्रह्मादिक, नव घण दांमणि इंद्र कुमेर ।
षांणी च्यारि च्यारि विधि वांणी, घटि घटि अहुँ मंडाणा मेर ॥३॥

पाठभेद—गह–१ । स्यूँ–१ । सौ–५ । विछुरै–१ । भ्रकुटी–१ । विस्तार–१ । त्रय–१ । सप्त–३ । असट–२ । सकति–२ । विसन–२ । नौ–१-३ । चारि चारि–१ । चहु–१ ।

शब्दार्थ—अजव बात=आत्मचिन्तन में लगना अजब अनोखी वात है । पैडा अगम=मार्ग निराधार है । गै=गयन्द, हाथी । विछुडै=अलग हो । घाटी=कठिन रास्ता । क्यूं दूरै=क्यों छिपै । भृकुटी=आंखो मे । आलम=सर्वज्ञ । षलक=संसार । तुया=पानी । भार अठार=अशेष वनस्पति । चौदा भवण=चौदह लोक । त्रिय लोक=पाताल, भू, स्वर्ग । स्यौ सम्भि सक्ति=शक्ति सहित शिव । कुमेर=कुवेर । षांणी च्यारि=चतुर्विध सृष्टि-अंडज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज । च्यारि विधि वाणी=परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी । अहुँ=अहङ्कार । मंडाणा=बना हुआ । मेर=मेरु पर्वत ।

सुर नर असुर षसै आप मैं , माया दडी स ममता जेरि ।
षेलि षिरचा कै अजहूं षेलसि , माया घटै न ममता फेरि ।।४।।

ब्रह्मा कै वरसि अनंत जुग वीचै, सोई ब्रह्मा डरै विघन वप काल ।।
वोछी आव अणुरा षोटा , ए झूठे सुष झूठा मोपाल ।।५।।
वांणी तजि कठिन कुव खिकरि कानैं, सुमरि सुमरि अंतरि निज सार ।।
निज पुरिष निरषि निरषि निज नैडो, जन हरीदास हरि परम उदार ।६।
हैवर गैवर गांव गढ़ , महल मगन रस राज ।।
छत्र सिंघासण सेझ सुषि , वाजा गहरी गाज ।।७।।
नरपति भोपति दरि षड़ा , सिजदा तन तोलंत ।।
जा दिसि देषैं सौ नवैं , हुँकारै वोलंति ।।८।।
तषत षड़ा कौड़ी षुसी , राता काचै रंगि ।।
अरक अगनि मैं ऊजला , वो हरि हीरा नहि संगि ।।९।।
माल मुलक पुंगडा पुहौंम , षग पतिवरता नारि ।।
कर जोड्या आगै षड़ी , अरस परस दीदार ।।१०।।

पाठभेद—अणौरा-५ । ये-२ । भूपाल-२ । दिस-४ । पुहम-१ । पतिभरता-१ ।

शब्दार्थ—कांनै=एक ओर । निज नैडो=अपने अति समीप । हैवर=घोडे । गैवर=श्रेष्ठ हाथी । दरि षडा=आगे खड़े । सिजदा=नमस्कार, सलामी । पुंगडा=बाल-बच्चे । पुहौम=भूमि, राज ।

४थी साखी—ममतारूपी छोटी मायारूपी दडी को लेकर मनुष्य, देवता, राक्षस षसै-लडते हैं, खेलते है । बहुत से खेलकर धाप गये, बहुत से और खेलेंगे । पर यह ममता तथा माया का फेर कभी न घटता है, न कम होता है ।

५वी साखी-ब्रह्मा के एक वर्ष मे अनेकों युग बीत जाते हैं । वही ब्रह्मा काल-रूपी विघ्न से डरता है । तब अति अल्प आयु वाले हे मनुष्य ! तू व्यर्थ ही इन झूठे सुख देने वाले मायिक पदार्थों में क्यों उलझता है ?

९वी साखी—सिंहासनो पर बैठने वाले बादशाह कौडी-राज्यसंपत्ति आदि सामग्री मे ही खुशी है, प्रसन्न है । पर उनका यह सब साज-बाज विनाशी है, कच्चा रंग है । जो सूर्य तथा अग्नि को प्रकाश व ताप देने वाला चेतन तत्वरूपी हीरा है, वह हीरा उसने प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया । अतः उसका जागतिक प्रयास व्यर्थ है ।

राग कलावंत हुड़कणी, काजी मिसर वमेक ॥
अगम उरक अंतरि नहीं, वैली कथा अनेक ॥११॥
वहौ विधि वागा वहु सषी, वहौ सौंधा वहु पान ॥
वहौ विधि भोजन वहु रतन, हीरां जड़त पलांण ॥१२॥
हेम जड़त हथ सांकलां, गज्ञि मोतिन की माल ॥
या जल मैं बूड़ा घणां, ऊँडो अनंत अताल ॥१३॥
हरि तजि परकीरति रता, साच न मांनै कोइ ॥
के दाधा के दाझसी, या दीवा की लोइ ॥१४॥
पांच कडी षडकै सदा, त्रिवधि ताप का जाल ॥
के मारया के मारिसी, कांठै उभौ काल ॥१५॥
लंकापति रांवण कहां, कुंभकरण कहाँ वंस ॥
हिरणाकुस हिरणाषि कहां, महिसासुर कहां कंस ॥१६॥
जुरासिंध सिसपाल कहां, दुसासण कहां भींव ॥
कैरुंदल पांडु कहां, षगां जू पडती सींव ॥१७॥
छ चकवै मुचकन्द कहां, कहां विक्रम कहां भोज ॥
सांवत प्रथी चौहाण कहां, कहां अकबर नौरोज ॥१८॥
एती मन तोसूँ कहूं, सुणि सति सोभा कानि ॥
मैं तैं तजि तूँ राम भजि, कह्यौ हमारो मानि ॥१९॥

पाठभेद—मिश्र–१। वहु–१। जडित–१। प्रकीरति–१। त्रिविधि–१। महिषासुर–१ जुरास्यंच–२। स्यसपाल–२। सिसुपाल–१। कैरो–१। पंडो–१। प्रथी–२। प्रिथी–४। येती–२। तज्य–२। भज्य–२।

शब्दार्थ—वागा=कीमती पोशाक। सौधा=इत्र। ऊँडा=गहरा। परकीरति रता= त्रिगुणात्मक प्रकृति के पदार्थों मे लगा हुआ। दाधा=जला। दाझसी=जलेगे। पांचकडी=शब्दादि पाच विषयो की कड़ी। त्रिवधि ताप=आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक। काठै=पास, समीप। षगां जू=फौज मे, सेना मे। सीव=सीमा, फटाव। सति शोभा=सत्य की शोभा।

११वीं साखी—कलावतों के गाने, पंडित-काजियों के उपदेशादि अनेक प्रवृत्तिया निश्सार हैं, जो अगम्य आत्मतत्व है उसको देखने के लिए जब तक ज्ञानभानु का उर में उदय न हो, तब तक अन्य उपर्युक्त सब प्रयास व्यर्थ है।

षूंणै बैठा क्या करैं, करि कछु वेगि उपाइ ॥
अलष पुरिस कैं आसरै, चौडे मंडे न आइ ॥२०॥

दुषदारण दुरमतिहरण, मैं तैं हरण गुमान ॥
त्रिवधि ताप तृष्णा हरण, भजि भूधर भगवान ॥२१॥

गरव गुमान आपां हरण, तारण तिरण मुरारि ॥
वोछामन पूराकरण, हरि भजि भेद विचारि ॥२२॥

कांम क्रोध पांचो पिसुण, दुष सुष नदी विकार ॥
ए दीरघ वोछा करण, भजि भौ भंजनहार ॥२३॥

साच कहूं तो मैं डरूँ, कहिस्यूँ रह्यो न जाइ ॥
राम संतोष्या सकल सुष, भावै दुनिया रहौ रिसाइ ॥२४॥

रामरसिक हरिरस षुसी, आन रसिक रीसांहि ॥
हरीदास जन यूँ कहै, मैं हरि छाड़ो नांहि ॥२५॥

राम न छाड़ौं मैं डरूँ, ऊँडै षसै वलाइ ॥
पतिवरता पति कूँ तजै, तब ही षोटा षाइ ॥२६॥

प्यास्या जब ही जल पिवै, तब ही आनंद होइ ॥
विष की किरची मेल्हि करि, पीयां न जीवै कोइ ॥२७॥

आल वाल करता फिरै, साध हौंण की सोम ॥
पैलै मनि देषै पतित, मन अपणां की षोभ ॥२८॥

जन हरीदास दुनियां तरक, राम भजन की टेक ॥
लागि रह्या ते ऊबरचा, दाधा और अनेक ॥२९॥

पाठभेद—पिसुण–१। ये–२। दीर्घ–१। कहिस्यूं–१। यों–१। छाड़ूं–३–४। डरौ–१–५। पतिव्रता–१। प्यासा–१। हूंण–५

शब्दार्थ—वोछामन=ओछा मन, संसारी वासना में लगा मन। वोछा=छोटा, क्षुद्र। कहिसूं=कहूँगा। रीसांहि=नाराज होंगे। आल-वाल=टालमटोल, इधर-उधर। होण की=होने की। षोभ=क्षोभ, खीज।

जन हरीदास दुनियां तरक , विकट रूप विष झाल ।।
साँच कहूँ तौ लड़ि पड़ै , मिलि षेलूँ तौ काल ।।३०।।

।। इति भरमविधूंस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। अथ चिंतावणी उपदेस जोगग्रन्थ ।।

आन ध्यांन गुर ग्यांन विणि , चलत देह कै भाइ ।।
अपणां षोटा ही षरा , करि षोटौ षोटा षाइ ।।१।।
मन मछली करि कीर कै , गिण्यां भरत है सास ।।
लोभ जाल लागा रहै , विपति नदी मैं वास ।।२।।
अपरि अथिर षर करत है , चिर सुष पल न सुहात ।।
इतवत चितवत विवधि रस , अलप सुष छिन मात ।।३।।
वालक कालै ना डरै , देत सरप मुषि हाथ ।।
कै चाल्या कै चलेगा , मरि अनरथ उरि वाथ ।।४।।
छाया छवि काया उदै , देह दिवासा होइ जात ।।
बड़ा हुवा दीया बुझ्या , विपति वड़ाई वात ।।५।।

पाठभेद—षेलौं–१ । इतउत–३ । षिर–५ । छिव–१ ।

शब्दार्थ—आन=मर्यादा, कांण । विणि=बिना । षोटो=बुरा, देहाध्यासी । करि कीर कै=धीवर के हाथ में । अपरि अथिर षिर करत है=मनुष्य संसार मे आ और और नष्ट होने वाले कामो मे ही लगा रहता है ।

४थी साखी—बालक-अज्ञानी मनुष्य काल से डरता नही, विषय-वासनामय सर्प के मुख मे हाथ देता है । अनर्थ को अपनाने से या तो नष्ट हो गया या हो जायगा ।

५वी साखी—बच्चे मे छाया छवि-माता पिता का प्रतिबिब होता है, उसीसे उसके शरीर का बिकास होता है । तरुणावस्था मे उसी से लावण्य प्रतीत होता है । पर बड़ा हुआ बुढापा आया तो वह लावण्य समाप्त हो जाता है काल पाकर देह का नाश हो जाता है, ऐसे शरीर का गर्व करना विपत्ति बढाना है ।

झटकि पटकि आसा अटकि, भटकि धरत उरि काच ।।
त्रिवधि ताप मैं सोइ रह्या, समझि न देखे साच ।।६।।
चंचल चपल जम चोट सिरि, दुरया देह की वोट ।।
आठ पहर अचवत जहर, कहि कौंण जनम का षोट ।।७।।
षट मद् छक उद्माद् छक, छक माया छक आंन ।।
पाव धरत छाया तकत, पसरि करत षप पांन ।।८।।
डिंभ सिंभ इन्द्री अटकि, चलौ लहौ येक लोभ ।।
लहौ गहौ गलि मिलि रहौ, है हरि सब सतन की सोभ ।।९।।
तमकि धमकि ततगति पतित, काल ठगत ठग तोहि ।।
मोह मंढी में सोइ रह्या, इहै अचंभा मोहि ।।१०।।

पाठभेद—कूंण-१। स्यंभ-२। इक-३। गहि-३।

६ठी साखी-झटपट सचेष्ट हो भोगो की आशा को रोक। इन भोगो मे भटक हीरे के भरोसे काच क्यों ग्रहण करता है? क्यो त्रिविध तापो से संतप्त हो रहा है? समझि-सचेत हो जो सत्य आत्मचितन है उसमे लग।

७वी साखी—अरे नटखट दुराग्रही चपल मन! देहाध्यास की ओट-आड ले क्या? यम-काल की चोट सिर आती है उससे बच सकेगा। निरन्तर विषय-वासनारूपी जहर को पी रहा है। अरे! यह किस जन्म का पाप है?

८वी साखी—रे मन! षट मद छक-छै मदो (जाति, रूप, विद्या, राज, धन, पद) मे मस्त है-उन्मत्त हो रहा है, माया के फेर मे पागल है, गर्व मे अन्धा हो रहा है, पैर धरती पर नही टिकते हैं, छाया देख-अपना प्रतिबिम्ब देख देख अकडता है संसारी उलझनों मे फँस भेदमय विष को पी रहा है। चेत इस सबका परिणाम क्या होगा? विचार और इनसे अपने को मुक्त कर।

९वी साखी—डिंभ सिभ पाखंड तथा ठगी की आड़ मे इन्द्रियलोलुपता की पूर्ति करते रहना मनुष्यजन्म का लक्ष्य नही है। मानवजीवन की सफलता आत्म-प्राप्ति में है। उसी लक्ष्य की पूर्ति के साधनो मे घुलमिल जाओ, तद्रूप बन जाओ। सब महात्माओं ने इसी उद्देश्यपूर्ति को शोभनीय बताया है।

१०वी साखी—संसारी भोगो मे उछल-कूद कर उस परमतत्व की प्राप्ति के प्रयास मे तू पिछड़ रहा है। कालरूपी ठग तेरे को ठग रहा है। तू मोहरूपी महल मे निश्चिन्त सो रहा है। तेरी इस स्थिति को देख बड़ा अचम्भा हो रहा है।

अईयाह अकलि कहिये कहा, सू तौ कौंण उपदेस ॥
मनिष जनम नग परमदत, कुपह करत क्यों पेस ॥११॥
तूंबी तजि सति गति गजत, लजत वजत लघ लोभ ॥
तिरत तकत बिचि ही थक्या, अईया चढ़त है सोभ ॥१२॥
चमक चेति चकत भया, जहाँ तहाँ जल पूरि ॥
आसा वसि चिंता डस्या, सू तौ घाट कहुँ दूरि ॥१३॥
हरि करौ दया द्यो मिहरि परि, उर धरि ऊँडौं आज ॥
पीव जीव मरि जाइगा, सुखत समंद की गाज ॥१४॥
विवधि अवधि गति मति गई, है बाकी भी जात ॥
चिंता चिंत चित मैं वसैं, चित मैं भी चिंता की वात ॥१५॥
ठगत ठगत ठग ठगि गया, वुग उजल वैठा आइ ॥
गत जोवन जीती जुरा, चल्या देह छवि छाइ ॥१६॥

पाठभेद—कुपहि–२। क्यू–२। तज्य–२। अया–१। चक्रित–१। चकृत–३। च्यंता–१।

शब्दार्थ—अईयाह=यह। नग=रतन। परमदत=सर्वश्रेष्ठ धन मानवजीवन। कुपह=कुमार्ग। पेस=हाजिर। द्यो=देवो। मिहरि परि=दया के साथ।

१२वीं साखी—तूंबी-पात्र का परित्याग कर अपने को परम त्यागी दिखाता है पर समय आने पर लोभ को लेकर झगडता है। यह दिखावा तो तिरने का करता है पर झूठी शोभा के लालच मे पार न पहुंच बीच ही मे थक जाता है।

१३वी साखी—चेति–उपर्युक्त दशा से जब चेता–सावधान हुआ तो चमक चकित हो देखने लगा। तो वासना, तृष्णामय समुद्र भरा है। आशा के वशीभूत चिन्ता से डसा हुआ है, जिस संसार सागर से पार–अगले किनारे पहुँचना है वह घाट तो बहुत दूर है।

१५वीं साखी—ससार के अनेक प्रपंचों मे ही बुद्धि तथा आयु चली गई, जो कुछ शेष है वह भी जा रही है। नाना भावनाओ की चिन्ता चित्त मे बसी हुई है साथ ही मन मे कालचक्र की स्मृति भी पैदा होती है, पर इन सब उलझनों से मोह तथा अज्ञान के कारण छुटकारा नही मिलता।

१६वी साखी—मिथ्या, छल, कपट से जो मनुष्य दूसरों को ठगने-धोखा देने में लगा रहा, वह स्वयं भी वासना, तृष्णा, लोभ मोह द्वारा ठगा गया। इसी उधेड-बुन में बगुले की तरह देह का लावण्य, सौन्दर्य खो मनुष्य जन्म को व्यर्थ खोकर कालकवलित हो गया।

तन जीरण धूजत डरत, मरत मुदित अभिमांन ॥
लोकलाज सुधि बुधि गई, पसरि करत पष पांन ॥१७॥
धमकि न धर पांव धरि सकै, नैंण झरत धुनि सीस ॥
कर कंपै श्रवणां असुण, अजहुं भजत नहिं ईस ॥१८॥
वारौडी बैठो रहै, बोलै तौ मुषि छारि ॥
कटुक वचन सब सिरि सहै, वह्या मोह की धारि ॥१९॥
सवद कहत रसनां अटत, नटत घटत नहिं घाट ॥
लटकि लटकि लुटि लुटि उठत, तकत टटोलत पाट ॥२०॥
जीव हलचल धरती धरया, मरत कुटंब सूँ हेत ॥
यूँ करियो यूँ मति करो, सीष अजहुँ यह देत ॥२१॥
इहै विरति सब जीव की, देत काच समि हेम ॥
जीव काया तरवर तजि पंषी चल्या, वहौड़ि कुटंब सूँ पेम ॥२२॥
आंन ध्यान गोविंद विमुष, दुरया काल की छांह ॥
तात मात नौतन कुटंव, नौतन भाई वांह ॥२३॥

पाठभेद—नैंन–३ । कुटक–३–४ । यौ–१ । अजौ–१ । गोव्यद–२ ।

शब्दार्थ—वारोडि=बाहर, द्वार पर । अटत=अटकती, लडखडाती । विरति=वासना, चाह । आन ध्यान=भौतिक पदार्थों की चिन्ता । दुरचा=छिपा । नौतन=नूतन, नवीन ।

१७वी साखी—शरीर जीर्ण हो गया, कापने लगा, मृत्यु भय से भीत है पर फिर भी अभिमान मे मर रहा है । समझ-बूझ, लोक-लाज समाप्त हो गई, फिर भी वासना के चक्र मे पड विषयपान के फेर मे है ।

१८वी साखी—धमाके के साथ अब पाव धरती पर नही पडते बुढापे के कारण आंखों मे पानी आता है, सिर कापने लग गया है, हाथ भी धूज रहे है, कानो से सुनना कम हो गया है, तो भी परमेश्वर को याद नही करता ।

२०वी साखी—शब्द बोलते जीभ अटकती है, बुढापा आ गया है पर विषय-वासना की भावना न घटी है, न उससे दूर होने की सोचता है, सहारा ले ले कठि-नाई मे उठ पाता है नेत्रो का जोर लगा खाट को टटोलता है–यह अवस्था होते हुए भी संसारबन्धन से मुक्त होने का विचार उत्पन्न नही होता । कैसी खेद की बात है ?

२३वी साखी—संसारी-भोगो मे ही लगा रहा, परमेश्वर से विमुख हुआ काल को छाया मे छिपा, पर अन्त मे जीवन समाप्त कर नये माता, पिता, भाई, बहन, कुटुम्ब प्राप्ति की भावना लिये चला गया ।

जांणि बूझि बौरा भया, देत सिला तलि हाथ ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन नाथ ॥२४॥

॥ इति चिंतावणी उपदेस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनचरित जोगग्रन्थ ॥

गुरु कीजै कछु ग्यान कूँ, सतगुर ग्यान बताइ ॥
किसि विधि निरभै आतमां, निज तत परसै जाइ ॥१॥
सतगुर चरणां सिर धरूँ, मैं सति पूछौं तोहि ॥
परमसनेही कहां वसै, कहि समझावौ मोहि ॥२॥
को मुरीद माला कहां, लीजै कवण बुलाइ ॥
कहां रहिये कहां गाइये, सतगुर भेद बताइ ॥३॥
अवधू मन मुरीद माला मतौ, सुरति सहज घर लाइ ॥
आतम कै असथानि रहौ, अणबोल्या कछु गाइ ॥४॥
स्वामीजी मनहि चरित मनसा लहरि, केता लिया तुड़ाइ ॥
मन ऊँडै ले अणसरै, सतगुर भेद बताइ ॥५॥
अवधू मन कूँ पालिवा अगम कूँ चालिवा, अगम कै आसरै प्राण लावे ॥
रूप विणि राचिवा मद विणि माचिवा, तौ काल की चोट मैं
कौण आवे ॥६॥

पाठभेद—किहि–१। त्रिभै–१ प्रसै–१। धरौं–२–५। पूछूं–२-३। कौण–५।
औघू–१। च्यरित–२।

शब्दार्थ—बौरा=पागल। मुरीद=शिष्य, चेला. जिज्ञासु। मतौ=मत, विचार।
अणबोल्या=अजपा जाप। तुड़ाइ=अलग हो, सम्बन्ध छोड़। अणसरै=बिना अटके।

२४वीं साखी—समझबूझ कर भी पागल हो काल की शिला के नीचे हाथ दे रहा है। हरिदासजी महाराज कह रहे हैं—अरे! निर्भय हो काल पर विजयी होने को उस निरंजननाथ को क्यों नही भजते ?

मन है स फूटे भांडे का नीर है स्वांनरूपी रूप करता है फटक मणि
फूस की आगि है , ज्यूँ फूट जावे ॥
मन कै मतै न षेलिवा रे अवधू , मन के मतैं षेलैं सो षोटा पावे ॥७॥
स्वामीजी सति का सवद विचारिवा फूस की आगि तैं कौंण मन बोलिये
फूटे भांडै कै नीर तैं कौंण मन बोलिये, कौंण मन फटकमणि ज्यूँ फूट जावे ॥
स्वानरूपी कौंण मन बोलिये , कोण मनवा अभेदी ना भेद पावे ॥८॥
अवधू फूटे भांडे का नीर बोलिये, जे पाँचों चूरा चरैं ॥
फूस की आगि बोलिये , जे दसों दिसा परजरैं ॥
स्वांनरूपी रूप करतां परम झांई पड़ै, फटकमणि ज्यूँ मन फूटि जावे ।
उलटेगा मन मन को वेधेगा , तब यौं ही मन हीरा कहावे ॥९॥
स्वामीजी मन कै कौंण राह कौंण चाल, कौंण मूल कौंण डाल ॥
परमभेद तैं कौंण मन लहै , सतगुर होइस बूझ्यां कहै ॥१०॥
अवधू मन के मनसा राह अनंत चाल, धीरज मूल मोह डाल ॥
उलटा षेलि मन मन कूँ गहै , तौ मन कै अग्र परम निधि लहै ।११।
स्वामीजी मन कै कौंण रूप कौंण चाल, कौंण रंग कौंण काल ॥
कौंण असथांनि मन उनमनि रहै, कौंण असथांनि मन अगहा गहै ।१२।
अवधू मन कै बहौतरि रूप दोइ चाल, तीनि रंग सहज्य काल ॥
गगन असथांनि मन उनमनि रहै, नाभि असथांनि मन अगहा गहै ।१३।
स्वामीजी कौंणस मैंगल कौंणस भोई, कौंण महावत कौंणस छोई ॥
वेड़ी कौंण परसि मन जीवे , प्यासा कौंण कहां मन पीवे ॥१४॥

पाठभेद—पूछचा–१ । अगरि–१ । अग्र–३ । बहूतरि–१-३ । सहज–३-४ । प्रसि–१ ।

शब्दार्थ—बूझया=पूछने पर । अग्र=आगे, परे । वहौतरि=अनेक तरह के, विविध । दोइ चाल=संकल्प-विकल्प, प्रवृत्ति-निवृत्ति । तीन रंग=सात्विक, राजस, तामस । असथानि=जगह, स्थान । उनमनि=सहजावस्था । अगहा=मन, बुद्धि, इन्द्रियों से पकड़ा न जाय ।

उनके जीवन काल के सं०१७०० अथवा उसके और आगे तक जाने की भी उतनी संभावना नही रह जायगी जितनी उसके सं० १६०० तक ही पहुँच पाने के लिए हो सकती है और फलत. यह असभव नही कि उनका जन्म सं०१५१२ मे हुआ हो तथा उनके देहात का समय सं० १६००[1] वा १५६५ रहा हो। इसे स्वीकार करने में हमें कुछ कठिनाइयो का सामना अवश्य करना पड सकता है जिस कारण उन पर विचार कर लेना भी उचित होगा। सबसे बडा प्रश्न हमारे सामने यह आ सकता है कि यदि, वास्तव मे, उनका देहात- सं० १६०० तक हो गया था उस दशा मे, इस बात का समाधान क्या होगा कि, स्वयं उनकी ही एक साखी के अंतर्गत, सम्राट अकबर के मर चुकने की जैसी चर्चा आती है, जब कि उसका देहात सं० १६६२ में हुआ था। जैसे,

"छ चकवै मुचकन्द कहां, कहां विक्रम कहां भोज ॥
सावंत हथी चौहाण कहां, कहां अकबर नौरोज ॥१८॥"[2]

अर्थात् (कालने सब किसी को ग्रस लिया), अब न तो प्रसिद्ध छ चक्रवर्ती राजा (वेनु, वलि, कंस, दुर्योधन, पृथु और विक्रम) रह गये, न मुचकुंद व विक्रम और भोज रहे और न चौहान वंशी सामंत पृथ्वीराज अथवा नौरोज के लिए प्रसिद्ध अकबर ही बच सके। ❋ यहा पर यदि साखी का पाठ सर्वथा शुद्ध और प्रामाणिक हो और यह प्रक्षिप्त भी सिद्ध न की जासके उस दशा मे, यदि इसके रचयिता का अभिप्राय यहां पर सम्राट् अकबर से ही हो तो, उसे इसका पूर्ववर्ती ठहराया जा सकता है, इसमे संदेह नही। परन्तु, जहा तक पता है, सम्राट् अकबर के नामके साथ अन्यत्र कही 'नौरोज' का विशेषण देखने मे नही आता और न, इस शब्द के केवल किसी महान् धार्मिक उत्सव का वाचक होने मात्र के ही कारण, इसके विशिष्ट प्रयोग की यहा पर कोई उपयुक्तता ही प्रतोत होती है। अतएव, हो

---

१. प्रस्तुत पुस्तक, 'भूमिका'-भाग, पृष्ठ ५६।

२. प्रस्तुत पुस्तक (भरम विधूंस जोग ग्रंथ सा० १८), पृष्ठ ८२।

❋ यहा पर 'छ चकवै' के अंतर्गत यदि विक्रम का नाम लिया जाता हो तो, साखी मे फिर आये हुए 'विक्रम' शब्द के कारण, द्विरुक्ति का दोष पाया जा सकता है। प्रसिद्ध चक्रवर्तियो की सख्या जहा ७ की बतलायी जाती है वहा इस प्रकार कहा गया है—"भरतार्जुन मान्धातृ, भगीरथ युधिष्ठिरा.। सगरो नहुषश्चैव सप्तते चक्रवर्तिन." जिस मे उक्त 'छ चकवै' में से किसी काभी नाम नही है। वैसी दशा मे 'नौरोज' शब्द का प्रयोग संभवत. उसी प्रकार हुआ होगा जिस प्रकार 'दादा भाई नौरोजी' मे दीख पड़ता है और 'नौरोज' यदि स्वय व्यक्ति वाचक संज्ञा हो उस दशा मे 'अकबर' शब्द का ही अर्थ 'महान्' वा 'बड़ा' किया जा सकता है।—ले०।

अवधू मनस मैंगल धीरज भोई, ग्यांन महावत ध्यानस छोई ।।
वेडी प्रेम परसि मन जीवे, प्यासा प्रेम सूंनि रस पीवे ।।१५।।

स्वामीजी कौंण कूँ राषिवा कौंण कूँ ग्रासिवा, कौंण करिवा नव षंडं ।।
कौंण सवद ले निरंतरि षेलिवा, कौंण षड़ग लै मेलिवा रवि चंदं ।।१६।।

अवधू मन कूँ राषिवा मनसा कूँ ग्रासिवा, त्रिवधि करिवा नव षंडं ।।
सतगुर सवद ले निरंतरि षेलिवा, ग्यान षड़ग ले मेलिवा रवि चंदं ।।१७।।

स्वामीजी कौंण को मारिवा कौंण घरि आंणिवा, कौंण विधि राषिवा वारी ।।
कौंण के पहरै जागिवा, कौंण असथांनि मिल षेलिवा सारी ।।१८।।

अवधू मन कूँ मारिवा सहज घरि आंणिवा, काया वन राषिवा वारी ।।
सील संतोष ले पहरै जागिवा, गगन असथांनि मिलि षेलिवा सारी ।।१९।।

स्वामीजी कौंण कूँ पकड़िवा कौंण कूँ चरिवा, कौंण का मेटिवा पसारा ।।
कौंण सवद लै निरभै षेलिवा, कौंण सवद गहि वांधिवा पारा ।।२०।।

अवधू मन कूँ पकड़िवा संसै को चरिवा, मोह का मेटिवा पसारा ।।
निरषर सवद लै निरभै षेलिवा, मन पवन गहि वांधिवा पारा ।।२१।।

स्वामीजी कौंण गयास गया कौंण जाता राषणां, उलटी सुरति कौंण रस चाषणां
कौंण रस पीवेगा स जीवेगा, कौंण रस लेणां ।।
कौंण रस विष करि छांड़णां, सो इम्रत करि न पीवणां ।।२२।।

अवधू मन गया सो गया जाता राषणां, उलटी सुरति अगम रस चाषणां ।
पीवेगा स जीवेगा, तत्त रूप लेणां ।।
पांचूँ इन्द्री रस विष करि छाड़णां, सो इम्रत करि न पीवणां ।।२३।।

पाठभेद—पेम–१। म्यल–२। गिगन–१। अस्थांन–१। पांचों–१। यन्द्री–१। इमरति–१।

शब्दार्थ— मैंगल=मस्त हाथी। भोई=सेवक, पालक। छोई=हौदा, झूला, बिछावना। त्रिविध=तीन गुण, तीन ताप। नव षंडं=टुकड़े-टुकड़े कर देना। रवि चदं=प्राण-मन। चरिवा=खा जाना, खत्म कर देना। पसारा=फैलाव, विस्तार। पारा=शुक्र, वीर्य।

स्वामीजी विष रूप तैं कौंण बोलिये , अगनि रूप तैं कौंण छाया ॥
सुष रूप तैं कौंण बोलिये परम भेद तैं कौंण बोलिये, तहां काया न माया २४
अवधू विष रूप तैं ग्यांन दगधी , अगनि रूप तैं काम छाया ॥
सुष रूप तैं परम संगी , परम भेद तैं निरंजन राया ॥२५॥
स्वामीजी कौंण तत पलटिवा कौंण घर आंणिवा, कौंण पुरस लेवा पाली ॥
कौण असथानि मन उनमनि रहिवा, कौंण असथानि लाइवा ताली ॥२६॥
अवधू पांच तत पलटिवा सहज घर आंणिवा, प्रांण पुरस लेवा पाली ॥
अरध असथांनि उनमनि रहिवा , परम असथांन लाइवा ताली ॥२७॥
अवधू भरम का भांडा भांजिवा
त्रिवधि ताप मेटिवा , इला पिंगुला राषिवा नारी ॥
लोभ लू टालिवा वंकनाल वालिवा , तहां देषिवा झिलमिल जोति
उजाली ॥२८॥
स्वामीजी भरम का भांडा तैं कौंण
बोलिये , त्रिवधि ताप तैं कौंन बोलिये ॥
कौंण बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तैं कौंण बोलिये वंकनालि तैं कौंण बोलिये , तहां देषिवा झिलमिल जोति उजाली ॥२९॥
अवधू भरम का भांडा ते मैंचक
बोलिये , त्रिवधि ताप तीनि गुण बोलिये ॥
मन पवन बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तें कनक कामणि बोलिये , वंकनाल सुषमनि बोलिये ॥
उलटेगी सुषमना परमसिंध भेदेगी , तहाँ देषिबा झिलमिल जोति
उजाली ॥३०॥

पाठभेद—कूंण-५ । प्रम-१-५ । अस्थान-१-३ । पुरिस-१ । भ्यांजवा-२ । टाल्यवा-२ ।

शब्दार्थ—ग्यांन दगधी=दिखावटी या वाचक ज्ञानी । परमसंगी=चिरसाथी । पांच तत पलटिवा=पांचो ज्ञानेद्रियो को शब्दादि विषयों से हटा आत्माभिमुख करना । प्राण पुरस लेवा पाली=प्राण पुरुष श्वास-प्रश्वास का प्राणायाम द्वारा निरोध करना । अरध अस्थांनि=नाभिप्रदेश । परम अस्थान=गगनमंडल, दशम द्वार ।

अवधू दुष सुष मेटिवा संतोष धरि
रहिवा , सहज समाइवा ते जोगं ॥
हंस सूँ परमहंस मिलाइवा तहां लागि काटिवा काल रोगं ॥३१॥
स्वामीजी दुष सुष का घर कौंण
वोलिये , संतोष का घर कौंण वोलिये ॥
सहज समाइवा ते कौंण जोगं , परमहंस ते कौंण वोलिये तहाँ
लागि काटिवा काल रोगं ॥३२॥
अवधू दुष सुष का घर अहमेव
वोलिये , संतोष का घर समता वोलिये ॥
सहज समाइवा ते परमजोगं ॥
परमहंस पारब्रह्म वोलिये तहाँ लागि काटिवा काल रोगं ॥३३॥
स्वामीजी पांच इन्द्री पचीस प्रकृति , कौंण अस्थानि राषिवा ॥
, कौंण अस्थानि राषिवा वाई ॥
कौंण अस्थानि मन कूँ राषिवा , कौंण अस्थानि रहिवा समाई ॥३४॥
अवधू पाँच इन्द्री पचीस प्रकृति , उनमनि अस्थानि राषिवा ॥
वंकनाल में वाई ॥
मूल अस्थांनि मन कूँ राषिवा , सूँनि अस्थांनि रहिवा समाई ॥३५॥
ज्यूँ कुंभ जल सूँ भरचा जल मांहि
धरचा , अंतरि निरंतरि नीर माया ॥
यूँ मरमि भूला पशू भेद पावे नहीं , सकलव्यापी कहै राम राया ॥३६॥
स्वामीजी कौंण फुनि फुनि षिरै
कौंण भ्रमता फिरै , कौंण के आसिरे सच कौंण पावे ॥
सति का सवद वोलो हो स्वामीजी, काल की चोट में कौंण आवे ॥३७॥

पाठभेद—घर-१ । सहजि-४ । स्यूं-१ । मिलायव-२ । प्रक्रति-२ । अस्थानि-२ । यौं-१ । भरमता-२ । सत्य-२ ।

शब्दार्थ—अहमेव=अहंकार ही । समता=समभाव । सहज=स्वाभाविक, माया अविद्या रहित चेतन । वाई=प्राण । वंकवाल=सुषुम्ना । षिरै=नष्ट हो, खंड खंड हो ।

अवधू काया फुनि फुनि फिरै हंस
अमता फिरै, हंस परमहंस नहिं पाया ॥
हंस परमहंस पावेगा तव नहीं
अमेगा, जव साच पाया ॥३८॥

स्वामीजी मोजल ते ऊँडो अथाह, अजर सवद विकारं ॥
माया मोहनी पांच प्रवल वहै, कहां लागि उतरवौ पारं ॥३९॥

अवधू मैं तै मेटिवा संतोष घरि रहिवा, अजर सवद करिवा आहारं ॥
परम जोति कै परचै षेलिवा, उनमनि लागि उतरिवा पारं ॥४०॥

स्वामीजी कोंण तुमारी जाति वोलिये
कोंण तुम्हारा कुल वोलिये, कोंण ग्यान ले भया उदासं ॥
कोण देस कोंण दिसा, कहां तुम्हारा प्राण पुरिस का वासं ॥४१॥

अवधू अनिल पुरिस हमारी जाति करतूति हमारै कुल वोलिये ।
वोलिये, ब्रह्मग्यान ले भया उदासं ॥
दया देस एक दिसा वोलिये, परम सूनि तहां हमारा प्राण
पुरिस का वासं ॥४२॥

स्वामीजी कोण तरवर कोंण छाया, तुम्ह कहां के पंषी कहां आया ॥
कोंण उडाणा कहाँ समाया ॥
अवधू अकल तरवर सकल छाया, अम्हे परमसूनि के पंषी अरध सूनि आया ।
उलटि उडाणा परम सूंनि समाया ॥४३॥

पाठभेद—प्रमहंस–१-४ । आया–१ । उतरिवा–१-५ । अहारं–४-५ । प्रम–१ । प्रचै–१ । सून्य–२ । हमे–१-५ ।

शब्दार्थ—हस=जीवात्मा । ऊँडा=गहरा । अथाह=जिसकी गहराई का पता नही । अजर सवद=कटुवचन । अनिल पुरिस=प्राणपुरुष । करतूति=करणी, साधना । परमसूनि=परब्रह्म । अकल=कलनरहित, शुद्ध । सकल छाया=सर्व व्यापक । अम्हे= हम । उलटि उडाणा=अन्तर्मुख हो ।

स्वामीजी कौंण अषंडित कौंण अरूप, कौंणस सीतल कौंणस धूप।
कौंणस कलपै कौंणस वहै, कौंणस विनसै कौंणस रहै॥
कौंण अस्थानि मन उलटा जाई, कौंण अस्थानि मन रहै समाई॥४४॥

अवधू ब्रह्म अषंडित मनस अरूप, मनस सीतल पवनस धूप।
चित्तस कलपै मनसा वहै, दिष्टि विनसै अदिष्टि रहै॥
गगन अस्थांनि मन उलटा जाइ, सहज सूंनि में रहे समाइ॥४५॥

स्वामीजी कौंण अंधारा कौंण उजास, कौंण अस्थांनि निज किरणि प्रकास।
कौंण अस्थांनि मन रहै समाइ, कौंण अस्थांनि मन भूषा जाइ॥४६॥

अवधू त्रिवधि अंधारा ग्यांन उजास, नाभि कंवल निज किरणि प्रकास॥
ता अस्थांनि मन रहै समाइ, इंद्र्या अस्थांनि मन भूषा जाइ।४७।

स्वामीजी कौंणस तरवर कौंणस छाया, पंषी प्राण कहां विलमाया॥
पंषी तिको कौंण फल खाय, सति सति स्वामीजी कहो समझाय॥४८॥

अवधू अकल तरवर सकल छाया, पंषी प्राण तहां विलमाया॥
उलटा वेलि अगम फल लहै, सतगुरु सवदां निरभै रहै॥४९॥

स्वामीजी तुम्हे अगम भेद कि वार पारं, अगम अरथ कि ध्यान धारं॥
दया दरगह कि मिहरि दसतं, विग्यान पैठे कि ग्यान गुष्टं॥
जुरा जीती कि दसवैं द्वारं, ×उरघ फूट्या कि झड्या तालं॥५०॥

अवधू हमे अनंत भेदं अजव स्वादं, परम दिष्टि अगम नादं॥
दया दरगह मिहरि दसतं, विग्यान पैठे ग्यान गुष्टं॥
जुरा जीती दसवैं द्वारं, ×उरघ फूट्या झड्या तालं॥५१॥

पाठभेद—द्रष्टि–५। अद्दष्टि–५। गिगनि–१। जाय–१। समाय–१। औघू–१। तुमे–१-५। के–५। गुसटं–२। फूटा–३-४-५। अम्हे–३। अमे–५। दिसटी–२। दस्नं–३-४।

शब्दार्थ—कलपै=तरसे, कल्पना करे। दिष्टि विनसै=दिखने वाले सब पदार्थ नष्ट होते हैं। अदिष्टि रहै=मन, इन्द्रिय से गृहीत न होने वाला अगोचर तत्व ही नित्य रहता है। उजास=उजाला, प्रकाशमय। × उरघ फूट्या=मेरुदंड का ऊपरी अवरोध दूर हुआ।

स्वामीजी तुम्हे कोंण ग्राही कहां सीधा, कोंण मोती कहां वीधा ॥
कोंण उलटि षेल्या कोंण पीया , सेस के मुषि कोंण दीया ॥
कोंण मेला कहां वैठा , पांच जोगी कहां पैठा ॥५२॥
अवधू हमें सारग्राही सवदि सीधा , मन मोती निज अरथि वीधा ।
मन उलटि षेल्या पवन पीया , *सेस के मुषि सिंघ दीया ॥
रवि ससि मेला चौकि वैठा , पांच जोगी गुफा पैठा ।
नव नाथ निह्चल देषि भाई , गंग उलटी गगनि आई ॥५३॥
स्वामीजी कोंण धागा कहां लागा , कोंण निहचै भरम भागा ।
कोंण जोगी अवधूत वाला , कोंण आसण कोंण मृगछाला ॥५४॥
अवधू सुरति धागा सहज लागा , भेद पाया भरम भागा ।
प्रांण जोगी अवधूत वाला , गगनि आसण मन मृगछाला ॥५५॥
स्वामीजी कोण टोपी कोंण कंथा , कोंण चेला कोंण पंथा ॥
कोंण झोली कोंण सिष्या , कोंण डीवी कोंण भिष्या ॥
कोंण जाप कोंण माला , कोंण जोगी कोंण पियाला ॥५६॥
अवधू तत टोपी षवरि कंथा , पांच चेला अगम पंथा ॥
उरध झोली सवद सिष्या , ग्यांन डीवी अजर भिष्या ॥
अजपा जाप मन माला , प्रांण जोगी पवन पियाला ५७॥
स्वामीजी कोंण धूंई कोंण पलीता , कोंण अगनि कोंण वलीता ॥
कोंण चौपड़ि कोंण सारी , कोंण षेलै ध्यान धारी ॥५८॥

पाठभेद—स्यंघ–२। नो–१। अघछाला–२। मृघछाल–३। अम–१। भ्यष्या–२। भष्या–५। भ्पष्या–२ प्रान–४। अग्नि–१।

शब्दार्थ—ग्राहो=ग्राह्य, चाहना। सीधा=सिद्ध हुआ, सफल हुआ। कंथा=गूदडी। सिष्या=शिक्षा, सीख। भिष्या=भिक्षा, भीख। चौपडि=चौपड।

५३वी साखी—इडा-पिंगला का मेल हुआ, मन वृत्ति हृदय मे स्थित हुए, पांच जोगो पाच प्राण गुफा मे पैठा नाभि मे स्थिर हुए। पांचो ज्ञानेन्द्रियां चारों अन्त.करण निश्चल हो गये, सुषम्ना उलट गगन मंडल में, दशम द्वार में आ गई।

* कुण्डलिनी रूपी सर्प के मुख मे प्राण रूपी सिंह को दिया।

अवधू धुनि धूई प्रेम पलीता, ब्रह्म अगनि कांम क्रोध वलीता ॥
चित चौपड़ि पचीस सारी, प्राण षेलै ध्यान धारी ॥५९॥

दोहा—मनहि चरित निज ग्यांन है, सतगुरु दिया बताय ॥
जन हरीदास हरि अघट है, घटि घटि रह्या समाय ॥६०॥

॥ इति मनचरित जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनमदविधूंस जोगग्रन्थ ॥

सतगुर कह्या मो आरंभ करिहूँ, अलष निरंजन हिरदै धरिहूँ ॥
हरष सोग चिंता सब जाई, मृघी पकड़ि सिंघ कूँ षाई ॥१॥
मनसा घटा गहर जल पूरि, चेला पांच अगनि मुषि चूरि ॥
पांणी जलै मीन मन मरै, ऐसा आरंभ जोगी करै ॥२॥
आसा नदी अपूठि वहै, इम्रत झरै गगन रस रहै ॥
नव मैं नदी निवासी निहचल भई, आसा त्रिष्ना भूषी गई ॥३॥
आसण अधर पवन मन हाथि, सुरति जोगणी जागै साथि ॥
परम जोति आनंद अभ्यास, निरभै भया काल का नास ॥४॥
आसा कै घरि चिंता वसै, काल रूपणि जीवहि डसै ॥
गंग जमन मधि वैसे जाई, तब जोगी चिंता कूँ षाई ॥५॥

पाठभेद—पेम १। च्यंता–२। मिरगी–१। अघी–१। इमिरत–१। तिसना–१।

शब्दार्थ—पचीस सारी=पचीस पंचभूतों की प्रकृति, वे ही सारी है, गोटें हैं। मृघी पकड सिह कूं षाई=निश्चल वृत्ति रूप मृगी मन रूपी सिंह को खा लेती है, स्थिर कर लेती है। चेला पांच अगनि मुषि चूरि=पांच ज्ञानेन्द्रियों की बाह्यवृत्ति को ज्ञानाग्नि से दग्ध करो। पाणी जलै मीन मन मरे=संसारी भोग भोगने की वासना रूप पानी जल जाय, तब मीनरूपी मन स्थिर हो मरै। आसा के घरि चिंता वसै=वासना जब तक है, तब तक चिन्ता भी बनी रहती है।

सत रज तम तिमर मोह तजि माया, मन निहचल निरभै घरि आया ॥
पूठा फिरया छाड़ि घट घाट, ग्यांन ध्यांन गढ़ि लग्या कपाट ॥६॥
त्रिकुटि कोट में आसण मांड़ै, राजा तीन दंड दै षांड़ै ॥
षोलि कपाट घाट वट लहै, परहरि डाल मूल निज गहै ॥७॥
इन्द्री पांच परपंच करि घेरै, जोग मूल कै धागै जेरै ॥
*जुगति विचारै अजरा जरै, गुरगमि ध्यांन निरंतरि धरै ॥८॥
असलि गरीबी आपा डारै, मरणहार कहा ले मारै ॥
सूनै घरि विसहर कहा षाइ, मन दूजै घरि रह्या समाइ ॥ ९ ॥
हारि जीति का पासा डारया, वाजी जीती ड़ाव विचारया ॥
षेलणहार गया मुष गोइ, ता का पला न पकड़ै कोइ ॥१०॥
जोग मूल गहि जोगी जागै, पैंडै चलै न कांटा लागै ॥
धूंई ध्यान ग्यान की छाया, मुद्रा सबद निरंतरि पाया ॥११॥
पांच तत की मंढी संवारै, मिरतग होइ काल कूँ मारै ॥
सतगुर कहैस सोई सूझै, ×तव अगम गाइ घर ही में दूझै ॥१२॥
अलष निरंजन साथी मेरा, परम जोग पद पूरा ॥
काइर उलटि जात जहां का तहां, पहुँचै कोई सूरा ॥१३॥

पाठभेद—नृभै-५। गढ-३-५। प्रपच-१। मुंह-१। म्रितग-२। मृतक-३।

शब्दार्थ—निरभै घरि=स्वस्वरूप रूपी घर। त्रिकुटि=भृकुटि मध्य। राजा तीन=मन की त्रिगुणात्मक दशा। षोलि कपाट=कुण्डलिनी-कपाटरूप मेरुदंड के कपाट। परपंच करि घेरै=विषयो से विमुख करे। विसहर=काल, सर्प। डाव=दाव, मौका। मुष गोइ=मुँह छिपाकर, विविध चाह वाला मन जब अन्तर्मुख हुआ, तब उसने सासारिक भोगो का परित्याग कर दिया। धूईं ध्यान=ध्यान ही की धूँणी। पांच तत की मंढी संवारै=शरीर रूपी घर को ज्ञानज्योति से सज्जित करे। मिरतग होइ=जीवन्मुक्त होकर।

* जुगति विचारै अजरा जरै=यम-नियमादि साधनो का युक्तिपूर्वक प्रयोग कर अजरा-मन की वासनामय वृत्ति उसको जरै, पचावे-वृत्ति में एकाग्रता लावे।

× तव अगम गाइ घर ही में दूजै=गुरु उपदेशानुशार साधक स्वस्वरूपप्राप्ति के साधन मे लगे तो मन-वाणी से अप्राप्त आत्मतत्वरूपी गाय घर मे-अपने ही भीतर परमानन्दरूपी दूध देने लगे।

ग्यांन गदा लै मन कूँ मारै , ब्रह्म अगनि दे लंका जारै ॥
होम जिग अंतरि धुनि होइ , पाप पुंनि तहां लकड़ी दोइ ॥१४॥
+अब तो एक एक सूँ लग्या , जब लाग्या तब मन मन ठग्या ॥
दीनदयाल सतगुर की छाया , सहज समाधि परमपद पाया ॥१५॥
पैंडा अधर उलटि परधरै , नहीं घाट कंटकि कहा करै ॥
तारामंडल चंद सूर तजि ऊंचा जाई, परम जोति में रहे समाइ ॥१६॥
भोलि भूल ममता सब गई , अब तो बात और ही भई ॥
परम उदार अवगति की दया , करता राज रैति सो भया ॥१७॥
जोगमूल का जांखे भेद , जनम जुरा कंध नहिं छेद ॥
छिपी बात अभि अंतरि लहै , सबद विचार उनमनी रहै ॥१८॥
मन गहि पवन मेर गिर चूरै , भँवर गुफा में आसण पूरै ॥
ससिहर कै घर आंखे सूर , सबद अनाहद बाजै तूर ॥१९॥
मन भया मगन परम सुष मांही , ग्यांन गुफा मन छाडै नांही ॥
अरस परस आनंद रस एक , हारि जीति की रही न टेक ॥२०॥
त्रिवेणी तटि तालि लागी , मन थिर पवन सुषमना जागी ॥
दसवैं द्वार बस्या मन जाइ , वंकनालि इम्रत रस षाई ॥२१॥

पाठभेद—ज्यग–२ । धुन्य–२ । येक यक–२ । सो–१ । कटक–३-४ । तज्य–२ । रैत–४-५ । येक–१ ।

शब्दार्थ—लंका जारै=वासनामय गढ़ रूपी लंका को दग्ध करे। भोलि भूल ममता सब गई=सत्य चेतन को असत्य असत्य, पंचभूतात्मक शरीर को सत्य समझने की भोली भूल तथा देहाध्यास की ममता सब दूर हो गई। करता राज रैत सो भया=विषय में लगा मन इन्द्रियों पर राज करता था, वह अब विषय से हट आत्मा की ओर हो रैत–प्रजा की तरह वश मे हो गया। जोगमूल=चित्तवृत्ति की एकाग्रता, सहजावस्था प्राप्त करना यही जोग का मूल है। मन गहि पवन मेर गिरि चूरै=मन-प्राण को एकाग्र कर वासना तथा अहंकार के पहाड़ का चूर्ण करे। भँवर गुफा=दशम द्वार। त्रिवेणी तटि=त्रिकुटी तीर। वंकनालि=सुषुम्ना प्रणाली।

+ अब तो एक एक सूं लग्या=अब तो निश्चल हुआ एकाग्र मन उसी व्यापक विभु एक तत्व में ही लग गया है।

सुनिमंडल मैं सींगी वाजै, मानों घटा दहूँ दिसि गाजै ॥
सहजि पियाला भरि भरि पीवै, मन मतिवाला जोगी जीवै ॥२२॥
ब्रह्म अगनि सवहि मन दह्या, तरवर एक अषंडित रह्या ॥
ता तरवर मैं मेरा वासा, परम जोति पूरण परकासा ॥२३॥
तहां काम क्रोध जोग नहिं भोग, मांनि अमांनि हरष नहिं सोग ॥
अलष निरंजन निरभै नाथ, राग दोष हेत नहिं हाथ ॥२४॥
राजन रीति अंग नहि भंग, घर परिवार सुत वनिता नहिं संग ॥
ता दरवारि लेषक को लहै, दिल मालिक सव दिल की लहै ॥२५॥
सव मैं वसै सकल की लहै, मुष तैं फेरि ज्वाव नहिं कहै ॥
वारपार नहिं अगम अगाध, तहाँ एक आध कोई पहुँचै साध ॥२६॥
रसना मुष सीस हाथ नहिं पांव, घर नहिं अघट वैर नहिं माव ॥
रूप अरूप भेष नहिं जहां, माया अगनिन व्यापै तहाँ ॥२७॥
काल न जुरा देह नहिं दीन, जीवन जनम पुष्ट नहिं षीन ॥
ताकी कीमत कोई कैसे कहै, कहत कहत वौरा होइ रहै ॥२८॥
जन हरीदास तहां काल न जाल, पूरण ब्रह्म अनंत प्रतिपाल ॥
रमता राम निरंजन राइ, अब तौ मन तहां रह्या समाइ ॥२९॥
दिल मालिक षालिक साहिब मेरा, जन हरिदास वरिं जाया चेरा ॥
पकड़ि हाथ जिन छाडो मेरा, पड्या रहूं चरणां तै नेरा ॥
काल जाल लै करै न केरा ॥३०॥

॥ मनमदविधूंस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—मानूं-२-४। सहज-५। येक-२। प्रकासा-५। हेति-१। रीत-५। जाव-१। नहिं-२-४। छीन-१। कहैत कहैत-२-४। मालक-५। मै-५।

शब्दार्थ—सूनिमडल=दशम द्वार। सहज पियाला=सहज अवस्था रूपी प्याला। वन दह्या=विषय-वासनारूपी जंगल ज्ञानाग्नि से जल गया। तरवर एक=चेतन तत्वरूप एक वृक्ष। हेत=हित, स्नेह। ता दरवार लेषक को लहै=उस अखड व्यापक ब्रह्म के दरबार का कौन लेखक वर्णन कर सकता है, वह वर्णनातीत है। ज्वाव=उत्तर। षीन=क्षीण, दुर्बल। षालिक=जगत्पिता।

सकता है कि 'अकबर नौरोज' यहा किसी अन्य व्यक्ति का सूत्र कहो। 'नौरोज' 'पारसी धर्म का एक महान् पर्व है जिससे यह शब्द किसी प्राचीन ईरानी सम्राट् की ओर भी संकेत कर सकता है जिसका नाम आजकल प्रसिद्ध नही है।

इसी प्रकार एक दूसरा प्रश्न उठाया जा सकता है कि दादू-पंथी लोगों के यहां ऐसा माना जाता है कि हरिदासजी स्वा० दादू दयाल के शिष्य प्रागदास के शिष्य थे और इसके लिए कतिपय पुराने 'पत्रो' का प्रमाण भी दिया जाता है जिसकी चर्चा हम इसके पूर्व कर आये है। उन 'पत्रो' मे हरिदासजी के नाम के आगे 'निरंजनी' शब्द लगाया गया है और उनके प्रागदास का शिष्यत्व स्वीकार करने का सं० १६५६ भी दिया गया है। इसके सिवाय वहां पर इस बात को भी स्पष्ट शब्दों में कहा गया मिलता है कि "हरिदासजी निरजनी स० १६७० के मि० फागण सुदी ६ रामसरणि हुआ"। मूलपत्रो का राघोदास की 'भक्तमाल' के टीकाकार चत्रदास द्वारा लिखा गया होना उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि करता है। अतएव, उन पत्रो को पूरा महत्व दिया जा सकता है और, उनके अनुसार किसी हरिदास निरंजनी का देहांत सं० १६७० मे मान लेने पर, उपर्युक्त स्वा० हरिदास का इन से भिन्न समझना तथा इस प्रकार दो हरिदासो का होना और एक का दूसरे से ७० वर्ष आगे तक जीवित रहना यह सभी स्वाभाविक हो जाता है। परन्तु, यदि दो हरिदास रहे हो तो किसी ने आज तक इस बात का उल्लेख क्यो नही किया? 'चत्रदास' यदि वास्तव मे वे ही है जिन्होने 'भक्तमाल' की टीका लिखी थी तो उन्हे हम 'हरिदास निरजनी के विषय मे कोई ऐसी भूल कर बैठने का दोष भी सहसा नही दे सकते। उन चत्रदास को इस बात का पूरा पता रहा होगा कि हरिदासजी "नृमल नृवाणी निराकार को उपासवान" थे तथा वे "नृगुणी उपासिकै" निरंजनी कहे गये थे।[1] यदि इनके संबंध मे पहले प्रागदास का शिष्य होना, फिर स्वयं दादू जी से दीक्षा ग्रहण करना तथा, अन्त मे, क्रमशः कबीर-पथ एवं गोरख-पथ का अनुयायी होना भी प्रसिद्ध था तो इस बात का भी और वहां पर कुछ सकेत क्यो नही किया गया? और यदि ऐसे दो 'हरिदास' निरंजनी' हुए और उनके आविर्भाव-कालो के बीच केवल कुछ ही दिनो का अन्तर था तो इस बात की ओर भी उनका ध्यान क्यो नही गया? अतएव' जबतक उक्त मूल 'पत्रो' का भली भाति निरीक्षण नही किया जाता तथा इस बात का भी अंतिम निश्चय नही कर लिया जाता कि वास्तव मे, उनके लेखक वे ही चत्रदास थे जिन्होने 'भक्तमाल' की टीका लिखी थी तब तक उनके आधार पर इस बात को भी स्वीकार कर लेना कि संभवतः दो हरिदास निरजनी रहे होगे हमे उचित नही प्रतीत होता क्योकि ऐसे निष्कर्ष किसी भ्रांति के कारण भी बन जा सकते है।

परन्तु, यदि हम स्वामी हरिदासजी का आविर्भाव-काल स० १६०० तक स्वीकार करले तथा यह भी मानले कि जिस 'हरिदास निरंजनी' की चर्चा उपर्युक्त

१. राघोदास की 'भक्तमाल' मनहर छद स० ४३६।

॥ अथ मनहठ जोगग्रन्थ ॥

*बांण पकड़ि ऊभा रह्या, मन फिरि लागा झूठ ॥
नीसांणा न्यारा रह्या, मंड़ी और ही मूंठि ॥ १ ॥
साच सवद माने नहीं, झूठ तहा चलि जाइ ॥
मनसा वाचा करमनां, गनिका को व्रत ताइ ॥ २ ॥
*मन हम सूँ थड़ि कूल ज्यूं, रषे दिषावै छेह ॥
बाई का गुण छाड़ि दे, वसुधा का गुण लेह ॥ ३ ॥
अगम तहाँ पहुँता नहीं, रही भरम की रेष ॥
मन का मारया मरैहगा, करि करि नाना भेष ॥ ४ ॥
माया का कादौं मंझ्या, कल्यासु निकसै नांहि ॥
अरस परस होइ मिल रह्या, ज्यौं माषी गुड़ मांहि ॥ ५ ॥
सिंघ स्याल रनिवनि वसै, वसती सकै न चूरि ॥
के वसती के वनि वंध्या, साध दोहूं सूँ दूरि ॥ ६ ॥
साध वंध्या हरि अवंध सूँ, हरि वंध्या साध कै भाइ ॥
परम सनेही परम सुष, तहां रह्या ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
हरि सुमिरण मन हठ मतौ, सो मैं छाडौ नांहि ॥
रामरतन धन अजव है, ले राष्या मन मांहि ॥ ८ ॥

पाठभेद—चल्य–२। क्रमना–२। गन्यका–२। ताहि–१। सौ–१। ज्यौ–१। मरैगा–१। कादूं–१-३। ज्यूं–१-४। रनवन–४-५। दूहूं सू–१-३। स्यूं–१। रहे–५। छाडू–२-४।

शब्दार्थ—गनिका=वेश्या। ताइ=वह, उस मन का। वाई का गुण छाडि दे= वायु अस्थिर होती है, तद्वत् चंचलता का त्याग कर। कादौ=कीचड़। कल्यासु=फँसा। रनिवनि=एकान्त जंगल मे। भाई=भाव।

* गुरु-उपदेश रूपी वाण लगा पर साधक शिष्य उभा रह्या–वैसे ही बना रहा–साधना में नही लगा तब उसका मन फिर उन्ही संसार के झूठे पदार्थो मे उलझ गया। नीसांणा–लक्ष्य न्यारा ही रह गया और ही मूंठ मंडी–उपदेश निष्फल रहा।

रंक हाथि हीरा चढ्या, सतगुरि दिया बताइ ॥
ताकूँ मैं छाडूँ नही, छाड्यां सरवस जाइ ॥ ९ ॥

पातिसाह बल करि कह्या, नांमां कहौं षुदाइ ॥
सदा सगि गऊ बछ ज्यूं, जन कै राम सहाइ ॥१०॥

राम धणी मनमुषि सदा, सकल काल का काल ॥
पातिसाह नामौं कहै, तूँ मति पड़ै जंजाल ॥११॥

तब नामै मन हठ किया, गहि गुर ग्यांन बिचार ॥
मैं हरि सुमिरण छाडूं नहीं, सिर परि समरथ सिरजनहार ॥१२॥

पै पांया पाषांण कूँ, देवल फेरया देह ॥
माया जल भेदै नहीं, छांनि छवाइ एह ॥१३॥

सेज मंगाई जला सूँ, सो बहुडि न जल में जाइ ॥
तब नामै मन हठ किया, मूंई जिवाइ गाइ ॥१४॥

एक बोड़ि हिंदू तुरक, एकै दास कबीर ॥
मन हठ ले ऊभा रह्या, सिर परि साहस धीर ॥१५॥

टेक रहो तन मति रहो, टेक गया पण जाइ ॥
ऐसी टेक कबीर की, चौड़े रह्या बजाइ ॥१६॥

फुनि बात सुणो प्रहिलाद की, कहि समझाऊँ लोइ ॥
मन हठ करि गोविंद भज्या, धका न लागा कोइ ॥१७॥

गिर जल ज्वाला तैं बच्या, पिसण गया पचि हारि ॥
नहीं साध कूँ सांकडौ, यौ ही अरथ विचारि ॥१८॥

घू बालक कैसी करी, धरया न कोइ भेष ॥
मन हठ करि मांड्या मरण, जहां इष्ट तहां देष ॥१९॥

पाठभेद—सनमुष–१-५ । येह–२ । स्यौ–१ । येक–२ । गिरि–१ । पिसूण–१ ।

शब्दार्थ—रंक=दरिद्री । बलकरि=जोर देकर । छानि=छप्पर । पिसण=हत्यारा । साकड़ौ=कष्ट, दुःख ।

अगम सवद् सुषदेव सुराया , संकरि कह्या सुणाइ ॥
तन दीया राष्या सवद् , यूँ मन हठ सूँ घर जाइ ॥२०॥

इन्द्रलोक सूँ ऊतरी , रंभा करि सिंगार ॥
तव सुषदेव न्यारा रह्या , धस्या न वहती धार ॥२१॥

जनक जनक सव कहत है , अमरलोक सूँ वाथ ॥
जनक मता कछु और था , दुष सुष रहत अनाथ ॥२२॥

पांव अगनि मुष ऊवरै , जनक कहावे सोइ ॥
इहां दाधा वहां दाझि है , इहै भरोसा मोहि ॥२३॥

जाइ मछंदर पड़ि रह्या , माया तर की छाँह ॥
गोरष कछु भोला न था , जिन गुर काढ्या गहि वाँह ॥२४॥

राजपाट तजि भरथरी , किया आपणा काज ॥
जोग ध्यान राजा लहै , तौ वै क्यूँ छाड़ै राज ॥२५॥

हस्ती घोड़ा गांव गढ़ , सुत वनिता परिवार ॥
कहै माता मैंणावती , तजि गोपीचंद यहु छार ॥२६॥

यहु सुष विष समि देषिये , लाधी सौंज न हारि ॥
अगम वस्त अंतरि वसै , उलटा गोता मारि ॥२७॥

वल छाड्या निरवल भया , गहि गोपीचंद गुर ग्यांन ॥
सूनि मंडल में रमि रह्या , अगम ठौड़ असथांन ॥२८॥

पाठभेद—यौ–१ । तैं–१ । यन्द्र–२ । सिंणगार–५ । को कहै–४-५ । कुछ–१ । यहां–२ । मछिन्द्र–१ । मछंद्र–५ । ज्यनि–२ । क्यौं–३-४ । हसती–२ । वसत–२ । न्यरवल–२ ।

शब्दार्थ—धस्या न=प्रवेश नही किया । वाथ=आलिंगन । दाधा=जला । दाझि=जलेगा । छार=राख, नष्ट होने वाले । लाधी=प्राप्त हुई । सौंजन=सौभाग्य, मनुष्य देह रूप सामग्री । वल छाड्या=सांसारिक राज्य-बल को त्यागा । निरवल=दीन, गरीब, गर्व परित्याग । सूंनमंडल=दशम द्वार । अगम ठौड=ब्रह्मप्रदेश ।

छत्र सिंघासण छाड़ि गया , ऐसी व्यापी आइ ।।
माया संगि सांई मिलै , तो बलक छोड़ि क्यों जाइ ।।२६।।
सेहभ्क तुलाइ गीदवा , इहै रंक कै ईद ।।
पथर तलै विछाइ करि , सांई भज्या फरीद ।।३०।।
रतन पारषू मन हठि किया , षोज्या सब ही भेष ।।
तब वाकूँ गोरष मिल्या , ए मन हठ का गुण देष ।।३१।।
ग्रन्थ नांव मन हठ मतौ , मन कै मन हठ दोइ ।।
एकै मन हठ हरि मिलै , एकै पड़दा होइ ।।३२।।
काम क्रोध मैं तैं मनी , पग दे सक्या न चूरि ।।
या मन हठ मन बूड़िये , हरि सूँ पड़िये दूरि ।।३३।।
गुण जीतै गोविंद भजै , निरभै निज घरि आइ ।।
या मन हठि मन नीपजै , झांई पड़ै न काइ ।।३४।।
काल कहर गरजत फिरै , दिन दिन व्यापै रोग ।।
जन हरीदास हरि भजन विन, जहां तहां विपति विवोग ।।३५।।
जन हरीदास दुरभष तहाँ , जहां न हरि सूँ हेत ।।
जे नर लग्या न हरि हठी , जम द्वारै डंड देत ।।३६।।
जन हरीदास गोविंद भजो , भूलां भली न होइ ।।
अब भूला ते फिरैहगा , ऊझड़ पैंडा दोइ ।।३७।।

।। इति मनहठ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—स्यंघासण-२ । वलष-५ । क्यूं-२ । ये-२ । न्यरभै-२ । स्यो-१ । ते-१ । उजड़-३ । उजड़ि-५ ।

शब्दार्थ—सेहभ्क=अति मुलायम बिछावना । गीदवा=तकिया । पडदा=आवरण । झांई=मायिक पदार्थों की परछाई । दुरभष=काल, दुःख । उझड़=ऊबड-खाबड, जन्म-मरण रूप बीहड मार्ग मे ।

॥ अथ मनपरसंग जोगग्रन्थ ॥

मनपरसंग सुणो हो साधो, तुम सूँ कहूँ सुणाइ ॥
कबहूंक मन विषया तजै, कबहूंक विष फल षाइ ॥१॥

मनमा का लाडू करै, कछू न आवै हाथि ॥
मन भूषो भरमत फिरै, गुण इन्द्रया कै साथि ॥२॥

या मन की या रीति है, जहां तहां चलि जाइ ॥
कबहूँक लौटे छार में, कबहूंक मलि मलि न्हाइ ॥३॥

यहु मन पुरिष नारि सुत मात, यहु मन बन्धु यहु मन तात ॥
यहु मन मूरिष यहु मन देव, या मन का कोई लहे न भेव ॥४॥

यहु मन भक्ति रूप होइ जाइ, यहु मन भजै निरंजन राइ ॥
तुला बैसि कंचन दे काटि, यहु मन बिकै बिडाणें हाटि ॥५॥

यहु मन दाता होइ दत करै, यहु मन भूषो मांगै मरै ॥
आरंभ करै रहै निरदंद, यहु मन मुकता यहु मन बंध ॥६॥

यहु मन द्वादस पैंडा करै, पसु ज्यूँ षेत बिडाणा चरै ॥
आप आपकूँ रोपै पास, यहु मन करै आपका नास ॥७॥

लष चौरासी घट यहु मन धरै, पलक पलक मैं जामैं मरै ॥
कबहू भूषा कबहू धाया, मन ही मन को चेटक लाया ॥८॥

यहु मन माह बैद ठगराज, सूकर स्वान सिंघ गै बाज ॥
स्याह लाल पीली मध रेष, यहु मन करै किरकटा भेष ॥९॥

पाठभेद—मूरप-५। हुइ-२-४। निरदुंद-१। मुक्ता-१-५। इहु-२-३। स्यंध-२। करकटा-१।

शब्दार्थ—परसंग=प्रकर्ण, विषय। तुला बैसि कंचन दे काट=त्याग, वैराग्य की तुला में बैठ धन-सम्पत्ति की वासना को छोड। बिडाणें=औरो के, विषयो के। हाट=दूकान। निरदंद=तटस्थ, अलिप्त। मुकता=मुक्त, स्वतत्र। द्वादश पैंडा=बारह बाट, अनेक मार्ग। पास=फांसी, बन्धन। चेटक=करामात, करिश्मा। गै=गज, हाथी। बाज=वाजि, घोड़ा। किरकटा=किरकट की तरह विविध रूप बदलना।

यहु मन तरवर यहु मन छाया , यहु मन विरकत यहु मन माया ॥
राति द्योस मन रहै उदास , यहु मन करै गुफा मैं वास ॥१०॥
यहु मन सुर नर असुर अतीत , जरष रींछ मृघा भयभीत ॥
सतगुर कहैस यहु मन करै , छाडै कुपह सुपह पग धरै ॥११॥
साध सबद मानै सुखसार , या मन का कछु अगम विचार ॥
यहु मन रनवन यहु मन सहर , यहु मन इम्रत यहु मन जहर ॥१२॥
तीरथ बरत करै समि भाइ , यहु मन अगम तहां चलि जाइ ॥
यहु मन अमरी वजरी जरै , सवद फुरण कूँ या विधि करै ॥१३॥
पैंडा अनंत न आवै वोड़ , कहौ कहां लौं दीजै जोड़ ॥
जोग ध्यांन धुनि यहु मन धरै , यहु मन भेष वहोतरि करै ॥१४॥
जन हरीदास कै याही रीति , अरस परस हरि ही सूँ प्रीति ॥
जन हरीदास या मन सूँ डरै , राति द्योस हरि सुमिरण करै ॥१५॥

॥ इति मनपरसंग जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनमतौ जोगग्रन्थ ॥

फिटि फिटि रे मन विकट , वहौत नाटक कहा नाचै ॥
कवहू दाता होइ दत करै , कवहू जाचिग होइ जाचैं ॥१॥
मन जोगी जंगम सेष , मन बहु भेष वणावै ॥
दूधा धारी होइ , फिरै भरमै दुष पावै ॥२॥

पाठभेद—मिरघ-१ । म्रिघा-२ । मृगा-५ । इमिरत-१ । फुरन-१ । धुन्य-१ । ध्यौं-१ । ज्याचग-२ ।

शब्दार्थ—कुपह=कुपथ, बुरा मार्ग । सुपह=सुपथ, अच्छा रास्ता । रनवन=वीरान जंगल । अमरी=अमर होने की । वजरी जरै=वज्रोलो क्रिया से वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाये । फुरण=फुरणा । धुनि=अनहद नाद । वहोत्तरि=विविध, बहत्तर कोठो मे घूमे । फिटि-फिटि=धिक् धिक् । जाचिग=याचक, माँगने वाला ।

मन गहि वैसे मूंनि, निज सुनि की षवरि न पावे ॥
माथो मूंछ मुड़ाइ, छापा वहु तिलक वणावे ॥३॥
चौका देवे चाहि, रसना कै हाथि बंधावे ॥
मन विषिया संगि रमै, मन माया सूँ लावे ॥४॥
मन सूरातन सवल, मंन मुष मोड़ि करि भागै ॥
मन इन्द्रया आधीन, दौड़ि काया गढ़ लागै ॥५॥
मन वहौ जोधा बलवन्त, मन वहौरंगा विरंगा ॥
मन रूपक परिजलै, दीपक ज्यूँ जलै पतंगा ॥६॥
मन गिरवर मन कूप, मन गंभीर मन गंदा ॥
मन अंधा मन घोर, मन सीतल मन चंदा ॥७॥
मन नीकौ मन नीच, मन फलै मन फूलै ॥
मन फिरि मरै पियास, मन परम सुषसागरि भूलै ॥८॥
मन तारै मन तिरै, मन ले पार उतारै ॥
मन चौरासी का जीव, फेरि ऊँडै दह मारै ॥९॥
मन जंवक मन गिरझ, कऊवा का रूष वणावै ॥
मन सूकर मन स्वान, महापरलै वहि जावै ॥१०॥
मन पांणी मन लाइ, मन कौड़ी मन हीरं ॥
मन कंचन मन काच, मन मुरीद मन पीरं ॥११॥
मन मैलो मन निरमलौ, मन साचो मन सूचौ ॥
मन नीकौ मन नीच, मन उतिम मन ऊँचौ ॥१२॥

पाठभेद—मौंन–३-४। वहौ–३-५। वहु–१। ज्यौ–१। औडे–१। दहि–१। कवा–१। नृमला–३-१। नव्यो–१।

शब्दार्थ—मूंनि=मौन धारण कर। रूपक=रूप पर, सौन्दर्य पर। परिजलै=प्रज्वलित हो, जल जाय। नीकौ=अच्छा, भला। ऊंडै=गहरे, गंभीर। दह=जल से भरा गड्ढा। जंवक=जम्बुक, स्याल। गिरझ=गृध्र, गीध। मुरीद=शिष्य, जिज्ञासु। सूचौ=शुद्ध, पवित्र। ऊंचौ=सर्वोत्तम

मन मोती मन सीप, मन वहो दीप दिषावे ॥
मन सिलता मन सिध, मन फिरि मन ही समावे ॥१३॥
सुषमनि उलटि फेरि, साच मन निकट बतावे ॥
वंकनालि विश्राम, फेरि नामी सूँ लावे ॥१४॥
*पांणी मांही पैसि, अगम का हीरा ल्यावे ॥
मन फिरि ग्रासै कांम, क्रोध की ठौर उठावे ॥१५॥
मैं तैं गरब गुमान, निमष तहां रहण न पावे ॥
गगनमंडल मठ छाय, अगम सूँ सुरति लगावे ॥१६॥
आगै अणभै सीर, गगन रस उलटा आवे ॥
जन हरीदास मन विकट है, बहुत रूप करि जाइ ॥
पकड़ीजै तौ परमसुष, ढीलौ छोड्यां षाइ ॥१७॥

॥ इति मनमतौ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनउपदेस जोगग्रन्थ ॥

कबहू फाड़ै कबहू जोड़ै, कबहू सीवै कबहु तोड़ै ॥
कबहू सोवै कबहू जागै, कबहू जोग ध्यान सूँ लागै ॥१॥
कबहूक अलप आहारी थोड़ा षाई, कबहूक टूका लेइ अघाई ॥
कबहू हेत प्रीति अणरागी, कबहू सुरति निरंजन लागी ॥२॥

पाठभेद—बहु–१ । स्यघ–२ । निकटि–४-५ । ठौड–३-४ । स्यौ–१ ।

शब्दार्थ—सुषमनि=सुषुम्ना नाडी । वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग, मेरुदंड से दशम-द्वार तक । निमष=पल भर, क्षण । अणभै=अनुभूत, प्रत्यक्ष । अघाई=धाप कर ।

* पाणी मांही पैसि अगम का हीरा ल्यावे=सहस्रार दल में चन्द्रमा द्वारा स्रवित पानी मे प्राण स्थिर कर अगम आत्मारूपी हीरा लावे, स्वस्वरूप की प्राप्ति करे ।

कबहूँ चिंता कै घरि वहै, कबहूँ अटकि अपूठा रहै ॥
कबहूँ ग्यान ध्यांन उरि धारै, कबहूँ ऊलटि आपकौं मारै ॥३॥

कबहूँ जरणां अजराजरै, कबहूँ सवद कह्यां षिजि मरै ॥
कबहू पांचू इन्द्री दवै, कबहूं मेर तेर ले ऊँचा भवै ॥४॥

कबहूँ मोह विरछ फल षाइ, कबहूँ साध संगति चलि जाइ ॥
कबहूं त्रिविधि ताप मैं वसै, कबहूँ ब्रह्म अगनि मैं धसै ॥५॥

कबहूं हरि तरवर तहां जाइ, कबहूं बैसै पूठा आइ ॥
कबहूं ल्यौ कै पैंडे जीवे, कबहूँ अगम पियाला पीवे ॥६॥

कबहूं हारि जीति रस रीति, कबहूँ राम भजन सूँ प्रीति ॥
कबहूँ काया कांमणी कसै, कबहूँ काया सूँ मिलि षेलै हसै ॥७॥

कबहूँ चंद सूर समि करै, कबहूँ ध्यांन अलष का धरै ॥
कबहूँ त्रिवेणी संगि न्हावै, गुरगमि वस्त अगोचर पावै ॥८॥

कबहूँ उलटा षेलि काया सब सोधै, सुंनिमंडल मैं पवन निरोधै ॥
हठ करि मरै न बैसे हारि, अगम ध्यांन धरि सहज विचारि ॥९॥

षटचक्र मैं एकै डोरि, सतगुर सवद गया मन चोरि ॥
एकमेक अंतरि कछु नांहि, पूरण ब्रह्म वसै ता मांहि ॥१०॥

वंकनालि इंम्रत रस षाइ, मन माया छाया वैसे न जाइ ॥
मेरडंड मधि डोरी लहै, ब्रह्म अगनि काया वन दहै ॥११॥

पाठभेद—च्यंता–१ । कूँ–३-४ । पाचो–१-५ । व्रिछ–२ । वृछ–३ । चकर–१ । येक–२ । कुछ–१ । इमिरत–१ ।

शब्दार्थ—अणरागी=राग से रहित, अनासक्त । आपकौ मारे=अपना निग्रह करे । षिजि=कुपित हो, गुस्से मे हो । दवै=जलावे, दग्ध करे । ऊँचा भवै=अभिमान करे, गर्वित हो । घसै=बूडे, प्रवेश करे । पूठा=पीछा, वापिस । ल्यौ=लौ, ध्यान, आत्म-चिन्तन की लगन । चन्द्र सूर समि करै=इडा-पिंगला मे चलने वाले विषम प्राण को सम करै–सुषुम्ना मे लावे । त्रिवेणी=त्रिकुटिस्थान । षट्चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र । एकै डोरी=सुषुम्ना-प्रवाह ।

दसवैं द्वारि वसै मन राजा, सबद अनाहद बाजै बाजा ॥
जन हरीदास मन वसि भया, गया भरम सब और ॥
एक एक सूँ मिलि रह्या, तब पाइ निरभै ठौर ॥१२॥

॥ इति मनउपदेस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ ×अथ व्याहलो जोगग्रन्थ ॥

दिषण देस सहर कुंदनपुर, पवणि छतीस सुषारी ॥
राजा भलो लोग निति निरभै, कन्या राजकंवारी ॥१॥
रांणी कहै सुणौ राजाजी, विलम न कीजै कांई ॥
बाई वडी बडो बर हेरो, आदू आदि सगाई ॥२॥
निज पुरि नगरि वसै कँवलापति, सकल सिरोमणि स्वांमी ॥
बर वे आदि विघन नहिं बेगम, घटि घटि अंतरजामी ॥३॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ, विरंचि न बुरो लषावे ॥
राम भरतार परम सुषदाता, सो म्हारै मन भावे ॥४॥

पाठभेद—येकयेक–२। ज्यो-त्यो–२। भ्रतार–२।

शब्दार्थ—दक्षिण देस=देह, शरीर। पवणि छतीस=पंचभूत, पचीस प्रकृति, तीन गुण, मन, प्राण, वृत्ति। राजा=आत्मा। भलो=शुद्ध। राजकुँवरि=सुरतिवृत्ति। राणी=सद्बुद्धि। विलम न=विलम्ब, देर। निज पुरि नगरि=अपने हृदय में। वसै कँवलापति=साक्षी चेतन।

× व्याहलो जोगग्रन्थ एक वैवाहिक रूपक के रूप मे वर्णन किया गया है—उक्त रूपक मे यह बताया है कि कैसे जीव राजा वत्ति रूप कुँवरि को साक्षी चेतन मे सम्बन्धित करना चाहता है पर मनरूपी रुकमैया इसमे बाधा डालता रहता है। रूपक में पात्रादि का यह स्वरूप है। नगरी शरीर। छत्तीस जाति, त्रिगुण मन, प्राण पचभूत भूतात्मक प्रकृतियाँ। राजा=आत्मा, जीव। राणी=सद्बुद्धि। कुँवरि=सुरति वृत्ति। रुकमैया=मन। वर=साक्षी चेतन है। अन्त मे सद्वृत्ति रूप कुँवरी का साक्षी चेतन से सम्बन्ध हो गया है, मन की चाल या बाधा चली नही।

पत्रो मे की गई कही जाती है वे, वास्तव मे, कोई और व्यक्ति रहे होंगे और उन्हें, किसी भ्रातिवश, इनका स्थान दिलाने की चेष्टा की जाती होगी उस दशा मे भी, यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या ये ही निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भी रहे होंगे ? राघोदास ने, अपने प्रसिद्ध 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक का नाम 'जगन' दिया है जिस बात की चर्चा हम इसके पहले भी कर आये है। इसके सिवाय उन्होने इन 'जगन' का नाम, कबीर, नानक एवं दादू के साथ, चार 'महंतो' को निर्गुणी पथ-प्रवर्तको मे गिनाया हैं। उन्होने इन चारो ही 'महंत नृगुनीन की पद्धति' अथवा पद्धति को स्वयं निरंजन के मूलस्रोत से 'मिली' हुई ठहराया है और इस बात को उसी प्रकार प्रकट भी किया है जिस प्रकार उन्होने रामानुजाचार्य की पद्धति को लक्ष्मी से उत्पन्न, विष्णुस्वामी वाली को शकर से प्रसूत मध्वाचार्य वाली को ब्रह्मा से उद्भूत एवं निम्बार्काचाय वाली को सनकादि से निकली होना बतलाया है तथा इन चारो निर्गुणियों में से भी नानक एवं दादूदयाल को जिन्होने 'रवि' एवं 'शशि' के समान प्रकाशमान भी कहा है। परन्तु उन्होने इन चारों पंथो का परिचय फिर पृथक् पृथक् भी दिया है और उसे, क्रमश नानक, कबीर, दादू एवं जगन के अनुसार उसी प्रकार निर्दिष्ट किया है, इस प्रकार 'जगन' की पद्धति व 'निरंजनी पथ' का वर्णन, छप्पै स० ४२६ से लेकर मनहर स० ४४४ तक मे, पृथक रूप से किया गया मिलता है और उसके आरम्भ (अर्थात् छप्पै सं० ४२६) मे ही लपट्यौ १. जगन्नाथ, २ स्याम, ३. कान्हड, ४. ध्यानदास, ५. षेम, ६. नाथ, ७. जगजीवन, ८. तुरसी, ६. आंन, १०. पूरण, ११. मोहनदास व १२. हरिदास के नाम देकर, इन बारहो 'महन्त निरंजनी' के विषय मे कहा गया है कि ये सभी लोग 'कबीर के भाव' को 'रखते' वा उसका समर्थन किया करते थे। फिर इन्ही बारहों के नाम, किंचित् क्रम परिवर्तन के साथ आगे मनहर सं० ४४४ मे भी दिये गये है और वहा इनके वास-स्थानों तक का नाम निर्देशन कर दिया गया है। हम वहां पर यह भी देखते हैं कि पहले 'जगन्नाथदासजी लपट्या की टीका' अर्थात् ईश्वी सं० ५५२ मे, सम्भवतः उक्त 'जगन' का ही कुछ विस्तृत परिचय दिया गया है और फिर, क्रमश· आनन्ददास, स्यामदास, कान्हड़दास, पूरणदास, हरिदास, तुरसीदास, मोहनदास, ध्यानदास, षेमदास, नाथ एवं जगजीवनदास के भी विषय मे लगभग उसी प्रकार कहा गया है तथा इनमें से आनन्ददास के अतिरिक्त, सभी के लिए 'टीका' शब्द ही लिखा गया।* फलतः उक्त 'जगन' एवं 'लपट्यो जगन्नाथ' को एक ही व्यक्ति के नाम मान लेने तथा उसको हरिदास से भिन्न समझने के लिए हमे यथेष्ट आधार मिल सकता है।

---

* मेरे इस पूरे कथन को स्व० हरिनारायण शर्मा (जयपुर) की उस हस्तलिखित प्रति पर आधारित समझना चाहिए जिसे उन्होने मेरे पास किसी समय स० २००७ मे भेजने की कृपा की थी और जिसका चत्रदास के शिष्य नन्दराम के शिष्य गोकलदास द्वारा सं० १८६१ मे लिखा जाना उसके अन्तिम पद्य द्वारा सिद्ध है। —लेखक

मकल भवन करता करणां मैं, विथा न व्यापै काई ॥
राजा कहै सुणो रुकमईया, तहां दीजै रे! बाई ॥५॥

रुकमईयौ कांइ कह्यो न माने, आंन सगाई हेरै ॥
राजा कहै देषि वर वरि स्यां, अटकि अपूठा फेरै ॥६॥

चंदेरी सिसपाल असुर अरि, लगन॰ तहां लिष दीया ॥
हैवर गैवर पाइक पाला, वहौ जोधा संग लीया ॥७॥

केहरि कहो घास क्यूँ चरिहै, आंण्या असुर बुलाई ॥
जीवण नहीं मरण सिर ऊपरि, जीभ षांडि विष षाई ॥८॥

सांसो सिसपाल चंदेरी चिंता, सो वर तहां वसीजै ॥
गरव गुमान दैत वहौतेरा, ममता को रस पीजै ॥९॥

परमसनेही प्रांणनाथ हरि, सदगति सदा सगाई ॥
अलष पुरिस अवगति वर सिर परि, किरतम बरयो न जाई ॥१०॥

किरतम तिकौ सकल सति विनसै, अविनासी म्हारौ सांई ॥
आदि अंति हरि सदा सनेही, प्रांण वसै ता मांही ॥११॥

विप्र बुलाइ अवला पाइ लागी, रांम तहां चलि जाई ॥
मींव भलो कांई दोष न दीजै, रुकमईयौ दुषदाई ॥१२॥

अव हरि रषे हाथ तैं छाड़ौ, पति म्हारा हूँ थारी ॥
व्याकुल भई माघ नित हेरौं, दरसौ देव मुरारी ॥१३॥

ब्राह्मण विरह मींत भै म्हारै, कहौं तिका मन भावै ॥
रुकमइयो रौस कह्यो नहिं माने, भूंडौ मरम उठावै ॥१४॥

पाठभेद—सिमुपाल–१। ल्यष–२। वहुतेरा–१। विणसे–२-५।

शब्दार्थ—रुकमईया=मन। आन=ओर, सासारिक वासनाओं मे। सगाई=सम्बन्ध। हेरे=तलाश करे। अटकि=मनाकर, रोककर। अपूठा=पीछा, वापिस। सिसपाल=संशय। हैवर=घोड़े। गैवर=हाथी। पाइक=सेवक। वहु जोधा=काम, क्रोध, लोभ मोहादि। केहरि=सिंह। आंण्या असुर=अहंकारादि राक्षस। किरतम=बनावटी, जगत् के पदार्थ। विप्र=विरहरूपी विप्र। माघ=मार्ग, वाट। भूंडौ=बुरा, बेतुका।

घड़ी मुहूरति आज सुदिन दिन , पतिवरता यौं भाषै ॥
चीरी लिषी विप्र नैं दीन्हीं , रषे विप्र विचि राषै ॥१५॥
मन सुध विप्र गयो बेगमपुर , लिष्या सु ले पहुँचाया ॥
देषि देषि हरि कागद वांच्या , चलौ विप्र म्हे आया ॥१६॥
साचा सबद राषि सिर ऊपरि , आनंद अंगि न मावै ॥
ब्राह्मण हरिसुष हेरि वधाई मांगै , नैंड़ी जान बतावै ॥१७॥
अनंत कोटि ब्रह्मंड सौंज संगि , इन्द्र कुमेर घणेरा ॥
ब्रह्मा अनंत महादेव अगणित , चंद सूर बहोतेरा ॥१८॥
ए नवनाथ सिध चौरासी , सुर तेतीस सवाया ॥
नारद मुनि जन साध सकल संगि, हरि ईसा भेद सूँ आया ॥१९॥
सील संतोष सति दया सबूरी , करम कपूर उडाया ॥
यूँ सै उठि सहैले दौड्या , पवन तुरी चटकाया ॥२०॥
आरती करि करि चरन पलोटै , के चरचै के गावै ॥
प्रेम प्रीति चंदन घसि इंहि विधि, परसि परसि सुष पावै ॥२१॥
साथि सषी लै षेलण कै मिसि , निज बर हेरण आई ॥
बड़ कँवार हरि देष निजरि भरि , नषसष रह्या समाई ॥२२॥
बड़ विसरांम तहां हरि उतरै , आतम अंतरि नेरा ॥
सषी सहेली मंगल गावै , मनसा चांवरि फेरा ॥२३॥

पाठभेद—विपर-४ । सुधि-१ । आणंद-१ । सूँज-५ । ये-२ । सिद्ध-१ । स्यो-१ । सत-२-५ । चरण-१ । प्रसि-१ । षेलन-५ । निजर-४-५ । नषसिष-१ । विश्राम-३-५ । आत्म-३-४ । चावर-५ ।

शब्दार्थ—चीरी=लगनरूप चिट्ठी । घणेरा=बहुत सा, अनेको । भेद=प्रकार । पलोटै=चांपे, दबावे । मिसि=बहाना । बड विसराम=हृदयरूपी महल ।

नैंणां राम वसां हरि वैंणा, सकल सुषां सुष लाधा ॥
*सुर तेतीस घेरि घर आया, सतगुर डोरा बांधा ॥२४॥
अरधैं उरधैं चौंरी चरचै, तहां हथलेवा दीया ॥
अति उछाह अवला मनि आनंद, हरि सूँ फेरा लीया ॥२५॥
रली रंग राग नाना विधि, ×सूनिमंडल कै छाजै ॥
पति सूँ प्रीति जीति गुण दूजा, वेणि गगन मैं वाजै ॥२६॥
ग्यान गुलाल केसरि वहौ करणां, अरथ अबीर षिंडाया ॥
आजि मषी हरि महल पधारया, मल म्हारै मनि भाया ॥२७॥
सुंदरि सेज माच उर अंतरि, समता सौडि विछाई ॥
राम राइ तहां आय विराज्या, सो सुष कह्या न जाई ॥२८॥
गात गुफा में गम करि राषूँ, सेझ सनेही आया ॥
विणि दीपग दह दिसि उजियाला, आंगणि चौक पुराया ॥२९॥
घरि घरि मंगलचार सदा सुष, वर वरयौ वनमाली ॥
सुष में मीर अषिल अविनासी, परम जोति सूँ ताली ॥३०॥
परणि परसि हरि संगि कर लीन्ही, पति को पलौ न मेल्हूँ ॥
जन हरीदास निसदिन अति आनंद, ता आनंद में षेलूँ ॥३१॥

॥ अथ व्याहलो जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद— वसै–१। मन–५। सौं–१। स्यो–१। गिगन–१। वहु–१। आज–१-५। मल–१५। मुन्दर–५। राषौं–१-५। दीपक–३। उजियारा–५। घर-घर–५। स्यू–१। संग–१-५।

शब्दार्थ—नैंणा=नेत्र। वैंणा=वांणी। अरधै उरधै=मूल–अपान स्थान। उरधै दशम द्वार के बीच मे हृदय-गुहा। रली–मनचाही। गात=काया, शरीर। गुफा=हृदयगुहा। मेल्हूँ=छोड़ूँ, धरूँ।

* सुर तेतीस घेरि घर आया=सुर प्राण तेतीस मेरुदण्ड तथा ग्रीवा के म्होरो में से सुषुम्ना नाडी द्वारा प्रवाहित हो घर आया—दशम द्वार सहस्रार दल मे स्थिर हुआ।

× सूनिमंडल के छाजे=गगनमण्डल-ब्रह्मरन्ध्र के छाजे–किनारे।

॥ ×अथ टोडरमल जोगग्रन्थ ॥

अनहद वेणि वजाइ, तोड़रमल जीतोजी ॥
हरि भज उतरे पार, तोड़रमल जीतोजी ॥१॥

मन गहि पवन अगम गम कीया, परम सनेही पाया ॥
पांच सषी मिलि मंगल गावै, आंगणि चौक पुराया ॥२॥

चित चौकी हरिचरणां राष्या, , कंवल सिंघासण दीया ॥
इला पिंगुला करै आरती, प्रेम कलस उरि लीया ॥३॥

गगनमंडल मैं रच्यो मांडहौ, पांच तणी ल्यौ तांणी ॥
आतम परआतम हथलेवौ, पीव संगि षेलै प्रांणी ॥४॥

जन हरीदास हरि अरस परस होइ, नैंणा नेह बंधाया ॥
जाकी थी सो महल पधारचा, राम सनेही आया ॥५॥

॥ इति टोड़रमल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ इमृतफल जोगग्रन्थ ॥

असलि भाव जब अंतरि आवे, ग्यान विचार वमेक वतावे ॥
दया सबूरी जरणां जोग, त्रिवधि ताप का लगै न रोग ॥१॥

पाठभेद—च्यत-२। स्यंघासण-२। विमेक-१। त्रिविध-१।

शब्दार्थ—तोडरमल=जीवात्मा। पांच सषी=पाचों ज्ञानेन्द्रियाँ। कँवल=हृदय-कमल। उरि=अन्त.करण मे। माडहौ=विवाह-मण्डप, माडा। नैंणा=नजरों मे, नेत्रों मे। जरणां=सहनशीलता।

× यह ग्रन्थ भी एक रूपक रूप में है। विवाह के पश्चात् कुछ उत्तरकर्म होते हैं, व्याजतः यहाँ भी उसका निरूपण किया गया है।

सील संतोष फुनि अजपा जाप, परिहरि गया पुरातम पाप ॥
सत अर सहज पवन मन हाथि, मनसा पांचो चेला साथि ॥२॥
इतउत कोई सकै न फूटि, मूल गया ममता का छूटि ॥
समता सुबुधि विद्या मन साथि, भगति जोग दोइ लाडू हाथि ॥३॥
काम गयंद चींटी फिरि घेरया, पकड़ि सील सांकलि सूँ जेरया ॥
निरभै भया नगर मैं राज, तीतर कै मुषि देष्या बाज ॥४॥
पवन पियाला इम्रत पान, एकादसी अषंडित ध्यान ॥
हेतभाव प्रेम का बंध, मन का छूटि गया सब दंद ॥५॥
सतगुर एक इम्रत फल दीया, सो हम हेतप्रीति सूँ लीया ॥
मीठा अजब अकल समि भाइ, ताकी फंकि बिथा सब जाइ ॥६॥
यहु इम्रत फल जापै होइ, ताका पला न पकड़ै कोइ ॥
पैंडा अधर अपूठीं चाल, अब कै सतगुर किया निहाल ॥
हारि जीति का पासा गया, ऊजल निरमल निरभै भया ॥७॥
जांणि बूझि जागै सो जीवै, सहज समाधि सदा रस पीवै ॥
अजपा जाप भजन बलि जांव, ऊजड़ गया बस्या फिरि गांव ॥८॥
सो इम्रत फल हिरदै धारया, हिरदै धारि काल भै मारया ॥
माया दीन्हा मोलि न लहिये, सरवस दे ताका होइ रहिये ॥९॥
आसै जुरा अवधि तन छीजै, तन मन दै लाभै त्यूँ लीजै ॥
रूप न रेष वार नहि पार, या फल का कछु अगम विचार ॥१०॥

पाठभेद—वत–१। मुष–५। सुवधि–२-४। अषंडत–५। धंध–१। सौ–१। अकलि–१। इहु–१-५। सहजि–२-४। हुइ–२। त्यो–१।

शब्दार्थ—पुरातम=पुराना, अनेक जन्मो का। पाचो चेला=अन्तर्मुखी ज्ञानेन्द्रियाँ। चीटी=आत्माकार वृत्ति। जेरया=वश मे किया। तीतर के मुष देख्या बाज=विषयप्रवृत्त मन रूपी बाज तीतर रूप चित्त पर आक्रमण किया करता था, वही बाज रूप मन विषयविमुख हो अन्तःकरणस्थित चित् शक्ति रूप तीतर के मुख में है, वश में है। एकादसी=एकाग्रवृत्ति, स्थिरवृत्ति। फंकि=फाकी, प्रयोग, साधना। जांणिबूझि=पहचान, ज्ञात कर, सोच-समझ। ऊजड़=सूना, उजड़ा हुआ। लाभै=मिले, प्राप्त हो।

तरवर डाल फूल फल नांहि , साषीभूत वसै सब मांहि ॥
मात पिता गांव नहिं ठांव , अलष निरंजन ताका नांव ॥११॥
विद्यानगरि बसैं सब लोग , मन का छूटि गया सब सांसा सोग ॥
जन हरीदास अब ऐसी भई , मनसा उलटि अगम तहां गई ॥१२॥
ल्यौ की डोरि सुरति मधि धागा, मन निहचल निरभै सुषि लागा ॥

॥ इति इम्रतफल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ ज्ञानउपदेश जोगग्रन्थ ॥

पांच तत्त गुण तीन , धात तहां सात समोई ॥
जाग्रत सुपन सुषपति पांच , ज्ञान इंद्रि पचीस प्रकृति लोई ॥
हेत अहेति अलसाक निद्रा . चित चंचल निहचल नांही ॥
पांच कर्म इन्द्री दुष सुष , मन प्रांण बसैं ता मांही ॥१॥
राग दोष अभिमान , डिंभ पाषंड अहंकारा ॥
कांम क्रोध भ्रम मोह , आसा हठ लोभ अग्यांन अंधारा ॥२॥
सीत उसन षुध्या त्रिषा , मांनि अमांनि पष पोषै ॥
ममत मनोरथ मोच पोच , संगि सांसौ सोषै ॥३॥
कुबधि अविद्या कलपना , चिंता त्रिसना तहां लहिये ॥
च्यारि अवस्था षट्चक्र , घट सूँ औघट यूँ कहिये ॥४॥

पाठभेद—नगर–४-५ । कर्म–१ । करम–४ । त्रिष्ना–३-४ ।

शब्दार्थ—विद्यानगरि=आध्यात्मिक-विद्या या परा विद्या की बस्ती । सासा=सशय, भ्रम । पाच तत्त=पाच तत्व–आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी । गुण तीन=सत्व, रज, तम । धात तहा सात समोई=रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र, सात धातुओ का संयोग । अलसाक=आलस्य, अकर्मण्यता । दोष=द्वेष । डिंभ=छल । च्यारि अवस्था=जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या ।

घट में गोरष ग्यांन ब्रह्मविचार, हणवंत हेत त्रिसन वमेक ।।
भरथरी भाव महादेव मन , जलंधरी पाव जोग नारद नेह ।।४।।

लषमणां कंवार लषण वत्तीस , सुषदेव संतोष गोपीचंद आनंद ।।
सिंगी रिष सील चरपट चित्र , प्रेम प्रहलाद परमगुर प्रकास ।।६।।

धू धूनि अजैपाल अरथ , जनक जांणपणे चौरंगीनाथ चौथी दसा ।।
अंवरीक अचाही सती कणेरी साच, सनक स्वांति नागाअरजन नेह ।७।

सनक सनंदन सहज हठताली हठ, नेम कँवार निहक्रम हालीपाव हेत ।।
निहकंप कवीर मींडकीपाव परमोध,नांमदेव नेठाव धूं धलीमल ध्यान।८।

रहति रैदास औघड़नाथ अघट , पण पींपो प्रथीनाथ प्राण ।।
समझि सोझो रहणी रामचंद , दत्त दया मगरधज मुनि ।।९।।

घटि घटि गोरष ग्यांन , सु तौ सब घट की देषै ।।
दया करै ताहि कहै , और के पडे न लेषै ।।१०।।

नाथ पाकड़ै हाथ , पकड़ि हरिचरणां राषै ।।
भजौ निरंजन नाथ , सवद सतगुर यूँ भाषै ।।११।।

पिंड ब्रह्मंड मैं दोइ सिध , ग्यांन अर गोरष लहिये ।।
जन हरीदास भ्रम छाडि , ग्यांन गोरष तहां रहिये ।।१२।।

।। ज्ञानउपदेश जोगग्रन्थ ।।

पाठभेद—कुमार-१ । अंवरीष-१ ।

शब्दार्थ—वमेक=विवेक, ज्ञान । धुनि=शब्द, अखण्डित शब्द । जाणपणे=जानकार, तत्ववेत्ता । अचाही=बेचाही । स्वांति=शान्ति, अक्षोभ । सहज=स्वाभाविक । हठ=आग्रह । निहक्रम=निष्काम । निहकम्प=अचञ्चल । परमोध=उपदेश, शिक्षा । नेठाव=सर्वथा, बिल्कुल, दृढनिश्चयी । रहति=रहनि, चरित्र । पण=प्रतिज्ञा, व्रत ।

॥ अथ वार जोगग्रन्थ ॥

वार वार मनकूँ परमोधूँ , मन गहि पवन सहर सव सोधूँ ॥
आदित अगम ग्यांन उरि धारैं , मात वार का भेद विचारैं ॥१॥

जोग मूल गहि जोगी जागै , धुनि मैं ध्यांन तहां मन लागै ॥
हरि सुष वार पार मधि मांहि , निरभै घर लाधा घर मांही ॥२॥

सोमवार सहजि मन जागै , पवन निरोधै आरंभ लागै ॥
×अरध उरध मधि घूंम चढावै , वहौत भांति सूँ वेगर लावै ॥३॥

काया करम मैल सव षोवै , धूप लगावैं अंवर धोवैं ॥
मंगलवार वार है नीका , और सकल रस लागै फीका ॥
मन गहि पवन अटकि घर आवै, गंग जमन मधि पैंडा पावै ॥
वरषै अमी अखंडित धारा , सुषमनि सींचै वाग हमारा ॥४॥

वुधवार अनभै वुधि वांणी , अगम वसत अभि अंतर जांणी ॥
त्रिवेणी तट ताली लागी , इन्द्री पांच सुवधि ले जागी ॥
वंकनालि इंम्रत रस पीवै , परचै लागा जोगी जीवै ॥५॥

व्रसपति विष वन मांहि न रहिये , विष फल षाइ वहौड़ि दुष सहिये ॥
विष वन वारपार मधि नांहि , सुर नर असुर वसैं ता मांहि ॥
पैंडा अधर परमगति भूला , पूठा फिरै न जम वंध षूला ॥६॥

पाठभेद—परमोधौ–१ । सोधौ–१ । आरंभि–४ । आरंभ्य–२ । वहुत–१ । आया–१ । पाया–१ । अणभै–३-४ । वस्त–३-४ । विसपति–१ । व्रिसपति–२ ।

शब्दार्थ—सहर=कायानगरी । सोधूँ=साफ करूँ, शुद्ध करूँ । आदित= रविवार । अगम ग्यांन=परम ज्ञान, आत्मज्ञान । अटकि=रोककर । पैंडा=पथ, मार्ग । त्रिवेणी=भृकुटिस्थान । ताली लागी=लौ लगी, ध्यान लगा । विष वन=संसार । पैडा अधर=निराधार वृत्तिमय मार्ग । पूठा=पीछा, वापिस ।

× श्वास-प्रश्वास रेचक-पूरक प्राणायाम के पश्चात् विभिन्न प्राणायाम की साधना कर इन्द्रियो और मन के मैल को साफ करे । ज्ञानज्योतिरूपी धूप लगावे, गगनमण्डल की स्वच्छता करे ।

सुकरवार सहज घर लाधा, नीर न झलकै पारा बांधा ॥
मार अठारा पसरि न पोषै, नभ वहणि पवन धरणि नहि सोषै ॥
निरभै भया भरम सब भागा, ल्यौ की डोरि उनमनि लागा ॥७॥

थावर थिर सतगुर समझाया, पूरण ब्रह्म तहां काल न काया ॥
परम जोति परकाम विराजै, सुनिमंडल मैं सींगी वाजै ॥
सो धन मुझि किरपण का हीरा, देषि देषि मन राषूँ धीरा ॥८॥

सात वार का भेद विचारूँ, पैंडे चलूँ न वैठा हारूँ ॥
औघट घाट तहां मन जागै, भया अपंक पंक नहिं लागै ॥
जन हरीदास सतगुर की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥९॥

॥ इति वार जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ हंसपरमोध जोगग्रन्थ ॥

स्वामीजी पड़दा कौंण परमनिधि आड़ा, कहां षेलि दुष पावै ॥
पहिरया स्वांग साच नहिं दरसै, सो फिर कहाँ समावै ॥१॥

पाठभेद—शुक्रवार-१ । सहज्य-२ । मुझ-१-३ । विचारौं-१ । हारौं-१ । क्रूँण-१ । फेरि-४ ।

शब्दार्थ—थावर=शनिवार । हारूँ=खोऊँ, हार जाऊँ । अपंक=शुद्ध, निर्मल । पंक=कीच, विषयवासनामय । पडदा=आवरण, आड । स्वांग=बनावटी भेष ।

७वी साखी—सुकरवार सहज घर लाधा=शुक्रवार लाभदायी वार है जिसमे अपना स्वाभाविक घर-आधार ब्रह्म प्राप्त हो गया । बद्ध पारा जैसे विचलित नही होता है वैसे ही न तो प्राणमय न ही वीर्यमय पानी उछलता है—प्राण तथा वीर्य दोनां स्थिर हैं । बीस दिन की भार संज्ञा है—वर्ष के अठारह भार होते है । अभिप्राय है कि मन अब किसी भी दिन पसरि—विषयों मे जाकर पोषण प्राप्त नही करता । नभ वहणि पवन=गगनमण्डल ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित हुए प्राण मूलाधार में—अपानस्थान में आ उस अमृत का शोषण नहीं करते, जिसका स्राव ब्रह्मरन्ध्र—केन्द्र मे चन्द्रमा द्वारा होता रहता है ।

अवधू त्रिवधि ताप मैं झूलै षेलै, परम भेद नहिं पाया ॥
अंतरि अगनि गोपि ज्यूँ की त्यूँ, देषा देषि दुराया ॥२॥
स्वामीजी काँटा कौंण कहाँ सूँ लागा, कौंण सूई लै काढ़ै ॥
वांणी कौंण अगम घरि षेलै, मेर कहाँ लै चाढ़ै ॥
अवधू काँटा कुवधि गड्या उरि अंतरि, ग्यांन सूई लै काढ़ै ॥
वाणी ब्रह्म अगम घरि षेलै, मेर गगन सुष चाढ़ै ॥४॥
स्वामीजी उदबुद कथा कहा कहि वरणूँ, त्रिवधि ताप की छाया ॥
दिष्टि पड़ै पण निकसै नांही, या काँटै मन षाया ॥५॥
अवधू निहचा पषै परम पद न्यारा, निरमल ग्यांन न आया ॥
जहाँ निज ग्यांन सुरति कै नाकै, तहाँ काँटा चूणि षाया ॥६॥
स्वामीजी सूना सहर कौंण विधि वासै, सहजि समाधि लगावै ॥
×उलटा षेलि आकास गरासै, गम मैं अगम बतावै ॥७॥
अवधू सतगुर का चेला समि षेलै, गुण तज निरगुण दरसै ॥
लोहा पलटि होइ जब कंचन, तब पारस मणि परसै ॥८॥
स्वामीजी कौंण किवाड़ी जड़ै जतन सूँ, कौंण पियाला चाषै ॥
जाता कौंण फेरि घरि आंणै, सुरति कहाँ लै राषै ॥
अवधू काम किवाडी जड़ै जतन सूँ, पवन पियाला पीवै ॥
मन कूँ पकड़ि सहजि घरि आंणै, त्यौं कै पैंडे जीवै ॥१०॥

पाठभेद—ज्यो–१ । त्यो–१ । कुवुधि–१ । गिगनि–१ । दिमटी–२ । द्रष्टि–५ । आसै–१ ।

शब्दार्थ—गोपि=छिपी हुई । दुराया=छिपाया । उदबुद=अद्‌भुत, अनोखी । दिष्टि पड़ै=नजर पड़ती है, ध्यान जाता है । निहचा=सशय-विपर्यय रहित, दृढ़ धारणा । पषै=पक्ष, सापेक्षिक-धर्म, व्रत, तप, पुण्यादि । आणै=लावे ।

× उलटा षेलि आकास गरासै=प्राणप्रवाह को जो अपान से उठकर मुख मार्ग मे आता-जाता है, सुषुम्ना द्वारा मेरुदण्ड की ओर उलट कर गगनमंडल मे प्रवेश करे, तभी गम मे—दृश्यमान इस पञ्चभूतात्मक देह मे—अगम चेतन तत्व बतावे, प्राप्त करावे ।

परन्तु, इतना होने पर भी, हमे राघोदास द्वारा बतलाये गये निरञ्जनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक 'जगन' के विषय मे पर्याप्त जानकारी नही प्राप्त होती, ५५२ वे इन्दव द्वारा केवल इतना ही पता चल पाता है कि नियमानुसार सदा नाम मे निरत रहने के कारण, उनमे अलौकिक शक्ति आ गई थी, ब्रह्म के साथ उनका सम्बन्ध उच्चकोटि का था तथा इस जगत् मे वे वास्तव मे, 'जगन्नाथ' कहलाने योग्य थे। मनहर सं० ४४५ मे उनको किसी 'थरोली मे' रहने वाला बतलाया गया है जिसका हमे अभी तक कोई निश्चित भौगोलक परिचय उपलब्ध नही है, किन्तु उसापद्य में निर्दिष्ट किये गय •रिदास के वासस्थान 'डीडवाणा' के विषय मे हमे किसी प्रकार का सदेह नही रह जाता। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि, ग्रन्थ के ४२९ के छप्पै में जहा १२ निरजनी महतो के नाम गिनाये गये है वहा पर भी, लपट्यौ जगनाथ' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ही किया गया है, किन्तु, अन्य पद्यो मे तथा इन बारहो का पृथक् वर्णन करते समय भी, शेष ११ के लिए कोई निश्चित क्रम नही दिया गया जान पड़ता। इसके सिवाय, निरंजनी हरिरामजी की परचई मे कहे गये।

"घाट वाढ़ इनमें नहीं अधिकारी निजधाम के।
द्वादस महन्त निरंजनी सदा उर वसहु हरिराम के॥"

से ऐसा भी लगता है कि इन बारहो को प्राय. एक समान श्रेष्ठ समझा जाता रहा होगा। किन्तु इस पूरे पद्य के आरम्भ मे ही हरिदासजी का नाम आया है और इसमे जगन्नाथ का अन्तिम अर्थात् १२वा स्थान दिया गया है। जहा तक पता चलता है इन बारहो मे से कुछ को हरिदासजी के शिष्य-रूप मे भी परिचय दिया जाता है, किन्तु उनमे, कदाचित् जगन्नाथ का नाम नही है। राघोदास की 'भक्तमाल' का ३४२ वा छप्पै इस प्रकार है—

"नानक कबीर दादू जगण राघो परमातम जपे।
नानक सूरज रूप भूप सारै परकासे।
मवबा दास कवार ऊसर सूसर वरषाले॥
दादू चंद सरूप अमी करि सबको पोषे।
वरन निरंजनी मनौ त्रिषा हरि जीव संतोषे॥
ये च्यारि महंत चहूं चक्कवै च्यारि पंथ निरगुण भये।
नानग कबीर दादू जगन, राघो परमातम जपे॥३४२॥

जिसमें, क्रमशः गुरु नानकदेव को सूर्य, संत कबीर को इंदु तथा दादूदयालजी चंद्रमा कह कर, उनके द्वारा सबका कल्याण किया जाना बतलाया गया है, किन्तु यहां पर, चौथे निर्गुण-पंथ के स्थापित करने वाले महापुरुष की भी प्रशंसा, उसी प्रकार नामोल्लेख करके, की गई नही पायी जाती, प्रत्युत उसके लिए रची गई

स्वामीजी कौंण अटकि अरि उर तैं डारै, मुकतै महल विराजै ॥
गोरष भँवरण गवँण करि जीवै, सुष मैं सींगी वाजै ॥११॥
अवधू सतगुर सबद साहि सति आवध, तसकर मारि मनावै ॥
आसण अचल तहां मन निहचल, निरभै वस्त बतावै ॥१२॥
स्वामीजी दीरघ घटा कौंण मुषि सोषै, वद्दल विघन बिछौवै ॥
सात समंद जल तिरण कठिन है, कैसें परचा होवै ॥१३॥
अवधू मनसा घट पवन मुषि पीवै, मोह मनोरथ मारै ॥
मन गहि पवन गवन बेगमपुरि, सुरति सहज वरि धारै ॥१४॥
स्वामीजी कौंण वमत कर सूँ गहि डारै, प्रांण कहां सुष पावै ॥
मन कूँ कहां कसै कंचन ज्यूँ, सौलैह कला दिषावै ॥१५॥
अवधू गरब गुमान चरणां तलि चूरै, अरथ अबीर षिंडावै ॥
मन कूँ ब्रह्म अगनि मैं होमैं, सुबधि सुहागा लावै ॥१६॥
स्वामीजी कौंण घटै तन कौंण प्रकासै, नौधा भगति न भावै ॥
सीतल ठौड़ सदा रस पीवै, निरभै निज घरि आवै ॥१७॥
अवधू रजनी घटत उदै भया सूरं, दोइ दोइ चरण दुराया ॥
षेलैं प्रांण निगम तैं आगै, निज तरवर की छाया ॥१८॥
स्वामीजी जोगी कहो कौंण रस छाडे, कौंण जडी लै जीवै ॥
कौंण गुफा मैं निसदिन षेलै, कौंण पियाला पीवै ॥१९॥

पाठभेद—मुक्तै–५। भुंवरण–१। कठिण–२। प्रान–१-५। सोल्ह– ४-५। नल्य–२। अर्थ–१। नृभै–५। चरन–३-५।

शब्दार्थ— साहि=साहूकार, सहायक, बौहरा। सति=सत्य। आवध=आयुध, शस्त्र। बेगमपुरि=स्वस्वरूप, आत्माधिष्ठान ब्रह्म। रजनि=अज्ञानमय अन्धकार, तमोगुण। उदै भया सूरं=ज्ञानमय सूर्य उदय हुआ। दोइ दोइ चरण दुराया=मेरा-तेरा-मै-तू रूप भेदवृत्ति, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि द्वन्द्व दुराया–छिप गए, समाप्त हो गये।

११वी साखी—साधक गुरु से ज्ञात करता है कि किसको रोकना, किन शत्रुओ को भगाना, किस मुक्त महल में स्थिर होना जिससे ज्ञान द्वारा उस आधार-अधिष्ठान मे पहुँचकर जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाऊँ, चिरन्तन सुख में मस्त रहूँ, अनहद नाद की सीगी बजती रहे। इसका साखी बारह मे प्रत्युत्तर है।

अवधू निरभै नौ दरवार न जाचै, षिमां जड़ी लै जीवै ॥
ग्यांन गुफा मैं निसदिन षेलै, अगम पियाला पीवै ॥२०॥
स्वामीजी भौजिग मांही मंढी विराजै, सुर तैंतीस पिछाणैं ॥
चांवड के सिरि चोट लगावै, भैंसा राषै थांणैं ॥२१॥
अवधू भोपा भू का भार उतारै, भैरूँ का भै न्यारा ॥
अनहद सवद एक रस अंतरि, छाड़ि गया पूजारा ॥२२॥
×त्रिवधि ताप तिण तूल तरक तजि, मूल कँवल दल फूलै ॥
ग्यांन चक्र लै अरिदल जीतै, त्रिवेणी मंगि झूलै ॥२३॥
स्वामीजी कौंण जोग तामैं मन निरभै, रोग रति भरि तोड़ै ॥
आसण कौंण कहां सो वैठा, सुरति कहां ले जोड़ै ॥२४॥
अवधू मन निहचल निज वस्त वतावे, रोग पलटि होइ जोगी ॥
ग्यांन तषत वैठा रस पीवे, परम सूनि रस भोगी ॥२५॥
स्वामीजी आतुरि छाड़ि अगम घरि षेलै, अंतरि अलष लषावै ॥
ताका रूप कहां धू कैसा, समझि विना सुष नावै ॥२६॥

पाठभेद—षिम्या-२ । येकरस-२ ।

शब्दार्थ—नौ दरवार न जाचे=नेत्र, मुख, श्रवणादि द्वारा विषय की चाह न करे। षिमा=क्षमा। भौजिग माहि मढी विराजै=ससार मे देहरूपी घर है। सुर तेतीस पिछाणै=शरीर मे इन्द्रियो तथा अङ्गविशेषो के देवताओ को पहचाने—सुर शब्द देवपक्ष व प्राणपक्ष दोनो मे लग सकता है। चावड=तृष्णा, चिन्ता। भैंसा=भावरूप भैसे को थाणै—स्वस्वरूप मे ही लगाए रखे। आतुरि=आतुरता, जल्दबाजी, बिना-सोचे विषयो मे लग जाना।

× त्रिविध ताप देने वाले विषयरूपी तृण वासनारूपी रुई को तर्क मे-विचार से तज—छोड।

२२वी साखी—हे अवधू! भोपा, पडे, पुजारी, पुरोहितादि जो सकाम कर्म की प्रवृत्ति मे जनसाधारण को उलझाए रहते हैं जो कि तीर्थस्नान, व्रत, पुण्यादि, दानादि से पाप-निवारण का चकमा देते हैं। भैरूं—अभिमान का भय साथ है। जब आत्मचिन्तन मे लगने पर ब्रह्माण्ड मे व्यापक एकरस अनहद नाद की अन्तर मे प्रतीति होने लगती है तब सकाम-कर्म की भावना वाला पुजारी नही रहता—चला जाता है, फिर भोपो का भी असर नही होता है।

अवधू हरि परस्या तब ही मन निरभै, कै हरि परस्या नांही ॥
उनमनि लाग भया मन हीरा, वहौडि न व्यापै भांई ॥२७॥
सतगुर सबद सांच करि मानौं, सतगुर साच बताया ॥
ब्रह्म जीव का ज्यौं है मेला, त्यौं सतगुर समझाया ॥२८॥
जल मैं अगनि अगनि मैं जल है, सब कूँ दीसै पांणी ॥
प्रगटि झाल अगनि जल सोष्या, तब अगने अगनि समांणी ॥२९॥
स्वामीजी या तो अजर कहो क्यौं जरिये, षुध्या विना क्यूँ भावै ॥
पांणी अगनि किसी विधि सोषैं, मन परतीति न आवै ॥३०॥
अवधू सतगुर सबद अगम की पैंडी, ता चढ़ि लंघै पारा ॥
काय्या कष्ट अगनि में डारया, तब जलि बलि भया अंगारा ॥३१॥
स्वामीजी संजम कौंण कहाँ घसि झूलै, धोती कौंण मंगावै ॥
निरभै डोरि कहां लै राषै, कौंण कलस भरि ल्यावै ॥३२॥

पाठभेद—वहुडि–१। प्रतीति–१-५। लघो–५। कसट–२।

शब्दार्थ—परस्या=स्पर्श किया, मिला। झाई=परछाही, प्रतिविम्ब।

२९वी साखी—पचभूत वाले इस शरीर की उत्पत्ति शुक्र–शोणितरूप जल से–तरल से है। उसी शरीर मे जो आत्मतत्व है वह तेज–प्रकाशरूप होने से अग्नि है। उस आत्मतत्व के एकाश मे माया है वह जलरूप है। अतः स्थूल दृष्टि से सब पानी ही प्रतीत होता है। पंचभूत व माया ही दिखाई देते है। जब ज्ञानाग्नि की झल प्रज्वलित हुई तो उसने पचभूतात्मक शरीर के अध्यासरूप पानी को व अविद्या-जनित मिथ्या जगत् मे सत्य की भ्रान्तिरूप जल का शोषण कर लिया, तब देहस्थ आत्मतत्वरूप तेजोमय अग्नि अपने मूल अधिष्ठान ब्रह्म मे समाहित हो गई–अभेद स्थिति बन गई–यही अग्नि मे अग्नि का समाना है।

३०वी साखी—साधक गुरु से प्रश्न करते है कि अजर वस्तु का जरना पानी का अग्नि को शोषण करना इसकी मन मे प्रतीति कैसे हो। इसका उत्तर साखी मे नहीं है। सामान्यतः अविद्या अजर है। असत्य जगत् की प्रतीति अविद्या से ही है पर जब सत्यासत्य का निश्चयात्मक ज्ञान हो जाता है तब अजर अविद्या जर जाती है–पच जाती है, समाप्त हो जाती है। इसी तरह विरहाग्नि का शोषण स्वस्वरूपानन्द पानी कर लेता है।

अवधू संजम सील ग्यांन धसि झूलै, धोती ध्यान लगावै ॥
सुषमनि डोरि गगन मैं रोपै, षिमां कलस भरि ल्यावै ॥३३॥
स्वामीजी कौंण वस्त जा सूँ मन परसै, कैसे चौका देवै ॥
कौंण वस्त लै आगै अरपै, कौंण जतन सूँ सेवै ॥३४॥
अवधू आतम परमातम पति परसै, मनसा चौका देवै ॥
प्रेम प्रीति लै आगै अरपै, वहौत जतन सूँ सेवै ॥३५॥
स्वामीजी देवल कौंण कहां सो मूरति, सेवग क्यूँ सुष पावै ॥
चौकी कौंण कहां सो राषै, पाती कौंण चढावै ॥३६॥
अवधू ऊधा कँवल सुलटि करि सूधा, वटवै वस्त वतावै ॥
चित चौकी हरिचरणां राषै, तन मन पाती लावै ॥३७॥
स्वामीजी पैंडा कौंण किमी विधि चलिवो, निरषि निरास विचारै ॥
रूपकि रचै न घरि घरि नाचै, जुरा जोगिणि हारै ॥३८॥
अवधू पैंडा अधर पगां विणि चलिवो, आंषि अनूप उघारै ॥
आनंद सहित एक रस पीवै, करम कणूँका डारै ॥३९॥
स्वामीजी अवला कौंण अगम घर पेलै, पूत परीषिन जाया ॥
जामत सबै सकल कुल सनमुषि, परम सूँनि सूँ लाया ॥४०॥
अवधू बाँझ भई जब बेटा आया, वेटै वनषंड जारा ॥
रसना पषै पेम रस विलसै, परचै प्रांण अधारा ॥४१॥

पाठभेद—प्रसै–१। आत्म–१-४। परमात्म–१-४। वहत–१। विन–३-४। सनमुष–३-४।

शब्दार्थ—धसि=प्रवेश कर, तन्मय हो। झूलै=स्नान करे, एकमेक हो। वस्त=अमूल्य पदार्थ, आत्मतत्व। अरपै=भेंट करे, समर्पण करे। ऊँधा कँवल सुलटि करि सूधा=षट् चक्रो के कमल अधोमुखी होते हैं उनको सुषुम्ना मे प्राण प्रवाहित कर ऊर्ध्व-मुख करना। वटवै=हृदयरूपी वटुए मे। रूपक रचे न=साग न बनावे, कार्पटिक ढोग रचना। आषि अनूप=ज्ञानरूप नेत्र। पगा विणि= बिना पैरो के, सुरति द्वारा। बाँझ भई=निश्चल हुई, वासनारहित। बेटा=पुत्र, निर्भ्रान्त रूप ज्ञानमय पुत्र। वैसे लोक मे बाँझ के सन्तान सभव नही पर आत्मसाधना मे बुद्धि स्थिर हो वासनाहीन हो तब वह बाँझवत् हो जाती है–तभी ज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न करने मे सक्षम होती है। वनषड=जंगल, विविध वासनामय जंगल।

स्वामीजी तीन लोक नांना रस विलसै, अंति काल दुषदाई ॥
तीन लोक आगै सुष स्वामी, सो सुष देह बताई ॥४२॥

अवधू दिष्टि न मुष्टि ग्यांन नहि गाथा, रहै सकल तैं न्यारा ॥
तीन लोक आगे सुष जैसा, ताका वार न पारा ॥४३॥

स्वामीजी सो सुष कहो किमी विधि लाभै, करम न व्यापै काया ॥
जन हरीदास सतगुर कूँ पूछै, समझावो गुरराया ॥४४॥

अवधू आत्म के असथांन लहीजै, मन थिर है तो पावै ॥
परसत सवै देह गुण त्यागै, पीव मैं प्राण समावै ॥४५॥

स्वामीजी आत्म का अस्थांन कहां है, जा मैं अलष लुकाना ॥
मैं स्वामी सतगुर सति पूछौं, तुम हो बहौत सयाना ॥४६॥

अवधू सवद जहां तैं उठि चलत है, उलटा पवन समाई ॥
मौंज सहित सुषमनि नदी, तहां मिलै जो जाई ॥४७॥

स्वामीजी मन मतिवाला प्रेम का, पीवै प्रेम अघाई ॥
रोम रोम तन मन मिलै, एकमैक सुष थाई ॥४८॥

अवधू अंतरि कुछ दीसै नहीं, ज्यूँ जल जल ही समाइ ॥
तब हरि हरिजन एक है, जन हरीदास सति भाइ ॥४९॥

॥ इति हंसपरमोध जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद—कौं-१ । प्रसत-१-५ । लुकाणा-१ । वहुत-१ । सियाणा-१ । महैन-२ । सहत-५ । विले-३ । येक-२ ।

शब्दार्थ—गाथा=कथा, कहानी । लुकाना=छिपा, अदृश्य । सयाना=प्रवीण, स्याणा, परम विज्ञ । मौज सहित=रेचक, पूरक, कुंभकसहित-प्राणायामादि सहित । अघाई=तृप्त होकर, धाप कर ।

॥ अथ तिथि जोगग्रन्थ ॥

ग्यान सबद सति अरथ विचारै , मावस मन का मेल उतारै ॥
सुरति संवाहि वसै निरदावै , सांच न छाडै झूठ न भावै ॥
मैं तैं मोरचा मोटा मांही , तिल तिल काढै राषै नांही ॥
*सोलह कला समझि घरि आवै , अरधै उरधै ताली लावै ॥
करम कलणि कांने करै , ब्रह्म अगनि में जारि ॥
जन हरीदास मावम वरत , कोई करसी साध विचारि ॥१॥
पड़वा पलटि सुपह पथ जांणै , मूल मता मैं मनसा आंणै ॥
भरम न भेदै मन न डुलावै , गुर परसाद परम पद पावै ॥
×सतजुग आदि जागि जुगि जीवै, पवन निरोधै अंबर धोवै ॥
जुरा न व्यापै जुगि जुगि जीवै, सहज समाधि सदा रस पीवै ॥
पड़ता पासा छाडि दै , वैसै अजर जहाज ॥
जन हरीदास पड़िवा सुपह , सकल तिथ्यां सिरिताज ॥२॥
वीज विवधि विष वांण चुकावै , मन गहि पवन गगन मठ छावै ॥
यहु पण साहि पिसण पड़ि पैलै, अगम उजास तहां मिलि षेलै ॥
हरि सुष हेरि हजूरि वतावै , आनंद मैं गोविंद गुण गावै ॥

पाठभेद—अर्थ–५। सुरचा–२-३ ।-सोल्ह–५ । गुरु–१ । तिथा–५ । वाणि–१ । गगनि–१ । इहु–२ । मिल्य–२ ।

शब्दार्थ—संवाहि=संभाल, वृत्ति को अन्तर्मुख कर। मोरचा मोटा=भेदभावना का प्रबल सामना। करम कलणि काने करै=सकाम कर्म के दलदल को दूर करे। मूल मता मे=तत्वविचार मे वृत्ति को लगावे। वीज=द्वितीया तिथि। विष वाण= जहरीले तीर, विषय-वासनामय विषाक्त बाण। पण=व्रत, प्रतिज्ञा। साहि=साहूकार, श्रेष्ठ पुरुष, दृढ साधक। पिसण=लुटेरे, डाकू, काम-क्रोधादि। हजूरि=सम्मुख।

*सोलह कलामय चन्द्रमा ब्रह्मरन्ध्रगत मध्यबिन्दु मे है, उसको समक्ष जान वही प्राण का घर है, प्राण को वहां ला-समाधिस्थ हो।

×जो तत्व सतयुग आदि युग युगो मे पहिले है, उसीको सचेत हो सम्पूर्ण विश्व मे देख प्राण का प्राणायाम द्वारा निरोध कर समाधि-साधना मे लगे ताकि हृदयाकाशरूप अम्बर स्वच्छ हो-निर्मल हो।

कांम न झलकै कलपि न जांणै . ये नौ नाथ हाथ मैं आंणै ॥
बीज इसी विधि कीजियै , ज्यूँ सति मानैं साह ॥
साहिब सूँ मिलि षेलिये , आगै बसत अथाह ॥३॥
तीजस त्रिसना तिल तिल षांड़ै , तीन गुणां आगै पग मांड़ै ॥
*इला पिंगुला सुषमनि मेलै , बैसि निरंतरि चौपड़ि षेलै ॥
साध मंडली साथि विराजै , अनहद नाद अषंडित बाजै ॥
चंद सूरि समि अरथ विचारै , धुनि मैं ध्यांन कँवल दल धारै ॥
तीज रमत पीव तैं डरूँ . पिव रूठां कहां ठौर ॥
जन हरीदास आनंद भया , छूटि गया भ्रम और ॥४॥
चौथिस च्यारयों चोट चुकावै , मझि सुदेस बसै सुष पावै ॥
करज न काढ़ै मूल न हारै , आंन न जाचै राम जुहारै ॥
आइ सापि समझि घरि आवै , यहु सुप साहि सदा सुष पावै ॥
करम कपाट झड्या सब ताला , आतम अंतरि जोति उजाला ॥
चौथिस चौपड़ि षेलिये , दोइ दोइ चौट चुकाइ ॥
तीन तजि सारी सेल्हिये , चौथा घर मैं जाइ ॥५॥
पांचै पांच पलांट पहिलावै , बैसि दुलीचै लोग बुलावै ॥
साजन सैंण पिसण को नांही , अरथ अबीर पड्या सब मांही ॥
ग्यांन गुलाल केसरि वहो करणां , अंग लगाइ चलो हरिचरणां ॥

पाठभेद—ए-३-४ । ज्यौं-१ । स्यूँ-१ । त्रिष्ना-३-४ । डरौं-१ । च्यारूँ-५ । वहु-१ ।

शब्दार्थ—कलपि=तरस, लालायित । बैसि=बैठ, स्थिर हो । साध मडली=दैवी सम्पत्तिगुणसम्पन्न । च्यारचो चोट=काम, क्रोध, लोभ, मोह का वार । मंझि सुदेस=शुद्ध हृदयदेश के मध्य । दोइ दोइ=भेद भाव, कामादि दो दो के द्वन्द्व मेरा-तेरा । तीन तजि=तीनो गुण, तीन अवस्था जागृतादि । पांच पलटि पहलावै=पाचों ज्ञानेन्द्रियों को पलटि अन्तर्मुखकर आत्मा मे लगावे । दुलीचै=गलीचे, जाजम, हृदय-प्रदेश मे बैठ । साजन=हितैषी, शील, सत्य, सन्तोषादि । पिसण=चोर लुटेरा, काम-क्रोध-अहंकारादि । अरथ=मतलब, सत्यज्ञान ।

* इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों को सम कर त्रिकुटि-भ्रूमध्य स्थान मे लावे ।

सूकड़ि समता उरि घसि लाई , सषी महेली साथि बुलाई ॥
पाँचै पीव परसण भया , भेद सहित भगवंत ॥
रासमंडल मैं होत है , घरि घरि राग वसंत ॥६॥
छठि छक्या छक लाधा भारी , महलि पधारै देव मुरारी ॥
×गंगा उलटि जमन मैं आँणी , बाहरि भीतर एकै पांणी ॥
गिरवर गरक गया ता मांही , अगम अथाह थाह कछु नांही ॥
रूप अरूप मोह नहिं माया , निज निरलेप निरंजन राया ॥
चाँदणि छठि आई सषी , मिटि गया मोह अंधार ॥
अरस परस मिलि षेलिये , अब औसर याह वार ॥७॥
सातैं समझि पड़ी सुष पाया , आनंद सहित अरथ मैं आया ॥
*निरभै सीर नीर निज नेरा , ता सुषि लागि रह्या मन मेरा ॥
बहौत दिनै तैं या रुति आई , वस्त अथाह न जाइ छिपाई ॥
जाँणि बूझि ऐसा कछु कीया , अब हरि हम अपणाँ करि लीया ॥
मातैं सातौं समि सदा , निजपुर नगर निवास ॥
विणि बादल बरसा सदा , छह रुति बारह मास ॥८॥

पाठभेद—ल्याई-५ । सहैत-२ । या-३ । बहुत-१ । मातूँ-२ ।

शब्दार्थ—सूकडि समता=समता रूपी चन्दन । घटि छक्या छक लाधा भारी= अन्त:करण तृप्त हो गया-भारी मौका मिला । जाणि बूझि=सोच-समझकर । सातो= ज्ञानेन्द्रिया पाच, मन, प्राण—समि सदा-सम स्थिति मे बनाये रहे ।

× गंगा उलटि मन को अन्तर्मुख कर जमन मे-प्राण मे ग्राणी-मिलावे । मन-प्राण दोनों सुस्थिर हो तो पिड-ब्रह्माड मे व्याप्त परमानन्द रूप एक ही पानी की प्रतीति हो । जब परमानन्द की प्राप्ति हुई तो उस अगम अथाह आनन्दसमुद्र मे अहंकाररूपी महापर्वत गरक हो गया-विलीन हो गया ।

* कालादि भयो से रहित सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म की सीर-प्रवाह मे अमृत नीर प्रवाहित है, वह आत्मा के अत्यन्त समीप ही है ।

आठैं आठ काठ करि कानैं, छल बल छाड़ि इहैं हरि मानैं ।।
जंबुकि स्वान सिंघ दोइ मारया, हिरणी आगे चीता हारया ।।
मूसा कैं मुषि चढी मंजारी, तीतरि बाज करां बीचि धारी ।।
×पंष सवांहि समद मैं पैठा, आला अटल तहां जाइ बैठा ।।
आठैं अरथ विचारिया, फूलीं सब वन राइ ।।
भंवर कंवल रस पात है, पर दोइ दई उड़ाइ ।।९।।
आज मषी नैं नींद न आवैं, जागि न सोऊँ कंत रिसावैं ।।
वंकनालि मैं गरजैं बाई, सेझ सुहाग मिलै सुषदाई ।।
वरसैं धरणी गगन रस आवैं, रांम भरतार भजौं मोहि भावैं ।।
परम उदार सकल सुषरासी, अगम अलेष अगह अविनासी ।।
नौं द्वारौं मन ना वहै, दसवैं रह्या समाइ ।।
जन हरीदास आतुर मिटी, आनंद मैं दिन जाइ ।।१०।।

पाठभेद—स्यघ–२। सवारि–२। वण–३। भजूं–२-४। आणद–१।

शब्दार्थ—आठैं आठ काठ करि काने=आठों प्रकार के (रूप, धन, विद्या, पदादि) अहङ्काररूपी काठ को दूर करो। जबुकि=आत्मनिष्ठ वृत्तिरूप शृगाली ने। स्वान सिंघ दोइ मारया=कामवृत्तिरूप कुत्ते को और क्रोधरूपी सिंह दोनो को मार लिये। हिरणी आगे चीता हारया=स्थिर बुद्धि रूपी हिरणी से चञ्चल मनरूपी चीता हार गया। मूसा कैं मुषि=ज्ञानरूपी चूहे के मुख। चढी मजारी=ममतारूपी मजारी-बिल्ली खत्म हुई। तीतरि बाज करा बीचि धारी=सतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को अपने पंजे मे दबोच लिया है। वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग। वरसैं धरणी=सुरतिवृत्ति आत्मनिष्ठ हो एक रस से बरस रही है। गगन=दशम द्वार–ब्रह्मरंध्र मे निरन्तर अमृत रस का स्राव हो रहा है।

× निश्चल शुद्ध मन विवेक–विचाररूपी पंख संभाल–ब्रह्म समुद्र मे प्रविष्ट हुआ–अटल स्थान मे जा बैठा। पर दो दई उडाइ=द्वैतभावमय दोनों परों को उडा दिया–हटा दिया।

दसमी देव दया करि आया , सीतल नैंण वैंण सुष पाया ॥
जल मैं कुंभ कुंभ मैं पांणी , सकल वियापी यूँ सति जांणी ॥
+अकलि उजालै मेर उड़ाया , ×भंवरां का रस वेलि षाया ॥
ग्यांन निजरि भरि देषै लोई , सव घटि राम और नहिं कोई ॥
दसमी हरि दरसण दिया , हरि परम सनेही पीव ॥
सव सेभ्कां सांई वसै , जागि न देषै जीव ॥११॥

ग्यारसि करत वहौत दिन वीता, एकादसी न जांणै रीता ॥
जव लग निज तत निजरि न आवै, दुवध्या षेल वहौत दुष पावै ॥
कंचन छाड़ि काच वसि काचा , षड़चर षिम्यां नही सति वाचा ॥
या सुष वा सुष अंतर भारी , कहां दिनकर कहां राति अंधारी ॥
अंतरि धुनि एकादसी , वंकनाल रस षाइ ॥
मन उनमनि लागा रहै , नांना नेह चुकाइ ॥१२॥

पाठभेद—नैन वैन–३-५ । भौंरा–१-५ । सकल–५ । वहुत–१ । षिमा–१-५ । मन्य–१ । सत–५ ।

शब्दार्थ—जल मे कुंभ कुंभ मे पाणी=जैसे तालाब, कुण्ड, कूण्डी आदि मे जल भरा है उसमें से घडा भरते हैं तो घड़ा जल मे डूबता है, घड़े मे भी जल है–मतलब घडे मे तथा घडे के बाहर एक ही जल है । इसी तरह व्यापक चेतन घट रूप शरीर में तथा बाहर व्याप्त है । सव सेभ्कां=सब पलंगों पर, घट-घट मे । एकादसी=एकरूपता, अनन्य दशा । रीता=रीति, तरीका । दुविध्या=संशय मे पड़, अनिश्चित स्थिति । कंचन=आत्मचिंतन रूप सोना । काचा=कच्चा, अदृढ़, अस्थिर मति । षड़चर=पशुतुल्य । षिम्या=क्षमा ।

+अकलि उजालै मेर उडाया=अकलि–कलन रहित व्यापक ब्रह्म का घट मे साधना से प्रकाश कर संशयरूप मेर–पहाड को उडा दिया, हटा दिया ।

× मन रूप भँवरे का जो कि इन्द्रियों द्वारा विषय रस ग्रहण करने मे संलग्न था, उसके रस को निश्चल बुद्धि रूपी बेलि ने खा लिया–मन-इन्द्रियो को विषयों से हटा अन्तर्मुख कर आत्मनिष्ठ कर दिया ।

पंक्ति "वरन निरंजनी मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे" का अर्थ उतना स्पष्ट भी नही हो पाता। इस छप्पै की प्रथम एव अतिम पंक्तियो मे नानक. कवीर, दादू एवं जगन जैसे चार नाम स्पष्ट रूप मे दिये गये है और, फिर उन्हे दुहराते हुए, क्रमशः उनमे से प्रथम तीन वाले महापुरूषो के विषय मे, कुछ न कुछ कह दिया गया है। किन्तु उनमे से चौथे नाम 'जगन' को भी उसी प्रकार दुहराया गया नही दिख पडता, प्रत्युत उसके द्वारा अभिहित किये जाने वाले का केवल प्रशंसात्मक वर्णन मात्र कर दिया गया ही मिलता है जिससे, स्पष्टता के अभाव में, भ्राति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। प्रस्तुत पुस्तक के संपादक स्वा० मंगलदासजी ने, इसके लिए लिखी अपनी 'भूमिका' (पृ० ६६) मे, उक्त पक्ति मे आये हुए 'हरि' शब्द को स्वा० हरिदासजी का सूचक माना है और उसका अर्थ यो किया है "हरिदासजी ने संसार के विविध भोग पदार्थो को तृषा से पीडित मनुष्यो को निरंजन के विवेचन द्वारा संतोषे–सुखी किये।" और उन्होंने यह भी कह दिया है कि इस शब्द का अर्थ यहा पर 'हरन–दूर करना' नही है। परन्तु हमे ऐसा लगता है कि यहां पर, 'हरि' का अर्थ 'हरिदास' न करके उसका स्वाभाविक रूप मे 'दूर करके' अर्थ लगाना ही अधिक सुसंगत कहला सकता है। यदि यह न किया जाय तो फिर पद्य को प्रथम एवं अंतिम पक्तियो मे किया गया 'जगन' शब्द का प्रयोग नितात निरर्थक हो जायगा। हम अभी देख आये है कि इसके द्वारा अभिहित किये जाने वाले महापुरुष हरिदासजो भिन्न भिन्न व्यक्ति है जिस कारण यह इनका वाचक नही समझा जा सकता प्रत्युत यह किसी ऐसे अन्य पुरुष के लिए यहा प्रयुक्त हो सकता है जिसके बिषय मे वहां पर, नामोल्लेखन करके, केवल संकेत मात्र ही कर दिया गया है। अतएव, हमारी समझ मे उपर्युक्त पक्ति का अर्थ यदि "और निरजन को वरन करने वाले अथवा इष्टवत् स्वीकार करने वाले महापुरुष ने मानो समस्त प्राणियो की 'त्रिषा' दूर करके अथवा उनकी अभिलाषाओ की पूर्ति करके, उन्हे सतुष्ट कर दिया" किया जाय तो, यह कही अधिक युक्तिसगत हा सकता है। उस दशामे जो शब्द जहा प्रयुक्त है उसके वहा होने की सार्थकता सिद्ध की जा सकती है और चारों 'महंतों' का न्यूनाधिक उल्लेख भी हो जा सकता है। हमारे यहां 'वरन निरंजन' की जगह 'वरन निरंजनी' पाठ मिलता है जिस दशा मे 'वरन' शब्द का अर्थ ('विघ्न हरन' एव 'मंगल करन' के क्रमशः 'हरन' एवं 'करन' की भाति 'हरनेवाला' एव 'करने वाला' जैसे 'वरण करने वाला न करके) यहां 'वरणीय' का 'वरेण्य का अभिप्राय-सूचक 'श्रेष्ठ' वा 'वारिष्ठ' भी कर दिया जा सकता है। राघोदासजो ने 'जगन' का नाम, छप्पै ४२६ मे अंतर्गत, द्वादश निरजनी लोगों में, संभवत· 'जगनाथ' के ही रूप मे लिया है। इसी नाम से इनका परिचय, फिर ५५२ वे इंदव मे, दिया गया है तथा, ४४४ वे मनहर मे, इनके वासस्थान का 'करोली' नाम से निर्देश भी किया यया है। अत एव, हमे यहां पर सहसा किसी 'भूल' का होना समझ लेने अथवा 'जगन' शब्द' के स्थान हर 'जुहरि' की उपयुक्तता मानने की भी कोई वैसी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

*वारसि दांन पुनि क्यों कीजै , मनिष जनम धरि यहु सुष लीजै ॥
गरब गुमांन षरचि निरदावै , अगम अगाध सहज सुष आवै ॥
सत रज तम गुण मोह पसारा , यह दत द्यौ नर जागि संवारा ॥
पति सूँ प्रीति जीति गुण दूजा . हाथ पसारि करौ यह पूजा ॥
हरि सुमिरण हिरदै सदा , पाप पुनि दोइ दांन ॥
वारसि तहां मिलि पेलिए , जहां न दूजी आंन ॥१३॥

तेरसि तहां वसै मन मेरा , नहि सो दूरि नहीं सो नेरा ॥
ना कोउ लहै न काहु लाधा , हिंदु तुरक दोऊं पषि वांधा ॥
×वेद कतेव कथै रुचि मांनी , +यहु पण साहि रहे अभिमांनी ॥
अपणौ अपणौं रसि मतिवाला , सब जग छक्या विरध काहा वाला ॥
तेरसि ताहि पिछांणि रे , निर्कांट निरंजन राइ ॥
परम सनेही संगि वसै , प्राण तहां मठ छाइ ॥१४॥

चवदसि रांमचरण नहिं छाडूँ , जुवारी ज्यों तन मन वाडूँ ॥
दरसण देषि रेष तजि राई , जहां पड़दा तहाँ आन सगाई ॥
रटताराम अट्या अरि हारचा , ÷मूँवा जिवाया जीवत मारचा ॥

पाठभेद—वृध-५ । न्यरंजन-२ । प्रम-१ । छाडौ-१ । वाडौ-१ ।

शब्दार्थ—निरदावै=निष्पक्ष । दत्त=वैभव, सम्पत्ति । वाडूं=वारूँ, न्योछावर करूँ, दाव पर लगाऊँ । अट्या=अटका, मन स्थिर हुआ ।

* वारसि दान पुनि क्यौ कीजै=कर्मबन्धन के कारण दान-पुण्य क्यो किये जायँ ।

× वेद कतेव कथै रुचि मांनी=वेद-कुरान के कथन में विश्वास करने वाले ।

+ यहु पण साहि रहे अभिमांनी=जो साधक इसी हठ मे—इस प्रतीक्षा मे रह गये कि काम्य-कर्म ही जीवन का लक्ष्य है, वे सापेक्षिक धर्म, जाति आदि के ही अभिमान मे उलझ गये ।

÷मूँवा जिवाया जीवत मारचा=वृत्ति, विवेक, बुद्धि आदि जो मृतवत्—निष्क्रिय थे, उनको प्रबुद्ध किये, जागृत किये, सक्रिय किये । मन, इन्द्रियाँ जो विषय-भोग मे लग जीवित थे, सक्रिय थे, उनको मारा—विषय-वासना से छुड़ा अन्तर्मुख किया ।

मन निहचल निरभै निधि मांही, जहां तहां राम दूरि हरि नांहीं ॥
चौदसि चितवणि सब मिटी, अणबोल्या कछु गाइ ॥
जन हरिदास चंचल गया, निहचल रह्या समाइ ॥१५॥
सुर तैंतीस घेरि घरि आया, *पून्यौं मन फिरि मन ही समाया ॥
सकल समीपि सकल तैं न्यारा, पूरण परमानंद पियारा ॥
दुरमति दूरि दूरि हरि नाहीं, सबतैं अगम बसै सब मांही ॥
परमसिंध सुष वार न पारा, ता सुषि लागा प्राण हमारा ॥
जन हरीदास सोलाह सुतिथि, सदगति सुपहि लगाइ ॥
पून्यूँ पीव परसण भया, अंतरजामी आइ ॥१६॥

॥ इति तिथि जोगग्रन्थ समाप्त ॥

॥ अथ लघुतिथि जोगग्रन्थ ॥

मावस मन उलटा चढ्या, कला सँवारै चंद ॥
फिरि लागा उनमनि सूँ, छूटि गया सब दंद ॥१॥

पाठभेद—नृभै-५। चितवनि-१-५। पून्यू-४-५। पूरन-२। सुपैह-१-५। दुद-१।

शब्दार्थ—चितवणि=याद, स्मृति, विषयचिन्तन। अणबोल्या=बिना शब्द किये, ध्यानवृत्ति से स्मरण। सुर तैंतीस=आठ वसु=(पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे) एकादश रुद्र=(ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय-मन) बारह आदित्य=प्रति राशि प्रतिमास। इन्द्र और प्राण। दश इन्द्रियाँ, दश प्राण, पाच अन्त करण, आठ प्रकृति।

* पून्यौ मन फिरि मन ही समाया=स्थूल मन भोग-वासनामय बदल कर आत्माभिमुख सूक्ष्म मन मे समा गया-बदल गया तब पून्यों का प्रकाश व्याप्त हुआ।

१ ली साखी—मावस मन-तमोमय मन भोगो से विमुख हो उल्टा चढ्या-अन्तर्मुख हुआ आत्मनिष्ठ हुआ। चन्द्रमा की तरह प्रकाशमय मन अब शील, सन्तोष त्याग, वैराग्यादि कलाएँ संवार रहा है। फिर उनमनि-सहजावस्था मे बदल सब आठ द्वन्द्वो से-कालकर्मादि मे मुक्त हो गया है।

पड़िवा पष पर सब तजी , सु तौं और ही बाट ॥
गगनमंडल आसण किया , लांघ्या औघट घाट ॥२॥
बीजस बीज न षोइये . राषौ बीज अबीज ॥
जन हरीदास गरजै गगन , सहजि चमकै बीज ॥३॥
तीज त्रिगुण रस घेरि करि , ब्रह्म अगनि मैं जारि ॥
दौं लागी ×दरिया जलै , तुरिया भेद विचारि ॥४॥
चौथि चाह चक्रत भया , उलटी तालो लाई ॥
गंग जमन मधि पैसि करि , मीन मगर गई षाई ॥५॥
पांचै पांचौ फेरि मन , सुरति सहजि धरि धारि ॥
मन तारामंडल छेदि गया, उलटी पंथ सँवारि ॥६॥
छठि अछिप घट मैं छिप्या, पूरण परमानंद ॥
परसि परसि पावन भया , जहां तहां आनंद ॥७॥
सातैं सर ऊसर भया , पहमि पलटि गत नीर ॥
मछली बसै आकास मैं , लगी प्रेम की सीर ॥८॥
आठैं अरि सब परिहरि गया, असलि उदै भया ग्यांन ॥
आठ पहर इम्रत सुधा , बाज पियालै पांन ॥९॥

पाठभेद—फेरिकै-५ । अग्नि-१ । चक्रित-१ । बैसिकैं-५ । पांचू-२ ।

शब्दार्थ—बाट=राह, साधनमार्ग । बीजस बीज न षोइये=बीज-द्वितीया तिथि वही सफल है जिसमें आत्मचिंतन रूपी बीज को भुलाया न जाय । बीज=बिजली, ज्ञानज्योति । दौ लागी=लाय लगी । चक्रत=चकित । मीन मगर गई षाई=स्थिर बुद्धि रूपी मीन-मछलीने-मन रूप मगर को खा लिया विषयो से हटा आत्माभिमुख कर दिया । पांचौ=पंच ज्ञानेन्द्रियां । तारामंडल=गगनमंडल, दशम द्वार । अछिप=नही छिपने वाला, प्रत्यक्ष । सर=सरोवर, विविध वासनामय तालाब ।

८ वी साखी—सातैं सर ऊसर भया=वासनामय सरोवर ऊसर हो गये-सूख गये । पहमि-भावनामय भूमि बदली, त्रिष्णा तरल सूख गया, सुरतिवृत्ति रूपी मछली हृदयाकाश में पहुँच आत्म प्रेम की सीर में लग गई ।

× दरिया जलै=विविध भोगो की भावना का समुद्र जलने लगा ।

+नौंमी नवैं सँवारिये, अनड़ न मोड़े अंग ॥
मन फेरयां तन फिरत है, मनिष जनम कौ भंग ॥१०॥
दसमी देह दुरंग गढ़, दिह दिसि सौर लगाइ ॥
मेवासी करसा भया, मिल्या रैति होइ आइ ॥११॥
एकादसी अभंग है, जहां दुवध्या तहां दोइ ॥
जन हरीदास एसा बरत, जांणै बिरला कोइ ॥१२॥
दोइ राह तजि द्वादसी, जोगी देष्या जागि ॥
ब्रह्म अगनि मैं घरि किया, रह्या निरंतर लागि ॥१३॥
तेरसि तन मैं परम तत, पांच तत ते और ॥
बसै कहां नांही कहां, जहां तहां सब ठौर ॥१४॥
चौदसि मन चौथी दसा, गया लोक तज लाज ॥
चंद मिल्या आनंद सू, अनहद सबद अवाज ॥१५॥
पून्यूँ पष पूरा भया, सहजि सरया सब काम ॥
जन हरीदास आतम अंतरि, परम सनेही राम ॥१६॥

॥ इति लघुतिथि जोगग्रन्थ सम्पूर्णं ॥

पाठभेद—व्है–१। येकादसी–२। दुविध्या–२। तज्य–२। चवदसि–?।

शब्दार्थ—एकादसी अभंग है=साधना से प्राप्त सहज दशा अभंग है, अडिग है। दुविध्या=भेदवृत्ति, अनिश्चित स्थिति। दोइ राह तज द्वादसी=द्वादसी वही सार्थक है जब दोइ राह दो-मार्ग हिन्दू–मुसलमान, प्रवृत्ति–निवृत्ति के विकल्प को छोडे, एक ही मार्ग अपनावे। ब्रह्म अगनि=ब्रह्मप्रकाश। परम तत=चेतन तत्व, श्रेष्ठ सारमय। चंद मिल्या आनंद सू=नूरमय शुद्ध मन आनंद रूप ब्रह्म से मिला।

+ नौमी नवैं सँवारिये=नौमी को नवे पाच ज्ञानेन्द्रियो, चारो अन्त.करणो को सँवारिये–स्वच्छ करिये, चेतन तत्व मे लगाइये।

११ वी साखी—दशमी तिथि कब सफल हो, जब इस देहरूपी दुरग गढ, पखा पखी, भेद–भावनामय, प्रवृत्ति–निवृत्ति रूप गढ के चारो ओर विवेक–विचार-मय दारु बिछा दी जाय इससे वागी मन जो शासक-सेनापति रूप था, वह अब रैति-प्रजा बन, कृषक हो आध्यात्मिक खेती मे लग जाय।

॥ अथ चालीसपदी जोगग्रन्थ ॥

आतम ग्वालणि हे सषी, हरि भजि विलम न लाइ ॥
निरभै नांव निरंजनां, तूँ तासूँ ताली लाइ ॥१॥
अवगति की गति लषै न कोई, साधां सुष कूँ गाया ॥
गगनमंडल में गुफा सोधि लै, तहां निरंजन राया ॥२॥
मछ रूप करि वेद उधारया, ऐसा अचरिज कीया ॥
भगति हेति हरि आप पधारया, लै ब्रह्मा कूँ दीया ॥३॥
*भूला तोले कूप सिंधु सूँ, कूप सिंध क्या कीजै ॥
कूप कलै सागर अविनासी, अविनासी रस पीजै ॥४॥
करम रूप मथ्यां मैंणारंभ, मथि मधकीटक मारया ॥
अकल आप अविनासी आया, जन का कारिज सारया ॥५॥
अविनासी कहूँ आइ नहिं जावै, हम देष्या सब मांही ॥
जठर अगनि तैं रहै निराला, लिपता जाण्यां नांही ॥६॥
भगति हेत वाराह विधूँस्या, धरणि दाढ धरि राषी ॥
हरि आपणां आप निवाजै, स्यौ सनकादिक साषी ॥७॥
स्यौ सनकादिक अपणां सुष कूँ, उनमनि ताली लावै ॥
मरजीवा हीरा ले आवै, वार पार नहिं पावै ॥८॥
जन प्रहलाद बहौत दुष पाया, छूटी नांही ताली ॥
तब हरि नरहरि रूप बनाया, जन परतग्या पाली ॥९॥

पाठभेद—ग्वालनि-१। तास्यौ-१। इचरिज-२। विधौस्या-१। प्रतंग्या-१।

शब्दार्थ—तोले=तुलना करे, बराबरी करे। कलै=क्षीण हो, नष्ट हो। मैणारंभ=समुद्र। वाराह=वाराह अवतार। विधूंस्या=नाश किया, मधुकैटभ का महार किया। निवाजै=प्रसन्न हो, महरवान हो। स्यौ=शिव। मरजीवा=समुद्री गोताखोर। तालो=लौ, लगन।

* कूपसदृश अवतार सिंधु समान व्यापक ब्रह्म को भूले-बेसमझ मनुष्य बराबर कहते मानते है पर उनकी बराबरी कैसी? कूप अवतार क्षीण सत्ता होते है, नष्ट हो जाते है। समुद्र रूप व्यापक चेतन अविनाशी है, इसलिये सगुणोपासना मे न उलझकर निर्गुण उपासना द्वारा ब्रह्मानन्द रस का पान करिये।

नरहरि रूप कहौं क्यूँ हरि का , तेजपुंज परकासा ॥
माई वाप कुल नांही वाकै , सुनिमंडल मैं वासा ॥१०॥
वलि राजा पूरा जिग कीया , तब इंद्र हेत हरि आया ॥
पांव पतालि सीस असमाना, लंब तड़ंग कहाया ॥११॥
कहन सुनन की या विधि नांही, कह्या सुन्या वनि नावै ॥
हरि अपार पार को नांही . अगह गहण क्यूँ आवै ॥१२॥
परसराम षत्री जब आया , तब दैतां वल कीया ॥
असुर विधूंसि हरि विप्र निवाज्या. भगतां कूँ सुष दीया ॥१३॥
भगत भला जो प्रीति पिछांणैं . मन परफुलत नाचै ॥
हरि हीरा हिरदै मैं राषै , कौड़ी रूप न राचै ॥१४॥
रामचंद्र बाण जब लीया , सुर तेतीस छुड़ाया ॥
रांवण मारि लंका गढ़ तोड्या , राज बभीषण पाया ॥१५॥
रमतारांम और है भाई , समझि देषि मन मांही ॥
षुध्या त्रिसा रोग नहिं व्यापै, वार पार कछु नांही ॥१६॥
हरि गोकल मैं ग्वाल नचाया, निरविष कीया काली ॥
कंस केस चांणौर पछाड्या , मथुरा मैं बनमाली ॥१७॥
ना वनि वसै न मथुरा आवै, अलष लष्या नहिं जांही ॥
अवरण वरण ऊँच क्या नीचा, परपूरण सब मांही ॥१८॥
बुध अवतार महावल कीयौ , अघासेनि दल मारचा ॥
भगति हेति हरि ऐसे आया , भू का भार उतारचा ॥१९॥

पाठभेद—प्रकासा–१-५ । ज्यग–२ । तडाक–१ । कहण-सुणण–१-५ । सुण्या–१-५ । वंणि–१-५ । न्यवाज्या–२ । प्रफुलति–१ । कुछ–१ । गोकुल–१ । चाणूर–४-५ । जाई–१ ।

शब्दार्थ—असमाना=आकाश, आसमान । कौडी रूप न राचैं=भौतिक नाशवान् पदार्थों मे आसक्त न हो । निरविष=विषरहित । काली=यमुना का कालियादह । अघासेनि=पापो की फौज का सहार किया ।

भू कूँ भार न जाण्यां कोई, जाकै हरि रषवाला ॥
हम तो हरि ऐसें करि देष्या, वूढ़ तरण नहि वाला ॥२०॥

वेद कहै हरि सांभलि आवै, सूरज संकट निवारण ॥
निहकलकी औतार कहावै, कली कालिग कूँ मारण ॥२१॥

हरि कूँ कलंक न जांण्या कोई, कलंक न कोई लागै ॥
हरि अगाध ऐसे करि देषो, वांवै दाहिणै पीछे आगै ॥२२॥

निराकार आकार एकही, दुविध्या जाणीं नांही ॥
हरि थोड़ा कैसे करि देषूँ, है साहिव सव मांही ॥२३॥

तुम भूले औतार न जांण्या, साधां का सुषदाई ॥
निराकार कूँ मोई सेवै, जो सहजै सुंनि समाई ॥२४॥

*हम भूले तुम पढ़ि पढ़ि वूड़े, सवद सुणैं कहा भाषै ॥
उतपति पावक परलौ व्है तव, जीव कहां ले राषै ॥२५॥

निरमल देव सदा निहकांमी, नांव निरंजन राया ॥
यो ही पावक यौ ही परलौ, सव याही मांहि समाया ॥२६॥

पाठभेद—अवतार–१। न्यराकार–२। येकही–२। अवतार–१। प्रलो–१। होइ–१। नृमल–४।

शब्दार्थ—साभलि=संभलकर, सुमरण के साथ। दुविध्या=दो रूप, द्वैतपन। मेवै=पूजे, ध्यावे, ध्यान करे। सहजै=अनायास, आसानी से। पावक परलौ=वडवाग्नि द्वारा प्रलय हो।

२१ वी साखी—जिस शक्ति ने पानी मे-गर्भ पर आवृत जलीय स्थिति मे गर्भपोषक अग्नि को रखा, उसी शक्ति का सम्पूर्ण संसार मे रजमा है–करामात है, प्रभाव है। उसी महाशक्ति मे सम्पूर्ण प्रकृतिजन्य समग्र दृश्य पदार्थों का विलय होता है। उस महान् सर्वदा रहने वाली शक्ति को न जान अवतारादि मे भ्रान्त होना अज्ञान है।

* हम भूले तुम पढि पढि वूडे=साधक वाचक ज्ञानी से कहता है कि हम निर्गुण उपासना में लग भूल करते हैं तो तुम केवल विना–विचार के शास्त्र पढ़ उनका रहस्य जाने विना अज्ञान में डूब रहे हो।

साहिब अधर धरया सब दूजा , मिलता जांण्या नांही ॥
हम कूँ कहो पढ़ो समझाओ , आसंक्या मन मांही ॥२७॥
चौदा लोक रच्या जिनि बाजी , सो बाजीगर नहिं पाया ॥
उतपति पावक परलो व्है तब , सागरि जाइ समाया ॥२८॥
परलौ कहौ कहां है स्वामी , ज्यूँ याह आसंक्या भागै ॥
घटि घटि जठर अगनि का बासा, घट घट मांही जागै ॥२९॥
घट तौ पांच तत का मेला , रहता जांण्या नांही ॥
जठर अगनि का बासा ब्यौरौ , आसंक्या मन मांही ॥३०॥
जठर अगनि पांणी में राषी , कुछ रज मां जुग मांहो ॥
ता रज मैं सारा जुग छीजै , रहता जाण्यां नांही ॥३१॥
छीजै जैसा उपजै तैसा , घटता जांण्या नांही ॥
तुम अगाध बोछी मति मेरी , याह आसंक्या मन मांही ॥३२॥
मैं सब मांही सकल तैं न्यारा , जे कोइ सतगुर सरणैं आवै ॥
आपा मानि तहां मैं नांही , म्रतग व्है सोई पावै ॥३३॥
आपा बड़ाक ना तुम्ह स्वामी , आपै का मै कीया ॥
बाजी सबै तुम्हारी दीसै , तुम ही आपा दीया ॥३४॥
कहण सुणण की या विधि नांही, कह्या सुण्यां वणि नावै ॥
पीर जति अवतार अवलिया , ऐसा रूप दिषावै ॥३५॥
रूप कहो कैसा है स्वामी , हम तौ देष्या नांही ॥
अब बंदे कूँ रूप दिखाओ , दरसण देहु गुसांई ॥३६॥

पाठभेद—चवदा-१ । जब-४ । सम्रि-१ । मिरतग-१ । मृतग-५ ।

शब्दार्थ—आसंक्या=आशका । छीजै=नाश हो । उपजै=पैदा हो । बोछी=अल्प, थोडी । म्रतग=अहंकार रहित, आपा छोड, जीवन्मुक्त । बडाक=महान्, विशाल ।

३२ वी साखी—छीजे जैसा उपजे तैसा=तू न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है नही घटता-बढता है । तेरे इस एक रस रहने वाले रूप को कैसे समझे ? यह शंका कैसे निवृत्त हो ?

परिहरि पाप जाप जपि अजपा , नांव निरंजन लीजै ॥
त्रिवेणी तटि ताली लागी , ता आनंद मन छीजै ॥३७॥

आनंद कहाँ किसी विधि लाभै , वहौड़ि न सांसो सौषै ॥
ब्रह्म अगनि मैं वैसि सहज घरि, आतम तरवर पोषै ॥३८॥

घर ही मांही दरस परस है , काया मंज्या पावै ॥
सतगुर सबद साच करि पकड़ै , ता डौरै लागा आवै ॥३९॥

रामसनेही चिती चढ्या , दूजा देषण चंग ॥
हरि रंग चढ्यौ न ऊतरै , उड़ि उड़ि जाइ पतंग ॥४०॥

जब हरि हीरा करि चढ़ै , मेल्है रंक छिपाइ ॥
जन हरीदास हरि अघट है , कोई गाफिल षोटा षाइ ॥४१॥

॥ इति चालीसपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चौदापदी जोगग्रन्थ ॥

सतगुर का चरणां चित धरिहूँ , अनिन्न भृगति सोई मैं करिहूँ ॥
गुर विन ग्यांन न पावै कोई , जो पावै तौ नृमल न होई ॥
धाग धाग करि गुर सुलझावै , गुर की सुलझि उलझि नहिं आवै ॥
गुर किरपा तैं हरि निधि पाई , जिन पाई तिन वहौत छिपाई ॥

पाठभेद—निरंतर-५ । तट-५ । च्यती-२ । चित-३-५ । शिर-१ । निरमल-१ । ज्यन्य-२ । वहुत-१ ।

शब्दार्थ—लाभै=मिले, प्राप्त हो। ब्रह्म अगनि=आत्मतत्व की ज्योति में। मंज्या=साफ हुए, शुद्ध हुये, मंजकर। चंग=चंगा, सुन्दर, अच्छा। गाफिल=असावधान। नृमल=विशुद्ध, निःसंशय। धाग धाग करि=तार-तार सुलझाकर।

*परगट करैस परगट पैंडा, परगट आइ पहूँचै नेड़ा ॥
पारि पहूँता उलटा ल्यावै, महापुरष तातैं वन छावै ॥
रनि वनि रहे जगत तैं न्यारा, राम भजै सारां सिर सारा ॥
गरव कलणि केता कल्या, तिन का लेषा नांहि ॥
वात चलावै सुरग की, षेलै नरकां मांहि ॥१॥
गुरगमि नहीं दुनी भरमावै, वा निज साहिब की षवरि न पावै ॥
आपै चल्या करम संग लीया, राम भजन कवहूँ नहिं कीया ॥
राम भजन विन जेती आसा, तेती सकल काल की पासा ॥
करमहीण ऐसा वैरागी, हरि तजि माया मीठी लागी ॥
माया वार पार कछु नांही, तेरू थकित भया ता मांही ॥
भांति भांति करि आड़ी आवै, ता तैं कोई वचण न पावै ॥
एक समैं स्योजी डहकाया, वांसैं लाग्या दौड्या आया ॥
माया का वल अनंत है, वचण न पावै कोइ ॥
रे मन! कौड़ी मति गहै, यहु हीरा रूप न होइ ॥२॥
तौ हरि हीरा जौहरी पिछाणै, कौड़ी रूप निकट नहिं आंणै ॥
राम रसांइण सव तैं मीठा, सो तो जुग षारा करि दीठा ॥
तरसि ढूकि पीवै को नांही, गरक भये सव माया मांही ॥
माया मीठी नैडा आंणै, वांह पकड़ि नरकां कूँ तांणै ॥

पाठभेद—प्रगट-१ । महापुरिष-१ । स्वरग-५ । थकत-१-थकति-२ । जुगि-२ । जुग-४-५ ।

शब्दार्थ—गरव कलणि=अभिमान के कीचड़ में । डहकाया=बहकाया, भ्रान्त किया । वांसैं लाग्या=माया से मोहित । तरसि ढूकि पीवै को नाही=लालायित हो उस राम-रसायन को ढूकि-लगकर कोई पीता नही । नैडा आणै=समीप ले, मोहित कर अपनी ओर खीचे ।

* आत्मप्राप्ति का जो विज्ञापन करता है-ढिंढोरा पीटता है तो उसका पेंडा-साधना दिखाऊ ही समझनी चाहिये । दिखावे की वासना से साधक सिद्धि के समीप पहुँचकर भी वापिस लौट आता है, स्खलन हो जाता है । इसीसे महापुरुष एकान्त निवास करते हैं, जिससे संगदोषवश साधना मे बाधा उपस्थित न हो ।

हो सकता है कि 'द्वादश निरंजनी' द्वारा सूचित किये जाने वाले प्रसिद्ध बारह निरजनी महापुरुषो के विषय मे पृथक् रूप से वर्णन करने की परम्परा राघोदासजी के समय अथवा उसके कुछ पहले से चली हो जब तक उनमे से कालानुसार अतिम क जीवन-काल भी बीत चुका हो। इसके सिवाय यह भी संभव है कि उन बारहो मे से सर्वप्रथम अथवा पथ के मूल प्रवर्त्तक का आविर्भाव-काल उस समय से सैकडो वर्ष पूर्व व्यतीत हो चुका हो। कम से कम हमे अभी तक उन सभी के किशी एक सुदीर्घ काल के अतर्गत क्रमश· प्रकट होने अथवा समसामयिक रहने तक का भी कोई निश्चित पता नही है उनका हमे केवल कुछ प्रशंसात्मक परिचय मात्र ही मिलता है और उनके स्थानो की ओर किया गया कुछ संकेत भी मिलता है जिनसे हमारा पूरा काम नही चल पाता। उनमे से जिन लोगो की कुछ रचनाएँ उपलब्ध है अथवा जिनकी चर्चा कही अन्यत्र भी प्रासंगिक रूप मे कर दी गई दीख पडती है उनके भी जीवन-काल के विषय मे हम, यथेष्ट सामग्री के अभाव मे, असदिग्ध निर्णय नही कर पाते। ऐसी दशा मे, यदि 'जगन' वा जगन्नाथ, वास्तव मे निरजनी सप्रदाय के मूल प्रवर्त्तक रहे हो तो, उनका समय, स्वभावत बहुत पहले व्यतीत हो जाने के कारण, तथा इस लिए भी कि उनकी न तो अभी तक हमे कोई रचना उपलब्ध हो पाई है और न उनके विषय मे कोई प्रासंगिक उल्लेख तक भी मिल सका है, निर्धारित करना अत्यत कठिन है। स्वा० हरिदासजी के आविर्भाव-काल के सम्भवत· विक्रम की सोलहवी शताब्दी मे होने का अनुमान अभी हम कुछ ही पहले कर चुके है। राघोदासजी की 'भक्तमाल' के ४३६ वे मनहर मे, 'हरिदासजी की टीका' शीर्षक के नीचे इनके विषय मे कहा गया है कि

"नृमल नृवांणी निराकार कौ उपासवान
नृगुणी उपासिकै निरंजनी कहायौ है"

अर्थात् इन्होने निर्मल निर्वाण एवं निराकार की निर्गुणोपासना द्वारा 'निरजनी' की उपाधि पायी जिससे विदित होता है कि अपनी साधना विशेष के कारण संभवत इन्होने ही सर्वप्रथम निरंजनी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा भी की होगी अथवा इस सम्बन्ध मे यहाँ तक भी अनुमान किया जा सकता है कि, इनकी इस 'निरंजनी' उपाधि के आधार पर ही, कदाचित् उस पथ का नाम भी प्रचलित हुआ हो। इस बात की पुष्टि हमे इस रूप में भी होती जान पडती है कि अनेक लेखक जिनमे से कई की चर्चा स्वा० मंगलदासजी ने अपनी 'भूमिका' मे की है) इन्हे स्पष्ट शब्दो मे उस मत का प्रवर्तक मानते आये है। परन्तु स्वयं राघोदासजी की 'भक्तमाल' के अन्तर्गत किये गये कतिपय स्पष्ट उल्लेखो के कारण (जिन पर हम अभी अपना कुछ विचार प्रकट कर चुके है) इसके पूर्ण तथ्य होने में हमे संदेह भी होने लगता है। अतएव, हमे यहाँ पर इस प्रकार भी अनुमान करना पड जाता है कि किसी जगन के इस निरजनी संप्रदाय के मूलप्रवर्तक होने की प्रसिद्धि, सभवत· राघोदासजी के समय मे पहले से भी रही होगी जिसका उल्लेख, अपनो रचना के अन्तर्गत, कर देना उन्हे आवश्यक जान पड़ा होगा। ऐसी दशा मे हमे तो यह भी

राम भजन विन विधि व्यौहारा, तेती सकल काल की मारा ।।
नर निवला सवली है माया, धाई नहीं सकल चुणि षाया ।।
रोग वध्या दारू घणी, लावै कोई नांहि ।।
तातैं रोगी बापड़ा, हसतां नरकां जांहि ।।३।।
यो ही भोग रोग होइ आवै, जैसा करै स तैसा पावै ।।
आपै चढ्या अरथ नहिं आवै, सोइ मरै जको विष षावै ।।
मूल मंत्र जांणै कछु नांही, विसहर लै मेल्है गल मांही ।।
जैसा फुनग तैसी है माया, जे षाया तै वहोड़ि न आया ।।
माया कलणि कल्या जुग सारा, है कोई साच बतावणहारा ।।
हरि इंम्रत रस छांड़ि करि, विष कूँ दौड्या जाहि ।।
कूवै राता मींडका, समंद समझि कछु नांहि ।।४।।
गुरगम समझि इसी परि आई, ऐसा अकल सकल पति राई ।।
नांव निरंजन अंतरयामी, हरि निरमल परपूरण स्वांमी ।।
तव सात समंद नहिं भार अठारा, तव था सोई अव सिरजनहारा ।।
गिर परवत नहिं मंडल तारा, समझि नहिं कछू वार न पारा ।।
निराकार आकार विनि, अनंत भवन के राव ।।
ताकूँ भज रे! प्राणियां, दुर्लभ ऐसो डाव ।।५।।
जोग ध्यांन सूँ जव धुनि लाई, तव हरि एक एक रे! भाई ।।
पवन न पांणि धरणी आकासा, चंद न सूर देव नहिं दासा ।।
द्योस न राति जाति नहिं कांई, अव याह जाति छोत ले आई ।।
छोति छोति करि जगत भुलाया, तातैं निज कणि हाथ न आया ।।

पाठभेद—ज्यको–२। जिको–५। तिसी–५। समद–१-४। न्यरमल–२। भ्रि–१। येक्येक–२। दिवस–१। ज्गति–२।

शब्दार्थ—निवला=कमजोर, असमर्थ। धाई नही=तृप्त नही हुई, सबको खाती हुई भी माया अतृप्त रहती है। दारू घणी=औषध बहुत है, मायाजन्य रोग की औषध भी अपार है पर करता कोई नही। विसहर=कालरूपी सर्प। फुनग=फणी, सर्प। कल्या=फँसा, गरक हुआ। राता=अनुरागी, लालायित। राव=राजा। डाव=दाव, अवसर। छोति=अस्पृश्यता।

परपंच रातौ प्रांखिया, हरि सूँ नांही हेत ॥
परवसि पड्यौ विगूचसी, अब तूँ चेत अचेत ॥६॥
मन परपंच करि वहौत भुलाया, उलझ्या वार पार नहिं पाया ॥
पकड्या झूंठ साच नहिं न्हालै, आप जलै औरा कूँ जालै ॥
पार गहै कोई जन पूरा, पूरा गुर का सेवग सूरा ॥
सूरातन की सौंज संभारै, काम क्रोध त्रिष्णा सब मारै ॥
मन की तरंग सकल चुणि पावै, ×उलटै अरहट वाडी पावै ॥
ता वाड़ी मांही पौहप परकासा, तहां निज सेव करै निज दासा ॥
सौंज संवारी भजन कूँ, अब कै यहु आकार ॥
कौड़ी गहि हीरा तजै, ताकूँ वार न पार ॥७॥
जब आकार न था अवतारा, ब्रह्मा सिसटि उपावणहारा ॥
स्यौ सनकादिक नारद नांही, समझि समझि देष्या मन मांही ॥
हरि बिण और न देवी देवा, सालिगरांम न क्यूँ ही सेवा ॥
जल ज्वाला परवेस न कीया, बिसन वेद पीछे कर लीया ॥
ता बाजीगर की षबरि न पाई, सब बाजी मांहि रह्या उलझाई ॥
कउवा क्यौं मोती चुगै, हंसा तजि कहां जाहि ॥
मान सरोवरि सकल सुष, तहाँ वैठा केलि कराहि ॥८॥
जब दुष सुष था न गुरू नहिं चेला, पांच तत्त का नांही मेला ॥
सीत न धूप राग रंग नांही, जामै मरै न आवै जांही ॥
जब कोई विप्र न था विप्रेला, वो एकाएकी रमे अकेला ॥

पाठभेद—वहुत-१। तिष्ना-१। प्रकासा-२-४। इहु-२-४। सिष्टि-१-३। देई-१। विष्णु-१। प्रवेस-१। रहे-५। झूठा-२। वोह-१। येकायेकी-२।

शब्दार्थ—विगूचसी=दुःख भोगेगा। न्हालै=देखै। जल ज्वाला=जन्म तथा मृत्यु वाले अवतार परब्रह्म के नही है। केलि=कल्लोल, खेल। विप्रेला=ब्राह्मणपन, जाति-परम्परा।

× उलटै अरहट वाडी पावै=मन को अन्तर्मुख कर वृत्तिरूप वाडी को पावे वृत्ति को सुदृढ़ बनावे।

या कै नांही रूप न रेषा, अब कछु रूप तमासा देषा ॥
*रूप रूप कूँ रसि रसि गावै, ×रूप चल्या ताकी सुधी न पावै ॥
निराकार हरि निरमला, नांव निरंजन देव ॥
अब जिनि भूले प्रांणिया, तूँ रहता कू सेव ॥९॥
भूला वहौत समझि नहिं कांई, ऊँच-नीच की वात चलाई ॥
=आवैं जाइस ऊँचक नीचा, * ता मैं ले ले डारे सींचा ॥
आडा ले ले चौका ढारे, पसुवापरी यौं क्यूँ न संभारे ॥
कौंण ऊँच कौंण है सुद्रा, जामैं मरैंस एकै उद्रा ॥
गरभवास में जब ले दीया, दिया संकटि रूहि रुचि पीया ॥
पी पी सहिरे रह्या दस मासा, अब कछु ऐसा कहै तमासा ॥
कहणी सुणणी दूरी करि, अंतरि षोट न राषि ॥
तूँ हरि भजि रे! प्रांणिया, सुणि साधां की साषि ॥१०॥
कहै सुणै पणि रहणी झूठा, जमस्यूं रजू रांम स्यूँ रूठा ॥
ऊँधै मुषि दस मास झुलाया, भजन षोट दै वाहरि आया ॥
×कलि की वाव भषी सुष पाया, आवत समै षसम विसराया ॥

पाठभेद—वहुत-१। येकै-२। ग्रम-१-५। पिण-१। वाहिर-५।

शब्दार्थ—सींचा=पानी के छींटे देना। पसुवापरी=पशुपना। पी पी सहिरे=माता का रस-रक्त पीकर। रहणी=चरित्र। षोट=आड। कलिकी=माया की। वाव=हवा। षसम=मालिक, स्वामी।

* रूप रूप कूँ रसि रसि गावैं=ईश्वर के अवतार मानकर सगुण उपासना गा गाकर करता है।

× किन्तु अवतार के प्रतीक मूर्ति या-चित्र को हटा ले तो फिर उस सगुण अवतार की खबर कैसे पावे।

= आवै जाइस ऊँचक नीचा=अस्पृश्यता मानने वाला औरों से स्पर्श न हो, इसलिये आते जाते ऊँचा-नीचा टल टल कर चलता है।

+ तामे ले ले डारे सीचा=भूमि मे शुद्धि के लिये पानी के छींटे देता है।

× कलि की वाव भषी सुप पाया=माया की हवालगी कि भोगों मे सुख मनाने लगा।

वाचा दे दे आयो भाई, सो वाचा क्यों भूलै लाई ॥
जोर करै मसकीन सतावै, जठर अगनि दिन चीत न आवै ॥
जब तूँ परलै कीट पतंगा, तब यह गरब कहाँ थौ गंदा ॥
गरब गुमान सब दूरि करि, वा निज साहिब कूँ जांणि ॥
वा निज साहिब कूँ विण भज्या, मनिष जनम की हांणि ॥११॥
हांणि कह्या कोई न पतीजै, निहचै मृघ वधिक कूँ धीजै ॥
जम नित वधक सदा नर हिरणां, चौरासी में दौड्या फिरणां ॥
कबहूँ पर पसु कीट पतंगा, मोर मृघ गति नाना रंगा ॥
कबहूं सूकर स्वांन सियारा, कबहूँ कउवा गति विचारा ॥
कबहूं इजगर पंषी गोहा, ए दुष पावै हरि सूँ दोहा ॥
परला मांही आवै जावै, आंधा पसु बहौत दुष पावै ॥
रांम भजै तौ सकल सुष, नहिंतर सब दुष साथि ॥
षोटा पटा लिषाइया, परा न आवै हाथि ॥१२॥
नाई सुबुधि कुबधि सूँ काला, साध नहीं कोई विष ज्वाला ॥
भजन भेद जांणै कछु नांही, *कुबधि षड़हिया कांधां मांही ॥
छापा तिलक भरम की पूजा, अंतरि करम कातरी दूजा ॥
मनसा मन कै मतै चलांणै, अंतरि की साहिब सब जांणै ॥
अंतरि षोट तहां हरि नांही, तातै बूड़ा परला मांही ॥
करम भरम सब दूरि करि, रहसि रहसि गुण गाइ ॥
तूँ हरि भज रे! प्रांणिया, नहितर काल अचूक्यौ षाइ ॥१३॥

पाठभेद—मिरघ–१। मृग–५। वधिक–१। ये–१-२। नहीतौ–५। कुछ–१। अंतर–४-५।

शब्दार्थ—परलै कीट पतंगा=जब तू कीट–पतंगों की तरह मरता है। हांणि=हानि, नुकसान। वधिक=शिकारी, मारने वाला। धीजै=विश्वास करे। दोहा=द्रोह, शत्रुता। षडहिया=खडिया। काषा मांही=कन्धे पर। रहसि रहसि=बार बार, प्रसन्नतापूर्वक। नहितर=नही तो।

* कुबुद्धि रूपी खड़िये को कन्धे पर डाल रखा है।

पापी काल मही सूँ भाई, पसवै समझि पड़ी नहिं कांई ॥
कनक कामणी कूँ मन दीया, राम भजन कबहू नहिं कीया ॥
पाँच तत्त का झूठा मेला, हरि भज प्रांणी चलसी अकेला ॥
अनंत लोक जिन किया पसारा, सो सब मांहि सकल तैं न्यारा ॥
भगति उधार बिड़द है जाको, निहचै नांव न छाड़ूँ ताको ॥
नांव गहै तो ही सुष पावै, भौ सागर में बहौड़ि न आवै ॥
साची सतगुर की सरणाई, अजब अनूप वस्त निज पाई ॥
गोविंद भज रे ! प्रांणिया, हरि इम्रत रस पीव ॥
जन हरीदास हरि अनंत है, सु कहा विचारा जीव ॥१४॥

॥ इति चौदापदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तीसपदी जोगग्रन्थ ॥

ऊँचा महल सेझ सुष सूंधा, मनहरणी नाना विधि नारी ॥
हैदल गैदल देषि छक्या छकि, नाचत गया नरांपति हारी ॥
छल बल करि वसुधा वसि कीन्ही, जम सूँ बल करि सक्या न छूटि ॥
हरि सुष छाड़ि साहि सुष कौड़ी, कलपत गया किता सिर कूटि ॥२॥
किरपण मरै न मूके माया, काठौ करि राषै कसि काच ॥
पहुँती जुरा विथा तन बीतौ, सूझै नहीं वड़ो सुष साच ॥३॥
करि करतूति भया नर चकवै, अदिष्टि चक्र बहै गुण एह ॥
रांम नाम निज भेद न जाण्यौ, गै ज्यूँ डारि गया सिर षेह ॥४॥

पाठभेद—इकेला-१। सौंधो-१-५। अदृष्ट-५।

शब्दार्थ—बिड़द=महिमा, यश। सूंधा=इत्र, फुलेल। हैदल=घोडों का दल। गैदल=हाथियो का समूह। कलपत=कलपते, अफसोस करते। किरपण=कंजूस। पहुँती=आई, प्राप्त हुई। जुरा=बुढ़ापा। चकवै=चक्रवर्ती सम्राट्। अदृष्टि चक्र=कालचक्र।

यहु संसार सकल विष कौ वन , गोव्यंद सगौ सनेही राम ॥
राम वोट जम चोट न लागै , मदगल मोह न व्यापै कांम ॥५॥
नाथ निरंजन निरषि निरंतरि , हरि हरि सुमरि गरक गत सूल ॥
वाजीगर भजौ भजौ कांई वाजी, डाला छाड़ि गहौ निज मूल ॥६॥
नौषंड पहौम पलटि पहिरावै , नाटिक फिरि नट सुष जोवै ॥
नट सुष देषि तजै सुष वाजी , हरि भजि इम कलिविष सब धोवै ॥७॥
मन गहि सवल अवल होइ हरि भजि, आवध पांच अटकि अरि मार ॥
हरि हरि सुमरि सुमरि नर हरि हरि, उलटौ षेलि पड़ै मति षारि ॥८॥
भजि मन रांम कांम करि कण कण, मैं तैं छाड़ि मुगध मतिहीण ॥
सुनिमंडल मैं सहज सुधारस , ता रसि वसि सहजैं ल्यो लीन ॥९॥
स्वाति वूँद वरषा रुति विगसै , आपौ समटि रहै जल मांहि ॥
सागर को जल सीप न परसै , मिलि षेलै तो मोती नांहि ॥१०॥
सुष संसार समद जल षारौ , षारै जल लागा भूलि जीव ॥
निरभै सीर नीर निज नैडो , आंषि उवाडि न देषै पीव ॥११॥
करता करण सकल जुग जोगी , ता जोगी सूँ प्रीति लगाई ॥
यहु पण साहि आंन तजि अनरथ, जुरा न व्यापै काल नहिं षाई ॥१२॥
अगहि अरीझ कहौ किम रीझै , जब लग घट मैं दूजी आंण ॥
कावल छाड़ि राम भजि केवल , तौ ता रुति रीझै रहिमांण ॥१३॥

पाठभेद—किलविष-१ । सुन्य-१ । संमद-१ ।

शब्दार्थ—मदगल=गर्व, अहङ्कार । गरक=सराबोर, तर, तन्मय । वाजी=भौतिक सम्पत्ति, माया । पहौम=पृथ्वी, भूमि । आवध=शस्त्र, आयुध, ज्ञान षड्ग । षारि=षारडा, ऊसर भूमि, अनित्य सुख । कण कण=पल-पल । मुगध=मोहित । मतिहीण=सद्बुद्धि से रहित । विगसै=प्रगटै, खिलै । दूजी आण=दूसरो दृढता, संसारी पदार्थो का मोह । कावल=कुगैले, कुमार्ग । तौ ता रुति=तो उस दशा, उस अवस्था मे ।

❀ यहु पणि साहि आन तजि अनरथ=हे साहि साधक आत्मचितन के पण-प्रतिज्ञा को पकड । बन्धन तथा जन्म-मरण के देने वाले अनर्थकारी कर्मों का परित्याग कर ।

ज्यूँ माता सुत प्रीति विचारै , अभि अंतरि आनंद उछाह ॥
यूँ नर नाथ नांव ले निसदिन , इणि औसरि यहु वडौज लाह ॥१४॥
निरभै थकौ नाचि मां घरि घरि, कहर न सूझै काल डर ॥
भजि भगवंत अंति पछिताइस , मरसि पछैही हमैं मर ॥१५॥
जैसे कुरंग नाद सुणि श्रवणां , षंड , षंड षंडियौ तन ॥
यूँ सति सुरति साध की हरि सूँ , तव जाइ दरसै रामधन ॥१६॥
ज्यूँ न्यौ लीन मीन पण पाणी , जौ छाड़ै तौ छूटै देह ॥
यूँ मन सुरति प्रांण गोव्यंद रत , तब जांणीजै राम सनेह ॥१७॥
इंद्रादिक कवल लहै लहि लोभी, मधकर ता सुषि रहै समाइ ॥
भार अठार फूल नाना विधि , यहु सुष तजै न वा वन जाइ ॥१८॥
चिंतामणि राम चाहतां लाधौ , निहचल वसत निजरि भरि जोइ ॥
आतम अंतरि अगहि अषंडित, परचा पषै न जांणै कोइ ॥१९॥
कामधेनि करतार सदा संगि , सुमिरण सार इहै सुष साहि ॥
जोगी जती पीर पैकंवर , ज्यूँ वंछै त्यूँ ही फल ताहि ॥२०॥
कलप त्रिछ हरि किलविष कारण, निरमल निकटि करण निरवास ॥
जा सुष कूँ संसार न जांणै , ता सुषि लागि रह्या निज दास ॥२१॥
आलस मकरि राम भजि भ्रमसि , जुरा पहुँती जनम जाइ ॥
वीतै जनमि वलै पछताइस , हरि गाइ सकै तौ हवै गाइ ॥२२॥
जैसे फुनिंग मेल्हि मणि चेजै , जोति उजालै करै जाइ ॥
यौं हरि अकल सकल की सोभा, तूँ तिणि विधि हरि स्यूँ ल्यौं लाइ ।२३।

पाठभेद—अभ्य-२ । राम-४ । हवे-१ । हरिस्यूं-१ । यन्द्रादिक-२ । यहि-४ । एह-५ । विरछ-१-५ । मरमसि-४-५ । पछतायसि-५ । सत-१ ।

शब्दार्थ—इण औसरि=इस मौके पर । लाह=लाभ । पछताइस=पछतायगा । हमैं=अभी, इसी समय । कुरंग=हिरण, मृग । नाद=शब्द, आवाज । जाणीजै=जांणिये, समझिये । इन्द्रादिक=इन्द्रियाँ, मन-प्राणादि । मधकर=मनरूपी भँवरा । ज्यूं वंछै=जैसे चाहे । निरवास=गन्ध रहित, वासना रहित । मकर=माकर, मतकर । भ्रमसि=भ्रमता रहेगा । वलै=फिर । हवै=अभी । चेजै=चुगा करे, पूर्ति करे ।

गहि गुर ग्यांन जाग जीव जोगि , सतगुर सवद साहि सति वांण ॥
षोलि कपाट आव गढ़ माही , साथी मिलै मिलै दीवांण ॥२४॥

सुर नर असुर सुरांपति कौं सुर , अकल अजोनि अंतरि देव ॥
ता सुषि जागि जांणि जीव लागौ , निसदिन करै निरंतरि सेव ॥२५॥

गहि गुर ग्यांन ध्यांन धरि अंतरि , हीरौ चढ़ियो हाथि हरि ॥
वीसरि जाऊँ तौ वलै न लाभै , काठौ राषूँ रंक परि ॥२६॥

निज नरसिंघ अगहि अभि अंतरि , घटि घटि अघट रह्या भरपूरि ॥
इकलस जोति एक रसि अंतरि , भूला भला वतावै दूरि ॥२७॥

रमताराम परम सुष सागर , गुणां रहत निरगुण निज देव ॥
आनंद रूप अषिल अविनासी , निहचल साध करैं नित सेव ॥२८॥

जठरा नहीं जुरा अहुं नही आलस , वप नहिं विथा परम सुषसार ॥
दीनदयाल देव करुणा मैं , है गोविंद निरधारां आधार ॥२९॥

जन हरिदास पति परसि परम सुष , सतगुर सवद पहरि सति भेष ॥
है हरि अकल सकल विस व्यापी , निहचल वसत निजरि भरि देष ॥३०॥

॥ इति तीसपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—सत-१ । अकलि-१ । अगेह-१ । गुनां-५ । निरगुन-५ । आणद-१ ।

शब्दार्थ—गढ माही=हृदयरूपी किले मे, गगनमंडल मे । अजोनि=चौरासी लाख योनियों से रहित । हीरौ=मनुष्यजन्मरूपी रत्न । वीसरि जाऊँ=भूल जाऊँ । काठौ=दृढता से, मजबूती से । रंक परि=कृपण की तरह । इकलस=एक रूप । गुणा रहत=सत, रज, तम रहित । निहचल=स्थिर, अचञ्चल । जठरा नही=जन्म नही । अहु=भी, अहङ्कार । वप नही=शरीर नही ।

॥ अथ बारहपदी जोगग्रन्थ ॥

रोटी रटणि रामजी मोटी , आलस मकरि आवछै छोटी ॥
लष चौरासी जूँणि मैं लौटी , षोटा देह छूटसो षोटी ॥
मैं तैं छाड़ि जागि जीव रोटी , कुदरति काल झालसी चोटी ॥
एक कनक अरु कांमणी , काल' दाढ़ ए दोइ ॥
यां दोन्यां विचि आइ करि , वंचै विरला कोइ ॥१॥
तैं मनिष जनम भ्रमतां भल पायो, सो तैं कौड़ी सटे गमायौ ॥
×हटवाड़ै वाजी डहकायो , षरच्यौ कहां कहां तैं षायौ ॥
गुण तजि निरगुण राम न गायौ , भूषौ जाइसि भूषवरि आयो ॥
भूष न भागी भै न गयो , *तिणचर तिण तहां जाइ ॥
सुर गुण तिण सुष छाड़ि करि , पस निरगुण का गुण गाइ ॥२॥
हरि सुष छाड़ि और सुष रीधा , करसी कहा कहा तैं कीधौ ॥
काच सटे कंचन कांई दीधौ , इम्रत छाड़ि जहैर जड़ पीधौ ॥
मन मोती माया मणि वीधौ , मारग छाड़ि कुमारग लीधौ ॥
छाड़ि कुमारग पंथ लै , कांई सहै सिरि भार ॥
वार वार तोसूँ कहूँ , यौही ग्यांन विचार ॥३॥

पाठभेद—दहुवा-१ । मिनष-५ । अवर-१ । जहर-५ । मण-५ ।

शब्दार्थ—रोटी=रोजी, कमाई । मोटी=बडी । आवछै छोटी=आयु थोडी है । जूंणि=जूंण, योनि । टोटी=टोटीड, अज्ञानी, मूर्ख । झालसी=पकडसी । हटवाडै= बाजार, हाट । डहकायो=बहक गया । भूष घरि आयो=नाशवान् पदार्थो की ओर लगा । तिणचर=पशु । पस=पशु, अज्ञानी । रीधौ=रँध गया, गल गया । कीधौ=कीयौ । दीधौ=दिया । जड़=अचेतन । पीधौ=पीया । लीधौ=लिया । कांई=क्यौ । सहै=बर्दाश्त करे ।

× हटवाड़ै वाजी डहकायौ=संसार के नाशवान् पदार्थो की विविधता मे बह गया ।

* तिणचर तिण तहां जाइ=पशु जहां घास की सम्भावना समझता है, वही जाता है । इसी तरह विवेकहीन मानव-पशु भी ससार के नाशवान्, घर, धन, स्त्री-पुत्रादि पदार्थों की ओर ही लगा रहता है ।

इतवत चितवत अवधि विहांणी, त्रिषा न भाजै वोछै पांणी ॥
लालच अगनि रहै लपटांणी , मनसा पकड़ि सहजि घरि नांणी ॥
दहदिसि षड़ा जगाती दांणी , जम दरबारि जाइवौ प्रांणी ॥
नाथ निरंजन अलष विनांणी , रांम भजन की गली न जांणी ॥
राम भजन का भै नहीं , दूजौ दूजै भाइ ॥
आंन ध्यांन गुर ग्यांन विणि , षोटौ षोटा षाइ ॥४॥
अरि रिप ग्यांन उरि नहिं छाजै, तव लग चिता चोट न भाजै ॥
माया तरवर जीव जाय विराजै , अंध अकंध निलाज निलाजै ॥
गोविंद कांई न भजै तन साजै , कुदरति काल सदा सिरि गाजै ॥
काल जाल लीयौ फिरै , जीव कहां कूँ जाइ ॥
अंति काल छाड़ै नहीं , षंड षंड करि षाइ ॥५॥
गहि गुर ग्यांन उरहौं काइ नावै, जहां जहां वंध्यौ तहां दुष पावै ॥
दावानलि पैठो पछितावै , होइ पतंग जले जलि जावै ॥
निरभै ग्यांन निराट न भावै , भूषो फिरै घरि घरि भरमावै ॥
भरम छाड़ि गोविंद भजौ , हरि परम सनेही तात ॥
कोई जन जाग्या सो जांणसी , यहु औसर यह घात ॥६॥
भजि रे ! राम पतित हरि पावन, परापरै भै भीड़ चुकावन ॥
प्रगट आप कूँ आप वतावण , पारब्रह्म पष पांच छुड़ावण ॥

पाठभेद—इतउत–३ । च्यता–२ । पावण–१ । चुकावण–१ ।

शब्दार्थ—इतवत=इधर-उधर । अवधि=नियत समय, आयु । विहांणी=खत्म हुई, चली गई । त्रिषा=प्यास, भोग की तृष्णा । भाजै=मिटे नही, दूर नही हो । वोछे पांणी=थोड़े पानी से । नांणी=नही लाया । दांणी=कर लेने वाले, दण्डनायक । दूजौ दूजै भाइ=संसार-सुख ही भाता है । अरि रिप ग्यान उर नहि छाजै=कामादि शत्रुओ का शत्रु जो आत्मज्ञान, वह जब तक उर–अन्त करण मे नही आवे । भाजें=हटै, दूर हो । अध अकध=विवेक विचार के नेत्र बिन अन्धा, सोच-समझरूपी सिर से रहित । निलाज निलाजै=लज्जाहीन से लज्जा ही लजाती है । उरि हौ काइ नावै=उरो इधर निवृत्ति मार्ग की ओर क्यो नही आता ? दावानलि=संतापाग्नि । निराट=इच भर भी, किञ्चित भी । भै भीड चुकावन=कालादिभय से रक्षा करने वाला ।

संभव सा ही लगता है कि दादू-शिष्य छोटे सुन्दरदासजी ने अपनी एक पंक्ति मे जो

'कोउ कहै हरिदास हमारेजु यौं करि ठानत वाद विवाद'[1]

कह दिया है वह भी कदाचित्, किसी ऐसे मतभेद की ओर ही सकेत करता होगा जिसका सम्बन्ध निरंजनी सम्प्रदाय के मूल प्रवर्तक वाले उक्त प्रश्न के साथ रहा हो। परन्तु इसमे संदेह नही कि, स्वा० हरिदासजी को इसका सस्थापक मानने के पक्ष में कही अधिक मत उपलब्ध होते है जिस कारण इसे ही स्वीकार करने की आज कल प्रवृत्ति भी देखी जाती है।

स्वामी हरिदासजी के सम्बन्ध मे अभी तक प्राप्त साहित्य तथा उनकी अपनी रचनाओ के आधार पर भी हमे उनका यथेष्ट परिचय नही मिलता, परन्तु फिर भी जितना पता चल पाता है वह भी अन्य निरजनी महात्माओ के विषय मे प्राप्त हमारी जानकारी की अपेक्षा कही अधिक होगा उनके लिए कहा गया मिलता है कि उनका प्रारंभिक जीवन किसी लुटेरे के जैसा था, किंतु, किसी महात्मा द्वारा प्रभावित होकर, उन्होने अपने शस्त्रादि जंगल के कुंए मे डाल दिये और 'तीखी डूंगरी' मे पहुँच कर ईश्वर-चिन्तन मे लीन रहने लगे तथा, अत मे, उन्होने सिद्धि भी प्राप्त करली। फिर वहा से चलकर उन्होने केई स्थानो का भ्रमण किया तथा, अधिकतर डीडवाणे मे रहते हुए, अपना चोला छोडा। उन्होने अपने विषय मे एक स्थल पर कहा है –

"नाथ निरंजन देषि, अंति संगी सुषदाई।
गोरष गोपीचन्द, सहजि सिधि नौ निधि पाई॥
नामैं दास कबीर, रांम भजतां रस पीया।
पीयै जन रै दास, बड़ै छकि लोहा लीया॥
अणभै 'वस्त' संभालिकरि, जन हरीदास लागा तहीं।
राम विमुष दुविध्या करै, ते निरबल पहुँचै नहीं॥१३॥[2]

अर्थात् नाथ निरंजन को ही अपना वास्तविक हितैषी मान कर गोरष और गोपीचन्द ने अपनी सहज साधना मे सफलता प्राप्त की तथा नामदेव एवं कबीर ने राम की भक्ति का रसपान किया अथवा पीपा एवं रैदास जैसे लोगो ने भी भरपूर लाभ उठाया। तदनुसार जन हरिदास को स्वानुभूति-जन्य बोध हो गया और यह उसीमे सदा निरत रहने लगे। जिन्हे इसमे विश्वास का संवल नही, वे सिद्धि नही प्राप्त कर सकते इससे स्पष्ट है कि उन्होने कोई ऐसा मार्ग अपनाया जिसमे नाथ पंथ एवं संत-परम्परा के मतो व साधनाओं का पूर्ण सामजस्य था जिस कारण एक ओर जहां उन्होंने "जन हरिदास नाथ का बालक, रहै नाथ की छाया"[3] कहा, वहां, दूसरी ओर, उन्हे "करडा पथ कबीर का सो हम लीया सोधि"[4] कह डालने

---

१. 'सुन्दर ग्रन्थावली' (पृ० ३८५) २. प्रस्तुत पुस्तक, पृ० २६५। ३. वही, पृ० ३६७। ४. वही, पृ० ३८८।

पूरण ब्रह्म माघ मंगि लावण . वरिषा सुनि निरंतरि सावण ॥
नप सप रोम रोम रम पांवण ,
रम पीवैं जीवैं तिकौं , मन की दुवध्या षोइ ॥
रमिया रम मैं मिलि रह्या , टलैं न दूजा होइ ॥७॥
सुरति संवाहि परमि अविनासी, हरि बिणि और सकल जमपासी ॥
दुरमति काल कहर की दासी , घटि घटि वसै डसै मसवासी ॥
सुर नर असुर सकल की मासी , आणंद अरथ परम सुषरासी ॥
सकल सुषां की मौंज हरि , जांणै बिरला कोइ ॥
गुण पोषैं निरगुण कथैं , यूँ हरि भगति न होइ ॥८॥
×त्रिमना षार षार मैं दाधो , पस ज्यूँ वारि परायै वांधो ॥
पामो काल वहौंत विधि पाधो , रांम भजन को भेद न लाधो ॥
पूरौ नहीं अधूरो आधो , सदगति होसी गाइ रे माधो ॥
माधो मनां विसारिमां , हरि परम सनेही राम ॥
हरि तरवर सुष छाड़ि करि , कांई सहै सिरि घाम ॥९॥
माघ संवाहि जुरा चलि आई , स्याह सेत सजन दुषदाई ॥
धूजै सीस ईस मजि भाई , षड़चर रषै पड़ै मति षाई ॥
गहि गुर ग्यांन ध्यांन धरि धाई, हरि हरि सुमरि सुमरि सुषदाई ॥
सकल सुषां की मौंज हरि , वार पार मधि नांहि ॥
देह गेह दुनियां तरक , प्रांण गरक ता मांहि ॥१०॥

पाठभेद—वरषारुति–१। नषसिप–१। आनद–४-५। कहै–५। बहुत–१। ध्याई–२-४।

शब्दार्थ—संवाहि=संभाल। डसै=काट ले। मसवासी=मच्छर की तरह। षार=ऊसर भूमि। दाधो=जला। वहौत=विविध प्रकार से, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि द्वारा। पाधो=पाया। धाम=ताप, सन्तापरूपी धूप। षड्चर=पशुवृत्ति वाला मनुष्य। धाई=दौडकर, अनुरक्त हो।

× त्रिसना षार षार में दाधो=विविध भोगवासना की षार मे पड सन्ताप की अग्नि मे दग्ध होता रहता है। पशु ज्यूं वारि परायै वांधो=जैसे पशु दूसरे के द्वारा बंधा रहता है उसी तरह तू भी विनाशी भोग-पदार्थों के मोह में बंध रहा है।

होसी तन छार भार तजि लोई, हरि विणि सगौ न सूझै कोई ॥
गाफिल जागि अभागि न सोई, सास उसासे उर मल धोई ॥
या गति जाणैं विरला कोई, कै जासूं हरि किरपा होई ॥
हरि भजि विष तजि नृमल होई, ×उनमनि रहै भरम सब षोई ॥
राम संभालि परम सुष सोई, काल सीस पर निस दिन जोई ॥
मन उनमनि लागा रहै, पीवै निरमल नीर ॥
त्रिवेणी तटि न्हावतां, जमका झड़ै जंजीर ॥११॥
भजि भगवंत करम करि कांने, तजि अभिमान इहै हरि मांने ॥
मन गहि सुरति राषि प्रसथांने, हरि परगट गाइ गाइ मा छाने ॥
सुष संसार धारि तजि आनै, पोथी प्राण राम लिषि पानै ॥
पोथी प्राँण संभालि करि, नाँव निरंजन लेह ॥
जन हरीदास हीरा जनम, कौड़ी सटे न देह ॥१२॥

॥ इति बारहपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बावनी जोगग्रन्थ ॥

बावन अषिर लोक सब, सुर नर लोक अनंत ॥
घरवास धूँवा जाईगा, अषै अषिर भगवंत ॥१॥
सिध साधक जोगी जनक, सुर नर कहैं विचारि ॥
ये सब करि सब तैं अगम, तहां कछु जीति न हारि ॥२॥

पाठभेद—तज्य-२। निरमल-३-५। अभ्यमान-२। प्रस्थानें-२। जन्म-४। अक्षर-४-५।

शब्दार्थ—सास उसासे=रेचक पूरक की क्रिया द्वारा। काने=किनारे। घरवास= बनाया हुआ, जगत। धूँवा जाइगा=समाप्त होगा, नष्ट होगा।

× उनमनि रहै भरम सब षोई=संशय-विपर्यय आदि सब भ्रान्तियो को दूर कर ध्यान की सहज अवस्था प्राप्त कर।

मुसलमान हिंदू मचै, वहौ विधि करैं विमेक ॥
दोइ नाम दीमैं दुरस, करता सबका एक ॥३॥

×सब्द तहां मंचर पड़ै, संचरि सरवस जाइ ॥
निह सब्द निरभै वसत, फेरि तहां मन लाइ ॥४॥

ऊँकार आदि है माया, षंड-षंड करि रूप बणाया ॥
जलि थलि जहां तहां रही समाय, माया षाजै माया षाइ ॥५॥

कका कसर असुर चलि आया, जुध कीजै गुर आप जगाया ॥
गाहि गुर ग्यांन ध्यांन उरि धारौं, मारणहार महारिप मारौ ॥६॥

षषा षबरि षलक की पाई, सींधूड़ै वाजै सहनाई ॥
ठाई ठीकी पड़ै लड़ाई, साथी हरि साथी जीत जुध मांई ॥७॥

गगा गरब कहौ क्यौं कीजै, निस दिन आव घटै तन छीजै ॥
वाजै रिण तूर न वाई दीजै, अरि दल जीति अगम गढ़ लीजै ॥८॥

घघा घात वात एक करियै, भवसागर मैंचकतैं डरियै ॥
राषै राम तिसी विधि रहियै, आसा छाड़ि परम गति लहियै ॥९॥

ननां नाथ हाथि मन राषौ, मुष तैं मिथ्या सवद न माषौ ॥
सुषमनि फेरि वेरि घरि आवौ, गंग जमन मधि मंढी वंधावौ ॥१०॥

पाठभेद—वहु-१। विवेक-५। दुरसि-३-४। म्यथ्या-२।

शब्दार्थ—दुरस=नीरस, दुख देने वाला। संचर=चेतन जड से मिला हुआ। अविभक्त। माया षजै माया षाइ=जो माया मे लगे हैं-भोगते है, उनको अन्त मे माया खा लेती है। कसर असूरि=अज्ञानमय असुर। महारिप=काल। षलक=संसार। सींधूडै=युद्ध गीत, रणक्षेत्र में। ठाई ठीकी=निशाने पर वार हो। न वाई दीजै=टाल-मटोल न करना। गंग जमन मधि=इडा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना मे।

× जब तक साधना वाणी के शब्द से की जाती है, तब तक वृत्ति मे धारणा बनती नही है, ऐसी साधना मे लगे रहे तो सरवस जाइ-जीवन निष्फल चला जायगा। साधना मे वाणी का व शब्द का सहारा त्याग कर वृत्ति मे ही उपास्य की धारणा करना तभी मन, प्राण, वृत्ति का समन्वय होगा और सहज दशा की प्राप्ति होगी।

बबा चूक पड़त है भारी, कब 'भजस्यौ' अब भजो मुरारी ॥
भटकौ कहा भटक भी मरणां, चितरणहार अगह उरि धरणां ॥११॥
छछा छाप अगम की वांचो, निहचल 'व्है' 'निरभै' रंगि राचो ॥
पासा 'हाथि' आथि छक सारी, अब चूकौ तौ बाजी हारी ॥१२॥
जजा जागि जुरा दल आया, सुर नर असुर पागड़ै लाया ॥
वासै काल जुरा भै डरणां, निरगुण भजौ अभषि भषि जरणां ।१३।
झझा झरै मरैगा सोई, 'याह' बातां सिध साध न होई ॥
भजि भगवंत छाड़ि सुष दूजा, 'इंहि' विधि करौ नाथ की पूजा ॥१४॥
नना नाहर कै संगि छाली, जबक भेडर टलै नहिं टाली ॥
चौड़े बैठी रहै निराली, तिण देवोटन ता कै लाली ॥१५॥
टटा अटल तहां टलि रहिये, 'परघरि' बसि परदुष 'क्यौं' सहिये ॥
चिंता बसै डसै घर मांही, तब लग निज घर 'लाधा' नांही ।१६।
ठठा ठिकविण ठौड़ न लहिये, फूटै मनि फीटा क्यूँ वहिये ॥
जांणि जहर इंम्रत करि पीजै, काच सटै कंचन 'क्यूँ' दीजै ॥१७॥
डडा हड़ हड़ क्यौं हँसियै, सापणि का मुष मांहि बसियै ॥
छल बल करि षासी कै षाधा, निगसांई निगुसवाँ लाधा ॥१८॥
ढढा 'ढह्या' कूप ढिग रहिये, कूप ढहै तब तौ संगि ढहिये ॥
बिवधि 'विजोग' विपति संगि सहिये, तौ दारण 'दोजगि' दुष सहिये ॥१९

नोट—' ' कॉमों के मध्य मे दिये गए शब्दो को पाठभेद समझे।

पाठभेद—भजिस्यौ–१-३। होय–५। नृभै–५। हाथ्य–२। यां–५। अंहि–१। यहि–४। प्रघरि–१। क्यूँ–२-५। लाभै–५। क्यौं–१-३। ढहै–१। जोग–२-३-४। दोज्यग–२।

शब्दार्थ—चितरणहार=जगत का कर्त्ता। आथि=आखिर, अन्त मे। पागडै लाया=किनारे लाया। वासै=पास ही, समीप ही। झरै=मन-इन्द्रियो को भोगो मे लगायेगा। ठिकविण=उचित स्थान, ठीक ठिकाना। फीटा=लज्जा रहित। हड हड=ठहाका मारकर। सापणि=मृत्यु। निगसाई=बिना मालिक का। निगुसवाँ=निर्धनी। ढह्या कूप=नाशवान् शरीर। ढिग=पास, समीप। विजोग=विछोह, जुदाई। दारण=दारुण, भयङ्कर।

णणा स्रुति मांही रस पाया, पीवत छक्या सहज घरि आया ॥
अहि वोढण ज्यूँ तजि गुण काया, भेदी जाइ अभेद समाया ॥२०॥
तता तात पिता सुत सोधौ, मूल कँवल मधि पवन निरोधौ ॥
सुत कै हेति पिता घरि आवै, निरभै थकौ निड़र घर पावै ॥२१॥
थथा थाकि 'कुपहि' करि कांनै, चाल्यौ सुपहि छाड़ि रहौ छानै ॥
करसि काल्हि आज त्यूँ कीजै, निरपष व्है निरभै पद लीजै ॥२२॥
ददा दुसह गया 'निति' 'दहिता', जहां तहां आइ पिसण कर गहता ॥
सत रज तम दुरभष दुष सहिता, निरभै भया मिल्या हरि रहता ॥२३॥
धधा ध्यांन धणीं कौ धरियै, 'मिरतग' छाड़ि अमर वर वरिये ॥
गया कुसाथी साथी आया, निरभै नाथ निरंजन पाया ॥२४॥
नना नांव निरंतरि लीजै, सिरकै सटै तुरत सिर दीजै ॥
साह मिलै तिंह घाट मिलीजै, सौदौ घटै न पूँजी छीजै ॥२५॥
पपा पिसण देह गुण जारण, घात सहत आपा घरि मारण ॥
हरि 'परिहरि' विसतार न कीजै, 'परवसि' पड़ि 'परदेस' वसीजै ॥२६॥
फफा फेरि सारि सब जोई, हरि विणि सगौ न सूझै कोई ॥
तजि अभिमांन राम भजि लोई, साह विणि सूनी सेझ न सोई ॥२७॥
बबा बोल कुबोल न कहियै, राषै राम तिसी विधि रहियै ॥
सुष 'संसार' निजरि सुष नावै, घरि जायाँ घर की तब पावै ॥२८॥

पाठभेद—कुपह–४-५। नित–१-५। दहता–१-५। सहता=१–५। मृतग–४-५। प्रहरि–१। प्रवसि–१। प्रदेस–१। संसारि–१।

शब्दार्थ—अहि वोढण=सर्प की केचुली की तरह। तात=हे मन! पिता=परब्रह्म। सुत=जीवात्मा। सोधो=तलाश करो। थाकि=थककर, हैरान होकर। कुपहि=कुमार्ग, नाशवान् पदार्थों की प्राप्ति में लगना। सुपहि=निवृत्ति मार्ग। छानै=गुप्त, छिपा। दुसह=असह्य। दहिता=जलाता। मिरतग=मरा हुआ, विनाशी। अमरवर=अविनाशी परब्रह्म। कुसाथी=काम-क्रोधादि। साथी=हितैषी मित्र, शील, संतोष, त्याग, वैराग्यादि। तिहि घाट=उसी तरह। पिसण=लुटेरे, लोभ, मोह, अहंकारादि। घात सहत=वार सहते। नावै=नाममात्र का। जायाँ=गये, पहुंचे।

ममा मरम नदी क्यौं वहियै , गहि गुर ग्यांन कनारै रहियै ॥
आलस छाड़ि अवधि तन छीजै , राम दया दरसै त्यूँ कीजै ॥२९॥
ममा मोह किसी विधि करियै , मरणा सही इहै उर डरियै ॥
'औघट'छाड़ि'घाटि' जाइ तरियै, चित वित घटै न पूठा फिरियै ॥३०॥
ममा मधि डरै मरैगा सोई , विणि मूँवा सिध साध न कोई ॥
अगम उरक गुरगमि सिष वांचै , सवद विचारि मिलै सुष सांचै ॥३१॥
यया या विणि अवर न दूजा , मन गहि पवन करौ हरि पूजा ॥
दीसै जिकौ सुतौ 'सव' माया , फल ताकौ छाड़ौ फल छाया ॥३२॥
जजा जोग मूल जो जांणै , इन्द्री मन प्रांण एक घरि आंणै ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै , परचा लागै जोगी जीवै ॥३३॥
ररा मन राषि रजा मैं रहियै , विणि हरि रजा 'वहोत' दुष सहियै ॥
राम विसारि पसरि दुष पीया , दिन दस पांच कहा जो जीया ॥३४॥
लला लहै गहैगा सोई , जहां 'देषूँ' तहां अवर न कोई ॥
गावणहारा कहा कहि गावै , आदि अंति कोइ मधि न पावै ॥३५॥
ववा अगम अरथ हम पावा , डरि डहक्या उरहि डरि षावा ॥
तरवर अगह तहां करि वासा , देषै अवधू अगम तमासा ॥३६॥
ससा सुष मैं सींगी वाजै , परम उदार अरथ उरि छाजै ॥
पद 'निरवांण' निरंतरि जागै , गढ़ि संचर पड़ै न तसकर लागै ॥३७॥

पाठभेद—अवघाट–१ । घाट–३-४ । सति–१ । बहुत–१ । देषौं–१-५ । नृवांण–२ । निरवान–५ ।

शब्दार्थ—किसी विधि=किस तरह । चितवित=चिन्तनरूप धन । पूठा=वापिस, पीछा । या विणि=इसके बिना । अवर न=और, दूसरा । परचा=परिचय, जानकारी । डहक्या=बौराया ।

३१वी साखी—मधि डरै-विचार से जन्म-मृत्यु दु.ख से डरेगा वही मरेगा, जीवन्मुक्त हो सकेगा । बिना जीवित-मृतक हुए साधक सफल नही हो सकता । मन-बुद्धि की पहुँच से आगे जो आत्मतत्व है वह गुरु उपदेशानुसार अपने अन्तर मे समझे । जो साधक गुरुनिर्दिष्ट उपदश को विचारेगा, तदनुसार साधना मे लगेगा वही चिरन्तन सुख की प्राप्ति करेगा ।

षषा षेप लगी घरि आवै, सोवै रषै चोर मति लावै ।।
निरभै वसत नफौ घरि आवै, तव लगि मैं तैं मूल गमावै ।।३८।।

ससा समझि विना दुष भारी, गाफिल पचौं मरै छकि सारी ।।
चेतन 'रहै' तौ चोट चुकावै, पासा हाथि आथि घरि आवै ।।३९।।

हहा हेत सहत सर लागा, वसंता षलै तिके षल भागा ।।
सतगुर वोट चोट नहिं काई, 'सनमुषि' रहि लावै त्यूँ लाई ।।४०।।

'षषा' षूनी मारि मनाया, मैवासी करि रैति वसाया ।।
अविनासी निरभै सुष दीया, करता जोर जेर सो कीया ।।४१।।

लला लालच लोभ न करियै, चालो देषि धणी भै डरियै ।।
करम 'कसर' छाड़ो छकि छाया, अवगति भजौ अवधि दिन आया ।४२।

बावन 'अषिर' पंडित कहै, सवद सवद का संचर लहै ।।
संचर छांड़ि निसंचर होइ, जन हरीदास ता समि नहिं कोइ ।।४३।।

बावन अषिर पढ़ै व्यौपाई, अषिर अगम तहां रहै समाई ।।
जन हरीदास निरभै तव होइ, उदै 'अस्त' मैं तैं नहिं दोइ ।।४४।।

।। इति बावनी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—होइ-५ । सनमुष-५ । क्ष-क्षा-४-५ । कसरि-३ अक्षर-३-४-५ । असत-२-५ ।

शब्दार्थ—सोवे=अज्ञाननिद्रा मे। रषै=रखवाली करै, सावधान रहे । छकि=मौका । हेत सहत=प्रेमाभक्ति सहित । सर लागा=गुरु उपदेशमय वाण लगा । वसता=निवास करता, रहता । षलै=षल, दुष्ट, अहङ्कारादि, देहरूपी खलिहान मे । षूनी=खोटापन, विषयी मन । मारि मनाया=मारि-निरोध कर अन्तर्मुख होने को मनाया, सहमत किया । मेवासी=गढ़पति । रैति=अन्तर्मुख बनी इन्द्रियरूप प्रजा । धणी भै=स्वामी के भय से । संचर=विनाशी । असंचर=अविनाशी, सत्य । व्यौपाई=सम्यक् समझकर । उदै अस्त=जन्म-मृत्यु, आना-जाना ।

॥ अथ ×सूरसमाधि जोगग्रन्थ ॥

'इहां' बमेक 'वहां' मोह दल , षेत बुहारया देष ॥
'ऐ' मारैं कै वै मारि 'ल्यैंह' , *संचर रहे न सेष ॥
साथ दोउ दिसा देषि जैं सारिषौं, बात थोड़ी हवैं लाभमी पारिषौ ॥
गैंद गाजै गुड़ै कहर भैं भींति भौं, संग्राम जीतै तिकै सीम 'द्यैं' सॉवतौं ॥
मिल्या सबला सबल पलैं बाजसी आज तौं. +बापड़ा बड़ बड़ैं रहैं
औं गाढ़ ज्यौं ॥

जन हरीदास आसा सुषी , सबैं कहावैं सूर ॥
अंति निवेड़ा होवसी , जब रिण बाजैं तूर ॥१॥

तूर बाजैं भलां आजि रिण मारका, नालि गोला जिरह टूक व्है सारका ॥
मरद मूँछाल रिण देषि ददकारता, =भीछ बाथां पड़ै वार नहीं पारका ॥
जोर तोलैं तुलैं भार 'तन' धारता , आज देषिये दुरत दोषीयां मारता ॥
तेग झड़फ बरछी वहै , मार मुँहे मुँहि पांहि ॥
अंतरि दीसैं विगसता , करि तोरण वंदण जांहि ॥२॥

पाठभेद—यहाँ–२ । उहाँ–१ । यै–१ । ल्यौ–४ । लौ–३ । लै–५ । दै–१-५ । नन्य–१ ।

शब्दार्थ—षेत=रणभूमि । बुहारया=साफ किया हुआ । मारि ल्येह्=मार लेंगे । सारिषौ=बराबर, समान । पारिषौ=परीक्षा । गैंद गाजै=हाथी चिंघारते है । कहर भै=मृत्युभय । सावतौ=सामन्त, अति शूरवीर । पलै=युद्धक्षेत्र मे । तूर बाजै= रणभेरी बज रही है । नालिगोला=तोपे-गोले दग रही हैं । जिरह टूक व्है सारका= खरे लोहे के बख्तरो के टुकडे हो रहे है । ददकारना=ललकारना । तेग झडफ= तलवारो की झडप हो रही है । विगसता=प्रसन्न होता ।

× सूरसमाधि जोगग्रन्थ मे युद्ध का रूपक लेकर मोह तथा विवेक (ज्ञान) के संघर्ष का निरूपण है । वीररस के निरूपण मे पिंगल की अपेक्षा डिंगल अधिक उपयुक्त रहता है । महाराज हरिदासजी ने इस लघुग्रन्थ मे अनेक डिंगल शब्दो का प्रयोग किया है । इस ग्रन्थ को ठीक से समझने के लिए इसके आगे के ग्रन्थ को साथ-साथ पढा जाय तो भाव समझने मे सुविधा होगी ।

* संचर रहे न सेष=इसमे किसी तरह का फर्क नहीं है ।

+ औगाढ ज्यौं=युद्धभय से जो छिपे हुए है, वे ही झूठी शेखी बघार रहे है ।

= भीछ बाथां पड़ै=भिचते हुए शत्रु-समूह मे घुसे जा रहे है ।

परणिवानौ षड़ा सार मास्हा चढ़ै, पाइकां पाइकां आज पडणा पड़ै ॥
×वागलै आप भल फौज सनमुषि पड़ै, *ताकातां हांकता जोध हांका करै ॥
आज पैला दलां देषि मारै मरै, +गुरज वाजै सिरां पिसण धुक धड़हड़ै ॥
=सौण अकारा आज का, पड़ै भडां सिरि मार ॥
सवकों दीसै म्हालता, गहि • 'पांचू' हथियार ॥३॥
आपणै आपणै गहि भरचा वोलता, घणा अमलां किया आंषि नहिं षोलता
()षारकां बाइकां 'अवर कूँ' छोलता, आज का द्यौस नैं षडग सति मोलता ॥
मारधारां 'मुँहि' देषि तनतोलता, मूँछ गहि सापुरिस न्याइ हसि वोलता।
पड़िया लग कर दाहिणैं, वांवै भुज गहि ढाल ॥
आप अषाड़ै आपकै, सव कोई दीसै 'माल्ह' ॥४॥
सकल साचै मतै दलै दोषियां दला, सूर रिण आहुड़ै षेत षेसै षलां ॥
तीर गोळा वहै वांण छूटै छड़ां, घुरै नीसांण सल मांण मोटा भड़ां ॥

पाठभेद—पाचौ-१-५। और कूँ-५। मही-२-३। माल-१-५।

शब्दार्थ—परणिवानौ=वरण करने को, मृत्यु को आलिगन करने को। वागलै= बागडोर ले, नेतृत्व सँभाले। भडां=सिपाही, पैदल। गहि भरचा=गर्व से भरे। म्हालता=उछलते हुए। सार धारां=तलवार की धार मे। सापुरिस=निडर योद्धा। पडिया लग=शेल, खड्ग, तलवारादि। माल्ह=बडा, प्रधान। दबै=मर्दन करे। रिण आहुडै=रण मे उमङ्ग मे जाय। षेत षेसै षलां=शत्रुओं से संघर्ष कर रहे है। घुरै नीसाण=नौबतें गम्भीर-घोष करती है, नीसाण–ध्वज फहरा रहे है।

× वागले आप भल फौज सनमुषि षडै=स्वय विवेक सेनापतित्व करते हुए अपनी फौज के सावन्तों का संचालन कर रहे है।

* ताका ताहा कता जोध हांका करै=शत्रु की ओर ताकते हुए शूरवीर गर्जना के साथ बढावा दे रहे हैं।

+ गुरज वाजै सिरां पिसण धुक धड हुडै=शिर पर खड्ग तलवारे बज रही है, पिसण–शत्रु भयङ्कर प्रहारो से धूज उठे है, घबड़ा गये है।

= सौण अकारा आज का=चपल घोड़े जो आकरे–तेजीवाले है, धावा कर रहे हैं।

() षारका बाइका अवर कूँ छोलता=कठोर वचन कहते हुए शत्रुओं को तिरस्कृत कर रहे हैं।

×जांणि वणराव चूरै चरै वणचरां,*दामणि झडां विधि सार धूकै धडां ॥
पड़ग लिये 'षत्री' षसै, मँझ्या महारिण मांहि ॥
=लोह घरट घमसांण मुषि, पड़ै स पींस्या जांहि ॥५॥
तौ वाजतै लोहडै पाव मांड्या षरा, काइरां कंदरे गया छिपि 'झंषरां' ॥
षारकौ मारकौ सूर ठावां नरां, घणां चूड़िला 'भाजसी' आज काहू घरां ॥
वीजली तेग कड़कै पडै कुंजरां, जोग संग्राम जोगी 'जुटै' पंजरां ॥
धूम धाम वाजै धका, वापैता मुँहि लाज ॥
अणी मिल्या मैंदान, मंड्यो अषाडो आज ॥६॥
संग्राम जीतै 'जकै' भेद लैं यूँ करै, मछर छाडै नहीं पैंड साम्हा मरै ॥
चंद सूरिज मिलै दुरजन षमै षडहडै, जम दाढ़ धमकै उरां करि मूँग
अवला छडै ॥
सरप की जीभ ज्यूँ परै अणीं झलका करै,
के लड़े के लड़षड़े थक्या उलटा पडै ॥
मांण न मूकै आपणो, मलैं परायो मांण ॥
ऊपर वाडै वोलतां, वोल्या तै परवांण ॥७॥

पाठभेद—षत्री-५। झंकरा-५। भाजस्यै-१। जुडै-४। ज्यकै-२।

शब्दार्थ—षसै=लडै। षरा=सच्चा शूरवीर। काइरा कंदरे गया छिपि झंषरा= डरपोक भग-भगकर दराजो मे छिप गए। घणा चूडिला भाजसी=बहुत सी स्त्रियो के आज चूड़े फूट जायेंगे। तेग=तलवार। कुंजरा=हाथियो पर। जुटै=इकट्ठे हो। वापैतां मुंहु लाज=अपने वंश की लाज है। अणी=फौज। मछर=क्रोध। उरा= छाती पर। परै=दूर। माण न मूकै=अपने मान को छोड़े नही। मलै=तहस-नहस कर दे।

× जिस प्रकार वन मे विचरण करने वाले वनचर वन को चूंटते-खाते रहते है, इसी तरह शूरवीर शत्रु की फौज का सहार कर रहे है।

* बिजली की चमक की तरह तलवारे चमक रही है—शत्रुओ के शिरो पर पड रही हैं।

= जो भयङ्कर शस्त्रो की मार मे पडता है वह पिस जाता है जैसे, घरट मे वस्तु पिसती है।

में भी, किसी प्रकार के विरोध का अनुभव नही हुआ। स्वा० हरिदास का मत अत्यंत सुसंगत और श्रेयस्कर जान पडा तथा उनके उत्कृष्ट व्यक्तित्व ने भी लोगों को आकृष्ट किया जिस कारण उनके अनुयायियो की संख्या बढने लगी। चाहे उन्होने, अपने उक्त मार्ग के आधार, निरजनी संप्रदाय का संगठन पहले पहल स्वय किया हो अथवा उन्होने ऐसे किसी नाम से पूर्व प्रचलित परम्परा को अपनाकर उसे सुव्यवस्थित रूप दे दिया हो तथा फिर उनके शिष्यो प्रशिष्यो ने इसे आगे और भी प्रचारित किया हो, इसमे सदेह नही कि, उनका विशिष्ट प्रभाव इसके ऊपर सदा बना रहा और उन्हे इसका मूल प्रवर्त्तक तक भी स्वीकार किया गया।

स्वा० आचार्य क्षितिमोहन सेन ने संभवत किसी ऐसे ही निरंजनी मत के अवशिष्ट अंश का अब तक उडीसा प्रांत मे पाया जाना तथा उसके द्वारा भारत के मध्यवर्ती एवं पूर्वीय क्षेत्रो का प्रभावित होना भी बतलाया है।[1] उन्होने उसके प्रभाव का अब तक सिलहट के किसी 'जगमोहनी संप्रदाय' और विशेषकर उसके 'विठंगल मठ' के ऊपर लक्षित होने की भी चर्चा की है[2]। परन्तु उन्होने ऐसे किसी प्रभाव के न तो रूप को निश्चित किया है और न, राजस्थान के अतर्गत इस समय प्रचलित प्रस्तुत निरजनी सप्रदाय के सिद्धातो एवं साधनाओ के साथ उसकी किन्ही मान्यताओं की तुलना करके, कोई निष्कर्ष निकालने का ही प्रयत्न किया है जिस कारण हमे इस बात का ठीक पता नही चल पाता कि यह वस्तुत उसका किसी प्रकार ऋणी ठहराया भी जा सकता है वा नही। इसी प्रकार, आज-कल राजपूताने मे वर्तमान निरंजनी साधुओ के किसो 'एक सप्रदाय' की चर्चा करते हुए, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उसके "प्रवर्तक स्वामी निरानंद निरंजन भगवान् (निर्गुण) उपासक" का नाम लिया है[3]। किन्तु हमे यहा पर भी यह स्पष्ट नही होता जान पडता कि उक्त सप्रदाय और यह निरंजनी संप्रसाय दोनो एक और अभिन्न कहे जा सकते है तथा, यदि ऐसा हो उस दिशा मे, उक्त प्रवर्त्तक 'स्वामी निरानद' का परिचय क्या है। इसके सिवाय, साधुओ के विभिन्न अखाडो का वर्णन करते समय, प्रो० घुरये ने किसी 'निरजनी अखाडे की भी चर्चा की है और उसकी स्थापना का, कच्छ प्रदेश के माण्डवी नामक स्थान मे, सन् ९०४ ई० मे, किया जाना कहा है तथा इस अखाडे के ही प्रधान केन्द्र वर्तमान समय मे प्रयाग मे पाया जाना भी बतलाया है,[4] किंतु हमे यहा पर भी यह पता नही चलता कि उसका इससे कोई सम्बन्ध है या नही। अतएव, हमे अभी तक इस बात का कोई भी निश्चित प्रमाण प्राप्त नही। जिसके आधार पर, किसी 'निरजनी' शब्द के साथ जुडे हुए नाम वाले पूर्व प्रचलित सप्रदाय के साथ, इसका किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। 'निरंजन' और 'निरंजनो' जैसे

---

१. क्षितिमोहन सेन: 'मिडीवल मिस्टीसिज्य आफ इ डिया' (लदन, १९२९ई०) पृ० ७०। २. नही पृ० १७०। ३. प० हजारीप्रसाद द्विवेदी: 'कबीर' (बम्बई, १९४२ ई०) पृ० ५२। ४. प्रो. जी. एस. धुरिये। इन्डियन साधूजी वम्बई १९५३ ई. पृ. ११७-११८

मांगि घक धुणि भुज हाथ मुषि फेरतां, आज का 'दिवस' की वाट नित हेरताँ ।।
कोट दौंडे बुर्ग्ज दुसमणाँ दलाँ पेरताँ . 'भौमि' वापैतणी देषिजे फेरतां ।।
×जेग जोगी मर्द आपणी जेरतां , जन हरीदास साहब सनमुषि सही
सूर तिणि वेरका ।।

सूर समाधि अगाध व्रत, जन हरीदास मन मांहि ।।
पैलानैं भाजैं भलां, आपण 'भाजिन' जांहि ।।८।।

कै मारैं कै मरि मिटैं, सिर दे लेह निज ठौर ।।
जन हरीदास सूरा तिको, काइर का मत और ।।

काइर टलि कानैं चलैं, डरता रहैं दुराइ ।।
जन हरीदास ता पतित का, दरसण करैं बलाइ ।।

सूर तहां धीरज सदा, मनि आतुरता नांहि ।।
हैदल गैदल देषि करि, भीकैं भाभां मांहि ।।

जन हरीदास मसतग रह्या, हरि को सौंप्या जांणि ।।
दूजा माथा षिरि पड्या, वैली षैंचा तांणि ।।

तीर तुपक 'गोली' वहै, विनसि जाइगा चाम ।।
सूरां का मैदान मैं, कहा काइर का काम ।।९।।

।। इति सूरसमाधि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—घोस-३-४ । भौम्य-१ । भाज्यन-५ । वरछी-३ ।

शब्दार्थ— कोट दौडे=किलेको तोड दे । वापैतणी=बपौती की, वंश-परम्परा की । काइर टल काने चले=डरपोक टलकर किनारा लेते हैं । दुराइ=छिप कर ।

× साधक, योगी और मर्द अपनी कमियो को हरा रहे है ।

॥ अथ सूरसमाधिअर्थ जोगग्रन्थ ॥

मोह कहैं बमेक सूँ, बैर किया सुष कौंण ॥
मेरी वसुधा ऊपरैं, तूँ ज करत है गौंण ॥१॥
आप सराहे आपकूँ, कौंण वड़ाई एह ॥
तेरी वसुधा तूँ घणी, तौ तूँ सिर साटै देह ॥२॥
जीवरषी जरणां इहां, 'उहां' आसा की आरथि ॥
मोह बमेक दोन्यूँ मरद, आइ मँड्या भारथि ॥३॥
इहां तूर सतगुर सबद, राग दोष वहाँ तूर ॥
जन हरीदास काइर डरैं, सूरां दूणौं नूर ॥४॥
सील गयंद जहां अणसरैं, काम 'गयंद' मिटि जाइ ॥
जन हरीदास ता घटि मदन, 'वहौड़ि' न गरजैं आइ ॥५॥
असलि ग्यांन जा घटि उदै, अंतरि प्रगटै आइ ॥
तहां जन हरीदास अग्यान गत, लोभ कहां ठहराइ ॥६॥
मांनि अमांनि हसती 'उहां', इहां दया गरीबी देष ॥
जन हरीदास 'चौदंत' भया, संचर 'रहै' न सेष ॥७॥
उहां कुवुधि नालि दारू गरब, गोला मैं तैं मांहि ॥
बमेक साथि सनमुष लड़ै, मार मुँहै मुँहि पांहि ॥८॥
इहां सुवधि नालि दारू दरद, गोला विरह अपार ॥
जन हरीदास काइर डरैं, पड़ैं भडां सिरि मार ॥९॥
पाप पुनि जोधा वहां, इहां जोधा वैराग ॥
जन हरीदास निरभै मतै, 'दुहूँ' उपाड़ी वाग ॥१०॥

पाठभेद—वहाँ–१-४। गइंद–२। बहुडि–१। वहाँ–२-५। चवदंत–१। रह्या–१-५। दहौ–५।

शब्दार्थ—गौंण=गवन, जबरन अधिकार। साटै=बदले मे। जीवरषी=ढाल। भारथि=संग्राम, युद्ध। तूर=तुरही, रणभेरी। नूर=चमक, तेजस्विता। मदन=काम। अग्यान गत=अज्ञान नष्ट हुआ। चौदंत=आमने-सामने। मेष=बाकी। नाल=तोप। भडां=सैनिक, योद्धा। उपाड़ी=सँभाली, बागडोर-नेतृत्व सँभाला। वाग=लगाम, मेनापतित्व।

इहां भजन गुरज उहां 'त्रिविधि' रस, षेत मंड्या षल आज ॥
जन हरीदास काहू घरां, आज निकंटो राज ॥११॥
कहै संतोष असंतोष सूँ, अपणी अपणी टेक ॥
तूँ तौ चाकर मोह कौ, मेरे धणी वमेक ॥१२॥
अणमैं वांणी वाण इहां, उंहां मनोरथ तीर ॥
मोह वमेक 'धौंचक' करै, काइर धरै न धीर ॥१३॥
इहां हेत षड़ग षेडी षिमां, उहां चिंता ढाल षड़ग छोह ॥
जन हरीदास लोभी नरां, आज वाजिसी 'लोह' ॥१४॥
इहां विचार अभिमान, उहां घरट दहुँ दल मांहि ॥
महाजोध भांजै घरट, काइर पीस्यां जांहि ॥१५॥
इहां तप तरवारि 'त्रिसना' उहां, पड़ै चोट सूँ चोट ॥
सूरवीर साचै मतै, काइर ताकै वोट ॥१६॥
इहां तत्त तरवारि करि, उहां चाहि तेग करि लोइ ॥
इहां षंजर धुनि ध्यान करि, उहां षंजर गुण दोइ ॥१७॥
इहां जमदाढ़ करि जोग की, उहां जमदाढ़ गुण देह ॥
ताती सीली दोइ मिली, चंद सूर गुण 'येह' ॥१८॥
इहां सेल अनहद सबद, 'विवधि' सबद उहां सेल ॥
मोह 'वमेक' मारैं मरैं, मंड्या पहम परि षेल ॥१९॥

पाठभेद—त्रिवधि-२-४। त्रिवध-४। घूँचक-५। लौहि-४। तिसना-१। त्रिष्ना-३। एह-४-५। विविधि-१। विमेक-१।

शब्दार्थ—निकंटो=निष्कण्टक। टेक=हठ, आग्रह। चाकर=सेवक। धौंचक=उत्पात, ऊधम। षेडी=इस्पात, खरा लोहा। छोह=क्रोध, गुस्सा। लोह=विविध शस्त्र। महाजोध=परम शूरवीर। भाजैं=तोड़े, मोरचा भङ्ग करे। पीस्या=पीसते, नाश करते। चाहि=तृष्णा, इच्छा। तेग=तलवार। गुण दोइ=रज, तम। जमदाढ़ि=मृत्यु, काल।

मन राजा काया सहर , मोह बमेक सुत दोइ ॥
जन हरीदास 'जीत्या' बमेक , मोह गया मुँह गोइ ॥२०॥

॥ इति सूरसमाधिअर्थ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवर्त्ति-परवर्त्ति जोगग्रन्थ ॥

सपत धात की सौंज सब , अहुँ गिर 'परगट' कीया ॥
नौ दरवाजा राषि , त्रिगुण तहां चूना दीया ॥१॥
पांच तत सति छोह , महा सुन्दर पुर काया ॥
नाना बुरज अनेक , चित्र कांगुरा बणाया ॥२॥
नौ सै षाई कोट , पाँच 'पायक' अभिमानी ॥
महल 'वहैतरि' मांहि , दोइ वारूँ पटरानी ॥३॥
चित्त चंचल परधांन , बात नाना विधि बांनी ॥
रंग रोम रस साहि , मन राजा रज ध्यानी ॥४॥
आपैं का सिरि छत्र , 'अहूँ' आवध कर मांही ॥
'परवै' सेती प्रीति , नेह निरवै सूँ नांही ॥५॥
परवै करै सिंगार , हाँक दै 'लोक' हँकारै ॥
निरवै रहै निरास , नहीं काहू कै सारै ॥६॥

पाठभेद—जीता-१ । प्रगट-१ । पाइक-३-४ । वहैतर-३-५ । अहं-१ । प्रवै-१ । लोग-१ ।

शब्दार्थ—गोइ=छिपा कर । सपत धात=रसादि सात धातुओं से बना शरीर । अहुँ गिर=अहङ्कार रूपी पहाड़ । सति छोह=सत्य, क्रोध । नौ सै षाई=नौ सौ नाडियाँ । पाच पाइक=पञ्चज्ञानेन्द्रिय प्रधान सेवक । वहैतरि=कोठे । पटरानी=महारानी, वृत्ति बुद्धि दोनो । परधान=मंत्री, प्रधान सलाहकार । रज ध्यानी=राजधानी, देहरूप राजधानी । परवै=प्रवृत्ति । निरवै=निवृत्ति मार्ग ।

निरवै पुत्र वमेक, सुवधि कुलवंती नारी ॥
सील संतोष परधान, ग्यांन चाकर षगधारी ॥७॥
सरधा कै वर सील, संतोष कै 'सुमता' नारी ॥
षिमा वरचो वर ग्यांन, विचार वारूँ दरवारी ॥८॥
परवै कै सुत मोह, कुवधि सूँ फेरा लीया ॥
कांम क्रोध परधांन, लोभ अग्यांन 'सँगि' कीया ॥९॥
रुति वरचौ वर कांम, क्रोध 'हंसि' 'हिंसा' परणी ॥
आसा कै वर लोभ, अग्यांन कै चिंता घरि घरणी ॥१०॥
'चौसटि' चेड़ी साथि, छकी अपणै रंग राती ॥
दुष सुष दोइ दरवार, तहाँ षेलै मदमाती ॥११॥
मनसा मनहरै, चरै नानाविधि षंडै ॥
काम क्रोध 'अभिमान', तहाँ फिरि आसण मंडै ॥१२॥
कुवधि घटा घरहरै, षिंवै नानाविधि गाढ़ी ॥
लोभ लूँव झड़ मंड्या, मोह की सेन्या ठाढ़ी ॥१३॥
महा मनोरथ राति, 'तहाँ' कछु सूझै नांही ॥
सांसो 'हंस्या' चित्त, षुसी षेलै ता मांही ॥१४॥
सोग विवोग अभिमान, 'तहाँ मिलि षेलै सारी ॥
देषि प्रांण थरहरचा, उरचां मै मान्या भारी ॥१५॥
तहाँ विचार वमेक बुलाया, सील संतोष ग्यांन संगि आया ॥
वीड़ा सव काहू कूँ दीया, हाथ पसारि षुसी 'हुइ' लीया ॥१६॥

पाठभेद—सुमिता-१। संग्य-२। हँस्या-२-३। चौष्टि-५-४। परधान-५। हिंसा-१। अंहू-३-४। व्है-१।

शब्दार्थ—पग धारी=खड्गधारी। वर=पति। वरयो=अपनायो, पति स्वीकार कियो। वारूँ=न्यौछावर करूँ। दरवारी=दरबार के प्रमुख सदस्य। रुति=रत, आसक्त। परणी=व्याह किया। घरणी=गृहणी, पत्नी। चौसटि चेडी=चौसर-कला मे सहेलीरूप मे। षंडै=विभक्त करे। मडै=रोपे, लगावे। षिवै=चमकै, प्रतीत हो। गाढ़ी=गहरी, खूब। ठाढी=मजबूत। सांसो=संशय, भ्रम। हंस्या=हिंसा। थरहरचा=कम्पित हुआ। वीडा=जिम्मेदारी उठाना, उत्तरदायित्व लेना।

सेन्या मोह सबल है भाई , ज्यूँ जांणौ त्यूँ करौ लड़ाई ॥
कहै विचार प्रथम जुध मेरा, मारि क्रोध मुक्ता द्यों डेरा ॥१७॥
संक पंक भय नांही मेरे , मारूँ काम क्रोध के डेरे ॥
कहै संतोष पाँचि बसि करिहूँ, लालच छाड़ि लोभ सूँ लरिहूँ ॥१८॥
ना मैं डरूँ न जुध करि हारूँ , लालच लोभ षेत धरि मारूँ ॥
सील काम अपणे बस कीया, 'परबल' जीति दाढ़ तलि दीया ॥१९॥
ब्रह्म अगनि में 'जारि' उड़ाया, निरभै प्रांण नांव सूँ लाया ॥
प्रगट्या ग्यांन अग्यान भ्रम भागा, धीरज बाँण मोह कै लागा ।२०।
काइर कहै कहा बल मेरा , मिटि गया काम क्रोध सा चेरा ॥
षिमा षड़ग लै हाथि , चिंत हिंस्या दोइ मारी ॥
सांसौ गयौ बिलाइ , दया कै महल पधारी ॥२१॥
सुबधि कुबधि कौ ग्रासि , साथि 'सुमता' कै चाली ॥
सरधा कै करि बांण , मोह की सेन्या पाली ॥२२॥
सिदक सबूरी सांच , जोग बलि जरणां जारै ॥
सोग बिवोग अभिमान , मोह का मूल उपारै ॥२३॥
काम रूति अटि सबल , और अणभै रुति आई ॥
झड्या मनोरथ पान , ×मेर सिरि गंग समाई ॥२४॥

पाठभेद—प्रबल–१-५ । जालि–२ । सुमिता–१ ।

शब्दार्थ—मुक्ता=खूब, बहुत । संक पंक=घबराहट, झिझक । पाच बसि=ज्ञानेन्द्रियों के वश मे । षेत=रणक्षेत्र । परबल=प्रबल, सजोर । षिमा=क्षमा । चित=चिन्ता । हिंस्या=हिसा । सासौ=संशय । बिलाइ=विलीन, गायब । ग्रासि=खाकर । पाली=परवरिश की, रक्षा की । सिदक=सचाई । जोग बलि=साधना-शक्ति से । सोग विवोग=शोक, वियोग । अटि=अटकी, रुकी । अणभै=अनुभव । झड्या=अलग हुआ, दूर हुआ ।

× मेर सिरि गंग समाई=दशमद्वार मे सुरतिवृत्ति पहुंची ।

*'ल्यौंकी' कै मुत जागि, सिंघ वन माँही मारया ॥
×महकी करै मलार, सुसै फिरि स्वान 'सिघारया' ॥२५॥
षिमा सँवारै सेभ, वसै चींटी निरदावै ॥
'महकी' करै 'मिंगार', षेत पर पांण न पावै ॥२६॥
+मूसा कै उरि सेस, उलटि जल माँही पैठा ॥
कुंजरि चल्या 'आकाम', मछ कुंभसथलि वैठा ॥२७॥
पिमण गया पग छाड़ि, भरम का ताला भागा ॥
तरवर वेक अनूप, प्राण 'तिंहि' तरवरि लागा ॥२८॥
=वसुधा सूँ जड़ नांहि, ÷गोढ तरवर नहिं पाया ॥
इंम्रत फल रस रूप, महासुष सीतल छाया ॥२९॥
ता तरवर में वास, मोह नहि व्यापै माया ॥
निरालंब निरलेप, अगम गुरगम तैं पाया ॥३०॥
परसि निरंजन देव, भेद लाधा 'भ्रम' भागा ॥
आनंद अगम अथाह, मन मनसा तहाँ लागा ॥३१॥
'परम' ग्यान पर ध्यांन, आन रस 'परसि' न पीवै ॥
परम मुनि परदेव, जागि लागै सो जीवै ॥३२॥

पाठभेद—लौकी-१। स्यंधारचा-२। महिषी-१। सेंणगार-१। आकासि-१-३। तहा-१। भरम-१-५। प्रम-१। प्रसि-१।

शब्दार्थ—ल्यौ की=लगन की। महकी=भक्तिरूप मक्खी। षर=काम-क्रोधादि। मूसा=विचाररूप चूहा। सेस=संशयरूप सर्प। कुंजर=प्राणरूप हाथी। चल्या आकास=दशम द्वार मे पहुँचा। मछ=मनरूपी मछली। गोढ=जड, मूल। आन=अन्य, और। परसि=स्पर्श कर।

* ल्यौ की-लगन के ज्ञानरूपी सुत जागृत है, सावधान हैं। अज्ञानरूपी सिंह को देहरूपी वन मे मार लिया।

× भक्ति रूप महकी=मक्खी प्रसन्न हो रही है, संतोषरूप सुसे ने लोभरूपी कुत्ते का संहार कर दिया है।

+ मूसा-विचाररूपी चूहे ने संशयरूप सर्प को निगल लिया।

=वसुधा सूं जड नाहि-पञ्चभूतात्मक शरीर मे अब अध्यासरूपी जड नही है।

÷ गोढ तरवर नहि पाया-ब्रह्मरूप अविनाशी तरुवर का मूल प्राप्त नही किया।

परम तेज पर जोति, जोंति मैं जोति 'निवासा' ॥
उलटा चढ्या अकामि, मूल मंडल मैं वासा ॥३३॥
ब्रह्म 'छोलि' में छक्या, लोभ की 'लाइ' बुझांणी ॥
ब्रह्मा विष्न महेस, सेस भागा विणि पांणी ॥३४॥
नारद सेती नेह, ग्यांन गोरष रजध्यांनी ॥
अनहद सवद उचार, सुरति निज सवद समांनी ॥३५॥
पाँचौ 'पांडू' फेरि, घेरि अपणै घरि आया ॥
चांवड़ कै सिरि चोट, भेद भैरूँ का पाया ॥३६॥
'केरूँ' सेनि अपार, अटकि अरि फौज उड़ाई ॥
चंद सूर समि किया, तत्त सूँ तालो लाई ॥३७॥
'नौसै' जोगणि साथि, फेरि जाता मन लीया ॥
*अनंत सिधां सूँ प्रीति, सहज मैं स्यौ रस पीया ॥३८॥
नऊँ नाथ निज ठौर, अकल तरवर की छाया ॥
ग्यांन 'सिंघासणि' वैसि, राम रटतां पति पाया ॥३९॥
जथा तिलां मैं तैल, 'काष्ठ' मैं अगनि निवासा ॥
जथा दूध मैं घिरत, 'पहौप' मैं परमल वासा ॥४०॥

पाठभेद—न्यवासा-३-५ । छोल्य-२ । छोल-५ । लहर-५ । पाडौ-५ । कैरो-१ । नवसै-१ । स्यंघासण-२ । कासट-२ । पहुप-१-५ ।

शब्दार्थ—लाइ=अग्नि । बुझाणी=शान्त हुई, बुझी । ब्रह्मा विष्न महेस= रज, सत, तम । सेस=सशयसर्प । भागा विणि पाणी=मायारूपी पानी के अभाव मे भग गया । नारद=नामचिन्तन रूप नारद । पांचौ पाडू=पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ । चावड= कुमति । भैरूँ=भ्रम रूप । केरूँ सेन अपार=विकाररूप कौरवो की अपार सेना है । चंद सूर=मन-प्राण । तत्त=ब्रह्मतत्व । नौसै जोगणि=नौ सौ नाडियाँ प्राण के साथ है । नऊँ नाथ निज ठौर=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ चारो अन्त करण अन्तर्मुख है । जाग्या= साधना मे लगा, सचेत हुआ ।

* अनंत सिधां सूँ—नानाविधि साधनसम्पत्ति से प्रेमकर सहज दशा मे पहुच कर आत्मानन्दरूपी कल्याणदायी रस का पान किया ।

यूँ जन हरीदास अवगति अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ।।
कोई जन जाग्या सो जांणिहै, सूता जांणै नांहि ।।४१।।

।। इति निरवर्त्ति-परवर्त्ति जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। अथ मायाछंद जोगग्रन्थ ।।

फूहड़ी धूहड़ी धावंती, डंक भरे भर पावंती ।।
राम विमुप तहाँ जावंती, मोह नदी में न्हावंती ।।
अपणै अंगि लगावंती,
करणहार करतार जगतगुरु, दीनदयाल भुलावंती ।।
कबहुँ भांमणी कबहूं माता, अपणी षोलै राषि षिलावंती ।।
कबहूं रूसै कबहूँ तूसै, नेह 'म्रदंग' बजावंती ।।
कबहूँ ताती कबहूँ सीली, जीवां जेरि जिरावंती ।।
जोगणि होइ 'जुग' उद्रहि जालै, जहर 'पियाला' पावंती ।।
भूँडै 'मुँहडै' डाकणि डोसी, भूला नैं भरमावंती ।।
ऊँच नीच सब सूँ मिलि षेलै, भूषी भोगि लगावंती ।।
'दुहूँ' अंगां आपण व्है षेलै, नाना भेष बणावंती ।।
डाकणी पापणी सापणी भांमणी, भोगणी भेद दे रोगणी ।।
जोगणी जागणी, भूतणी लागणी ।।
भूकरी सूकरी कांगणी कूकरी, आछणी बोपणी नरक की टोकणी ।।
जरजरी जहरणी, कालगति कहरणी ।।

पाठभेद—मिरदंग-१-५ । जग-५ । प्याला-१ । मौहड़े-२ । दहूँ-३ । दहौ-५ ।

शब्दार्थ—फूहडी=बेशहूर । धूहडी=मैली, मलीन । षोलै राषि=गोद में बैठा । रूसै=नाराज हो । तूसै=तुष्ट हो, राजी हो । जेरि=जेरबार करना, हैरान करना । भूँडै=बुरे, विकृत । मुँहडै=मुँह से । डोसी=डोकरी, पुरानी । दुहूँ अगां=स्त्री, पुरुष । भूकरी=गधी । जरजरी=जीर्ण, क्षीण करने वाली । कहरणी=कष्टदायक ।

त्रिवधि तन धारणी, हेत दै मारणी ॥
आंवणी जावणी, डहकि डहकावणी ॥
साध भै थरहरै, प्रगट मारी मरै ॥
पांव पाछा धरै, अगनि मै पैसतां धसै पाछी परै ॥
जन हरीदास माया मतै, मिलै स माया होइ ॥
हरि साचा सूँ साचा मिलै, तौ पला न पकड़ै कोइ ॥

॥ अथ मायाछंद जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ जोगमूल सुखजोगग्रन्थ ॥

नीचै डाल मूल भया ऊपरि, 'अजा' सिंघ सूँ भूँझै ॥
मकड़ी कूँ माषी नहिं छाड़ै, आंधा कूँ सब सूझै ॥१॥
मूसै दौड़ि बिलाइ पकड़ी, चिड़ै सिंचाणा षाया ॥
सास बहू कै पागे लागै, समंद बूँद मैं पाया ॥२॥

पाठभेद—अज्या-२-५ ।

शब्दार्थ—त्रिवधि=त्रिगुणात्मकरूप वाली । डहकि=वहक, भ्रान्त हो । साध भै= साधु साधको से डरे । थरहरै=कम्पित हो । अगनि=ज्ञानाग्नि । पैसता=धँसता, प्रवेश करता ।

१ली साखी—मूल-पूर्णब्रह्म सर्वोपरि है, माया आदि डालियाँ है जो मूल से बाद मे हैं देह मे विवेकविचार का मूल मस्तिष्क ऊपर है हाथ-पैर आदि शाखाये नीचे है। सुस्थिर गुणरहित अजारूपवृत्ति अहङ्काररूपी सिंह से भूँझ रही है। कुबुद्धिरूपी मकडी को सद्मतिरूप मक्खी समाप्त करती है। विषयवासनारूप नेत्र नष्ट हो गये ऐसे अन्धे को पूरा आत्मज्ञान दिखाई देने लगा।

२री साखी—आत्मविचारमय चूहे ने दौडकर-झपटकर वासनारूपी बिल्ली को पकड लिया। सन्तोषरूपी चिडे ने लोभरूपी बाज को खा लिया। त्रिष्णारूपी सासू-प्रेमाभक्तिरूपी बहू के पैरो पडी, वशीभूत हुई। आत्मारूपी बूँद में परब्रह्मरूपी समुद्र की प्राप्ति हुई।

शब्द बहुत पहले से प्रचलित रहे है जिस कारण यह असंभव नही कि कभी इनके साथ जुड़े हुए नाम की कोई संस्था वा कुछ संस्थाए वर्तमान रही हो और उनका लोप अभी तक भी न हो पाया है, किन्तु केवल इसी लिए उनके साथ इसका सम्बन्धित भी होना अनिवार्य नही है। इस सम्बन्ध मे अधिक से अधिक केवल इतना ही कहा जा सकता है कि, स्वा० हरिदासजी के समय मे भी कदाचित् कोई ऐसा सम्प्रदाय रहा होगा जो निरजनी सम्प्रदाय जैसे किसी नाम से प्रचलित रहा होगा और वह चाहे किसी 'जगन' 'जगन्नाथ' वा लपट्यौ जगन्नाथ' द्वारा प्रवर्तित रहा होगा अथवा उसे किसी अन्य महापुरुष ने भी चलाया होगा तथा इन्होने उसका उन्नयन अवश्य किया होगा।

नवीन अनुसंधानो द्वारा अब यह क्रमश प्रकट होता जा रहा है कि निरंजनी सम्प्रदाय के प्रचारको मे अनेक महान् पुरुष हो गए है और उनमे से कई ने एक विशाल निरंजनी–साहित्य की रचना भी की है जिसके आधार पर हमे अब उसका वास्तविक परिचय मिल सकता है ऐसे साहित्य के अन्तर्गत कुछ 'परची' 'भक्तमाल' एवं 'जीवन–चरित्र' कहलाने वाली रचनाएँ मिली है जिनमे, किसी न किसी रूप मे, स्वामी हरिदासजी तथा उनके सहयोगियो और अनुयायियो के विषय मे न्यूनाधिक प्रकाश पड़ता है तथा इसी प्रकार निरजनी सन्तो की वाणियाँ उनके द्वारा अनुवादित रचनाएँ एवं कतिपय फुटकल ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए है जिनसे उसमे सहायता मिलती है। इन दूसरी कोटि की रचनाओ मे से भी ऐसी वाणियो को अधिक महत्व दिया जा सकता है जो विशिष्ट महात्माओं की है तथा जिनके गम्भीर अध्ययन और अनुशीलन के सहारे हमे इस पन्थ के गूढ रहस्यो एवं साधनाओ को समझ पाना सरल हो सकता है। यह बड़े खेद की बात है कि अभी तक हमे इनमे

से सभी वाणी रचयिताओं का जीवन-काल तक विदित नही हो पाया है जिसका हम उसके आधार पर अभी निरंजनी सम्प्रदाय के मतविशेष के क्रमिक विकास का स्वरूप निर्धारित करने मे असमर्थ है और हम, इसी प्रकार उसके अभाव मे, इस बात का भी पूरा निश्चय नही कर पा रहे है कि इस धार्मिक वर्ग का ऐतिहासिक परिचय कैसे दिया जाय। यदि यथेष्ट प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध हो सके अथवा यदि तब तक केवल उपर्युक्त 'द्वादश निरजनी महन्तो' तक के विषय मे भी हमे अच्छी जानकारी हो सके तथा उनकी अनमोल कृतियो को प्रकाश मे लाया जा सके उस दिशा मे भी, हमे विश्वास है कि हम इस सम्प्रदाय का बहुत कुछ परिचय पालेगे और इस पर विचार करते समय, हमे फिर विविध भ्रांतियों का सामना नही करना पडेगा। तब, सम्भवतः हमे इस बात को भी स्वीकार करने के लिए पूरा आधार मिल जायगा कि इस सम्प्रदाय को सन्त परम्परा के चार सर्वप्रमुख पन्थो मे वह स्थान मिलना चाहिए जिसकी ओर दादू-पन्थी 'भक्तमाल' रचनाकार राघोदास ने, आज से प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले, संकेत किया था।

पिंगुलै 'माग' अगम का लाधा, बहरै सब कछु सुँणिया ।।
मूरिष 'पिंडत' की गति पाई, सूत जुलाहा बुँणिया ।।३।।

मीन मगर कूँ षावण लागी, 'दादरि' उरग पचाया ।।
पांणी मांही अगनि प्रगटी, तिल मैं मेर समाया ।।४।।

सींचत वाड़ी सब 'कुँमिलावैं', काटत बहु फल लागा ।।
चोर साह कै 'मिंदरि' पैठा, साह 'गिरह' तजि भागा ।।५।।

षाट पुरिस पर सोवण लागी, हांडी अन मैं रांधी ।।
'म्रतग' जम कूँ दई सासना, गाइ वाछड़ै वांधी ।।६।।

पाठभेद—माघ–१-५। पडित–३-५। दादर–३-५। कुमलावे–५। म्यदरि–२। मिंदर–५। गृह–५। मृतक–४-५।

३री साखी—संकल्प-विकल्परूपी पैरो के बिना पंगुल मन ने अगम आत्मतत्व प्राप्ति का मार्ग पाया। बाहरी शब्दो को सुनने की भावना से विहीन बहरे ने अनहद नाद का श्रवण किया। सासारिक पदार्थो से उदासीन मूर्ख ने तात्विक ज्ञान की पंडिताई प्राप्त की। सुरतिवृत्तिरूपी डोरी–सूत ने आत्मतत्वरूप जुलाहे को बुन लिया, पा लिया।

४थी साखी—निर्गु णभक्तिरूपी मछली ने मोहरूप मगर को खा लिया। तात्विक ज्ञानरूपी दादुर ने सशयरूप सर्प को पचा लिया–नि.शेष कर दिया। प्रेमप्रवाहरूप पानी मे विरहाग्नि की उत्पत्ति हुई। ज्ञानरूप तिल मे अज्ञानरूप मेरु समा गया–समाप्त हो गया।

५वी साखी—विषय वासना के पानी से यदि भक्तिरूपी बाडी को सीचा जाय तो वह कुम्हला जायगी। विषयवासना को जैसे-जैसे काटते जाओगे–हटाते जाओगे वैसे ही वैसे भक्तिरूप बाड़ी पुष्ट होगी और उसमे त्याग, शील, सत्य, सन्तोषादि विविध फूल खिलने लगेगे। आत्मविचाररूपी चोर देहाभिमानरूपी शाह के घर मे प्रविष्ट हुआ तो देहाभिमानरूप साह देहरूपी घर को छोड़ कर भाग गया–निकल गया।

६ठी साखी—प्रेमाभक्तिरूपी खाट साधक पुरुष पर सोने लगी–मस्तीरूप मे सर्वदा चढी रहने लगी। आत्मविचाररूपी अन्न मे देहाध्यासरूपी हाँडी को राँध लिया, विगलित कर लिया। जीवन्मुक्त अवस्था वाले मृतक साधक ने काल को सासना दी, काल को जीत लिया। विषयों की ओर जाती हुई वृत्तिरूपी गाय को सुस्थिर प्राणरूपी बछड़े ने बाँध ली, रोक ली।

फूल कली मैं गया समाइ , सो कबहूँ नहिं फूलै ।।
तन पांणी में भीजै नांही , बिणि पांणी निति भूलै ।।७।।
×'पांचौ' मिलि मन भल उपायो, बुरै पंथ नहिं जांही ।।
निसदिन ग्यांन गुफा में पांचौ , बाहरि निकसे नांही ।।८।।
'सातूं' समद सुषाया चौड़े , जल की ठाहर षोई ।।
वैरी आय मिल्या चाकर व्है , गिरवर ढाह्या दोई ।।९।।
सतगुर थिति समझाई अंतरि , ता तैं निसदिन जागा ।।
तीन ताप तन की तब भागी , सीतल सुष तब लागा ।।१०।।
लेता डांण जगाती 'डंड्या' , सब अपणैं बसि कीया ।।
गहि गुर ग्यांन ध्यांन धरि अंतरि, 'साहि कूँ' सरवस दीया ।।११।।
स्रुक 'त्रिष' तजि 'वहौ' सुष पाया, *तरवर अकल बसेरा ।।
सीत धूप दोऊँ नहिं व्यापै , पकड्या निहचल डेरा ।।१२।।

पाठभेद—पाचू–२-४ । सातौ–१-३ । दंड्या–१ । साहिब कूं–१-५ । वृष–३ । वृछ–५ । वहु–१ ।

शब्दार्थ—थिति=स्थिति, दशा । डाण=कर । जगाती डड्या=विषयो को प्राप्त करने वाले जगाती मन को दडित किया, निरुद्ध किया । साहकूं=परमेश्वर को । सूक त्रिष तजि=संसाररूपी निष्फल वृक्ष को छोड । सीत धूप=सुख दु ख, माया अविद्या ।

× पांचो ज्ञानेन्द्रियो ने अन्तर्मुख हो आत्मनिष्ठ रहने का अच्छा निश्चय किया ।

* तरवर अकल वसेरा=कलनरहित परब्रह्मरूपी वृक्ष मे बसेरा–निवास कर लिया ।

७वी साखो—विविध विषय की भावना के फूल निश्चलवृतिरूप कली मे समा गये अत. उनके पुन. खिलने की कोई आशा नही । देहाध्यास से रहित आत्मविचार मे लगा हुआ स्थूलशरीर अब विषयभोग के पानी से नही भीजता–उनमे प्रवृत्त नहीं होना । वह अब बिना पानी वाले आत्मानन्दरूपी सरोवर मे नित्य झूलता है, उसी मे ओतप्रोत रहता है ।

९वी साखी—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग,द्वेष, अहङ्काररूप सातो समुद्रो का शोषण कर लिया । भोगरूपी जल की ठाहर–स्थान वासना थी, उसको निर्मूल कर दिया । शब्द स्पर्शादि जो प्रबल पाँच विषय वैरी थे वे अब सेवक बन गये, ममता और मोह के दोनो पहाडों को ढहा लिया ।

मोह अर दोह दहुँ तैं न्यारा , सुष में जाइ समाया ।।
सतगुर सरणि भली मति उपजी, पाता सोई पाया ।।१३।।

मनसा वाचा आरंभ तजियौ , करम करै नहिं काया ।।
सुमिरो 'एक' अषिल अविनासी, परहरि छोटी छाया ।।१४।।

उपजी अकलि वड़ाई त्यागी , असलि गरीवी आई ।।
भजौ निरंजन परहरि दुष सुष , छाड़ी आंन सगाई ।।१५।।

निरंजन सदा सहाइ हमारै , कांम न विगड़ै कोई ।।
आसा त्रिसना छाड़ि मनोरथ , मन की दुविध्या पोई ।।१६।।

पाक पीर सूँ भेट्या भै तजि , तव सव कुछ समझाया ।।
असलि अकलि हिरदा मैं मेल्ही , साध संगति सुष पाया ।।१७।।

पाक पाक मैं जाइ समावे , ठौड़ मैल कूँ नांही ।।
मैल मैल की जाइगा पहुंचै , समझि देष मन मांही ।।१८।।

माया मैल सकल जुग मैला , निरमल साधू कोई ।।
पांच स्वाद तजि भजै 'निरंजन', सकल मैल तनि घोई ।।१९।।

हिरदै मैल रती नहिं राषै , भजै सदा 'अविनासी' ।।
गरभवास सो कवहु न आवै , पड़ै न जम की पासी ।।२०।।

तन मैं कँवल तहां मन मेरा , उलटि न वाहरि आवै ।।
स्वाद 'वसत' का भारी लाधा , निसदिन इंम्रत पावै ।।२१।।

जैसे सीप समद मैं ऊँडै , स्वांति वूँद लै पैठी ।।
षारो पांणी पीवै नांही , समटि आपणपौ वैठी ।।२२।।

पाठभेद—येक–२-५ । न्यरजन–२ । अभिनासी–१ । वस्त–१-४ ।

शब्दार्थ—परहरि छोटी छाया=सांसारिक नाशवान पदार्थों की छोटी छाया का आश्रय छोड दिया । दुविध्या=अनिश्चय भावना । पाक पीर सूँ=माया अविद्याहीन परब्रह्म से । भेट्या=मिला । मैल=अविद्या, अज्ञान । जाइगा=स्थान । पांच स्वाद=पांचो विषय । कँवल=हृदय कमल । वसत=वस्तु, आत्मज्ञान । आपणपौ=अपनापन ।

जैसे निजरि चकोर न पंडैं, सीतल सुप कूँ लौड़ैं ॥
अंगार चुगैं पर दाझैं नांही, निजरि चंद सूँ जोडैं ॥२३॥

चात्रिग नीर नीच नहिं पीवैं, ऊँच बूँद कूँ चाहैं ॥
तन पोवैं 'पण' छाडैं नांहिं, ऐसी सदा निवाहैं ॥२४॥

हंस 'मुकताहल' निसदिन 'टूँगैं', करंक काग तैं न्यारा ॥
काग कुबधि सूँ नेह न बांधैं, ऐसी गहै विचारा ॥२५॥

कीटी 'अंग' गहै भै हिरदै, अंग हेत नहि वारा ॥
काया का गुण सब ही त्यागैं, तब जाइ पहुँचैं पारा ॥२६॥

कुरंग नाद सूँ सुरति लगावै, देह विसरि सब जाई ॥
'धीरज' पकडि गहै पण काठो, बांण वधिक का पाई ॥२७॥

मीन मरैं पांणी जब त्यागैं, विणि पांणी नहिं जीवैं ॥
भजै निरंजन ऐसे साधूँ, 'अविनासी' रस पीवैं ॥२८॥

पतंग दीप कूँ सरवस देवैं, तन मन आपो पोवैं ॥
ऐसे साधू सनमुष हरि सूँ, उलटि न पाछो जोवैं ॥२९॥

चोरी चोर करै हिरदा 'सुध', तजै देह की आसा ॥
मोटो माल गहै हिरदा मैं, समझि दाहिणी भासा ॥३०॥

सती अगनि मैं काया होंमै, पीव प्रीति कै आटैं ॥
तजै सासरो पीहर त्यागैं, मन कितहूं नहिं वांटैं ॥३१॥

सूर पीठि पाछी नहिं फेरैं, सनमुष घोड़ा घालैं ॥
पैला अरि दल जीत सबै ही, साहिब तजि नहि चालैं ॥३२॥

पाठभेद—परिण–३-४। ठोंगै–५। मुक्ताहल–३-४। भृंग–५। भिरंग–१। वीरज्य–१-४। अभिनासी–१। सुद–५।

शब्दार्थ—लौडे=चाहे, प्राप्त हो। अगार=अग्नि। दाझै=जले। चात्रिग=चातक, पपीहा। नीच नीर=भूमि पर पडा पानी। पण=प्रतिज्ञा, हठ। टूंगै=चुगे। कीटी=कीट, लट। गहै पण काठो=दृढ प्रतिज्ञा करे। सुध=निर्मल। दाहिणी भाषा=आत्मोपदेश, ब्रह्मवाणी। आटै=वास्ते, लिये। वांटै=लगावे, खडित करे।

चंदन और व्रिछ नहिं होइ, 'और' 'व्रिछ' सव काचा ॥
'और' 'व्रिछ' चंदन की संगति, व्है चंदन सति वाचा ॥३३॥

हीरा मांहि पड़ै नहि झांई, पाँच रंग की कोई ॥
फूटि फटकि मणि वेगी जावे, दुष सुष व्यापै दोई ॥३४॥

सतगुर सरणि गई सव 'दुवध्या', 'एक' निरंजन पाया ॥
करम 'विवरजित' सकल वियापी, सो मेरे मनि भाया ॥३५॥

पापर 'पुंनि' 'दहुं' तैं न्यारा, साधां का मत आया ॥
ऐसी समझि पड़ी हिरदा मैं, करम अर भरम वहाया ॥३६॥

साच 'कहूं' मिथ्या नहिं 'वोलूँ', अविनासी सुष दीया ॥
मन की कसर दई सव नीचै, तव अपणां करि लीया ॥३७॥

जन हरीदास 'अविनासी' संगति, आवागवँण चुकाया ॥
अमर जड़ी हिरदा मैं राषी, स्वाद समद मैं पाया ॥३८॥

जन हरीदास निरभै पद पाया, भै नहिं व्यापै कोई ॥
जैसे 'नदी' 'समद्रि' पहुँचै, एक हुवा 'तजि' दोई ॥३९॥

जन हरीदास काया तजि माया, अरूप रूप सूँ मिलिया ॥
जैसे आटै लूँण न अंतर, एकमेक व्है मिलिया ॥४०॥

॥ इति जोगमूल सुषजोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अवर-१ । विरष-१ । दुविध्या-१ । येक-२ । विवरजत-४ । पुण्य-५ । दुहुं-१ । दहौं-५ । कहौं-१ । बोलौं-? । अभिनासी-१ । नदियां-५ । समद-५ । तज्य-२ ।

शब्दार्थ—झांई=प्रतिविम्ब, परछांही । वेगी=शीघ्र, जल्दी । विवरजित=रहित । दहुं=दोनों से । कसर=खोट, कमी । आवागवँण=आना-जाना । समद=आनन्द सागर ।

॥ अथ अज्ञानपरीक्षा जोगग्रन्थ ॥

बुराई छाड़ि भलाई पकड़ी, मै 'तजि' निरभै गाया ॥
ध्रचादिक छाड़ि अधर सूँ लागा, मल तजि निरमल पाया ॥१॥
हीरा गहि कौड़ी सूँ न्यारा, कंचन काच छुड़ाया ॥
कूप छाड़ि सागर सूँ लागा, झूठ तजि साच सुहाया ॥२॥
मुकताहल गहि गुंजा 'सूं' विरकत, विष तजि इम्रत पीया ॥
थोथा छाड़ि 'कणूँका' साह्या, छाछि तजी घ्रत लीया ॥३॥
मरकट मति त्यागी हिरदा तैं, कूरम मति लै जागा ॥
काग 'बुधि' सूँ विरकत हूवा, हंस बुधि सूँ लागा ॥४॥
उल्लू ग्यांन नहीं 'मन' मानै, चकोर ग्यांन चित धारया ॥
भंवर वासना लेह कँवल की, मींडक का मत हारया ॥५॥
काइर का मत परहरि प्रांणी, सूर मता में रहिये ॥
बहौ पुरषां सूँ मिलतां नारी, पतिवरता क्यूँ कहिये ॥६॥
पतिवरता पति कूँ नहिं छाड़ै, स्यंघ घास नहिं पाई ॥
साधू सदा भजै अविनासी, चौर चौर पै जाई ॥७॥
सति सील मैं रहै अहो निस, असती कांम कै काठै ॥
सती असति संगि नहिं वैठे, सती असती तैं नाठै ॥८॥
कंचन चिरम बराबरि तूलै, पड्या अगनि में व्यौरौ ॥
चिरम जलै कंचन ज्यूँ कौ त्यूँ, मिटै चिरम कौ जोरौ ॥९॥
पड़ै फटिक में पांचो झांई, हीरा में नहि पैठे ॥
अहरणि घण 'विचि' हीरा ठहरै, चोट 'फटिक' परि वैठे ॥१०॥

पाठभेद—तज्य–२ । कणौका–५ । कुवधि–३-५ । मन्य–२ । मनि–४ । विच–५ । फटक–५ ।

शब्दार्थ—ध्रचादिक=पचभूत के पदार्थ । कूप छाडि=पाक्षिक धर्म । झूठ तजि=मिथ्या सँसारी पदार्थ छोड़ । मुक्ताहल=मोती, शुद्धब्रह्म । विरकत=दूर, उदासीन । थोथा=सारहीन । मरकट मति=चँचलता । कूरम मति=अन्तर्मुखी वृत्ति । काग बुद्धि=मलीनता, मलिनमति । हंस बुद्धि=निर्मलमति, संशय-विपर्ययहीन । सील=चरित्ररक्षा । काठै=समीप, पास । नाठै=भागे, दूर रहे । तूलै=तुलनी है । व्यौरौ=विवरण, फल ।

ग्यांनी और अग्यांनी 'मिलतां', मतौ मिलै नहीं कोई ॥
वाकै हिरदै 'एको' आवै, वाकै हिरदै दोई ॥११॥

धरम नेम तीरथ 'व्रत' पूजा, अग्यांनी आन दिढावै ॥
ग्यांनी एक निरंजन सुमरै, पांचू स्वाद छुड़ावै ॥१२॥

धरी देह धणीं कूँ राषै, विणि आकार न मानै ॥
अग्यांन कै ऐसी मति हिरदै, अविनासी नांही जानै ॥१३॥

ग्यांनी देह झूठ करि 'जांणै', विणि देही कूँ धावै ॥
'एक अर' पांच 'पचीसूँ' परहरि, सुष मैं जाइ समावै ॥१४॥

अग्यांनी भरम करम सूँ लागै, आंन कथा नहिं भूलै ॥
ब्रह्मग्यांन सूँ हेत न लावै, जल थल मांही झूलै ॥१५॥

ग्यांनी भरम करम सब त्यागै, अणभै कथा सुणावै ॥
सुमिरै एक अषिल अविनासी, आंन कथा नहिं भावै ॥१६॥

अग्यांनी कूँ ग्यांनी नहि मानै, दहुं मना मत दोई ॥
ऊँठ अर भैंसि मतो न 'मिलई', भावै देषौ जोई ॥१७॥

पतिवरता विभचारणी, संगति सुष नहिं कोई ॥
तेल नीर सूँ ना मिलै, 'ल्हसण' चंदण भी दोई ॥१८॥

सांचै झूठै ना मिलै, मिलै न काइर सूर ॥
रात्यूँ द्योसै ना मिलै, मिलै न लौहे हेम हजूर ॥१९॥

लौहे काइ लागि है, कंचन काई नांहि ॥
अग्यांनी ग्यांनी ना मिलै, समझि देषि मन मांहि ॥२०॥

पाठभेद—म्यलतां–२। येको–२। वरत–३। जाने–२-५। एकर–५। यक-अर–२। पचीसौ–४। मिलहै–५। ल्हसन–३।

शब्दार्थ—मतौ=विचार। पांचू स्वाद=शब्दादि पाचो विषय। धरी देह धणी को राषै=धणी ईश्वर को धरी देह–देहधारी अवतार के रूप मे माने। पाच पचीसूँ=पञ्चभूत व उनकी प्रकृतिया। जल थल=भौतिक पदार्थों मे। झूलै=स्नान करे, निमग्न रहे। रात्यौं द्योसै=रात दिन से नही मिलती।

ग्यांनी आरंभ ना करै, रहै निरालंब होइ ॥
अग्यांनी आरंभ करै, सदा महै दुष दोइ ॥२१॥

ग्यांनी पाप करै नहीं, डर पकड़ै जगदीस ॥
अग्यांनी पाप करै मही, मजै न केवल ईस ॥२२॥

ग्यांनी गाफिल ना रहै, सदा सुचेत 'सुभाइ' ॥
अग्यांनी गाफिल रहै, फिर फिर विष फल पाइ ॥२३॥

ग्यांनी कपट करै नहीं, कपट करै अग्यांन ॥
ग्यांनी सुमिरै अलष कूँ, अग्यांनी सुमिरै आंन ॥२४॥

संगति 'तजि' अग्यांन की, ग्यांनी संगति पेल ॥
ग्यांनी नांव बतावसी, त्रिवधि ताप तजि तैल ॥२५॥

'निरंजन' सरखो दुष नहीं, मारि सकै नहीं काल ॥
जैसे गहरा समद मैं, पड़ै न भीवर जाल ॥२६॥

वोछौ पांणी 'अवर' सब, माया कौ अंग देष ॥
बिना निरंजन डोलसी, करिसी वहोला भेष ॥२७॥

जल थल मांही भरमणा, बिना निरंजन नांव ॥
जोनि संकटि आवणा, फिरणा ठाऊँ ठांव ॥२८॥

माया तजि भजि नांव निरंजन, जीवन अंजली नीर ॥
यहु औसर भी बहौड़ि न लाभै, जम का काटि जंजीर ॥२९॥

सतगुर तोहि समझावै नीकै, तूँ क्यूँ 'भूल्यो' जांहि ॥
ग्यांन दाढ़ 'समता' 'जिभ्या' सूँ, काया का गुण षांहि ॥३०॥

पाठभेद—सुभाय–४। तज्य–२। न्यरंजन–२। ओर–३-४। भूलो–२-३। समिता–१। ज्यभ्या–२।

शब्दार्थ—आरंभ=फलदायी कर्म। दोइ=जन्ममृत्युमय दो दुख। गाफिल=असावधान। तैल=स्नेह, आसक्ति। डोलसी=चौरासी लाख योनि मे फिरेगा। वहोला भेष=अनेको शरीर धारण करेगा। ठाऊँ ठाँव=स्थान स्थान पर।

मै सूँ अलष निरंजन भजिये, गाफिल 'रहिए' नांहि ॥
पांच स्वाद तजि परहरि दुष सुष, यहु मत गहि मन मांहि ॥३१॥
भारी दुष है राम विसारयां, लष चौरासी जूँनि ॥
प्रेम प्रीति सूँ भजि अविनासी, ज्यौं पहुँचै चौथी सूँनि ॥३२॥
मौत दिहाड़ा आवै नैड़ा, तूँ क्यूँ गाफिल सोवै ॥
निरंजन भजि तजि आन सगाई, तूँ क्यूँ जनम 'अविरथा' षोवै ॥३३॥
काल कहर सूँ डरपै नांही, ले ज्यूँ चिड़ी सिंचाणा ॥
विना निरंजन 'याह' गति होइ, जम कै लोकि सिधांणा ॥३४॥
वार वार तोकूँ समझाऊं, अजहुं समझ्या नांही ॥
संसार सकल सुपना सा देषै, तौ समझ्या मन मांही ॥३५॥
ब्रह्मा विसन महेस और इंद्र 'सकतिलौं', असिथिर कोई न दीसै ॥
असथिर एक अषिल अविनासी, और काल सबन कूँ पीसै ॥३६॥
गोरषनाथ कबीर कूँ, काल सकै नहिं मारि ॥
जन हरीदास निरंजन मांहि समाइया, पहुंच्या 'पैलै' पारि ॥३७॥
जन हरिदास सुष पाइया, सतगुर सरणै आइ ॥
वास किया सुषसिंध मैं, काल कदे नहि षाइ ॥३८॥
जन हरीदास भरमै नहीं, पाई निहचल ठौर ॥
भागा भरम विकार सब, सहर गया तजि चौर ॥३९॥
जन हरीदास अविनासी पाया, काया नगरी मांहि ॥
सो जहां तहां भरपूरि है, कबहूँ विनसै नांहि ॥४०॥

॥ इति ज्ञानपरीक्षा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ लघुग्रन्थावली समाप्त ॥

पाठभेद—रहिये-२। इवरथा-२। या-५। सक्तिलौ-३-४। पैली-५

पाठभेद—लष चौरासी जूंनि=चौरासी लाख योनि। चौथी सूंनि=चौथी, तुर्यावस्था, सहज दशा। दिहाडा=दिन। नेडा=पास, नजदीक। सिचांणा=बाज। सिधाणां=गया, पहुँचा। असिथिर=अचल। पीसै=रौंदे, चूर्ण कर दे। भरमै नही=भ्रान्त न हो। चौर=काम-क्रोधादि रिपु।

॥ अथ पदभाग राग गौडी ॥

[१]

च्यारि पहर दा कांम है विणजारिया, तेरे जागणदा छक 'येहवे' ॥
सोवणदी विरिया नहीं विणजारिया , तूँ नांव निरंजन लेहुवे ॥
नांव निरंजन लेहु अहो निसि , विलम न कीजै वीरवे ॥
जैसा कमावे पावे तैसा , नहीं किमीदा मीरवे ॥
सुप थोड़ा दुप वहोड़ि अनंत है , रांम भजै क्यों नांहिवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया , तूँ मति भूला जाहिवे ॥१॥
वाल अवस्था गति मति वुधि थोड़ी विण०,दुप सुप जांणै नहीं अयांणवे ॥
मोह लग्या माया ठग्या विणजारिया, तूँ भूला नांव 'भुलानवे' ॥
नांव भुलाना फिरै वौरासा , दिन दिन पैंडा होइवे ॥
कहूँ कहूँ डरै कहूँ मिलि षेलै , असथन मांगै रोइवे ॥
देह अवस्था पलटण लागी , परा पजीना जाइवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया , सकै तौ हरि गुण गाइवे ॥२॥
ज्वान अवस्था जोर वहोत है , सकै तो जोर निवारवे ॥
हरि सुमिरण हिरदै धरौ विणजारिया, चालौ देपि विचारिवे ॥
चालौ देपि विचारि सहज घरि , साचा सौदा लेहुवे ॥
करि 'मनिष' जनम हीरा चल्या , कौड़ी सटे न देहुवे ॥
मै छाड़ो निरभै भजो , इहै तुम्हां सूँ गूँझवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया , लेषा देणा तुझवे ॥३॥

पाठभेद— एहवे-३-४ । भूलाणवे-३ । मनप-१ । मिनप-५ ।

शब्दार्थ—विणजारिया=हे जीव ! हे मन ! छक=अवसर, मौका । अयाणवे=अजान । वौरा सा=पागल सा, वहका हुआ । पौंडा=उन्मत्त । असथन=स्तन । परा पजीना=मनुष्य जन्म । ज्वान=तरुण, जवान । जोर=वल, शक्ति । सहज घरि=निर्गुण ब्रह्म । साचा सौदा=आत्मज्ञान का । गूँझवे=गोपनीय बात । तुझवे=तुम्हे, तुझको ।

निरंजनी सम्प्रदाय के साहित्य का प्रकाशन बहुत दिनो तक हमे केवल भगवानदास निरंजनी एवं निपट निरजन जैसे एकाध व्यक्तियो की रचनाओ तक ही सीमित जान पडता था और आज से कुछ दिन पूर्व सं० १९८८ में, वैष्णव साधु देवादास की ओर से स्वा० हरिदासजी की वाणियो का एक संग्रह भी श्री हरि-पुरुषजी की वाणी, नाम से, जोधपुर से, प्रकाशित हुआ था। इस विषय के जिज्ञासुओं को केवल इतनी ही सामग्री से स्वभावत 'पूरा सन्तोष नही हो पाता था तथा इसके जिस विशाल वाणी-सग्रह की चर्चा वे कभी-कभी सुना करते थे उसके अवलोकन की इच्छा, इसके कारण और भी प्रबल होती जा रही थी। अत.एव स्वामी मंगलदासजी ने, उसे प्रकाश मे लाने का काम अपने योग्य हाथो मे लेकर, उनका बहुत बडा उपकार किया है। उनके द्वारा सम्पादित 'महाराज श्री हरिदास जी की वाणी' के साथ न केवल अधिक पाद टिप्पणिया प्रकाशित है, अपितु कही-कही उनकी कतिपय पंक्तियो का किया गया सरल अनुवाद भी मिलता है तथा, इसके अतिरिक्त सबके पहले एक विस्तृत 'भूमिका' भी दी गई पायी जाती है जो उल्लेखनीय है।

जोधपुर वाले उपर्युक्त संस्करण मे उसकी प्रस्तावना के रूप मे, केवल स्वा० हरीदासजी का एक 'संक्षिप्त जीवन चरित्र' दिया गया था तथा उसके आगे "हमारे श्री स्वामीजी के गद्दीधरो की नामावली' जोड दी गई थी, किन्तु इन दोनो मे से किसी को भी पर्याप्त नही कहा जा सकता था। श्री स्वामीजी की 'भूमिका' तथा उसके आगे का 'परिशिष्ट' उनसे कही अधिक सतोषप्रद है। इसके सिवाय, उक्त 'वाणी' के अनतर और 'उत्तरखण्ड' के अन्तर्गत जो 'निरंजनी सम्प्रदाय के अन्य रचनाकारो की रचना के कुछ अंश प्रकाशित हुए है उनकी भी उपादेयता कम नही है। जब तक सभी निरजनी सन्त कवियो की सारी उपलब्ध रचनाएं प्रकाश मे नही आजाती तब तक इन्हे यथेष्ट महत्व दिया जा सकता है। इन अंशो के पहले दिये गये रचनाकारो के सक्षिप्त परिचयो से उनके विषय मे हमारी जानकारी भी बढ जाती है। इस 'खण्ड' के एकाध स्थल ऐसे है जहाँ साधारण पाठको को कुछ भ्राति भी हो जा सकती है तथा उसके निराकरण की आवश्यकता का अनुभव हो सकता है। उदाहरण के लिए उसके पृष्ठ ३ पर स्वामी तुरसीदासजी निरंजनी के लिए 'गुसांई तुरसीदासजी' मुद्रित दीख पडता है जो भ्रातिकारक हो सकता है और इसी प्रकार, उसके पृष्ठ ८४ पर जो, 'पद-३ राग आसावरी' के नाम से रचना प्रकाशित है उसके नीचे किसी एक पाद टिप्पणी के अभाव मे, यह भ्रम उत्पन्न हो सकता है कि जिस पद्य को हम पढ रहे है वह, कदाचित् स्वामी रामानन्द के शिष्य समझे जाने वाले पीपाजी द्वारा रचित न हो। सिखधर्म के प्रसिद्ध 'गुरुग्रन्थ साहब' मे, 'राग-धनासरी' के अन्तर्गत, इस पद का एक रूप, उन्ही की रचना कहला कर, पाया जाता है जिस कारण उसके साथ इसकी तुलना करके किसी उपलब्ध निष्कर्ष की सूचना दे देना अधिक समीचीन कहला सकता है। इसके सिवाय, उसके पृष्ठ ८१-४ पर जो 'चिन्तामणि यौग ग्रन्थ' प्रकाशित है उसके विषय मे भी कहा

वरस पचास पूठ तैं दीया, तेरा तीजा पहरा एहवे ॥
सुत वनिता परिवार घणेरा विण०, मूल हमारा थेहवे ॥
मूल हमारा थेह वड़ा मैं, 'वहौत' लिया सिर भारवे ॥
अंति कालि कोई संगि न चालै, फूटी हांडी लारवे ॥
कै गाड़ै कै जंगलि जालै, पूठा वैसे आइवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया, भी 'ज्यंद' अकेला जाइवे ॥४॥

अवधि सवाई वह गई विणजारिया, तूँ चाल्या पूँजी हारिवे ॥
और विणज सब ही कीया विण०, तूँ सक्या न रांम संभालिवे ॥
सक्या न रांम संभालि सहज घरि, सतगुर सरण आइवे ॥
माल मुलक है गै ज्यूँ का त्यूँ, चाल्या षोटा षाइवे ॥
समझि नहीं तै षरा न लीया, भला न उपज्या भाववे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया, तेरी भोजल विचि थाकी नाववे ॥५॥

[२]

मनिष जनम धरि हरि भजौ, नांव निरंजन लेहुवे ॥
नग निरमोलिक करि चढ्या, कौड़ी सटै न देहुवे ॥
कौड़ी सटै न देहु हीरा, वास जलि थलि है सही ॥
तन धरै धरि 'मरह' जामैं, भगति हरि न्यारी रही ॥
राम भजि हरि सबल साथी, मरम भै चिंता तजो ॥
अपरंपार अपार अवगति, मनिष जनम धरि हरि भजो ॥१॥

पाठभेद—वहुत–१ । जिंद–४-५ । मरै–१-३ ।

शब्दार्थ—पूठ तैं=पीछे को, खो चुका । थेहवे=स्थिर रहने वाला । पूठा=वापिस, पीछे । ज्यद=जीव । अवधिस=आयु तो । वाई=व्यर्थ, निष्फल । थाकी=थकी, हार गई । नग=मनुष्य-शरीररूपी हीरा । निरमोलिक=अमूल्य । वास=निवास । मरहू=मरना । जामैं=जन्मना ।

'जनम' 'अमोलिक' जात है, जांणै कोई नांहिवे ॥
रांम भजन का मै नहीं, निसदिन भूला जाहिवे ॥
निसदिन भूला जाहि जहां तहां, गुर ग्यांन विणि दुष पाइया ॥
हरि भजन रस रीति न्यारी, बहौड़ि फिर पछताइया ॥
मूल दीरघ प्रथम दुष सुष, विथा या कासूं कहै ॥
भगवंत भजि नर जुरा ग्रासै, जनम 'अमौलिक' जात है ॥२॥

नगर अविद्या तहाँ नर वसै, मन माया सूं हेतवे ॥
ममता मदिमाता फिरै, चेतै नहीं अचेतवे ॥
चेतै नहीं अचेत अजहूं, करम वसि परदुष सहै ॥
गुर ग्यांन विणि नर न्याइ अंधा, काच सूं कंचन कहै ॥
षवरि विणि नर षाइ षोटा, कांम 'विसहरि' संगि डसै ॥
काल के करि केस निसदिन, नगर अविद्या तहाँ नर वसै ॥३॥

मोह महल मैं मन 'सोवै', चिंता सोड़ विछाइवे ॥
सांसै की सज्या भई, मनसा जहां तहां जाइवे ॥
मनसा जहां तहां जाइ 'दह' दिसि, त्रिवधि आवध संगि थब्या ॥
सुष सील साथी साथि नांहि, कुवधि काँटा उर अब्या ॥
हरि नांव निरमल नीर न्यारा, करि मसि लगी मनी सूं धोवै ॥
अग्यांन 'असथलि' पांच रस वसि, मोह महल मैं मन सोवै ॥४॥

भवसागर सुभर भरया, तहां 'तुम्हारा' वासवै ॥
वोहिथ हरिजी का नांव है, दूजी झूठी आसवै ॥

पाठभेद—जन्म-३ । अम्मोलिक-२ । विसहर-५ । सूवे-१ । दहि-४ । असथल-५ । तुमहारा-१ ।

शब्दार्थ—दीरघ=भारी, बडा । न्याइ=बिल्कुल, सर्वथा । षवरि=जानकारी, पूरा ज्ञान । विसहरि=काल, सर्प । सासै=सशय । सज्या=शैय्या, खाट । त्रिवधि आवध= तीनों गुणरूपी शस्त्र । थब्या=लगा, चिपका । मसि लगी=कालिमा, मलीनता । असथलि=स्थान, आधार । पाच रस=पाँच विषय-रस । वोहिथ=नौका ।

दूजी झूठी आस हरि विणि, तहाँ क्यों मठ छाइये ॥
राम 'भजि' मन राषि निहचल, पार ऊतरि जाइये ॥
अगह गहिये अकह कहिये, अमर भजि अजरा जरचा ॥
जन हरिदास हरि विणि पार नांही, भवसागर सूभर भरचा ॥५॥

जुग मैं ऐसा सा जीवणां, 'सुपनै' का सा कामवे ॥
जाव धणीं कूँ देवणां, भज्यौ न केवल रामवे ॥
भज्यौ न केवल राम 'इकलस', एक रसि लागा रहो ॥
संसार दुष सुष पाइ वेड़ी, कुपह कुसंगति क्यों वहो ॥
गोव्यंद गावौ गरव छाड़ो, जांणि जहर न पीवणां ॥
तव संगि तात मात न सगा वंधू, जुग मैं ऐसासा जीवणां ॥६॥

या सुष का दुष अनंत है, गिणती ग्यांन न होइवे ॥
सो सुष पहिली छाड़णां, पलान 'पकड़ै' कोइवे ॥
पला न पकड़ै कोइ तेरा, इहै अरथ विचारिये ॥
जागि पंथी कहा सोवै, सोइ 'सरवस' हारिये ॥
उलटा पंथ 'सम्हाल' पंथी, सति सवद सतगुर कहै ॥
विवधि विष वन मांहि विसहर, या सुष का दुष अनंत है ॥७॥

यहु तन तौ यूँही गया, सरचा न कोई कांमवे ॥
पर निंद्या करि मैं वड़ा, भज्या न कवहुं रांमवे ॥
भज्या न कवहूँ रांम इहि छकि, माया कै छकि मिलि रह्या ॥
हरि परम गति 'परमाण' 'परहरि', नीच जल नीचा वह्या ॥
जहर फल जुगि आइ षाधा, जीव सव परवसि भया ॥
हरि प्रांणनाथ म निकटि न्यारा, यहु 'तन' तौ 'यूँ' ही गया ॥८॥

पाठभेद—भज्य–२। सुपना–३-४। इकलसि–३। पकरै–१। सर्वस–३। सवार–५। प्रमाण-प्रहरि–१। दिन–१। यौ–१।

शब्दार्थ—सूभर=भरपूर, खूब। जाव=उत्तर, जवाब। जांणि=समझकर, जानते हुए। पंथी=पथिक, बटोही। उलटा पंथ=आध्यात्मिक मार्ग, निवृत्ति मार्ग। जुगि=संसार। षाधा=खाया।

अपणैं अपणैं मन मतै, चालत है सब कोइवे ॥
मरणा है जीवण नही, जीवत मरै न कोइवे ॥
जीवत मरै न कोइ परवसि, मरण दुष सिरपरि घणां ॥
'मरोह' जोगी मरण मीठा, मरिभजो साहिब आपणां ॥
संसार में कोई अमर नांही, अमर हरि भजि गुणगतै ॥
हरि 'परमसंगी' जांणि भूला, अपणैं अपणैं मनमतै ॥९॥

आड़ा डूँगर वन घणा, नदियां ऊँडा नीरवे ॥
दूर दिसावरि चालणां, मन धरि सकै न धीरवे ॥
मन धरि सकै न धीर यहु दुष, सुषमना फूटी वहै ॥
जैसा वाहै लुँणै तैसा, नफा 'टोटा' सिरसहै ॥
और कूँ यहु दोस नांही, कीया पावे आपणां ॥
जन हरीदास दुरमष दुष दारण, आड़ा डूँगर वन घणां ॥१०॥

[३]

मन रे तूँ स्याणा नहीं अयाणा रे !
थोड़ी राति वहौत क्या सोवे, जागि न देषि दिवानां रे ॥टेर॥
माया देषि कहा मन फूल्यो, देही देषि 'मसतानां' रे ॥
झूठी काया झूठी माया, झूठै हेति 'बंधाना' रे ॥१॥
हटवाड़ा आवै ज्यूँ विछड़ै, समझि देषि गेवानां रे ॥
आज नहीं तौ काल्हि न रहणां, मरण नदी बहि जाणां रे ॥२॥

पाठभेद—मरो–४-५। प्रमसंगी–१। तोटा–१। मस्तानां–४। बधाणा–५।

शब्दार्थ—मरोह=मरो, वासनारहित बनो। गुण गतै=तीनो गुणो मे रहित बनो। डूँगर=काम, क्रोध, लोभादि। वन घणां=सशय, अज्ञान, भ्रमादि। नदियां=तृष्णा, वासना, इच्छा आदि। दिसावरि=विदेश, परदेश। फूटी वहै=अपना मार्ग छोड कर अनवस्थित चले। लुँणै=काटे, पावे। दारण=कठिन। स्याणा=ज्ञानी, विचारवान्। अयाणा=अज्ञानी, बेसमझ। विछडै=दूर हो, वियोग हो। गेवाना=गर्व मे गाफिल।

भौपति वहौत कलै माया मैं, मीर मुलक 'सुलतानां' रे ॥
जन हरीदास विरला जन कोई, उलटी 'पांष' 'उडाणां' रे ॥३॥

[४]

सजन सनेह रा वे, प्रांण हरि गुण गाइ ॥टेर॥
भँवर ज्यौं मन फिरै दह दिसि, काल दह दिसि है सही ॥
जहां लागै तहां काँटा, निज नांव विणि निरभै नही ॥१॥
अजहु जिवड़ा कहा सोवै, जुगति जांणि न जागही ॥
आक जड़ क्या दूध सींचै, अंति आंब न लागही ॥॥२
जांणि ऐसे भजो गोव्यिंद, परसि हरि रस पीजिये ॥
जन हरिदास हरिगुण गाइ 'निसदिन', प्रांण हरि कूँ दीजिये ॥३॥

[५]

सोई दिन आवेगा, अपणो रांम संभालि वे ॥टेर॥
अनेक रावण सेनि जोधा, मांणि मूँका तै गया ॥
काल झल मैं सकल आया, तनस दावानलि दह्या ॥१॥
असुर सुर षसि पहुम ऊपरि, षड्ग कर गहि तोलता ॥
'जुरासिंघ' वलि कहां विक्रम, बोल अंवला बोलता ॥२॥
पाँच 'पांडौ' कहाँ कैरूँ, एक गैलै सव वह्या ॥
'सिसपाल' सेन्या कहाँ 'जादू', कहौ जै कोई रह्या ॥३॥
'हिरणाकुस' हिरणांषि मुचकंद, करण महा दानी भया ॥
कहौ छल वल कहां माया, अंति सव षाली गया ॥४॥

पाठभेद—सुलितांना–४। पंष–१-५। उड़ाना–४-५। न्यसदिन–२। जुरास्यध–२। पांडू–३-५। स्यसपाल–२। जादौ–५। हिर्णाकुस–४।

कलै=फँसे, रुक जाय। सनेहरा=सनेही, प्रेमी। जुगति=उपाय, साधना। आंब न=आम नहीं लगे। मांणी=महामानी। मूँका=मूक, चुप्चाप। झल=ज्वाला, लपट। तनस=शरीर तो। षसि=लड-झगड। अँवला=विपरीत, उल्टा।

धरया धूँवा मकल विनसै, काल काँटा लागिहै ॥
अधर बसत अनूप अंतरि, कोइ साध गुरगमि जागिहै ॥५॥
पतिमाह भोपति कहां सुरपति, जाल सब परि डारिहै ॥
जन हरीदास 'सूछिम' होइ जल ज्यूँ, कोइ चोर हरिजन टारिहै ॥६॥

•[६]

जिवड़ा जाय कहा तूँ रहसी वे,
करणहार करतार न जांण्यौ, सलिल मोह संगि वहसी वे ॥टेर॥
काची परप 'सराफी' पोटी, ता तैं परदुष सहसी वे ॥
राम नांम निज भेद न जाण्यों, काल चटा तैं गहसी वे ॥१॥
हरि 'प्रीतम' सूँ प्रीति न वांधी, झूठ तहां जाइ 'ठहसी' वे ॥
जब जम आया झूठ विलाया, रसन तालवै फहसी वे ॥२॥
जब इहि जीवड़ै किया पयाणा, वहुड़ि न यहु तन लहसी वे ॥
जन हरीदास माया अपराधिणि, 'वहौत' भांति करि दहसी वे ॥३॥

[७]

समझि देषि 'कुछ' नांही रे!
तूँ नांही नांही सूँ लागा, साच न सूझै मांही रे ॥टेर॥
परमसनेही छाड़ि आंपणौ, विष इम्रित कर षाजै रे ॥
सूकर स्वांन स्याल कउवा गति, काल सदा सिरि गाजै रे ॥१॥
हंम बटाऊ परघरि वासा, अब तूँ समझि सयाणाँ रे ॥
पांच मात दिन एक आव मैं, ऊठि अकेला जांणा रे ॥२॥

पाठभेद—छूछिम–१। सरापी–४। प्रीतम–२। ढहिसी–१। वहुत–१। कछु–४-५।

शब्दार्थ—धरया=उत्पन्न हुआ। धूँवा=नाश। चौर=कामादि, कालरूप। सलिल मोह=मोह की नदी मे.। काची परप सराफी पोटी=संसारी भोगो मे सुख समझना यह परख–परीक्षा या सराफी झूठी है, खोटी है। चटातै=चट से, क्षण मे। गहसी वे=पकड़ेगा। ठहसी वे=ठहरेगी। फहसी=फँसेगा। दहसी वे=जलावेगी, सन्तप्त करेगी। नाही=नाशवान, विनाशी।

कालकहर की चोट सकल सिरि, कै मारया कै मारै रे ॥
जन हरीदास भजि रामसनेही, सरणैं राम उवारे रे ॥३॥

[८]

तब हरि हम कूँ जांणैंगे, जांणैंगे हरि जांणैंगे ॥टेर॥
मात पिता परिवार सकल तजि, सबसूँ उलटी तांणैंगे ॥
हरि है साच 'और' सब झूठा, वा हरिसूँ 'वाणिक' बांणैंगे ॥१॥
आंन दसा सूँ जब मन 'थाक्या', करम भरम संगि नांणैंगे ॥
राम 'रसाइण' का मतिवाला, आदू प्रीति पिछांणैंगे ॥२॥
सौंकणि उलटि सषी जब 'हुँहिगी', उलटी नदी चलायेंगे ॥
पारा बांधि प्रेम रस पीया, राम रोम 'रुचि' माणैंगे ॥३॥
जन हरिदास सांसा सब भागा, राम रसाइण पीवैंगे ॥
आन सकल सुष विष भरि देष्या, हरि 'सम्रथ' भजि जीवैंगे ॥४॥

[९]

तब हम हरि गुण गावेंगे, गावेंगे गुण गावेंगे ॥टेर॥
काम क्रोध सांसा सब जीत्या, मोह मता मुरझावेंगे ॥
'पांचो' पकड़ि आप वसि 'लहैंगे', वंकनालि रस पावैंगे ॥१॥
दुष सुष छाड़ि सहज घरि षेले, कुवधि सुवधि सूँ षावैंगे ॥
ऊजड़ छाड़ि सुलटि मन उलटा, एक 'दसा' कूँ लावैंगे ॥२॥
सतगुर सवद चांदिणा मेरे, अगम तहां हम जावेंगे ॥
तेज पुंज परगट परपूरण, सूँनि मंडल मै पावैंगें ॥३॥

पाठभेद—श्रवर–१। वाणक–५। थाका–२-३। रसायण–५। होहिगी–४। रुच्य–२। समरथ–१-५। पाचू–१-४। ल्यहेगे–१। दिसा–१।

शब्दार्थ—वाणिक=सम्बन्ध, वणाव। नाणेगे=नही रखेगे। सौकणि=सौक, डाह रखने वाली, विषयरत इन्द्रियाँ। उलटि=अन्तर्मुख हो। पारा वांधि=शुक्र को ऊर्ध्वगामी कर, मन सुस्थिर कर। मुरझावेगे=कुम्हला जायेंगे, सत्वरहित। वंकनालि=सुषुम्नाद्वारा। ऊजड=उजाड, संसाररूपी वन। एकदसा=सहज दशा। चांदिणा=प्रकाश। सूँनि मंडल=शून्य मंडल।

घटि घटि अघट घटत हरि नांही , सोई रमतारांम रमावैंगे ।।
जन हरिदास दास हरि भजि भजि , हरि ही मांहि समावैंगे ।।४।।

[१०]

समझि देषि मन मेरा रे !
या 'जग' मांहि जागि हम देष्या , सगा न कोई तेरा रे ।।टेर।।
तात मात वनिता सुत बंधू , जतन जीवतां करि ही रे ।।
मूँवा जालि बालि घरि आवै , ता 'मरहट' तैं डरही रे ।।१।।
राम त्रिमारि हारि मति चालौ , कहि समझाऊँ लोई रे ।।
माया सांचि संगि ले जाता , देष्या सुण्या न कोई रे ।।२।।
जामैं मरै मरै फुनि जामैं , 'मरत' लोक मैं आवै रे ।।
जन हरिदास देषि मतिमंदा , गोव्यंद काँई न गावै रे ।।३।।

[११]

राम नहीं वीसरूँ हो , मेरे गुरगमि दियो बताइ ।।टेर।।
ज्यूँ 'नटणीं' निरभै थकी हो , वरतैं लागी जाइ ।।
इतवत चित डोलै नहीं , चित वरतैं 'रह्यो' समाइ ।।१।।
मरजीवौ समदां धसै हो , तन मन सुरति समाइ ।।
वीचि कहूँ अटकै नहीं , निज सीप संभालै जाइ ।।२।।
गुरज नाल गोला वहै हो , 'धणंक' वांण सर पूरि ।।
स्यांम 'काज' सनमुष लड़ै , उलटि न षेलै सूरि ।।३।।
ज्यूँ चात्रिग 'घणकूँ' रटै हो , पिव पिव करत विहाइ ।।
यूँ जन हरीदास हरि नांव मैं , मन सहजैं रह्यो समाइ ।।४।।

पाठभेद—जुग–१-३ । मडहट–१ । म्रत–२ । मृत–४ । नटनी–५ । रहया–२ । धनक–४-५ । काजि–४ । घन कूँ–१-२ ।

शब्दार्थ—जतन=उपाय । मरहट=मशान, मरघट । वीसरूँ=भूलूँ । वरतैं=वरत, रस्सा । धसै=प्रविष्ट हो, अन्दर जाय । धणंक=धनुष । घणकूँ=मेघ, बादल को ।

[१२]

है वलवंती माया !
लीया षड़ग सकल सिरि पेलै , षांण मतै कै षाया ।।टेर।।
माया पुरस नारि फुनि माया , माया आंन सगाई ।।
माया स्वामी माया सेवग , वहौत भांति करि आई ।।१।।
जोगी संगि जोगणि होइ चाली , भगतणि भगत मनाया ।।
सोफी संगि सोफणि व्है चाली , माथै मुकट वणाया ।।२।।
सींगी रिष सूषिम 'व्है' सोष्या , नारद रूप फिराया ।।
संकर का मन मांही पैठी , नाना भांति नचाया ।।३।।
अगनि रूप होइ में तें षंडै , परसि परसि परचावे ।।
जन हरीदास विरला जन कोई , उलटि परम पद पावे ।।४।।

[१३]

जीवड़ा जागि न देषै लाईवे !
जम जागत है तूँ क्या सोवे , राम सुमरि मेरा भाईवे ।।टेर।।
निसदिन आव घटै तन छीजै , ज्यूँ अँजली का पांणीवे ।।
'तजि' अलसाक अलप है जीवण, समझि देष 'अभिमांनी'वे ।।१।।
मात पिता सुत वित भी नारी , संगि न चालै कोइवे ।।
तासूँ लागि विकट 'मति' वौरा, 'मनषि' 'जनम' निधि षोइवे ।।२।।
वांसै वाहर छिप्या न छूटै , देही जुरा वुढ़ांणीवे ।।
पंडर केस हाथ 'नैंणापांर' , काल 'धजा' फहराणीवे ।।३।।

पाठभेद—होइ–२-३ । तज्य–२ । अभ्यमानी–२ । मत–५ । मिनख–५ । जन्म–४-५ । नैना–२-५ । धुजा–१ ।

शब्दार्थ—पैठी=प्रवेश हुई । षंडै=कण-कण करदे । परचावे=प्रेरित करे, प्रवृत्त करे । लाई वे=दुःख, संताप, मृत्युमय ज्वाला मे । अलसाक=आलस । विकट=डरावना, भयंकर । मति वौरा=विकृत बुद्धि । पंडर=सफेद ।

'औघट' घाट विचाले दरिया, तहां भेरा नांव मुरारीवे ॥
तहां लागि तैं पार न कीया, परदेसी अहंकारी वे ॥४॥
जहां उदै न 'अस्त' काल नहि काया, सोइ परम सनेही तेरा वे ॥
हरीदास जन टेरि कहत हूँ, तहां चलो जीव मेरा वे ॥५॥

(१४)

राम असाँड़ा सांई हो!
राषौ चोट चोट क्यौं लागै, समझि पड़ै कुछ नांही हो ॥टेर॥
पांच पचीस सदा संगि षेलै, आंवर करै अवाई हो ॥
तुम्ह अटकौ तौ वहौड़िन व्यापी, हम बल कछु न वसाई हो ॥१॥
तारण तिरण परम सुषदाता, यहु दुष कासूँ कहिये हो ॥
करम विपाक'विघन''होइ' लागा, तुम्ह राषौ तौ रहिये हो ॥२॥
समद अथाह अगह करणा मैं, गौड़ि करै नित गाजै हो ॥
ता मैं मछ काल सा षेलै, 'मांझि' दुरै सो षाजै हो ॥३॥
ऐ अघरूप अनंत मोही जारै, अंध कूप मैं बेरा हो ॥
जन हरीदास कूँ आस न दूजी, रांम भरोसा तेरा हो ॥४॥

[१५]

समझि सुष पाइया रे, ता सुष मैं रह्या समाइ ॥टेर॥
समझि सवाई तब पड़ी, जब सतगुर 'भये' सहाइ ॥
गुर 'किरपा' तैं हरि भज्यो, गुर दिया साच बताइ ॥१॥
अगम पियाला रुचि पिया, त्रिसना तपति बुझाइ ॥
पूरै गुर वित वहौड़िया, सूरा होइ सो षाइ ॥२॥

पाठभेद—अवघाट-१। असत-२। विघ्न-१। व्है-१। माझ-५। भए-३-५। कृपा-५।

शब्दार्थ—भेरा=नौका। असांडा=हमारा। आवर=आवरण, पर्दा। करम विपाक=कर्मों के फल। गौडि करै=उछाले दे, तरंगित हो। सवाई=अधिक, विशेष। वित=आत्मा का ज्ञानरूपी धन। बहौडिया=वापिस कराया।

जाता है कि यह उन्हीं की रचना होगी ×। अतएव, इस बात का भी कुछ समाधान अपेक्षित होगा।

जोहो, स्वामी मंगलदासजी का यह महत्वपूर्ण कार्य सर्वथा अभिनन्दनीय है और हमे आशा है कि, इसका समुचित स्वागत होगा।

पं० परशुराम चतुर्वेदी
एम. ए. एल. एल. बी. बलिया (उ. प्र.)

× 'संतवाणी' (वर्ष ६ अङ्क ६, संवत्, १९६१ ई०), 'संतसाहित्य परिषद', आरा (बिहार प्रांत) पृ० ६–११।

'निसि' भूला दिन समझि है, दिन भूला समझै नांहि ॥
तूँ तांका संग छाड़ि दे, काहै 'भौजलि' जाहि ॥३॥
'जुग' सगला भौजल पीवै, हरि जन पीवै नांहि ॥
जन हरीदास 'ज्यांह' परि भज्या, ते षोटा अनंत न षांहि ॥४॥

[१६]

गाफिल नींद न करिये रे !
जीवण नहीं मरण सिर ऊपरि, ता मरणां सूँ डरिये रे ॥टेर॥
रजनी मोह नींद भरि सूता, परम भेद नहिं पाया रे ॥
अति अभिमान वदत नहिं काहू, हीरा सा 'जनम' गमाया रे ॥१॥
गहि गुर ग्यांन जागि जीव जोगी, झूठै भरमि भुलाना रे ॥
हरि सूँ विमुष नाचि नानाविधि, छाड़ि चले 'सुलतांना रे ॥२॥
आयौथौ तूँ साचे सौदे, काचे लागौ भाइ रे ॥
हटवाड़ा हम 'विछुड़त' देष्या, जागौ रांम दुहाइ रे ॥३॥
अब तूँ समझि देष निसि वीती, पैंडा करणां लोई रे ॥
तसकर वहौत दूरि घर तेरा, साथी संगि न कोई रे ॥४॥
जन हरिदास रांम भजि भाई, देषि देषि पांव 'धरणां' रे ॥
हरि दरवारि झूठ नहि भावै, तिल तिल लेषा 'भरणां रे ॥४॥

(१७)

संतो ! मान मरोड्यां मारे रे,
डिंभक सा डाकणि चूंणि षाया, कोई 'म्रतक' पड्या पुकारे रे ॥टेर॥
साधां कौ मै भारी मानै, हरि सूँ नातौ पालै रे ॥
आपै चढ्या चढ़ी गटकावै, पावक होइ परजालै रें ॥१॥

पाठभेद—निस–२-३। भौजल्य–२। भवजल–५। जग–४-५। ज्यां–४-५। जन्म–३-५। सुलिताणा–१। विछडत–५। धरना–५। भरना–५। मिरतग–१। मृतक–४-५।

शब्दार्थ—सगला=सब, पूरा। मरोड्यां मारै=ऐंठे दे रहा है। डिभक=बच्चा। आपै चढ्या=अहङ्कार मे लिप्त।

जन सूँ जेठ वहू को नातौ, आडौ पडदौ रापै रे ॥
दूजा सब देवर करि देष्या, रसनां आगै चापै रे ॥२॥
आंवरि 'करि' सकल जग उपरि, घट घट मांही जागै रे ॥
जन हरीदास सिर छाड्यां पेलैं, ताकां चरणां लागै रे ॥३॥

(१८)

'निद्रा' मांही थकी मसोसे,
बादि चढ़ी गिरि ऊपरि पेलैं, लाधी 'वरतणि' पोसै ॥टेर॥
पहली 'नैंण' 'वैंण' कंठ रोकै, 'चेतन' घणां चुकावे ॥
पांव पड़ै रीड़ा तैं फीड़ा, कांई कल छिटकावै ॥१॥
आंवरि करैं अकल की चेडी, आई जै त्यूँ आवै ॥
ता आगे कोई जोगी जुध करि जागै, उलटी ताली लावै ॥२॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै, निरभै नाद बजावै ॥
जन हरीदास निद्रा अपराधणि, गंग तरंग दिषावै ॥३॥

(१९)

राम भजन हिरदै नहीं हेत, जहां तहां अपणां मन देत ॥टेर॥
मोह दोह माया मदमाता, देषो जीव जहर फल पाता ॥
हारि जीति का पासा हाथि, नरकि चलैं दुरमति ले साथि ॥१॥
जब लगि जीव पांच का चेरा, तब लग काल न छाड़ै केरा ॥
जन हरीदास नर नींद न जागै, साच कह्या काँटा सा लागै ॥२॥

पाठभेद—करै-४। न्यद्रा-१। ब्रतणि-१। वरतण-५। नैन-३। वैन-३। चेतनि-१।

शब्दार्थ—जनसू=ईश्वर-सेवक सूं। आवरि करि=पर्दा डाला। माही थकी=भीतर बैठी हुई। मसोसे=मसले। बादि=आग्रह, हठवश। लाधी वरतणि पोसै=प्राप्त ईश्वरचिन्तन-प्रवृत्ति को छीन ले। चेतन=चेतना, चित्त, चिन्तन। रीडा तै फीड़ा=इधर-उधर, लड़खडाते। चेडी=चुडैल सी लगकर।

(२०)

मंतो मदर भेप 'पण' त्रिस्ना व्यापै, भजन भेद यहु नांही रे ॥
वाहरि साहूकार कहावे, गांठी छोड़ा मांही रे ॥टेर॥
दीसै स्यंघ स्याल तैं 'कायर', जव लग जोग न लाधा रे ॥
सांमै पकड़ि आप वस कीया, कुबंधि कांमणी दाधा रे ॥१॥
पहरि सनाह संगि नहि साहीं, 'वटवाड़ा' घर रूँधा रे ॥
साहिव छाड़ि पेत पिसि चाल्यो, लूँण हरामी सूँधा रे ॥२॥
सांवत तिको सूर सति सोई, 'जिनि' मन मेवासा मठ कीया रे ॥
जन हरिदास सोई मतिवाला, जिनि राम 'रसायंण' पीया रे ॥३॥

(२१)

आये साध भये अहलाद, जिन कै नही विषै रसवाद ॥टेर॥
उनका क्या 'वरणों' विसतार, रामसनेही मेरे प्रांण आधार ॥
सीतल कोमल सन्त सधीर, जनम जनम की मेटी पीर ॥१॥
जन हरीदास आनंद जस होइ, साध मिल्या विष डारया धोइ ॥

(२२)

राम भजन विन जनम जुवारी, चालत है अपणा वित हारी ॥टेर॥
रे मतिहीण समझि मन लोई, हरि विणि सगा न सूझै कोई ॥१॥
उनमनि लागि गगन रस पीवै, अपणां जनम सफल करि जीवै ॥२॥
जन हरीदास गोविंद गुण गावे, सहज समाधि परम पद पावै ॥३॥

पाठभेद—परिण–३। काइर–२-३। वटपाडा–५। ज्यनि–२। रसाइण–३-५। वरनूँ–३-५।

शब्दार्थ—केरा=पीछा। गांठी छोडा माही रे=गठरी मे तत्व कुछ नही। पहर सनाह=कवच पहन। साही=फौज। वटवाडा=बटमार, डकैत। रूँधा=रोक लिया। अहलाद=आह्लाद, प्रसन्नता, हर्ष। सूझै=दीखे, ज्ञात हो। उनमनि=निराधार ध्यान दशा। गगन=दशम द्वार।

(२३)

पांडे ! कैसा भजन तुम्हारा ,
मन कूँ पकड़ि सहजि धरि पेलौ, माया षड़ग दुधारा ।।टेर।।
मैं मति 'पूछौं' तुम्ह मति कहियो, राषौ कहा दुराया ।।
मन है एक कहां लावोगे . एक ब्रह्म दूजी माया ।।१।।
कंचन छाड़ि काच सूँ पेलौ , तव लग काची मारी ।।
माया गहो ब्रह्म 'व्है' बैठा , 'इहै' अचंभा भारी ।।२।।
अरथ करै अनरथ उरि अंतरि , परम भेद नहिं पाया ।।
जन हरीदास ऐसा अपराधी , स्वामीपणैं सताया ।।३।।

(२४)

दस अवतार दसूँ 'ए' देसी , अवरां अवर चढ़ावै ।।
सो वाजीगर सलाक नांही , एक कूँ करै गमावै ।।टेर।।
परम 'पुरम' का पार न पावै , आसा सूँ रस लूधा ।।
सूधी राह सहज ही छाड्या , 'ऊजड़' पड्या अलूधा ।।१।।
×निराकार निरभै रे संतो , जो आकार सजावै ।।
हीड़ागर हीड़ा कूँ दौड़े . सो भी धणीं कहावै ।।२।।
तरंग 'सिंध' सो भी हरि नांही , निहचै जाइ विलावै ।।
जन हरीदास अविनासी भजतां , भव जल निकटि न आवै ।।३।।

पाठभेद—पूछूँ–३-४ । होई–५ । यहुतौ–१ । वे–२ । पुरिष–१ । ऊजडि–४ । स्यध–२ ।

शब्दार्थ—दुराया=छिपाकर । स्वामीपणे=ऊँचेपन का अभिमान । दस अवतार दसूँ ए देसी=दसों अवतार इसी भूमि पर के हैं । अवरा अवर चढावे=उन अवतारो का अन्य अन्य रूप मे वर्णन कर भ्रान्त करे । आसा सूँ रस लूधा=आशा वासना के रस लेने का लोभी बना । अलूधा=उलझा, गुमराह हुआ ।

× जो निराकार कालादि भयहीन परब्रह्म है वह कभी अवतार धारण नही करता । क्या हीडागर-सेवा करने वाला सेवक भी कभी घर का स्वामी हो सकता है ?

(२५)

अवधू आसण वैसण झूठा ,
जब लग मन 'विश्राम' न पावै , पथ तजि फिरै न पूठा ।।
ग्यांन गुफा जांणै नहि जोगी , अगम अरथ काहा बूझै ।।
पांच अगनि में पड़ि पड़ि दाझै , वा सीतल ठौड़ न सूझै ।।१।।
*त्रिविधि विकार वालि अरि इंधण, धूँई ध्यान न धारै ।।
ब्रह्म अगनि आकास न भेदै , तौ पारा क्यूँ मारै ।।२।।
='निगम' अगम तहां लगै न 'आसण', 'गरब' नाद निति वाजै ।।
नगरी मांहि भुगति वसि भूषा , जहां तहां उठि भाजै ।।३।।
मन गहि पवन अटकि ले उलटा, परम जोग उरि धारै ।।
जन हरीदास 'निरवास' 'भरम' तजि, निरगुण जस 'विसतारै' ।।४।।

(२६)

राम रस मीठा रे अब पिया ही सुष होइ ।।टेर।।
मीठा ऐसे जांणिये रे , पीवै नारद सेस ।।
मतिवाला गोरष पीवै , रुचि रुचि पिवै महेस ।।१।।

पाठभेद—विसराम-५। न्यगम-२। आसन-४। ग्रब-१। निवास-५। भ्रम-५। विस्तारै-३-४।

शब्दार्थ—आसण वैसण=आसन मार कर ध्यान लगाना। पूठा=वापिस, अन्तर्मुख। पांच अगनि=शब्दादि पांच विषयो की आग। दाझै=जलै, दग्ध हो। सीतल ठौड=परम आनन्द देने वाले आत्मज्ञान रुपी स्थान। परम जोग=अखंडाकार आत्मवृत्ति। निरवास=वासनारहित।

* कामादि शत्रु ममता-मोह अहङ्कारादि विकारो की इन्धन जला न दी जाय ध्यान रुपी धूणी न तापे ज्ञानाग्नि मे प्रकाशित हो प्राणसाधना से षट्चक्रो का भेदन करते हुये आकाश सहस्रार दल मे न स्थित हो तो पारा कैसे मरै-रसायन कैसे सिद्ध हो कैसे ब्रह्म प्राप्ति हो।

= निगम वेद से भी अज्ञात अगम ब्रह्म तत्व-वहाँ कैसे वृत्ति और प्राण का आसन लगे, स्थैर्य हो जबकि द्वैत-भावना से भीतर जात्यादि अहङ्कार का नाद शब्द गूँज रहा हो। काया मे भोगों को भोगने की भूख लगी हुई है उससे मन बार-बार विषयवासनाओ की ओर उठ उठ भाग रहा है।

सींगी रिष वन मैं पीया रे, हरि रस इम्रित धार ॥
सुषदेव पी निरभै भया, ताकूँ जांणें सब संसार ॥२॥
गोपीचंद 'निरमल' पीवें रे, पीवें हँणवँत वीर ॥
जोगी पीवै भरथरी, जाका अणभैं भया सरीर ॥३॥
नाम कबीरा निति पीवें रे, हरि रस 'वारूँ' वार ॥
जन हरदास'ज्यांह'हरि भज्या, 'त्यांह' भागा 'भौ' भार ॥४॥

(२७)

राम रस ऐसा रे, अमली बिणि पिया न जाइ ॥टेक॥
सोफी को पीवें नहीं रे, 'कुपछि' पड्या सब कोइ ॥
आरति सूँ अमली पीवें, पी मतिवाला होइ ॥१॥
सोफी सब उलटा पड्या रे, अमली रह्या लुभाइ ॥
भँवर गुफा का घाट में, उनमन सूँ मन लाई ॥२॥
अमली सब 'संसार' है रे, रह्या विषें मन लाइ ॥
जन हरीदास हरि रस पिया, दूजा कछु न सोहाइ ॥३॥

(२८)

करम भरम का किया कलेवा, सांसा जल ज्यूँ पीया ॥
ताती सीली सहज 'समांणी', हमतौ उलटे पैंडे जीया ॥टेर॥
सूधै राह सकल जुग चालै, पसवां तहां विलाया ॥
रसना स्वाद 'बहत' यूँ बूड़ी, 'वो' निरगुण नाह न पाया ॥१॥

पाठभेद—त्रिमल-१ । वारौ-५ । ज्या-५ । त्या-५ । भव-१ । कुपछ-५ । सँसार-४ । समानी-२-४ । वहोत-५ । वोह-४ ।

शब्दार्थ—वारूँवार=बारम्बार । ज्या=जिनने । त्याह=तिनके । भौ भार=संसार का भार । अमलो=व्यसनी । सोफी=सोफिया-व्यसन करने वाला । कुपछि=कुपथ मे । आरति सूँ=आसक्ति मे, लगन मे । भँवर गुफा=दशम द्वार । कर्म=बन्धनकारी कर्म । सासा=सशय । ताती सीली=निन्दा-स्तुति । पसवाँ=पशुवृत्ति वाले ।

निरमल कथा परमपद नेड़ा, अधर अमर निज भालै ॥
सुलटी सुरति अगम रस पीवै, 'परगट' पामा रालै ॥२॥
मेलि चढ्या साचै रंगि राता, काचै रंगि मन नांहीं ॥
हरीदास ऐसा जन कोई, वास करै हरि मांही ॥३॥

॥ इति रागगौड़ी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग मालीगौडी ॥

(२६)

ऐसा परापरै परभेव, गुरू विना को देवै ॥
'मसतग' ऊपरि 'हमत' रापै, आपणां करि लेवै ॥टेर॥
अजब धन अजब मन, अजब सुष होवै ॥
अजब तेज अजब रूप, तरसि तरसि जोवै ॥१॥
अगम गति अगम मति, अगम निधि पावै ॥
अगम अगम अगम अगम, सतगुर ले लावै ॥२॥
अनंत सूर निकटि नूर, जोति जोति मिलावै ॥
जन हरीदास निकटि वास, दास व्है स पावै ॥३॥

(३०)

सकल व्यापी हो निरंजन, तूं सनेही साचा ॥
'और' सकल जाचि 'देषे', कहा जांचूं काचा ॥टेक॥

पाठभेद—प्रगट–५। मस्तग–३। मस्तक–५। हस्त–३-५। अवर–१। देष्या–५।

शब्दार्थ—रालै=फेंके, पटके। सैल चढ्या=शिखर चढ़ा, साधन के उच्च स्तर में पहुँचा हुआ। परापरै=परा वाणी से आगे। तरसि=लालायित हो। लै लावे=ध्यान लगावे। सूर=सूर्य।

*जागि लागि प्रेम प्रीति, आंन रीति नांही ॥
×मन पवन अगम गवन, परम सिंध मांही ॥१॥
अगम ग्यांन अगम ध्यांन, अगम अरथ छाया ॥
अगम जोग अगम भोग, अगम अगम पाया ॥२॥
परम तेज परम जोति, परम भेद ऐसे ॥
जन हरीदास अरस परस, षीर नीर जैसे ॥३॥

॥ इति राग माली गौड़ी समाप्त ॥

॥ अथ राग रामगिरि ॥

(३१)

कांइ रे मन ! तूँ पर घरि जांहि, हरीजी सा सुषदाई कोई नांहि ॥टेर॥
हरी हीरा विणजै क्यूँ नांही, अजब 'पांणि' तेरे घट मांही ॥१॥
=इहै 'सुबधि' चिंतामणि भई, कौड़ी कुबधि सहज ही गई ॥२॥
जन हरीदास सुषसागर रांम, 'नित' साग्या साधां का काम ॥३॥

[३२]

आव हमारे आंगणै, 'ग्रह' त्रिभुवन राइ ॥
तुम्ह बिन मैं बिलषी 'फिरौं', अब रह्यो न जाइ ॥टेर॥

पाठभेद—पानि-३-५। सुबुधि-१। न्यन-१। निति-३। ग्रिह-३। गृह-५। फिरूँ-३-४।

शब्दार्थ—जागि=सावधान हो। आन=दूसरी। सिंध=समुद्र, ब्रह्मसागर। अजब=अद्भुत। निन सारचा साधा का काम=सर्वदा भक्तों के काम पूरे किये। ग्रह=घर। हृदयकमल मे। विलषी=विलखती, तड़पती।

* सजग हो अनन्य प्रेम अपनी आत्मा से करो और कल्याण का कोई मार्ग नहीं है।

× अगम सागररूप-परब्रह्म है, मन-प्राण का निरोध कर उसी अगम स्थान मे जाओ।

= यह सुमति ही चिन्तामणि है, इसके प्रादुर्भाव से सांसारिक वासनाओं मे लगी कुबुद्धि आसानी से ही निवृत्त हो गई।

कुल करणी सगली तजी, हरि आनंद मांही ॥
तन तजिवे की वेर है, मिलिये 'क्यूँ' नांही ॥१॥
आरति ऊँणा रति घणी, मेरा मन मांही ॥
दरस परस की वेर है, पति 'छाड़ौ' नांही ॥२॥
सती पिछाणैं सांच कूँ, मनां न 'आंणै' हीण ॥
मन आतम एकै मतै, तुंम ही सूँ ल्यौ लीन ॥३॥
जन हरीदास हरि सूँ कहै, तुम विन तन छीजै ॥
'प्रेम' पियाला पाय करि, अपणां करि लीजै ॥४॥

(३३)

वाजीगर वाजी रची, माया 'विसतारा' ॥
वाजी सूँ वाजी रमै, वाजीगर न्यारा ॥टेक॥
काम क्रौध अभिमान का, लै डेरूँ 'वाया' ॥
जल थल जीव जहां तहां, वाजी भरमाया ॥१॥
×अहूँ वास ममता चढ़ी, नव डोरि पसारी ॥
मोह ढोल वाजै सदा, नाचै नर नारी ॥२॥
दुष सुष गोटा ऊछलै, माया मद पीया ॥
ब्रह्मा 'विष्न' महेस लौं, वाजी वसि कीया ॥३॥
मन चंचल निहचल भया, निरभै घरि आया ॥
जन हरीदास वाजी तज्यां, वाजीगर पाया ॥४॥

पाठभेद—क्यौं-३-४। छाडू्ँ-३-४। आनै-३। पेम-१। विस्तारा-१-४। वाह्या-२-४। विसन-२।

शब्दार्थ—सगली=पूरी, सब। आरति ऊँणा=विरहणी उदास है। रति घणी=प्रेम बहुत है। वाजीगर=ससाररूपी बाजी को बनाने वाले जगदाधार। डेरूँ=डमरू। वाया=बजाया। अहूँ=अहङ्कार। नव=पाच ज्ञानेन्द्रियाँ, चारो अन्त.करण। वाजी तज्या=माया को छोडे, वासना त्यागे।

× अहङ्कार ने निवास किया ममता सासारिक पदार्थो की चाह चढी वढी इन्द्रिये तथा अन्त.करण ने अपनी भावना की डोर फैलाई।

(३४)

मूरिष सूँ मूरिष मिलैं, मिलि वाद वधारैं ।।
समझ्या हरि सुमिरण करैं, आपा सब डारैं ।।टेक।।
काम क्रोध 'त्रिस्ना' तजैं, संगति सुष पावैं ।।
भवसागर दूतर तरैं, गोबिंद गुण गावैं ।।१।।
संगति कीजै साध की, मति मारग बतावैं ।।
भूलां सूँ कोइ जिनि मिलौ, भूलौ भरमावैं ।।२।।
×सांग काछि माया मंड्या, हरि विचि भौ सागी ।।
जन हरीदास माया तजैं, ताकी बलिहारी ।।३।।

(३५)

जागौ रे ! अब नींद न कीजैं, थोड़ी राति न सोवो रे ।।
कोड़ि कोड़ि लैंणी का हीरा, कौड़ी सटे न षोवो रे ।।टेक।।
चेतनि रहौ रषै मति चूकौ, काम क्रोध 'भ्रम' जारौ ।।
तारणहार पषै क्यूँ तिरिसौ, मोटो 'जनम' न हारौ ।।१।।
प्रांणी कांई काल न आपो, 'दिन' 'दिन' नेड़ो आवै ।।
ज्यूँ बालक नां हाथां बाटी, हाड़ौ आइ छिनावै ।।२।।
जन हरिदास कालकर ऊपरि, मेल्हि तिलां ज्यूँ जोवैं ।।
हरि तैं विमुष दाढ़ तलि दरड़ै, मूल मधि मनवो षोवैं ।।३।।

पाठभेद—तिसना–१। त्रिसनां–२। भरम–५। जन्म–४-५। दिन्य–दिन्य–२।

शब्दार्थ—वाद=विवाद। वधारे=बढावे। सांग काछि=भेष बना कर। कोडि-कोड़ि=करोड़ो की कीमत वाला। चेतनि रहो=सावधान रहो। रषै मत चूको=जन्म सफल करने की रक्षा में कभी मत गफलत करो। पषै=पक्ष, मदद बिना। मोटो जनम=महान् श्रेष्ठ मनुष्य-जीवन। कालकर ऊपरि=काल का हाथ सिर पर है। मेल्हि=रख। दरडै=चबा जाय।

× केवल साग तो अत्यन्त त्यागी का बनाया, पर भीतर माया की अपार चाह है ऐसे आत्मा कैसे प्राप्त हो ईश्वर प्राप्ति मे बाधक अपार संसार पड़ा हुआ है।

आयु ५९ वर्ष सं. २००९

[३६]

हिन्दू तुरक 'कै एक षुदाई' . राम रहीम दोइ नहिं भाई ।।टेक।।
इहां बांमण उहां मुला बकरैं , वेद कतेब कथै विसरांम ।।
रांम संभालि दूर करि मैं तैं , आषिर एक 'अलह' सूँ काम ।।१।।
काजी बंदे जोर न करणां . सांचा सबद सुणौं सति कानि ।।
करद सँवाहि गला क्यूँ काटौ , कुछ तौ डर साहिब का मांनि ।।२।।
ए सब जीव उपाया साहिब , ताकूँ मारि पड़ो क्यूँ दूरि ।।
जन हरीदास यहु अरथ विचारै , तासूँ 'षालिक' सदा हजूरि ।।३।।

[३७]

संतो ! राम रजा में रहिये ,
मन दे प्रांण सीस दे सदगति , रांम रांम यूँ कहिये ।।टेक।।
'ग्रिह' परिवार मोह तजि मैं तैं , मन की गति मन जांणै ।।
तजि 'अभिमांन' भजौ 'अविनासी' , अंतरि अलष पिछांणै ।।१।।
सब संसार कहै कछु नांही , सांई कै 'मनि' भावै ।।
पूरण ब्रह्म परम सुषदाता , अपणैं मारगि लावै ।।२।।
×हरि तैं विमुष लोग सब मानें , सदगति सुण्यां न कोई ।।
*नींदै लोग रांम वित चित मैं , ता 'समि' 'और' न कोई ।।३।।
जन हरिदास रांम कै सरणै , रहै राम ही गावै ।।
'भौ'सागर तिरै निरंजन परसै , निज विसरांम समांवै ।।४।।

पाठभेद—एक कल लाई–३-४-५ । अल्ह–४-५ । षाल्यक–२ । गृह–४-५ । अभ्यमांन–२ । अभिनासी–१ । मन्य–२ । सम्य–२ । अवर–१ । भव–१ ।

शब्दार्थ—बकरैं=बोले, कहे । करद=छुरी । सँवाहि=सँवार, पेना कर । षालिक=खुदा, परमात्मा । हजूरि=सम्मुख, अनुकूल । नींदै=निन्दा करे ।

× परमेश्वर से विमुख हैं–सांसारिक लोग धनादि के कारण बडाई करते हैं वस्तुतः वैसे व्यक्तियों मे किसी की भी सद्गति हुई हो ऐसा देखने मे नही आया ।

* संसारी लोग जिसकी निन्दा करते हैं –पर– उसके हृदय मे रामरूपी धन भरा है, उसके समान कोई श्रेष्ठ नहीं है ।

(३८)

एक हरि एक हरि, एक हरि साचा ॥
अलष भजि अलष भजि, सुफल करि वाचा ॥टेक॥
अविनासी पूरणब्रह्म, तहां मन दीजै ॥
रांम भजि रांम भजि, परम गति लीजै ॥१॥
गाइ गोपाल मति, सुमरि मन रांमा ॥
काल लागै नहीं, सरै सब कांमा ॥२॥
एक ह्वै एक होइ, निरभै मतै रहिये ॥
जन हरीदास गुर ग्यांन गहि, 'अगहि' यूँ गहिये ॥३॥

(३९)

'अवगुण' मोहि अनंत करणां मै, काम क्रोध रस भावै ॥
ता रसि लागि नींद भरि सूता, तुम्ह विणि कौंण जगावै-माधो ॥टेक॥
दारण दस मास 'दुषित' 'ग्रभि' अंवला, जल मल भोजन कीया ॥
वहता मल मूत्र नासिका ऊपरि, उरध मास में लीया-माधो ॥१॥
तप करि कष्ट राज रसि लागा, निहचल रांम न गाया ॥
तप बल घट्या काल फिरि ग्रास्या, परहथि प्रांण विकाया-माधो ॥२॥
कीट पतंग मीन 'म्रघ' विसहर, स्वान सिंघ वप धारया ॥
सूकर स्याल काग 'क्रिमि' कुंजर, ऐसे फिरत फिरत पचि हारया-माधो ॥३॥
जलि थलि वास जुरा संगि मेरे, काल कहर की छाया ॥
जन हरीदास अपणां करि राषो, पतित सरणि अब आया-माधो ॥४॥

पाठभेद—अगह्-५। अवगण-३-५। दुषत-५। ग्रभ-५। म्रिघ-१। मृग-५। क्रम-३। क्रुम-५।

शब्दार्थ—वाचा=वाणी। ग्रभि=गर्भ। अँवला=उल्टा, ऊँधा। पर हथि=और के हाथ, पराये वश। म्रघ=मृग। विसहर=सांप।

(४०)

बाबा इहै गरीबी झूठी ,
मन अर पवन दोऊ ये फूटा , मनसा फिरै न पूठी ।।टेक।।
त्रिवधि ताप की कंथा पहरी , मनी टोप सिरि जाकै ।।
राग दोष की कांना मुद्रा , कहौ गरीबी ताकै ।।१।।
पहरया भेष रेष ज्यूँ की त्यूँ , मोह मढी बसि जींवै ।।
तन कै भेष रांम नहिं रीझै , विष इम्रत करि पीवै ।।२।।
पांच चोर 'परदेसी' पहुंता , मिलि षेलै ता मांही ।।
मन में जोर मुषि गहै गरीबी , असलि गरीबी नांही ।।३।।
जन हरिदास आन तजि अनरथ, मनि रांम नांम व्रत धारै ।।
राग दोष काहू सूँ नांही , या असलि गरीबी तारै ।।४।।

।। अथ राग आसावरी ।।

(४१)

अवधू ऐसा ग्यांन विचारा ,
है हरि अकल सकल बिस व्यापी, रहै सकल तै न्यारा ।।टेक।।
न्यौ मैं अलष अकल अविनासी , सुरति सुपह मति जागी ।।
गोरष गोपि परसि निधि 'निरभै', अनहद सींगी वागी ।।१।।
निज पुरि प्रांण बसै निति निहचल, पवन सुरति सति माला ।।
'ब्रह्मछोल' मैं झूलै षेलै , पीवै अगम पियाला ।।२।।
'निकटि' नाथ निज रूप निरंतरि , नांव निरंजन राया ।।
जन हरीदास निंदौ कौ वंदौ , मन फिरि मन ही समाया ।।३।।

पाठभेद—प्रदेस–५ । न्यरभै–२ । ब्रह्मछोलि–२-४ । न्यकटि–२ ।

शब्दार्थ—फूटा=बिखरा, वाह्य विषयों मे लगा । पूठी=पिछली, वापिस, अन्तर्मुख । कथा=गुदडी । मनी=अहङ्कार । रेप=लकीर, भोगमयवृत्ति । पाच चोर= पांचो ज्ञानेन्द्रियां । परदेसी पहुता=विषयो मे लगी । जोर=ब्रह्म,ताकत । अनरथ= अन्याय । गोरप गोप=गुह्यज्ञान । ब्रह्मछोल=ब्रह्मानन्द की तरङ्ग मे । झूलै=स्नान करे, सराबोर हो । निंदौ=निन्दा करे । वंदौ=वन्दना करे, प्रशसा करे ।

(४२)

मंतो मो जोगी 'निमतारै',
उलटी चाल सदा रस पीवै, उलटा भेद विचारै ।।टेक।।
'जब' लग मांन ग्यांन मव माचा, रांम कहै कहि जीवै ।।
उलटि पलटि का प्रेम पिबाला, ज्यूँ जागै त्यूँ पीवै ।।१।।
सो मतिवाला जुगि जुगि जीवै, सहज मरे रस लीया ।।
छाक्या फिरै सदा ही रावल, गुरि पाया उनि पीया ।।२।।
पी पी अवधू भया दिवांना, निज सरूप सो जान्यां ।।
जन हरीदास हरि का रस विलसै, सो जोगी 'मनि' मान्या ।।३।।

(४३)

अवधू मैं मेरा मन समझया,
मन जाइथा पणि 'जांणि' न दीया, फेरि सहज घरि लाया ।।टेक।।
के वपधरि वैकुंठ विचारै, 'अत' लोक का मारया ।।
जो वैकुँठ धरया सो विनसै, हम कछु अगम विचारया ।।१।।
नरक सुरग दोऊ हम तोल्या, ग्यांन तराजू मांही ।।
'दोन्यू' विथा वरावरि दीसै, इन मैं घटै वधै 'कछु' नांही ।।२।।
तीरथ 'व्रत' जोग 'जिग' तपस्या, वडी विथा 'जुग' मांही ।।
जन हरीदास ए मलकरि देष्या, इन कूँ परसै नांही ।।३।।

(४४)

संतो है कोई जोगी जोग जुगति गमि जांणै !
बहती नदी ग्यांन कै पारे, वांधि अपूठी आंणै ।।टेक।।

पाठभेद—न्यसतारैं–२-४। तव–१। मन्य–२। जाण–१-३। मिरत–१। मृत–४। दोन्यौं–१। को–१। वरत–३-४। ज्यग–२। जग–४-५।

शब्दार्थ—उलटी चाल=अन्तर्मुखी हो। छाक्या=तृप्त हुआ। जाइ था=विषयों की ओर जा रहा था। वप धरि=शरीर धारण कर। विथा=पीडा, दर्द। मल करि=मलीन, पापमय। वहती नदी=सासारिक पदार्थों मे लगी वृत्ति। अपूठी=वापिस, पिछली।

राजस तामस 'स्वातिग' ग्रासै, सेस नाग कूँ पीवै ।।
अलष अधारी आसा राषै, ऐसा जोगी जीवै ।।१।।
सूषिम गली 'निजरि' में राषै, पांच चरण तलि चूरै ।।
परमजोति कै परचै षेलै, अनहद सींगी पूरै ।।२।।
सुरति सँवाहि सहजि घरि धारै, निरमल नेह निवासा ।।
जन हरीदास ऐसा जन कोई, देषै अगम तमासा ।।३।।

(४५)

मन रे! सो साचा वैरागी,
त्रिकुटि कोट ऊपरि तत आसण, सुरति 'निरंजन' लागी ।।टेक।।
ग्यांन षड़ग लै वन मैं पैसे, चेला पांच विवोगे ।।
वसत गोपि सतगुर सूँ परगट, परम सूँनि रस भोगे ।।१।।
सागर 'सपत' 'अष्ट' मंड़ल मैं, नदी निवासै तांणै ।।
उनमनि रहै एक रसि लागा, जोग मूल 'विधि' जांणै ।।२।।
अरथ करै करि अरथै दरसै, निज विसरांम न भूलै ।।
गुरगमि 'अवघट' घाटी लांघै, त्रिवेणी संगि भूलै ।।३।।
मन कूँ पकड़ि सहज घरि षेलै, सुरति सहज घरि धारै ।।
जन हरीदास अहरण घण कसणी, तव हरि हाथ पसारै ।।४।।

पाठभेद—सातिग-१ । नजरि-१ । निजर-५ । न्यरंजन-२ । निरंजण-४ । सप्त-५ । असट-२-४ । वंध-३-४ । औघट-५ ।

शब्दार्थ—ग्रासै=खा जाय, नष्ट करे । सेस नाग=संशयरूपी सर्प को समाप्त करे । सूषिम गली=मनोवृत्ति । पाँच=ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचो विषय । सुरति=वृत्ति । सँवाहि=सँभाल । त्रिकुटि कोट=भ्रूमध्य, आग्या चक्र मे । तत आसण=तत्व का स्थान, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रारदल । विवोगे=दूर करे । वसत गोपि=गुप्तवस्तु, परिछिन्न ब्रह्म । सागर सपत=रसादि सप्त धातु । अष्ट मंडल=आठो चक्र, आठो कमल । अरथ करै=तत्वज्ञान कहे ही नही । अरथै दरसै=तत्वज्ञान अपनावे, अनुभव मे लावे । निज विसराम=चिर-सुख प्राप्ति का स्थान । अवघट घाटी=मेरुदण्डगत इडा-पिगला सुषुम्ना के प्रवाह की प्रणाली । त्रिवेणी=इड़ा-पिंगला, सुषुम्ना समरूप मे । जन हरीदास अहरण घण कसणी=हरिदासजी कहते हैं—जैसे अहरन घन की चोट को सहन कर वस्तु निर्माण करता है, वैसे ही साधक मन, प्राण, इन्द्रियो पर निग्रह करता हुआ अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले ।

(४६)

मन रे! सो साचा जूवारी,
जूवैं षेलि 'परमनिधि' परमैं, वहौड़िन रोपैं सारी ॥टेक॥
पहली 'षेलि' बहुत दिन हारया, सतगुर समझि न आई ॥
अब वो डाव चरणतलि चूरया, उलटी मार चलाई ॥१॥
तीन पांच नव डाव न षेलैं, 'चलि' दसवैं घरि आई ॥
अब याह सारि पड़ै नहिं काची, ठौड़ 'अमोलिक' पाई ॥२॥
दुष सुष डाव चाल चौरासी, त्रिवधि ताप तजि पासा ॥
सारी प्रांण प्रेम घरि सौंपी, अरथि अलूधी आसा ॥३॥
चिन चौपड़ि चेतन घरि चौथे, दोऊ 'मेल्हि' जुग हूवा ॥
षेलैं सदा सुरति कैं नाकैं, फूटि न चाले जूवा ॥४॥
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन, निज तरवर की छाया ॥
जन हरीदास सतगुर कैं सरणैं, करमन व्यापैं माया ॥५॥

(४७)

पांड़े अपनी अगनि बुझावो,
हम तो अपणैं राह चलत हैं, 'तुम' काहे दुष पावो ॥टेक॥
था 'तुम' कौंण कहां तैं आया, अनंत लोक फिरि भाई ॥
अब तो तुम बांमण 'होइ' बैठा, चौरासी विसराई ॥१॥
'गरभवास' ऊँधैं मुषि रहता, मपत धात रस पीया ॥
अब तो तुम्ह चौका दे जीमो, वहां चौका किस दीया ॥२॥

पाठभेद—परमन्यधि-१। षेल्य-२। पेल-५। चल्य-२। अमौल्यक-२। मेलि-१। तुम्ह-३·४। व्है-१। ग्रभवास-१।

शब्दार्थ—वहौडि न=फिर, पुन.। डाव=पासा, दांव। तीन=तीनो गुण। पाञ्च=पांच विषय, रागादि पञ्चक्लेश। नव=नवद्वार। दसवैं=दशमद्वार ब्रह्मरन्ध्र। अमौलिक=बहुमूल्य। अरथ अलूधी आसा=वासना तथा वृत्ति वास्तविक लक्ष्यसिद्धि में लगी। उनमनि=लयवृत्ति।

कुल 'अभिमान' आंन वप पूजा , इहै विथा 'होइ' लागी ॥
जे 'यह' जाति भली थी पांडे , तौ सुषदेव क्यौं त्यागी ॥३॥
रांम विसारि हारि मत चालौ , आंषि अनूप उघाड़ो ॥
क्रोध चंड़ाल सदा संगि षेलै , ता का मूल उपाड़ो ॥४॥
पांच तत का सकल पसारा , प्रांण तहां दुष पावै ॥
जन हरीदास बांमण सति सोई , उलटा ब्रह्म समावै ॥५॥

(४८)

रांम सुमरि जन ऊजला भया रे , परम सनेही अपणां सोधि लिया रे ।टेक।
सकल उपाइ सकल तै न्यारा , सब देवल मैं रमै हो 'चितारा' ॥१॥
सकल 'भवन' कूँ पालै पोषै , 'कहा' पूजा लै दास संतोषै ॥२॥
जन हरीदास प्रणवै निज दासा, जीव सीव संगि एकै पासा ॥३॥

(४९)

चलणा रे मन विलमन कीजै , रांम भजन का लाहा लीजै ॥टेक॥
जहां जहां जाऊँ जहां जम मारै, करणां सागर सरणि उवारै ॥१॥
दुष सुष नदी वहैं दोइ भारी , ता मैं रांम विमुष भूलै 'अधिकारी' ॥२॥
जन हरीदास औसर भल पाया, ममता मेटि भजौ राम राया ॥३॥

(५०)

सो सुष सुणियो संत विनांणी ,
'वीज' चमंकै वादल 'गरजै' , चढ्या अपूठा पांणी ॥टेक॥

पाठभेद—अभ्यमान-२ । व्है-१ । याह-१ । या-५ । च्यतारा-२ । भुँवण-१ । क्या-१ । इधिकारी-२ । वीजल-१ । गाजे-१ ।

शब्दार्थ—अनूप=अनोखी, ज्ञाननेत्र । ऊजला=शुद्ध, प्रकाशमय । चितारा=चित्र करने वाला, जगत्पिता । वीज चमंकै=ज्ञानज्योति प्रगटे । वादल गरजै=अनहद ध्वनि हो । चढ्या अपूठा पांणी=वृत्तिप्रवाह बाहर से उलट कर अन्तर्मुख हो गया ।

जोगी रोग रति भरि तोड़ै , 'वोषद' अगम वतावै ॥
आसण छाड़ि अगनि मैं पैसे , उलटी ताली लावै ॥१॥
गंग जमन मधि पवन निरोधै , विष तजि वसन पिछाणै ॥
गिणि गिणि तार अकल सूँ सांठै, निरगुण का गुण जांणै ॥२॥
छै सै सहस इकीसूँ धागा , अगम तहां ले जोड़ै ॥
निरभै थकौ निरंजन परसै , तिल भरि तार न तोड़ै ॥३॥
सेस महेस 'विसन' गहि ब्रह्मा , काटि काटि कम लावै ॥
भरि भरि अगम पियाला पीवै , भाठी चौक 'चिगावै' ॥४॥
मढ़ी अषंडित मांही वैठा , जोगी एक विराजै ॥
जरणां जड़ी जटा मैं राषै , सुष मैं सींगी वाजै ॥५॥
तिणि ही झालरि वाजा वाजै , तिणि ही देवलि देवा ॥
सूँनि मंडल मैं ध्यांन हमारा , तिणि ही मूरति सेवा ॥६॥
जन हरिदास अधर उठि चालै, ताका पला न कोई तांणै ॥
तिणि वरनी वे सहर एक देष्या , विरला कोई जांणै ॥७॥

(५१)

अवधू माणिक चौकि'महानिधि' लाधी, कह्यां न को पति'आवै' ॥
जा का मोल तोल कछु नांही , सिर सौंपै सो पावै ॥टेक॥

पाठभेद—वोषधि–१ । विष्न–१-५ । चिकावै–१ । महान्यधि–२ । यावै–१ ।

शब्दार्थ—रोग रति भर तोडै=वासना, सशयादि का लेश भी न रहने दे। वोषद अगम वतावै=मन, बुद्धि, इन्द्रियो मे आगे अगम-चेतनतत्वरूप औषधि प्राप्त करावे। आसण छाडि=मायिक पदार्थो की इच्छा का त्याग। अगनि मैं पैसे=ज्ञानाग्नि में स्थित हो। गंग जमन=इडा-पिगला। अकल सूँ=कलनरहित, मायारहित ब्रह्म मे। साठै=जोडे। छै सै सहस इकीसूँ धागा=इक्कीस हजार छ सौ श्वासरूपी धागे। सेस= अहङ्कार। महेस=तमोगुण। विसन=सतोगुण। ब्रह्मा=रजोगुण। भाठी=भट्ठी। मंढ़ी अषडित=दशमद्वार, गगनमंडल मे। झालर=स्थिरवृत्तिरूपी झालर। वाजा वाजै= अनहद शब्द से। अधर=निराश्रयवृत्ति। वे सहर=बेगमपुर, शून्यस्थान। माणिक चौक=हृदयप्रदेश मे। महानिधि=परम धन, आत्मप्राप्ति।

अधर मधर निरमल निहकांमी, नांव निरंजन राया ॥
'धरे' अधर सूँ 'परचा' कीया, सो फिरि तहां समाया ॥१॥
अवरण वरण सकल सँगि रहिता, 'पतिवरता' पति छाजै ॥
भगति सधीर आधार हमारे, चौकी चढ्या विराजै ॥२॥
अरध उरध मधि अगम अधारी, निज तत नैड़ा दरसै ॥
मन मतिवाला भरि भरि पीवै, घटा विनां घण वरसै ॥३॥
उलटी नदी गुणां 'सूँ' न्यारी, महा नीर अति मीठा ॥
सेझां राजा राम पधारया, 'महलि' उजाला दीठा ॥४॥
नैड़ा निपटन जांणै कोई, करम काट 'वहौ' लागा ॥
जन हरीदास सुष सागरि पैठा, 'भौ सागर' मैं भागा ॥५॥

(५२)

'जोगिया' अलष अभेवा रे !
आरंभ कौंण कहां 'तेरा' आसण, करूँ किसी विधि सेवा रे ॥टेक॥
सकल रूप रसरूप 'विवरजत', सकल रूप तैं कीया ॥
सकल रूप करि सब तैं न्यारा, साधां कूँ सुष दीया ॥१॥
चिंत न चाहि प्रीति नहिं 'परघत', सकल निरंतरि न्यारा ॥
अगहि अरूप अथाह अषंडित, अगम वार नहिं पारा ॥२॥
मैं मेरा उनमांनि विचारया, करम कूप तजि काया ॥
उलटी सुरति गगनि मैं गरजै, तहां कछु अलष लषाया ॥३॥

पाठभेद—धरये-१ । प्रचा-१ । पतिभरता-१ । तैं-३ । महल्य-२ । महल-५ । वहु-२ । भवसागर-१ । जुगिया-२-३ । तेरो-५ । विवरजित-१ । प्रघत-१ ।

शब्दार्थ—चौकी=अन्त:करणरूपी चौकी पर । अरध=मूलाधार चक्र । उरध=दशमद्वार, सहस्रारदल । मधि=अनहृदचक्र, हृदयस्थान । घटा विना घण वरसै=वाह्य बादलों के बिना तालुप्रदेश से निरन्तर झरने वाला अमृत रस बरस रहा है । सेझां=हृदयरूपी शैय्या पर । महलि=देहरूपी महल मे । उजाला=ज्ञानज्योति का प्रकाश । दीठा=देखा । चित=चिन्तन, कामना । चाहि=इच्छा । परघत=दूसरे का घात, हिंसा । उनमानि=अन्दाज ।

(५३)

सुणि लै रे ! साह संदेसा ,
साह कहाइ चोर संगि रापो , जाव 'करोगे' कैसा ॥टेक॥
त्रिमना एक रहै घट भीतरि , निज पद अटकै नांही ॥
ऊँच नीच की माया पांचौ , सो पड़ै रसोई मांही ॥१॥
मैं तैं चितचोर चित पैठा , षंड षंड करि कांपै ॥
अति 'अभिमान' काम वसि काचा, करम कथा कण थापै ॥२॥
सोई साह सदा संगि षेलै , मन की ठौड़ उठावै ॥
वंकनालि 'इंम्रत' रस पीवै , रस ही मांहि समावै ॥३॥
पकड़ि तराजू मन कूँ तोलै , हरि इंम्रत रस पीवै ॥
जन हरिदास साह सति सोई , यूँ सांचा करि जीवै ॥४॥

(५४)

हरि 'विण' जांणि षोटा षात ,
रामजी सूँ प्रीति नाहि , उठि 'दह' दिसि जात ॥टेक॥
भजि निरंजन भरम भंजन , हरि अरि गंजन नाथ ॥
आपणा करि आप रापै , सीस परि धरि हाथ ॥१॥
काल का भै वंधन कांपै , जाप अजपा आप आपै ॥
उनमनि असथांन , सौदत अवर नांही अभै आपै दांन ॥२॥
नरक का भै कुँड़ 'टालै' , काल चोट न वहौड़ि सालै ॥
जुरा ग्रासै नांहि सीस दे ताहि, भगति आपै नरहरि वसत है सब मांहि ।३।

पाठभेद—भरोगे-५ । अभ्यमान-२ । इंम्रित-१ । विणि-२-३ । दहि-४ । पालै-१ ।

शब्दार्थ—जाव=जवाब । षाचौ=खीचते हो, अपनाते हो । मैं तैं=मेरा-तेरा भेदवृत्ति । सोई साह=वही साहूकार हो । सदा संगि षेलै=जो सदा आत्मस्वरूप मे लीन रहे । मन की ठौड=मन की प्रवृत्ति, विपयवासना को । वंकनालि=सुषुम्ना । तराजू=विवेक विचाररूपी तकडी मे । आपण करि=अपनाकर । काँपै=काटै । आपै= प्रदान करे । सीस दे ताहि=उसको आत्मसमर्पण कर ।

स्वामी हरिदासजी का परिचयात्मक विवरण

भूमिका

१. सामयिक स्थिति.

भारत मे चौहान वंश की राज्य-समाप्ति के साथ ही मुसल्मानों के आधिपत्य की जडे जमने लगी। भारतीय राजाओं के आपसी-विग्रह ने मुसल्मानी साम्राज्य की दृढता मे और सहारा लगाया। लोदी वंश के पश्चात् मुगलो ने बादशाहत जमाई तथा वे स्वयं भारत मे ही निवास करने लगे। सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी मे मुगल शासन अपनी विशेषताएँ लिये हुए था। एक नई धार्मिक प्रवृत्ति का भारतीय संस्कृति मे समावेश होने की कशमकश चलने लगी। 'एकेश्वरवादी मुस्लिम संस्कृति तथा विविध देवादि को मान्यता देने वाली भारतीय संस्कृति की विचारधाराओ में बडा अन्तर था। मूर्तिपूजा भारतीय संस्कृति का एक आवश्यक अङ्ग थी वहा मुस्लिम संस्कृति मे बुतपरस्ती को अत्यन्त हेय माना गया था। भारतीय संस्कृति तथा मुस्लिम संस्कृति मे धार्मिक रीति-रिवाज सर्वथा एक दूसरे से विपरीत होने के कारण संघर्ष अनिवार्य था। 'यथा राजा तथा प्रजा' की लोकोक्ति के अनुसार मुस्लिम संस्कृति को राजसेवी हिन्दू भी अपनाने लगे थे। भारतीयों के लिए यह समय अत्यन्त ही विकट था। जबर्दस्ती धर्म-परिवर्त्तन या परिवर्त्तित धर्म वालों का समाज से बहिष्कार, मठ-मन्दिरो का ध्वस आदि नित्य की घटनाएँ थी। हिन्दू राजाओ ने मुस्लिम बादशाह की मान्यता स्वीकार करली थी। केवल मेवाड के महाराणा को छोडकर अन्य राजस्थान के राजा बादशाहत के अङ्ग बन गये थे। धार्मिक भावनाओ का दाढ्‌र्य डगमगाने लगा था। भारतीय जन-समुदाय उचित मार्ग-दर्शन के लिए व्याकुल था। देश की पराधीनता से मुक्ति तथा अपनी धार्मिक प्रवृत्तियो को नि.संकोच पूरा करने की लालसा तीव्र होते हुए भी उभय क्षेत्रो मे व्यवस्थित मार्ग-दर्शन का अभाव था। प्रशासक की धर्मनीति का प्रशासितो पर प्रभाव पडना अनिवार्य है। राज्यसत्ता के दृष्टिकोण का प्रभाव प्रजा के सामाजिक जीवन पर पड़ना अनिवार्य है। लाखो मनुष्य राज्य के आश्रित होते है, उनके परिवार तथा सम्बन्धी भी लाखो की संख्या मे होते है। इन आश्रित मनुष्यो को इच्छा या अनिच्छा से राज्य के दृष्टिकोण का समर्थन करना होता है। शासको की धर्मान्धिता भी विभिन्नधर्मी प्रजा के लिए एक दारुण दु.खमय अभिशाप से कम नही होता है।

भारत में मुसल्मानी राज्यकाल मे हिन्दू प्रजा को कैसी-कैसी विपत्तियो का सामना करना पडा—यह इतिहास के तथ्यों से जाना जा सकता है। अनवस्थित प्रशा-

भरम जल मैं पार लहिये , पेलि उलटा अगह गहिये ॥
, हरि पूरण ब्रह्म अगाध ॥
जन हरिदास निरभै ध्यांन'निरमल', तहां बसत है सब साध ॥४॥

(५५)

संतौ ! सहणौ व्है सुष लाधा ,
महतौ पकड़ि आप बसि कीयो , सतगुर सबदां बांधा ॥टेक॥
महतौ रोक्यां उपरि महती , किलौ करै कलि नारी ॥
कह्यौ काहू को मांनै नांही , तब गलि गोतो दै मारी ॥१॥
राज बलाही मतै आपणौं , फिरि फिरि करै बुराई ॥
ताकौ सिर जरवा सूँ कूट्यौ , यूँ भागो बड़ भाई ॥२॥
गांव सुहागणि मारग रोक्यो , आड़ी आड़ी आवै ॥
जन हरीदास सोई ततवेत्ता , जौ या 'तैं' पलौ छुड़ावै ॥३॥

(५६)

अवधू ! वेलि आंषि उझांणी ,
पैली आंषि सहज मैं षूली , याह सतगुर की सहनांणी ॥टेक॥
पाइक पांच पौलि मैं अटक्या , ग्यांन गुफा मैं आया ॥
गिगन मंडल मैं आसण अवधू , धुनि मैं ध्यांन लगाया ॥१॥

पाठभेद—नृमल-३-४। पै-५।

शब्दार्थ—सहणौ व्है=सयाना होकर, सचेष्ट हो आत्मचिन्तन मे लगने से। महतो=मनरूपी महते को। महती=मनसा किलकारियाँ भरने लगी। राज बला ही=अहङ्काररूपी राजवलाही ने। मतै आपणौ=अपनी मर्जी से ही। ताको सिर जरवाँ सूँ कूट्यो=इस अहङ्कार का सिर गरीबी-अकिञ्चनता की हथौडियो से चूर-चूर किया। गांव सुहागणि मारग रोक्यो=कुमतिरूपी बलाहिण आड़ी आ विघ्न करने लगी, उसको स्थिर सुमति द्वारा परास्त किया। उझांणी=मिच गई। पैली आषि=परादृष्टि। सहनांणी=निशानी, चिह्न। पाइक पांच=मन की सहायक पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। पौलि मैं=वृत्ति जाने के मार्ग, दृष्टि, घ्राण, रसना आदि। ग्यांन गुफा=आत्मस्थान मे।

ऊँधा कँवल सुलटि करि सूवा , अनहद सवद उचारा ॥
गंग जमन समि रवि ससि मेला , सहजि भया मतिवारा ॥२॥
गम मैं अगम अगम मैं गम है , मन फिरि मन ही समाना ॥
जन हरीदास कछु कहत न आवै , अब हम भया दिवांना ॥३॥

(५७)

मन रे ! सो सतगुर मैं चेला ,
'आनद' महत अगम घरि पेलैं , परम जोति सूँ मेला ॥टेक॥
मन गहि पवन गवन गुरगम तैं , पछिम देस पंथ जांणै ॥
सुरति सँवाहि समद मैं पैसे , वसत 'अमोलिक' आंणै ॥१॥
स्वारथ की सीर अटकि अरि अवधू, परसि परम निधि देपै ॥
ए नवनाथ हाथ मैं रापै , तब दिन लागै लेपै ॥२॥
पाइक पांच एक रसि रोकै , गोरप कड़ी सलूझै ॥
जरणां जड़ी जोग जत जांणै , सो या अरथ ही वूझै ॥३॥
सूँनि मंडल मैं वैसि 'निरंतरि' , अणवोल्या 'नित' गावै ॥
जन हरीदास सोई गुर मेरा , जो या अरथ समावै ॥४॥

(५८)

जागि न देषो रे ! हरि नेरा ,
तजि 'वहौं' रूप धूप नहिं व्यापै, सुष मैं सहजि वसेरा ॥टेक॥

पाठभेद—आनंद-२-३ । अमोल्यक-३ । न्यरंतरि-२ । न्यत-२ । निति-३ । वहु-१ ।

शब्दार्थ—ऊँधा कँवल=चक्रो के उल्टे कमलो को । गंग जमन समि=इड़ा-पिंगला समस्थान मे । रवि ससि मेला=सूर्य-चन्द्र मे प्राण का निवास । मन फिरि मन ही समाना=मन मलीनता को त्याग विशुद्धरूप मे बदल गया । दिवांना=मस्ताना । अनहद सहत=अनहद शब्द सहित । अगम घर=सहज स्थान, ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश । पछिम देस=वकनालि, सुषुम्ना मार्ग । पंथ=मार्ग । सुरति सँवाहि=वृत्ति स्थिर कर । समद=अगाध व्यापकब्रह्म मे । नव नाथ=पाचों ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्त करण चतुष्टय । गोरष कडी=ज्ञान की दृढता । सलूझै=सुलझै, सुगम हो । जरणा=सहनशीलता । सूँनि मंडल=दशमद्वार । अणवोल्या=बिना शब्द, अजपा जाप । धूप=ताप, त्रिविध ताप । वसेरा=विश्राम ।

रमतारांम परम सुष दाता, सकल लोक ता छाया ॥
ता सुष लागि साध अविनासी, अमर लोक फल पाया ॥१॥
आनंद अनंत अनंत 'अघजारण', अनंत चंद तैं 'सैला' ॥
अनंत भाण परकास परमपद, अनंत 'जोति' का मैला ॥२॥
आनंदरूप अगहि अविनासी, अगम तहां गम कीया ॥
जन हरीदास निधि देषि निजरि भरि, जनम सुफल कर लीया ॥३॥

(५९)

'निद्रा' मारैं 'मसत' दिवानी,
राव रंक उमराव चुणि मारचा, ऐसी है गैवांनी ॥टेक॥
जोगी जती सेवड़ा सोफी, तिनहु 'तैं' रहै न छानीं ॥
आप निरंजन जुग मैं थापी, काल तणी निसानी ॥१॥
जुग सोवै गोरष जन जागै, ऐसा परम निधानी ॥
जीव जंत सवही वसि कीया, सबहिन कै 'मन' मांनी ॥२॥
जोग जुगति गमि जांणै नांही, निद्रा कै वसि हूवा ॥
जन हरीदास केता नर नारी, माया मांही मूवा ॥३॥

॥ अथ राग आसावरी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सोरठी ॥

(६०)

पल पल जाइ रे! मन जाइ,
करम लागौ 'भरमि' भूलौ, रह्यौ काल लुभाइ ॥टेक॥

पाठभेद—अघजारन-१। षैला-२। ज्योति-१। न्यद्रा-२। मस्त-३-४। मूं-५। मनि-४। भरम-१।

शब्दार्थ—सैला=शीतल, ठण्डा। भांण=सूर्य। गेवांनी=गैव से आनेवाली। छानी=छिपी, गोपनीय। थापी=स्थापित की। गोरष जन=ज्ञानी पुरुष। निधानी=स्थान, अधिष्ठान।

एक सुवटौ उलटि बैठौ, 'बिरछ' भीतरि आइ ॥
सोइ बिरछ बोछौ असुर मिनी, घात लागां पाइ ॥१॥
एक कलस सुंदरि नीर भरियो, नां पीवै 'पणिहारि' ॥
सोइ कलस फूटो छाड़ चाली, बड़ौ 'अवसर' हारि ॥२॥
पहर 'च्यार सैं' सहज बीती, भर्यौ मूल गमाइ ॥
गयो वासुर 'रैंणि' आई, नर चल्यौ पोटा पाइ ॥३॥
काल आइ जब फिरचौ 'दौलो', समझि न 'पड़ई' काइ ॥
जन हरीदास हरि का भजन बिणि, नर रह्यो जमपुर 'जाइ' ॥४॥

(६१)

हरि सुष निमष 'छाड़ौं' नांहि,
रांमपति मेरे जीवनि जीव की, रहौ मन ही मांहि ॥टेक॥
फुनिग सोभा गयां व्याकुल, बावरौ होइ जाइ ॥
रांम मणि मेरे बसो 'मसतगि', परम संगी राइ ॥१॥
आतमा असथांन 'नरहरि', गया थरहरि औंर ॥
परम जोति प्रकास पूरण, जहा तहां सब ठौंर ॥२॥
गरब गांठि न रही मन कै, राग दोष न रेष ॥
जन हरीदास कै राम संगी, प्रांणनाथ अलेप ॥३॥

(६२)

मन तोसूँ कहुँ मन हो, वारूँ वार सुणाइ ॥
अंध तजि अभिमान आपौ, गलित हरि गुण गाई ॥टेक॥

पाठभेद—ब्रिष-१। पणिहार-३। औसर-३-५। च्यारुय-१-५। रैंनि-१। दौल्यू-२-३। पडही-३। छाई-५। छाडूँ-४। मस्तगि-३-५। नरहर-३।

शब्दार्थ—सुवटौ=मनरूपी सूवा। उलटि वैठो=संसाररूपी वृक्ष मे आ बैठा। विरछ=संसारवृक्ष। वोछो=ओछा, नाशवान। असुर मिनी=अविद्यावासनारूप बिल्ली। कलस=मानव देह। नीर भरियो=जीवनरूप जल भरा। पणिहारि=अस्थिर वृत्ति। चार सै=चारों-बाल, किशोर, तरुण, वृद्ध। गयो वासुर=जीवनरूपी दिन गया। रैणि आई=कालरूपी रात्रि आई। फुनिग=सर्प। सोभा=मणिरूप शोभा। थरहरि=काँप उठे। और=कामादि रिपु।

पार परहरि सार सत अगहि , गम अरथ विचारि ।।
हरि नांव विणि निरवाह नांही , रषै चालै हारि ।।१।।
ग्यांन 'दाढ़' उगालि अरि अघ , सहज सब सिधि होइ ।।
सपत धात सुधात वसिकरि , सुरति निज नग पोइ ।।२।।
'परमनिधि' निज छाडि निसदिन, विषै फल रुचि षांहि ।।
भरम जल पसु जांणि पीवैं , गरक दिनि दिनि जांहि ।।३।।
प्रांण संगी 'परसि' 'परगट' , प्रेम प्रीति लगाइ ।।
जन हरिदास रसना रांम 'रटि हो', जुरा जोरै थाइ ।।४।।

(६३)

भजि मन ! अकल देव मुरारि ,
नांव गहि रे ! नांव गहि , हरि ले उतारे पारि ।।टेक।।
निकटि नांव निरूप वड़निधि , सुष 'स्यंध' वार न पार ।।
ता स्यंध मांही वसैं हंसा , चुगे मोती चार ।।१।।
अगम अपार अगाध नरहरि, निरषि रे दिल मांहि ।।
दास निज तहां सदा सनमुषि , हिल्या हीरा षांहि ।।२।।
जहां गांवन ठांवन वरण वाड़ी , मन पकड़ि रे निधि जोइ ।।
जन हरिदास रसना रांम रटिहौ , पीव सदा संगि सोइ ।।३।।

(६४)

रांम राइ मांगू भगति तुम्हारी , सो तो त्रिवधि ताप तैं न्यारी ।।टेक।।
रिधि न मांगू सिधि न मांगू , 'मुकति' न मांगू देवा ।।
आदि अंति तुम सूँ मिलि 'षेलूँ', यहु आरंभ या सेवा ।।१।।

पाठभेद—दाढ़ि=१ । प्रमनिधि-१ । प्रसि-१ । प्रगट-१ । रटहो-५ । सिंध-३-५ । मुक्ति-३-४ । पेलौ-५ ।

शब्दार्थ—पार=खारा, अनित्य संसाररूप निःसार । निरवाह=गुजारा । उगालि=चबाकर, खाकर । अरि=कामादि शत्रु । अघ=पाप, अकर्म । सपत धात सुधात वसि करि=रसादि सात धातुओ मे बने शरीर को कब्जे मे कर । स्यंध=सिन्धु, समुद्र । चार=अच्छी खुराक ।

निरमल ग्यांन ध्यांन धुनि निरमल, प्रेम प्रीति परकासा ॥
आसण अचल तहां मन निहचल, तुम ठाकुर में दासा ॥२॥
संजम सील साच सति सुमिरण, पति सूँ प्रीति 'अनेरी' ॥
जन हरीदास कूँ आस न दूजी, आस अनाहद तेरी ॥३॥

(६५)

माधवे ! कठिन जल भ्रम पूरि,
सकल व्यापी हो सनेही, करौ 'कलविष' दूरि ॥टेक॥
जोग ले जाइ 'बसूँ' बनषंड़ि, 'रहूँ' तालों लाइ ॥
देषतां मन ऊठि गै ज्यूँ, दंत धरि लै जाइ ॥१॥
पवन गहि लै गगन 'राषूँ', मेर 'डंड' चढ़ाइ ॥
नाथ तुम्ह 'विचि' बह पड़दा, दूर 'पड़िये' जाइ ॥२॥
चोट हरि बिन अवर नांही, काल ग्रासै आइ ॥
जन हरीदास उदास ता तैं, आंन कछु न सुहाइ ॥३॥

(६६)

तोकूँ विड़द किसो दे गाऊँ,
जुग 'चारौं' वेदां वांचीजै, पैलो पार न पाऊँ ॥टेक॥
अगम अपार पार नहिं कोई, पार न किनहूँ पाया ॥
तूँ है एक मांड़ सब तेरी, 'सुनौ' निरंजन राया ॥१॥
'सूरज' तपै सोई तेज तुम्हारो, घुरैं इन्द्र के बाजा ॥
यहु परताप तुम्हारौ स्वांमी, तुम्ह जोगी तुम्ह राजा ॥२॥

पाठभेद—अखेरी–१। कल्यविष–२। कलिविष–५। बसौ–१। रहौ–१। राषौ–५। डंडि–१। विच–५। पडिए–४-५। च्यारूँ–५। सुणौ–१। सूरिज–२।

शब्दार्थ—परकासा=तेजमय। अनेरी=अत्यन्त, घनेरी। कलविप=मलीनता पाप। उठ गै ज्यूँ=हाथी की तरह चलायमान। पडदा=आवरण। माड=विश्व, संसार।

सात समद इल मूलि न लोपैं , 'त्यांह' किनि पाज बंधाई ।।
जे लोपै मरजाद तुम्हारी , तौ नीर धूलि 'होइ' जाई ।।३।।

तुम्ह तौ आप सकल घटि भीतरि , तुम्ह ही रहौ उदासा ।।
जन हरीदास कूँ 'चरणां' राषौ , मेटो जम की त्रासा ।।४।।

(६७)

मन रे ! झूठा आस पसारा , सब तजि भजि सिरजनहारा ।।टेक।।
धन जोबन सुत माया , 'यह' बादल की सी छाया ।।
जहां बैसि सुष पाया , ताकूँ फिरि धूप जलाया ।।१।।

'हस्ती' घोड़ा गढ़ पाया , अपणां करि मुलक बसाया ।।
चाल्या तब दीया रोई , वा कै संगि न चाल्या कोई ।।२।।

साह बैद 'सुलितांना' , मैं मेरी मांहि भुलाना ।।
इहै काल का फंधा , जीव जागि न देषै अंधा ।।३।।

या हटवाड़ा की बाजी , जिनि ठगै 'मिसर' मुनि काजी ।।
षट दरसण सब ठगि षाया , बाजी का मरम न पाया ।।४।।

मात पिता सुत भाई , सब स्वारथ मिली सगाई ।।
तहां लागि जीव लोइ , 'चिंतामणि' कर तैं षोई ।।५।।

ऊँचा महल अवासा , नांना विधि भोग विलासा ।।
त्रिबधि ताप अहंकारी , भूलौ रे बाजी हारी ।।६।।

तेल फुलेल सिरि डारैं , नानाविधि देह सँवारैं ।।
किसा कांम की काया , बूरयां कै अगनि 'जलाया' ।।७।।

पाठभेद—तिहा-१ । हुइ-४ । चर्णा-५ । याह-१-३ । हसती-२ । सुल्यताना-२ । मिश्र-१ । चितामण-५ । जराया-१ ।

शब्दार्थ—इल=इला, भूमि । धूप=संताप, त्रिविध ताप । फंधा=फन्दा, बन्धन । चिनामणि=अमूल्य मनुष्य देह । अवासा=आवास, रहने का स्थान । बूरचा=गाड़ा, दफनाया ।

सतगुर मिलि साच बतावै , जो षोजै सो पावै ॥
जन हरीदास हरि नीका , हरि सकल धरम सिरि टीका ॥८॥

(६८)

मन रे ! उलटि सहज घरि नाया , तब लगि 'वादि' बक्या बौराया ।टेक।
'नाभि' कँवल मैं पवन निरोधूँ , तौ सतगुर का चेला ॥
मन गहि पवन अगम घरि पेलूँ , करूँ अगम सूँ मेला ॥१॥
उलटा 'पेलि' गगन मैं 'पैसूँ' , सुरति सहजि घरि 'धारूँ' ॥
'परमजोति' सूँ हिलिमिलि 'षेलूँ', ऐसा अरथ 'विचारूँ' ॥२॥
जन हरीदास निरभै निधि 'परसूँ', परमसिंध मैं न्हाऊँ ॥
जठर अगनि मैं प्राण न होमूँ , आवा गवण चुकाऊँ ॥३॥

(६९)

अब मोहि दरस दिषाइ माधवे ,
यहु 'औसर' लाभै नहीं , दिन दिन घटतो जाइ माधवे ॥
प्रीति घटै तौ जिनि मिलो , तुम परमसनेही राइ माधवे ॥
मैं जन वांध्या प्रेम सूँ ॥टेक॥
एक अंदेसो म्हारे मन वस्यो , सो हम बिसरैं नांहि माधवे ॥
निकटि वसौ न्यारा रहौ , एकै 'मंदिर' मांहि माधवे ॥
कै 'मिलि' हौ कै तन 'तजूँ' , अब मोहि जीवण नांहि माधवे ॥
प्रांण उधारण तुम्ह मिलौ ॥१॥
अबला मनि व्याकुल भई , तुम्ह क्यूँ रहे रिसाइ माधवे ॥

पाठभेद—वाद-४ । नाभ-५ । षेल-३ । पैसौ-१ । धारौ-५ । प्रमजोति-१ । षेलौ-१-५ । विचारौं-१ । परसौ-१ । अवसर-१ । म्यंदिर-२ । म्यलि-२ । त्यजूँ-२ ।

शब्दार्थ—टीका=शिरोमणि, प्रमुख । नाया=नही आया । वादि बक्या=व्यर्थ बकवास किया । वौराया=पागल हुआ । उलटा पेलि=आत्माभिमुख हो । गगन मैं पैसूँ=ब्रह्मरन्ध्र मे निवास करूँ । परमसिंध=अतिसुखसागर । अंदेसो=सशय, जिज्ञासा ।

तुम्ह मिलि हो तौ 'मिलि' 'रहूँ', नहितर मिल्यो न जाइ माधवे ॥
अंतरजामी आंतरौ, जनम 'सिरांनो' जाइ माधवे ॥
परमसनेही 'तुम्ह' मिलो ॥२॥
पांच सषी सनुमषि भई, सुषमनि सहज समाइ माधवे ॥
मन पवना मेला भया, तुम्ह रुवर मिलोगे आइ माधवे ॥
आत्म अंतरि आइये, जन हरीदास वलि जाइ माधवे ॥
दरसण 'धौंहु' दयालजी ॥३॥

(७०)

पोइवादे रे ! पोइवादे, मांहिला मनोरथ पोइवादे ॥टेक॥
निरगुण नाह न आया, तातैं जीवड़ै 'वहौत' दुष पाया ॥
अव पिव विलमन कीजै, जन दुषिया कूँ सुष दीजै ॥
नैंन पलक भरि जोइवादे ॥१॥
अव विरहणि कूँ सुष दीजै, पिव अपणी करि राषीजै ॥
प्रेम पियाला पावौ, मेरा तन की तपति वुझावौ ॥
अरस परस मिलि सोइवादे ॥२॥
पिव निकटि निरंजन 'नैरा', भवमंजन संत सधीरा ॥
जन हरीदास हरि पाया, सुषसागर मांहि समाया ॥
हीरै हीरा पोइवादे ॥३॥

(७१)

दरसण दे हो देव दरसण दे, मोहि नैंन पलकभरि परसण दे ॥टेक॥
आव घटै तन छीजै, तुम्ह हो तैसी कीजै ॥
भवसागर वार न पारा, मेरे तुम्ह ही राषणहारा ॥१॥

पाठभेद—मिल्य-२। रहौं-५-१। सिराणो-१। तुम-५। देहु-१। बहुत-१। नीरा-५।

शब्दार्थ—सिरानो=क्षीण होना, घटना। पाच सषी=अन्तर्मुखी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। पोइवादे=गमाने दे, खतम करने दे। नाह=पति, स्वामी। हीरै हीरा पोइवादे=आत्मतत्व को परमात्मतत्व मे मिलाने दे।

देवा 'विलमन' कीजै, मोहि विरहणि कूँ सुष दीजै ॥
तुम्ह विन 'पीड़' न जांणैं कोई, पीया पड़दै प्रीति न होई ॥२॥
साहिव मेरा पूरा, जाकै वाजै अनहद तूरा ॥
जो सेवै सो पावै, तातैं विरहणि विलम न लावै ॥३॥
मोहि विरह सतावै सांई, मैं अवला तुम्ह ही तांई ॥
ज्यूँ 'घन' कूँ तरसै मोरा, यूँ हरीदास जन तोरा ॥४॥

(७२)

आयो उलटि जाऊँ नहीं,
दयाल हो 'किरपाल' माधो, मन मँड्यो चरणां मांही ॥टेक॥
संसार भार अपार 'अपरवल', 'जहां' काचा रंग ॥
आप थापी महापापी, भगति पाड़ै भंग ॥१॥
भरम जल मैं कल्या केता, अजहूं कलि कलि जांहि ॥
राम विना मेरे धणी नांही, नहिं 'वसूँ' किलविष मांहि ॥२॥
वास 'जग मैं' त्रास जम की, अलप जीवन मोहि ॥
जन हरिदास कूँ विसवास तेरा, मैं न छांड़ौं तोहि ॥३॥

(७३)

संतो! कुवधि काल तैं डरिये,
भवसागर 'तिरिवे' के तांई, देषि देषि पग धरिये ॥टेक॥
लीयां षड़ग द्वारि जम ठाढ़ा, घात पड़ै 'तव' मारै ॥
हरि का जन कोइ संक न मानै, हरि हथियार संभारै ॥१॥

पाठभेद—विलंवन-१। पीर-१। घण-१-५। कृपाल-५। अप्रवल-४-५। नहा-५। वसौं-१। जुग मैं-१-५। तरिवे-५। जव-५।

शब्दार्थ—उलटि जाऊँ नही=वापिस ससार की मोह-ममता मे नही जाना है। है। अपरवल=महान्वली, अजेय,। आप थापी महापापी=यह मनचाही करने वाला मन महापापी है। कल्या=फँसा, रुक गया। कुवुधि काल=देहाध्यास की कुभावना ही काल का कारण है। घात पड़ै=दाँव लगे, मौका हो। संक=प्रभाव, भय।

सन, सर्वदा चलती रहने वाली लडाइयाँ, आपसी अविश्वास तथा अनेकता की भावना से भारत जैसे विशाल देश के नागरिक अपनी पराधीनता तथा विवशता के निराकरण का मार्ग पाने के लिए छटपटा रहे थे। ऐसे संघर्ष-काल मे आवश्यकता थी दृढव्रती वीरो तथा आत्मजयी महात्माओ की, जिससे कि भारतीय जनता की अनवस्थित विचलित दशा मे परिवर्तन लाया जा सके।

इसी संघर्ष-काल मे महाराणा सागा, कुम्भा, प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास, जसवन्तसिह जैसे वीरों का आगमन हुआ—साथ ही रामानन्द, नानक, कबीर, नामदेव, रैदास, पीपा, दादू, हरिदास, चैतन्य महाप्रभु, तुलसी, सूर, मीरा आदि महात्मा व भक्तगणो का प्रादुर्भाव हुआ। वीरो ने देश की स्वतन्त्रता का प्रयास किया तथा अपने चारित्रिक बल से निर्जीवो मे स्वाधीनता की भावना को जागृत किया। महात्मा तथा भक्तो ने धार्मिक प्रवृत्तियो तथा नैतिकता का संरक्षण किया, जिससे कि देश के सामाजिक जीवन मे धर्म तथा नीति को स्थैर्य प्रदान करने मे भारी सहायता मिली। महात्माओ की शृङ्खला, जिसका आरम्भ चौदहवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ था, बराबर बीसवी शताब्दी तक चलता रहा है। इसी शृंखला मे निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक महात्मा हरिदासजी हुए है, जिनको हरिपुरुषजी तथा दयालजी के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। राजस्थान जैसे वीर-प्रसव भूमि मानी गई है उसी तरह यह सन्त-प्रसव भूमि भी है। भक्तो की गणना मे भी राजस्थान पीछे नही है। पीपा, धन्ना, मीरा, पयहारीजी, जसनाथ, हरिदास, दादू, चरणदास, हरनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि अनेक महात्मा भक्त राजस्थान की देन है। इन्ही मे हमारे आलोच्य महात्मा हरिदासजी है जिनका कि आगे विवेचन किया जा रहा है।

२. हरिदासजी का जन्मस्थान व आविर्भाव

हरिदासजी के जन्मस्थान के बारे मे प्राय· सभी लेखक एकमत है। उनका जन्मस्थान डीडवाना से पश्चिमोत्तर :"कापडोद" ग्राम माना गया है। यह राज: स्थान के नागौर जिले मे है। इसकी तहसील डीडवाना मे है। डीडवाने से नागौर जाने वाली सडक पर कोलिया ग्राम आता है। कोलिया से यह ग्राम उत्तर-पूर्व मे है। इस ग्राम मे ही महात्मा हरिदासजी का आविर्भाव हुआ था। उस समय यह क्षेत्र मांडलिक शासन मे था, वैसे यह जोधपुर राज्य के क्षेत्र मे था जिसका अपर नाम-"नवकोटि मारवाड" भी कहा जाता था। माडलिक शासन से अभिप्राय जागीर क्षेत्र से है। कोलिया मे उस समय शांखले राजपूतों का अधिकार था। सुना जाता है कि उस समय कोलिया के नीचे बारह गाँव थे—मतलब बारह गाँवो की जागीरी कोलिया के अधिपति के अधीन थी। अधिपति थे शाखले राजपूत। कापडोद भी उसी जागीर का गाँव था।

सुणि सूरज सुत सवद हमारा, ऐसी कदे न होई ॥
गोविन्द का जन जम कै द्वारै, जात न देष्या कोई ॥२॥
मैं मेरा डर सँगि करि लीया, चालि 'उहां' जहां भाई ॥
साचा लै हरिचरणां राष्या, सजा झूठ कूँ द्याई ॥३॥
'निसवासुर' निरभै गुण गावै, कहि कहि रांम पुकारै ॥
जन हरीदास परगट परमेस्वर, ताका काज सँवारै ॥४॥

(७४)

मन पंषिया मैं तू जाण्यौ रे भाई, उलटै 'षेलि' परमनिधि पाई ॥टेक॥
अगम अगहि अंतर अविनासी, मन निहचल काया तन कासी ॥१॥
अवरण वरण करम नहिं काया, सूषिम ब्रछ सुसीतल छाया ॥२॥
जन हरीदास निरभै भै नांही, 'म्हारो' प्रांण वसै हरि तरवर मांही ॥३॥

(७५)

अब मैं जांण्यौं हो जाण्यौ, गोविंदो म्हारै मनि 'वस्यौ' ॥टेक॥
अकल सेवा 'करूँ' इहि विधि, मन ही मन समझाइया ॥
नाह निरगुण 'सेझ' आया, परसि सो पति पाइया ॥१॥
साच गहि सति सदा सनमुषि, सषी सब सेवा करै ॥
हरि 'निकटि' निसदिन प्रेम वरसै, तहाँ सिर चरणां धरै ॥२॥
आतमा असथांन आनंद, सवद अनहद वाजिया ॥
कोटि सूरज तेज दरसै, कोटि चंद विराजिया ॥३॥
अगम था सो इहां पाया, प्रांण पीव संगि लाइया ॥
जन हरिदास आसा अरथि लागी, मन मगन मठ छाइया ॥४॥

पाठभेद—वहां-४। न्यसवासुरि-१। षेल्य-२। मेरो-५। वसै-१। करौ-१। सेज-५। न्यकटि-२।

शब्दार्थ—सूरज सुत=धर्मराज। द्याई=दिलाई। सूषिम ब्रछ=अति सूक्ष्म चेतनतत्व। अकल=अविनाशी। अरथि लागी=ठीक जगह लगी, लक्ष्यस्थान पर पहुंची।

(७६)

देव न 'जाणूँ' तेरा भेव, तुम्ह कैसे सति मानौं सेव ।।टेक।।
सतगुर मिलि साच बताया, अगम पुरिस ताकी 'यह' माया ।।
ताहि भेद जांणै कोइ नांही, सेष सेझ पौढ़े जल मांही ।।१।।
जल ही मैं जल होइ समाया, अगम जोग का भेद न पाया ।।
भेद लहै सोई गुर मेरा, जनमि जनमि हूँ ताका चेरा ।।२।।
इहै विचारि पार नहिं कोई, 'सालिगरांम' स रांम न होई ।।
सालिगरांम सहज का देवा, 'मनि' मानें त्यूँ कीजै सेवा ।।३।।
'मसतग' धरै गला मैं रापै, झूठा सदा झूठ ही भाषै ।।
द्वारै मेल्है आला मांही, झूठ झूठ यहु साहिब नांही ।।४।।
अब तूँ समझि देष जीव मेरा, हरि बिन और 'कौंण' है तेरा ।।
हरि निरबंध 'बंधनि' नहि आवै, संपटि जड्या सो हरि न कहावे ।५।
हरि परवसि पड़ै न परसंगि आवैं, सबहिन तैं न्यारा निरदावैं ।।
हरि सब मांहि सकल हरि मांहि, ता साहिब कूँ चिन्है नांहि ।।६।।
'निराकार' निरंजन राई, जन हरीदास ताका गुण गाई ।।
'वो' अविनासी विनसै नांही, दूजा विनसै आवै जांही ।।७।।

(७७)

मन समझाइ लै रे, मन गहि गुर ग्यांन विचार ।।
आनंदरूप अगहि अविनासी, अगम वार नहिं पार ।।टेक।।
आलस आवै साच न भावै, विष का पीवणहार ।।
आसा वसि पड्या डरया अपराधी, जागै नहीं लगार ।।१।।

पाठभेद—जाणौं-१ । या-५ । साल्यगराम-२ । मन्य-२ । मन-५ । मस्तगि-३-४ । कौन-५ । बधन्य-२ । बधणि-५ । न्यराकार-२ । वोह-१ ।

शब्दार्थ—इहै विचारि=यह तो विचारो कि ससार के पदार्थो का पार पाओगे ? सहज=स्वाभाविक, नित्यसत्य । द्वारै=मन्दिर मे । मेल्है=धरे, रखे । सपटि जड्या=पिटारी मे रखा, बन्ध किया । लगार=कुछ भी, थोडा सा भी ।

हरि निज नांव नहीं उरि अंतरि, समझै नहीं 'गंवार' ।।
कै तै 'गये' जांहिगे कै तै, सलिल मोह की धार ।।२।।

यहु संसार पार मैं दीसै, ता मैं दाझै जीव अपार ।।
पीवत छकै थकै निज 'मारग', मै तैं मोह 'किंवार' ।।३।।

तजि अभिमान आन तजि सेवा, माना नेह निवार ।।
हरीदास जन हरि गुण गावै, जा कै रांम अधार ।।४।।

(७८)

राम विसारि मांरे 'प्रान',
कुवधि परिहरि सुमर हरि हरि, सुरति 'सिंध' निधान ।।टेक।।
उदरि अवला जठर झलमैं, तहां लियो राषि ।।
गाइ हरि अभिमांन तजि नर, आन सबद न माषि ।।१।।

सिंघ स्याल पतंग कुंजर, सरप कीटी काग ।।
मछ कछ 'होइ' जलां डोल्यौ, तोकूँ अजहूँ न आइ लाज ।।२।।

'मानिषा' अवतार बड़ निधि, पाइये कहूँ 'कालि' ।।
जन हरिदास समझि विचारि सदगति, रांम नाम संभालि ।।३।।

(७९)

'जोगिया' लाधौ प्रीति पछैरो, ता तैं मल नहिं आवै नेरो ।।टेक।।
चंद सूर समि कीया, सतगुर मिलि सावणि दीया ।।
'जतन' जतन करि धोवै, तातैं वहौड़ि न मैला होवै ।।१।।

द्वादस 'आंगुलि' वाई, गहि सुषमनि सहजि समाई ।।
तरसि अगम रस चाषै, ममता सौं मेल न राषै ।।२।।

पाठभेद—गेवार-२। गए-४। मारगि-१। गिवार-२। प्रांण-१-४। स्यिध-१। व्है-१। मान्यषा-२। काल्ह-४। जुगिया-२-४। वहुत-१। आंगुल-३-४

शब्दार्थ—दाझै=जले। आन=और। निवार=दूर कर। झल मैं=ज्वाला में। लाधौ=मिला, प्राप्त हुआ। प्रीति=परमप्रेम। पछेरो=चादर। मल=मलीनता। चंद सूर=इड़ा-पिंगला। सावणि=उपदेशरूपी साबुन। तरसि=अतिचाह से, लालायित हो।

जन हरीदास हरि नेरा, तहां प्रांण विलंब्या मेरा ॥
हरि प्रीति 'पछेरा' दीया, ताकूँ हम वोढ़न जीया ॥३॥

(८०)

गोविंद किसौ औगुण मांहि,
सुष नांव सागर छाड़ि हरि को, दुष 'चल्या' जमपुर जांहि ॥टेक॥
कहति जोगी रहति रोगी, रोग की वरि षांनि ॥
मोह रोग दिन दिन डाल मेल्है, बूड़ि गया अभिमांनि ॥१॥
पहरि मुद्रा मगन हूवा, रहतिन आई हाथि ॥
पछै रावल छाड़ि कावल, चल्या 'जुग कै' साथि ॥२॥
पांच राषि न प्रेम पीया, 'दसूँ' दिसा कूँ जांहि ॥
देषि अवधू 'अकलि' ऊँधा, अजहूँ चेतै नांहि ॥३॥
हरि नांव निरमल 'निकट' नांही, विकटि 'षेलै' वाइ ॥
जन हरिदास जोगी छाड़ि आसण, जमलोकि आवै जाइ ॥४॥

(८१)

मन रे! जगत भूलौ 'जोइ',
अलष की गति लषै नांही, भेषि भगति न होइ ॥टेक॥
तीरथ 'व्रत' सब मांड़ 'ऊली', तहां चालै जांहि ॥
झूठ सूँ संसार राता, साच देषै नांहि ॥१॥
नदी उलटी वहै निस दिन, संमदि लागी जाई ॥
×ता समंद का कछु भेद दूजा, तूँ तहां ताली लाइ ॥२॥

पाठभेद—पछेवरा–१ । चले–४-५ । जग कै–५ । दसौ–१ । अकल्य–२ । न्यकट–२ । षल्है–२ । जोय–१ । वरत–२ । वोली–१-२ ।

शब्दार्थ—विलंब्या=लगा, आश्रित हुआ । कहति=कथनमात्र । रहति=रहनी । डाल मेल्है=फैलाव करे । बूडि गया=डूब गया । कावल=गलत रास्ते, कुमार्ग । पाच राषि=पाँचो ज्ञानेन्द्रियो को वश मे कर । ऊली=इधर की, संसारबंधन की ।

× उस आनन्द सागर का रहस्य और ही है तू वही ध्यान लगा ।

मो समंद अति दुष सुष न व्यापै , जन थाह पावै नांहि ।।
×ता समद मांहि बसै हंसा , हिल्या हीरा षांहि ।।३।।
भरम जल जब जांणि पीवै , तब पार पावै नांहि ।।
जन हरिदास 'कलिजुग' वहैं जोरैं , ता मैं बह्या स्वामी जांहि ।।४।।

(८२)

अब मैं हरि बिन आन न जांचू , भजि भगवंत मगन ह्वै नांचू ।।टेक।।
हरि मेरा करता हूँ हरि कीया , मैं मेरा मन हरि कूँ दीया ।।१।।
ग्यांन ध्यांन प्रेम हम पाया , जब पाया तब आप गमाया ।।२।।
हरि रांम नाम व्रत हिरदै 'धारौं' , परम उदार निमष न 'बिसारौं' ।।३।।
हरि गाइ गाइ गावैंथा गाया , मन भया मगन गगन मठ छाया ।४।
जन हरिदास आस तजि पासा , हरि निरगुण निज पुरी निवासा ।।५।।

(८३)

सोई देवा सोई सिरजनहार , जाकै जोग ध्यांन का बहु बिसतार ।।टेक।।
नाथ निरंजन वार न पार , निराकार निरमल ततसार ।।
ताहि भेद जांणै नहिं कोइ , भेदी हरि सूँ न्यारा नहिं होइ ।।१।।
जाकी 'आग्या' पवन चलै दिन राति, माइ बाप 'तिस' नांही जाति ।।
सोभा कहा कहीजै जाकी , सकल मांड़ या दीसै ताकी ।।२।।
जाकै हुकम इंद्र मेघ बरसावै , जीव जंत सकल सुष पावै ।।
करि अभिमान इंद्र अलसाकै , तौ वाकूँ मेटि और कूँ थापै ।।३।।

पाठभेद—कल्यजुग-२ । धारूँ-३ । बिसारूँ-३ । अग्या-१ । तस-१ ।

शब्दार्थ—जोरैं=प्रबल । जाचूँ=माँगूँ, याचना करूँ । आप गमाया=आपा खोया । मांड=भूतल, ससार । अलसाकै=आलस करे, अवज्ञा करे ।

× उस महाआनन्ददायी समुद्र में ही वह परब्रह्मरूपी हंस निवास करता है, जो उन हंस से मिलता है वही मोती चुग सकता है ।

जां भैं काल सकल जुग 'पाई' , निसवासुर दौड़तां विहाई ।।
जबही करै काल विसवाम , तवही देषि काल का नास ।।४।।
जाकै सागर 'सपत' षुसी सूँ धीर , उलटि न चालै तिनका नीर ।।
उलटि नीर वरतै तिन माही , हरि आग्या भी मेटै नांही ।।५।।
गिर परवत भी रहसी नांही , अनल पंष ज्यूँ ऊड्या जांही ।।
थाप्या जिहि उड़ावै सोई , वा जोगी विन जुगत न होई ।।६।।
भार अठारा कैसे रहै , दावानल उन कूँ भी दहै ।।
पावक 'परलौ' वरतै मांहि , 'सातूँ' समद सूकता जांहि ।।७।।
तारा मंडल 'झूठा' विसवास , निराकार निरभै निज दास।।
जो दीसै सो 'रहसी' नांहि , हरिजन रलि 'मिलसी' हरि मांहि ।८।
देषो धरती कहां आकास , रवि ससिहू का व्हैगा नास ।।
उलटि सुनि फिरि सुनि समांही , अंबर धर 'वोड़ै' जल मांही ।।९।।
परलै ब्रह्मा इंद्र अनेक , सुर तैंतीसूँ परलै देष ।।
जो आकार स 'थिर न' रहाइ , 'निरभै' एक निरंजन राइ ।।१०।।
आंन आस काल की पास , विन हरि भजन झूठ विसवास ।।
जन हरीदास भज रमतारांम , आदि अंत हरिही सूँ काम ।।१०।।

(८४)

हरि इंम्रत रस पाया है , वा मीठा सूँ मन लाया है ।।टेक।।
'दुबध्या' नहीं सदा रस पीवै , रांम भजन विन कैसे जीवै ।।
दुबध्या तौ माया को दास , रांम भजै 'पण' कुल की पास ।।१।।

पाठभेद—पाय-५ । सप्त-१-५ । प्रलौ-१ । सातौं-१ झूठ-४-५ । रहता-१ । म्यलसी-२ । वूडै-१ । विनस्या-१ । न्यरभै-२ । दुविध्या-१ । पिण-१ ।

शब्दार्थ—जा भै=जिसके भय से । विसवास=रुके । धीर=धैर्ययुक्त, स्थिर । थाप्या=स्थापित किया, उत्पन्न किया । उड़ावै=उडा दे, समाप्त कर दे । वोड़ै=डुबोवे । दुबध्या=संशय, अनिश्चय । पण=पर । कुल की पास=कुटुम्ब का बन्धन ।

कांटा दोऊँ डारै षोइ, तौ सहजैं ही आनंद होइ ॥
भरम अंधारा राषै नांही, दरपण ज्यूँ देषै घट मांही ॥२॥

भरम सही कछु 'वरतै' और, निसवासुर मन नांही ठौर ॥
दरपण मोरचा डारचा षोइ, तौ सहजैं ही दरसण होइ ॥३॥

ऊजड़ चलै न पैंडे जाइ, भूषा रहै न धापि न षाइ ॥
जौ ऊजड़ तौ पूजै आंन, जौ पैंडा तौ कुल मैं मान ॥४॥

'दहूं' गुणां सूँ न्यारा रहै, सो जोति सरूपी दरसण लहै ॥
*जौ भूषा तौ हरि सूँ हेत, जौ धाया तौ फिरै अचेत ॥५॥

×जोगी चालै ऐसै भाइ, सुनि सहर की 'भिष्या' षाइ ॥
तन मन 'तौलि' अकासां चढ़ै, सो जोगी मरवै नहिं डरै ॥६॥

नां 'ग्रह' करै न वन मैं रहै, 'पांचू' 'करम' सहज ही दहै ॥
जौ 'गिरही' तौ चित्त उदार, वैरागी तौ मन कूँ मार ॥७॥

'दोन्यौं' चालै ऐसै भाइ, तिनकूँ काल न परसै आइ ॥
मैला रहै न ऊजल होइ, आपा दोऊँ डारै षोइ ॥८॥

पाठभेद—व्रतै-१-५। दुहूं-१। भ्यष्या-२। तौल्य-२। गृह-४-५। पांचौ-४। कर्म-१। ग्रिही-१। दोन्यूं-२-५।

शब्दार्थ—काटा दोऊ=भेदभाव और ममता-मोह का। वरतै=व्यवहार करे, दिखावा। दरपण मोरचा=मनरूपी दर्पण का मैल खो देना। ऊजड चालै=अपथ में चले, प्रतीक उपासना। पैंडे जाइ=एक व्यापक परमात्मा की उपासना के मार्ग मे नही जाता। धाया=तृप्त हुआ, अघाया। पाचो करम=नित्य, नैमित्तिक, संचित, क्रियमाण, प्रायश्चित्तात्मक। गिरही=गृहस्थ। ऐसे भाइ=इस विचार से। आपा दोऊँ=नीच-ऊँचपन का अहङ्कार।

* जो सांसारिक भोगों की भावना तज आत्मचिन्तन की भूखवाला हो, तो उसी का परब्रह्म से स्नेह हो सकता है। यदि वह सांसारिक-भोग भोगकर तृप्त है तो समझो वह अचेत—गाफिल है, उसका कल्याण नही।

× जो साधक सचेत हो साधनारत है वही व्यापक परब्रह्म के शून्य शहर—सहस्रारदल में भिक्षा प्राप्त कर सकता है।

जौ मैला तौ व्यापै कांम , जौ निरमल तौ दूजा रांम ॥
तातैं रहिये 'म्रितग' होइ , ताकी बात न बूझै कोइ ॥९॥
ना दुष गहै न सुष कूँ जाइ , ऐसै षेलै सहज सुभाइ ॥
×सुष तहां दुष अनंत अपार , तातैं भजिये सिरजनहार ॥१०॥
रांम नाम कहि तालो लावै , तब कछु भेद महल का पावै ॥
पाप 'पुनि' की आसा नांही , रांम रटणि राषै घट मांही ॥११॥
माया दिसि रहै जन सोइ , रांम भजन का आनंद होइ ॥
जन हरीदास तब भई पिछांणि , जब मिटि गई कुटंब की बांणि ।१२।

(८५)

'जुगिये' लाधी प्रीति बिचारै , तातैं 'गरड़' चढ्यौं 'रिप' मारै ।टेक।
इहै सकल सिधि साधौ , अवगति कूँ आराधौ ॥
निरमल निज ग्यांन बिचारं , निराकार निरधारं ॥
अगम वार नहि पारं , जहां पाती पांच उतारं ॥१॥
इहै सहज तप करणां , तातैं बहुड़ि न जांमण मरणां ॥
'इन' मारगि अणसरणां , देषि देषि 'पग' धरणां ॥
※ल्यौ लागा जन जीवै , तहां भार अठारा पीवै ॥२॥

पाठभेद—मृतक-४-५ । पुन्य-२ । जोगिए-५ । गरडि-१ । रिपु-१ । इण-१ । पाव-५ ।

शब्दार्थ—सोई=वही, निरपेक्ष । जुगिये लाधी प्रीति विचारै=साधक योगी प्राप्त हुई प्रेमाभक्ति को अपनाये रहे । गरड चढ्यो=ज्ञानरूपी गरुड पर चढकर । रिपु मारै=काम-क्रोधादि का नाश करे । इहै=इसी साधना से । अवगति कूँ आराधौ=जिसका ठीक विवरण नही, उस परब्रह्म की आराधना करो । पाती पाच=पांच विषय-वृत्तियां । अणसरणा=अनुसरण करो, चलो ।

× जहाँ सासारिक सुख माना जा रहा है वहाँ राग-द्वेष, योग-वियोगादि के अपार दु:ख भी हैं ।

※ जिसकी वृत्ति ध्यान मे स्थिर हो गई वही साधक अमर होता है—जन्म-मृत्यु से छूट जाता है । इस दशा मे जब साधक पहुच जाता है तो फिर देहस्थ—अठारह भार (दस यम-नियमादि, ज्ञान, गरीबी, गुरुधर्म, श्रद्धा, शील, सन्तोष, निर्दोष वाणी, विनय) सब परमानन्द रस का पान कर तृप्त होते है ।

इहै सकल सुषधारं, उलटि आप कूँ मारं ॥
निज तत निज ग्यांन विचारं, परापरै सुष सारं ॥
वरषा रस इंम्रित धारं, तहाँ 'परस्रूँ' प्रांण उधारं ॥३॥
इहै सकल सुष भेषै, उलटि अगम कूँ देषै ॥
करि अवगति दूँ सीरं, पांच 'पुरिस' कौ भीरं ॥
गंग जमन विचि हीरं, तहाँ परसि निरंजन पीरं ॥४॥
हरीदास जन सोई, जाकै त्रिवधि ताप नहिं होई ॥
पिव कै पहरै लागै, सदा निरंतरि जागै ॥
गुड़िया गहि गगन चढ़ावै, सुषसागर मांहि समावै ॥५॥

॥ इति राग सोरठी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग भैरूं ॥

(८६)

नांव दे नांव दे नांव दे देवा, हरि नांव कौ आसिरौ नांव की सेवा ॥टेक॥
नांव विश्राम 'धौ' नांव की छाया, नांव 'निरवांण' तैं रामजी पाया ॥१॥
मै भलौ भजन धौ भूष हरि तेरी, वीनती सांभलौ वापजी मेरी ॥२॥
काल 'कृपाल' हूँ 'वहौत' विधि पाया, डरया डरि दीन व्है आसिरै आया ॥३॥
सकल संसार का स्वाद सव कूड़ा, जन हरिदास का भाग मैं नांव ही रूड़ा ॥४॥

पाठभेद—परस्यूँ-१ । पुरप-५ । दे-१ । नृवाण-५ । किरपाल-२-४ । वहुत-१ ।

शब्दार्थ—वरषा रस=बरसने वाला रस, तालुप्रदेश मे आनेवाला रस । भेषै=पंथ मे, भेष मे । अवगति सूँ=विवरणरहित ब्रह्म से । सीरं=सीर, साझा । गुड़िया गहि गगन चढ़ावै=सुरतिवृत्ति को प्राणसहयोग से दशमद्वार में ले जावे । मै भलौ=कालभय, अकर्म का भय अच्छा है । सांभलो=स्वीकार करो । रूड़ा=अच्छा, सुन्दर ।

(८७)

नांवदे नांवदे नांवदे राया , नांवदे नाथ मैं नांव सुणि आया ।।टेक।।
ग्यांन सूँ ध्यांन द्यौ भजन द्यौ देवा, त्यूँ करौं रांम 'ज्यूँ' मैं करौं सेवा ।।१।।
प्रेम सूँ प्रीति द्यौ भजन द्यौ मांही , सीस देस्यूँ पणि 'मेल्ह' सूँ नांही ।।२।।
जन हरीदास की वीनती सांभलौ स्वामी, जागि तौ मोइमां जागि हरि जामी ।३।

(८८)

रांम भजै तौ आनंद होइ ,
दीनानाथ दयाल दयानिधि , चिंताहरण सकल त्रिधि मोइ ।।टेक।।
परम उदार अपार अखंडित , पूरणब्रह्म भजन करि लोइ ।।
'औसर' इसौ बहौड़ि नहिं आवै , हरि बिण कबहुँ भला न होइ ।।१।।
'आनंद' रूप अखिल अविनासी , करणहार करतार स 'जांणि' ।।
जहां तन धरै तहां ही साथी , प्रेम प्रीति करि ताहि 'पिछाँणि' ।।२।।
नाराइण 'निरवांण' निरखि निति . 'गरवहरण' गोविंद उर धारि ।।
जन हरिदास भजौ अविनासी , गुर गमि यौंहि ग्यांन विचारि ।।३।।

(८९)

राम नाम अंतरि उर धारि , हरि हरि सुमरि सुमरि रिप मारि ।।टेक।।
आंन आस पास करि दूरि , रमतारांम रह्या भरपूरि ।।१।।
अकल निरंजन निरभै नाथ , जहां तहां जन कै सिरि हाथ ।।२।।
काल जाल की लगै न चोट , हरीदास जन हरि की वोट ।।३।।

पाठभेद—ज्यौं–१ । मेल्हि–५ । अवसर–१ । आणद–२ । जानि–४-५ । पिछानि–३-४-५ । नृवाण–४-५ । ग्रवहरण–१ ।

शब्दार्थ—सोइ मां=ममता-मोह की नीद मे सोवे मन । हरि जामी=अन्तर्यामी, साक्षी चेतन । पिछाणि=पहचान, जान । आन आस पास करि दूरि=जो सासारिक पदार्थों की आशा तुमने अपना रखी है, उसको दूर करो ।

हरिदासजी की जाति

महात्मा हरिदासजी की जाति की बाबत भी विशेष मतभिन्नता नही है। उनको प्राय. सभी ने शाखला राजपूत माना है और उनका नाम हरिसिहजी कहा गया है। ऊपर जैसा उल्लेख किया गया है कि कोलिया की जागीर शाखलों की थी। उन्ही के अधीन अन्य ग्रामो के साथ कापडोद गाँव भी था। जागीर प्रथा मे यह रिवाज प्रचलित था कि जागीर के अधिपति का बडा पुत्र उस जागीर का अधिपति बनता है, शेष सन्तीनें छुटभइयो के रूप मे रहते है। उनको कुछ भू-भाग जागीर मे दे दिया जाता है। इस तरह इन छुटभइयो की परम्परा-वृद्धि मे प्राप्त भूभाग के हिस्से होते जाते है। अन्त मे ऐसी स्थिति भी आ जाती है कि उनके पास या तो बहुत छोटा अंश भूमि का रह जाता है या रहता ही नही। ऐसे परिवार उस जागीर के ग्रामो मे जहाँ-तहाँ निवास कर लेते है। सम्भव है इसी तरह की स्थिति के कुछ राजपूत परिवार कापडोद के निवासी थे, उन्ही मे से किन्ही के पुत्र रूप मे हरिसिहजी ने जन्म लिया था। उनके माता-पिता का नाम क्या था ? इसकी जानकारी का कोई आधार नही है। हमे यही मानना है कि कापडोद ग्राम मे शाखला राजपूत के घर हरिदासजी का जन्म हुआ। जब तक इससे भिन्न कोई पुष्ट प्रमाण प्राप्त न हो, तब तक यही तथ्य समझा जाना चाहिए।

इस प्रसंग के प्राप्त प्रमाण इस रूप मे है—

श्री रघुनाथदासजी की परचई

इनने भी डीडवाने मे ही आपके प्रकट होने का उल्लेख किया है इसका भभिप्राय. यह है कि ग्राम कापडोद मे ही शांखला कुल मे आपका जन्म हुआ—इस मत का समर्थन आपने किया है। डीडवाने मे आपके प्रकट होने से अभिप्राय है, साधना द्वारा आत्मपरिचय की दृढ की धारणा के पश्चात् परम महात्मा के रूप मे आपका प्रथम आविर्भाव अर्थात् जन-साधारण के समक्ष आने का स्थान डीडवाना ही है, जैसा कि परिचई के द्वितीय विश्राम के प्रारम्भ मे कहा गया है —

प्रथम डीडपुर प्रकटे आई, वरस चमाल ग्रह मांझ रहाई।
पछिम दिसे माखर है सोई, तहां जंगल में रहने जोई॥
एक दिना प्रभु की गति भई, अन्तरजामी आग्या दई।

अमरपुरुषजी के पोता शिष्य दर्शनदासजी के शिष्य प्यारेरामजी का "भक्त-माल" रचनाकाल (१८८३)

मनहर—दरसन गुरु दया कीन्हीं प्यारे को जो आज्ञा दीन्हीं,
इष्ट अनुक्रम सें जु भक्तमाल गाइये।

(९०)

मैं तौ राँम न 'छाड़ौं' तोहि, तूँ हरि मीठा लागै मोहि ॥टेक॥
पालै पोषै सेवा करै, ताहि छाड़िको 'दोजगि' परै ॥१॥
ऊँच नीच अंतर कछु नाँहि, परम उदार सकल घट माँहि ॥२॥
जन हरीदास भजि राजा राँम, आदि अंति हरि ही सूँ काम ॥३॥

(९१)

अणबोल्या गावै जे कोई, तौ अजपा जाप 'निरंतरि' होई ॥टेक॥
भजौ निरंजन भरम गमाइ, जुरा न व्यापै काल न षाइ ॥
'जोनी' संकट आवै नाँहि, प्राँण समावै हरि पद माँहि ॥१॥
सुषमनि फेरि घेरि घरि 'आँणै', अरथ विचारै अगम पिछाँणै ॥
मूल कँवल मैं पवन 'निरोधै', तब मन कूँ मनही 'परमोधै' ॥२॥
त्रिवधि ताप तजि सहज विचारै, जागि न सोवै जीति न हारै ॥
त्रिवेणी तटि बैसे जाइ, 'धुनि' मैं ध्यांन रहै ल्यौ लाइ ॥३॥
आसा मेटि 'निरास' सँभारै, 'सूँनि' मंडल मै आसण धारै ॥
सात समंद मसि डारै धोइ, जन हरीदास जोगी जन सोइ ॥४॥

(९२)

राषि राषि प्रभु साहिब मेरा, 'तुम्ह' साहिब मैं बंदा तेरा ॥टेक॥
नरक वास द्यौ तौ भी मैं 'ल्यूँ', जो हरि लोक बसेरा ॥
जोर नहीं बंदे का कोई, बंदा जहाँ तहाँ हरि तेरा ॥१॥

पाठभेद—छाड़ूँ-१-४। दोज्यग-२। न्यरंतरि-२। जूनी-२-३। आनै-३-५। न्यरोधै-२। प्रमोधै-१-५। धुन्य-२। न्यरास-२। सुन्य-२। तुम-५-५। लूँ-३। ल्यौं-५।

शब्दार्थ—दोजगि=दोजख, नरक। मूल कँवल मैं=मूलाधार चक्र मे। परमोधै=उपदेश दे, मन ही मन का परिवर्त्तन करे। आसा मेटि=लौकिक आशाएँ छोड। निरास सँभारै=चेतनतत्व मे लगे। सात समंद=रसादि धातु, कामादि षड्रिपु व अहङ्कार। मसि डारै धोइ=इनका मैल निवारण कर ले।

जा का चेरा ताकै सारैं , दषल औंर का नांही ॥
जे तुम्ह मारौ मारि 'निवाजौ', मी चित चरणौं मांही ॥२॥

तुम्ह साहिब मैं मुलाजादा , चोटी कटा तुम्हारा ॥
घरि जायां की लाज वहीजै , 'औगुण' किता हमारा ॥३॥

कीजै आस 'असंगा' कैसा , करो 'जिका' मनि भावै ॥
जन हरीदास चरणां कै सरणै, मौज मिहरि सुष पावै ॥४॥

(६३)

जागि मन बालका , ग्यांन गहि पूता ॥
कालका मुष मैं , निडर 'होइ' सूता ॥टेक॥

जोर तजि मोर भया , रांम भजि भाई ॥
जुरा सहित सेन्या , सीम परि आई ॥१॥

केस पलट्या सु तौ , सेत जहां का तहाँ ॥
काल सनमुषि षड़ा , छिप्या छूटै कहाँ ॥२॥

जन हरीदास भगवंत भजि , भाव धरि लीजै ॥
अवर आरंभ कहा , कांम यहु कीजै ॥३॥

(६४)

हरि हीरौ हिरदै बसै , गोव्यंद गुण गावै ॥
आदि अंति संगी सदा , 'तासूँ' मन लावै ॥टेक॥
अनल पंष आकास मैं , अवनी नहिं आवै ॥
'आनंद' मैं ऊँची दसा , अपणौं भष पावै ॥१॥

पाठभेद—न्यवाजौ-२ । अवगुण-१ । आसंगा-२ । जक्यूँ-१ । व्है-१ । तास्यूँ-१ । आणंद-२ ।

शब्दार्थ—दषल=हस्तक्षेप, दस्तन्दाजी । निवाजौ=कृपा करो, प्रसन्न हो । असंगा=ग्राशंका । मिहरि=दया । ग्यांन गहि पूता=पवित्र निर्मल ग्रात्मज्ञान प्राप्त कर । अवर=और, दूसरा । आरंभ=प्रवृत्ति, काम । अवनी=भूमिपर । भष पावै= वही ग्राकाश मे ही अपना भोजन प्राप्त करे ।

इजगर कै संचा किसा, कहुं हीण न भाषै ॥
ताहि विसंभर देत है, अपणौं व्रत राषै ॥२॥
लष चौरासी जीव है, सब कूँ दे सांई ॥
हरि जन कै सांसा किसा, मन हरि पद मांही ॥३॥
रांम विसारयां विघन है, जम ग्रासै रे भाई ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, तजि आंन सगाई ॥४॥

(६५)

'यूँ' हम छाड्या जग व्योहार, सुष थोड़ा दुष अनंत अपार ॥टेक॥
माता पूत पिता नहिं कोई, स्वारथ आय मिल्या पष दोई ॥
विछड़ण 'यहाँ' 'मिलण' नहि आगे, तातैं मोहि वाजी सी लागै ॥१॥
सासू सुसर नहिं को सारा, यहु सब दीसै मोह पसारा ॥
कांम हेति जलत है लोई, तूँ काहू सगा न तेरा कोई ॥२॥
मनसा अटी मिटी सब दौड़, गहि गुर ग्यांन बसै निज ठौड़ ॥
जन हरीदास गोव्यंद गुण गाइ, सकल वियापी रांम सहाइ ॥३॥

(६६)

काहे कूँ 'अभिमांन' करीजै, निसदिन आव घटै तन छीजै ॥टेक॥
सिला वैस सांवण तप करै, सीयालै पांणी मैं मरै ॥
पांच 'अगनि' ऊन्हालै षाई, फल भुगतै भी नरकाँ जाई ॥१॥
तीरथ 'वरत' करै ममि भाई, तंत मंत सीषै मन लाई ॥
तुला वैसि कंचन दे काटि, 'निहचै' विकै विडाणै हाटि ॥२॥

पाठभेद—यौं-१-३। इहा-१-५। म्यलन-२। अभ्यमान-१। अग्नि-१। व्रन-१-४। न्यहचैं-२।

शब्दार्थ—संचा किसा=संग्रह कौन सा। हीण न भाषै=दैन्यमय वचन कहे नही, गिडगिडाये नही। व्रत राषै=प्रतिज्ञा पाले। वाजी सी लागै=दिखावा सा लगता है। सारा=साला। काम हेत=जिन कामनाओ के लिए हे लोई-जीव! जलता है। मनसा अटी=चाह हटी, मन बदला। तत मंत=तन्त्र-मन्त्र। निहचै=निश्चय। विकै विडाणै हाटि=दूसरो की हाट पर बिकता है, बासनावश औरो के अधीन होता है।

जैसा विरछ तिमा फल होइ, पाप पुन्नि परतछि फल दोइ ॥
यहु फल छाड़ि अगम फल गहै, सो पंषी निरभै ह्वै रहै ॥३॥
जन हरीदास ये मन का कांम, निरभै होइ भजै नहिं रांम ॥
आंन इष्ट संकट व्रत करै, नट ज्यूँ नाचि नाचि घट धरै ॥४॥

(९७)

तूँ गहि भरचा न सोई रे, कछु ग्यांन दिष्टि ले जोई रे ॥टेक॥
अब तूँ चेति अचेत रे, षोलि ग्यांन का नेतरे ॥
हरिजी कै सुमिरण लागि रे, अकलिअंध 'यूँ' जागि रे ॥१॥
करम हीण कछु जांणि रे, 'पांचू' उलटा आंणि रे ॥
प्रेम पियाला पीव रे, हरि भजि ऐसे जीव रे ॥२॥
हरि हीरा कंठि रापि रे, सुणि साधां की सापि रे ॥
जन हरीदास यूँ जांणि रे, अंतरि अलष पिछांणि रे ॥३॥

(९८)

अवगति अगम कहरगति वाजी, निद्रा आइ घटा ज्यूँ गाजी ॥टेक॥
हेत प्रीति दे आंवरि करै, निद्रा संगि जीवत हि मरै ॥१॥
घट घट मांहि डाकणि वसै, 'स्यंघ' रूप ह्वै जीवहि डसै ॥२॥
जन हरीदास निद्रा सूँ 'नेह', अंतकालि मुँहि पड़सी 'षेह' ॥३॥

(९९)

हरि जन जुगति विचारै जागै, डरै न सोवै सांपणि लागै ॥टेक॥
×लोचन तीन तरल तनि धारै, षट्दरसण दाढ़ तलि मारै ॥१॥

पाठभेद—यौं-१। पांच-१-३। सिघ-३-४-५। हेन-३-५। रेत-३-५।

शब्दार्थ—सो पंषी=वह साधक, वह जीव। गहि भरचा न सोइ रे=ममता-मोह की गहरी नीद मे मत सो। नेतरे=नेत्र, आंखें। अकलि अंध=ज्ञानहीन, बेअक्ल। कहर गति वाजी=सासारिक प्रवृत्तियां काल के मुख मे ले जाती हैं। आवरि करै-आवरण करे, पर्दा डाले। षेह=धूल, रेत। लोचन तीन=त्रिगुणात्मक दृष्टि।

× त्रिगुणात्मक-भावना मे प्रेरित होकर प्राणी विविध कर्मों की नदी मे बहता है। षट्दर्शन की भेदभावना प्राणियो को अपनी दाढ मे पीसती है।

*सांसौ मुष फैलायां आवै, सकल भवन ले तालू लावै ॥२॥
सुर नर असुर अँधारै लाधा, चिंता सांपणि चुणि चुणि षाधा ॥३॥
कांम क्रोध 'डसणि' धरि चाषै, लालच उदर तहां लै राषै ॥४॥
जन हरिदास रांम भजि भाई, तूँ सांपणि कै संगि न जाई ॥५॥

(१००)

हरिभजि हरिभजि हरिभजि भया, हरि बिणि 'जनम' अविरथा गया ।टेक।
साच पिछांणि आंन 'तजि' अनरथ, जम जागत है जागि रे ॥
आदि अंति हरि सदा सनेही, तूँ ताकै सुमिरण लागि रे ॥१॥
इन्द्री पांचि राषि रस एकै, गुण गोव्यंद का गाइ रे ॥
दीनदयाल देव करणा मैं, हरि सकल 'भवन' पति राइ रे ॥२॥
जन हरीदास हरि परम सनेही, ग्यांन निजरि भरि देषि रे ॥
सूँनि मंडल मैं सकल वियापी, हरि पूरण ब्रह्म अलेष रे ॥३॥

(१०१)

राम सुमरि नर नरहरि भजौ, कांम कोध विषिया बन तजौ ॥टेक॥
तजि अभिमांन भजौ क्यूँ न संत, भौ सागर तिरण नांव भगवंत ॥
काटौ क्यूँ न काल का जाल, सुमरि सुमरि गोव्यंद गोपाल ॥१॥
जैसे 'अगनि' 'काष्ट' मैं रहै, काढ़ी कढ़ै न काठै दहै ॥
जन हरीदास अब ऐसी भई, भजतां रांम बिथा सब गई ॥२॥

पाठभेद—डसण-१-४। जन्म-१। त्यज-२। भुवण-१। अग्नि-१। कासट-२।

शब्दार्थ—सांसौ=संशय। अंधारे लाधा=अज्ञान से ग्रसित मिले। डसणि धरि चाषै=दांतो से काटकर चख रहे हैं। सापणि=वासना, चिन्ता। अविरथा=व्यर्थ, बेमतलब। रस एकै=एक रस, अन्तर्मुख। संत=हे श्रेष्ठ साधक! काढी कढै न काठै दहै=जैसे काठ मे रहने वाली अग्नि निकालना चाहो तो निकलती नही और उसी काठ को जला देती है, इसी तरह वासना-इच्छा की अग्नि मनुष्य मे रहकर मनुष्य को जलाती रहती है।

* सांसारिक देहादि नाशवान पदार्थो को सत्य मानकर नित्य सत्य वस्तु की उपेक्षा बनाये रखने वाला संशय मुँह फैला रहा है, सारा संसार इस संशय की चपेट मे आया हुआ है।

(१०२)

नैड़ा छाड़ि दूरि कहां जाँव ?,
पैंडा अगम सुगम माधां 'मूँ', गोकुल नगर विसंभर नांव ।।टेक।।
सेवग जहां तहां ही स्वामी, सबद विचारि बस्या निज ठौर ।।
चूँधी आंषि चपल मति षोटी, चितवततां सब मिटि गई दौर ।।१।।
काया कुंभ प्रांण जल पूरिक, घटि घटि अलष लुकाया ।।
अवगति अगम निरंतरि न्यारा, ज्यूँ दरपण में छाया ।।२।।
साच पिछांणि परम परपूरण, वार पार कछु नांहि ।।
जन हरीदास 'इंद्रया' रस न्यारा, व्यापि रह्या सब मांहि ।।३।।

(१०३)

अरथ करैं पणि ऊलौ आसौ, मरम भूप नहिं भागी ।।
निधि नैड़ी 'पणि' आपन भूड़ै, उलटि अगम नहिं थागी ।।टेक।।
प्यास बहौत अंतर में लागी, रोगी कदे न जीवै ।।
कुपछि पड्यो वोषद नहिं नेड़ी, मरण नदी जल पीवै ।।१।।
कौड़ी विणजि पुसी व्है बैठा, नैड़ो साच न लीयौ ।।
हरि हीरौ घरि मांही भूलो, करज बहौत 'सिरि' कीयौ ।।२।।

पाठभेद—स्यूँ-१। यन्द्रचा-२। पण-३-४। विणज-१। सिर-५।

शब्दार्थ—गोकुल नगर=इन्द्रियों के कुल का नगर-देह, शरीर। चूँधी आंषि=सासारिक पदार्थों के आकर्षण मे चकित नेत्र। चितवततां=आत्मचिन्तन करते ही। साच पिछाणि=सत्य चेतनतत्व जानकर। अरथ करैं पणि ऊलो आसौ=ज्ञान की ऊँची बाते करे पर, आसक्ति संसार मे ही लग रही है। निधि नैडी पणि आप न भूडै=निधि आनन्द-सुख का खजाना अपने मे ही है पर उसको सौरा नही जाता-प्राप्त नही किया जाता। उलटि अगम नहिं थागी=वृत्ति को आत्मतत्व की ओर फेरकर उसका थाह-पता नही लिया। कुपछि=कुपथ्य मे। वोषद=औषधि। कौडी विणज=लौकिक धन-वैभव प्राप्त करने का व्यापार किया। नैडो साच न लीयौ=पास ही अटूट अविनाशी खजाना था पर वह नही लिया गया। करज=ऋण, पाप-पुण्यरूप।

चंदन वास विकट करि दीठी , सीध जड़ी मन मानी ॥
जन हरीदास ते जम कै द्वारै , महापुरिस वड़ जानी ॥३॥

(१०४)

चौका देवै चित दौड़ावै , रसना कै 'रसि' लूधा ॥
लागी चोट 'भरम' माया की , अरथ न आवै सूधा ॥टेक॥
पासी पसू आपणी ताँणै , मोटी मीच न जोवै ॥
'दोन्यौं' आँषि अरथ की फूटी , नैंण बेकरै धोवै ॥१॥
कोइ उलटा 'षेलि' परमपद परसै, पैंडै चल्यौ न जीवै ॥
ताकी कहा कुसलता कहिये , मरण नदी जल पीवै ॥२॥
जाकूँ कहूँ स मोकूँ मारै , माया कै मद माता ॥
जन हरीदास तिनकी गति ऐसी , दीसै जम पुरि जाता ॥३॥

॥ इति राग भैरूँ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग विलावल ॥

(१०५)

आंधा जीव अभागिया , सूझै कछु नांहि ॥
निसदिन वाघणि षात है , फूल्या मन मांहि ॥टेक॥
रोम रोम मैं रमि रही , सूषिम 'व्है' पीवै ॥
सांपणि सरवस लेत है , ता देष्यां जीवै ॥१॥

पाठभेद—रस-४-५ । भ्रम-१ । दोन्यूं-४-५ । षेल-५ । होइ-३-४-५ ।

शब्दार्थ—विकट=भयङ्कर । दीठी=देखी । सीध जड़ी=संसारी पदार्थ । रस लूधा=रसना रस में लुभाया । सूधा=सीधा, वास्तविक । पासी=फाँसी, बन्धन । मोटी मीच=अन्तकाल, मृत्यु । अरथ की=समझ की, मतलब की । नैंण=नेत्र । बेकरै धोवै=बेकरे घास के पानी से धोता है । पैंडै चल्यो न जीवै=संसार के मार्ग से चलने वाला कालचक्र से नहीं छूटता । वाघणि=स्त्रीरूप शेरनी, वासनामय शेरनी ।

राम सगा सो परहरया, कछु भुरकी डारी ॥
डाकणि डसि डसि पात है, षोटी रे षारी ॥२॥

जन हरीदास कहिये कहा, कछु कहत न आवै ॥
विष कीड़ा विष ही षुसी, इंम्रत नहिं भावै ॥३॥

(१०६)

हरि जन वाघणि देषि डरै,
सेवा करै प्रांण तन सोषै, सुषिम 'अगनि' चरै ॥टेक॥

अवला कहै पणि सवला पावै, जांणै कोई नांहि ॥
नष 'सिष' सुधा मूल उपाड़ै, मीठी दे दे मांहि ॥१॥

त्रिया कहै पणि तुरत 'गिरासै', सुषिम वीर चलावै ॥
'काचा' तूँतड़ा कांनैं डारै, सार सकल चुणि षावै ॥२॥

या कांमणि कूँ मति कोई धीजै, कांम कटक ले आवै ॥
'काया' कोट चोट 'सूँ' तोड़ै, पहली चोट सजावै ॥३॥

जन हरीदास ज्यां हरि रस पीया, ते मतिवाला माता ॥
'तिनकै' वाघणि निकट न आवै, परम तेज रंगि राता ॥४॥

(१०७)

तव लग कह्यां सुण्यां कछु नांही, जीव तलफि अघजरता रे ॥
उन पति की गति कवहू न जानी, लोग कहैं पतिवरता रे ॥टेक॥

रांम रसायण वूँद न पीया, सांसै सूल न चूकी रे ॥
अरस परस होइ सेझ न षेली, तव लग सुपने सूती रे ॥१॥

पाठभेद· -अग्नि-१ । सष-२-४ । ग्रासै-१ । काचा-१ । स्यूँ-१ । ज्यनकै-२ ।

शब्दार्थ—त्रिया कहै=कहने को तो तिया-स्त्री कहलाती है । गिरासै=खाये । काया कोट=कायानगरी । चोट सूँ=प्रहार से, आत्मनिश्चयरूपी दृढ़धारणा की चोट से । तलफि=तड़पता, विकल होता । अघजरता=पापों के सन्ताप से जल रहा है । सांसै=संशय की ।

मन में पिव अपणै कर बैठी, 'सकति' सुहाग न लीया रे ॥
तिनकै अजहुं परमपद अलगा, परचै प्रेम न पीया रे ॥२॥
त्रिविधि ताप तजि निरष परमपद, उलटि तहां ही रहिए रे ॥
जन हरीदास तब लग सब झूँठी, कहौ कवन सूँ कहिए रे ॥३॥

(१०८)

रांम सनेही साधवा, निज निरषत जीवै ॥
अगम पियाला प्रेम का, अनहद रस पीवै ॥टेक॥
ब्रह्मछोल ऐसी वहै, गुण देह विसारै ॥
सेवग चंद चकोर 'ज्यूँ', निज सुरति न टारै ॥१॥
रांम मरीषा व्है रहै, विसराम न मेलै ॥
मगन हुवा हरि रस पिवै, ल्यौ लागी षेलै ॥२॥
मन उनमनि लागा रहै, चरणां चित राषै ॥
जन हरीदास सो जन भला, कछु आंन न भाषै ॥३॥

(१०९)

समद नीर माछली विरोलै, सूषिम सीरां पीवै ॥
पैली कथा परमपद सुनतां, मन मींडका न जीवै ॥टेक॥
जब ही सुणै तबै दुष पावै, पुषते साध पुकारै ॥
माया की छाया मैं बैठा, ऊला अरथ विचारै ॥१॥
निरभै कहै रहै भै मांही, सुरति 'सुपहि' नहिं जागी ॥
नांव 'निरूप' निकटि नहिं न्यारा, करम भालि 'कँठि' लागी ॥२॥

पाठभेद—सक्ति—३-५। ज्यौं—१। सुपह—५। न्यरूप—१। कंठ—१-५।

शब्दार्थ—सकति सुहाग=आत्मचिन्तन द्वारा अजर-अमर सुहाग की शक्ति प्राप्त नही की। निज निरषत=अपना स्वरूप देख। विरोलै=आलोड़न करे, मन्थन करे। पैली कथा=आत्मज्ञान का उपदेश। पुषते=सच्चे साधक। सुरति सुपहि नहिं जागी=वृत्ति अच्छे मार्ग चलने को जागृत नही हुई। करम=सकाम कर्म।

अंतरि नेत तहां हरि नेरा , वैं निज आंपि उभांणी ।।
जन हरीदास ताका सँग परिहरि , लैं बूड़ै बिखि पांणी ।।३।।

(११०)

गुरु को सबद साच करि पकड़ै , भै का मारया जागैं रे ।।
'तिन को' चित साधां का चरणां , दिन दिन दूँणो लागैं रे ।।टेक।।
भजन भेद लीया ते जीया , भोग रोग 'व्है' लागा रे ।।
आगैं ही केई भोगी बूड़ा , ता तैं सुपदेव भागा रे ।।१।।
निरमल नहीं तिके नित बूड़ा , ता का पोटा हेरूँ रे ।।
'और' सकल भवसागर बूड़ा , नांमा छींपा तेरूँ रे ।।२।।
दास कबीर सकल जुग 'परगट' , पीपैं परचा पाया रे ।।
'भवसागर' में भेराँ बांध्या , भगताँ भेद बताया रे ।।३।।
जन रैदास नीच कुल ऊँचा , ताकूँ तीन लोक सब जाँणें रे ।।
जन हरीदास वैं निरभै देष्या , तातैं उलटी ताँणें रे ।।४।।

(१११)

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह , आनँद रूप सकल घटि रांम ।।टेक।।
घटि घटि नारद घटि घटि सेस , घटि घटि ब्रह्मा 'विष्न' महेस ।।
घटि घटि ध्रू देषो धरि ध्यांन , घटि घटि भींव भरथ हनमान ।।१।।
घटि घटि ममता घटि घटि मोह , घटि घटि कंचन घटि घटि लोह ।।
घटि घटि आवैं घटि घटि जाइ , घटि घटि पेलैं घटि घटि पाइ ।।२।।

पाठभेद—जिनको–१ । होइ–३ । ग्रोवर–१ । प्रगट–१-५ । भौसागर–५ । बिसन–२ ।

शब्दार्थ—अंतरि नेत=विवेक-विचार के अन्तर्नेत्रों से । उभाणी=अलसायी । भै का=जन्ममरण के भय से । वूड़ा=डूबा । निरमल=शुद्ध, वासनारहित । पोटा=बुरा, खराब । हेरूँ=तलाश करने वाला, गुरु । तेरूँ=तैराक । भेरा=पाज, पुल ।

भक्तमाल घणी और सन्ता कीन्हीं ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी सो तो मन नहिं भाइये।
गुरु आप आज्ञा दिये ताते भक्तमाल किये,
अठारह सै तियासी बात यह कहाइये ।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होती ताहिं,
गुरां आप रीझ कर परचा जो बताइये ।

दोहा— जन प्यारे राम की विनती सुण लीज्यो सब सन्त ।
पक्षी पीवे चूंच भर, सागर को नहिं अन्त ॥ १ ॥

अमरपुरुषजी सेवादासजी महाराज के शिष्य थे। ये हरिदासजी महाराज की छठी पीढी मे तथा प्यारेरामजी आठवी पीढी मे हुए थे। उनकी बनाई भक्तमाल मे वे लिखते है—

मनहर—कापडोद गांव माहिं हरिदास अवतरे,
महिमा कौन वार पार कहाँ लग गाइये ।
शांखलां के कुल माहिं, आप जो औतार लियो,
चोधरण चुंगाये थनां वंस जो कहाइये ।
बोबाँ को आकार नाहिं भुजा लाम्बी गिरिया लग,
देह को प्रकाश मानों मणि भलकाइये ।
सूर सोहै तेज जाको दीपत मुखारबिन्द,
देखत आनन्द होइ नैन न खिचाइये ।
लीला जो है दिव्य कछु नर का सा चिन्ह करे,
द्रव्यवान देख के पकड़ ताकूँ लाइये ॥ २ ॥

सम्वत् १६२८ मे प्रकाशित रामचन्द्र गुजराती के शिष्य आशारामजी दाधीच ब्राह्मण डीडपुरनिवासी द्वारा रचित परिचय मे—

छन्द लावणी—सन्त हरिपुरुष हुये सुमहान, जिनों का सारा सुनो बयान ।

नगर इक सुन्दर है डिडवान,
तहां से पश्चिम दिशि गिरि जान ।

घटि घटि रांवण लंक 'दवार', घटि घटि कैरूँ सेनि अपार ॥
सूता गोरष लिया जगाइ, जन हरीदास ताकी वलि जाइ ॥३॥

(११२)

मेरे मन की चोरियां, मैं जांणू रे भाई ॥
सुषिम व्है उतरै चलै, विसहर व्है षाई ॥टेक॥
विषिया कै 'वनि' मन वसै, सो कैसे जीवै ॥
कांम घटा गरजै सदा, नांनां रस पीवै ॥१॥
'वहौ' छाजां पेलै षुसी, बहौ रूप निहारै ॥
रसना कै रस ऊतरै, जांणै त्यूँ मारै ॥२॥
श्रवणां सुष ले नाद का, परमल सुष नासा ॥
कुवधि कलाली कांमना, तहां षेलै पासा ॥३॥
जन हरीदास विषया तजै, गोब्यंद गुण गावै ॥
छाजै वैसे ग्यांन कै, तब ही सच पावै ॥

(११३)

जे लागी तो जागि रे, सूतौ क्यूँ हारै ॥
सतगुर कै सर वेधिया, कहि 'क्यूँ' न पुकारै ॥टेक॥
सवद तीर ताता षरा, लागै तौ मारै ॥
कोड्यां मध्ये 'एक' 'को', 'तनि' चोट सहारै ॥१॥
अभि अंतरि भलका रह्या, सतगुर का लाया ॥
नष 'सष' 'लूँ' सालै नहीं, तौ षाली वाह्या ॥२॥

पाठभेद—दुवार-१। बन्य-२। बहु-१। क्यौं-१। येक-२। कोउ-१। तन्य-२। सिष-१। लो-१।

शब्दार्थ—सूता=सोया हुआ, मोहनिद्रा मे। गोरष=ज्ञान। विसहर व्है=सांप होकर। वहौ छाजां=अनेक प्रवृत्तियों मे। नाद का=शब्द, अनहद नाद। परमल=सुगन्ध। छाजै वैसे=ऊपर बैठे, दृढता से स्थिर हो। जे लागी तौ=गुरु उपदेश लगा है तो। सर=निरपेक्ष वचनवांण। सहारे=सहन करे। भलका=तीर की चोट, वचन-वाण का असर। सालै नही=वेधे नही, आर-पार न हो।

करम कड़ी काठी जड़ी, ममता कै धागै ॥
जन हरीदास ता जीव कै, 'तनि' चोट न लागै ॥३॥

(११४)

जब लग मन 'बाहरि' फिरै, माया की छाया ॥
तब लग तत दरसै नहीं, सति साच न पाया ॥टेक॥

बात कहै 'रुचि' अगम की, षेलै गम मांही ॥
उलटी मूँठि पताल कूँ, सूझै कछु नांही ॥१॥

अपमारग की आपदा, घुलि गांठि न षोलै ॥
लोक लाज लालच पड्या, निरपष ह्वै षोलै ॥२॥

जन हरीदास आसा सुषी, जीया अणजीया ॥
हरि सुष सागर न्यारा रह्या, माया मद पीया ॥३॥

(११५)

रूप न रेष घणों नहिं थोड़ौ, धरणि गिगन फुनि नांही रे ॥
अकल सकल सँगि रहै निरंतरि, ज्यूँ चंदा जल मांही रे ॥टेक॥

अगम अथाह थाह नहि कोई, थाह न कोई पावै रे ॥
जैसा भजन तिसा सब कोई, मन उनमानि बतावै रे ॥१॥

सागर मैं कुंभ कुंभ मैं जल है, निराकार निज ऐसा रे ॥
सकल लोक ऐसे हरि मांही, रूप कहाँ 'धू' कैसा रे ॥२॥

अचल अघट सब सुष का सागर, घट घर सब वा मांही रे ॥
जन हरीदास अविनासी ऐसा, कहै तिसा हरि नांही रे ॥३॥

पाठभेद—तन–१-५। बाहर–१। रुच्य–२। थो–१-४।

शब्दार्थ—काठी=दृढ़। तत=तात्विक वस्तु आत्म पदार्थ। षेलै गम मांही=संसार की मायामोह मे खेल रहा है। अपमारग की आपदा=अनित्य जगत के पदार्थ की प्राप्ति के गलत मार्ग से विविध आपदाएँ भोगता है। आसा सुषी–सुखी आशाओं में लगा हुआ। घणों=अधिक। थोड़ो=अल्प।

(११६)

मीठा लागे रामजी, दूजा सब षारा ॥
परसि निरंतरि षेलिया, समभया सोई सारा ॥टेक॥
पछिम दिसा मनि फिरि चल्या, पूरव दिसि आया ॥
सहजि सदा झड़ होत है, मन्न मनहि समाया ॥१॥
सूँनि सुधा रस पीजिये, प्रति प्रांण अधारा ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि होत है, 'वरिषा' वहु धारा ॥२॥
गंग चली फिर गिगन कूँ, गिरवर गत छाया ॥
जन हरीदास आनँद भया, तन मैं तत पाया ॥३॥

(११७)

'जिनि' जिनि हरि नांव गह्यौ,
उलटा षेलि चल्या सुषसागरि, दुष दरिया विष दूरि दह्यौ ॥टेक॥
धरि विसवास करम करि कुटका, हरिरस रसना जांनि रस्यौ ॥
तजि संसार धार तैं उतरै, हरि 'तरवर' मन जाय वस्यौ ॥१॥
सुरति सँवाहि 'परम' निधि परसै, 'एकै' ही ल्यौ लागि रह्यौ ॥
सहज समाधि गवन बेगमपुरि, कालपूर दुष दूरि दह्यौ ॥२॥
गरव गुमांन चरण तल चूरया, उर अंतरि निज नांव धरयौ ॥
जन हरीदास सुषसागरि वैठा, अघ अजराइल चमकि डरयौ ॥३॥

पाठभेद—बरषा-२-४। ज्यन-२। तरवरि-२। प्रम-१। यैकै-२।

शब्दार्थ—पछिम दिसा=मेरुदण्ड। पूरव दिसि=भृकुटि मध्य, त्रिकुटि। गंग=निश्चलवृत्ति। गिरवर गत छाया=मोह तथा अहङ्काररूपी पहाड़ नष्ट हुए। उलटा षेलि=संसार का मोह त्यागकर आत्माभिमुख हो। दुष दरिया=संसार सागर। विष दूरि दह्यौ=संसार का जहर नष्ट किया। करम कर कुटका=कर्मों की भावना टूक-टूक कर दी, समाप्त कर दी। हरि रस रसना जांनि रस्यौ=रसना हरिरस मे ही लीन हो गई। सुरति सँवाहि=वृत्ति को सँभाल। बेगमपुरि=ब्रह्मधाम, सहस्रारदल। अघ अजराइल चमकि डरचो=पापरूपी शूरवीर चमका तथा भयातुर हो गया।

(११८)

अलष निरंजन निरगुणां, मेरा मन मांही ॥
झूठा सुष संसार का, षोटा कछु नांही ॥टेक॥
जीव जीव कै आसिरै, आसा धरि आवै ॥
अंति आस पूजै नहीं, पाछै पछितावै ॥१॥
प्राणनाथ पति छाड़ि करि, माया जलि झूलै ॥
अंतिकाल छाड़ै नहि, काहे कूँ फूलै ॥२॥
जन हरीदास ऐसी कथा, जांणै सो जीवै ॥
सूँनि मंडल में वैसि करि, निरभै रस पीवै ॥३॥

॥ इति राग बिलावल सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग गूजरी ॥

(११६)

सषी री! अब पिवकै मनि भाई,
उड़ि उड़ि जाइ पतँग रँग वपरो, हरि रँग चढ्यौ न जाई ॥टेक॥
'औगण' वहौत सील नहि साची, वहौत करी लंगराई ॥
सौकणि सकल घेरती थाकी, पिव 'परगट' 'सेझ' बुलाई ॥१॥
रूप दरस मोपै कछु नांही, तन सिणगार न कीया ॥
सांसो इहै रैंणि दिन व्यापै, पिव क्यूँ 'आपा' दीया ॥२॥

पाठभेद—अवगुण-१। प्रगट-१-५। सेझि-१। आदर-३-४।

शब्दार्थ—झूलै=स्नान करे। फूलै=प्रसन्न हो, प्रफुल्लित हो। शून्य मंडल=दशमद्वार। पतंग रंग=सांसारिक सुखों का रङ्ग। लंगराई=ढिठाई, टेढ़ापन। सौकणि=पति की अन्य स्त्रियां, जीवरूप पति की वासना, तृष्णा, ममता आदि सौकिनियां। घेरनी थाकी=घेरा देती-देती थक गई। परगट=प्रत्यक्ष हो, सामने आ। सेझ=हृदय-कमल में। सांसो इहै=संशय यही। व्यापै=व्याप्त होता है। आपा=महत्व, आदर।

जन हरीदास सांसा सब भागा , तब पीव अंचरैं लाई ।।
बांह पकड़ि हरि अंदरि लीन्ही , जम की मिटी दुहाई ।।३।।

।। इति राग गूजरी सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग तौड़ी ।।

(१२०)

ऐसे रांमराइ जांणीला , पांचू उलटा आंणीला ।।टेक।।
'औघट' घाटी पीईला , हरि भजि ऐसे जीईला ।।१।।
त्रिकुटी कापड़ धोई ला , भँवर गुफा मैं सोईला ।।२।।
जोति सरूपी जोईला , हरि भजि हरिसा होईला ।।३।।
दीनदयाल पिछांणीला , जन हरिदास तैं आंणीला ।।४।।

।। इति राग तौड़ी सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग कलंगड़ो ।।

(१२१)

रांमसनेही 'जीवनि' मेरी , तेरे चरन कँवल परि वारी फेरि ।टेक।
हरि जन कै 'मंदिर' हरि आवो, मैं व्याकुल तुम्ह दरस दिषावो ।।१।।
'वेदनि' विरह विथा तन मांही , पड़दा 'पौलि' मिलौ क्यूँ नांही ।२।
जन हरीदास कै आस तुम्हारी , विलम कहा पतिदेव मुरारी ।।३।।

।। इति राग कलंगड़ो सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—अवघट-१ । जीवन्य-२ । म्यदिर-२ । मिदरि-३ । वेदन-१ । पोल्य-२ ।

शब्दार्थ—अचरैं=अञ्चल में, गोद में । पाचू=ज्ञानेन्द्रियां । उलटा=अन्तर्मुख, आत्माभिमुख । औघट घाटी पीईला=वंकनालि से प्राणो को दशमद्वार मे स्थिर कर अमृत पीऊँगा । जीईला=जीऊँगा । त्रिकुटी=भृकुटिमध्य । पिछांणीला=पहिचानना ।

॥ अथ राग नट ॥

(१२२)

तुम्ह विन मिटत न जांनी पीर ,
धनक धारि जोधा मॅगि मेरे , मैंवामी बलवीर ॥टेक॥
मेरा करम मूल का लागू , ताकूँ परी 'तनि' भीर ॥
वेड़ी कठिन कहौ 'क्यौं' काटौ , कुल मरजाद जँजीर ॥१॥
'औगण' वहौत भजन नहि कीया, मन कौ मतौ अधीर ॥
भव जल वार पार कछु नांही , क्यूँ करि 'पकड़ूँ' तीर ॥२॥
है हरि अकल सकल विसव्यापी , मैं काचै करवै नीर ॥
जन हरीदास चरणां का चेरा , सरणि रापि 'रघुवीर' ॥३॥

(१२३)

तुम्ह हरि वसौ मिंदरि आइ ,
नैंण निसदिन झरत नीझर , प्रांण पीव विण जाइ ॥टेक॥
आत्मा 'अस्थांनि' आतुर , विरह विसहर पाइ ॥
मन भया व्याकुल कव मिलौगे , सकल व्यापी राइ ॥१॥
हरि माघ निज पंथ सदा हेरूँ , आंन पंथ न सुहाइ ॥
पीव पीड़ दुप दूरि कीजै , देव दरस दिपाइ ॥२॥
'तुम्ह' जांणते हौ कहूं कासूँ , कहत न आवै काइ ॥
जन हरीदास कूँ दीदार दीजै , पेम प्रीति चषाइ ॥३॥

पाठभेद—तन्य-२ । क्यूँ-२-५ । अवगुण-१ । पकरौ-१ । रुघवीर-२-४ । असथ्यान-२ । तुम-५

शब्दार्थ—धनक धारी=धनुष वाले, सतगुरु । जोधा=शूरवीर । मेरा करम= मेरे सकाम कर्म । भीर=विपत्ति, सकट । कुल मरजाद=वशपरम्परा की । काचे करवै= बिना पके घडे मे, नश्वरदेह मे । नीझर=झरने की तरह झरते है । माध=मार्ग, पथ । दीदार=दर्शन ।

(१२४)

भजि मन ! रांम सजीवनि मूरि ,
प्रेम प्रीति अंतरि ल्यौं लागी , हरि सकल रहे भरपूरि ॥टेक॥
'जग सूँ' प्रीति कहां 'लूँ' कीजै , सकल काल की चोट ॥
उलटौ पेलि अनल का सुत 'ज्यूँ', पकड़ि रांम की वोट ॥१॥
है हरि अकल सकल विसव्यापी , नेरां वसौहक दूरि ॥
भन हरीदास निज रूप न 'जांण्यौ', ता पसवां मुषि धूरि ॥२॥

(१२५)

अब हम रांम भजत सुष पाया ,
कांम किवाड़ी जड़ी जतन सूँ , मोह मता मुरझाया ॥टेक॥
बिगसत कँवल सवद सति सुँणिया , सुँनि मंडल मैं सारं ॥
वरषै धरणि गगन रस भीजै , सदा अषंडित धारं ॥१॥
चंद सूर एकै रथि बैठा , पवन विरौलै बाई ॥
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ॥२॥
स्यौ घरि 'सक्ति' सक्ति सूँ मेला , भरम गया भै भागा ॥
गगन मंडल मैं वसै उड़ागर , ऊँचै आरंभि लागा ॥३॥
निराकार निरलेप निरंतरि , महलि मिले वनमाली ॥
सुष मैं सीर अषिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ॥४॥
'घटि' 'घटि' अघट अगह अविनासी, वंकनालि रस पाया ॥
पांचौ थकित छक्या रसि पेलै , आनँद अरथि समाया ॥५॥

पाठभेद— जुगम्यों–१ । लों–१ । ज्यों–१ । जान्यों–५ । सकति–२ । घटघट–३-५ ।

शब्दार्थ--मूरि=जडी । वोट=आड़, सहारा । पसवां=पशु जैसे प्राणी । जड़ी जतन सूँ=उपाय द्वारा, साधन द्वारा कामना के किवाड़ बन्द कर दिए हैं । विगसत=खिलता हुआ, प्रफुल्लित । कँवल=हृदयकमल । धरणी=वृत्तिरूपी पृथ्वी । चंद सूर एकै रथ बैठा=इड़ा-पिंगला समस्वर से प्रवाहित है । पवन=प्राण । विरौलै=आलोड़न करै, रस लेवे । गंग जमन=मन-प्राण । स्यौ घरि=ब्रह्मस्थान में । सक्ति=सूक्ष्मवृत्ति । उड़ागर=मनपक्षी ।

'नवघण' घटा गरक गुण तीनूँ , रांम रतन धन नेरा ॥
वूठे मेह पहम रुति पलटै , सुष मैं सहजि वसेरा ॥६॥
है हरि अकल सकल की सोमा , जागि लहै सो जीवै ॥
जन हरीदास ता तैं रावलिया , अगम 'पियाला' पीवै ॥७॥

(१२६)

जब मन मैं तैं मोह चुकावे ,
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन , कलपि न काठ लगावै ॥टेक॥
मन मैं तन तन मैं मन पेलै , 'पांच मांति' की पूजा ॥
आंटी आप आपणी वान्ध्या , तब लग हरि सूँ दूजा ॥१॥
षोलि कपाट करम करि कांनै , अकरमि अरथि समावै ॥
पूठा फिरै न पर दुष देषै , निरभै निज घरि आवै ॥२॥
इन्द्री पांच अटकि ले उलटी , ल्यौ की डोरि लगावै ॥
आसा छाड़ि निरास विचारै , थकित भया थिति पावै ॥३॥
उलटा पेलि अकास गिरासै , गम मैं अगम विचारै ॥
जन हरिदास मरण जांमण का , तव दोन्यौं पंथ हारै ॥४॥

(१२७)

संतो ! राम कह्यां वणि आवै ,
जीवन अलप कठिन है कलिजुग , हरि विन 'कौंन' छुड़ावै ॥टेक॥
मन की तरंग अनंत 'वहौ' छाजा , ता तैं अरथ न आवै ॥
ताकी आस वास मधुकर 'ज्यूं' , जहां लागि तहां जावै ॥१॥

पाठभेद—नौघण-५ । पयाला-१ । पांच भूत-१-५ । कूँण-१ । बहु-१ । ज्यौ-१ ।

शब्दार्थ—नव घण घटा=अन्तर्मुखी इन्द्रियाँ, विशुद्ध अन्त:करण चतुष्टयरूप बादलों की घटा उठ रही है । गरक=सराबोर, ओतप्रोत । रावलिया=साधक योगी। आंटी आप आपणी वाध्या=अपने ही सकाम कर्मों के वन्धन से आप बँध रहा है । षोलि कपाट=अन्त:करण के अज्ञान-पटो को खोल । ल्यौ=लगन, तीव्र चाह । थिति=स्थिति, स्थैर्य । अकास=शून्य मडल । वहौ छाजा=अनेक प्रवृत्तियाँ ।

हरितैं पलटि पतित व्है दूजा, माच कह्यौ न सुहावै ॥
नवका छाड़ि पड़ै सागर में, भरमि भरमि दुष पावै ॥२॥
जम की त्रास तिको वसि सहसी, जिन पैंला 'प्रेम' न पाया ॥
जन हरीदास या जिव का वासा, मन कै हाथि विकाया ॥३॥

॥ इति राग नट सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग मलार ॥

(१२८)

संतो ! षेती की रुति आई,
औसर इसौं वहोड़ि नहि लाभैं, अब जीत्या ज्यां वाही ॥टेक॥
धरनी सूडि झाड़ अलसोव्या, विरहा 'अगनि' 'जलाई' ॥
'सुत्रधि' सौंमि रांम जल वूठा, यूँ वाड़ी वनि आई ॥१॥
हाली भला भली सज सगली, एक मतैं व्है लागा ॥
ब्रह्म साषि यूँ नीपजि आई, धुर का टोटा भागा ॥२॥
अनंत 'आतमा' अवर न जाचै, षलै 'वहौत' सुष पाया ॥
निज तत तिकौं लाटतां लीयौ, लाटै लोग धपाया ॥३॥
'इसा' भेद कोई विरला जांणै, 'जाकूँ' काल जाल मैं नांही ॥
जन हरीदास हरि साष सकल भरि, विलसी आनँद मांही ॥४॥

(१२९)

सषि हो ! गगन गरजि घन आये,
सुँणि सुँणि सवद कँवल निज विगसत, अंतरि अलष लषाये ॥टेक॥

पाठभेद—पेम–१ । अग्नि–१ । जराई–१-५ । सुवुधि–१ । आत्मा–१-५ । वहुत–१ । ऐसा–१ । जाकौं–१ ।

शब्दार्थ—नवका छाडि=आत्मचिन्तनरूप नौका को त्याग । ज्या वाही=जिनने बोई, तत्वज्ञान-रूपी अनाज की खेती के लिए यम, नियम, ध्यान, धारणा, समाधि-रूपी खेती जिनने बोई है । धरती सूडि=अन्त करण निर्मल कर । झाड़ अलसोव्या=अहङ्कार और मद-मोहादि झाड साफ कर लिये । हाली भला=विशुद्ध मनरूप हाली । भली सज सगली=वृत्ति, विवेक-विचारादि साथी भी सब भले है । धुर का=चिरकाल का, मूल मे । पलै=खलिहान मे, राशि में । धपाया=तृप्त किया ।

सेझ सुहाग भाग वड़ ग्वालणि, ब्रह्मछोल सुष पाये ॥
मन मैमंत राम रसि मातौ, धसि सुषसागर न्हाये ॥१॥
मोर मगन 'चात्रिग' सुष चितवत, वीज चमकि झड़ लाये ॥
अनहद सवद गोपि धुनि गरजत, पिव मिलि प्रेम 'वढ़ाये' ॥२॥
मथुरा मंडल होत अति आनँद, वेलि वधत वन छाये ॥
जन हरीदास जल पूरि परमगति, परम जोग पति पाये ॥३॥

(१३०)

सषी हो ! सांवण मास विराजै,
अरस परस कौतूहल देष्या, उरध कँवल कै छाजै ॥टेक॥
परमल प्रीति उमँगि जल उलट्या, गगन 'गरज' घण आया ॥
दांमणि उलटि आभ मैं पैठी, नौ वण 'न्यौंति' वुलाया ॥१॥
वादल त्रिवधि पवन मुषि पीया, वंकनालि मैं वाई ॥
निरमल नीर अहो 'निस' वूठा, घटा मेर मैं आई ॥२॥
*'औघट' घाट अघट मैं अटक्या, सुषमनि सहजि समांणी ॥
ये नवनाथ नींद भरि सूता, नदी निवासै तांणी ॥३॥

पाठभेद—चात्रिक-१। बधाये-१। गरजि-१। न्यूंति-५। न्यसि-२। अवघट-१।

शब्दार्थ—मैमंत=मस्ती मे। धसि=भीतर प्रवेश कर। मोर=मन-मयूर। चात्रिग=चित्त, अन्त करण। वीज चमकि=ज्ञानज्योति प्रकट हो। गोपि=गुप्त। मथुरा मंडल=कायानगरी में। वेलि वधत=नामचिन्तनरूप बेल बढ रही है। उरध कँवल= सहस्रारदल। दांमणि=ज्ञानज्योति। आभ मैं=गगनमडल मे। नौघण=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्त करण। वादल त्रिवधि=त्रिगुणात्मक-वासना के बादल। पवन मुषि= प्राणायाम की साधना से।

* वासना, ममता, मोह, काम-क्रोधादि की कठिन घाटियाँ सब साफ हो गई हैं। सुषुम्ना नाड़ी सहज दशा मे समाई हुई है। ये नवों नाथ-पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ चार दशाये अन्त करण की परम शान्त हैं। नदी निवासै ताणी=विविध वात-वह नदीरूप नाड़ियाँ पूर्ण हैं, कुंभकमय हैं।

तिन सै क्रोशार्ध बसै एक ग्राम,
जिनों का कापड़ोद है नाम ।

दोहा—उसी ग्राम के बीच में क्षत्री हुआ बलवान ।
हरिसिंह था नाम जिनों के दया नहिं उर म्यान ॥
पाप तिनकै करणा आसान, जिनों का सारा सुनो बयान ॥१॥

मंत्र-प्रभाकर-रामबक्स मोहतारचित—प्रथम प्रकाशन संवत् १६२२ द्वितीया-वृत्ति संवत् १६६३ उल्लास १२ वा—

छन्द पद्धरी—श्री द्यालु नाम हरिपुरुष जान, प्रगटे सु डीडवाणे महान ।
राम कला अवतार अंस, धन्य मातु पितु क्षत्री वंश ।
कापडोद निज जन्म भौम, भये प्रगट सु सांखल कौम ।

बालोतरा निवासी स्वामी जानकीदासजी रचित 'जीवन-चरित्र'
रचनाकाल संवत् १६६२, पृष्ठ ३—

चौपाई—तब हरिदास धर्यो अवतारा, करण सकल जीवन उद्धारा ।
मारु सुदेश जिला जोधाणें, कापडोद शुभ ग्राम बखाने ।
तहाँ के ठाकुर अति रणधीरा, वल बुधि निधी भक्त हरिजी रा ।
जाति सांखला सूरजवंशी, राजपूत कुल सब अवतंसी ।

दोहा— तेहिकी त्रिया भक्त हरि रूप-शील-गुणखानि ॥
ताके उदर सु अवतरे करण जगत कल्याण ॥१॥

उक्त चारो रचनाकारो के उल्लेख से स्पष्ट है कि हरिदासजी का जन्मस्थान कापडोद ग्राम है तथा वे क्षत्रिय वंश शाखला गोत्र मे उत्पन्न हुये थे। उक्त रचनाकारो मे दो साधु तथा दो सद्गृहस्थ है। इनकी रचनाओं से हमे यही प्रतीत होता है कि इनने हरिदास जी महाराज के विषय मे परम्परा से जैसा सुना-समझा वैसा ही निरूपण किया है।

आधुनिक साहित्यकारों मे से मिश्रबन्धुओ ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' मे इनकी कोई चर्चा ही नही की है। मोतीलालजी मेनारिया ने "राजस्थानी भाषा और साहित्य" मे इनका अति संक्षिप्त विवरण दिया है। "उत्तरीय भारत की सन्त परम्परा

×इन्द्र अकाम अरथ मैं भीना, परसि परम सुष लीया ॥
जन हरिदास परस जल पैलो, मीन माछला जीया ॥४॥
॥ इति राग मलार सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सारंग ॥

(१३१)

रांमचरण छाड़ौं नहीं, भौजलि भूलि न 'जाइ' ॥
सुरति समाणी साच मैं, म्हारै मनि पायो विसरांम ॥टेक॥
अगनि विना ईंधण जलै, जल विन मलि मलि न्हाइ ॥
विनि जिभ्या जस होत है, तहां मन रह्या समाइ ॥१॥
विनि श्रवणां सींगी सुणै, विनि पांवा पंथ होइ ॥
नौ द्वारा मन ना वहै, जांणै विरला कोइ ॥२॥
साथ सकल ले सावतो, षसमैं षेत कमाइ ॥
विनि वाड़ी फल होत है, जो जांणै सो षाइ ॥३॥
'नैंन' समाना नूर मैं, हरि नूर निरंतरि आप ॥
जन हरीदास आनँद सदा, 'विछरन' वड़ौ संताप ॥४॥

(१३२)

अवधू गुर विन ग्यांन न लाभै,
कहा भयो जे दांमणि दरसी, जल विनि बोछै आभै ॥टेक॥

पाठभेद—जाव-५। नैंणा-१। बिछुडन-१-३।

शब्दार्थ—अगनि विना इंधण जलै=स्थूलाग्नि के बिना ज्ञानाग्नि से विषय-विकाररूपी ईंधन जल रहा है। जल विन मल मल न्हाइ=दृश्यमान पानी के बिना आत्मानन्द की नदी में मल-मलकर स्नान कर रहे है। विनि जिभ्या जस होत है=जीभ के बिना वृत्ति से चिन्तन हो रहा है। साथ सकल ले सावतो=सावत मन-शुद्ध मन ने सद्बुद्धि, स्थिरवृत्ति, निश्चलप्राण आदि को साथ मे ले लिया है। दामणि=विजली। दरसी=देखी, चमकी।

× इन्द्र मन अकास-शून्यमंडल में भीने आत्मतत्व को परस परम सुख प्राप्त किया। ब्रह्मतत्वरूपी पैलो जल परस आत्मा, मन, प्राण, वृत्ति आदि मीन-मछलियाँ जी गयी-अमर हो गयी।

जब लगि निज तत 'निजरि' न दरसैं, तब लग प्यास न भाजै ॥
कहा भयौ जैं सूकै मांडै, षाली वाई गाजै ॥१॥
'नौघण' घटा 'गरजि' जब बरसै, तब हाली सुष पावै ॥
आरंभ करै माप रहै सांम्ही, 'कस' करि करज चुकावै ॥२॥
जन हरिदास दोष तजि दुरमष, रांम रसाइण पीवै ॥
वूठैं मेह पहम रुति पलटै, परचै लागा जीवै ॥३॥

(१३३)

'भौजल' ऊंडौ हो केमवे, रहिये 'कोंण' अधारि ॥
अजर जिहाज नांव हरि तेरो, वेली बाँह पसारि ॥टेक॥
जम कै लोकि सदा हूँ रहती, दहती जम की लाइ ॥
अब मैं रांम सजीवनि पायौ, 'जमपैं' पलौ छुड़ाइ ॥१॥
कुबधि सषि घरि जाहु आपणैं, सुबधि कहै कर जोड़ि ॥
मैं पतिवरता हरि पिव पायौ, कुल मरजादा तोड़ि ॥२॥
पांच सषी सहज घरि षेलैं, तन मन सेझ बिछाइ ॥
जन हरिदास जब आतुर देष्या, तब वैंठा हरि आइ ॥३॥

(१३४)

सुषसागर साहिब नेरा, जहां लागि रह्या मन मेरा ॥टेक॥
निरमल ग्यांन ध्यांन धुनि निरमल,, निरमल कूँ मन दीया ॥
ता जोगी संगि सहजैं षेलूँ, जिन जोगी 'जुगि' कीया ॥१॥

पाठभेद—निजर-४। नवघण-१ । गरज्य-२ । कसि-३ । भवजल-१ । कूँण-१ । जमतैं-१ । जग-५ ।

शब्दार्थ—निज तत=ब्रह्मस्वरूप, आत्मस्वरूप । सूकै भाडे=खाली बर्तन, दिखावटी साधक । वाई वाजै=वाचक साधक का कथन । नौघण=नवधा भक्ति । हाली=मन । साम्ही=अनुकूल, अच्छी । वूठे=बरसे । वेली=साथी । वाह=हाथ, भुजा । कुबुधि सषि=मायिक पदार्थों की प्राप्ति की मति । पांच सषी=अन्तर्मुखी इन्द्रिया ।

'नैंना' रांम वसै हरि 'वैंना', हिरदै रह्या समाइ ॥
रोम रोम हरि सुमिरण लागा, मेरे गुरगम दियौ वताइ ॥२॥
आनँद रूप अषिल अविनासी, सुष मैं सुरति समांणी ॥
जन हरीदास निधि देषि निजरि भरि, घट घट अघट विनांणी ॥३॥

(१३५)

अवला पिव विन क्यौं रहूं, निसदिन तलफि तलफि तन जाइ ।टेक।
स्वाति वूँद सहजां पीवै, नां पीवै नाड़ारौ नीर ॥
विरह अगनि तन 'जालियौ', जिहिं व्यापै सो जांणै पीर ॥१॥
प्रेम पियाला चित चढ्या, अव पिव हो मोहे प्रेम पिलाइ ॥
रोम रोम हरि रस पियौ, तन विछुड़ै तहुं प्रेम न जाइ ॥२॥
पतिवरता विभचारिणी, दोऊँ अनत न वैसे एकै साथि ॥
फटिक मणि तव लग भली, जव लग हीरा न आवै हाथि ॥३॥
अनंतपुरी आगै वसी, रांमभजन विन चले हौ ठगाइ ॥
'उत्तमपुरी' आंमिर भयो, अव पीव प्रेम मगन रस पाइ ॥४॥
अधिक दरद 'कासूँ' कहूं, व्यापत है मेरा मन मांही ॥
जन हरीदास तन मन सज्या, अव पिव हसि वोलो क्यूँ नांही ।५।

(१३६)

मन तन जाइलो रे, या सुषि रहिये कौंण अधारि ॥
अव तजि भरम सरम गहि हरि भजि, साच तहां सुष पारि ॥टेक॥
आपै कलणि कर्यौ अपराधो, अकल 'पुरिस' कैसे पाइहौ ॥
सकल भवन पति राइ ॥

पाठभेद—नैंणा-१ । वैंणा-१ । जारियो-१ । उत्मपुरी-४-५ । कास्यूँ-१ । पुरष-१ ।

शब्दार्थ—विनांणी=बनाने वाला, रचयिता । नाडारौ=छोटे सरोवर का । अनंतपुरी=अनेक जन्म । उत्तमपुरी=नरजन्म । आमिर=आगमन, आना ।

सकल सुष अगम विचार, अपार परम तत ॥
हरि भजि लीजै प्रेम वधाई ॥१॥
समझि समझि निज, तत निज मन धरि ॥
अधर अधर भजि, भजि निसत्रासुरि ॥
अपणों निज तत नेम विचारि ॥
जन हरिदास स्वास ध्रिग हरि विन, कौड़ी मटे न हीरा हारि ॥२॥

॥ इति राग सारंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग वसंत ॥

(१३७)

तुम्ह भजौ निरंजन जनम जाइ, कौंण नींद सूते अघाइ ॥टेक॥
काल वांण गहि तकत 'तोहि', जीव लागि रहे मव मदन 'मोहि' ॥
रांम भजन विन कौंण वात, जहां तहां जम करत घात ॥१॥
राति 'द्यौस' तन होत छीन, जैंसे वोछे पांणी मगन मीन ॥
काल कीर निति परच षाइ, रांम समंद तहां क्यौं न जाइ ॥२॥
प्रांणनाथ सूँ प्रीति धारि, गुरग्यांन सवद हिरदै विचारि ॥
हरि अगाध भजि तजि जंजाल, जन हरीदास तहां काया न काल ।३।

(१३८)

मन मतिवाला राषि ठौर, पलक पलक हरि निकटि बौर ॥टेक॥
इतउत चितवत गई विहाइ, हरि है हजूरि मन तहां लाइ ॥
प्रेम प्रीति का 'देइ' वंध, ज्यूँ उलटि न षेलै मन अकंध ॥१॥

पाठभेद—तोह-४। मोह-४। दिवस-१। देह-१-५।

शब्दार्थ—आपै=अहङ्कार की। कलणि=दलदल मे। धिग=धिक्कार। अघाइ=अतितृप्त हो, धापकर। मदन मोहि=काम और ममता मे। वोछे पाणी=थोडे पानी में, कम गहरे मे। वौर=बहुत। अकध=मरने को।

नाभि कँवल निज सुरति लाइ , तहां वसत है राम राइ ।।
हरि सकल वियापी परमदेव , ताकूँ 'वहौत' भांति तूँ तहां सेव।।२।।
जागि जागि रे जागि जांचि , हरि अगम अगम तूँ तहां राचि ।।
जन हरीदास हरि सकल साच, हरि निकटि निकटि मन बिकट नाचि ।३।

(१३९)

मतिवाली मालिण नांही दूरि , हरि परमसनेही है हजूरि ।।टेक।।
अरध उरध मधि कँवल मूल , आतम निज फूली ब्रह्म फूल ।।
अजब वास कछु कहि न 'जाइ' , तहां मनसा मालणि रही 'लुभाइ' ।१।
रवि ससि मेला पछिम धूरि , तहां नदी 'निवासै' वहै पूरि ।।
भरि भरि पीवै अठारै भार , तहां वसुधा भीजै अषंड धार ।।२।।
सकल वियापी सहज भाइ , मथुरापति महलां वसे आइ ।।
जन हरीदास तहां 'चरण' लागि , जहां गोपी ग्वालणि रमैं फागि ।।३।।

(१४०)

सषि हो ! मास वसंत विराजै ,
गोपी ग्वाल घेरि गोकुल मैं , वेणि मधुर धुनि वाजै ।।टेक।।
धागै सुरति पांच नग गूँथ्या , मन मोती मधि आया ।।
विगसत कँवल परम निधि 'परगट', हरि कूँ हार चढ़ाया ।।१।।
गरव 'गुलाल' चरण तलि चूरया, अरथ अबीर पिंडाया ।।
परमल प्रीति परसि परिपूरण , पिव मैं प्रांण समाया ।।२।।

पाठभेद—बहुत–१ । जाय–५ । लुभाय–५ । नवासै–१ । चरन–५ । प्रगट–१ । गुमांन–३ ।

शब्दार्थ—जांचि=तलाश कर, याचना कर । राचि=प्रमी बन, अनुरक्त हो । मतिवाली मालिण=मनसामालिन । मधि कँवल=हृदयकमल । अजब वास=अनोखी गन्ध । रवि ससि मेला=मन-प्राण का सङ्गम । पछिम धूरि=मेरुदण्ड से सुषुम्ना के अन्तिम आश्रय तक । नदी निवासै=नौ सौ नाडियां । अठारै भार=शरीरस्थ सब तत्व । वसुधा=साधनारूप भूमि । गोपी ग्वाल घेरि गोकुल मैं=कायानगरी मे गोपी–ज्ञानेन्द्रियां, ग्वाल–मन को घेरो, अन्तर्मुख करो । वेणि=बांसुरी, अनहद नाद । पांच नग=पञ्चप्राण, अपानादि ।

वंकनालि निहचल नौ निरभै, यैं कौतूहल भारी ॥
जन हरीदास आनँद निज नगरी, षेलै फाग मुरारी ॥३॥

(१४१)

भवतैं भँवर वाग निज लाश्री, ताकी 'उतम' वास लै जीवै ॥
निरभै डोरी 'निरति सु"' लागी, मगन भयो रस पीवै ॥टेक॥
ब्रह्मफूल की वास 'मस्त' है, अर्मा महारस लागा ॥
सुषदेव पी मतिवाला हूवा, ऊठ वना कूँ भागा ॥१॥
मुंनि मंडल की वाड़ी विलमै, सहजि सकल रस लाधा ॥
जन हरीदास 'हरजी' का सेवग, जम कै वंधणि न वांधा ॥२॥

(१४२)

मन मतिवाला सहज भाइ, जोग मूल गहि रह्या समाइ ॥टेक॥
ब्रह्मअगनि वरषा अपार, भरि भरि पीवै अठारै भार ॥
गंग जमन मधि वसंत राग, भँवर गुंजारै 'गहर' वाग ॥१॥
चंद सूर रथ फिरया फाग, ग्यांन ध्यांन ल्यौ गगन लाग ॥
प्रेम प्रीति का पहोप हाथि, पांच सषी सब मौंज साथि ॥२॥
हरष सोग दुष दुरया दोइ, 'यह' गति जांणै साध कोइ ॥
त्रिवेणी तटि ध्यांन धारि, परम जोति 'प्रगटै' मुरारि ॥३॥
सकल वियापी रांम राइ, परम 'पुरष' गति लषि न जाइ ॥
जन हरीदास अवगति अनंत, भजि अलष निरंजन करि वसंत ॥४॥

पाठभेद—उत्म-४-५। निरंतरि-१-३-५। मसत-२। हरिजी-३-५। गहैर-२-४। याह-१। परगट-५। पुरुष-१।

शब्दार्थ—नौ निरभै=इन्द्रियां, अन्त-करण। विलसै=उपभोग करे। वधणि=बन्धन। गंग जमन मधि=इडा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना मे। चंद सूर=मन और प्राण। दुरया=छिपा। त्रिवेणी तटि=भृकुटिमध्य।

(१४३)

चलो सषी जहां रांमराइ, रांमराइ विन रह्यो न जाइ ।।टेक।।
यहु आलस कहा लग्यौ तोहि, वात सषी यह कहौ मोहि ।।
जनम अमोलिक चल्यौ है जात, नांऊ तरवर लगै फिरि तूटे पात ।१।
एक महर मैं विवधि राज; हसती पाइक हेम वाज ।।
काल वांण 'लिऐ' फिरत मांहि, तहां वस्या कछु चैन नांहि ।।२।।
परम उदार आनंद अछेह, सुत तात मात जीवैन देह ।।
जन हरीदास मन तहां लीन, समद विछौहे 'मरै' मीन ।।३।।

(१४४)

चलहु सषी करि वसंत राग, 'जिसि' वन मनमोहन रमै है फाग ।।टेक।।
'पांच' सषी सव सौंज हाथि, मिलि 'पेलण' चाली पीव साथि ।।
तुम्ह अगाध मैं न क्यूँ जीव, आइ रुति वसंत रंगि रमौह पीव ।१।
ज्यूँ चकवी मनि रहै उदास, ऐसै आतम फूली ले सुवास ।।
'पहौप' वास मैं रही लुभाइ, ऐसो वाग वन्यौ पिव रमौ हौ आइ ।२।
जन हरीदास मन अति उमंग, ऐसा लागा प्रेम रंग ।।
प्रेम पियाला घटत नांहि, हरि अगाध जन पीवत जांहि ।।३।।

।। इति राग वसंत सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग अडांणो ।।

(१४५)

कहु और कै कहै सँइया, 'तुम्ह' जिनि हमपै ठौर छुड़ावो ।।
अव हमसूँ ऐसे मन राषो, अंतरि जोति जगावो ।।टेक।।

पाठभेद—लिये-२ । मरेहै-२ । ज्यसि-२ । पंच-१ । खेलन-१ । पहुप-१ । तुम-५ ।

शब्दार्थ—टेतू पात=जीवनवृक्ष के आयुरूप पत्ते टूट रहे हैं। एकसहर=कायानगरी एक है। समद=ब्रह्मसागर। विछौहे=वियोग मे। आतम=जीवात्मा। सेंइया=हे स्वामी ! ठौर=आत्मप्राप्ति का स्थान ।

तन सूँ तन मन सूँ मन मेला, अंतरि अंतरि मेला ॥
और सकल सुष विषमरि लागत, तुम्ह लागत हौ सेला ॥१॥
नैननि मैं नैन बैननि मैं बैना, समझि समझि सुष दीजै ॥
तुम्ह बिन जीव चात्रिग की नांई, तलफि तलफि तन छीजै ॥२॥
तुम्ह बिन पीर न जांणै कोई, तुम्ह ही ढौरी लाई ॥
जन हरीदास गुर झुरकी डारी, बिरहनि बिरह जगाई ॥३॥

(१४६)

पिव पाये हो जागि लागि अब मोहि मागि, सीतल सबद सुहाये हो ॥टेक॥
मन ही सूँ मन मेला, बैन ही सूँ बैन सेला ॥
निज घरि नैन समाये हो ॥१॥
जांनि जांनि प्रीति लाये हो, सेझां सनेही आये हो ॥
आज मो मनि भाये हो ॥२॥
जहां तहां सुष मेरे, मोहिहूँ चित तेरे ॥
आनँद अनंत रिझाये हो ॥३॥
'भवनि' 'गवन' कीया, मन मेरा हरि लीया ॥
अरस 'परस' रस पाये हो ॥४॥
जन हरीदास तहाँ वास, सुष मैं सुष निवास ॥
समझि समझि सुष पाये हो ॥५॥

॥ इति राग अडाणो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—भवन-४। गवनि-५। प्रस-१।

सेला=शीतल, सुखदायी। ढौरी लाई=लौ लगाई, भक्ति जागृत की। मन मेला=मन मे ही मन का समाधान। मोहिहूँ=मोहित करूँगा।

।। अथ राग कनड़ौ ।।

(१४७)

संत सुधारण जम चोट विदारण, परम उदार करतार विसंभर ।।टेक।।
गहर गंभीर संमद भवतारण, हरि पावक पावक पष जारण ।।
पारब्रह्म अघ मेटण कारण ।।१।।
जलि थलि वास अरि आस निवारण, नाँव निरूप घट घाट संवारण ।।
हरिजन हरीदास भू भार उतारण, हरि परम जोति जस उर विसतारण ।।२।।

(१४८)

जो कवहू मन हरि जी सूँ लागै,
जठर अगनि में 'बहोड़ि' न षेलै, जम कै पटै चढ़ै नहिं आगै ।।टेक।।
त्रिवधि ताप तत पांच न परसै, जोनी जीव 'जनमि' नहिं आवै ।।
तजि संसार धार तैं उतरै, उलटो षेलि परम पद पावै ।।१।।
मन गहि पवन गवन हरि चरणां, चरणां रहै तरसि तत दरसै ।।
जन हरीदास मन पलटि परमगति, निरमल होइ निकटि निधि परसै ।।२।।

(१४९)

जो कवहू मन हरि सुष जांणै,
उनमनि लागि अगम घरि षेलै, 'और' सकल सुष आदि न आंणै ।।टेक।।
ज्यूँ तरमूल पहम मैं पेरै, सव जल सेफे जाइ समावै ।।
यूँ सति सुरति निरषि निधि निरमै, या सुषि अटकि उलटि नहिं आवै ।।१।।
ज्यूँ दूरि सुत अनल गगन कूँ उलटै, ग्यांन प्रकास पिता 'पष' जोवै ।।
यूँ फिरि जीव सींव संगि षेलै, जनम जनम का कलि विष धोवै ।।२।।

पाठभेद—वहुरि–१ । जनम्य–२ । अवर–१ । पषि–१ ।

शब्दार्थ—जठर अगनि मैं=गर्भवास में । पटै=जम के हिंसाब में, मृत्युमुख मे । धार तैं=ममता की धार से । तरसि=चाव से, लगन से । तरमूल=वृक्ष की जड़ । पहम मैं पेरै=भूमि मे प्रवेश कर लेती है । सीव=ब्रह्म ।

सलिता गौड़ि करै तव न्यारी, समद समाइ समद समि होवै ।।
जन हरीदास यूं अरस परस मिलि, हरिजन हरि मैं प्रांण समोवै ।।३।।

(१५०)

साज़िनिवाजि परमपद आपै, रांम दयल अमर करि थापै ।।टेक।।
करता करण सदा सँगि जाकै, चितवनि कहौ कहा धू ताकै ।।१।।
करम कुठार विथा हरि 'कांपै, जन हरीदास नरहरि हरि जापै ।।२।।

।। इति राग कनड़ौ सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग मारू ।।

(१५१)

'जुगि' जागिन जोया रे,
नर देही हरि ना भज्यो, यूँ ही तन षोया रे ।।टेक।।
स्वारथ का सव को सगा, वादल की छांही रे ।।
सुपनै का सुष छाड़ि दे, जागै क्यूँ नाही रे ।।१।।
झूठा सुष संसार का, साचा कर लीया रे ।।
मोह नदी में वहि गया, माया मद पीया रे ।।२।।
'मूरिष' कूँ समझाइये, 'औगण' करि वूझै रे ।।
आपा की आंटी पड़ी, सति साच न सूझै रे ।।३।।
परमसनेही रांमजी, साचा सुषदाइ रे ।।
जन हरीदास गोव्यंद भजो, मरमौ मति भाइ रे ।।४।।

पाठभेद—जग-५ । मूरष-१ । अवगुण-१ ।

शब्दार्थ—सलिता=सरिता, नदी । गौडि=गर्जना । समोवे=समाविष्ट करे, समावे । साजनिवाजि=सब प्रकार की सामग्री देने वाला । चितवनि=देखना, नजर मे । धू ताकै=निश्चलब्रह्म को देखे । वूझै रे=समझे रे, माने रे ।

के लेखक पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम० ए०, एल एल बी० ने उक्त पंथ पर पर्याप्त विवेचन किया है। उनने भी इनके जन्मस्थान तथा जाति परम्परानुसार उपर्युक्त ही स्वीकार किये है।

फारसी मे लिखी 'दबिस्ता तुल मुजाहिब' मे शायद इनको क्षत्रिय की बजाय जाट लिखा है, पर इस लिखने की प्रामाणिकता का कोई आधार नही है। प्यारेरामजी ने चौधरण के थन चूंगने का उल्लेख किया है। उसका यह अभिप्राय है कि प्राचीन काल मे माता के पर्याप्त दूध न होने पर धाय (विमाता) रखने की प्रथा प्रचलित थी। हरिदासजी (हरिसिंहजी) की माता के पर्याप्त दूध न होने पर किसी चौधरण (जाटणी) को धाय (विमाता) रखी गयी। उसके स्तनपान करने का उल्लेख प्यारे-रामजी ने किया है। उक्त विमाता के सम्बन्ध के कारण किन्ही ने उनको जाट लिख दिया हो– ऐसा सम्भव है। सम्भव है ऐसा ही किसी जनश्रुति के कारणवश "दबिस्तानुलमुजाहिब" कार ने उल्लेख किया हो। मेरे विचार से जो निरूपण हरिदासजी के जन्मस्थान तथा जाति के बारे मे अति बहुपक्ष ने किया है, वही ठीक है। जब तक इस बारे मे अन्य कोई अकाट्य प्रमाण सामने नही आवे, तब तक यही तथ्य समझना उचित है।

३. हरिदासजी का काल

हरिदासजी के कालविषयक प्रश्न मे पर्याप्त उलझने है। उनका सम्बन्ध पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी से था या सोलहवी-सत्रहवी शताब्दी से, इसका तथ्यपूर्ण निश्चय कर देना सहजसाध्य नही है क्योकि इस विषय मे जो प्राचीन स्पष्ट संकेत है, उनका ऐतिहासिक तथा कालिक स्थिति के साथ उचित सम्बन्ध स्पष्ट होना चाहिये, तभी उस काल को निर्भ्रान्त काल माना जा सकता है। इस प्रसंग मे जिन जिन प्रमाणो के उल्लेख या अनुमान किये गये है, उन सबको लेकर ही ऊहापोह से विचार करना सगत होगा।

इस विषय मे पहिले विभिन्न लेखको के मतों को देख लेना उपयुक्त है।

(क) मिश्रबन्धु

शिवसिह सरोज के पश्चात् हिन्दी साहित्यिको के परिचय तथा कालादि का निरूपण मिश्रबन्धुओ ने अपने 'मिश्रबन्धु विनोद' मे करने का प्रयास किया है। पर मेरे विचार से उनने सन्त साहित्य पर उतना ध्यान नही दिया, जितना अन्य साहित्य पर दिया है। उनके लिखे 'विनोद' मे वस्तुतः अधिकाश सन्तों के कालादि तथा रचना पर जो लिखा गया है, वह विनोदात्मक ही है। कबीर का सम्बन्ध तो उत्तर प्रदेश से ही है, अतः उनका निरूपण सम्यक् किया गया तो कोई विशेषता नही। अन्य संतो के निरूपण, जैसे दादूजी, सुन्दरदासजी आदि के

(१५२)

अपणो हीरा जनम न हारि,
वार वार तोहूँ 'कहूँ', तूँ योहि ग्यान विचारि ।।टेक।।
जागि लागि सोवै कहा, हरि सुमरणि सुष माहि ।।
अंति आस पूजै नहीं, तूँ कालरि वीज न वाहि ।।१।।
भूष न भाजै मैं तजै, जम की मिटै न त्रास ।।
तूँ क्यूँ रोपै आप कूँ, अंध आपनै पास ।।२।।
जौ जाग्या तो सोइमा, जौ सूता तौ जागि ।।
जनम 'अमोलिक' जात है, तूँ आंधा 'आरंभ' लागि ।।३।।
सुर नर घर पावै नही, पंडित लहै न आंण ।।
जहां आपौ तहां आंतरो, मोहि अजरावर की आंण ।।४।।
रांम भजन सुष 'परहरै', माया तहां मन जाइ ।।
जा घरि सुवधि न संचरै, मोंह रह्या लपटाइ ।।५।।
तात मात बंधू सषा, सुत वनिता सुष लोइ ।।
सब को स्वारथ का सगा, घट छूटा सगा न कोइ ।।६।।
परम सनेही रांम है, 'और' सगा दिन चारि ।।
जन हरीदास दूज्या तज्या, तजि लीया रांम सँभारि ।।७।।

(१५३)

वेली लो तत वेली लो, काटी वेलि वधैली लो ।।टेक।।
चंद सूर दोंउ 'समि' करि राष्या, सास सवद संगि लाया लो ।।
गंगा मूल तहां रस उलटै, वेलि 'तको' रस षाया लो ।।१।।

पाठभेद—कहौं–१ । अमोल्यक–२ । आरंभि–२-३ । प्रहरै–१ । अवर–१ । सम–१ । तिको–१ ।

शब्दार्थ—कालरि=खार की भूमि में । रोपै=गाड़े । आरंभ लागि=साधना मे लग । आंतरो=अन्तर, भेद । आंण=सौगन्ध । घट छूटा=देहपात हुआ, मरा । वेली=तत्वनिष्ठवृत्ति । काटी वेलि=मायकि पदार्थों से हटाई हुई वृत्ति । चंद सूर=इड़ा-पिंगला नाड़ी । सास सवद संगि लायालो=प्राण को रोक कर सोहं शब्द से सम्बन्धित किया । गंगा मूल=नाभिप्रदेश ।

निज निरसिंध अगहि 'अभि' अंतरि, वरण विवरजत वांणी लो ॥
इला पिंगुला सुषमनि मेला, ता सुषि वेलि समांणी लो ॥२॥
तरवर अगम अणीं तहां लागी, वेलि किया विसतारा लो ॥
काटी वेलि अमर फल लागै, विनि काटी फल पारा लो ॥३॥
वास विकट कोई पान न पंहै, मिरघ वसै ता मांही लो ॥
'पाइक' पांच पहरवा राष्या, उदै 'अस्त' दोइ नाँही लो ॥४॥
गमन मंडल मैं वेलि विलूँधी, मूल मता मैं आया लो ॥
जन हरीदास आतम कै अंतरि, सतगुर साँच वताया लो ॥६॥

(१५४)

जिवड़ा जनम सिरायो रे,
सोवत सोवत सोइ रह्यो, 'अजुँ' नींद न धायो रे ॥टेक॥
'जनम' अमोलिक जात है, विषया रस मांही रे ॥
काल गह्यो ग्रासै जुरा, जागै क्यूँ नांही रे ॥१॥
जा कूँ तैं तन मन दिया, अपणां करि लीया रे ॥
इन मैं तेरा को नहीं, भूलै विष पीया रे ॥२॥
सूतां सरवस जात है, जांणै सो जागै रे ॥
जन हरीदास आछै मतै, हरि सुमिरण लागै रे ॥३॥

(१५५)

रैंणि गई दिन जाइ, सषी मैं क्यूँ करूँ ॥
हरि विन कछु न सुहाइ, विछोहे मैं डरूँ ॥टेक॥

पाठभेद—अभ्य-२। पायक-३-४। असत-२। अजहुं-५। जन्म-५।

शब्दार्थ—तरवर अगम अणी तहां लागी=अगम ब्रह्मवृक्ष मे वृत्ति की अणी-अग्र भाग लगी। मिरघ=विषयविरत मन। पाइक पांच=पांचो ज्ञानेन्द्रियां। विलूँधी=छाई। सिरायो=बीता, समाप्त हो रहा। आछै मतै=आत्मचिन्तन मे। विछोहे=वियोग मे।

जल विन मीन कहो क्यौं जीवै, जाकैं जीवण पांणी ॥
ऐसे हम हरि विन दुष पावत, तलफत रैंण विहाणी ॥१॥
पिव पिव करत विरह तन जारयो, चात्रिग घन कूँ टेरै ॥
यूँ मम प्रांण दुषित हरि 'तुम्ह' विन, मनसा मारग हेरै ॥२॥
जन कै 'भवण' 'गवण' हरि कीजै, विलम कहा तुम आवौ ॥
रमताराम सकल विस व्यापी, हा हरि दरस दिषावौ ॥३॥
'याह' वड़ विथा रांम भल जांणै, विरह वसै तन मांही ॥
जन हरीदास हरि 'महलि' पधारो, कै अब जीवन नांही ॥४॥

(१५६)

सेझ सनेही आव, आवौ देव नरहरि ॥
विकल भई मन मांही, क्यूँ हो पीव परहरि ॥टेक॥
सुरति संवाहि माघ नित हेरूँ, चित चेतन चौकी चढ़ी ॥
तलफि तलफि तन जाइ, भुरकी मैं पड़ी ॥१॥
'यहु' विसवास आस निज अंतरि, अवला चौवारै षरी ॥
मसतग दे दे हाथ, पंथ 'हेरूँ' हरी ॥२॥
जांण प्रवीण परमसुष दाता, विरहणि विरहा परजरी ॥
जन हरीदास वलि जाइ, विलम कहा करी ॥३॥

(१५७)

वालम विरह विवोगी रे,
भुरकी मोपरि डारि गयो, 'जुग' मंडण जोगी रे ॥टेक॥

पाठभेद—तुम-५। भवन-गवन-५। या-५। महल-५। इहु-२। हेरौ-१। जग-५।

शब्दार्थ—विहांणी=बीती। भवण=स्थान, हृदयप्रदेश में। गवण=गमन। परिहरि=त्याग दी, छोड दी। माघ=मार्ग, वाट। हेरूँ=देखूँ। चित=अन्तःकरण। चौवारे=अन्त करण में वृत्ति। भुरकी=मोहनी।

सारा सुष संसार का, मोहि पारा लागै रे ॥
तूँ मेरा जीवन जीव की, रहो नैंना आगै रे ॥१॥
परम सनेही पीतमा, प्रांन न तैं प्यारा रे ॥
महलि पधारो माधवे, सारां मिरि सारा रे ॥२॥
विरहणि कै रस एक तूँ, दूजा सब ज्वाला रे ॥
जन हरीदास 'यूँ' वीनवैं, 'ग्रह' आवो वाला रे ॥३॥

(१५८)

रे मैं रांम रस पीया रे,
छाकि चढ़ी सुधि वीसरी, सिर सौदा कीया रे ॥टेक॥
अगम पियाला 'प्रेम' का, सहज पिया धरि ध्यांन ॥
इतवत चितवणि मिट गई, अब 'विछरन' मरण समांन ॥१॥
जिन पीया सो जानि है, 'और' न जांने कोइ ॥
रसिया रस में मिलि रह्या, अब टलै न दूजा होइ ॥२॥
कहा करूँ ऐसी भई, मन पड्या दरीवैं जाइ ॥
जन हरीदास मतिवालि मैं, मेरा मन हरि लिया चुराइ ॥३॥

(१५६)

अरे मैं पी मतिवाला रे,
'छाक चढ़ी सुधि वीसरी', पीया अगम पियाला रे ॥टेक॥
गोली चाढ़ी ग्यांन की, ममता कस दीया रे ॥
कांम क्रोध 'वालणि' वल्या, भमही गुड़ कीया रे ॥१॥
गिगन मंडल माटी चिगै, सरवै वहो धारा रे ॥
पांच सषी सनमुष सदा, गुर पावण द्वारा रे ॥२॥

पाठभेद—यौं-१। ग्रिह-३-४। पेमका-१। विछुडण-१। विछरण-५। अवर-१। "सुरति समानी साच मैं" बालण-५।

शब्दार्थ—वीनवै=विनती करे। छाक चढ़ी=मस्ती आई। दरीवे=दरबार मे। मतिवालि मैं=मस्ती मे, प्रेममगन। वालणि=पलीता, ईंधन। गिगन मंडल भाठी चिगै=सहस्रारदल मे रुकी हुई वृत्ति की भट्टी।

रांम रसाइण रीति है, साधां कूँ भावै रे ॥
जो पीवै सोई छकै, छकि मांहि समावै रे ॥३॥
प्रेम पिया तब जांणिये, तन मैं मन आवै रे ॥
जन हरीदास आछै मते, कछु आंन न भावै रे ॥४॥

(१६०)

गोव्यंदो ज्यूँ जांणै त्यूँ गाइ,
'जनम' अमोलिक जात है, तूँ हरि सूँ हेत लगाइ ॥टेक॥
अलष निरंजन उरि वसै, रांम नाम 'निज' भेद ॥
रांम विसारयां होत है, सही कंध का छेद ॥१॥
'रवि ससि' मिलै न मुकति फल, पति सूँ प्रीति न होइ ॥
करमकाट मोरचा जड्या, तूँ नांव नीर लै धोई ॥२॥
सात समद 'नौ' सै नदी, वनी अठारा भार ॥
गिर रवि ससि तारा मंडल, तहां परै दीदार ॥३॥
एक सैज का सोवणां, एक महल मैं वास ॥
जन हरीदास हरि सूँ मिल्या, गहि प्रेम प्रीति परकास ॥४॥

(१६१)

निरंजन नाइ लागा हो,
भरम अँधारा मिटि गया, सूता था जाग्या हो ॥टेक॥
अगम तहां गम को नहीं, मैं गम करि लीया हो ॥
प्रीति 'पयाला' 'प्रेम' का, तुम्ह दीया पीया हो ॥१॥

पाठभेद—जन्म-१। न्यज-२। रवि-सिस-२-३। नव-१। पियाला-१-३। पेम-१।

शब्दार्थ—सही=निश्चय से। कंध का छेद=सिर कटे, नाश हो। सात समद=रसादि सप्तधातुरूप सागर। नौ सै नदी=नौ सौ नाड़ियां। सैज का=शैय्या, हृदयरूपी शैय्या पर। नाइ=नाम।

जा कै गांव ठांव कुल को नहीं , कैसे करि पाउँ हो ॥
गुरि डोरी दीन्ही साच की , तिसि लागा आउँ हो ॥२॥
भगति निवाजण में सुण्या , तुम्ह कारिज सारया हो ॥
नांमा जन रैदास सा , ले पारि उतारया हो ॥३॥
अगम पियाला प्रेम का , तुम्ह दीया पीया हो ॥
गोरषनाथ कबीर सा , अपणां करि लीया हो ॥४॥
पींपा सोंझा सेन सा , हरि लोक बसाया हो ॥
जन हरीदास हरि मौज सुँणि, चरणां चलि आया हो ॥५॥

॥ इति राग मारू सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग केदारो ॥

(१६२)

सनेही प्रांण आलस कियो रे अघाइ ,
हरि हरि सुमरि सगौ हरि तेरो , तूँ हरि का गुण गाइ ॥टेक॥
माल मुलक अपणां करि बैठा , तेरां नांही कोइ ॥
'यहां' सुष अलप अनंत दुःष आगे , अंति चलैगो रोइ ॥१॥
काहे कूँ 'सिर' भार सहत है , सकै तो बोझ उतारि ॥
जन हरीदास भजि रांमसनेही , तूँ अपणा काज सँवारि ॥२॥

(१६३)

मन रे ! गोंव्यंदा गुण गेह ,
'भगत' भव रिपु मरम भंजन , करण संत सनेह ॥टेक॥

पाठभेद—इहां-२-३-४। सिरि-२-३। भगति-१-३।

शब्दार्थ—निवाजण=अतिकृपालुता, वात्सल्य। मौज=आनन्द। अघाइ=धाप-कर, अत्यन्त। सगौ=मित्र, सहायक।

सोई ब्रह्म सनाथ निरपष, 'पषि' वंध्या जनकै भाइ ॥
अकल तरवर सकल व्यापी, अगहि गह्यौ न जाइ ॥१॥
परम जोति प्रकास पूरण, अगम वार न पार ॥
जन हरीदास सो सुष राषि नैंना, निरषि वारूँवार ॥२॥

(१६४)

मन रे! गोव्यंदा गुण गाइ,
अब कै जब तब ऊठि चलैगो, कहत 'हूँ' समझाइ ॥टेक॥
अटकि अरि हरि ध्यान धरि मन, सुरति हरि 'स्यूँ' लाइ ॥
मजसि भगवंत भरम भंजन, संत करण सहाइ ॥१॥
तरल 'त्रिष्ना' त्रिवधि रसि वसि, गलत गत तहां चंद ॥
जाइ जोवन जुरा ग्रासै, जागि रे मतिमंद ॥२॥
मोह मन रिप ग्राह मैं तैं, गहर जल गुण देह ॥
जन हरिदास आजिस कालि नांहि, हरि भजन करि लेह ॥३॥

(१६५)

जागौ रे! अब नींद न कीजै, 'निस' दिन आव घटै तन छीजै ।टेक।
बहौत दिनां तै यहु छक पाया, सो तो कौड़ी सटै गमाया ॥
हीरा था पणि हाथ न आया ॥१॥
कांम क्रोध माया मद माता, निस दिन काल न देषे घाता ॥
रांम भजौ हरि 'समरथ' दाता ॥२॥
ग्यांन प्रकास निजरि 'नित' 'येही', दुरिहै तन न रहै या देही ॥
जन हरीदस भजि रांमसनेही ॥३॥

॥ इति राग केदारो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—पष-५ । हौ-१-५ । स्यूँ-१ । त्रिसना-२ । न्यस-२ । सम्रथ-४-५ । न्यत-२ । एही-२-३ ।

शब्दार्थ—पषि वंध्या=पक्ष में हुआ, सहायक बना । जन कै=प्रेमी के, भक्त के । वारूँवार=बारबार । अटकि=रोक । अरि=कामादि शत्रु । त्रिवधि रसि=त्रिगुणात्मक पदार्थों की चाह । चंद=शुद्ध मन । गुण देह=भौतिक शरीरगत पांच शब्दादि गुण । दुरिहै=छिपेगा, नष्ट होगा ।

॥ अथ राग विहंगड़ौ ॥

(१६६)

रातड़ियां जात सिराणी ,
पिय विन प्रांण 'तरसि' तलफत है , ज्यूँ मछली विन पांणी ॥टेक॥
अंतरि चोट विरह की लागी , नष सिष चोट समांणी ॥
विकल भई हरि अजहुं न 'आये' , हरि जाणत हैं मैं जांणी ॥१॥
जांण प्रवीण परमसुप दाता , निरगुण नाह विनांणी ॥
प्रीति विचारि मिलौ 'परमानंद' , अवला नही विडांणी ॥२॥
कहा कहिये कछु कहत न आवै , उनमनि रहैत लुभाणी ॥
जन हरीदास हरि सूँ मन मान्या , आदि अंति सुष जांणी ॥३॥

(१६७)

हसि का सूँ वोलिये ,
पीव सूँ परचो नांहि , अन्तर षोलिये ॥टेक॥
रैंणिस वाई वहि गई , तन मन वैठि षोइ ॥
हुँ वहु कुचील कुदरसणी , 'सकति' सुहागन होइ ॥१॥
पीव कै 'पतिवरता' घणी , तहां रहै मन लाइ ॥
हूँ तरसू वोले नहीं , यौ दुष कहां समाइ ॥२॥
अवला को वल को नही , 'प्रीतम' रहे रिसाइ ॥
सदा 'संगाथी' रांम या , मोहि प्रेम पियाला पाइ ॥३॥
अंतरजांमी तुम्ह विना , दूजा कछु न सुहाइ ॥
जन हरीदास हरि विन मिल्यां, जनम 'अमोलिक' जाइ ॥४॥

॥ इति राग विहंगड़ो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—तरस-५ । आए-३-४ । प्रमानंद-५ । सक्ति-५ । पतिव्रता-१ । प्रीतम-५ । सँगाती-५ । अमोल्यक-२ ।

शब्दार्थ--रातड़ियां=राते सिराणी=बीत गई । विनाणी=जगत्कर्त्ता । विडांणी=दूसरो की, औरों की । वाई=व्यर्थ । कुचील=गन्दी, मैली । कुदरसणी=कुरूप । तरसूँ=विलखूँ ।

॥ अथ राग धनाश्री ॥

(१६८)

रांम सनेहीडा हरि विन, दूजा अलप सनेह ॥
दूजा देषत 'जाहिला', ज्यूँ धूँवर का मेह ॥टेक॥
तन धन जोवन ना रहै, दुवध्या दरसन होइ ॥
चौरासी चौपड़ि मँडी, ता मैं चोट न वंचै कोइ ॥१॥
पूत कलित परिवार मैं, सकल रह्या 'उलझाइ' ॥
स्वारथ का सवको सगा, अंति अकेला जाइ ॥२॥
समझि पड़ी सतगुर मिल्या, पैंडा दिया वताइ ॥
जन हरीदास आनँद भया, ता सुष मैं रह्या समाइ ॥३॥

(१६९)

'प्रीतम' प्रांणियां रांमसनेही जोइ,
रांमसनेही विन भज्यां, कवहूं न 'त्रिपति' होइ ॥टेक॥
जिन जल तैं पैदा किया, सगली सौंज वणाइ ॥
सो सदा संगाती गोव्यंदा, तूँ तासूँ ताली लाइ ॥१॥
ज्यूँ वादल मिलि वीछड़ै, आप आप कूँ जांहि ॥
दिन दस का मेला भया, निहचै रहणां नांहि ॥२॥
'वहौड़ि' वहौड़ि लाभै नहीं, मनिष 'जनम' अवतार ॥
अव कै नरहरि ना भज्यौ, तो तोकूँ वार न पार ॥३॥
चढ़ि मति वूड़ै वापड़ा, 'सलिल' मोह की धार ॥
जन हरीदास हरि गाइलै, भजि केवल सिरजनहार ॥४॥

पाठभेद—जाइला–५। उरझाइ–१। प्रीतम–४-५। तिरपति–३। बहुरि–१। जन्म–५। सलयल–२।

शब्दार्थ—जाहिला=जायगा। दुवध्या=असमंजस, संशय। कलित=स्त्री। जल तैं=शुक्र से। सगली=सब, सम्पूर्ण। सौंज=सामग्री। ताली=लगन, संयोग। वूड़ै=डूबे। बापड़ा=दीन, तुच्छ।

(१७०)

अवधू अगम पियाला पीजै,
हरि रस अजर जरै तौ जीजै, सिर दै सौदा कीजै ॥टेक॥
सत रज तम रस पांच 'रहत' रस, ता रस सूँ मन लागा ॥
इंम्रत झरै प्रांण रस पीवै, भरम गया भै भागा ॥१॥
मन गहि पवन सहस दस संगी, दम थौड़ सहस सूँ सारा ॥
'एकै' डोरि एक रसि लागा, गुर गमि ग्यांन विचारा ॥२॥
विगसत कँवल परम तत दरसन, 'परसि' परम तत पाया ॥
जन हरीदास मधुकर मतिवाला, वंकनालि रस पाया ॥३॥

(१७१)

वा देस सनेह रा, जहां उदै अस्त अघ नांहि ॥
रूप अरूप यार सब यारां, 'जिद' वसै ता मांहि ॥टेक॥
स्यांम न सेत पीत रँग रहता, अगम वार नहिं पारा ॥
जहां तहां सुणै जहां तहां देषै, रहै सकल तैं न्यारा ॥१॥
मुकतै महलि जाइ मन बैठा, गुर किरपा तैं लहिये ॥
उनमनि रहै तिकौ मिलि षेलै, वातां वादि न वहिये ॥२॥
पछिम देस हाट नहिं पाटण, सौदा तहां हमारा ॥
जन हरिदास विणज सिर साटै, विणज विणज मन प्यारा ॥३॥

पाठभेद—रैत–५। येकै–२। प्रम–१। ज्यंद–२।

शब्दार्थ—सत रज तम=त्रिगुणात्मक। रस पाच=पञ्चभूतात्मक रस। एकै डोरि=स्थिरवृत्ति। विगसत=प्रस्फुटित, खिलने पर। मधुकर=मनभ्रमर। उदै अस्त=जन्म-मृत्युरहित। अघ=पाप। जिद=जीव, प्राण। मुकतै महल=मुक्तस्थान, आत्मनिष्ठ होना। पछिम देस=ब्रह्मदेश, गगनमण्डल। विणज=व्यापार, सौदाकर।

निरूपण सम्यक् रूप मे नही हो पाये है। विशेषत राजस्थान मे होने वाले सन्त-प्रवरो का शायद उनको न तो पूरा परिचय था, न उनके साहित्य का अनुशीलन। अत राजस्थान के अनेक महान् सन्तो का उनने उल्लेख तक नही किया है। महात्मा हरिदासजी भी उन उपेक्षित सन्तो मे ही है क्योकि 'विनोद' मे उनके बारे मे कोई विवेचन नही है।

(ख) अपर लेखक

मिश्रबन्धुओ के पश्चात् हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखक माननीय पं० रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' पर ध्यान जाता है। आपने अपने इस ग्रन्थ मे कालानुबन्ध से हिन्दी इतिहास का निरूपण किया है। वैसे विषय-सम्बन्ध से भी विवेचन किया गया है। उस ग्रन्थ मे आपने आदिकाल, पूर्व मध्य काल, उत्तर मध्यकाल, आधुनिक काल, ऐसे काल को चार भागो मे विभक्त किया है। संख्या दो पूर्व मध्य काल मे ही प्रकरण दो मे "निर्गुण धारा ज्ञानाश्रयी शाखा" का विवरण दिया गया है। इस प्रकरण मे कबीर, रैदास, नानक, दादू और सुन्दरदास की रचनाओ तथा उनके जीवन-काल के बारे मे शुक्लजी ने अपने विचार प्रकट किये है। निर्गुण धारा के अन्य सन्तो का इस ग्रन्थ मे भी उल्लेख नही किया गया है। समझ मे नही आता कि एक ऐसे प्रकाण्ड लेखक ने भी, जबकि हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखा, निर्गुण धारा के अन्य सन्तो का इस प्रकरण मे समावेश क्यो नही किया ?

संभव है, ग्रन्थ की विस्तारभीति से ऐसा किया गया हो, पर जब ग्रन्थ हिन्दी के इतिहास से ही सम्बन्धित है, तब चाहे संक्षप मे ही सही, निर्गुण धारा के उन महान् सन्तो का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिये था जिनने अपनी अनुभूतिमय रचना से हिन्दी के एक विशेष अंग की पूर्ति की। निर्गुणवाद का निरूपण करने वाले पर्याप्त संख्या मे ऐसे महात्मा हुये है जिनने जन-समाज के मानस में नैतिक स्तर बनाये रखने मे बहुत महत्वशाली योग दिया है। उनकी वाणियों ने साधारण मनुष्यो को अपना जीवन ऊंचा उठाने मे पथप्रदर्शन का कार्य किया है। सन्त साहित्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। साहित्य से अभि-प्राय यही नही है कि वह काव्यमय ही हो। संभव है, शुक्लजी ने या तो राज-स्थानी सन्त साहित्य का ठीक से पता न होने से या फिर सन्त वाणियो को काव्या-नुशासन से बाहर मान उपेक्षा कर दी हो।

उनने निर्गुण धारा मे दादूजी तथा दादूजी के शिष्य सुन्दरदासजी को ही स्थान दिया है, जब कि राजस्थान के अन्य अनेको रचनाकार सन्तो का उसमे नाम तक नही आया है। राजस्थान मे नाथो, सिद्धो तथा दादूपंथी, निरंजनी,

(१७२)

तब मन 'निरमलो रे', जब लागै हरि नांइ ॥
भरमै तौ लागै नहीं, लागै तौ भरमै कांइ ॥टेक॥

रांम भजै विषिया तजै, समझि पिछांणै साच ॥
साच सनेही गोंव्यंदो, अवर सकल सुष काच ॥१॥

मोह दोह ममता तजै, भजै निरंजन देव ॥
सकल वियापी 'सँगि' वसै, आनँद अलष अभेव ॥२॥

अरकरूप आसा मुषी, दीसै सब संसार ॥
जन हरीदास के राम है, 'जीवनि' जगत अधार ॥३॥

(१७३)

संतो ! सतगुर परउपगारी,
भौजलि बह्या जात जब देष्या, तब गुर बांह पसारी ॥टेक॥

मेरा करम काल व्है लागा, तब गुर 'वोषद' लाई ॥
थोड़ा रोग बहुत दारू दे, वेदनि दूर गमाई ॥१॥

आतम कँवल सिंघासण करिहूँ, रतन जड़ाऊँ मांही ॥
तन मन वारि वारि मैं डारूँ, तौ भी ऊरण नांही ॥२॥

उपजी प्रीति परम सुष पाया, तब गुर मिल्या हमारा ॥
जन हरीदास ले चरणां राष्या, मेट्या भरम अँधारा ॥३॥

(१७४)

वीर वटाऊ वा हरिजी सूँ, कहियो रे जाइ ॥
रातड़ियां दूभर भई, मोहि तारा गिणत विहाइ ॥टेक॥

पाठभेद—नृमलो रे-२-५ । संग-५ । जीवन्य-२ । वोषदि-१ ।

शब्दार्थ—निरमलो रे=शुद्ध, वासनारहित । काई=क्यों । अरक=सूर्य । भौजलि=संसारसागर में । वोषद=दवा, औषधि । दारू=दवाई । ऊरण=कर्जरहित, ऋणमुक्त । वीर वटाऊ=हे भाई पथिक ! दूभर=भारी, कठिन ।

सांवण मास अकेलियां, सेझ न सूतो जाइ ॥
पिव नैड़ो परसै नहीं, मोहि विरह विलंव्यो आइ ॥१॥
रैंणि अँधेरी मैं दुषी, चरण दुरांणा दोइ ॥
तलफि तलफि तन जात है, मेरौ नाथ 'मिलावै' कोइ ॥२॥
विरह मंढी मैं वास है, ताला वेली जीव ॥
जन हरीदास हरि आइये, मेरे परम सनेही पीव ॥३॥

(१७५)

रांम मिलाइलै हां हो, मेरे परम सनेही राइ ॥
वहौतक दिन 'विछड्यां' भया, अब मोपै रह्यौ न जाइ ॥टेक॥
परम सनेही प्रीतमा, सेझ असांड़ी आव ॥
तुम्ह 'कहियत' हौ सोहनां, मुझ तुझ देषणदा चाव ॥१॥
अंतरजांमी आंतरो, नैड़ा वसौक दूरि ॥
'अवला' पीव पावै नहीं, मेरा नैन रह्या जल पूरि ॥२॥
हर दम यहु तन जात है, हम वल कछु न वसाइ ॥
महल पधारो माधवे, जन हरीदास 'वलि' जाइ ॥३॥

(१७६)

सुमरि सनेही आपणौं, जाकी आदि 'अंति' मधि नांहि ॥
सतगुर साच वताइया, मेरा प्राण वसै ता मांहि ॥टेक॥
पांडू 'कृष्ण' समीप था, गल्या हिंवालै जाइ ॥
लोहा कूँ पारस मिलै, तौ क्यूँ कांटी षाइ ॥१॥

पाठभेद—म्यलावे–२। विछुरयां–१। कहिइत–१। बिरहनि–५। वल्य–२। अंत–१। किसन–२।

शब्दार्थ—विलंव्यो=लग्यो, उत्पन्न हुयो। ताला वेली=व्याकुल, छटपटाना। असाड़ी=हमारी। सोहना=सुन्दर। चाव=तीव्र इच्छा। गल्या=गल गये। हिंवालै=हिमालय। कांटी=काठा, जर लगना।

काया क्यूँ गोपी हड़ै, यह इचरज मन मांहि ॥
'अनिन' भगत गोपी नहीं, कै वो करता नांहि ॥२॥
पलक फुरंता जुग फुनां, हरि जुग थापै पल मांहि ॥
छल बल करि हरि क्यूँ लड़ै, समझि पड़ै कछु नांहि ॥३॥
हिरणाकुस रांवण हत्या; जुरासिंध सिसुपाल ॥
जन हरीदास यूँ जाणिये, यहु कालहि ग्रासै काल ॥४॥

(१७७)

सतगुर दिया भेद बताइ, रहै रांम दूजा सब जाइ ॥टेक॥
धरी देह तेता अकार, सो क्यूँ कहिये सिरजनहार ॥
जाकै राग द्वेष कछु व्यापै नांही, सोइ रमतारांम सकल घट मांही ॥१॥
भगति हेत कोई भगत पठाया, आप अगाध इहां नहिं आया ॥
पहरया भेष मिटी भक भूरि, नैड़ा रांम बतावै दूरि ॥२॥
दस 'अवतार' कहो क्यूँ माया, हरि अवतार अनत करि आया ॥
जलि थलि जीव जिता अवतार, जल ससि 'ज्यूँ' देषौ तत सार ॥३॥
हरि अपार पार को नांहि, साधु जन षेलै ता मांहि ॥
जन हरीदास भजि केवलरांम, निरमल नांव तहां बिसराम ॥४॥

(१७८)

गोव्यंद भज मन मांहिला, अब जनि चालै हारि ॥
हरि सुमिरण सब तैं सिरै, हरि भजि निज जन उतरै पारि ॥टेक॥
सतगुर माथै कर धरया, सोवत लिया जगाइ ॥
सोवण की बरियां नहीं, इंहि हटवाड़ै आइ ॥१॥

पाठभेद—अन्यन-२। औतार-५। ज्यौं-१।

शब्दार्थ—हड़ै=लूटे। अनिन=अनन्य, परम। फुरंता=फुरता, स्फुरण होना, क्षणभर मे। फुना=फना, समाप्त हो। ग्रासै=खाय। अगाध=अथाह। मिटी भक भूरि=खानपान की चिन्ता मिटी। माहिलां=अन्तरात्मा। बरियां=समय। इंहि हटवाड़ै=इसी संसार के बाजार में।

हटवाड़ै विणजी भली, लै रे लाइ लाह ॥
षोटा चुँणि कानै करी, तौ दोसन दै लो साह ॥२॥
माथ सकल लै सावतौ, गगन मंडल मठ छाइ ॥
लूकांई लागै नहीं, आणंद मैं दिन जाइ ॥३॥
मरण नदी जल मत पिवै, पीवत लेइ तुड़ाइ ॥
वूड़ै लौ रे वापड़ा, निकस्यौ वहुड़ि न जाई ॥४॥
सुणि संगी तोसूँ कहूँ, आंधा अपरि न चाल ॥
मन का मूल 'उपाड़िलै', थारै अंतरि ऊँड़ा साल ॥५॥
जन हरीदास हरि गाइलै, अंतरि अलष पिछांणि ॥
मन मधुकर मुकर्यौ फिरै, उलटि अपूठो आंणि ॥६॥

(१७६)

प्रीतम प्रांणिया तूँ 'निज', देवल वैठो आइ ॥
निज देवल षोज्यो नहीं, तौ जासी जनम ठगाइ ॥टेक॥
देवल एक षंभ दोइ जाकै, पांच भांति रंग दीया ॥
दस दरवार वहौत्तर छाजा, गली गाँव 'वहौ' कीया ॥१॥
वहौत जतन करि वांणिक वांण्या, ऊपरि कलस षढ़ाया ॥
ए दोइ रतन उजागर दीसै, वहौत भाँति सूँ लाया ॥२॥

पाठभेद—उपारिलै-५। न्यज-२। बहु-१। बहुत-१।

शब्दार्थ—विणजी=व्यापार। रे लाइ=हे भोले। लाह=लाभ। कानै करी=एक ओर, दूर करिये। सावतौ=सामन्त, पूर्ण। लू कांई=किसी तरह का संताप। अपर न=दूसरी ओर, विषयभोग में। ऊँडा=गहरा। साल=घाव। मुकर्यो=विमुख।

पद १७६ का अर्थ—हे प्राणी! उस प्यारे प्रीतम के पास आकर बैठो। यदि तुमने अपना सही स्थान नही खोजा तो यह मनुन्यजन्म ठगाकर चला जायगा। यह एक देवल–देवरारूप शरीर है, इसमे दो पैरो के खम्भे हैं, पांच तत्त्व का रङ्ग है, दस दरवाजे और बहत्तर छज्जे हैं, विविध नाडी-स्रोत गलियाँ हैं, हृदय-मस्तिष्कादि कई गाँव इस देहनगरी मे हैं, परमात्मा ने पूरे यत्न से इस शरीर को रचा है, इस देह के सिररूपी कलश चढाया है, नेत्ररूपी दो रत्न हैं, जिनसे सब पदार्थ दिखाई पडते हैं।

ता मैं सागर 'सपत' 'अष्ट' गिरि परवत, नदी निवासैं लाई ।।
वसुधा भार अठार गगन फुनि, तीनि सवल ठकुराई ।।३।।
दोइ 'प्रधान' सदा संगि षेलैं, तिन गति लषी न जांहि ।।
मूनी एक 'मूनि' गहि बैठा, सो तैं षोज्या नांहि ।।४।।
ता मैं व्रत चौइस वार तिथि कवला, अगम 'निगम' ता मांहि ।।
गरजै गगन गहर धुनि ऊठै, वेद धुनि होइ ता मांहि ।।५।।
तारा मंडल भौंण भौंणपति, नवूँ नाथ संगि लीया ।।
जोगी एक जुगति सब जांणै, 'सहजि' षोजि सुष लीया ।।६।।
सुर तेतीस वसै ता मांही, तीरथ पुरी सवाया ।।
सेस महेस 'विसन' ब्रह्मादिक, रवि ससि संग लगाया ।।७।।

पाठभेद--सप्त-१-४। असट-२। परधान-३-४। मून्य-२। न्यगम-२। सहज्य-२। विष्न-३-४।

इसमे रसादि धातुओ के सात सागर है, ❀ अष्टचक्ररूप पहाड है, नौ सौ नाडियां ही नदियां है। इस देहरूपी पृथ्वी मे अठारह भार-वनस्पति व आकाश भी व्याप्त है, तीन गुणो की तीन अवस्थाओ की ठकुराई है, मन और बुद्धि ये इस नगरी मे प्रधान हैं, इनका जीव के साथ खेल चलता है, इनकी गति आसानी से नही जानी जाती। इस देह मे एक आत्मा मुनिरूप मे मौन लिए हुये बैठा है, उसकी हे प्राणी! तैंने तलाश नही की, इस शरीर मे ही एकादशी, पूर्णिमा आदि के चौबीस व्रत, सात वार, पन्द्रह तिथियाँ है। वेद-स्मृतियाँ भी इसी मे है, हृदयाकाश मे अनहद शब्द की ध्वनिरूप गर्जना हो रही है, वही वेद के मूल प्रणव-वाच्य ॐकार की भी ध्वनि होती रहती है। तारा मडल-ब्रह्माण्ड, चौदह लोक और उनके अधिपति तथा नऊँ नाथ-पाच ज्ञानेन्द्रिया चार अन्त करण ये सब साथ है। इसी देह मे आत्मतत्वरूप एक योगी भी विराजमान है जो सब क्रियाओ का ज्ञाता है। इसने सहज व्यापक ब्रह्म को खोज चिर सुख प्राप्त किया। वसुरुद्रादि तथा इन्द्रियाधिपति तैंतीस देवता भी इस देह मे है, चौसठ तीर्थ सात पुरी भी इसी मे है। शेष-प्राण, महेश-तम, विष्णु-सत, ब्रह्मा-रज, रवि-शशि-मन-प्राणादि भी सङ्ग मे हैं।

❀ देह मे आठ गिरिशृङ्खलाएँ है—मेरुदण्ड मे सुमेरु, पीठ मध्य हिमालय, वाम स्कन्ध मे मलय, दक्षिणस्कन्ध मे मन्दराचल, दक्षिण कर्ण मे विन्ध्य, वामकर्ण मे मैनाक, ललाट के मध्य भाग मे पतिशैल, ब्रह्मकपाट मे (दशमद्वार) कैलाश पर्वत है।

*इन्द्र कुवेर दांमणि झिलिमिलि , गगन गरजि घण आया ।।
जन हरीदास एक अचरज देष्या , सोइ देवल मूरति पाया ।।८।।

(१८०)

म्हारी आतमा है रांमसनेही जांणि ,
आदि अंति था अब हरि सोई , तूँ तांसूँ बांणिक बांणि ।।टेक।।
जाति वरण कुल नांही वाकै , सो 'निकुला' 'निरधार' ।।
ऊँड़ौ 'अथग' थाह नहि लाभै , नहीं वार नहिं पार ।।१।।
पार न लाभै निज चिंतामणि , परा परै निज सार ।।
जलधर पवन गगन अरु ज्वाला , वाकै एक सबद 'विसतार' ।।२।।
सात समंद धर मार अठारा , सबहिन कूँ हरि पावै ।।
सूनि सनेही सहजै बरषा , उलटी नदी चलावै ।।३।।
उलटी नदी अगम गम नांही , कोई विरला जन जांणै ।।
मन कूँ पकड़ि सहज घरि घेलै , 'पांचौं' उलटा तांणै ।।४।।
निज जन निज चरणां का चेरा , तेउ न जांणै भेव ।।
उलटी सुरति अगम रस पीवे , करै 'अकल' की सेव ।।५।।
सेवा अकल सकल विधि जांणै , वप घट वरणि न जांहि ।।
निराकार निरंजन ऐसैं , व्यापि रह्या सब मांहि ।।६।।

पाठभेद—न्यकुला–२ । न्यरधार–२ । अथघ–१ । विस्तार–५ । पाचूं–२-४ । अलप–२ ।

शब्दार्थ—बांणिक बांणि=आडन कर, सम्बन्ध बना । निकुला=कुल व परम्परा विहीन । अथग=अथाह । थाह=गहराई का अन्त । सूनि=निर्गुण ब्रह्म । उलटी नदी=बाह्यवृत्ति को उलट अन्तर्मुख करे । पाचों=पांचों ज्ञानेन्द्रियां । अकल=गुण, धर्म, जाति की कलन से रहित । वप=शरीर, देह ।

* जागृत कुण्डलिनी मे प्रकाशमय दामिनि–बिजली झिलमिला रही है, ब्रह्मरन्ध्र स्थान में प्राण पहुँचा । महाराज हरिदासजी कहते हैं, उक्त साधन के फलस्वरूप इस शरीररूपी देवल को अभिव्यक्त हुई आत्मनिष्ठवृत्ति ने खा लिया, एक चेतनरूप शेष रहा ।

ज्यौं सनकादिक रहे निरंतरि , सेस सहस मुष गावै ॥
गोरष हणूँ भरथरी सुषदेव , उलटी सुरति चलावै ॥७॥

सुरति चलावै पार न पावै , थाघत मांहि समाया ॥
व्यापक ब्रह्म ऐसे हम जांण्या , गहणी मांहि न आया ॥८॥

भजि गोपाल अकल अविनासी , हरि 'निरमल' निज सारा ॥
भौ सागर तिरिवे कूँ भेरा , षेइ उतारै पारा ॥९॥

पारि उतारै नरक 'निवारै' , सुष पावै निज दास ॥
ज्यूँ हरि गाया त्यूँ सुष पाया , सुष सागर में वास ॥१०॥

दास कबीर 'नाम दे' छींपौ , उलटी ताली लावै ॥
अगम अगम करि तन मन षोजै , तन षोज्यां वित पावै ॥११॥

ज्यां तन षोज्या ते घरि आया , उलटि अकल सूँ लागा ॥
जन हरीदास अविनासी भजतां , काल भरम 'भै' भागा ॥१२॥

(१८१)

तुम्ह आवो हो राम तुम्ह आवो, अहो मेरे अंतरजामी देव ॥टेक॥

साथण सषी सहेलड़ी , एक मनी एक तार ॥
पंथ निहारै पीव कौ , मिलिये सिरजनहार ॥१॥

विरहणि विरह विवोगणी , 'दरसणि' कारण पीव ॥
विकल भई विलंबै कहाँ , ताला वेली जीव ॥२॥

अगम गवण गम कौ नहीं , चितवत रैंणि विहाइ ॥
सुष दिषलावो गोव्यंदा , जन हरीदास वलि जाइ ॥३॥

पाठभेद—न्यरमल–२ । नृमल–४ । न्यवारै–२ । नामदेव–१-५ । भय–१ । दरसण–५ ।

शब्दार्थ—थाघत=थाह लेते, अन्त लेते । गहणी मोहि=पकड मे, वश मे । साथण=साथ देने वाली । सहेलड़ी=सखी । विलंवै=अटके, रुके ।

(१८२)

वसत विडांणी रे जिवड़ा हरि सर्णों, हरि सुमरैं क्यौं नांहि ।।टेक।।
नरपति भौंपति दरि पड़ा, ढाल धुजा फहराइ ।।
अवधि वदीती सँगि को नहीं, ऊठि अकेलो जाइ ।।१।।
हैदल गैंदल सगि चलैं, पर दल जीतैं राड़ि ।।
माल मुलक ज्यूँ का त्यूँ रहै, अंति चलैं कर झाड़ि ।।२।।
सिरि छत्र सिंघासण वैंसणां, ऊँचा ऊँचा महल अवास ।।
या 'सुषि' हरि सुष वीसर्यौ, ता तैं तेरो जमपुर वास ।।३।।
परम सनेही 'प्रीतम' आपणाँ, जीवनि जगत अधार ।।
जन हरीदास हरि गाइलैं, हरि सकल सुषां सिर सार ।।४।।

(१८३)

रातड़ी सवाइ हो रामजी वह गई, पल पल छीजैं हो गात ।।
करणां सुणि करणांमई, महलि पधारो हो नाथ ।।टेक।।
सब मतिवाला हो रांमजी सब छक्या, नींदड़ी न आवैं हो मोइ ।।
मेरी वेदन रांमजी जांणि है, कै जिमि वेदनि होइ ।।१।।
यहु तन यूँ ही रांमजी जात है, हम बल कछु न वसाइ ।।
परमसनेही रांमजी 'तुम्ह' मिलौ, हरि सकल भवन पति राई ।।२।।
चरणां चौकी रांमजी चित 'धरूँ', आतम सेझ सँवारि ।।
नैंन लुभानां रामजी प्रीति सूँ, दरसौ देव मुरारि ।।३।।
जन हरीदास रांमजी यूँ वीनवैं, मेरा नैंनन पंडैं हो धार ।।
दरस दिषावौ रांमजी आपणां, हरि समथ सिरजनहार ।।४।।

।। इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—सुष-५ । प्रीतमा-४-५ । तुम-५ । धरौ-१ ।

शब्दार्थ—विडाणी=औरों की, दूसरों की । दरि=दरवाजे, हाजिर । अवधि=नियत समय, आयु । वदीती=बीती, समाप्त हुई । हैदल=घुड़सवारों की सेना । गैंदल=हाथियों की फौज । राड़ि=लड़ाई, युद्ध । अवास=आवास, रहने का स्थान । पंडैं=खण्डित करे, सीमा को तोड़कर बहे ।

॥ अथ आरती ॥

(१८४)

आरती जग जीवण देवा, आतम अगर निरंतरि सेवा ॥टेक॥
चित चौकी हरि चरणां धरिहूं, 'आत्म' कँवल सिंघासण करिहूं ॥
दीपग ग्यांन सबद उजियाला, पांचू पहौप सुरति की माला ॥१॥
प्रीति परस स्यौ चंदन लाऊँ, प्रेम कलस ले कलस बधाऊँ ॥
सूँघौ साच ग्यांन गहि झारी, वहौ विधि चरचौं देव मुरारी ॥२॥
'निरमल' नेह चँवर करि झनकै, गगन मंडल में झालरि ठनकै ॥
जन हरिदास भया मन मंजन, आतम आरती करै निरंजन ॥३॥

×

अविचल आरती अवगति तेरी, रामसनेही 'जीवनि' मेरी ॥टेक॥
'जोनी' जनम जुरा नहि जाकै, वरण न वप रूप नहि ताकै ॥
अकुल अतीत सकल घट माँही, अपरंपार प्रमति कछु नाँहि ॥१॥
अभंग अभंग अरंगी रामां, पूरणब्रह्म परम सुष धामां ॥
अगम अगाध वार नहिं पारा, सो पति मेरे प्रांण अधारा ॥२॥
रमतारांम सुमरि मन मांही, कलिविष 'सहजि' सबै मिट जांही ॥
जगिमगि जोति सकल परकासा, प्रेम प्रीति गावै जन हरिदासा ॥३॥

(१८५)

तेरी आरती हो अलष निरंजन राइ, हो नाथ निरंजन राइ ॥
स्यौ 'विरंच' पार नहि पावै, सेस सहसमुषि गाइ ॥टेक॥
धरती अंबर तैं रच्या, चंद सूर मधि कीव ॥
पावक पवन अंब हरि किया, लष चौरासी जीव ॥१॥

पाठभेद—आतम-२। नृमल-४-५। जीवन्य-२। जूनी-१-२। सहज्य-२। विरचि-५।

शब्दार्थ—पाचौ पहौप=पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ ही पुष्प हैं। सूंघौ=इत्र। वप=शरीर। प्रमति=प्रमाण, माप। स्यौ=शिव। अंब=पानी।

आप निरंजन वप धरै, 'भगति' हेत हरि आइ ॥
अनंत रूप अवगति अविनासी, तुम गति लषी न जाइ ॥२॥
अनंत भवन करि ऊथपै, करण मतै मोइ होइ ॥
तुम बलिवंत जीव सव 'निरवल', पार न पावै कोइ ॥३॥
सुर नर सव जै जै करै, अगम कहत है वेद ॥
निराकार घणनांमी, तुमगति कोई न पावै भेद ॥४॥
अधम उधारण हम सुनें, अव कै है भल डाव ॥
जन हरिदास जगत गुरु स्वामी, दीजै भगति पसाव ॥५॥

॥ इति आरती सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सोरठी ॥

(१८६)

वासुर जाइ रे निसि आइ पहूंती, निहरौ रौह निरदावै ॥
हरि भजि सैंण वैंण सुणि विक्रत, वलेन यहु छक आवै ॥टेक॥
तजि तिण रूप षिजै कांइ षड़चर, परिहरि विषै सगाई ॥
घट छूटां दुष सहसी फीटा, रांम सुमरि सुषदाई ॥१॥
रे रिणमोड़ फिरै कांई रूठो, रूठां किम रंग रहसी ॥
अव कांई कर जन आपै काल्हा, वलेज यहु दुष दहसी ॥२॥

पाठभेद—भगत–५। न्यरवल–२। नृवल–३-४।

शब्दार्थ—ऊथपै=स्थापित करे। घणनामी=अनेको नाम वाला। पसाव=इनाम, बक्सीस। वासुर=दिन। निहरौ=समीप, नजदीक। विक्रत=विकारी, पापी। वलेन=फिर। पड्चर=पशुवृत्ति। फीटा=निर्लज्ज। रहसी=रहेगा। काल्हा=बेसमझ, गलती करने वाला।

चरणदासी, दरियायी–सीथल–खेडापा रामस्नेही, शाहपुरा रामस्नेही, वेनामी आदि कई सम्प्रदायो के सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य तथा उनके अनुयायी महात्माओ ने हिन्दी की अभूतपूर्व सेवा की है। क्या उनके नाम हिन्दी इतिहास मे नही आने चाहिएँ थे ? इसका समर्थन कोई भी विवेकशील नही करेगा। रज्जबजी, सन्तदास, जगजीवण, जगन्नाथदास, दरियाव, वाजिद, बखना, भीषजन, चत्रदास, खेम, राघोदास, हरिदास, सेवादास, तुलसी, कल्याणदास, हरिराम, रूपदास, आत्मा-रामदास, रामभजन, दूल्हेराम, हरिदास, चेतनदास, मुरलीराम, चम्पाराम, चरणदास, हरिरामदास, रामचरण, रामदास, जैमलदास, दयालदास मंगलदास, स्वरूपदास आदि अनेको महान् सन्त राजस्थान की अन्यतम विभूतियाँ है। इन महान् साधको ने निरपेक्षभाव से अपनी अनुभूतिपरक रचनाओं से हिन्दी के भडार मे अनुपम साहित्य की देन प्रदान की है। हिन्दी साहित्य मे इनका गौरवपूर्ण स्थान अंकित होना चाहिये। जैसा कि अनुमान किया जा सकता है–शुक्लजी को राजस्थान की इन सन्त विभूतियो का तथा इनकी रचनाओ का परिचय न होने से ही उनकी 'निर्गुण धारा' अधूरी संकलित हुई है।

(ग) हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति

"हिन्दी साहित्य और उसकी प्रगति" के लेखक विजयेन्द्र स्नातक, क्षेमचन्द्र सुमन की भी यही स्थिति है। वे भी सन्त साहित्य से या तो सर्वथा अनभिज्ञ होंगे या इस पर कुछ लिखे गये पूर्व लेखको के आधार पर उनका ज्ञान आधारित है।

(घ) आचार्य चतुरसेन

आचार्य चतुरसेनजी ने भी "हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास" लिखा। इनकी कृति उपर्युक्त सब कृतियों से अधिक विस्तृत है। इनने राजस्थान के अनेक सन्तों का तथा उनकी कृतियो का अपने ग्रन्थ मे उल्लेख किया है। यह वस्तुत कुछ इतिहास के अश की पूर्ति करता है। इसमे विवरण सम्बन्धी पर्याप्त भूले अवश्य है जो कि उनसे होना अनिवार्य था। कारण उनका सम्पर्क साधु सम्प्रदाय से शायद ही अधिक हुआ हो। आचार्यजी की इस कृति मे भी निरंजनी सम्प्रदाय को स्थान नही मिला है। उनने भी इस सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का कोई विवरण नही दिया है, अतः उनके काल आदि का प्रश्न इस कृति मे कैसे आता ?

(ङ) उदयपुर के मा० मोतीलालजी मेनारिया एम ए. ने "राजस्थानी भाषा और साहित्य" नामक पुस्तक लिखी है। उनने भी अपनी इस कृति मे पंचम प्रकरण सन्त साहित्य का लिखा है। उक्त प्रकरण मे राजस्थान के प्रमुख पथप्रवर्त्तकों तथा कुछ उनके पूर्ववर्ती सन्तों का उल्लेख किया गया है। निरजनीपंथप्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का भी उक्त प्रकरण में अन्त में अतिसंक्षिप्त विवरण दिया है।

आई माप परच मां षोटा, कण कण कांइ षिंडावै ॥
पांच पचीस प्रांण मन मनसा, दे लै कांइन घरि 'नावै' ॥३॥
सील संतोष 'सति' दया सबूरी, इंण अवसरि इम कीजै ॥
जन हरीदास सति मनसा वाचा, रसनां रांम रटीजै ॥४॥

॥ इति राग सोरठी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सीधू ॥

(१८७)

ग्यांन वड़ राज मन साहि साचै मतै, सुमरि हरि निडर निज नांव पाया ॥
ग्रासि गुण ग्राह भंजि रांम जरणा जड़ी, सोइ मा ग्रासि है काल काया ।टेक।
गाइ गोपाल 'किरपाल' करणामई, अकल अरूप उरि ध्यांन धारूँ ॥
मंत मैं रिपहरण निपट 'निरभै' करण, रांम छाडूँ नहीं छाड़ि हारूँ ॥१॥
गहर मैं भीत त्रिष्ना नदी 'तषि' वहै, अनंत आगे वह्या मित नांही ॥
साध आकास मैं अटकि उलटा चढ्या, प्रांण मन सुरति आकास मांही ।२।
समद संसार जल सुजल 'तिरिवो' कठिन, जन हरिदास निति नेम हरिभजन कीजै
परम उदार करतार 'सम्रथ' धणी, नाथजी हाथि गहि राषि लीजै ।३।

(१८८)

कांम झल हेति सांसै पसु वहि गया, कोई वैद मिलियो नहिं सबद सांचो ।
आंषि फूटी अघट अवर दिसि ऊघड़ी, अरथि आंजी नहीं आंनि रातौ ।टेक।

पाठभेद—ग्रावै-५ । सत-२ । क्रिपाल-१-५ । न्यरभै-२ । तटि-५ । त्यरवो-२ । समरथ-१ ।

शब्दार्थ—षोटा=बुरा । पिंडावै=बिखेरे । गुण=त्रिगुण, सत-रज-तम । मित नांही=संख्या नही, पारावार नही । अटकि=मन-इन्द्रियो को रोक । झल=ज्वाला । पशु=अज्ञानी मनुष्य । वैद=सतगुरु । सवद साचो=ब्रह्मउपदेश । अघट=चेतन । अवर दिसि=विपरीत दिशा मे । ऊघड़ी=खुली । अरथि आजी नही=स्वस्वरूप देखने का अंजन नही लगाया ।

त्रिवधि तिण रूप मेर हरि विच मँड्यो , पंभ दोइ सांकलां जड्यो जोवै ॥
परम निधि भेद मध माथ लाधौ नहीं , मूल पसु 'आपकौ' आप षोवै ।१।
रोग मैं रोग अघ रोग दारुण दहै , कुवधि कांटै कल्यौ सुवधि नांई ॥
काच सू परसि निज माच न्यारो रह्यो , भेद तजि 'भरम' जलि धस्यौ धाई ।२।
×रोग तोड़ै तिको एक सूँ एक व्है , 'नांव' तौ निज जड़ी निकट जांणौ ॥
जन हरिदास भजि रांम मन मैल राषै नहीं, सुरति संमार मैं उलटि तांणै ।३।

(१८९)

गुर पीर विन नीर की परप लाभै नहीं , मीर निज निज 'भगति' परस जीवै ॥
गगन चढ़ि सींचवो पछिम दिसि वावड़ी, उलटि सींचै तिको साध पीवै ।टेक।
सुरति की डोरि सजि अगम घरि पेलिवौ, अगम घरि पेलि निज कँवल फूलै ॥
सुँनि मैं साच निधि कँवल उलटि सुलटि, गहरि मति ग्वालणि गोपि झूलै ।१।
अरक घरि तरक तजि समंद सुत समि करै, द्वादसी छाड़ि दिसि एक ध्यावै ॥
पैंसि पाताल मैं अगम जल आंणिवा , सहज घरि आतमा वेलि पावै ।२।
आप मैं अलप लपि उलटि पेलै नहीं , प्रीति परवांण निज प्रेम चाषै ॥
जन हरिदास निजरूप निरवांण निरमलकथा, प्रांण 'असथांन' निज सुरति राषै

(१९०)

निज भगत सदा निज रूप निरपत रहै , अकल अलगो नहीं सकल मांही ॥
सकल सुपसागर अगम अंतरि अगहि , ऊगि वरतै तिको अगम नांही ।टेक।

पाठभेद—आपरौ-२-३ । भ्रम-५ । नाई-१ । भक्त-५ । अरस्थान-१ ।

शब्दार्थ—त्रिवधि=त्रिगुणात्मक । पंभ दोइ सांकला जड्यो जोवै=अहङ्कार के खम्भे मे राग-द्वेष की साकल से बँधा हुआ देखना है । रोग मै रोग=जन्ममृत्युरूप । अघ=पाप । कल्यौ=फँसा हुआ । भेद तजि=द्वैतबुद्धि को छोड । भ्रम जल=संशय के पानी मे । धस्यौ धाई=दौड़कर प्रवेश किया । परप लाभै=पहचान मिले । गगन चढि= दशमद्वार मे पहुच कर । पछिम दिसि=सुषुम्ना मार्ग । निज कँवल=आत्मकमल । अरक घरि=इडा । समंद सुत=मन । द्वादसी छाडि=अनेक विषयो मे जाना, बारहवाट होना । पैंसि पाताल मै=नाभिकुण्ड मे पहुच कर । ऊगि=उदय हो, उत्पन्न हो । वरतै= अस्त हो, विलीन हो ।

× वही साधक जन्म-मरण के रोग से मुक्त होता है जो व्यापक एक चेतन ब्रह्मतत्व मे एकमेक हो जाता है ।

सति सदा आप आकार सौं सत नहीं , परम निज सार सो सकल सांई ॥
'और' पंषी तिकौं ठौड़ पावै नहीं , अनल पंषी रमै उरवार मांही ।१।
अकल तरवर तिकौं सकल जग ऊपरै , डाल बिन मूल बिन सदा छाया ॥
आइ जावै तिकौं समझि मन सति नहीं , रूप धारै तिती सकल माया ।२।
सकल त्रियापीक मति परम पति आपणौं,"गगन असथांन मन उलटि लाया ॥
जन हरिदास'परकास'पांचौ पिसण'परजल्या',घरचा मैं अधर घट निकट पाया ॥

(१६१)

सुमरि मन रांम सतिरूप समथ धणीं , भजसि भगवंत भव सिंध भारी ॥
जांणि जगदीस भव ईस अवसर इहै , 'विवधि' बहु फंध काटै मुरारी ।टेक।
साहि गुर ग्यांन जिव जागि नैड़ी जुरा , जांणै तौ जोर करि कांइ सोवै ॥
इसौ हीरा जनम वले वहौड़ि लाभसी नहीं, काच सूँ लागि कण कांइ षोवै ।१।
प्रांण परवांणि सिरि मौत मोटी विथा , काल वटपाड़ नित घात हेरै ॥
कलित परिवार सुत सकल स्वारथ सगा, आदि संगी सदा रांम तेरै ।२।
वँवलतर छांह कांटा घणां कांमना , रचसि मा रहसि अटि धार मांही ॥
जन हरिदास हरि हेर मन फेरि भरमै कहा, निजरि भरि देष हरि दूरि नांही ।३।

(१६२)

काल जम जाल की चोट जोरै वहै , मारीजै मीर कछु संक नांही ॥
तास मैं कांपि निज नांव हरि चित चढ्यौ, रहै निज नांव निज सुरति मांही ।टेक।
राव रांणां गहै जोर कोई ना रहै , 'सहजि' साझै सकल अकल चेड़ौ ॥
काच कांनै कियौ साच सहजै लियो , भजो रे भलो निज नांव नेड़ौ ।१।

पाठभेद—अवर-१ । प्रकास-१-५ । प्रजल्या-१-४ । विविध-१ । सहज्य-२ ।

शब्दार्थ—उरवार=आकाश के अन्तर्भाग मे । काच सूँ लागा=माया-मोह मे उलझा । कण कांइ षोवै=मनुष्यजन्मरूप हीरा क्यो गँवाया ? काल वटपाड़=कालरूप डाकू । वँवलतर=संसार बबूलवृक्ष है । रचसि मा=आसक्त मत होना । जोरै वहै= वेग से, प्रवलता से बहती है । मारीजै मीर=बड़े-बड़े शूरवीर मारे जा रहे है । चेडो= चेटक, भूतप्रेतादिक लग जाना । काच कानै कियो=काचरूप सांसारिक पदार्थो से मन को हटाया ।

अकल की आस धरि आंन सब दूरि करि, सकल सांसौ मिट्यौ साच पायौ ।।
ता साच की वोट निज दास निर्ति ऊबरया, रापि सान्या धर्णी सरणि आयौ ।२।
भगत की भीड़ हरि आप आतुर करैं, प्रीति पूरैं सदा कांम सारैं ।।
जन हरिदास हरि नांव कौ तत पर्ग चिनचळ्यौ, रांम प्रहलाद'ज्यूँ'प्रीति'पालैं' ।

(१९३)

रांम भजि रांम भजि जुग काल पाओ ,
मन देषि रे देषि छक भलो लाधो , इसौ औसर वले वहौड़ि लाभसी नहीं ।।
सौहड़ सीधड़ चढ़ै छत्र मसनग धरैं , निज नांव परतीति हरि निकट नांही ।।
अजर की चोट नरपति छत्र मारिया , पड्या भूपाल धुक धरणी मांही ।१।
जाकै सीसदस वीसभुज कोटलंका जिसो, समद झिलिमिलि करैं सबल पाई ।।
तिको दसरथ सुत रांमचद्र मारियो , काल की चोट मैं सकल आई ।२।
इन्द्र की क्या कहूँ 'वहौत' ब्रह्मा डरैं , करै करणां कहै काल मारैं ।।
जन हरिदास निज भगत कबीर नांमा जिसा, सबल की वोट नहीं काल मारैं ।३।

(१९४)

जाति कौ भेद पणि सकल ऊपरि भयो , राम रंग रंग्यौ रंगि 'भलौ' रातौ ।
दास कबीर जमलोकि जावै नहीं , अलष रस पीवै मसतांन मातौ ।।टेक।।
चोट सूँ चोट पिसि पेत चाल्यो नहीं , पांच परवल पिसण मारि लीया ।
अकल की वोट जम चोट लागै नहीं , उलटि का पुलट रस भला पीया ।१।
साध की चाल सुंणि सकल सांसो मिट्यो , कह्यौ त्यूँ रह्यौ कछु संक नांही ।
आंन की आस विसवास बाधौ नहीं , रह्यौ 'पण' रह्यौ रमि रांम मांही ।२।

पाठभेद—ज्यौ–१ । पारै–३-५ । बहुत–१ । भलै–१-५ । पिण–१ ।

शब्दार्थ—आतुर=तेजी से, उतावलेपन से । सौहड सीधड चढै=हाथी-घोडो पर चढे । धुक=धडाक से । रातौ=लग्यो । चोट सूँ चोट=आघात, वार-पर-वार । पिसि=सरककर, चलकर । पेत=क्षेत्र, कर्मभूमि । पाच परवल पिसण=पांच इन्द्रियाँ जो प्रवल लुटेरो जैसी थी । अकल की वोट=परब्रह्म की ओट–सहारे पर ।

जल में कँवल पण नीर भेदै नहीं, जगत में भगत इम रहै जूवा।
जन हरिदास हरि समद में बूँद कबीर जन, समद में बूँद मिलि एक हूवा ॥३॥

(१९५)

ग्रहड़ौ थकौ रॉम गुण गावै, दूजी दिसा लियो मन तांणि ॥
एक दिसा निरभै व्है लागौ, नाँमौ नरहरि कै दीवांणि ॥टेक॥
माया दल देषि न डरियो छींपो, ग्यॉन षड्ग वलि 'कीधी' चूरि ॥
हरि रस पीवै अडिग मन अवधू, अनहद वेणि बजावै तूरि ॥१॥
मन का नास करो मति कोई, नामैं मन पलष्या दस दीप ॥
उलटि सुरति 'अकल' रस पीवै, निज तत निरषत रहै समीप ॥२॥
सब तैं अगम अडिग निज लाधौ, अंतरि उलठो आवै नांहि ॥
जन हरीदास नाँमैं निज दीठौ, सो नूर विराजै 'नैंना' मांहि ॥३॥

(१९६)

मोटि में मेरस फेरिकै हूवौ. हरि मोट में बीजो कोई नांहि ॥
चवदै 'भवन' 'गवन' गुण ग्रामी, उपति षपति सकल हरि मांहि ॥टेक॥
समद अथाह तिकौ नर थाघै, हरि अथाह थाघियौ न जाई ॥
कोइ थापै अथघ अगम घरि पेलै, निज तत निरषत रहत समाई ॥१॥
×गगन अगम गोव्यंद गम जांणै, गोव्यंद गम कोई लहै सु साध ॥
उलटौ पेलि अकल रस पीवै, परसै अवगति अगम अगाध ॥२॥
मन उनमनि निकटि निधि जोवै, सुरति सँवाहि गहै मन 'पौंन' ॥
जन हरीदास अवगति गति ऐसी, भेद अभेदी लहै स 'कौंन' ॥३॥

पाठभेद—कीधा–४-५। गगन–५। नैंणा–१-३। भवण–१-२। गवण–१-२। पौण–१। कौण–१।

शब्दार्थ—ग्रहडौ=गम्भीरता से, मस्त होकर। ताणि=तानना, खीचना। कीधी चूर=चूर्ण कर दिया। अवधू=निस्पृह। दीठौ=अपना रूप देखा। थाघै=थाह ले। पौन=प्राण। अभेदी=स्व और पर भेद से रहित।

× आकाश अगम है, इसका गम गोविन्द को है। गोविन्द की जानकारी कोई श्रेष्ठ साधक ही कर सकता है।

(१६७)

सांवत 'सोहड़' सूर मति मनमुषि, रांम तणां 'वोलिगाणां' ॥
आवध सार टोप सिरि सुमिरण, कांकड़ि आइ मँडाणां ॥टेक॥
पेली फौज घटा घण घरहर, अरि आतुर भल होड़ा ॥
साध सलाज रांम भजि भाजे, टिकि टिकि मर्के से थोड़ा ॥१॥
पांच पचीस मोह दल माया, कांम क्रोध दल पूरा ॥
पड़कै सेल पड़ा पड़ि पसतां, वाजै अनहद तूरा ॥२॥
'गुरजि' 'नालि' गोला सर छूटैं, कमध उपाडैं थांणा ॥
पागि पिवैं ज्यूं आभैं दामणि, काइर कटक उडांणा ॥३॥
मन गहि पवन पलटि पहिरावै, आछा अमल चहोड़ै ॥
जन हरिदास मानि ममता तजि, यौं मेवासा तौड़ै ॥४॥

(१६८)

गोरषनाथ तुम्हारी गति मति, कोई सुर नर मुनि नहि जांणै ॥
जांणै सिध साधक अर अलष निरंजन, गोरष मुनि सुधारस मांणै ॥टेक॥
जीत्या भरम करम करि कांनैं, गगन चढ्यो रस पीवै ॥
जा मांही मिलि छांटा 'रालै', सो मिरतग मति जीवै ॥१॥
जांणै जोग भोग नहि जांणै, नाथ इसी विधि षेलै ॥
जन हरीदास गोरष सति सनमुषि, असी महारस झेलै ॥२॥

॥ इति राग सीधू सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—मुहड-१ । उलगाणा-१ । गुरज्य-२ । नाल्य-२ । डारै-३-४ ।

शब्दार्थ—सोहड=हाथी । वोलिगाणा=पहचानवाला । आवध सार=सारग्राहीपने का आयुध शस्त्र है । कमध=कमन्द, भू भार । पाग=षड्ग । पिवैं=चमकै । आभै=बादलों मे । दामणि=बिजली । चहोड़ै=पीवे, चुस्की ले । मेवासा=गड, किला । रालै=डाले, फेके । मिरतग=मरा हुआ ।

॥ अथ राग रेषता काफी ॥

(१६६)

सइयां उलटि देषि हजूरि,
औज़द में मौजूद मीरां, कहां षोजै दूरि ॥टेक॥
निकटि 'निज' निधि तिरण तारण, निज सुरति तहां पूरि ॥
दिल मांही मका इहै मथुरा, पांच परबल चूरि ॥१॥
मही मुरतिब गरद गाफिल, साहि क्या सुलतांन ॥
हरदम हजूरि सँभाल निसदिन, दरद सूँ 'दीवांन' ॥२॥
*चुस्त चसमां उरध अन्तरि, गरब 'गस्त' निवांरि ॥
हैस हाजरि अगम यारां, आमिकां दीदारि ॥३॥
×दरबार दोजिग गरक गुमरां, मनी मारै मीर ॥
+मिहरिका मकसूद 'एही', पड़द पोसै पीर ॥४॥
=दिल सदा स्वाफी कहर कसकरि, पीव सदा सँगि मोइ ॥
जन हरिदास आसा काटि पासा, 'भिसति' पेलौ कोइ ॥५॥

पाठभेद—न्यज-२। दीवाण-१। गसत-२। येही-२। भिस्त-५।

शब्दार्थ—औजूद=शरीर मे। मौजूद मीरां=परमात्मा मौजूद है। पाच=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। मही=पृथ्वी, राज्य। मुरतिब=लवाजमा, साजसज्जा। गरद=धूलवत्, तहम-नहस। गाफिल=असावधान। दरद=विरह-वेदना। दीवांन=पागल, स्वामी। हैस=है, सत्य है।

* नेत्र जो वाह्यरूप देखने मे ही रहते हैं, उनको मजबूती से बन्द कर अन्तर देखने मे लगा। अभिमान और गुस्से को दूर करो।

× जो गुमराह है—गलत रास्ते मे गरक है, वह नरक के दरवाजे पर खडा है। मनी—अहङ्कार बडे-बडे मीर—शाह-सुल्तानों तक को मारता रहता है।

+ मिहरि—मेहरबानो का लक्षण यही है कि वह परमपिता अपने भक्त की पर्दे से ही सहायता करता रहता है।

= दिल को सदा निर्मल रख, क्रोध का निवारण कर। अपने स्वरूप के नित्य सानिध्य में रह। महात्मा हरिदासजी कहते हैं कि वासना की फांसी काटकर भिसति—स्वर्ग मे कोई भी आनन्द का उपभोग कर सकता है।

(२००)

सइयां दुरसि है दीदार,
सैतांन का सिर तोड़ि निरभै, षेलि ष्याली यार ॥टेक॥
अरवाह मैं मन आंणि उलटा, हैस हाजरि होइ ॥
एक सूँ मिलि षेल षुसमति, कहैर कांटा षोइ ॥१॥
सिर 'न्वाइ' परसि कुराँन कात्रिज, बैसि पढि दिल माँहि ॥
तहाँ षालिक पलिक पूरिक, 'षुदी' षालि जाँहि ॥२॥
रूह राजे रब रस रुचि, गहर गुण गलताँन ॥
हैम हाजरि अगम याराँ, मोमिनाँ सुलताँन ॥३॥
पीर मुरसिद एक आसण, अरस परसैं दोइ ॥
जन हरिदास षित्रसूँ ष्याल परगट, सहज सिजदा होइ ॥४॥

(२०१)

मेरै एक तूँ रहमाँन,
मकसूद मेरा प्रीति तुझसूँ, 'और' सूँ क्या काम ॥टेक॥
तूँ था सदा भी सदा रहमी, निकुल तूँ निरधार ॥
और सब आधार तेरे, तूँ पाक 'परबर' दिगार ॥१॥
बे षुदि बे आदि बेगम, अजर अचल अचाल ॥
चिदानंद अरूप अवगति, षवरि दाराँ ष्याल ॥२॥
तूँ अकहि सब कहि सुँणत है, कहै तैसा नाँहि ॥
जन हरिदास अमर अलेष निरभै, तूँ षेलि ता सुष माँहि ॥३॥

पाठभेद—नाइ–१ । षुसी–५ । अवर–१ । प्रवर–१-५ ।

शब्दार्थ—दुरसि=कठिन, दुर्लभ । दीदार=दर्शन । सैतान=चञ्चल मन । अरवाह=अन्त·करण । कहैर=कालका । षालिक=परब्रह्म । पलिक=संसार । षुदी=अहङ्कार । रूह=आत्मा, जीव । रब=परमात्मा । मुरसिद=मुरीद, भक्त, शिष्य । सिजदा=प्रार्थना । मकसूद=खास । निकुल=वशविहीन । षवरिदारा=सावधानी से, होशियारी मे ।

(२०२)

क्या कहूँ रब कछु कहत न आवै ,
हूवा मो जाइगा जाइ सो सति नहीं , अलाह आले में रह्या रहावै ।।टेक।।
रिजक राजिक रजा पलक पालिक पुर्सी, है तिसा हैस जाँणै न कोई ।।
यार का यार दीदार यारों दसत ,नूर निरसिंधि निज रूप सोई ।।१।।
'जिंद' में जिंद अरवाह में 'एक' तूँ , सकल भरपूरि निज दूर नांहि ।।
बंदगी छाड़ि बंदा कहाँ ऊबरै , मगन मसताँन तम नूर मांहि ।।२।।
निजर भरि काइमा देषि कलमा इहै , सेज सुक्राँन सो सकल सांई ।।
जन हरिदास दिल वारि उरस दिल आँसकाँ,पूत्र दीदार निज महल माँहि ।३।

(२०३)

तेरे मोष का सुष मोहि ,
नैंन भर निज नूर देखूँ , मै न छाडूँ तोहि ।।टेक।।
साँई सेज आया मुझ भाया , प्रीति का उरिहार ।।
इसक तेरा रहौ मेरे , यार तूँ दिलदार ।।१।।
सुरति मेरी वारि फेरी , जिंद में घर छाइ ।।
पोलि घट पट देष नैंना , रहूं उरि लपटाइ ।।२।।
मिहरि मालिक पवरि पालिक , परसताँ भै पार ।।
मारि गोता दरस पाया , उरस में दीदार ।।३।।
महरवांन दीवान दाना , जहांस तहां सुष आज ।।
जन हरीदास कै सुष रहो तेरा , 'और' सुष सूँ लाज ।।४।।

पाठभेद—ज्यद-२ । येक-२ । अवर-१ ।

शब्दार्थ—दसत=हाथ में । जिंद=जीव । सुक्रांन=सुखधाम । दिलदार=परम-प्रिय । मिहरि=मेहरबानी, कृपा । उरस=हृदय मे ।

(२०४)

'अलाह' आव यारां यार,
इसक हैं वेहाल व्याकुल, दरस द्यौ दीदार ।।टेक।।
इसक तेरा जिद मेरा, जाइ यहु तन जाइ ।।
तुम्ह जांणने हो कहूँ कासूँ, कब मिलोगे आइ ।।१।।
फरक फारिक तरक दुनिया, हैं तुसांड़ा चाव ।।
सेभ मेंड़ी आव सइयां, सीस पर धरि पाव ।।२।।
अलाह आले विरह जाले, विरह घाले घाव ।।
जन हरिदास कूँ दीदार दीजै, पूब पालिक आव ।।३।।

(२०५)

दुनिया दुरमि भूली दीन,
वा षसम की कछु षबर नांहीं, औंर की आधीन ।।टेक।।
एक जलेषां का जाप जांणै, आदमों असथान ।।
एक पीरां मईदां जाइ लागा, ऐसा सा कछु ग्यांन ।।१।।
इक जड़ी बूँटी धात पाषंड, इष्ट भैंरूं वीर ।।
सुरति सुलटिन चल्या उलटा, वहि गया तलसीर ।।२।।
एक तंत मंत उडंत आगम, सुरति दह दिसि पूरि ।।
जन हरिदास तिनकूँ 'भिसत' कैसी, रह्या पालिक दूरि ।।३।।

(२०६)

वंदे वंदगी हुसियार,
जोर कर भी जेर 'होइगा', वहौत पाइगा मार ।।टेक।।
भूलिगा मैं फूलि वैठा, जहां स तहां जम त्रास ।।
काल नटकै हाथि डोरी, कंठ वँध्या कपि ज्यूँ पास ।।१।।

पाठभेद—अलह–१ । अल्है–५ । भेस्त–४-५ । व्हैगा–१-५ ।

शब्दार्थ--वेहाल=बुरी हालत, दुर्दशा । फारिक=निवृत, मुक्त । तुसाडा= तुम्हारा । मेंडी=मेरी । जलेषा=एकपीर । सुलटि न=सुलझी नही । तलसीर=नीचा, रसातल मे । तत मत=तन्त्रमन्त्र । भिसत=स्वर्ग । जेर=हैरान, परेशान, दुःखी ।

उसमे उनके आविर्भाव, जन्मस्थान, साधनास्थान, काल आदि का कोई निरूपण नही है, केवल उनके देहावसान का सम्वत् १७०२ लिखा है जो कि लगभग विशेषण-मय है।

(च) बलियानिवासी पं० परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए., एल एल. बी. ने "उत्तरभारत की सन्तपरम्परा" नाम का एक अति उपयोगी ग्रन्थ लिखा है, उसमे प्रमुख रूप से सन्तपन्थ व उनके काल तथा कृतियो का ही निरूपण किया है। चतुर्वेदीजी ने यथाशक्य इस निरूपण मे वास्तविकता तक पहुँचने का प्रयास किया है। इस उपेक्षित अंग पर उनने समुचित प्रकाश डाला है। निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी का निरूपण करते हुए इनने उन मतो का भी विवेचन किया है, जिनका सम्बन्ध डा० बडथ्वालजी, माननीय क्षितिमोहन सेन, डा० हजारीप्रसादजी द्विवेदी व पुरोहित हरिनारायणजी बी. ए. जयपुर से है। इनने जाति, जन्मस्थान तथा दीक्षाकाल वही माना है, जैसा ऊपर लिखा गया है। जन्म तथा मृत्यु-काल के विषय मे इनका ऊहापोह विचारणीय हे। इनने उन पक्षो की संगति पर सम्यक् ध्यान देकर युक्तियुक्त ढंग से विचार किया है। कालनिर्णय मे प्रबल बाधा इनके समक्ष स्वामी हरिदासजी की वह साखी है जिसमे हरिदासजी महाराज ने छैचकवे सम्राटो का उल्लेख किया है और उनमे अकबर का नाम आया है। अकबर का राज्यकाल स्पष्ट है। अपनी कृति मे यदि स्वयं महाराज हरिदासजी अकबर का निरूपण करते है तो सामान्यत यही ध्यान जायगा कि रचनाकार ने जिनका नाम लिया है, रचनाकार का अधिक से अधिक उनके सम-काल या उत्तरकाल मे रहना सिद्ध होता है–उधर चतुर्वेदीजी ने दादूजी के शिष्य सुन्दरदासजी तथा राघोदासजी के मत का भी ध्यान रखा है। उनने परम्परागत प्रचलित समय को भी अनुपयोगी नही माना है। चन्द्रधरजी गुलेरी द्वारा नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे लिखे गये लेख का काल भी उनके सामने था, उनने इन सबको सामने रखते हुए अन्त मे यही भाव व्यक्त किया है कि उनका काल सोलहवी के उत्तरकाल व सत्रहवी के उत्तरकाल के मध्य का ही होना संगत रह सकता है। उनने अपनी ओर से कोई निष्कर्ष इस विषय मे निश्चित नही किया।

(छ) पत्रोली वंशीलालजी, जो डीडवाणे के एक योग्य नागरिक है, जिनका परम्परा से जोधपुर राज्य के शासन से तथा निरंजनी साधुओ से लम्बे समय से सम्बन्ध चला आ रहा है, वे महाराज हरिदासजी का काल सोलहवी सदी तक ही मानते है। उनके विचार से हरिदासजी का आविर्भाव पन्द्रहवी सदी के अन्तिम चरण मे और अवसान सोलहवी सदी के अन्तिम चरण मे हुआ था। उनका कथन है कि उनकी समाधि का निर्माण भी सोलहवी सदी के अन्त मे हो गया था। उनने जोधपुर राज्य से जो सनदे आदि निरंजनी सम्प्रदाय को मिली, उनका

पालव्या पुर पिसुण पहुँता , गुण ग्रास गोव्यंद गाइ ।।
हरि नांव लैं मन छाड़ि में तें, जनम जूवा जाइ ।।२।।
सोर दह दिसि जोर लागा , तूटि है गढ़ देह ।।
जन हरिदास जोगी जागि जुध करि, रांम आवध लेह ।।३।।

।। इति राग रेषता काफी सम्पूर्ण ।।

।। पद भाग समाप्त ।।

।। अथ कवित्त छप्पय ।।

तुम्हस तीरथ तुम्ह वरत , तुम्हस पौरष सवलाई ।
तुम्हस बंधु तुम्ह बाँह , आंन चित अटै न काई ।।
तुम्हस मात पिता परिवार , तुम्हस सज्जन सुषदाई ।
तुम्हस ग्यांन तुम्ह ध्यांन , रांमजी राम दुहाई ।।
अगम वस्त अंतर अगह , कलविष काटण तापती ।
जन हरीदास कै एक तूँ , आंन न जांचू वापजी ।।१।।

×

गुर दीरघ 'ज्यूँ' मेर , समंद ज्यूँ थाह न कोई ।
मति गंभीर ज्यूँ गगन , चंद ज्यूँ सीतल सोई ।।
सम 'दिष्टी' ज्यूँ सूर , पवन ज्यूँ लिपै न लोई ।
वसुधा ज्यूँ मन धीर , परम संगी गुर सोई ।।

पाठभेद—जिम-१ । द्रिष्टी-४ ।

शब्दार्थ—पुर=नगर, कायानगरी । पिसुण=चोर-लुटेरे । राम आवध=ईश्वर-चिन्तनरूपी शस्त्र ग्रहण कर । अटै=अटके, लगे । ज्यूं मेर=सुमेरु पर्वत की तरह । लिपै=लिप्त हो ।

जन हरीदास गुरगम अगम , कहत न आवै क्या कहूं ।
गुर गोव्यंद चरणारविंद , भाइ विट लागा रहूं ।।२।।

×

जहां सागर सलिता नांहि , पवन गिर प्रथमी नांहि ।
वरण नहीं वैकुंठ , विघन कौतूहल नांहि ।।
वप घट नहीं विचार , करम भै भरमैं नांहि ।
'रवि' ससि 'द्यौस' न राति , तिमर ताराइण नांहि ।।
व्यापै सीत न धूप , गगन वसुधा फुनि नांहि ।
जन हरीदास सब तैं अगम , तास गम कोइ विरला लहै ।।
दीवान इसा जाचू नहीं , एक सम दीवानस 'और' है ।।३।।

×

अवगति गति कौ लहै , कौंण गैणांइर मापै ।
कौंण मेर कूँ तोलि , थापना उलटि थापै ।।
कौंण समद जल तिरै , कौंण गुर याह मति आपै ।
ब्रह्म 'अगनि' में पैसि , कौंण सिध अंतरि तापै ।।
जन हरीदास पूरणब्रह्म , नहिं नैडा नहि दूरि ।
कीमत कहि कहि कहि अकह , हरि जहां तहां भरपूरि ।।४।।

×

जोग जिग असमेद , सीस गहि ईस चढ़ावै ।
पांच अगनि तप मिला , करौ ऊभा तप भावै ।।

पाठभेद—रिव-१-३ । दिवस-१ । अवर-२-३ । अग्नि-१ ।

शब्दार्थ—भाइ विंट=भावना सहित । ताराइण=तारामण्डल । तासगम=उसकी ठीक जानकारी । गैणाइर=समुद्र, गणितज्ञ । अकह=अकथनीय । असमेद=अश्वमेध यज्ञ । करौ ऊभा=हाथ ऊँचे किये हुए ।

अंब विवर तन सीत, सुतौ सब तीरथ न्हावै।
कासी छाड़ै देह, हेम वसि हाड़ गमावै॥
विवधि धरम तपस्या विवधि, फल भुगतै परदुष सहै।
जन हरीदास हरि नांव विण, नर कहि कौंण वोट निरभै रहै॥५॥

×

अगम 'तीरथ' गुर गम सुगम, अगम तपस्या जिग जोग विचारौ।
एकादसी अगम, अगम नांव नरहरि न विसारौ॥
संत सूरातन अगम, अगम गुर ग्यांन उरि धारौ।
गंग जमन मधि बैसि करि, अगम 'वस्त' अंतरि लहौ॥
जन हरीदास निरभै मतै, तहां उनमनि लागा रहौ॥६॥

×

लोक लाज पष भेष, तहां मिलि जनम न हारौ।
रांम नाम उरि धरौ, पाप जन 'परन' पसारौ॥
'भौ' सागर वार पार मधि नांहि, घट घाट तजि अघट विचारौ।
परम ग्यांन पर ध्यांन हरि, निज नाथ नर निमष न विसारौ॥
जन हरीदास इंद्री अटकि, पिसुण पलटि 'परमगति' लहौ।
अगम वस्त अंतरि अगहि, तहां उनमनि लागा रहौ॥७॥

×

'परम ग्यांन' 'परम ध्यांन', परमगुर गुर गम गावौ।
राग दोष रस पांच, रपे मन तहां नचावौ॥

पाठभेद—तीर्थ-१। वसत-२। प्रन-१। भव-१। प्रमगति-१। प्रमग्यान-१। प्रमध्यान-१।

शब्दार्थ—अब=पानी। विवर=गढा। हेम वसि=बर्फ मे रह। अगम तीरथ=आत्मस्वरूप परब्रह्म। गग जमन मधि=इडा-पिगला के मध्य सुषुम्ना। उनमनि=सहजदशा, लयवृत्ति। परन पसारौ=पक्ष मत फैलाओ। घट घाट तजि=देहाध्यास त्याग। पिसुण=कामादि लुटेरे। परमगुर=परब्रह्म।

कांम क्रोध अभिमान, कुपहि काँटा मनि लावौं।
अलप भजन उरि धरौं, मरौं मरि मौत चुकावौं॥
जन हरीदास मन गहि पवन, ब्रह्म अगनि विप वनि दहौं।
अगम बसत अंतरि अगहि, तहाँ उनमनि लागा रहौं॥८॥

×

पून कलित परिवार, माल 'वहौ' मुलक वड़ाई।
ऊँचा महल अवास, मैल सजन सुपदाई॥
वहौं सूँघौं वहु पान, सेभ पासा दरयाई।
कर धरि मूँछ मरोड़, कहैं मेरीज दुहाई॥
हरि सुमरिण हिरदै नहीं, दह दिसि माया घेर।
जन हरीदास यूँ जांणिये, यहु तिल सुप दुप अस मेर॥९॥

×

जहां जीव तहाँ सीव, वीचि माया का सरवर।
गिरवर अजंग उत्तंग, विवधि विप का वन तरवर॥
सरप सिंघ जप जुरा, जीव धरि मकैंन तहां धर।
नदी वहै मैंमंत, मभ्त मरणां मधि 'इहै' डर॥
जन हरिदास हरि तहां चलौं, ग्यान पर उर धरि तजि घर।
जहां जीव तहाँ सीव, वीचि माया का सरवर॥१०॥

×

पाठभेद--बहु-१। यह-३-४। यहु-५।

शब्दार्थ--मरौ=अहङ्कार त्यागो। पवन=प्राण स्थिर करो। दुहाई=आज्ञा, हुक्म। सीव=कूटस्थ चेतन। गिरवर अजंग=वृक्षरहित पहाड। उत्तङ्ग=ऊँचे शिखर वाले। विवधि विप का वन तरवर=मोह के जगल मे वासना के अनेक प्रकार के जहरीले वृक्ष है। सरप सिह जप जुरा=सशय, काम, क्रोध, बुढापा आदि। नदी वहै मैमन=उत्ताल-तरङ्गोवाली तृष्णा की नदी बह रही है। मभ्त=बीच। ग्यान पर=आत्मज्ञान के अवलम्बन से।

गहर बाग रंग राग, तहां ध्यान धरि जोगी बैठा।
जंबकि मारया सिंघ, सूर ससिहर अंग पैठा॥
गया पाप 'पर'देस, पहम तजि धुर तैं धैठा।
*गंग चढ़ो ब्रह्मंड, अव्या हठ करता हैठा॥
×अरस परस रस परम गति, परम भेद निरभै भया।
त्रिवधि तिमर गति गरब 'गति', जन हरीदास सतगुर दया॥११॥

×

नाथ मछिंदर देषि, देषि गोरष गुण रता।
रह्या धणी सूँ लागि, छाड़ि भव जल का मता॥
गोपीचंद भी जांणियै, जोग ध्यान एसे गह्या।
है गै मै गै छाड़ि करि, माया तैं न्यारा रह्या॥
सुषदेव भी माया तजी, वास छाड़ि वन मैं वस्या।
जन हरीदास ते ऊबरया, जुग सारा माया डस्या॥१२॥

×

पाठभेद—प्र-१। गत-४-५।

शब्दार्थ—गहर बाग=सहस्रारदलरूपी बगीचा। रग राग=विविध अनहद शब्द। जंबकि=शुद्ध मनरूपी शृगाल ने। मारया सिंह=मोहरूपी सिंह को मार लिया। सूर ससिहर अंग पैठा=मन-प्राण सुस्थिर हो आत्मचिन्तन मे लगे। पहम तजि धुर तैं धैंठा=निर्लज्ज पाप मूल देह को छोड गया। त्रिवधि तिमिर गनि=त्रिगुणात्मक अज्ञान का अँधेरा दूर हुआ। गरब गति=अहङ्कार नष्ट हुआ। मता=मत, विचार। है गै मै गै= घोडे-हाथी, भूमि-घरबार। डस्या=काटखाया।

* सुषुम्ना तथा सुरतिवृत्ति ब्रह्माण्ड (दशमद्वार) मे पहुँची। हैंठा–विषयभोग की नीची प्रवृत्ति के आग्रह से मन अब रुक गया।

× अभेद ज्ञान से व्यष्टि चेतन समष्टि से एकरस हो, शरीरगत चेतन तथा विश्वव्यापक चेतन एक रस हो परम गति–मोक्ष की प्राप्ति की। ब्रह्म ही सत्य है और सब दृश्य-अदृश्य संसार के पदार्थ नाशवान हैं, इस परम भेद को समझ कर जन्मने-मरने के भय से मुक्त हो गया।

नाथ निरंजन देपि, अंति मंगी सुपदाई।
गोरष गोपीचंद, सहजि सिधि 'नौ' निधि पाई॥
नामें दास कबीर, रांम भजतां रस पीया।
पीपैं जन रैदास, बड़ै छकि लाहा लीया॥
अणभै 'वस्त' संभालि करि, जन हरीदास लागा तहीं।
रांम विमुप दुविध्या करैं, तैं निरवल पहुंचैं नहीं॥१३॥

×

हैवर गैवर गांव, फौज फरहर 'वहौ' पाइक।
वहौ जोधा दरवारि, पसैं आंपू मो पाइक॥
तरवारयां तन तौलि, चढ़ैं अंणियां मुँह लाइक।
प्रतिमाली करि धरि विवरि, वकैं मुपि विक्रत वाइक॥
लोह छाक गोली गिलैं, पर दल जीतैं पर पुरा।
तउं जन हरीदस हरि नाँव विनि, नर विकट रूप दीसैं वुरा॥१४॥

×

वीर घटा घरहरै, जुटैं गैं रिण में गाजैं।
पड़ैं लोह वौछाड़, पड़ग पसतां रिंण वाजैं॥
करवट कर सूँ तोलि, पिसणां तन पिसण अवाजैं।
सूरवीर सनमुषि चढ़ैं, षेत तजि काइर भाजैं॥
नीर उतरयौ वीर, नांव पत्री 'पणि' लाजैं।
दोऊँ पषां निरभैं रतन, स्यांम धरम अरमांण॥
हरीदास जन यूँ कहै, वाल निमांणो जांण॥१५॥

×

पाठभेद—नव-१। वसन-२। बहु-१-३। पण-३-४।

शब्दार्थ—अणभै वस्त=आत्मतत्व को अनुभूत कर। षसैं=संघर्ष करे, लडे। अंणियां=फौजे, अग्रभाग में। वक=बकवाद करे। विक्रत=बुरे। वाइक=वचन, शब्द। विकट=भयङ्कर। वौछाड=वार पर वार। पत्री पणि=शूरवीरपन। स्याम धरम=वफादारी, स्वामिभक्त।

भजि करणां निधि करतार , नांव नाराइण लीजै ।
भजि निरामूल निरसिंघ , कांम आरंभ 'यहु' कीजै ॥
भजि अलष निरंजन नाथ , छाड़ि विष 'इंम्रत' पीजै ।
भजि परम उदार अपार , ग्यांन गहि ध्यांन धरीजै ॥
जन हरीदास वार पार कीमत नहीं, रांम नांम मोटों रतन ।
उर मंड़ण उर धारि , प्रेम प्रीति दीजै जतन ॥१६॥

+

॥ इति कवित्त सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कुण्डलियां ॥

साचा गुर साचै मतै , भजै निरंजन नाथ ।
जन हरिदास ता साध का , सिष क्यूँ छाड़ै साथ ॥
सिष क्यू छाड़ै साथ , नांव निज भेद बतावै ।
अवरण अगहि अरूप , अगम गुर गम तैं पावै ॥
'गरब' छाड़ि गोव्यंद भजौ , सिरि सतगुर का हाथ ।
साचा गुर साचै मतै , भजै निरंजन नाथ ॥१॥

×

काचा गुर काचै मतै , काचा ही फल पाइ ।
बुगला का 'दिष्टांत' दै , सो बुगला ही हो जाइ ॥
सो बुगला ही हो जाइ , ध्यांन बुगला ज्यूँ धारै ।
पांणी मांही पैसि , मीन पांणी मैं मारै ॥

पाठभेद—यौ-१ । इमरत-१ । ग्रव-१ । दिसटान्त-२ ।

शब्दार्थ—अरमाण=अरमान, मन की बात । उर मडण=हृदय को सुशोभित करने वाला । बुगला ज्यूं=बगुले की तरह नकली ध्यान ।

जन हरीदास दुरभप तहां , जासूँ प्रीति न लाइ ।
काचा गुर काचै मतै , काचा ही फल पाइ ॥

॥ अथ गुर-सिष पारष अंग ॥

गुर सिर 'पर' कर तब धरै , जब गुर लाइक होइ ।
बिन ही परचै सिष करै , बड़ा अचंभा दोइ ॥
बड़ा अचंभा दोइ , बात या 'कासूँ' कहिये ।
पोटा गुर के साथ , 'परम' गति कदे न लहिये ॥
अगम ठौड़ आसण अचल , जन हरीदास गुर सोइ ।
गुर सिर पर कर तब धरै , जब गुर लाइक होइ ॥३॥

×

गुर होइ सिष साषा करै , मीनी का सा मोह ।
जन हरीदास उदबुद कथा , भला बिगोया 'द्योह' ॥
भला बिगोया द्योह , गंम सुष नैड़ा नांही ।
जहर जड़ी जिव पांहि , अहं तरवर की छांही ॥
काची संगति बूड़िये , साहिबजी की सौंह ।
गुर होइ सिष साषा करै , मीनी का सा मोह ॥४॥

॥ इति गुरुसिष पारष अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—परि-२-४ । कास्यूँ-१ । प्रम-१ । दोह-१ ।

शब्दार्थ—दुरभप=काल, सकामकर्म । परचै=आत्मा की जानकारी । पोटा=झूठा, बनावटी । सिप साषा=शिष्य-प्रशिष्य । मीनी का सा मोह=बिल्ली के मोह की तरह । बिगोया=डुबोया, गँवाया । द्यौह=दिवस, आयु । जहर जड़ी=विषयवासनामय जड़ी । अहं तरवर=अहङ्कार के वृक्ष । बूड़िये=डूबिये, नष्ट होइये । सौंह=सौगन्ध ।

॥ अथ साधु को अंग ॥

संगति कीजै साध की, मन की दुवध्या षोइ।
साध बतावै परम सुष, पहुँचै विरला कोइ ॥
पहुँचै विरला कोइ, देह सुष दिलतैं धोवै।
जाइ वसै दरवारि, नींद भरि निसहै न सोवै ॥
हरीदास आनंद इहै, दूजा दषल न होइ।
संगति कीजै साधु की, मन की दुवध्या षोइ ॥५॥

×

संगति कीजै साध की, जा सूँ रामदयाल।
अरस परस आनंद सदा, गाईं जै गोपाल ॥
गाईं जै गोपाल, प्राँणहति प्राँण पिछाँणै।
धरचौ धरचाँ कूँ छाड़ि, अधर 'अभि' अंतरि जाँणै ॥
जन हरीदास हरि परसताँ, पला न पकड़ै काल।
संगति कीजै साध की, जा सूँ रामदयाल ॥६॥

×

साध मिल्याँ सुष पाइये, भजिये केवल रांम।
नर न्यारा गोव्यंद त्रिमुष, तहाँ नहीं साध का कांम ॥
तहां नहीं साध का कांम, धस्या ऊंडा जल मांही।
विणजै संष सराप, हाट हीरा को नांही ॥
जन हरीदास हरि परस कूँ, लोचन दोइस कांम।
साध मिल्यां सुष पाइये, भजिये केवल रांम ॥७॥

×

पाठभेद—अभ्य-२।

शब्दार्थ—दुवध्या=संशय, अनिश्चय। निसहै=अज्ञान की रात्रि में। धरचौ धरचा कूँ छाडि=दिखलाई देने वाले आधार-सहारे का त्याग कर। धस्या=प्रवेश किया। विणजै=व्यापार करे, सौदा करे। दोइस=दो ही, ज्ञान और विचार।

रांम सनेही साधवा, बड़ा वैद जग मांहि।
सूता जीव जगाइ करि, और देस ले जांहि॥
और देस ले जांहि, सबद राषै ज्यूँ रहिये।
सबद कहै त्यूँ करै, सबद कसणी सब सहिये॥
जन हरीदास ता मुलक मैं, जुरा काल मै नांहि।
रांम सनेही साधवा, बड़ा वैद जग मांहि॥८॥

×

साध सदा भेला रहै, कबहूँ दूरि न जांहि।
जिन की जड़ ऊँडी गड़ी, ब्रह्मभौमि ता मांहि॥
ब्रह्मभौमि ता मांहि, सुरति निज जाइ समाई।
दरसै परसै पेम, परम निधि अंतरि पाई॥
जन हरीदास तहाँ अगम फल, हिंलिया हरिजन षांहि।
साध सदा भेला रहै, कबहूँ दूरि न जांहि॥९॥

×

कोई आवो प्रीति लै, कोई आवो अरि भाइ।
साध दहूँ कूँ पोषदै, वो वाका फल पाइ॥
वो वाका फल पाइ, रूँष तैसा फल दरसै।
आंधी कै मुषि धूरि, घटा मुषि पांणी बरसै॥
जन हरीदास आछै मतै, सुष मैं रह्या समाइ।
कोई आवो प्रीति लै, कोई आवो अरि भाइ॥१०॥

×

शब्दार्थ—और देस=ब्रह्मधाम। सबद राषै=उपदेश के अनुसार। कसणी=कसौटी। भेला=अरस-परस, एकरूप। जड़=मूल, वृत्तिरूपी जड आत्मनिष्ठ हो। हिंलिया=हिला हुआ, अनुभवी। अरि भाइ=शत्रुभावना से, वैरी होकर। पोष दे=पोषण करे, मदद करे। रूँष=वृक्ष। आछै मतै=आत्मविचार, सन्मार्ग।

विवरण भी दिया है। इनके कथन का मतलब है कि महाराज हरिदासजी का स्वर्गारोहण सोलह सौ से पहले हो गया था।

(ज) हिस्ट्री ऑफ जोधपुर मे भी निरंजनी पंथ का उल्लेख किया गया है। उसमें स्वामी हरिदासजी से सम्वत् सोलह सौ के पश्चात् उक्त पथ के चलने का निर्देश है। उसमे हरिदासजी की जो जीवनी लिखी गई है, वह किसी श्रुत आधार पर ही लिखी गई है। उसमे उनकी विरक्ति का जो कारण दिया गया है, उसकी परम्परा से संगति नही बैठती।

(झ) फारसी मे लिखी गई "दविस्तानुलमजाहिब" मे भी स्वामी हरिदासजी का निरूपण किया गया है। उसमे इनको शाखले गोत के जाट तथा जन्मस्थान भी कापडोद से भिन्न लिखा है। इसमें इनके वैराग्य का कारण शिकार मे 'गर्भवती हिरणी मारना' लिखा है। इसमे इनका मृत्युकाल सम्वत् १७०२ लिखा गया है।

इस तरह निरंजनी सम्प्रदाय के मूलपुरुष महाराज हरिदासजी के विषय मे जो विभिन्न दृष्टिकोण ज्ञात हुए है उनका संक्षेप मे ऊपर विवरण दिया गया है। उक्त विवरणो से उनकी जाति, जन्मस्थान, वैराग्योत्पत्ति, गृहत्याग तथा जन्म-मृत्यु काल मे विभिन्नताएँ सामने आती है—अब इस विषय मे परम्परागत तथा सन्तो की रचना से जो प्रकाश पड़ता है, उसका दिग्दर्शन कराया जाता है।

कालिक प्रमाण—

हरिदासजी के जीवन-चरित्र व परची लेखको मे क्रमागत ये लेखक सामने आते है—स्वामी हरिरामदासजी परचीलेखक, २. स्वामी रघुनाथदासजी परचीलेखक, ३. प्यारेरामजी भक्तमालकार, ४. पूर्णदासजी परचीलेखक, ५. रामबगसजी महता कृत मन्त्रराज प्रभाकर जीवन-चरित्र ६. रामचन्द्रजी गुजराती चरित्र-लेखक और ७. स्वामी जानकीदासजी चरित्रलेखक। हमने इन लेखको के नाम कालक्रम से दिये है। इनमे पाच लेखक निरञ्जनी सम्प्रदाय के है, दो सद्गृहस्थ है।

पहिले लेखक स्वामी हरिरामजी है। ये सुशिक्षित तथा साधक महात्मा थे। इनकी 'परमार्थ पंचसतसई' तथा 'छन्दरत्नावली' उत्तम रचनाएं है। इनने स्वाम हरिपुरुषजी महाराज के पांच चमत्कारों का 'पंच परचई' नाम से निरूपण किया है। इनका रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण है। इसकी प्रामाणिकता इन्ही के लिखे उस दोहे से स्पष्ट है जो इनकी छन्दरत्नावली की समाप्ति पर लिखा है—

सम्वत् शर नव मुनि शशि, नभ नवमी गुरू मान ॥
नगर डीड हद कूप तहँ, ग्रन्थ जन्म थल जान ॥ १ ॥

आठ पहर की उनमनी, आठ पहर की प्रीति।
आठ पहर सनमुष पड़ा, यह साधां की रीति ॥
यह साधां की रीति, एक रसि लागा जीवै।
अगम पियाला हाथि, रांम रस पावै पीवै ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, आंन असुर अरि जीति।
आठ पहर की उनमनी, आठ पहर की प्रीति ॥११॥

॥ इति साधु को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

हरि 'भजि' भेद विचारि, हारि मति चालौ लोई।
'एकै' साथी साथ, 'और' साथी नहिं कोई ॥
और साथी नहिं कोई, जांणि याह जीव मैं साची।
रसनां रांम रटारि, रषे मति थापै काची ॥
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, सौंज त्यांह सदगति षोई।
हरि भजि भेद विचारि, हारि मति चालौ लोई ॥१२॥

×

कहा दिषावे और कूँ, उलटि आप कूँ देष।
कर लेषणि मसि कागद कहाॅ, लिषिये तहाँ अलेष ॥

पाठभेद—भज्य-२। येकै-२। अवर-३।

शब्दार्थ—एक रसि=एकाग्र बुद्धि। असुर अरि=राक्षसरूपी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि वैरियो को। हारि=व्यर्थ खोकर। एकै साथी=एक चेतन ही सच्चा साथी है। रटारि=रट। लेषणि=कलम, स्थिरवृत्तिरूपी कलम से। मसि=स्याही, निर्भ्रान्ति ज्ञान की स्याही। कागद=हृदयरूपी कागज मे।

लिपिये तहां अलेप, सुतौ निरमल करि लीजैं।
दिल कागद करि पाक, सुतौ लिपि लिपि टिक दीजैं॥
जन हरीदास हरि सुमिरतां, संचर रहै न सेप।
कहा दिषावै और कूँ, उलटि आप कूँ देप॥१३॥

×

गुर गोव्यंद गोव्यंद भजन, गोव्यंद ही सूँ प्रीति।
हरीदास जन 'यूँ' कहै, याह साधां की रीति॥
याह साधां की रीति, अगम गुर गम तैं पाया।
निरामूल निरसिंध, काल मैं जाल न काया॥
जन हरीदास तहां एक सुष, नहीं हारि नहिं जीति।
गुर गोव्यंद गोव्यंद भजन, गोव्यंद ही सूँ प्रीति॥१४॥

×

निस दिन रांम संभालि, जागि निरभै पद लहिये।
जहाँ तहाँ मन लाइ, प्रांण परदुष 'क्यूं' सहिये॥
प्रांण परदुष क्यूँ सहिये, सिर जुरा जम चोट न सूझै।
देह पेह व्है जाइ, जीव अपणी करि बूझै॥
जन हरीदास अवगति अगम, फेरि मन तां सुष रहिये।
निस दिन रांम संभालि, जागि निरभै पद लहिये॥१५॥

×

॥ इति सुमिरण को अंग सम्पूर्ण॥

पाठभेद—यौ-१। क्यो-१।

शब्दार्थ—पाक=पवित्र, शुद्ध। संचर=अन्तर, छिद्र बाकी न रहे। उलटि=अन्तर्मुख हो। अगम=मन-बुद्धि से गम नहीं। एक सुष=परमानन्द। जागि=चेति, ज्ञानमय हो। जहा तहा=इधर-उधर, विषयभोग मे। जुरा=बुढापा। सूझै=दीखे।

॥ अथ विरह को अंग ॥

सती हौंण की हौस धरि, तन जालण कूँ जाहि।
लोक लाज ले जलत है, असल सती सौ नांहि॥
असल सती सौ नांहि, पीव की षवरि न लाधी।
धीरज रह्या न लोइ, वली कुल कै पषि वाँधी॥
जन हरीदास ऐसा विरह, जहाँ तहाँ जुग मांहि।
सती हौंण की हौस धरि, तन जालन कूँ जांहि॥१६॥

॥ इति विरह को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ ग्यान विरह को अंग ॥

वात सुणे सुणि पीव की, सिर तैं डारया चीर।
लिया 'संदौरा' हाथ मैं, पैंडे लागी वीर॥
पैंडे लागी वीर, देह सुत वित सव भूली।
जीव गया तहाँ पीव, पैसि दावानल झूली॥
जन हरीदास संसार की, लगी न काई सीर।
वात सुणे सुण पीव की, सिर तैं डारया चीर॥१७॥

×

विरह मंढी मैं पैस करि, दह 'दिसि' दीन्ही आगि।
जीव लग्या पणि पीव कै, रही निरंतरि लागि॥

पाठभेद—सिदौरा–१। दिस–५।

शब्दार्थ—हौंस=चाह, उमङ्ग। पषि=पक्ष में, समर्थन में। सिदौरा=पलीता। पैंडे=रास्ते, मार्ग। दावानल=ताप, अग्नि पर बैठ। सीर=हवा।

रही निरन्तरि लागि, आंन चित वोट न धारी।
प्रगट जली मैदानि, लोक लज्या सब डारी॥
जन हरीदास पिव का विरह, तहाँ वसै धसि जागि।
विरह मंढी में पैस करि, दह 'दिसि' दीन्ही आगि॥१८॥

×

असलि सती 'आतुर' कहा, अर आलस भी नांहि।
धीरे धीरे उठि चली, एक रेप मन मांहि॥
एक रेप मन मांहि, 'और' दुनिया सब धारी।
जीव गया तहाँ पीव, देह लै पेह में डारी॥
जन हरीदास ऐसा विरह, धस्या छाड़ि कहाँ जाहि।
असलि सती आतुर कहा, अर आलस भी नांहि॥१९॥

॥ इति ग्यान-विरह को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चितावणी को अंग ॥

आइ सिंघासण वैसता, हँसि हँसि करता वात।
सुत वनिता परिवार सूँ, ऊठि गया करि घात॥
ऊठि गया करि घात, मात संगि तात न माया।
माई संगि न भौमि, अंति साथी नहिं काया॥
कहुं काल चोट चूकै नहीं, जन हरीदास तिलमात।
आइ सिंघासण वैसता, हँसि हँसि करता वात॥२०॥

×

पाठभेद—दिस-५। आतुरि-१-२। अवर-१।

शब्दार्थ—आतुर=व्याकुल, शीघ्रता। एक रेष=एक लक्ष्य, एक ध्येय। तिल-मात=तिल भर।

चोवा चंदन लाय तन, करता 'वहौत सिंगार'।
जन हरीदास ते मानई, जलि बलि हूवा छार ॥
जलि बलि हूवा छार, भार अपणैं सिर धारचा।
या रसना कै स्वादि, जीव नानाविधि मारचा ॥
'वहोड़ि' वहोड़ि जामैं मरै, जुरा काल भै लार।
चोवा चंदन लाइ तन, करता वहौत सिंगार ॥२१॥

×

माल मुलक है गै घणां, छत्र छांह मद छाक।
के मारचा के मारसी, काल करत है ताक ॥
काल करत है ताक, अंति कोइ छूटै नांही।
सुर नर असुर अनंत, सकल जम कै मुष मांही ॥
जन हरीदास 'गोव्यंद' भजौ, और सबै सुष थाक।
माल मुलक है गै घणां, छत्र छांह मद छाक ॥२२॥

×

तन धरि धरि मरि मरि गया, हरि हरि भजै न भेद।
सदगति सुष जांणै नहीं, तहां कंध का छेद ॥
तहां कंध का छेद, आंन नर वोट न छूटै।
दस दरवाजा रोकि, काल काया गढ़ लूटै ॥
जन हरीदास अवगति अगम, झूठी 'और' उमेद।
तन धरि धरि मरि मरि गया, हरि हरि भजै न भेद ॥२३॥

×

पाठभेद—बहुत-सिगार-१-२। वहुडि—१। गोविन्द—३-४। अवर—१।

शब्दार्थ—चोवा=इतर, तेलफुलेल। छार=राख। वहौडि=फिर-फिर, पुनः। मद छाक=मद की मस्ती। थाक=थक जाने वाले। कंध का छेद=गर्दन कट जाना, मरना। वोट=आड, सहारा। उमेद=आशा।

जागौ रे सोवो कहा, अवधि घटै घटि बीर।
काचो कहां लौं राखिये, फूटै भांडै नीर॥
फूटै भांडै नीर, गरक गाफिल नर सोवै।
भजै नहीं भगवन्त, वहोड़ि मल सूँ मल धोवै॥
जन हरीदास सुर नर असुर, सब मछली जम कीर।
जागौ रे सोवो कहा, अवधि घटै घटि बीर॥२४॥

×

जन हरीदास निसदिन घड़ी, बाजै 'बारू' बार।
घटत घटत सब दिन घट्या, मरणां सदा तयार॥
मरणां सदा तयार, त्याह निधड़क नर सोवै।
मोह द्रोह छकि छक्या, मूल माया मदि पोवै॥
जनम अमोलिक जात है, यूँ निति करै पुकार।
जन हरीदास निसदिन घड़ी, बाजै 'बारू' बार॥२५॥

×

राजा राम न बोलखै, नाराइण निरसिंध।
जन हरीदास तैं मानई, जांहि अधोगति अंध॥
जांहि अधोगति अंध, अग्यांन आलम 'उरि' लागा।
'त्रिवधि' अँधारै बैसि, ग्यांन ओढण नहिं नागा॥
आंन ध्यांन गुर ग्यांन बिन, और अनेरा बंध।
राजा राम न बोलखै, नाराइण नरसिंध॥२६॥

॥ इति चिनावणी को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—बारौ-४-५। उर-५। त्रिविधि-१।

शब्दार्थ—फटै भांडै=विनाशी देह, दसद्वारो का शरीर। मल सूं मन धोवै=कर्मफल के कीच को सकाम-कर्म से धोना। कीर=धीवर, मछली पकड़ने वाला। निस दिन घड़ी=रात-दिन की घड़ी। बोलखै=जाने, पहिचाने। त्रिवधि=त्रिगुणात्मक। ग्यान ओढण=ज्ञानमय चादर। अनेरा=बहुत, घणा।

॥ अथ परचा को अंग ॥

विन वादल विरषा सदा, छह रुति वारह मास ।
आतम अंतरि देषिये, परम जोति 'परकास' ॥
परम जोति परकास, प्रांण सागर मैं भूले ।
अनहद सवद उचार, सुरति निज साच न भूले ॥
जन हरीदास आनंद भया, अरथि समांणी आस ।
विन वादल विरषा सदा, छह रुति वारह मास ॥२७॥

×

ग्यांन पत्र मनसा भुगति, निस दिन वैठा षाइ ।
आसा राषै अलप मैं, भरमत फिरै वलाइ ॥
भरमत फिरै वलाइ, सिंघ 'तव' महल पधारै ।
मूसो ग्रासै सेस, सुसो सुनहा कूँ मारै ॥
जन हरीदास उदवुद कथा, तहां मन रह्या समाइ ।
ग्यांन पत्र मनसा भुगति, निस दिन वैठा षाइ ॥२८॥

×

षग ऊड्या आकास कूँ, चींटी परां समाइ ।
जहाँ चींटी का गंम नहीं, तहां षग वैठा जाइ ॥
तहां षग वैठा जांइ, मुलक 'वोह' 'अवरै' भाइ ।
सीत धूप रस रहत, एक रस तौ सुषदाइ ॥

पाठभेद—प्रकास-१ । जब-५ । वो-५ । औरे-५ ।

शब्दार्थ—विन वादल विरषा सदा=बाहरी बादलो के बिना ब्रह्मरन्ध्र से तालुप्रदेश मे अमृतरस बरस रहा है । सागर=आनन्द सागर । ग्यान पत्र=ज्ञान की पत्तल मे । मनसा भुगति=मनसा का भोजन । सिंघ=ब्रह्म, आत्मा । मूसौ ग्रासै=ज्ञानरूपो चूहा खावे । सेस=संशयसर्प । सुसा=सतोषरूपी खरगोश । सुनहा=क्रोधरूपी कुत्ते को । षग=शुद्धमनरूपी पक्षी । चीटी=सुरति-वृत्ति ।

जन हरीदास चींटी निको, उलटि न पूठी जाइ।
पग ऊच्या आकास कूँ, चींटी परां समाइ ॥२६॥

×

ग्यांन गुफा में पैसि करि, बैठा ताली लाइ।
सुष पाया सतगुर मिल्या, सूता लिया जगाइ ॥
सूता लिया जगाइ, हरि आप कूँ आप बतावैं।
घट घूँघट पट षोलि, साध तहां दरसण पावैं ॥
जन हरीदास आनँद इहै, तहां मन रह्या समाइ।
ग्यांन गुफा में पैसि करि, बैठा ताली लाइ ॥३०॥

×

परा परै पूरणब्रह्म, 'परम' जोति 'परकास'।
सकल वियापी सँगि बसै, सब तैं रहै उदास ॥
सब तैं रहै उदास, वार नहिं लाभै पारं।
निज तरवर निरसिंध, प्रांण तहां बसै हमारं ॥
जन हरीदास अंतरि अगहि, मन का तहां निवास।
परा परै पूरणब्रह्म, परम जोति परकास ॥३१॥

×

सब को सरबस देत है, अपणी अपणी प्रीति।
साहिब कूँ सरवस दिया, याह 'कछु' उलटी रीति ॥
याह कछु उलटी रीति, जीति गुण गोव्यंद गावैं।
सुँन्य मंडल में पैसि, सांच सूँ सुरति लगावैं ॥

पाठभेद—प्रम-१। प्रकास-१। कुछ-१।

शब्दार्थ—ग्यांन गुफा=शून्यमण्डल, दशमद्वार। घट घूँघट पट पोलि=घट मे माया के आवरण व देहाभिमानरूपी पट (पर्दे) को खोल कर। लाभै=मिले, पावे।

जन हरीदास आनँद भया , छूटी सबै अनीति ।
सब को सरबस देत है , अपणी अपणी प्रीति ॥३२॥

×

सहर अधर पैंडा अधर , कसर करम नहिं कोर ।
धरम अधर रहणीं अधर , अधर सबद की घोर ॥
अधर सबद की घोर , अधर बरिषा घण आया ।
जहाँ तहाँ भर पूरि , अधर गुर गम तै पाया ॥
जन हरीदास निरभै नगर , तहाँ जम करि सकै न जोर ।
सहर अधर पैंडा अधर , कसर करम नहिं कोर ॥३३॥

×

निगम अगम मन तहां बसै , जहां साधां की ठौर ।
परमानंद पति परसतां , छूटि गया भ्रम और ॥
छूटि गया भ्रम और , रांम निरभै सुष पाया ।
रूप रेष रस रहत , काल भै जाल न काया ॥
जन हरीदास अंतरि अगहै , पहुँचण का पंथ और ।
निगम अगम मन तहाँ बसै , जहां साधां की ठौर ॥३४॥

×

सोवत सोवत सोइ रह्या , जागि जागि कहां जाइ ।
सोवण जागण तैं अगम , तहां मन रह्या समाइ ॥

शब्दार्थ--अनीति=बुराई, सांसारिक पदार्थों की आसक्ति । सहर अधर=उस चेतनतत्व का कोई आधार नही है । पैडा अधर=उस आत्मतत्व की प्राप्ति का मार्ग भी अधर है, क्योकि उसकी प्राप्ति वेद-शास्त्र प्रतीक पूजा से न होकर लयवृत्ति मे ही साध्य है । निगम अगम=वेद से भी जो न जाना जाय । सोवत सोवत=अज्ञाननिद्रा मे सोते-सोते । जागि जागि कहां जाइ=जप, तप, तीर्थ, दान, पूजा आदि के द्वारा जाग-जागकर भी सकामकर्मफल के कारण विविधजन्म ग्रहण करता रहता है ।

तहां मन रह्या समाइ, प्रथम अपर्णं घरि आया।
निगमूल 'निरमिंध', अगम गुर गम तैं पाया॥
जन हरीदास अवगति अगम, तहां मन रह्या समाइ।
सोवत सोवत सोइ रह्या, जागि जागि कहां जाइ॥३५

×

मन चंचल निहचल भया, त्रिवेणी तटि वास।
आंपि अजब अंजन पड्या, परम जोति परकास॥
परम जोति परकास, अगह अघ विनि अघजारण।
सीत धूप रस रहैत, करम मैं भरम निवारण॥
जन हरीदास पति परसतां, कांम क्रोध का नास।
मन चंचल निहचल भया, त्रिवेणी तटि वास॥३६॥

×

धुनि मांहि मुनि मठ रच्या, 'दह' 'दिसि' बाजैं तूर।
जन हरीदास आनंद भया, सहजि प्रकास्या सूर॥
सहज प्रकास्या सूर, अजर निरभै निरधारं।
तहां मन रह्या समाइ, वार नहि लाभै पारं॥
अजब बात आनँद 'इहै', जहाँ तहाँ निज नूर।
धुनि मांहि मुनि मठ रच्या, दह दिसि बाजैं तूर॥३७॥

×

पाठभेद—निरग्रंथ-२। दहि-४। दिस-५। यहै-३-५।

शब्दार्थ—त्रिवेणी तटि=भ्रूमध्य त्रिकुटिस्थान। अजब अंजन=निर्भ्रान्त ज्ञानांजन। अगह अघ विनि अघ जारण=वह मन-इन्द्रियों की पकड से बाहर है, निष्पाप है, पापों का विनाशक है। पति परसना=उस विश्वपति व्यापक-ब्रह्म मे एकत्व होने पर। धुनि=अनहद नाद के स्थान में। मुनि=मौन मन, राग-द्वेष से रहित मन। मठ रच्या=अपना स्थान बनाया।

इस दोहे मे सम्वत् का निर्देश है। उससे सम्वत् १७६५ सिद्ध होता है। सम्वत् के लिये निर्दिष्ट अङ्क उल्टे गिने जाते है–तदनुसार शशि एक, मुनि सात, नव नौ, शर पांच–इस तरह छन्दरत्नावली का रचनाकाल १७६५ मे है। परमार्थ पंचसतसई यह छन्दरत्नावली से पहिले की रचना है। इनने और भी रचना की है। मेरे संग्रह मे जो पुस्तक है उसमे इनके फुटकर नब्वे कुण्डलिये तथा पचास विरह के कुंडलिये लिखे है। बीकानेर निवासी स्वामी नरोत्तमदासजी के संग्रह मे एक गुटका मैने देखा था उसमे इनकी अन्य रचनाये है। मेरे पास जो इनके ग्रन्थों का गुटका है उसका लेखनकाल सं० १८५३ माघ बदी ३ है। इनने पंच परचई मे केवल हरिपुरुषजी के चमत्कारो का वर्णन किया है। इनकी रचना मे कही काल का उल्लेख नही है। परचईकार तथा भक्तमाल—लेखकों ने काल के महत्व को कोई स्थान नही दिया है। हरिदासजी की इस परचई से हरिपुरुषजी की अलौकिकता का ही दिग्दर्शन होता है। वे इस परचई का आरंभ इस तरह करते है–

प्रथम पीपली प्रत्यक सिला नागोर विशेषो,
नयो गेन्द अजमेर फुनिंग पुनि टोडे पेषो।

गिरि सों गागर गिरी नीझर राख्यो सारो,
देवी को सिष करी जार विष विप्र उधारो॥

सिंह परचो आमेर राव राजा सब जांणे,
अपंग विप्र पंथ चल्यो शाह सुत जियो सिंघाणे।

शिर पर कर गोरषनाथ को, ठौर ठौर परचा दियौ॥
जन हरिपुरुष निरंजनी, त्याग वैराग सब सिरे कियौ॥१॥

अन्त मे यह दोहा कहा है—

इह श्री दयालजी की, पंच परचई नाम॥
अनत और परचा भया, कहै दास हरिराम॥१॥

उनकी वाणी के विषय मे वे कहते हैं—

मनहर—हरिपुरुष दयाल जीवन को किये निहाल,
गुरू गोरष प्रताप गिरा यह उचारी है।

मन चंचल निहचल भया, भरम न कोई भूत।
पहली का पैंडा तज्या, उलटि चल्या अवधूत ॥
उलटि चल्या अवधूत, निरषि निरभै पद लागा।
कांम क्रोध अभिमान, आंन अनरथ अरि भागा ॥
जन हरीदास आनंद भया, उलझि 'सलूभया' सूत।
मन चंचल निहचल भया, भरम न कोई भूत ॥३८॥

॥ इति परचा को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मन को अंग ॥

अधर नीर आकास मैं, राषै विरला कोइ।
मन पांणी 'मुषि' सबद कै, राष्यां ही सुष होइ ॥
राष्यां ही सुष होइ, हरि नांव मन कै मध धारै।
ब्रह्म अगनि 'परजलै', मन पारा यूँ मारै ॥
नीर पलटि पावक तवै, गत जन हरीदास पष दोइ।
अधर नीर आकास मैं, राषै विरला कोइ ॥१॥

×

पाठभेद—सलूधा-१। मुष-१। प्रजलै-१-५।

शब्दार्थ—पहली का पैडा तज्या=मायिक वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रवृत्ति त्याग दी। उलझि=सांसारिक-बन्धनो मे उलझा हुआ मन। सलूभया=वासना-विहीन मन आत्माभिमुख हो सुलझ गया। अधर नीर आकास मैं=निराश्रय-वृत्ति प्रवाहरूपी पानी को दशमद्वार-ब्रह्मरन्ध्र मे कोई विरला ही रख सकता है। मन पाणी मुष सबद कै, राष्या ही सुष होइ=चञ्चलस्थितिमन पानी की तरह प्रत्येक वासना में बह जाता है, उसको गुरुमुख से निकले उपदेशमय शब्दों से रोक कर रखा जाय तभी अविनाशी सुख की प्राप्ति सम्भव है। ब्रह्म अगनि परजलै=व्यापक चेतन मे लय हुई वृत्ति से उत्पन्न ब्रह्माग्नि प्रज्वलित हो तभी। मन पारा यूँ मारै=मन को इस प्रकार मारा जा सकता है-स्थिर बनाया जा सकता है।

मन कै वसि सव जीव है, मन वसि करै सो कोइ।
जन हरीदास मन राज है, तहां राज विराजी होइ ॥
तहां राज विराजी होइ, नाच मन 'वहौत' नचावै।
तवही पुसी उछाह, 'वहौड़ि' तवही दुप पावै ॥
रांम भजन का भै नहीं, पैंडा तजै न दोइ।
मन कै वसि सव जीव है, मन वसि करैस कोइ ॥२॥

×

मन विसहर मुप पांच, आंपि अणगिणत तमासा।
द्वादस डसण षट जीह, मोह वंवइ तहाँ वासा ॥
मोह वंवइ तहाँ वासा, पूँछ गहि 'च्यंता' ताणै।
डंक भरै तहां जहर, जुगति कोइ जोगी जांणै ॥
जन हरीदास गुर ग्यांन जड़ी, ले गहि मुप कीलै आसा।
मन विसहर मुप पांच, आँपि अणगिणत तमासा ॥३॥

×

'पांचू' इन्द्री 'सरप' मन, च्यंता जहर मुप लोइ।
कील्या तव निरविष भया, डंक भरि सकै न कोइ ॥
डंक भरि सकै न कोइ, जुगति जांणै तव जागै।
नाग दवणि हरि नांव, रहै मन का मुप आगै ॥

पाठभेद—बहुत-१। बहुरि=१। चिंता-३-४। पाचौ-१। सर्प-१।

शब्दार्थ—राज विराजी होइ=चेतनात्मा मन की अनवस्था से अप्रसन्न होता है। तव ही=जब चाहे, क्षण-क्षण मे। दोइ=दो, सङ्कल्प-विकल्प। मन विसहर=मन-रूपी सर्प। मुप पाच=ज्ञानेन्द्रियो द्वारा पांच मुखो से। आपि अणगिणत=वासनामय अपार आँखे है। द्वादश डसण=मन की बारहवाट है, वही उसके दाँत हैं। षट् जीह=काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष मे प्रवृत्तिरूपी छ जिह्वाएँ हैं। मोह वंवई तहा वासा=संसार का मोह वही उसकी बाँबी-बिल है, वही उसका निवास है। कील्या=मन्त्र मे जड (बान्ध) देना, गुरु-उपदेश मे अन्तर्मुख करना यही उसका बाँधना है। डक भरि सकं न कोइ=अब किसी के डङ्क नही भर सकता-काट नही सकता, विपयवासना मे नही लग सकता।

जन हरीदास मन उनमनि लागा रहै, पवन सुरति संग दोइ ।
पांच इन्द्री मरप मन, च्यंता जहर सुप लोइ ।।४।।

×

जन हरीदास कहिये कहा, रूप गै 'ज्यूँ' मन धारै ।
काया बन में चरै, डरै नहि डहकि न हारै ।।
डरै नहि डहकिन हारै, चलै अपणी गै गोड़ै ।
सुर नर असुर अनंत, सुतौ तिणका ज्यूँ तोड़ै ।।
विवधि दांत धरि चूरि, सुनौ सब 'सिसटि' संघारै ।
जन हरीदास कहिये कहा, रूप गै ज्यूँ मन धारै ।।५।।

×

मन पंषी काया सुवन, 'डाली डाली' चाव ।
आँपि अनंत हित सुप अनंत, विवधि पंष 'वहौ' पांव ।।
विवधि पंष वहौ पांव, सुतौ सति सवद न माषै ।
हरि तरवर सुप अगम, विवधि तरवर फल चाषै ।।
जन हरीदास चंचल चपल, झूठ भरम तहाँ भाव ।
मन पंषी काया सुवन, डाली डाली चाव ।।६।।

×

पाठभेद—ज्यौं–१ । सिष्टि–१-५ । डारी-डारी–१ । बहु–१ ।

शब्दार्थ—पवन सुरति=प्राण तथा वृत्ति । गै ज्यूँ=हाथी की तरह । गै गौडै= मस्ती में आए हुए हाथी की तरह । विवधि दात=नाना प्रकार के वासनारूपी दातो से । सिसटि=सृष्टि, संसार । डाली डाली=विविध विषयों में प्रवृत्तिमय डाल-डाल पर । सति सवद=सत्यवाणी, आत्मचिन्तन । विवधि तरवर फल चाषै=अनेक विषय-भोगरूपी फलों को चखता है ।

ज्यूँ मन फेरै त्यूँ फिरै, मन कूँ फेरै नांहि।
निवाला पूजा तकै, व्याह वाहरां जांहि॥
व्याह वाहरां जांहि, पांहि 'अर' 'विक्रत' गावै।
डीवी मांहि दिष्टि, अहै मिथ्र रूप कहावै॥
जन हरीदास ऐसा जती, हम देष्या कलि मांहि।
ज्यूँ मन फेरै त्यूँ फिरै, मन कूँ फेरै नांहि॥७॥

×

नांव तुम्हारौ रांमजी, लेतां लगै न दाम।
मन निकमों बैठो रहे, करै 'और' ही काम॥
करै और हीं काम, ग्यांन उरि अन्तरि नांहि।
हरि सुषसागर छाड़ि, वसै विष का वन मांहि॥
जन हरीदास जामैं मरै, हरि सूँ इहै हरांम।
नांव तुम्हारो रांमजी, लेता लगै न दाम॥८॥

॥ इति मन को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ माया को अंग॥

एक वीज ताका विरछ, अनंत रूप 'वहौ' माइ।
ता तरवर का फूल मैं, सव 'को' रह्या समाइ॥

पाठभेद—अरु-३-४। विकरत-१। अवर-१। वहु-१। कोइ-१।

शब्दार्थ—निवाला=अच्छे भोजन। पूजा तकै=सम्मान चाहे। व्याह वाहरा= विवाह, बारवां तथा द्वादशा। विक्रत गावै=भ्रम मे डालने वाले प्रवृत्तिमय उपदेश दे। डीवी माहि=पात्रपर, चढावे भेट की ओर। एक वीज=मूलप्रकृति।

सब को रह्या समाइ, 'वहौत' भूषा वहौ धाया ।
ताही मैं उपजै षपै, आप ही आप बंधाया ।।
जन हरीदास हरि सुष अगम, तहाँ साध एक कोइ जाइ ।
एक बीज ताकां विरछ, अनंत रूप वहौ माइ ।।१।।

×

माया दरषत जहरफल, अगम वार नहि पार ।
'च्यारि' षांणिका जीव सब, गरक फरक विसतार ।।
गरक फरक विसतार, षुसी षेलै ता मांहि ।
जन हरीदास हरि सुष अगम, तहां तै पहुंचे नांहि ।।
षट् दरसण उड़ि उड़ि थक्या, विवधि पंष उरि भार ।
माया दरषत जहरफल, अगम वार नहिं पार ।।२।।

×

या अंजन 'सूँ' प्रीति है, तहां निरंजन दूरि ।
अंजन भंजन होइगा, तहां काल भै पूरि ।।
तहां काल भै पूरि, जनम ऐसा 'क्यू' हारै ।
भी कौड़ी सूँ हेत, हाथ सूँ हीरा डारै ।।
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, तजि मांन वड़ाई धूरि ।
या अंजन सूँ प्रीति है, तहां निरंजन दूरि ।।३।।

×

पाठभेद—बहुत-१। चारि-१। स्यूँ-१। क्यौ-१-३।

शब्दार्थ—च्यारि षांणि=चारो अण्डजादि योनियाँ। उड उड़ थक्या=नाना धर्मपन्थो की उड़ान उड़-उड़कर थक गये। विवधि पष=अनेक भिन्न-भिन्न सिद्धान्त-रूपी पङ्ख। या अजन सूँ=इस माया से। अंजन भंजन होइगा=जहाँ माया प्राप्ति का ही लक्ष्य होगा।

सकल वियापी सँगि वसैं, दुरया देह की वोट।
दूजा 'औगुण' को नहीं, या अंजन का पोट॥
या अंजन का पोट, जागि जोगी जुध कीजै।
ग्यांन षड़ग लै हाथि, रिण जीत काया गढ़ लीजै॥
जन हरीदास हरि सुष तहां, जम करि सकै न चोट।
सकल वियापी सँगि वसैं, दुरया देह की वोट॥४॥

×

माता 'होइ' सेवा करै, देह पलटि होइ नारि।
पिता पलटि भी पूत होइ, देष्या सोच विचारि॥
देष्या सोच विचारि, बात 'यह' का सूँ कहिये।
आप आप सूँ जांणि, आप तैं न्यारा रहिये॥
जन हरीदास हरि सुमिरतां, उरकरि लगै न गारि।
माता होइ सेवा करै, देह पलटि होइ नारि॥५॥

×

॥ अथ मन को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ चाणक को अंग॥

तकन तकत तकि तकि थक्या, चलत चलत गया हारि।
वकत वकत वकि वकि वक्या, मन कूँ सक्या न मारि॥
मन कूँ सक्या न मारि, देह सुष दुरभष दारण।
पारब्रह्म सुष दूरि, रह्या माया का कारण॥

पाठभेद—अवगुण-१। हुइ-३-४। याह-१।

शब्दार्थ—दुरचा=छिपा। वोट=ओट, आड। दुरभष दारण=भयङ्कर दुःख, अति क्लेश।

जन हरीदास हरि सुष अगम, तहां मन सक्या न धारि।
तकत तकत तकि तकि थक्या, चलत चलत गया हारि ॥१॥

×

पढ़त पढ़त पढ़ि पढ़ि अपढ़, अरथ करत भये अंध।
हरि 'परहरि' चाल्या कुपहि, 'गल' मैं तैं दोइ फंध॥
गल मैं तैं दोइ फंध, नांव नरहरि नहिं लीया।
पारब्रह्म पति छाड़ि, 'और' नाना रस पीया॥
जन हरीदास नर ना भजै, नाराइण निरस्यंध।
पढ़त पढ़त पढ़ि पढ़ि अपढ़, अरथ करत भये अंध ॥२॥

×

सुणत सुणत सुणि सुणि असुण, कथत कथत 'गए' कोड़ि।
रहत रहत रहि रहि वह्या, पालि गया मन फोड़ि॥
पालि गया मन फोड़ि, रांम भजि पार न कीया।
काम क्रोध अभिमान, मोह माया मद पीया॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, तहां मन सक्या न जोड़ि।
सुणत सुणत सुणि सुणि असुण, कथत कथत गए कोड़ि ॥३॥

×

एकादश गीता पढ़ी, अणभै अरथ अनेक।
पैंडा दोइ दोइ करत है, बात करत है एक॥
बात करत है एक, सुरति तहां लागी नांहि।
परापरै पति छाड़ि, धस्या ऊँडा जल मांहि॥

पाठभेद—प्रहरि-१। गलि-१। अवर-१। गये-२।

शब्दार्थ—धारि=लगा, स्थिर। अरथ करत=वाचक ज्ञानी, शब्दो के अर्थ कर-कर। गल मै तै दोइ फंध=मेरा-तेरा इस भेदभावना के गले मे दो फन्दे है। रहत रहत=माया के पदार्थो मे रह-रहकर। पालि=सीमा, बांध। पैंडा=मार्ग। दोइ दोइ=तेरा-मेरा। सुरति=वृत्ति। परापरै=परब्रह्म। ऊँडा जल=संसारसागर मे।

जन हरीदास नर बोलै दुरसि, बांणी विवधि वमेक।
एकादश गीता पढ़ी, अणभै अरथ अनेक ॥४॥

×

बैत इलम पढ़ि आरवी, सवका करै वयान।
भी फिरि दुनिया 'सूँ' मिलैं, इहै वड़ा हैरान ॥
इहै वड़ा हैरान, परम सुषि पहुँता नांहि।
आपा कै अस्थांन, वसै विष का वन मांहि ॥
जन हरीदास निरविष नहीं, चित मांही वित आंन।
वैत इलम पढ़ि आरवी, सवका करै वयान ॥५॥

×

च्यारि वेद 'चारयूँ' पढ्या, इलम आरवी आथि।
मन चंचल निहचल नहीं, तौ कछू न आया हाथि ॥
तौ कछू न आया हाथि, वात कहि व्यौरा दीया।
हरि 'सम्रथ' विचि वोट, जहर 'इंम्रत' करि पीया ॥
जन हरिदास कहिये कहा, नर मन सक्या न नाथि।
चारि वेद चारयूँ पढ्या, इलम आरवी आथि ॥६॥

×

पाठ पढ्या 'सुम्रत' सबै, इलम आरवी आथि।
कहिये त्यूँ रहिये नहीं, तौ कछू न आवै हाथि ॥
तौ कछू न आवै हाथि, अलष गति लषै न कोई।
पारब्रह्म पति छाड़ि, अवधि षर ज्यूँ नर षोई ॥

पाठभेद—स्यूँ–१। चारचौ–१-५। समरथ–१। इमरित–१। सुमिरत–१।

शब्दार्थ—दुरसि=बुरी, अप्रिय। इलम=विद्या। आरवी=अरबी, कुरान। वयान=वर्णन। आपा=गर्व, अहङ्कार। वित आन=दूसरा धन, भौतिक सम्पति। व्यौरा=जानकारी, वर्णन। नाथि=वश मे करना। सुम्रत=याद करते, चिन्तन करते। षर=गधा।

जन हरीदास कहिये कहा, मन वसै विडांणै साथि।
पाठ पढ्या सुम्रत सबै, इलम आरबी आथि ॥७॥

×

सब 'सुम्रत' श्रवणां सुण्यां, सब देष्या औगाहि।
भरथर सत के सवद का, अरथ करै वहौ भाइ॥
अरथ करै वहौ भाइ, अरथ अनभै सब जांणै।
अगम निगम दिष्टांत, कथा मैं 'परसंग' आंणै॥
जन हरीदास 'औगण' इहै, त्रिवधि ताप तन ताहि।
सब सुम्रत श्रवणां सुण्यां, सब देष्या औगाहि ॥८॥

×

स्वामी तौ वैठा सही, मांनि छांनि की छांहि।
मांनि छांनि उड़ जाइगा, जब जम पकड़ै बांहि॥
जब जम पकड़ै बांहि, पकड़ि धरती सूँ मारै।
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, नर कौंण दरबारि पुकारै॥
माया ठगि ठगि षात है, यौं मति जांणें षांहि।
स्वामी तौ वैठा सही, मांनि छांनि की छांहि ॥९॥

×

जन हरीदास सबको सुषी, राग दोस रस हाथि।
अरस परस होइ मिलि रह्या, गुण इंद्रया कै साथि॥
गुण इंद्रया कै साथि, जहर 'इंम्रत' करि पीवै।
साधां वरजी बात, तहां ही लागा जीवै॥

पाठभेद—सुमरत-१। समृत-३। प्रसंग-१। अवगुण-१। इमरित-१।

शब्दार्थ—औगाहि=छानबीन कर। भरथर सत=भर्तृहरिशतक। परसग आणैं=प्रकरण लावे, दृष्टान्त दे। त्रिवधि ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। मानि छानि की छांहि=गर्व के छप्पर की छाया मे। यौ मति जांणैं षाहि=ऐसा मत समझ कि ये छल करते है। जहर=विषयभोगरूपी विष। साधां वरजो=महात्माओ ने जिसके लिए मना किया।

कोइ जन जाग्या सो जांणसी, रांम नाम निज आथि ।
जन हरीदास सब को सुषी, राग दोस रस हाथि ॥१०॥

×

भेष पहरि भांडी करी, हारि जीत 'सूँ' हेत ।
अरस परस वाइक जहर, 'यूँ' लाड्ड करि लेत ॥
यूँ लाड्ड करि लेत, हेत रस बांटैं भारी ।
अधिक प्रीति 'परवेस', मिलैं ज्यूँ स्वांन मँजारी ।
जन हरीदास कहिये कहा, चेतै नहीं अचेत ॥
भेष पहरि भांडी करी, हारि जीत सूँ हेत ॥११॥

×

लोगां सेतीं प्रीति, साध देष्यां दुष पावै ।
विरकत दीसैं दूरि, इहै मोहि अचिरज आवै ॥
इहै मोहि अचिरज आवै, जहर दारण दुष दाषै ।
नीसांणां की बात, मूँठि दुविध्या मैं राषै ॥
जन हरीदास 'औगण' इहै, आप का औगण छावै ।
लोगां सेती प्रीति, साध देष्यां दुष पावै ॥१२॥

×

तामस गुण रस वैरता, राजस रस अभिमांन ।
स्वातिग रस गुण लुड़षड़ी, तहां जीव तोड़ै तांन ॥

पाठभेद—यौ-१ । प्रवेस-५ । अवगुण-१ ।

शब्दार्थ—निज आथि=असली धन । भांडी करी=भांडपणा किया, दिखावट मे ही रहा । वाइक=वाक्य, शब्द । यूँ लाडूकर लेत=अपने दिखावटीपन को भी महत्व का मान लेना । औगण छावै=अपने अवगुण छिपावे । रस वैरता=तम का गुण क्रोध । राजस रस अभिमान=रजोगुण का रस अहङ्कार । लुडषड़ी=मीठा बोलना ।

वेद रु पुराण सब कतेब कुरांण काव्य,
सोधि सोधि मंत्र तंत्र बांध्यों भ्रम भारी है ॥
ऋषीश्वर तपेश्वर मुनीश्वर जोगेश्वर,
ठाढेश्वर ऊर्धबाहु भ्रमवश ख्वारी है ।
गोरष सिष दयाल प्रगटे हरीपुरुष,
बावन सिष सहित हरि प्रीति प्यारी है ॥

उपर्युक्त उद्धरणो से यह व्यक्त होता है कि निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी हरिपुरुषजी थे, वे गोरषनाथजी के शिष्य थे। उनने कई तरह के चमत्कार दिखाये थे। काल-सम्वत् का इनने कोई उल्लेख नही किया है। इनका अपना काल अठारहवी शताब्दी के द्वितीय चरण से चतुर्थ चरण तक का माना जा सकता है, जैसा कि छन्द रत्नावली के दोहे से सिद्ध है। संभव है ये महाराज सेवादासजी के समकालीन हो। सेवादासजी हरिपुरुषजी महाराज की छठी पीढी मे हुए है। तदनुरूप हरिरामदासजी भी छठी या सातवी पीढी मे माने जाने चाहिए।

स्वामी सेवादासजी का जन्म सम्वत् १६९७ मे हुआ था और उनका देहावसान सम्वत् १७९८ मे हुआ–ऐसा निरूपण सेवादासजी के पोताशिष्य स्वामी रूपदासजी ने "सेवजी की परचई" मे किया है–

सतरह सौ अठाणवें, वद पडवा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधारिया, किया ब्रह्म में वास ॥१॥
सोलह सौ सताणवें, चैत सुदी नवमी दिन ॥
ता दिन बाजा बाजिया, प्रगटे सेवा जन ॥२॥
ईश कला अवतार जन, राजगुरू घर सन्त ॥
रूपदास जन का कहूँ, महिमा बहुत अनन्त ॥३॥
जैसे जल में जल मिले, ऐसी संतन रीति ॥
रूपदास जन का कहूं, जिनके या परतीति ॥४॥
अठारा सौ बत्तीस में, वदि वैशाषां जोइ ॥
बारस तिथि गुरुवार दिन, परचई पूरण होइ ॥५॥

तहां जीव तोड़ै तांन, घर स चौथा नहिं पाया।
भेष धरया धरि छिप्या, जीव जीवाँ की छाया ।।
जन हरीदास कहिये कहा, कहि कौंण न पूजै आन।
तामस गुण रस वैरता, राजस रस अभिमांन ।।१३।।

×

स्वादी सूँ स्वादी मिलै, जहां समझि तहां साच।
मांनि अमांनि मै तैं मनी, स्वाद नचावै नाच ।।
स्वाद नचावै नाच, पांच इन्द्री रस पीवै।
जहां जीव का वास, तहां ही लागा जीवै ।।
जन हरीदास हरि स्वाद तजि, कूँण गहै करि काच।
स्वादी सूँ स्वादी मिलै, जहां समझि तहां साच ।।१४।।

×

ऊपर वाड़ै सेरियां, कहै पीव सूँ प्रीति।
'याह' वातां सहि परसि करि, कौंण गया जुग जीति ।।
कौंण गया जुग जीति, रांम सुष लहै न क्यूँ ही।
साषी सवद अरथ, कहै कहि ज्यूँ का त्यूँ ही ।।
जन हरीदास औगण इहै, रजा आंन रस रीति।
ऊपर वाड़ै सेरियां, कहै पीव सूँ प्रीति ।।१५।।

×

पषा पषी सबकौ मिलै, जहर भरया मुष नाग।
जन हरीदास वोल्यां विगति, कहां कोइल कहां काग ।।

पाठभेद—यह–१।

शब्दार्थ—स्वादी सूँ=सांसारिक पदार्थों को चाहने वाले से। समझि=तत्व-ज्ञान। साच=सत्य, निर्गुण तत्व। तहां ही=उसी मे, वही। सेरिया=गलियां, रास्ते। याह वातां=इन दिखावटी बातो से। रजा=आज्ञा, हुक्म। पषा पषी=अपने-अपने पक्षधर्म को लेकर।

कहां कोइल कहां काग, भेष भी व्यौरा भारी।
वाह अचवै रस आंब, काग करकां विभचारी ।।

वरण छाड़ि अवरण भजै, ताकै 'मसतगि' भाग।
पषा पषी सब कौ मिलै, जहर भरया मुष नाग ।।१६।।

भूलि गया भांडी करी, परम सनेही रांम।
जहां तहां तैं जीव सब, न्याइ सहै सिर घांम ।।
न्याइ सहै सिर घांम, नाँव निरभै नहि पाया।
सूक 'त्रिछ' सूँ प्रीति, अगम हरि तरवर छाया ।।
जन हरीदास गोव्यंद् विमुष, कदे न नर निहकाम।
भूलि गया भांडी करी, परम सनेही रांम ।।१७।।

।। इति चाणक को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ कामी नर को अंग ।।

काम गयंद् गरजत फिरै, पवन धजा फहराइ।
जा जा घटि संचर करै, सो काम रूप 'व्है' जाइ ।।
सो काम रूप व्है जाइ, संक काहू की नहिं मानै।
'वसती' मांहि उजाड़, कोस द्वादस की जानै ।।
जन हरीदास गति मति हरै, बुधि बल कछु न बसाइ।
काम गयंद् गरजत फिरै, पवन धजा फहराइ ।।१।।

×

पाठभेद—मस्तगि–१-३। त्रिष–१। होइ–५। वस्ती–१-५।

शब्दार्थ—वरण छाडि=सगुण तज। ता कै मसतगि भाग=उसके उत्तम भाग्य है। सर घाम=त्रिविध-सताप सहना। सूक त्रिछ=संसारसुख सूखे वृक्ष वत् है। हरि तरवर छाया=चेतनरूपी वृक्ष की सवदा सुखदायी छाया है। काम गयंद=कामरूपी …क=शका, मर्यादा। उजाड=सूनापन, निर्जन।

ग्यांन तषत तैं ऊतरया, झुक्या झरोषै आइ।
देषि मगन मन मोहनी, पीछे लागा 'धाइ'॥
पीछे लागा धाइ, चोरि चंचल चित लीया।
संकर तैं कोइ सबल, काम अपणै बसि कीया॥
जन हरीदास कहिये कहा, बहौत भांति करि षाइ।
ग्यांन तषत तैं ऊतरया, झुक्या झरोषै आइ॥२॥

×

घटत घटत सब यूँ घट्या, ज्यूँ किसांण का लौह।
जन हरीदास जीव करत है, आप आपणां दौह॥
आप आपणां दौह, दुषस दारण तहां जीवै।
पारब्रह्म पति छाड़ि, 'और' नाना रस पीवै॥
साच सबद श्रवणां सुणै, तब उरि प्रगटै छौह।
घटत घटत सब यूँ घट्या, ज्यूँ किसांण का लौह॥३॥

×

जन हरीदास संसार सुष, लौह 'अगनि' की प्रीति।
लौह घटै कोइला जलै, दहूँ अँगा याह रीति॥
दहूँ अँगा याह रीति, कहा पुरस कहा नारी।
क्रोध अगनि 'परजलै', धवणि दोइ दुष सुष भारी॥
मोह लुहार मैं तैं सु 'घण', बिथा गई बप जीति।
जन हरीदास संसार सुष, लौह अगनि की प्रीति॥४॥

×

पाठभेद—अवर-१। अग्नि-१। प्रजलै-१। घन-३-४।

शब्दार्थ—झुक्या झरोषै आइ=कामप्रवृत्ति मे प्रवृत्त होना। ज्यूँ किसाणां का लौह=जैसे किसान के हल का फाल घिसता रहता है। दौह=द्रोह, वैर। दुषस दारण=वासना की अपूर्त्तिजन्य अत्यन्त दु:ख सहता है। छोह=क्रोध। संसार सुष=बिषयभोग का सुख। धवणि=धौकनी। मै तै सुघड़=मेरा-तेरा का भेदरूपी घन। वप=शरीर, देह।

नारी कै पषि नर वँध्या, ग्यांन परां पष नास।
फिरि देषै आकास कूँ, भी उड़णै की आस॥
भी उड़णै की आस, 'सकति' उड़णै को नांहि।
धरचो धरचा सूँ हेत, विवधि 'चिंता' घट मांहि॥
जन हरिदास नर जामै मरै, जलि थलि जहां तहां वास।
नारी कै पषि नर वँध्या, ग्यांन परां पष नास॥५॥

×

जन हरीदास नारी नरां, मोटी विथा विकार।
रूप दीप सुर नर पतंग, जल वलि तन मन छार॥
जलि वलि तन मन छार, अंति 'दोन्यूँ' पष छीजै।
काम करद कर कुवुधि कै, जिवह किया कै कीजै॥
एक दुरन कूँ वोट है, रांम नाम ततसार।
जण हरीदास नारी नरां, मोटी विथा विकार॥६॥

×

रांम स वन मैं छल्या, अकलि ब्रह्मा की षोवण।
पारासुर तपहरण, मुचकंद सिसपाल विगोवण॥
मुचकंद सिसपाल विगोवण, गरव लंका गढ़ हारण।
रांवण सैन्या मारि, नरकि नरकासुर डारण॥

पाठभेद—सक्ति-३-५। च्यंता-२। दोन्यौ-१।

शब्दार्थ—पषि=पक्ष मे, साथ। ग्यान परां=ज्ञानरूपी पङ्ख। धरचो धरचा सूँ हेत=नाशवान भौतिक-पदार्थों से प्रेम। मोटी विथा=बड़ी पीड़ा। रूप दीप=स्त्री के मोहकरूपरूपी दीप मे। काम करद=कामरूपी छुरी। जिवह=कत्ल, संहार। विगोवण=डुबोने वाला।

जन हरीदास नारी सरूप, 'परमगति' उरतैं धोवण।
रांम स वन मैं छल्या, अकलि ब्रह्मा की षोवण ॥७॥

×

जदपि 'मछिंदर' मन डिग्या, देषि नाटक घट नारी।
राजा जत जतन करत, धूत्यो धूतारी॥
धूत्यौ धूतारी, काम वसि तौ मति काची।
पकड़ि नचायो कान्ह, साथि महियारी नाची॥
जन हरीदास तनु ठग्या, देह जब गंगा धारी।
जदपि मछिंदर मन डिग्यो, देषि नाटिक घट नारी॥८॥

×

दुस्सासण की भुजा, लात दै उरां उपाड़ी।
पांडौ लै पैठी हेम, 'सेनि' कैरवाँ सँघारी॥
सेनि कैरवाँ संघारी, चिरत एक और बणाया।
जन हरीदास दसरथ सुत, सो रांमचंद्र वनवास पठाया॥
सींगी रिषि वन मांहि ठगि, साथ लै चली ठगारी।
दुस्सासण की भुजा, लात दै उरां उपाड़ी॥९॥

॥ इति कामी नर को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—प्रमगति-१। मछिंद्र-१। सेन्य-२।

शब्दार्थ—परम गति=मुक्तिमार्ग की इच्छा। उर तै धोवण=हृदय से धो देना, निकाल देना। डिग्या=झुका, लड़खड़ाया। राजा=भर्तृहरि। धूत्यौ=ठगा। धूतारी=ठगनी। महियारी=स्त्रियाँ, गोपियाँ। शंतनु=राजा शान्तनु। उरां=छाती पर। हेम=हिमालय में।

॥ अथ भरम-विधूंस को अंग ॥

पुरस नारि मैं तैं नहीं, नहि पासा नहिं सारि ।
उाव नहीं चौपड़ि नहीं, नहीं जीति नहिं हार ॥
नहीं जीति नहिं हार, इहै मोहि 'इचरज' आवै ।
नहीं काल नहि जाल, कौण जमलोक पठावै ॥
जन हरीदास जीव तुलत है, आप आपणैं भारि ।
पुरस नहीं मैं तैं नहीं, नहिं पासा नहि सारि ॥१॥

×

ऊँच नीच निरभै मतै, कोई 'परसो' पाँव ।
ता करि तैसा फल चढ़ै, जाकै जैसा भाव ॥
जाकै जैसा भाव, तिसै सुष जाइ समावै ।
गुण धरि माया सूँ मिलै, निरगुण निरभै पद पावै ॥
जन हरीदास षेलौ कहूँ, दहूं अँगा यहु 'दाव' ।
ऊँच नीच निरभै मतै, कोई परसो पाँव ॥२॥

×

मेरे हिरदै मँड रह्या, निरगुण जस विसतार ।
माई मूँडूँ आन की, लार उड़ाऊँ छार ॥
लार उड़ाऊँ छार, भार सिरि सह्या न जाई ।
भजि करणहार करतार, छाड़ि दूजा दुषदाई ॥

पाठभेद—अचिरज-५ । अचरिज-१ । प्रसो-१ । डाव-५ ।

शब्दार्थ— डाव=दांव, मौका । इचरज=आश्चर्य । तुलत है=तुलना, समानता करना । आपणै भाइ=अपने अहङ्कार के अनुसार । परसो=स्पर्श करो, उसमे लगो । गुण धरि=सगुण उपासना, सकाम कर्म । दहु अँगा=दोनो ओर, ऊँच नीच मे । आन की=और की । छार=राख ।

जन हरीदास काचा 'इसट', ले जाई काली धार ।
मेरे हिरदै मँड रह्या, निरगुण जस विसतार ॥३॥

॥ इति भरम विधूंस को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उपदेश को अंग ॥

अवधि घटै ग्रासै जुरा, काल पहूँता आइ ।
रांम भजो विषिया तजो, जनम अमोलिक जाइ ॥
जनम अमोलिक जाइ, जीव जाणौं तौ जांणी ।
हरि सुमिरण उर धारि, आन उरि इसट न आंणी ॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, फेरि तहां मन लाइ ।
अवधि घटै ग्रासै जुरा, काल पहूँता आइ ॥१॥

×

मन सज्जन एक वात, वात या तुम्ह सूँ कहिये ।
तजि कांम क्रोध अभिमांन, रांम राषै 'तहां' रहिये ॥
रांम राषै तहां रहिये, सिर जुरा मरण जमचोट न लागै ।
आतम कै 'असथान', जोग जरणां ले जागै ॥
जन हरीदास निरभै 'वसत', अगहि अभिअंतरि लहिये ।
मन सज्जन एक वात, घात या तुम्ह सूँ कहिये ॥२॥

×

पाठभेद—इष्ट-१-५ । त्यूँ-३ । अस्थांन-१-५ ।

शब्दार्थ—काचा इसट=कामनामय उपासना । घात=ताक, मौका । आतम कै असथान=अधिष्ठानचेतन, व्यापक ब्रह्म । जोग=योगसाधन से । जरणां=सहनशीलता । निरभै वसत=कालभय से रहित चेतनतत्व ।

गरव छाड़ि गोव्यंद भजौ , भूलि पड़ौ मति कोइ ।
जन हरीदास हरि सी 'वसत' , भूलां भली न होइ ॥
भूलां भली न होइ , फुनिग मणि विणि क्यूँ जीवै ।
जहर पियाला कहर , हाथ अपणौं नर पीवै ।
उरि अंतरि कांटा अहूं , ग्यांन निजर लै षोइ ।
गरव छाड़ि गोव्यंद भजौ , भूलि पड़ौ मति कोइ ॥३॥

×

आप आप कूँ मारि करि , आप आप कूँ षाइ ।
आप आप कूँ छाड़ि करि , आप आप तहां जाइ ॥
आप आप तहां जाइ , रांम निरभै सुष जांणैं ।
ता सुषि रहै समाइ , आंन उरि 'इसट' न आंणैं ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ , मैं तैं मोह चुकाइ ।
आप आप कूँ मारि करि , आप आप कूँ षाइ ॥४॥

×

जन हरीदास सिर कै सटै , कोई स्यौदा ल्यौह ।
सिर सौप्यौ संसार कूँ , 'यहु' साहब कूँ द्यौह ॥
यहु साहब कूँ द्यौह , मूल योहीं मत साचा ।
रांम अषंडित गाइ , गहौ सतगुर की वाचा ॥

पाठभेद—वस्त-५ । इष्ट-१-५ । इहु-२ ।

शब्दार्थ—फुनिग=फणिसर्प । कहर=काल । काटा अहुं=अहङ्काररूपी शूल । आप आप कूँ मारि करि , आप आप कूँ षांहि=मन ही मन को मारकर चञ्चलता हटा उसके कालुष्य काट देता है । आप आपकौ छाडि करि , आप आप तहां जाइ= मन अपने देहाध्यास को त्याग अपने आधार चेतनतत्व मे समाहित हो जाता हैं । स्यौदा लेहु=वस्तु खरीदो, विणज करो । सिर सौप्यौ=सिर सौप, उस विषयवासना मे अपने को लगाया । यहु साहब कूँ द्यौह=यह जीवन परमपिता को अर्पण करो । वाचा= वाणी, उपदेश ।

मदन मोह मैं तैं तजौ, एक भला मत यौह।
जन हरीदास सिर कै सटै, कोई स्यौदा ल्यौह ॥५॥

×

जन हरीदास रचि मा विरचि, नांव निरंजन लेह।
जा सूँ तूँ अपनी कहै, सो तौ दूजी देह॥
सो तौ दूजी देह, झूठ सूँ नेह न कीजै।
उलटा गौता मारि, अगम अनहद रस पीजै॥
पांच तत्त तत्ता मिलै, दुरे देषतां देह।
जन हरीदास रचि मा विरचि, नांव निरंजन लेह ॥६॥

×

'जो' तूँ चाहे मुझ्झ कूँ, तौ आंन न धरि उर भाव।
मैं मारया मै मिलूँगा, मैं न्यारी धरि आव॥
मैं न्यारी धरि आव, जागि देषै नहिं लोई।
अरस परस रस 'एक', 'और' संचर नहिं कोई॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, ए पासा ए डाव।
जो तूँ चाहे मुझ्झ कूँ, तौ आंन न धरि उरि भाव ॥७॥

×

आंन वोट ऊभा अजूँ, सकै तौ पड़दा डालि।
साहिब कै पड़दा नहीं, तूँ अपणी वोट सँभालि॥

पाठभेद—जे-१। येक-२। अवर-१।

शब्दार्थ—मदन=काम। रचिमा विरचि=रचितसृष्टि के पदार्थों मे आसक्त मत हो। जासूँ तू=जिस काम को तू। झूठ सूँ=असत्य से, नाशवान पदार्थ से। पांच तत्त तत्ता मिलै=यह पाँच तत्वो का शरीर अन्त मे अपने-अपने तत्वो मे ही मिल जाता है। आंन न धरि=और का मत न अपना। मै मारचा=अहङ्कार को मारने से। मै मिलूँगा=आत्मतत्व प्राप्त होगा। सचर, नहिं=संचार नही, प्रवेश का मार्ग नही। आन वोट=वासना का सहारा, देवी-देवताओं की आड।

तूँ अपणी वोट सँभालि, जागि नर जागि न मोई।
नर नाराइण देह, रांम विनि वादि न षोई।।
जन हरीदास अंतरि अगहि, अगम 'वसत' सोइ भालि।
आंन वोट ऊभा अजूँ, सकै तौ पड़दा डालि।।८।।

×

जहां जीव तहां जोर है, जोर जीव कै साथि।
सहर मांहि वाजी मँडी, षाली पासा हाथि।।
षाली पासा हाथि, साथि सव षोटा साथि।
कांम क्रोध अभिमांन, मोह मद वहता हाथि।।
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, हरि निरभै निज आथि।
जहां जीव तहां जोर है, जोर जीव कै साथि।।९।।

×

वैर विरषि हिरदै वसै, दिन दिन वधतौ जाइ।
या वेदन कूँ हरि जड़ी, लाइ सकै तौ लाइ।।
लाइ सकै तौ लाइ, रोग कोइ रहण न पावै।
जन हरीदास तजि आंन, रांम भजि रांमहि गावै।।
अरि तरवर सींचै जिकौ, तिको जहर फल षाइ।
वैर विरष हिरदै वसै, दिन दिन वधतौ जाइ।।१०।।

×

पाठभेद—वस्त-१-५।

शब्दार्थ—वादि न=व्यर्थ ही। भालि=भली है, देख। जहा जीव=जिस ओर प्रवृत्ति है। सहर माहि=कायानगर मे। षोटा साथि=झूठे मित्र, आसुरी सम्पत्ति के हिसा, क्रोध, अज्ञानादि। वैर विरषि=ईर्ष्यारूपी वृक्ष। अरि तरवर=शत्रुरूपी वासना के वृक्ष को।

घटती बढती मातरा, अच्चर तुक अनुसार ॥
हरिजन सकल सुधारिज्यों, जन रूपदास बलिहार ॥६॥

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि सेवजी महाराज सतरहवी शताब्दी के अन्त मे उत्पन्न हुए। अठारहवी शताब्दी के अन्त मे शान्त हुए। रूपदासजी अमरपुरुषजी के शिष्य थे। अमरपुरूषजी सेवजी महाराज के शिष्य थे। मतलब–हरिदासजी महाराज के पश्चात् आठवी पीढी मे रूपदासजी हुए। उनने वाणी की रचना की है। उन्होने सेवजी महाराज की परचई बनाई और उसका रचनाकाल सम्वत् अठारह सौ बत्तीस था। सेवजी महाराज के गुरु स्वामी दयालदासजी का अवसान सम्वत् १७४५ मे हुआ–ऐसा विवरण ब्रह्मभाट की बही मे है, जो कि संगत ही प्रतीत होता है। सेवजी ने सोलह वर्ष की आयु मे दीक्षा ली–ऐसा परचई से विदित होता है।

षोडश वरस देह जब जोई, अगम ग्यांन गुण समझै कोई ॥
गैबी पुरूष गैब सूं आये, मिल मिल पूछें सन्त सवाये ॥

यह सम्वत् सतरह सौ तेरह आता है। दीक्षा लेने के पश्चात् सेवजी गुरुसानिध्य मे बत्तीस वर्ष रहे। हरिरामदासजी के पूरे काल का अभी कोई प्रमाण सामने नही है सिवाय छन्दरत्नावली के अन्तिम दोहे के। उनकी परम्परा भी अज्ञात है। हरिरामदासजी की परचई पहिली रचना है, जिसमे हरिदासजी महाराज के विषय का उपर्युक्त विवेचन है।

रघुनाथदासजी की परचई—

कालक्रम से दूसरे परचईलेखक स्वामी रघुनाथदासजी है, जो कि सेवजी के शिष्य महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे। ये रूपदासजी के गुरु-भाई थे और उसी काल मे थे, जिसमे रूपदासजी थे। इनने अपनी परचई मे निर्माण-काल तो नही दिया है पर इनकी लिखी हुई वाणी की पुस्तक मेरे थाभायती स्थान वडू मे है। उस पुस्तक का लेखन-काल सम्वत् १८२३ है। उस समय उनकी आयु तीस से चालीस वर्ष के बीच की मानी जाय तो उनका काल अठारह सौ पन्द्रह से लेकर अठारह सौ साठ तक का माना जा सकता है। परचई का रचना-काल अठारह सौ पचीस से चालीस के बीच का अनुमान किया जा सकता है। उनकी परचई से भिन्न और रचना भी होनी चाहिए पर वह अभी प्रकाश मे नही आई है। इनकी परचई मे हरिदासजी का निधनकाल दिया है, जन्मकाल नही है। पर उपदेशकाल के समय की आयु का उल्लेख किया गया है। उनके उद्धरण निम्नलिखित है—

भलै मतै बुधि ऊपजै, बुरै मतै बुधि जाइ।
भलै मतै गोव्यंद भजै, बुरै मतै विष षाइ॥
बुरै मतै विष षाइ, पाप का तरवर बोवै।
रांम नाम व्रत छाड़ि, काल कै घर मैं सोवै॥
जन हरीदास या जीव 'व्रति', चलत देह कै भाइ।
भलै मतै बुधि ऊपजै, बुरै मतै बुधि जाइ॥११॥

×

धनि माता मैंणावती, पुत्र किया 'दरवेस'।
निज बुधि ग्यांन बताइ करि, असलि दिया उपदेस॥
असलि दिया उपदेस, काल पै प्रांण छुड़ाया।
'भौ' सागर तैं काढ़ि, नाथ का चरणां लाया॥
गोपीचंद निरभै भया, मिटि गया मोह अँदेस।
धनि माता मैंणावती, पुत्र किया दरवेस॥१२॥

॥ इति उपदेस को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ समरथाई को अंग ॥

जहां जल तहां हरि थल करै, थल तहाँ फिरि जल होइ।
कुदरति तेरी बापजी, गति मति लषै न कोइ॥
गति मति लषै न कोइ, रांम तुम्ह सब कै दाता।
जीव हरांमी षोर, अहुं माया मदमाता॥

पाठभेद—वृत्ति-१-५। द्रवेस-१। भव-१।

शब्दार्थ—भलै मतै=अच्छे विचार, सद्भावना। व्रति=वृत्ति, भावना। दरवेस=फकीर, त्यागी। मोह अँदेस=ममतासशय। थल करै=भूमि कर दे। अहुं=अहङ्कार। मदमाता=गर्व मे उन्मत्त।

जन हरीदास हरि परसतां, गहर विथा गत दोइ।
जहाँ जल तहाँ हरि थल करै, थल तहाँ फिरि जल होइ ॥१॥

×

जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूं, मैं राषै तहाँ नांहि।
मैं राषै तहाँ मैं रहूं, तौ मैं बूड़ा मांहि ॥
तौ मैं बूड़ा मांहि, नाथ याह तुम्ह सूँ कहिये।
पारब्रह्म पति छाड़ि, आन मारगि क्यूँ वहिये ॥
जन हरीदास 'गोव्यंद' विमुष, भौंदू भूला जांहि।
जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूँ, मैं राषै तहाँ नांहि ॥२॥

×

कहा अमाप का मापिये, वार पार मधि नांहि।
सकल वियापी सँगि वसै, ताहि छाड़ि मति जांहि ॥
ताहि छाड़ि मति जाहि, रोग मैं भोग न लोई।
अरस परस मिलि षेलि, पार नहिं पावै कोई ॥
जन हरीदास अवगति अगम, जहाँ तहाँ सब मांहि।
कहा अमाप का मापिये, वार पार मधि नांहि ॥३॥

×

रांम रजा गिरि सर सरूँ, सर तहाँ फिरि गिरि होइ।
रंक राव राजा सु रंक, उलट पलट पष दोइ ॥

पाठभेद—गोविन्द–३-४।

पाठभेद—गहर=गम्भीर। गत दोइ=जन्ममरणगत–समाप्त हो गए। मै राषे=अहङ्कार के अनुसार। बूडा=डूबा। भौदू=बेवकूफ, अज्ञानी। वार पार मधि=आदि, अन्त, मध्य। रोग मैं भोग न लोई=हे भाई! संसार के सुखरूप रोग के भोग मे मत लगो। रजा=निर्देश, आज्ञा। सर=सरोवर। सरूँ=नदी।

उलट पलट पष दोइ, नांव करता तौ करसी।
षाली भरै भंडार, भरया षाली करि धरसी॥
जन हरीदास उदवुद कथा, ऐसा सम्रथ सोइ।
रांम रजा गिरि सर सरूँ, सर तहाँ फिरि गिरि होइ॥४॥

×

अरि भंजन अनरथ हरण, 'गरव' हरण गोपाल।
जन हरीदास अकरण करण, हरि अकल सकल विसपाल॥
हरि अकल सकल विसपाल, नाथ निरभै निरधारं।
निराकार निरलेप, वार नहिं लाभै पारं॥
मन चंचल निहचल तहाँ, जम का लगै न जाल।
अरि भंजन अनरथ हरण, गरव हरण गोपाल॥५॥

×

वात नाथ कै हाथि है, करता करै सो होइ।
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, सदगति सुण्यां न कोइ॥
सदगति सुण्यां न कोइ, जीव सींव कहा जांणै।
हरि आप आपणां ग्यांन, नांव दै नैंड़ा आंणै॥
हरिजन हरिदास राषै तहाँ, जहाँ दषल नहिं कोइ।
वात नाथ कै हाथि है, करता करै सो होइ॥६॥

×

जन हरीदास हरि अगम है, 'पहुंचै' विरला कोइ।
साहिवजी की वंदगी, साहिव ही तैं होइ॥

पाठभेद—ग्रव-१। पहौचै-५।

शब्दार्थ—धरसी=धरेगा, रखेगा। उदवुद=अद्भुत। अरि भजन=मोहादि शत्रु-नाशक। विसपाल=विश्वपाल, जगतरक्षक। सद्गति=श्रेष्ठगति, मुक्तदशा। सीव=परब्रह्म। नैणा आंणै=समीप लावे। वंदगी=सेवा, उपासना।

साहिब ही तैं होइ, मैल हरि मन का धोवै।
पूरणब्रह्म अगाध, करम कांटा सब षोवै॥
अधर निड़र निरभै 'नृगुण', तहाँ मन लगै न लोइ।
जन हरीदास हरि अगम है, पहुँचै विरला कोइ॥७॥

॥ इति समथाई को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ साध को अंग॥

तब थी सो मति अब नहीं, तब 'तौटा' अब लाह।
दोषी सब सोषी भया, चौर भया सब साह॥
चौर भया सब साह, साच लै सौदै लागा।
भजै निरंजन देव, आंन अनरथ अरि भागा॥
जन हरीदास हरि सुमिरतां, सब घरि सदा उछाह।
तब थी सो मति अब नहीं, तब तौटा अब लाह॥१॥

×

राग दोष हिरदै नहीं, कर सूँ करै न चोट।
'मुष' 'मथ्या' बोलै नहीं, श्रवणां सुणैं न षोट॥
श्रवणां सुणैं न षोट, नांव निरभै सुष पाया।
ता सुषि रह्या समाइ, छाड़ि सब छोटी छाया॥

पाठभेद—निरगुण-१। टोटा-१। मुषि-५। मिथ्या-३-४।

शब्दार्थ—करम काटा=संचितादि कर्मों के शूल। लगै न=प्रवृत्त नही, लगे नही। तौटा=नुकसान, घाटा। लाह=लाभ, मुनाफा। दोषी=अपराधी, मन, बुद्धि, वृत्ति आदि। सोषी=सुखी। उछाह=उत्साह, उमङ्ग। दोष=द्वेष। कर सूँ=हाथ से। चोट=प्रहार, आघात। मथ्या=झूठ। षोट=दोष, निन्दा। छोटी छाया=माया की छाया।

जन हरीदास हरि सुमिरतां , दुरी आंन सब वोट ।
राग दोष हिरदै नहीं , कर सूँ करै न चोट ॥२॥

॥ इति साध को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साच को अंग ॥

साच सवद हीरा षरा , राषै विरला कोइ ।
पष पाड़ा लागै नहीं , सो फिरि हीरा होइ ॥
सो फिरि हीरा होइ , सीस कै साटै लीजै ।
जन हरीदास भीं 'वहौड़ि' , कांम हीरा का कीजै ॥
जैसा किसव तैसा उतन , छाप पड़ै नर लोइ ।
साच सवद हीरा षरा , राषै विरला कोइ ॥१॥

॥ इति साच को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ विरकताई को अंग ॥

सील सज्या निरगुण दसा , अंतरि अति अणराग ।
जन हरीदास निज निरषतां , वड़ी 'ल्हूस' वैराग ॥
वड़ी ल्हूस वैराग , निजर जो नित तत आवै ।
सनमुषि देषै सांच , ग्यांन गैवर चढ़ि ध्यावै ॥

पाठभेद—वहुड़ि-१ । लहूस-५ ।

शब्दार्थ—दुरी=छिपी, दूर हुई । पष पाडा=झूठे पक्ष मे । किसव=काम । उतन=यत्न, उपाय । छाप=प्रभाव, असर । सज्या=शय्या, सजावट । अणराग=अनासक्ति, वैराग्य । ल्हूस=उमङ्ग । गैवर=हाथी ।

थाघै समंद अथाह, अगम का हीरा ल्यावै।
'परषि' परषि निज पारषू, हीरा उन हीरां जिसा ॥
प्रापति व्है तौ पाइये, सील सज्या निरगुण दसा ॥१॥

॥ इति विरकताई को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवैरता को अंग ॥

आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ।
आप आपणां नास करि, न्याइ रसातलि जाइ॥
न्याइ रसातलि जाइ, आप कूँ आप सतावै।
काच महल वसि स्वांन, डसै डसि डसण गमावै॥
जन हरीदास सब आतमा, एक रूप वहौ भाइ।
आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ ॥१॥

॥ इति निरवैरता को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सूरातन को अंग ॥

सूर वीर साचै मतै, साचा रोपै पाँव।
पैला अरि दल जीति करि, रांम भजन सूँ भाव॥
रांम भजन सूँ भाव, भेद कोइ विरला जांणै।
गंग जमन मधि पैसि, पांच पाइक पड़ि तांणै॥

पाठभेद—प्रषि-१।

शब्दार्थ—थाघै=थाह ले। स्वांन=कुत्ता। डसै=काटे। डसण=दांत। गंग जमन मधि पैसि=सुषुम्नामे वृत्तिको आरूढ़ कर। पाच पाइक=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। पड़ि तांणै=परीक्षा करे, टटोले।

जन हरीदास साचै मतै, रमै स सांचा डाव ।
सूर वीर साचै मतै, साचा रोपै पाँव ॥

॥ इति सूरातन को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ भेष को अंग ॥

कालरि वाहै षेत, साह की पूँजी षोवै ।
भेष धरयां भी भरम, परम गति जागि न जोवै ॥
परम गति जागि न जोवै, षुसी षेलै ता मांहि ।
चित मांही वित विपति, नांव 'नाराइण' नांहि ॥
जन हरीदास मसि करि लगी, वहौड़ि मसी सूँ मसि धोवै ।
कालरि वाहै षेत, साह की पूँजी षोवै ॥१॥

॥ इति भेष को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निगुणा को अंग ॥

'औगण' ग्राही जीव की, सुणौ संत एक वात ।
गुण छाड़ै औगुण गहै, तजि 'इंम्रत' विष षात ॥
तजि इंम्रत विष षात, नांव हिरदै नहिं धारै ।
कुवधि काच करि गहे, हाथ 'सूँ' हीरा डारै ॥

पाठभेद--नारायण-१ । अवगुण-१ । इमरत-१ । तैं-१ ।

शब्दार्थ--कालरि=दलदल भूमि, खारडा । भरम=संशय । वित विपति=दुःख देनेवाले भोगों की चाह । मसि=स्याही, अज्ञानकालिमा । गुण छाड़ै औगुण गहै=दैवी-सम्पदा के गुण छोडता है और आसुरीसम्पदा के अवगुण ग्रहण करता है । कुवधि काच कूँ करि गहै=प्रवृत्तिरूपी शीशा को ग्रहण करता है ।

जन हरीदास आठूँ पहर, चढ़ै ऊतरै घात।
औगुण ग्राही जीव की, सुणौ संत एक वात ॥१॥

×

चंदन वृच्छ उपाड़ि, जहर तरवर जड़ राषै।
पारब्रह्म पति छाड़ि, विवधि वांणी नर भाषै॥
विवधि वांणी नर भाषै, षेप घरि आई षोवै।
ग्यांन सिंघासणि छाड़ि, सूल सज्या सुष सोवै॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, दुषस दारण सुष दाषै।
चंदन वृच्छ उपाड़ि, जहर तरवर जड़ राषै ॥२॥

॥ इति निगुणा को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ हैरान को अंग ॥

कहत कहत कहि कहि अकहि, सुणत सुणत सुष सार।
लहत लहत लहि लहि अलहि, अगम वार नहिं पार॥
अगम वार नहि पार, नांव कछु धरया न जाई।
निराकार निज सार, साध 'परसै' सुषदाई॥
जन हरीदास अरचित अरत, हरि सम्रथ सिरजनहार।
कहत कहत कहि कहि अकहि, सुणत सुणत सुष सार ॥१॥

॥ इति हैरान को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—प्रसे-१।

शब्दार्थ—चंदन वृच्छ उपाड़ि=आत्मतत्व की प्राप्तिरूप साधना के चन्दन वृक्ष को उखाड़ रहा है। षेप घरि आई षोवै=मनुष्यशरीर की प्राप्तिरूप अमूल्यधन को व्यर्थ खो रहा है। दुष स दारण=कठिन दुःखो को। सुष दाषै=सुख समझता है, सुख कहता है।

॥ अथ हेतप्रीति को अंग ॥

मेरा मन हरि सूँ लग्या, हरि मेरा मन मांहि ।
मैं हरि 'कूँ' छाडूँ नहीं, हरि मोहि छाड़ै नांहि ॥
हरि मोहि छाड़ै नांहि, हरि आप कूँ आप वतावै ।
निराकार निरलेप, साध कूँ पैंडे लावै ॥
जन हरीदास हरि 'सुमिरतां', जुरा काल भै नांहि ।
मेरा मन हरि सूँ लग्या, हरि मेरा मन मांहि ॥

॥ इति हेत-प्रीति को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवैरता को अंग ॥

चींटी कूँ दीजै धका, तव ही अनरथ होइ ।
तंत मंत का जाप जपि, बुरा करौ मति कोइ ॥
बुरा करौ मति कोइ, जीव पैला दुष पावै ।
सवद जगावै वीर, वीर अपणौ भषि आवै ॥
जन हरीदास साहिव सहित, वैर पड़त है दोइ ।
चींटी कूँ दीजै धका, तव ही अनरथ होइ ॥१॥

॥ इति निरवैरता को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ कुण्डलियां सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—को-१ । सुमरतां-१-३ ।

शब्दार्थ—पैंडा=रास्ता, मार्ग । अनरथ=जुल्म, बुरा । तत मंत्र=तन्त्रमन्त्र । पैला=अन्य, दूसरा । भषि आवै=खाने को आए, वलि लेने । दोइ=जीव घात ईश्वर अवज्ञा ।

॥ अथ चान्द्रायण ॥

॥ श्री गुरदेव को अंग ॥

गुर सम्रथ सिरजनहार, सनेही रांम है।
भजि करुणांनिधि करतार, भजन सूँ कांम है॥
विलमन कीजै वीर, रैन का जांम है।
हरि हाँ–जन हरिदास निरमल अंग अभंग, अजब विश्रांम है॥

॥ इति गुरदेव को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

चंद सूर रथ अटकि, निरंजन पाइये।
उलटी पंष सँवारि, तहां मन लाइये॥
तजि घट 'औघट' घाट, अगम तहां जाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास गगन गुफा मैं पैस, गरक गुण गाइये॥१॥

×

सील संतोष विचारिस, ग्यांन जगाइये।
उलटि पंष सँवारि, अगम तहां जाइये॥
निगम अगम रस एक, तहां मठ छाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि तरवर मैं वास, अगम फल पाइये॥२॥

×

पाठभेद—अवघट-१।

शब्दार्थ—जांम=याम, पहर। विश्राम=आराम, शान्ति। चंद सूर रथ अटकि=इडा-पिंगला मे चलने वाले प्राण को रोक सुषुम्ना मे लाए। उलटी पंष सँवारि=मन-इन्द्रियो को अन्तर्मुख कर उनके पङ्ख सँवारिये। गगन गुफा=दशमद्वार, ब्रह्मरन्ध्र। पैस=प्रवेश कर। गरक=तल्लीन हो। निगम अगम रस एक=वेद-श्रुति जिसको अगम कहते है, वह चेतनतत्त्व सर्वदा एक रस है।

आरम्भ—

दोहा— नमो नमो निज देवकूं, सतगुरु को शिर नाई।
सब सन्तन कूं बंदि के, परची कहूँ सुनाई ॥१॥

चौपाई— यती अमरदास गुरुदेव प्रणामा,
भक्तिहित दीजे मोहि स्वामां।

स्वामी सेव पुरुष को धाऊं, ता परसाद अकल अति पाऊँ।
ऐसी शक्ति नांहि कछु मेरी, चाहत कृपा संत जन केरी।
परचा कहने की मन भई, देव निरंजन आज्ञा दई।
ता तैं सबहिन को शिर नाऊँ, जन हरिपुरुष की परचई गाऊँ।
हरीदास हैं हरि उनहारा, जीव तारन कूं लियो अवतारा।
आए आप निरंजन सांई, हरि हरिदास अन्तर कछु नांई।
अलष पुरुष सूं चित बित लायो, गोरष ग्यान समझ कै पायो।
प्रथम डीडपुर प्रगटै आई, वरस चमाल घर मांहि रहाई।
पछिम दिस भाषर है सोई, तहाँ जंगल में रहते जोई।
एक दिनां प्रभु की गति भई, अन्तर्यामी आज्ञा दई।
गोरष ग्यान देण कूं आए, अपणे जांण कृपा करि धाए।
गोरष बुद्धि फेर तिहिं काला, वचन एक तब कह्यो दयाला।
हूं तेरा कपड़ा हर लेऊं, पीछे तो कूं जावण देऊँ।
तब गोरष बोले इहि वाता, कोण भरोसे हरे विष्याता।
तिरिया पुत्र बूझ के आई, पीछे ये सब ले तुम जाई।
तब ये घर पूछण कूं आये, त्रिया पुत्र बैठे तहां पाये।
देख उन्हें इन वचन उचारा, बुरी भली कै संग हमारा ॥
तब उन कह्यो संग को जैहे, किये किये सब अपने पैहे।
हम तो तेरे वासे आए, बुरी भली में नहीं बँधाये ॥
तब इन ग्यान अन्तर में पाया, गोरषनाथ पै दौड रु आया।
दरसण करत फिरी मति जब ही, अन्तर्ध्यान भये प्रभु तब ही ॥
जब ही चलि भाषर में आए, गुफा हेरि हरिध्यान लगाए।

ग्यांन चक्र लै हाथि, सव न षंड पेलिये।
परम जोति विश्रांम, तहां मन मेलिये॥
वरषा वारा मास, अमी रस झेलिये।
हरि हाँ–जन हरिदास आंन धरम सव झूठ, पवन सूँ पेलिये॥३॥

×

रांम नाम व्रत धारि, विषै विष डारिये।
सुषमनि पवन सँवाहि, 'त्रिवधि' रस टारिये॥
पैंडा करणां वीर, देषि पाँव धारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास उलटा पवन निरोध, स पारा मारिये॥४॥

×

राजा रांम विसारि, सजन मन हारिये॥
मोटा वैरी मोह, महा रिप मारिये।
कांम क्रोध अभिमांन, 'अगनि' मुषि जारिये॥
हरि हाँ–जन हरिदास भजि रांमस, कांम सँवारिये॥५॥

×

पारब्रह्म सूँ प्रीतिस, रीति विचारिये।
दूजी रीति अनीति, हाथ तै डारिये॥
कांम क्रोध मनमैल, अगनि मुषि जारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास अभ्यास, अलष उर धारिये॥६॥

×

पाठभेद—त्रिविधि–१। अग्नि–१।

शब्दार्थ—ग्यांन चक्र लै हाथि=आत्मज्ञान का चक्र हाथ मे ले। सवन षंड=मल, विक्षेप, संशयादि सब दोषो को नष्ट कर। पवन सूँ पेलिये=प्राणायाम समाधि-साधना से सब बन्धनो की पेलिये–दूर करिये। विषै विष=विषयों का जहर। त्रिवधि रस=त्रिगुणात्मकरस। पैंडा करणां=रास्ता तय करना। उलटा पवन निरोध=प्राण का प्रवाह सामान्यतः नाभि से नासिका द्वारा होता है, इसको उलटि मेरुदण्ड की ओर से प्रवाहित कर रोकना। स पारा मारिये=चंचलमनरूपी पारे को मारिये–स्थिर करिये। महा रिप=प्रवल शत्रु। अगनि मुषि जारिये=ज्ञानाग्नि द्वारा जलाइये। सँवारिये=सफल करिये। अभ्यास=साधना।

अब तौ एक अनूप, उलटि पर धरत है।
सूनि मंडल मैं बैसि, सु आरंभ करत है॥
भज अलष निरंजन नाथ, अभषि भष जरत है।
हरि हाँ–जन हरिदास निरभै भया निसंक, साध नहिं डरत है॥७॥

×

ग्यांन गुफा मैं पैसि, 'अगनि' 'परजारिये'।
आठ काठ अभिमान, तहाँ लै डारिये॥
रस पाँच सात गुण तीन, अगनि मुषि जारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास ब्रह्म अगनि 'परकास' अगाध विचारिये॥८॥

॥ इति गुरदेव को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ परचा को अंग॥

लोक लाज पष भेष, अपूठी चाल है।
त्रिवेणी तटि ध्यांन, तहां एक लाल है॥
गरव सिला करि दूरि, इहै वड़ साल है।
हरि हाँ–जन हरिदास पूरणब्रह्म अगाध, अमोलिक माल है॥१॥

×

पाठभेद—अग्नि–१। प्रजारिय–१। प्रकास–१।

शब्दार्थ—अभषि भष=लोभ, मोह, काम, क्रोधादि की खुराक खा। निसंक=शङ्कारहित। अगनि परजारिये=ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करिये। आठ काठ=आठ मद (जाति, राज, तप, वल, कुल, रूप, विद्या और पद) का ईंधन। रस पांच=छ: रस, पांच विषय। सात=रसादि सातधातुमय देहाध्यास। गुण तीन=सत, रज, तम। अपूठी=उलटी, विपरीत। लाल=अनमोल आत्मतत्व। साल है=चुभन, क्लेश। अमोलिक माल है=अमूल्य धन है।

अलष निरंजन नाथ, स साथी दूर है।
भजि करणहार करतार, सु रांम हजूर है॥
दीनानाथ दयाल, सवन का मूर है।
हरि हाँ–जन हरीदास तेजपुंज परकास, अषंडिर नूर है॥२॥

×

रुति पलट्यां मन मांहि, अचंभा होत है।
नीर बूँद निरमोलक, हीरा होत है॥
हीरै हीरा वेध्या जाइ, पोत का पोत है।
हरि हाँ–जन हरिदास उन हीरां की, जाति हमारा गोत है॥३॥

×

परम सनेही रांम, तहां मन जात है।
वंकनालि 'विसरांम', सदा रस षात है॥
भजिये रमता रांम, इहै वड़ घात है।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि परम उदार, अपार हमारा तात है॥४॥

×

गंग जमन मधि पैसि, अगम तहां जाइये।
'परमजोति' परकास, परम गति पाइये॥
वार पार मधि नांहि, कहा कहि गाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास तेजपुंज रस एक, तहां मन लाइये॥५॥

×

पाठभेद—प्रकास–१। विश्राम–३। प्रमजोति–१।

शब्दार्थ—मूर है=मूल है, आधार है। रुति पलट्यां=ऋतु बदलने पर, मन वाह्यवृत्ति को छोड अन्तर्मुख हुआ। नीर बूँद=वीर्य तथा रज से पैदा शरीर। गोत है=गोत्र, कुल। घात है=अवसर है, मौका है। तात है=पिता है, जनक है।

जन हरिदास ल्यौ लाइ, तहां चल जाइये।
जहां न व्यापै धूप, न सीत सताइये॥
वरषा बारा मास, तहां वसि जीजिये।
हरि हाँ—जन हरिदास अगम पियाला हाथि, सदा रस पीजिये॥६॥

×

जन हरिदास भजि रांम, भली यह टेक है।
जाइ वसै ता देस, तहां रस एक है॥
वंकनालि विसरांम, सदा हरि पाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास झिलमिल झिलमिल होइ, तहाँ मन लाइये॥७॥

॥ इति परचा को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ काल को अंग॥

जीव सूता नींद अघोर, मनी मद षात है।
काल करत है ताक, पकड़ि लै जात है॥
काल तमाचा जोरि, लग्या मुरझात है।
हरि हाँ—जन हरिदास गरवहरण गोपाल, वचन की घात है॥१॥

×

नर सूता जागै नांहि, नींद की छाक है।
माया छाया विरष स, तरवर आक है॥

पाठभेद—बिरछ-२।

शब्दार्थ—ल्यौ लाइ=लौ लगा, वृत्ति लगा। धूप न=गर्मी नही, सन्ताप नही। सीत सताइये=स्वर्गादि सुख की शीतलता नही सताती। टेक है=प्रण है, हठ है। नीद अघोर=प्रगाढ नीद, अज्ञाननिद्रा। मनी मद षात है=मन अहङ्कार के नशे मे है। छाक है=मस्ती है, तृप्ति है।

समझि पड़ी घर दूरि, काल की ताक है।
हरि हाँ–जन हरिदास रांम भजन विनि घातस, बात बेपाक है ।।२।।

×

जीव मोह लपेट्या मांहि, गरक गड़ि जात है।
काल तमाचा जोरि, षुसी सूँ षात है ।।
संकट पड्यां दुष होइ, तलफि मरि जात है।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि 'परमसनेही' रांम, भजन की घात है ।।३।।

×

रांम नाम ब्रत छाड़ि, आंन सुष लेत है।
जहर पियाला हाथि, पीवण सूँ हेत है ।।
काल तकत है तोहि, अग्यांन अचेत है।
हरि हाँ–जन हरिदास सास अमोलिक आथि, कुपहै क्यों देत है ।।४।।

×

राजा रांम विसारि, कहां घर करौहगा।
लष चौरासी जोनि, जनम धरि मरौहगा ।।
पड्या काल की वंदि, सदा सुष भरौहगा।
हरि हाँ–जन हरिदास 'गरभवास' दस मास, अगनि मुषि जरौहगा ।।५।।

×

बूढ़ा हूवा वीर, नैंन भी सरत है।
काल पहूंता आइ, अजूँ नहिं डरत है ।।

पाठभेद—प्रमसनेही-१। ग्रभवास-१।

शब्दार्थ—बेपाक है=अशुद्ध है, नापाक है। गरक=गहरा, अन्तर। हेत है=प्रेम है। आथि=अर्थ, धन। कुपह=कुमार्ग में, कुप्रवृत्ति में। वंदि=बन्धन।

मोह नदी मैं पैसि, बूड़ि क्यूँ मरत है।
हरि हाँ–जन हरिदास रांमसनेही साध, भजन ही करत है ॥६॥

×

काल जाल की चोट, न सूझै जीव कूँ।
माया कै सुषि लागि, 'बिसारै' पीव कूँ॥
विष मूली मतिहीण, षुसी सूँ षात है।
हरि हाँ–जन हरिदास ते, अंत समूला जात है ॥७॥

×

कहै आथि 'औभूत', 'सकति' का पूत है।
राति 'द्यौस' जक नांहि, लग्या कोई भूत है॥
उलझि न सुलझ्या मूल, सुरति का सूत है।
हरि हाँ–जन हरिदास काल न छाड़ै ताहि, दूत परिदूत है ॥८॥

॥ इति काल को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चितावणी को अंग ॥

नर देही नर धारि, 'कुपहि' उरझात है।
आसा नदी 'गरक', भजन की घात है॥
मोह दोह पष मांहि, पसू पचि जात है।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि राजारांम अगाध, साध अमर फल षात है ॥१॥

×

पाठभेद—विसारचो–५। अवधून–१। सक्ति–५। दिवस–१। कुपह–३-४। ग्रक–१।

शब्दार्थ—पैसि=धँसकर, प्रवेश कर। विसारे=भूले। जक नांहि=शान्ति नही। उलझि न सुलझया मूल=सुरति का सूत है––सुरतिवृत्तिरूपी सूत मूलत· जीवन के प्रारम्भ से उलझा वह अभी तक सुलझा नही है। पसू=अज्ञानी पुरुष। पचि जात है= मनुष्यजन्म निष्फल गँवा देता है।

विष वन मांहि पैसि, विषै रस षात है।
जहां तहां तन धारि, 'वहौड़ि' मर जात है॥
जीवन है छिन वात, काल की घात है।
हरि हाँ—जन हरिदास आंन धरम उर धारि, रांउ इतरात है॥२॥

×

काया विष वन विवधि, तहां क्यूँ राचिये।
विष फल फूल अनेक, षात ही मांचिये॥
कांटा लागै पांइ, तहां पड़ि पाचिये।
हरि हाँ—जन हरिदास लष चौरासी घट धारि, पहौम परि नाचिये॥३॥

×

वोछी छाया देषि, जहर फल षात है।
मनि चढ़ी जहर की छाकि, वहुरि इतरात है॥
राजा रांम विसारिस, नरकां जात है।
हरि हाँ—जन हरिदास पूरणब्रह्म अगाध, 'और' मिथ्या सव वात है॥४॥

×

नांव निरंजन लेह, सनेही जागि रे।
वुगला वैठा आइ, उडाणां काग रे॥
नवपण गया रिसाइ, लुकटिया हाथि रे।
हरि हाँ—जन हरिदास भी, अति कमाइ साथि रे॥५॥

×

पाठभेद—बहुरि-१। अवर-१।

शब्दार्थ—पैसि=प्रवेश कर। छिन वात=क्षणिक। रांउ=राजा, नृप। माचिये=उन्मत्त होइये, पागल होइये। पाचिये=पकना। पहौम=पृथ्वी पर। वोछी छाया=नाशवान पदार्थों की अल्प छाया। इतरात है=अकडता है, ऐ ठता है। विसारिस=भुलाकर। वुगला वैठा=बाल सफेद हो गए। उडाणां कागरे=काले बाल समाप्त। नवपण=यौवन। लुकटिया=सहारे के लिए लकड़ी।

'नाए' नौ तन की, बात सदा ही रहत है।
छूटि जाइगी काल्हि, साच करि गहत है॥
याहि भरोसे लागि, 'कुपहि' क्यूँ वहत है।
हरि हाँ-जन हरिदास रांमसनेही साध, रांम ही कहत है॥६॥

×

घड़ी घड़ी तन जाइ, न लागै साच सूँ।
कंचन कर सूँ डारि, रह्या मिलि काच सूँ॥
पिव सूँ 'परचा' नांहि, कहावै राव रे।
हरि हाँ-जन हरिदास हरि, भेद न जानै बावरे॥७॥

×

गैंद करै गड़डाट, सदा दरवार मैं।
रांम सनेही छाड़ि, छक्या भठि छार मैं॥
चौरासी लष चौट, वहैंगे धार मैं।
हरि हाँ-जन हरिदास वे रांन, बसै घसि षार मैं॥८॥

×

कर गहि मूँछ मरोड़ि, मछरि मनि भांवता।
नांनां विधि रस राग, रजा मैं गांवता॥
सुत बनिता सुष सेभ, महल गढ़ मालिया।
हरि हाँ-जन हरिदास ते जोधस, जंगल जालिया॥९॥

×

पाठभेद—नाये-२। कुपह-३-४। प्रचा-१।

शब्दार्थ—नौ तन=जवानी। कुपहि=कुमार्ग। परचा=मिलाप, जानकारी। गैंद=गयद, हाथी। छक्या भठि छार मै=विषयभोग की भट्ठी मे राख हो रहा है। रान=राणा। मर्छरि=मात्सर्य। जोधस=शूरवीर।

'सूँधौ' तैल फुलेलस, अंगि लगावता।
नांनां विधि देह सँवार, महल मैं आंवता॥
षांन पांन वहौ भोग, षुसी सूँ षात है।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति, समूला जात है॥१०॥

×

आइ झरोषै वैसि, षुसीं मन कीजता।
काम क्रोध अभिमान, 'अगनिमुष' छीजता॥
देता लेता षोसि, अहं मन भांवता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते जोध, गया पछितांवता॥११॥

×

पड़दा रहता पौलि, पहरवा जागता।
पर धन लेता चूरि, कहर 'होइ' लागता॥
सूरवीर संग्राम, सगै रिंण गाजता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति, गया यूँ वाजता॥१२॥

×

आइ तखत परि वैसि, छत्र सिरि धारता।
दह दिसि जोधा देषि, मनी विसतारता॥
पर घर पर दल चूरि, षलै षसि मारता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते भूप भष्या काल, षडग करि धारता॥१३॥

×

पाठभेद—सौधौ– १-३। अग्निमुष–१। व्है–१।

शब्दार्थ—सूँधौ=इत्र, सुगन्ध। झरोषै=दीवानखाने, उच्चस्थान। अगनि मुष=नाना सन्तापों से। षोसि=लूट। पौलि=दरवाजा, प्रवेशद्वार। पहरवा=पहरेदार। चूरि=पीस, दबाकर। कहर=काल। मनी विसतारता=दूसरो के राज लेने की मनसा बढ़ाते। षलै=रणखेत। षसि=लड़ाई कर।

गोपी ग्वाल नचाइ, गाइ वन चारता।
मुथरा मूँधि मारि, पिसण षस मारता॥
कर सूँ डूँगर तोलि, जोर विसतारता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति गया तन छाडि,'वहौत' तन धारता॥१४॥

×

नौग्रह पाये वाँधि, षुसो व्है वोलता।
मोह महल मैं वैसि, षड़ग करि तोलता॥
अहुं गांठ उर धारि, 'बहौडि' नहिं षोलता।
हरि हाँ–जन हरिदास काल दल्या दहकंध, मनी मद वोलता॥१५॥

॥ इति चितावणी को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ माया को अंग॥

मोह दोह मैं गरक, सुरति काचै लगी।
नहिं रांम नाम सूँ प्रीति, प्रगट माया सगी॥
सकल जीव अँगि लाइ, सदा जागै नंगी।
हरि हाँ–जन हरिदास माया ठगि षाया संसार, सु तौ साधां ठगी॥१॥

×

आथि वसत है साथि, सदा ही रहत है।
कांम क्रोध अभिमानस, आसा दहत है॥
'त्रिसना' तरंग अनेक, तहां मन वहत है।
हरि हाँ–जन हरिदास विरला कोइ साध, परम गति लहत है॥२॥

पाठभेद—बहुत–१। बहुरि–१। तिसनां–१। त्रिष्नां–३-४।

शब्दार्थ—मूँधि मारि=उलट कर, त्याग कर। पिसण=शत्रु, चोर-लुटेरे। नौ ग्रह पाये वाधि=मंगल, बुध आदि नवग्रह कैद कर रखने वाले। दहकंध=रावण। काचै लगी=नाशवान पदार्थ प्राप्त करने मे उलझो। आथि वसत=मूल्यवान वस्तु, आत्मपरिचय। दहत है=जलाता है।

उक्त विवरण से स्पष्ट है कि हरिदासजी चवालीस वर्ष की आयु तक गृहस्थ थे। लूट-खोस का काम करते थे। एक दिन गोरषनाथजी के रूप मे एक महात्मा आये। उनको भी इनने लूटने की तैयारी की। महात्माने उपदेश दिया कि इस बुरे काम का फल तुम्हीको भोगना होगा, जिस कुटुम्बके लिए तुम यह जघन्य कर्म करते हो वह कुटुम्ब इसके फलभोग मे कोई हिस्सा नही बँटायेगा। हरिसिहजी ने इसका विरोध किया तो महात्मा ने घर जाकर कुटम्बियो से पूछ कर निश्चय करने को कहा। तब हरिसिंहजी ने महात्मा को वृक्ष से बाँध घर जाकर सम्बन्धियो से पूछा कि मै जो धन-माल लूट कर तथा हत्या करके लाता हूँ, उसके पाप मे तुम भी भागीदार हो या नही ? सम्बन्धियो ने इन्कार करते हुए ज्ञात किया कि हम तो तुम्हारे आश्रित हैं, यह तुमारा काम है कि तुम हमारा भरण-पोषण करो। कैसे काम से अर्थोपार्जन करो—यह निश्चय करना तुम्हारा काम है। यह उत्तर सुनते ही उनका कौटुम्बिक मिथ्यामोह समाप्त हो गया। वे शीघ्रता से लौटे, महात्मा के पास आए तथा उनको बन्धनमुक्त कर, उपदेश ले, पास की पहाड़ी मे जा आत्म-चिन्तन करने लगे। आत्मपरिचय के पश्चात् उनने जहाँ-जहाँ भ्रमण किया तथा चमत्कार दिखाये, आगे परचई मे उनका विस्तृत निरूपण है। परचईकार उनके चमत्कारोंका विवरण देकर उनके ब्रह्मलीन होनेका निरूपण करते है, वहाँ इस रूपमे काल का निर्देश करते है—

चौपई—प्रथम बहुत दिन यूं ही गइया, बरष चमाल तें चेतन भइया।
चमाल वरस वैराग कमाया, ता पीछे हरि माँहि समाया॥

सम्वत् सोलह सै जु सईका, ऋतु वसन्त आनन्दमई का।
फागण सुदी षष्टमी जाना, जन हरिदास हरि मांहि समाना॥

मिले निरंजन मांही दासू, काल झाल सब काटी पासू।
अरस परस हरि माँहि समाया, सो जस जन रघुनाथे गाया॥

शहर डीडपुर उत्तम धामू, तहां स्वामी कीयौ विश्रामू।
सबै सिष वियोग अति करिहै, सेवग चित चरणों में धरि है॥

उक्त चौपाईसे स्पष्ट है कि आरभ के चवालीस वर्ष हरिसिहजी (हरिदासजी) के व्यर्थ गये, पश्चात् चवालीस वर्ष साधना कर उनने आत्मसाक्षात्कार किया तथा अपने अनुभव तथा उपदेश द्वारा दुखी संतप्त प्राणियोका उद्धार किया। इस तरह अठ्यासी वर्ष की आयुका उपभोग कर सम्वत् सोलह सौकी फागण सुदी षष्ठी को इस नश्वर शरीर का डीडवाणे मे परित्याग कर दिया। इससे व्यक्त होता है कि

माया छाया वैसि, 'कौंण' सुष लेत है।
प्रीति करै 'या' रीति, कपट का हेत है॥
जनम अमौलिक जाइस, ऊसर षेत है।
हरि हाँ–जन हरिदास भी अंति, रसातल देत है॥३॥

×

माया चढ़ी सिकार, तुरी चटकाइया।
कै मारया कै मारि, पताषा लाइया॥
जन हरिदास भजि रांम, सकल जग घेरिया।
हरि हाँ–मन जाय बसै दरबार, तहां तै फेरिया॥४॥

×

माया का दल देषिस, काइर कांदरे।
षिसि चाल्या तजि षेत, धका सूँ धसि परे॥
ऊजल निरमल नांहिस, काले कापरे।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि, भेद न जांणै बापरे॥५॥

×

माया सूँ मन लाइ, कहा सुष सोइये।
हीरा जनम अथाह, अमोलिक षोइये॥
'गरभवास' दस मास, सदा दुष पाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि रामस, ठौड़ चुकाइये॥६॥

×

पाठभेद—कूँण-१। याह्-१। ग्रभवास-१।

शब्दार्थ—तुरी=घोडा। चटकाइया=चाबुक लगाया। पताषा=पताका, ध्वजा। दरवार=राजसभा, आत्मा के सम्मुख। कादरे=किनारा करे, बचे। काले कापरे=मलिन संस्कार। ठौड़=जगह, प्रवृत्ति मे लगी वृत्ति को बदलिये।

जन हरिदास तजि आंन, भजौ हरि भोर सूँ।
माया का दल देषि, मँड्या है जोर सूँ॥
नर नरवै सुर मारि, लिया षग कोर सूँ।
हरि हाँ–जन हरिदास काली पीली धार, घसी दस वोर सूँ॥७॥

×

कै आवै कै जांहि, चलाऊ लोग है।
माया मोह विवोग, इहै वड़ रोग है॥
जहर जड़ी जिव षाइ, कहै यहु भोग है।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि रांम, भया भल जोग है॥८॥

×

सूक 'विरछ' संसार, तहां मन लाइये।
काल गरासै आइ, 'वहौडि' पछिताइये॥
रहणां नहीं निदान, अकेला जाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास तसमात, निरंजन गाइये॥९॥

॥ इति माया को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ उपदेश को अंग ॥

जोग मूल की वातस, घात विचारिये।
सांसो हंस्या छाड़ि, मना सब डारिये॥
जपिये अजपा जाप, आंन धरम सब हारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास अलष भजन 'उरि' धारि, अलेष जुँहारिये॥१॥

×

पाठभेद—वृछ–३-४। वहुड़ि–१। उर–१।

शब्दार्थ—भोर सूँ=समय रहते, सवेरे। नरवै=बादशाह, रावराणा। षग कोर सूँ=तलवार की नोक से। काली पीली धार=वासना-तृष्णा को धारा। दस वोर सूँ=चारों ओर से, दसद्वारो से। चलाऊ=चलायमान, अस्थिरवृत्ति। भल जोग है=अच्छा संयोग है। तसमात=इसलिये। सासो=संशय, सदेह। हंस्या=हिंसा। अलेष जुँहारिये=परब्रह्म की वन्दना करिये।

त्रिवेणी तटि वास, तहां क्यूँ न जाइये।
ए पासा 'ए' डाव, सीस लै न्वाइये ॥
वोछै पांणी पैसि, समद क्यूँ छाड़िये।
हरि हाँ–जन हरिदास भज अलष निरंजन नाथ, तहां मन लाड़िये ॥२॥

×

'मनिष' जनम नग हाथि, कुपह क्यूँ डारिये।
मोह महल मैं सोइस, जनम न हारिये ॥
नष सिष लागा रोगस, रोग निवारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास ग्यान षडग ले हाथि, काल मै मारिये ॥३॥

॥ इति उपदेश को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सूरातन को अंग ॥

मड़ाँ हाक है कंप, तीर गोला वहै।
सुभट न ताकै वोट, चोट सनमुष सहै ॥
ग्यांन षडग लै हाथि न, फिर पूठा फिरै।
हरि हाँ–जन हरिदास सूर वीर अरि जीतस, हरि का व्है रहै ॥१॥

×

समंद रूप संसार, अधर उठि चालिये।
षाग बाग रस 'एक', पवन पड़तालिये ॥
पिसणा उपरि चोटस, सनमुष घोड़ा घालिये।
हरि हाँ–जन हरिदास पैला अरिदल जीत, परम दुष पालिये ॥२॥

×

पाठभेद—ये–२। मनष–१। येक–१।

शब्दार्थ—लाड़िये=लडाइये, राजी करिये। सुभट=योद्धा, शूरवीर। षाग वाग रस एक=ज्ञानषड्ग सँभाल मनोवृत्ति एक रस रख, स्थिर कर। पालिये=रोकिये, मना करिये।

जोग पंथ मैं पैसिस, पूठि न फेरिये।
ग्यांन षड़ग लै हाथि, सबल गढ़ घेरिये॥
ल्यौ डोरी करि साहि, तहां मन जेरिये।
हरि हाँ–जन हरिदास अलष निरंजन नाथ, निरन्तर हेरिये॥३॥

॥ इति सूरातन को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ सजीवणी को अंग॥

हरि पूरणब्रह्म अगाध, अषंडित रांम है।
साध बसै ता देसि, मुलक निहकांम है॥
जुरा काल भै नांहि, सीत नहिं घांम है।
हरि हाँ–जन हरिदास परा परै पति एक, अजब बिसरांम है॥१॥

॥ इति सजीवणी को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ पतिब्रत को अंग॥

रजा तुम्हारी रांम, कहौ त्यूँ मैं करूँ।
मन गहि पवन सँवाहि, अटकि उलटी धरूँ॥
ब्रह्म 'अगनि' मैं पैसि, अभष अजरा जरूँ।
हरि हाँ–जन हरिदास रांम नांम व्रत धारि, न आंन व्रत आचरूँ॥१॥

×

पाठभेद––अग्नि–१।

शब्दार्थ––पैसिस=प्रवेश कर, लग कर। पूठि=पीठ न दे, पलटे नही। निह-काम=निष्काम। रजा=निर्देश, आज्ञा। सँवाहि=सँभाल कर, सचेष्ट कर। आन=और, दूसरा। आचरूँ=आचरण करूँ।

पीव जीव की जीव, निरंजन राइ है।
उपजि न विनसै मूल, न आवै जाइ है॥
परम 'पुरष' 'परकास', साध मन लाइ है।
हरि हाँ–जन हरिदास 'परगट' घूँघट मांहि, एक को पाइ है॥२॥

॥ इति पतिव्रत को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साध को अंग ॥

वोछा करैं गुमांन, वड़ां कै नांहिरे।
भादों वरसै मेह, नदी घररांहि रे॥
दरिया उभलै नांहि, ता मांहि समाहि रे।
हरि हाँ–जन हरिदास यों साध, देषि जुग मांहि रे॥१॥

×

रांम सनेही साध, मँडे मैदान मैं।
पहरी सील सनाह, 'गरक' गुर ग्यांन मैं॥
वाजै अनहद तूर, वसै धसि रांम मैं।
हरि हाँ–जन हरिदास धुनि ध्यांन, सदा विसराम मैं॥२॥

×

जहां जीव तहां सीव, एक को जांणि है।
मन कूँ पूठा फेरि, सहजि घरि आंणि है॥

पाठभेद—पुरिष-१। प्रकास-१। प्रगट-१। ग्रक-१।

शब्दार्थ—घूँघट मांहि=हृदय के पर्दे में। वोछा=छोटा, क्षुद्र, तुच्छ। घररांहि रे=गर्जती हैं। दरिया=समुद्र। उभलै=छलके, सीमा त्यागे। सीव=ब्रह्म।

जोग मूल की वातस, घात पिछांणि है।
हरि हाँ—जन हरिदास भज पूरणब्रह्म अगाध, सुतौ ब्रत वांणि हैं ॥३॥
॥ इति साध को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मन को अंग ॥

चंचल मन कूँ चूरि, कहां चलि जाइगा।
करि विषहर का रूप, इहै फिरि षाइगा॥
जड़ी सजीवण लाइ, कछू न वसाइगा।
हरि हाँ—जन हरिदास हरि राइ, तहां उरझाइगा॥१॥
॥ इति मन को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ समरथाई को अंग ॥

हरि जहां तहां प्रतिपाल, हमारी करत है।
हरि आप आपणां ध्यान, हमारै हिरदै धरत है॥
सब षलक रांम सुष छाड़ि, अगनि मैं जरत है।
हरि हाँ—जन हरिदास मन उलटा चढ्या आकास, मारया नहि मरत है॥१॥
॥ इति समरथाई को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कुबुधिनर को अंग ॥

अनंत घाट घट मांहि, सदा ही घड़त है।
कंचन हिरदा मांहि, काच लै जड़त है॥

शब्दार्थ—हरिराइ=परब्रह्म। उरझाइगा=लगाएगा। अनंत घाट=अनेकों सङ्कल्प। कंचन=विशुद्ध चेतनतत्व।

ऊजड़ चाल्या जांहिस, आषड़ि पड़त है।
हरि हाँ जन हरिदास सब षलक दिवाना आथि, कहां कूँ षड़त है ॥१॥

×

वाद विवाद निवारि, 'वहौडि' पछिताइगा।
हरि सूँ नांही हेत, रसातल जाइगा॥
मदन मोह गुण मांहिं, गरक लपटाइगा।
हरि हाँ–जन हरिदास राजा रांम विसारिस, षोटा षाइगा ॥२॥

॥ इति कुबुधिनर को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ इति चान्द्रायण सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साषी भाग ॥

जन हरिदास कै ग्यांन 'गुर', सतगुर सिरजनहार॥
निधि पाई निरभै भया, अरस परस दीदार ॥१॥

जन हरीदास कै ग्यांन गुर, साधां सेती प्रीति॥
साध सदा गोव्यंद भजै, देही का गुण जीति ॥२॥

जन हरिदास कै ग्यान गुर, गूदडियां सूँ नेह॥
दुष सुष दोइ व्यापै नहीं, गूदड़ियां गुण 'एह' ॥३॥

गोरष हमारा गुरु बोलिये, पाड़ा हमारी चेली॥
सति का सबद सहज घरि षेलूँ, 'इहि' विधि दुरमति पेली ॥४॥

पाठभेद—बहुरि–१। गुरु–१। येह–२। अहि–१।

शब्दार्थ:—ऊजड़=उजाड़, बेरास्ते। निधि पाई=खजाना पाया, आत्मतत्व जाना। अरस परस=एकमेक, आमने-सामने। दीदार=दर्शन। दुरमति=कुमति, सकाम-कम की प्रवृत्ति।

माई मूँडूँ सिद्ध की, 'मजूँ' निरंजन नाथ ॥
हरिदास जन यूँ कहै, सिरि गोरष का हाथ ॥५॥

दिष्टि दई सतगुर मिल्या, हीरा लिया सुभाइ ॥
हरीदास जन जौंहरी, षोटा कदे न षाइ ॥६॥

बलती 'अगनि' बुझाई करि, सीतल किया अँगार ॥
जन हरीदास आनन्द भया, सतगुरु का उपगार ॥७॥

बलती अगनि बुझाइ करि, सीतल किया सरीर ॥
जन हरीदास गुर गम तैं, पीया निरमल नीर ॥८॥

जन हरीदास नाथ का बालक, रहै नाथ की छाया ॥
पूरण ब्रह्म परम सुष दाता, निरमै निरंजन राया ॥९॥

जन हरीदास सतगुर सबद, अंतरि लागा बांण ॥
हरि हेरत हरि मन हरया, इत उत लहै न जांण ॥१०॥

॥ अथ सिष पारिष को अंग ॥

गुर गिरही माया गहै, सिष वैरागी होइ ॥
जन हरीदास मत 'क्यूँ' मिलै, परगट पैंडा दोइ ॥१॥

गुर लागा संसार सूँ, सिष अंतरि हरि साच ॥
जन हरीदास मत क्यूँ मिलै, 'वोह' कंचन वोह काच ॥२॥

गुर सिष दोऊ उठि चल्या, जन हरीदास हरि मांहि ॥
सिष चालै गुर वाहुडै, तौ वे गुरु सिष नांहि ॥३॥

पाठभेद—भजौ-१ । अग्नि-१ । क्यौ-१ । वो-४-५ ।

शब्दार्थ—दिष्टि=नजर, विवेक-विचारमय नेत्र । जौहरी=रत्नपरीक्षक, जीवन्मुक्त । षोटा=नकली, विनाशी । वलती अगनि=वासना-तृष्णा की प्रज्ज्वलित वह्नि । गुर गम तैं=गुरुउपदेश से । अंतरि=हृदय मे । इत उत=इधर-उधर, माया-ममता में । गुर गिरही=गुरु मायामुखी है । वाहुड़ै=मुडे, पीछे आवे ।

जन हरीदास भै सिंध तजि, भै रै बैठा जाइ ॥
सो गुर सिष कूँ ले चल्या, अपणैं मतै मिलाइ ॥४॥
जो कुछ गुर सिष सूँ कह्या, सो जै गुर पै होइ ॥
जन हरीदास करि बँदगी, गुर गोव्यंद नहिं दोइ ॥५॥
गुर निरभै गोव्यंद भजै, तैसा ही सिष होइ ॥
जन हरीदास मत एक है, तव कहण सुणण कूँ दोइ ॥६॥
जन हरीदास गुर गारडू, विष झाडै झड़ि जाइ ॥
सिष सठ तौ गुर क्या करै, सिष फिर विषही षाइ ॥७॥
जन हरीदास गुर क्या करै, सिष मूरष गुणजार ॥
'इंम्रत' पाया ना पिवै, विष का पीवणहार ॥८॥
ग्यांनी गुर सूँ सिष मिलै, सो सिष भी ग्यांनी होइ ॥
इष्ट एक एकै भजन, तव कहिवे कूँ दोइ ॥६॥
वात कहै आकास की, आप रसातलि जाइ ॥
वा ग्यानी गुर सूँ मूरष भला, सकै न 'और' भुलाइ ॥१०॥
सिष साचा साचै मतै, गुर दीरघ भ्रम नास ॥
रहत एक एकै वसत, एक दिसावरि वास ॥११॥
सिष सूता जागै नही, रैंणि 'पहूँती' आइ ॥
वा सिष कै मतै गुर मिले, तौ अंति रसातल जाइ ॥१२॥
पच्छिम देस पंथ परिहरै, पूरव रहै समाइ ॥
वा गुर कै मतै जो सिष मिलै, पारि पहूँचै जाइ ॥१३॥

॥ इति सिष पारिष को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—इमरत-१। अवर-१। पहौतो-४।

शब्दार्थ—भै रै-नौका में। मतै मिलाइ=विचार में सहमत कर। गारडू=विषनिवारक। गुणजार=गुण-चोर। दीरघ भ्रम नास=असत्य को सत्य और सत्य को असत्य, इस भारी भ्रम का निवारण। रैंणि=कालरात्रि। पच्छिम देस=भौतिक प्रवृति का जीवन। पूरव=आध्यात्मिक प्रवृत्तिमय।

॥ अथ विरह को अंग ॥

विरहणि ऊभी दरद सूँ, अवला सूँ क्या मांण ॥
कै मिलि हो कै तन तजूँ, सुँणि हो कंत सुजांण ॥१॥
जन हरीदास कासूँ कहूँ, अपणैं घर की लाइ ॥
ज्यूँ जान्या त्यूँ ही जन्या, जालि वलि रह्या समाइ ॥२॥
विकल भई विलंबे कहां, ताला वेली जीव ॥
हरीदास जन विरहणी, मिलो सनेही पीव ॥३॥
अंतरि विरहा आइया, रोम रोम सव मांहि ॥
जन हरीदास कै हरि मिलो, कै अव जीवण नांहि ॥४॥
अविनासी आठौं पहर, अपणैं हिरदै धारि ॥
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै ग्यांन विचारि ॥५॥
'षफनी' षफन' सारिषी, पहिरै विरला कोइ ॥
जन हरीदास ब्रह्म अगनि मैं पैसकरि, जलि वलि 'कोइला' होइ ॥६॥

॥ इति ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

साहिवजी की बंदगी, कीजै तन मन लाइ ॥
जन हरीदास षेलौ तहां, जहां काल न परसै आइ ॥१॥
अविनासी 'आठौं' पहर, अपणैं हिरदै धारि ॥
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै 'वस्त' विचारि ॥२॥

पाठभेद—कफनी-कफन-१। क्वैला-१। आठूँ-१-४। वसत-२।

शब्दार्थ—माण=मान, रूठना। लाइ=विरहाग्नि। ताला वेली=छटपटाहट, अति आतुरता।

हरिदासजीका जन्म करीब पन्द्रह सौ बारह के तथा अवसान सोलह सौ में हुआ। वे अठ्यासी वर्ष जीवित रहे।

लेखक परचई की समाप्ति इस तरह करते है—

चौपई—इतनी कथा कही मैं देवा, तुम अगाध मैं लष्यो न भेवा।
तुमरी गति मति तुमही जानों, अलप बुद्धि है कहा वषानों ॥
निराकार की किरपा भई, सन्त समींगम परची कही।
जन अमरपुरुष के मस्तक हाथ, रुच रुच गावे जन रघुनाथ ॥

दोहा—रघुनाथदास जन का कहे, हरिगुण अनंत अपार।
अमरपुरुष परताप तै, कछु इक कियो विचार ॥
परची हरीदासकी, भई संपूरण सोई।
घाट वाध यामें कोई, शुद्ध करि लीजो जोई ॥

परचईकर्त्ता ने अन्त मे व्यक्त कर दिया है कि जैसी जितनी उनकी जानकारी थी, तदनुरूप उनने परचई कही है। कही यदि घाट-वाध ,(कमी-वेशी) या अन्य भूल रह गई हो तो विज्ञजन उसमे सुधार कर ले। रघुनाथदासजी पहले लेखक है, जिनने हरिदासजी महाराजके समयसम्बन्धी काल पर प्रकाश डाला है। उनका जन्म, जाति, स्थान, गाँव आदि का जो पीछे निरूपण किया गया है, उसका समर्थन है।

प्यारेरामजीकृत भक्तमाल—

निरंजनी सम्प्रदायके तीसरे लेखक स्वामी प्यारेरामजी है। जिनने भक्तमाल की रचना की है। कालक्रमसे भक्तमाल का रचनाकाल सम्वत् १८८३ है, जैसा कि रचनाकार स्वय निरूपण करते है—

दर्शन गुरु दया कीन्ही प्यारे कूं जू आज्ञा दिन्हीं,
इष्ट अनुक्रम से जु भक्तमाल गाइये।
भक्तमाल घणी और संता कीन्हीं ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी मोहे मन नहिं भाइये।
गुरु आप आज्ञा दिये ता ते भक्तमाल किये,
अठारै से तियासी वात यह कहाइये।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होता ताहि,
गुरां आप रीझ कर प्रचा जो बताइये ॥२०४॥

नांव निरंजन 'निरमला', भजतां होइस होइ ॥
हरीदास जन यौं कहै, भूलि पडै मत कोइ ॥३॥
हठ करि कोई मति मरौ, परै न 'पहुंचै' हाथ ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन नाथ ॥४॥
हरि सा हितू विसारि मा, ऊठि 'और' कै साथि ॥
लोक लाज वहि जाइगा, हीरा न आवै हाथि ॥५॥
उलटा गोता मारि करि, अंतरि अलष विचारि ॥
रांम भजन आनन्द सदा, कदे न आवै हारि ॥६॥
सनकादिक जोगी जनक, मति गति लषै न कोइ ॥
जन हरीदास 'ताकूँ' भजौ, भजतां होइस होइ ॥७॥
मैं हरि सुष छाड़ौ नहीं, वात कहत 'हूं' तुझ ॥
हरिदास जन यूं कहै, मीठा लागै मुझ ॥८॥
मैं हरि सुष छाड़ौ नहीं, मीठा लागै मोहि ॥
करम कठिन सब कंकरा, ग्यांन सूप ले सोहि ॥९॥
मैं हरि सुमिरण 'छाड़ौं' नहीं, मन कूँ मारि अटकि ॥
जन हरीदास करम भरम सब तूँ तड़ा, गहि गुर ग्यांन फटकि ॥१०॥
जन हरिदास निरभै मतै, भजौ निरंजन राइ ॥
काल झाल लागै नहीं, सुष मैं रह्या समाइ ॥११॥
जन हरीदास या जीव कूँ, अटकि अटकि समझाइ ।
दूजी दुरमति दूर करि, हरि चरणां चित लाइ ॥१२॥

॥ इति ॥

पाठभेद—नृमलौ-५। पहोंचै-२। अवर-१। ताकौ-१। हौ-१। छाडू-३-४।

शब्दार्थ—हितू=हितैषी। विसारि मा=भूल मत। और कै=अन्यों के, विषय-वासनाओ मे। मति गति=बुद्धि द्वारा। सोहि=शोध, साफकर। अटकि=बाहर जाने से रोक। दुरमति=वासनाबुद्धि।

॥ अथ परचा को अंग ॥

जन हरीदास सुष अगम है, सोधि लहै ते संत ॥
अरस परस आनँद सदा, 'वाराह' मास वसंत ॥१॥
जन हरिदास वसंत रुति, फूल्या सब ही बाग ॥
'ब्रज' मांहि कौतिग भया, हरि जन षेलैं फाग ॥२॥
रांम तहां 'सूधों' सहज, बाजै राग अनंत ॥
चंदन 'पुहिप' गुलाल ले, षेलैं संत वसंत ॥३॥
जन हरीदास तहां जाइये, पाराह मास वसंत ॥
पांन पहौप जहां का तहां, षेलत है सब संत ॥४॥
जन हरिदास वसंत रुति, षेलैं गोपी ग्वाल ॥
हरि सनमुष जहां का तहां, करि पहौप न की माल ॥५॥
जन हरिदास वसंत रुति, प्रगटे राम अगाध ॥
प्रेम प्रीति का पहौप ले, षेलैं चरचैं साध ॥६॥
जन हरीदास 'परचा' पषै, कौड़ी काची सारि ॥
डाव पड्यां छूटै नहीं, कांनै लीजै मारि ॥७॥
घरि आई निरभै भई, डाव पड्या 'यूँ' होइ ॥
जन हरीदास ता सारि कूँ, पासा लगै न कोइ ॥८॥

पाठभेद—वारा–३-४। वृज–४-५। सौधो–१। पुहप–१। प्रचा–१। यौ–१।

शब्दार्थ—सोधि लहै=तलाश करले, प्राप्त कर ले। वसंत=आनन्दमय स्थिति। व्रज मांहि=शरीररूपी ब्रजभूमि मे। चंदन पुहप गुलाल ले=प्रेम-मय चन्दन श्रद्धा के पुष्प भक्ति की गुलाल ले। गोपी ग्वाल=मन-इन्द्रियाँ। चरचै=अर्चना करे, पूजा करे। परचा पषै=अनुभव बिना। कौड़ी काची सारि=(सारि) मनुष्यशरीर (कौडी) धन-सम्पदा प्राप्ति मे लगा कच्ची सार की तरह चाहे जब नष्ट हो जाता है। डाव पड्या=अवसर पड़े।

परम जोति पलटै नहीं, कोटि करै जे कोइ ॥
लोहा कूँ पारस मिलै, परसिर कंचन होइ ॥९॥
जन हरीदास अंतरि अगह, 'दीपग' एक अनूप ॥
जोति उजालै 'षेलिये', जहां छांहड़ी न धूप ॥१०॥
विवधि पहौप सेवा विवधि, मधि 'मोतियन' की माल ॥
जन हरीदास षेलौ तहां, जहां गोपी गाइ न ग्वाल ॥११॥
आछा इष्ट कबीर का, अगम वार नहिं पार ॥
हरीदास जन 'मिलि' रह्या, गहि गुर ग्यांन विचार ॥१२॥
जन हरीदास अंतरि अगह, परम जोति परकास ॥
अगम 'ठौर' आनँद सदा, मन का तहां निवास ॥१३॥
तिरता तिरता तहां गया, जहां अचंभा और ॥
चित्त कपटी पहुँचै नहीं, तहां साधां की ठौर ॥१४॥
भै भागा निरभै भया, हरि सकल वियापी एक ॥
हरीदास जन यूँ कहै, ता सुषि पहुँता पुरष अनेक ॥१५॥

॥ इति ॥

पाठभेद—दीपक-१। षेलिए-३-४। मोतिइन-४-५। मिल्य-२। ठौड-५।

शब्दार्थ—परम जोति=शुद्धचेतन। अतरि=अपने भीतर, हृदय मे। अगह= पकड़ मे न आने वाला, मन-बुद्धि और इन्द्रियो से आगे। दीपग=ज्ञानदीप। जहां गोपी गाइ न ग्वाल=जिस दशा मे मन, इन्द्रियाँ व वृत्ति का बाह्यसम्बन्ध न रहे। आछा= सर्वोत्तम।

।। अथ चितावणी को अंग ।।

आदि 'अंति' गोविंद सगा, दूजा सगा न कोइ ।।
जन हरीदास दूजा सगा, सो फिरि बैरी होइ ।।१।।

जन हरीदास संकटि पड्यां, सगा न सूझै कोइ ।।
रांम सगा सो 'परहरया', कुसल कहां तैं होइ ।।२।।

घट छूटै फाटै तिमर, मन धरि सकै न धीर ।।
जन हरीदास तब हरि सगा, रषै विसारै वीर ।।३।।

एक राति का सोवणां, जीवण ऐसा जांणि ।।
जन हरीदास हरि भजन विणि, ताहू मांही हांणि ।।४।।

नष सष सूँ पैदा किया, जांणिक चितरया मोर ।।
जन हरीदास हरि वीसरया, सो वड़ा हरांमी षोर ।।५।।

'वीज' चमक आभै दुरै, यूँ सति जांणी देह ।।
हरीदास जन यूँ कहै, रांम भजन करि लेह ।।६।।

मरणां है जीवण नहीं, जीवत मरै न कोइ ।।
जन हरीदास जीवत मरै, सो अविनासी होइ ।।७।।

जा मुषि रांम न ऊचरै, आंन कथा मन चोल ।।
जन हरीदास ते मांनई, काग विलाई कोल ।।८।।

जा मुषि रांम न ऊचरै, रसनां वैठी हारि ।।
जन हरीदास ते मांनई, सूकर की उणिहारि ।।९।।

पाठभेद—अन्त्य-२ । परिहरया-१ । बीजि=३ ।

शब्दार्थ—दूजा सगा=स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बीजन । परहरया=त्याग दिया, छोड़ दिया । कुसल=कल्याण, क्षेम । फाटै तिमर=अज्ञानता का अन्धकार हटे । रषै=रखे, याद करे । विसारै=भूले, संसारी साथियो को भूले । हाणि=नुकसान, क्षति । जाणिक=जैसे । चितरया=बनाया, चित्रित किया । आभै दुरै=आकाश में लीन हो । जीवत मरै=मद-मोह त्यागे । आन कथा=निन्दास्तुति । चोल=राजी, प्रसन्न । उणिहारि=समान, सदृश ।

प्राणनाथ पति छाड़ि करि, 'भूँदू' भूला जांहि ॥
जन हरीदास ते मांनई, न्याइ हलाहल षांहि ॥१०॥

जन हरीदास या जीव कै, दुष सुष चालै साथि ॥
अब या चीरी क्यूँ मिटै, ता दिन आई हाथि ॥११॥

जीव सीव कै सँगि वसै, करँम जीव कै साथि ॥
जन हरीदास षेलो कहूँ, दोऊँ पासा हाथि ॥१२॥

क्या 'जाणौं' कछु काल्हि है, 'काईज' वाजै वालि ॥
जन हरीदास औसर इहै, तूँ अपणा रांम सँभालि ॥१३॥

कालां कै हलचल भई, धौला बैठा आइ ॥
जन हरीदास गढ़ पालटचा, गुण गोविंद का गाइ ॥१४॥

अहिपुर महिपुर इंद्रपुर, स्यो ब्रह्मा 'लों' जोइ ॥
जन हरीदास दूभर दुनी, सूभर भरचा न कोइ ॥१५॥

जन हरीदास गोविंद भजौ, तजो आंन उपदेस ॥
अवगति गति जांणै नहीं, ब्रह्मा 'विष्न' महेस ॥१६॥

छांह देषि नर बबूल की, वसै बटाऊ आइ ॥
जन हरीदास पैडा थक्या, सूल गड़ी 'जब' पाइ ॥१७॥

राति वसै दिन उडि चले, 'यौह' संसार सराइ ॥
जन हरीदास दुनिया सबै, पैंडे लागी जाइ ॥१८॥

पाठभेद—भौदू-१। जाणू"-१। काई-१। लूं-२। विसन-२। तब-३-४। इहौ-२।

शब्दार्थ—भूँदू=अज्ञानी, बेसमझ। न्याइ=कतई। चीरी=पापपुण्य, जन्म-मरण। सीव=माया-अविद्यारहित चेतन। दोऊँ पासा=मुक्ति तथा बन्धन। कांईज=कैसी। वाजै=बहे, प्रवाहित हो। वालि=हवा। औसर इहै=समय यही है, मौका यही है। गढ पालटचा=जवानी गयी बुढापा आ गया। दूभर=दुःखरूप। दुनी=संसार। सूभर=सुखरूप आत्मज्ञान। वसै=रहे, निवास करे। वटाऊ=राहगीर, पथिक। पैडा=रास्ता, मार्ग। सराइ=ठहरने की जगह।

'जग' हटवाड़ै विणज कूँ, मिले वटाऊ आइ ।।
जन हरीदास सब जात है, दिन दस पीठ लगाइ ।।१९।।

कोई काहू का नहीं, ऐ सब कोठी वाल ।।
साहू कहौ क्यूँ आदरैं, पढ़ि पढ़ि चले कुचाल ।।२०।।

जन हरीदास पारिष पषै, विणजत है सब कोइ ।।
फिरि पीछै पछिताइगा, जब नांणा देष्या षोइ ।।२१।।

जन हरीदास ऊँचा अधिक, त्रिया ज पहरै चीर ।।
ते भी अगनि जलावसी, सोनैं सँवा सरीर ।।२२।।

जन हरीदास संसार सूँ, प्रीति करै 'जिनि' कोइ ।।
काल चोट चूकै नहीं, दुष सुष व्यापै दोइ ।।२३।।

जब ही 'करि' कांटा लगै, तब ही धूजै मन ।।
हरीदास जन यूँ कहै, ज्यूँ किरपण का धन ।।२४।।

राजा रांम विसारि करि, जीव रसातलि जाइ ।।
जन हरीदास चौरासी भरमत फिरै, फिरि फिरि षोटा षाइ ।।२५।।

जन हरीदास हरि नांव लै, आठ पहर इक सार ।।
एक पलक जिनि वीसरै, जम की वाहर लार ।।२६।।

जन हरीदास गोविंद भजौ, देह 'दुरांणी' वीर ।।
कहौ कहां लो राषिये, काचै भांडे नीर ।।२७।।

पाठभेद—जुग-१ । जिन-४ । कर-३-४ । दुरानी-१-५ ।

शब्दार्थ—हटवाड़ै=बाजार मे । पीठ लगाइ=दुकान लगा । कोठीवाल=थोक व्यापारी, बनावटी साधक । साहू=सेठ, परमेश्वर । आदरै=अङ्गीकार करे, स्वीकार करे, सम्मान करे । पारिष पषै=अनुभवहीन । नाणा=रकम, सम्पत्ति । ऊँचा अधिक=बहुमूल्य । सोने सँवा=कान्तिवान, सोने जैसा । किरपण=कंजूस, मूँजी । इकसार=एकाग्रवृत्ति । वाहर लार=पीछा करनेवाले । दुराणी=क्षीण हो रही है, छिप रही है ।

अविनासी सूँ आंतरो , नरक कूप सूँ हेत ॥
जन हरीदास औसर भलो , चूका भला अचेत ॥२८॥

रांम 'समद' न्यारा रह्या , पांवा पड्या जंजीर ॥
जन हरीदास नर भूला फिरै , मन धरि सकै न धीर ॥२९॥

॥ इति ॥

॥ अथ मन को अंग ॥

फूटै कुंभ न जल रहै , वहता कहै न रांम ॥
जन हरीदास गोविंद भजै , जा कै मन विसरांम ॥१॥

जन हरीदास मन सावता , तहां वसै हरि नीर ॥
कनक कटोरै ठाहरै , वाघणि वप का षीर ॥२॥

सीस अमोलिक अजब था , दीन्हा सौंहगी 'ठौर' ॥
जन हरीदास मन मसकरा , मन की उलटी 'दौर' ॥३॥

मन ही सूँ मन 'फेरिकै' , मन का तजै विकार ॥
तव जन हरीदास पैंडा कटै , वाकी रहै न लार ॥४॥

मन सा को वैरीं नहीं , मन सा सगा न कोइ ॥
जन हरीदास मन काच समि , मन फिरि कंचन होइ ॥५॥

मन फूटा कण कण हुवा , फेरि घड़ै तो रांम ॥
हरीदास जन यौं कहै , नहीं और का कांम ॥६॥

पाठभेद—सवद-१ । ठौड़-१-३ । दौड-१-३ । फेरकरि-१ ।

शब्दार्थ—रांम समद=सुखसागर ब्रह्म । पांवा जड्या जंजीर=कर्मबन्धन की बेडियां । फूटे कुंभ=फूटे घडे मे । वहता=चञ्चल मनवाला । मन सावता=मनस्थिर हो । ठाहरै=ठहरे, रुके । सौहगी=सस्ती, कम कीमत मे । दौर=दौड़ । फेरिकै=पलट कर, आत्माभिमुख करके । लार=पीछे, शेष । मन फूटा=मन विखरा, अनेक विषयों में लगा ।

जाकै नष चष कर मुष सिर नहीं, चरण नासिका नांहि ॥
ऐसा मन मेवासिया, काया नगरी मांहि ॥७॥
मेरा मारचा ना मरै, और 'वाट' व्है जाइ ॥
वाजारी 'वहौ' रूप करि, पूठा वैसे आइ ॥८॥
जव आवै तव मारिए, याकी ठौड़ उठाइ ॥
गुर का सवदां भूँकि करि, ज्यूँ मन मनसा कूँ षाइ ॥९॥
जन हरीदास आलस कहा, ग्यान तुला मन तोलि ॥
मन दीन्हा सांई मिलै, माया मिलै न मोलि ॥१०॥
ग्यांन ध्यांन 'सुधि बुधि' गई, भाव गयां भै जाइ ॥
जन हरीदास सरवस गया, तव मन दीया मुकलाइ ॥११॥
निज करतूति कमांण करि, 'सुवधि' चिला लै चारि ॥
ग्यांन ध्यांन का वांण करि, मन मेवासी मारि ॥१२॥
हिरदा हुजदा अजव है, फेरि तहां मन आंणि ॥
जन हरीदास 'तीसूँ' तषत, तहां तँगोटी तांणि ॥१३॥
जन हरीदास घट की घटा, सुरति दांमणी देष ॥
मन पांणी पांणी मिल्या, परस्या नहीं अलेष ॥१४॥
जन हरीदास तत तेज का, सब घटि गरजै आइ ॥
मन पांणी मनसा घटा, वरसत गया विलाइ ॥१५॥

पाठभेद—घाट-१ । बहु-१ । सुध-बुध-५ । सुबुधि-१ । सुरति-४ । तीसौ-१-३ ।

शब्दार्थ—चष=चक्षु, नेत्र । कर=हाथ । मेवासिया=गढपति, देह का स्वामी । वाट=मार्ग, विषयो की ओर । पूठा=वापिस, पीछा । भूँकि कर=कहकर, बारबार ध्यान आकर्षित कर । माया मिलै न मोल=आत्मज्ञान की प्राप्ति धन से नही खरीदो जा सकती, इसकी प्राप्ति तो जीवन को उत्सर्ग करने से ही होती है । तव मन दीया मुकलाइ=जब मन को अपनी इच्छानुसार चलने को छोड दिया जाय तो ज्ञान-ध्यान, भाव-भक्ति आदि सब ही समाप्त समझिये । चिला=वाण के आगे का फलक । हिरदा हुजदा=हृदयरूपी उत्तम स्थान । तीसूँ तषत=तीसो दिन । तँगोटी=छोलदारी, सद्विचार की छोलदारी । सुरति दांमणी=वृत्तिरूपी बिजली । मन पांणी पांणी मिल्या=मन का प्रवाहरूप पानी वासना के प्रवाहमय पानी मे मिल गया । परस्या नही=स्पर्श नही किया, सम्बन्ध नही जोड़ा । तत तेज का=चेतनतत्त्व का ।

सदा सनेही रांम है, ताही सूँ मन लाइ ॥
जन हरीदास देह सहित धौला कहा, दीजै अगनि जलाइ ॥१६॥

सुई मुँई धागा थक्या, कंथा सींवै कौंण ॥
जन हरीदास मन दरजी जहां का तहां, करै और ही गौंण ॥१७॥

माई 'मूँडू' मन की, जैं कितहूँ चलि जाइ ॥
हरीदास कंठ तैं गहया, कहि सरप 'कौंण' कूँ षाइ ॥१८॥

मन निरमल निरभै मतै, छाड़ै सबै विकार ॥
जन हरीदास तब पाइये, अलष 'पुरष' भरतार ॥१९॥

जन हरीदास सतगुर सबद, तहां मन रह्या समाइ ॥
अवधू सोई जांणिये, चुणि चुणि मन कूँ षाइ ॥२०॥

॥ इति ॥

॥ अथ माया को अंग ॥

भूषा सब भूषी भष्या, धाया कोई नांहि ॥
'औरां' कूँ परमोध दे, आपण नरकां जांहि ॥१॥

जन हरीदास साषी सबद, सब कोइ कहै बणांइ ॥
कहत कहत माया मिलै, कौंण भेद किस भाइ ॥२॥

माया छाया वै करि, जीव जहर फल षाइ ॥
जन हरीदास ता जीव कूँ, काल पकड़ि ले जाइ ॥३॥

पाठभेद—मूँडौ-१। कूँण-१। पुरिष-१। अवरां-१। कौ-१।

शब्दार्थ—सुई मुँई=वासना की सूई मरी। धागा थक्या=मनोवृत्ति प्रवाह का धागा भी रुक गया। कंथा=जीवनरूपी गुदड़ी। गौण=गमन, अन्य प्रवाह मे प्रवाहित है। अवधू=आत्मनिष्ठ साधक। भूषा=भोग भोगने की प्रवृत्ति वाले। भूषी=माया, तृष्णा। धाया=तृप्त।

मोह लगाम 'त्रिसना' तुरी , चित चौगानों हाथि ॥
जन हरीदास माया दड़ी , चलै न काहू साथि ॥४॥

मेर तेर चौगान बिचि , 'त्रिसना' तुरी नषाइ ॥
जन हरीदास केते गये , माया गींद गुडाइ ॥५॥

अणभै की कथणी कथै , अंतरि लागी लाइ ॥
मंजारी पै प्रीति 'ज्यूं' , मन माया कूं जाइ ॥६॥

जन हरीदास माया नरां , मारै अंगि लगाइ ॥
पहली सजन व्है मिलै , पछै 'पिसण' व्है षाइ ॥७॥

जन हरीदास माय मिल्यां , सो ब्रह्म मिलै नहिं जाइ ॥
दूजा 'औगुण' को नहीं , माया लिया तुडाइ ॥८॥

जन हरीदास माया बिरछ , फल बिकार रसरूप ॥
ता तरवर पंषी वसै , न्याइ सहै सिरि धूप ॥९॥

माया भैंसि विराट वप , जीव बिलंबे आइ ॥
काल काग छाडै नहीं , वै लागै 'वोह' षाइ ॥१०॥

तेलि मांहि माषी पड़ी , तन का हूवा भंग ॥
जन हरीदास माया मिल्या , तिन का योही ढंग ॥११॥

माषी तौ गुड़ मैं गड़ी , तली कडाही मांहि ॥
जन हरीदास मीठै ठगी , तूं मति मीठौ षांहि ॥१२॥

पाठभेद—त्रिष्ना–४-५ । ज्यौ–१ । पिसुण–१ । अवगुण–१ । वो–३-५ ।

शब्दार्थ—तृष्णा तुरी = तृष्णारूपी घोडी । माया गीद=सम्पदामय दडी । गुडाइ=इधर-उधर फैंक कर । अणभै=अनुभव । कथणी कथै=कथन करे । लाइ=तृष्णा की आग । मंजारी पै प्रीति ज्यूं=बिल्ली का जैसे दूध से प्रेम । अं.गुण=दोष, अवगुण । तुडाई=तुडवाकर, आध्यात्मिक प्रवृत्ति से हटाकर । पषी=मन पषी । माया भैंसि विराट वप=माया ने अज्ञान का अन्धकार फैला, भैस की तरह अपना विराट् रूप बनाया है । भंग=विच्छेद, नाश । ढग=दशा, हालत । मीठेठगी=विषयभोग की मिठास ने मनोवृत्ति को ठगी ।

दोहा— लीज्यो सन्त सुधार के, घटती बढती मात ।
तोतर वांणी बाल की, समझ जात है मात ।।
जन प्यारे की बीनती, सुण लीज्यों महाराज ।
चार जुगा में सन्त भये, ते मेरे सिरताज ।।

प्यारेरामजी ने अपनी भक्तमाल मे अपनी सम्प्रदाय के कई महात्माओ का विशेष निरूपण किया है जिनका कि अन्य भक्तमाल-लेखकोने नाम-निर्देश तक नही किया । जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है अमरपुरुषजी महाराजके शिष्य दर्शनदासजी ने, जिनके कि प्यारेरामजी शिष्य थे, उक्त प्रकारकी भक्तमाल लिखने की प्रेरणा की । गुरुजी के निर्देशानुसार इनने हरिपुरुषजी, षेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी, अमरपुरुषजी निरंजनी महात्माओका निरूपण कर पश्चात् अन्य महात्माओका विवेचन किया है । प्यारेरामजी ने अन्य भक्तमालकारो की तरह काल का उल्लेख नही किया है केवल सेवादासजीके स्वर्गारोहण के सम्वत्का उल्लेख किया है । बतीस मनहर छन्दो मे हरिपुरुषजी के विविध परचो का तथा उनके भ्रमण का दिग्दर्शन कराया है । उनके जन्म, साधु बनने, तथा अवसानके समयके विषयमे कुछ नही लिखा गया । उनमे हरिपुरुषजीके आदि-अन्त के बारे मे इस तरह उल्लेख किया है—

मनहर—कापड़ोद गाँव तहाँ हरिपुरुष अवतरे,
महिमा अपार पार कहाँ लग गाइये ।
है प्रसिद्ध डीडपुर जहां जप तप कियो,
गाढ़ेशाह सेवा करि मेलो जू रचाइये ।
आवत वसन्त ऋतु आनंद अपार होय,
हजारों ही कोसन के सन्त चलि आइये ।

× × ×

सांखला के कुल माहिं आप जो जनम लियो,
चोधरण चूंगे थना वंश जू कहाइये ।
सूर सो प्रचंड तेज दिव्य है मुखारविन्द,
देखत आनन्द होइ नैनन खिंचाइये ।।

× × ×

माया की छाया रहै, कहै अगम की बात ॥
हरीदास जन 'यूं' कहै, 'याह' 'सौरां' की घात ॥१३॥
माया देष्यां मन षुसी, मुलकि पसारै हाथ ॥
जन हरीदास तूं मति करै, वाह सौरां को साथ ॥१४॥
माया देष्यां मन षुसी, 'बिछडयां' बहौत बिवोग॥
ये बुग ध्यानी बापडा, कैसै साधे जोग ॥१५॥
जन हरीदास'सांसां'मिटया, माया की गम लध ॥
रूसि रह्या ते ऊबरया, षुसी हुवा ते षध ॥१६॥
जन हरीदास माया तजी, जहाँ माया तहाँ रोग ॥
तीन लोक का राज दे, तौ भी बिपति बिवोग ॥१७॥
माषी मुंह काला करै, अंतरि बैठी आइ ॥
हरीदास सो जन भला, माषीं देइ उडाइ ॥१८॥
छल बल करि जहाँ की तहाँ, पूठी बैसे आइ ॥
जन हरीदास गोबिंद बिमुष, ताकूं माषी षाइ ॥१९॥
रांम भजै सो ऊबरै, सतगुर सरणै आइ ॥
जन हरीदास ता साध कूं, कदे न माषी षाइ ॥२०॥
माया तणै अंधारडै, फिरि लागा सब जीव ॥
हरीदास जन 'यूं' कहै, कैसे परसै पीव ॥२१॥
माया बाग 'बिबधि' फल, दुष सुष फूल फरक ॥
जन हरीदास चौरासी लष जीव सब, मधुकर होइ गरक ॥२२॥

पाठभेद—यौ-१ । या-५ । स्यौरा-५ । बिछुड्यां-१ । ससा-१ । यौ-१ । विविधि-१ ।

शब्दार्थ—सौरा=शोहदा, दुष्चरित्र । बुगध्यानी=नकली साधक, ठग महात्मा । गम लध=असलियत मिली । रूसी रह्या=रूठि रह्या, अप्रसन्न हुए । षध=षाया । माषी मुंह काला करै=माया रूपी मक्खी जिस पर बैठती है, उसका मुंह काला करती है, जीवन निष्फल बना देती है । ऊबरै=बचे सुरक्षित रहे । अंधारडै=अंधेरे मे । मधुकर= भौरे हो ।

संग कीयां सांपणि डसै, आइ अंधारै षाइ ।।
जन हरीदास सूक बिरछ की छांहडी, कहौ मुकति 'क्यूं' जाइ ।२३।
काया माया झूठ है, साच न जाणी बीर ।।
जन हरीदास कहि का की भागी त्रिषा, पी 'म्रग' त्रिसनां को नीर ।।२४।।

।। चाणिक को अंग ।।

कीरतन्यां काचै मतै, जपै न केवल रांम ।।
जहां तहां नाचत फिरै, माया मिलै न रांम ।।१।।
चोटी ऊपरि चोट, कै लागी कै लागसी ।।
गहो रांम की वोट, ते नर निरभै 'जागसी' ।।२।।
माला मुंह काला करै, चोटी ऊपरि चोट ।।
जन हरीदास निरभै मतै, गहो रांम कीं वोट ।।३।।
दुनिया सूं दिल दे मिलै, साधां सूं उरि और ।।
हरीदास जन यूं कहै, पहुंचेंगे किस ठौर ।।४।।
आप भजन कूं आलसी, 'औरां' कूं दे आड़ ।।
जन हरीदास हरि तैं बिमुष, पसू पड़ेंगे षाड़ ।।५।।
जन हरीदास सुष अगम है, मथि काढै ते संत ।।
जल थोड़ा आँधी घणी, अैसा ग्यान अनंत ।।६।।
मौंह मांहि अंतरि बिथा, बौलै मीठै माइ ।।
जन हरीदास निगुरा तिको, निहचै नरकां जाइ ।।७।।

पाठभेद—क्यौ–१ । मृग–५ । जागिसी–१-४ । अवरा १ ।

शब्दार्थ—अंधारै=अज्ञान मे । कीरतन्या=कीर्त्तन करने वाले, दिखाऊ भक्त । काचै मतै=अस्थिर विचार, दिखाऊ भक्ति । आड़=बाधा, रुकावट । भौहमाहि अन्तर व्यथा=दिखाने मे भाव भंगी परम त्याग की दिखावे, पर भीतर से वासना की पीड़ा से व्याकुल ।

गुण पोषै निरगुण कथै, सुरति न 'लागी' साचि ॥
जन हरीदास काचै मतै, बहौत गया यूं नाचि ॥८॥

ग्यांन ध्यांन पोथ्यां लिष्या, हिरदै सक्या न राषि ॥
जन हरीदास ता साध की, हित दै 'सुणी' न साषि ॥९॥

चाल्या था 'पणि' बाहुड्या, हीरा बैठा हारि ॥
जन हरीदास कौडी रता, तिन का संगि निवारि ॥१०॥

जोरीं करि चौरी करै, बैसि ग्यांन की छांह ॥
हरीदास जन यूं कहै, ताकी झूठी बाँह ॥११॥

आपा की आंटी पड़ी, दुष सुष व्यापै दोइ ॥
जन हरीदास चौथी दसा, 'चतर' न पहुँचै कोइ ॥१२॥

जहां आषौ तहां आंतरो, करणांसागर दूरि ॥
जन हरीदास आपौ मिट्यां, है हरि सदा हजूरि ॥१७॥

पैंड एक आघा चलै, पग दस पूठा जाहि ॥
जन हरीदास कहणी कहा, रजमा रहणी मांहि ॥१४॥

मनसा का बादल भया, कांम क्रोध जल जोर ॥
जन हरीदास कहणी सरस, रहणी बडी कठोर ॥१५॥

आपै चढि ऊंचा भया, कोटि करम लै साथि ॥
दौड्या था हरि हेम कूं, कौड़ी आई हाथि ॥१६॥

पाठभेद—लागै-१। सुणै-१। पिण-१। चत्र-१।

शब्दार्थ—गुणपोषै=सात्विकादि तीनो गुणों का पोषण करे, बढावे। निरगुण कथै=कथा-उपदेश मे निर्गुण की महिमा कहे। ता साध की=ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की। हित दै=ध्यान से, श्रद्धा से। साषि=शब्द, उपदेश। झूठीबाँह=झूठा सहारा, मिथ्या सहयोग। चौथी दसा=सहज अवस्था, मुक्त दशा। आतरो=अन्तर, भेद। आघाचलै=आगे चले। रहणी मांहि=आचरण मे, रहन-सहन-व्यवहार में। आपै चढि=अहंकार से अपने को ऊँचा माने।

सिंघ सदा बन में वसै , गीदड़ गरजै आइ ॥
एक दिहाड़ै थाप की , सहजै सिर मैं षाइ ॥१७॥

जन हरीदास केहरि गरज , जंबक लहै न जांण ॥
जब केहरि केहरि मिलै , तब गरज्यां 'परवाण' ॥१८॥

मोड़ा माथा मांनई , ताल वजावै तोड़ि ॥
जन हरीदास उनकी संगति , नां पहुँचावै वोड़ि ॥१९॥

अरथ करै अनरथ नहिं छूटै , तातैं फिरि फिरि भांड़ा फूटै ॥
हरीदास जन अैसी कहै , कोई उलटा षेलि परम पद लहै ॥२०॥

'मूनी' वाहणि 'जोइ' करि , ऊपरि बैठा साह ॥
जन हरीदास या विणज मैं , तोटा घणां क लाह ॥२१॥

भूष प्यास संकट सहै , सहै विडांणा भार ॥
जन हरीदास मूनी वलद , का सूं करै पुकार ॥२२॥

उलटी नै सुलटी कहै , ऊंधी नै सूंधी ॥
जन हरीदास सांसै ड़सी , दुनिया चकचूंधी ॥२३॥

कहां कागद कहां मिनिष दिल, लिखी साध की बात ॥
कर तैं छूटा लागी पवन , उड्या उड्या जात ॥२४॥

पाठभेद—प्रवाण-१ । मौनी-१ । जोति-३ ।

शब्दार्थ—सिघ=काल केहरी । एक दिहाड़ै=एक दिन । परवाण=प्रमाण । मोडामाथा=नकली वेष धारण करने वाला । अनरथ नहिं छूटै=हिंसा, काम, क्रोध, छल-कपट आदि अनर्थ नही छूटते है । मूनी=मौन रखने वाला, न बोलने वाला । वाहणि=वहन करने वाले, बैल-घोड़े आदि । तोटा=नुकसान, घाटा । लाह=लाभ, मुनाफा । विडाणा=ओरो का । सांसै डसी=संशय से ग्रसित, सन्देह मे उलझी । कहाँ कागद कहाँ मनिष दिल, लिषी साध की बात=अनुभवी महात्माओ का उपदेश केवल कागज मे लिख लेने से क्या लाभ हो ? यदि वह उपदेश हम धारण नही करते । जैसे लिखित कोई पत्र हाथ से छूट कर हवा मे कहाँ का कहा व्यर्थ उड जाता है । इसी तरह लिखित वेद-शास्त्रो का महत्व उनमे कहे गये उपदेश को धारण करने से है, अन्यथा नही ।

भूठै कर आघा किया, मन की मिटी न रेष ॥
*जन हरीदास तरसुत जल्या, संगति का गुण देष ॥२५॥
पांन अगनि मुष ऊबरै, गोला ताता होइ ॥
जन हरीदास साची संगति, जलतन देष्या कोइ ॥२६॥
हेम अगनि मुख जालिये, धांतां संगि लगाइ ॥
जन हरिदास कंचन तिकौ, बिकै लोह कै भाइ ॥२७॥
लोहा जल सूं धोइये, तब लग कांटी षाइ ॥
जन हरीदास पारस मिल्यां, मंहगै मोलि बिकाइ ॥२८॥

॥ भरमविधूंस को अंग ॥

ज्यूं मूरति त्यूं ही सिला, रांम बसै सब मांहि ॥
जन हरीदास पूरण ब्रह्म, घाटि बाधि कहुँ नांहि ॥१॥
माणस परमेसुर किया, सो तौ करता नांहि ॥
जन हरीदास करता 'पुरसि', ब्यापि रह्या सब मांहि ॥२॥
नहिं देवल सूं वैरता, नहिं देवल सूं प्रीति ॥
'किरतम' तजि गोविंद भजै, याह साधां की रीति ॥३॥

पाठभेद—पुरस–५ । क्रितम–१ । किरत्म–४ ।

शब्दार्थ—तरसुत=तरुसुत=पीपल का पता । हेम=सोना । धातां=धातुएँ, लौह–ताम्बा आदि । कॉटी=जर, मैल । माणस परमेश्वर किया=रामकृष्णादि मानव शरीरधारी को परमेश्वर कहते है । देवल=पाषाणमूर्ति । किरतम तजि= बनावटी ईश्वर को छोड ।

* पुराने समय मे दैवी परीक्षा का चलन था । भूठ और सत्य का निर्णय अग्नि–संसर्ग से किया जाता था, जैसे सीताजी की परीक्षा की गई । इस प्रसंग का साषी–२५–२६ मे निर्देश है । भूठे के साथ से पत्ता जल जाता है, सच्चे के साथ नही जलता ।

लोक 'दिषावौ' मति करै, हरि देषै ज्यूं देष ॥
जन हरिदास हरि अगम है, पूरणब्रह्म अलेष ॥४॥

जन हरीदास साची कहै, माहिबजी की 'सौंह' ॥
पाहण कूं करता कहै, ताका काला 'मौंह' ॥५॥

जैन धरम माया 'सरूप', 'परस्यां' लागै पाप ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन जाप ॥६॥

साची कथा सुणवतां, मति कोई मानै रीस ॥
अलष निरंजन छाड़ि करि, भजै भरम चौईस ॥७॥

जैन धरम सब तैं बुरा, भला कहै सौ कौण ॥
'सूने' घर मैं सरप है, तहां न कीजै गौंण ॥८॥

जैन धरम सोध्या सबै, ग्यांन सूप ले हाथि ॥
फटकि फटकि फटकूं कहा, कोई कुणका लगै न हाथि॥९॥

जैन धरम की बातड़ी, सांभलि मनना बीर ॥
ऊजड़ कूप उजाड़ि मैं, तहां छाया नांही नीर ॥१०॥

जैन धरम की बातड़ी, सुणत सुणत 'भया' भोर ॥
जन हरीदास जहाँ का तहाँ, घर मै मैं तैं चोर ॥११॥

पांच तत का पूतला, रज बीरज की बूंद ॥
एकै घाटी नीसरचा, बांमण षत्री सूद ॥१२॥

देवल मांही देव है, घटि घटि धरचा बणाइ ॥
जन हरीदास 'याह' चूँधि है, तूँ गुण गोविंद का गाइ ॥१३॥

पाठभेद—दिषावा-१ । सूंह-५ । मुंह-३ । सरप-२ । प्रस्या-१ । सूना-१-५ । भए-१ । या-१ ।

शब्दार्थ—सौह=सौगन्ध, शपथ । परस्या=अपनायां । रीस=गुस्सा, बुरा । गौण=गवन । सोध्या=देखा, तलाश किया । कुणका=तत्वकण । नीसरचा=निकले, उत्पन्न हुए । सूद=शूद्र, अन्त्यज । चूंधि=भ्रम, अज्ञान ।

।। भेष को अंग ।।

भेष पहरि भांडी करी, फेरि धराया नांव ।।
जन हरीदास 'सांमी' 'पणौ', बहौड़ि रोग मैं पांव ।।१।।
जन हरीदास बादल बिगति, बूठां ब्यौरा होइ ।।
भेष बराबरि करि मिले, सुमिरण का सुष दोइ ।।२।।
जन हरीदास गोविद् विमुष, तिन सिरि जम का हाथ ।।
बाहरि मूँडित 'देषिये', भीतरि सलवा साथ ।।३।।
जन हरिदास कहै या जग मैं, एक अचंभा भारी ।।
हम टोपी काहै कूं पहरैं, उलटी चाल हमारी ।।४।।
सांग काछि सोहरा हुवा, हीरा न आया हाथि ।।
जन हरीदास तांडौ लद्यौ, तव सब कुता साथि ।।५।।
जन हरीदास तांडौ लद्यौ, तब सब कूंता साथि ।।
संगि तांडौ संग ही कुता, कछू न आया हाथि ।।६।।
निरभै पद गावे नहीं, गाईज रस रागे ।।
हरीदास जन यूं कहै, मोडा भला न काग ।।७।।

।। साच को अंग ।।

मिथ्या सबद न 'बोलिए', जन हरीदास यहु आन ।।
बंबल बिरछ लागै नहीं, पारिजाति कै पांन ।।१।।

पाठभेद— । स्यामी–१ । पनौ–५ । देषिए–३-४ । बोलिये–२ ।

शब्दार्थ—भाडी करी=भाडपन किया । बूठा=बरसना । ब्यौरा=विवरण, असलियत । सलवा=सशय का सल । साग काछि=सागबना । सोहरा हुवा=राजी हुआ, सुख माना । ताडो लदचो=पडाव उठा । कुत्ता=केवल भोजनार्थी श्वान सम मनुष्य । रस राग=रसिया गाना । मोडा=मुण्डित । आन=दुहाई, शपथ । पारिजाति=देववृक्ष, हारश्रृङ्गार ।

×धर कद्रज कद्रज बिरछ , भी कद्रज फल पात ॥
जन हरीदास ता बिरछकुल , विपति नदी बहि जात ॥२॥

॥ साध को अंग ॥

तेल कडाही जलत है , कल विन झलन बुझाइ ॥
जन हरीदास सीतल भया , तब चंदन पहुंता आइ ॥१॥

काम क्रोध त्रिसनां तजी , त्रिबधि ताप का नास ॥
रांम नाम हिरदै सदा , जन हरीदास यौ दास ॥२॥

गूद्डियौ आछै मतै , भजै निरंजन राइ ॥
जन हरीदास ता साधकी , 'महिमा' कही न जाइ ॥३॥

चित मांही वित ले रह्या , सम्रथ सिरजनहार ॥
जन हरीदास ता साध का , मिलि कीजै दीदार ॥४॥

पाव पलक छाडै नहीं , हिरदा तैं हरि नाँव ॥
जन हरीदास ता साध की , मैं बलिहारी जाँव ॥५॥

आठौं पहर भजै अविनासी , 'इहै' भेष मन मांहि ॥
रूंड मूंड कहा टोपी पहरयाँ , देह भरोसा नांहि ॥६॥

पाठभेद—महमा-५ । इहि-४ ।

शब्दार्थ—कल विन=सामयिक सूझविना । यौ दास=वहीसच्चा महात्मा है । पाव पलक=क्षण भर भी । इहै भेष=यही रग ।

×खराब भूमि मे खराब ही बीज से उत्पन्न वृक्ष जिसके पत्त-फल भी बुरे हों उस वृक्ष का व उस की परम्परा का क्या महत्व है ? इसो तरह मनुष्य भी जो गन्दा रहने का अभ्यासी है, गन्दे उसके विचार है और गन्दी ही उसकी क्रिया है उसका जीवन व्यर्थ है ।

रांम भजन आनंद सदा, आठौं पहर अछेह ॥
रांम भजन बिन मांनई, बादि गमावे देह ॥७॥

'ना' काहू सूं बैरता, मोह न बांधै साध ॥
जन हरीदास आठौं पहर, 'भजिए' रांम अगाध ॥८॥

भाव भगति गोबिंद भजन, जाकै हिरदै होइ ॥
जन हरीदास ता साध कूं, गंज न सकै कोइ ॥९॥

भाव भगति गोविंद भजन, दया दिढ़पण दाषि ॥
जन हरीदास गुरग्यान गहि, ये साथी संगि राषि ॥१०॥

'परम' सनेही रांम है, कै रांम तुम्हारे सन्त ॥
जन हरीदास हरि भजन बिन, पासी 'और' अनंत ॥११॥

अलष निरंजन नाथ सति, सति रांम रांम का साध ॥
जन हरीदास 'बरणूं' कहा, 'याह' तौ बात अगाध ॥१२॥

मन उलटा चढ्या आकास कूं, पवन सुरति लै हाथि ॥
जन हरीदास ता साध कै, सदा निरंजन साथि ॥१३॥

जाष्यूं को लागै नहीं, 'भजिए' केवल रांम ॥
जन हरीदास ता साध का, निरभै पद 'विसरांम' ॥१४॥

नरक सुरग सब 'परहरया', गहि गुर ग्यांन विचार ॥
जन हरीदास ता साध सूं, सनमुष सिरजनहार ॥१५॥

पाठभेद—नहि–१। भजिये–२। प्रम–१। अवर–१। बरणौ–१। या–४ ५। भजिये–२। विश्राम -५। परिहरया–१।

शब्दार्थ—अछेह=विना अन्त, निरन्तर। मोह=ममता, अनुराग। गंज=परास्त, हराना। दिढगरा=मजबूती, दृढता। पासी=बन्धन, वाधाये। उलटा चढ्या आकास कूं=मन अन्तर्मुख हो लय वृत्ति से गगनमडल ब्रह्मरन्ध्र मे पहुंचा। जाष्यूं=जोखिम, धन, सम्पत्ति मे।

जन हरीदास 'सो' जन भला, भजै अषंडित रांम ॥
राग दोष मैं तैं नहीं, जोग मूल सूं कांम ॥१६॥
अजब 'इष्ट' रहणीं अजब, अजब बात सूं हेत ॥
जन हरीदास षेलै तहाँ, कोई साध सुचेत ॥१७॥
गूदडियो निरभै मतैं, चाले उलटी चाल ॥
जन हरीदास ताकी संगति, जब तब करे निहाल ॥१८॥

॥ मधि को अंग ॥

बैरागी ग्रिह वन तजै, मधि कै पैंडे जाइ ॥
जन हरीदास आपा रहत, सुष मैं 'रह्या' समाइ ॥१॥

॥ उपदेश को अंग ॥

सीष भीष की वातड़ी, सांभलि मनवा बीर ॥
भीषत भीषत ही पछै, होइ समद सूं सीर ॥२॥
बात कहत पैंडा थकै, चलतां होइ स होइ ॥
जन हरीदास हरिधाम तहां, पहुंचै बिरला कोइ ॥३॥
अजब साषि साचा सवद, घर मैं रहे न सोइ ॥
जन हरीदास गोविंद भजै, पला न पकड़ै कोइ ॥४॥
इत उत 'चितवणि' छाडि दे, मनसा मरै तो मारि ॥
जन हरीदास हीरा जनम, कौडि सटे न हारि ॥५॥

पाठभेद—सोई-१ । इसट-४ । रहे-१ । चितवनि-१-५ ।

शब्दार्थ—अजब=अनोखा, अद्भुत । सुचेत=सावधान हुए । सीष=ग्रहण कर । भीष की वातडी=निरन्तर आत्मचिन्तन मे लगने की बात सीख जाना । चितवणि=देखना ।

डीडवाणे कोल्या बीच खोसल्यो कूवो कहाय,
तहाँ आप बैठे रहे घोड़े चढ़ आइये ।
माल जो ले जाय कोई ताहि पै धराये डाँण,
बणियां को रूप धरि गोरष तहाँ आइये ॥
गोरष वचन बोले एता तुम पाप करो,
आगे लेखो होई जब छूटो कैसे जाइये ।
पूछो क्यों न घर जाय कौन तेरो संगी होय,
तब घर जाय आप बूझना कराइये ।
तुम कियो पुण्य-पाप तुमही भोगोगे सब,
और को जू कैसे आवे ऐसे जू कहाइये ॥
उदासी जो होय करि पीछे आप आये तहाँ,
आवत ही पाँव परे चरण चित लाइये ।
अब आज्ञा करो आप सोई मैं तो शीश धरूँ,
गोरष बोले घर त्याग तीखो पर जाइये ॥

× × ×

फागण वसन्त ऋतु चाँदनी जु छठ ताहि,
ता दिन अडग आप ध्यान जु लगाइये ।
सब ही जु देव आये वीणासुर नभ छाये,
चार भुजा धार करि प्रभु आप आइये ।
चारों हाथ माथे धरि माँगो माँगो कहे ऐसे,
अखंड भगति तोहि और कहा चाहिये ।
भावे तो कैलाश जाओ भावे जाओ ब्रह्मलोक,
भावे तो वैकुण्ठ ताहि इच्छा जहाँ जाइये ।
तव स्वामी परे पाँय मेरे नहीं और चाह,
ऐसी कही स्वामी तव ज्योति में मिलाइये ॥

जन हरीदास लीजै नहीं, कंचन बदले काच ॥
जो 'कछू' गया स जांण दे, तूं रहता सूं राच ॥६॥
रहता रमता रांम है, दूजा कोई नांहि ॥
जन हरीदास यूं जांणि करि, सो राख्या मन मांहि ॥७॥
आग्या मांगू अगम की, अगम सुगम यूं होइ ॥
हरीदास जन यूं कहै, भूलि 'पडौ' मति कोइ ॥८॥

॥ विचार को अंग ॥

हरीदास 'कहिए' कहा, देष्या 'सोचि' विचारि ॥
झूठा सुष सूं लागि करि, हरि सुष चाल्या हारि ॥९॥

॥ वेसास को अंग ॥

पूरण हारा पूरि है, जन हरीदास हरि राइ ॥
'जल' 'थल' कीट पतंग 'लूं', जहां तहां रह्या समाइ ॥१॥
सांई सब कूं देत है, बहौडि कबहूं नहिं लेत ॥
हरीदास जन यूं कहै, वाकै देबाहीं सूं हेत ॥२॥
जन हरीदास दाता दई, दूजा कोई नांहि ॥
सब कुछ करि सब तैं अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ॥३॥
अैसा कोई एक है, बीस तीस तौ नांहि ॥
आतस लागा मन 'सथिर', निरभै निजपद मांहि ॥४॥

पाठभेद—कुछ-१। पड़ै-१। कहिये-२। सोच-४। जलि थलि-२-३-४। लौं-१। सुथिर-१।

शब्दार्थ—सुगम=सरलता से प्राप्त। हरिराइ=राजाओं का राजा परमेश्वर। दाता दई=बड़ा दानी। आतस=व्याकुल हो, आतुर हो।

आतस लागा मन चलै, तौ मांगिर भिष्या षाइ ॥
जन हरीदास उदिम अजब, भजै निरंजन राइ ॥५॥

इजगर उदिम करत है, आतस लागा दोइ ॥
जन हरीदास वैराग 'व्रत', तहां कछु उदिम न होइ ॥६॥

इहि उदिम अवगति भजै, गंग जमन मधि बास ॥
जन हरीदास तब देषिये, परम जोति 'परकास' ॥७॥

परा परै पूरणब्रह्म, तहां मन रह्या समाइ ॥
जन हरीदास अैसा उदिम, और उदिम कूं षाइ ॥८॥

तन का उदिम कहां 'रहै', जब मन 'पिंगुल' होइ ॥
जन हरीदास 'मिरतग' पगां, चलत न देष्या कोइ ॥९॥

जे कबहू मिरतग चलै, तौ बीचि बिटंब कोइ और ॥
जन हरीदास मूंवां पछै, नहीं 'कुटंब' मैं ठौर ॥१०॥

सत रज तम षट ऊरमी, मैं तैं मोह जात सुष गोइ ॥
जन हरीदास बिग्यांन व्रत, तहां उदिम नहिं होइ ॥११॥

॥ पतिवरता को अंग ॥

सेवग हाजरि 'चाहिए', साहिब सदा हजूरि ॥
'पून्यूं' पूरा चंद ज्यूं, जहां तहां भरपूरि ॥१॥

पाठभेद—व्रिति–२ । प्रकास–१ । करै–३ । पिंगुरण–२ । मृतग–१-५ । कुटुम्ब–१ । । चाहिये–२-३ । पून्यौ–१ ।

शब्दार्थ—उदिम=उद्योग, प्रयास । इजगर=अजगर सर्प । गंग जमन मधि वास= इडा-पिंगला के मध्य मे सुषम्ना का वास है उसमे प्राण प्रवाह करना । पिंगुल= पंगुल, स्थिर, निश्चल । मिरतग पगां=काम न देने वाले पैरों से । विटम्ब=विडम्बना, साजिश । षट् ऊरमी=भूख, प्यास, हर्ष, शोक, जन्म, मरण । विग्यानव्रत=आत्मज्ञान प्राप्ति की दृढ़ता, प्रतिज्ञा । सेवग हाजिर चाहिए=साधक अपनी साधना मे तत्पर रहना चाहिए ।

वार पार मति गति अगम , आदि अंति मधि नांहि ॥
जन हरीदास आनंद सदा , प्राण बसै ता मांहि ॥२॥
ब्रह्मग्यांन ब्रत निंदतां , भला न कहसी कोइ ॥
जन हरीदास एक छाडि दूजा भजै , जे दूजा सति होइ ॥३॥
दूजी पूजा काल की , पकड़ि काल ले जाइ ॥
जन हरीदास रांम छाडि दूजा भजै , तासूं मिलै बलाइ ॥४॥
जन हरीदास याही कठिन , सब कौ चाहे मान ॥
'कहिं धू' कैसे मानिये , बींद बिहूणी जान ॥५॥
बींद अमर बरि बरण तजि , सुष मैं सुरति निवास ॥
'पतिवरता' पति कूं मिलै , कै निसदिन रहे उदास ॥६॥

॥ विरकताई को अंग ॥

वैरागी माया तजै , रांम भजन सूं प्रीति ॥
जन हरीदास षेलौ कहूं , देही का गुण जीति ॥१॥
हाटां बाटां ही रहै , भजै निरंजन नाथ ॥
आंन कथा मानै नहीं , हरि भगतां कौ साथ ॥२॥

॥ समरथाई को अंग ॥

आगै पीछै रांमजी , पूरणब्रह्म अगाध ॥
हरीदास जन यूं कहै , ता सुषि लागि रह्या सब साध ।१॥
रांम दया 'सनमुषि' सदा , जे हरिजन सनमुष होइ ॥
काल जाल लागै नहीं , पाडा लगै न कोइ ॥२॥
॥ इति ॥

पाठभेद—कहि द्यौ–१–३ । पतिव्रता–१ । सनमुष–४-५ ।

शब्दार्थ—निंदता=निंदा करना, हेय बताना । बलाई=दुर्भाग्य । हाटां बाटा ही रहे=जिस साधक ने मन, प्राण, वृत्ति को वश मे कर लिया है, उसको गिरि-गुफा या निर्जन वन की आवश्यकता नही, वह चाहे बाजार मे बैठा रहे या रास्ते मे, उसके ध्यान मे कोई बाधा उत्पन्न नही होती ।

॥ सूरातन को अंग ॥

कोड़ि रूपस वारि है, हीरा रूपस पारि ॥
लेगा कोई जौंहरी, मेल्है सीस उतारि ॥१॥

'अगनि' दहै दुख पाइये, बुधि बल कछु न बसाइ ॥
यूं ऊंचा सूं गिरि पड़ी, पर दुख सहै बलाइ ॥२॥

तन तूटो कुटका हुई, रती न मानी संक ॥
षेत षरै मन थिर नहीं, रे दोहणी निसंक ॥३॥

सनमुष व्है श्रवणां सुणी, तैं आपणी सुवालि ॥
षागां मुहि षिसतांषिमा, रे दोहणी दयाल ॥४॥

दया इहै साधां सुपहै, चाली निज घर ताकि ॥
जन हरीदास यूं जांणिये, 'बहोडि' न चढ़ई चाकि ॥५॥

पाठभेद—अग्नि १। बहुडि–१-५।

शब्दार्थ—वारि है=ऊलीओर है, इस किनारे है। पारि=उस पार, संसार सागर से पार। तूटो=टूटा, भग्न हुआ। कुटका=कण कण, टुकड़े टुकड़े। सक=भय, कांण। दोहणी=हाँडी, पात्र, मनुष्य शरीर।

साषी–२—गर्भाग्नि से सतप्त हो गर्भकाल मे बहुत क्लेश पाया, पर वहाँ बल-बुद्धि का कोई वश नही चला। काल पाकर गर्भ से बाहर आया तो फिर माया-मोह मे पड देह रूप यह हाँडी फिर अनेकों दु:ख उठा रही है।

साषी–३—तन तूटौ चंचल हुये मन की वृत्ति कुटका हुई विषयों मे लग खड खंड हुई, विचलित मन तथा वृत्ति ने किसी तरह की शका–मर्यादा नही रखी। यदि ससार के युद्ध क्षेत्र मे मन स्थिर नही तो फिर यह कायारूप हाँडी निशंक हो, कर्म बन्धनों मे उलझती है।

साषी–४—रे दोहणी हे काया रूपी हाँडी जब आत्मपरिचय की तीव्र लगन से गुरु के सम्मुख हो उनका सत्य उपदेश सुना–उसको अपनाया और साधना से अपने को सँभाला, तब धैयपूर्वक दयालुता से बिना प्रतिहिसा की भावना के काम-क्रोध-लोभ मोहादिको के आधानो को निष्फल कर दिया।

रांम भजै निरभै थकी, तकी न काई वोट ॥
लागी पण भागी नहीं, 'उरि' पाहण की चोट ॥६॥

भागां को भै को नहीं, जे मन मांडै धीर ॥
परवत सुत सूं बांजि करि, नीकां राष्यौ नीर ॥७॥

लिषमी सुत अरु गिरि सुता, आज मंड्यौ भारथ ॥
पिसणां मांही पैसि करि, भला दिखाया हथ ॥८॥

सूरवीर साचै मतै, भजै सनेही रांम ॥
जन हरीदास ता साध का, सरै सही सूं काम ॥९॥

सीस दैंण की ठौड़ है, तूं अपणा सिर देह ॥
जन हरीदास सिर कै सटै, रांमरतन धन लेह ॥१०॥

पाठभेद—उर-५।

शब्दार्थ—भागांको=टूटने का, भागने का। परवतसुत=पत्थर। लषमीसुत=मिट्टी। सटै=वदले में, एवजी में।

साषी-५—गुरु उपदेश तथा महात्माओं की दया का यह परिणाम है कि अब संसार से विरत हो तुम अपने मूलस्थान समष्टिचेतन ब्रह्म की ओर अग्रसर हो रही हो। हरिदासजी महाराज निर्देश करते हैं कि अब यह समझो कि पुनः जन्म-मृत्यु के चाक पर नहीं चढना है।

साषी-६—उपरोक्त रूप में जब साधक की धारणा दृढ हो गई तो वह निर्भय हो आत्मचिन्तन मे लग गया। अब और किसी सहारे की आवश्यकता नहीं रही। अब वासनारूपी विविध पत्थरों की चोट लगती है तो भी अबवृत्ति आत्म-चिन्तन से भंग नही होती।

साषी-७—यदि साधना से मन सुस्थिर हो गया है तो फिर वृत्ति के कभी लडखडाने का कोई भय नही है। अब तो बाजी लगा कर काम-मद-मोहादि से जीवन रूपी नीर को सुरक्षित कर लिया है। अब पुनः कर्मबन्धन में पडने की कोई संभावना नही।

साषी-८—आज अहंकार के साथ विवेकसम्पन्न सद्बुद्धि का युद्ध चल रहा है। सद्बुद्धियों ने भी षड्रिपु तथा आसुरी सम्पत्ति के दुर्गुणों को दूर खदेड़कर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है।

जन हरीदास हरि मिलण कूं , अंतर किया विचार ॥
जे सिर साटै हरि मिलै , तौ 'सिर सौंपूं' सौ बार ॥११॥
सिर तेरा तूं सिर धणीं , मुझ सिर सूं क्या काम ॥
सिर है बिष का तूंवडा , तूं सुष का सागर राम ॥१२॥
जोग 'पंथि' पग मति धरै , धरै तो सीस उतारि ॥
हरीदास जनू यूं कहै , यो ही अरथ विचारि ॥१३॥
अगन सिंघासण अगनि समि, काचा टिकै न कोइ ॥
जन हरीदास बैठा तहां , दिन दिन आनंद होइ ॥१४॥
जन हरीदास मैदान में , खेलत है गोडारि ॥
कोड्यां मध्ये एक कौ , ले जैं पै ते मारि ॥१५॥
सिंघ भषौ विषहर डसौ , भावे झडौ सुभाइ ॥
जन हरीदास गोविंद भजौ , तन सूं सुरति चुकाइ ॥१६ ॥
काइर सूं काइर मिलै , सूर मिलै सति सूर ॥
जन हरीदास आनन्द सदा , वाजै अनहद तूर ॥१७॥
मेर उलटि वसुधा भषी , 'प्रवल' 'प्रवत' नांहि ॥
बिणि पांषा ऊँचा चढ्या , वस्या आकासां मांहि ॥१८॥

पाठभेद—सिर सौप्या जै-१पंथ-१-३ । परवल-३ । परवत-३ ।

शब्दार्थ—अगन सिंघासण=ज्ञानाग्नि रूप सिंहासन । गोडारि=गोइन्द्रियाँ, उनके द्वारा । तन सूं सुरति चुकाइ=देहाध्यास से वृत्ति को हटाकर । मेर उलटि=मन अन्तर्मुख हो । वसुधा भषी=वासना को भषी-निर्मूल की । प्रवल प्रवत=दुर्लंघनीय काम-क्रोध-मोह-मदादि पहाड । बिणिपाषा=विना स्थूल पंखो के, विवेक-विचार से ।

साषी—१८ मेर उलटि-मन आत्मनिष्ठ हो वासना रूपी वसुधा को समाप्त की । अहंकार, मद-मोह कामादि प्रबल पहाडवत् बाधक थे उनको साफ किया । स्थूल परो के विना विवेक-विचार के पखो से ऊपर उठ दशम द्वार-ब्रह्मरन्ध्र मे निवास किया ।

मेर अडिग उलटी गंगा, आपा राल्या सूर ॥
जन हरीदास तब 'देषिए', नैंणा मांही नूर ॥१६॥

'पांचू' इन्द्री फेरि करि, रांम भजन करि सूर ॥
जन हरीदास काइर घरां, काल बजावै तूर ॥२०॥

जन हरीदास पीव परसिये, पींच अटकि ल्यौ लाइ ॥
डावै करि मस्तग धरै, सूरा सनमुषि जाइ ॥२१॥

सीस उतारया सूरि वै, छाड़ी तन की आस ॥
अंतरि राता एक सूं, परम जोति परकास ॥२२॥

॥ काल कौ अंग ॥

'एक' दिहाडै इन्द्र कूं, पकडि पछाडै काल ॥
हरीदास जन यूं कहै, गोपी रहे न ग्वाल ॥१॥

रांम दया न्यारी रही, राषण हारा कोड़ि ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, काल गहै घट तोड़ि ॥२॥

रांम नाम व्रत छाडि करि, जहां तहां जीव जाइ ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, काल तहां ही षाइ ॥३॥

पाठभेद – देषिये–२ । पाचौ–१-४ । येक–२ ।

शब्दार्थ—उलटि गंगा=वृत्ति बदली-अन्तर्मुख हुई । आपा=नाना अहंकार । राल्या=फेका, दूर किया । पाच अटकि–इन्द्रियो को रोक । एक दिहाड़ै=एक दिन । कोडि=करोड़ो ।

साषी१६— मन को निश्चल किया, वृत्ति को उलट प्राण से सम्बन्धित किया अहंकार तथा देहाध्यास को निर्मूल किया वही शूरवीर है, सच्चा योधा है । हरिदासजी महाराज कहते है ऐसे शूर साधको को ही वह परम नूर परभ ज्योति "नैणा मांहि" यानी प्रत्यक्ष होती है । एसे साधक ही ब्रह्मप्रकाश से प्रकाशित होते हैं ।

जन हरिदास गोबिंद भजो , गहि गुर ग्यांन विचारि ॥
करि कवांण कैवर 'लिये' , काल षड़ा दरबारि ॥ ॥४॥

देह षेह व्है जाइगी , मुंहि पड़ैगी मार ॥
जन हरीदास गोबिंद भजौ , गहि गुर ग्यान बिचारि ॥५॥

हरि सुषसागर परहर्‌या , कीच रह्या लपटाइ ॥
जन हरीदास ना जीव कूं , हिलियौ हाडौ षाइ ॥६॥

आसा कै घरि जम बसै , डाव पड़ै तब षाइ ॥
हरीदास जन यूं कहै , हरिजन तहां न जाइ ॥७॥

पैले जलि पहुँता नहीं , उला जल की आस ॥
जन हरीदास सुरगुण कथा , तहां काल की पास ॥८॥

जन हरीदास मोटी बिथा , करम काल जीव मांहि ॥
रांम भजै सो ऊबरै , दूजा छूटै नांहि ॥९॥

काल दहूं दिसि देषिये , जहां तहां भरपूरि ॥
जन हरीदास गोविंद भजौ , सो काल जाल सूं दूरि ॥१०॥

॥ संजीवणि को अंग ॥

'वोषद्' अजब अनूप है , जरै तो 'जुरा' न षाइ ॥
जन हरीदास तूटै बिथा , सुष मैं रहै समाइ ॥१॥

पाठभेद—लिया–१-५ । औषदि–५ । काल–५ ।

शब्दार्थ—कैवर=कितनी वार । कीच=वासना-तृष्णा के कादे मे । हिलियौ=हला हुआ । हाडौ=काल रूपी काग । आसा=चाह, भौतिक पदार्थों की इच्छा । पैलेजलि=परम आनन्ददायी चेतनतत्व रूपी जल । उला जल=विनाशी संसारसुखरूपी जल । करमकाल=सकाम कर्मरूपी काल । वोषद=औषधि, अमृत जडी, आत्मचिन्तन-रूप बूंटी । जरै तै=पचै, आत्मसात् हो ।

गूंगा कूं वोषद दई, 'षाइर' किया उषाल ॥
जन हरीदास ता जीव का, चूका नहीं जंजाल ॥२॥
वोषद जरै तो मन मरै, षाइर करै उषाल ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, अंति 'गिरासै' काल ॥३॥

॥ दया निरवैरता को अंग ॥

चींटी फीटी ह्वै रही, रती न मानै संक ॥
पगां तलि रौंदी मरै, माथै चढै कलंक ॥४॥

॥ साध महमा को अंग ॥

जन हरीदास आनंद इहै, मन अपणां परमोधि ॥
करड़ा पंथ कबीर का, सो हम लीया सोधि ॥१॥
पीठि दई संसार सूं, परमेश्वर सूं प्रीति ॥
जन हरीदास कबीर की, याह कछु उलटी रीति ॥२॥
उलटै पैंडे परम सुष, परम साध तहां जाहि ॥
हरीदास जन यूं कहै, निगुरा पहुंचै नांहि ॥३॥
अगनि न जालै जल नहिं बूडै, झड़ि झड़ि पडै जंजीर ॥
जन हरीदास गोबिंद भजै, निरभै मतै कबीर ॥४॥
मारि मारि काजी करै, कुंजर बंदै पांव ॥
जन हरीदास कबीर कूं, 'लगै' न ताती बाव ॥५॥

पाठभेद—षायर-२ ग्रासै-१ । लगी-१ ।

शब्दार्थ—उषाल=उल्टी, वमन । चूका= चुकता, निवृत्त हुआ । जंजाल= माया के बन्धन । फीटी=निर्लज्ज । निगुरा=गुरु विना, अकृतज्ञ । बंदै=वन्धे, वान्धे गये । ताती बाव= वासना तृष्णा की हवा ।

राषणहारा एक तूं, मांरणहारा कोड़ि ॥
जन हरीदास कबीर का, कोई मता सक्या नहिं मोडि ॥६॥

॥ करणा को अंग ॥

राति अंधारी सरप डर, सषी त सजन दूरि ॥
जन हरीदास हरि अगम है, करणां कीयाँ हजूरि ॥१॥

॥ कामी नर को अंग ॥

करम कडाही काम जल, मैं तैं लुकटि मांहि ॥
जन हरीदास जीव जलत है, जांणै कोई नांहि ॥१॥
रांम नाम न्यारा रह्या, 'नांणा' नारि साथि ॥
जा सुष की गति मति अगम, सो सुष नाया हाथि ॥२॥
साचा जोड़ा रामजी, दूजा जोड़ा झूठि ॥
दूजा जोड़ा विनस सी, काची देह करूठि ॥३॥
रांम रतन न्यारा रह्या, कौड़ी लीया मारि ॥
जन हरीदास नर नारियाँ, नरां बिलंबी नारि ॥४॥
डूंगर तै पसु उतरै, सारणि दौड़ा आइ ॥
जन हरीदास नारी मतै, मिलैस षोटा षाइ ॥५॥
तन मन दे सरबस लिया, भूषी भामणि षाइ ॥
जन हरीदास नारी मतै, मिलैस षोटा षाइ ॥६॥

पाठभेद— नैणा-१ ।

शब्दार्थ—मता=मत, विचार । मै तै लुकटि=मेरे-तेरे की भेदभावना-रूप लकडी । नांणा=धन, सम्पत्ति, मूल्य । विनससी=नष्ट होगा । करूंठि=कतई, निकम्मी । कौडी=धन, वैभव, माया । भामणि=स्त्री बनकर ।

ये प्यारेरामजी के जीवन-सम्बन्धी उद्धरण हैं। इनसे ग्राम, जाति, गृहस्थकार्य, संसार से वैराग्य का कारण, गोरषनाथजी से उपदेश, तीखी डूँगरी पर तप करना, पश्चात् परिभ्रमण करते हुए विविध क्षेत्रो मे विविध प्रकार के चमत्कारमय कार्यो को करते हुए अपनी अनुभूति से प्राप्त सफलतानुसार प्राणियों को उपदेश देकर अन्त मे डीडवाणे आकर ब्रह्मलीन हुए—यह सब स्पष्ट है। अवसान से सम्बन्धित फाल्गुन शुक्ला षष्ठी स्थान डीडवाणे का उल्लेख है, सम्वत् का उल्लेख नहीं है। इस तरह इन तीन निरजनी महात्माओ की प्राचीन कृतियो मे हरिरामदासजी व प्यारेरामजी ने उनके जीवन के परचई भाग का निरूपण किया। काल-सम्बन्धी स्थिति मे उनसे कोई जानकारी नही मिलती—केवल रघुनाथदासजी की परचई में काल का निरूपण है। उसमे गृहत्याग का काल तथा अवसान-काल का स्पष्ट उल्लेख है। इनसे आगे के परवर्त्ती लेखको ने अपनी कृतियो मे काल का निरूपण किया है। कृतियो का दिग्दर्शन इस रूप में है।

पूर्णदासजी की परचई—

बीसवी शताब्दी के लेखको मे नवलगढ निवासी स्वामी पूर्णदासजी का रचना-काल सम्वत् १६१० से चालीस तक का माना जा सकता है। जिस गुटके मे इनकी परचई लिखी हुई है उसका लेखन-काल सम्वत् १६४५ वैशाख सुदी ४ मंगलवार है। इससे सिद्ध है कि रचनाकाल इससे पहिले ही का होना चाहिए। अन्य परचई-लेखको की तरह इनमे भी हरिदासजी महाराज के यात्रा-काल मे जो चमत्कारी कार्य हुए उनका उसी तरह निरूपण किया है। पूर्णदासजी ने काल-सम्बन्धी उल्लेख किया है वह तथा जो नवीन कल्पना गुरु-सम्बन्धी की है—उन्ही प्रकरणों को उद्धृत करना संगत है :—

छप्पय—चौवदै सै चौहतरे, जन्म लियो हरिदास ॥
सांखल के घर अवतरे, छतरी वंश निवास ॥

छतरी वंश निवास, तेजमय मूरति राजे ॥
छतरी होय सो सूर, मात को दूध न लाजे ॥

मिलिया गोरषनाथ हरि, दीयो ज्ञान प्रकाश ॥
चौवदै सै के चोहतरे, जन्म लियो हरिदास ॥

हरिपुरुष हरि की कला, सांखल घर अवतार ॥
चोधरण का थण चूंगिया, सांवत के आकार ॥

तन मन दे सरवस दिया, भूषी भांमणि षाइ ॥
जन हरीदास नारि नरकि, बाँह पकडि ले जाइ ॥७॥

जोगणि ले जुई हुई, भोग करण सूँ भेद ॥
साहिब सूं पाछा फिरै, तहां कंध का छेद ॥८॥

जन हरीदास परनारियाँ, रोपै 'नजरि' गँवार ॥
गगन चढ्या धर मैं धसै, बूड़ा काली धार ॥९॥

जन हरीदास नारि संगति, साध करो मति कोइ ॥
नारी संगति संकर ठग्या, कुसल कहाँ तैं होइ ॥१०॥

जन हरीदास गोविंद भजौ, सुरति सहज धरि धारि ॥
नारी हरि भजि हरि मिलै, तो भी संग निवारि ॥११॥

मन उनमनि लागा रहै, नांही और उपाय ॥
जन हरीदास नारी संगति, भी कंध का 'घाव' ॥१२॥

हरि तैं सुरति उतार करि, पूठा बैसे आइ ॥
जन हरीदास याही कठिन, महा मँहीव्है षाइ ॥१३॥

जन हरीदासपर कांमणी, नैंण बांण भरि षाइ ॥
सतगुरु सबद संभाल करि, रालै बांण चुकाइ ॥१४॥

साध पारिष को अंग

जहाँ जल तहाँ ज्वाला नहीं, हरि तहाँ मैं तैं नांहि ॥
जन हरीदास केहरि कुरंग, एकै बनि न बसांहि ॥१॥

पाठभेद—निजरि-१। बाव-२।

शब्दार्थ—जुई=जुदी। रोपै=गाडे, लगावे। धर मे=धरा मे, नीचे, विनाशी भौतिक पदार्थो में लगे। कंध का=गर्दन का। महामही=अति महीन, परम सूक्ष्म। रालै=डालै, दूर करदे।

स्याम बरण दोन्यों दुरसि , एक अजब अनुराग ।।
जन हरीदास बोल्यां बिगति, कहाँ कोइल कहाँ काग ।।२।।
जन हरीदास उदबुद कथा , 'दोन्यों' ऊजल भाइ ।।
हंस अजब मोती चुगे , बुगला मछी षाइ ।।३।।
जहाँ बुगला तहाँ हंस अरंत , जन हरीदास दुष दोइ ।।
बा सांतरि सरभर लगै , चारै व्यौरा होइ ।।४।।
सीतल 'द्रिष्टि' चकोर की , चंद बसै ता मांहि ।।
जन हरीदाम ज्वाला चुगै , देषो दाझै नांह ।।५।।
उदरि समाइ 'स' चूंणि लै , रहै निरंतरि लागि ।।
जो कबहू सांचो करै , तो जालै जलती आगि ।।६।।
उदर समाइ स चूंणि लै , अंतरि रहै उदास ।।
जे कबहू सांचो करै , तो पांषा होइ 'बिणास' ।।७।।

।। साध संगति को अंग ।।

साध संगति 'निरमल' दसा , जे मनि होवै मैल ।।
जन हरीदास तिल तैल का , कैसा भया फुलेल ।।१।।
तिल फिरि षेल्या 'पहौप' सूँ , अरस परस रस रूप ।।
जन हरीदास संगति सरस, कैसा भया अनूप ।।२।।
जन हरीदास चंदन संगति , बसै स चंदन होइ ।।
'बांस' बास भेदै नहीं , सक्या न आपा षोइ ।।३।।

पाठभेद--दोन्यूं-३-४-५। दिसटि-२। सु-१। बिनास-५। नृमल-३-४-५। पुहुप-१। बासि-१।

शब्दार्थ--दुरसि=दिखाई दे, कुरूप। सांतरि=तैयारी, सामग्री। सरभर= अगवानी उचित सम्मान। चारै=खाने पर, भोजन करने पर। समाइस=समाये, आवश्यकतानुसार। चूणि लै=चुगाकरे, खाये। सांचो=संचय, संग्रह। निरमल दसा= शुद्ध अन्तःकरण। मैल-मलिनता, गदगी। पहौप=पुष्प। आपा षोइ=गर्व नष्ट कर।

बांस सदा ही 'वसत' है, चन्दन की जड़ मांहि ॥
जन हरीदास निरवास यूं, भीतर भेद्या नांहि ॥४॥
निस वासुर गोविंद भजै, कवहु विसरै नांहि ।
तिन की संगति कीजिये, ले जाइ बसती मांहि ॥५॥
जन हरीदास काची संगति, सारा फूटै मन ॥
जोति प्रकास न कर सकै, ज्यूं पांणी मांहि रतन ॥६॥
जब ही जल सूं काढिये, तब ही करै प्रकास ॥
जन हरीदास साची संगति, सोधि करै सो दास ॥७॥

॥ हेत प्रीति को अंग ॥

सूरिजवंसी कंवल का, जन हरीदास मत जोइ ॥
रवि विगस्यां विगसै भलां, 'अस्त' रहै मुष गोइ ॥१॥
जन हरीदास कमोदनी, 'इष्ट' एक विसवास ॥
ससि विगस्यां विगसै भलां, नहींतरि रहै उदास ॥२॥
जन हरीदास सुत हंस का, कलपि न करै अकाज ॥
भूषा रहै कै मोती चुगै, कुल अपने की लाज ॥३॥

॥ निंद्या को अंग ॥

षेत निंदाणां नीपजै, सिरटा मोटा होइ ॥
जन हरीदास निंद्या भली, जे करि जांणै कोइ ॥१॥

पाठभेद—वस्त-४। असत-२। इसट-२।

शब्दार्थ—भेद्या = प्रवेश किया। बसती मांहि = आध्यात्मिक लोक मे। सारा=पूरा, साबुत। फूटै=बिखरै, खंडित हो। सोधि करै=तलाश करके। रवि विगस्यां=सूर्य प्रकट होने पर। विगसै=खिलै, प्रफुल्लित हो। अस्त=छिपने पर। ससि=चन्द्रमा। कलपि=कलप कर, विचलित होकर। निंदाणा=निनान करने से, साफ करने से।

जन हरीदास कहिये कहा, मुगध न मानैं मूरि ।।
अगम अरक आकासि रथ, षिजि षिजि डारै धूरि ।।२।।
कै बाँवै कै दाहिणैं, कै ग्यांनहींण गत लार ।।
जन हरीदास गोविंद भजौ, 'ए' दह दिसि करै पुकार ।।३।।

भै को अंग

भै भुरकी उलटी पड़ी, वोषद लगै न काइ ।।
जन हरीदास भी भै भला, जे नष सिष रहे समाइ ।।१।।

कुसबद को अंग

कुटक बचन कोडि कसर, रुचि 'मति' राषो कोइ ।।
जन हरीदास यूं जांणिये, या काढ्यां ही सुष होइ ।।१।।

दुवध्या को अंग

आंब ईष किसमिस बिदांम, थोहरि रस नालेर ।।
जन हरीदास जल 'एक' है, कुछ कणूंके का फेर ।।१।।
प्राण एक कुणका करम, पाप पुनि विसतार ।।
'गोपि' बीज लै अणसरचा, अपणी अपणी धार ।।२।।

पाठभेद—ये-१। मत-२। येक-२-३। गोप्य-१-५।

शब्दार्थ—मुगध=मोहित, आसक्त। अरक=सूर्य। षिजिषिजि=क्रोधित होकर। ग्यानहीण=अज्ञानी, मूर्ख। गत लार=गये-बीते का संग। भै भुरकी उलटो पडी=भय की भुरकी उलटी पडी, विपरीत पडी बुरे कर्म पाप तथा काल का भय होना चाहिये था, वह नही होता। वोषद=दवाई, औषधि। कुटक वचन=कडुवा बोलना। कौडि=कितनी बडो। कसर=कमी, न्यूनता। कणूंके का=गुप्त बीज, प्रारब्धफल। अणसरचा अनुसार, मुताबिक।

कण होतासण होमिये, तब कड़व कसर मिटि जाइ ॥
जन हरीदास निरमल 'वसत', निरमल मांहि समाइ ॥३॥

करम कड़ी काठी जड़ी, बांण न लागै कोइ ॥
मूरिष नर हरि तैं विमुष, सदगति सुण्यां न कोइ ॥४॥

चितकपटी को अंग

जन हरीदास हरिजन मिलै, तब ही आनन्द होइ ॥
चितकपटी कोई मत मिलौ, जा कै अंतरि दोइ ॥१॥
मुष तैं मीठी दे मिले, चित मांही कछु और ॥
हरीदास जन यूं कहै, पहुंचेंगे किस ठौर ॥२॥
ध्यांना दरिया दोय है, साहिब और संसार ॥
तुम किस 'दरियाव' की माछली, हम सूं कहौ विचार ॥३॥
जग दरियाव में देह है, साधां सेती प्रीति ॥
हरि दरियाव कूं चलत है, इहै हमारी रीति ॥४॥

श्लोक

अदृष्टं निरक्षरं, वीजविवरजित तरवरं ॥
त्रिलोक तस्य छाया, स्वाद जाणंत ते बीतरागी ॥१॥

पाठभेद—वस्त-४-५। दरिया-१।

शब्दार्थ—कण=बीज। होतासण=हुताशन, अग्नि। कडवकरस=कटुरस। कर्म कडी काठी जडी=प्रारब्ध कर्मफल की कडी मजबूत लगी हुई है। ध्यांना=हे ध्यानदास (ध्यानदासजी महाराज हरिदासजी के शिष्य थे)। दरिया=समुद्र। साषी ३-४ ध्यानदासजी को उपदेश के रूप मे कही गई थी।

जास मुषि झलझलंत ज्वाला, चिंणगी खरिक बांइकं ॥
आपै आप जलंत रे मानवा, तस्य प्राणी जीवनं वृथा ॥२॥

अणचं भस्म ते समो बनचरं, मानि अमानि जोगेश्वरं ॥
उनमनी अवस्था सारग्राही, निरमलं मन अस्थिरं ॥३॥

ऊंचा अवास सुष सेज्या, नाना भोजनं जलं हवा ॥
'मद मस्त' कुंजर दरबारि जोधा, तऊं काल ग्रासंतरं रे मानवा॥४॥

स्तुति की साषी

अगम सुष तहां मिल रहे, जीत मोह मदन रिप कांम ॥
जहां लोक वेद की गम नहीं, अगम ठौड़ विसरांम ॥१॥

सुर नर गति जांणै नहीं, ब्रह्मा विष्न महेश ॥
जन हरिदास तहाँ रम रह्या, पार न पावै शेष ॥२॥

किरतम तज बर अमर बर, सतगुरु कै उपदेश ॥
जन हरीदास तहाँ मिलि रह्या, जहां संता किया परवेस ॥३॥

नग्र नाम बेगमपुरा, बेगम होइ बसांहि ॥
तहाँ कोई पहुँचे संत जन, दूजां की गम नांहि ॥४॥

जहां रैणि द्योस उतपति नहीं, चंद नहीं तहाँ भान ॥
जहाँ पावक पवन पांणी नहीं, तहां जन हरीदास का असथान ॥५॥

※ महाराज हरिदासजी की वांणी चितकपटी अंग के निरूपण के साथ समाप्त हो गई। आगे जो श्लोक दिये गये है तथा स्तुति फलस्तुति की साषियाँ महाराज हरीदासजी की कही हुई नही है।

फल स्तुति साषी

जन हरीदासजी कृत कियो, सुनि उधरै जिज्ञास ॥
जो या कूं हिरदै धरै, तिन की पुरवै आस ॥१॥

नर नारी कोऊ पढौ, पढ़ै सु उतरै पार ॥
हरीदास जन यूं कहै, रांम नाम तत सार ॥२॥

कलि मांही यो कलप तर, सवद्न मैं सिद्धांत ॥
या कू सुमरै रैंणि दिन, कबहू न होवे अंत ॥३॥

इति श्री स्वामी हरीदासजी को कृत संपूर्णम्

॥ महापुरुष योगसिद्ध महाराज हरीदासजी की वांणी सम्पूर्ण ॥

— हरि ॐ तत्सत् —

॥ उत्तरखण्ड ॥

निरंजनी सम्प्रदाय के अन्य रचनाकारों की रचना के कुछ अंश

॥ गुसांई तुलसीदासजी की संक्षिप्त जीवनी ॥

गुसांई तुलसीदासजी का जन्म किस स्थान और किस सम्वत् मे हुआ-इसका उचित आधार प्राप्त नही है। वैसे वे महाराज हरीदासजी के समसामयिक थे। अत. उनका जन्म सोलहवी शताब्दि मे तथा स्वर्गारोहण सतरहवी शताब्दि का माना जा सकता है। भाऊदासजी के मतानुसार ये महाराज हरिदासजी के शिष्य होने चाहिये तथा भक्तमालकार राघोदासजी के मत से ये स्वामी हरिदासजी के समसामयिक तथा द्वादश महन्त निरजनियो मे एक है। इनके विषय मे राघोदासजी ने लिखा है—

छन्द १—

सीतल नैन चवै विग वैन महामन जीत अतीत करारो।
माया को त्याग नहीं अनुराग भिक्षा कृत भोजन सांझ संवारो॥
ब्रह्म जिग्यासी अभ्यासी है, नाम को जोग जुगति सवै विधि सारो॥
राघो कहै करणी जित सोभित देषो हो दास तुरसी को अपारो॥

उक्त निरूपण से स्पष्ट है कि ये नाम-चिन्तन तथा योग-साधन मे प्रवीण थे। इनका अधिकांश आवास शायद शेरपुर मे था जैसा कि राघोदासजी ने द्वादश महन्त निरंजनियो के स्थानो के विषय मे लिखा है। "शेरपुर तुरसी जु" वाणी नीकी ल्याये है" स्थान निर्देश के साथ उत्तम वाणी निर्माण का भी संकेत है। निरंजनी सम्प्रदाय के सन्त रचनाकारों मे जो अब तक अवगत हुए है बृहद रचना मे दो का ही नाम सामने आयेगा, वे है महात्मा तुरसीदासजी व महात्मा सेवादासजी। महात्मा तुरसीदासजी की रचना मे साषी-ग्रन्थ-पद तथा श्लोक सम्मिलित है। प्रारंभ मे साषी भाग है। इनने अग स्थान पर प्रकरण शब्द का प्रयोग किया है। वाणियो के साषी भाग मे प्रायः गुरुदेव का अग सर्वप्रथम आता है। इनने अग के स्थान मे प्रकर्ण शब्द दिया है-गुरुदेव का प्रकर्ण, साध का प्रकरण, सुमरण का प्रकर्ण आदि। साषी भाग मे १७२ प्रकर्ण है। साषियो का जोड सवाचार हजार के करीब है। साषी के पश्चात् चार लघु ग्रन्थ है। १ ग्रन्थ चौ अक्षरी, २ ग्रन्थ करणी सार, ३ ग्रन्थ साध सुलक्षण, ४ ग्रन्थ तत्वगुण भेद—इनमे करीब सौ दोहे छन्द जितनी रचना है। पद भाग मे राग २९ उनतीस मे चार सौ इकसठ पद है। श्लोक १८ तथा एक शब्दी है।

इस तरह इनकी रचना का योग सात हजार से अधिक आठ हजार के करीब है। वाणी मे निर्गुण निरंजन की उपासना पर ही बल दिया गया है। भाषा मे ओज है, भाव स्पष्ट है, भावाभिव्यक्ति मे काठिन्य नही है। जैसे हरिदासजी महाराज ने प्रमुखतया गोरखनाथजी का अनुसरण किया है वैसे इनने कबीरजी का अनुसरण किया है। अन्य महात्माओं की वाणी की तरह ही इनकी वाणी का महत्व है। इनकी वाणी का विवेचन एक स्वतन्त्र विषय है। उसका यहाँ प्रसंग नहो है—सामान्यतः इनके जीवन का इतना ही उल्लेख साध्य है विस्तृत जीवन के ज्ञापक साधनों का अभाव है। आगे इनकी वाणी के कुछ अंश दिये जाते है, जिससे आप इनकी रचना के महत्व को समझ सकेंगे।

महाराज तुलसीदासजी की रचना

ब्रह्मनाम स्तुति—

ओम परमज्योति परकासि, परब्रह्म परापरं ॥
परानंद परमादिपुरुष, परमात्मा परमेश्वरं ॥१॥
परमतत्वं परमतेजं, परमशान्ते स्वरूपकं ॥
परमपद समांन सर्व सिधि, अजरो अमर अनूपकं ॥२॥
परम निर्गुण निराकार, निरक्षरो निराश्रयं ॥
निर्विकार निराधारः, निर्विग्रहो निरामयं ॥३॥
परम अरचित अखिल अकुल, अमल अगह अगोचरं ॥
परम अज अवि अनंत अवर्ण, अचिंत चित्त चिन्ताचरं ॥४॥
अखण्डो अस्थिरो अमूर्ति, अचल अमित अंतः परं ॥
अद्रष्टो अडिगो अडोलो, अधर अलिपत अविहरं ॥५॥
अतीतो अजितो अनीहो, अनीहो आरजनं ॥
असंगी अभंगी अरंगी, उदीतो अगंजनं ॥६॥
भूमि वायुन तुया तेजं, आकास यो निरन्द्रियं ॥
मात्रा न अन्तःकरण, चतुर्विंशति रहित अस्थूलं ॥७॥
बाल बृद्धो न तरुणो वा, आदि अन्त मध एकरसं ॥
अनुभूत अछेद अनिच्छित, अलषरूप अभेषसं ॥८॥

सांवत के आकार, पाल कर मोरा कीया ॥
जन कापड़ोद के धणी, देष कर खोले लीया ॥
बारह गाँव गढ़ वारणें, तेजपुंज तव सार ॥
हरि पुरुष हरि की कला, सांखल घर अवतार ॥

दोहा—हरिदास जी आविया, गलतै सन्तन धाम ॥
प्रयागदासजी गुरु मिल्या, करी प्रेम परणाम ॥१॥
प्रयागदास को गुरु किया, हरीदास महाराज ॥
इष्ट भाव के कारणें, करी धरम की याज ॥२॥
कंठी माला तिलक ही, प्रयागदासजी दीन्ह ॥
हर्षित हो हरिदासजी, भक्तिभाव से लीन्ह ॥३॥

छप्पय—पन्द्रह सै के पिचाणवे, कियो जोति में वास ।
फागण सुदि की छठ तिथि, परम जोति परकास ।
परम जोति परकास, शब्द सतगुरु का जाण्याँ ।
इष्ट निरंजन देव, ताहि में तत्व पिछाण्याँ ।
बीसा सो वपु राखिके, जन हरीदास निज दास ।
पन्द्रह सै के पिचाणवे, कियो जोति में वास ॥१॥

× × ×

पद— गाढा की छविरासी अद्भुत भाई, काऊ से वरणी न जाई ॥टेक॥
हरिपुरुष हरि आप निरंजन, जन यो धाम बसाई ॥
पूर्णदास कहे कर जोड्याँ, सन्त चरण शिर नाई ॥

पूर्णदासजी के उक्त उद्धरणों से हरिदासजी का जन्मकाल १४७४ और अवसान-काल १५९५ ठहरता है। जाति से शाखला क्षत्रिय, शूरवीर और सुन्दर। इनकी तेजस्विता देख कापडोद के ठाकुर ने, जिसके बारह गाव और थे, इनको गोद लिया। ये गुरु की खोज मे गलते गये। वहा इनने प्रयागदासजी को अपना गुरु किया। उनने दीक्षित कर इनको कंठी-मालातिलक प्रदान किया। इनने गुरु-उपदेश के अनुसार ईश्वर-चिन्तन किया, अन्य संसारी जनो को उपदेश दिया, धर्म की रक्षा की तथा एक सौ बीस वर्ष देह रखकर अन्त मे परमेश्वर की शरण प्राप्त की।

शिरोमणि सर्वंग सर्वगति, सुधासिन्धु सम्पूर्णं ॥
अजोनि आवेन जाइ, जन्म दुःख निर्मूलनं ॥९॥
कालदंडन कर्मखंडन, महिमंडन मनमलहरं ॥
विश्वंभर विश्वपूर्ण प्रभु, वाक् मनस् अगोचरं ॥१०॥
परम पावन पापहरता, परम कारज सारणं ॥
परमसुष कल्यानकारी, जन्म मृत्यु निवारणं ॥११॥
मोक्षपद अर्पण अभेता, अनंत भै भ्रम भंजनं ॥
नमो नमो गुरु शान्त स्वामी, तुरसी पद रज वन्दनं ॥१२॥

॥ इति ब्रह्मनाम स्तुति ॥

॥ गुर अस्तुति महिमा प्रकर्ण ॥

साषी—

गुरु दाता महामोक्ष का, गुरु मसतग का मौर ॥
तुरसी गुरु सम को नहीं, पूजि जगत में और ॥१॥
तुरसी गुरु कारन सब धर्म का, उपदेसन हारा ॥
गुरु ही तैं लंघि जाईए, महाभव जल पारा ॥२॥
चत्र षष्ठ नव अष्टदश, सबही मांही सोइ ॥
गुरु की महिमा अनंत है, बरनि सकै का कोइ ॥३॥
गुरु समद हुतें अधिक, गरवा गहरा सोइ ॥
तुरसी ता पटंतरवे कूं, वस्त न त्रिभुवन कोई ॥४॥
तुरसी सत्य द्वीप नव षंड भू, तीन लोक कै मांहि ॥
गुरु समान गुरु ही वहै, दूजा कोऊ नांहि ॥५॥
अकिंचन आतमाराम, गुण इन्द्रीजित सार ॥
तुरसी ऐसा सतगुरु, निरंजन निरविकार ॥६॥

चौपाई—

राग न रोस न कछू सरीर, आनन्दी ऊँडा मति धीर ॥
तुलसी कोमल सदा कृपाल, अधम अनाथनि करन निहाल ॥७॥

साषी—

तुरसी अधमनि उधरते, पतितन्न करत जु पार ॥
ताहि कठिनता को नहीं, गुरु समरथ अधिकार ॥८॥

॥ अस्तुति गुरुमहिमा प्रकर्ण समाप्त ॥

॥ अथ अति उत्तम सुमिरन विधान प्रकर्ण ॥

साषी—

तुरसी अति उत्तम भजन, का पै वरण्यों जाइ ॥
लष्यौहूज कापै परै, भाग होइ तो पाइ ॥१॥
तुरसी पूरब पुन तैं पाइये, कै पूरा गुरु होइ ॥
कै सतसंगति ध्यांन तें, और उपाय न कोइ ॥२॥
तुरसी रविवत रामको, अति ही नाँव निहकाम ॥
रोम रोम होयों करैं, सहजै सुमिरन रांम ॥३॥
तुरसी रोम रोम ररंकार धुनि, सहजैं चली जु जाइ ॥
ज्यूं कारज बिना कुंभार कौं, सहजै चाक फिराइ ॥४॥
तुरसी चाक फिरयौ करै, विन ही कारज सोइ ॥
यूं उर वाहर सन्त कै, परम जाप नित होइ ॥५॥
विन ही जपिया जाप होइ, अषंड उरमें ऐन ॥
तुरसी करमाला विनां, विन रसना विन वैन ॥६॥
रसना हिलै न कर चलै, डुलै न मनसा सोइ ॥
तुरसी मन ही होइ रह्या, सहज रांम रत होइ ॥७॥
कर माला फेरन की, षटपट मिट गई आंन ॥
तुरसी यह मन रह गया, अहल आतमा ध्यांन ॥८॥

तुरसी आतमध्यांन सूं , निमष न न्यारा होइ ॥
ज्यूं मूषक पारा पीया , व्है रह्या ऐसै सोइ ॥९॥

तुरसी महावज्र पापीन को , हो तो परदा वांम ॥
सो धूँवर ज्यूं फट गयो , चित रह गयो एक ही रांम ॥१०॥

तुरसी राम नाम ही रह गयो , या चित मांही सोइ ॥
ज्यूं हस्त पग जु दार कै , उतरन कबहु न होइ ॥११॥

कबहु न उतरई दार तैं , हस्ती को मोंई ॥
तुरसी यों चित रह गया , सुमिरन में सोई ॥१२॥

टारचा हूँधो ना टरैं , रहे कामादिक टारि ॥
तुलसी चित्र की वेल को , का करै वाजिब यारि ॥१३॥

ज्यूं गिरवर की छाया मैं , नेको कंपजु नांहि ॥
तुरसी यूं मन होइ रह्या , रांम नाम कै मांहि ॥१४॥

तुरसी ब्रह्मभावना यहै , नांम कहावै सोइ ॥
रसना करमाला विना , अषंड उर मैं होइ ॥१५॥

यह सुमिरन संतनि कह्या , सारभूत संजोइ ॥
भवसागर की जहाज इह , चढैसु लंघै सोइ ॥१६॥

॥ इति ॥

॥ अथ लै को प्रकर्ण ॥

चौपाई—

तुरसी लै मारग षगधारा , तहाँ कोऊन कर सकै संचारा॥
चन्दचकोर ज्यों चित ठहराइ , तव कहूं तहाँ अनसरयौ जाइ॥१॥

साषी—

तुरसी लै मारग षगधारवत , अति ही अगम जु सोइ ॥
पपील पुनि पंछी तहाँ , पहुँच सकै नहिं कोइ ॥२॥

तप तीरथ के धरम सूं, जप तप सूं जानि ॥
तुरसी ध्यानहू सूं अधिक, ल्यौ मारग परवांनि ॥३॥
जहाँ कोऊ जाय न सकै, पहुंचि न सकै संदेश ॥
तहाँ ब्रह्म ल्यौ लाइकै, संतनि कियो प्रवेश ॥४॥
तुरसी सन्त तहाँ गये, रांम नाम ल्यौ लाइ ॥
जहाँ रवि उदौ न कर सकै, ससिहु न सकै उगाइ ॥५॥
तुरसी संत तहां गये, जहाँ क्रोध न व्यापै कांम ॥
रांम नाम ल्यौ लाइ कै, कियो ब्रह्म विश्रांम ॥६॥
तुरसो संत तहाँ गये, जहाँ नहि पंच को पसार ॥
तीनों गुण करि ना सकै, छिन भर तहाँ संचार ॥७॥

चौपई—

तुलसी लय मारग है ऐसा, पंछी षोज मीन मग जैसा ॥
अति ही अलहि लह्यौ नहीं जाइ, के ते करि करि थके उपाइ ॥८॥

साखी—

रात द्यौस चिन्त्यौ करै, तन मांहि थिर होइ ॥
तुरसी आतमरांम कूं, लै मथ पावै सोइ ॥९॥
तुरसी लै समान कोऊ नहीं, उत्तम मारग आंन ॥
साधुजननि दिषाइयो, करि अतीत परवांन ॥१०॥

चौपई—

तुरसी लै अनंत ब्रह्मंडै छेदै, लागी होइ तो वजूहू भेदै ॥
उलंघि जाइ जगतगुरु जहाँ, आदि अंति लपटी रहै तहाँ ॥११॥

साषी—

तुरसी जहां जु ल्यो तहाँ एनहीं, संकलप विकलप दोइ ॥
निवांव नीर लै व्है रह्या, यह मन चिन्ता षोइ ॥१२॥
चिन्ता गई मन थिर भयो, तुरसी लै मधि पाइ ॥
सकल मनोरथ उठि गये, नांव रह्या ठहराइ ॥१३॥

का सुभ असुभ गिन्यो करै, सुनि सुनि संसै ग्यांन ॥
एक ही सुं लो लाइ रहु, ज्यौं चकोर ससि ध्यांन ॥१४॥
भावै दुःष हो देह कूँ, भावै सुष होइ आइ ॥
उभै सीम परि धारि कै, एक ही सूं ल्यौ लाइ ॥१५॥
ल्यौ लागी तब जांनिये, रह जाइ वचन अबोल ॥
तुरसीं मन को रथ थकै, इन्द्री होंहि अडोल ॥१६॥
जैसे चित्र की पूतरी, रह जाइ एक हीं ठौर ॥
तुरसी एसे ब्रह्म सूँ, होइ रहु चन्द चकोर ॥१७॥
तुरसी कहँ लों आषिये, या लै को उनमांन ॥
लगी होइ तो ना टरै, भल निकस जाहु जन प्रांन ॥१८॥
तुरसी प्रांन पयान तै, दुष अनन्त होइ सोइ ॥
तोऊ लै भंग होवे नहीं, जो लगी ब्रह्म सूँ होइ ॥१९॥

॥ इति ॥

॥ अथ चारण को प्रकर्ण ॥

साषी—

जिन बोलन की संक्या नहीं, काढै वचन कठोर ॥
तुरसी वे परतछि पसु, संत जनां के चोर ॥१॥
संत वचन मानै नहीं, अपनी कहै बनाइ ॥
तुरसी एसे पतित सूँ, बकि बकि मरै वलाइ ॥२॥
जे निरदावे हरि भजै, जग सूँ तिनका तोर ॥
तिनहूँ सूँ मांडे षुदी, अधम हरांमी षोर ॥३॥
आप उभै चष अंध्ररे, औरनि सूँ कहे कांन ॥
तुरसी एसे पसून सूँ, कछू न चालै पांन ॥४॥
प्रभात वचन जु ऊचरै, साँझ न लौ न निरवाहि ॥
मिथ्यावादी मनमुषी, एसे बहु जग मांहि ॥५॥

जिनकै वोलै बंद नहीं, वृथा तिनहू का भेष ॥
इन्द्री विकल जु होय रहे, तुरसी बिसर विवेक ॥६॥
काछ वाछ निकलंक विना, वैरागी भल और ॥
षट् दर्शन में होहु किन, तिहिं तीन लोक नहिं ठौर ॥७॥
काछ वाछ निकलंक बिना, वैरागी व्है कोय ॥
तुरसी कोटि धर्म गहो, वारू भींत जु सोय ॥८॥
जिन कै वोले बंद नहीं, साच न हिरदै मंझरि ॥
ते आयर यूं ही गये, जनम जूवा लै हारि ॥९॥
जिनकै वोले बंद नहीं, ते वादि कहावै सन्त ॥
सन्त नाम सो पाय है, जो काछ वाछ निकलंक ॥१०॥
जावत छूटै न जग तरंग, भगत हुवै का होय ॥
तुरसी भक्त अनन्य सो, जग रंग बैठा षोय ॥११॥
गिनेमने उचरे वचन, सो साधू सति सार ॥
तुरसी षाली कुंभ लौं, बकवो करै गंवार ॥१२॥
वकिवो करै जु रैनदिन, चुप गहि जपहि न नांम ॥
उन जड़ जीवन कै हिरदै, कहौ कहाँ है रांम ॥१३॥
मन राषत संसार कौ, तन व्है गयो वदीति ॥
धृग धृग सो स्वांमीपनौ, तामैं यह विपरीति ॥१४॥
नहिं समता लवलेस तहाँ, नहिं पल पर उपगार ॥
पाप पतिग्रह झेल कै, षरज्यूँ वहै जु भार ॥१५॥
परधन परत्रिय परकथा, यह उर भजन विचार ॥
धृग धृग सो स्वांमीपनो, तुरसी मांथै मार ॥१६॥
स्वांमीपनो तहाँ सुष नहीं, दुख दलिद्रता अनंत ॥
तुरसी उर वाहरि सदा, धन ही धन झंषंत ॥१७॥
उत कुल की क्रिया छुटी, इत न भजै भगवांन ॥
तुरसी ते अध विच रहे, ज्यूँ बघूर को पांन ॥१८॥

तुरसी माया भई न ब्रह्म भयो , विचही वितेइ आव ।।
ते नर यूँ ही पच गये , ज्यूँ दरिया विच नांव ।।१६।।
घर के भये न गगन के , रहे बीच ही भूल ।।
तुरसी दरसन पहरि कै , जे गये रांम गुन भूल ।।२०।।
तुरसी इत पुनि गुरु रिझये नहीं , उत रिझये नहीं रांम ।।
कुटम्ब त्यागि कुटली नरनि , अंध कमाये कांम ।।२१।।
वहाँ वन में ही परे , छूटि गयो उर आराम ।।
उन ही और आलंब नहीं , है आलंबन काम ।।२२।
दिवस उदम करितवो करे , वकते ही जु विहाय ।।
रैन रहे सठ सोय के , मन जहाँ तहाँ भरमाय ।।२३।।
अहनिस षोवे अंध यूँ , इन्द्रीहिन के चाय ।।
तुरसी तत वैराग नहिं , है कछु वड़ी वलाय ।।२४।।
तहाँ वूड वैराग की , जहाँ बढ्यौ वहु मान ।।
तुरसी सुहावे नहीं , संतनि को सुग्यांन ।।२५।।
विरागी होय विषै तन , फिरि जु पयाना देय ।।
सो षलु कंचन त्याग कै , कौडि कर मधि लेय ।।२६।।

चौपई—

भाव पढि गुनि वेद पुरांन , अछिर अछिर को समझो ग्यांन।।
जावत विषै न भोग विसारै , तावत परै नरक के द्वारै ।।२७।।
मति निन्दा कर मांनो कोय , हम कहें सतोतर साषी सोय ।।
मल पंडित मुरष होहू कोय , बिषया त्यागै मुक्ति जु होय ।।२८।।

साषी—

कासी वसौ क मगहि मल , जावत मुक्ति न जाय ।।
तुरसी तावत भर रही , कांम क्रोध सूँ काय ।।२६।।
काम क्रोध काया महीं , महा मलेछ वसांहि ।।
ताहि निवार सकै नहीं , ऊपरि मल मल न्हाहि ।।३०।।

।। इति ।।

साषी—

॥ अथ सील को प्रकर्ण ॥

जितेक वरने धर्म, वेदन मांही सोय ॥
तुरसी ता सबहीन में, सील समांन न कोय ॥१॥

सकल शास्त्र स्मृति कहै, पुनि कहै सन्त सुजान ॥
तुरसी सील सुधर्म समि, नहीं धर्म कोऊ आन ॥२॥

चौपाई—

सील धर्म सबही को टीको, सील विना सब लागै फीको ॥
तुरसी जो मुष सुन्दर होय, नासा विना न सोभत सोय ॥३॥

साषी—

नासा विना न सोभई, सुन्दर नर को मुष ॥
तुरसी एसे सील विन, सबही धर्म निरुष ॥४॥

एकादसी जु आदि दे, जावतेसु व्रत सार ॥
तुरसी ता सबहीन में, सील सुव्रत अधिकार ॥५॥

सील विना एकादसी, सील विना तप दांन ॥
तुरसी एसे जानहू, ज्यूं कुंडल विन कांन ॥६॥

एक अनेकन वांन सू, भजी भजी फिरै सोय ॥
तुरसी ता भौ भीत कूं भजि, अभै भया कहि कोय ॥७॥

तुरसी सत व्रत सील व्रत, दया व्रत प्रतिपालि ॥
सब व्रतन में सार ये, संतनि लिये नृवालि ॥८॥

चौपाई—

ता मै सील धर्म अधिकाई, दया सत्यता तास सहाई ॥
तुरसी जा उर उदए एह, सुफल रूप है तिनकी देह ॥९॥

साषी—

तुरसी सील सुधर्म की, महिमां वर्णं न जाई ॥
ताहि जप तप जग्यादि व्रत, रहे सकल सिर नाई ॥१०॥

जहाँ सील संतोष तहाँ, जहां संतोष तहाँ सुष ॥
तुरसी जहाँ सुष सुपन हू, देषिये न दुष मुष ॥११॥
दुष मुष नाहिंन देषिये, बढि रह्यौ धीरज ध्यांन ॥
तुरसी सील संतोष जहाँ, तहाँ तहाँ ए सहनान ॥१२॥

चौपाई—

तुरसी सील संतोष जु सोऊ, त्रिविध तिमिरहर दीपग दोऊ॥
जा उर उद्यत भए है आय, धनि धनि ता नर की काय ॥१३॥
अलप अन्न अलप ही जु पानी, अलप ही निद्रा अलप ही वांनी ॥
तुरसी एसी जुगति गहावे, सोई सुष भलै सील को पावे॥१४॥
तुरसी नैना नींवा राषै निच्त, त्रिया देष नहिं चलावै चित्त ॥
आदि अंत एसे जु रहावे, सोई सुष भलै सील को पावे ॥१५॥
तुरसी जितेक त्रिय देषियत जग मांहीं, लघु दीरघ मध जहाँ तहाँ ही ॥
माता वहन पुत्री जु जनावै, सो सुष भलै सील को पावे ॥१६॥

साषी—

पतिव्रत ताहू सूं अधिक, सदा सीलवंत नारि ॥
तुरसी वा भुगतै अलप सुष, वा सुष अछै मुरारि ॥१७॥
सिंघ हरौ गिर तैं परौ, भावै वहौ सिर लोह, ॥
ए जु त्रास भलो होइयो, पै सील भंग मत होहु ॥१८॥
अगनि दहौ नदियां वहौ, मल कुंजर मारौ ध्याइ ॥
एजो त्रास सहूँ प्रीति सो, पै सील गयो न सुहाइ ॥१९॥
सुष संमै धन जाहु सब, माया विसवा वीस ॥
तुरसी तन मन तव लगै, सील रहो सद सीस ॥२०॥
सील गये सब जात है, ग्यांन ध्यांन वैराग ॥
सील रहे सब रहत है, तुरसी मसतक भाग ॥२१॥

॥ इति ॥

॥ अथ सवद को प्रकर्ण ॥

साषी—

महा कुसवद के वांण सूँ, कसकै नहीं लगार ॥
तुरसीदास वा दास की, मैं वलि वारंवार ॥१॥
कुसवद सुनि कानन में, कसकै नाहिन सोय ॥
तुरसी ऐसा सन्त जन, कलि मैं विरला कोय ॥२॥
तुरसी कुसवद का करै, जो वसहू हो दास ॥
परै समद विच बीजुरी, कहा जरावै तास ॥३॥
साधु जन संसार , ज्यूं जल मांही चन्द ॥
काल जाल में नावई, कहा करै कोऊ मन्द ॥४॥
कोटिक षल कहि कहि कुवक, सांधि सांधि मारौ वांन ॥
जदपि अगनि उसन है, पानी सूंका पान ॥५॥
मनसा वाचा कर्मणा, संतन की गति एह ॥
तुरसी सवद कुसवद सुनि, उझकि न दिखवे छेह ॥६॥
काम दहै अन तन वहै, कुसवद सहै शरीर ॥
तुरसी गुरु मति गहि रहै, सो पावे सुष सीर ॥७॥
तुरसी सुष की सीर ए, जहाँ क्रोध नहिं लेस ॥
स्वप्न तरहू न व्यापई, धन छमाविह देस ॥८॥
तुरसी छिति की सहनता, पुनि परमारथ सोइ ॥
उभै अंग जिन दिढ गहै, तौ गंजि न सकै कोइ ॥९॥
कहा करै कोऊ आय कै, कांमी क्रोधी जीव ॥
झलकाये झलकै नहीं, सन्त सदा रत सींव ॥१०॥
अपने सन्त स्वभाव कूँ, तऊ न छाडै सन्त ॥
जे कोऊ करवतहू जु गहि, मस्तग कूं विहरंत ॥११॥

चौपाई—

तुरसी धरती हुवा रहै, घूंद सवन की आपन सहै ॥
आपन तऊ न दुषवै सोइ , जो करवत तन विहरै कोइ ॥१२॥

पूर्णदासजी व्यक्त करते है कि हरिदासजी ने वैष्णव सन्त प्रयागदासजी से दीक्षा ग्रहण की तथा कंठीमाला-यज्ञोपवीत आदि प्राप्त किये। आपका यह लिखना केवल कल्पना से सम्बन्धित है। उनने यह कल्पना शायद इस कारण मे की हो कि उनके समय मे अधिकांश निरजनी महात्मा मन्दिर-पूजक तथा सगुणोपासक हो गये थे। रहन-सहन मे भी वे वैष्णवो का अनुगमन करने लग गये थे। प्रायः ही महात्मा श्रीतिलक, यज्ञोपवीत धारण करते थे। उपासना भी देवालयो के कारण सगुण हो गई थी। इस स्वरूप को देख कविवृत्ति पूर्णदासजी ने सोचा होगा कि इनका गुरु-सम्बन्ध किन्ही योग्य वैष्णव-महात्मा से जोड देना उचित है। सोलहवी शताब्दी मे महात्मा पयहारी कृष्णदासजी गलते मे पधारे थे। उनके शिष्य अग्रदासजी हुए, जिनका काल सत्रहवी शताब्दी का मध्यभाग है। अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी थे, जिनका कार्यकाल सत्रहवी शताब्दी का अन्तिम चरण था। इन्ही प्रयागदासजी से हरिदासजी ने गुरुदीक्षा ग्रहण की–यह पूर्णदासजी ने उल्लेख किया है। साथ ही उनने हरिदासजी का कार्यकाल संवत् १४७५ से १५६५ माना है। हरिदासजी ने चालीस-पैंतालीस वर्ष की आयु मे दीक्षा ग्रहण की थी––ऐसा सभी पक्षो का मानना है। इस विचार से देखे तो यह समय १५१५ से १५२५ के बीच का आता है। उस समय तो महात्मा पयहारी कृष्णदासजी का ही पदार्पण गलते मे न हुआ हो। प्रयाग-दासजी पयहारी कृष्णदासजी के शिष्य अग्रदासजी के शिष्य थे। जिनका कार्यकाल सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से पूर्व नही आता, इस स्थिति मे प्रयागदासजी से हरिदासजी के दीक्षा लेने की कैसे संगति बैठ सकती है। स्वय पूर्णदासजी के कालो-ल्लेख से ही उनकी कल्पना असंगत हो जाती है।

प्रयागदासजी से दीक्षा लेने के विपरीत दूसरा सबल प्रमाण है स्वय महात्मा हरिदासजी। उनने जिस वाणी की रचना की है उसमे पद-पद पर निर्गुण उपासना का समर्थन है। उनकी एक यही साखी प्रमाण मे पर्याप्त है। वे कहते है कि —

पाहन को कर्त्ता कहे, ताका काला मुँह ॥
हरिदास जन यूँ कहे, मोहे साहब की सुँह ॥१॥
ज्यूँ मूरति त्यूँ ही शिला, राम बसै सब माँहि ॥
जन हरीदास पूरण ब्रह्म, घाटि वाधि कहुं नांहिं ॥२॥
नहिं देवल सूँ वैरता, नहिं देवल सूँ प्रीति ॥
किरतम तजि गोविंद भजै, यह साधां की रीति ॥३॥

ये साषी भाग "मर्म-विध्वंस अङ्ग" की तीन साषी है। उससे आगे "भेष" का अङ्ग है उससे स्पष्ट है कि वे मूर्ति-पूजा तथा भेष-विशेष धारण करने के परम

साषी—

अगनि हू तै अति उष्ण, अज्ञांनी कौ वैन ॥
तुरसी ताहि सहार लै, सोई साधू ऐन ॥१३॥
मैंण रूप जाको हिदो, पांनी रूपी प्रांण ॥
तुरसी कुसब सो सहै, दूजो अगनि समांन ॥१४॥
तुरसी कुसबद की अगनि, सुसबद नीर सिराय ॥
महा सुसीतल होय रहे, सन्त नाम सो पाय ॥१५॥

॥ इति ॥

॥ अथ ग्रन्थ चौअखरी ॥

चौपई—

गुरु परसाद अकल षरवांणी, वैसनु तँणी जु चाल वषांणी ॥
जो यह अखर करै विचारा, जो चिन्है सो उतरै पारा ॥१॥
प्रथमे विसरै माया मोह, विसरै प्रीति वैरता दोह ॥
विसरै ममता मान बडाई, विसरै हरि बिन बुरी भलाइ ॥२॥
विसरै आपा अरु अभिमांन, विसरै बुदी गरब गुमान ॥
विसरै परपंच बादविवा, विसरै षट्रस इन्द्री स्वादं ॥३॥
विसरै कांम क्रोध का संग, विसरै कुबुधि विषै का रंग ॥
विसरै अति गति निद्रा भूष, विसरै पाप पुण्य सुख दुःख ॥४॥
विसरै पाषंड कपट स्वभाव, विसरै रूष रंग रस चाव ॥
विसरै हसन वकन की वांणी, विसरै कलह कल्पना कांणी ॥५॥

दोहा—

विचरै सतसंगति मही, कीरति करै अघाय ॥
सोई परम निज वेसनूँ, जो पति को विसर न जाय ॥६॥

चौपई—

साहे रांम नाम तत सार, साहे समता ग्यांन विचार ॥
साहे बुद्धि विवेक परकास, साहे भाव भगति विसवास ॥७॥

साहे जत सत सील संतोष, साहे दया धर्म तजि दोष ॥
साहे निज करनी आधार, साहे नाँव निरंजन सार ॥८॥
साहे दीन गरीबी ग्यांन, साहे दिढ कर धीरज ध्यांन ॥
साहे निरति सुरति मन पवन, साहे निज निर्मल निज चरन ॥९॥
साहे परमारथ निज स्वारथ, साहे अरथ पेलि सब अनरथ ॥
साहे साँच झूठ छिटकाय, साहे प्रेम प्रीति निज ध्याय ॥१०॥

दोहा—

साहे निज तत निर्मला, साहे ए मत सार ॥
सोई परम निज वेसनूँ, कण ले कूकस डार ॥११॥

चौपई—

न करै तीरथ वरत की आसा, न करै जप तप आन उपासा ॥
न करै पाथर पूजा सेवा, न करै नाना विधि नषेवा ॥१२॥
न करै विभिचारी का संग, न करै कामनि कनक कुसंग ॥
न करै द्रव्यविणज व्यापार, न करै सिष साषा परिवार ॥१३॥
न करै आसन घर घर वारं, न करै पढ गुन बहु विस्तारं ॥
न करै परवरती सूं नेह, सो भगता में पाप न षेह ॥१४॥
न करै परनिंद्या उपहासी, न करै प्रीति बिना अविनासी ॥
न करै किस सू वैर न भाव, न करै हरि विन आंन उपाव॥१५॥

दोहा—

प्रीति करै निज देव सूँ, मन का भरम नसाय ॥
सोई परम निज वेसनूँ, जन तुरसी वलि जाय ॥१६॥

चौपई—

आरति सूँ हरि नाँव उचारे, आरति सूं निज रूप निहारे ॥
आरति सूँ अनभै रस पीवे, आरति सूं मरि बहुरि न जीवे॥१७॥
आरति सूँ निर्मल जस गावे, आरति सूं निज तत दरसावे ॥
आरति सूँ चीन्ह पद सोइ, जा चिन्हे फिरि जन्म न होइ ॥१८॥

आरति सूँ पति सूँ मन लावे , आदि मध्य अंत रामहि गावे ।।
आरति सूँ पेषै पति सुन्दर , जाकै दरस मिटै दुष दुंदर ।।१६।।

दोहा—

आरति सूँ सेवा करै , तन मन आतम लाइ ।।
सोइ परम निज वेसनूँ , निर्मल मांहि समाय ।।२०।।

एसी करनी जो करै , सो निज हरि की देह ।।
तुरसी जां मन मरन का , भांजै सकल सनेह ।।२१।।

।। इति ।।

।। अथ करणीसार जोगग्रन्थ ।।

दुरलभ जोग संग्राम कठिन षांडे की धारं ।।
थाके संकर सेस और जीव कहा विचारं ।।१।।

सुर नर मुनि जन पीर रहे भव जल उरवारं ।।
गुर गम ग्यांन विचार गहै विरला जन पारं ।।२।।

समदिष्टि समभाय रहै निरवैर निरासं ।।
सो जन उतरै पार काल नहि करै विनासं ।।३।।

जाकै शत्रुन मित्र नहीं संगि दूजा कोइ ।।
सदा रहै निरवंध साध जन कहिए सोइ ।।४।।

नहीं किसी सूँ नेह देह का सुष नहिं चाहे ।।
सीत उसन सिर सहै आदि अंत एसी निरबाहे ।।५।।

घर वन दोऊं रीति रचै नहि इन सूँ माई ।।
कनक कांमनी त्यागि रहे उनमन ल्यौ लाई ।।६।।

एसी रहनी रहे तास कूँ लेहू पहचांनी ।।
कहै साच रहे काच सोई परहरिए प्रांनी ।।७।।

सबद सरोतर कहै मिथ्या नहिं कबहू बोले ॥
षोजे पद निरवांन काहे को बन बन डोले ॥८॥
आसा त्रिसना छाडि तजै सब जग व्यौहारं ॥
रहे निरंतर लागि सोई जोगी तत सारं ॥९॥
काया को बस करै मोह तजि मनसा मारै ॥
एसा अवधू जान काल मैं दूरि निवारै ॥१०॥
निरधन रहे उदास नहीं संगि दूजा भावै ॥
ए कलमल अबीह सोई अवधूत कहावै ॥११॥
नहीं आगली चाह पीछै संसा नहिं कोई ॥
रमै सीगी परवानि देवगति कहिये सोई ॥१२॥
निंदहु वंदहु कोई नहीं किस ही सू वैर न भावं ॥
सब देषे समभाय जिसा रंक तैसा रावं ॥१३॥
आसन अस्थिर करै हाँडै नहिं घर घर द्वारं ॥
अजगर की गति गहैं पावै अलप अहारं ॥१४॥
चंचल मेल्है मारि उलटि अमृत रस पीवै ॥
एसा अवधू जांनि मरै नहिं जुग जुग जीवै ॥१५॥
लालच लोभ निवारि आतमा अस्थल आवै ॥
तहाँ बाजै अनहद तूर नूर का दरसन पावै ॥१६॥
कूवा वाय निवाण करै नहि वाडी वागं ॥
आसन मढी मसान तजै सब वाद विवादं ॥१७॥
तंत मंत औषधि जडी बूंटी नहि जांणै ॥
अविगति बिन आराध झूठ सबही कर मांनै ॥१८॥
परिहरि वाद विवाद तजै सबहिन का साथं ॥
चकमक ज्वाला झारि करै नहिं जीव का घातं ॥१९॥
स्वाद सकल संग तजै षाटा मीठा अरु षारा ॥
इन्द्री भोग न देय सोई जोगी मन सारा ॥२०॥

इडा पिंगला फेरि पछिम को उलटा ध्यावैं ॥
भॅवर गुफा कै घाट पीवै अमृत सच पावै ॥२१॥
अमृत पीवे अघाइ तपति सब तनकी जाइ ॥
थकित होइ ता मांहि जास कै बापन माइ ॥२२॥
परिहरि पांच पचीस दोय तजि एक पिछानें ॥
सतगुरु कै परसाद इसी गति बिरला जानें ॥२३॥
तजै दुःख अरु सुष गगन में आसन लावै ॥
तहां देषै निज नूर मगन व्है मांहि समावै ॥२४॥
यह निज ग्यांन विचारि कै उनमन रहै समाय ॥
तुरसीदास अंतर नहिं भगति होय हरि आय ॥२५॥

॥ इति ॥

॥ साध सुलछन जोगग्रन्थ ॥

साधु जन संसार में रमै सुभाइ सुभाइ ॥
काहू कै रंगि ना मिलै अपनै रंगि रहाइ ॥१॥
मुष वांनी सुसबद चवै कुसबद कहै न काहि ॥
सील सबूरी साह करि चलै एक हीं माहि ॥२॥
निरपष निरदावै रहे बरतै सदा विचार ॥
काम क्रोध अहंकार का संग न करै लगार ॥३॥
दया मया हिरदै रहै सदा सुमति सुमेल ॥
हरदम हरि का नाँव ले मन अरु मनसा भेल ॥४॥
परनिंदा भावै नहीं परपंच पलन सुहाइ ॥
पर आतम सूँ प्रीति कर परचै विलंबै ध्याय ॥५॥
विष इम्रत भंजन यही भिन्न भिन्न करि लेय ॥
विष त्यागै अमृत गहै एसा काज करेय ॥६॥

अलप अहारी अलपतुय अलपहि निद्रा नेह ॥
अलप रमनि रमै जुगति सूँ अलप ही सबद करेह ॥७॥
आदू मारग आदि मत आदू गहै बिचार ॥
आदि अन्तर रटिबो करै निराकार निज सार ॥८॥
करम तजै कर्ता भजै करै न जग की कांनि ॥
काया नगरी षोज कै करता लेहु पिछांनि ॥९॥
षिरै षपै सो ना भजे अविनासी सूँ नेह ॥
देह तथा सुष त्यागि कै होय रहे सम षेह ॥१०॥
होय रहै सम षेह लौं तन मन आपा जारि ॥
आरति सूँ आतम महीं राम रमै इक तारि ॥११॥
मुख जु आंन उचरै नहीं परपंच सुनैन कान ॥
उभै लोपना उलटि कै धुनि में राषै ध्यांन ॥१२॥
को निंदै वंदौ कोउ करौ न आदर भाव ॥
कहुवाँ चित्त न लागई हरि भजवे को चाव ॥१३॥
सुष दिस कबहून पग धरै दुख देषन मुरझाय ॥
दुष सुष द्वै समान करि समता सम निरताइ ॥१४॥
सम जु लोष्ट सम कंचन सम जु मांन अपमांन ॥
सीत उष्ण सम करि गिनै सम चौरासी जांन ॥१५॥
सम जु धूप सम छाँहरी सम पानी सम पाल ॥
सम सेत फटक मणि मोतिया सम कंकर सम लाल ॥१६॥
सम मन पवना तन मही निरति सुरति सामान ॥
नादविंद सम कर भजै पूरन परम निधान ॥१७॥
परापरी सूँ रच रह्या साह सु लछन एह ॥
तुरसी एसा सन्त जन प्रतछ प्रभु की देह ॥१८॥
॥ इति ॥

राग सोरठि—

धनि धनि गुरुदेव हमारा हो ?

जिनहु कृपा करि काढ लिये हैं, वूडत वहि संसारा हो ।।टेक।।
अनेक जन्म की अरज निवारी, सवद दिया तत सारा हो ।।
नाँव जहाज चढाय जुगति सूँ, षेयत तारे पारा हो ।।१।।
गुप्त वस्तु प्रगट दिषलाइ, प्रगट किया प्रहारा हो ।।
अव तन मन फिर भयेज पावन, परसि परसि पिव प्यारा हो ।।२।।
अविचल वर को वांह गहाई, दैके वहुविधि भारा हो ।।
जन तुरसी पूरण सुष पायो, सतगुरु कै उपगारा हो ।।३।।

२ रामराय भेष अनेक बनाया, तुम सा साहिब कवहू न गाया ।।टेक।।
माया कै मदि यहु मन मातौ, दुवध्या बहुत उठाई ।।
निराकार निरलेप निरंजन, भजे नहीं रघुराई ।।१।।
इह मनवा अपराधी कांमी, चेतै नहीं गवाँरा ।।
राम सुरति कवहु नहिं आवै, औरें करे पसारा ।।२।।
तुम विन कौन उवारे जन कूँ, तुम मेरे प्रांण अधारा ।।
तुरसीदास कहै जन तेरा, मेटौ सकल विकारा ।।३।।

३ हरि विन भूले वहुत अग्यांनी, अविगत की गति विरला जांनी ।टेक।
जोगी जंगम अरु संन्यासी, पषा पषी सूं राता ।।
निरपष होइ राम नहिं जान्या, काम क्रोध मद माता ।।१।।
सुषसागर अविनासी राजा, नहिं तस वार न पारं ।।
तासू रचिन सक्या नर भूंदू, विषय रींझ भये छारं ।।२।।
तजे विकार मोह मद मछर, हरिपद दिढ कर साहे ।।
रहे समाय मगन होय मांही, आंन दिसा नहिं चाहे ।।३।।
सुगह गहै लहै सुष सोइ, पद महि जाय समावे ।।
जन तुरसी वोह साध सिरोमणि, बहुरिन भौजल आवै ।।४।।

४ सूरा सोई साध कहावे, नित सांई के मन भावै रे ॥टेक॥
ग्यान षडग ले मन कूँ मारै, पांचो पिसन निवारे रै ॥
सीस विहूना जुरै काल सूँ, चौडे षेत बुहारे रै ॥१॥
पाछा पाँवन देय पलक भर, सनमुष होय संभारे रै ॥
गुरु परसाद मेवासा तोरे, एसा कारज सारे रै ॥२॥
तन मन सीस स्वामी को सौंपे, हरि भज जन्म सुधारे रै ॥
जन तुरसी सोई गुरु मेरा, आप तिरे मोहि तारे रै ॥३॥

५ मन रे आतमरत होय रहिए ?

आदि अन्त मध मनसा वाचा, यहै जोग दिढि गहिए ॥टेक॥
नाना कथा निगम मत नाना, तहाँ वहक नहिं वहिए ॥
निहचौ परचौ पकरि नाव कौ, दुरमति दोष यूं दहिए ॥१॥
कोटिक ग्यांन ध्यान मत कोटिक, कोटिक मारग कहिए ॥
षोजत वूझत सुनत सुनावत, परमति पार न लहिए ॥२॥
केऊ आसतिक केऊ नासतिक, केऊ जनम केऊ नहिए ॥
एसे या झकझोल मांहि पर, काहे कूँ रोग वढइए ॥३॥
राग दोष विसराम विकल बुधि, भ्रम लै धार वहहीए ॥
जन तुरसी उर मै आरंभ करि, परमातम पद गहिए ॥४॥

राग आसावरी

६ सौई संत सतगुर का चेला, पूरव तजि पछम करे मेला ॥टेक॥
नौ सै नदी कूप में आनै, वाहर सोलह सम कर जानै ॥
दछिन तज उत्तर करै वासा, तव पछिम सूर करै परकासा ॥१॥
गंगा उलटि मेर कूँ ल्यावै, धरति उलटि आकास समावै ॥
अव तुरसी या पदहि विचारै, आप तिरैसो और हि तारै ॥२॥

७ भाई रे सो सतगुर की जानै ,
मन वच कर्म अपने उर अंतरि , अलपहि अहं न आनै ।।टेक।।
मान वडाई धरै उठाई , दीन होय दिल मांही ।।
हरष हरष हरि का गुन गावै , पलहु विसरै नांही ।।१।।
जासुष में यहु जग लपटांना , ताहि देष नहिं भूलै ।।
नऊँ नाला फेर पछम कूँ , त्रिवेणी संगि भूलै ।।२।।
तन मन आला जीत जुगति सूँ , गहै सिध सरनाई ।।
जन तुरसी पूरण सुष पावे , जन्म मरन मिटि जाई ।।३।।

८ सतगुर एसा भेद वतावे , जाका भाग वडा सोई पावे ।।टेक।।
वारह मास पलटि षट भाई , अनरुत के घर रहो समाई ।।
पछिम कँवल में करि लेहु वासा , तहाँ प्रगटै जोति होय प्रकाशा ।।१।।
तहाँ अनाहद वाजहिं वाजा , हरि कै नाम मगन मन राजा ।।
जन तुरसी ऐसी गति पाई , सतगुर आप दइ समझाई ।।२।।

९ एसा कहिये नाँव तुम्हारा , सुमरत कटै जु कोटि विकारा ।।टेक।।
राई मान वसंदर एता , जारै काठ भसम करै केता ।।
जैसे प्रगट सूर तम जाई , नांव लेत अघजाइ विलाइ ।।१।।
तुरसीदास विलंबन कीजे , केवल रांम नाम जप लीजे ।।२।।

१० हरि विमुषन का संग न कीजै , तन मन सौंप राम जप लीजै ।।टेक।।
साच भूठ कूँ सम कर ध्यावै , आपन भूला और भुलावै ।।
इन्द्रिन स्वारथ पैले साच , माने नहीं साध की वाच ।।१।।
दया दीनता ग्यांनन ध्यांन , निरभै होय भुगतै विषयान ।।
तुरसी इनका संग निवारि , साचा साहिब लेहु विचारि ।।२।।

११ विषया नदी लंघै सोई ग्यांनी , नेकन परसै ताको पानी ।।टेक।।
रूपधार में नैन न देई , श्रवणहु अपने वस करि लेई ।।
नासा रसना तुक रस त्यागै , कबहुन फेर धरे तहाँ पागै ।।१।।

ये पंचो रस विरसजु जानैं, अतीत ही मिथ्या करि मानैं ।।
मिथ्या ज्ञान मिटा है रागा, कछून राषै तांतू तागा ।।२।।
एसौ यहु वैराग उर धरई, ता जिहाज आरोहन करई ।।
करि आरोहन उतरै पारा, गुरु षेवट समरथ दातारा ।।३।।
विन वैराग विवेक विनाही, किनहू पारंगत लही जु नांही ।।
जिन पायो यहु परम विचारा, भले गये तुरसी वेहि पारा ।।४।।

राग रामकली

१२ संतो है कोऊ एसा ग्यांनी,
तन मन जीत भरम सव पेलै, नांव जपै निरवांनी ।।टेक।।
काल काम का मुंहडा मोडे, क्रोध तनां सिर भानैं ।।
लोभ मोह दोऊ दलपरहरि, सव घट रांम ही जानैं ।।१।।
आसा त्रिसना तजै कल्पना, वुरी भली सव त्यागै ।।
रहै अडोल चलै निसवासर, सोवे नही सदा नित जागे ।।२।।
सत रज तम तीनूं गुण परिहरि, चौथा चित वित लावै ।।
कहै तुरसी पूरण पद पेषै, सुष महिं जाइ समावै ।।३।।

१३ सो जोगी जो या मनकूँ मारै, मनकूँ मार मनोरथ जारै ।।टेक।।
ग्यांन षडग संवाहि अवधू, पांचो पिसन निवारे रै ।।
निरभै होय निसंक निसदिन, निरमल नांव उचारे रै ।।१।।
सिव नगरी में आसण धारे, उलटि अगम विचारे रै ।।
त्रिवेणी तट लावै ताली, परम जोति निहारे रै ।।२।।
काम कलपना निकट न आवै, गलत होय गुन गावे रै ।।
जन तुरसी एसा जन जोगी, परम पदारथ पावे रै ।।३।।

राग गोडी

१४ एसा है सोई अवधू जांनी,
ओरे अवधू वाद ही कहावत, वोले वेद जु वांनी ।।टेक।।

विरोधी थे। यदि वे वस्तुत. ही वैष्णव-सन्त प्रयागदासजी मे ही दीक्षित होते तथा उनके उपदेशानुसार साधना करते तो वे निर्गु ण उपासना का इतना प्रबल समर्थन न कर सगुणोपासना का समर्थन करते। सगुणोपासना का खंडन तो कदापि नही करते। उपर्यु क्त दोनो सबल प्रमाणो के पश्चात् पूर्णदासजी की परचई का यह भाग संगत नही है–यह स्पष्ट है। पूर्णदासजी से भिन्न ग्रन्य किन्ही जीवनी-लेखको ने इनको वैष्णव-सम्प्रदाय से दीक्षित नही लिखा है। ग्रत. हम पूर्णदासजी के इस उद्धरण का यही ग्रर्थ मानते है कि उनने न तो ऐतिहासिक-तथ्य तथा न काल-सम्बन्ध व न स्वयं दीक्षित महाराज हरिदासजी के भावो का ध्यान रखा, केवल प्रचलित स्थिति सामने ग्राई उसी को इस रूप मे सम्बन्धित कर देने का प्रयास किया जिसकी संगति का कोई ग्राधार नही है। ग्रतः यह पक्ष केवल काल्पनिक-मात्र है।

"मंत्रराज-प्रभाकर" ले०–रामबगसजी महता, रचना-काल संवत् १९४४-४५

महता रामबगसजी ने "मंत्र-राज प्रभाकर" नामक ग्रन्थ की रचना की, जिसके दो भाग है। ग्रन्थ का विषय है—"राम नाम मंत्र" सर्वोपरि है। ग्रन्थ-लेखक के उपदेष्टा गुरु ग्रर्जु नदासजी निरजनी महात्मा थे। ग्रतः उनने ग्रपने ग्रन्थ का ग्रन्तिम १२वा उल्लास निरंजनी-सम्प्रदाय-प्रवर्त्त क महात्मा हरिपुरुषजी (हरिदासजी) के सम्बन्ध का लिखा। उनके लिखने का ग्राधार सप्रदाय की परम्परा व जनश्रु ति है। उनने लिखा है :—

छन्द पद्धरि–श्री द्यालु नाम हरिपुरुष जान, प्रगटे सुडीडवाणे महान।
राम कला ग्रवतार ग्र ंस, धन्य मातु पितु क्षत्री वंश।
कापड़ोद निज जन्मभूम, भये प्रगट सु सांखल कौम।
चवदा शत संवत् सप्त चार, प्रगटे सुदेश मुरधर मझार।
कर रहे खड्ग बल खोसलूट, नहिं शंका लेश रह्यो राव रूठ।
कर्मयोग एक दिन ग्रजान, मिले ताहि गोरख महान।
पुनि राम मंत्र उपदेश कीन, जप करत भजनबल ब्रह्म चीन।

× × ×

साखी–ऊँचो डूँगर विषमता, जल को नाहिं निवास।
हरिदास हरिमिलन को, किया शिखर पर वास।
एकादश मिल हरिदास, जिन परम जोति में कियो वास।

× × ×

आपा मांही आपा जानै , ज्यूं रवि चन्दा पानी ॥
निवाव नीर लोरहै तहाँ थिर होइ , प्रीति ब्रह्मसूँ वानी ॥१॥
वोहू योही यहु है पुनि वोही , तामैं संसै नांही ॥
जो जुगति सूँ उलटि पहिचानें , देह जगत सूँ कानी ॥२॥
गहि गुरुग्यांन पंच कूं भूने , छठा कूँ उर आनी ॥
सातई जु वुधि सम कर राषै , आदि अन्त इक तानी ॥३॥
तनही में त्रिभवनपति पेषै , लेइ तत पहिचानी ॥
जन तुरसीं एसा जन जोगी , वहुरिन जन मैं आनी ॥४॥

१५ उलटि अमी रस पीजिये , आतम अंतरि आइ ॥टेक॥
कहा विवधि व्याकरन पढे रे , का पढे वेद पुरांन ॥
तन मन के मल ना मिटै , विन भजिये भगवान ॥१॥
का जप तप तीरथ किये रे ! , का पूजा व्रत दांन ॥
सब परिहरि हरि नांव लै , तूँ साहि सुद्रिढ गुरग्यांन ॥२॥
यहै जोग यहै जुक्ति है , यहै भक्ति यहै भाव ॥
पांच पचीसूँ फेरि कै , परापरी पद ध्याव ॥३॥
परापरी पद परस कै , मर्म कर्म कटि जांहि ॥
जन तुरसी तन ऊधरै , मन मिले महासुष मांहि ॥४॥

१६ संतो सो है राम हमारा रे ! ,
नाद विवरजित विंद विवरजित , नहिं तस वारन पारा रे ॥टेक॥
सकल वियापी सब ते न्यारा , सब का सिरजनहारा रे ॥
सब दुषषंडन भवभयभंजन , तेजपुंज निरकारा रे ॥१॥
सब सुषसागर सब सुषदाता , सकल सरोवन सारा रे ॥
सब गुन रहित अकुल अविनासी , तरुन वृद्ध नाहिं वारा रे ॥२॥
ब्रह्मा विष्णु महादेव नारद , सबहि करहिं विचारा रे ॥
पारन पावै अगम बतावे , नांव लेहि इकतारा रे ॥३॥

आवन जाय मरै नहिं जनमै, अविगति अलष अपारा रे ॥
जन तुरसी एसा रांम हमारा, ताहि सुमरै वारंवारा रे ॥४॥

राग धनाश्री

१७ सो सुष देहु जागत गुरु मोही,
जा सुष सुं सबही दुष नासै, आय मिलूँ प्रभु तोही ॥टेक॥
जा सुष सूँ भरमादिक छूटै, करमन व्यापै कोई ॥
तन मन आत्म मांहि रामजी, अति गति आनंद होई ॥१॥
जा सुष सूं जम जरान ग्रासै, दुष सुष नासै दोई ॥
सत रज तम तीनों गुन आगै, आत्म असथिर होई ॥२॥
जा सुष सूं सबही जन रचिकै, पार पहूँते सोई ॥
सो सुष भोगत है जन तुरसी, देहु कृपावंत होई ॥३॥

॥ इति ॥

?. महात्मा जगजीवणदासजी।

जगजीवणदासजी महाराज भी निरंजनी सम्प्रदाय के गणनीय महात्माओं मे थे। उनके जन्मस्थान तथा जन्म व तिरोहित होने के काल का यथार्थ कोई पता नही लगता, क्योंकि महात्माओ का जीवन तो निवृत्तिप्रधान होता ही था, अतः वे इस बात की आकाक्षा ही कब कर सकते थे कि उनका तरीके से जीवनचरित लिखा जाय।

केवल इनका सामान्य परिचय राघोदासजी की भक्तमाल से प्राप्त होता है। उनने व्यक्त किया है कि जगजीवणजी ने साधाना के द्वारा अपने गुरु से भी अधिक अपने को सिद्ध किया तथा जगजीवणजी ने अपना स्वतत्र पंथ भी चलाया। उनने द्वादश निरंजनी महन्तो मे ही इनका निरूपण किया है।

इन्दव छन्द—

भादवे के जगजीवणदासहु पंचम वर्ग तज्यो हरि गायो।
सील संतोष सुभाव दया उर ताहिं तैं ईश्वर कै मन भायो॥

त्याग वैरागरु ग्यांन भलै मत तातैं भयो गुरु तैं जु सवायो ।
राघव सो लहि ग्यांन गुरु कर एसो भयो फिर पंथ चलायो ।।१।।

भाऊदासजी की गुदडी के अनुसार ये हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे आते है। निरजनी सम्प्रदाय मे ही जगजीवणजी महाराज के अनुयायी अपने को जगजीवणपंथी की संज्ञा से सम्बोधित करते है। वैसे ये भी डीडवाणे मे आने-जाने का तथा व्यावहारिक व्यवहार निरंजनी साधुओ मे ही करते है। अब भी इनके थाभे की परम्परा मौजूद है। एक स्थान नागौर मे भी है जिसमे परम विद्वान् महात्मा माधोदासजी इस समय मौजूद है। आप सस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् है। आपके गुरुभाई लक्ष्मणदासजी भी अति विद्वान् थे। ओर भी इनकी परम्परा के स्थान है। जगजीवणदासजी की पूरी रचना तो प्राप्त नही है। प्राप्त रचना मे दो लघु ग्रन्थ चितावणी तथा प्रेमनामा है। चितावणी मे चालीस साषी है। प्रेमनामे मे गुनसठ साषी है। आगे पद है।.सात राग मे करीब साठ के पद प्राप्त होते है। जनश्रुति से और वाणी नागौर मे होने की सुनी जाती है। वाणी मे इनने विशेषतः कवीरजी का अनुगमन किया है। उपासना का क्रम तो वही है जो निरंजन निराकार का महाराज हरिदासजी ने अपनाया है। उनकी रचना का तारतम्य व भाषादि का विवेचन पूरी रचना प्राप्त हुए विना करना संगत प्रतीत नही होता; वैसे आगे दिये गये उद्धरणो से जानकारी हो ही जायगी।

।।अथ जगजीवणदासजी की वाणी लिखंते ।।

अथ चिंतामणि जोगग्रंथ

आप निरंजन संत सब कृपा करि दिया रंग ।।
गुरुकृपा तैं पाइये चिंतामणि का अंग ।।१।।
चिंतामणि चौथी दशा लखै सु पावे सुख ।।
जाइ धसै वा सिंध में बले न दरसे दुःख ।।२।।
पूंजी तो परमेश्वर तणी तूं मति खरचै बीर ।।
दरगह लेखा माँगिसी कौन रंक को मीर ।।३।।
तूं बनिजारा पार का पूंजी जमैं लगाई ।।
चेतन रहो चूकी रखे तो उत्तर दिया जाई ।।४।।

जै जानै तो उर गहि उरगहि पकड़ि निन ।।
जिन जल सूं पैदा किया सोई सांचा मित ।।५।।

मन बनिजारा जागिरे सोवै कहा अघोर ।।
सूताँ पूंजी हारिसी के मुसि लेसी चोर ।।६ ।

विगति बैल गमि गूमि करी, नाँव वस्त ततसार ।।
सुमति पटाट सब सूंडिका, सतगुरु हाकणहारा ।।७।।

तसकर बैठा घट मही निसदिन करि हैं घात ।।
ग्यान खड़ग हथियार गहि मांनि हमारी बात ।।८।।

जन्म जन्म का संग रहैं बिछुड़ै नहीं लंगार ।।
चेतन रहो केड़ौ करि यों औसर या बार ।।९।।

पांच तीन का जुथ मिल्या माँही मौस्या मन ।।
राति अधेरी मै खरी काया मेंड़ो बन ।।१०।।

इह पैंडे बहु लूटिया दुनियां केरी राह ।।
सांभलि सतगुरू यों कहै अदली दरगह जाह ।।११।।

गर्भवास में राखियो कहि नर किती एक बार ।।
सकैत हरि गुण गाइले विसरै काँइ गँवार ।।१२।।

जठर अगनि में जोगियो राखि लीये गर्भवास (ग्रमवास) ।।
आतुर होय आगे खड़ा हरि सुमरो साँसौ सास ।।१३।।

दुःख जामण दुःख मरण है दुःख मात पिता हरष सोग ।।
दुःख बंधु दुःख जाति पांति दुःख कुटम्बी लोग ।।१४।।

दुःख जीवण दुःख व्याहणा दुःख नारी भोग विलास ।।
दुःख ही दुःख संपति मिली दुःख दुःख केरी आस ।।१५।।

जा दुःख सुख करि लेखिया इण अंधे संसार ।।
सुपना केरी नांवरी क्यूं उतरै सो पार ।।१६।।

दुनियां केरी द्रिष्टि बंध नहीं रहावो कोई ॥
देखत ही उठि जायगा आजकाल्हि दिन दोई ॥१७॥
भौजल अथग अपार है काम क्रोध मछराई ॥
हर्ष शोक का तट मंझ्या पड़ै मोह पचि जाइ ॥१८॥
कोई एक तिरि है संत, जन जाकै राम सहाई ॥
सतगुरु नेरै बैसि करि प्रेम प्रीति ल्यौ लाई ॥१९॥
नैंन बैंन श्रवण करया दीया करि चालण कूं साज ॥
सो साहिब तूं बिसर्यो कहा कहाँ मुख लाज ॥२०॥
रे मंदभागी प्राणियां दीनबंध गुण चोर ॥
परम सनेही वीसर्यो कहां लहैगो ठौर ॥२१॥
ज्ञान पलीता लाइ करि दगध्या बन विकार ॥
मैवासा सो मठ किया लड़ै न दूजी बार ॥२२॥
मन मैवासी पाकड़ै अनन्त न देई जान ॥
बेडी विरह पहराइ कैं लावै सतगुरु थांन ॥२३॥
बिगति बिगति का दुःख सह्या गरभ संकट बहौ त्रास ॥
लख चौरासी भरमियौ तहू न छूटी आस ॥२४॥
सकल बियापी सकल में सब माँही सब दूरि ॥
जैसे चंदा उदिक में सकल रह्या भरपूरि ॥२५॥
गहि बिसवास आम गहि जीव चेतन ह्वै चेत ॥
बार बार पावै नहीं मनिष जन्म का नेत ॥२६॥
मनिषा देही दुलभ है सब जीवन में सार ॥
कृपा करि तोकूं दई सजिलैं सिरजनहार ॥२७॥
महापतित के पावन वहै निर्बल के आधार ॥
निर्धन के धन दीनबंध सरनाई साधार ॥२८॥
जल थल थावर जीव जंत परले कीट पतंग ॥
सूक्ष्म होइ होई आंतरया तऊ न मोड्या अंग ॥२९॥

चंदन रूंष विराग बड़ भार अठाग जाति ॥
काटि बाढ़ि बहु बैहरया तउन सुमरथ्या नाथ ॥३०॥

परम सनेही परम गुरू परकाजां परत्रान ॥
परमार्थ कै कारनै यौं परापरे परत्रान ॥३१॥

निराकार निरंजना निर्विकार निहच्चाद ॥
काया माया बन नही नही बिंद नही नाद ॥३२॥

अखण्ड अमर अगाध हरि वार पार कुछ नाहिं ॥
सब साधन मिलि भाखिया है न्यारा अरमांहि ॥३३॥

सुख तरवर छाया रहत मूल डाल पत नांहि ॥
इमृत फल प्रकासिया सब साधू मिलि ग्यांहि ॥३४॥

सब स्वादन मैं स्वाद है सब प्यारन में प्यार ॥
सब सुखन मैं सुख है सब सारन में सार ॥३५॥

हरि ही माता हरि ही पिता हरि कुटुम्ब परिवार ॥
हरि बंधु हरि सजनता हरि यारन में यार ॥३६॥

निरमै घर जहाँ भै नहीं भाव भक्ति सुखरूप ॥
कृपा करि तोकूं दई ऐसा तत अनूप ॥३७॥

सतगुरु परस चिताइया जीव चेतन ह्वै चेन ॥
गुप्त वस्त प्रगट करी अंजन बाह्या नेनि ॥३८॥

यूं चिंतामणि ग्रंथ है अनंतकोट बिसरांम ॥
जे षोजे सौ परसि है सरै सकल, बिध काम ॥३९॥

मनसा वाचा कर्मनां अविनासी की आस ॥
गुर कबीर प्रताप तैं कहै जगजीवनदास ॥४०॥

चिंतावणी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥१॥

।। अथ प्रेमनांमो जोग ग्रंथ ।।

नाम निरंजन प्रेम अंग साखी गुरू प्रवांन ।।
मनसा वाचा क्रमना नांहि दूजी आन ।। १ ।।
पेमी कै पति प्राने है तन मन वै आधार ।।
रोम रोम में रमि रह्या बिसरे नहिं लगार ।। २ ।।
जैसे मछली जल बिना पेमी कै करतार ।।
निमखासुर बिछुटै नहीं बिछुट्यां होई प्रहार ।। ३ ।।
जैसे अमली अमल कूं निरधन के धन होई ।।
पेमी के पिव बालही राखै पिंजर पोई ।। ४ ।।
जैसे माता पूत कूं ज्यूं नारी भरतार ।।
पेमी के चित पिव बसै ज्यूं जुवारी सारि ।। ५ ।।
पेमी के परतीति है हरि है हृदा मांहि ।
पेम बिना खाली सबै भूला भटकै कांहि ।। ६ ।।
राता माता पेम में सुख में रहे समाय ।।
या पेमी की पारखा हरि तजि अनंत न जाय ।। ७ ।।
पेमी पीघल पेम में दया :दीनता हारि ।।
ग्यान गरीबी दरदबन्द गुरबाइक उर धारि ।। ८ ।।
पेम तहां ही पीव है पीव बिन पेम न होई ।।
पेम बिनां हरि कौण का मति गरिबानों कोई ।। ९ ।।
पेम तहां प्रवति नहीं नहीं न आसा पास ।।
नांव मईं ल्यौ लीन होइ ममकत साँसा सास ।।१०।।
पूरां सूं परचा भया पीया पियाला धाप ।।
जन्म जन्म की चिंतना मिटी, साहिब पाया आप ।।११।।
ऐकै सेती एक है दुतिया नांहीं कोय ।
पेमी कै परतीति है, दूजी भांई होय ।।१२।।

मनिखा देही पाइ कर मन नहिं लाया राम ।।
पेम स्वाद जाण्यां नहीं भेष धर्या बेकाम ।।१३।।
सदा समीपी सावधान जिनि हरि नांहि न रेप ।।
ज्यूं दरपन में देखि है अरस परस मुख एक ।।१४।।
रिध सिध आवध, जोग जिग नेम व्रत तप दान ।।
पेम पियारा पीव कूं पेम बिनां सब आंन ।।१५।।
तीर्थ पूजा जाप धर्म षट्कम कुल आचार ।।
पेम बिना किस काम का बिन सज्या सिंगार ।।१६।।
सदई झड़ लागा रहै बरषै निरमल पेम ।।
ब्रह्मराज अखंडतपुरी नाहिन वासुर व्योम ।।१७।।
सुख सरवर जनहंस हैं सुख मुक्ताहल स्वांहि ।।
पेमी रमि है पेम सूं उड़ि उडि अनंत नजांहि ।।१८।।
अविनासी जहां मैं नहीं मांहीं निर्मल हीर ।।
को मरजीवा काढिसी जहां जाल न काल न कीर ।।१९।।
अगम अगोचर तट मंझ्या मंझै पेम की नांव ।।
जो बैसो सो परसि है नांहि न दुतिया भाव ।।२०।।
प्रेमलछन हरिभक्ति है कोई साधं संत सुजान ।।
चौरासी मरमै नहीं लगै न काल का बांन ।।२१।।
जम डरपै ता दास सूं जांकै अंतरि भाव ।।
पेम पमोज सूं पातला ज्यूं आया त्यूं जाव ।।२२।।
बैरागी होई बन वसै उपजै नहीं वियोग ।।
पेम बिना दोऊँ थक्या बादि बिसारया रोग ।।२३।।
बैरागी चंदन बावनों ताँकी बास सुवास ।।
पेम पियाला पाइया जग सूं रह्या उदास ।।२४।।
सतगुरु मिलर. जगाईया पीया पियाला पेम ।।
पथरगल पांणी हूआ ज्यूं र सुहागा हेम ।।२५।।

शब्द सुहागा विरह अग्नि, दीया प्रेम लगाय ॥
सतगुरु कंचन काच तैं कीन्ही कंचन काय ॥२६॥
ज्ञान हथोड़ो दिल अहरणी दऊँ बिच लाया ताव ॥
सतगुरू हिक्रमती कीया बारा बांनी भाव ॥२७॥
कसत कमत कसणी सही कसि कसि पाया प्रेम ॥
सतगुरू मेरा हिक्रमती कीया सोल्हा वांनी हेम ॥२८॥
अमली सब संसार है कनक कांमणी स्वाद ॥
साचा प्रेमी संत जन ताहि विष नहीं आवै आद ॥२९॥
प्रवृत्ति तज निवृत्त भया, एक नांव की चाहि ॥
पतिव्रता पति सूँ रज्यू, रहै प्रेम लपटाहि ॥३०॥
ज्यूं मोती गजराज सिर ज्यूं गिरवर में धात ॥
ज्यूं विसहर संग मणि वसै यूं प्रेमी हरि साथ ॥३१॥
जैसे पावक काष्ठ में ज्यूं पै मांही घीव ॥
ज्यूं तिलन में तेल है यूं प्रेमी में पीव ॥३२॥
समिहू संग इम्रत वसै, ज्यूं फूलन में वास ॥
ज्यूँ चंदन में ठंडिता, यूं हर मांही दास ॥३३॥
जैसे मिम्री ईख में ज्यूं हीरा में जोति ॥
असे जग में नांव है, भया एक ही पोति ॥३४॥
घट घट भीतर मन बसै ज्यूं वासर में सूर ॥
ज्यूं जल सेती जल मिलै यूं प्रेमी में नूर ॥३५॥
नूर मिल्या उस नूर सूं न्यारा किया न जाइ ॥
प्रेमी मिल्या उस पीव सों ज्यो जोते जोति मिलाइ ॥३६॥
अनल पंख आकास घर धर धरती सूं नेम ॥
गगन गौंन लागो रहै या प्रेमी की प्रेम ॥३७॥
दूरि सनेही बिचि घणां क्यूं करि पहुँतो जाइ ॥
जोइ रह्यो हरि समंद में, पेमी पाँष तुलाइ ॥३८॥

प्रीतम चाहे प्रीतमां कत्र आंष्यां में अंप ॥
कोईक मिलि है संत जन प्रेम प्रीति दे दंप ॥३९॥
प्रेम पांष जन कूं दई करि कृपा करतार ॥
भौ जलसिंध अथाह तिरि दरस्या देव मुरारि ॥४०॥
बिन पैरन का पंथ है दिष्टिविवर्जित ठौर ॥
प्रेम परचै पाइए ज्यूं मुख उपजै मौर ॥४१॥
चुंबक चुणि है लोह कूं पुरुष पुरातम प्रीत ॥
अरस परस हर सूं मिलै या प्रेमी की रीत ॥४२॥
रनबन बस्ती बिच रहै मिला अर्न्तांनी म्याइ ॥
प्रेमी मिले न देह गुण ज्यूं पत्थर की राइ ॥४३॥
प्रेमी के मंगल सदा बाजै अनहद तूर ॥
सोच पौच आनैं नहीं ज्यूं दहौं दलां बिच सूर ॥४४॥
जैसे सती सत काया खसम संग जीवत जाली देह ॥
यों प्रेमी अंग न मोड़ ही निराकार निज देह ॥४५॥
कुंज पुकारै कुरलि करी सुरत रहै उन पास ॥
प्रेमी अपना जान करि साहिब पौषै दास ॥४६॥
चूंणि चुगै चितवनि करै, चुणि चुणि जोवै दूर ॥
अंतरजामी प्रेमवस है हाजरां हजूर ॥४७॥
नेह दहौं का एक सा क्या सांई क्या संत ॥
जो कुछ होइगा जिंद में सोई फलेगा अन्त ॥४८॥
कँवल बात प्रेमी तणी जल है जहाँ समीप ॥
निरंजन भजि न्यारा रहा ज्यूं दरिया मोती सीप ॥४९॥
लष चौरासी इन्द्र आदि नवषंड ब्रह्मंड इकीस ॥
प्रेम नाव जन कूं दई ताहि दरिया जगदीश ॥५०॥
साहिब सम दाता नहीं नहीं जन सौं मंगणहार ॥
प्रेम मौज दाता दई सब मौजन में सार ॥५१॥

दोहा—पन्द्रह सौ पंचानवे, सुद फाल्गुण छठ जाण ।
विंशा सो वपु राख के, पहुंचे पद निर्वाण ॥

महताजी के लिखित ये उद्धरण व्यक्त करते है कि हरिदासजी का जन्म-स्थान, जाति, कार्य, उपदेश, साधना व जीवन-काल उसी रूप के है जैसे परचईकारो ने लिखे है । इनने अपनी ओर से किसी नई दृष्टि को व्यक्त नही किया है ।

रामचन्द्र गुजराती रचित "दयालु-चरित्र" लेखन-काल १९४४-४५ प्रकाशन-काल १९४६ ।

पं० रामचन्द्रजी संस्कृत के योग्य विद्वान् थे, उनने संस्कृत तथा हिन्दी-पद्यो मे "दयालु-स्तोत्र" तथा दयालु-महिमा का वर्णन किया है । दयालु-स्तोत्र जो कि संस्कृत मे है उसमें चौदह पद्य है । हिन्दी पद्यो मे जो कि रामचन्द्रजी के शिष्य आशारामजी दाधीच रचित है, दयालु-महिमा तथा उनके जीवन पर भी संक्षेप मे प्रकाश डाला गया है । संख्या मे ये पद्य सत्रह है । उक्त दोनो की रचना के दोनो तरह के पद्य निम्नरूप मे है—जिनसे हरिपुरुषजी महाराज के महत्व का दिग्दर्शन होता है ।

पुण्यैर्जन्मान्तरीयै समधिगतमहासाधुसत्संगलब्ध-
स्वात्मानंदावबोधोदयसरणिरलं शान्तमानान्तरायः ।
अध्यासीनो विविक्तं बहुदिनममलं यो जपन् रामनाम,
प्रापत्सद्योगसिद्धिं गुरुमहमनघं संश्रये श्रीदयालुम् ॥१॥
वाणीं वेदांतसारां गहनतरमहाज्ञानरत्नोज्ज्वलां यो,
व्यातेने व्याहतात्मा ग्रथितगुणभरां स्वानुभूतिप्रचाराम् ।
संसाराम्भोधिभीतांश्चरणशरणगान्मानवान्वीतमाना-
नुद्धर्तुं साधुवर्यं शमसुखनिरतं श्रीदयालुं भजेऽहम् ॥२॥

हिन्दी पद्य—नगर एक सुन्दर है डिडवान, तहाँ से पश्चिम दिशि गिरि जान ।
तिन सै क्रोशार्द्ध बसै एक ग्राम, जिसका कापडोद है नाम ।

दोहा— उसी ग्राम के बीच में, छत्री हुवा बलवान ।
हरीसिंह था नाम जिनों का, दया नहीं उर म्यान ।

मन महुवा गुड़ जान करि , भाठी गुरमुप धार ।।
अमी पियाला जिनि पिया , विसरया देह विकार ।।५२।।
अकल कला ल्यौं बारनी , रही गगन मठ छाई ।।
जन्म जनांणों डारि करि , कहै पाई हरि पाई ।।५३।।
त्रिगुण ताप सूं तरक दे , निरास मांहि आस ।।
चौथे आश्रम संत जन , तहां प्रेमी का बास ।।५४।।
प्रेम सलिता हरषित चली , चालिया नेह लगाइ ।।
जाइ धसै हरि समंद में , सुख में रहौ समाइ ।।५५।।
हीरा मोती लाल घणां , बैरागन बड़ नग ।।
मुक्ति पेत निरंजनपुरी , जहाँ पेमी लिया रंग ।।५६।।
छौतन भ्रांति भै भ्रम नहीं , नहीं नाद जग विंद ।।
पूरण ब्रह्म पेम वसि , निराकार निरजंद ।।५७।।
मात्र गिरा ही भाव वसि , नहिं रिध सिध विवेक विचार ।।
अकल सरूपी सकल में , जा का वार न पार ।।५८।।
महा प्रेम अँग ग्रंथ है , निजसंतन किया बिचार ।।
गुरू कबीर प्रताप तें , कहै जगजीवन सार ।।५९।।

।। इति प्रेमनामों जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। ग्रंथ अथ पद ।।

राग धनाश्री

अब और सरनि कित जाऊँ ,
आरति हरन नहीं कोई दूजो काहे कूं भेष लजाऊँ ।। टेक ।।
हरि हैं दयाल संतन सुखदाई , और नहीं कोई देव ।।
आगे अधम उधारे केते , जोई जोई लागे सेव ।।
जल थल पावक गज सिंह आपौं , राषि लिये दे हाथ ।।
मुख करि कहाँ बड़ाई मापौं , हरि हैं अनाथन के नाथ ।।

पतित पावन हरि बिड़द तुम्हारो, मैं पतितन अधिकार ॥
जगजीवन सति बिड़द तुम्हारो, जै मोहि उतारो पार ॥३॥
तेरो जन चरन सरन तकि आवै,
कहर काल की बहोत त्रास है, हरि बिन कौन छुड़ावै ॥टेक॥
पांच तीन पच्चीसूं प्रकृति, देत फिरै बहो माई ॥
हरि बिन और कौन सूं कहिए, रहे करम उरझाई ॥१॥
मनसा नदी बहै निसबासुर, रहत नहीं या गासी ॥
नांव जिहाज गहि पारन पकरै, मुनि सतगुरु की सासी ॥२॥
मैं बलहीन महा सठ अवनां, हरि अघमोचन अबिनासी ॥
जगजीवन जन करै बीनती, काटि करम की पासी ॥३॥
हरि हूँ सब पतितन पतिसाह,
असी और कौन पै होइ है, दीरघ करम अथाह ॥टेक॥
काम क्रोध का कोट हमारे, आवा गवन दरबार ॥
मनसा नारी सुहागनि थरपि, जम सेती ब्यवहार ॥१॥
चिंता पजीनौं घटत नही कबहूं, मनोरथ उमराव ॥
चित चंचल कुटवाली दीनी, राजस राजा राव ॥२॥
ब्रह्मंड यकीस लोक त्रिय तांई उपजै, पतित सब लोक अपार ॥
पतितन मांहि पतित सिरनामी, और पतित सब लार ॥३॥
त्रिष्णा गाज बाज सिर घूमै, नौबति बाजा मार ॥
जगजीवन जन सरनै आया, लीजै अधम उधार ॥४॥
अविद्या हम हेरि सकेली,
अबिगति की गति हम सूं रहि न्यारी भई मूढ़ मति मेरी ॥टेक॥
मारत मन तौऊ अति चंचल, धीर न धरत लगार ॥
ताहि तूरस मोर मगन मन, लंपट विषै बिकार ॥१॥
मल तें उपजि मांनि रुचि मलतें, पीयो हलाहल पान ॥
अगनि प्रवेस भषे करत नित, परहरि सदा अस्थान ॥२॥

हरिपद विमुप अज्ञानमात्र अति, एही प्रतिज्ञा मेरी ।।
जगजीवन जगप्रान जगतपति, जाँपरि मजीम तेरी ।।३।।

राग आसावरी—

आव सजन मेरी सैजडी, मैं वारणें तेरे ।।
पलक पलक ज्यूं जुग फिरैं, सुप हिवडै मेरे ।।टेक।।
जैसे दादर पावसाँ, घग बरषै मेहा ।।
एसे विरहनि पिव मिल्यां, उपजैं बहु नेहा ।।१।।
जैसे अमलों अमल विन, मछली विन नारा ।।
दिल मालिक दिल में वसें, जानैं पर पीरा ।।२।।
प्रीति तुलाई प्रेम गींदवो, साव कली विछाऊँ ।।
पौढैं पीव पियारडा, ऊभी वाल हिलाऊँ ।।३।।
अगर चंदन ल्यौ लेपनां, मंदल सुख वासा ।।
अमी पियाला साह संगि, दीपक परकासा ।।४।।
बहुतक दिन विछुरयां भया, तन ताला बेली ।।
जगजीवन बिलमांइयां, मिलि मुझयूं खेली ।।५।।

राग बिलावल—

रे घड़ियाले बीनती सुन मेरा भाई ।
मेरा पियारा पाइया, मन वटी वधाई ।।टेक।।
ज्यूँ ज्यूँ घड़ियाँ मैं सुणों, मेरा प्राण डराई ।।
बहुतक दिन सों पीव मिल्या, मत बीछुड़ि जाई ।।१।।
मिलत मिलत मिल ही रहूँ, विछरन नहि भावैं ।।
मैं भूषी हरि दरस की, मोहि अजक लगावैं ।।२।।
काया महल सिंगारिया, मति सेज वनाई ।।
दीपक ज्ञान रतन का, मिलियाँ सुखदाई ।।३।।
प्रेम प्रीति आरति मई, अमी रँग पीता ।।
अरसपरस आनंद अपै, भागि सब चिंता ।।४।।

घटत घटत घड़ियां घटी, काना मंतिर मुनावैं ॥
जगजीवन केते गये, अब साहिब भावैं ॥४॥

भै मति आणैं रे मना, कहा करै अनाला ॥
जिन सिरज्या जल बूंद सूं, सोई प्रतिपाला ॥टेक॥
ईंड़ा टींटोडी तणां, राख्या घटि छिटकाइ ॥
गज निरास होइ टेरिया, हरि लिया बंचाइ ॥१॥
जल थल गिर ज्वाला मही, जहाँ तहाँ रखवाला ।
प्रहलाद प्रत्यंग्या पूरिहैं, घट भया उजाला ॥२॥
सुनि सूली मरथर तगी, नांम देव बंचाया ॥
लोह लंगर पग घालकैं, कबीर तिराया ॥३॥
साखि सुणत खातिर भई, भौ भागा भारी ॥
जगजीवन मुसकिल कहा, जा कै देव मुरारी ॥४॥

विनती सुणौ हो मेरी नाथजी, तूं समरथ देवा ॥
मैं प्रान अबला बली, कछु होत न सेवा ॥टेक॥
बहौ बिध ज्ञांन सुनाइया, कसनी बहौं त्रासा ॥
महाराजि निलजा समझै नहीं, फिर वाही आसा ॥१॥
ऊठत बैठत कल्पनां, दग्धै दिन राति ॥
करुनां सुनि करुना भई, जन पकरौ हाथि ॥२॥
लख चौरासी भ्रमत फिरयौ, कछु चलत न उपाई ॥
जगजीवन सूं कर दिया, हरि ल्यौह बचाई ॥३॥

महर करौ महरवानजी, अपना करि राषौ ॥
मैं तुमही सूं लागा रहूँ, सोई बुधि आंषौ ॥टेक॥
मम जालि समझै नहीं, मेरा बसि नांहि ॥
तुमसूँ कहा दुराइए, तुम दरसौ मांहि ॥१॥
आगे पीछे एक तूं आलम आधारा ॥
तुम्हीं तैं पतियाइए, सब खेल तुम्हारा ॥२॥

उजु निवाज कलमां पढै , कर जप तप तै आसा ।।
जगजीवन दरवेस कै , पावन की प्यासा ।।३।।

राग मारंग

प्रीतम आवोजी अब जिन लावो बार
चौमासौ दूभर मरौ , मुझि बिरहन के आधार ।।टेक।।
माम सावण तजी तरणी , आतम किया सिंगार ।।
लवै चात्रग घरहरै घन , बीजल्याँ चमकार ।।१।।
पीव बिनां मेरो बदन बिलपै , टिकत नांही सांस ।।
मरम मांवण जाइ अहलौ , कहाँ बधावौ आस ।।२।।
भादवै मै पडयौ मनकै , नदियां नीर बहाइ ।।
राम बिना मेरी सेज सूनीं , कैसे रैनि बिहाइ ।।३।।
सुनि सपि एक अचरज भयौ , सुपनै भयो संदेस ।।
भादवो अति जाइ गहरौ , आइ करौ उपदेश ।।४।।
आसोज मैं असी भई , मेरो चित न धरहै धीर ।।
लाल बिन मेरै नहीं कोई , कौन जानै पीर ।।५।।
पंथ जोऊ नैन रोऊँ , घड़ी चितऊँ बाट ।।
आसौज मैं घन भई आतुर , बहोर नांहा थाट ।।६।।
कातिग मंगलचार जनकै , पूरई सब आस ।।
पीव आए मनाँ माए , दरसीए सब दास ।।७।।
करी कृपा दीन ऊपरि , परसि पद नृबान ।
जगजीवन जन केली कातिग, नांहिन दूजी आन ।।८।।

राग सोरठ

सजन आव हम घरि आव ।
बार बार छक नांही इहड़ौ , यो मिलिबा कौ डाव ।। टेक ।।
पहर च्यारूँ जांहि अहला , बिन कंत सुजान ।
मैं अबला बलहीन , तुम सूँ कोई न पूजै पान ।।१।।

तलब तेरी ब्यापे निसदिन , ज्यूँ चात्रिग चितवन नीर ।
करुनां सुनि कृपाल स्वामी , बेगी बुझावो पीर ॥२॥
अवधि घटति जाय पल पल , ताला बेलो जीव ।
तुम जांण प्रवीण प्रभूजी , महल पधारो पीव ॥३॥
बिथा तन की कहूँ कासूँ , कह्या न को पतिआइ ।
तुम दीनबन्धु दयाल कहियो, रह्या बदेमां छाइ ॥४॥
तुम सरणि सोहड सुमड सांचा , बिड़द गुधारण राव ।
जगजीवन जन मिले पीत्म , आन्म अधिक उछाव ॥५॥

देवा तेरी भगति दीजै मोहि ।
सुरति धागा नांव मनका , राखूँ पिंजर पोइ ॥ टेक ॥
जपौं अजपा जाप निसदिन , अषंड सुमरण होई ।
दाखिलै तेरा संत मेला , बाण न लागै कोई ॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेस सुर नर , देतां सुणिया दांन ।
सकल तजि तुम सरनि आया, राषो जन को मान ॥२॥
आस तेरी करो रछा मेरी , मोहि मिलन को चाव ।
जगजीवन जन केरी बिनती , देव दया करि आव ॥३॥

माधौजी दुर्लभ दर्शन तोर ।
मैं निबला अैं करम बलिवंत कछू न पूजै जोर ॥ टेक ॥
मन मनसा सुरति चंचल , इनका एहि सुभाव ।
गुप्त प्रगट बहैं सदई , करै नहीं ठहराव ॥१॥
जोगध्यांन बहौ पठन आवध , नाना मत अपार ।
पेम बिना परसन नहीं , वै साचा सिरजन हार ॥२॥
जोगी जति तपी सन्यासी , सब ही कह्यो पुकारि ।
गुरू कृपा तैं ऊबरै , नहींतर चाल्यो हारि ॥३॥

जीव सीव दोऊँ रहत सुमिलत, बीचि भइ अंतराइ ॥
दया गरीबी भाव उर गहै, तो हर करै सहाइ ॥४॥
कांम आरंभ मोह माया, अै जीव बैठो धार ॥
जगजीवन जन सरनि आया, लीजै राम उबार ॥५॥

मन रे होइ हर का वंालिगानां, ज्यूॅं तेरे कोई न लागै बानां ॥टेक॥
तूँ परिहर त्रिषै सगाई, पी पेम पियाला भाई ॥
रहो रैंनि दिन माता, तो कूँ दरवै आप बिधाता ॥१॥
जांके अनंत कोटि उमरावा, वै पांवैं मौज समावा ॥
खरा खजीनां खावैं, फिरि भौसागर नहिं आवै ॥२॥
हरि अकल भवन को राजा, जांकै बाजै अनहद बाजा ॥
कहै जगजीवन दासा, तूँ करि चरनां मै वासा ॥३॥

मन रे सांचा राम दिवांना, जांकै बाजै प्रगट नीसांना ॥टेक॥
एक बूंद सूं सब जग कीया, राव रंक सुलिताना ॥
एतौ भोपति दिवस च्यार कै, कूड़ा करत डकांना ॥१॥
गण गंध्रप सब ही चल है, सो क्यूं ही न ठहराई ॥
रांवण सा बड़ जोधा होता, तिनकी षबर न पाई ॥२॥
धरती गगन नहीं कछु अस्थिर, चलि हैं सकल मंडाणां ॥
जगजीवन वै संत न चल है, ज्यो परस्या पद निर्वानां ॥३॥

जीवड़ा हरि राखै त्यूं रहिए ।
मुस्कलि बहोत पड़ी या जीवकों, यौ दुष कासूं कहिए ॥टेक॥
लागूं पिंड ब्रह्मंड पण लागूं, लागूं च्यारि षांणिका जीव ॥
यौं सांसौ मोहि निसदिन ब्यापै, जानैं अंतरजामी पीव ॥१॥
सतगुरु सरन लाज संतन कूं, दूजी कछू न सहाइ ॥
आगैं अधम उधारे केते, बोलत निगम बड़ाइ ॥२॥
पल पल छीजै राम न रीझै, झूठ जग मैं बासा ॥
हर हौ दयाल महर कर माधौ, कहै जगजीवन दासा ॥३॥

पंथीड़ा पूछै रे बिरहणी आपि, म्हारा पीवजी रा बैग ॥
कब घर आवो साहिब कब मिलूं, जोऊँ दिन अरु रैण ॥टेक॥
बहुत बधाई आपिहूं, वहला ल्याव संदेश ॥
बहुतक दिन बीछुरयां भया, मो मन याहि अंदेस ॥१॥
ग्रह आंगन भावै नहीं, विष लागै संसार ॥
बिरहन बेदन विषम गति, दरस्यां होइ करार ॥२॥
कब घर आवो साहिब कब मिलूं, हरि परम सनेही राइ ॥
महल उजालौ प्रभु पति मिल्यां, सेज सुरंगी थाइ ॥३॥
गोवल गूड़ी ऊछरी, प्रगट्या जैं जैं कार ॥
जन्म जन्म का दुःख मुच्या, धनि विरियांधन वार ॥४॥
षोडश आभूषण साजिया, साज्या सकल सिंगार ॥
जगजीवन दुलहन कहै, दरस्या राम भरतार ॥५॥
कही रे बटाउ पीवनै संदेसड़ौ, बिरहनि बूझै च्याइ ॥
अवध सवाई साहिब बहि गई, पीछैं कहा जी करोगे आइ ॥टेक॥
हिवड़ै अरहट लाइया, कबर मिलोगे नाथ ॥
ऊभी जोऊँ आंगणें, मस्तक दीया हाथ ॥१॥
बिरह कासीद पठाईया, तुम बेग पधारो राइ ॥
तुम बिन घडी न आलगैं, तलफत रैनि बिहाइ ॥२॥
सुपनै झषि है आतमां, उठि उठि जोऊँ बाट ॥
तुम बिन सूनी सेजड़ी, मौहन जोबै पाट ॥३॥
बहौतक दिन बिछरयां भया, ताला बेली जीव ॥
राम दयाल दया करौ, महल पधारौ पीव ॥४॥
जगजीवन जन बीनवै, सुनि सतगुरू सिरजनहार ॥
दरसन दीजै देवजी, अब जिन लावो बार ॥५॥

जिंदवा जाणि रे जग जातौ, समभि मूढमति भाई ।।
राम सुमरि सकल सुखदाता, परहथि कांइ बिकाई ।।टेक।।
चकवै बहौत सूर सांचत, पातसाह सुलतानां ।।
देपत निजर खांक में मिलिया, कौण रंक कूंण रानां ।।१।।
जाकै हस्ती घोड़ा गांव गढ़ गूडर, खरच खजीनां भारी ।।
ऊभी दुरम हवेली छाड़ी, करता म्हारी म्हारी ।।२।।
नौबत तेग नगारा बाजैं, लड़ैं फौज भूंभारा ।।
चलती बेर कहूं खबर न पाई, ह्वै गया महल अंधारा ।।३।।
सूर सोई लड़ै माया सूं, लड़ि भिडि आपौ उबारै ।।
सतगुरू सबद सिल्है करि सत की, मन मैवासी मारै ।।४।।
इन धूतारी सब बसि कीया, कांम काल ह्वै गिलिया ।।
जगजीवन वै जोगी जुगता, हरि भजि हरि मैं मिलिया ।।५।।

मन चेति रे चेति कांई भूटरातौ ।
अलप जीवन संसार सांसै पड्यौ, सुमरि लै रांम सति रांम नातौ ।।टेक।।
कामदल क्रोधदल लोभदल मोहदल, पेलिया छा संग्राम साही ।।
साचरी सांगलै सफर लै जरनां हो, सनमुख जंग जीति भाई ।।१।।
सबद सनाह समसेर गह ग्याँन की टोट सतगुरू सबद ध्यान धीरा ।।
प्रेम तुरंगि चढि सुरति लगाम दे, पकड़ि पांचूं करि हाथि हीरा ।।२।।
सोहड़ सांवत लड़ै मुगध पाछा पडै, पेलीया पिसण रिण रांम द्रोही ।।
नालि गोला बहैं काइरा किम सहै, मंडि रहे खेत कमधज सोई ।।३।।
बिरह बिधि आरबा भाव भीड़ि कुंजरां, भेलिभार्थ जस जोध लीया ।।
राजिरै काजि तन काटि कुटका कीयौ, मौत नैं मारि जन जुगति जीया ।४।
अदलि अैसी भई स्याम सुनमुख सही, जीतियागढ़ अरि भांजि भारी ।।
दास जगजीवन मौज दे मांनियां, हरि करी किरपा जन लीया तारि ।।५।।

मनां बूझी रे बूझि छक जाइ भारी ।।
जम जुरा जोध असाध आगम दहै सुमर रघुनाथ या नाहि धारी ।।टेक।।
देह नै गेह मन भूलि भांतै पड्यो , करमनै भरम कलि बड दासा ।।
साखि सुणि आगिली समझी सतगुर कहै, होइ नृभै नर रालिपासा ।।१।।
कनकनै कांमणी भगति भांगो बड़ो, संतज्जन होई क्यूं हाथ माहैं ।।
रामनै दोस नही नाकै टल्या करैं , करतूति मांई पार पावैं ।।२।।
रिधनै सिध सब झूठ गनि साधना , धरि बैराग धगि नांव मांही ।।
नाटकी चेटकी मरमि ज्ञान भेद बिन , होइ ल्यौ लीन संभालि मांई ।।३।।
दयानै दीनता देष साहिब सबै , धरणि नैं गगन अंतै चंद सूरा ।।
तीन को त्याग करि दृष्टि चौथे धरि , दास दरसैं जहाँ दरस नूरा ।।४।।
निरमला तेज सुख सेज सांई रमैं , झिलमिलै ज्योति जहाँ आप देवा ।।
भावरी पूजि दिल दूजी दरसै नहीं , जहाँ दास जगजीवन करैं सेवा।।५।।

नर निरषि रे निरषि निज तत देवा ।।
लोभनैं मोंह सब झूठ कांनै करी , मननैं पवन धुनि धारि सेवा ।।टेक।।
देवनैं देहरा देषि मांही षड़ा , गुरु सबद दीपक लाइ पूजा ।।
कुवध ना पाट षोलि पालक दरस , भावनैं भोग हरि नांह दूजा ।।१।।
झालरी घंटा बेहद बाजा बजै , संप चक्र गदा पदम पहोप पानी ।।
ज्ञांन का परमल विज्ञान का कलस भरि, अरस नै परस जन जुगति जानी ।।२।।
काम निहकांम तीन गुण निरगुण होइ, ससि भान मभि राषि दोइ ।।
सेवग स्वामी साच पष राचिया , जिम नीर में नीर भिन नांहि कोइ।।३।।
विवधि वसंत जहाँ आनन्द आरती , मंगलचार तहाँ मत मेला ।।
दास जगजीवन परमपद परसिया , जोति में जोति मिलि करैं केला ।।४।।

मेरे मन जागि जन्म करि पावन ।
जैसे दूध दुहे करि कढ़ावत , कढ़ावतै दे जावन ।।टेक।।
ईख तैं रस रस तैं गुड़ कीन्हों , गुड़ तैं खांड कमाई ।।
कूंजा ढ़ाल भई जब मिसरी , मंहगै मोलि बिकाई ।।१।।

तिहि परबत ऊपर नित आवे, हिसा कर लूट खोस खावे।
मार नर दिये कूप कई डार, ताहि लख आये सिरजनहार।
आये श्रीकमलापति, विप्र रूप को धार।
क्षत्री द्विज को देख, खड्ग निज करी म्यान से बार।
आय कहा लूटैं तेरा माल, मार कै देऊँ कूप में डाल।
वचन सुन बोले विप्र तत्काल, बली तू मेरा वचन समाल।
माई बाप अरु कुटुंब को, घर जा पूछो आप।
हिसा करूं लूट खोसूं सो, कौन भोगसी पाप॥
वचन सुण बांध विप्र का हाथ, गया घर हरिसिंह उस स्यात।
जाय घरकां को पूछी बात, उतर दियो स्त्री भगिनी पितु मात॥

दोहा—इस कलियुग जुग बीच में, सुन हो सुघड़ कुमार।
जो अघ करसी वोही भोगसी, इसमें फरक न तार।

फेर पीछा आया द्विज पास, होय के मन में बहुत उदास।
पड़ा चरणों में होय निरास, पाहि गोविंद मैं तेरो दास॥
धर्यो सिर कर-सरोज कर्तार, जपो हरिनाम राम हर बार।
श्रेष्ठ उपदेश श्रवण सुन सार, ध्यान दृढ़ लियो यही उर धार।

दोहा—गिरि शिखिर ठाढ़े करै, हरिभक्ति निरब्याज।
निसदिन प्रेम मगन मन होके, हरिपुरुष महाराज।

× × ×

नाम दोनों को चढो परवान, सुकके बावन चेला हुए आन।
सभी को दीनो निश्चल ग्यान, धरो जाय उत्तर घरों में ध्यान।

दोहा—शतक विंशवीं तेवरस, हरिपुरुष मनमान।
तजणैं लगे शरीर को, जप गाढ़ो निज गुरु जान।
पन्द्रह सै पिच्याणवैं, फागण सुद छठ जांण।
जा दिन से मेला भरे, या है सांची सहनांण॥

जैसे सीप समंद जल भीतरि, उर धरि रषै हीर ॥
बहौर्यूं जतन करै पुनि वाकौ, अंदर न भेदै नीर ॥२॥
ऐसें जानि भजौ बनवारी, तन मन प्रीति लगाइ ॥
जगजीवन जब जग तै न्यारा, बहौरिन उदर समाइ ॥३॥

हिंडोलनौ :—

अनंग हींडोलनौं हींडै हरि के दास ।
अधिक रूप उछाह आनंद, सबकी पुरवै आस ॥टेक॥
पांच तीन पचीस प्रकृति, काम क्रोध दोऊं नांहि ॥
मन मनसा नाद बिंद, मिलि रहै एकै ठांइ ॥१॥
अधर खंभ अगाध अनभैं, प्रेम प्रीति ल्यौ डोरि ॥
नवरंग नवल किसोर नागर, रहै हरि सूं जोरि ॥२॥
बमेक बादल बिवोग बिजुरा, स्वांति बूंद बरखाइ ॥
चाहै चात्रिग लवै सदई, घरहरै घन आइ ॥३॥
नांव नग जड़ाव झिलिमिलि, परम ज्यौति अपार ॥
अपार पेलै आतमरांम सूं मिलि, सांज्या सोडि सिंगार ॥४॥
इंगला पिंगुला गंगा जमुनां, सुरसती समभाइ ॥
त्रिबेनि तटि अकल तरवर, तहां रहे लुभाइ ॥५॥
जहां गगन मंझ जिलिमिलितारी, चतुर दशवैं द्वार ॥
अरस परस दोऊँ मिले मंगल, रमैं प्रभु पति नारि ॥६॥
जहां रैंनि द्यौसन तरंग तारा, अगम आनंद रूप ॥
नूर निरमल मुक्ति माधौ, जहां छांह न धूप ॥७॥
समाधि सागर भर्यौ लालनि, मंझु मोती हीर ॥
हंस खेलैं चुगह चंचु बिन, महा अमीरस हीर ॥८॥
परम सुख परमांन परमल, सरस सुगंध सनेह ॥
अघटा घटा घटा घट घट, निराकार निज देह ॥९॥

जहां जोग ध्यांन निबांन नहचल , सब संतन बिसराम ॥
जगजीवन जन देव निरंजन , अमर अखंडित ध्यांम ॥१०॥

अथ आरती—

आरती आरतिहरन तुम्हारी , निराकार की मैं बलिहारी ॥टेक॥
काया देवल देव अबिनासी , मन करि पूजा मनसा दासी ॥१॥
तन का तिलक पहोप ल्यौपाती , परम पुरुष जहां निज जन जाती ।२।
दीपक अनत अनत प्रकासा , बाजा अनंत अनंत खड़े दासा ॥३॥
अलख देव जा का सकल पसारा , कहै जगजीवन दास तुम्हारा ॥४॥
आरति रांम निरंजन भावैं , तेतीसूं मिल मंगल गावैं ॥टेक॥
चित करि थाल जोति जीव जागै , सबद अनाहद बाजा बागैं ॥१॥
घंटानाद प्रेमरस बांनी , अबिगति की गति जाइ न जानी॥२॥
घटमैं अनंत बजावै बाजा , सतगुरू सेइ सरै सब काजा ॥३॥
जस उनमांन भाव उन आगै , जगजीवन जन चरनां लागैं ॥४॥

साखी—

गाजे पठिये सुमरिये , लाजे उनमन ध्यान ॥
जगजीवन हरि सुमरिये , कबहू न बकिये आंन ॥१॥
आन बक्यां अंतर परै उपजै सोग संताप ॥
जगजीवन हरिभजन बिन सबद सबद में पाप ॥२॥

॥ इति ॥

---

३. स्वामी ध्यानदास जी

निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी के पश्चात् उनकी परम्परा मे, शिष्य–प्रशिष्यो तथा अनुयायी महात्माओं मे अनेक रचना कर हुए है। महाराज हरिदासजी के शिष्यो या समकालीन साथियो मे ही स्वामी ध्यानदासजी है। जन्म का व तिरोहित होने का निर्णीत समय तो ज्ञात नही है, वैसे इनका काल सोलहवी का उतरार्ध व सत्तरहवी शदी का पूर्वार्ध समझना चाहिये। ये भी द्वादश निरंजनी महन्तों मे सम्मिलित है भाऊदासजी ने महाराज हरीदासजी के शिष्यो मे नाथजी तथा ध्यानदासजी का अवधूत विशेषण से निर्देश किया है। प्यारेरामजी ने अपनी भक्तमाल मे इनका सामोद श्थान माना है। राघोदासजी ने रामदासजी और ध्यानदासजी का म्हार में होना माना है तथा साषी-पद–कवित्त की इनकी रचना का उल्लेख किया है।

छप्पय—

ग्यांन भक्ति वैराग त्यागि जिन नीको कीन्हौ।
भिक्षा पाई मांग जागि मन ईश्वर दीन्हौ॥
वांणी निर्गुण कथी आंन की आस उठाई।
साषि कवित पद ग्रंथ मांहि परब्रह्म सगाई॥
अंजन छाडि निरंजनी राघौ ज्यौं की त्यौं कही।
रामदास अरु ध्यांन की म्हार मधि महिमा भई॥१॥

उक्त पद्य से सिद्ध होता है कि राघोदासजी के काल मे इनकी रचना उपलब्ध थी और पर्याप्त संख्या मे निर्मित थी। मैने जहाँ तहाँ निरंजनी सम्प्रदाय के साहित्य का अन्वेषण किया तथा संग्रह किया उनमे इनकी रचना मे दो लघु ग्रन्थ गुण-माया-सवाद, गुणादिबोध मिलते है। साषी तथा कवित्त व पद भी नही मिले हैं दो साषी दो पद सामने आये है। चान्द्रायण अवश्य सौ से ऊपर है। भाषा राजस्थानी मिश्रित है। जब तक विशेष रचना प्राप्त न हो, तब तक प्राप्त रचना तक ही इनका सम्बन्ध माना जायगा।

॥ अथ श्री ध्यानदासजी का गुण माया संवाद जोगग्रन्थ ॥

एक कनक अरु कांमनी, सब जग लीया तुड़ाय॥
साध गहै मत मछ कौ, चढै अपूठे बाइ॥१॥

संतो सहजि सुनि मन लागा ,
उनमन चढ्या आकस सव परहरि, सबद गगन चढ़ि नागा ॥२॥
पांच पचीस उलटि घरि आवैं , तब मन अनंत न डोलै ॥
मूरति मांहि अमूरति दरसै , नाना बांनी बोलै ॥३॥
देह उलटि दरीया भई , तबै मन रहया समाइ ॥
रोम रोम बाजा घुरै , असथिर बैठो आइ ॥४॥
सूरौ जुडै सकल के आगै , काइर मीस छिपावै ॥
सतगुरु मिलै मूल जब बांधै , परम सुनि तब पावै ॥५॥
कहीऐ कहां ब्रह्म की महिमां , तेजपुन्ज अविनासी ॥
रूप अरूप कहां लगि बरनौं , नहीं गिरही वनबासी ॥६॥
अलप अभेद गहर गुनग्रामी , सरब भूत सुखदाई ॥
निराकार का गुन की महिमा , मो पै कही न जाई ॥७॥
ना वो तरुन विरध पणि नांही, ना वो गुरु न चेला ॥
सूक्ष्म रूप सकल तैं न्यारो , नहीं त्रिरछ नहीं बेला ॥८॥
ना वो उदै अस्त पणि नांहीं , सहजि सुनि पणि नांहीं ॥
गुण तैं रहत निरंतरि बैठा , ध्यान धरै तब मांही ॥९॥
अकल अभेव अतीत सकल संगि, गुन तें रहत विराजै ॥
दरीया धरनि सेस फुनि आपै , यंद्र लोक ॐ गाजै ॥१०॥
आपै चन्द सूर फुनि आपै , सप्त दीप नवषण्डा ॥
रापै अधर इकीसूं ब्रह्मण्ड , ऐसो पुरप त्रलिवण्डा ॥११॥
जार्यौ जरै न काट्यो सूके , पेल्यौ न जाइ न आवै ॥
काया नांही काला पनि नांही , दो जग कौन पन्दावै ॥१२॥
बाजी सूँ बाजी रमैं , गुन सूं गुन भरमावै ॥
अवगति तहां और कछू नांहीं , माया मोडि नचावै ॥१३॥
कंकाली केडै ऊई , कोई रहै सनेही साध ॥
अगम ज्ञान ऊपरि कऊं , माया सूं संवाद ॥१४॥

जीवतडां जग में रऊं, मूंवा न छोडौं लार ॥
पारा रिषसा पीटिया, डरपूं नहीं लगार ॥१३॥
हूँ छौं चेड़ी पहल की, हरि के रहूँ हजूरि ॥
पटदरसन मोमें मैंल्या, साध करत है दूरि ॥१४॥
सिध मा स्त्रासाधिक चुणि लीया, राज सुंरा को मांड्यो ॥
मौन जटाधर फेरि नचाया, यसो अखाड़ौ मांड्यौ ॥१५॥
काइर पडे सूरवां झूझै, सिध साधक सब हारचा ॥१६॥
सींगी रिष नारद मुनि ज्ञानी, चतर चुणे चुणि मारचा ॥१७॥
मन में हंसी देखि कर बिगसी, जोर जुलम जुध कीयौ ॥
च्यारि जुग कौ जोगी हो तौ, मोडि मंछिंद्र लीयौ ॥१८॥
हैहैकार भयौ वसुधा में, गोरष लागो गाढ़ौ ॥
अवधू सक्ति उडाई चटक्यां, मरद मरोडर काढ्यौ ॥१९॥
ब्रह्मा विष्णु तलै दे बैठी, रुद्र रोलि सुणि भागौ ॥
सूरा जुरे कंदरै काइर, मडीन देषै आगौ ॥२०॥
संकर जाय सुनि में बैठौ, बहुत रूप करि आई ॥
राष्यौ आय भगति की आगल, अबगति आंपि दिखाई ॥२१॥
सक्ति अहेडै नीसरै, धकौ सबल सूँ भागौ ॥
गोरष कहै चालती मारूं, कांनि गुरू तौं लागौ ॥२२॥
जुध मांही जोगी जुड़ै, काल कण्ठ चलि आयौ ॥
माया कहै मारती बोरू, गोरष हाथ उठायौ ॥२३॥
गुर कै वचन भरतरी झूझै, सक्ति सबद तैं मारी ॥
गंन गंध्रप जिनि सब संघारे, दलबल का अधिकारी ॥२४॥
हस्तामल हेलौ कीयौ, सुनिब बसष्टि वरियांम ॥
काचां नै कांमन करै, नहीं तहां लग कांम ॥२५॥

मकति मत्रायां ऊपरै, बैठी करै मलार ।।
दतकै मन दुवध्या नहीं, कायूं करै हथियार ।।२६।।
जडमरथ धूड़ी मंड्या, मिल्या आत्मा मांहि ।।
मोनी मैंवासै रहै, माया कै बसि नांहि ।।२७।।
कपल उतीरे उतर्यौ, कित्रम निपनि लेखै जुरयौ ।।
धुर बजायौ सार, रामचन्द्र सा ऊधरया छा दसवां औतार ।।२८।।
सुखदेव जुडै सकल कै आगै, रांकै रीठि संबाही ।।
नामदेव नीसान बजावै, साधू मिल्या सहाई ।।२९।।
नींका झूंभयौ नांनिकौ, सतगुर सबद सहारि ।।
निगम मोमि कान्हौ जुडै, अंगध कीयौ हथियार ।।३०।।
हवा जुड़ै हेला करै, जारि चिकौ वांजीद ।।
मुसलमान महमंद लडै, पीरां मांहि फरीद ।।३१।।
नभ सूं लडै बहावदी, जोवाको उनमांन ।।
गुरगमि गोपीचन्द लड़ै, गूदड़ियाँ मुलतान ।।३२।।
रामानन्द कारौ कीयौ, कहां जातांला वीर ।।
अनीं मिल्यां माजै नही, पत्री मंड्यौ कबीर ।।३३।।
दसौ दिसा जोधा जुड़ै, कीया ब्रह्म में वास ।।
भीडि पड्यां माजै नही, रिण रूतौ रैंदास ।।३४।।
पीपै मांही पलटि कर, डेरा दीया अगाऊ आइ ।।
भागां पणि छाडै नहीं, षत्रीपनौ लजाइ ।।३५।।
सूरवीर सौंझो जुड़ै, सबद लीयां हथियार ।।
मालां कै डर वाहुर्यौ, मरद दिखाइ मार ।।३६।।
हरिजन झूझै हरष सूं, काइर हूवा उदास ।।
मौंह मोडि चांलै नहीं, समन मोहिल हरदास ।।३७।।
ससतर सक्ति संबाहिया, खेतन जाऊं छोडि ।।
माया आवै मारती, केता लीया मरोडि ।।३८।।

झलका वाहै भरम का, दुरमति लीयां कमांण ॥
भागां पणि छाडै नहीं, भरि भरि मारै बाण ॥३६॥
जन कै पाषर प्रेम की, ग्यान तनौं गज गाह ॥
षेत मांहि पत्री मंड्या, सक्ति उल घरि जाह ॥४०॥
नौ जोगेश्वर दाहिणैं, बांवै महादेव मस्तांन ॥
सक्ति सिचांनां ज्यूं उडी, पछै न पावै जांन ॥४१॥
कुत्ती सूं कांई डरै, वैठौ ध्यान धनी सूं लाइ ॥
फाड्या कांनां बाघनी, फिसल पड्या नैं खाइ ॥४२॥
चहुँ दिसा साधू पड़ा, सब सन्तन को साथ ॥
परतन छोड़ा जीवंती, जौरती उठावै हाथ ॥४३॥
ऊंचा चढ़ि असमान कूं, गगन बइठा जाइ ॥
साधौं का दीदार की, महमा कही न जाइ ॥४४॥
अरध कंवल भाठी चिगै, उरधै बसैक लाल ॥
ऊर्म धूर्म सुषमना, पाया निगम निराल ॥४५॥
सुनि मांहि बाजा घुरै, नाना सबद् रसाल ॥
ध्यानदास तब पाइये, सतगुर होइ कृपाल ॥४६॥
ध्यानदास सतगुर कीया, हमसूं वहौ उपगार ॥
भौसागर सूं काढि करि, कीया पैली पार ॥४७॥

॥ इति गुण-माया-संवाद जोगग्रन्थ संम्पूर्ण ॥

॥ अथ गुणादि बोधग्रन्थ ॥

चन्द सूर तहां कछू नही, नहीं धरनि आकाश
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं तहां भोग विलास ॥१॥
तेज नहीं तारा नहीं, नहीं तहां रूप अरूप ॥
सबद् नहीं सुरता नहीं, नहीं छाया नहीं धूप ॥२॥

विष्णु नहीं ब्रह्मा नहीं, नहीं संकर नहीं साध ॥
सहज सरूपी राम था, अबगति अलह अगाध ॥३॥
षडग नहीं पत्री नहीं, नहीं धनक वहीं बांन ॥
उतपति परलै कछू नहीं, नहीं आवन नहीं जान ॥४॥
भिसत नहीं दोजिग नहीं, करम धरम नहीं कोइ ॥
ना कोई जनमै ना मरै, बिनसै जै कछू होइ ॥५॥
सुनि सरूपी रमि रहया, नहीं दूजा असथूल ॥
पेड़ नहीं साषा नहीं, नहीं डाल नहीं मूल ॥६॥
सुनि सरुपी सबद सूं, सूरति उपजी एक ॥
सूरति सूं माया हुई, ताका मता अनेक ॥७॥
ऐक सबद माया कहै, तू मारे भरतार ॥
पिता साषि पालू नहीं, अबला की औतार ॥८॥
आदिपुरस सांसै पड्यौ, लागी कौन बलाइ ॥
गुन करतां औगुन हुवा, वैरी कीयौ उपाइ ॥९॥
बाप बीर छोडै नहीं, पूत पूत करि पाइ ॥
मन जीतै मनसा हडै, बांधि नरकि ले जाइ ॥१०॥
पिता साषि जै पाल जै, सुनि माया मैमन्त ॥
तसकर राखै दोइ घर, आगै और अनंत ॥११॥
रंग फेरि रांमत करी, ब्रह्मा विष्णु महेस ॥
विषै बान लागै नहीं, जै जै तुम आदेस ॥१२॥
पलौ मांडि माया कहै, ब्रह्मा बूझूं तोहि ॥
परलै करसूं पलक में, कै घरि बासौ मोहि ॥१३॥
बासै लागी व्यसन कै, कोमल कथा पिछानि ॥
मनी कीयां मारू परी, छोड़ौ नहीं निदान ॥१४॥
तांमस करि ताता हुवा, यौ अनरथ क्यूं होइ ॥
पहली म्हे माता कही, अब घरि वासां तोहि ॥१५॥

तब पाव मांडि ऊभी रही, भस्म कीया पल मांहि ॥
एक सबद माया कहै, अकलि बिना यौं जांहि ॥१६॥
सुनि हाथ लागै नहीं, हमसूं पूगी आइ ॥
करम कसाई कौ लीयौ, को पुत्र विनांसै माइ ॥१७॥
सुनि संकर साची कहूं, ग्यान मांहि गम देष ॥
तोहि मारि माया कहै, सेऊं चरन अलेख ॥१८॥
स्वाति सबद संकर कहै, और रूप धरि आव ॥
इतनौ षडग उठाइजे, तितनौ घाले घाव ॥१९॥
दोन्यौ बीर जिवांइदे, कै फिरि मारौ मोहि ॥
तीन्यूं व्है बांधा तनी, ज्यूं घर वासां तोहि ॥२०॥
तब अमी सीचि ऊंभी रही, सती सूर समि भाइ ॥
ऐक सबद ऐसौ कह्यौ, मुरदा लिया जिवाइ ॥२१॥
सुणौ बीर ब्रह्मा कहै, जीवांला कै काल ॥
देह धरी हरि भजन कूं, उलटा पड्या जंजाल ॥२२॥
अकलि सोधि संकर कहै, घर मैं ऊठी लाइ ॥
फलसा ही सूं परजली, सौ कित बांची जाइ ॥२३॥
घरवासी घरनी करी, मनसा कौ आतार ॥
बस्ती मेल्हिर बन वसै, तऊ न छाडै लार ॥२४॥
ग्यांन समझि संकर कहै, नीच करम कछू नांहि ॥
आपा सौंपै अलप कूं, सो सदा जीवै जग मांहि ॥२५॥
सदा जीवै जुगि जुगि अमर, सूतर ब्रह्म विचार ॥
ज्यूं पारस तांबै छिवै, कंचन होत न बार ॥२६॥
दिनां बडौ कीजै कहां, अकलि बड़ी तो मांहि ॥
जोग साध सेवा करौ, कांठौ छाडौ नांहि ॥२७॥
अकलि बडी आसण अडिग, ग्यांन लीन औधूत ॥
धरौ जोग संकर लियौ, वै माया का पूत ॥२८॥

ब्रह्मा घडै कुम्हाल ज्यूं, विष्न धरै औतार ॥
जोग साध ऊभा रह्या, सो देखै सब छार ॥२९॥
आडी तिरछी सांम्ही, सक्ति तनी तरवार ॥
षड दुश्मन संसार सब, कतल कीया इन मारि ॥३०॥
सावत्री ब्रह्मा वरी, लिछमी विसन घरांह ॥
पारवती संकर कनै, नारी और नरांह ॥३१॥
माता सूं नारी भई, पूत भया भरतार ॥
ऐसा अचिरजि देखि करि, मागे मागणहार ॥३२॥
जे मागा ते ऊबरया, मारया खलक फिटाइ ॥
जाकै आदि अंकूर था, ताकै निकटि न जाइ ॥३३॥
अगम कथा ऐता हुवा, दत गोरष सुषदेव ॥
हनूमान लछमन जती, पैंडा अगम अछेव ॥३४॥
मूल मछन्द्र ऊपनो, सकल जोग ता मांहि ॥
ताकै सिष गोरष जिसा, माया के बसि नांहि ॥३५
जाकै सिष गोरख जिसा, सो गिरही क्यूं होइ ॥
महामाया सूं षिम षरी, चत्र न समझै कोइ ॥३६॥
केता मारि डिगाईया, केता डिगता जांहि ॥
एकै सीत टंटोलिजे, हाथ न दीजै मांहि ॥३७॥
कोई नांइ लागि न्यारा रहे, सुख दुष लखै न कोइ ॥
अलख भजै आसा तजै, सो कछू निरभै होइ ॥३८॥
गोपि कथा नारद सुनि, महादेव को जाप ॥
नौ जोगेस्वर जनक कै, संकर कौ परताप ॥३९॥
राजा कोडि निनांनवै, नरवै साधै जोग ॥
सिध चौरासी नाथ नौ, तिनका मिल्या संजोग ॥४०॥
रांकौ बांकौ नामदेव, रामानन्द रैदास ॥
करड़ी कथा कबीर की, अगम निजरि आकास ॥४१॥

उक्त हिन्दी-रचना प० रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य आशाराम दाधीच कृत है। इससे भी स्थान, जाति, पेशा, जीवन-काल पूर्ववत् ही सामने आते है। इनने उपदेश देने वाले गुरु गोरखनाथ के स्थान पर परमपिता जगन्नियन्ता को विप्ररूप धर उपदेश देने का उल्लेख किया है, इनका यह उल्लेख भी पूर्णदासजी की तरह काल्पनिक है। यह कल्पना शायद इसी विचार से की गई कि उनके समय मे प्राय. ही निरंजनी महात्मा तिलक, कंठी, यज्ञोपवीत धारण कर मन्दिर-पूजा करने लग गये थे। साधु-वर्ग की उस स्थिति का गोरखनाथजी के निर्गुण भक्ति उपदेश से सामंजस्य नही बैठाया जा सकता था इसीसे इस तरह की कल्पना की गई। इनने भी अन्तिम काल पन्द्रह सौ पचानबे ही लिखा है। आयु भी एक सौ बीस वर्ष की लिखी है इसमे जन्म-काल भी चौदह सौ पिचहत्तर अपने आप आ जाता है।

स्वामी जानकीदासजी बालोतरा रचित "जीवन-चरित्र" रचना-काल सं० १९६२

बालोतरा निवासी महात्मा रामरतनदासजी के सुयोग्य शिष्य जानकीदासजी ने दोहे-चौपाई मे महाराज हरिदासजी के जीवन-चरित्र की रचना की। उनने अपने इस जीवन-चरित्र मे प्रमुखतया हरिपुरुषजी के चमत्कारी परचो का विस्तार से वर्णन किया है। उनने इनके जन्मस्थान, कार्य आदि का भी निरूपण किया है उसके आवश्यक अङ्ग नीचे दिये जाते है जिनसे हरिपुरुषजी महाराज के जीवन पर प्रकाश पडता है। वे लिखते है —

चौपाई—तब हरिदास धर्यो अवतारा, करण सकल जीवन उद्धारा।
मारु सुदेस जिला जोधाणे, कापडोद शुभ ग्राम बखाने॥
तहाँ के ठाकुर अति रणधीरा, बलबुधि निपुण भक्त हरिजी रा।
जाति शांखला सूरजवंशी, राजपूत कुल सब अवतंसी॥

दोहा—तेही की तिरिया भगत हरि, रूप शील गुण खानि।
ता के उदर सु अवतरे, करन जगत कल्याणि॥

× × ×

चौ०—दिलवायो हरिसिंह जू नामा, हृष्ट-पुष्ट तनु परम ललामा।
इहिं विधि बाल अवस्था बीती, तरुणाई आई मनचीती।
केऊ ग्राम के ठाकुर भारी, तिन कन्यागुण रूप अपारी।
होवत भयो ब्याह तिन संगा, धूमधाम सू भरे उमंगा॥

परचा सूं पीपौ मिल्यौ, सोंभौ काढै सीव ॥
पांचौ दे बैठा तलै, तब मुख देष्या पीव ॥४२॥
किती कथा काढैं रही, अगिणत साध अनेक ॥
सारगराही सकल कौ, बंदीवांन दिस देषि ॥४३॥
करनां सुनि करनंमई, जन की करौ सहाइ ॥
आदिनाथ बिरदावली, 'ध्यानदास' बलि जाइ ॥४४॥
आदि अंति मधि संत सब, अगिणत गिन्या न जांहि ॥
ध्यानदास साहिब सुमिर, सब आये उस मांहि ॥४४॥

॥ अथ श्री स्वामी ध्यानदासजी का चान्द्रायण ॥

राम राम रमि राम निरंजन गाइरे ।
यूं तूं जपिए करतार, पछै तन जाय रै ॥
हरि हरि सुमरि अयांन कहा नर सोय है ।
हरि हां ध्यानदास बिण ऐक कोण का कोय है ॥ १ ॥
नारायण गोब्यंद गोपालस गाईये ।
तौ दीनानाथ दयाल निरंजन पाईये ॥
राम रहीम करीम अलाह उरि आंनि रै ।
हरि हां ब्रह्मा बिष्णु महेस जपै सोई जानि रै ॥ २ ॥
गंगा जमुना आंणि मिली दरियाव कूँ ।
मन मनसा का प्रेम मिलेगा भाव कूँ ॥
भाव तहां भगवन्त सुरति रस मांनई ।
हरि हां औ तीरथ जन ध्यान जगत कहां जांनई ॥ ३ ॥
मसि कागद नहीं दोतिन लेखणि नावड़ै ।
जीव का कहां तुडांण उलटि ओंहटा पड़ै ॥
सुरगुण बांजी जांणि निपट निरगुण धणी ।

हरि हां ध्यानदास यौह ग्यांन मैंन गूंगा तणी ॥ ४ ॥
गूंगा केरी मैंन न समझै कोय रै ।
पुस्तग बेद पुरांण पढ्यां क्या होय रै ॥
भरम जड़ी जीव छांडि न गावै रांम रै ।
हरि हां ध्यानदास रंगराग न चावै कांम रै ॥ ५ ॥

नट नाटिक संसार कहा रंग रोस रै ।
थक्यो बटाऊ बीचि नग्र नौ कोस रै ॥
द्योस थकां चलि पंथि पछै ह्वै सांझ रै ।
हरि हां ध्यानदास सुतसालन जांणै बांझ रै ॥ ६ ॥

मनिख जनम की मौज, भला यौह पोत है ।
कालद मांनक देत फेर नहीं जोत है ॥
ध्यानदास भजि राम अंति सिर मौत है ।
हरि हां यौह सरवर यौह हंस बिछोहा होत है ॥ ७ ॥

केसौ रमता राम भजौ भगवंत रै ।
लागि रहे बहु संतस कोटि अनंत रै ॥
बेद पुराण कुराण न पहुंता कोय रै ।
हरि हां जन कीटी तैं भृंग रहै तब होय रै ॥ ८ ॥

सुमिरन सास उसास करै जै कोय रै ।
मनिख न बिसरै नांव बड़ा है सोय रै ॥
बिद्या बेद पुराण पढै सो बावरौ ।
हरि हां सब फोकट जन ध्यान भरोसौ राव रौ ॥ ९ ॥

राम सुमरि दिन राति बात सुनि मोर रै ॥
राव रंक सुलतान गऐ करि जोर रै ।
पैकंबर अर पीर गिनौं कहा और रै ॥
हरि हां ध्यान कहे यौह ग्यान चलै कहा तोर रै ॥१०॥

नारायन को नांव निरंतरि गाय रे ।।
लख चौरासी जूंनि परै नहीं आय रे ।।
ध्यानदास बिसवास राखि मन मांहि रे ।।
हरि हां रे लाखो का सास अबिरथा जाहि रे ।।११।।
सारूं सार बमेकै मनी मन त्याग है ।।
जाकै अंतरि होय यहि वैराग है ।।
ध्यान कहै जुग मांहि कौण बड़ तास की ।।
हरि हां बिमरन जाय साध अलप की आसकी ।।१२।।
मन माया में लीन भगति कहां होय है ।।
काल गहै कर केस तबै नर रोय है ।।
झपटि सिचांणा कालि पकड़ि ले जायगा ।।
हरि हां ध्यानदास वह मूंढ तबै पछितायगा ।।१३।।
जब लग त्रिषै विकार कहा मन सुधरै ।।
अजा कंठ अस पान नहीं टुक दूधरै ।।
महकी सुत ज्यूं मार दस्रूं दिस खांयगे ।।
हरि हां ध्यानदास जमदूत पकड़ि ले जाँहिगे ।।१४।।
ऐको ऐको ऐक अनेकर ऐक रै ।।
जाणै जाणणहार बरण नहीं भेप रै ।।
साखा पत्र न मूल मूल नहीं डाल रै ।।
हरि हां ब्रह्म असौ बिण देह करै प्रितपाल रै ।।१५।।
माया मेल्हिन बीर बड़ा उरि साल है ।।
जो परच्या हरि हेत किता ही माल है ।।
धन संच्या जन ध्यान कहौ कोई खात है ।।
हरि हां सिरलीयां कहूँन चल्या ही जात है ।।१६।।
माया मुकती राखि वंधी दुप पाय है ।।
हरि कूँ अरपि गंवार देह पणि जाय है ।।

ध्यान कहै बरीयांम बस्या बेगांन रे ॥
हरि हां सृति करै उपदेस मुनीह किन कानि रे ॥१७॥
परमेस्वर के साध संतां कलि कौन है ॥
करि सारी कौ त्याग मनौ बन मौंन है ॥
कबहू विसरन जाय धनी कौ नांव रे ॥
हरि हां ऐक जीव की कहा तिरै सब गांवरे ॥१८॥
साषी ध्रू प्रहलाद धनौ रैदास रे ॥
जे लागा हरिनांव गिनांऊं तास रे ॥
अनंत कोटि जन ध्यान बंदा भगवंत का ॥
हरि हां उन धरणी सिरमौर चरण जहां संत का ॥१९॥
काहे कूं बेकाम कीया गढ़ मालिया ॥
जो रहता इन मांहि स जंगल जालिया ॥
जीव संचत है आथि और ही खायगा ॥
हरि हां यौह पंथी जन ध्यान विदा ह्वै जायगा ॥२०॥
बसती नगरी छांडि, ऊंदानि बसाहुगे ॥
धणी न कीया यादि, अंति पछिताहुगे ॥
बसुधा कपारि काल, खलक कूं खात है ।
हरि हां ध्यानदास भजि राम, भला छक जात है ॥२१॥
पातिसाह सुलितानक, रांना राव रे ॥
भजन बिहूंणा बादि, सबै धंध बावरे ॥
दिन दस डौर डंफाण, अंति चलि जाहिगे ॥
हरि हां ध्यान कमाई खोट, पछै पछितांहिगे ॥२२॥
मठ देवल गढ़ कोट, छत्र सिर धारने ॥
गैंवर किलकै बारि, पिसण चढ़ि मारने ॥
गरद भऐ ते जोध, नहीं सहनांण रे ॥
हरि हां ध्यानदास जम जोर, चलै क्या पाण रे ॥२३॥

हसम घरट घमसांण, चढ्या चढ़ि छूटना ॥
मैंवामा मैं मन, अड़ि गढ़ लूटना ॥
ढाल धजा फहराइ, ये करि तेगला ॥
हरि हाँ ध्यानदास भजि राम, सकल मैं से भला ॥२४॥

सूंघौ तेल फुलेल, नास अंगि लावते ॥
हरम सहेली साथि, सेज सुप पावते ॥
राग रंग सुर ग्यान, सकल रस भोग रै ॥
हरि हाँ ध्यानदास करि सोच, कहाँ पै लोग रै ॥२५॥

चोवा चंदन बास, अंगि लपटावते ॥
हरम महैलां साथि, कलांवत गावते ॥
ध्यानदास वै लोग, मुसांणौं मांहि वे ॥
हरि हाँ हैडो मैंडौ छांड़ि, अकेले जाहि वे ॥२६॥

सोला सै सिंणगार, रहैं ढिग भामनी ॥
लीयां पीयालां हाथि, दसौं दिस कांमनी ॥
चीधडिया लष कोड़ि, षड़ा दरबार मैं ॥
हरि हाँ ध्यानदास विणि राम, गये मिलि छार मैं ॥२७॥

ऊँचा पलौटे पांव, वहौत रुचि मानते ॥
मो सर भर नहि कोइ, महा यूं जानते ॥
रथ हसती दल साजि, पड़ै रिन मांहि रै ॥
हरि हाँ ध्यानदास बिण रामस, पाली जांहि रै ॥२८॥

पद—

सषी री वधावणो आज म्हानैं गुरु मिलिया गोपाल ॥
अकल नेतर षोल दीन्हा, मैटि माया जाल ॥टेक॥

समता त सूकडी अगर आरति, स्वांत सुरति विसाल ॥
कँवल दल लपटाइ राषूं, आइए प्रतिपाल ॥१॥

चित चंदन घसि तिलक काढ़ों, मात मगनि गुलाल ॥
अर्थ अबीर उड़ परन मत्र पति, पेम उर धर माल ॥२॥
प्रीति पहुप बिछाइ दाह दिसि, रमों दीनदयाल ॥
तेज नूर अरु तूर बाजै, सबद घेरा ताल ॥३॥
दीनता करि सदा राषूँ, जगतगुर मेरे लाल ॥
जन ध्यानदास उदास तातें, मिल बिछुरन उर साल ॥४॥

सषी री क्यूं मन लागै हो,
आडा डूँगर बीच बनी, यौ जीवन जागै हो ॥टेक॥
दसों दसा झीडा घना, वटपाडा लूटै हो ॥
सतगुर सीषां संचरै, तेई जन छूटै हो ॥१॥
काचर बोरां लागिया, कोई पंथ न काटे हो ॥
सूरवीर सांचै मतै, पहुँचे सिर साटे हो ॥२॥
जोगी जंगम तपसी, कोई वचखन पावे हो ॥
दूती माया मोहनी, ताहि दया न आवे हो ॥३॥
स्रषिम मारग और है, साधूं मौ पाया हो ॥
सौनों जाय उछालता, गुरु भेद बताया हो ॥४॥
ध्यान कहै सेवा सही, मनसा घर आने हो ॥
भीतर भेद अगाध का, मन भूल पिछाने हो ॥५॥

॥ इति ॥

४. महात्मा मोहनदासजी तथा उनकी रचना

महात्मा हरिदासजी की तरह वाणी रचयिताओ मे महात्मा मोहनदासजी भी आते है। इनका समय सोलहवी का उत्तरार्ध व सतरहवी सदी का प्रथम पाद कहा जा सकता है। राघोदासजी व हरिरामदासजी के मत मे मोहनदासजी द्वादश निरजनी महन्तो मे आते है। भाऊदासजी के विचार से ये महाराज हरिदासजी के प्रमुख शिष्यो मे आते है। निरजनी सम्प्रदाय के भक्तमालकार प्यारेरामजी के मत ये देवपुर मे विशेष रहने वाले थे तथा ये भी इनका बारह महन्तों मे उल्लेख करते है। मोहनदासजी की परम्परा अब भी विद्यमान है। इनका स्थान डीडवाणे मे है और वह पर्याप्त प्राचीन है। इसी थांभे के महात्मा बालकिसनजी (लोटनजी) जो मोहनदासजी की पाचवी पीढी मे थे जिनके उपनाम के कारण ही अब तक यह स्थान लोटनजी के बाडे के नाम से प्रसिद्ध है। लोटनजी का स्वर्गारोहण सम्वत् अठारैसो चौदह मे हुवा उनके शिष्य जयरामदासी ने उनका स्मारक छतरी व उसमे चरण-प्रतिष्ठा सम्वत् अठारह सौ पैसठ मे की। इसीसे सिद्ध होता है कि इस थांभे की परम्परा का सम्बन्ध डीडवाणे मे ही चल रहा है। देवपुर का पता नही है कि यह कौन सा स्थान था। भाटकी बही मे मोहनदासजी के स्वर्गारोहण का काल सम्वत् सोलह सौ नौ लिखा है। इसको प्रामाणिक माना जाय या नही तो भी मोहनदासजी का समय उपर्युक्त होने मे संशय नही है।

मोहनदासजी की रचना मुझे मेरे भ्रमण तथा प्रमुख स्थानो के संग्रह मे कही नही मिली। राजस्थान मे जैन साहित्य के प्रमुख संग्राहक तथा प्राचीन साहित्य के प्रेमी अगरचन्दजी नाहटे के अभयग्रान्थागार मे एक गोटका इनकी रचना का मिला। इस गुटके का लेखनकाल सम्वत् १८८२ माह सुदी ८ है। लेवक रामजोदास स्थान कालख है। इस गुटके में इनकी वाणी का जो संग्रह है उसमे पाचो अगो की करीब एक हजार साषियाँ हैं अकेले विरह के अंग की चार सौ तेरह साषियाँ है। चार अंगों की साठ चन्द्रायण है। आठ रेषते पांच सबद पाँच आरती है। यह रचना अपूर्ण प्रतीत होती है। इनकी और कितनी रचना है यह अभी कुछ नही कहा जा सकता। इसी गुटके में इनके शिष्य रामजीदासजी की भी कुछ रचना है। रचना कैसी है-यह रचना पढकर पाठक स्वयं निर्णय कर ले।

॥ महात्मा मोहनदासजी की रचना का कुछ अंश ॥

चन्दना छप्पय

नमो निरंजन राम, नमो देवन के देवा।
निराकार निरलेप, नमो तुम अलष अभेवा ॥

नमो सर्व व्यापीक, थूल सूक्षम सब मांही।
नमो जगत आधार, नमो जगदीश गुँसाही ॥
सचरान्तर भरपूर हो, घाट बाध नहीं कोय।
मोहनदास वन्दन करै, मन आनन्द घन होय ॥१॥

साखी- दौड थकी संसा भगा, दूर हुई सब आस ॥
अब हरि में हरिदासबी, निसदिन करै निवास ॥२॥
मोहन बो घट देह को, जांणै हरि का दास ॥
जिन पै गुरु किरपा करै, ताको घर में वास ॥३॥
मोहन का महबूब तो, है सब का सिरमौर ॥
सबी उसी के आसरे, उस पै नांही और ॥४॥
मोहन के महबूब का, कोई न पावै पार ॥
ब्रह्मा विष्णु महेशबी, थकै विचारि विचारि ॥५॥
पूरे से परचा भया, दुप सुप मेल्या दूर ॥
मोहन सदा आनन्द में, झिलमिल झिलमिल नूर ॥६॥
पूरे से परचा भया, पाई पूरण मौज ॥
अविनासी से मिल रह्या, गेरयो सिर से बोझ ॥७॥
पूरे से परचा भया, पाया पद निरवाँण ॥
दौड़ थकी संसा भगा, मिट गई खेंचाताँण ॥८॥

रेपता-- गाफिल होय मत हरि ध्याय नर तन सुफल करिये पाय।
हो जा गरक सब छिटकाय जम तोय निकट नहिं आवे ॥
मोहन है यही सार आपा मेटि मन को मार।
आपा मेटि हरि उर धार क्यूं ना परमपद पावे ॥९॥

चान्द्रायण-हिरदै हरि का भाव आन नहिं चावबी।
मिथ्या दीपै सरब रंक ज्यूं राव बी ॥
सब जग सूं विरकत कछू न सुहाय है।
हरि हाँ—मोहन मन हरि तजि कहीं नहिं जाय है ॥१०॥

सतगुरु दीनदयाल परम किरपाल हैं ।
निरधन को धनवंत करैं ततकाल हैं ॥
जगत मांहि गुरु और जहाँ लग स्वारथी ।
हरि हाँ—मोहन एसा नांहि कोई परमारथी ॥११॥

हरि हरि निमदिन करै न भ्यासै आनवी ।
ज्यूं चकोर विन चंद कँवल विन भानवी ॥
चात्रक ज्यूं विन स्वाति कंथ विन नारि है ।
हरि हाँ—मोहन जैसे बाल मातु विन ख्वारि है ॥१२॥

हरी मिलन की चिंत कछू न सुहाय है ।
विरह अगनि दिन रैन धुंधवि मांहि है ॥
धुँवा पिरगट नांहि लगी सोई जांणि है ।
हरि हाँ—मोहन कोई नांहि और पहिचाणि है ॥१३॥

हिरदै हरि का चाव आन नहि चाववी ।
मिथ्या दीषै सरब रंक ज्यूं राववी ॥
सब जग सूं हो विरक्त कछू न सुहाय है ।
हरि हाँ—मोहन मन हरि छाडि कहीं नहि जाय हैं ॥१४॥

सन्तन को अधिकार जगत सें तरक है ।
रांम मिलन की प्यास प्रेम में गरक है ॥
निसदिन षोजत फिरै कोई एसा मिलै ।
मोहन दे परसाद कँवल मेरा षिलै ॥१५॥

पद-होरी—

षेलत फाग प्राणपति पिव सूं, सोई सुहागणि नारी हो ॥
अन्तर्यामी सूं होय हिलमिल, आपो देय विसारी हो ॥टेक॥
अपणे पिव संग फाग रच्यो है, सुरति सदा मतवारी हो ॥
पाँच पचीस सषी संग लै के, रंग रस कीन्हो भारी हो ॥१॥

बाजा अनन्त बजैं नाना विधि, फाग बरयो अतिभारी हो ॥
प्रभु पति सूं सब ही जाय लपटी, संग सषी मति टारी हो ॥२॥
भर भर रंग डारे प्रभु पति में, रस छकि भई मतवारी हो ॥
सो सुष कह्यौ जाय नहिं मुष में, अगम अगाध अपारी हो ॥३॥
प्रभु पति मिल आनंद भयो भारी, जनम मरन दुष टारी हो ॥
"मोहनदास" सतगुरु कृपा से, फाग रच्यो सुषकारी हो ॥४॥
परम गुरु खेलो होरी, मैं तो भीज गई सारी ॥
सोधी रही नहीं मोरे तन की, लोकलाज खोई सारी ॥टेक॥
प्रेम को रंग लगन पिचकारी, मेरे भक्तां भर मारी ॥
ग्यांन गुलाल मल्या मुष मेरे, दूर हुई अंधियारी ॥१॥
भर्म कर्म के गढ कों तोड्या, सराप सकल निवारी ॥
मेवा मोक्ष फाग मोहे दीया, जम की त्रास निवारी ॥२॥
मोहनदास तासु बलहारी, जिन सब विपति निवारी ॥३॥

आरती—

निरमल आरती देव निरंजन, तुम ही में उपजैं सब भंजन ॥टेक॥
तुम ही सब के करता हरता, तुम ही में सब फिरैं विचरता ॥
तुम ही में सब नाचै गावैं, तेरी भणक सब तोहि सुनावे ॥१॥
तुम में तीरथ तुम ही जाती, तुमही देव और तुम ही पाती ॥
तुम ही पिंड ब्रह्मंडा अधारा, तेरा ही यो सकल पसारा ॥२॥
तेरीं आरती तूँ ही गावैं, तेरी भक्ति तो कूँ तूँ ध्यावैं ॥
तूँ ही जगजीवन जगत उजारो, मोहनदास को निरजनहारो ॥३॥

॥ इति ॥

दोहा- एक समै हरिसिंहजी, चंचल चढ़े तुरंग।
जात भए बन भूरि जहां, करण शिकार उमंग ।।

चौपाई-करण लगे शिकार मुद मानी, तिहिं क्षण आये गोरख ग्यानी।
लख हरिसिंह जू कियो प्रणामा, तब बोले गोरख मतिधामा।
इन जीवन को तुम मत मारो, जीव हिंस्या पातक अति भारो।
जितने रोम तासु तन माही, तितना सहस नरक भुगताहीं।
जीव बदलो छूटत नहिं भाई, तातें तजहु हिंसा दुखदाई।
देखहु जग में थोरा जीना, काहे पातक करो मलोना।

× × ×

सुनत ही वचन भयो विरागी, उपजी हरिचरण अनुरागी।
कर गोरख को डंड प्रनामा, तुरत चले गिरि गुहा ललामा।
कर पद्मासन बैठे स्वामी, भजन लगे हरि अन्तरयामी।
अडिग समाधि लगी तिहि वारा, ररंकार धुनि होत अपारा।

दोहा—इहिं विधि हरिपुरुषजी, योग समाधि दृढ़ धार।
भजन कियो परब्रह्म को, काम क्रोध मद मार।

चौपाई-फागन शुक्ला षष्ठी आई, उत्सव होन लग्यो अधिकाई।
बावन शिष्य स्वामी जू केरे, सम्मुख बैठे मुख सब हेरै ।।
इहिं विधि कहत कहत निज ज्ञाना, देख परयो नभ मांहिं विमाना।
तव प्रभु ब्रह्मरंध्र मग भेदी, रवि शशि उदय केर मग छेदी।
जात भये निज धाम मंझारी, दिव्य बाज बाजै तेहि वारी।
संवत सोलह सो सई कै, हरिपुरुष गये धाम हरि कै ।।
संवत चवदा सो पचहत्तर, जन्म लियो हरिदास जु बुधवर।
जो यह कथा सुनै अरु गावै, सो जन निजानंद पद पावे ।।

दोहा- संवत उनईसा कही, साल बासटै जान।
फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी, भई समापत मान ।।

।। रामजीदासजी की रचना ।।

सवैया—

तुम दयाल मैं दास हूँगा स्वामी दीन ही जान गरीब निवाजै ।
वीषरी सुरति समेट करो घर द्यो हे दीदार सरै सब काजै ।।
सतगुरु दयाल किये हैं निहालज और उपाधि सवै भ्रम भाजै ।
रामजीदास कहै कर जोरि जू मोहन स्वामीजी सीस विराजै ।।१।।

मनहर—

अवधि अलप जामें जीव सोच पोच करै
जानें कछु करूँ अब कहा कहा कीजिए ।।
पार न पुरान को कुरान हू को अन्त नांहि
वांणी हू बहुत कहाँ कहाँ चित दीजिए ।।
काव्यकी कला अनेक छन्द के प्रबन्ध अति
रांग हू रसीले रस कहाँ लग पीजिए ।।
वीसों वाता एक वात "मोहन" बताये जात ।।
सबही सुधार जो पै रांम नांम लीजिए ।।२।।

सवैया-सतगुरु सहायक ब्रह्म मिलायक नायक है सब भक्तन केरो ।
है सुषसागर भक्ति उजागर ग्यांन को आगर भरम निवेरो ।।
बाहर भीतर एक सदा रस वार न पार न अंत न नेरो ।
रामजीदास कहै कर जोरि जू मोहन स्वामी को हूँ नित चेरो ।।३।।
मोहनलाल लष्यो सो निहाल कटे जमजाल सो लाल ही पइये ।
पूरण ग्यांन भक्ति के भांन मिले ब्रह्म जांनि सो सहज समइये ।।
आवन जाय रह्यौ सब छाय सदा एक भाय से आनन्द थइये ।
रामजीदास प्रकाश करे गुरु मोहन शरण अभै पद लइये ।।४।।

पद— मोहन रांम सहाय, सदा गुरु मोहनराम सहाय ।।टेक।।
सब सुषदाता दुष के भंजन, इक रस रहे समाय ।।
सेवग के स्वामी अन्तर्जामी, अपणो विडद निभाय ।।१।।

शरण गहे की लाज तुम्ही कों, अबकें लेहु बचाय ॥
स्वार्थ जगत में माप देख्यो, ता में रहे लुभाय ॥२॥
संत भरम कें फंद काटे, वासना मिट जाय ॥
भूल को सब भरम उपज्यो, मान ले वह जाय ॥३॥
रामजीदास गुरु मोहन मिलिया, मेर मिटी सुष पाय ॥४॥
॥ इति ॥

५. महात्मा षेमदासजी बडे

महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो में दो षेमदासजी थे। इनमे बडे षेमदासजी के नाम के साथ हजूरी विशेषण का प्रयोग किया जाता था। दूसरे षेमदासजी छोटे या खाटरे विशेषण के साथ सम्बोधित होते थे। जिनकी कुछ रचनाएँ प्राप्त है, ये बडे या हजूरी षेमदासजी है।

राघोदासजी की भक्तमाल के अनुसार षेमदासजी द्वादश निरजनी महन्तो मे थे। उन का प्रमुख क्षेत्र सिवाड माना गया था। प्यारेरामजी ने भी उनका यही स्थान माना है। प्राणिमात्र से प्रेम, निर्गुण उपासना, परमत्याग, भिक्षा मे निर्वाह ये उनकी विशेषताये थी। षेमदासजी अधिक समय महाराज हरिदासजी के सान्निध्य में रहे थे। इसीसे उनकी हजूरी सज्ञा पडी थी। डीडवाणे मे जहाँ महाराज हरिदासजी का स्मारक स्थान समाधि है, उसी के संमुख षेमदासजी का भी आवासस्थान बना हुआ है जिसको षेमदासजी का झरोखा कहते है। स्थान काफी प्राचीन है।

षेमदासजी द्वादश निरंजनी महन्तों मे कथन किये गये है पर वे महाराज हरिदासजी के शिष्य थे यह बात स्वय उनने अपने लघु ग्रन्थ "विरागलछी" की समाप्ति पर "गुरु मेरे हरिदास, जिन किया बुधिप्रकाश" इस उक्ति से व्यक्त की है। निरंजनी सम्प्रदाय में सबसे अधिक साधुओ की संख्या उन्ही की परम्परा मे रही है। वर्त्तमान मे भी इन्हीं की परम्परा के साधु सबसे अधिक है। षेमजी की छठी पीढी मे महाराज अमरपुरुषजी हुए थे उनके शिष्य-प्रशिष्यो का प्रसार बहुत अधिक रहा। डीडवाणे का विरक्तवाडा उन्ही की परम्परा का है। सेवजी की बगीची हरनामदासजी का वाडा भी उन्ही की परम्परा का है। वैसे षेमजी की परम्परा का निरूपण भूमिका मे है। अमरपुरुषजी महाराज अधिक समय का लिये विराजे थे। उनका स्वर्गारोहण भी वही हुआ। उनके स्मारकरूप समाधि-स्थान भी

कोलिये मे बना हुआ है। अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य नारायणदासजी वाडे के महन्त के रूप मे आसीन हुए। कोलिये मे उनके शिष्य कुशालदासजी रहे। उनकी परम्परा इस तरह है—१. कुशालदासजी २. चेतनदासजी ३. भीषमदासजी ४ सूरदासजी ५. रामकिसनजी ६. भोलादासजी वर्त्तमान मे।

षेमजी महाराज की रचना यह अत्यल्प प्राप्त है। १ चितावणी २ विराग लछी एक पद। और रचना है या नही रचना जिस पुस्तक से उद्धृत की है उसका लेखन काल सम्वत् १८२३ है। भाट की बही के अनुसार इनका स्वार्गारोहण सम्वत् १६१२ जेठ सुदी ६ है।

॥ षेमदासजी की रचना ॥

चितावणी—१

दोहा—

काहू पूरब पुन्य करि, तैं पाई नर देह ॥
कै महरवांन हो मौजदी, जन्म सुफल कर लेह ॥१॥
दस महीनां गर्भवास में, तहां रह्यौ मुष मूंदि ॥
जहां तात मात की गम नहीं, वहां रापनहारा कौन ॥२॥
नप चप सौंज बनाय करि, प्रभु आन्यो मुक्ती ठौर ॥
निपजी में साझी घणा, धनी भए तब ओर ॥३॥
सावधान होय चुप रहे, चितयौ है चहुँ ओर ॥
वाट वीचि ही ले गए, बसत साह की चोर ॥४॥
पंचकै तन काहू रच्यो, बच्यो अगन मंझार ॥
जब इनमें कहू कौन था, जो अब कहै हमार ॥५॥

चौपाई—

माता कहे सुत मेरोक, रापूँ जीवतैं नेरौक ॥
ना रहूँ नेकहूँ न्यारीक, पुत्र कै वदन पर वारीक ॥
पिता कूँ बहुत ही प्यारोक, करे नहिं द्रष्टि तें न्यारोक ॥
हरषै देष करि नैंनाक, मेरो अंग है ऐनांक ॥

बहन कहै है म्हारो ही वीर , राखूँ हीये लपट शरीर ॥
म्हारै आंग को आंणीक , पीऊं वारिकै पांनीक ॥
भइया कहै मुजि मावैक , अति गति प्रीति मिलावैक ॥
कहूं बै सकल अपनायो , गोदथां गोद पिलायो ॥

दोहा—

अब कहूँ गोद कहूँ पालनै , कहूँ हासो कहूँ रोज ॥
गिर्यो पड्यो घुटने चल्यो , नहीं ग्यांन को खोज ॥१॥

चौपई—

अग्यांनी ग्यांन विन खेल्योक , चल्यो पग हाथ तैं मेल्योक ॥
घुटणें चाल अति चालैक , माया फंद पग घालैक ॥
मनसा ममता मांहि लागीक , पांचो इन्द्रियाँ जाणीक ॥
हलाहल कांम उर जाग्यौक , मानूं भूयंग पग लाग्योक ॥
उतरै चढै लहर अनंत , फाटो तिमर तंत न मंत ॥
करारी निजर ऊंचौ बहु , टेढौ कंध मोडे महुं ॥
अब सूझेन माघ अमाघ , प्रबल प्रगट आय अभाग ॥
नेकी बदी नहिं सूझैक , हलाहल रांम नहिं बूझैक ॥
जिभ्या लठरसी वांणीक , हलाहल विगत या जांणीक ॥
रोम ही रोम विष छायौक , जोवन जहर मम आयोक ॥
घूमै विष चढ्या माताक , सुनै नहिं ग्यांन की वातांक ॥
पुकारे साध सब अरु वेद , सुनि रे मूढ भेद अभेद ॥

दोहा—

साध वेद सब टेरि हैं , सुनैन विषिया प्रांन ॥
पिंड पाप कै वस पडै , कहि कहि हारे ग्यांन ॥२॥

चौपई—

ग्यांनी ग्यांन कहि हाराक , न माने वेदका काराक ॥
वहै विन नीर अहंकारी , ले सिर भार अति भारी ॥

हमारे मात पिता सुत भाई, हमारे सजन सुषदाई ॥
हमारे महल त्रिया चेरे, सिंहासन जरत ही हीरे ॥
हमारे गांव गढ घोडाक, खजाना मुलक नहिं थोडाक ॥
हमारे घणां परवार साथीक, हमारे सजे हैं हाथीक ॥
हमारे हीर चीर कफूर, बहौ गुन राग रंग हजूर ॥
हमारे जोर दरव अनंत, हिरदै नही है भगवंत ॥
अंधे तरस क्यों नहीं कीजैक, एता बोझ क्यों लीजैक ॥
न देषै अकेलो जाऊँ, काया कर्म क्यौं लाऊँ ॥
न देषै मोत है ठाढीक, न कीजै बहु अति गाढीक ॥
न देषै काल सर सांधैक, न फिरिये ऐंठ तै कांधैक ॥
न देषै जम है बैरीक, न कीजै गुरु की गैरीक ॥
न देषै पिंड है पोचाक, गुसांइया क्यों नहीं सोचाक ॥

दोहा—

अब सोचन करिहै बावरे, फिरै अंध मत कंध ॥
एक दिन एसा होइगा, पडै काल कै फंध ॥३॥

चौपई—

अब की काल द्रष्टि कैरीक, पहुँच्यो आयकै बैरीक ॥
मानूं गह्यो मृग ज्यूं चीतैक, नैडो चरत है नीकैक ॥
प्रथम तो सांस तै पकर्‌योक, सिर सिर बात्र तैं जकर्‌योक ॥
कहै घट आज है माराक, लगै है अन्न जल षाराक ॥
कहूं ही निकट ही डोल्योक, न भावै निकट को बाल्योक ॥
पासी घात करि सटक्योक, मांजी षाट में पटक्योक ॥
अब मइया दौरि कर आवैक, मेरो नोज दुष पावैक ॥
त्रिया कहै प्रांण की प्यारीक, मेल्हौ वार कै थारीक ॥
दो सब राज कोई देषौक, करौ मत षरच को लेषोक ॥
वैद बुलाइ कै लीजैक, औषदि जुगति कर दीजैक ॥

दौरा दौर अति माचीक, पिता पुनि पकरि है छातीक।
है कोई बतावै उपगारीक, न दीसै नेक कगारीक॥
दे दे थके बहु बूंटीक, अब मवल के हाथ तैं टूटीक।
करो कोई तंत मंत अंत, लागू भयो जम बलवन्त॥
भाई बन्ध पहारै पूरि, निसदिन रहै पलंग हजूरि।
के ते आवो फिर फिर जांहि, बटावै दुप कोई नांहि॥
पुकारै दुष जीव भारीक, देषे सकल नर नारीक।

दोहा—

अब लाप लोक देषत रहे, अर पिंड किए मतषंड।
पकर प्रांण कूं ले चले, जम एकला प्रचंड॥४॥

चौपई—

अब रहे रोवते ठाढेक, पटकै भाल अति गाढेक।
त्रिया कहै तन ही त्यागूंक, मिलौंगी पीवकै आगूंक॥
मइया कहै क्यों जीऊंक, न पाऊं अन्न जल पीऊंक।
मरूंगी पुत्र के सोगाक, कहौ क्यों बरजि है लोगाक॥
बहन तो रोय है धाहांक, करै आकास कूं बांहाक।
पिता तो जहर ही पाईक, पटकै भाल अति भाईक॥
अब सकल परिवार माच्योसोर, विचै उचक ले गयो ओर।
तो अब सनेही क्या कीजैक, दोसत जान क्यों दीजैक॥
यारो बैसने संगाक, आछे ज्वान ते चंगाक।
छोली परीहै देहीक, करो ले जालकै षेहीक॥
अब हांडी षोपरी ल्यावोक, अगनि किन तासमें बाहोक।
पछेवरी आन गज पांचैक, अधपाव चून कूं जाचैक॥
दीन्हौ माल संग एताक, कह्यो अब भयो है प्रेताक।
काढ्यौ पकरकै प्यारोक, कियो परिवार तैं न्यारोक॥

छूटै महल गढ़ गांवै क , तुरी गज संग नहिं आवैक ।
षजाना मुलक सब छूटैक , जगत पुनि आयकै लूंटैक ।।
धागा रहण नहिं पायाक , नगन कर अगनि में लायाक ।
षूबी जरत है सारीक , देषै सकल नर नारीक ।।
तेल फुलेल के केसाक , जलै सो ज्वांन के बेसाक ।
नैंना कुसमसी भारीक , टेढा भौंह भी थारीक ।।
दांता मेषसी लाईक , नासा अधर जर जाईक ।
गलै में कनक सी मालाक , जलै सु अगनि की भालाक ।।
सुरंगी देह मद जरदीक , गई मिल पलक में गरदीक ।
भुजा नष अंगीली छीनीक , सिर में ईस की दीन्हीक ।।
मानूं दहीडी फूटीक , सगाई इसी विधि तूटीक ।

दोहा—

अब हाथ परत गयों प्रानिया , तन में बीती येह ।
घर आया प्रीतम सवै , जालि वालि करि षेह ।।
इत काया में दुष पडै , वहां संकट पड़ै प्रांन ।
षेम कहै सुनज्यौ सवै , भजिल्यो केवल रांम ।।५।।

।। इति चितावणी सम्पूर्ण ।।

।। अथ वैरागलछी ग्रन्थ ।।

प्रभू को सीस नवावहूँ , वैरागलछी गावहूँ ।
रत्ता है राम रंग में , रहै तो सतसंग में ।।
जनूं कूं मत सार है , उदारता अपार है ।
गंभीर वानू मत्त ही , सुधीरता अनंत ही ।।
तजत क्रोध काम कूं , जपत एक रांम कूं ।
लोभ मोह त्यागही , उनूं का भाग जागही ।।

त्रिमना अहंकार हीं, उतार दिया भार ही।
कुटलाई दूर की नहीं, संतोष व्रत ली नहीं॥
मरमना निवारी, सीलवंत अति भारी।
दयावंत है अति दीन, बुधि जानही परवीन॥
सवन सूं रहे निरवैरी, बात बोले नहिं गैरी।
आपां रंच नहि थरपैं, सदा करतार सूं डरपै॥
तन मन हरी कूं दीया, गलतान मता लिया।
बचन सत सापही, विसवास हीये रापही॥
परधन लागै छार सो, कुसंग वाकै पार सो।
परनिंदा नहीं भावै, दिनां रैन राम गावै॥
दोह द्रोहता नमाई, नहिं आपणी बडाई।
नरमी सूं लपेटिये, कपट सब मेटिये॥
मछरता नहि कोई, वाकै ईरषा न होई।
मनी को कीयो त्याग ही, रहै तो वीतराग ही॥
जतन है जुगति है, विवेक है सति है।
नेक भी न गरब धन, गावै सब धन धन॥
ते गुमान तजि देवे, निह केवल नांव लेवे।
भलाई सूं भरे हैं, हरि नांव सूं निरे हैं॥
नवणी पवणी गाई, नहिं जाणिए जवराई।
हीये सबूरी को वास, रहै दासन के दास॥
दिलगीरी नहिं आनूं, आनंद रूप मौज मानूं।
जाकै आई है परतीति, सो तो बैठे जनम जती॥
दुरमति ही विडारे, रोग दोष दूष टारे।
रहनी कहनी सार, दूर किये हैं विकार॥

हिरदौ कोमल देषो, सोक सांसा को न लेषो।
जाकै ररंकार वांणी, गति जाय नहिं जांणी॥
बन में रहे बाल जती, ताकै आप दान रती।
रहै तो निसप्रेही, एन जानै दिव देही॥
वचन बोले मीठा, रांम नाम करता दीठा।
करै तो धुनि ध्यांन ही, सुनै तो नहिं आन ही॥
आरंभ सब त्यागै, एक नांव ही सूं लागै।
तन अमीरस पेषै, ब्रह्म सबही में देषै॥
जाके आनंदी है ब्रत, सो तो काहू नहिं रत।
गयो मन हीये ल्यावे, दूजी बात नहिं भावै॥
प्रभु नांव हीं कूं जाने, दुष सुष सम माने।
अनुराग हीया मांही, जाकै घटी बधी नांही॥
उनमनी भी साधै, राम आपही में लाधै।
जाकै वास है एकंत, नांव धार लिया तंत॥
सुनि मारग सूं हेत, दुष काहू कूं न देत।
पंथ अधोगति तजै, एक करता ही कूं भजै॥
बन्या पारषद् आप, सब मेटिया संताप।
जन बंदगी करत, हरि नांव सूं तिरत॥
रिषब्रत है निदान, आवै सोई व्रत मांन।
जन ब्रह्म ही कूं आपै, सो तो काहूकूं न थापै॥
शत्रु मित्र मित्र एक, काहूसूं न कर टेक।
सम मान अपमान, सोई देत अभैदान॥
सोई करै गुरु सेवा, भजै नारायण देवा।
एसा सन्त का सुभाव, कोई साधै भगति भाव॥
मिल्या पूरा गुरु आंनि, जाकै साधिवो आसांनि।
सीस संतन कूं नाऊं, कथा कीरतन गाऊं॥

मन ही कूं देना सिष्या , परै जन रांम रिष्या ।
वनै एक इकवार , करै आप ही विचार ॥
धीरजवंन है वडाजी , परदुष मूं न गाजी ।
बोदी आसा नहि धारै , केवल राम ही विचारै ॥
मवार्गं लछन मार , सीष्या सुन्यां उतरै पार ।
गुरु मेरे हरिदास , जिन किया वृधि प्रकाश ॥

॥ इति विराग लछी ग्रन्थ सम्पूर्ण—२ ॥

॥ षेमजी के पद ॥

हरि विन जगत सपनौं जानि ,
संसार भार विकार पर हरि , भजिल्यो सारंग प्रांन ॥टेर॥
रांक सारो सहर जाच्यो , सूतो वड तल जाय ।
देस देस के भूपति आये , मिलकर लागै पाय ॥१॥
देस देस का नृपति आया , मिलिकर ल्याया भेट ।
यूं करतां नर जागियो तब , ठीकरो सिर हेठ ॥२॥
बाँझरै घर तूर वाजै , जानि उपनो वाल ।
बुलाय जोसी लगन बूझो , होयसी भूपाल ॥३॥
यो सुत पाटसी म्हे पावस्यां , वहौत बान्धी आस ।
एवो करतां त्रिया जागी , तव नांपियो नेसास ॥४॥
निरधन जाणै भयो धनवंत , जोडि लाप करोडि ।
एक पदमणि पांव चांपै , एक रही कर जोड ॥५॥
रांक सूतो मालिये , कौडी नांहि पास ।
षेमदास यूं वीनवै , हरि वडो विसवास ॥६॥

उक्त जीवन-चरित्र के उपर्युक्त उद्धरणो से ज्ञात होता है कि ग्राम, जाति तथा काल का निरूपण इसमे भी वैसा ही हुआ है जैसा अन्य परचईकारो व जीवनी-लेखको ने लिखा हैं। इस जीवन-चरित्र मे जिन बातो की भिन्नता है वे इस तरह हैं। जन्म, पेशा तथा उपदेशोपलब्धि का निरूपण भिन्न तरह का है। इसमे हरिसिहजी का जन्म कापडोद के जागीरदार ठाकुर के घर होना लिखा है। पेशा भी डाकेजनी का नही लिखा गया है। कारण, जब वे जागीरदारके प्रिय पुत्र है तब उनको अभाव किस चीज का रहता। इसमे एक केऊ ग्राम के ठाकुर की सुपुत्री से इनके विवाह का भी उल्लेख है। इसमे वैराग्योत्पत्ति का हेतु भी हिरणी का शिकार लिखा है। उपदेश देने वाले परम पिता परमेश्वर को लिखा गया है। मेरी समझ से उक्त विभिन्नताओ का विशेष महत्व नही है। कारण इनसे प्रमुख आधारो मे कोई अन्तर नही आता। सम्भव है चरित्र-निर्माता महात्माजी ने हरिसिहजी को एक साधारण राजपूत व डाकू का रूप देना अपनी गुरुभक्ति की भावना से उचित नही समझा। समय लम्बा निकल जाने तथा सगुणोपासना की प्रधानता सम्प्रदाय मे आ जाने से उनने गुरु परम्परा भी नाथो की लिखना ठीक नही समझा होगा। मेरी समझ मे उक्त विभिन्नताओं का हेतु सम्प्रदाय की सामयिक स्थिति के आधार से बनी मनो-भावना ही थी अत इन विभिन्नताओ को इसी दृष्टि से देखा जाना संगत है।

इस तरह उपर्युक्त परचई लेखको व जीवन-चरित्र-लेखको का दृष्टिकोण हमारे सामने आया है। आगे हम उन विभिन्न सम्प्रदायो के रचनाकार महात्माओ की हरिदासजी महाराज के विषय मे क्या धारणा थी—उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते है।

राजस्थान मे विभिन्न सन्त-मतो का आविर्भाव हुआ। उनके आचार्य व उनके परवर्त्ती महात्माओ का जिस-जिस काल से सम्बन्ध था तदनुसार कालक्रम से ही हम यहाँ उनके उक्त उद्धरणो को उपस्थित करते है। हरिदासजी के विषय मे एक यह विवाद भी प्रस्तुत है कि वे दादूजी के शिष्य प्रयागदासजी वियाणी के शिष्य थे। पश्चात् वे नाथ महात्माओ के सहवास मे आये। दादूजी का काल निर्णीत है। वे सम्वत् १६०० मे उत्पन्न हुये तथा १६६० मे उनका स्वर्गारोहण हुआ।

उनके बावन शिष्य होना प्रसिद्ध है जिनका सम्बन्ध सम्वत् १६३० से १६६० तक चलता रहा है। दादूजी के तीन शिष्य वखनाजी, जग्गाजी व छोटे सुन्दरदासजी ने अपनी रचनाओ मे हरिदासजी का स्मरण किया है। दो पोताशिष्य खेमजी तथा चैनजी ने भी अपने निर्मित साहित्य मे उनका उल्लेख किया है। स्वामी प्रहलाददासजी के पोताशिष्य स्वामी राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल में निरंजनी सम्प्रदाय के द्वादश महन्तो का विवरण दिया है। इनके क्रमशः उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

६. महात्मा नरीदासजी

महात्मा नरीदासजी हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे थे। इनके नाम का उल्लेख भाऊदासजी को गुदडी मे है तथा खेडापा पीठ के संस्थापक महाराज रामदासजी के शिष्य दयालदासजी ने भी स्वरचित भक्तमाल मे किया है। साधु परम्परा तथा ब्रह्मभाट की बही से भी इसकी पुष्टि होती है। महाराज हरिदासजी मे इनने कब शिष्यत्व ग्रहण किया व किस सम्वत् तक इनका शरीर रहा इसका यथार्थ पता नही लग सका है।

नरीदासजी ने अपना आवास फतहपुर मे किया यह स्थान सीकर जिले मे है। फतहपुर मे नरीदासजी का असथल नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है तथा वर्तमान मे मस्तरामजी इस स्थान के अधिपति है। नरीदासजी की परम्परा के आज भी अनेको स्थान शेखावाटी मे है। नरीदासजी की समाधि भी फतहपुर मे है।

नरीदासजी के इसी फतहपुर के स्थल मे उनका रचना ग्रन्थ है। वह अपूर्ण हे उसमे साखी भाग तो कतई नही है। राग भाग मे उन्नीस रागो मे करीब बारह सौ पद है, अन्तिम राग मारू के पद चल रहे है, वह पूरी नही है। इस स्थान से भिन्न, मै अन्य स्थानो मे गया तथा वहाँ के सग्रह देखे पर किसी भी स्थान के संग्रह मे इनकी रचना नही मिली। अब तक के प्राप्त साहित्य मे इनकी रचना की एक मात्र यही पुस्तक है। इनकी पद्य रचना सरस है, भाव स्पष्ट है, भाषा उस समय की हिन्दी है देशिक शब्दो का भी कही कही प्रयोग है। उनके कुछ पद आगे उद्धृत किये गये है।

॥ महाराजा हरिदासजी के शिष्य नरीदासजी की रचना ॥

राम सुमर हरि का गुण गावे, हरि हरि सुमर परम पद पावे ॥टेर॥
हरि है अघमोचन सुख रासी, हरि जरामरण की काटै फांसी।
राम सुमर भवसागर तरिये, हरि सुमरत भव पार उतरिये ॥
राम सुमर छूटै भ्रम पास, चरण शरण जन कहे नरिदास ॥१॥

पार ब्रह्म हरि पार उतारण, दूतर तारण राम हरे ॥टेर॥
सकल शिरोमणि हरि सुष सागर, सन्तन को विसरांम हरे।
राम अहो निसि सुमरसि प्राणी, निस वासर आठों याम हरे ॥

तेज पुंज प्रकाश परम पद, जोति सरूपी धाम हरे ।
जरामरण तहाँ काल न काया, तहाँ क्रम काम नहिं गाम हरे ॥
धरणि गगन तहाँ सूरज शशि हर, तहाँ उदै अस्त नांहिं गाम हरे ।
अवरण राम अकल अविनाशी, अपरम्पार अलेप हरे ॥
केवल रांम नरी ल्यो लाई, प्रीत उधारण रांम हरे ॥२॥

रे, मन भूला काहे डरिये, रांम नाम हरि हिरदै धरिये ॥टेर॥
झूठ भरम तज साच पकरिये, भूला भ्रमत कहां क्यूं फिरिये ।
रसना रांम रमैं रस जीजैं, रांम रसायन अमृत पीजे ॥
हरि कैं चरण कॅवल चित दीजैं, चरण शरण हरि स्वामी रीजें ।
सुरति पवन मन पंथ गहीजैं, सतगुरु सबदै प्राण पतीजें ॥
प्रेम मगन हरि जल जन भीजैं, नरीदास तासों मन धीजें ॥३॥

कब देखूं हरि दरसण तोरा, बिन दरसण जीव कलपै मोरा ॥टेर॥
रैंण दिवस निस वासर भोरा, मिलि विरहणि अति करैं निहोरा ।
निरबल को बल कहा बसाई, तुम बिन काह कहैं सुपदाई ॥
तुम कहियो सुप सागर सांई, मिलो कृपा करि रांम गुसांई ।
कहे नरीजनदास विचारा, तुम बिन को है राम हमारा ॥४॥

रे ! मन भूल्यो भ्रम अज्ञानी, आँन भ्रम चितवन क्यूं ठानी ॥टेर॥
राम विसार वह्यो अभिमांनी, केवल रांम भगति नहिं जानी ।
साध संगति गुरु सीष न मांनी, चिन्हित देषै शारंगपाणी ॥
रांम नाम छूटै दुःख द्वन्दा, रांम नाम भजि होय अनंदा ।
भरम विगूत्यो रे ! मन गन्दा, धृगू अपराधी मन मति मन्दा ॥
घेरे काल पडै जम फन्दा, तब तोहि कोण छुडावे अन्धा ।
राम सुमर सुष होय अनन्ता, नरी कहै भजले भगवन्ता ॥

हरिजी के चरणन की बलिहारी !
चितवत चरण होय चितनिर्मल, हिरदै ज्योति उजारी ॥टेर॥

भाजै भ्रम मिटै माया मोह, नासै तम अंधियारी।
राम को नांम अनंत अघ जारै, कलि मल पाप विकारी ॥
कामादिक काटण कै ताँई, राम को नाम कुठारी।
कर्मादिक वन पाप जाय जरि, ब्रह्म अग्नि पर जारी ॥
तारया अधम पाप परचंड दह, लिये पापी पतित उधारी।
अजामेल गज गणिका तारे, सोई रांम संभारी ॥
जिन जिन शरण गही हरि जीकी, ते जन लिये उवारी।
दीन जान निम तार नरी कहै, आयो शरण तुम्हारी ॥६॥

सन्तो पंडित पढ बोरांणा ?

स्मृति पुराण वेद व्याकरण, पढ गुण भरम भुलांना ॥टेर॥
तर्क शास्त्र पढी बहु विद्या, वाद विवाद ही ठांना।
अति अभिमान बदै नहि काहू, आत्म तत्व न जांणा ॥
अभिमानी अहंकार अलूंधा, भगवत भक्त न चीन्हा।
हरि बिन शुद्ध हृदय नहिं होई, पढि पुराण कहा कीन्हा ॥
छाडहू भ्रम भक्ति करि हरिकी, कहै नरी सुण लोई।
हरिकों नांव रटै निसवासर, पंडित कहिये सोई ॥७॥

रमता राम रह्या भरपूर, निकट निरंजन नाहिन दूर ॥टेर॥
तासूँ लागि रहो किन जाइ, सकल वियापी रह्या समाइ।
गुरु बिन अलष लष्यो नहिं जाइ, सतगुरु मिलै तौ सहज बताइ ॥
रमताराम निरंजन राई, नरी निराकार ल्यौ लाई ॥८॥

सन्त जनन की हूं बलिहारी, साधु संगति उतरो पारी ॥टेर॥
साधु संगति मिलै मुरारी, साधु संगति छूटै संसारी।
साध संगति कर हरि रस पीजै, हरि रस पीवत जुग जुग जीजै ॥
हरि रस पीजै अमृत सार, पीवत कीजै विलंबन वार।
नरी कह्यो गुरु ग्यांन विचार, हरि ही दूतर तारनहार ॥९॥

सीतल सन्त सकल सुखदायक, जिनके दरसण पाप नसायक ॥टेर॥
दरसण देषत सब दुःष जाइ, अति आनंद न अंग समाइ।
जाके चरण परस सुष होइ, पाप पटल भ्रम रहै न कोइ ॥
निर्मल उज्वल निज निहकाम, जिनके हिरदै केवल राम।
सन्त शिरोमणि सब सुषरासि, कहै नरी दासन को दास ।१०।

अनहद झालर बाजै देवा, आरती राम निरंजन सेवा ॥टेर॥
अविगत राम अलष अभेवा, ताल मृदंग धुनि अन्तर सेवा।
शंख शब्द अनहद घंटा बाजै, आरती भक्ति करत भ्रम भाजै॥
चँवर ढुलै महाराज मुरारि, शिव विरंचि करे सेव तुमारी।
सुरनर मुनि गन्धर्व गुण गावैं, राम तुम्हारे पार न पावें ॥
आरति सेवा आरति पूजा, नरी राम बिन और न दूजा ॥११॥

मन रे ? भूल्यो भरम जंजारी ?
विसर्यो राम परमपद दाता, पारब्रह्म बनवारी ॥टेर॥
केवल राम कलह दुष काटण, पाप भरम सो जारैं।
शरणाई आपो प्रति पालै, जन की त्रास निवारैं ॥
अन्तर्जामी आतम को सुप, सो प्रांणी मूढ विसारै।
औसर इसो बहुरि नहिं लाभै, मनुष जन्म तन हारैं ॥
सतगुरु मेरे कहि समझायो, हरि लागै बारम्बारा।
नरी निरंजन रट नारायण, राम नाम तत सारा ॥

॥ इति ॥

७. दास पींपाजी

हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे "दास पीपाजी" परम साधक महात्मा थे। भाऊदासजी की गुदडी सन्त परम्परा तथा ब्रह्मभाट की नामावलि मे इनका नाम आया है। दयालदासजी ने भी अपनी भक्तमाल मे दासपीपाजी का नामोल्लेख किया है।

एक जनश्रुति से यह ज्ञात हुआ है कि आपका जन्म सम्वत् १५६५ मे आमेर नगर मे छीपा दरजी जाति मे हुआ था। आपके पिता का नाम सेवारामजी माता का नाम भाना (भानुमति) व स्वयं का नाम परमानन्द था। महाराज हरिदासजी भ्रमण करते नागौर पधारे तथा भूता बावडी पर विराजे उस समय उनके अनेकों चमत्कार देखने से परमानन्दजी ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और परमानन्द से दासपीपा कहलाने लगे। आप वीतराग निरभिमानी नाम चिन्तन मे निमग्न रहने वाले सन्त थे। पीपाजी का स्वर्गारोहण कब हुआ इसका पता नही लगता। इनका काल सोलहवी सदी का उत्तरार्द्ध तथा सत्तरहवी सदी का पूर्वार्द्ध मानना चाहिये।

दास पीपाजी साधना के पश्चात् नागौर के छीपाओ के अति आग्रह से नागौर मे ही निवास करने लगे। छीपावाडी मुहल्ले मे ही आपका स्थल बना हुआ है। आपकी परम्परा अब तक चल रही है। जैसा कि परिशिष्ठ मे उद्धृत आपकी परम्परा से स्पष्ट हे'

आपने अधिक रचना की हो ऐसा प्रतीत नही होता। निरंजनी सम्प्रदाय के सग्रह ग्रन्थो मे आपकी जो रचना मिलती है उसमे १–चितावणी, २–फुटकरसाषियें तथा २०—पद है। आप साधक सन्त थे। अत· आपकी रचना मे पाडित्य या प्राञ्जलता की तलाश करना उचित है न संगत।

॥ मंगलाचरण ॥

सुरगुरुसमपूज्यः , सर्वलोकैकवन्द्यो ।
निजशुभचरितेन , ध्वस्तमोहान्धकारः ॥
सधरणितलभाजां , रत्नमेवाविरासी ।
लिविड़तमनिशायां , शोभवच्चन्द्रमेव ॥
शमयतिदुस्सहतापं , दवयति दुरितं शुभं तनुते ।
अक्षयधनमिवपच्छति , साधु वरस्यास्य वागियं लोके ॥२॥

अद्वितीयो यथा विष्णोः, स्वरूपे कौस्तुभो मणिः ।
तथैव हरिशिष्येषु, पीपाख्यः साधुसत्तम ॥३॥
पाषण्डखण्डितं वीक्ष्य, धर्मं त्रातु हेतवे ।
आविरासीत्स्वयं लोके, पीपा नाम्नैव नारदः ॥४॥
दुर्भिद्यमोह तिमिरान्तकदर्शनाय, संसारसागरसमुत्तरणोडुपाय ।
संसारिदीनजनताप निवर्हणाय, पीपाख्य साधु वर्यायनमः प्रियाय ।५।

ये दोनो मंगलाचरण माधव शास्त्री कृत हैं तथा साखिये वालोतरा निवासी विरक्त प्रभाकर माधवदासजी ने लिखकर भेजी है—

१—सीताविभूषिततनुं नवनीरदाभं
कोदण्डधारिणमहं प्रणमामि रामम् ।
यस्याऽनुकूल कमनीयकृपाऽवलम्बी
विघ्नव्यथां न समुपैति नरः कदाचित् ॥१॥

दोहा— पीपा परचे पवन के, किता मिलेंगे आय ॥
सबही परचा भाजसी, तब पवन काया तें जाय ॥ १ ॥
'पीपा' दास कहावनो कठिन है, मन ही माने मान ॥
सतगुरु सों परचो नहीं, कलियुग लागौ कान ॥ २ ॥
पीपा पानी रहन बिनु, रहे न ऊँची ठाइ ॥
राम भगति बिनु दास को, जतन करंता जाइ ॥ ३ ॥
पीपा थोरे आंतरे, घणी बिगुती लोय ॥
महभाई मारया घणा, तारया नांहि कोय ॥४॥
पीपा माया नारी परि हरे, चितसूं धरे उतार ॥
ते नर गोरषनाथ ज्यूं, अमर भये संसार ॥५॥
पीपा पर नारी परतष छुरी, विरला बंछे कोय ॥
नाऊं पेटि संचारिये, जो सोने की होय ॥६॥
पीपा पारस परसतां, लोहा कंचन होय ॥
सिद्ध के कांठे बैठे संता, साध कहीं सिद्ध होय ॥७॥

पीपा धोका निजर का, जती सती कूं होय ॥
मन अरु नैन विगूंचना, विरला राखे कोय ॥८॥
पीपा परमेश्वर तणां, मता न जाणे कोय ॥
आरंभिया यूं ही रहै, और अचिन्त्या होय ॥९॥
पापी पाप कियो नहीं, पुन्य कियो सोवार ॥
जो काहू को लियो नहीं, (तो) दियो वार हजार ॥१०॥

॥ चिन्तामणि योग ग्रन्थ ॥

यह उपदेश सुनो मन मींत, बडचिंता बनि करलै चींत ॥
जाके गुसे हैं यमराई, ताकों नींद कैसें आई ॥११॥
मारग चलणा हैं तोहीं, अंधे क्यौंना चेतन होई ॥
पाया नाहीं दूरि हैं तेरा, मघन वन बहोत उरझेरा ॥१२॥
जामें वहोत ओघट घाट, अधिक कठिन विषमी बाट ॥
जासी सुभट वीर सावंत, अति रणजीत पूरा ममंत ॥१३॥
षांडा धार मारग वीर, कायर बधसीं नांही धीर ॥
सूरा पहुँचसी एक आध, नटवर कला जाने साध ॥१४॥
जामें मोह सरिता धार, भौ को समुद् अधिक अपार ॥
जामें हरिनाम नौका लार, सतगुरु खेवे उतरे पार ॥१५॥
आडे पांच अरावर पार, पुनि पचीस ताकी लार ॥
लालच लोभ खाद अनेक, बहोत जोधा एका एक ॥१६॥
अरि बलवंत अति अहंकार, तृष्णा काम क्रोध विकार ॥
मारग मांही मान गुमान, सनमुख खड़े साधे वान ॥१७॥
ता में सिंह सांचो सांई, आप अंते मारै धाई ॥
मन्मथ जोधो मारग मांही, कायर कहो किसविध जाँहीं ॥१८॥
कायर लाख कहो किस काम, सूरो भलो एक वीर धाम ॥
सूरो सोई सौंपें शिर ईश, भगवंत मेलो भुजा वीश ॥१९॥

पहरो सहज वक्तर अंग, सतगुरु शब्द को कर संग ॥
गुरु की ज्ञान करी तरवार, पेड़ी पिम्या लेहु विचार ॥२०
अजपा जपकरि जयडाढ़, तो तूं सही अंति जो गाढ़ ॥
चेतन तुरिया घर घाली, पत्री और परे सुंचाली ॥२१॥
रात शंतोष आवधशील, सुंध बुध सुरति राखो डील ॥
देय विवेक को सिरटोप, रंगावलि अधिक अनोप ॥२२॥
राषो संग साथ विचार, गहो विश्वास बडो हथियार ॥
भाव भगती प्रेम प्रीती, ए आयुध गहि शत्रु जीती ॥२३॥
यह वैराग्य दृढ़ मति धार, सूरा सुगम कायराँ हार ॥
सजीवन जड़ी है जगदीश, सो ले राषे अपने शीश ॥२४॥
वज्र शरीर देह हरि आण, वैरि का नहिं लागे बाण ॥
दुजो कोई नहीं उपाई, हरि गुण मगन व्है करि गाई ॥२५॥
पीपा हेतकरि सुण बात, हरिबिनु सब वे दीसे जात ॥
सुणिये हेत करि चितलाय, गयेशो देऊं तोही बताय ॥२६॥
कहूँहूं अपने अनुमान, गिणती को नहि परवान ॥
जादव गये छप्पन क्रोड, केरु पांडव दल बड जोड़ ॥२७
जिन संग लाष चौहणी पूरी, जोधा तें मिले सब धूरी ॥
चाले कंस केसी चाणोर, कहूँ शिशुपाल के कोते और ॥२८॥
वहतो जरासंघ अतिजोर, डारयो तिनकला ज्यूं तोर ॥
जाके शीश दश भुज वीश, सो रावण गयो दयंता ईश ॥२९॥
दलबल जोरा अति अधिकार, सूरावण गयो लंका हार ॥
चकवे मंडली कंस कबंध, ते सब पड़े जमों के फंध ॥३०॥
केते कहो दानव देव, गिनती को नहिं आवै छेव ॥
सांवत सुभट सूरा जुंझार, आखिर गये सबेही हार ॥३१॥
जेते हैं तेते सब जांही, जावेंगे तेऊ थिर नांही ॥
न रहसी स्वर्ग मृत्यु पाताल, कूरम सहस पुनि दिगपाल ॥३२॥

न रहसी माड के सब थंभ, जे घट घरे करि आरंभ ॥
न रहसी अपनी नीर हुताश, जासी पाणी पवन प्रकाश ॥३३॥
न रहसी तीन गुण विस्तार, माया आदी वो औंकार ॥
न रहसी जुरा मोत अरु काल, ओ जमराई जीव के जाल ॥३४॥
रहसी आप अवगति नाथ, ऐका ऐकी संग न साथ ॥
घरि घरि कहयो तोसूं टेरी, निशदिन मांही सांभ्यौ बैरी ॥३५॥
एको शब्द कान कराई, घरि हू घरी अवध घटजाई ॥
सूरज चंद है दोऊं साखी, पूरब जोई पछिम साखी ॥३६॥
निशदिन घटे आवत जात, सो गति आपणी सुण बात ॥
तरुवर देख फिरती छांही, ऊगे आंथवे सोई नांही ॥३७॥
सलिता नीर थिर नहीं होई, सरवर क्यों ना देखो जोई ॥
यो जग देषतां सब जाई, सो गति निरषि तन निरताई ॥३८॥
यो सब जानों अंजुलिनीर, जासी देषतां नांही थीर ॥
ऐसें धन जोवन आथी, कहो धू चले किसकी साथी ॥३९॥
सुरगे पंच दियां बताई, अम्बक तीन कहयो समुझाई ॥
इहि विधि जाम वीते आठि, घरी पुनि तीस इणी साठि ॥४०॥
वासर रेण इंहि विधिजाइ, अंधे उमरिये तेसें पाई ॥
पशु पणि पंष कहयो पुकारी, मिनषा जन्म जाणि नहिं हारी ॥४१॥
चाले स्याम आये श्वेत, मस्तक चढ़े हेला देत ॥
ऊंचे चढ़ि सुण कहयो तोहीं, पींपा क्योंना चेतन होई ॥४२॥
आडे तात मात नहि भ्रात, जोरो देषतां लैजात ॥
देषे कुल कुटुम्ब परिवारा, समरथ नहीं छुडावन हारा ॥४३॥
दोसत यार हित अरि मीत, चकित भये सकल भै भीत ॥
ऐसो को नहिं बलवन्त, जमसूं राषे जीव जन्त ॥४४॥
ऐसो कौ नही कलि मांही, राषे चालतां गहि बांही ॥
स्वारथ के सगे सब कोई, संकट निकट नहीं लोई ॥४५॥

बहो विधि कह्यो में समुभाई , औसर जाणि हरि हित लाई ।।
सुण सो बात की एक बात , पीपो सुमरै त्रिभुवन त्रात ।।४६।।

।। इति श्री चिन्तामणि ग्रन्थ समाप्त ।।

पद १–राग धनाश्री

देवा भ्रमत भ्रमत तव सरणे आया ।।
सरणे आया विजैपंजर , राख लै रामैया राय ।।
लोह को संकल पाई , तूटेहो घणा चौथाई ।।
मोह को संकुल कैसे टूटे , हां राम रमैया राई ।।१।।
देषी विद्या देष्यो दान , देषी काया कृतम तन ।।
साध संगति विनु मेरे , नहीं माने मन ।।२।।
देष्यो पुण्य देख्यो पाप , सकल जग देष्यो सताप ।।
प्रणवत पीपा नरहरि , उधार लै आपै आप ।।३।।

पद २–राग आसावरी

तूं मेरे तीरथ तूं मेरे काशी , सेइये गोविन्दराई सकल अविनाशी ।।१।।
गगन गंगा भवन गंगा , त्रिविध गंगा नारायण संगा ।।२।।
अड़सठ तीरथ जो मन चंगा , राम का नाम पषालिवे अंगा ।।३।।
पीपा कहै जोगेश्वर सोई , सुष हृदो जाको एक होइ ।।४।।

पद –३ राग आसावरी

काया गढ़ खोजतां मैं नौ निधि पाई ।।
अनत न जाऊं राजा राम की दुहाई ।।टेर।।
काया देवल काया देव काया पूजा पाती ।।
काया धूप दीप नैवेदयक काया तीरथ जाती ।।१।।
काया में है अड़सठ तीरथ काया मैं है कासी ।।
काया में है कमलापति काया मैं वैकुण्ठवासी ।।२।।
जो ब्रह्माण्डे सोइ है पिंडे , जो षोजे सोई पावै ।।
पीपा प्रणवे परम ततरे , सतगुरु मिलै लषावै ।।३।।

दादूशिष्य वखनाजी—

वखनाजी नराणे ग्राम के रहने वाले तथा दादूजी के नैष्ठिक शिष्यो मे थे। इनका अवसान सम्वत् सत्रह सौ से पहिले ही हो गया था। इनकी समाधि त्रिपोलिये के पास नराणे मे बनी हुई थी। इनने वाणी की रचना की थी। ये स्वयं अच्छे संगीतज्ञ भी थे, इनने साखी तथा पदो की रचना की है। उनकी मुद्रित वाणी के पृष्ठ ११८, पद-९६ मे वे लिखते है—

वो घर बोलगी उलगाणो ?
जिहिं ध्रु प्रहलाद निवाजियो, वैकुंठ तणो दियो थांणो ॥टेक॥

× × ×

जाके नामा सेन कबीरा, पींपा धना अहीरा।
सूरदास रैदासा , सगलां की पूरे आसा॥
जाके दत्त गोरष रूपो आदू, गोपीचन्द भरथरी दादू।
सोझा बीझल रिदासा, जन नानक चरन निवासा॥
जाके भगत शिरोमणि सारा, तहाँ दीसै दै दै कारा।
सब मांही राम बिराजै, तिहिं घर सदा बधावा बाजै॥
जिहि घर वरतण एती, सो जाणी जाइ न केती।
सेस सहस मुख गावै, वे भी पार न पावै॥
सो अनत लोक को राजा, घण हरसाँ बाजै बाजा।
अविनासीं राजा कहिये, वषना तिहिं घर औलग रहिये॥

इस पूरे पद के अठारह छन्द है। इसमे उस विभु-व्यापक ब्रह्म की महत्ता तथा उनके अनुगामी महात्माओं का निरूपण किया है। कबीर, नामदेव, नानक, रैदास आदि अपने से पहिले हुए महात्माओं में ही हरिदासजी की गणना की है। इससे स्पष्ट है कि वखनाजी के रचना-काल से पहिले हरिदासजी हो चुके थे। वखनाजी का रचना-काल संवत् १६५० से ८० तक का माना जा सकता है।

"दादूशिष्य जग्गाजी", समय–संवत् १६५० से १६८०

उनने लघु रूप मे भक्तमाल लिखी है, उनके पद्य भी है। भक्तमाल मे उनने अतीत-महात्माओं का निरूपण किया है। उससे सम्बन्धित अंश इस रूप मे हैः—

पद–४

क्या मेरा क्या तेरा मना, जैसे तरवर पंछी बसेरा मना ।।टेर।।
चंदा न होता सूर न होता, होता दिवस न राती ।।
ब्रह्मा न होता रुद्र न होता, करता कौन भराती ।।१।।
माई न होती बाप न होता, होता कर्म न काया ।।
हम नहीं होता तुम नहीं होता, कहो कहां तें आया ।।२।।
वरण न होता विचार न होता, मोह न होती माया ।।
राजस सात्विक तामस न होता, अवगत आप उपाया ।।३।।
षेचर भूचर सीगीं मुद्रा, गुरु प्रसाद तें पाया ।।
पीपा प्रणवे परमतत्व, सब जग धंधे लाया ।।४।।

पद–५ राग सोरठी

तूं मेरा तरवर मैं जन पंषी, अंवरीक धु नारद साषी ।।टेर।।
तूं जो गिरवर तो मैं मोरा, जो तुम चंदा तो मैं चकोरा ।।१।।
जो तुम तीरथ तो मैं जात्री, जो तुम देवारांम तो मैं पाती ।।२।।
पीपा प्रणवे अंतरजामी, मैं तेरा सेवग तूं मेरो स्वामी ।।३।।

पद–६

मन रे कहा भूल्यो मति हीना ।।
तूं काहू का ना कोई तेरा, ज्यूं उपना त्यूं षीणा ।।टेर।।
राज पाट अवला बहु तेरी, होते घोड़ा हाथी ।।
परमहंस जब किया पयाना, बिछड़ गये सब साथी ।।१।।
जे नर छाँह छत्र की चलते, दुनि मानी महाराणा ।।
नवणी करते जालण लागे, जब तन भया विडाणा ।।२।।
पीपो कहै पदारथ पाया, अंध न देषे कोई ।।
अमृत नाम राम का मीठा, मैं पीऊंगा सोई ।।३।।

॥ अथ पींपाजी महाराज की अमृतवाणी ॥

दोहा—

पीपा राम दुवार में, कमी वस्तु को नांह ॥
विना भजन पावै नंहो, चूक भजन के मांह ॥१॥
पीपा देर न कीजिये, भज्ज लीजै हरिनाम ॥
कुण जाणे क्या होवसी, छूट जाँयगे प्रान ॥२॥
राम नाम सुमरत भये, रंक बंक बजरंग ॥
ध्रुव प्रह्लाद रु गीध गज, तज कुल को परसंग ॥३॥
पीपा भज श्री राम को, परिहर अखिल विचार ॥
आलस तज या मनुज तनु, क्यो गिरता संसार ॥४॥
पीपा राम प्रताप तें, सागर जल के मांह ॥
पथर तिरे तरु पात ज्यूं, नर की बातें कांह ॥५॥
राम राम रटिवो भलो, जिनते इणभव मांह ॥
सुजस सुभाजन जन भये, जे थे जग कुल नांह ॥६॥
राम कृपा तें होत सुष, उत्तम होत कुजात ॥
पीपा परिहर जगत को, भजतो क्यो विलषात ॥७॥
राम नाम सन्मुख हुओ, देय जगत को पीठ ॥
पीपा ज्यों अहिचोलि तज, होता उज्वल दीठ ॥८॥
भक्त दुःष मोचन करण, हरण सकल जंजाल ॥
पीपा क्यों नहि भजत नर, निशदिन राम कृपाल ॥९॥
पीपा देष विचार हिय, है यह मतो प्रवीन ॥
सम चित रह संसार में, राम रसायण लीन ॥१०॥
वन्यो वनायो रहै सदा, काटत है नहिं शूल ॥
अरुण वरण क्या काम को, वास विना को फूल ॥११॥
निज को जौ चाहै सुषी, हुवो चहै दुष हीन ॥
तो भजलै श्री राम को, पीपा रहै न दीन ॥१२॥

भटकत पद अद्वैतता, अटकत ज्ञान गुमान ॥
लटकत मान कुज्ञान में, राम विना नादान ॥१३॥
निज सुत को माता पिता, करे भलो उपदेश ॥
पीपा एकण राम विनु, मिटे न जग को क्लेश ॥१४॥
पीपा हरिसा गुरु विना, होत न विशद विवेक ॥
ज्ञान रहित अज्ञान युत, कठिन कुमन की टेक ॥१५॥
स्वारथ के सब ही सगा, जिनसों विपद न जाय ॥
पीपा हरि उपदेश विनु, राम न जान्यो जाय ॥१६॥
पीपा राम समान जग, स्वपने अपरन आन ॥
तासु भजन रति हीन अति, चाहसि सम्यक ज्ञान ॥१७॥
जिनतें उद्भव सब विभव, ब्रह्मादिक संसार ॥
सुगति तासु पद तस कृपा, पीपा कहै विचार ॥१८॥
पीपा कहैत विचार हृदि, राम सरिस नहि आन ॥
जासु कृपा उपजै हृदय, विशद बिबेक सुजान ॥१९॥
रामस्वरूप अनूप अति, हरे सकल अघमूल ॥
पीपा रामहि जो भजै, ताके सब अनुकूल ॥२०॥
परमारथ पुनि स्वारथ सब, सुलभ नाम परताप ॥
द्वार दूसरे दीनता, जातां लागे पाप ॥२१॥
हितस न हितरति रामसन, रिपुसन बरै विहाय ॥
उदासीन संसार सन, पीपा तब सुख थाय ॥२२॥
चतुराई चूले पड़ो, भट्टी मां आचार ॥
पीपा कुछ नहिं राम विन, आगो लग ससांर ॥२३॥
तिल पर राखे सब जगत, निजर मांहि संसार ॥
पीपा महिमा राम की, है जग अपरंपार ॥२४॥
स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होणो दास ॥

पीपा हरि के नाम विनु, मिटै न जमकी त्रास ॥२५॥
पीपा परतष देखले, थाली मांहि मुसाण ॥
ज्ञान विना जाणे नहीं, झूठो करे बषाण ॥२६॥
पीपा अगत न जावसी, जो जपता हरि नाम ॥
एक घड़ी आधी घड़ी, राति दिवस अवसान ॥२७॥
पीपा हरि परसाद तें, पायो ज्ञान अनन्त ॥
जाता भव मझधार में, दुख को आयो अन्त ॥२८॥

॥ इति ॥

---

८. महात्मा कल्याणदासजी

महात्मा कल्याणदासजी का नाम हरीदासजी के वावन शिष्यो मे आता है भाट की बही की नामावलि मे भी कल्याणदासजी का नाम आता है। भाऊदासजी की गुदडी की नामावलि मे इनका नाम नही है। इन के स्थान जन्म तथा निधन की जानकारी का कोई सूत्र सामने नही है। इनकी रचना से ही यह अनुमान है कि ये महाराज हरीदासजी के शिष्यो मे ही जो नामोल्लेख इनका है वे यही है। इन का काल महाराज के अपर शिष्यो की तरह ही सोहलवीसत्रहवी सदी मानना संगत है। इन के थाभे की परम्परा का भी निश्चय नही है।

इनकी रचना दो स्थानो की पुस्तको मे प्राप्य हुई है। एक कोलिये की पुस्तक मे जिसका लेखनकाल १८३० है। दूसरी पुस्तक जांवले मे पडित घनश्यामदासजी के संग्रह मे है। इसका लेखन काल सम्वत् १८२६ है। इसके लेषक ने कल्याणदासजी की वांणी की पूर्नि पर लिखा है कि वाणी बहुत विस्तृत है उसी मे से कुछ अश यहाँ लिखा गया है। वह अंस साषी भाग अंग ४५ मे ६३० सापी० लघुग्रन्थ १० राग १७ पद २१२ है। पूरी वाणी कितनो विस्तृत है यह कहा नही जा सकता। किन्तु उपरोक्त उल्लेख से इतना तो सिद्ध होता ही है कि इनकी वाणी अच्छी विस्तृत है। वाणी की रचना से प्रतीत होता है कि यह साधक महात्मा होते हुये भी कुछ शिक्षित भी थे। इनकी शब्द योजना से इनका शिक्षत होना सिद्ध होता है।

इनकी वाणी मे निरंजन तथा रामनिरंजन शब्द का अनेको स्थलों पर प्रयोग हुआ है। रामनिरंजन शब्द निरंजनी सम्प्रदाय का रूढ़ नाम जपने का शब्द है।

इनके ग्रन्थ निराकार की महिमा मे बीसवी साषी मे प्रयुक्त शब्द दयालरामजी भी विचारणीय है। हरिदासजी की साधना सिद्धि के पश्चात् दयाल नाम से ही ख्याति थी आज भी इनके स्मारक स्थान को दयालधाम नाम से कहा जाता है इनकी वाणी का समावेश निरंजनी सम्प्रदाय की ही संग्रह पुस्तको मे है अन्य सम्प्रदाय की पुस्तको मे नही। अत उपरोक्त विवरण इन्ही आधारो के आश्रित है।

॥ अथ महात्मा श्री कल्यांणदासजी महाराज की वाणी ॥

कबीर नाम दे पींपा रैदासा, भवसागर की काटी पासा ॥
गोरख भरथरी गोपीचन्द, जन कल्याणदास मिल करे आनंद।१।
काया नगरी मनवा राजा, पवन करै कुटवारा ॥
आतम ज्ञान राम रस हीरा, सुरती सहज घर धारा ॥२॥
काया नगरी मन उपदेशा, बलिहारी गुरु तेरी ॥
कल्याणदास जन बुद्धि कर बूझया, नांव निरंजन जेरी ॥३॥
जन कल्याणदास पलटे नहीं, गुरु अपना की साषि ॥
सांचा सतगुरु पाइया, राम रसायन चाषि ॥४॥
ऐसी सतगुरु तैं करी, तैसी करै न कोई ॥
काया भेद बताय करि, रह्या ज प्रगट होई ॥५॥
गुरु जाणै के आतमा, दूजा जाणै नांहिं ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, अमी महारस षांहिं ॥६॥
करुणा सहित डंडोत है, निशि दिन सुमिरन होई ॥
गुरु गोविन्द हिरदै बसे, विरला जानै कोई ॥७॥
मूल मन्त्र सतगुरु दिया, आतम कूं उपदेश ॥
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, ब्रह्म हमारा देश ॥८॥
तन मन वारूं आतमा, निशि दिन न्हाऊं शीश ॥
गुरु गोविन्द हृदय बसै, गुरु ही है जगदीश ॥९॥
सांचा इस्ट सांचे मतै, सांचा गुरु शिष ऐक ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरण ब्रह्म अलेष ॥१०॥

कन फूंका गुरु बहोत है, सतगुरु विरला जाणि ।।
जन कल्याणदास कूं गुरु मिल्या, सुरति सहज घर आणि ।।११।।
साधां पाया एक रस, सब ही साधु एक ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरण ब्रह्म अलेप ।।१२।।
सांचा मन छाडूं नहीं, दूजा पकडूं नांहिं ।।
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, अगम तहां चलि जाहि ।।१३।।
जाति हमारी वैष्णो, सुमरि अगम अलेप ।।
दरबेस मसत हरि नांव में, ऊपर पहरचा भेप ।।१३।।
सतगुरु पहराई गूदड़ी, पत्तर दीया हाथ ।।
जन कल्याणदास सुमिरे राम कूं, रहै राम के साथ ।।१५।।
ज्ञान ध्यान की गूदड़ी, मन्त्र दीया विचार ।।
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, सांइ अनन्त अपार ।।१६।।
निराकार निरंजना, अविनाशी गुरुदेव ।।
जन कल्याणदास विसरै नहीं, करै अलप की सेव ।।१७।।
मनवा के उपजनि भई, आत्म कूं गुरु रापि ।।
सतगुरु ज्ञान विचारदे, राम रसाइण चापि ।।१८।।
मन दीयां सतगुरु मिलै, तन दीयां गुरु नांहिं ।।
आतम तो मन सूं कहै, समझि देपि मन मांहि ।।१९।।
सतगुरु तो कसणी करी, फेरि न करै जवाब ।।
आतम तो मन सूं कहै, ता चेला के भाग ।।२०।।
गुरु गोविंद कसणी करी, गुरु का भया गुलाम ।।
आतम तो मन सूं कहै, सरे हमारे काम ।।२१।।
निर्बल व्है गुरु सूं मिल्या, गुरु गोविन्द सहाय ।।
आतम तो मन सूं कहै, निश दिन बलिबलि जाय ।।२२।।
भेप शबद बाला दई, सतगुरु किया निहाल ।।
गुरु गोविंद कूं त्यागि दे, ताका बुरा हवाल ।।२३।।

अज्ञानी गुरु कूं मेटिये, ज्ञानी गुरु का दोष ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, कदे न पावै मोष ॥२४॥
करुणा सेवा बंदगी, सतगुरु ग्योह बताय ॥
शरणै आयो बापजी, मेरी करौ सहाय ॥२५॥
गुण इन्द्रयां कूँ त्याग दूं, त्यागूं सब संसार ॥
गुरु भक्ता गुरु में रहै, सुमिरे सिरजन हार ॥२६॥
गुरु भक्ता गुरु में रहै, सोई चेला वीर ॥
सुमिरे राजा राम कूँ, भरि भरि पीवे नीर ॥२७॥
चेला गुरु कूँ बूझि करि, मूंड मूडावै वीर ॥
गुरु भक्ता गुरु में रहै, मिटै जन्म की पीर ॥२८॥
गुरु मिल्या तब जानिये, भेद बतावै एह ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, हरि सुं बधै सनेह ॥२९॥
ज्ञान दिया है रामजी, महरबान है राम ॥
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, मन पाया विश्राम ॥३०॥
राम षजाना दम दिया, खाली काहै षोवे ॥
साहिब लेषा मांगिसी, तब मूंड धुनि धुनि रोवै ॥३१॥
सुष अगध है राम का, मन पवना लै जोड़ि ॥
मार सहेगो जीवड़ो, साहिब से मति तोड़ि ॥३२॥
मन पवना है राम का, दे करि ऊरण होई ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, विरला जाणै कोई ॥३३॥
मन है पूंजी राम की, तूं मति षोवै बीर ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, लेषा मांगे पीव ॥३४॥
जेता दम षाली पड़ै, तेती षाजे मार ॥
जन कल्याणदास सुमिरे राम कूं, निशिदिन बारंबार ॥३५॥
साध्यां तें सिद्ध होयगा, काल न घाले चोट ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, सबल राम की ओट ॥३६॥

जे कब हूँ काची पड़ै, और जनम है राम ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरन सिद्धि ह्वै काम ॥३७॥
कहा शक्ति है जीव की, दुर्लभ सुमिरण राम ॥
राम सुमिरावै जीव कूं, पड़्या धणी सूं काम ॥३८॥
कहा शक्ति है जीव की, जीवन समझै पीव ॥
पीव समझावै जीव कूं, तो सुष पावै जीव ॥३९॥
नांव दिया है राम जी, हिरदे सुमिरण जानि ॥
समझ पड़ी सतगुरू मिल्या, सुरति सहज घर आनि ॥४०॥
नांव दिया है राम जी, यह पूरी बकसीस ॥
सुमिरण सेवा ध्यान करि, यूं करमां कूं पीस ॥४१॥
भाग बिना क्यों पाइये, सुमिरण सासों सास ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, परम ज्योति प्रकास ॥४२॥
कण छाडै कूकस गहै, ऐसा सब संसार ॥
जन कल्याणदास विचार करि, सुमिरै सिरजन हार ॥४३॥
कर्म भर्म कूकस भया, कण है सुमिरण सार ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, सुमिरै सिरजन हार ॥४४॥
चारि बेद है मांड में, पंचम बेद है न्यारा ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, ऐसा राम पियारा ॥४५॥
चारि बेद का मूल है, पंचम बेद का जाप ॥
कल्याण दास जन यू कहै, तहां पुण्य नहीं पाप ॥४६॥
साध सबद में समझ करि, समझर कीजे और ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, हरि में नाहिं ठौर ॥४७॥
करणी भिष्ट चाल है ऊंची, पांचू इन्द्री ज्ञान सूं मूछी ॥
अंतर मीठा ऊपर खारा, जन कल्याणदाम वे हरिका प्यारा॥४८॥
हाथ दिया पांव दिया, नयन दिया कान ॥
मुष दीया जीभ दई, सुमिरे क्यों नहीं राम ॥४९॥

गति मति में पाउं नहीं, समर्थ सिरजनहार ॥
साहिब तेरी साहिबी, मोकूं द्यो दीदार ॥५०॥
दुर्लभ महा वैराग है, देषिर दीजे पांव ॥
दुर्लभ सेवा साधु की, दुर्लभ हरि सूं भाव ॥५१॥

—इति साखी फुटकर—

॥ अथ श्री निराकार की महिमा जोग ग्रन्थ ॥

सन्तो घट में राम अपारा, अब सुमिरो सिरजन हारा ॥
धरती गगन अधर करि राषी, चंद सूर इन्द्र से राजा सकल मांड है तेरी॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारे, समझि समझि सब हारे ॥
अगम अपार पार नहिं कोई, संत जनां कूं तारे ॥२॥
हरि गंगा जमुना सृष्टि उपाई, सकल कला भरपूर ॥
सब कछु करि सब ते न्यारा, ऐसा हरि का नूर ॥३॥
इकलस एक कहा कहि बरणे, सिरजनहार गंभीरा ॥
झूलै षेलै राम हमारा, तहां रती न ब्यापै पीरा ॥४॥
जहां तहां राम हरि तुम मांही, सकल दुनी कू पोषै ॥
अंतर गति सूं सेवा लागी, साधन पड़ ही धोषे ॥५॥
सबकूं देखे सब कूं पोषे, अंतरजामी सांई ॥
पांच पचीस तीन गुण त्यागे, सोई देषे मन मांही ॥६॥
साधु जन के नाव आधारा, लूटे विलसे षांही ॥
अगम अगाध पार नहीं कोई, समझि रहे मन मांही ॥७॥
हांसी षेल राम नहिं पावे, कठिन पंथ है धारा ॥
जापर कृपा सोई भल जाने, अगमत्रार नहीं पारा ॥८॥
विराट रूप अबगति अविनाशी, सकल लोक परिछाया ॥
आवै जाय धरै नहीं काया, राम रमत सुष पाया ॥९॥

अविनाशी के रूप न रेखा, धरणी गगन भी नांही ॥
अन्तरजामी सबतें न्यारा, ब्यापि रह्या सब मांही ॥१०॥
हरि हे दूर नेड़ा भी नांही, हरि भक्त न तें नेड़ा ॥
पर आतम सुं आतम मेला, जम करि सकै न फेरा ॥११॥
सब सूं ऐक सांच सूं पावै, सांच बिना नहीं पावै ॥
उलटी सुरति ब्रह्म कूं भेटै, निराकार कूं गावै ॥१२॥
उद्बुद् कथा कौन सूं कहिये, समर्थ सांई मेरा ॥
अगम अघाध पार नहीं कोई, करौं राम में केला ॥१३॥
हरि आप मिलावै आप कूं, अंतर ज्यौति जगाय ॥
समर्थ सांई दर्शन दीया, अमी महारस पाय ॥१४॥
निराकार अबगति अविनाशी, जम नहिं घालै पासी ॥
सेवग होइ कै सेवा लागै, सदा रहै अविनाशी ॥१५॥
घटै बधै रूप भी नांही, ब्याप रह्या सब मांही ॥
भेदी होय सुं भेदै जाणें, निराकार ल्यौ लाई ॥१६॥
निराकार निरंजना, सकल भवन पतिराया ॥
जामण मरण जुरा सब भागा, घर ही में घर पाया ॥१७॥
अविनाशी कूं बिरला जाणै, केवल ब्रह्म अपारा ॥
अरस परस मिल सुमिरण लागा, सो है राम हमारा ॥१८॥
एकमेव होइ सेवा लागा, हितकरि प्रीति बिचारी ॥
रमता राम चांदणा मेरे, सुरति सहज धरि धारी ॥१९॥
महर करी दयाल रामजी, हमसे पतित उधारे ॥
दे दर्शन अपना करि लीया, आवागमन निवारे ॥२०॥
एक शब्द सूं सब जग किया, तीन लोक विस्तारा ॥
अपरम्पार पार नहीं आवै, सो है राम हमारा ॥२१॥
निराकार अबगति अबिनाशी, निर्मल ज्यौति अपारा ॥
ज्ञान दृष्टि जाका घट मांही, सुमरै बारंबारा ॥२२॥

भक्तमाल—नामदेव कबीर तिलोचन धूरि स्वामी,
इनहू कह्यो भज अन्तर्यामी।
रामानन्द सुषा श्रीरंगा,
नानक कह्यो रहु हरि के संगा॥
पींपा सोंझा धना रैदासा,
• राम राम की बंधाई आसा।
सुकाल सेठ जनक राँका बाँका,
इनहू दियो हरिनाम का नाका॥
वीझल वेणी नापा हरिदास,
इनहु कह्यो हरि तेरे पास॥

× × ×

गुरु गुरु भाई सबमें बूझ्या, तिनकै ग्यान परमपद सूझ्या।
जगिये साध सिध सुणयाँ ते जाँच्या, दियौ रामधन दुख सब वाच्या॥
जनम जनम का टोटा भाग्या, अखै भंडार विलसने लाग्या।
भक्तिमाल सुनै अरु गावै, जोनि संकट बहुरि न आवै॥

इनके एक पद्य मे भी एक साखी है—

जैसी कबीरजी हरिदास निवाज्यौ अनभै घट उपजाई।
ऐसे दीनदयाल दादूजी, अनाथ निवाजै आई॥१॥

उपर्युक्त भक्तमाल तथा पद के उद्धरण से व्यक्त होता है कि इनके पहिले ही हरिदासजी हो चुके थे, और वह काल इनके जीवन से पहिले ही का होना चाहिये।

दादूजी के सबसे लघु-शिष्य छोटे सुन्दरदासजी—इनका जन्म-संवत् १६५३ तथा ब्रह्मविलय-काल १७४६ है। इनका रचना-काल संवत् १६८० से अन्त समय तक का मानना चाहिए। इनने भी अपने अष्टक तथा पद्य मे महाराज हरिदासजी का उल्लेख किया है।

सेवा अगम अपार गुसाईं, आप आप कूं जाणै ॥
भरि भरि प्रेम पियाला पीवै, हरि सूं बाणिक बाणै ॥२३॥
जहां तहां सेवक की सेवा, सेवा बिना न जीवै ॥
हालत चालत सूतां बैठां, अमी महारस पीवै ॥२४॥
सेवग होइ करि सेवा लागै, बिन सेवा नहीं पावै ॥
रमता राम सकल घट दीसै, सेवग हरि कूं भावै ॥२५॥
आनंद रूप अगह अविनाशी, अंतर ज्योति प्रकासी ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै, निशिदिन रहै उदासी ॥२६॥
अबरण बरण रूप रंग नांही, सकल बर्ण तैं रहता ॥
साधु सुमिरे राम निरंजन, तीन लोक का करता ॥२७॥
ओछा बासण राम अगोचर, दया भाव करि आया ॥
अगम अगाध पार नहि कोई, साहिब सूं मन लाया ॥२८॥
आपै आवै आपै गावै, आपै पंथ चलावै ॥
जहां तहां राम अविनाशी, साधू सन्मुख पावै ॥२९॥
आपै सांई आपै मांही, आप ही अगम अपारा ॥
साधूजन कै घट में पेलै, और दुनियां तै न्यारा ॥३०॥
मेरी जीवनि राम अपारा, मन ही सूं मन लाया ॥
अनहद किंगुरी बाजा बाजै, गुरु गमतें हरि पाया ॥३१॥
हरि सबकी जानें सेवग की मानैं, सबतैं रहै निराला ॥
साधु जन का हृदा मांही, बरसे अमृत धारा ॥३२॥
द्रोह प्रमोह ख्याल एक रचिया, रचि करि भया निराला ॥
साधु सुमिरै राम निरञ्जन, गावै राम पियारा ॥३३॥
तेरी बाजी तैं ही साभी, दूजा का बल नांही ॥
साध जंबूरा राम ही जाणै, ढूँढ लिया घट मांही ॥३४॥
साधू रमै राम ही जाणै, राम हीं हिरदै आणैं ॥
राम ही राम जपै निशिवासुर, रामहिं राम पिछाणै ॥३५॥

परमारथ की कथा सुणावै, सुणि करि चालौ लोई ।।
ऊंच नीच राम कै एकै, ऐसा समरथ सोइ ।।३६।।
साध संगति राम की सेवा, भाग बड़ै सो पावै ।।
भजै राम कूं संक न मानै, हरि मैं जाय समावै ।।३७।।
सुमिरण सेवा ध्यान हरि पूजा, नांव निरंजन लागा ।।
सतगुरु हमकूं सांच बताया, जुरा मरण भौ भागा ।।३८।।
सतगुरु पाया हरि जन गाया, रमता राम हमारा ।।
अंतर गति में सेवा लागी, निरमल ज्यौति अपारा ।।३९।।
में हूं जीव राम है शीव, महर करि सुष दीया ।।
अगम अगाध पार नहिं कोई, अगम पियाला पीया ।।४०।।
ऐसी धरणि धरि हरि तुमही, हरि विना दूजा नांही ।।
एकमेव व्है सेवा लागा, अमी महारस खांही ।।४१।।
सब कछु कीया राम सुष दीया, रामैं राम पुकारै ।।
रामै राम रह्या भरपूर ही, रामैं राम हमारै ।।४२।।
निराकार की बाणी बोली, निराकार नांही आकारा ।।
हरिजन होइ सो हरि ही जाने, सुमिरे बारंबारा ।।४३।।
सुरनर मुनिजन पीर अवलिया, तिन हूं नहीं पाया ।।
अगम अगाध पार नहीं पावै, माया सु मन लाया ।।४४।।
हरि की भक्ति साध भल जाणै, सुमिरैं अगम अगाधा ।।
अवर्ण वर्ण रूप रंग नांही, बिरला साधां लाधा ।।४५।।
अवर्ण वर्ण धूप नहिं छाया, दुष सुष तै भी न्यारा ।।
अगम अपार पार नहिं कोई, सो है राम हमारा ।।४६।।
एका एकी रहै निराला, संग न कोई रापै ।।
हरिजन हरि मैं सुमिर समावै, राम रसाइण चापै ।।४७।।
बे परवाही सब का करता, मेरी जीवनि सोई ।।
अबगति की गति क्या कही बरणूं, जाके मांस न लोई ।।४८।।

ज्योति ही ज्योति रही भरपूरा , ज्योति न बरणी जाई ॥
हरिजन व्है सो ज्योति ही जाणै , ज्योति ही रह्या समाई ॥४६॥
हरि है चोर सकल कूँ देखै , हरि कूँ कोई न पेखै ॥
साधू चोर चोर कूं जाणै , उद्बुद कथा अलेखै ॥५०॥
हरि है सांई देख्यां मांझी , तेज रूप हरि हीरा ॥
अंतर जागै सुमिरण लागै , पाये राम सधीरा ॥५१॥
निराकार की महिमा बरणी , रमता राम ही आपै ॥
साधू सुमरै रामनिरंजन , सुमर सुमर मन धापै ॥५२॥
तीन जाकी ज्योति फिरत है , जल थल रह्या समाई ॥
जन कल्याणदास राम है ऐसा , जांका हरषि हरषि गुण गाई ॥५३॥

इति निराकार की महिमा जोगग्रन्थ सम्पूर्णम् :—ग्रन्थ १

॥ अथ ज्ञानसार आत्मा विचार ग्रंथ प्रारम्भ ॥

पर आतम सूँ आतम होई , आतम सेती मनवा सोई ॥
मनवा लेकर कर्म कमावै , कल्याणदास ऐसै समझावै ॥१॥
ज्ञाननिजर करि जाकूं सूझै , सो ही हरिजन ऐसी बूझै ॥
षोज बूझि जन करै विचारा , सांई सुमरै अनंत अपारा ॥२॥
बंकागढ़ कूँ कोइक लागै , कनक कामिनि दोनूँ त्यागै ॥
त्यागि समझि करि सेवा कीजै , राम रसाइण भरि भरि पीजै ॥३॥
ऐसा साधू बिरला पाऊँ , निशिवासुर मैं बलि बलि जाऊं ॥
ऐसा साधू राम सनेही , मैं तैं ममता त्यागै देही ॥४॥
क्या मेरा क्या तेरा भाई , काहे कीजै बहोत बड़ाई ॥
बहोत बड़ाई कछु हाथ न आवै , गोविद कहे गुण काहै न गावै ॥५॥
दुनियां औघट घाटी जाई , मैं तो हरि की बात सुनाई ॥
हरि का मारग सिरके साटै , राम बिना दूजी मत पाटै ॥६॥

मैंर कहूँ तूँ सुणलै भाई, प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाई ॥
ऐसा अवसर बहुरि न पावै, हीरा जन्म अमोलक जावै ॥७॥
देही सेती देही जावै, काम क्रोध विषया मन भावै ॥
जा विषया केहू लाडू, अबला कछू न आवै सादू ॥८॥
माया त्यागि हरी कों बूझै, पांचौं इन्द्री सेती झूझै ॥
ऐसा मनके होय विचारा, तौ भौजल तिरत न लागै बारा ॥९॥
बदन बिलौके हरि कूँ सोधै, सुरति सुरति सूँ मन पर मोधै ॥
परमोध्यां इन्द्री आनंद होई, काल जाल लागै नहिं कोई ॥१०॥
साहिब सांई अनंत अपारा, ऐसै भजिये सिरजनहारा ॥
हरि का मारग मति ही भूलै, नहींतर चौरासी मैं झूलै ॥११॥
ज्ञान निशरनि मनवै पाई, प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाई ॥
सबही दिन है लेषा मांही, राम रसाइण भरि भरि पाई ॥१२॥
या दुनिया तैं मनकू फेरै, निशिवासुर साहिब कूँ टेरै ॥
प्रेम पियाला भरि भरि पीवै, अपनौ जन्म सुफल करि जीवै ॥१३॥
बहिरमुषी सूँ कछू न कहणा, अपनें दिल में चुप व्है रहणा ॥
दिलहि दिलमें सुमिरै सांई, राम रसाइण अमृत पांई ॥१४॥
बहिरमुखी जो मोपै आवै, मेरे मनको कबहु न भावै ॥
दुनियां कीर चलावै बाता, समझै नांही हरि की गाथा ॥१५॥
जोरी करै जुलम गुदारै, मूँड मुडाई लाठी सूँ मारे ॥
ते तो जगमैं कहिए बुरवा, साध संगति चलि आवै गरवा ॥१६॥
हरि का मार्ग मांही मरिये, पाछा पग कबहूँ नहिं धरिये ॥
ऐसीं मनकै उपजै करुणां, सबही बातां आवै जरणां ॥१७॥
मूंड मुडाई पर घर कूँ भाजै, काल सदा ही शिर पर गाजै ॥
ऐसै भौंदू लोक हँसावै, हीरा जन्म अमोलक जावै ॥१८॥
बाहर जाता भीतर आनै, मनहीं मांहीं राम पिछानै ॥
ऐसै हरि की कीजै सेवा, राम निरंजन अलप अभेवा ॥१९॥

साधां मांही आवै गावै, मैं तैं ममता मर्म नसावै ॥
या की कछु किम्मत नांहीं, ऐसी समझ पड़ी मन मांही ॥२०॥
जन कल्याणदास या हरि की गाथा, जीवड़ा रहिये हरि के साथा ॥
मेरा मनकै उपज्या भेवा, ऐसे कीजे हरि की सेवा ॥२१॥
भजन करै कै टूका दीजै, और भर्म कोई नहीं कीजै ॥
एक वैर हरि मारग पावै, कल्याणदास जन कहि समझावै ।२२
मारग पाय रहै वैरागी, कनक कामनी दोन्यूं त्यागी ॥
त्यागिर आवै हरि की ओटा, तो जन्म २ का भाजै टोटा ॥२३॥
सांचा साहिब सांची बाणी, या दुनियाँ तैं उलटी ताणी ॥
परम ज्योति में कीया बासा, ऐसै निपजै हरि का दासा ॥२४॥
हरि का मारग सबतैं नीका, और धर्म सब लागै फीका ॥
कर्म भर्म कोई नहीं लागै, राम नाम में निशदिन जागै ॥२५॥
साची सेवा साचा साधू, साहिब सुमिरौ राम अगाधू ॥
जामैं नहीं मरै कोइ नही आवै, साहिब मांही जाय समावै ॥२६॥
उदबुद सांई उदबुद खेला, अपना साहिब रहै अकेला ॥
नष शिष सेवा सुमरण राम, ऐसे मन पाया विश्राम ॥२७॥
ऊजल निर्मल अमृत नीर, जन्म २ की मिट गई पीर ॥
जोग मूल का मारग पाया, प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाया ॥२८॥
साची सेवा साचा राम, लोभ मोह व्यापै नहिं काम ॥
ऐसी कथा और नहिं जाणै, साहिब अपनां मांहिं पिछाणै ॥२९॥
हरिजी आया मारग पाया, मनहीं मनमें गोविंद गाया ॥
मनही मनमैं सुमिरण कीया, तन मन जोबन हरि कूँ दीया ॥३०॥
त्यागै पांचू और पचीस, हरि कूं सौंपै तन मन शीश ॥
शबद अनाहद बाजै तूरा, सोइ हरिजन हरि का पूरा ॥३१॥
त्यागै माया त्यागै देही, तौ मन पावै राम सनेही ॥
जुरा न ब्यापै काल न खाई, हरिजन हरि में रह्या समाई ॥३२॥

नगरी मांहीं आनंद देव , राम निरंजन अलख अभेव ।।
कल्याणदासजन देखि हिरानी , आतम पाया उद्‌बुद ज्ञानी ।।३३।।

इति श्री ज्ञानसार आत्माविचारग्रंथ संपूर्णम्

संतो सतगुरु कहै विचारा , सुमिरो सिरजन हारा ।।टे०।।
बहु संगति में मन फूटि है , बहु संगति नहीं कीजै ।।
गुरु गोबिद के शरणै रहिये , अमी महारस पीजै ।।१।।
बहु बिधि बाणी बहु बिधिजानी , बहु बिधि बाणी फूटै ।।
गुरु गोबिंद का सुमिरण कीजै , राम रसाइण लूटै ।।२।।
गुरु गोबिंदकूँ बंदि करि , ग्रंथ पद कहि साषि ।।
गोरख भरथरी कबीर नामदेव , हदा भीतर राषि ।।३।।
गुरु गोबिद के शरणे रहिये , गुरु गोविंद है सार ।।
जन कल्याणदास भजि राम निरंजन , अगम वार नहीं पार ।।४।।

चित लागो रमता राम सूँ , मन बिरच्यो त्रिपया वाम सूँ ।।टेर।।
जीव साध संगति मिल बूझै , ऐसै अविनाशी हरि सूझै ।।१।।
ऐसै भाव भक्ति मन धीरा , मिटि जन्म २ की पीरा ।।२।।
जन कल्याणदास सुख पाया , सुख सागर मांहि समाया ।।३।।

जिन पाया साहिब सांई , वै घटि बधि बोलै नांहीं ।।टेर।।
घटि बधि बोलै झूठा , वै साहिब सेती रूठा ।।१।।
जीव ऊपर भेष बनावै , साहिब कबहू न पावै ।।२।।
साच सबद लै तोलै , हरिजन झूठ न बोलै ।।३।।
जन कल्याणदास अब डरिये , अब साहिब शरणै रहिये ।।४।।

राम रस मीठा रे , अमली बिन पीया न जाय ।।टेर।।
काम क्रोध तृष्णा तजि , पांचूँ इन्द्री और ।।
सोई पीवै राम रस , पावै हरि मैं ठौर ।।१।।

तन मन आतम सूं पीयै, सुरति निरति सब शीश ॥
राम रसाइण भरि पीया, पूरण है जगदीश ॥२॥
राम रसाइण सार है, ताका वर्णों विस्तार ॥
कल्याणदास जन पीजिये, मेरे जीव का प्राण आधार ॥३॥

राम रस बंकारे, कोई पीवै साधु सुजाण ॥टेक॥
तन मन सौपै सो पीवै, दूजा पीवै नांय ॥
राम रजाइण पीवतां, आतम हो सुष मांय ॥१॥
यह साधां की रीत है, साहिब सेती प्रीति ॥
राम रसाइण पीवतां, तन मन बैठे जीत ॥२॥
जापै हरि कृपा करी, पीवत रहै अघाय ॥
कल्याणदास जन वीनवै, प्रेम प्रीति ल्यौ लाय ॥३॥

राम रस पीवै रे, पीवै जीवै सोई ॥टेक॥
सब साधां कीमति करी, कीमति लषै न कोई ॥
राम रसाइण पीवतां, जीव अविनाशी होई ॥१॥
तन मन देकरि पीजिये, सिर के साटै राम ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, म्हारे मन पाया विश्राम ॥२॥

हरि की कथा सुनि रे प्राणी, साध देय उपदेश ॥
साध बिना पावै नहीं, तेरा ब्रह्म कहींजे देश ॥टेक॥
साधू मांई साधू भाई, साधू पिता हरि देव ॥
साधां बिन पावै नहीं, सांई अलष अभेव ॥१॥
साधू सूरा साधू पूरा, साधां कूं मन देह ॥
साध बिना पावै नहीं, तू राम भजन सुष लेह ॥२॥
गोरष भरतरी कबीर नामदेव, सुनि साधन की साषि ॥
साध बिना पावै नहीं, तूं रामहिं हृदै राषि ॥३॥

प्रमाण गोरष भरतरी, कबीर नामदेव वीर ॥
साध बिना पावै नहीं, राम भक्ति की सीर ॥४॥
साधू हीरा साधू पीरा, साधू अवगति राम ॥
जन कल्याणदास शरणे आया, साधू सारे काम ॥५॥

गरज रहै अंतर राम अलेख,
पांच पचीस तीन गुण भागा, अन्तर रही न रेष ॥टेक॥
हिरदा कंवल में हरि अविनाशी, साहिब अनन्त अपार ॥
ता आनन्द में आनन्द बिलसै, अन्तर राम अधार ॥
एकमेक अन्तर कछु नांही, साहिब है महबूब ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, पाया साहिब खूब ॥२॥

हम घर आये हरि का जना, राम रतन धन पायो मना ॥टेक॥
दर्शन परसन ज्ञान बिचार, राम रतन धन पायो अपार ॥१॥
चार मुक्ति सहजै घर पाई, प्रेम प्रीति अन्तर ल्यौ लाई ॥२॥
सबद साधन को दर्शन पावै, इडा पिंगला सुषमन गावै ॥३॥
कल्याणदास जन बलि२ जाई, दर्शन परसन रहै समाई ॥४॥

सषी हो दास कबीर गुरु राष्या,
सकल शिरोमणि नाथ निरंजन, अमी महारस चाख्या ॥टेक॥
मैं बलि जाऊं गुसांई तेरी, शरणै ताकिर आया ॥
गुरु गोबिंद का सुमिरण कीया, नाथ निरंजन गाया ॥१॥
तन मन देकरि शीश भी दीया, गुरु गोबिंद मिलि जीया ॥
महिमा कहा कहूँ जन केरी, अमी महारस पीया ॥२॥
ज्यूं ही कह्या रह्या मन त्यूंही, ऐसा मन का धीरा ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, दास कबीर जन हीरा ॥३॥

सषी हो गुरु के शरणै रहिये,
गुरु गोबिद हाथ जब पकड़ै, बहु मारग नहि बहीयो ॥टेक॥

गुरु की साजै फेर निवाजै, हरि चरणा में राषै ॥
गुरु गोबिंद की कृपा हुई, राम रसाइण चाषै ॥१॥
असली गुरू का भाव हमारे, भरमी गुरू न कीजै ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, यूं मेवासा लीजै ॥२॥

अपनो जानि मोहि देष हरि,
अगम अपार पार कछु नांही, सो साहिब मैं ध्यान धरी ॥टे०॥
तुम्हारी गति मति तुमही जानो, मैं बपरा परमौज ढरी ॥
हरि चरणां में आय दुरे हैं, अभरा आतम राम भरी ॥१॥
अलष बिनांणी अन्तरजामी, राम नाम कहि छाडि मनी ॥
जन कल्याणदास कीमति कछु नांही, सकल निरन्तर राम धनी ॥२॥

परमसाधक सिद्धपुरुष महात्मा सेवादासजी

हरिदासजी महाराज के शिष्यो मे तो अनेको-अनेको सिद्ध पुरुष महात्मा थे। उनके पश्चात् जो शिष्यो की परम्परा चली उनमे भी समय समय पर अनेको सिद्ध साधक महापुरुष हुए है उन्ही मे महाराज सेवादासजी की गणना है। आप महाराज हरीदासजी की छटी पीढी मे हुये जैसा भूमिका मे षेमजी बडो की परम्परा के निरूपण से सिद्ध है। आप दयालदासजी महाराज के शिष्य थे।

आपका जन्मकाल १६८७ चैत सुदी ६ का था ऐसा आपके पोता शिष्य स्वामी रूपदासजी ने आपकी परचई मे लिखा है। रूपदासजी अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य थे, अमरपुरुषजी सेवादासजी महाराज के शिष्य थे। रूपदासजी ने सेवादासजी की परचई मे उनकी साधना, भ्रमण तथा प्रदर्शित चमत्कारो का निरूपण किया है। जैसा परचई की निम्न दो साखियो से सिद्ध होता है।

सोलह सौ सत्ताणवे, चैत सुदि नौमी दिन ॥
ता दिन बाजे बाजिये, प्रगटे सेवा जन ॥
सतरा सौ अठाणवे, वद पडबा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधाइया, कियो ब्रह्म में वास ॥२॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि महाराज सेवादासजी का शरीर एक सौ एक वर्ष रहा। उनका रचनाकाल अठारहवी सदी के दूसरे तीसरे चरण ठहरते हैं। निरजनी सम्प्रदाय के रचनाकारो मे महाराज तुलसीदासजी व सेवादासजी को ही वाणी रचना मे अग्रणी कह सकते है। जितनी विस्तृत वाणियें इन महापुरुषो की है उतनी विस्तृत और किसी रचनाकार को नहीं है। वाणी रचना मे तुलसीदासजी व सेवादासजी के पश्चात् कल्याणदासजी आत्मारामजी रूपदासजी का स्थान है। कल्याणदासजी की पूरी वाणी अभी ..ा त नही है।

सेवादासजी महाराज ने तीव्र तितिक्षा तथा त्याग वैराग के साथ अपनी साधना को सफल किया। उनकी वाणी मे सर्वत्र अनुभूति का स्रोत प्रवाहित है। उनने जिन बातो को अपने जीवन मे उतार लिया उन्ही का वाणी मे उपदेश दिया है। रचना से प्रतीत होता है कि वे सर्वथा निरक्षर नही थे। वे प्रकाण्ड पण्डित नही थे पर वे शास्त्रीय ग्यान से शून्य भी नही थे। उपासना उनने भी निर्गुण भक्ति को अपना कर की। नाम स्मरण तो उसका अवलम्बन होता ही है। व्यवहार मे वे किन्ही सामाजिक रूढियो तथा वर्ग विशेषो की प्रथा के समर्थक नही थे। उनकी वाणी पूरी प्रकाशित हो तभी उनके मनोभावो का रूप सम्यक् सामने आये। यहा तो उनकी वाणी का दिग्दर्शन मात्र ही सामने आयेगा। उनने वाणी रचना मे साषी, कुंडलिये, छप्पय, मनहर, सवैया, चान्द्रायण छन्दो का प्रयोग किया है। सबसे अधिक रचना साषियो की है ५७ अगों मे ३५६१ साषिये लिखी गई है। दस ग्रन्थो मे दोहे चौपाई पाचसौ पिचहत्तर के करीब है। कुण्डलिये चौतीस अगो पर चारसौ है। छप्पय, मनहर, सवैये चौबीस है। बारह अंगो पर एकसौ चौतीस चान्द्रायण है। अग नौ पर चमालीस रेषते है। राग २१ मे चारसौ दो पद है। सम्पूर्ण रचना का योग दोहे छन्द से सात हजार से ऊपर होता है। सेवादासजी महाराज से सम्प्रदाय की परम्परावृत्ति मे भी बहुत अधिक योगदान मिला आपके शिष्यो मे ही महाराज अमरपुरुषजी हुए, जिनके शिष्य प्रशिष्यों की संख्या सैकडो मे थी। उक्त स्थिति से यह कहा जा सकता है कि महाराज हरिदासजी के पश्चात् सेवादासजी महाराज का आगमन सभी दृष्टियों से निरंजनी सम्प्रदाय की समुन्नति का हेतुरहा आपके समकालीन और भी कई योग्यतम महात्मा निरंजनी सम्प्रदाय मे आये जिनका आगे दिग्दर्शन कराया जायगा।

॥ अथ श्री गुरूदेव को अंग ॥

॥ अथ वन्दना ॥

नमो नमो निरंजनम्, निराकार निरलेपकम ॥
सहजानन्द अषण्ड ब्रह्म, अजरौ, अमर, अनूपकम ॥१॥

पृष्ठ ८८२ पद संख्या–५

महासूर जिनको जस गाऊँ, जिन हरि सौं लौ लाई रे।
मन मैंवासी कियो आप बसि, और अनीति उठाई रे ॥टेर॥

× × ×

गोरषनाथ भरथरी सूरा, कमधज गोपीचन्दा रे।
चरपट काँणेरी चौरंगी, लीन भये तज द्वन्दा रे॥
रामानन्द कियो सूरा तन, काशीपुरी मँझारी रे।
लोक उपासक शिव के होते, आनि भक्ति विस्तारी रे॥
नामदेव अरु रंका बंका, भयो तिलोचन सूरा रे।
भक्ति करी भय छाँड़ि जगत को, बाजहिं तिनके तूरा रे॥
कलियुग माँहिं कियौ सूरा तन, दास कबीर निसंका रे।
ब्रह्म अग्नि परजारि पलक मैं, जीत लियो गढ़ बंका रे॥
जन रैदास साधि सूरा तन, विप्रनि मार मचाई रे।
सौंझा पीपा सेन धना तिन, जीती बहुत लराई रे॥
अंगद भुवन परस हरदासा, ग्यान गह्यो हथियारा रे।
नानक कान्हा वेण महाभट, भलौ बजायौ सारा रे॥

× × ×

आदि अन्त कीयो सूरा तन, युग युग साध अनेका रे।
सुन्दरदास मोज यह पावै, दीजै परम विवेका रे॥

उक्त पद्य का प्रारम्भिक भाग नही दिया गया है, जिसमे अति-प्राचीन ऋषि-मुनियो व महात्माओं का निर्देश है। प्रस्तुत पद्य-भाग मे उनके समय मे जीवित किन्हीं भी महात्माओ का उल्लेख नही आया है। जिनका नामोल्लेख है, वे अतीत के ही महात्मा है। उन्ही मे हरिदासजी का नाम आया है। इसका अभिप्राय यह स्पष्ट है कि सुन्दरदासजी के रचना-काल से पर्याप्त पहिले ही हरिदासजी हो चुके थे। इन्ही का दूसरा उदाहरण "सवैया" ग्रन्थ के गुरुदेव अङ्ग का पाँचवाँ छन्द है—

कोउक गोरष को गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू।
कोउक कंथर कोउक भरथरि कोउ कबीर को राषत नादू॥

गुरु पूर्ण परमानन्द है, गुरु अवगति आप अनंत ॥
गुरु व्यापक सब ही मांड मैं, गुरु निराकार भगवन्त ॥
अनन्त कला प्रकास गुरु, भयो तिमर को नास ॥
जन सेवादास बन्दन करै, हिरदै चरण निवास ॥३॥
गुरु गोबिंद की वन्दना, द्वैत भेद कछु नांहि ॥
ऐसो जाणि प्रणाम करि, सबै बिघन मिटि जाहिं ॥४॥
गुरु पूरण आप अनन्त है, सब विधि पुरवै काज ॥
पार उतारे सिष्य कूं, बैठे अजर जहाज ॥५॥

साषी—जन सेवादास सतगुरु मिल्या, पाया आतम ज्ञान ॥
पूरण एक लषाइया, दूसर नांही आन ॥६॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, पाया आतम भेव ॥
सांसा भागा भरम गया, भज अलष निरंजन देव ॥७॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, अन्तर पट खोले ॥
बहरा फिरि चेतन किया, गूंगा मुख बोले ॥८॥
गुरु समदर सिष्य तरंग है, उल्टि समाना मांहि ॥
जन सेवादास रलि एक होय, सहजे सुष बिलसांहि ॥९॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, मेहल्या मस्तक हाथ ॥
जाता उल्टा फेरिया, अब सुमिरण लागे नाथ ॥१०॥
सतगुरु सिष्य पर द्रवे, मलचर दे धोवै ॥
जन सेवादास दुरमति सब हरै, सांसा सब षोवै ॥११॥
सतगुरु दरवै सिष्य परि, तब सुमिरण लै लागै ॥
जनम मरण दुःख सब मिटै, सूता फिरि जागै ॥१२॥
सतगुरु दरवै सिष्य परि, तब सुमिरण लै लागै ॥
जन सेवा सुष होवै प्राण मैं, सांसा सब भागै ॥१३॥
सतगुरु दरवै सिष परि, सांसा सब षोवै ॥
तनमन पांचो उल्टि करि, जन सेवा सुध होवै ॥१४

दिल दरपण मंजन करे, गुरु सिकली गर ऐन ॥
जन सेवा भ्रम सारा मिटै, तब आतम पावै चैन ॥१५॥
गुरु सिकली गर सारिया, भरम मिटावै दाग ॥
जन सेवा पूरा गुरु मिलै, तब ही माथै भाग ॥१६॥
सब्द मसकला लाय करि, भरम भगावै दूरि ॥
जन सेवा अन्तरि सुष भया, दरस्या राम हजूरि ॥१७॥
गुरु सिकलीगर कीजिए, सब्द मसकला लाय ।
दुबध्या दूरनिवारि करि, एक रूप दरसाय ॥१८॥
गरु सिकली गर कीजिए, सब्द मसकला बाहि ॥
कर्म काट सब झड़ि पड़ै, तब दरसै उर माहि ॥१६॥
गुरु सिकलीगर कीजिए, षोवै दाग अपार ॥
जन सेवा मन उजल करै, तब दरसै अपरंपार ॥२०॥
रवि गुरु एक समान है, प्रगट्या जुग मांही ॥
जन सेवा गुरुदेव तै, तिमर अज्ञान मिटाही ॥२१॥
रवि गुरुदेव तै तिमर, अज्ञान होय होय नास ॥
रवि जग माहिं उजास करि, गुरु उरि करै प्रकास ॥२२॥
अन्तर करै उजास गुरु, करम भरम सब षोय ॥
मन की दुबध्या दूर करि, जन सेवा निर्भय होय ॥२३॥
जन सेवा गुरुदेव की, महमा अनन्त अपार ॥
कर गहि राषै डूबताँ, लष चौरासी धार ॥२४॥
जन सेवादास गुरुदेव की, महमा अनन्त अपार ॥
तन मन फेरि सँवारि करि, अमृत पाया सार ॥२५॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, दीया अजपा जाप ॥
तन मन पवना फेरि करि, अलष लषाया आप ॥२६॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, महिमा कही न जाय ॥
आप ससीषे करि लिये, हरि अमृत रस पाय ॥२७॥

जन सेवादास सतगुरु मिल्या, सब कुसमल रालै धोई ॥
मैला ऊजल करि लिया, काम कल्पना षोई ॥२८॥
जन सेवादास गुरुदेव की, महिमा कछु अनन्त ॥
पूरणब्रह्म लषाइया, आदि मध्य नहिं अन्त ॥२९॥
पवन प्रवेस न करि सकै, चन्द नहीं तहाँ सूर ॥
सतगुरू तहाँ पठाइया, जहाँ बाजै अनहद तूर ॥३०॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, कीया बहु उपगार ॥
रंका हीरा बगसिया, जन सेवा गुरु दातार ॥३१॥
जन सेवा दास सतगुरु मिल्या, दीपक दीया जगाय ॥
रोम रोम मैं रमि रह्या, अलष निरंजन राय ॥३२॥
देखो दया दयाल की, हम सूँ कही न जाय ॥
अधम उधारे डूबताँ, लिये सुमारग लाय ॥३३॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, डूबत काढ़ै कूप ॥
सूता जीव जगाय करि, दीन्ही वस्त अनूप ॥३४॥
सगा एक संसार मैं, सतगुरु सिरजनहार ॥
कर गहि काढै डूबतां, सलिल मोह की धार ॥३५॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, अगम तहाँ गम कीन्ह ॥
तन मन फेरि संवारि करि, रंका हीरा दीन्ह ॥३६॥
जन सेवादास के सीस परि, एक निराकार की छाप ॥
सतगुरु की किरपा भई, तब पाया पूरण आप ॥३७॥
चौरासी कर जीव था, तन मन फेरि सँवारे ॥
जन सेवा सतगुरु महर करि, भौसागर पार उतारे ॥३८॥
सतगुरु भाण प्रकासिया, हिरदै भया उजास ॥
जन सेवादास सांसा गया, हुआ भरम का नास ॥३९॥
गुरु मोज कृपा गुण क्या कहूँ, दीया भेद बताई ॥
अनन्त सेस मुख रसनहि होई, महिमा कही न जाई ॥४०॥

जन सेवादास गुरुदेव कूँ, क्या लै कीजै पेस ।।
बलिहारी गुरुदेव की, कीया तत उपदेस ।।४१।।
बिन सेवा बिन बन्दगी, गुरु भये परम कृपाल ।।
जलता सीतल करि लिया, बिषम मोह की झाल ।।४२।।
जगत कूप बिष धार में, बूड़े था यो जीव ।।
पर उपगारी गुरु भये, आप सरीषा कीव ।।४३।।
आपे अपणे जाणि करि, गुरु भये परम कृपाल ।।
सूते लिये जगाय करि (पल मै), पल मैं किये निहाल ।।४४।।
जग अंधियारी रैन मैं, सोवत लिये जगाय ।।
मृतक लिये जिवाई करि, राम अमी रस पाय ।।४५।।
जग झल मैं केते जले, ताका वार न पार ।।
गुरु के सरणे ऊबरे, नहिं बूड़े थे बिषधार ।।४६।।
बूड़े थे पणि ऊबरे, गहि गुरुचरण जिहाज ।।
जन सेवादास दुःख सब ही मिटै, सरे सबै ही काज ।।४७।।
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, किया और ही घाट ।।
बिषया ते मन फेरि करि, अगम दिषाई वाट ।।४८।।
वेद कतेब पुराण तैं, वा राह लषी न जाई ।।
जन सेवा अन्तर मैं लही, सतगुरु दई लषाई ।।४९।।
साचाँ सतगुरु जब मिलै, तब प्रगटै पूरण भाग ।।
कसणी दे कंचन करै, तब पावै परम सुहाग ।।५०।।
बा राह अति बारीक है, गुरु बिण लहीन जाई ।।
जन सेवा सतगुरु जब मिले, तब अन्तर देह लषाई ।।५१।।
जन सेवादास सतगुरु मिले, तब ही उतरे पारि ।।
भौ सागर संसार है, नाँव नाव मँझारि ।।५२।।
गुण, इन्द्री, मन के कहै, भरे नहीं जन बिप ।।
जन सेवादास सहजे तिरे, गहि सतगुरु की सीप ।।५३।।

सतगुरु काढे काल मुखि, लोचन आंजे ऐन ॥
जीव सीव समि हो गया, सुणि सतगुरु के बैंण ॥५४॥
सतगुरु सब्द स्रवण सुने, सोवत थे जागे ॥
काल मुखते ऊबरे, निरंजन नाँव लागे ॥५५॥
उल्टा सुल्टा करि लिंया, मृतक लिये जिवाय ॥
बहरा चेतन करि लिया, हरि अमृत रसपाय ॥५६॥

॥ अथ वीनती को अंग प्रारम्भ ॥

सब जग तेरा कहत है, तेरा करि माने ॥
मेरा मन की चोरियाँ, तुम सूं नहिं छाने ॥१॥
पाँचो सर नहिं होत है, मैं तो अबला नाथ ॥
तुम सांई समरथ हो, कर गहि राखो नाथ ॥२॥
मैं तो निबल सबल हैं पांचो, उर अन्तर गाजै ॥
तुम किरपा ते रामजी, दूंदर सब भाजै ॥३॥
जन सेवो कह सुण बापजी, मैं बिषे मगन बुद्धि हाँणि ॥
पार उतारो रामजी, बिरद आपणो जाँणि ॥४॥
बिषै मगन मो मन रत, नांव न तेरा लेह ॥
पतित उधारण हम सुणे, बिड़द तुम्हारो एह ॥५॥
हम तो निर्बल बल नहीं, ज्ञान जोग को ईस ॥
जनसेवा अपणा जाण करि, पार करो जगदीस ॥६॥
मन, इन्द्री निग्रह तप नहीं, न मेरे साधन और ॥
एक तुम्हारो आसरो, तुम बिन नाहीं ठौर ॥७॥
ना मेरे शील न सांच है, ना मैं लीया नांव ॥
बिड़द निवाहण जगत गुरु, जन सेवा मैं बलि जांव ॥८॥

संतोष न जरणा त्याग है, मोवल नाहीं ईस ॥
सेवादास जन बीनवै, तुम शरणे जगदीस ॥९॥
गुन्हां अनंत गुसांई मुझ मैं, गुन्हा न आवै ओड़ ॥
मुझ देखत तो अनन्त हैं, तुम देखत हैं थोड़ ॥१०॥
तुम हो तैसी महर करि, तुमें तैसा दे नांव ॥
जन सेवादास की बीनती, बाप राम बलि जाँव ॥११॥
राषो दयाल दया करि, सरणे सिरजनहार ॥
सेवादास जन बीनवै, मेरे प्रीतम प्राण अधार ॥१२॥
षानाजाद गुलाम की, अर्ज सुणो जगपति ॥
बिषिया तें मन फेरिकरि, तुम मांहि करि रति ॥१३॥
बन्दा कहत पुकारि करि, सुनो अनंत भवन के ईस ॥
जहां तहां ले राषियो, तुम सरणे जगदीस ॥१४॥
बन्दे का कछु जोर ना, जहां पठवो तहां जाहि ॥
जहां तहां ले राषिया, बन्दा तुम ही मांहिं ॥१५॥
नरक पठावो तो सही, भांवै चरणा मांहि ॥
सेवादास जन बीनवे, बन्दे का बल नांहि ॥१६॥
सूली द्यो भावै सहज सुख, सेवो जन कह टेरि ॥
एक रमैया तुम बिना, ओर न जांचू फेरि ॥१७॥
चेरा तेरा नाथजी, तेरे सारे नाथ ॥
भावै मारि बहाय द्यो, भावै गहि राखो हाथ ॥१८॥
भावै मारो तारो सांईया, तेरे नांइ बिकांहि ॥
सेवादास जन बीनवै, दखल और का नाहिं ॥१९॥
मेरे ओगुण हैं घणे, तुम हो गुणा अछेह ॥
महर तुम्हारी जगतगुरु, नांव दया करि देह ॥२०॥
नांव दया करि दीजिये, अन्तरि लै उपजाइ ॥
सेवादास जन बीनवै, तुम सुणो निरंजन राइ ॥२१॥

मोहे काल ग्रासे जगत गुरु, कीजै ऊपर मोर ॥
चोटी कटा गुलाम है, सेवादास जन तोर ॥२२॥
तुम बिन मेरे नाथजी, नाहीं कोई और ॥
जन सेवादास की बीनती, कर पकड़ो हरि मोर ॥२३॥
मैं तो तेरा नाथ जी, तुम मेरा करतार ॥
सेवादास जन बीनवे, मोहि उतारो पार ॥२४॥
मैं तो तेरा नाथ जी, कर पकड़े हरि मोर ॥
जन सेवादास की बीनती, तुम बिन नाहीं ठोर ॥२५॥
मैं अपराधी जनम का, कीया बहुत अपराध ॥
सरण गह्यां की लाज है, करुणा सिंधु अगाध ॥२६॥
मैं अपराधी जनम का, कीया पाप अघाय ॥
तुम तजि लागे आन सूं, अब राखो हरि सरणाय ॥२७॥
मैं अपराधी जनम का, अजहूं पाप करन्त ॥
जन सेवादास की बीनती, तुम सरणे उबरन्त ॥२८॥
मैं अपराधी जनम का, मन मैं पाप घणा ॥
मैं जीव निर्बल राम जी, बैरी पांच जणां ॥२९॥
मैं अपराधी जनम का, मोसा बुरा न ओर ॥
तुम तजि लागै आन पथि, ताकूं है कहां ठौर ॥३०॥
मैं अपराधी जनम का, कीये बहुत गुनाह ॥
सब्द बाण लागे नहीं, पहरी कर्म सनाह ॥३१॥
देही मैं अरि, रिपु घणा, हम बल कछु न बसाइ ॥
करुणानिधि करतार तुम, तुम ते सब कछु थाइ ॥३२॥
काम क्रोध बैरी सबल, मैं जन दुर्बल एक ॥
जन सेवादास की बीनती, दीजै सुमिरण भाव अनेक ॥३३॥
तुम दाता मैं जाचगी, दया करो हरि मोहि ॥
जन सेवादास की बीनती, मैं सरण रहूं हरि तोहि ॥३४॥

फूटो मन भटकत फिरै, तुम जाणो सब गति ॥
तुम आगे मैं नाथ जी, कहा दुराऊं पति ॥३५॥

मैं दुर्बल जन एकला, बहु वैरी बलवन्त ॥
मो बल कछु पहुँचे नहीं, तुम बल बहु भगवन्त ॥३६॥

जिहिं तुम राषो राम जी, तिहिं लगे न ताती वाय ॥
जन सेवादास की वीनती, मेरी करो सहाय ॥३७॥

औगुण वगसो नाथ जी, अपणा करि हरि लेह ॥
महर तुम्हारी जगत गुरु, अपणा सुमिरण देह ॥३८॥

चितवो कृपा कटांछि करो, जिहि साम्हो तुम पीव ॥
जन सेवादास सुख मैं रमे, सो दुप क्यों पावे जीव ॥३९॥

तुम हो तैसी कीजिये, मैं हूं तैसी नाहिं ॥
तुम सुष सागर दुष मेटणा, मैं अनीति भरया मन माहिं ॥४०॥

तुम तो तैसी कीजिये, तुम परम सनेही पीव ॥
मैं ओगुण भरया अनीति, चौरासी का जीव ॥४१॥

साहव तो सब ही लषो, कपट कूड़ जीव वाँणि ॥
जन सेवादास तब ऊबरे, हरि ओगुण बकसो जाणि ॥४२॥

मैं ओगुण ही का पूतला, तुम गुणवन्ता पीव ॥
जगजीवण ओगुण वगसियो, तब ही ऊबरे जीव ॥४३॥

हिरदा माहिं हरि बसो, लषो जीव की घात ॥
तुमसों कहा छिपाइये, तुम जाणो सब वात ॥४४॥

तुम जाणराय हो जगत गुरु, तुम ते कहां दुराइ ॥
जन सेवादास की वीनती, मेरा ओगुण सब वगसाइ ॥४५॥

जन सेवादास की वीनती, सायब करो मया ॥
सायब अपणा जाणि करि, ओगुण करो गया ॥४६॥

जन सेवादास की बीनतीं, याही मोज द्यो मोहि ॥
पात्र पालक बिसरूँ नहीं, हिरदा सूँ हरि तोहि ॥४७॥
जन सेवादास की बीनती, तेरी तिवणि देह ॥
जित देषूं तित तू ही तू, नैना यों ही सनेह ॥४८॥
कहि समझाओ बाप जी, मैं बालक बुद्धि हीन ॥
सेवादास जन बीनवै, मन करि तुम मैं लीन ॥४९॥
जन सेवादास की बीनती, सुनों अनन्त भवन पतिराइ ॥
भाव भक्ति विस्वास द्यो, मन तुम मैं रह्यो समाइ ॥५०॥
ना सुष चाहूँ स्वरग को, नहीं मुक्ति की आस ॥
सदक सबूरी भजन तुम, मांगे सेवादास ॥५१॥
रिद्धि सिद्धि हुं मांगू नहीं, न करूँ मुक्ति की आस ॥
चरण सरण राषो सदा, जन सेवादास कै प्यास ॥५२॥
आसण अचल तहां रहूं, तुम साहब मैं दास ॥
जन सेवादास की बीनती, दीजै चरण निवास ॥५३॥
हरि महर करो तुम नाम द्यो, तुम पै मांगत एह ॥
और कछू नहि चाहिये, अन्तरि हरि हरि देह ॥५४॥
दया तुम्हारी जगत गुरू, दीजै भक्ति पसाव ॥
सब हिरदे ते दूरि करि, एक रमैया आव ॥५५॥
जन सेवादास की बीनती, मेरे चाहि न और ॥
हिरदा माहीं आव तू, तुम देषूं सब ठौर ॥५६॥
समरथ सिरजन हार सुणि, जन सेवो करे पुकार ॥
सब ही ओगुण माफ करि, हिल मिल दे दीदार ॥५७॥
नैन बैन हिरदे कपट, रोम रोम भरपूरि ॥
विष कूँ अमृत करि पिवे, अमृत छाड़े दूरि ॥५८॥
नैन बैन हिरदे कपट, रोम रोम के मांहि ॥
जन सेवादास की बीनती, गुन्हा मेटि बलि जाहिं ॥५९॥

नैन बैन हिरदे कपट, सब घट कपट अनन्त ॥
जन सेवा साहिब क्यों करिमिलै, सब ही भापत सन्त ॥६०॥
नैन बैन हिरदे कपट, कहौ क्यों करि पाऊँ तोहि ॥
काम क्रोध अरि उर बसे, कहि समझाओ मोहि ॥६१॥
सील सांच सन्तोष गहि, सब घट आतम जाणि ॥
मन सुरति पवन समेट करि, इहिं बिधि मिलिये आणि ॥६२॥
मन पवना सुरति समि करि, अन्तरि हरि गुण गाइ ॥
जन सेवादास तब सहज मैं, सकल करम झड़ि जाइ ॥६३॥
साहिब मन कूँ फेरि करि, तेरा सुमिरण देह ॥
मैं चौरासी का जीव हूँ, हरि अपणा करि लेह ॥६४॥
जन सेवा कुटिल कठोरता, उर ते सब छुटि जाइ ॥
तब साहिब सहजै पाइये, साधु कहे समझाइ ॥६५॥

॥ इति विनती को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सजीवनि को अंग प्रारम्भ ॥

जन सेवादास सतगुरू दई, ओषद एक अनूप ॥
पीवत मिटे विकार सब, पलटि किये सुपरूप ॥१॥
जन सेवादास व्यापे नहीं, जुरा मरण भय काल ॥
ऐसी ओषद गुरु दई, पीवत भये निहाल ॥२॥
रोग बड़ा दारु बड़ी, जाणि दई गुरुदेव ॥
जन सेवादास वेदन गई, पाया अलप अभेव ॥३॥
ओषद अजब अनूप गुरु, हिरदे दई लपाई ॥
जन सेवादास अब सुप भया, सुप मैं रह्या समाइ ॥४॥
राम नाम ओषद अजब, रमे तो टूटे रोग ॥
ता घट मैं भेदे नहीं, जा घटि सांसे सोग ॥५॥

कोउ कहै हरिदास हमारै जु यौं करि ठानत वाद-विवादू ।
और तो सन्त सबै शिर ऊपर सुन्दर के उर हैं गुरु दादू ।।

उक्त सवैये मे विभिन्न पन्थो की ओर संकेत है। उन्ही मे महात्मा हरिदासजी का भी उल्लेख किया गया है। मतलब—सुन्दरदासजी के समय मे हरिदासजी के अनुयायियो ने निरञ्जनी पन्थ की परम्परा प्रचलित कर ली थी। इसका सीधा अभिप्राय है कि सुन्दरदासजी के समय मे निरञ्जनी-पथ प्रचलित था तथा उसके संस्थापक हरिदासजी को हुए अवश्य ही कुछ समय बीत चुका था। उपर्युक्त दोनो ही उद्धरण इसी अर्थ मे स्पष्ट है।

रज्जबशिष्य षेमदासजी, ग्रन्थ "रंभा-शुकसम्वाद" (काल १६८० से १७४०)

रज्जबशिष्य षेमदासजी की कई रचनाएं है। "रंभा-शुकसवाद" के प्रारंभ मे उनने गुरु तथा महात्माओ की वन्दना की है। उक्त वन्दना मे जिनके नामोल्लेख है, उनमे हरिदासजी का नाम भी है।

दोहा— सींस नवाऊँ गुरु चरण, पुनि विनऊँ सब साध ।
निराकार की भक्ति है, सो द्यो बुद्धि अगाध ।।

चौपाई—निराकार प्रणमति नित कीजै, रसना विमल गाइ गुन लीजै ।।
गुरु रज्जब दादू परम देवा, नाम कबीर करें हरि सेवा ।।
गोरष भरथरि गोपीचन्दा, ध्रु प्रहलाद सकलहूँ वन्दा ।
पींपा धना सेन रैदासा, सोंझा सोम सुनो हरिदासा ।।
सब कर कृपा देहिं जो ग्यानूँ, तौ कीजै सुष कथा बखानूँ ।।

षेमजी ने अपने पूर्व हुए महात्माओ की वन्दना की है उन्ही मे हरिदासजी भी है।

दादूजी के पोताशिष्य चैनजी, रचना—"भक्तमाल" (काल १६७० से १७३०)

उद्धरण—रामानन्द कबीर पीपौ परसू, गलगला सुरसुरा पावे हरसू ।
मति सूद्र रैदास पद्मावती सेवा, बोले सुरिया भजै हरि देवा ।।

राम सजीवन ओषदी, ले राषे मन माहिं ॥
जन सेवा सुष होय प्राण में, कोटि विघन टलि जाहिं ॥६॥
राम सजीवन ओषदी, ले राषे मन माँहिं ॥
और विघन व्यापे नहीं, चौरासी दुःष जाँहिं ॥७॥
जन सेवादास हरि सुमिरतां, कोटि विघन का नास ॥
याही ओषदी सति है, जे मनि आवे विस्वास ॥८॥
जतन करे नहिं पौन का, तो ओषद दोस न नाहिं ॥
जन सेवादास व्यापै नहीं, बूरी विथा मन माहिं ॥९॥
राम नाम निज औषदी, रुचि पीवे जे कोई ॥
जन सेवा मरे न जनम ले, कलि अजरावर होई ॥१०॥
राम अमी रस जिहि पिया, ते अमर भये संसार ॥
जन सेवा सब दुःष कटि गये, नाव तंणै आधार ॥११॥
जेहिं मुख राम रह्यो नहीं, ते मरि मरि जाहिं संसार ॥
जन सेवा ज्यांही हरि भज्यो, ते अमर भये भौपार ॥१२॥
राम विमुष केते मरे, मरि मरि आवें जाहिं ॥
जन सेवा ज्यां हरि रस पीयो, ते हरि ही माहिं समाहिं ॥१३॥
अषै अमर अविगति है, अषे अमर होइ दास ॥
जन सेवा हरि रस पीजिये, करि करि मन मैं प्यास ॥१४॥
हरि अमृत रस जिहि पिया, करि करि मन मैं प्यास ॥
जन सेवा मरे न जन्म ले, अमर भये निजदास ॥१५॥
लीन भये हरि नाँव मैं, भये सजीवन दास ॥
जन्म मरण दुःष सब कटे, अभै अमरपुर बास ॥१६॥
नाम सजीवनि जिहि पिया, ते भये सजीवन प्रान ॥
जन्म मरण दुःष तनि सहे, जे हरि तजि लागे आन ॥१७॥
राम कहत राम ही मिलें, जन सेवा अन्तर रहे न काइ ॥
जैसे बूंद समंद मैं, मिल भये एक भाइ ॥१८॥

सकल अघ सहजै कटे, रटे ज रसना राम ॥
जन सेवा निर्भय होइ रहे, सुधरे सब ही काम ॥१९॥
राम विमुष जब सब मरे, भजै न केवल राम ॥
जन सेवा केवल हरि भज्यो, सुधरे तिन के काम ॥२०॥
नाम कबीर रैदास कूँ, देषो नर निरताइ ॥
नाँव प्रताप निरभै भये, फिरि जग नहि जनमे आइ ॥२१॥
नाँव न छाड्यो पषबंध्यो, असुरां कै घरि आइ ॥
पिसणजि केते पच गये, दियौज अगनि जलाइ ॥२२॥
जे कोई पीवे राम रस, जे रसनां पावै स्वाद ॥
कबीर कसौटी ना लगी, देखो जन प्रह्लाद ॥२३॥
साध साहब एक ही, अमर होय नहिं नास ॥
नाँव संजीवन अघहरण, कटे जीव की पास ॥२४॥
आतम राम न बीसरे, सदा रहै ल्यो लाइ ॥
जीव ब्रह्म मैं यों मिले, ज्यों दरिया बूंद समाइ ॥२५॥
ओषद हरि का नाम है, रोगी सब संसार ॥
जन सेवादास गोविंद भजे, तब ही मिटे विकार ॥२६॥
जन सेवादास ओषद भली, जे कोई जाणे पाय ॥
पीवत ही सुष ऊपजै, जुरा, मरण, भै जाय ॥२७॥
जन सेवादास ते ही मुये, जिनहिं न जान्या राम ॥
राम जिन्होंने जानिया, तिन के सरे सब काम ॥२८॥

चौपाई :—

राम रसायण भरि भरि पीया, सेवा ते जन जुग जुग जीया।
अजर, अभय, अविनाशी गाया, गाय गाय तामाहिं समाया ॥
राम रसायण त्रिभुवन सारा, पीया तिन के कटे विकारा।
जन सेवादास सुप सागर भूले, पीवत छक्या नाँव तहिं भूले ॥

॥ इति श्री सजीवन के अंग सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ तत्व निर्णय जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

सतगुरु का चरण चित धरहूं, नित अनित को सोधन करहूं।
नित आतमा देह अनित्ता, याही समझि कहैं सब संता ॥
असुचि, अनित, अमंगल देही, सत, चित, आनन्द आतम येही।
षट विकार देह संजुक्ता, आतम सदा जाणिये मुक्ता ॥
सतगुरु सबदां बुद्धि लुभाणी, आतम सदा मुक्त ही जाणी।
गुरु किरपा ते मारग पाया, अंजन मांहि निरंजन राया ॥
दिष्टि पड़े सबही सो माया, तत् स्वरूप गुरुदेव बताया।
अलिप असंष ससि घट मांही, यो आतम अलिप लिये कहुँ नांहीं ॥
यूँ घट घट मांही अघट है स्वामी, नमो नमो तोहि अन्तर्यामी।
जोग नहिं भोग, मोह नहिं मायां, अगम, अपार, निरंजन राया ॥
रूप न रेष बर्ण वप नाहीं, अलष पुरुष रमै सब माहीं।
स्वेत न पीत स्याम नहि राता, रूप विवरजित आप विधाता ॥
वर्णा वर्ण नहीं आश्रमा, नाहीं करम नहीं अकरमा।
ऐसा अलष निरंजन राया, जोति जनम नहीं हरि आया ॥
जोनी जनम संकट नहिं आवै, हरि अगम अथाह थाह नहि पावै।
षट दरसन पावै नहि भेवा, हरि अचिंत, अजोनि, अलष अभेवा ॥
षट दरसन षोजे कहुं दूरा, सोतो राम रह्यो भरपूरा।
ज्यों नभ एक पूर्ण सब ठोरा, ऐसे राम बिना नहिं औरा ॥
अषण्ड, अभंग, अचल, अविनासी, सकल भवन मैं ज्योति प्रकासी।
अस्थिर अमित अमूरती देवा, सुर, नर, मुनि कोइ लहै न भेवा ॥
अडिग, अडोल अधर अविनासी, अलिप अबीह स्वयं प्रकासी।
अतीत, अजीत, अगह, अपारा, सबके माहिं सकल ते न्यारा ॥
अबीज, अछीज, अषीज, गुसांई, सब तै असंग रमै सब ठांई।
अद्वैत, अतीत, अनन्त, अपारा, दुःष सुष रहित सिरजनहारा ॥

ज्यों घन बिजरी बरषे मेहा, नाहि हाणी नभ के येहा।
ऐसे जगत ब्रह्म में होई, हाणि वृद्धि नहीं ताँ कोई ।।
पाप पुन्य नहिं बन्धन होई, ज्यों का त्यों ही जाणै सोई।
ज्युँ रजु मैं सर्प मुकर में झांई, ऐसे हरि में जगत दिषाई ।।
मन मैं सुपनौ जाय होइ आवै, ऐसें यो जग होय बिलावै।
अज्ञान दृष्टि तैं यो जग भाषै, ज्ञान भये पूर्ण प्रकासै ।।
बाहिर भीतर व्यापक सारा, है सब मांहि सकल ते न्यारा।
ज्यूं नभ पूर्ण है इक सारा, घट बाहिर भीतर हैं नहिं न्यारा ।।
जैसे ससी रहे आकाशा, अनन्त धरा में किया प्रकासा।
व्यापक असंग अघट घट मांहि, ऐसे राम रमै सब मांही ।।
अगम अगम नेति नित गावै, कहां ता को पार कहां ते पावै।
बाणी अनन्त अनन्त अवतारा, जल थल जीव अनंत विसतारा ।।
जल थल जीव अनन्त विस्तारा, जल ससि ज्यों देषो तत सारा।
दीरघ लघुता है कछु नाहीं, व्यापक ब्रह्म सकल घट माहीं ।।
लघु दीरघ या उपाधि दिषाई, चेतन घट बध है कछु नाहीं।
सोई ससी सरोवर आहीं, सोई ससी सरावां माहीं ।।
कीड़ी कुंजर है चेतन सम भाई, लघु दीरघ या उपाधि बणाई।
बाजी माँडै फेर उठावै, तिण ब्रह्मा लों रहण न पावै ।।
बाजीगर माया बिसतारी, सकल जीव बन्धे नर नारी।
ता बाजी तैं न्यारा कोइ नाहीं, ब्रह्मा विष्णु महेस हुँ माहीं ।।
तू है कारण कारज थारा, पाँच तत्व गुण तीन पसारा।
बीज रूप आदि भगवाना, ताही ते सब जीव उपाना ।।
माटी एक बहु भाण्डा होय आया, फिर कारज कारण मांहि समाया।
जैसे बीज मैं वृक्ष होय आया, बहुड़ि वृक्ष ता मांही समाया ।।
अनेक आभूषण कनक के होई, गाल्या एक रह गया सोई।
ऐसे सब घटि तत् बिचारा, ज्यों कंचन भूषण नहिं न्यारा ।।

हरि सब मैं सब हरि के मांही, ज्यों तरंग बुद बुदा जल बरतांही।
तरंग बुदबुदा है जल केरा, पवन मिल्यां जल माहीं बसेरा ।।
पवन वासना जब ही मिटाई, तब रिलि मिलि एक हुआ मिल मांहीं।
ज्यो पट तन्तु न्यारा नाहीं, ऐसे ब्रह्म सबै बरताहीं ।।
रमता राम सकल घट मांहीं, ऊँच नीच अन्तर कछु नाहीं।
पाँच वर्ण की गऊ दुहाई, सब मैं दूध एक सो भाई ।।
बामण, छत्री, वैस्य अर सूदा, बीज विगति एक जल बूंदा।
नीर एक बीज है जूत्रा, जा मैं पड्या ताहि रंग हवा ।।
थावर जंगम जीव चौरासी, सब मैं व्याप रह्या अविनासी।
नर, सुर, जल, थल, कीट, पतंगा, रहे सब के माहिं सब ही के सगा ।।
आदि अन्ति मधि तू ही देवा, अगाध, अपार, कोई लहे न भेवा।
गुरु किरपा ते ये तत् पाया, ऊगो भाण सब भरम मिटाया ।।
करता हरता एक तूं और न दूजा कोइ,
सुमरि सुमरि जन निर्मला रहे आनन्दी होइ ।।
सांची माला सुरति की, फेरे बिरला कोई।
सुमरि सुमरि रस पीजिये, जन सेवादास सुष होई ।।
जन सेवादास सांची कथा, सत गुरु दई सिषाई।
अन्तर के पटि दूरि करि, गुरु दीया अलष लषाई ।।
निरबिकार सो ब्रह्म है, सबिकारी जीव।
जन सेवादास यूँ जाण करि, सुमिरो अपणा पीव ।।
गुरु मूंदे नैन उघाड़िये, सूते लिये जगाई।
जन सेवादास आनंद भया, सुष मैं रहे समाई ।।

।। इति तत्व निर्णय जोग ग्रंथ सम्पूर्ण ।।

———

॥ अथ कुण्डलिया बिरकताई को अंग ॥

धन सब जाणै धूलि समि , संसारी सुष सूल ।
मान जगत की सीष समि , तब होवै हरि अनुकूल ॥
तब होवै हरि अनुकूल , बासना रहै न कोई ।
सुरग मृतक पाताल , देष सुष दाभै लोई ॥
जन सेवा सिद्ध सब रींट सम , तजि नाम गहै निज मूल ।
धन- सब जाणे धूलि समि , संसारी सुख सूल ॥१॥

मण्डी मसाणों जहाँ तहाँ , रुंखे वृत्ते बास ।
आठ पहर गोबिंद भजे , जग ते रहे उदास ॥
जगते रहे उदास , कल्पना सब बिसरावै ।
जो आवै सहज सुभाइ , नहीं मांगरि भिक्षा खावै ॥
सेवग परमोदे नहीं , जन सेवला एक रहे विस्वास ।
मण्डी मसाणा जहाँ तहाँ , रुंखे वृत्ते बास ॥२॥

करवो कटारी तूमड़ी , जल पातर राखै जन ।
निस दिन हरि सुमरण करै , कर कर निरमल मन ॥
करकर निरमल मन , दरव कै हाथ न लावै ।
फाष्ठ लेह अहारजो , रांम अग्या मैं आवै ॥
उदिम जनसेवा ना करै , निर उदिम रहे तन ।
करवो कटारी तूमड़ी , जल पातर राखै जन ॥३॥

छाजन भोजन सहज मैं , करता चिन्त करे है ।
सर्व परिग्रह त्यागि करि , निर्भय हरि सुमिरेह ॥
निर्भय हरि सुमिरेह , आन आसा सब तोड़े ।
जग सुष सपनौ जांणि छाडि , मन हरि सूं जोड़े ॥
हरि बिन दूजी आथि सव , जन सेवा चितन धरेह ।
छाजन भोजन सहज मैं , करता चिन्त करेह ॥४॥

राम दया तैं पाइये, निरगुण दसा वड़ भाग ।
करि करवो गलि गूदड़ी, अन्तरि अति अनुराग ।।
अन्तरि अति अणराग, परम सुप लागा जीवै ।
तन मन पवना फेरी, अगम का प्याला पीवै ।।
जन सेवा निज तत् उरि लहै, कनक कामणी त्याग ।
राम दया ते पाइये, निरगुण दसा वड़ भाग ।।५।।
निरगुण मत धारया रहै, ते जन धनि जग माहिं ।
अपे, अमर वर सीस परि, आन भरोसा नाहिं ।।
आन भरोसा नाहि, भयै सब तैं अणरागी ।
लोभ मोह मैंमत मांनि, माया सब त्यागी ।।
जन सेवादास जन निर्मला, सदा परम रस पाहि ।
निरगुण मत धारया रहे, ते जन धनि जग माहिं ।।६।।
निरगुण मत धरि हरि भजै, सब मानि विडारे काम ।।
हरि पाव पलक बिसरे नहीं, सिमरे आठो जाम ।
सिमरे आठों जाम, आन आसा सब तोड़े ।।
इक भजो निरंजन देव, जगत सुष कबहुन लोड़े ।
जन सेवादास छाड़े नहीं, हिरदा ते हरि नाम ।।
निरगुण मत धरि हरि भजै, सब मानि विडारे काम ।।७।।
बिरकत माया मोह सो, परमेस्वर सूँ प्रीत ।
जग सुप देषे छार समि, या सन्ता की रीत ।।
या सन्ता की रीति, जीत गुण नाँव संभारे ।
काम क्रोध मद लोभ, मोह मैमंता डारै ।।
जन सेवादास बैराग बृत, सब देही का गुण जीत ।
विरकत माया मोह सूँ, परमेस्वर सूँ प्रीत ।।८।।
निरगुण मति धरि हरि भजै, सो जन समझ सयांण ।
जन सेवादास सोधि बिना, सो नर मूढ अयांण ।।

सो नर मूढ अयाण , तीन गुण माहि अलूधा ।
चोथा की नहिं गम , समभि षथलिया न सूधा ।।
तीरथ बरत तपस्या लगै , केई लगै पषाण ।
निरगुण मति धरि हरि भजै , सो जन समजि सयाण ।।९।।

गुण तजि निरगुण जे भजै , सो निरगुण माहिं समाइ ।
गुण पोषै निरगुण कहे , सो निरगुण कदे न पाइ ।।
सो निरगुण कदे न पाइ , ईष्ट जहाँ जाय समावै ।
जैसा बाहै बीज , बहोड़ी फल तैस पावै ।।
जन सेवा आसै पहुंच सी , आगे कदे न जाय ।
गुणि तजि निरगुण सो भजै , सौ निरगुण माहिं समाय ।।१०।।

सोधि करि सांई भजै , सो जन पहूँचै पारि ।
सोधि विन जनसेवला , रहसी वैलि वारि ।।
रहसी वैली वारि , पार कोई पहुंचे सूरा ।
जाकी आदि अन्त मधि नाहिं , लहै कोई गुरु गमि पूरा ।।
ब्रह्मा विष्णु महेश कूँ , तजी एक निरंजन धारि ।
सोधि करि सांई भजै , सो जन पहुँचे पारि ।।११।।

सुर सिद्ध दस अवतार , ईस्वरी माया जाणौं ।।
ब्रह्मा विष्णु महेस , ताही के परै पिछाणौ ।
ताहि के परे पिछाणौ , ज्ञान सोधि करि लीजै ।।
रमि रह्यो रमता राम , सुमिरि सुद्धि कारज कीजै ।
जन सेवादास साचो सब्द , सोधि हिरदा मै आणो ।।
सुर सिद्ध दस अवतार , ईस्वरी माया जाणौं ।

।। इति विर कताई को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ सांच को अंग ।।

साँच बताया सत गुरु, किया भरम सब दूरि ।
सब घटि एको राम है, सो रह्या सकल भरपूरि ।।
सो रह्या सकल भरपूरि, भेद सतगुरु तैं पाया ।
ता सुप लागा भेन, छाड़ी सब बोछी छाया ।।
जन सेवादास साँचा लह्या, और तजी झक जूरि ।
साँच बताया सतगुरु, किया भरम सब दूरि ।।१।।
नाथ निरंजन एक है, सब दूजा धन्ध अपार ।
सांचे साहब सेइये, सब झूठा भरम निवार ।।
सब झूंठा भरम निवार, सांच लै हिरदे धारै ।
लोभ, मोह अर ममत, झूंठ तजि साँच संभारे ।।
जन सेवादास अनभै जड़ी, काटै कोटि विकार ।
नाथ निरंजन एक है, सब दूजा धन्ध अपार ।।२।।
सकल सिरोमणि राम रस, ता सुषि लागा जीव ।
अब मन अनत न चलि सके, अन्तर पाया पीव ।।
अन्तर पाया पीव, भेद सतगुरु जब दीया ।
करम भरम सब छांड़, नाँव निरभय रस पीया ।।
जन सेवादास उरि सुष भया, अर भया पाप सब षीव ।
सकल सिरोमणि राम रस, ता सुष लागा जीव ।।३।।
।। इति सांच को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ रेषते प्रारम्भ ।।

।। अथ भेप को अंग प्रारम्भ ।।

भेप कूँ पहर करि फूल बैठे सही, भजन का भेद तो हाँथि नाहीं ।
कनक अरु कामणी कीच माया कले, काम अर क्रोध बिप भरे माहीं ।।

कहति साँची कहै रहत काची रहै, एक नाँव निरबाण बिन काल पावै।
दास सेवो कहे सुष तब ही लहै, कहे ज्यूँ रहे तो पार पावें ॥१॥
भेष कूँ पहरि करि जगत धूते सबै, साँच कूँ छाडि करि काँच लीया।
मन अरु पवन उरि सुरति सिमटी नहिं, लोभ अरु मोहरस जहर पीया ॥
कहे अरु सुणे कछु काज सीझे नहीं, जै करै करतूति तो पार पावै।
दास सेवो कहे दादि दरगाह लहै, बहुड़ि संसार मैं नाहिं आवै ॥२॥
राम राजी सदा रहती मैं जन कहे, कहे अरू सुणे कछु सिद्धि नाहीं।
पद साषी कवित्त सीषि लोक कू ठगी, दूनिया सबै डिंभ माहीं ॥
रहती न्यारी रही कहण कूँ सर षरू, माहि त्रिष्ना घणी फिरत भूल्या।
दास सेवो कहै साँच कूँ नाँ लहै, काल गहि ग्रासि है झूँठ फूल्या।३।
सांग तो सिंह को स्याल साँचा नहीं, जोग की राह कूँ नाहि पावै।
भेड़ भागी नहीं छूटि हूं कितहूँ, करम सब कूकरा फाडि पावै॥
भजन की वोट जम चोट लागै नहीं, सोभ जन तो बिसरे भरम माहीं।
दास सेवो कहै सुख कैसे लहै, वहुत तृष्णा धणी मित नाहीं ॥४॥
घर, खेत, कूवाँ चलै ब्याज बटो करै, गाय घोड़ो घराँ ठाण देवै।
हाथि षुरपौ लियाँ दोब षोदै सदा, कहो जू कौण विधि नाँव लेवै॥
मन माया मिल्यो तन जोगी कियो, जोग की जुक्ति तो नाहिं पाई।
दास सेवो कहे अबरे कौण विधि, भेड़ ज्यों कूकरा फाडि खाई ॥५॥
मन अरु पवन सुरति बंधिउलटा चलौ, त्रिवेणी तटि जाइ ध्यान धारो।
पिसण पाँचो पकड़ि ज्ञान का षड़ग धरि, काम अरु क्रोध अरु लोभ मारो।
सील अरु साँच सन्तोष हरदै धरो, परषि जरणां जडी सीस राषो।
दास सेवो कहै हरि रस साराँ सिरे,
और रस छांडि सब हरि रस चाषो ॥६॥
मन, अरु, पवन, कूँ समटि साँई भजो, पांचो को जीत पच्चीस न्यारे।
तीन को त्यागि करि चित्त चौथे धरो, प्रीत सूँ पीव कूँ परस प्यारे ॥

नानक नरसी परमानन्द सूरं , मुकुन्द सेन र वलवल पूरं ।
सुखानन्द अरु माधो गुसाईं , कीता नामा सुमिरैं साईं ॥
चत्रनाथ चत्रभुज हरि की आसा, छीगू किसनदास कील्ह हरिदासा ।
जोगानन्द विमलानन्द मुनिमन हाथू, नरसो वादरौ धुडी सब साथू ॥

भक्तमाल का आरंभ— × × × ×

दोहा— सीस नाइ वंदन करूँ , गुरु गोविंद उर आनि ।
सकल संत को जोरि कर, कहूँ सु नाव बखान ॥

गोरष-जन्म-लीला—

चौपाई—खुले सुदिल के सकल कपाटू , अरु पावे अनभै की बाटू ।
उपजै बोध बुद्धि परकासू , होइ तिमिर को सहजैं नासू ॥
सम्वत् सोलह सै चौरासी , गोरष जन्मलीला परकासी ।
निरमल वचन करूँ विसतारू , उत्तम कथा कहूँ निज सारू ॥
अस्तुति करै जोर कर चैन , उचरै वांणी दिह निज नैंन ।

चैनजीकी रचना के क्रम मे पहिले साषी-शब्द भाग है। उसके पश्चात् ग्रन्थ-रचना है। भक्तमाल ग्रन्थ-रचना मे गोरख जन्म-लीला से पहिले है। गोरख जन्म-लीला की रचना भक्तमाल के पश्चात् है और उसका रचना-काल स्वयं रचनाकार ने ही १६८४ व्यक्त किया है। चैनजी ने भी अपनी भक्तमाल मे भूतपूर्व तथा सम-सामयिक महात्माओ का वर्णन किया है। हरिदासजी भूतपूर्व महात्माओ की शृङ्खला मे प्रदर्शित किये गये है। इससे स्पष्ट है कि चैनजीके समयसे पर्याप्त पहिले हरिदासजी का निधन हो चुका था तथा उनके पश्चात् निरञ्जनी-सम्प्रदाय का सम्यक्-स्वरूप बन गया था। इस तरह उपर्युक्त तीन दादूजी के शिष्यो व दो पोता-शिष्यो के उद्धरण हरिदासजी के विषयके आ चुके है। आगे हम दादूजीके शिष्य प्रहलाददासजी के पोता-शिष्य स्वामी राघोदासजी की भक्तमाल मे निरूपित हरिदासजी-संबंधी उद्धरण उपस्थित करते है। राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल मे अन्य सम्प्रदायों के महात्माओ तथा भक्तो का निरूपण कर तदनन्तर "गुरु-प्रणाली" नाम से दादूजी महाराज उनके शिष्य तथा कुछ पोता-शिष्यो का निरूपण किया है। उसके पश्चात् निरञ्जनी-सम्प्रदाय का व तद्गत बारह महात्माओ का निरूपण किया है। उन्ही मे

सुरति सुलझाय करि छाडि सब देह गुण , पीव संग जीवकूँ लाइ लीजै ।
दास सेवो कहै भजि भरम जीव का , जीव अरु सीव मिल एक कीजै ॥७॥

॥ इति ॥

॥ अथ साध को अंग प्रारम्भ ॥

साध की राह तो बहुत बारीक है , लहै कोई सिष्य मन सुद्ध पूरा ।
काम अरु क्रोध, मद लोभ लालच तजे , मानि अमानि सब करे दूरा ॥
मन अरु पवन कूं फेरि उलटा चलै , सकल मन बासना जाणि पोवै ।
दास सेवो कहै सुख तब ही लहै , उलटि करि आप मैं आप जोवै ॥१॥
अलष की राह तो चलै कोई जोगिया , मन अरु पवन जिन सम कीया ।
चन्द अरु सूर कूँ एक घर आणिया , सुषमणा फेरि करि रस पीया ॥
सील अरु सांच सन्तोष हिरदै धरै , लोभ अरु मोह रस जहर धोवै ।
दास सेवो कहै नूर निरखत रहै , सुरति अरु निरति मिलि माहि पोवै ॥२॥

चान्द्रायण

॥ अथ चिन्तामणि को अंग प्रारम्भ ॥

जीव सींव को भूलि माया चित धरत है ।
यौ आप आपणो नास मुगध नर करत है ॥
चेते नहीं लगार भार सिरि धर रहे ।
हरि हाँ जन सेवा संवारी सोज करता सूँ फिरि रहे ॥१॥
रे फिट फिट जीव अचेत जगत पति भूलियाँ ।
हरि सुषसागर छाड़ि बिषे जलि भूलिया ॥
समझे नहीं अचेत सु जढ निराट रे ।
हरि हाँ जन सेवा बारोड़ी मैं बास पुरानी षाटि रे ॥२॥
प्रीति पुरानी भई न समझे सूरि रे ।
अण आदर की टूक बसायो दूरि रे ॥

तोहूँ प्रीति अचेत न छाड़े बावरो ।
हरि हाँ जन सेवा बिन सुमिरयाँ भगवन्त सहे सिरतावरो ।।३।।
मरणा आजिक कालि चलाऊ हुइ रह्या ।
प्रीति घणी परिवार न तो हूं हरि कहया ।।
यों करियो यों नाहिं सीष्र सब देत है ।
हरि हाँ जन सेवा आपण भूल्या जाय नाँव नहिं लेत है ।।४।।
सबे जीव जगत माहिं अलूधा आप ही ।
ज्यां बातां होय नास सोई नर थाप ही ।।
साधु सेवा सांच सिमरण जगदीस रे ।
हरि हाँ जन सेवादास जड़ जीव यह सब बीसरे ।।५।।
और झोर सब छाड़ि राम गुण गाइये ।
यो ही बड़ो ववेक न बिष फल खाइये ।।
सतगुरु सबद बिचारि समझि हिरदे धरो ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम मरण का डर करो ।।६।।
तरणापै भयो अन्ध न चेत्यो मूरि रे ।
जन सेवा सिरजनहार बिसारयो दूरिरे ।।
वें दिन खोया बादि दियो मन आन रे ।
हरि हाँ वारोड़ी मैं बास नहीं तिहि मान रे ।।७।।
अन्ध अबुद्धी जीव मगन बिप पायरे ।
बेड़ी अपणे हाथि स घाली पाय रे ।।
खाट पुराणी बास दीयो बारोड़ियाँ ।
हरि हाँ जन सेवा सुमरियाँ नाहिं पीव सुँ जमघट तोड़ियाँ ।।८।।
मन शक्ति थकां तूँ सुमर सनेही राम कूँ ।
या मनिषा देही देषि धरिये इस काम कूँ ।।
तैं सुत वनिता सुँ मुगध लगाया नेह रे ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम पलक मैं षेह रे ।।९।।

मन शक्ति थका तूँ सुमर सनेही राम रे ।
हरि बिन सब ही झूँठ तेरे धन धाम रे ।।
काल करत है घात न चेते अन्ध रे ।
हरि हाँ जन सेवादास यह जीव अलूधा धन्ध रे ।।१०।।
मन शक्ति थका तूँ सिमर सिरजन हार कूँ ।
तेरे जम की बांहर सबल षडी है लार कूँ ।।
फिरि जुरा पेण कफ बाय बुढ़ापै घेरसी ।
हरि हाँ जन सेवादास सोई सूर सो मन कूँ फेरसी ।।११।।
मन सिमरो सिरजनहार भला छक येह रे ।
बहुडि न लाभे सोंज मिनिष नर देह रे ।।
है बड़ी निधि नर देह क लाहा लीजिये ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि रामक कारज कीजिए ।।१२।।
जत, सत, सुमिरण काज दई नर देह रे ।
तूँ विषय विकाराँ लागि करी तन षेह रे ।।
या सोंज सुफल करि लेह जपो भगवन्त रे ।
हरि हाँ जन सेवादास सब कहे पुकारचा संत रे ।।१३।।
तूँ रसना हरि के नाम अहो निसि गाय रे ।
तेरे काल अहेड़ी लार षरच नित षाय रे ।।
तू सूतो नीन्द अघाय अल्प सा जीवणा ।
हरि हाँ जन सेवादास छकि एह राम रस पीवणा ।।१४।।
ज्यों अंजली का नीर वीर तन जात है ।
हरि सुमिरण बिन थिर नाहिं काल नित षात है ।।
तूँ हरि भजि लाहाँ ले डांव भल येह रे ।
हरि हाँ जन सेवादास फिरि नहीं लहै नर देह रे ।।१५।।
तूँ नांव निरंजन गाय के जनम सुधारिये ।
यो रतन अमोलिक याहि कहो क्यों हारिये ।।

यो नर नायक ओतार फेरि नहिं पावसी।
हरि हाँ जन सेवादास यो डाँव बहुडि नहिं आवसी ॥१६॥
या जग हटवाड़े आयक सोदा कीजिये।
लीजै सारा परषि षोटा तज दीजिये॥
सुणि सतगुरू की सीष गहो निज तत रे।
हरि हाँ जन सेवादास भौ पारि कहे सब संत रे ॥१७॥
षोलि ज्ञान के नैन चेति तूँ बीर रे।
क्यों रे तूँ नर षाहि बिषे करि पीर रे॥
कनक कामणी त्यागि लागि हरि नाँव रे।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम बिसरि मति जांहि रे ॥१८॥
सब कनक कामणी गालि बिगूते जीव रे।
भई विपरजै बुद्धि बिसार्‌यो पीव रे॥
अे दोइ बेड़ी सबलक बन्ध्यो जिहान रे।
हरि हाँ जन सेवादास एक नांव बिना तन हानि रे ॥१९॥
है माटी की भीति पवन का बंध रे।
माहीं भिष्टा हाड़ और दुरगन्ध रे॥
ता सुष मुगध लुभाई नीन्द भरि सोइया।
हरि हाँ जन सेवादास ते अन्ध जुगं जुग होइया ॥२०॥
वेद साध की सीष एक नहि रापही।
विष रस पीवै अन्ध अमृत करि चाषि ही॥
मरणे का नहि भै भरम में भूलिया।
हरि हाँ जन सेवादास ते मुगध विषै में भूलिया ॥२१॥
तात मात परिवार दुलहनि नारि रे।
तूँ झूठाँ सुख सूँ लागि चल्यो तन हारि रे॥
ऐसे बटाऊ मीत प्रीति क्यों कीजिये।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम जहाँ लगि जीजिये ॥२२॥

मिनप जलम धारि देह बिराज की होस है।
सब उलझि रहे बिचि माहि काल की धोस है ॥
जब पकड़ि लिया गढ़ घेरि पछै पछताइये।
हरि हाँ जन सेवादास या सोंज बहुड़ि नहिं पाइये ॥२३॥
पकड़ि लेह जम काल पछै पछिताइ हो।
रे हरि सुमिरयो नहिं वीर नरकि यूँ जाइ हो ॥
रे झूठे जग के नेह बन्ध्यो नर बावरा।
हरि हाँ जन सेवादास हरि ते विमुख सहे सिर तावरा ॥२४॥
सब नर कोठी वाल दिरब करतार का।
षाय सके नहिं परचि पाप है लार का ॥
तन, मन, धन, हरि हेत समर्पण कीजिये।
हरि हाँ जन सेवादास सुप होई राम रस पीजिये ॥२५॥
जीवन अल्प जग मांहिक क्यों थिर होइ रह्या।
मोह मेहल मैं बास मगन होइ सो रह्या ॥
नित काल करत है घात न संगी सज्जना।
हरि हाँ जन सेवादास जीव एकक बैरी है घणा ॥२६॥
चूना कलि लगाइक महल बणाईया।
फिर सुत बनिता के हेत मुगध लपटाईया ॥
सब छाड़ि चलै परिवारक नेहा फिर दहै।
हरि हाँ जन सेवादास यह जीवक नीचा यूँ वहै ॥२७॥
हरि परम स्नेही छाडक आन सगाइयाँ।
जब कोपे जमरायक मारस झाँइयाँ ॥
रे तूँ क्यों भूलो अन्ध सनेही पीव कूँ।
हरि हाँ जन सेवादास यूँ मार पड़े हो जीव कूँ ॥२८॥
यो बिप रुपी संसारक प्रीति न कीजिये।
रे सुत बनिता के नेह कबहुँ न धीजिये।

मोह पासि गलि बन्धे पगां में बेड़ियां ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम कूँ जम सिर खेड़ियाँ ॥३०॥
नाना विधि के नेह देह सूँ त्यागिये ।
रे सोवे कहाँ अचेत ज्ञान ले जागिये ।
कहो या में तेरा कोण समझि मन मांहि रे ।
हरि हाँ जन सेवादास कहाँ देखि लुभाणो ताहि रे ॥३१॥
मन मानि लिया सुख गेह न्याय दुःख सहत है ।
सब स्वार्थ के सग लागि अधो गति बहत है ।
फिरि लख चौरासी जूनि देह जब धरत है ।
हरि हाँ जन सेवादास यो नास आपणा करत है ॥३२॥
तू सुमिरि सनेही राम कहो क्यों आलसे ।
वो सदा गिणत है सांस ऊभो सिर काल से ।
तू छीलर जग सुख छाड़ि करो सिंध सीर रे ।
हरि हाँ जन सेवादास या घात भली है वीर रे ॥३३॥
मन शक्ति थका तूँ सुमर सनेही पीव कूँ ।
या परबस होसी देह कहत हूं जीव कूँ ।
रे नैना ऊपरि हाथ गहे कर डांगड़ी ।
हरि हाँ जन सेवा थर हर कांपै देह लटक जाइ चामड़ी ॥३४॥
तूँ परम सनेही राम सिमिर मन बावरा ।
यो जग बादल की छांह बिपरि होइ तावरा ।
सब स्वारथ के मीत हितु नहिं कोइ रे ।
हरि हाँ जन सेवा तात परिवार देख्या सब जोइ रे ॥३५॥
कुटुम्ब स्वार्थ समझया जीव का नास रे ।
झूँठ साँच करि उद्यम गांठि पासरे ।
फिरि पड़े सांकड़े जीव हितू जब को नहीं ।
हरि हाँ जन सेवादास कहां देखि भुलाणों ताम ही ॥३६॥

सब स्वारथ के मीत हितू नहीं कोइ रे।
तात, मात, सुत नारि देष्या जोइ रे।
सज्जन, बन्धु, परिवार, सबै ही स्वारथी।
हरि हॅा जन सेवादास तूं देखि ज्ञान की आरसी ॥३७॥
मुगध रहे गरकाव गुमानी गरब मैं।
नर सूते नीन्द अघाय रचे गृह दरब मैं।
काल तके है निति नहीं तोहि सुधि रे।
हरि हॅा जन सेवादास यो मुगध बिसरी बुधि रे ॥३८॥
पढ़त गुणत अरु कहत भूला सब जीव रे।
जग सुख सुपने राचि बिसारे पीव रे।
मृग तृष्णा ज्यों जुगि मिटै नहिं प्यास रे।
हरि हां जन सेवा भरमि पड़े जग मांहि समझि बिन नास रे ॥३९॥
कहत सुणत जग मांहि अलूधा जीव रे।
बिप रंगि राचे जीव बिसारया पीव रे।
साध वेद सब कहे पुकारयो एह रे।
हरि हां जन सेवा दूसर नाहिं और संगी हरि छेह रे ॥४०॥

॥ इति चिन्तामणि को अङ्ग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बन्दना जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

नमो नमो निरंजनम्, अभै करण भौ भंजनम्।
निराकारम् निरविकारम्, निरलैप निराधारम्॥
निरक्षर निरालम्ब, चिदानन्द अरुपकम्।
परमतत्वं परमतेजं, परम शान्तिश्वरूपकम्॥
परम ज्ञानं परम ध्यानं, परानन्द परमादि पुरुष।
अजरो अमर अनूपकं, परम जोगं परम जापं॥

स्वयं ज्योति प्रकासितं, परमपदं परम अरचितं ।
अक्षर अकुल अजनमयं, अगह अरचित निरगुण ब्रह्म ॥
रमता राम अचल देव, परमपावन पापहरण परमदेव ।
सुख निधान अच्छेद अविनासी, अलष रूप सर्व व्यापक ॥
जन सेवादास बन्दन करै, नमो नमो निज देव ।
सुर नर गति पावै नहीं, अलह अलष अभेव ॥
जन सेवादास करि बन्दना, ज्ञान ध्यान धरि देष ।
वार पार कीमति नहीं, अपरमपार अलेख ॥

॥ इति वन्दना जोग ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ गुरु मन्त्र जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

मन्त्र नाम गुरुदेव सुनाया, सनमुख करि सतगुरु समझाया ।
पांचों उलटि अगम रस पाया, ऊजड़ जाता मारग ल्याया ॥१॥
ऊजड़ ही कूँ चलतो बौरा, सतगुरु फेरि लगायो ठौरा ।
यो मन दसों दिसा को बहता, सतगुरु फेरि किया है रहता ॥२॥
रहता के संग बहता ल्याया, अस्थिर भया परम सुप पाया ।
ज्यों पी पारा मूसा थिर होई, यूं मन अब चलण न पावै सोई ॥३॥
सतगुरु सोधि लिया सब संचणा, मारया बाण नहीं अब चलणा ।
सतगुरु मनवा घायल कीया, निर्भय एक अमर फल दीया ॥४॥
तिस फल का कछु अगम विचारा, सबके सिरे राम रस सारा ।
षाता रोग बिथा सब गई, ऐसी ओषद सतगुरु दई ॥५॥
रोग असाध बड़ ओषद ल्याई, अब सुप में दिन रेण बिहाई ।
सतगुरु बिथा सोधि सब षोई, किया अमल नहीं मल कोई ॥६॥
तन मन सतगुरु ऊपरि वारूं, चरण कमल हिरदे ले धारूं ।
तन मन आतम अरपण कीजै, सतगुरु के चरणा चित दीजै ॥४॥

दरसण करतां उपज्या भाऊ, भया समान रंक अरु राऊ।
सतगुरु मन्त्र दिया उपदेसा, सोई मन्त्र रटै सिव सेषा ॥८॥
तारिग राम हृदय मैं धारा, ये तो सतगुरु के उपकारा।
ररंकार रमिया घट माहीं, तब दूजा और नजरि नहिं आही॥९॥
ररंकार सूं जब धुनि लागी, नृभै भया रहे त्रिष त्यागी।
नृभै भया काल भय भागा, केवल नांव निरन्तरि लागा ॥१०॥
समरथ के सरणे जे आवै, तो जम की ताप लगण नहि पावै।
सतगुरु सिर पर राखि कबीरा, हरि सुमरौ भौ सागर तीरा ॥११॥
बांकी धार डूबण नहि पावै, सीस कबीर रापि ल्यौ लावै।
मैं तैं आपा गर्व निवारै, हरि भजि साधु प्राण उधारै ॥१२॥
आपा गर्व गुमान अहंकारा, ए सब तजै भजै करतारा।
जोग मूल गहि तजै पसारा, तब जग तिरत न लागै बारा ॥१३॥
सास उसासे नांव संभारे, गुरु गोविंद हृदय मैं धारे।
गुरु गोविंद की आज्ञा से ही, सास उसास संभाल सनेही ॥१४॥
सास संभाल तोहि निकट बतावै, बाहरि भरम भूलि मति जावै।
नाभी नासा विच पन्थ गहीजै, प्रेम पियाला भरि भरि पीजे ॥१५॥
जब काल जाल लागै नहि कोई, हरिजन हरि भजि निरभै होई।
ज्ञान विचार विवेक सुनाया, सतगुरु अन्तर सांच लषाया ॥१६॥
करम भरम जाल जुग जेते, उनै सतगुरु मेटे रहे न तेते।
इड़ा पिङ्गला सुषमणि मेला, तब आतम सुख बिलसे बेला ॥१७॥
इड़ा पिंगला सुषमणि सगा, तब आतम जाणि रंगी हरि रंगा।
गुरु ब्रह्म अग्नि अन्तर प्रजाली, दोई दोई लकड़ी जुगती करि जाली॥१८॥
ब्रह्म अग्नि मैं करम दहाया, तब जीव जोगी धरै न काया।
मनसा जोगणी उलटी समाणी, नो द्वार फिरि भरै न पानी ॥१९॥
उल्टी नेज अगम तहां लागी, सीतल भया त्रिषा सब भागी।
बरषै अमी अषण्डित धारा, सुषमणि सींचे बाग हमारा ॥२०॥

आतम फूले रुचि बसंता, काम, क्रोध, विष रस रहंता ॥
अनहद बाजा अन्तरि बाजै, परम ज्योति निरषै चढ़ि छाजै ।२१।
परम ज्योति सुष वार न पारा, वो सुख निरषैं साधु सारा ॥
वा सुष या सुष अन्तर भारी, इक दिन इक रैणि अंधारी ।।२२।।
वा सुष का है अगम विचारा, विलसेगा कोई संत पियारा ।
बिलसे जागता कोई जोगी सूरा, जाके बाजै अनहद तूरा ॥
पाँचो चेला बसि करि राषै, सुणे सब्द सतगुरु यूँ भाषै ।
पछिम किवाड़ी षोले जोगी, सो अमर जुग जुग रस का भोगी ॥
अमर जड़ी बटवै धरि मेल्हे, परचै लागा जोगी षेले ।
सील मुद्रा जोगी सति धारे, सींगी सुरति हरि नांव उचारै ॥
काया कंथा धीरज झोली, साठै तार इकीसूँ कोली ।
छैसै सहस इकीसूँ धागा, अन्तरि बैठा बणनै लागा ॥
तांणि बांणि बणि गाढ़ी भाई, ऐसी बणि फिर काटि न जाई ।
सहज सील की भिक्षा पावै, सो जोगी यमपुरी न जावै ॥
गगन मंडल में मंढ़ी संवारै, निर्भै रहे काल भै मारै ।
अमर पुरुष सूं जब ध्वनि लावै, तब काल जाल निकट नहिं आवै ॥
हरि सुषसागर कीया बासा, जग छीलर तजि भये उदासा ।
जग सुष तजि हरि सुष गहि लीना, तन मन उल्टि राम रस पीना ॥
तन मन पवना सुरति मिलावै, तब वो सायब का दरसण पावै ।
अलष निरंजन अवगति रामा, संत सुमिरि भये निहकामा ॥
राम मंत्र जपत भय भागा, सब तज संत एक सूँ लागा ।
राम कहत कापै सब पापा, सो सतगुरु दिया अन्तरि जापा ।
काल जाल करि सकै न चोटा, गुरु गोविंद का सरणा मोटा ।
मछा सिध गहै सरणाई, सो काल जाल तै नहिं डराई ॥
निरभै सुमिर भये अवधूता, नां कबहूँ ताकै जम दूता ।
राम मंत्र का बहौ विसतारा, सुमिरि सुमिरि केते भये पारा ॥

अनन्यतम स्थान महाराज हरिदासजी का है। भक्तमाल का रचना-काल स्वयं राघोदासजी ने ही अन्त मे दे दिया है। वह इस रूप में है—

दोहा— सम्वत् सत्रह सै सत्रे होतरा, शुक्र पक्ष शनिवार।
तिथि तृतीया आषाढ़ सुदि, राघौ कियो उचार ॥१॥

"सत्रह सै सत्रे होतरा" का अर्थ स्वर्गीय पुरोहित हरिनारायणजी ने सत्रह सौ सत्तर लिखा है। सत्रेहोतरा का अर्थ सत्रह भी हो सकता है। जैसा कि पहिले सत्रह शब्द से सिद्ध है। पुरोहितजी ने राघोदासजी को सुन्दरदासजी के समकालीन भी लिखा है और लिखा है प्रहलाददासजी के शिष्य। पर वे प्रहलाददासजी के शिष्य नही थे। वे प्रहलाददासजी के शिष्य हरिदासजी (हापोजी) के शिष्य थे। जैसा कि वे स्वयं लिखते है :—

मम गुरु माथे पर स्वामी हरिदास जू है,
परम गुरु स्वामी प्रहलाद बड़ी निद्धि है।

यदि राघोदासजी की भक्तमाल का रचना-काल सम्वत् १७७० मानें तो फिर सुन्दरदासजी के वे समसामयिक थे–इस पर भी विशेष विचार की आवश्यकता है। यहाँ इस पर विशेष कुछ नही लिखना है। राघोदासजी हरिदासजी के शिष्य व प्रहलाददासजी के पोता-शिष्य थे। इनने निरञ्जनी-सम्प्रदाय के वर्णन का इस तरह आरम्भ किया है—"अब राषेंहि भाव कबीर को, इम एते महन्त निरजनी।"

लपट्यो जगन्नाथ श्याम कान्हड़ अनुरागी,
ध्यानदास अरु षेम नाथ जगजीवन त्यागी।
तुरसी पायो तत्व आन सौं भयो उदासी,
पूरण मोहनदास जानि हरिदास निरासी॥

राघो समरथ राम भज माया अंजन भंजनी।
अब राषेंहि भाव कबीर को, इम एते महंत निरंजनी ॥१॥

हरिदासजी के विषय में—

जत सत रहणि कहणी करतूत बड़ौ,
हर ज्यूँ कह र हरिदास हर गायो हे।

मंत्र जपत भये अविनासी, हृदा मांहिंज्योति प्रकासी।
राम मन्त्र जप लीजै भाई, प्रेम प्रीति अन्तर लो लाई ॥
तन मन सतगुरु ऊपरै, जन सेवा दीजै वारि।
राम नाम हृदय धर्या, काम क्रोध विष जारि ॥
ररंकार निज मूल है, सतगुरु दिया लखाइ।
जन सेवादास लै उर धरया, सुष मैं रह्या समाइ ॥

॥ इति गुरु मंत्र जोग ग्रंथ सम्पूर्ण ॥

॥ कवित ॥

हेवर गेवर भोमि हेम, संग देह तूँ लीजै।
अड़सट तीरथ न्हाइ बरत लै, बिधि सूँ कीजै ॥
करे तप बहु भाँन्ति, दान छाया लै दीजै।
ऐ सब वेलि दे'ड मानि, ममता रम पीजै ॥
जन सेवादास काची बिथा, फिर रोग बढ़तो जाई।
सब तजि भजि रमता राम कूँ, ज्यों सुष मैं रहे समाई ॥१॥
राजवर्ग सो बिप्र न्योति, मिस्टान्न जीमावै।
बड़ा बड़ा धनवान, ताही लै दान दीवावै ॥
करे संग तीरथ घाट, तहां जाय बन्धावै।
बहु देवल दरब लगाय, मांहि मूरति पधरावैं ॥
जहां जहां मान बधे घणो, तिंह तिंह गैलै जाइ।
जन सेवा आतम राम जाएया बिना, काज न कबहूँ थाइ ॥२॥
भावै अड़सट तीरथ न्हाइ, दान बिप्र कूँ देहु।
भावै गलो हिमालै जाइ, कासी जाय करवत लेहु ॥
भावै करो जिग अस्वमेध, सब नाम बिन फीके येहूँ।
सकल धरम सिर ताज, नांव निहचै है छेहु ॥

जन सेवादास सति नांव है, ऐ वेलै व्योंहार ।
जब तक नांव न जाणियो, तब लग वादि भँवै संसार ॥४॥
नहीं सीत उसन के रूप, चरण मूँ अनभौ कर ही ।
पवन निरंजन रूप, त्वचा को मालूम पर ही ॥
सब्द निरंजन रूप, श्रवण को अनुभव होइ ।
रस वासना अरु रुप होई, अनभो जिह्वया नासा कूँ सोई ॥
हरष सोख दुःष सुप को, यो मन ही कूँ अनभौ फुरै ।
जन सेवा निरगुण ब्रह्म को, यो आतम हीं अनभौ करै ॥५॥
पारस पलटे लोह, ताहि कछु जाणे नाहीं ।
सबै कल्पना मिटे, कलपतरु नीचै जाही ॥
जाय सरोवर तीर, प्यास तन मैल मिटावे ।
कामधेनु सब कामना, चिन्तामणि चितवत सब पावै ॥
अग्नि सीत भै हरत है, तिमर करै सब दूरि ।
जन सेवादास निरगुण ब्रह्म, सकल सुखां भरपूरि ॥६॥
पारस लोहा पलटि करि, कचन ही करि लेह ।
कल्पवृक्ष तलि जाय करि, जो मांगे सो देह ॥
कामधेनु सब कामना, पूर्ण करै परमाण ।
चिन्तामणि दलदर हरै, जाणै सबै सयाण ॥
जन सेवा दीपग तम हरे, जल पीयां त्रिसा बुझाइ ।
यों सुमिरयां निरगुण ब्रह्म कूँ, सहजै ही सुप थाई ॥७॥
पारस पल्टे लोह, लोह कूँ जाणे नाहीं ।
सबै कल्पना मिटै, कल्पतरु नीचे जांही ॥
अग्नि हरे तम सीत, संक भै रहण न पावै ।
सरवर के ढिंगि जाय, प्यास तन मैल मिटावै ॥
काम धेनु, सब पूर्ण कामना ।
चिन्तामणि, दलीदर सब पोई ॥
जन सेवा सुमिरयां निरगुण ब्रह्म कूँ, यो मुक्ति सहज ही होई ॥८॥

चार जुग जब जाहि, घड़ी तब एक गिणीजे।
बोतरी चोकड़ी जब जाही, तब इन्द्र को राज भणीजै।
अठाईस इन्द्र जब गिरे, तब बिरंची दिन रात कहीजै।
सो वरस जब होय तब, ब्रह्मा की आरवल छीजै॥
दस हजार ब्रह्मा चले, घड़ी विष्णु की कहिये।
द्वादस लाप जब विष्णु हुई, तब घड़ी आध सिव की लहिये॥
पांच हजार जब सिव उठे, तब सक्ति सिंगार कहीजै।
जब माया अनन्त लाप होई जाई, तब टुक ब्रह्म की ध्यान सुणीजै॥
साधो अकथ कथा है राम की, कहो कहिये काहँ वणाइ।
तुम सेवो पूरण ब्रह्म कूँ, जन सेवा सब सुप थाइ॥६॥
नमो नमो परब्रह्म, परम गुरु आतम रामा।
निराकार निरवाण, सकल सुपसागर धामा॥
अलिप अछिप निराधार, स्वयं ब्रह्म सकल प्रकासी।
अधर अमर अरंग, भग नहिं तोही अविनासी॥
अथिर अखर अछीज, राम रमता सब माहीं।
जन सेवादास सोहि परसपति, जहाँ काल मै व्यापै नाहीं॥१०॥

॥ स्वामीजी श्री सेवादासजी महाराज का फुटकर पद प्रारम्भ ॥

॥ राग गौड़ी ॥

मन रे तूं भरम भुलाना भाई रे।
ना कोई तेरा नां तूं काहूका, ज्यूं आवै त्यूं जाई रे॥टेक॥
तात मात बनिता सुत बंधु, तेरा नाहि कोई रे।
राम बिसार ताहि तूं रातो, यूं ही जन्म बिगोई रे॥मन०॥
आपा बिसरि बंध रहे प्राणी, ज्यूं नलनी का सूवा रे।
हरि भज सफल करी नहिं दही, यूं ही पाच पचि मूवा रे॥

यौ अवसर जात है बीतो, बहौरिन पावै माई रे।
जन सेवादास पुकार कहत है, तूं राम सुमर सुषदाई रे ॥१॥

मन तूं क्यों सूतो रे भाई रे।
सदा सिराने काल तकत है, ज्यों मूसे सदा बिलाई रे ॥टेक॥
होय हुसियार राम भजि भाई, अब ढ़ीलन कीजे काँई रे।
ज्यू प्यासे नीर भूखे भोजन की, यूं हरि से प्रीति लगाई रे ॥
ज्यूं कामी काम चोर मन चोरी, यूं हरि सूं मन तूं राषी रे।
बस्ती रहो भावै बनषंड मांही, साध कहै सब साषी रे ॥
जैसे पतंग अंग नहि मोड़े, वो पड़तन पाछो जोवे रे।
यूं सेवक साहिब के कारण, तन मन अपना पोवे रे ॥
जैसे कुरंग बधिक शर खावै, यूं जन तन से सुरति चुकावै रे।
जन सेवादास सो होय अविनाशी, सहज परम पद पावैं रे ॥२॥

राम रस पीयारे पीया ही आनंद होय ॥टेक॥

ध्रुव पीयो प्रह्लाद प्रेम सूं नामदेव पीयो अघाईरे।
दास कबीर पीयो होय निर्भै अगम सुरति ठहराई रे ॥
सौंझे सैन पियो रैदासा मीरा प्रेम बढ़ाई रे।
पीयो पीपै धनै धीर ज्यूं शुकदेव रहीन तमाई रे ॥
गोरष पियो सदा मतवालै ये रस का है भोगी रे।
पीयो रंकै बंकै मुरारी मलूके और सनकादिक नव जोगी रे ॥
शेष सहस मुख रुचि रुचि पीयो शिवनारद मुनि ज्ञानी रे।
हनुमान हटताली पीयो अनंत संत धरि ध्यानी रे ॥
पीयो भरतरि गोपीचन्दै और मेणावती माई रे।
सेष फरीदै नानक पीयो, पी सुप मांहि समाई रे ॥
पीयो कान्है दादू पीयो और पीयो हरिदासा रे।
तुलसीदास पियो सब सन्ता वै पहुंता अगम निवासा रे ॥

चंद सूर जहाँ पवन न पाणी परम जोती प्रकाशा रे ।
जन सेवादास मिल एक भये है हिलमिल हरि हरिदासा रे ।।

संतो सांच बिनां सुख नाँहीं ।
जब लगि विषय बिकारन छूटै तब लगि सुख नहि माँही रे ।।टेक।।
साषी शब्द बणाय कहत है, पण उरतें लोभ न छूटै ।
कहया सुणयां बिन काजन सीझै तृष्णा दिन दिन लूटै ।।
फिर पूछयाँ साष बेद की लावे अपनी गति न पिछानै ।
करे होड़ हंस की कउवो वो माया करक लुभानै ।।
मोह महल के मांही सूता फिर कहै कथा बिस्तारे ।
जन सेवादास तत कैसे दरसे अंतर रैनि अंधारे ।।४।।

अब कलियुग आयो भाई रे ।
परमेश्वर सूं परचो नांहीं तो सूधो जमपुर जाई रे ।।टेक।।
ज्ञान कथे अरू विषै कमावै तो साचन पावै भाई रे ।
संता सेती करे षेचरी ते नर नरकां जाई रे ।।
कथणी कथे रहणी रही न्यारी, सब झूठी करै बड़ाई रे ।
यां बांता तो छूटणा नाँही फिर दोजिक चाल्यो जाई रे ।।
परम तत्व चिह्नै बिन प्राणी सब झूठे वाद विवादा रे ।
हरि मागे तो हाथ न आयो चल्यो चौरासी बाधा रे ।।
मोह पास गल ते नहि छूटी, सुत वित नारी नेहा रे ।
राम भजन बिन पार न पहुँचै योंही खो दी नर देहा रे ।।
जन सेवादास जे दुष्ट प्राणिया तिन सैं दीजै टालो रे ।
वह रामजनां का निन्दा ठाने तांको मुख करि कालो रे ।।

राग सोरठ

मन रे राम भजन करि लीजे ।
बार बार समझाय कहूं तोहि, आव घटै तन छीजै ।।टेक।।

साधु संगति मिल सोधन कीजै रसना राम रटीजैं ।।
तीर्थ जाई चढै जनि पर्वत तन मन पवना छीजैं ।
आसन बैठि ध्यान धरि मन थिर अनहद को रस पीजे ।।
निर्भय होय निरंतर मेला, बेगम नगर बसीजैं ।
पूर्ण ब्रह्म परम सुपदाता गाय गाय जुग जीजें ।।
जन सेवादास भव समद् तरन कूं नौका नाम गहीजै ।

नर कौन ठिकाने जासी रे ।
समझ न पड़ी साध न पूछया, फिर पाछैंही पछितासी रे ।।टेक।।
फूटी सुरति दशों दिश भटकै, मनमें माया वासी रे ।
गुणां रहित गोविन्द न गावै, तोहि काल पकड़ ले जासी रे ।।
जहां जहां जाय तहां जम मारे, इक विन शरणे अविनाशी रे ।
जो आकार सो छूटे नाहीं कहो निर्भै कैसे थासी रे ।।
शरणो एक गहो अवगति को, तो जमलोक न पासी रे ।
सेवादास जन टेर कहत है जूणी बहुरि न आसी रे ।।

साधो सापणी सब जग षाया हो
गहि गुरुज्ञान जाग जुग देष्या, ते निकसे विलमन लाया हो ।
आमरकरि मोहे जग ठगनी, सुरनर सब डहकाया हो ।।
जल थल जीव सबै बस कीये मोह विषय लपटाया हो ।
तीन लोक भगजाल पसार्या, कोई जन बन्धन न आया हो ।।
और सकाम बन्धन बाँधा, भूखी भामिनी माया हो ।
भाँति भाँति करि आडी आई, नाना रूप बनाया हो ।।
माता बहन रु भुआ मारिजा दे पासी उलझाया हो ।
अमर जड़ी ले जोगी जागे विष नहिं लागे काया हो ।।
जन सेवादास संतगुरु के शरणे अमर अभय पद पाया हो ।

साधो भाई ऐसा इष्ट हमारा ।
सबमें व्यापक सब की जाने वो रहे सकल ते न्यारा ।।टेक।।

जैसे अग्नि अरूप दारक में, यो रमता सब घट माँही ।
आतम ही आतम करि अनुभव नैना दीषै नाँही ।।
वर्ण न वपु रूप नहि जाके, दृष्टि न देष्या जाही ।
जिन जाण्यां सो ही भल जाणे कह्या न को पतियाही ।।
चिति जल तेज नहीं आकीाशा मारुत कबहु न होई ।
उदय न अस्त सूर नहि शशि हर नांव निरंजन सोई ।।
उपजै न विनसै अपिल पिरै नहि, जाकी अकथ कहानी ।
जैसे कुम्भ धरयो जल मांही, वाहर भीतर पानी ।।
काल अतीत सकल घट रमता, वसै सवन के मांही ।
जन सेवादास घरजामा चेरा ता साहिव की वांही ।।
भाई रे सतगुरु कूं शिर दीजै ।।
तन मन धन सब सूंप आपणे शिरदै सौदा कीजै ।।टेक।।
ज्ञान ध्यान सत सुमिरण आवै, पाँचू कसि कसि लीजै ।
तन मन पवना फेरि अपूठा रसना अमृत पीजै ।।
काया पलटि कंचन ज्यूं तावै, चित पवना समटीजै ।
जन्म मरण का सांसा खोवै, बास अमरपुर कीजै ।।
दिल की दुविधा दूर निवारे, तब यों प्राण पतीजै ।
जन सेवादास मन ही समझावै तवजाइ कारज सीझै ।।

मन रे यूंही जन्म गमायो ।
साहिव साध कहै सो न कीयो जो कीयो सो मन को भायो ।।टेक।।
इन्द्रया अर्थ सबै कुछ कीयो, ते जो कियो आपनो भायो ।
लालच लोभ विषय मन कीन्हो, तें गोविन्द कबहूं न गायो ।।
दश वर्ष वालापन खोया, वीसां विषय चित लायौ ।
चालीसा चालण जब लागो, तब पीछै पछितायौ ।।
बहुत कष्ट कर द्रव्य उपायो, सुकृत कछू न लायो ।
जब जमदूत आन के पहुंचा, पल में भयो परायो ।।

सुत वनिता भाई सब रोवै अरु लूटैं जोति बलायो ।
जन सेवादास भगवन्त भजन विन, जन्म जन्म डहकायो ॥

माधव मन महमंत हमारा ॥
विष धन धसै जहां जाय बसै हरि नांव गहै नहीं सारा ॥टेक॥

सार तजै जाय छार गहै मन, ऐसो मुग्ध दिवाना ।
उबट चाले राह तजि हरि की, ऐसो मन सैताना ॥

मान बड़ाई यो मन चावै, फिर माया के दिसि दौड़े ।
निकट निरंजन छाड़ निलज मन, अंतर तांणे तौड़े ॥

मन सैनान करै सैतानी, मैं जतन करत ही हारया ।
मेरो बल पहुंचे नहिं माधव, इह मन केता मारया ॥

भृङ्गी ऋषि शिव नारद ब्रह्मा, इह मन नाच नचाया ।
मैं तो निबल सबल है यो मन, कहा करूं राम राया ॥

तुम देष्या बिन दषल बहोत है, तुम देष्यां आसांना ।
जन सेवादास चित चरणां मांहीं, तहां मन रहे लुभाना ॥

माधव अब मन अनत न नाचै ॥
हरि हरि कहि हरि माँय समाया और रंग नहि राचै ॥टेक॥

मन हरि रंग रगे राचै नहि औरे, फिर आन रंग नहि भावै ।
ज्यूं सूरज के प्रकाश भये ते, सवै प्रकाश विलावै ॥

दीप चिराग तबै लग सोहै, जब लग रवि न प्रकाशै ।
यूं आत्मज्ञान उदय भयो अन्तर, सकल भरम सा भासै ॥

तीर्थ ब्रत जप तप सब धम्मो, ऐ सब ही व्यवहारा ।
निर्मल नांव भजै ते मुक्ता, ते सहज भये भव पारा ॥

सकल धर्म धमों शिर अवगति, जन गाय गाय गति मांही ।
जन सेवादास सागर मिलि सलिला, दूजी रही कुछ नांहीं ॥१३॥

संतो सो सतगुरु मोहि भावै ।
भव जल डूबत कर गहि तारै, राम अमीरस पावै ॥टेक॥
कनक कामिणी कीच सबल है, तामें कलि नहिं जावै ।
आप तिरै तारै सिष सतगुरु, नाम जिहाज चढ़ावै ॥
आपो समझ भये है मुक्ता, एक अवगति सूं ल्यौ लावै ।
कर्म भर्म सब दूर निवारे, सूधा पंथ बतावै ॥
तन मन पवना सम कर राषै, कबहुं न तार चुकावै ।
इडा पिंगला सुषमन मेला, त्रिबेणी संग न्हावै ॥
काल जाल बंधे नहिं कबहूं, अनहद वैण बजावै ।
जन सेवादास जुगति गहि जोगी, हंस को हंस मिलावै ॥

संतो राम कहै सो सूरा ।
तन मन मार स्वाद तजि हरि भजि, तब दरशे अलष हजूरा ॥टेक॥
लोभ रू मोह सबल है वैरी, ज्ञान षड़ग करि दूरा ।
दुःष सुष मांय रहै रस ऐकै, तब सुष पावे पूरा ॥
पाँचौ चोर करै बस अपने, तब मुष आवै नूरा ।
लौ लागे छूटै नहि कबहूं, बाजै अनहद तूरा ॥
मान अमान अग्नि दोय सौषे, गढ़ पड़ि सकैन चूरा ।
लड़ै स्याम के हेत शूरवां काम क्रोध करि दूरा ॥
शूरो सदा स्याम के आगे, भाजि न जावै दूरा ।
जन सेवादास मौज तब पावै निसिदिन रहे हजूरा ॥१५॥

॥ इति ॥

प्रेमदासजी

प्रेमदासजी महाराज हरिदासजी के पोता शिष्य व महरवानजी के शिष्य थे। इनका समय सोलहवी शताब्दी का अन्तिम चरण व सत्रहवीं का पूर्वार्ध समझना चाहिये। ये साधक सन्त थे। इनकी सिद्धवन्दना से भिन्न और कोई रचना देखने मे नही आई हे। सिद्ध वन्दना मे इनने हरिदासजी महाराज तथा महरवांनजी का उल्लेख किया है। इनकी परम्परा अब भी प्रचलित है।

॥ प्रेमदासजीकृत सिद्ध वन्दना ॥

नमो नमो निरंजनं, भरम को विडवनं ॥
नमो गुरुदेवं, अगम पंथ भेवं ॥१॥
नमो आदिनाथं, भए है सुनाथं ॥
नमो सिद्ध मछिन्द्रं, वड़े जोगीन्द्रं ॥२॥
नमो गोरष सिद्धं, जोग जुगति विद्धं ॥
नमो चरपट राय, गुरु ज्ञान पायं ॥३॥
नमो भरथरी जोगी, ब्रह्म रस भोगी ॥
नमो वाल गुसांई, कियो कर्म पाई ॥४॥
नमो पृथीनाथं, सदा नाथ साथं ॥
नमो हांडी भडंगं, कियो कर्म षंडं ॥५॥
नमो ठीकरनाथं, भये है सनाथं ॥
नमो सिद्ध जलंधरी, ब्रह्मबुद्धि संचरी ॥६॥
नमो कान्हीपायं, गुरु शब्द मायं ॥
नमो गोपीचन्दं, रमत ब्रह्मानन्दं ॥७॥
नमो ओघड़ देवं, गोरष शब्द लेवं ॥
नमो वालनाथं, निराकार साथं ॥८॥
नमो अजैपालं, जीत्यौ जम कालं ॥
नमो हनुमानं, निरंजन पिछानं ॥९॥

विरक्त वैरागी अनुरागी लिव लागी रहै,
अरस परस चित चेतन सूँ लायो है ॥
नृमल निर्वाणी निराकार को उपासवान,
निरगुण उपास कै निरंजनी कहायो है ॥
राघो कहै राम जप गगन मगन भयो,
मन वच क्रम करतार यों रिझायो है ॥१॥

हरिदासजी के परचे—

प्रथम पीपली प्रसिद्ध सिला नागौर विशेषो ।
नयो गयंद अजमेर फुनग टोडे पण पेषो ॥
गिरि सूँ गागर गिरी नीर राख्यो घट सारा ।
देवी को सिष करीं ज्यायो विष पित्र उधारो ॥
सिंहपरचौ आमेर राव राजा सब जाँणे ।
अपंग विप्र पथ चल्यो साह सुत जियो सिंघाणे ॥
सिर पर कर श्री गोरषनाथ को ठौर ठौर परचो दियो ।
जन हरिदास निरंजनी त्याग वैराग सिरे कियो ॥१॥

राग—सीधू : कडषैं पद—

सूरवीर सरदार शिरोमणि, दल माँझी ददकार लड़े ।
रामानन्द कबीर नामदेव, रहे फौज मध जीत षड़े ॥५॥
वाग उपाड़ि पड़े परदल मधि, गढ़ कोटन सों जाइ अड़े ।
पींपा धना सैन अरु सोंझा, भवन परस प्रचंड लड़े ॥६॥
काम क्रोध मद मोह मछर, मार तड़ातड़ गर्द किये ।
दादूदास हरिदास रु नानग, ये ग्यानी औगार हिये ॥७॥

× × ×

अनन्य भक्त अष्टांग जोग करि, उलटि आप सूँ आप लड़े ।
'राघो' वंदि चरणरज जिनकी, जो बि स्वामी रे काम पड़े ॥८॥

नमो नृसिंहदेवं , अलष अभेवं ॥
नमो हालीपावं , निरालंब ध्यावं ॥१०॥
नमो मुकुन्दभारथी , निरंजन सारथी ॥
नमो भालीपावं , बिमल शुद्ध भावं ॥११॥
नमो ‍ीडकीपावं , काल को अभावं ॥
नमो सिद्ध हटताली , काल कंटक टाली ॥१२॥
नमो सिद्ध कणेरी , लीयो मन फेरी ॥
नमो धूंधलीमलं , अबीहं अकलं ॥१३॥
नमो कुरकट नामं , रमत राम रामं ॥
नमो सिद्ध टनटनी , लागी अनहद धुनी ॥१४॥
नमो सिद्ध चौरंगी , परम जोति संगी ॥
नमो कंथडपायं , नहीं मोह मायं ॥१५॥
नमो बुध सिद्धं , लियो मन ऊरधं ॥
नमो सिद्ध कपाली , नहीं चित चाली ॥१६॥
नमो कागभुमंडं , त्रिविध ताप षंडं ॥
नमो कागचंडं , कल्पना विहंडं ॥१७॥
नमो वीर पछी , उदै ग्यांन लछी ॥
नमो सूरानंदं , प्रकृति निकंदं ॥१८॥
नमो भैरूनंद , रहै निद्वंन्द ॥
नमो सांवरानंद , पूरण कला चन्द ॥१९॥
नमो चुणकर नाथं , अगम पंथ पथं ॥
नमो पूरन धीरं , भये अनभै सीरं ॥२०॥
नमो आतमारामं , परमशून्य धामं ॥
नमो गरीब सिधं , गुरु शबद विधं ॥२१॥
नमो भडंगनाथं , पकड नाथ हाथं ॥
नमो दडगडनाथं , सदा ब्रह्मसाथं ॥२२॥

नमो देवदत्तं, मिले तत्र तत्रं ॥
नमो सुषदेवं, अलष अभेवं ॥२३॥
नमो सिद्ध चौरासी, विग्यांन प्रकाशी ॥
नमो नो जोगेश्वरं, राते परमेश्वरं ॥२४॥
नमो कपिलदेवं, लह्यो ब्रह्मभेवं ॥
नमो सतक सनंदनं, कर्मकाल पंडनं ॥२५॥
नमो हस्तामलं, सुनें सिद्ध अमलं ॥
नमो अष्टावक्रं, नही कालचक्रं ॥२६॥
नमो रामनन्दं, नहिं कालफन्दं ॥
नमो कवीर कान्हं, निर्मल शुद्ध ग्यानं ॥२७॥
नमो दास कमालं, भए ब्रह्मलालं ॥
नमो हरीदासं, कीयो ब्रह्मवासं ॥२८॥
नमो महरवानं, निरंजन ध्यानं ॥
नमो ध्रू प्रहलादं, अगम अगाधं ॥२९॥
नमो नमो पींपा, प्रगट सत्य दीपा ॥
नमो सर्व साधं, अगाधं अगाधं ॥३०॥

दोहा—

काम दलन कलि मलहरन, अरि गंजन भव भंजनं ॥
अनंत कोटि सिध साधने, प्रेमदास कर वन्दनं ॥३१॥
सिद्ध वन्दना जो पढ़ै, संभ्या अरु पुनि प्रात ॥
रोम रोम पातग झरै, तिमिर अंध मिट जात ॥३२॥
सिध साधने वंदना, नित प्रति करै जो सन्त ॥
प्रेम कहै जव सहजहा, दरसै जोति अनन्त ॥३३॥

॥ इति ॥

॥ स्वामी भगवानदासजी निरंजनी ॥

स्वामी भगवानदासजी निरजनी सम्प्रदाय की परम्परा में अच्छे योग्य विद्वान् सन्त थे। आप के जन्म स्थान तथा जन्म काल का व स्वर्गारोहण का ठीक पता नही लगा है वैसे आप के रचना काल मे ही आप के समय का अनुमान किया जा सकता है वह अनुमान सत्तरहवी शताब्दी का उत्तरार्ध जन्म काल होना चाहिये। मेरे संग्रह मे आप की चार रचनाये है। १ अमृत धारा (वेदान्त), २ अध्यातम रामायण पद्यानुवाद, ३ वैराग्यवृन्द भर्तृहरिशतकका पद्यानुवाद, ४ कार्तिक महात्मय। उनकी और भी रचनाये है जैसे सरस्वती भंडार उदयपुर में पंची करण मनोरथ मंजरी, अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह मे गीता महात्मय भाषा। जैमनी अश्वमेध तथा प्रेम पदार्थ आप की रचना है ऐसा डाक्टर वडथ्वालजी ने उल्लेख किया है। मेरे संग्रह की चारो पुस्तको मे निर्माण काल का उल्लेख है तथा स्थान का भी जैमे अमृत धारा रचना काल सम्वत् १७२८ स्थान क्षेत्रवास।

वैराग्य वृन्द के पद्यानुवाद का स्थान लिखा नही काल सम्वत् १७३० है। अध्यात्म्य रामायण के पद्यानुवाद का स्थान मऊ सम्वत् १७४१ है। कार्तिक महात्म्य गद्य पद्यात्मक रचना काल सम्वत् १७४३ स्थान वालवेद लिखा है। अमृतधारा की समाप्ति मे गुरु नाम अर्जुनदासजी लिषा है।

उक्त उद्धरणों मे अनुमान यह होता है कि भगवानदासजी का मुख्य स्थान क्षेत्रवास (यह प्रचलित नाम न होकर उनने बदल लिया है) होना चाहिये। गुरु नाम अर्जुनदासजी का उल्लेख है ही प्रथम रचना उनकी "अमृत धारा है", इसका काल १७२८ लिखा है। उस समय वे तीस वर्ष के हो तो उनका जन्म १६९८ के आस पास होना चाहिये। कार्तिक महात्म्य के पश्चात् उन को कौन सी रचना है उनमे यदि सम्वत् का उल्लेख हो तो उससे उनके आगे का ठीक ज्ञान हो सकता है।

इनकी रचना मे स्पष्ट है कि ये अच्छे विद्वान् सन्त थे अमृत धारा वेदान्त का ग्रन्थ है वेदान्त का विषय वैसे अति गभीर है उसका भाषा पद्यो मे यथोचित निरूपण इनको विशिष्टता का द्योतक है। अध्यातम रामायण का विषय भी निवृत्ति परक है। वैराग्य शतक आदि का अनुवाद अपनी विशेषता रखता है। पंचीकरण की रचना भी दर्शन मे सम्बन्धित है।

भाषा परिमार्जित तथा रचना मे विविध छन्दो का प्रयोग भी इनकी विज्ञता का पोषक है। ये परम साधक महात्मा सेवादासजी के समकालीन भी थे। इनके काल से भो हरिदासजी के काल निर्णय मे सहायता मिलती है आगे इनकी रचना का कुछ कुछ अंश दिया जा रहा है।

॥ स्वामी भगवानदासजी की रचनाओं का दिग्दर्शन ॥

१ ग्रन्थ अमृतधारा

दोहा—

मंगल रूप स्वरूप मम, बिजानन्द पद जास ॥
लह्यौ मंगलाचरन यह, सौहं हंस प्रकास ॥१॥

मनहर—

जीव सींव एक करो असि असि भावधरो
अहं अहं पास हरो अमृत प्रमानिये ।
मरनको भै नसायो अव्यय सरूप पायो
बेद बेद जोलषायो गुरु ग्यांन जानिये ॥
मान तजि मान लैरे तेरोही सरूप है रे
सबही अभेदानन्द अमीजू बषानिये ।
भगवान भयमान मो विनान लहै आन
विषया विष समान विद्वत बषानिये ॥२॥

दोहा—

पी पीयूष जीव जुगति सौं, तजि अयुक्त अज्ञांन ॥
अखंड धार ज्यूं तैल की, सो अमृत परमांन ॥३॥

सोरठा—

श्री गुरु सन्त प्रताप, बरनौं बुद्धि बिलास कछु ॥
तजूं आंन को जाप, जग जोई सोई सही ॥४॥

अरिल—

जासौं अमृत होइ सु जुगति बताइये ।
प्रथम चार अनुबंध तहाँ मन लाइये ॥
अधिकारी अरु विषै लषै सम्बन्ध रे ।
परिहाँ! परमप्रयोजन जानि और सब धन्धरे ॥५॥

दोहा—

जगके बंधन ज्ञान तैं, मुक्त होन की आस ॥
आस वास विस्वास तजि, सो मुमुक्षु परकास ॥६॥
अर्थ धर्म अरु कांम पुनि, त्याग पदारथ तीन ॥
सो अधिकारी मोक्ष को, महाज्ञान परवीन ॥७॥

सोरठा—

कहि अधिकारी भाव, श्री गुरु ग्यांन प्रताप तैं ॥
पुनि आनंद गुनाव, भगवान भाषिये हरषसौं ॥८॥

दोहा—

द्वितिय प्रभाव प्रभाव को, मनमैं भयो हुलास ॥
कहत सुनत सुष पाइये, निरमल ब्रह्म विलास ॥९॥

अरिल—

जाग्रत बुधि की वृत्ति भोग भ्रम रहत है ।
सुषुप्ति सुष को मूल ब्रह्मपद लहत है ॥
जगदाकार विकार वृत्ति उलटाइये ।
परिहाँ ! प्राप्त शुद्ध स्वरूप विषय यह गाइये ॥१०॥

दोहा—

अमृत धारा ग्रन्थ यह, कह्यौ वेद प्रमांन ॥
अर्जुनदास प्रकासगुरु, तत सेवग भगवान ॥११॥
साधू संग प्रताप तैं, श्री गुरु ग्यांन प्रकाश ॥
शुद्धनिरंजन ग्यांन लहि, कीन्हौं वचन विलास ॥१२॥
परंब्रह्म परमात्मा, है परोक्ष पद जास ॥
ग्यान अज्ञ प्रत्यक्ष को, कीन्हौं ग्रन्थ प्रकाश ॥१३॥
सत्रह सै अठाईसा, सम्वत् संख्या जान ॥
कातिग तृतिया प्रथम ही, पूरण ग्रन्थ प्रमान ॥१४॥
थांन मुकाम प्रमांन यह, क्षेत्रवास सु नाम ॥
तहाँ ग्रन्थ पूरण प्रगट, जो भाषै भगवान ॥१५॥

तीन ग्रन्थि निरुपरग–सोरठा—

तीन ग्रन्थि को भेद, कहिये गुरु समझाय कें ।।
तुम मुष वांणी वेद, ज्यूँ को त्यूँ समझाइये ।।१६।।

संशय ग्रन्थि–सवैया—

जीव ही सींव समान कहै कहि ग्यांन लहै वह दाह दहे हैं ।
आदि कछु कहि पुनि अंत कछु कहिं मध्य कछु यह कौन कहे हैं ।।
जो यह एक कहो क्यूं अनेक यहे अविवेक सों पाग रहे हैं ।
संशय ग्यांन तजै यहजान भजै भगवान सुलाभ लहे हैं ।।१७।।

दोहा—

यह संशय की ग्रन्थि है, कही अल्प कर सोइ ।।
गुरु शास्त्र प्रतीति नहि, निश्चय कछु न होइ ।।१८।।

कर्मग्रन्थि वर्णन–कवित्त—

कर्मग्रन्थि कहों ग्रन्थि वा में भूल्यो महापंथ,
ग्यानरुअग्यान मथ दधि के मो घोल है ।
संचित संचय प्रमाण प्रारब्ध भोग मान
क्रीयमाण कृतठानैं झूले झक झोल है ।।
वरण वरण धर्म आश्रम है महाश्रम
शुभा शुभ कर्म धर्म डोले डग डोल है ।
भगवान भर्म भूठै कर्म को भंडार फूटै
सबै आस वास टूटै ज्ञान सो अमोल है ।।१९।।

सोरठा—

कर्मग्रन्थि यह जान, बहुत कर्म अभिमान लहै ।।
निश्चय बन्ध प्रमाण, सब छूटै तैं छूटि है ।।२०।।

अहं ग्रन्थि वर्णन–मनहर—

अहं ग्रन्थि यह जान अहं अहं कै वपान,
पंडित सुजान जान और ऊ अनेक है ।
अहं राज अहं रंक अहं ताहि सबै संक,
अहं अह पग्यौ एक स्वप्न सुष जे कहै ।।

अहं साध अहं चोर अहं जान अहं भोर,
अहं सर्व धर्म धार दूजा को एसे कहै।
अहं अहं मान वन्ध भूलै जग जाल धंध,
भगवान ग्यांन संध तत्र सो विबेक है ॥२१॥

दोहा—

जीव ग्रन्थि वन्धन सही, कह्यौ मुक्ति को भेद ॥
परे उरे सुष एक है, यों भाषत है वेद ॥२२॥

॥ इति ॥

॥ अध्यात्म रामायण पद्यानुवाद ॥

चौपई—

आत्म तत्वको ग्यांन लषावे, अध्यात्म सो नांम कहावे।
ताकौ टीका है को करै, क्यूँ दादुर भवसागर तिरे ॥

दोहा—

यथाशक्ति वर्णन करो, मन की ममता षोइ ॥
कहत सुनत सुष ऊपजै, अरु परमारथ होइ ॥१॥

चौपई—

कौन वात पूछन की तेरे, सो सब कहो हरष भयो मेरे ॥
एसी सुनि ब्रह्मा की वांनी, तव वोले नारद मुनि ग्यांनी ॥२॥

नारद उवाच—

वन्धमोच्छ की जेती बात, ते तुम कहो कृपा कर तात ॥
अब में एक प्रश्न करों और, सो तुम कहौ सकल सिरमोर ॥
या रहस्य को उत्तर दीजै, निज जन जान अनुग्रह कीजै ॥३॥
घोर अंधेर महा कलि होई, तामें प्रण विहीन नर सोई ॥
बुरो चलन सब कै मन मानें, सांच शब्द नांही पहिचानें ॥४॥
अन होनी पर निन्दा करै, अरु परद्रव्य लैन मन धरै ॥
पर अस्त्री मन सदा अधीन, परहिंसा को महा प्रवीन ॥५॥

आतम बुद्धि दे हमें माने , उदर किरन मति पशु प्रमानें ॥
मात पिता को वैरी देषे , अस्त्री को निज देव विसेषै ॥६॥

दोहा—
किंकर कहिये तास को , सो अति कांमी जांनि ॥
ज्यों राशभ बश राशभि , ज्यूँ सुनहि वस श्वांनि ॥७॥

ब्रह्मा–उवचा–चौपई—
नारद साधु साधु तव वांनी , में भाषों तुम करो प्रमानी ॥
गुरु जो कहै कृपा के वैन , सिष कै होइ ग्यांन के नैंन ॥८॥

श्रीराम उवाच—
ग्यांनी गुरु सो ग्यांन लषावै , क्रिया कर्म तैं आलस पावै ॥
साभिमान जो क्रिया करै , तातें देह विविध विधि धरै ॥९॥
कर्म शुभाशुभ करै सकाम , ऊँच नींच पावै सो धाम ॥
कर्म किये तै पावे देह , देह करै फिर कर्म सनेह ॥१०॥
जैसे फिरै रहट की घरी , कबहू रीति कबहू भरी ॥
यों ही जीव भ्रमै संसारा , पाप पुन्य के कर्म अपारा ॥११॥
सबको मूल जान अग्यांना , अग्यांन गये तैं प्रगटै भांना ॥
कर्म किये अग्यांन न नासै , विद्या ग्यांन अग्यान विनासै ॥१२॥
निहकाम कर्म सो कीजै तातें , विद्या ग्यांन उदय होइ जातैं ॥
बहुरि नही साधन सों काम , प्रगट्यौ ग्यांन महा सुपधाम ॥१३॥
तातै बुध जन करो विचार , आप मांहि आपौ निरधार ॥
जबै कर्म को त्याग करायो , तब मीमांसक लरने आयो ॥१४॥
क्रिया कर्म श्रुति पहिले भाषी , तुम तो याहि दूर क्यूँ नांषी ॥
वेदान्ती ताकौ समझावे , कर्मी को सब भरम नसावै ॥१५॥
मन वांणी ताकों नहि पावे , ताकों कर्म कहाँ ठहरावे ॥
नेति नेति सो जान्यों सबै , तीनों देह नाश भई तबै ॥१६॥
जीव ब्रह्म भेद जब नासै , पूर्ण ग्यांन सूरसम भासै ॥
माया नास सहज ही होइ , कारज कारण रहे न कोइ ॥१७॥

समाप्ति मे—

मूल ग्रन्थ सोसंकर गायो, भाषा सो भगवान वनायो ।।
मूल अंक सौ छसै प्रमांन, नोसे दश भाषा के जांन ।।१८।।
मूल अंक सो चार हजार, चार सैकरा ऊपर धार ।।
अक तिरानवे और वषान, शिवशंकर सो किये प्रमांना ।।१६।।
भाषा रूपक पांच हजार, दोइ सो चौसठ और विचार ।।
ताको करना है भगवान, जो समझै सो होइ सुजांन ।।२०।।
संवत् सत्रह सो इकताला, तीज जेठ की चंद उजाला ।।
पूरण भयो मउ मैदान, यहई जानोंथान मुकाम ।।२१।।

।। इति ।।

।। वैराग्य वृन्द-प्रारंभ ।।

दोहा—

स्वतः प्रकाश स्वरूप मम, वंदौ शीश निवाय ।।
बुद्धि शुद्ध प्रकाश होय, विन्ध नाश सव जाय ।।१।।

सोरठा—

ग्रन्थ नाम परमान, वैरागवृन्द सो जानिये ।।
भाषों बुधि अनुमान, मूल भर्तृहरि भासतैं ।।२।।

मनहर—

देश काल भेद नांहि वस्तु सो प्रछेद कांही
अनंत स्वरूप ओही चिदानंद रूप है ।
आप ही को आप जानैं आप अनभौ प्रमानें,
जैसे मणि ज्योति नामै निर्मल अनूप है ।।
तेजहूतै तेज रूप शीतल सदा अनूप,
व्यापक विविध भूत महाराज भूप है ।
करले नमस्कार भगवान उरधार
नीकै कै निहार सो तौ तेरोही स्वरूप है ।।३।।

जासों मेरो मन लागो मुझ से विरक्त वह,
रतमानी और ही सुँ सोतो अन्य रत है ।
में तो जानी मेरी तीया तियाहू न मेरी यह,
तजि मोसो पुरुष पुरुष आन चित है ।।
तरुणि तिया को त्याग एसो महा मंदनर,
वस्यो जाइ वेश्या घरि अघता उचित है ।
धिग काम धिग बाम धिग नार नारी नाम,
भगवान विना ग्यांन धिग मोकूँ नित है ।।४।।

छप्पय—

जो कछु उपजत देषिये जगत जाल के कर्म ।
उत्तमता तामैं नंही सबै द्रसैं विभ्रम ।
मेरे पुण्य प्रताप मोहिं यह डर उपजायो ।
पुनि मैं किये विचार तबै यह निश्चय आयो ।।
करै कर्म सहकामता लहै सु विषयन भोग ।
विषय वियोगनि तपत है त्रिविध ताप के जोग ।।५।।

मनहर—

भोजनसु भीषमांग रसहीन एक बेर,
सोयवेको सैज सुतो भूमि निरधारी है ।
सेवग की ठौर सुतो सेवग सो आप ही है,
शतषंड जोर सो तो कंथा उरधारी है ।।
हा ! हा ! इति कष्ट जान विषमन छाडि सकै,
भोग अभिलाष होत यह भ्रम भारी है ।
जेता विषै विषजानें अमृत सो आप मानैं
भगवान लहै ग्यांनै सो तो ब्रह्मचारी है ।।६।।

सवैया—

जबैहम किंचित् ज्ञानहुतें सुतबै गजमत्त महा गति चालें ।
हों सर्वअभिमान भयो यह गर्व गुमान भये मतवाले ।।

राघोदासजी द्वारा निरूपित "भक्तमाल" मे जो उपर्युक्त विवरण है, उससे सिद्ध हो जाता है कि भक्तमाल की रचना के समय राजस्थान मे निरंजनी-सम्प्रदाय का सम्यक् प्रसार था और उसके प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी नामदेव, कबीर, नानक और रैदास की श्रेणी मे सम्मिलित थे।

यहां तक के उद्धरण दादू-पन्थी सम्प्रदाय के महात्माओं के है, जिनका आरम्भ सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से आरम्भ होकर अठारहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चला गया है। हरिदासजी के औचित्य तथा उनके काल-निर्णय मे इनका क्या विशेष उपयोग है? यह हम पूर्वापर पक्षो को लेकर आगे विवेचन करेंगे वही दिग्दर्शन करायेंगे।

अब मैं दादू-पन्थी सम्प्रदाय के पश्चात् होने वाले सम्प्रदाय-प्रवर्त्तको व उनके अनुयायियो के उद्धरण देना संगत समझता हूँ, जिससे यह सिद्ध होता है कि उनके विचार मे हरिदासजी का क्या स्थान था तथा उनका काल व निरंजनी-सम्प्रदाय का क्या रूप था?

वैष्णव सम्प्रदायान्तर्गत रामानन्दजी के शिष्य अग्रदासजी की पाचवी पीढी मे दांतडा मे महात्मा सन्तदासजी हुए है। उनकी वाणी का रचना-काल सम्वत् १७६० से १७९० तक का आनुमानिक है। उनकी वाणी का प्रकाशन शाहपुरा के रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक योगसिद्ध महात्मा रामचरणजी की वाणी के साथ प्रकाशित है।

ग्रन्थ—"ब्रह्मध्यान" पृ० ५१—प्रकाशित वाणी—महाराज रामचरणजी की—

ध्रुव प्रहलाद वे ही सुख मिलिया, चौरासी का बन्धन खुलिया।
दास कबीर गुरु रामानन्दा, वा सुख सूँ मिल किया आनंदा॥
वा सुख सूँ मिल रहिया नामा, जाका निहचै सरिया कामा।
पीपा धना और रैदासा, वा सुख सूँ मिल किया विलासा॥
वा सुख नानक कान्है पाया, राम नाम निहचै कर धाया।
विष्णु सूरजन माधोदासा, वा सुख माँहिं कीन्हा वासा॥

× × ×

दास मुरार मलूका जंगी, वे भी था वा सुख का संगी।
हरिदास वाजिंद विचारा, वे भी मिल गया सुख की धारा॥

विद्वद्संग भयो मन निर्मल ज्ञान विचार अग्यांन सु जाले।
निर्मल ग्यांन भयो भगवान सु आप ही में प्रभु आप संभाले।७।

अन्त-सोरठा—

सम्वत् संख्या जान, सत्रह सै अरू तीस पुनि ॥
वैशाष मास प्रमांनि, शुक्ल पक्ष अरु पंचमी ॥८॥

दोहा—

देह बुद्धि सो अज्ञता, ब्रह्म बुद्धि सो ग्यांन ॥
अंजन रंजन ता नही, सो स्वरूप भगवान ॥९॥
मूल भर्तृ शतक यह, एकै शत प्रमांन ॥
ओर पद्य जो बीस है, प्रस्तावी सो जांन ॥१०॥
भाषा कृत टीका यहै, शत तीन्यूं परकास ॥
दोहा सवैया चौपई, कुंडलि कवित्त विकास ॥११॥
छपै छंद अरु सोरठा, अरिल रूप यह जान ॥
अति निर्मल वैराग्यतर, सार सार प्रमांन ॥१२॥

॥इति॥

॥ ४ कार्तिक महात्म्य ॥

प्रारभ दोहा—

प्रथम हि गुरु गोविन्द को, सुमरण सीस नवाइ ॥
वाकपति गणपति सहित, कविजन भलो मनाइ ॥१॥
यह कार्तिक महिमादि पुल, भक्ति धर्म प्रमांन ॥
रामकृष्ण की सुरति सों, भाषत है भगवांन ॥२॥

पार्वती उवाच-चौपई—

पारवती तव दर्सन पायो, स्तुति कर भगवान रिझायो।
कृपासिन्धु सुनी यह रीति, जालंधर कीन्हौ विपरीत ॥
तुमसों बात कहा है छानी, अब प्रभु जतन करो यह जानि।
भगतवछलता विरद सम्हारो, महादुष्ट या असुर हि मारो ॥

भगवान उवाच—

तव नारायन बोले वानी, हमरी वात सुनो कल्यांनी।
पहिले असुर कियो छल आई, अव हम हूं करि हैं छल जाई ॥
पतिव्रता को छलने आये, वाही न यहु पंथ बताये।
पतिव्रता वाकै घर मांहि, तातैं जीत सकै कोइ नांहि ॥
पतिव्रता को धर्म घटाऊँ, ता पीछे यहु असुर नसाऊँ।
याकी त्रिया धर्म व्रत धरै, तातै यहु मार्‌यो नहिं मरै ॥३॥

नारद उवाच-दोहा—

नारद मुनि पृथु सों कहै, विष्णु गये ता धाम ॥
वृंदा रानी असुर की, जालंधरपुर नांम ॥४॥
रुद्र आदि दे सुर सवै, युद्ध करै रण मांहि ॥
असुरनि माया अति करी, सो शिव जानी नांहि ॥५॥
दानव देव लरै मरै, करै परस्पर घाव ॥
एकौ हारन मानते, लरने ही को चाव ॥६॥
असुर काम कै वश भयो, गयो गौरि के पास ॥
उलटि काम कांमी ठग्यो, भई न पूरन आस ॥७॥

समाप्ति मे-दोहा—

धर्म रूप है शास्त्र यह, पृथु नारद सम्वाद ॥
सतभामा अरु कृष्ण को, सुनै गुनै तव स्वाद ॥८॥
भाषाकृत को नेम यह, सवै कहै भगवान ॥
वैराग विशेषण है प्रगट, इष्ट निरंजन ग्यांन ॥९॥
सम्वत् सत्रह सै प्रगट, तयांलीस पुनि और ॥
फागण कृष्णा अष्टमी, बुधवार शिरमौर ॥१०॥
वालवेद सुकाम हैं, शुभ विप्रन को वास ॥
तहाँ ग्रन्थ पूरन भयो, निर्मल धर्म विलास ॥११॥
यामै कछु धोषो नहीं, सत्य वचन प्रमांन ॥
ईश्वर वांनी वेद है, कहयौ भाषि भगवांन ॥१२॥

॥इति॥

।। विज्ञ महात्मा मनोहरदासजी निरंजनी ।।

निरंजनी सम्प्रदाय के विज्ञ रचनाकारो मे मनोहरदासजी का अपना स्थान है। ये स्वामी हरिदासजी के शिष्य प्रशिष्यो के पश्चात् होने वाले रचनाकारो मे है। जन्म काल, जन्म स्थान तथा देहावसान का इनका भी कोई पता नही लगा है। इनके प्रमुखतया प्राप्त्य ग्रन्थ वेदान्त विषय से ही सम्बन्धित है। इनका रचना काल अठारहवी शदी का पूर्वार्द्ध है। उससे इनके जन्म का अनुमान सतरहवी शताब्दी का अन्तिम चरण मानना चाहिये। इनकी प्रथम रचना कौनसी है इसका निश्चय तो तभी होता जब इनकी सब रचनाओ मे काल का उल्लेख होता पर ऐसा है नही।

अब तक इन के छै ग्रन्थ देखने मे आये है उनके नाम इस तरह है।

१ ज्ञान मंजरी, २ वेदान्त परिभाषा, ३ षट् प्रश्नोत्तरि, ४ शत्त प्रश्नोतरि, ५ ज्ञान वचन चूर्णिका, ६ सप्तभूमिका।

ज्ञान मंजरी वेदान्त परिभाषा पद्यात्मक रचनाये है। शेष गद्य पद्यात्मक है। ज्ञान मजरी की रचना का काल सम्वत् १७१६ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा है। वेदान्त परिभाषा का रचना काल सम्वत् १७१७ आसोज बुदी चतुर्दशी शनिवार है। अन्य रचनाओ मे काल का उल्लेख नही है। इनने अपनी किसी रचना मे स्थान तथा गुरु नामका कहीं उल्लेख नही किया हे। हाँ ? अपना निरजनी होना स्वय लिखा है जैसा आगे रचना के उद्धरणो मे आप देखेंगे।

वेदान्त परिभाषा वेदान्त का प्रक्रिया ग्रन्थ है उसका पद्यानुवाद किया है इसमे इनकी विज्ञता स्वत सिद्ध हो जाती है। इनका रचना काल स्वामी मेवादासजी व भगवानदासजी के रचनाकाल के समकक्ष है। इनका निधनकाल अठारहवी सदी का उत्तरार्ध कहा जा सकता है।

इनकी रचना में भाषा परिमार्जित तथा शब्द सौष्ठव के साथ भावाभिव्यक्ति भी सुस्पष्ट है। ग्रन्थानुसार विषय प्रतिपादन सम्यक् रूप से हुवा है। ये हरिदासजी के पश्चात् किस शिष्य की परम्परा मे कितनी पीढी मे हुये यह तो अज्ञात है। पर इतना तो सिद्ध है ही कि ये किसी शिष्य की परम्परा मे पाचवी या छट्टी पीढी मे थे। इनके रचनाकाल से भी हरिदासजी महाराज के काल निर्णय मे सहायता पहुंचती है। ग्रन्थ विस्तार के कारण इनकी रचना के अत्यल्प अंस आगे दिये जा रहे है पाठक तण्डुल न्याय से उसके महत्व पर विचार करेंगे ऐसी आशा है।

स्वामी मनोहरदासजी की रचनाओं का दिग्दर्शन
१ ज्ञानवचन चूर्णिका प्रारम्भ

दोहा—

रवि गुरु द्वै सम तुल्य ज्यौं, तम अज्ञान करै दूर ॥
जग उरमें प्रकाश करि, वन्दन को निज मूर ॥१॥
जीवेश्वर चैतन्य महि, कहिये है द्वै नाम ॥
सर्वज्ञता अल्पज्ञ पुनि, संसारी सुषधाम ॥२॥
कर्म सहित पुनि रहित है, सहित कर्म कह्यौ जीव ॥
संसारी तातै भयो, रहित भयो सोई सींव ॥३॥
जीवेश्वर द्वै जगत मंहि, प्रगट कहैं सब कोई ॥
बाह्य दिष्टि विवेक बिन, अन्तर्दिष्टि न होई ॥४॥

गद्य—अरु पंच ख्याति कहिये है—

१. "एक ख्याति" सो न कदाचित् अनिन्द्रिय संयुक्त किन्तु प्रवाह रूप से इन्द्रिय संयुक्त। ये मीमासी प्रभाकर माने। २. अन्यथा ख्याति। सो कहुंक साचो सर्प है तो सर्प की प्रतीति होत है जेबरी मंहि। अरु कहुंक रूपो साचो है तो सीप माहि भासत है यह नैयायिकादिकनकै मत मानै। ३ आत्मख्याति। देह आत्माकौ मानै प्रत्यक्ष प्रमाणवादी चारवाक के मतमानै ४ असतख्याति। माध्यमिक मत मानै शून्य आत्मवादी। इति प्रस्ताव वार्ता कही। अब अपने मत की वात कहिये है। अनिर्वचनीय ख्याति वेदान्त मत माने। सुविवर्तवादी वेदान्ती अज्ञानकाल अनिर्वचनीय ख्याति अरु विवर्तवाद माने। ज्ञान विद्याकाल विषय स्वरूप नाही। जीवन मुक्ति देह प्रतीत महि स्वप्न तुल्य मानिये। जैसें उत्पत्ति स्वप्न महि कहिये तैसे यह कारणतैं उत्पत्ति संक्षेप तै कही।

अन्त मे दोहा—

भाषा ग्रन्थ यह वचनिका, औषध चूर्ण सोइ ॥
ज्ञानचूर्ण यह वचनिका, नामजु या को होइ ॥१॥
तप्त नीर चूर्ण भषै, उदर रोग सब जाइ ॥
त्यौं साधन सहित विचारतैं, संसार रोग नसाइ ॥२॥

संसै रोग संसार सब, नासै करै विचार ॥
कहै मनोहर निरंजनी, यह निहचै निरधार ॥३॥
॥ इति ॥

२ षट् प्रश्नोत्तरी गद्य पद्यात्मक—

प्रारम्भ दोहा—
द्रष्टा एक स्वरूप है, जीवेश्वर नहिं भेद ॥
सो स्वरूप उर वंदि कै, विघ्न सर्व तजि षेद ॥१॥
गुरु पूर्ण अद्वैत है, द्वैत भेद नहिं ताहि ॥
ताको करै प्रणाम, विघ्न नाश सब जाहि ॥२॥

सोरठा—
अक्षर तीन ऊँकार, अकार उकार मकार है ॥
सोहं प्रणव उचार, ब्रह्मंड पिंड मैं प्रगट है ॥३॥
सव्यंजन कर लोप, ऊतै औ है समझिले ॥
हं व्यंजन कर लोप, अं अकार मकार मिलि ॥४॥
मिले परसपर तीन, उकार अकार मकार ए ॥
ऊँकार जो कीन, सोहं प्रणव उचार सब ॥५॥

दोहा—
सोहं श्वास उसास है, पुरुष असंग मिल्यो देष ॥
अन्वय स्वप्न जाग्रत फुरै, व्यक्तिरेक सुषुप्ति पेष ॥६॥
परावाक् अव्यक्त रहै, व्यक्त पश्यंति और ॥
मध्यमावाक् तीजी तवै, वैषरी चौथी दौर ॥

सोरठा—
भई वैषरी वाक्, चार वेद त्रैकांड सब ॥
जीवेश्वर सम भाक्, तत्त्वं त्वंतत् वैषरी ॥८॥

दोहा—
मन वांछै पूरण इहै, भाषा कवित्त प्रकाश ॥
दोहा सवैया चौपई, करो ग्यांन की राशि ॥९॥

सोरठा—

समझै सुष व्है तास, नासै मोह अज्ञान तम ॥
ज्यौं रवि कै प्रकाश, नांहिं अंधेरो पाइये ॥१०॥

दोहा—

ततवेता सो जानिये, तजै अतत सब दूर ॥
हँस नीर ज्यूं छाडि कै, पीवै जीवन मूर ॥११॥

मनहर—

शुद्ध जो प्रकास बोध प्रापत भयो है जाको,
ग्यांनी जो कहीजै मान ज्ञानी सुपराशि है ।
भवके समुद्र मांझ फूले हैं वे अरविन्द,
मोक्ष मकरन्द जामें एकही प्रकाशि है ॥
विषै भोग वनवासी पै उदासी मोक्ष प्यासी,
अलि वेई जांण लेत मति के उजासि हैं ।
धर्म अर्थ काम कीच दादुर सो याही बीच,
निपटन जानै नीच कीच कौ निवासि है ॥१२॥

सोरठा—

निर्विशेप सो जान, विधि निषेध तैं रहित है ।
पुनि प्रकार कहि मान, साक्षी जीवेश्वर मोइ ॥१३॥

चौपई—

अग्यांन मिल्यो सो व्यंव कहावै, व्यंवनाम सोई ईश्वर पावै ॥
अन्तःकरण अग्यांन मिल रहै, संस्कार पुनि तामें गहै ॥
कारण देह कहावे सोई, स्थूल सूक्ष्म व्है लै जहाँ होइ ॥
तहाँ प्रतिविंब जीव सो कहिये, दोऊ मध्य साक्षी सो लहिये ॥
एक पक्ष एसैं कहै कोई, विवरण नाम मुनि सो होई ।
दूसरी पक्षकौं समझो सोई, संक्षेप शारीर करता कहे जोई ॥
कारण प्रतिविंब को ईश्वर कहै, बुधि प्रतिविंब जीव पुनि लहै ।
विंव कह्यौ ताकों शुध कहिये, साक्षी नाम पुनि ताही लहिये ॥१४॥

अन्त मै दोहा—

षट् प्रश्नीनिरनै नाम है, भाषा ग्रन्थ प्रकाश ॥
मनोहरदास निरंजनी, कर्यो जु वचन विलास ॥१५॥
षोजे में सच पाइये, षोजे में है मुक्ति ॥
मन त्यागे अहंकार को, छाडै सब की युक्ति ॥१६॥
शुद्ध मुमुक्षु होइ कै, खोजै भाषा ग्रन्थ ॥
पावै मोक्ष स्वरूप को, छूटै उर की ग्रन्थि ॥१७॥

॥इति॥

---

३ शत प्रश्नोत्तरी प्रारम्भ

सोरठा—

वाच्य लक्ष करि जान, निर्गुण सगुण यों कह्यौ ॥
करि नमस्कार वषांन, वाच्य त्याग कर लक्ष कूँ ॥१॥

चौपई—

अग्यांन शक्ति आतम की कहिये, आतम अज्ञान अनादि मिले लहिये ।
अग्यांन अमिल रह्यो शुद्ध वषांना, ताको ब्रह्म करि कैसो जाना ॥२॥
अग्यांन मिल्यो सो साक्षी कहिये, दोइ भाग अज्ञान सु लहिये ॥
जीवेश्वर पुनि कहिये तामहि, साक्षी नाम कह्यौ है जा महि ॥३॥
कारण अज्ञान एक कहि भागा, कार्य अज्ञान दूसरै विभागा ॥
कारण भाग तै ईश्वर जाना, माया वृत्ति तहाँ कही वषाना ॥४॥
कार्य भागतैं जीवजु कहिये, अन्तःकरण वृत्ति ताको लहिये ॥
मलिन सत्य पुनि कहिये सोई, आतम एक भिन्न भिन्न होई ॥५॥
माया वृत्ति सर्वज्ञ विशेष, प्रमातादि तहाँ नहिं देष ॥
एकै ईश्वर कहिये जाको, जगत उपादान व्है ताको ॥६॥
अन्तःकरण वृत्ति अल्पता लीने, जीव विशेष भिन्न भिन्न कीने ॥
ज्ञांनी अज्ञानी कहिये सोई, हौ जानूं तूं जानन होई ॥७॥

गद्य प्रश्नोत्तर—

प्रश्न शरीर कौण-स्थूल सूक्ष्म कारण इति व्यष्टि शरीर । विराट्, सूक्ष्म, अव्ययक्त इति समष्टि शरीर ।

प्रश्न अभिमानी कौण ? विश्वतेजम प्राज्ञ इति व्यष्टि के अभिमानी । ईश्वर हरिण्यगर्भ वैश्वानर ये समष्टि के अभिमानी कहिये है ।

प्रश्न अधिष्ठानकौण ? अस्पष्ट तेजसैं भुजंगादि जेवरीमहि सीप रूपो कल्पित तैंसे चैतन्य ब्रह्म आत्मा अधिष्ठान मै यह अज्ञान कल्पित सब अधिष्टान कहिये है ।

प्रश्न प्रलय कौण—। पंचीकृत भूत अपंचीकृत मे विलीन होइ, अपंचीतकृ भूत अव्याकृत मे विलीन होइ, स्थूलभूत लय को दैनदिन प्रलय नाम ।

सूक्ष्मभूतलय कौ प्राकृत-प्रलय नाम । ब्रह्मज्ञान कर के सबको अभाव करे जेवरी सीपग्यान तें जैसे सर्प रूपो नही तेंसे अधिष्ठान ज्ञान तें सबको अभाव ताको ज्ञान प्रलय कहिये ।

प्रश्न उत्पति कौण—? अपचीकृत भूत कार्य सहित अरु पचीकृत भूत कार्य सहित उपजै ताको उत्पत्ति कहिये ।

प्रश्न धर्म कौण ? जोई अविभिचारी अतिवर्णाश्रमी ब्रह्मनिष्ट सोई आत्म-धर्म कहिये ।

प्रश्न अधर्म कौण ? जो आत्मधर्म रहित अनात्मधर्म मे रत रहै सोई अधर्म कहिये ।

दोहा—

मलिन तजै शुध को भजै, शुद्ध तजे निर्विकल्प एक ॥
गुरु गमतैं सो पाइये, जीवन्मुक्त विदेह ॥१॥

चौपई—

तुरिया ब्रह्म आत्मा जानों, ब्रह्म सो साक्षी रूप वपांनो ॥
साक्षी अहं लक्षण लहिये, अहं ब्रह्म सो एकै कहिये ॥२॥
लक्ष्यार्थ कह्यौ यह सोई, जामैं द्वैत भान नहिं होई ॥
द्वैत भांन वाद्य कह्यो जा महि, फल फल नाम दोइ नहिं तामहि ॥३॥
फल चिदाभास परमाता, अहंब्रह्म फल कह्यौ विष्याता ॥
स्वरूप माँझ द्वै फल ए नाही, विकल्प रहित रहै सो ताही ॥४॥
हौं मैं हौं तूं नाही, हौं तू हों में हौं कही ॥
सब है हौं तू मांही, हों तू होंतू एक है ॥५॥

॥ इति ॥

४ वेदान्त परिभाषा पद्यमय भाषा में

दोहा—

मंगल दे मौंहि देव गनेश, मंगल दे मोहे सरस्वती ॥
मंगल दे मोहि देव महेश, मंगल दे मोहि पारवती ॥१॥

चौपई—

आत्म लाभ तैं और न कोइ, यह भाषत है मुनि सब सोइ ॥
लाभ अर्थ कवि करै वषांण, आतम को ईश्वर करि जांण ॥२॥

प्रश्न—

शिष्य मन ही संसै भयो आय, आतम ईश्वर भिन्न सुभाय ॥
आतम अज्ञ ईश्वर सर्वज्ञ, कैसे एक व्है अज्ञ रु तज्ञ ॥३॥
नियंता जग कर्त्ता है ईश, जीव अकर्त्ता सदा अनीश ॥
क्यों ? आतम परमातम एक, सो हमको कहि देहु विवेक ॥४॥

उत्तर—

समाधान करै गुरुदेव, चैतन्य एक है अषंड अभेव ॥
महावाक्य नहीं कहै वषांण, आतम को परमातम जांण ॥५॥
वाक्य अर्थ अनुभव तैं होइ, जा अनुभव में नांही दोइ ॥
शिष्य कहै सुनिये गुरुदेव, हम अनुभव क्यों ? पावे भेव ॥६॥

प्रश्न—

कैसे वाक्य अर्थ को लहैं, यह संशय उरमैं ते दहै ॥

उत्तर—

गुरु सो कहै सुनो शिष्य सोई, पद पदार्थ समझै दोई ॥७॥
पद अरु पद के अर्थ ही लहो, ता लहिवे को अनुभव कहो ॥
जब यह अनुभव थिर व्है रहे, उरको संशय सगरो दहै ॥८॥

प्रश्न—

शिष्य कहे पद हमसों कहो, पद के संग अर्थ निर्वहो ॥

उत्तर—

गुरु कहै तत् पद त्वपद दोइ, वाच्य लक्ष्य अर्थ तिहिं होइ ॥९॥

तत पद ईश्वर त्वंपद जीव, असिपद तहाँ भेद नहिं कीव ॥
तत्पद वाच्य अर्थ यह भांरण, कारणउपाधि करि ताहि वषांणि ॥१०।

त्रिपुटि निरुपरण सोरठा—

ध्याता ध्यान रु ध्येय, कर्त्ता क्रिया कर्म सब ॥
ज्ञाता ग्यान रु ज्ञेय, त्रिपुटि पिंड ब्रह्मंड सब ॥११॥
अन्तःकरण वृत्ति तीन, कर्त्ता क्रिया कर्म सबै ॥
सुषुप्ति महि सब लीन, ज्ञेय ज्ञान ज्ञाता सबै ॥१२॥
सुषुप्ति तैं उत्थान, कर्त्ता क्रिया कर्म सब ॥
त्रि प्रकार वषांण, देह इन्द्रि विषै व्यापकै ॥१३॥
त्रिधा तहाँ चिद्भास, ज्ञाता ज्ञान रू गेय कहि ॥
साक्षी तहां प्रकाश, तीन वृति के संग मों ॥१४॥
साक्षी जीवन्मुक्त, गुणातीत ब्रह्म एकसो ॥
प्रारब्ध संयुक्त, देह भाव तें बोधिये ॥१५॥
अध्यात्म अधिभूत, अधिदैविक सोजान सब ॥
त्रिपुटि त्रिधा अभूत, दृश्य पदार्थ जानिये ॥१६॥
विश्व अध्यात्म जान, ब्रह्मांड सबै अधिभूत है ॥
विष्णु अधिदैविक मान, त्रिधा दृश्य तें जानिलें ॥१७॥

ग्रंथांत में दोहा—

अधिकारी या ग्रन्थ को, कहिये साधना सिद्ध ॥
सो समझै या ग्रन्थ को, लहै मोक्षसी निद्ध ॥१८॥
मनोहरदास निरंजनी, करीजु भाषा सार ॥
थोरी सी विस्तार नहि, अर्थ सबै बिसतार ॥१९॥
संवत् सतरह सोमहि, सोरह वर्ष वितीत ॥
वर्ष सत्रह महि करी, षट्मास जांहि व्यतीत ॥२०॥
आसोज वदि चतुर्दशी, शुभ सुवार शनिवार ॥
भाषा पूरण सब भई, एक मास कृतकार ॥२१॥

॥ इति ॥

दादू रज्जब परसा ग्यानी, वा सुख सूँ मिलिया निज ध्यानी ।
राँका बाँका कालू कूबा, वा सुख मांही वे भी डूबा ।।

× × ×

सन्तदास दासन के दासा, जिन कथिया ब्रह्मध्यानप्रकाशा ।
सीख विचार र ध्यावे रामा, निज पद में ता का विसरामा ।।

महात्मा सन्तदासजी सम्वत् १८०६ मे ब्रह्मलीन हुए जैसा कि उक्त कुण्डलिये से सिद्ध होता है—

दोहा— अठारह सै षट् वरस में संत भये निरकार ।
बुद फागण तिथि सप्तमी वार सनीसरवार ।।
वार सनीसरवार डार के अनित सरीरा ।
प्रथम ही मिल रहे जैसे घट भरियो नीरा ।।
परापरै पद लीन था, भिन दृष्टि रूप आकार ।
अठारै सै षट् वर्ष मैं सन्त भये निरकार ।।

उपर्युक्त उद्धरण मे जिन अतीत महात्माओ की ब्रह्मलीनता निरूपित की है, उन्हीमे महात्मा हरिदासजी का उल्लेख है ।

सिंहस्थल (सींथल) रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक महाराज श्रीहरिरामदासजी (काल १७४० से १८३५)

हरिरामदासजी महाराज का पद—मुद्रित रामस्नेही धर्मप्रकाश (पृ० १४५ पद १० वाँ)

रे नर राम नाम सुमरी जै ।
या सूँ आगे संत उधरिया, वेदाँ साख भरी जै ।।टेर।।
या सूँ ध्रू प्रहलाद उधरिया, करणी साच करी जै ।।
या सूँ दत्त मछंदर उधरे, गोरख ग्यान गही जै ।।
या सूँ गोपीचन्द भरथरी, पैले पार लँघी जै ।।
या सूँ रंका बंका उधरे, आपा अजर जरी जै ।।

ज्ञा । मंजरी-प्रारंभ

दोहा—

आतम के अज्ञांन तें, संशय उपजै जांन ॥
ज्ञान भये तें लीन सब, नमस्कार तिहिं मांन ॥१॥

मनहर—

प्रमथ मुक्त कहिये दूसरे मुमुक्षु सोऊ
तीसरो विषयी चौथौ पामर विचारो है ।
चारों पुरुष संसार मांझ कहे निरधार,
वन्धन मुक्त डारि मुक्ततो नियारो है ॥
वन्धनतै छूट्यो चाहे मुक्ति हित जो ऊमाहै,
सोई तो मुमुक्षु आहे मोक्ष निरधारो है ।
भोग विषै सुष चाहै सो तो विषयी कहावे,
पांमर सो पेट भरि मेढरा पियारो है ॥२॥

प्रश्न-दोहा—

वेद आमना कौन पारे, हमसौं कही सो भाष ॥
यथा अर्थ है वेद को, गोपि कछू जन राष ॥३॥

उत्तर—

वेद सबै त्रैकांड है, कर्म उपासना ज्ञांन ॥
मुक्त पर कोई कांड नहिं, सोहे ब्रह्म समान ॥४॥
विषई परि नहिं आमना, भोग को साधन नांहि ॥
नासवंत सब भोग है, झूठे सुष ता मांहि ॥५॥
तात्पर्य सब वेद को, एक मोक्ष पर जांनि ॥
भोग लोक परलोक के, तापरि नांहि वषानि ॥६॥
साचो ईश्वर जानिये, साची वांणी वेद ॥
साचो चाहे मोक्ष सुष, लह्यौ वेद को भेद ॥७॥

अथ लक्षणा–दोहा—

अजहत लचणा जांन यह, वाचि त्याग नहिं कोइ ॥
परोच्च प्रत्यच्च यह वाचि है, ताकौ त्यागन होइ ॥८॥
ब्रह्मंड पिंड अपरोच्च करि, ब्रह्मंड पिंड नहि दोइ ॥
पंचीकृत सब देषिये, ता मैं भेद न होइ ॥९॥
चेतन जाति अभेद है, ब्रह्मंड पिंड मैं सोइ ॥
जाग्रत में सब देषिये, ता में भेद न होइ ॥१०॥
चेतन भेद तैं रहित है, ब्रह्मंड पिंड में सोइ ॥
जाग्रत में सो देषिये, समष्टि विष्टि सम लोइ ॥११॥
पुनि स्वप्नै मैं जानिये, सूच्म भूत कृत येह ॥
समष्टि विष्टि तहाँ परमपर, सूच्म लिंग तहाँ देह ॥१२॥
चेतन तहां सजाति है, जीवेश्वर तहाँ देष ।।
उपाधि उपाधि समतहाँ, तामैं नही विशेष ॥१३॥
पुनि सुषुप्ति में पाइये, प्रलय को व्यवहार ॥
प्रलय सुषुप्ति सम तहाँ, द्वै समसर इकसार ॥१४॥
कारण कारज परसपर, समष्टि व्यष्टि तहाँ नाम ॥
चेतन चेतन समतहाँ, सम सम तहाँ धांम ॥१५॥
बिंब तहाँ प्रतिबिंब है, प्रतिबिंब है तहाँ बिंब ॥
बिंब तहाँ सत जानिये, सत सोई प्रतिबिंब ॥१६॥
अजहत है तहाँ लचणा, वाच भेद सम सोइ ॥
अलप तहाँ जहाँ महत है, महत अल्प तहाँ होइ ॥१७॥

अन्त मे—

निरंजन अजन रहित है, अंजन सो प्रकाश ॥
मनोहरदास निरंजनी, वैस निरंजन पास ॥१८॥
सम्वत् सतरैसौ मंही, वरम सोरहै मांहि ॥
वैशाष मास है शुक्ल पच्च, तिथि पुन्यौं है ताहि ॥१९॥

सोरठा—

भाषा ग्रन्थ कहयै येह, सवै वैषरी वाक है ॥
प्रायसंतो जेह, मध्यमा पीछे पाइये ॥२०॥

दोहा—

मनोहरदास निरंजनी, सो स्वामी सो दास ॥
स्वामीदास भयो एक सौ, महाकाश घटाकाश ॥२१॥

॥ इति ॥

॥ अमरपुरुषजी महाराज की संक्षिप्त जीवनी ॥

अमरपुरुपजी सेवादासजी महाराज के प्रमुख शिष्य थे। उनका जन्म सारस्वत ब्राह्मण कुल मे १७५५ मे हुआ था। कुल परम्परानुसार उनने व्याकरणादि संस्कृत विषयो का अध्ययन किया था। वे वाल्यावस्था मे ही चितनशील व उपरति प्रधान थे। निरंजनी सम्प्रदाय मे उस समय परमयोगी तथा परमत्याग वैरागमय महात्मा सेवादासजी प्रसिद्ध थे। अमरपुरुषजी ने सम्वत् १७७५ मे इन्ही से दीक्षा ग्रहण करली।

और उन द्वारा निर्दिष्ट साधनामे तत्परता से लग गये। दीक्षा ग्रहण किस स्थान मे किया इसका निश्चयात्मक प्रमाण नही है। जन्म स्थान आपका थावरिया ग्राम बताया जाता है जो नागोर के पास है। काल पाकर अमरपुरुषजी महाराज भी साधना की सिद्धि से सिद्ध कोटी मे आ गये। सेवादासजी महाराज की तरह ही इनका भी नाम डीडवाणे के चारो ओर प्रसिद्ध हो गया। इन के सानिध्य मे रहे इनके प्रभाव से बहुत अधिक व्यक्तियो ने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। ज्ञानराय चारण ने इनके छिनमे शिष्यो के नाम कवितावद्ध किये है जो कि भूमिका विवेचन षंड मे उद्धृत है।

इनके छिनमे शिष्यों के कितने शिष्य हुये इनकी कोई संख्या नही है। इनसे पहिले हरिदासजी, तुरसीदासजी, ध्यानदासजी, कल्याणदासजी, सेबादासजी आदि की वांणियो की प्रतिये बहुत ही न्यून सख्या मे थी। इनने अपने सभी शिष्यो को वाणी की पुस्कक लिखने का निर्देश दिया तथा पर्याप्त सख्या मे वाणी की पुस्तकें अपने शिष्यों से लिखाई। इन्ही के प्रयास का परिणाम है कि निरंजनी सम्प्रदाय की रचनाओ की अब तक कुछ रक्षा रही।

ये प्रमुखतया साधक पुरुष थे अतः इनकी रचना की ओर कोई प्रवृत्ति नही थी। परम्परानुसार तथा ग्रन्थ गत उल्लेख के अनुसार इनके मात्र सात आठ पद्य रचे हुये है जिनमे रचियता के स्थान मे इनने अपना नाम न देकर अपने गुरु सेवादासजी के नाम का प्रयोग किया है इनकी यही रचना है। निरंजनी सम्प्रदाय की संख्या वृद्धि तथा क्षेत्र विस्तार मे आपका अद्वितीय सहयोग मिला।

आप प्रमुखतया कोलियाग्राम मे विराजते थे जो कापडोद, डूंगरी तथा डीडवाणे के समीप पडता है। आपकी समाधि कोलिये मे ही बनी हुई है। स्मारक रूप मे आपकी समाधि विरक्त वाडे डीडवाणे मे भी बनी हुई है। आपकी परम्परा मे आपके पश्चात् भी त्यागी वैरागी साधक महात्मा होते आये है। वह परम्परा अब तक प्रचलित है महात्मा रामाकिसनजी आपही की परम्परा मे थे। उनके उत्तराधिकारी सन्त भोलादासजी है। वाडे के महन्तजी भी अमरपुरुषजी महाराज की शिष्य परम्परा मे है। आज भी आपके शिष्यो की परम्परा के राजस्थान के विभिन्न भागों मे बहुत अधिक स्थान है।

॥ अमरपुरुषजी महाराज के पद ॥

(राग सोरठि)

साधो सतगुरु की वलिहारि हो १

भोजल मांहि जात जीव देष्या, करंगहि कीया पारा हो ॥टेक॥

जन्म मरण का रोग सबल था, तब गुरु वोपद दीया हो ॥

रांमनाम निज भेद बताया, तातें रोगी जीया हो ॥१॥

सतगुरु साहिब पर उपगारी, रंका हीरा दीया हो ॥

आदू पंथ बताइ जुगति सूँ, आप सरीषा कीया हो ॥२॥

करम भरम सब दूर निवारे, मेटी मन की आसा हो ॥

रोम रोम आनन्द उपजाया, सुष में सहज निवासा हो ॥३॥

अगमवस्त अन्तर दिषलाई, देष्या अगम तमासा हो ॥

जन सेवादास सतगुरु के सरणै, पूरी मन की आसा हो ॥४॥

समरथ साँइया समरथ साँइया, मेरे राम पकडो बांहिया ॥टेक॥

औगुण बहु कीया, नाँव न में लीया ॥

नांव न में लिया मेरे राम, विष में रुच रुच पीया ॥१॥

श्री अमर पुरुष जी महाराज जी

यो औसर फिर आवै नांही, दरसौ उर मांही ॥
दरसौ उरमांही मेरे राम, यो छक लाभै नांही ॥२॥
साहिब मेरडा, मैं हूं तेरडा ॥
मैं हूं तेरडा मेरे रांम, राषो मोहे नेरडा ॥३॥
अन्तर आइये हो, प्रेम चषाइये ॥
प्रेम चषाइये मेरे रांम, ज्यूं जग तिरजाइये ॥४॥
जन सेवा कूँ सुष दीजिए, अपना कीजिए ॥
अपना कीजिए मेरे रांम, सरनि दत्त दीजिए ॥५॥

अवला हों अपणी जानि कै, दरसन दीजै आइ ॥टेक॥
तुम अलष निरंजन होय रह्या, अकल अयोनी देव ॥
सकल मांडमें मिल रह्या, किस विधि कीजै सेव ॥१॥
तुम रोम रोम में रम रह्या, नैनाँ दीखो नांहि ॥
विरहनि जिवडै जक नहीं, तो कहा रह्या व्है मांहि ॥२॥
जग जल तो भावे नहीं, गुनिहो दीनदयाल ॥
औगण वगसो रांमजी, काढौ जीव जंजाल ॥३॥
करुणा हो सुन करता घणी, हरि परम सनेही पीव ॥
जन सेवादास कूं दरसयो, ज्यूं सुष पावे जीव ॥४॥

आवो हो रामैया मेरे आंगणे, हरि अकल भवन के राइ ॥
तुम विन षडी न आलगै, हरि महल विराजो आइ ॥टेक॥
अबला के वल को नहीं, तुम सकल वियापी राइ ॥
दरस दिषावो आपनो, दिन दिन घटती जाइ ॥१॥
औगण सबही मेटिए, मेरा कछून पांन ॥
दरदन भाजै तुम विना, साहिब कत सुजान ॥२॥
मेरे तुम विन को नहीं, वोड निवाहन हार ॥
दाद सुनो हो मेरडा, मिलिए सिरजन हार ॥३॥

जन सेवादास यूं वीनवै, सुनिए देव मुरार ॥
आरतवंती जानिकै, हिल मिल द्यौ दीदार ॥४॥

निरंजन आइये ?
ए ? मेरे आदि अन्त के पीव, सहज सुष लाइये ॥टेक॥
वाल्हा तुम विन व्याकुल जीव, धीरन धरत हैं ॥
क्या ! जानू क्या ! होइ, अब मन डरत हैं ॥१॥
अवधि वदीती जाइ, साहिब कहाँ अटे ॥
वाल्हा तुम दरसन की चाह, नैंन प्रभु यूं फटे ॥२॥
जो दिन है प्रभु आज, सो लाभै नही ॥
बाल्हा सब औगण कर माफ, दरसो उर मंही ॥३॥
अन्तरजांमी आव, दरसन दीजिए ॥
जन सेवा तन सुष होइ, अपणां कीजिए ॥४॥

राग काफी—

एसै प्रगट पीव संगि षेलिये हो, हां हो होइ मगन मन मांहि ॥टेक॥
होइ निसंक पीव संगि षेलूं, संकन आंणै कोइ ॥
निर्भय हो कै षेलिये हो, षेलिर मांहि समोइ ॥१॥
सषी सहेली साथ ले हो, निसदिन रहूँ हजूर ॥
सेझ सनेही आइ बिराजे, निरखूं में निसदिन नूर ॥२॥
को गति लोग नगर को आयो, षेल वण्यों अति झींण ॥
अनहद बाजा बाजै है हो, मधुरी बाजै हो वींण ॥३॥
इसो फाग हम कबहुन देष्यो, आनन्द बढ्यो अपार ॥
जन सेवादास अब सुष भया हो, सहजि लंघै भवपार ॥४॥

(राग गौड)—

साधु आया मेरे द्वार, में तन मन वारि करो मनवारि ॥टेक॥
वाँ साधां की बलिहारि रे ?, वाँ केती आतम तारी रे ॥
वे साधु मेरा भाई रे, वाँ तन की तपत बुझाइ रे ॥१॥

वे साध सुषां की रासी रे, काटै जन्म जन्म की पासी रे ॥
जन सेवादास सुष पायारे, जव साधां दरस दिषायारे ॥२॥

(रागमारु)—

आवो हो रांम सनेहिडा, दरसण दीजै मोहि ॥
तुम विन जिवडे जक नहीं, निसदिन निरषूं तोहि ॥टेक॥
विरह विथा सव मेट सनेही, पकडो साहिब वांही ॥
यो औसर फिरि तांहि गुसांई, दरसन दीजै मांही ॥१॥
तुम रोम रोम में व्यापक स्वामी, हमकूं नैनन दीसै ॥
अवला तो दरसन नहिं पावे, कहा रह्या कर रीसै ॥२॥
तुम अन्तर जामी मनकी जांणो, वेगि विलंवन कीजै ॥
यो सांसो हरि दूर निवारो, अपणी कर हरिलीजै ॥३॥
अवकै औगण दूर निवारो, समरथ साहिब मेरा ॥
सरण गह्यां की लाज दयानिधि, सेवा जन है तेरा ॥४॥

॥ इति ॥

॥ कवि विज्ञ साधक महात्मा हरिरामदासजी ॥

हरीदासजी महाराज के परवर्त्ति रचनाकारो मे हरिरामदासजी का उल्लेखनीय स्थान है। ये हरिदासजी महाराज के वावन शिष्यो मे प्रमुख स्थानीय एकादश निरंजनी महन्तो मे नाथजी की परम्परा मे हुये ऐसा प्रतीत होता है। इनका स्थान डीडवाणा प्रमुखतया माना जा सकता है। काल इनका अठारहवी सदी है। इनकी रचना साहित्यक गुणो से अन्वित है। जैसे दादूजी महाराज के शिष्य सुन्दरदासजी की रचना से विद्वत्ता व्यक्त होती है इसी तरह इनकी रचना से भी इनकी बहुविज्ञता प्रतीत होती है। भाषा, भाव, छन्द, अभिव्यक्ति अलंकारादि सव रचना मे स्पष्ट सामने आते है। सुन्दरदासजी महाराज ने प्रमुखतया सवैयो की रचना की तदवत् इनने प्रमुखतया कुंडलिये लिखे है। वैसे इनने अपनी परमार्थ सतसई मे अनेको छन्दो का प्रयोग किया है।

इनकी प्राप्त रचना मे छन्द रत्नावलि, परमार्थ शतसई, तथा महाराज हरिदासजी की परची तथा पर्याप्त फुटकर रचनाये है। मेरे कुचामन के स्थान से

प्राप्त गुटके मे परमार्थ शतसई के ५३७ छन्द है। स्वामी श्री नरोत्तमदासजी एम ए के गुटके मै जो कि उनने अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर को दे दिया है उसमे परमार्थ शतसई की छन्द सख्या साढे आठसौ के करीब है। उनके उस गुटके मे और भी उनकी रचना है। मेरे गुटके मै भी कुशलाष्टक, विरह के कुंडलिये, तथा व्यापक विषय पर भी नये कु डलिये और मिलते है।

हरिदासजी की परची कोलिये ग्राम के सग्रह मे तथा छन्द रत्नावलि की प्रति लक्ष्मणगढ मे है। छन्द रत्नावलि प्रकाशित हो चुकी है। उक्त पुस्तक मे इन का छन्द शास्त्र का उत्कृष्ट ज्ञानव्यक्त होता है। छन्दरत्नावलि कि समाप्ति पर इनने डीडवाणे स्थान का तथा सम्वत् १७९५ का उल्लेख किया है।

इनकी परमार्थ शतसई की रचना इससे पहिले की होगी चाहिये एसी मेरी मान्यता है। उपरोक्त काल निर्देश के अनुसार ही इनका समय अठारहवी शती सिद्ध है परमार्थ शतसई का स्वतंत्र प्रकाशन हो तभी इनकी रचना की सम्यक् जानकारी पाठक को प्राप्त हो सकती है। आगे तो तदुल न्याय के अनुसार ही इनकी कुछ रचना का दिक्मात्र दिया जा रहा है पर उसी स इनकी रचना वैशिष्ट्य का अनुमान किया जा सकेगा।

॥ महात्मा हरिरामदासजी की रचना ॥

गुरूदेव की स्तुति

छन्द निसानी—

किमा अन्ध अज्ञान ने, मुझ रूप भुनाया ॥
ग्यांन कज्जल द्रग अंजि, जिनां अप्पा दिखलाया ॥
तिसां गुरु हन्दे पायनूं, कीज्जै परणांमा ।
दुर मेंडी ज्यंद वारिया, अष्षै हरिरांम ॥१॥
गुरु दाता महामोच्छदा, गुरु दीनदयाला ।
वहु जन्मोंदा संचिया, गुरु हरै मयल्ला ॥
गुरु से होरन जगत में, सुन सिप धपल्ला ।
गुरुदा मरम न जांनही, सो द्वय पद चपल्ला ॥२॥

छन्द त्रिभंगी—

सिष कमल दिनेशं घृत शुभवेशं विगत कलेशं दुपहारं ।
गुन निकरस्थानं दयानिधानं हृत अज्ञानं सुपकारं ॥

भंजित भवजालं जित कलिकालं वचन रसालं सतसारं ।
भवसागर पोतं ज्ञान उद्योतं हरिजनगोतं गतपारं ॥३॥
अद्भुत आकारं रुचिराचारं करनउधारं जगसारा ।
मतधर्म ही लीनं लोप अधीनं जिन धरलीनं अवतारा ॥
एसे गुरुदेवं अलिपितभेवं जित अहमेवं परणामा ।
शरणे अवरष्पय ममतम धष्पय गूं सिष अष्षय हरिरांमा ॥४॥

इन्दव छन्द—

आगम अर्थ सुनावत वे नित और अज्ञांन हरे दिलकेरा ।
उत्तम नीच बतावै उभै मग पापरु पुण्य का देत निवेरा ॥
कृत अकृत को भेद बतावत आतमरांम जनावत नेरा ।
भवजल षेवट श्री गुरुदेव के पाद पद्म्म गहो मन मेरा ॥५॥

छन्द दुर्मिला—

रस रीति लेए जेई छन्द रचे तजिमंद मनो अनुप्रास धरे ।
तिनकोजु सदगुरु तुझ गह्यौ कर मुज्ज हिये यह गुंज्जभरे ॥
गुरुदेव अथाह कथा चहुँ गुंथन थाह लहूकिन हिये डरे ।
शरणागति जांणि गहो ममपांणि प्रणाम तुम्है हरिरांम करे ॥६॥

दोहा—

तव आज्ञा जिनकिन लई, सरे सकल तिन कांम ।
या तैं सतगुरु करि दया, नमैं दास हरिरांम ॥७॥

(सन्त स्तुति)

इन्दव छन्द

ज्ञान कला अटला दिल मांहि जगी जिनकै विमला सुषदानी ।
सुख स्वरुप अनूप जग्यो जिनकी दुषदा भव त्रास विलांनी ॥
भोग लगे विष से जिनकूं निकसे गृह त्याग चले हरिकांनी ।
संतदासा तिनकी अवलोक करै हरिरांम प्रणाम वषानी ॥१॥

या सूँ रामानन्द उधरिये , पींपा जुग जुग जी जै ॥
या सूँ दास कबीर नामदे , जम की जाल करी जै ॥
या सूँ जन रविदास उधरिये , मीराँ बात बनी जै ॥
या सूँ कालू कीता उधरे , वास अमरपुर कीजै ॥
या सूँ जन हरिदास उधरिये , दादू दीन भनी जै ॥
जन हरिराम कहै सबही कूँ , जपताँ ढील न कीजै ॥

शाहपुरा—रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक आचार्य श्रीरामचरणजी महाराज
(काल १७७६ से १८५५—रचना-काल १८१० से १८५५)

उद्धरण—रामचरणजी महाराज की प्रकाशित वाणी, पृष्ठ ९९९ (धमाल)

भैया ऐसो नगर मैं छाड़ूँ नाहिं, जाके अनंत कोटि जन बसे हैं माहिं ॥टेर॥
जहाँ शिव सनकादिक शेष साध , मुनि नारद शारद ध्रुव प्रहलाद ।
कमला ऊमा हनूमान , जहाँ नेति नेति कहै निगम ग्यान ॥
जहाँ ऋषभदेव जड़भरत भाय , तहाँ नव जोगेश्वर जनक राय ।
कपिलदेव अरु वालमीक , जहाँ ध्यान धरें शुक अम्बरीष ॥
जहाँ रामानन्द नीमानन्द नाम , तहाँ मध्वाचार्ज विष्णु श्याम ।
और सिखां लियां संग साथ , इन चारन पकर्यो सब को हाथ ॥
जहाँ गोरष भरथरी गोपीचन्द , तहाँ नानक फरीदा अरु वाजिंद ।
महमूद दादू करि निवास , जहाँ सहित एकादश हरीदास ॥
अल्प अकल गिणती न आय , या पद की महिमा कही न जाय ।
अगम पुरी भरपूर वास , जहाँ घर घर आनंद सुख विलास ॥
जहाँ सब सन्तन कों पाय सीत , चरणाँ जल रज सूँ गयो है भीत ।
मैं सन्तदास को पनईदास , राखो रामचरण कूँ चरणाँ पास ॥

महाराज रामदासजी, सिंहस्थल (सींथल) रामस्नेही-सम्प्रदाय की खेडापा शाखा के प्रवर्त्तक—आप महाराज हरिरामदासजी के शिष्य थे ।

आपका काल—सं० १७८३ से १८५५ रचना-काल १८३५—५५

(ब्रह्म स्तुति)

मनहर छन्द—

गावत तुमारे गुन शेषजु सहस मुख
मुष अरु जीभ द्वै यै पार नहिं पायो है ॥
शारद महेश अज नारद दिनेश शशि
ऋपि सनकादिने भी अगम बतायो है ॥
सदा ही अभेद भेद भांति भांति वेद कहै
वांणी मनगोचर न एसो कहि गायो है ॥
कहै हरिरांम देव भेव तिन जान मकूँ
मैं तो मति मेरि सम तोसू मन लायो है ॥१॥

ग्रन्थ परमार्थ सतसइ से उद्धरण—

दोहा—

यह परमारथ सतसई, भाषा ग्रन्थ भुजंग ॥
जाकी जिह्वा को लगै, सो न धरे फिर अंग ॥१॥
यह परमारथ सतसई, औपध अजब अमोघ ॥
जो पीवै जीवै सदा, मिटै तास भवरोग ॥२॥
यह परमारथ सतसई, कल्पवृक्ष उपमांन ॥
मोक्ष पदार्थ देत है, कहा पदारथ आंन ॥३॥

मनहर छन्द—

मंगल सुग्यांन सर फूल्यो है सघन वर
छंदते अमंद कंज मंजुलर कीनी है ।
अर्थ गुन मांनरु विचित्र व्यंग रंगबहु
श्रेष्ट भक्ति मधु गंध अतिरस भीनी है ॥
माली हरिरांम माला गूंथकै बनाई यह
नेक न मलीन होत नितही नवीनी है ।
चढी हरिगुरु संत चतुर सुविज्ञ कवि ।
हित करि कंठ धरो संतन को दीनी है ॥४॥

गीतिका छन्द—

कलिकाल व्याल विहाल जिनकै जानि मन दुष गंजनी ।
भवभीत इन्द्रियजित जुजाकै है क्रिया भव भंजनी ।।
यूं भनत हरि के जनन सूं हरिरांमदास निरंजनी ।
सुष पाइ सारे सुनहु प्यारे गाथ यह मनमंजनी ।।५।।

कुंडलिया—

कानन सुन सब सन्तजन इस अधिकारी जांनि ।
कहियो शुचि श्रोतान प्रति ज्यूं व्है ग्रन्थ सुमांनि ।।
ज्यूं व्है ग्रन्थ सुमांनि यहै तुमही तें होई ।
मों तें होतन भूरि सुनुं द्रष्टान्तस कोइ ।।
जल में उपजत कमल तदपि व्है गन्ध वितानन ।
पवन ही प्रेरित ताहि सकल पुर कानन कानन ।।६।।

छन्द मनहर—

सुनियो प्रवीण संत वीनती विनीत करूँ
गिनती न कोऊ मेरी चमा सब कीजियो ।
ब्रह्म को विलास जांन तिहारो प्रताप मांन
चूक माफ करिकै चरित्र चित दीजियो ।।
रंक हाथ रतन जतन बिन लगै रज
अपनो सुधार लेहु अधिक न पीजियो ।।
वचन सदोष कोई तीरथ समान तुम
कृपा करि बुध सब सुध कर लीजियो ।।७।।

दोहा—

दूहा कुंडल्या छन्द चौपई, पदरु रेषता नांम ।।
सब ही सन्त सुधार ज्यो, कहै दास हरिरांम ।।८।।

छन्द कुंडलिया—

डरिये रे मन कुबुद्धि तैं, सुबुधि राह पग धारि ।
कुबुधि काल की पासि है, सुबुधि सुधा निरधारि ।।

सुबुधि सुधा निरधारि, पार पहूंचो किन भाई।
भवसागर अति कठिन, नांव बिन पार न जाई॥
कहै दास हरिरांम सीप यह, उरमें धरिये।
निसदिन जप हरिनांम, कांम तैं निसदिन डरिये॥९॥
काहू को मृत याच मन, कमी नांहि जग मांहि।
नदी ताल जल संचरे, वन फल बन बहु आहि॥
वन फल बन बहु आहि, चीर वलकल बहुभारे।
सैया भूमि निवास, बाहु गैंदुक उनहारे॥
मंदिर दरियन मांहि, राम भज लीजै लाहू।
निश्चय उर हरिरांम, राम भूलै नहिं काहू॥१०॥
मेरा तेरा पारका, जाके कोऊ नांहि।
जोई षालिक षलक में, व्याप रह्या सब मांहि॥
व्याप रह्या सब मांहि, नहीं किसही का जाया।
किया न किसका होइ, छिपै नहि कहूँ छिपाया॥
चंद इंद रवि मंद, इसा जाकैं बहुतेरा।
कहै दास हरिरांम, सोई साहब है मेरा॥११॥
मेरे करणी को नहीं, नहिं रहणी का लेस।
देषादेषी भेष की, में भी धारया भेष॥
मैं भी धारया भेष, भेष का लेस न पाया।
उक्ति युक्ति उपजाइ, जगत कूँ बहु भरमाया॥
पतित उधारण विरद, तौर जग बेदहु टेरे।
कहै दास हरिरांम, आस इक यह उर मेरे॥१२॥
आया जे हरि आसरे, पाया तिन दीदार।
मन चाहा कारज भया, गया मोह अंधियार॥
गया मोह अंधियार, पार भवसागर पाया।
पींपा नांम कबीर, धना बहु संतनि गाया॥

अवर रीझ कहा देत, देत हरि अपनी काया।
मैं परिया हरि रांम, रीझ सुनि शरणै आया ॥१३॥

रेषता—

नाम परताप त्रय ताप प्रहलाद की मिट गई झटक दे चटक मांही।
नाम परताप ध्रू पाप सब कांपि करि छाप सब ऊपरै अटल पांही॥
नाम परताप जन नाम कबीर से राम ही व्है गये न गये कांही।
कहत हरिरांम हरिरांम भज बावरे नाम बिन आसरा तिहुँ लोक नांही।१४

छन्द वेताल—

निरद्वन्द व्है सुषदुष मन्न अरु अचल धैर्य धारि।
बिन मिली सबही वस्तु की चाह देहु निवारि॥
त्याग कर चांचल्य सब राषि मन इक ठांम।
यह धारि लै परमातमा मम पूरि है सब कांम ॥१५॥

छन्द पद्धरी—

लषि विषय दोष वैराग्य धारि तिन सबहिन तहाँ तै वहि निकार।
करि भ्रू मधि चक्षु धरि सुबोध जिमि लय विषय वृत्ति व्है निरोध ॥१६॥

पद राग सोरठी—

मन रे देवल अजब बताऊँ!
या देवल को देवा धोकै, तो निज पद को पाऊँ ॥टेर॥
देवल एक षंभ द्वै जाके, द्वै दरवाजा भारी।
गोषे द्वै द्वै वाके झांकी, द्वै बारी इक नारी॥
ना कछु लांबा ना कछु चौड़ा, ऊँचा भी कुछ नांहि।
जो रचना ब्रह्मांड विषै है, सो सब या कै मांहि॥
आपही देव चुणया चूने बिन, टांची नांहि लगाई।
फिरता फिरै फिरंग पुतरी सूँ, ऐसी कला बनाई॥
देव निरंजन ता मैं देवा, बैठा बिन पधरायां।
आपही सेवक व्है करि सेवै, जीव नाम जब पाया॥

अजपा जाप जपै निसवासर, नीर निरासा न्हावै ।
ग्यांन गंग जल बुधि अर्घा भर, देवाकूँ सपडावै ।।
कपड़ा गहना करम धरम सब, चित चंदन चरचावे ।
अहंकार मनसा मन व्यंजन, भोजन भोग लगावे ।।
ऐसे अद्भुत देवल देवा, सुर नर कृत को नांही ।
कर हरिरांम सेव याही की, मत भटकै जग मांही ।।१७।।

छंद वेताल—

यह लगै साचो जगत जौ लौं, ग्यांन उपजै नांहि ।
ब्रह्म ग्यांन को जब भानु प्रगटे, लीन व्है छिन मांहि ।।
सब वर्ण आश्रम धर्म तारे, लसै निसहि मांहि ।
जब ज्ञान भानु प्रकाश व्है, तब भास सब मिट जांहि ।।

छंद चौपई—

परमातम को ध्यान जू धरै, तन मन इन्द्री निश्चल करै ।
परमातम दशहू दिस ध्यावै, तब समाधि सुपको जनपावै ।।
सो समाधि सायुज्य कहावे, भेद भाव तहं सर्व नसावै ।
स्वामी सेवक मिले स्वभावा, बूंद मिली जल जल ही समावा ।।१६।।

छंद अरिल—

वेरी कंचन लोह, एक कर जांनिये ।
कहै वेद गुरु संत, सोई सत मांनिये ।।
स्वर्ग नर्क दोऊं त्यागि, कांमना परिहरो ।
हरिहाँ ! कहै दास हरिराम, यहै निश्चय धरो ।।२०।।

छंद रेषता—

रंग कै महल मैं गंग उलटी बहै संग सरवंग को तहां पावै ।
सुन्दरि सुरति पति पाइ उर लाइ इक भाइकूँ युक्ति ऐसी उपावै ।।
साधि समाधि आराधि आनंदवन आधिरु व्याधि को पद गमावै ।
झिलमिले नूर भरपूर बहु सूरज्यूं सूर हरिरांम कोऊ तंह समावै ।।२१।।

प्रकीर्ण रचना

छद मनहर—

जन हरिदास हरि सुमरिदास तुरसी तत पाया।
श्याम लही सब स्यामता पद पूरण ध्याया॥
ध्यान धरत हरि मिले नाथ मिल नाथ ही गाया।
कान्हड़दास कृपालु षेम पुनि षेम समाया॥
मोहन भजि मुरार दास जगजीवन सिद्धवर।
आनदास जगन्नाथ भये ये प्रभु के अनुचर॥
घाट बाध इनमें नहीं अधिकारी निजधाम के।
द्वादश महन्त निरंजनी उर बसहु सदा हरिराम के॥२२॥
हरिपुरुष दयाल जीवन को किये निहाल।
गुरु गोरप प्रताप तैं गिरा यह उचारी है॥
वेद रु पुराण सब कतेब कुरांण काव्य।
सोधि सोधि जंत्र मंत्र वान्ध्यो भ्रम भारी है॥
ऋषीश्वर तपेश्वर मुनीश्वर जोगेश्वर।
ठाढेश्वर ऊर्ध्ववाहु भ्रमवश ख्वारी है॥
गोरप सिष दयाल प्रगटै हरि पुरुष।
बावन सिष्य सहित हरि प्रीति धारी है॥२३॥
मीठे मीठे बैन ऐसे सूक्ष्म को मिठास तैसे।
सारा सार सोधिके कुंडलिये बनाये हैं॥
दूहा पद छंद बड़ो ग्यान को प्रबंध सो तो।
जीवन की दया देषि आप मुष गाये हैं॥
चौपई रु रेषता हू कहे हैं विशेष अति।
संत जन तत्वशोध हृदै हू धराये हैं॥
जन हरिरांम निज ब्रह्म मांहि कियो धाम।
एसो जु प्रभाव सुनि मेरे मन भाये हैं॥२४॥

छन्द रत्नावलि

दोहा—

गुरु गनपति गोविन्द को , नाय शीश हरिरांम ॥
पिंगल मत भाषा विषै , रच तरु चिर परकांम ॥१॥
मत्ता वर्ण विभेद करि , द्वै विधि लौकिक छन्द ॥
पिंगल आदि अचारि जनि , कहैं वान्ध परवन्द ॥२॥
तिनके लच्य लच्छन सहित , सुने जिसे है नांम ॥

मात्रिक छन्द—

प्रगट करत इस ग्रन्थ में , भाषा करि हरिराम ॥३॥

गीति छन्द लक्षण—

प्रथम आर्या दल जिसे , दल दोनों जो होय ॥
"गीति" नाम ता को कहै , कवि पंडित सब कोय ॥४॥

उदाहरण—

अपने मन ही विचारो , हित अनहित जुत सपि वचन हमारो ॥
फिर पीछे पछितै हो , अलि अवसर यो सु फेरि नहिं पै हो ॥५॥

पद्धरि लक्षण—

सवकला चरनि षोडश प्रमानि , नितिपरत जगन अवसानि आनि ॥
हरिरांम सवै कवि विदुष वृन्द , तिहिं कहत पद्धरि नाम छन्द ॥६॥
सुनि दूती अति स्यावास तोहि , अति सुखी करी अलि आज मोहि ॥
तैं सहे दन्त नख मोर कज्जि , इमि स्तुति व्याज निंदा प्रसज्जि ॥७॥

चौवोला लक्षण—

तीस कला सव व्है यक दल की , दल दल में यति वेद गना ॥
गुरु अच्छर अवसान निरन्तर , वह चौवोला समझ मना ॥८॥

उदाहरण—

जित वरणत उपमान सुकवि वहि , रूपकातिशय उक्ति कहै ॥
नील कमल तैं निरष अली री , वहु विधि तीच्छण वांण वहै ॥९॥

छन्द ललित लक्षण—

प्रथम चरण में है षोडश कल, दूजे रवि कल जानों ॥
उत्तर दल की कल याहि विधि, ताहि ललित पद मानों ॥१०॥

उदाहरण—

मधु तैं सुधा सुधातैं कवि के, वायक मीठे मानों ॥
यों उत्तरोत्तर सार अधिक गहि, ताको सार वषानों ॥११॥

छन्द कडखा लक्षण—

दशदश सचिह कलन पर, होत जहाँ विश्राम ॥
सत्र पद काल सैंतीस लखि, कडखा ताको नाम ॥१२॥

उदाहरण कडखा—

जन्म अरु मरण द्वै थम्भगाढे गडे वासना झींन कडियां अखूलै ।
नारि सुत मात पितु पालना पालना मौलि धन देहजो देषिभूलै ॥
डोलना चित्त को डोलना जानिये ममतामांनि रस चाषि फूलै ।
कहत हरिरांम मन अधिप इत भूलना मोह के झूलना जगत झूलै ।१३।

वर्ण छन्द-तोमर लक्षण—

मुख चन्द जित सगन्न, फिर दोय दोय जगन्न ॥
कवि चित्र चेतन चन्द, हरिरांम तोमर छन्द ॥१४॥

इन्द्रवज्रा लक्षण—

जामें करीद तत आदि आनैं, जो गोग ज्ञाता अवसानि ठानैं ॥
औरन कोई यति भेद जानैं, सो इन्द्रवज्रा वृतज्ञा वषानैं ॥१५॥

दोधक लक्षण—

जासु विषै हरनेत्र भजाना, आत्म उभै गुरु फेरि समांना ॥
सो शुभ दोधक नाम सुछन्दा, भाषत है हरिरांम फनिंदा ॥१६॥

मालनी लक्षण—

आदौ आत्मा मो नदी तीर नोहै, फेरयौ जाकै अन्त में पाद गौहै ॥
यती वर्णत लोक वर्णत लहीजै, छंदा मांहि मालनी सो कहीजै ।१७।

दोहा--

ग्रन्थ छन्दरत्नावालि, सारथ या को नाम ॥
भूषन भरती तैं भयो, कहै दास हरिरांम ॥१८॥
सम्वत् शर नव मुनि शशि, नभ नवमी गुरुमांनि ॥
नगर डीड द्रढ कूपतहिं, ग्रन्थ जन्म थल जांनि ॥१९॥

कुशलास्टक—

मेरें तन हीमें रहे पंच चोर बलवांन।
मेवासी इस मुरि रह्यौ कह्यौ न मांने आंन ॥
कह्यौन माने आन प्रांण यातैं दुप पावैं।
षिन षिनतैं नर आइ जाइ विरथा न रहावै ॥
एते पर कुशलात मित्र पूछै लग केरै।
कहा कुशल हरिरांम दशा ऐसी मैं मेरे ॥२०॥

नीति के कुंडलिये—

रोवो कूटो जग करै निज प्रिय मूँवो जानि।
गयो जीव जांहूँ कवै तुमरे भई पिछांनि ॥
तुमरे भई पिछांनि सुतो तन परियो आगै।
निज हाथनि तजि लगनि अगनि धरमैं तिहिंदागै ॥
जीव अमर हरिरांम देह चरण भंगुर जोवो।
यह अचरज बड़ आहि काहि किस कारण रोवो ॥२१॥
तेरी नर नित परमपद दाता मानुप आव।
चली जात लषिये नहीं ज्यों जल मांही नाव ॥
ज्यों जल मांही नाव चलत जामें जे प्रानी।
चलत लषत गिरि वनी आपनी थिरता मांनी ॥
यों निज थिरता मान तजत नहिं मेरी मेरी।
भजै न हरि हरिरांम कहो जड़ को वहुतेरी ॥२२॥
पढियो कहा विचार विन मढियो माया मोह।
जोलों मिटैन जीव कै दुरति ईरषा दोह ॥

दुरति ईरषा दोह वधै क्यों यह फल पायो ।
ज्यूं मृग सिंघ वधाय पास में जाय वधायो ॥
जो अभिमान पहाड़ सिषर ऊपर नर चढियो ।
लषैन दुरगतिगमन ज्योंहि मूरष त्यों पढियो ॥२३॥
तेरे सिरजनहार की तोपै षवर कछु नांहि ।
सुत वित वनितादिक निरष हरषि रह्यो घरमांहि ॥
हरषि रह्यो घर मांहि जाहि लष सो न रहासी ।
रदन माल विकराल काल चुनचुन सव षासी ॥
जियत स्वारथीं सर्व भूलि तूं भाषत मेरा ।
इक हरिविन हरिरांम सगा कोई नांहि तेरा ॥२४॥
सारा जन स्वारथ सगा दगादार सुत दार ।
माया छाया अभ्रकी विनसत लगै न वार ॥
विनसत लगैनवार देह च्छण भंगुर गावे ।
गज घोडा गढ़ गाँव ठांव के ठांव रहावे ॥
चले अकेलो आप बांध सिर पाप के भारा ।
तातैं भज हरिरांम वृथा सव आस पसारा ॥२५॥
भेरा भव तिरनां घणा मान्या मति उनमान ।
जप तप तीरथ शील व्रत योग यज्ञ पुनिदान ॥
योग यज्ञ पुनिदान इते करि मांन न आंनै ।
पढे वेद अरू भेद लहै कछु षेदन मांनै ॥
उपजत आन अचान विघ्न इन मांहि घनेरा ।
भवतारक हरिरांम नामसा कोउन भेरा ॥२६॥
जाकै तिलकन टोपियां माला मुद्रा नांहि ।
भगवाँ वसनन सीस पर इष्टलिंग नहिं आंहि ॥
इष्टलिंग नहिं आंहि नाहि उर्धातिन पनियाँ ।
गरै जनेऊ नांहि भेष धरि कछू हि न बनियाँ ॥

उद्धरण—रामस्नेही धर्मप्रकाश—रचना भक्तमाल—पृ० २०३—२१२

दास कबीर मगन मतवारा, सहज समाधि वणी इक धारा।
सब सन्तन में चकवै हूवा, ब्रह्मविलास कबहू नहिं जूआ ॥५२॥

× × ×

कमाल-कमाली हरिगुण गाया, सुख सागर में सहज समाया ॥५३॥

× × ×

राम राम रैदास उचरिया, रोम रोम में नीझर झरिया ॥५४॥
काढ़ि जनेऊ विप्र जिमाया, शालग स्वामी मुखाँ बुलाया ॥५७॥

× × ×

दादूदास राम का प्यारा, चार पन्थ ले किया पसारा।
बावन शिष्य हुए उजियागर, अनुभव वांनि मिले सुखसागर ॥८१॥
दास गरीब गुरू घर आया, भेदी भेद ब्रह्म का पाया॥
रज्जब पिया रामरस भारी, सतगुरु सेती प्रीति पियारी ॥८२॥

× × ×

गोरखनाथ मछंदर जोगी, रग रग भेद लिया रस भोगी॥
कोटि निनाणूँ राजा हूवा, गाया राम अगम घर बूआ ॥९३॥
हरीदास पूरा गुरु पाया, नाम निरंजन पंथ कहाया॥
बारह शिष्य मिले सुख माँई, पाडा माता चेली आई ॥९४॥
द्वादश पंथ संत बडभागी, छाप निरंजन माया त्यागी॥
अंजन त्याग निरंजन ध्याये, ता तें निरंजन पंथ कहाये ॥९५॥
जगजीवन तुरसी अरु सेवा, राम रसायन पीया मेवा॥
भुवन भेव भक्ति का पाया, खांडे खेर तणे लोहवाया ॥९६॥

पाय जुगादिक भेस नांहि गिरही को ताकै ।
निरपष सो हरिरांम राम यह उरि धनि जाकै ॥२७॥
काया माया कोथरीं सदा थोथरी आहि ।
पीपर पान समान गति घरिभर थिर न रहांहि ॥
घरि भरथिरन रहाँहि आह ज्यूं वीज उजारी ।
सीत कोट मृगनीर भूत दीपक उन हारी ॥
वास भीतसु रीति अभ्रकी जैसी छाया ।
गरबन कर हरिरांम थिरन यो काची काया ॥२८॥
एकादश गीता पढै पढै वेद अरु भेद ।
चढे न पैडी तनकही गडै मोह मद पेद ॥
गडै मोह मद पेद छेद कस कर्म लहावे ।
छाज बजायाँ ऊंठ बूँट षातो न रहावे ॥
गूढ मंत्र मनमीत सन्त कथ गये अनेका ।
मुक्ति गढन पर चढन नाँव नीसरनी एका ॥२९॥
पापी तेरे पाप में नांहि किसी का सीर ।
सावै में सामिल सबै चेते किन वेपीर ॥
चेते किन वेपीर षेत पर यूं सब षाया ।
कहा शाहको लाह कहेगो मूल गँवाया ॥
भयो सबनतैं चोर ढोर ज्यूं फिरयो सुगपी ।
पापहरन हरिरांम नाम रुचि लियो न पापी ॥३०॥
हारो सबतैं दीनहो उरधारो गुरु ग्यांन ।
सारो कारज आपनों भज प्यारो भगवांन ॥
भज प्यारो भगवांन जुपै तूं चहै भलाई ।
चली जात नर आव नांव जो लष्योन जाई ॥
क्षण भंगुर नर तोर ओर हरिरांम निहारो ।
मूंवा मूंवारे मूढ़ जूवाज्यों जनमज हारो ॥३१॥

परचई दोहा—

वन्दन कर गुरुदेव को, चन्दन चरचत गात ॥
श्री गणपति कै पडत पग, विघन तुरत टर जात ॥१॥
चितवत चित में चातुरी, करण दोहरा छन्द ॥
बुध जन का यह कामं है, मैं हूँ अति मति मंद ॥२॥
डीडपुर विख्यात है, मानों सुरपर धांम ॥
लोक हितारथ रहत है, हरीदास यति नाम ॥३॥
तिनके दरसन करन कूँ, आवत सब ही लोग ॥
दरस करत पातक झरत, अणदारु षत रोग ॥४॥
एक समै नागोर की, श्रुति भई है आय ॥
ज्यों बैठे त्यौं उठि चले, मनवत पहुंचे जाय ॥५॥

सोरठा —

वापी एक अनूप, पूर्व दिसि है नगर सूँ ॥
आस पास हैं कूप, सो साहब सूनो करी ॥६॥
दीर्घ योनि अग्यांन, वित्र जोनि तामें रहे ॥
नर नहि पावे जान, जाइ ताहि प्राणन हरे ॥७॥
बैठे तामें जाइ, गोरष वत धारे धारणा ॥
निश्चल चित लगाइ, हरीपुरुष हरि नाम सों ॥८॥
रजनी गत इक याम, वित्र योनि की वेर भई ॥
कहै दास हरिरांम, कर्म करण अपनो लग्यो ॥९॥

छन्द भुजंगी—

तबै भूत बोल्यो सुनो सिद्ध रामा, कहाँ कू सिधाया कहाँ ते जू आया।
उधारो मुखा कृपा मोहि कीजै, गुनो भेट मेरो अभैदान दीजे ॥१०॥

दोहा—

उदै भाग ताको भयो, छूटणहार अग्यांन ॥
मुख छादन छिटकाय करि, बोले कृपा निधान ॥११॥

भूत जोनि के कर्म तजि, अन्तर जपि हरि नांम ।।
दया दीन की दिल धरो, तव पे हो निज धाम ।।१२।।
दरस करत ही मति फिरी, लइ शिक्षा तिन पास ।।
टहल करन को चित धरयो, भयो जन्म अघ नास ।।१३।।

समाप्ति मे—

इहै श्री दयालजी की, पंच परचई नांम ।।
अनंत और परचा भया, कहै दासहरि रांम ।।१४।।
छन्द अर्थ इनको परषि, शुद्ध होइ जो नाम ।।
सब ही संत सुधार ज्यों, कहै दास हरिरांम ।।१५।।

।। इति ।।

।। महात्मा सिद्ध पुरुष स्वामी आत्मारामजी ।।

महात्मा हरिदासजी महाराज के पश्चात् होने वाले सिद्ध महात्माओ मे स्वामी आत्मारामजी का भी प्रमुख स्थान है। आपके जन्म का काल व आप किस शिष्य परम्परा के थांभे मे हुये तथा आपका आवास स्थान अनिर्णीत है। आपकी कृति जो प्राप्त है वह अपूर्ण है। आपका काल अठारहवी के द्वितीय चरण से उन्नीसवी सदी के प्रथम चरण तक का है। आपका देहावसान सम्वत् १८१६ फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा को जोधपुर के किले में हुआ था। ऐसा उल्लेख जोधपुर राज्य का इतिहास भाग २ के पृ० ७०६ पर उद्धृत है। यह इतिहास पुरातत्व के परम प्रेमी माननीय गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा द्वारा लिखित है।

यह प्रसंग महाराजा विजयसिहजी के राज्य काल की घटनाओं के निरूपण मे आया हैं। महाराज विजयसिहजी का राज्यकाल सम्वत् १८०६ से १८५० तक का है। वे सम्वत् १८०६ मे तेईस वर्ष की अवस्था मे जोधपुर की राज गद्दी पर आसीन हुये थे। महात्मा आत्मारामजी से उनका परिचय उनके पिता वखतसिहजी के साथ आते-जाते रहने से वचपन मे ही हो गया था। और वे महात्मा आत्मारामजी में गुरु भाव रखते थे। उनको जोधपुर का राज्य मिलने का हेतु भी महात्मा आत्मरामजी की कृपा माना गया है। जोधपुर की राज्य गद्दी पर बैठने के पश्चात् विजयसिह जी ने महाराज आत्मारामजी के प्रति अपनी और भी श्रद्धा प्रदर्शित की। उनका जोधपुर किले मे देहावसान तथा वही किले मे उनका दाह संस्कार तथा समाधि

निर्माण ही इसके पुष्ट प्रमाण हैं कि महाराज विजयसिहजी की उनमे परम श्रद्धा थी महाराज विजयसिहजी ने जोधपुर राज्य के उस समय के प्रमुख अन्य किलो मे भी उनकी समाधि स्थापित कराई थी जो आज तक विद्यमान हे। डीडवाणे मे उनका भडारा भी महाराजा ने इस वर्ष के फा. शु. मे कराया जिसका उल्लेख भडारीजी की रसोईयो की बही मे मिलता है। उनके इस निधनकाल से उनका जन्म अठारहवी सदी के प्रथम चरण के अन्त का माना जा सकता है। उनका रचनाकाल अठारहवी का उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवी सदी का प्रथम चरण स्पष्ट है। महात्मा आत्मारामजी की रचना सुसम्बद्ध तथा अनेको व्यावहारिक व पारमार्थिक सिद्धान्तो का निरूपण करती है भाषा परिमार्जित है।

रचना मे विविधता भी है साषी, कुन्डलिये, शब्दो, रेषते, छन्द, मनहर चान्द्रायण, झूलने पद मिलते है। रचना मे कुन्डलियो का आधिक्य है। अपूर्ण व अल्प प्राप्त रचना जो मिली है उसी का अंस आगे दिया गया है। उससे आप जान सकेंगे कि वे केवल सिद्ध महात्मा ही नही. अच्छे रचनाकार भी थे।

॥ आत्मारामजी की कृति ॥

कुण्डलिया :—

आतम के गुरु परमात्म , कीन्हें सारे थोक ॥
सर्वसुखी तुम शरणतें , तें न्हाठे सारे शोक ॥
नाठे सारे शोक प्रभु , तुम कृपा कीन्ही ॥
राम नाम सी चीज , काढि हिरदे तें दीन्ही ॥
आत्म राम नाम को सुमरे , मिटै जन्म के जोग ॥१॥
आत्म के गुरु परमात्मा , कीन्हे सारे थोक ॥

इंदव—

नमो गुरुदेव दयाल दया करि , ज्ञान की चाल बताय कह्यो घर हेरो ॥
काहे को तीर्थ जायर खेद करे तु , काहे को काशी मथुरा वास वसेरो ॥
अडसठ तीर्थ है तन मांहि जू , वाहर भरमें दुःख घनेरो ॥
जन आतम गुरुदेव मिल्या विन , भ्रम न भाजै अधिक अंधेरो ॥

साषी—

आत्मराम सुखी किया , सोरा रहु सारै ॥
अवरूँ सारू कछु नहीं , सतगुरु शिर म्हारै ॥

कुण्डलिया :—

राम हमारे शाह जी, अवर राम के जन ॥
निशदिन हरि सुमिरण करे, करि करि निर्मल मन ॥
करि करि निर्मल मन, ताहि को सुमिरण कीजै ॥
रसना सूँ ल्यो लाइ, शब्द मुष अमृत पीजै ॥
आतम सतगुरु सेव सूँ, फिर नहि धांरु तन ॥
राम हमारे शाह जी, अवर राम के जन ॥२॥
सन्त शब्द न्यारे नहीं, राषो हृदय मांहि ॥
सत्य प्रमाणी भाव सूँ, नांव नांव लग जाहि ॥
नांव नांव लगि जाहि, पाइये मुक्ति बसेरा ॥
निज तत परसै जाय, काल का पड़े न घेरा ॥
आत्म सुमरण सुखलिया, दूजा दो जग जाहि ॥
सन्त शब्द न्यारे नहीं, राषो हृदय मांहि ॥३॥
करसिर धरिये साध के, सेवग चरणों लाय ॥
द्रष्टि देत शीतल भया, दोन्यूं एकही भांय ॥
दोन्यों एकही भांय, पांय सतगुरु के लाया ॥
निशदिन सुमरैं राम, झूठ दरसै सब माया ॥
आतम कान फूंकजे सिष करे, धन ठगने का डाय ॥
कर सिर धरिये साध के, सेवग चरणों लाय ॥४॥
सकल सन्त है राम के, कुछ करनी में भेद ॥
सबही मिल सुमरण करो, करो काल का छेद ॥
करो काल का छेद, वेद इक याही पुकारे ॥
सुमरण निर्मल होय, साष इक रांम सँवारे ॥
आत्म साध तहां निर्वैरता, द्रोह राम विच्छेद ॥
सर्व सन्त है राम के, कुछ करणी में भेद ॥५॥
उत्तम कहि कहि डूबिये, नहीं पायो तत सार ॥
शूद्र वर्ण के में सुण्यो, राम नाम अधिकार ॥

राम नाम अधिकार, कलू में सार बतायो ।।
एकादश में कृष्णदेव, अपने मुख गायो ।।
आत्म युग युग के धर्म, समै समै अधिकार ।।
उत्तम कहि कहि डूबिये, नहीं पायो तत सार ।।६।।
षट् कर्म कीजै माँहिला, हत काम क्रोध अभिमान ।।
मोह जीत साचा मनाँ, द्रोह लोभ मद पान ।।
द्रोह लोभ मद पान, राम भजिये इक तारा ।।
मैला सब परिणाम, झाड़ कर कीजै न्यारा ।।
आत्म यह शिक्षा षट्कर्म की, ब्रह्म होइ करि ध्यान ।।
षट्कर्म कीजै माँहिला, हत काम क्रोध अभिमान ।।७।।
ऐ दोऊँ डरता भला, हरिजन भगता नारि ।।
खान पान रस भोग तजि, मन चांचल्य निवारि ।।
मन चांचल्य निवारि, मारि दूजा दुष दाई ।।
सतगुरु गाया साच, और की वात न काई ।।
आत्म रमता राम पति, निसदिन हृदय धारि ।।
ऐ दोऊँ डरता भला, हरिजन भगता नारि ।।८।।
हणूं धनूं कर गाइयो, राम नाम तत सार ।।
ता प्रसाद तैं लंघिया, गया समंदा पार ।।
गया समंदा पार, सार सोधी इक सीता ।।
हुआ लंक परवेश, दास तहां भये वदीता ।।
आत्म नांव सुमरण किया, बहुत पतित भये पार ।।
हणू घणूं कर गाइयो, राम नाम ततसार ।।९।।
राम कहै सो साध है, दूजा साधन झूठ ।।
राम नाम साधन विना, होसी सब नर ऊंठ ।।
होसी सव नर ऊंठ, वूंट काँटन को चरही ।।
ऊपर मुक्ता भार, धार ढोते बहु फिरही ।।

आत्म नाम सुमिरण किया, प्रगट चारयूं पूंठ ॥
राम कहै सो साध है, दूजा साधन झूंठा ॥१०॥
मुष मीठा मैला मना, परनामों की बांणि ।
झूंठ कपट अरू डिमता, वै साधु मत जांणि ॥
वै साधु मत जांणि, वाँणि ठग केरी दरसे ॥
छुप छुप हैस स्वरूप, जाय माया को परसे ॥
आत्म धर्म हीन जगमे फिरे, तजि हरि गुरु की काणि ॥
मुष मीठा मैला मना, परनामों की वांणि ॥११॥
जैसो कालो कोयलो, मूढ़ हृदय यों जांणि ॥
मन ममता में कल गयो, फेर लेण की वांणि ॥
फेर लेण की वांणि, वांणि सुमिरण की नांहि ॥
वाहर हां हां करै, वादलो वीवज मांहि ॥
आत्म सौ कोड़ पात्र कर पूज्या, पाँडव जिग में आंणि ॥
जैसो कालो कोयलो, मूंढ हृदय यो जाणि ॥१२॥
संतन डाकी क्यूं कहौ, डाकणि षाया तोहि ॥
घर बाहर सबको दल्या, रह्या न बाकी कोहि ॥
रह्या न बाकी कोहि, हाथ सूं करी पवारी ॥
राम राय का कौल, गई चूक्या बहु भारी ॥
आत्म संतजन मोर रहे, राम आसरै होइ ॥
संतन डाकी क्यूं कहो, डाकणि षाया तोइ ॥१३॥

साषी—

राम कहै ताका मुष मीठा, थूक तुम्हारे मुंह ॥
देख राम की आत्मा, पापो थूक्यो क्यूंह ॥

कुण्डलिया—

कहते केवल राम ही, लडै भेष बहु भाइ ॥
गोला गोली सेल सिर, झूठ मोरछै आइ ॥
झूंठ मोरछै आइ, ढ़ाल तरवार संजोई ॥

छुरी कटारी साज सूज, चरचा वहु होई ॥
शब्द एक निरवाण, छूटै हरिजन हृदय ते ॥
कर्म दुष्ट गये भागि, राम ही केवल कहेते ॥१४॥

कीगर वाजै भैंस पर, रूँथि रूँथि षड षांहि ॥
स्वर्ग नर्क की गम नहीं, षेलै नरकाँ मांहि ॥
षेलै नरका माँहि, रडक पय पीवे मीठा ॥
टको पईसो देष, नैन इमृत रस बूठा ॥
आत्म रामजनां सूँ वैरता, आप लेण की चाहि ॥
कीगर बाजै भैंस पर, रूँथि रूँथि षड षाँहि ॥१५॥

जगत भगत सब एकसे, विरली जगह विवेक ॥
मांहि मांहि से राम जन, जहां भक्ति की रेष ॥
जहां भक्ति की रेष, सेष दूजो नहि जाणे ॥
तन मन आपो अरप, राम सूं वाणक वांणे ॥
आतमराम उपास में, रहे राम ही एक ॥
जगत भगत सब एकसे, विरली जगह विवेक ॥१६॥

राम कहै सो निरंजनो, दूजा अंजन मांहि ॥
भेष भला भगवन्त का, शरणे पेट भरांहि ॥
शरणें पेट भरांही, जाइये तीरथ न्हावा ॥
बाहर हरि क्यूं पाय, षोजिये अपणा आपा ॥
जन आत्म भज राम कूं, बहुत सन्त गये जाहि ॥
राम भजै सो निरंजनी, दूजा अंजन मांहि ॥१७॥

शवदी—

आत्मराम भेष वहु विगड्या, लागो सेवा पूजा ॥
मांहि बाहर सबही देष्या, राम विना नहिं दूजा ॥
आत्म राम भेष बहु भरमी, पाथर पांणी पूजै ॥
साध कहावे कई कसाई, जीव दया नहीं सूझै ॥१८॥

आत्म हरिजन ह्वै सौ परिहरे, निस दिन राम उछाव ॥
वाल्मीक था सरगरा, अन्तर ऊजल भाव ॥२७॥
जांति पांति जन कै नहीं, सुमरण निर्मल होइ ॥
दया ज्ञान द्रढ़ इन्द्रियां, साधु कहिये सोइ ॥
साधु कहिये सोइ, वेद पुराणन में गावे ॥
अंजन भंजन ना करै, हाथ नहीं द्रव्य लगावे ॥
आत्म ममता आठ प्रकार की, उरमें राषे गोय ॥
जाँति पाँति जन कै नहीं, सुमरण निर्मल होय ॥२८॥
विरक्त गृही नजीम है, काहू जाचै नाँहि ॥
अण इच्छा का टूकडा, ल्यावे वसती माँहि ॥
ल्यावे वसती माँहि, छाँणि जल भोजन लेवे ॥
रूँषे विरछे वासकरे, राम रसना सूं सेवे ॥
आत्म ऐसा सन्तजन, वास करै हरि माँहि ॥
विरक्त गृही नजीमि है, काहू जाचै नांहि ॥२९॥
गावँ का गुवाडा घना, नहिं सिंघा का बाग ॥
जिहि मार्ग जब अणसरे, तिहिं तिहिं सोइ आवाज ॥
तिहिं तिहिं होइ आवाज, गाज सोही पुर होइ ॥
हम शरणागत जीव, तारिये हरिजन मोहि ॥
आत्म सतगुरु हंदा सूरवाँ, कर्म बांध सिर पाग ॥
गावँ का गुवाडा घणां, नहिं सिंघा का बाग ॥३०॥
भड भाजै भड ही लडै, भड ही करे प्रकाश ॥
भड भाने सब कर्म कूं, एक शब्द के जास ॥
एक शब्द के जास, आस सतगुरु की जीवे ॥
रसना सूं लिब लाइ, शब्द मुष अमृत पीवे ॥
आत्म सतगुरु सूरिवां, वसै राम के वास ॥
भड भाजै भड ही लडै, भड ही करे प्रकाश ॥

रेषता–

सन्त के लचण की बात अब कहत हूँ, देषकर मान अरु धार उर मांहि
काम अरु क्रोध मद लोभ लालच नहीं, जगत के सुष में रंच चित नांहि
इन्द्र के लोक की वासना ना करे, विधिलोक वैकुंठ पुनि नाँहि धावे।।
कहत आत्म याह सन्त के लचणा, राम कृप करे ताहि पावे ।।३२।।

खान अरु पान सू रुचि अधिकी रहे, वोलवे चालवे वहुत ठंडा ।।
तन जोगी कियो मन रह्यो जगत में, भाई रु बन्धु जाइ मंडा ।।
जोग की जुगति की नकल लीयां फिरे, राम के नांव को छाडि ठंडा ।।
कहत आत्म इक शब्द निर्वाण विन, खूड में फिरत ज्यूं बैल डूंडा।।३३।।

ऊंच अरु नीच फिर षैच चर चातणी, वचन ही वचन से वाढ़ वाढ़े ।।
साच को छाड करि झूठ आगे करे, ज्ञान देवाल सूँ त्यौर चाढ़े ।।
तास कूँ दोष दे मन पाप पूरवतणां, पोट आपैतणी नांहि छाढ़े ।।
कहत आत्म इक राम कृपां विनां, विप्र द्विज रोढ़ियो लात काढ़े।।३४।।

कामना मारियो जगत भरम्यों फिरे, कामना राम विना कौन पूरे।।
राम कूं छाडि के आन पूजै सदा, तास का दोष सूं गर्भ झूरे ।।
साच कूं छाडि के झूट कूं केवले, साच अरु झूंठ को नांहि हेरे।।
कहत आत्म कोई राम जन सूरमाँ, राम ही राम कहै आन फेरे ।।३५।।

सांच की राह को छाडि के छाडि के, झूट की राह ही जहांन चाले।।
साध की संगत सों दूर भागौ फिर, जगत ही जगत में बहुत म्हाले।।
ओर विक्रम गीत गावे घणां, राम की भक्ति को देडि पाले ।।
कहत आत्म एसी आलम अंध है, इमृत की सीर में जहर घाले ।।३३।।

पद —

सतगुरु कहिये पद अविनाशी, जाके दरस कर्म सन्यासी ।।टेर।।
तीर्थ के तीर्थ प्रति दाता, नव नाथ पर है हरिनाथा ।।
घट पट राम सकल भरपूरा, भ्रमत फिरत वताते दूरा ।।
मात पिता सुत वंधु दारा, स्वार्थ हेत कहै म्हारा ।।

महाराज श्री रामदासजी के शिष्य दयालदासजी कृत भक्तमाल—
(रचना-काल १८४५ से १८८०)

निरंजनी सम्प्रदाय-विवरण—

हरिदास पुनि स्यामदास तुलसी धन पूरन ।
जगन्नाथ जन षेमदास मोहन मन चूरण ।।
कानड़ ध्यान जू दास भया जग जीवण पारा ।
आनदास अनाथ भाल तथ अरथ विचारा ।।

राम सुमर मन जीत जग षट् सरोज उर भंजनी ।
अंजन तज निरंजन मिले पंथ द्वादश निरंजनी ।।४१५।।छंद से

राम मिलण के काज नमो ऐसो व्रतधारी ।
षट् रस रसना त्याग त्याग माया मोह न्यारी ।।
निंद्या वैर न विरोध छाँड़ि संसारव्यवहारा ।
घट विच अधरा थाप खोलियाँ दशवाँ द्वारा ।।

जींव सीव मिल ध्यान धर परम धाम विश्राम तत ।
ग्यान विज्ञान विचारणा हरिदास अवधूत मत ।।४१६।।

हरिदासजी के बावन शिष्यों के विषय में—

ऊधव नारायणदास षेम पोकर निज दासा ।
भैरवान नरूदास विष्णुदास व सुखरासा ।।
श्री रामदास पुनि षेम ध्यान तुरसी शिवरामा ।
नरहरि तुरसीदास दास पीपा सिद्धकामा ।।

सारंग सूँधादास भन अमरदास हरिपद लह्या ।
हरिदास पद परस जन बावन परचै सिष भया ।।

जैतराम पुनि उधवा नारायण रामकृष्ण जन ।
दास प लाद संतोष दास जोगी जीता मन ।।

परमार्थ नहिं अपणा, सतगुरु में हरि चौरासी तजणां ॥
आत्म राम राम रस पीवै, फिर फिर मरता मृतक जीवे ॥१॥

राग बिलावल —

थारो बिडद संभालियेजी, नांह होइये न्यारा ॥
वेर वेर संतन मई, प्रगट्यो वहु वारा ॥टेक॥

मंजारी सुत राषिया, अगनि वहु धारा ॥
जन प्रह्लाद उवारिया, हिरणाकुश मारा ॥
में मति हीणा वापजी, मनका अनत पसारा ॥
मैं जाणूं मने हरि मिले, यों लोटत छारा ॥
अरणी मेरे कछु नहिं, शरणागत थारा ॥
अलियुग धर्म अपार है, राषो सिरजन हारा ॥
कहै आत्म क्यूं वरणिये, तव गुण वेचारा ॥
आदि अंत अरु मध्य में, तारे पतित अपारा ॥२॥

कर पकरो करुणामई, या के नहिं कोई ॥
सुषिया या संसार में, कर पकर्यो सोइ ॥टेक॥
पांच तत्व का पूतला, मोटा मोह पसारा ॥
जहाँ जाऊँ जहाँ संग रहे, क्यूं छूटे वेचारा ॥
काम क्रोध भवजल भरया, सोइ तन म्हारा ॥
स्वर्ग देव मधि मानवी, पाताल पसारा ॥
उलट पलट मन यूं फिरै, तनका नहिं सारा ॥
अगम नदियों की गम नहीं, जाणे संत पियारा ॥
ढूंढ ढूंढ वहु हेरिया, नहिं कोऊ शरणा ॥
सतगुरु ही की महरतें, पाये तव चरणा ॥
सो सो तन अपणां किया, सो मतलव ल्याही ॥
आत्मराम व्यापी कहो, तुम वैठे माँही ॥

रे तमचर जन बोलना, रहु रहु तूं छाने ।।
तै बोल्या तन थर हरे, प्रभु तोही जाने ।।टेर।।
महल बण्या निज नेमका, प्रेमा सेज विछाने ।।
सुमरण कर सहाँई मिली, ऐसा सुष विलसाने ।,
झूठा सुख संसार का, बुद बुद सा जाने ।।
जे जन हरि सूं रत भया, सतगुरु निज ग्याने ।।
कह आत्म हरि विरहणी, पिया मन माने ।।
या विरहा कोई जन लहै, आवागमन न आने ।।४।।
धिक् धिक् जिनका जीवणा, जिहिं गमत न जाँणि ।।
जाका जीवण सफल है, सुमरण रति माँणि ।।टेर,।
काम क्रोध मद मोह मई, लोभन की पासा ।।
नरतन विडही विगोइया, नरकन में वासा ।।
शील दया संमुख रहे, बहु ज्ञान विचारा ।।
सुमरण सूं हिलमिल रहे, जाका जीत बसारा ।।
जैदेव सकल शिरोमणि, ब्राह्मण कुल ऊंचा ।।
सकल भरमना मेट करि, साधी ब्रह्म सूचा ।।
मात पिता तज व्यास से, मेटी कुल पासा ।।
शुकदेव रंभा परिहरी, किया ब्रह्म विलासा ।।
राजपाट तज भरथरी, सोला सै रांणी ।।
सांई को सिदकै करी, नगर उजैणी ।।
गुरु भक्ता समता मता, विरकत संसारा ।।
आत्म राम रामे मिल्या, उतरे भव पारा ।।५।।
ऐसी भक्ति न कीजिऐ, नर तन विडद जांही ।।
सुमरण केवल सार है, हिलमिल हरि मांही ।।टेर।।
लोभ मोह द्रोह नांव नाव में, बैठे फल कांही ।।
सेवत ही वहि जायगा, पार पावे नाँही ।।

जोग जिज्ञ तपस्या तुला, तीर्थ व्रत आँही ।।
तन सुष कीर्ति कारणे, सबके मन मांहीं ।।
न्हाणा धोणा गावणा, छापा तिलक वणाहीं ।।
गल माला मन भावती, भ्रमत जग मांहीं ।।
रामदयाल सतगुरु भया, राषो उर मांही ।।
भूलाँछ् कोई मत मिलो, भूल्यो भरमांही ।।
दया त्याग सुमरणरता, इकतारी सासा ।।
आत्मराम रामे मिल्या, दूजी नहिं आशा ।।६।।

राग रामगिरि—

सुण्यो मैं भगत सहाय विड़द् तेरो,
स्वर्ग पयाल जमी भरपूरा, जहां ध्यायो तहां नेरो ।।टेर।।
द्रुपद सुता को चीर वधायो, अनत कियो अधीकेरो ।।
भीड़ पड्या पहलाद् उबारयो, धर वपु नाहर केरो ।।
केवल कूबा सैन धना से, सबको कारज सेरयो ।।
घाटम वचन सत्य करि भाष्यो, वर्ण तुरी को फेरयो ।।
नरसी के माहेरो ल्यायो, तांन मान सुण गहरो ।।
सात कमीण नगर सब सारो, चारू फलसा पहरो ।।
त्रिलोचन के हल तै वाह्यो, धना को षेत निपायो ।।
पांच ग्रास पंचायण वाज्यो, विपरा मान मरायो ।।
झूठे वेर भिलनौ के पाये, पट मीठो नहिं फेर्यो ।।
दुर्योधन के महल त्याग करि, विदुर झूपड़ो हेर्यो ।।
सब देवन कूं भीड़ लंकपुर, भगत विभीषण भेरो ।।
जाके हित रावण कुल विनश्यो, चरित जान की केरो ।।
मैं मति हीन अल्प बुद्धि मेरी, मांहि ममता को घेरो ।।
कहैं आत्मराम विन कौण छुड़ावे, जन्म मरण को फेरो ।।७।।

राग कानडो—

तुम भली भली करि राम राई, शरणागत पत रही सदाई ।।टेर।।

तेरे विडद को कहा वषाणो, वाल्मीकि शिवरी जग जाणो ।।
अजामेल गणिका सदन कसाई, कींता धाठम रैदास बलाई ।।
अति उद्यम कर उदर भरते, अति आधीन रहत सब नरते ।।
तब प्रताप कमी नहि कांही, हरिगुरु विन ऊणा रति नांहि ।।
मैं मेरे मनको कृत जान्यो, भांति भांति सतगुरु परवान्यो ।।
मन सूं डरे सुमरण ल्यो लावे, ताते सहज परम पद पावे ।।
आगे करी अबै तुम करल्यों, पतित उधारन हरि नहिं बीसरस्यो ।।
आत्म राम राम तुम शरणें, कोन बेर लागे तुम करने ।।८।।

राग मारू—

राम धन षरा षरी का दाम,
सूरा है ताही मिलै, नाहिं है कायर काम ।।टेर।।
कागद केरी कोटड्यां, कुण जीत्या कर राड़ ।।
एक फटुकै उठ चल्यां, चौरासी वे पाडि ।।
अकडोड्या गेढ़े भरया, धरि रेसम का भाव ।।
जाइ दिसाबर षोलिया, लाभ मिल्यो नहिं पाव ।।
हरिजन चढ़े दिसावरों, राम नगां भरि नांव ।।
चौरासी चौकी चुकी, आत्म आनंद हुवा वधाव ।।६।।

राम तुम गुणवंता हो,
प्रीति निभावण प्रीतमाजी, रमता सकल मांहीं ।।टेर।।
तालावेली विरहणीजी, जोवे पीवकी बाट ।।
कब आवो घर आंगणे रामा, कब लंघो औघट घाट ।।
नैणा नीर झरहरैजी, रजनीं नींद न थाइ ।।
पड़त पुरांणों पीजरो रामा, कब सुष दोगे आइ ।।
काम कोध मद मोह कोजी, आंण पड्यो झकजोल ।।
जीव भवै तुम देशडेजी, इहां पड़ी है षोल ।।
पडदा पोसी कर रह्याजी, मोहि कुचीली जांणि ।।

नेड़ा कसणां दूर हैजी, सुति कठिनाई पीव ॥
करमा पड़ोसण क कह्या, मति तरसावो जीव ॥
आवण भावण हो रह्याजी, दुष पावत तन मांहि ॥
आत्म के परमात्मा जी, दुख मेटि करो क्यूं नांहि ॥१०॥

साषी—

जाकै सेवग रामजी, कमी नहीं कांई ॥
आत्म दशूं दिशा भरपूर है, अण चाह्या आई ॥१॥
सब कोई चाहे मान कूं, मांगी मिले न मान ॥
आत्म राम रीझै बिना, हरिजी सुणे न कान ॥२॥
माया की महिमा करे, राम जनां सूं पूठि ॥
आत्म ऐसे जगत सब, गये नरक में ऊठि ॥३॥
आत्म दुनिया दोगली, आदि अंत सो जानि ॥
मुख सूं मीठा बोलिये, मांहि कपट की खानि ॥४॥
आत्म दुनिया दोगली, याने क्यूं मति मति कहो ॥
सुमरण करो राम को, चुपचाप बैठ रहो ॥५॥
आत्म निद्रा नागणी, शीश बैठ करि खाइ ॥
मिणियो तोडी आवती, सकैक नांव भुलाइ ॥६॥
बिना कमाइ धन घणां, ठांम ठांम कूं जाँहि ॥
आत्म सुमरे राम कूं, राम निधि घर माँहि ॥७॥
हरिजन राजी राम सूं, रूंष रेत अरु वास ॥
सीत निवारण गूदड़ी, षुध्या निवारण गास ॥८॥
डाल पात फल फूल में, सब ठैं व्यापक राम ॥
आत्म जोडो राम सूं, नाहिं तोडण सूं काम ॥९॥
आत्म सुमरो राम कूं, चेत करो जीव देपो ॥
ऊंच नीच सव जीव राम के, भिन भिन लेसी लेपो ॥१०॥
आत्म माडा चाहिये, जबही जागै भूप ॥
जैसो भेजे रामजी टालै, सोइ चूक ॥११॥

हिरदै राचे राम सूं, सतगुरु राषे शीश ।।
आत्म एवा जीव सूं, हरि मिले बिसवा बीस ।।१२।।
सतगुरु का सारा नहिं, नहीं शब्द का जोर ।।
आत्म उलट गुरांसूं फिर मंडे, सो वड़ा हरामी षोर ।।१३।।
अपणैं अपणैं पेट कौ, परी सवन को चिंत ।।
आत्म हरि विन और को, पूरणहारा नित ।।१४।।
तेरा रक्षक राम है, वलवन्ता जोधा ।।
आत्म निंदक क्या? करे, तिणहुँ सों वोदा ।।१५।।
जैन धर्म की वातडी, सवै रही षाली ।।
आत्म यूं मनि वांध्या हरि मिले, तो मैं वांधू राली ।।१६।।
हम चेतन आगे किया, टाले सवही दोप ।।
आत्म जननी ज्यूँ रमता वसै, हम कूं देवे पोष ।।१७।।

चौपई—

अग्नि न टाले जल नहि दहे, राम अमल में माता रहे ।।
अन भै वसै ब्रह्म का वास, आत्म नहि राँधै कहिये निज दास ।।

।। इति श्री आत्मारामजी को कृत सम्पूर्ण ।।

।। स्वामी आत्मारामजी के शिष्य जगरामजी की रचना ।।

जन आत्मराम दयाल, अधिक महिमां घन लायक ।।
इंमरत वरसै मेह, ज्ञान वैराग्य मुक्ति के दायक ।।
सुषदेव ज्यूं सन्तोप, त्याग जनक ज्यूं सब कुछ जाणे ।।
कवीर ज्यूं निहकपट, गोरप ज्यूं ज्ञान वषाँणें ।।
माँनो धूज्यूं ध्यान प्रहलादज्यूं, प्रतिज्ञा पकर कहै सुषराम ।।
जगरामदास वन्दन करे, वारंवार प्रणाम ।।१।।
नमो नमो गुरुदेव, पशु सूं मनुषजू कीया ।।
हरथा पाप संताप, सुवुद्धि दे अपणा कीया ।।

काया कागसूं हंस, ज्ञान की गाथा गाई ॥
राम नांम रस पाय, विपति सब दूर भगाई ॥
समदृष्टि रहे सर्व पर, दीनन के रिछपाल ॥
जगरामदास कर जोर वीनवे, नमो आत्मराम दयाल ॥२॥
नमो आत्मराम दयाल ज्ञान, मुक्ति वैरागज भरिया पूरा ॥
नही आस असलाक, भजन में निसदिन सूरा ॥
रच्या धणी सूं साच, झूठ कपट की पासी त्यागी ॥
जीत्या तन का दोष, तपत तृष्णा सब भागी ॥
घणा गहर गंभीर, सरवर ज्यूं शीतल ही करै ॥
जगरामदास गुरु चरण परसता, ताप तप्त सवही हरै ॥३॥
सतगुरू सा दातार, तीन लोक में नजर न आया कोई ॥
जिन दियो राम रूपधन, हर्ष प्रसन्नता होई ॥
मौज दई अनमोलसी, दुख दारिद हरिया ॥
कलह कल्पना मेट सब, सुषसूं सूभर भरिया ॥
वार वार कहिये कहा, बहुत किया उपगार ॥
जगरामदास वंदन करै, नमोगुरू सिरजन हार ॥४॥
भया काग से हंस, कृपा यह सतगुरू कीन्ही ॥
मन पाया विश्राम, जड़ी संजीवन दीन्ही ॥
कीया सुष प्रवेश, लेश दुषका नहिं जाणों ॥
मुष सूं जपिये राम, वचन सत शुभग बषांणों ॥
घणा दुषी हा जगत में, होता बहुत वेहाल ॥
जन आत्म कृपा करी, कीन्हा तुरत निहाल ॥५॥
नमो नमो महाराज, अयोनी अलिपत देवा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, शेषहू लषेन भेवा ॥
घणों तेज प्रकाश, वर्ण कछु कहत न आवे ॥
नैण नासिका नांहि, दास निज बुधि सम गावे ॥

उत्पति प्रलय सबकरो, न्यारा रहो निरधार ॥
जगरामदास वन्दन करे, नमो नमो निराकार ॥६॥

पद—

पतित उधारन प्रगट भये, जन आत्मराम दयाल हो ॥
जाके सिरपर यह सतगुरु है, ताहे लगेन जमकी ज्वाल हो ॥टेर॥
भवताप निवारन जन्म सुधारन, करुणानिधि कृपाल हो ॥
राम नाम निज नाम द्रिढ़ावत, केई कियेजु निहाल हो ॥
अशरण शरण सदा सुषसागर, ज्ञान सिन्धु गंभीर हो ॥
भजै निरंजन अंजन तजि कै, वसुधा ज्यूँ मन थीर हो ॥
नर नारी सबही पद परसत, भाव भरथा उरमांही हो ॥
मेटो कर्म भर्म मम जीवके, उभय दीर्ध दुख फंदा हो ॥
तुम हो अगम कहा में गाऊँ, जगरामदास तव वंदा हो ॥
आत्मराम दयाल के, शरणें मन रषिये ॥
जिनकी कृपा भगवान भज, आनंद रस चषिये ॥टेर॥
भ्रम कोटि मम उर वसे, मांही फंद चौरासी ॥
तुमरी कृपा सों टूटि है, यह गढ़ मेवासी ॥
तृष्णा तपत तन में घणी, वहु ताप जरावे ॥
तुम चरणोदक पीवतां, तन शीतल हुय जावे ॥
कवहुन वंछत स्वर्ग में, ना मुक्ति सुहावे ॥
तुम शरणे है सुष इसो, कछु कहत न आवे ॥
गरीबनवाज गुरुदेव है, निरंजन अनुरागी ॥
जगरामदास एसे संत कूँ, कोई सेवे बड़भागी ॥२॥

राग गुड—

गुरु देवन के देवारे, जाकी तनमनदे कर सेवा रे ॥टेर॥
जिन राम नाम धन देवा, जासूँ काल करे नहीं केवा ॥
गोरष शेष शिव संगा रे, वे गुरु की शरण अभंगा रे ॥

सनकादिक नारद वरणे रे, गुरु चरणां नित शरणें रे ॥
धू प्रहलाद कवीरा रे, गुरु की शरण मथीरा रे ॥
जन हरीदास हरि पूता रे, वह गुरुचरणां अवभूता रे ॥
सर्व साध सुष पावे रे, सव गुरुहू के गुण गावे रे ॥
वेद पुराण वनावे रे, हरि गुरु कृपा तें पावे रे ॥
जन आत्म से गुरु देवा रे, जगरामदास करि सेवा रे ॥

॥ आत्मारामजी के अन्य शिष्य चतुर्भुजजी की ॥

※ वन्दना ※

प्रथम चरण सतगुरु के लागूँ, दुनिये संत अपारा ॥
गुरु प्रताप नांव कूँ पाया, मेट्या भ्रम हमारा ॥
सतगुरु मेरे शीश विराजै, मैं सतगुरु का चेरा ॥
नाम दीप दे किया उजाला, मेट्या भ्रम अंधेरा ॥
सतगुरु सेती उरणां नाही, अब कहो कहा चढ़ाऊँ ॥
तन मन लेकर अर्पण कीन्हो, चरणां शीश नवाऊँ ॥
नव निरंजणी ओर कहावे, ऐसी करणी नांहि ॥
जन आत्म तो भये उजागर, सकल भेप के मांहि ॥
इच्छा आया टुकड़ा पावे, नहीं जगत की आशा ॥
कर करवा कोपीन गूदड़ी, राम नाम विश्वासा ॥
सतगुरु सहजां आप विराज्या, हेरयां कवहू न पावे ॥
राम नाम की टेक वँधावे, वार वार समझावे ॥
जे आत्म को कह्यो करे तो, पाप रती नहिं राषै ॥
कर्मी जीव कछू नहि जाणे, दास चतुर्भुज भाषै ॥३॥

॥ इति ॥

सन्त कवि रूपदासजी

निरंजनी सम्प्रदाय के परवर्ति रचनाकारों में रूपदासजी का भी उचित स्थान है। रूपदासजी सेवादासजी महाराज के शिष्य सिद्धपुरुष महाराज अमर-पुरुषजी के शिष्य थे। रूपदासजी हरिदासजी महाराज के शिष्य वड़े षेमजी की सातवी पीढ़ी मे हुये।

अमरपुरुषजी का जन्म सत्रहसौ पचपन वैराग्य धारण सत्रहसौ पिचहत्तर अवसान काल १८४२ है। वैराग्य धारण के पश्चात् साधना सिद्धि मे भी समय लगा है अतः इनकी शिष्य परंपरा का आरंभ सत्रहसौ नव्वे के आस-पास माना जा सकता है। रूपदासजी का दीक्षाकाल भी अठारहवी सदी का अन्तिम चरण है। रूपदासजी ने स्वामी सेवादासजी की परची लिषी उसकी पूर्ति का काल उनने १८३२ लिखा है। अतः इनका रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दि का पूर्वार्द्ध सिद्ध होता है। उनका शिष्यत्व तथा जन्मकाल अठारहवी का उत्तरार्ध प्राप्त होता है। रूपदासजी ने वाणी की रचना की है अत. वे साधक सन्त थे एसा माना जाना असंगत नही। उनकी प्राप्त वाणी की रचना पूरी है या नही उससे स्पष्ट प्रतीत नही होता। उनकी रचना का उल्लेख संग्रह की कई पुस्तको मे प्राप्त है। सबसे प्राचीन इनकी रचना वडू के संग्रह को पुस्तक नं० ५ मे है जिसका लेखन काल सम्वत् १८२६ है। इसमे इनकी फुटकर रचना तथा सेवादासजी की परची लिखी हुई है। मैने इनकी रचना के उद्धरण लाधडिये ग्राम से प्राप्त उस गुटके से लिये है जिसका लेखन काल १८६६ श्रावण शुक्ला एकादशी है। इसमे वाणी के प्रारंभ तथा अन्त मे फुटकर शब्द का प्रयोग है इसी से पूरी वाणी यही है इस मे भ्रान्ति है।

समाप्ति पर वांणी का जोड सवा दो हजार लिखा है। इनने साषी, सवैये रेखते, कुण्डलियें चान्द्रायण, कवित्तो मे रचना की है अन्त मे पद है। रचना से प्रतीत होता है कि यह साधक सन्त होते हुये भी शिक्षित व विज्ञ भी थे।

॥ अमरपुरूजी के शिष्य रूपदासजी की रचना ॥

साषी भाग गुरूदेव का अंग

वन्दना—

नमो नमो गुरुदेव तत्ववेत्ता भ्रमभंजन।
निरविकार निजरूप विपुल अघ मेटण कारन॥

रूपराम हिंरदैराम दास भिष्यारी माना ।
रामसुख जयराम धरम धुन आतम जाना ॥
बालकदास नरसिंह जन हरि दरगा पाई फतै ।
राम सुमर गुरुपद परस दयाल बाल साचै मतै ॥४१८॥

केसोदास पुनि नाथ तीन मणि-राम जू दासा ।
हरी भगत भगवान स्याम बालक सुषरासा ॥
वनमाली निज दास दास चतरा वन मोहन ।
सूरतराम हरिकृष्णदास शीतल अघ षोवण ॥
बलराम मनसाराम जन सीताराम परवानिये ।
हरिदास पदरज परस बावन सिष मुष जानिये ॥४१९॥

हरिदासजी की छठी पीढी—सेवादासजी के विषय में—

सेवादास सतगुरु-कृपा—

साच सबद गुरु परस आतमा तत्व विचारा ।
जगतजाल भवकाल आण निरव्रत मन धारा ॥
साच वाच सुदिष्टि ग्यान गुण रतन प्रकासी ।
कोमल साध स्वभाव दया धीरज गुणरासी ॥
भगति दान सनमान कर पंथ लह्यो निराकार को ।
सेवादास सतगुरु कृपा ध्यान धर्‌यो ररंकार को ॥४२०॥

निरंजनी व दादू-पन्थी सम्प्रदाय से पीछे स्थापित सम्प्रदायो के आचार्यों तथा उनके शिष्यो के उपर्युक्त उद्धरण है। इन उद्धरणो से यह स्पष्ट सिद्ध है कि इनके जीवन-काल से पूर्व निरंजनी-सम्प्रदाय का पर्याप्त विस्तृत रूप बन गया था तथा इन सबने अपने पूर्ववर्त्ती महात्माओं का जहा ससम्मान निरूपण किया है, उन्ही मे हरिदासजी का भी नाम है। महाराज रामदासजी व दयालदासजी की भक्तमाल में महाराज हरिदासजी के विवरण के साथ-साथ बारह निरंजनी महन्तों का तथा हरिदासजी के बावन शिष्यो में से अनेको के नामोल्लेख किये है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि राघोदासजी ने जिन बारह निरंजनी महन्तो का निरूपण किया है,

सुष सागर निहिं पार दरद दुप सबै निवारन ।
पूर्ण परमदयाल सरणदे काज सुधारन ।।
निर्मल ग्यान विचार सार सत हृदय धारण ।
परमदेव परब्रह्म परमसुषदे निसतारण ।।
परसे पूर्ण कांम पार भवैंसिन्धु उतारन ।
ज्ञातन तेरा पार अगमगति देव निरंजन ।।
दीन हीन जगजीव पीव हो तुमही तारन ।
अन्तर्यामी देव चरनरज मम सिर धारन ।।
जन रूपदास बलिजाई भगति दे जीव उधारन ।।१।।

साषी—

गुरू गोविन्द वन्दन करै, नित प्रति वारंवार ।।
रंक जीव धनवंत करै, सतगुरू वड़ दातार ।।२।।
जन रूपदास वंदन करै, चित चरनां उर भाव ।।
भक्ति ग्यांन वैराग की, सतगुरु करो पसाव ।।३।।
आदू सन्त परगट हुये, करी कृपा कलि मांहि ।।
अमरपुरुष गुरुदेव की, वेर वेर वलि जांहि ।।४।।
अडिग रहे साचे मते, इष्ट एक विसवास ।।
रूपदास सतगुरु मिले, निह केवल निज दास ।।५।।
सतगुरु मेरे सिर तपे, अमर इसा दरवेस ।।
जन रूपदास अघ सब हरै, काटै करम कलेस ।।६।।
पूरा सतगुरु पाइया, जाकै मस्तग भाग ।।
दर्पण ज्यूं दिल सुध करै, मेटै मनकै दाग ।।७।।
वलि वलि जाऊँ दरस की, सतगुरु अमर दयाल ।।
निर्वल दुर्वल देष करि, आइ करी प्रतिपाल ।।८।।
जन रूपदास सतगुरु विना, वही जांहि सव लोइ ।।
राम भजन की सुधि नहीं, चाले जनम विगोइ ।।९।।

सतगुरु दरबै दुष मिटै, देवे सील सन्तोष ॥
राम भजन सुष ऊपजै, तव जीव पावे मोच्च ॥१०॥
जन अमरदास गुरुदेव की, मेरे सिरपर छाप ॥
जन रूपा उन परताप सूँ, जपूं निरंजन जाप ॥११॥

सुमरण को अंग—

राम राम सतगुरु कह्या, सुमरण सास उसास ॥
जन रूपदास जप जुगत सूँ, कोटि कर्म का नास ॥१॥
सुमिरण सुष सतगुरु दिया, रांम नाम तत सार ॥
रांम रटत जन रूपला, लगैन जमकी मार ॥२॥
गम पाई गुरुदेव तैं, सब तजि वाद विवाद ॥
रांम रटत जन रूपदास, रसना पायो स्वाद ॥३॥
नांम विना नर देहड़ी, कहो बीर कुण कांम ॥
पसवाँ सम प्राणी सबै, जन रूपा रटे न रांम ॥४॥
रांम तुम्हारौ नांवद्यो, अंतरि हरि हरि जाप ॥
जन रूपदास हरिनांवतैं, थरहर काँपै पाप ॥५॥

विरह को अंग—

प्यारा म्हारा आव घरि, सब सुष थारा येह ॥
जन रूपा तुम पर वारनै, वारौं तन मन देह ॥१॥
जैसे चन्द कमोदनी, मीन दुषी विन नीर ॥
जन रूपदास हरिकारणैं, अब मन धरतन धीर ॥२॥
विरहनि को भावै नहीं, भवसागर के भोग ॥
अंतरजामी एक कौ, अन्तर मांहि वियोग ॥३॥
रैन न आवे नींदड़ी, दिवसन भूष पियास ॥
तुम दरसन विन देवजी, जन रूपा बहुत उदास ॥४॥
कहाँ जाऊँ किनको कहूँ, मेरे जीव की झाल ॥
साहिब तुमही सांभलो, आप करो प्रतिपाल ॥५॥

॥ इति ॥

॥ समथाई लीला जोग ग्रन्थ ॥

दोहा—

गुरु समृथ सिरजनहार है, गुरु गुण अनंत अपार ॥
गुरु अधम आपणे कर लिये, राषे चरण मंझार ॥१॥

पद्धरी—

गुरु दातारे गुरु दातारे, गुरु रांम अमीरस मातारे ।
गुरु अगम पंथ कूँ जातारे, गुरु परम तेज रंग रातारे ॥
गुरु मेरे त्रिभुवन तातारे, गुरु पार किये गहि हाथारे ।
गुरु निरषै निरगुण नाथारे, जनरूपा ऊजड जातारे ॥२॥
गुरु जाण्यां रे गुरु जाण्यां रे, गुरु अन्तर अलष पिछांण्या रे ।
गुरु पांच एक घर आंण्या रे, गुरु पूर्णब्रह्म पिछांण्यारे ॥
गुरु अगम सुषकी षांण्यारे, जन रूपदास कुरवांण्या रे ॥३॥
गुरु तारन हो गुरु तारन हो, गुरु भवजल पार उतारन हो ।
गुरु बिगरी षेप सुधारन हो, गुरु मेरे नरक निवारण हो ॥
जन रूपा पतित उधारन हो, गुरु ग्यांन ध्यान के कारण हो॥४॥

॥ इति ॥

॥ कुंडलियें गुरूदेव को अंग ॥

सतगुरू की कृपा भई सूते लिये जगाइ ।
मोह विषय की नींद में जाग्या कबहूँ न जाई ॥
जाग्या कबहू न जाइ टेरि गुरू सबद सुनाये ।
सुनकरि भये सचेत हेत दे पोष लगाये ॥
जन रूपदास धन सतगुरु लिये सु अंग लगाय ।
सतगुरू की कृपा भई सूते लिये जगाय ॥१॥
केते पतित उधारिया हमसे अधम अपार ।
जे सतगुरु मिलते नहीं तो जीव होते ष्वार ॥

तो जिव होते ख्वार मार कुण मेटे मेरी।
निरधारचा आधार बाप वलिहारी तेरी ।।
जन रूपा वहतेजीवकूँ सतगुरु राषणहार।
केते पतित उधारिया हम से अधम अपार ।।२।।

सुमरण को अंग—

निराकार के नाँव को तिलक विराजे सीस।
मन माला मुझ करदई सतगुरु की वगसीस ।।
सतगुरु की बगसीस सुरति कै नाके पोई।
निस दिन सहज सुभाइ रांम को सुमरन होई ।।
रूपदास जन पाइये अन्तर मांही ईस।
निराकार के नांव को तिलक विराजै सीस ।।३।।
डोरी तेरे नाँव की है मेरे मन मांहि।
रामसनेही वाहरा दूजा भावै नांहि ।।
दूजा भावै नांहि एक अंतर ठहराया।
अनन्त कोटि निज सन्त रांम जिन सुमरचा गाया ।।
जन रूपदास मन मानिये अव इत उत नाहें जांहि।
डोरी तेरे नाम की है मेरे मन मांहि ।।४।।

विरह को अंग—

रोऊँ किस विधि रामजी जोऊँ कित मैं जाइ।
प्रीतम तुझ पाऊँ नहीं विरह विथा तन पाइ ।।
विरह विथा तन पाइ याहि पति आइ वुझावो।
सब संतन सुप सीर पीर क्यूँ मोहि सतावो ।।
जन रूपदास ओसर गये कहा करोगे आइ।
रोऊँ किस विधि रांमजी जोऊँ कित मैं जाइ ।।५।।
सदा संगाती संग रहौ प्रगटौ नांही पीव।
घूँघट पट षोले नहीं यूँ तरसै मम जीव ।।

यूँ तरसै मम जीव जोर कोई तुमसूं नांहि ।
निरधारथा आधार यार अब पकरौ बांहि ।।
जन रूपा विरहनी वीनवै सुनि हो संगी सांय ।
सदा संगाती संग रहौ प्रगटौ नांही पीव ।।६।।

साध को अंग—

साधुजन सीतल सदा संगति रूप सधीर ।
निरद्वन्दी निरवैरता जांणत जन की पीर ।।
जांणत जन की पीर दया दिल अंदर आई ।
निसप्रेही निरधार सार सज्जन सुपदाई ।।
जन रूपा प्रगट पेपिये गरवा गहर गंभीर ।
साधु जन सीतल सदा संगति रूप सधीर ।।७।।

।। इति कुँडलिया ।।

चान्द्रायण—

सतगुरु सबद सुनाइ कियो मन धीर रे ।
मन चलतो ऊजड़ वाट पाँच की भीर रे ।।
अब साचौ सबद विचारि लगे सुप सीर रे ।
हरिहाँ ! ये उन को उपगार अमर गुरु पीर रे ।।१।।
विन मिलए भगवंत दुपी दिन जाहि रे ।
कैसे जियै में जीव पीव घर नांहि रे ।।
किन कूँ करूँ पुकार नहिं कित ठौर रे ।
हरिहाँ तुम मिलो सनेही आइ सवन सिर मोर रे ।।२।।
विरहनि व्याकुल जीव पीव के कारणें ।
कव मुष निरषूं नाह जाऊँ तेरे वारणैं ।।
बहुत दिनन की प्रीति पीव क्यूँ वीसरे ।
हरिहाँ ! जन रूपदास विन दरस बहुत दिन नीसरे ।।३।।

कलि में कीरति आइ कमध करडी करी।
सूरत छाडी सींव आगली आपरी ॥
दोइ वल पेल प्रचंड पाँव माँडे षरे।
हरिहाँ ! जन करडी टेक कबीर और नहिं दूसरे ॥४॥
जन हरीदास ह्वरिराइ सुमर साचे मते।
करम किये चकचूर जीति जंग कर फते ॥
अलष तणों अवधूत गिगन मठ छाइये।
हरिहाँ ! स्याम सवाँरे काम परमपद पाइये ॥
सूरवीर सुष मांहि धसे घर भेलि रे।
चढे ब्रह्मतरु जाइ करैं अति केलि रे ॥
जहाँ अनंत कोटि विश्राम सदा सुष वासजी।
हरिहाँ ! जन रूपदास तहाँ विराजे आइ साध हरिदासजी ॥६॥
कर साध संग भजि राम भलो छक आइयो।
भरमि भरमि बहु ठाँव रतन तन पाइयो ॥
सुण सतगुरु की सीप हिरदा में धारि रे।
हरिहाँ ! जन रूपा यो अवसर ये वार समै चलि जाइ रे ॥

॥ इति अरिल ॥

सवैया—

सन्तहि मात पिता पुनि सन्तही संतही प्रीतम प्राण अधारा।
सन्त ही जीवन जीव हमारे सन्त ही काटन कर्म अपारा ॥
सन्त ही देव दयालहु संतही सन्त ही देवत ग्यांन विचारा।
सन्त ही पार करे भवसागर जन रूपदास गुरुदेव हमारा ॥१॥
साध को संग किये बुधि निर्मल साध को संग किये अघनासै।
साध को संग किये अति आनंद साध संगतै ग्यांन प्रकासै ॥
जे कोइ जाइ गहे सतसंगहि तो दुष जाई सदा सुष वासै।
जन रूप कहै एसो साध समागम आइ सदा हिरदै हरि भासै ॥२॥

साध दयाल सदा दिल अंदरि राग न द्वंद्रन मोहन द्रोहे ।
सील संतोष विवेक विचार जू धीरज ध्यांनरु ग्यांन उदोहे ॥
प्रेमरु प्रीति प्रतीति प्रकाशजू सदा सुप वास इहै गुन मोहे ।
जन रूप कहै यह साध के लच्छण वहोत विलच्छण मोमन मोहे ॥३॥

कवित्त—

जीव के लग्यो है जाल भूलि रहयो माया लागि,
निकट न सूझै काल धंध लागि ध्यायो है ।
पाछली नहीं संभाल कूँण करै प्रतिपाल,
फिरियो है चौरासी नाल भ्रमि भ्रमि आयो है ॥
मार कै करै वेहाल कौन करे प्रतिपाल,
छूटि जाइ सबमाल काल फंद लायो है ।
जग को एसो है ख्याल राँम न जपै दयाल,
रूप जन जीवरे कूँ वहु समझायो है ॥१॥

व्याकुलता भई मोहि पीर नहिं जाने तोहि,
वहु दिन वीते पीव अजुं नहि आए है ।
मोहि तो अंदेसो और लागि रह्यो निसि भोर,
जींव को नहीं है जोर पीव क्यूँ रिसाए है ॥
प्रांण के पियारे लाल अव तो भई वेहाल,
मेरे उर यह साल किन विलमाए है ।
अवधि गई सिराइ धीरज धरीन जाइ,
रूप कहै कव आय अंग तैं लगाए है ॥२॥

रेषता—

नाव नृवाण ततसार तिहु लोक में
नाम विन आन सकल मत काचा ।
संत मत सोधिकरि मन प्रमोधिकरि
प्रेम प्रतीतिधरि सुमरि साचा ॥

रांम रस जिन पिया धन तिन का जिया
परस पावन भये बहुत प्रांणी ।
दास रूपा रता पाइ पूरा मता
रांम रटि रांम रटि संत वांणी ।।१।।

हरि नाँव विन समझि नर कर्म छूटै नहीं
कहे नहीं जाइ कहो कर्म केता ।
जन्म के जन्म लग संग के संग रहै
जाइ यह जीव तहां दुष देता ।।

साध को संग करो पाप सब पर हरो
तर्क करि त्याग दे आंन हेता ।
जन रूप हरि नाँव लै कूडमें क्या ? मिले
कूडतैं किते नर भये प्रेता ।।२।।

त्याग वैराग की बात झींणी घणी धार षांडा तणी कूंण धारे ।
चले सन्त सूरवाँ सीसकूं सोंप कर कांम अरु क्रोध मद लोभ मारै ।।
तोड गढ़ मोहको पकडि मन मीरकूँ मलैं मन मांनिको गरव गारै ।
दास रुपा जिके संत साचै मतै स्यांम सनमुष सदा काज सारे ।।३।।

पद—राग रामकली—

वे जन पावन रूप है ज्यां हरि रस पीयारे
भज भगवंत निर्भेभया आपा तजि दियारे ।।टेक।।
दास कवीरा नामदेव गोरषसा ग्यातारे
अमृत पिया अघायकै मतिवारा मातारे ।।१।।

गोपीचन्द अरु भर्थरी सुमरत सुष पायारे
निरष लिया नृवांणपद त्यागी सब मायारे ।।
सुषदेव दत्त सिरोमणि सत वसत कमाईरै ।।
अलष भज्या सब सुष तज्या पूरी थिति पाईरे ।।२।।

पीपा जन रैदास पुनि सुमरे सुषदायीरे ॥
पीया पियाला प्रेम का उर तपत बुझाईरे ॥
सोझाँ सैनां अरुधनां नानक निज दासारे ॥
भगति करी विश्वास सूं हरि पूरी आसारे ॥३॥

दादू जन हरिदासजी सुप लेष निरालारे ॥
करम तजै कर्ता भजै जीते जम कालारे ॥
सेवा जन सुष विलसिया भगतां वड नांमीरे ॥
अमरापुर आसण किया मिलि अन्तर जांमीरे ॥४॥

अनंत कोटिजन ऊधरे जुग जुग में भोगीरे ॥
राम सुमर रामै भया इंम्रत रस भोगीरे ॥
त्रिगुण तजि निर्मल भये तत तेग समाईरे ॥
कांम क्रोध मद लोभ की ले ठौर उठाईरे ॥५॥

साध साहव एक है भजतां भव भाजेरे ॥
जन रूपदास परि करि दया गुरुदेव निवाजैरे ॥६॥

राग सोरठी—

मनरे रतन जन्म क्यूं षोयो !
गुरु साधां को कह्यो न कीयो कै पायो कै मोयो ॥टेक॥
सील सन्तोष हृदै नहिं धारयो तन मन विष में वोयो ॥
निरभै होय रह्यो निसवासर पापी पाप संजोयो ॥१॥
अचवत जहर सवै दिन वीते उलटिन पूठो जोयो ॥
हरि विमुषन सों करी दोसती हरिजन तै सुप गोयो ॥२॥
झूठे तन को ले सिनगारयो नित उठि मलमल धोयो ॥
जम की झीक पड़ी तव झटक्यो पटक्यों पाछे रोयो ॥३॥
संकन मानी साहिबकेरी हरि सुमिरन नहिं होयो ॥
जन रूपदास अव क्या कहि उवरे नरकन मांहि डुवोयो ॥४॥

राग सिन्धू—

हरिपुरस हरिका मतवाला त्यागी अणरागी अवधूत ।।
कलि में भगति करी अति भारी सकल सुधारी सत सपूत ।।टेक।।

जुगजुग भगत हुआ कहो केता एक एक सूं चढती चाल ।।
अवधू एक अणयां के आगै धुरधर मंडियो आप दयाल ।।१।।

सांवत घर किन्ही सरसारी मांझी मार किये चकचूर ।।
इसडी ओर करे कुंण बीजो तनमन तोल वजाया तूर ।।२।।

अंजन छाडि निरंजन ध्यायो अरि गंजन रहियो इक भाइ ।।
उलटो षेल अगम सूं लागो निरगुण नाथ मनाइ मनाइ ।।३।।

रांम तणां रजपूत रंगीला हरिदास जन सूर सधीर ।।
रूपदास जन सरण तुम्हारी गाऊँ गुण पाऊँ सुष सीर ।।४।।

।। इति ।।

उनमे प्रमुख स्थानीय हरिदासजी महाराज थे तथा शेष एकादश उनके अनुगामी व शिष्यत्व-भावना वाले थे।

महाराज रामदासजी तथा दयालदासजी ने अपनी-अपनी भक्तमाल मे सेवादासजी का भी निरूपण किया है। सेवादासजी हरिदासजी से छठी पीढी मे थे। उनका जन्म सोलह सौ सताणवे तथा अवसान-काल सत्रह सौ अठाणवे, उनके पोता-शिष्य रूपदासजी ने अपनी रचना "सेवादासजी की परचई" मे लिखा है। रामदासजी महाराज का काल १७८३ से १८५४ तक का है व उनका रचना-काल १८१५ से माना जा सकता है। उनके समय मे सेवादासजी की ख्याति भी उसी रूप मे हो चुकी थी जैसे पहिले के साधक महात्माओ की। ये सब अवतरण देने का मेरा यह लक्ष्य है कि इनके प्रकाश मे हम उन मतभेदो पर विचार कर सके, जो भिन्न-भिन्न लेखको ने प्रकट किये है। आगे के प्रकरण मे उन मतभेदो पर ही विचार करना है।

मतभिन्नताएँ और उनकी समीक्षा—

प्रारम्भ में जहाँ जन्म, जाति, स्थान, उपदेश तथा उनके काल पर विचार किया गया है, वहाँ पर परपक्षों का दिग्दर्शन कराते हुए उनके उचित-अनुचित पर संक्षेप मे विवेचन किया गया है। कुछ प्रश्नो पर विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। अत· इस प्रकरण मे उन-उन मतभिन्नताओ का इसी दृष्टिसे विचार किया जा रहा है—

उत्तरी-भारत की सन्त-परम्परा मे माननीय पं० परशुरामजी चतुर्वेदी ने निरंजनी-सम्प्रदाय के विवेचन मे प्रारम्भ मे जिन सम्भावनाओ का दिग्दर्शन कराया है, उन्ही को क्रमशः लेना संगत है।

प्रश्न १—उडीसा मे प्रचलित निरंजनी-सम्प्रदाय का राजस्थान में स्थापित निरंजनी-सम्प्रदाय से सम्बन्ध—

लेखक–क्षितिमोहन सेन "मिडीवल मिस्टिसिज्म ऑफ इण्डिया" पृ० ७०

आचार्य क्षितिमोहनजी सेन ने पूर्व मे उडीसा में प्रचलित निरंजनी-सम्प्रदाय के राजस्थान मे स्थापित निरंजनी-सम्प्रदाय से सम्बन्ध होने की कल्पना शायद नाम-साम्य के कारण की है। फिर वह सम्भावना के ही रूप में है न कि सिद्धान्त के रूप मे। इस सम्भावना का महाराज हरिदासजी द्वारा स्थापित निरजनी-सम्प्रदाय से कतई किसी तरह का सम्बन्ध नही है। राजस्थान का यह सम्प्रदाय यही स्थापित हुआ तथा इसके प्रवर्त्तक स्वामी श्री हरिदासजी महाराज ही हैं। इसमे विशेष ननु-नच को स्थान नही है।

॥ श्री स्वामी रघुनाथदासजी ॥

स्वामी रघुनाथदासजी महामना महात्मा अमरपुरुषजी के शिष्य थे। इनका जन्म स्थान तथा जन्म काल अज्ञात है। ये रूपदासजो के गुरुभाई थे। रूपदासजो ने महाराज सेवादासजी की परचई लिखी है। उसका रचनाकाल सम्वत् १८३२ है। महाराज अमरपुरुसजी का काल १७५६ से १८६२ तक का है। जैसा कि निम्न साषियो से सिद्ध होता है —

सतरहसौ छप्पन समय, महासुदि चवदस राज ॥
सारस्वत घर अवतरे, श्री स्वामी अमर महाराज ॥१॥

सतरहसौ पिचोतरे, मिंगसर सुद आठम दिन ॥
अमरपुरुप महाराजजु, लियो वैराग सुधिन ॥२॥

अठारहसै बासठ समय, रूप चतुर्दशी दिन ॥
परमजोति भये प्रापति, श्रीगुरु परम प्रसन्न ॥३॥

इससे रघुनाथदासजी के समय का अनुमान किया जा सकता है कि वे अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध मे उत्पन्न हुये तथा उनका रचना काल उन्नीसवी का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिये। उनने परचई से भिन्न और भी कोई रचना की है। यह स्पष्ट नही है पदो मे इनके भी पद आये है पर यह कहना कठिन है कि वे पद इन्ही के है या अन्य किन्ही रघुनाथदासजी के बडू के स्थान की संग्रह पुस्तको म एक पुस्तक इन्ही रघुनाथदासजी की लिखी हुई है जिसका लेखनकाल १८२३ है। इससे व्यक्त होता है कि इनने जो परचई लिखी है वह १८३० के आसपास की रचना है। परचई मे विशेपतया महाराज हरिदासजी के चमत्कारो का निरूपण है पर उससे उनके परिभ्रमण क्षेत्रों का भी परिचय मिल जाता है। परचई मे महाराज हरिदासजी के स्वर्गारोहण का काल लिखा है तथा चमालोस वर्ष घरमे रहने का तथा चमालीस वर्ष गृहत्याग के पश्चात् साधना मे रहने का उल्लेख है।

हरिदासजी महाराज की प्रथम परचई महात्मा हरिरामदासजी कृत है। पर वह अति संक्षिप्त है रघुनाथदासजी की परचई विस्तृत है इसमें पन्द्रह विश्राम है। रघुनाथदासजी का स्वर्गारोहण कब हुआ यह ज्ञात नहीं। परचई पूरी आगे दी जा रही है।

॥ रघुनाथदासजी कृत ॥

॥ अथ श्री स्वामीजी हरिदासजी की परची लिख्यते ॥

दोहा—

नमो नमो निज देवकूं सतगुरुकूं सिर न्वाइ ।
सब सन्तन कूं वंदि कै परचा कहूँ सुनाइ ॥

चौपई—

नाम कबीर सुकदेव सयाना ध्रू प्रहलाद सबै सिर जाना ।
सबही संग कृपा मोहि कीजै बुधि तुछ है दीरघ करि दीजै ॥
गोरखनाथ भरथरी चरपट सबही संत करौ बुद्धि प्रगट ।
श्री अमरदास गुरुदेव प्रणामा भगति हेत दीजै मोहि स्वामा ॥
स्वामी सेव पुरुषकूं ध्याऊं ता परसाद अकिल अति पाऊं ।
ऐसी सक्ति नांहि कछु मेरी चाहत कृपा संतन केरी ॥
परचा करनै की मनि भई देव निरंजन आज्ञा दई ।
फुनि सब संत कहैं विधि ऐसी बुधि तेरी अनुसार जु तैसी ॥
तातें सबहिन कूं सिर नाऊं जन हरिपुरुष की परचई गांऊं ।
करै करावै आपन स्वामी चाकर षिद्मति करै गुलामी ॥
हरीदास है हरि उनहारा जीव तारन कूँ लियो अवतारा ।
आए आप निरंजन सांईं हरिजन हरीदास अंतर कछु नांही ॥
निरगुन ग्यान लिये मतिवारा भरम करम तजि झूठ पसारा ।
ग्यान ध्यान की उचरै वाता निरगुण ध्यान सही मन राता ॥
अलष पुरुषसूं चितवित लायो गोरषज्ञान समझि कै पायो ।
सब घटि व्यापक ब्रह्म हि देखै अंतर मांहि निरंजन पेखै ॥
कलिजुग मांहि इसो मत लीयो ब्रह्म ग्यान उपदेस जु दीयो ।
ज्यूं पहुमी सूरज उजियारा त्यूं जन हरीदास अवतारा ॥
जब ही जीव अग्यान बंधावै ज्यूं सोवत सपनै भरमावै ।
दुख सुख पाइ राजी कहुं डरै तवही तुरत साहि कोउ करै ॥

तैसे हरीदास अवतरिया दुषी जीव सुखमें करि धरिया ।
अवगति आप अलेष विधाता प्रगट देव निरंजन राता ॥
जोग जुगति धारना पूरी अलख पुरुष सूं सदा हजूरी ।
भगति ज्ञान वैराग बखानौं सब जीवन सुखदाई जानौं ॥
आगे संत सुणे सब कानां जन हरिदास तैसे परवाना ।
सील साच संतोष सबूरी काम क्रोध सब कीया दूरी ॥
तन मन पवन सबै सरि कीया देव निरंजन अन्तर लीया ।
मैं मेरी सूं प्रीति न राखै राग द्वेष त्यागि हरि भाखै ॥
निरलोभी निरदइक स्वामी अलख अरूप अंतर के जामी ।
त्रिगुण त्यागि निरगुण चित दीया बेहद पदमें वासा कीया ॥
अणकही महा अति गहरी जाने मरम संत कोऊ महरी ।
मत अवधूत पणै को लीयो हरष सोक को त्याग जु कीयो ॥
अन्तर गति में ध्यान लगावै मौन महातप कहत न आवै ।
जो कोऊ प्रश्न करै संसे की ताको संसो हरै बिबेकी ॥
जे बोले तो हरिजस कहि है अणबोले अंतर में गहि है ।
ऐसी दसा बिदेह अगाधू वेद कहैं पुनि सब ही साधू ॥
अनहद रस अभि अंतर पीया परचै जोति मांहि मन दीया ।
ऐसी चाल अगाध अपारू सबतैं उत्तम अगम विचारू ॥
सबही कहैं अपणे उनमानां जन हरिदास बेहद प्रवानां ।
जीव अज्ञानी करणकूं पारी आए स्वामी परम उपगारी ॥
सब जीवनकूं ज्ञान बतावैं ज्ञान सुनाइ मुक्ति पहुँचावैं ।
आप सदा निरगुण उनिहारा देव निरंजन अलख अपारा ॥
इहि अस्तुति कही कछु थोरी जैसी बुधि उनमान जु मोरी ।
आगे परचै कहूँ सुनाई कृपा करि जो देह लखाई ॥
महिमा अगम अगाध अपारा बरणै कोण जु परम विचारा ।
ऐसी बुधि उनमान जु सारू जन रुघनाथदास सो कियो विचारू ॥

दोहा—

वेद पार पावै नहीं नाग न जाणै भेव ।
अपणै वित उनमान तूं जन रुघा वरणेव ।।

चौपई—

विश्राम १

प्रथम डीडपुर प्रगटै आई *बरस चमाल गृह मांहि रहाई ।
पछिम दिसा भाखर है सोई तहाँ जंगल में रहते जोई ।।
एक दिनां प्रभुकी गति भई अंतर जामी आग्या दई ।
गोरख ग्यान देणकूं आए अपणे जाणि कृपा करि धाये ।।
जब देखे गोरषकूं आवत तब आए नेडे समभावत ।
गोरख बुधि फेरी तिहि काला वचन एक तब कह्यो दयाला ।।
हूं तेरा कपड़ा हरि लेऊं पीछे तोकूं जावण देऊं ।
तब गोरष बोले हरि बाता कौण भरोसे हरैं विख्याता ।।
त्रिया पुत्र बूझिकै आई पीछैं पेवन लै तुम जाई ।
जब उहैं हम तेरे संगा तो तूं करि हरणै को ढंगा ।।
तब उन कह्यो पछे तुम जावो इहि औंलाब हमहि समभावो ।
तब गोरष बोले सुण भाई हूं जाऊं तो अलख दुहाई ।।
तब ए घर पूछणकूं आए त्रिया पुत्र बैठे तहां पाए ।
देखि इनैं ए बचन उचारा बुरी भली के संग हमारा ।।
तब उन कह्यो संगकी जे है जौष पडै तो आंणिर देहै ।
हम तो तेरे बांसे आए बुरी भली में नांहि पराये ।।
तब इन ग्यान अंतर में पाया गोरषनाथ पै दोडिर आया ।
दरसण करत फिरी मति जब ही अंतर ध्यान भए प्रभु तब ही ।।
जब ए चलि भाषर में आए गुफा हेरि करि ध्यान लगाए ।
ध्यान धरत केते दिन भयऊ लारैं षबरि हुई कहां गयऊ ।।
तब हेरत हेरत भाषर आए जन हरिदास बैठे तहां पाए ।
अब तुम क्यूं छाड्यो है गेहा वृध भए मनि आई केहा ।।

तब इन कह्यो झूठ संसारा पुत्र कलत्र राज दरबारा ।
सबै नरक की है नीसानी राम भगति बिन बूडे प्राणी ॥
मैं मेरी करि करि गरबावैं माता पिता झूठ कुल ध्यावैं ।
सासू ससुर न सारा कोई स्वारथ अरथ लगे कुल दोई ॥
तातें हूँ हरि सरणैं आयो गोरषज्ञान गह्यो मन भायो ।
तब सबहि न के इह मन आई हरीदास हरिसूं ल्यो लाई ॥
सब ही चलिजु अपूठे आए दीन बचन प्रणाम कराए ।
सब तजि हरि सूं हेत लगायो ध्यान समाधि जोग अवगाह्यो ॥
ज्ञान वैराग भजन हरिकेरो ऐसे मिटि है जग को फेरो ।
सब तजि भ्रम कीयो हरि साथा सो जस गावै जन रुघनाथा ॥

दोहा—

संग तज्यो सब जगत को कियो अलष को साथ ।
हरिदास हरि का थका गावै जन रुघनाथ ॥

चौपई— विश्राम २

गोरष ग्यान समझि कैं लीयो हिरदै हरि को सुमिरण कीयो ।
बहुत दिनां डूंगर में रह्या प्रेम प्रीति सूरापन गह्या ॥
देवी एक सहर में होई पाढा नाम जाणिलै सोई ।
सो दयाल कै सनमुष आई करि प्रणाम चरन लपटाई ॥
स्वामी मो कूं दछ्या दीजै भौ बूडत कछु सहाइ करीजै ।
ऐसी करणां देखी जब ही प्रसन्न भये दयालजु तबही ॥
कृपा करि माथै कर दिया ग्यान ध्यान उपदेशजु दीया ।
दया दीनता दिल में लीजै काहू कूं दुष नाहिंन दीजै ॥
सबै सिष्टि साहिब की करी तामैं देखो केवल हरी ।
यह उपदेश दियो माता कूं देवी सिर न्वायो दाता कूं ॥
करि प्रणाम सहर मैं आई टहल करन की मन रुचि भाई ।
एक महाजन द्वारो नांव देवी आई ताके ठांव ॥

अरध रात को हेलो दियो द्वारे तुरत श्रवण सो कियो ।
ऊठिर आयो बाहरि भौने हेलो दीयो मोको कौने ।।
तब देवी बोलै सुणि द्वारा हूं पाढा आई तो सारा ।
हरीदास मोरे गुरु देवा मनसा वाचा करि तूं सेवा ।।
तब द्वारौ बूझै एक बाता कैहां विराजै गुर तुम माता ।
तब देवी बोले समझाई पीर पहाडी मांझ रहाई ।।
ताके मांझ गुहा अदभूता तहां बैठे गोरख के पूता ।
द्वारै वचन सत्ति मन भाई माता उलटि दिवालै आई ।।
भोर भये द्वारौ उठि आयो पाणी अर परसाद जु ल्यायो ।
गुफा बताई जहां चलि गयो तहां दयाल को दरसन भयो ।।
जाइ द्वारै बीनती करी दीन वचन सुणि बोले हरी ।
आव राम का बैठि भलाई तेरे मन में अंछ्या कांई ।।
तब द्वारो कहै अंछा दरसन की मेरे मनमें पद परसण की ।
कृपा करि भोजन यह पावो मेरो जनम सफल करवावो ।।
तब दयाल जल छांणिर लीयो ता पीछे सूं भोजन कीयो ।
भोजन करि बैठे जु विधाता द्वारै ज्ञान की बूझी बाता ।।
कैसी भांति जीवन सूँ तरि हैं गिरही जनम सफल क्यों करि हैं ।
तब दयाल बोले समझाई गिरही कूँ सेरी नहि काई ।।
माया सेती लायो नेह छीजै ज्यूँ लाहाला लोह ।
तब द्वारौ मनमैं अति डरियो करना बहौत रुदन हीं करियो ।।
फिर दयाल बोले उपगारी सेरी एक गृसत कूँ भारी ।
संतजनां की संगति करै मनमैं हरिको सुमरन करै ।।
कथा कीरतन हरि जस गावै प्रेम प्रीति प्रवाह बढावै ।
ऐसी भांति होइ निसतारा कहै दयाल तू सुणि हो द्वारा ।।
तब याकै प्रतीति जु आई द्वारो सेव करै चित लाई ।
पाढा करै दीद गुर केरा जनम सफल कीयो यह बेरा ।।

द्वारै यूँ उपदेश जु लीयो सतगुरु जाण चरण मन दीयो।
भाग बडे दरवेस जु दयाला सो जस कहि हैं जन रुघ बाला ।।

दोहा—

दया भई दयाल की द्वारो पायो ग्यान।
अब परचो गागरि तणो कहै रुघनाथ बखान ।।

विश्राम ।।३।।

चौपई—

एक समै द्वारो चलि आयो गागरि भरि पाणी को ल्यायो।
ऊँचे पाहड़ बैठे जाई तहां गगरी मेल्ही आई ।।
हाथ तजत गागरि सो गुडी गुडत गुडत नीचे जाइ पडी।
महा सघन बृष था तहियां अटकी नहीं कहूँ ता महियां ।।
लच्मीसुत गागरी कहिये परबत सुत पथर में लहिये।
इन दोऊ मिलि मांड्यो जंग हरि परताप सूँ रही अभंग ।।
गागरि रही साबती भाई मांहि नीर सो चुप न गिराई।
द्वारे जाण्यो जल सब गिरयो तबही सोच बहुत मन करथो ।।
अबगति गति जाणै नहिं कोई रीता भरे निमिख में जोई।
तब दयाल बोले सुण द्वारा जाइ गागरी क्यों न संभारा ।।
तब याके मन ऐसी आई कैसे गागरी थीर रहाई।
वहौ सूँ फेरि कहैं सुण प्यारे राम धणी है रापण हारे ।।
जब जाइ गागरि आंख्यां देखी बचन सुणै सो किये विसेखी।
तुरत हाथ में लेकर आयो जन हरिदास को परचो पायो ।।
एसी विधि तहाँ रहे दयाला, जे कब गोरप होइ कृपाला।
इच्छा दरसन की मन भई, और वात सब परिहरि दई ।।
रात दिवस ध्यान गुरु केरो, दरसन देऊ अति आतुर चेरो।
माया छल बल वहुत उठाए, नाथ रूप धरि धरि के आए ।।
पर हरीदास छल सबही आने, नाथ प्रसाद अगम बपियाने।
मुषसै कहै गोरषहूँ सोई, कृपा करिकै आयो जोई ।।

तब बोले हैं आप विधाता , झूठे छल करि हैं क्यूं माता ।
एसे वचन सुणे जब कानां , तब माया फिरि चली निदानां ।।
तब गोरष अपणौं कर लियो , दरसन आय आप कै दियो ।
हरीदास उठ पांइ पराई , दीन वचन सूं विनय कराई ।।
तुम बिन हमें कौण प्रतिपारै , कौण हमारे कारज सारै ।
तुम दयाल देवन के देवा , गण गंधर्व सब करि है सेवा ।।
मानष पारन तुमरो जांनै , अगम अगम सब देव बषानें ।
जन हरीदास डंडोतजू कीन्हा , माथे हाथ नाथ तब दीन्हा ।।
गोरष ग्यांन की कथा सुनाई , हरीदास तूं सुणि चित लाई ।
पिंड ब्रह्मण्ड में सिद्ध ह्वै जाणों, ग्यांन अरु गोरष परवाणों ।।
देह भरम सब दूरि उठाई , ग्यांन गोरष सूं चित्त लगाई ।
हरीदास गोरष की गाथा , रुचि रुचि गावै जन रुघनाथा ।।

दोहा—

ग्यांन दियो हरिदास नें , मेल्हयौ माथै हाथ ।।
गोरषनाथ जू रमि गए , सति भाषै रुघनाथ ।।१।।

।। इति विश्राम ४ ।।

चोपई—

गोरषनाथ ग्यांन यह दीन्हो , जनहरीदास हिरदै धरि लीनों ।
आन भरम सब दियो उठाई , देव निरंजन सूं ल्यो लाई ।।
ग्यांन ध्यांन पूरण धन पाया , जोग भगति वैराग सवाया ।
अरस परस आतम सुख मांही, जनहरीदास मिल रहे सदाही ।।
ता पीछै ऐसी मति धारी , भाषर तजि विचारैं संसारी ।
नगर नजीक डीडपुर आये , दरसण करि सबही सुष पाये ।।
परमारथ पर जन उपगारी , आप सदा हरिनांम मंझारी ।
जैसे कवल अम्ब में रहै , कबहू न लिपै यह पणगहै ।।
ऐसे हरीदास जग न्यारे विचरें, महा निरगुण मत धरे ।
सहर नजीक जाइगा देषी , तहाँ विराजे चतुर विवेकी ।।

लोग महाजन दरसण करि है, निसदिन सीसचरन तन धरिहैं ।
ऐसे रहैं डीडपुर मांही, बहुत दिवस हुए है तांही ॥
अब तुम सुणो ग्यांन की चरचा, हुयो दूसरो जिहि विधि परचा ।
एक नगर में ऊगो पीपर, सबै महाजन बोले भें करि ॥
या कूं अबै खोद ही डारो, होंई दीरघ तब करे बिगारो ।
तबै महाजन काटन लागै, वहां दयाल बैठे थे आगे ॥
कह्यो उनाकूं काटो मति ही, मेरी बात तुम मानों मत हां ।
एसी बात कही है तिन सूं, वहांरयूं अरज करि हरिजन सूं ॥
हे दयाल पीपल दुख दाई, जड़सब नीव मांझ यह जाई ।
तब ही ग्रह होई है दूरा, तुम उपगारी करो कछु पूरा ॥
जन हरीदास बोले यह बानी, पीपर रहसी एती जांनी ।
देव निरंजन के जस गावो, मन बंछित तब ही फल पावो ॥
पीपर मांहि पांव परधारै, हाथ धोय के पांणी डारे ।
यह परचौ प्रत्यख में जानों, जन हरीदास प्रताप बखानो ॥
डीडपुरेत मांझि यूं रहें, निरगुण ग्यांन सबनि को कहैं ।
परम दयाल परम उपगारी, मूरख मर्म न लखै लगारी ॥
जो काहू पर कृपा व्है है, तांकू ग्यांन आपणों देहै ।
पर ग्यांनी मत एसो धारयो, सत्रु मित्र समिसवै बिचार्यो ॥
ज्यूं सूरज समद्रष्टि सारै, राव रंक कूं एक निहारे ।
यूं जन हरीदास हरि मांहि, राग दोष काहू सूं नांहि ॥
एसे सदा आनंदी दासा, माया मोह तजी सब आसा ।
भरम करम छाडै सब दूरा, तब हरीदास पायो पद पूरा ॥
एक दिनां बैठे सब कोई, रांम नाम की चरचा होई ।
एसे करत बात एक कहि है, नागपुरेत भूत यह कहि है ॥
सोई दुष्ट दुष सबकूं देवे, कटिन महा कोई लहेन भेवे ।
एसी बात सुनीजु दयाल, यो हम मेटैं दुष तत काला ॥

अपने मनमें राषी वाता, वाहिर कूं काहून लषाता ।
परमारथ की वुधि नित रहि है, सो जस जन रुघनाथजु कहि है ॥

दोहा—

कारन कोऊन देषिए, विचरन जगत मंझारि ।
दुषमेटण सुष करण कूं, हरिजन करै सेवारि ॥१॥

॥ इति पंचम विश्राम ॥

चौपई—

तब दयाल उठि चले सँवारा, ग्यांन ध्यान निगुंण मन धारा ।
ऐसे रमता रांम के प्यारे, सनै सनै नागोर पधारे ॥
पूर्व दिसा नगर सूं वापी, तहाँ वित्रवो रहतौ पापी ।
आस पास कूवा अरु सरवर, सबही सूनां कीया तरवर ॥
मिनष न कोई जावण पावे, जोर जाइतो गोता पावै ।
तातें महा भयानक ठौरा, प्रेत विना नहि दीसे औरा ॥
तहाँ आइ उभे रहे स्वामी, यो तो वित्र है महा हरांमी ।
जाय वावडी मांही पैठा, कर सिध आसन ध्यान में बैठा ॥
यो तो कहूँ गयो हतो भूता, दिवस तीसरै आयो दूता ।
आव तमासो देषियो नैना, तवै वित्र बोल्यो यह वैना ॥
कुण वैठो है मम ग्रह मांही, मेरी संक कछु मानी नांही ।
तव दयाल बोले सुण प्रांणी, हूं छू हरीदास निरवांणी ॥
इतने बचन सुनें जब वित्रा, नाटिक करन लग्यो अनंत्रा ।
पहिले आन्धी अर मीटौरा, भैसो रूप धारि है वोरा ॥
वहौत भांति चेटक वहाँ करे, महा निडर स्वामी क्यूं डरै ।
ल्यावे अगनि उछाले षीरा, जैसे वहै सघन घननीरा ॥
लघु दीरघ बहु देह दिषावे, उभौ दूर निकट नहिं आवै ।
ऐसे झूठे गइये लाजा, जाइ पुकारयो अपने राजा ॥
एक मानई वैठा आई, मेरो गृह उन लियो छिनाई ।
नृपति पास षडे वहौ भूता, दीये साथ चले उठ दूता ॥

प्रश्न २—इसी विषय के प्रतिपादन मे आचार्य हजारीप्रसादजी द्वारा लिखित 'कबीर' का उद्धरण दिया गया है। उनने व्यक्त किया है कि उडीसा के निरजनी-पंथ के प्रवर्त्तक भगवान् निरंजन माने गये है। पर उनके काल, रचना व सिद्धान्तों का कोई रूप सामने नही है। अत. पूर्व और पश्चिम के इन दो पन्थो के कब और कैसे सम्बन्ध स्थापित हुए–यह स्पष्ट नही कहा जा सकता। उक्त उद्धरण से उपर्युक्त तथ्य का ही पोषण होता है कि राजस्थान का यह निरंजनी सम्प्रदाय किसी अन्य निरंजनी सम्प्रदाय से पोषित नही है।

प्रश्न ३—निरजनी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक क्या जगन (जगन्नाथदासजी) माने जायें ? जैसा कि भक्तमालकार ने लिखा है।

तीसरा प्रश्न है निरजनी-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक के सम्बन्ध का और वह इस आधार पर उठाया गया है कि राघोदासजी ने अपनी भक्तमाल मे चार निर्गुण पंथो के प्रवर्त्तको के नाम दिये है, उनमे नानक, कबीर, दादू, जगन का निर्देश है। भक्तमालकार ने आगे पन्थ-वर्णन की जगह बारह निरंजनी महन्तो का निरूपण किया हैं। उन बारह मे जगन किसी का नाम नही है। चतुर्वेदीजी ने कल्पना की है कि बारह निरंजनी महन्तो के निरूपण मे सर्वप्रथम "लपट्यो" जगन्नाथदासजी का वर्णन है। ये ही जगन्नाथदासजी 'जगन' नाम से ऊपर लिखे गए है। कल्पना सर्वथा निराधार तो नही है। जगन्नाथ–जगन मे साम्य तो माना जा सकता है पर जगन्नाथ-दासजी के वर्णन मे ऐसा कोई निरूपण नही है, जिससे यह सिद्ध हो कि इन्होने निरंजनी-सम्प्रदाय की स्थापना की। जगन्नाथजी के निरूपण से स्पष्ट होता है कि वे अत्यन्त त्यागी तथा तितिक्षु थे। जहाँ हरिदासजी का निरूपण किया है, वहाँ उनको निर्गुण उपासक तथा निरंजनी कहलाने का उल्लेख है। जैसा कि छप्पय का तृतीय चरण है—

जत सत रहणि कहणी करतूत बड़ौ,
हर ज्यूं क हर हरिदास हरि गायो है।
विरक्त वैरागी अनुरागी लव लागीं रहै,
अरस परस चित चेतन सूँ लायो है ॥
निर्मल निर्वाणी निराकार को उपासवान,
निरगुण उपास कै निरंजनी कहायो है।
राघो कहै राम जपि गगन मगन भयो,
मन वच कर्म करतार यों रिझायो है ॥२८॥

उनको मार परौ काढीजै, ठौर आपनी वस करि लीजै ।
यूं कहि राजा दूत पिंदाये, चले चले वापि ढिग आये ।।
आवत सवाँ चरित वहौ करि है, लम्बे दान्त देषि कै डरि है ।
स्वामी पलक षोलि नहिं देषै, सबै चिरत मिथ्या करि लेषै ।।
रात गई सब हुवो उजालो, तब उन भूत कह्यौ तुम चालो ।
दूत गयो सो फिरकर आया, जन हरिदास का थाहन पाया ।।
तब वो वित्र निकट चलि आयो, डरत डरत मन में पछतायो ।
दरसन करत फिरी मति जबही, करण वीनती लागो तबही ।।
हे दयाल ! देवन के देवा, मैं अग्यांन जाण्यो नहि भेवा ।
गुन्हो मेटि दिच्या मोहि दीजै, अभैदान दे अपणो कीजै ।।
तुम कृपाल सबन सुषदाई, पतित जीव के करन सहाई ।
पाप ताप सब दूरि निवारौ, पाट षोलि करि द्यौ दीदारौ ।।
तब दयाल दया मन आई, पलक षोलि करि दरस दिषाई ।
ऐसे कह्यौ प्रेत सु'ण वांणी, हूँ तोहे सीष देऊँ मन जाणी ।।
काहू को दुष नाहि न दीजै, निर्मल नाँव प्रेम रस पीजै ।
दया दीनता दिल में ल्यावो, याह्रूं बेग अभै पद पावौ ।।
ऐसी दयाकरी हरिदासा, करम भरम के कह गये पासा ।
निर्मल बुद्धि भई है जबही, टहल करन मन आई तबही ।।
हे दयाल इहाँ कबै पधारे, षांन पान नहिं मिल्यौ हमारे ।
तब दयाल बोले परवींणा, आयाँ भये यहाँ दिन तीना ।।
तब फिरि वित्र कहै मुरझावत, मेरे डर यहाँ कोउन आवत ।
भोजन भूष तुम्हें अब लागी, बहौ अपराध किये मंद भागी ।।
करो कृपातो भोजन ल्याऊँ, तुम्हें पवाइर हूं सब पाऊँ ।
तब दयाल ऐसे समझावे, तेरो भोजन काम न आवे ।।
फिरकै वित्र बोलियो वैना, भोजन ल्याऊँ उत्तम ऐनां ।
जन हरीदास बोले विधि ऐसी, ज्यूं तेरे इच्छा कर तैसी ।।

दोहा—

आग्या लई दयाल की, आयो नगर मंझारि।
सुन्दर भोजन कूँ रुघा, भूत करै उपचार ॥२४॥

छठा विश्राम

चौपई—

एक महाजन चले परदेसा, वणवायों भोजन अति वेसा।
तडको घडी चार को रह्यौ, तब उन ले माता कूं कह्यौ॥
ल्याव कचोलो भोजन केरो, हूँ चालूँ अब होइ निहोरो।
तब उन हार्थनि करि कह्यौ, भूत विचाले हीसूँ गह्यो॥
कहे महाजन दे क्यूं नाही, माता कह्यौ दियो कर मांही।
ऐसे वित्र प्रसाद जू ल्यायो, छिनक माहि वापी चलि आयो॥
लेय वाटको आगे धरियो, स्वांमी कूं प्रणाम जु करियो।
तब दयाल जल छांण्यो सोई, महा कृपाल पापी पर होई॥
पाय प्रसाद प्रसादी दीन्ही, नमसकार करि वित्रही लीन्ही।
जन्म जन्म के कटि गये पापू, महा अगाध स्वामी परतापू॥
तब कह्यौ वाटको देकर आऊँ, जहाँ ल्यायो तहां धरि दे नाऊ।
वित्रै जाइ वाटको धरियो, ठालो हाथ महाजन परियो॥
सोधत सोधत नीठ जु पायो, भली भई वट को घरि आयो।
ऐसे मात पुत्र मन आई, वित्र तुरत पूठो फिर जाई॥
आप दयाल कें सनमुष भयो, हाथ जोंरि चरनन मनदयो।
तब दयाल बोले कृपाला, मन पवना करि सुरति ही माला॥
एकं जीव राषि सुणि भाई, जन हरीदास हरि कथा सुनाई।
ग्रन्थ नाम है ब्रह्म सतूता, सो सरवण करवायो भूता॥
सुणत सुणत जब भोगजु आयो, जोति सरूप हो दरस दिषायो।
तेज पुंज में मिल गयो प्राण, प्रेम मुक्ति रुघनाथ वषांणी॥
जन हरीदास वहौ कृपा करी, वित्र ताप निमष में हरी।
पूरण परमानंद दयाला, पर उपगारी जीवन प्रतिपाला॥

तब सबहिन सूँ कहै उपदेसू , जाइ बावडी करो प्रवेसू ।
सबही ठौडजु बसती होइ , हरि प्रताप बोलै सब कोइ ॥
एसे दुष सब काढ्यो स्वामी , जांण राइ सब अन्तर्यामी ।
अब तुम सुणो सिलाकी वाता , छल छिद्रहि प्रगट दिपराता ॥
एक मानइ दोषी थाई , वीर मंत्र करि सिला उडाई ।
चली चली सिल आई जहां , जन हरीदास बैठे थे तहाँ ॥
आवत सबी नजर जब देषी , तब बोले हैं चतुर विवेकी ।
हरि को हुकम नही है तोही , चली कहाँ जात है सोई ॥
बोल सबा अधर सो रही , हरि प्रताप एसी विधि कही ।
रहे वहौत नागपुर (नागौर) माही , सबै लोग दरसन करि जांही ॥
निर्गुण ग्यान को करै प्रमोधू , दया दीनता दिल में सोधू ।
ऐसी विधि सब सहर चितायो , ग्यांन ध्यान उपदेश बतायो ।
ता पीछे रामत की धारी , परम दयाल आप उपगारी ॥

दोहा—

रहे वहौत नागोर में , सबहिन पायो ग्यान ।
अब परचो अजमेर को , ताको करूं बपान ॥

॥ इति सप्तम विश्राम ॥

चौपई—

नागपुरे तै रामत कीनी , आग्या निराकार की लीनी ।
सनै सनै सूँ चाले नितही , जोप पडै तब बैठे कितही ॥
ऐसे रमत वहौत दिन लागे , दरसन कियो भाग तिन जागे ।
सहर मांहि हाथी इक होइ , ताकी बात सुनाऊ सोइ ॥
महामद मातो फिरै अग्यांनी , ढाहै कोट दसू दिसि कानी ।
जो कोइ मांनिष आँख्यां दीसै , तो तन चींर दांत सूं पीसै ।
ऐसे सबही डरि हैं लोइ , सनमुष रहन न पावे कोइ ।
कष्ट नगर कर देष दयाला , चले अजमेर होइ कृपाला ॥

चलते चलत सहर में आए, दिष्टि मुष्टि हरि मांझ लगाए।
फिर सामाह्र हसती आवत, मारे मिनप कोट सब ढावत ॥
तब यूं लोक कहत है वाता, स्वामी टरौ गेंद मद माता।
एसे कहि भागे सब लोगू, हाथी हरिजन बण्यो संजोगू ॥
जनकूं देषि मसतग निवौयो, दरसन करत ग्यांन मन आयो।
जन हरीदास माथै कर दियो, आतम द्रष्टि आपनो कीयौ ॥
तब तैं हाथी समझ बहाइ, जन हरीदास की आग्या पाइ।
आपन वहौरि चले है आवो, काल जाल दुष सबही भागो ॥
रहे सहर मैं दिहस सवाया, लोगनि दरस कीयो मन भाया।
रांम नाम उपदेशजू देहैं, करम धरम सब दूर करै हैं ॥
ता पीछे उठ चले दयाला, अजैपाल मन मांहि संभाला।
नाग पाड मांही वे रहि हैं, वचन कहैं सो अन्तर गहि हैं ॥
चलत चलत आगे जब आये, उभै साध बहौरयूंज मिलाये।
परसरांम अरु षोजि कहिए, जन हरीदास मिलि तीनूँ भइये ॥
रांम रांम तीनां मिल कीन्हा, ऐसे कहे दरस हरि दीन्हा।
चलो भाषर कै ऊपर जावाँ, संग मिले हरि के गुण गावाँ ॥
तब दयाल कहै चलो भलांइ, जो तु इच्छा तुमरे मन मांई।
तीनों चलत भाषर मैं आये, अजैपाल बैठें तहाँ पाये ॥
चार पांचि बकरी ढिग चरै, आप विराजे सुमरिन करे।
इन दूरांह्र दरसन पाया, जूवा जूवा मता कराया ॥
जन हरीदास कै यह मन आइ, सति अवधूत दीसत है भाइ।
परसरांम मन मांहि बिचारी, यह तो माया पातर भारी ॥
अरु षोजिकै इह मन वैसा, दीषत है संजोगी तैसा।
तीनू मता मन मांहि कराया, बाहरकूं कछु कहिन जनाया ॥
चलत चलत नैडा जब गए, अजैपाल कै सनमुष भये।
तब अजैपालयूं बोल्यो सोइ, जैसी मनसा तिसी सिध होइ ॥

जन हरिदास प्रश्न यूं करि है, मनसा को रांम क्यू करि परि है।
तुमसूँ मालुम है सब देवा, कृपा करिजु लपावो भेवा ।।
तव अजैपाल बोले इह वांनी, गुपत वात हम प्रगट जांनी।
सो अब कहूं सुणो तुम बाता, तीनाकूं भिन्न भिन्न लपाता ।।
हरीदास तुम ऐसी धारी, यौं अवधूत दीसत है भारी।
तो मनसाइहु सति है पूता, नाथ प्रसाद तुम प्रगट अवधूता ।।
परसरांम मन में इहु धारी, माया पातर दीसै भारी।
तो या के माया बहु होइ, षावो विलसो सुषसूं सोइ ।।
षोजी जांण्यो है संजोगी, ता मनसा पूरण भल भोगी।
तेरे सत्री होइ है भाई, ये सबकूं हम सत सुनाई ।।
जो अजैपाल कही विधि एसी, सबकै सिधि भइ है तैसी।
जन हरिदास अवधूत कहाया, ग्यांन ध्यान पूरण सुप पाया ।।
करि प्रणाम दयाल पधारे, सनै सनै नीचेजु सिधारे।
आप अकेले हरि हैं साधू, नमसकार कहि है रुवनाथू ।।

दोहा—

अरध उरध मध लोकलों, देषी सवही ठौर।
जन रूपा हरिदास समि, नांही कोइ और ।।२५।।
गोरष कहूँक भरथरी, कहूं सन्त सुषदेव।
जन हरीदास हरि एक है, और न जांणू भेव ।।२६।।

॥ विश्राम आठ ॥

चौपई—

वहौरयूं रमे माषर सूँ भाइ, सनै सनै हरिसू ल्यौ लाइ।
महा अडिग अडोल अभेवा, मूरष पसून जांणे भेवा ।।
एक गांव के मांही आए, नीची द्रष्टि चलन चितलाए।
लोग बहुत वैठे थे तँहियां, उन मिल बात करी मन महियां ।।
यो हेरौ दीसत है भाइ, पकडो वेग भाग नहिं जाइ।
जन हरिदास प्रगट सब जानें, अंतरजामी सूँ कहा छाने ।।

हम हेरूँ है अविगत केरो, अंतरमांहि निरंजन हेरो।
मन मनसा को उलटी ल्यावत, इहै ग्यान उन को समझावत ॥
अष्टपदी ग्रन्थ उँहाही होई, कर उपदेस दियो सुष सोइ।
सबकै मन अचरजसो भयऊ, आइ प्रीति भरम सब गयऊ ॥
पांवां आप दयाल कै परयां, चरणा मांही मस्तक धरया।
हे दयाल म्हे समझे नांहीं, तुमतौ रांमरूप हो साँई ॥
तवै दयाल संतोषे सवही, सुन उपदेस भक्ति हरि गही।
सन्तजनां की सेवा करौ, रांम नाम हिरदा में धरौ ॥
इहै उपदेस दियो मन जानी, करि प्रसाद रामत की ठांनी।
सनै सनै चले हरि जना, निरगुण इष्ट निरंजन मना ॥
ऐसे चलत आए इक गांऊ, तहां की बात सब तुम्हे सुनाऊँ।
टीवे ऊपर ध्यान लगायो, तबे गाँव में सुण सब पायो ॥
एक साध वैठो है आइ, ताहि प्रसाद ले जांणो भाइ।
तुरत महाजन भोजन ल्याये, तब हीदास जन भोग लगाये ॥
इतने मांहि एक चारण आयो, देषत पांण तुरत बतलायो।
चौडे वैठ चपेटे रोटी, याकी गरदन दीसै मोटी ॥
इतनौ गुणत बोले जु दयाला, रोटी रटण गहै ततकाला।
आलस तुछ कीजै नहिं भाइ, निसदिन अवधि घटत घटिजाइ ॥
यूं दयाल याकूं समझायो, बचन सुणे जब निकटै आयो।
वारापदी ग्रन्थ है सोइ, सो ततकाल प्रगट उहाँ होइ ॥
वाकै आयो ग्यांन अपारू, बहुरचो महमा करत विचारू।
स्वाद वाद सबही छिटकाया, पांच पिसणकूँ जीति सवाया ॥
महमां किताए कउ वरौं वीर, कलिमें प्रगटै जेसे कवीर।
एसी भांति विनती कीन्ही, चारण दिच्या दयाल की लीन्ही ॥
दे उपदेस रमे ततकाला, ग्यांन ध्यान गुरु वचन सम्हाला।
गोरष कूँ सद मसतक राषे, ऐसे रमत रांम रस चाषै ॥

हवरे हवरे धरि है पांऊ , मनमें अलष निरंजन ध्याऊँ ।
जोग जुगति ध्यांन मन धारे , परमारथ करि जीव उधारे ।।
ऐसे रमत रमत चलि जांइ , टोडे निकट पहूँचे आइ ।
एक सर्प ताखो तिंहि नांऊ , सो भोग्यौ होतो उसगांऊ ।।
बहुत द्रव्य सांच्यौजू ठौरा , षरच्यौ पायो नाहिन बौरा ।
रांम जनां कै मुष नहिं डारचौ , एसे जनम आपनो हारयौ ।।
सोधन ले धरती में गाड्यौ , आयौ काल प्रांण तब छाड्यौ ।
षौड विछोहौ करदियौ तंहियाँ , मन तौ निकस्यौ नाँही मंहियां ।।
प्रगटै प्रबल आइ अभागू , ता धन पर हूवौ है नागू ।
महादीरघ कछु कहत न आवे , वीघा मांहि घास जर जावे ।।
ऐसौ जहर कहा कौऊ करि है , निकट जाय सो प्रांणी मरि है ।
बम्बइ ऊपर घासन हौइ , ठौड महा अद्भुत है सोइ ।।
तहाँ आइ महाराज विराजे , ग्यांन ध्यान संपूरण साजे ।
अलष निरंजन सदइ साधू , सौ जस गावै जन रुघनाथू ।।

दोहा—

बम्बइ ऊपरि ध्यान धरि , बैठे जन हरिदास ।।
निसक महातप ध्यान रत , सदा नाथ हैं पास ।।२७।।

।। विश्राम न ।।

चौपई—

इतने माँहि सरप सुधि पांइ , वास मिनष की तब ही आइ ।
बम्बइ निकस्यौ करत फूंकार , हरिजन कौ पायौ दीदार ।।
दरसन करते मन आइ और , उभौ रह्यौ नाग तिहिं ठौर ।
गई पाप वुधि हिये केरी , तबै सरप सिर नायौ फेरी ।।
दरसन करत मन निर्मल भयऊ , करम पटल दूर हौइ गयऊ ।
करन वीनती लागौ साँपा , हे दयाल काटौ मम पापा ।।

कृपा करि हरिनाँव सुनावो , जन्म जन्म के कर्म गमावो ।
दिच्या नाथ दीजिये मोही , हूँ दयाल बलिजांऊ तोही ।।
इतनी सुनत आप यूँ बोले , महा महर करि अंतर षोले ।
सुंणरे जीवराम की गाथा , अलष पुरष को करिये साथा ।।
पाप बुद्धि सब दूर करीजे , हरि के जन मांही मनदीजे ।
ऐसी भांति उपदेस जू दिया , साप मगन होइ सरवण कीया ।।
तब दयाल चरणांमृत दीयो , नाग तुरत अमृत जूं पीयो ।
पीवत पांणि मुक्ति व्है गयो , सो जस जन रुघनाथ कह्यो ।।
पीछे षवर सहर में होई , दरसण करण आये सबलोई ।
सब कूँ ग्यान कथा समझावें , यूँ दयाल सब कै मनभावे ।।
ऐसी बात कहत है स्वांमी , सबै भजो तुम अन्तरजामी ।
साध सगतिसूं लावो हेतु , ऐसे निपजै काया षेतू ।।
सील साच जरणा कूँ लहिए , ऐसी भांति परमपद पइये ।
सबकूँ उत्तम दियो उपदेसू , सनकादिक संकर ज्यूं सेसू ।।
इहैबात टोडा की गाई , जो कछु भई सैन समझाई ।
अलष पुरष को ध्यांन अपारु , कहत न आवे परम विचारु ।।
सबकूं साची बात बतावे , आप सदा अलिपत जु रहावे ।
परमारथ विचरै संसारु , गोरषनाथ समझ उरधारु ।।
इहि विधि फेर तहाँ ते चलिया , साध सन्त बहौतेरा मिलिया ।
ग्यांन ध्यांन हरि कथा सुनावे , संगति करै सो जीव तिरावे ।।
महा निर्लोभी त्याग मत लीये , विचरैं सदा त्रिगुण तज दीये ।
निर्गुण इष्ट निरंजन ध्यावे , कथा कीर्तन हरि जस गावे ।।
एक दिनां आगे इक गाँऊ , गुप्त ग्यान की कथा सुनाऊँ
उत्तम ठौर जाइगां देषी , स्वामी तहाँ विराजे एकी ।।
तहाँ एक आइस को आसन , रात षेचरी कीवी जासन ।
सिंह रूप आयस कर आयो , स्वामी वचन षर कहि बतलायो।।

बोलत पांण षर ही होइ गयो, तब सब ही मन संमो भयो।
आय परे दयाल के पांवा, हम मूरष तुम थाहन पावा॥
तुम हो सिभू नाथ अविनासी, होय दयाल करै मम पासी।
तब स्वामी मन दयाजु आई, कर फेरत मानष हुइ जाई॥
करी वीनती दिख्या दीजै, मूढ जीव अपणा कर लीजै।
तब दयाल माथै कर दीया, आइस सबै सिप कर लीया॥
जुग जुग जन थापे भगवाना, एसौ कौनजू ताहि उठाना।
जन हरीदास हरि सदई साथा, बलि बलि जावे जन रुघनाथा॥

दोहा—

जन रुघा हरिदास की, महिमा कहीन जाइ।
भगति करनकूँ कॉल मंही, स्वामी प्रगटें आइ॥२८॥

॥ विश्राम दम ॥

फेर तहाँ सू रमे दयाला, अलप ध्यांन महा बुद्धि विशाला।
बहुत दिवस मारग में लाए, जोवनेर के मांही आए॥
सुन्दर ठौर देषिकै वारै, तहाँ विराजे ग्यांन संभारे।
एक वैरागी गाँवजु मांही, रांम नांम उर अंतर नाँही॥
झूठ कपट करि जगत भुलावे, सबकूँ ठग ठग द्रव्य उपावे।
जन हरीदास हरि ध्यान जू मांही, राग दोष काहू सूं नाही॥
लोग महाजन दरसन करि है, तिन कूँ देष भगत अति जरिहैं।
जाता सबकूँ त्रास दिषाऊँ, पूजा मेरी आन लगाऊँ॥
यूं धरि मनमें विस ले गयो, जाइ दयाल कै सनमुष भयो।
मेरे गृह अब गोरष आए, चरणामृत ताको हम लाए॥
कै पीवो कै ढोरो स्वांमी, विगरे काज जाऊँ मैं ग्रामी।
ढोरयां तुमरौ इष्ट विनासा, पीयां इष्ट रहत है दासा॥
इतनो वचन भगत तब कह्यौ, स्वांमी तुरत हाथ में गह्यौ।
लेय नाम गोरष का सांई, पीयो जहर इम्रत की नांई॥

पीवत पांण चढ्यो वैरागी, त्राहि त्राहि हूं महा अभागी।
हैं दयाल तुम पूरण जोगी, ग्यांन रस के महाभोगी॥
में मूरष जान्यों नहि भेवा, तुमतो करो अलष की सेवा।
गोरष सदा सहाइ तुम्हारै, काल झाल सब दूर निवारै॥
मेरी ताप अब वेग बुझावो, गुन्हो मेटि हरि नाँव सुणावो।
अभै दान दीजै मोहे स्वामी, बकसो सबै जीव की षांमी॥
तब दयाल चरणामृत दियो, पीवत सबाँ सीतल होइ गयो।
कहै दयाल सुणरे वैरागी ऐसा कांम क्यूं करे अभागी॥
ठग्यो ठगायो द्रव है तेरे, सो सब षरच चरण हरि केरे।
सन्त बुलाइ महोछा कीजै, भली भांति पहरावण दीजै॥
तबही तेरो उतरि है पापू, नहितर मांहि होइगो सापू।
सुने वचन सो कीए प्रवाना, तबै भगत मेले की ठांना॥
देस देस के साध बुलाए, नीकी भांति सू तिन्है जिमाए।
करी रसोई पूजा दीन्ही, दिच्या भगत दयाल की लीन्ही॥
कृपा करी माथै करदीया, गुन्हौ मेटि अपणा कर लीया।

दोहा—

ठग्यो ठगायो जन रुघा, दीयो माल लगाइ।
जन हरीदास के चरण सूँ, रह्यो भगत लपटाइ॥२६॥

॥ विश्राम ग्यारह ॥

चौपई—

ऐसे रहे जोवनेर मांही, रतमत सदा रामसूं आंही।
रमे तहांसूं आप अकेला, पहुँता और लारसूं चेला॥
रमत रमत आंबेर पधारया, कारज और सर्व ही सारया।
तहाँ एक नाहर दुषदाई, सहर मांहि कूँ मांनिष षाई॥
महा निडर संक नहि मांनै, सबै लोग तिणका सै जानैं।
भाषर मांहि रहत है सोई, दूजो जांणन पावै कोई॥

तृतीय चरण के उल्लेख मे स्पष्ट है कि हरिदासजी महाराज के लिए ही निरंजनी विशेषण लगा कर उनको निरंजनी शब्द के साथ उद्‌बोधन किया जाने लगा। इन्ही के विविध परचो (करामातो) का निरूपण किया गया है। डीडवाणा आवास-स्थान इन्ही का था। अत. स्वतः सिद्ध है कि डीडवाणे से सम्बन्धित निरंजनी पन्थ के प्रवर्त्तक द्वादश निरंजनी महन्तो मे महाराज हरिदासजी ही है। उक्त निरंजनी अपने को "हरिदासोत" भी कहते है—यह कथन भी इस तथ्य का दिग्दर्शक है। राघोदासजी ने बारह महन्तो का जो निरूपण किया है, सभी को वैसे निरंजनी नाम से व्यक्त किया है। अत. नानक, कबीर, दादू, जगन मे जो जगन शब्द है—या तो अन्य किसी महात्मा के लिए प्रयुक्त है, या यह शब्द लेख की अशुद्धि से आया है। यदि जगन निरंजनी-पन्थ प्रवर्त्तक था तो उसका निरूपण नानक, कबीर, दादूजी के पश्चात् आना चाहिए था। जगन यदि जगन्नाथदासजी के लिए प्रयुक्त हुआ है तो उनके वर्णन मे निरञ्जनी-पन्थ का सम्बन्ध जगन्नाथजी से व्यक्त होना चाहिए था। पर भक्तमाल मे नानक, कबीर और दादूजी के वर्णन के पश्चात् निरञ्जनी-पन्थ वर्णन से निरञ्जनी-सम्प्रदाय का निरूपण किया गया है और उस निरूपण मे उन बारह निरञ्जनी-महात्माओ का वर्णन है, न कि जगन का तथा न ही जगन्नाथदासजी का। बारह महन्त-वर्णन मे प्रथम या पहिला नाम जगन्नाथदासजी का है और हरि-दासजी का नाम पाँचवे नम्बर मे है—पर जैसा कि मैने ऊपर हरिदासजी के वर्णन का छप्पय दिया है उससे तथा डीडवाणे मे आवास-सम्बन्ध हरिदासजी का है। जगन्नाथदासजी का आवास-स्थान थिरोली लिखा है।

मनहर—थिरोली में जगन्नाथ स्यामदास दत्तवास
कान्हड़ जू चाड़सू में नीके हरि ध्याये हैं।
आनदास लिवाली मोहनदास देवपुर
सेरपुर तुरसी जू वांणी नीकी ल्याये हैं॥
पूरण भंभोरे रहे षेमदास सिवहाड़
टोडा मध नाथजू परम पद पाये हैं॥
ध्यानदास म्हार भये डीडवाणे हरिदास
दास जगजीवण सू भादवे लुभाये हैं॥१॥

उक्त छन्द मे बारह निरञ्जनी-महन्तो या महात्माओं के निवास-स्थानों का विवरण दिया है। इसमें डीडवाणे मे रहने का उल्लेख हरिदासजी ही का है। बारह महन्तों के निरूपण में हरिदासजी को छोडकर और किन्ही की करामातों का दिग्दर्शन

आप दयाल उहाँ चलि आए, गुफा देपकै ध्यांन लगाए।
तवै सिंघ कू वासज आई, निकस्यो तुरत गहर नहि लाई।।
जाण्यों आज इहां भष मिल्यौ, आयो और दिनां को हिल्यौ।
दरसन करत मतो फिर गयो, सनमुष आइ दयाल कै भयो।।
नाक नवर्णा करबैठो जबही, स्वांमी दिच्या दीन्ही तबही।
मिनष गाई हतिए नहिं भाई, और न जांणू रांम दुहाई।।
पीछे सव लोगन सुणि पाए, दरसन करण दयालकै आए।
नाहर सूँ छिन संकन मानै, पुत्र समान सवनहीं जानैं।।
सव जन कै पावां तलि लुटि है, कवहुक सोवे कवहुक उठि हैं।
ऐसे सोच की मिट गई तापा, जन हरीदास पूरण परतापा।।
तवतें आऐ सहर मंझारा, जहाँ फकीर इक रहे विचारा।
ताकै तो सव कुछ व्योहारौ, सिषसापां सेवग जू अपारो।।
तीर कवांण षाटली कहिए, रचै सांग अचरज सो लहिए।
जव हरिदास तहाँ चलि आए, घर बैठे फकीर जु पाए।।
इनके हुवो सम्वाद जू तवही, सोजस प्रगट कहिहू अवही।
तव दयाल ऐसे कहि दइया, आडा पड़दा पोलदे भइया।।
इतने मांहि वोले जू फकीरा, एतो द्वार अतीत के वीरा।
सहजैं षुलि है पाट हमारे, आवो वैसा तुम हो प्यारे।।
जन हरिदास ऐसे समझावे, अगम ग्यांन तोकूँ नहि भावे।
नामदेव पडदा कव दीया, कद कवीर मांही लुक रहिया।।
तव फकीर यह बात कहावे, वात विवेक हिरदै नहिं आवे।
तव दयाल ऐसे फुरमायो, वात विवेक कहण कूँ आयो।।
हूँ तोहि सीष देतहूँ साची, वातां सवै छाडदे काची।
सेवक सती दुष के मूला, इन सूँ लागि रांम कूँ भूला।।
तीर कवाँण तोड सव डारो, हिरदै हरि को नांव संभारो।
तव फकीर कहै समझाई, तुम तो हठी करो हठ भाई।।

तब दयाल कहै सुन प्यारे, हठ साचो है सही हमारे।
दोय हठ पिरतषही जानो, साचे हठ कूँ मनह प्रमानो ॥
एक हठ है कामरु क्रोधा, इन सूँ उपजै नांही बोधा।
एक हठ गुण जीते भाई, यासूँ साहिब मांहि मिलाई ॥
एती सुण उपज्यौ है ग्यांना, छाडि माया तुरत निदानां।
फकीर दयाल की लीन्ही आग्या, सीतल भयो दुष सब भग्या ॥
माया छाडि ब्रह्म सूँ रातो, दयाल प्रताप राम रस मातो।
महातीवर वैराग जू आया, तब फकीर अलष कूँ ध्याया ॥
ऐसे ग्यांन दियो मन जानी, सति बात रुघनाथ बषानी।
तहाँ रहे बहौतलग स्वांमी, टहल करी सब ही मन जानी ॥
ता पीछै रमणी की कीन्ही, सनै सनै निर्गुण मत लीन्ही।
पूरब दिसा चलै जू जावे, दरसन दे सब जीव तिरावे ॥
एक गाँव सूँ रमे संवारे, अपंग विप्र बैठे जु बिलारे।
करी वेगार राल ते गया, मारग मांहि विप्र दुष भया ॥
तहाँ आइ हरिदास षडे हैं, वांमण आइर पाइ पडे हैं।
कहै दयाल ऊँचे उठि भाई, जंगल मांहि क्यूँ पड्यो रहाई ॥
तबै विप्र बोलियो यह बैना, पाँव नहीं दुष बहौत अचेना।
तब फिर हरीदास कर लाये, कृपा करी ताके पग आये ॥
विप्र उठि जु गाँव कूँ ध्यायो, सोजस जन रुघनाथ जु गायो ॥

दोहा—

जन हरीदास प्रताप तैं, अपंग विप्रपग होइ।
आप सिंघाँणै कूँ चले, काल झाल दुष षोइ ॥२०॥

॥ विश्राम बारह ॥

चौपई—

द्वै दिन मांहि सिंघाँणे आऐ, तहाँ भाषर परिध्यान लगाए।
उत्तर दिसा सहर सूँ सोई, तहाँ विराजे जग मल षोई ॥

सबही सहर मांहि सुण पाए, स्वामी हरीदास यहाँ आए।
चलो सबैही दरसन करि हैं, मसतक जाइ चरण तरि धरि हैं ॥
सबही आय करे हैं दरसण, फिर फिर उत्तम पूछै परसण।
हे दयाल सहर में आवो, कृपाकरी हरि भक्ति वढावो ॥
तब दयाल ऐसे समझावे, इहै ठौर उत्तम मन भावे।
तब उन कह्यौ रसोई लीजै, कृपाकरि अरु भोजन कीजै ॥
जन हरिदास बोले यह वाता, जाय रसोई करो त्रिष्याता।
तबै महाजन पूछे आए, जन हरिपुरप की अग्या ल्याए ॥
करी रसोई साध बुलाया, आप दयाल कृपाकरि आया।
बैठे सबै कीर्तन करि हैं, ग्यांन ध्यांन की बात उचरि हैं ॥
जा कै घर बालक इक होई, वाको अन्त भयो है सोई।
माता तबै कह्यौ हा बाला, तुरत ही वचन कह्यौ है दयाला ॥
कह्यौ उनां कूँ क्या? है भाई, हो वो कहा सो थोह बताई।
कहै महाजन क्यू ही नहिंया, झूठो सोर करै घर मंहियाँ ॥
फेरि दयाल घणो सो पूछायो, साची बात कहै हम भायो।
कहै महाजन सुनो दयाला, एक पुत्र ताको भयो काला ॥
इतनी सुनत बोले हरिबंदा, यो सूतो है नींद उनींदा।
तब उन कह्यो नही महाराजा, या को अन्त होय गयो आजा ॥
तब दयाल उठि निकट गए हैं, गोरखनाथ को नाम लए है।
उठरे भाई तूँ कहा सोवे, तेरे कुटंब दुषी अति होवे ॥
करसूँ कर पकरयो जु दयाला, उठयो तुरत साह को बाला।
सब हिन जै जै कार वषान्यां, जन हरीदास हरि हिलमिल जांन्या ॥
हुई रसोई सन्तन पाई, सबै महाजन पांइ परांई।
स्वामी चल डेरा कूँ आए, ग्यांन ध्यांन उर मांहि बसाए ॥
सब ही कै परतीत जु आई, सेवा सन्त करो चित लाई।
ऐसी विधि दीयो उपदेसू, जैसे नाम कबीर अरु सेसूँ ॥

दोहा—

रहे सिंघाणे बहुत दिन, सब कूँ दीयो ग्यांन।
जन रुघा हरिदास हरि, सही एक उनमान ॥३०॥

॥ विश्राम तेरह ॥

तहाँ ते रमे अपूठे सोई, आदू सहरकूँ रामत होई।
सनै सनै चलि है हरि साधु, निरगुण दास विदेह अगाधु ॥
बहौत दिनांलौ रामत करी, पहुँते आप डीडपुर हरि।
सब कूँ षबर हुई ततकाला, कृपाकरी आयेजु दयाला ॥
दरसन आय करे सब कोई, देव निरंजन को जस होई।
सब कूँ बाँट प्रसादी देहैं, नमसकार करि करि कै लै हैं ॥
हूवो उछाव कहयौ नहिं जांवै, मानों देव स्वर्ग थैं आवै।
करें वीनती सेवग सब ही, जाग्यौ भाग हमारो अबही ॥
मोडे बहुत पधारे देवा, रमे कहाँ नहिं पायो भेवा।
तब कृपाल कहै रे भाई, रांम सिस्टि में रमां सदाई ॥
ताके सरणैं करमन लागे, काल जाल दुख सब ही भागे।
साचो अलष पुरष को साधू, सो जस गावै जन रुघनाथू ॥
ऐसे भई वधाई सबकै, हुई कृपा दयाल की अबकै।
दरसन करकर आग्या मांगी, सेवग अरु चाले वैरागी ॥
आप विराजै सुमरन करें, देव निरंजन हिरदै धरे।
ग्यांन भगति वैराग सवायो, अरस परस पूरण पद पायो ॥
रहे वहाँ डीडपुर स्वांमी, निस दिन सुमरै अन्तरजांमी।
अडिग अडोल सदा निरवांना, और भरम उठ गये जु नाना ॥
विरकत महा त्याग तप साधे, अलष निरंजन उर आरांधे।
ऐसी विधि नित रहे दयाला, गहर गंभीर सवनि प्रतिपाला ॥
दयावंत सुषदाई धीरू, अमर पुरस सूँ कीयो सीरू।
अष्टौं अंग जोग कै साधे, तप वनवास किये अति गाढे ॥

जो कोई सीष सुने हरिजन की, दुबध्या दूर करै ता मनकी।
ग्यांन ध्यांन उपदेश बतावे, नरक छुडाइ मुक्ति पहुंचावे॥
सदई ध्यांन भजन हरिजी को, और सबै रस लागै फीको॥
ऐसे कांम क्रोध रिप दहिया, आमौ इष्ट निरंजन महियाँ॥
तीन लोक में प्रगट स्वांमी, उदै भए उर अन्तरजांमी।
प्रकृति गुण न्यारे कर दूरा, पुरुष लीन भये स्वामी सूरा॥
जो कोई जीव सरण चलि आवे, ताकूं निश्चय ब्रह्म बतावे।
ग्यांनरु ध्यान जोग वैरागा, अरपै स्वामी भगति सभागा॥
अरु दयाल के सिषथे बावन, सबही करै जगत कूं पावन।
ब्रह्मग्यांन हिरदा में धरिया, गुरु परसाद अनिर भव तरिया॥
सबही आए सतगुरु पासा, कर दीदार मगन सुष बासा।
देव निरंजन को जस गावै, सतगुरु के चरणां चित लावे॥
स्वांमीं आप सदा मन धीरा, मगन ग्यांन गुण गहर गंभीरा।
सेवग सती करे नित दरसन, ग्यांन ध्यांन की बूझै परसन॥
स्वामी देवे सत उपदेसा, भजौ निरंजन मिटै अन्देसा।
सन्त जनां की सेवा करो, ऐसे दूतर सहजै तिरो॥
सिष सदा सनमुष जु रहि हैं, गुरु की आग्या अन्तर गहि हैं।
सबहिनको सारयौ है काजू, पर उपगार आप महाराजू॥
साधू कथा कीरतन करि हैं, हरीपुरम पद हिरदै धरि हैं।
पुरवासी सब कारज करिया, जिन दयाल कूँ हिरदै धरिया॥
गुण अनंत कहतां नहिं आवै, ऐसो कौन मर्म मल पावे।
बुधि बौछी पूरा गुरुदेव, त्रित उनमांन लखाया भेव॥

दोहा—

निरगुण ग्यान विचार कै, उतरया भोजल पारि।
जन हरीदास हरिसूं मिल्या, कहै रुघनाथ विचारि॥३२॥

विश्राम चौदह

चौपई—

प्रथम वहौत दिन यूंही गइया, वरस चमालतै चेतन भइयां।
चमाल वरष वैराग कमाया, ता पाछे हरि मांहि समाया॥
सम्वत् सोलेसैजु सईका, ऋतु वसन्त आनन्द लईका।
फागण सुदि षष्टमी जानां, जन हरिदास हरि मांहि समाना॥
मिले निरंजन मांही दासू, काल कराल सबकाटी पासू।
आए तहाँ पधारे देवा, मनसा वाचा सनमुष सेवा॥
तेज पुंज तहां प्रान पियारे, तेजपुंज होइ आप पधारे।
अरस परस हरि मांहि समाया, सोजस जन रुघनाथ जु गाया॥
सहर डीडपुर उत्तम धामू, तहाँ स्वामी कीयो विश्रामूँ।
सबै सिष विवोग अति करि हैं, सेवग चित चरणां में धरि है॥
एक सुने सुन धरती परिया, काहू वहौत रुदन ही करिया।
केई कहैं सूनो है गांऊ, दूषै सबै लेतही नांऊ॥
जैसे रात चन्द विन होई, त्यूं दयाल विन नगरी जोई।
जहाँ जहाँ आपन चले गये, सबै देव सनमुष जु भये॥
कहै विराजो यहाँ गुंसाई, दरसन द्यो नित बलिबलि जांई।
देव सवन मिल विनती कीन्ही, जन हरिदास मन मांहिन चिन्ही॥
सिध साधिक सनकादिक नारद, संकर सहित मिली है सारद।
सबहिन जै जै कार बढाया, जन हरीदास हरि मांहि समाया॥
इतनी कथा कही मैं देवा, तुम अगाध मैं लख्योन भेवा।
तुमरी गतिमति तुम ही जानों, अलप बुद्धि हूँ कहा बषांनों॥
इह गुन कथन लह्यो सुष भारीं, कृपा करी निज देव मुरारी।
अरु जे फिरि गावे जस कोई, ताकै दुष सब डारै षोई॥
सत्रु दूर रोग हू जावै, जो जन परचा सूं चित लावे।
अपढ होय विद्यावत मानों, निरधन धनपंत होय सुजानों॥

मूरष लहै ग्यांन गुण आगर, दीन होइ या वे सुपसागर ।
गूंगो ग्यान विग्यांन ही पावे, जो दयाल गुण रुच रुच गावे ॥
जन हरिदास हरि के उणहारा, भगति करणें प्रगटे संसारा ।
निरगुण ग्यांन समझिकै लीयौ, दूजो कर्मकांड तजि दीयौ ॥
कर्मकांड सांसो नहिं जावै, जोलूँ निरविकार नहिं गावै ।
निरगुण व्रत हरिदास विचारा, तातें उतर गये भवपारा ॥
इतनी महिमां वरनी तेरी, तुम अगाध वोछी मति मेरी ।
घाटि वाधि कछु बोलनि आया, ताकूँ समझ सुधारो राया ॥
पुत्र दोष पिता सब जानौं, ताकौ औगुण कछू न आनौं ।
अलप बुद्धि हूं वोल न जानौं, तातें यह बीनती मानौं ॥
अरु तेरा गुण बहुत अपारा, बरणत पार न आवे मारा ।
परचे ओर अनंत है घणे, हम तो इतने कानां सुणे ॥
बहुरि गुप्त जे रह्या गुसांई, ता को पारन पाऊँ मांई ।
जे हम सुणे सो कियो वषानों, और तुम्हारे तुम ही जानों ॥
वसुधा सव कागद कर लीजै, लेपणि भार अठारा गणीजै ।
सात समद कीजै रुसनाई, हरिजन हरि रस कथ्यो न जाई ॥
निराकार की किरपा भई, सन्त समागम परची कही ।
जन अमरपुरस के मस्तग हाथू, रुचरुच गावै जन रुघनाथू ॥

दोहा—

रुघनाथदास जन का कहै, हरिगुण अनंत अपार ॥
अमरपुरष परताप तैं, कछु इक कियो विचार ॥३३॥
श्री अमरपुरष गुरुदेव की, किरपा पूरण थाइ ॥
बेरि वेरि आनंद सूँ, जन रुघो बलि जाइ ॥३४॥
परची हरिदास की, भई संपूरण सोइ ॥
घाट वाध या में कही, सुध कर लीजो जोइ ॥३५॥

॥ विश्राम पन्द्रह ॥
॥ इति परचई सम्पूर्ण ॥

महात्मा प्यारेरामजी

महात्मा प्यारेरामजी अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य दर्शनदासजी के शिष्य थे। इनका काल उन्नीसवी सताब्दि का उत्तरार्ध प्रमाणित होता है। आपकी रचना भक्तमाल है उसके अन्त मे आपने सम्वत् १८८३ मे उसको बनाने का संकेत किया है। भक्तमाल से भिन्न आपकी और कोई रचना सामने नही आई है।

भक्तमाल की रचना का स्थान मोरेड लिखा है जो आज भी मौजूद है जहा दरसणदासजी महाराज विराजे थे। अब इनकी परम्परा का मुख्य स्थान वडू ग्राम है। प्राय. ही जो भी उच्च महात्मा हुये है उनको परम्परा मे भक्तमाल के भी प्राय. रचनाकार होते रहे है। नाभाजी ने वैष्णव सन्तो से भिन्न अन्य सम्प्रदायो के महात्माओ का उल्लेख नही किया है राघोदासजी ने द्वादश निरंजनी महन्तो का निरूपण किया है।

रामदासजी महाराज के शिष्य दयालदासजी ने जो भक्तमाल बनाई उसमे उनने सभी प्रचलित पन्थो के महात्माओ का निरूपण किया है। प्यारेरामजी ने स्वय यह व्यक्त भी किया है कि दर्शनदासजी महाराज ने उनको भक्तमाल निरूपण की आज्ञा दी तो उनने विशेष निर्देश किया कि उसमे अपने इष्ट पन्थ का विशेष निरूपण किया जाय।

तदनुसार आपने अवतारों का निरूपण कर भक्तों का निरूपण प्रारंभ किया तब सर्वप्रथम हरिदासजी महाराज का विस्तार से निरूपण किया। पश्चात् षेमजी चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी, अमरपुरुषजी व दर्शनदासजी तक का निरूपण किया पश्चात् अन्य भक्तो का विवेचन किया गया है। दौ सो चार मनहर कवित्त प्यारेरामजी की भक्तमाल के है अन्त मे चार दोहे है मूल प्रति सीथल ग्राम मे है जिसकी प्रतिलिपि मेरे पास है। उसी मे से कुछ उद्धरण आगे दिये जा रहे है।

॥ प्यारेरामजी कृत भक्तमाल का कुछ अंस ॥

मनहर—

नमो नमो गुरुदेव प्रभु जो परमातमा,
संता आगे हाथ जोड वीनती कराइये।
सन्ता को में जस गाऊँ कृपा करो मोहि पर,
बुद्धि में प्रकाश करो तवही तो गाइये॥

सन्ता को अगाध मत मेरी है अलप बुद्धि ,
आपही की कृपा हो तो कछुक सुनाइये ।
कवि की बडाई तामें वर्णौं मात गण सुध ,
देश काल प्रचा मिलै सब मन भाइये ।।१।।

रामजी ओतार आप वडे ही विख्यात भये ,
राक्षसां कूं मार कर संता काज सारे हैं ।
कृष्णजी ओतार धार संताको सहाय करी ,
कलाजु दिखाई वहु लीला विसतारे हैं ।।
हयग्रीव रूप धार ब्रह्मा के जो वेद ल्याये ,
कमठ ओतार धार पृथ्वी पीठ धारे हैं ।
प्रथु अवतार धर पृथवी को दूही ताहि ,
नृसिह ओतार धार प्रहलाद उबारे हैं ।।२।।

रिषभ औतार आप वडे ही विख्यात भये ,
भरत पुतर गृह त्याग जोग लियो है ।
नव भये जोगेश्वर जग में प्रसिद्ध अति ,
इक्यासि जू कर्मकांडी सोई पुत्र भये हैं ।।
व्यासजी ओतार धर रचे हैं पुराण पुनि ,
भारत दर्शन, गीता वेद कथ गये हैं ।
परशुराम बन आप क्षत्री षपाय दिये ,
भूमि प्राप्य कर सब विप्रन को दिये हैं ।।३।।

हरिदासजी—

आप जो अकेले होय और होय लाखों दल ,
सामे होय सके नहीं भाजि सब जाइये ।
डीडवाणे कोल्या वीच खोसल्यो जू कूवो कहे ,
तहाँ आप वैठे रहे घोडे चढ आइये ।।

माल जो लेजावे कोऊ ताहितै भरावे डांण ,
वणिया को रूप धरि गोरष तहाँ आइये ।
हरिसिंह देख आप आडे जो फिरे हैं जाइ ,
तब दिव्य रूप धरि पगां में पराइये ।।४।।
गोरष वचन बोले इता तुम पाप करो ,
आगे लेषो लेहिं तब छूटो कैसे जाइये ।
और जो कुटम्ब सब याही सूँ उदर पालै ,
एकले कूँ भार क्यूं है बांटे बांटे आइये ।।
पूछो क्यों न घर जाय कौन तेरा संगी होय ,
तब घर जाय करि बूझना कराइये ।
आप कियो पुण्य पाप आप ही भोगेंगा सब ,
और केजु कैसे आवे ऐसे जू कहाइये ।।५।।
होयके उदास जब पीछे आये आप वहां ,
आवत ही पांव परै चरण चित्त लाइये ।
अब करो आज्ञा आप सोई में तो शीश धरूं ,
गोरष बोले घर त्याग तीखी पर जाइये ।।
तब आप घर त्याग बैठे जाइ तीखी पर ,
आसण लगाय द्रढ ध्यान जू कराइये ।
गाढे जू मुणी है बात सेवा में लगायो चित ,
बारै वर्ष एकतार तीखी पर आइये ।।६।।

दयालदासजी—

दयालदास सन्त जित इन्द्रीसूं जु दूध पीयो ,
लघुशंका करि बासू दीपक रखाइये ।
जगरो लागो वारणें तबही जु मेह आयो ,
मेह दीनो टाल जिन जगरो बचाइये ।।

नही कराया है। उनकी अपनी-अपनी विशेषता का दिग्दर्शन है। हरिदासजी का निरूपण है वही—यह विवरण दिया है—

प्रथम पीपली प्रसिद्ध सिला नागौर विशेषो।
नयो गयंद अजमेर फुनिग टोडे पण पेषो॥
गिरि सूँ गागर गिरी नीर राख्यो घट सारो।
देवी को सिष करी ज्यायो त्रिष पित्र उधारो॥
सिंहपरचौ आमेर राव राजा सब जाँणे।
अपंग विप्र पथ चल्यो साह सुत जियो सिंघाणे॥
सिर पर कर प्रयागदास को गोरषनाथ को मत लियो॥
जन हरिदास निरंजनी ठौर ठौर परचो दियो॥२९॥

उक्त करामातो के दिग्दर्शन से हरिदासजी सिद्ध पुरुष थे—यह व्यक्त होता है। इस पद्य मे भी हरिदासजी के साथ निरञ्जनी शब्द का प्रयोग हुआ है। निरञ्जनी-पंथ का प्रमुख-स्थान भी डीडवाणा ही है। अतः करामाती सिद्ध पुरुष हरिदासजी से ही नरञ्जनी-सम्प्रदाय चला इसमे न किसी तरह के संशय को स्थान है और न किसी प्रमाण की आवश्यकता है। "जगन" शब्द के प्रयोग के विषय मे जैसा मैने ऊपर लिखा है कि वह लेखन की न्यूनता-मात्र है।

४—हरिदासजी, दादूजी के शिष्य—प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य थे।

चौथा प्रश्न है हरिदासजी किसके शिष्य थे? भक्तमालकार के परचो के निरूपण करने वाले छप्पय मे "सिर पर कर प्रयागदास को" इस चरण मे प्रयागदासजी का कर सिर पर रखने का उल्लेख है। इसी के आधार से तथा प्रयागदासजी के शिष्य-नामों मे हरिदासजी का नाम किसी पत्र मे लिखा होने से पुरोहितजी ने हरिदासजी को प्रयागदासजी का शिष्य होना लिखा है। पर उसकी पूर्वापर संगति का उनने कोई उल्लेख नही किया। प्रयागदासजी के आठ-दस शिष्यो मे एक नाम हरिदासजी भी है, उसका यह अर्थ कदापि नही हो सकता कि वे ये ही हरिदासजी थे। नामसाम्य तो हमे सैंकडो-हजारो जगह मिलता है। नामसाम्य से यह नही सिद्ध होता कि अमुक नाम वाला व्यक्ति यही है। महाराज दादूजी के एक सौ बावन शिष्यों मे भी कई एक के नाम हरिदासजी आये है। प्रहलाददासजी के शिष्य भी हरिदासजी थे। मतलब, केवल नामसाम्य व नामोल्लेख से हरिदासजी दादूजी महाराज के शिष्य प्रयागदासजी के शिष्य नही हो सकते। दूसरे, हमने पीछे वखनाजी, जग्गाजी, खेमजी व चैनजी के उद्धरण दिये है। उनने अपने उद्धरणो में हरिदासजी

सेवादासजी—

सेवादास संत को जु वडो मत वीतराग,
परचों का पार नांहि कहाँ लग गाइये।
पुरोहित कुल मांही लियो अवतार आप,
वर्ष गये सात सन्त दर्शन कूँ आइये ॥७॥
बारे वर्ष एकतार गुरु की जू सेवा करी,
वीतराग रहे नेम भिक्षा को ममाइये।
शाह की उवारी नाव समद बीच फाटी जब,
हजारों जे जीव तिन्हे डूबतां बचाइये॥
सीकर के रावजी को परचो दिखायो जब,
साह रूप धारि आप भोजन जू लाइये।
फतहपुर गांव सूं दूर जो विराजै आप,
पठाण कूँ फतै पर दूसरो दिखाइये ॥८॥
कालैडहरे में आय त्राटक जू ध्यान कीनो,
कृपाजू कबीर कीन्हीं छाप जो धराइये।
सतरासै चोहत्तर वीकाणे विराजे आप,
भूतों का उद्धार कीया ज्ञान जु सुनाइये॥
ऊदो भाटी खारड्या में मेले को विचार कियो,
ताकूँ दियो ताले मांहि छुडाइ के लाइये।
रूपाणे में नाग आय पींडी जिन तोड लई,
लोगां सोच करयो तव फेर के बुलाइये ॥९॥

सेवादासजी का तन त्याग—

सवा दोपहर आप ध्यान जो लगाय बैठे,
दसम दुवार होय ब्रह्म में समाइये।
सतरासै अठाणमें जेठवदी पडवा कूँ,
त्याग तन आप हरिधाम जू सिधाइये॥

अमरपुरुषजी—

अमर औतार धार जीवांको उधार कियो,
एक सौतो चार जाकै सिष जो कहाइये।
गुरां कही तीन बात सोई आप धार लई,
फिर आज्ञा करी तब सिष जो कराइये ॥१०॥
दरशन गुरु दया की प्यारे को आज्ञा दीन्ही,
ईष्ट अनुक्रम से जू भक्तमाल गाइये॥
भक्तमाल वर्णी और सन्ता किन्ही ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी वहतो मन नहिं भाइये॥
गुरु आप आज्ञा दिये ताते भक्तमाल किये,
अठारेसै तियासी की वात ये कहाइये।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होती ताहि,
गुरां आप रीझ कर प्रचा जो वताइये ॥११॥

दोहा—

जन प्यारे रामकी वीनती, सुण लीज्यो सब संत॥
पन्छी पीवे चूंच भरि, सागर को नहिं अन्त ॥१२॥

॥ स्वामी उदयरामजी ॥

स्वामी उदयरामजी सेवजी महाराज की शिष्य परम्परा मे थे एसा अनुमान होता है। आपका कार्यकाल वीसवी सदी प्रतीत होना है। आपका एक संग्रह ग्रन्थ सार संग्रह नाम से प्राप्त है। इसमे एकसौ पिचहत्तर अंग है। प्रति अंग मे हरिदासजी कबीरजी, सेवजी तुरसीदासजी आदि महात्मो के वचन संग्रहीत किये है साथ मे अपनी रचना भी समिलित है। आपकी ओर कोई रचना जो कि स्वतंत्र विषय पर हो अब तक प्राप्त नही हुई है। आप का यह संग्रह ग्रन्थ पुजारी परमानन्दजी डीडवाणे के यहा है। इस सग्रह मे से अन्तिम अविहडका अग दिया जाता है इससे इसकी उपयोगिता प्रतीत होगी। यह अंग पूरा का पूरा उदयरामजी कृत ही है। अन्य अंगो मे उपरोक्त रूप मे अनेको महात्माओ के वचनो का संग्रह किया गया है।

॥ उदयरामजी कृत सारसंग्रह का अंस ॥

॥ अविहड अंग ॥

साषी—

संगी येही जीवकै, कै माधव कै साध ॥
लष दोषां विरचै नहीं, या तो वात अगाध ॥१॥
संगी सोई कीजिये, कदे न विहडै सोय ॥
किरतम को क्या ? पूजिये, पल में परलै होय ॥२॥
संगी सोई कीजिए, सदा अपंड थिर सोय ॥
जन्म मरण जाकै नहीं, सो हम लीया जोय ॥३॥
सदा अपंड थिर एक रस, लगै नहीं पुन पाप ॥
संगी सोई कीजिये, सहज भडै दुष ताप ॥४॥
संगी सोई कीजिये, अचल अपै भगवन्त ॥
रूप रेष जाकै नहीं, लाग रहे सब मन्त ॥५॥
ऐसा लिया विचार मन, सदा अपंड थिर जोय ॥
स्वामी तुम परसाद तैं, अविहड़ रहेजु सोय ॥७॥
अविहड अंग राजा रामजी, सब संतों का भरतार ॥
उदयरांम का सो धनी, सिमरथ सिरजणहार ॥८॥
सिमरथ सिरजणहारजी, सुणजे दीनदयाल ॥
उदयराम के तुम धणी, सब संतन के रिछपाल ॥९॥

चौपई—

प्रभु सब संतन के प्रतिपाला, बहु साध उधारे दीनदयाला ॥
जन उदयराम प्रभु तिनही पाये, जिन मन अविहड़ राम लगाये ।१०।
अविहड़ राजा राम राई, उदयराम ताका गुण गाई ॥
हरिपुरष सेवा गुण गावा, अविगत रमता मांहि समावा ।११।
अविहड राम कबहू नहिं घटई, उदयराम नित ताकू रटही ॥
रह रह सन्त भयेजु अपारा, रामनाम सुमरै इकतारा ॥१२॥

रामही रामजु करत पुकारा, तिनकूं नित नित नमन हमारा ॥
क्या गिरही? क्या साधज सन्त, राम रटत तिहिं नमन करंत ॥१३॥
नमो शेष ध्रुव पुनि प्रहलादा, राम रटत उनको हरि लाधा ॥
नमो नमो गोरष दत ध्यानी, नमो नमो नामा कवीर ग्यानी ॥१४॥
नमो नमो श्री दयालु हरिदासा, जीव अनन्त किये प्रभु पासा ॥
कितने जीव तिरै उन संगा, जो सुन वचन लगै हरि रंगा ॥१५॥
हरि रंग रंगे तिनही के प्राणा, जिन सुने वचन हरिपुरष सुवाणा ॥१६॥
हरिपुरष के वचन सुहाये मोही, इहि सुष सम सुष औरन कोही ॥१७॥
हरिपुरष सेवा वचन सुहावा, सुणत ही जग को होय अभावा ॥
मनही जगत जन्मै संसारा, नाम तुम्हार न वूढा वारा ॥१८॥
नमो नमो सेवा जन स्वामी, नमो नमो तोहि अन्तरजामी ॥
सेवा जन ऐसै सुषदाई, जिन जग जीवां ताप मिठाई ॥१९॥
तिनके अमरपुरष सिष भयेऊ, जो निज पद सब सिषले गयेऊ ॥
और हू सन्त भये वहु ज्ञानी, अगम द्रष्टि कोऊहै अति ध्यानीं ॥२०॥
तिनहि हित चित बन्दन हमारा, जे जन ब्रह्म कूँ जाणनहारा ॥
तुरसीजु ध्याना जगजीवनदासा, जगन्नाथ परब्रह्म निवासा ॥२१॥
अन्य हु सन्त निरंजन ध्यानी, निर्मल हरिमय जिनकी वांणी ॥
जो नित करहीं ब्रह्म विचारा, में वपुरा क्या? कहन हारा ॥२२॥
ब्रह्म विचार यहो है भाई, राम भजै विन किन गति पाई ॥

साषी—

सतगुरु जब किरपा करै, मेटै सब अज्ञान ॥
विन सतगुरु शरणे गये, होयन आतम ध्यान ॥२३॥
राम नाम तत सार है, कहै वेद अरु साध ॥
सब सन्ता की साप सुणि, सब में योही लाध ॥२४॥

चौपई—

सब सन्ता की साष मिलाईं, नाम समानन आन उपाई ॥
रामही नाम कवीरै गाया, नामा हरिपुरष नामही ध्याया ॥२५॥

कलजुग नाम समान न कोई, सब ग्रन्थन को पोजो जोई ॥
नानक कबीर हरिदास दयाला, सेवाजन बताये नाम उजाला ॥२६॥
नाम उजियाला सूर्य प्रकाशा, रटें ते करही आनंद विलासा ॥
नाम बिना भव रैंण अंधारी, नरक षाड में पडहिं विकारी ॥२७॥

साषी—

नाम तुमारो रामजी दीजै, अन्तर में उपजाइ ॥
जन उदयराम की वीनती, ग्यांनी सन्त मिलाइ ॥२८॥
में तो तेरो बालक रामजी, तुम जाणों जगदीश ॥
में हू निपट अवोध अति, खोटो विसवा वीश ॥२९॥
सुणो निरंजन वीनती, इस बालक की बात ॥
षात पीत वीते दिवस, सोवत रजनी जात ॥३०॥
स्वास स्वास हरि नाम विन, जन्म अमोलक जाय ॥
जन उदयराम यूँ कीजिये, भजिये निरंजन राय ॥३१॥

सोरठा—

भजिये निरंजन रांम, वेद शास्त्र कहते हैं अज ॥
गोरष कवीर कहि रांम, उदयराम भज राम भज ॥३२॥
निश दिन भजिये राम, झूठ कपट संसार तज ॥
भजिया येही नाम, तव आप उधारे नाथगज ॥३३॥
सत्य निरंजन राम, है अगाध परब्रह्म वह ॥
सबका वहीं विराम, वह सबमें व्यापक सदा ॥३४॥

साषी—

ग्यांनी ध्यांनी गम नहीं, पारन पावै कोय ॥
उदयराम भजताहि कूँ, सब सुष सहजै होय ॥३५॥
सब सुष सेवादास जी, कथ गये आतम ग्यांन ॥
ऊदा द्रढ कर राषिये, तव उर उपजै ध्यांन ॥३६॥
पाप पुन्य दुष सुष सदा, तेरे नांही जोय ॥
करता भोक्ता तूँ नहीं, तूँ परकासी सोय ॥३७॥

ग्यांन जगावे जीव कूँ, ज्यूँ वंदीजन नरपत ॥
सुपने दाब्यो वैरियां, जागत भयो नरपत ॥३८॥
सब में व्यापक आतमां, ज्यूँ कुंभ मृत्तिका मांय ॥
भूषण कंचन भेद नहिं, यूँ आतम मत भिन नांय ॥३९॥
सब साधां की राह एक है, कहने को पंथ चार ॥
जिहिं पंथ कवीर गोरष गये, तिहिं गह्यो सेवा हरिदास विचार ॥४०
दादू नानक तिहिं घर पहुँचे, जहाँ पारब्रह्म की जोत ॥
ऊदा उस घर जाइये, जहाँ नहिं माया की छोत ॥४१॥
जहाँ माया छाया नहीं, नहि गुण तीन प्रवेश ॥
उदयराम तहाँ जाइये, जहाँ निरंजन देश ॥४२॥
नमो नमो गुरुदेवजी, कीन्हों ब्रह्म प्रकाश ॥
जन उदयराम के सीस पर, श्री स्वामी सेवादास ॥४३॥

चौपई—

इसमें संशय संत न करिये कोई, हम तो भक्ता सेवाजन के होई ॥
पाप पुण्य कर्त्ता हम भैया, तातें यह न रतन हम धरिया ॥४४॥

साषी—

जो कर्म किये इस जीवनें, सुभरु असुभ पाप पुनि पुन्य ॥
सो सवही में जा रहूँ, गहि गुरु ग्यांन अनन्य ॥४५॥
एक राम यह वीनती, सुणजे दीनानाथ ॥
धर्मराज कागद लिख्यो, सो फाडो अपने हाथ ॥४६॥
में तो तेरा चोटी कटा, घर का जांन गुलाम ॥
भावे मारो तारो सइयां, उदय तुमारा रांम ॥४७॥
उदयराम के तुम धणी, और न दूजा कोय ॥
मारो तारो रामजी, वंदा हाजिर होय ॥४८॥
जोर नहीं कुछ दास का, सुण लीजै साहव ॥
सहस्र जन्म वीते मिलो, भावै मिलो अव ॥४९॥

चौपई—

रिध सिध की नहिं चाह न कोई , वैकुँठ लच्मी स्वप्ने जोई ।।
इच्छा नहीं अपर कोई रामा , दे वरदान भक्ति हरि नामा ।।५०।।
नाम निरंजन निसदिन गाऊँ , गुणातीत के दर्शन पाऊँ ।।
आन लालसा है नहिं कोई , नाम रटण दे प्रभु निन मोइ ।।५१।।

साषी—

तुम विन राजा रामजी , और न जांचू कोय ।।
जन उदयराम की वीनती , सब कारज तुम तें होय ।।५२।।
मेरे ओर न काम है , राम तुम्हारी आंण ।।
वेग मिलो हरि आय कै , नहि तर तजूँ पिरांण ।।५३।।
उदयराम का संगी सोई , अविहड़ राजा राम ।।
आदि अन्त तुमही धर्णी , दीजै भक्ति विराम ।।५४।।

।। इति अविहड़ अंग सम्पूर्ण ।।

।। स्वामी कोमलदासजी ।।

महाराज हरीदासजी की परचई कई महात्माओं ने लिखी है उनका उल्लेख भूमिका मे कर दिया गया है। कोमलदासजी की परचई भूमिका छप चुकने के पश्चात् प्राप्त हुई। अतः प्रसंगानुसार इसका कही उल्लेख नही किया गया है। यह वीसवी शताब्दी की रचना है इसका आधार परम्परागत चली आई व मानी गई घटनाये है। इसके रचनाकार हैं वालोतरा निवासी स्वामी रामकृष्ण जी के शिष्य कोमलदासजी रचनाकाल है सम्वत् १६४०।

आपने यह रचना दोहा चौपाई सोरठा तथा छन्दों में की है कुल पद सख्या सत्तर है। इसमे हरिदासजी महाराज द्वारा दिखाये गये वारह चमत्कारों का विवरण है। रचना को देखने से प्रतीत होता है कि रचनाकार सुशिक्षित है। छन्द, भाषा, भाव, का सम्यक् रचना मे निर्वाह किया गया है। इस की मूल-प्रति इन्ही की परम्परामे स्वामी जानकीदासजी माधोदासजी वालोतरा निवासी से प्राप्त हुई है स्वामी जानकीदासजी ने भी दोहे चौपाई में दयालु चरित्र की रचना की है तथा उसको मुद्रित कर वितीरण करा दिया गया है। कोमलदासजी की परचई मे से पाडा देवी को शिष्य बनाने तथा भूत वावडी नागौर के चमत्कार का विवरण आगे दिया जा रहा है जिससे इनकी रचना की वास्तविकता प्रतीत हो सकेगी।

॥ कोमलदासजी कृत हरिदासजी की परचई ॥

दोहा—

गुरु गणेश गोविन्द पद, शीश नवाँइ नवाँइ ॥
कथूं चरित्र हरिपुरुष का, द्वादश परचा लाइ ॥१॥

चौपई—

श्री हरिपुरुष संत शिर टीका, रंदो उनकी पदरज नीका ।
सो स्वामी को वास हमेशा, नगर डीडवाना मरुदेशा ॥
पुर से सिषरी पश्चिम आसा, आश्रम कंदर तपहि प्रकाशा ।
गोरषनाथ शीश गुरुधारी, रामनिरंजन नाम उचारी ॥
सुरति अखंड धारणा ध्याना, योगाभ्यास विरत भगवाना ।
परम ज्योति देषत लिवल्याई, जिमि चकोर शशि रूप लुभाई ॥
प्रेम अमीरस प्याला पीवे, ब्रह्मानन्द सुष मगन अतीवे ।
भये मूकवत गरक रहाई, अनहद शब्द श्रवण रति लाई ॥२॥

छन्द—

सुनि शब्द अनहद वेणु भेरिहि ताल झींझ मृदंगजे ।
जो हैं अगोचर नयन गोचर नूर निरख उमंग जे ॥
निजश्वास दशवें द्वार भँवरहि गुफा ध्यान धराइयो ।
साच्चात हरि को नूर निर्मल ज्योतिरूप लषाइयो ॥३॥

सोरठा—

अरस परस हरि आप, मिल्या तउं हरिदासजू ॥
टारन जग की ताप, करी तपस्या काल बहु ॥४॥

दोहा—

हरीदास योगी पुरुष, चिदानंद हरि ध्यान ॥
रामनिरंजन जाप उर, शम दम दया निधान ॥५॥

चौपई—

एक बार देवी निज याना, वैठ कहूं ही करत पयाना ॥
जात डूँगरी ऊपर होई, जहाँ सन्त हरिपुरुषजु सोई ॥

तिहिं तप तेज ही गिरयो विमाना, पाढा तब ही हृदय डरपाना ॥
आई तुरत ही स्वामी पासा, हाथ जोरि ठाडी भरि श्वासा ॥
क्षमा माँग बोली अरदासा, प्रभु अब हुकम करहू ममपासा ॥
शिष्या करिये गुरु व्है मोरा, अब में शरण लिया प्रभु तोरा ॥
स्वामी अति ही नम्रता देखी, की देवी पर कृपा विशेषी ।
बोले मंत दया तूं लीजै, जीवघात नहिं कोई कीजै ॥६॥

छन्द—

कोउ जीव को नहिं हनन कीजै आपसे पर जानिये ।
सब जीव अपने चर्म में रहि मगन मोद पिछानिये ॥
जगदया सम नहिं धर्म अवरहु अभैदानसु दीजिये ।
अब सीष देकरि शिष्य प्रभु कहिं शांति चित धर लीजिये ॥७॥

सोरठा—

सुन स्वामी की सीष, आई देवी निज भवन ॥
गुरु आज्ञा शुभ लीष, धरी शीश उर दयालहि ॥८॥

दोहा—

देवी परचो कह दियो, बरणों परचा और ॥
श्रोता सुनिये सुचित मन, तजहु सकल झकझोर ॥९॥

चौपई—

नाथ विराज डूंगरी आश्रम, हरत ताप जग के नाना श्रम ।
व्याप्यौ संत सुयश सब देशा, आवत दर्शही बहुत नरेशा ॥
पुर नागौर प्रेत दुप जानि, चले प्रभु सब सुख की खानि ।
पुर से रही प्राक्दिशि वापी, बसहिं जहाँ प्रेत बहु पापी ॥
आस पास है कूप घनेरा, जहाँ वसि भूत दुखद बहु तेरा ।
आया नाथ सबहि सुख शासन, सो प्रभु किया वापि में आसन ॥
दशवैं द्वार लगाय समाधि, बैठे मेटन भूत उपाधि ।
आये दुष्ट वेर जब आई, प्रभु ही देख बहु धूम मचाई ॥१०॥

छन्द—

प्रभु देषि धूम मचाई खल सब छार हाड उछारही ।
तब कीन्ह तनु विकराल धरि शिल अस्त्र शस्त्रहू डारहीं ।।
सब अफल व्है ज्यूँ अनल नीर ही प्रेत जब डरने लगे ।
करजोर प्रेत बहोरि कहि प्रभु दर्श अब हमरे भगे ।।११।।

सोरठा—

अधम उधारण नाथ, तारहु अब तारण तरण ।।
बूडि रहे भव पाथ, हाथ पकरि काढो हमें ।।१२।।

दोहा—

आरत वाँणी प्रेत की, सुनकर दीनदयाल ।।
पार किये भव सिन्धु सें, मुक्त किये तत्काल ।।१३।।

चौपई—

स्वप्न भयो नागौर नृपाला, आयो तहाँ प्रातही काला ।
सबही सुप्रजा लई बुलाई, उच्छव करि करि बटी बधाई ।।
डंड प्रणाम भूप नरनारी, करत सबै निज जन्म सुधारी ।
पट्ट पाँवडे धरत सुहाये, कर सत्कार भूप गृह लाये ।।
पद पषार निज भवन सिचाई, नाना भोजन प्रभु ही जिमांई ।
राख्या भूप कालबहु स्वामी, आय विराज्या अन्तर्यामी ।।
एक दिवस ज्वर सन्त शरीरा, आयो तब ही नाथ मतिधीरा ।
कंथा में निज ताप बसाई, वहुविधि हरियश नृपही सुनाई ।।१४।।

छन्द—

हरि सुयश सुनि नृप देख कंथा धूजती विसमय रह्यौ ।
कहि नाथ कंपति गूदडी क्यूं श्रवण कर प्रभु हँसि कह्यौ ।।
तन ताप मेरो गूदडी में याहि सो कम्पित रही ।
सुनि भूप कहि प्रभु आपको क्यूं डंड है स्वामी कही । १५।।

सोरठा—

देह धरी को डंड, भोग्यां विन छूटै नहीं ।।
अवतारी ब्रह्मंड, तनुधर भोगे डंड सब ।।१६।।

का उल्लेख किया है। उनका काल सत्रहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। वखनाजी तथा चैनजी की रचना सम्वत् १६८५ मे पहिले की है। पुरोहितजी ने हरिदासजी का दीक्षा-काल १६५६ लिखा है। साथ ही उनने लिखा है कि प्रयागदासजी के शिष्यत्व का परित्याग कर ये कबीर-पथी हुए, फिर नाथो से दीक्षित। मतलब, इस शृङ्खला से दो-दो, चार-चार वर्ष का अन्तर भी माने तो उनका नाथो से सम्बन्ध १६६५ से बाद का सिद्ध होता है। पुरोहितजी ने इनका मृत्युकाल भी १६७० लिख दिया है। उधर वखनाजी व चैनजी की रचनाओ मे नानक, कबीर, नामदेव, रैदास आदि महात्माओ के साथ इनका उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वखनाजी व चैनजी की रचना से पहिले ही इनका देहावसान ही नही हो गया, इनकी सिद्धियो से प्रसिद्धि भी पर्याप्त हो गई व इनके अनुयायियो की अच्छी सख्या हो गई थी। अतः पुरोहितजी के उक्त निरूपण की संगति युक्तियुक्त नही बैठती। अब भक्तमाल-कार के "सिर पर कर प्रयागदास का" क्या अभिप्राय समझा जाय ? इसकी महत्ता तो इससे जुडे हुए आगे के पद से व्यर्थ हो जाती है—जिसमे लिखा है कि "गोरखनाथ को मत लियो" शिष्यत्व जब प्रयागदासजी का था, तब गोरखनाथजी का मत अप-नाने का क्या अर्थ है ? भक्तमालकार के हमने पीछे जो उद्धरण दिये है वहा उनके एक पदभाग का उद्धरण है जो राग सीधू कडखै पद का है। इस पद मे एक युद्ध के रूपक का निरूपण है—आध्यात्मिक अभ्यासी महात्माओ ने किस तरह काम, क्रोधादि शत्रुओ तथा जागतिक-प्रलोभनो से त्याग-वैराग्य की दृढता द्वारा टक्कर ली तथा कैसे उनने जन्म-मृत्यु रूप काल से विजय पाई। इस पद मे बारह चरण है। इसमे प्राचीन ध्रुव-प्रहलादादि-भक्तो के निरूपण के साथ रामानन्दजी से लेकर आधुनिक महात्माओ का निरूपण किया है। उसमे सातवाँ चरण इस तरह है—

दादूदास हरिदास रु नानग , ये ग्यानी ओघाट हिये ॥
काम क्रोध मद मोह मछर , मार तड़ातड़ गद किये ॥७॥

इससे अधिक और क्या स्पष्ट होगा कि राघोदासजी ने यहा हरिदासजी को नानक, दादूजी, कबीरजी आदि के समान ही स्मरण किया है। यहां यह शंका की जा सकती है कि ये हरिदासजी और कोई महात्मा होगे। इसका प्रत्युत्तर है कि राजस्थान में ही नही, राजस्थान से बाहर भी ऐसा कोई और "हरिदासजी" महात्मा प्रख्यात नही है जिसके नाम पर पन्थ या सम्प्रदाय चला हो। यहाँ हमे सुन्दरदासजी की गुरुवन्दनाष्टक मे लिखी हुई उस उक्ति पर ध्यान देना चाहिए जो इस रूप मे लिखी हुई है—

"कोई कहे हरिदास हमारे जु यों सब ठानत वाद-विवादू ।"

दोहा—

वचन श्रवण करि भूप तब, गुरुपद वन्दन कीन्ह ॥
हाथ जोरि नृप दासवत, रह्यो सन्त आधीन ॥१७॥

समाप्ति पद छन्द—

निज गिरापावन करण कारण सन्त ग्रश वर्णन करथो ।
नहिं पार पाऊँ सन्तमहिमा कछुक गुरु गुण ऊचरथौ ॥
कहै दास कोमल जोरि करयुग अनुग मौकों कीजिये ।
यहु मांगहूँ गुरुदेव स्वामी दर्श आपन दीजिये ॥१८॥

सोरठा—

द्वादश परचा गाय, मेला को परसंग सब ।
कह्यौ मोद उरलाय, अपनी मति सारू सही ॥१६॥

दोहा—

सम्वत् उन्नीसै जानिये, चालीसै की साल ।
फागन शुक्ला षष्टी को, गायो सुयश रसाल ॥२०॥
शुभ नगर वालोतरा, रामनिवास सुथान ॥
रामकृष्ण गुरुदेवजी, शिष्य मैं कोमल जान ॥२१॥
मुरधर देश जिला जोधाणां, पुर वालोतरा मान ॥
परची श्री हरिपुरुष की, कोमलदास बषान ॥२२॥

॥ इति परचई संपूर्ण ॥

॥ प्रकीर्ण रचना ॥

(हरियानन्द कृत)

मनहर—

डीडपुर थान हरिदासजी विराजमान,
सन्तों के समाज देश देश हूते आत है ।
करत प्रणांम हरि सन्त सेवा आठों याम,
कथा कीर्तन सो तो जगमें विरव्यात है ॥

ढोलक बजावे ताल दशों दिशा सोहे साल,
अरस परस मिल हरि गुण गात है।
हरि दरबार जाकी महिमा अपार रांम,
एसो जू आनंद मेरे उरन समात है ॥१॥
जिनां की समाधि वणी कहूँ कहूँ तम्बू तणी,
सुन्दर बगीची जामें हँसन की जात है।
सब ही विचारवान निस दिन धरै ध्यांन,
ऊठत बैठत एक ब्रह्म ही की बात है ॥
सकल अचाही जाकैं चली आवे दुनी चाही,
लाडू पकवान मेवा भोजन करात है।
ऐसे जूँ प्रभाव देख देख सुधि सन्त जन,
हरियानन्द कहै मेरो मन हुलसात है ॥२॥
गाढै को सिनान जामें गोमती विराजमान,
पूजा पाठ ध्यांन मानों झरीसी लगाई है।
नागों के अखाडे और विरक्तों से भरे वाडे,
अभ्यागत साधु तामें वडे सुषदाई है ॥
प्रेमवान प्रीतवान गोटकों का करै दान,
टूटी फाटी कंथा ताकै थेगरी लगाई है।
ऐसे केउ साध ताको मतो है अगाध रांम,
हरियानन्द प्रीति रीति मेरे मन भाई है ॥३॥

उदयराम कृत छप्पय—

गोरष ज्यूँ द्रढ ग्यांन ध्यान धुनि शुक समजानो।
दत्त ज्यूँ मत आरूढ शील गांगेय परवानो ॥
त्रिगुण जीत निहकांम जानि सनकादि कुमारा।
ब्रह्म द्रिष्टि प्रहलाद दान ज्यूँ दधीचि उदारा ॥

ऊजल गुण आक्रांतितन भव निसतारन वपुधरै ।
पतित जीव पावन करन जन हरीदास कलि अवतरै ।।

ब्रह्मदास कुंडलिया—

तीवर तीषी डूँगरी जहाँ जलका नहीं निवास ।
हरीदास हरि मिलन कूँ कीया सिषर पर वास ।।
किया सिषर पर वास इन्द्रिया तन मन त्यागी ।
कर कर प्राणयाम सुषम्ना दशम सूँ लागी ।।
जन ब्रह्मदास जी दास के इक रांम मिलन की आस ।
तीवर तीषी डूँगरी जहाँ जलका नहीं निवास ।।१।।

अज्ञात छप्पय—

श्री महरवान अरु षेमदास राघव नारायण ।
विष्णुदास वोहिथ नरी भये ब्रह्म परायण ।।
बालकदास ब्रह्मदास दास गोविन्द उजागर ।।
शारंगदास हरिरांम भये हरि सुष के सागर ।
श्री गुरु पदरज परस जै हरिमाया अलिपत गये ।।
जन हरीदास पद परस कै कलियुग नौका येभये ।।१।।

अज्ञात कुंडलिया—

पन्द्रह सै पिचाणवे कीयो जोति में वास ।
फागणसुद छठ तिथि भली परम जोति प्रकाश ।।
परम जोति प्रकाश शब्द सतगुरु का जाण्यां ।
अलष पुरुष निज इष्ट रूप में ताहि पिछाण्यां ।।
वीसा सो वपु राषियो परम सन्त हरिदास ।
पन्द्रह सै पिचाणवे कीयो ज्योति में वास ।।१।।

रूपदास छप्पय—

नामा जन रैदास कवीरा गोरष दत्त सुषदेवा ।
गोपीचंद भरथरी जोगी लगे अलष की सेवा ।।

पीपा धना सैन मिल सोंझा नानग रामानंदा ।
हरींपुरुष सेवा जन सागे वह साहब का पंदा ।।
अनत कोटि जुग जुग के मांहि हरि सुमरत सुष पायो ।
अमरपुरुष सतगुरु के शरणै जन रूपराम गुण गायो ।।१।।

रतनदास होरो—

गाढे में बरसै रंगजी जहाँ संतन को सतसंग जी ।।टेक।।
गाढो धाम बण्यो अति सुन्दर गोमति जामैं गंग जी ।।
देश देश का सन्त पधारे मनमें धरत उमंग जी ।।१।।
ढोलक ताल तम्बूरा बाजै अरु बाजै मृदंग जी ।।
गुणि गंधर्व मिलि गावे बजावे सुरकी उठै तरंग जी ।।२।।
व्यवहारी विरकत सब आये ओर आये बहु संग जी ।।
ब्रह्म विलास होत है जहँ तहँ नाना विधि परसंग जी ।।
सब संतन की पदरज लेकर रतन करत वहुरंग जी ।।३।।
चालो गाढे में खेलां होरी जहां सन्त समाज मच्यो री ।।टेक।।
हरिपुरुष महाराज विराजे दरसन गुदडी कोरी ।।
देश देश के सन्त पधारे हंसन की सी टोरी ।।
ढोलक ताल तंबूरा बाजै नौबत की घनघोरी ।।१।।
व्यवहारी विरक्त सब आये अरु आये नागोरी ।।
सब सन्तन की पदरज लेकर रतन कहत कर जोरी ।।२।।
गाढे की अजब बहार छवि कहत न आवे पार ।।टेक।।
हरिपुरुष महाराज विराजे मुक्तिदेव दातार ।।
गावत सेव अमर महाराजा है निर्गुण अवतार ।।१।।
उडत गुलाल लाल भयो अम्बर रंग की पडत फुँवार ।।
ऐसी छवि निरखन को सुरपति धारे दगन हजार ।।२।।
गुणि गन्धर्व मिल गावे बजावे रांम नाम ततसार ।।
सब सन्तन की पदरज लेकर रतन कहत गुणसार ।।३।।

परमानंद होरी—

राजा हो होरी खेलें हरि के संग अरस परस मिल ऋतु वसन्त ।।टेक।।
अनहद धुनि बाजे रसाल जहाँ ररंकार जै जै उचार ।।
पाँच सहेली खडी हैं पास जहाँ फागर में जन हरीदास ।।१।।
कबीर नामदेव बन्यो है संग मिल पीये सूंधे बढ्यो हैं रंग ।।
सैन जयदेव रैदास दास जहाँ फागर में जन तुरसीदास ।।२।।
गोपीचन्द भरथरी चरपटीनाथ लिये सती घनेरी गुलाल हाथ ।।
ऐसो षेल मच्यो कछु कह्यो न जाय ।।
जहाँ अधिक विराजे बाबो गोरष राय ।।३।।
सिध चौरासी नऊँ ही नाथ जहाँ हिल मिल षेलै सकल साथ ।।
षेलत गावत भयो अनंद ऐसी महिमा गावै परमानंद ।।४।।

दरसनदास पद—

हरिजन हरिरस का मतवाला, जिन पिया रांम रस प्याला ।।टेक।।
नाथ मछंदर गोरष जैसा, अजैपालजी आला ।।
नौ जोगेश्वर जनक विदेही, ऐसा जोगी साचा ।।१।।
दत्त दिगंबर राघवानन्दजी, रामनन्द से साधू ।।
दास कबीर नामदे छींपा, ये उस घर के आदू ।।२।।
नऊँ नाथ अरु सिध चौरासी, भरथरी गोपीचन्दा ।।
साह सुलतानी सेष फरीदा, ये साहब का बन्दा ।।३।।
जन प्रहलाद रांका बंका, नानक दादू जैसा ।।
तुरसीदास और सब सन्तन, हरि में कियो प्रवेशा ।।४।।
हरीदास हरि के मतवाला, सेवादास जन सूरा ।।
अमरपुरुष अविनासी जोगी, बाजै अनहद तूरा ।।५।।
पींपा धना सैन रैदासा, सुषदेव पीयो अघाई ।।
अमर गुरु पीयो हुए निरभै, अगम सुरति ठहराई ।।६।।
महरवानजी षेम हजूरी, चतरदास पोकरदासा ।।
जगजीवन जालम जन जोगी, हरि में कीया वासा ।।७।।

गुरु गोविंद की करूँ वीनती, अनंत कोटि संत सारा ॥
दरसणदास दीन हो गावै, हरिजन हरि का प्यारा ॥८॥

दासजी कुण्डलिये—

विनय करूं कर जोरिकै, सुनिये दीनदयाल ।
हरिपुरुष हरि आपहो, संतन के प्रतिपाल ॥
संतन के प्रतिपाल, कृपानिधि सुषके सागर ।
ग्यांन भक्ति वैराग्य, ध्यान के परम उजागर ॥
दास कहै सुनो बापजी, वेग करो प्रतिपाल ॥
विनय करूँ कर जोर के, सुनिये दीनदयाल ॥१॥

दास कहै सुनो बापजी, मो पापी को तार ॥
मम करणी देषो नहीं, सुष सम्पति दातार ॥
सुष सम्पति दातार, ग्यांन अरु भक्ति दृढाओ ॥
जान आपनो भक्त, जगत में मति भरमाओ ॥
स्वामी सुणज्यो वीनती, तारो जगत् मंझार ॥
दास कहै सुनो बापजी, मो पापी को तार ॥२॥

अमरगुरु महाराज कूं, विनवहुँ बारम्वार ॥
कलियुग में अवतार लै, किये जीव भावपार ॥
किये जीव भवपार, कलपना सकल निवारी ॥
जब अधोग जिव जाइ, शरण लै करिया पारी ॥
रांम नाम ततसार दे, काटे कोटि विकार ॥
अमरगुरु महाराज कूं, विनवहुँ वारम्वार ॥३॥

सदाराम छप्पय—

ब्रह्म ग्यांन के पुंज ध्यान हिरदै में राजै ॥
निराकार को इष्ट ब्रह्म गलतान विराजै ॥
निद्व‌न्दी निष्काम तत्व उर मांहि विचारयो ॥
भवको करकै त्याग अखंड वैरागहि धारयो ॥
श्रीदयाल महाराज जू सन्तन पर राखों दया ॥
सदाराम की वीनती हरिपुरुष कीजै मया ॥१॥

दशा देप निज जनन की सेवा करिये सोय ।।
शीलवंत वैराग गुण महापुरुष कलि जोय ।।
महापुरुष कलि जोय रांम रटतां दिन जावै ।।
सोई हन्दी पीड़ तिनोंको नीद न आवै ।।
ये लच्छण जिन संत के तिनूको संगति होय ।।
दशा देख निज जननकी सेवा करिये सोय ।।२।।

प्यारेराम कुण्डलियां—
श्री हरिपुरुप हिरदै वसो सेव विराजो शीश ।
अमरपुरुप महाराज कूँ करूँ शीश वगसीस ।।
करूँ शीश वगसीस सुमति मोहे ऐसी दीजै ।
जगतें उलटा फेर रामरस अमृत पीजै ।।
प्यारेरांम की वीनती मानों विसवा वीस ।
श्री हरिपुरुप हिरदै वसो सेवा विराजो शीश ।।१।।

अज्ञात कुण्डलियां—
पील पाडया पिछम दिशा नगर कोलिया ग्राम ।
अमरपुरुप आसण जहाँ मानों तीरथ धांम ।।
मानों तीरथ धाम नाम चहुँ दिश में चावो ।
हरषित आवे सन्त मान मन घणों उमावो ।।
ऋतु वसन्त सन्त जन आवत पावत है विर्श्राम ।
पीलपाडया पिछम दिशा नगर कोलिया ग्रांम ।।१।।

रूपदास—कलियुग में कृपाल दया करि दरस दिपायो ।
प्रगटै आदू सन्त तत्व दे तिमिर मिटायो ।।
कियो ग्यांन परकाश भक्ति वैराग्य वधारयो ।
अमर आप महाराज काज पर तन मन धारयो ।।१।।
गोरष कहूँ कवीर कहूं या दत सुपदेवा ।
इसडी चाल अगाध साध कहों सागीं सेवा ।।
नाँव अमर महिमा अमर अमर अषै गुरु आप ।
जन रूपदास मस्तग रहे सदा अमर गुरु छाप ।।२।।

।। इति ।।

अथ श्री दयालुस्तोत्रम्

श्री रामचन्द्र गुर्जर प्रणीतम्

(तत्रादौ सूचनापद्यानि)

धन्येयं दैडवानाभिधपुरधरणिभूमिदेवैरुपेता
श्रीमत्पाढायदेव्याः सदनमिह हरेः श्यामदेवस्य चैव ।
यत्रोदग्भाग आस्ते जनपदविदितं सेवितं साधुसङ्घै-
स्तीर्थं गाढाभिधानं हृतदुरितचयं श्रीदयालोः प्रभावात् ॥१॥

गाढं यस्मिन् शमसुखपरो यस्तपस्तप्तुमास
स्वश्रेयोऽर्थी गुरुजनवचो गाढमङ्गीचकार ।
यः स्वीचक्रे विविदिषुजनान् गाढमात्मावबोधात्
तीर्थं गाढाभिधमिदमतः श्रीदयालोः प्रसादात् ॥२॥

मासेऽत्रागत्य तत्तज्जनपदविपुलासक्तचित्तास्तपस्ये
सन्तः सर्वेऽपि दर्शप्रभृतितिथिषु वै प्रारभन्तेऽत्र सत्रम् ।
गायन्तो गीतवाद्यैः प्रमुदितमनसः साधवः केऽपि भक्त्या ।
प्रेमोद्रेकान्महान्तः सदसि कतिचन श्रीदयालुं स्तुवन्ति ॥३॥

तदित्थम्

पुण्यैर्जन्मान्तरीयैः समधिगतमहासाधुसत्सङ्गलब्ध-
स्वात्मानन्दावबोधोदयसरणिरलं शान्तमानान्तरायः ।
अध्यासीनो विविक्तं बहुदिनममलं यो जपन् रामनाम
प्रापत् सद्योगसिद्धिं गुरुमहमनघं संश्रये तं दयालुम् ॥१॥

वाणीं वेदान्तसारां गहनतरमहाज्ञानरत्नोज्ज्वलां यः
व्यातेनेऽव्याहतात्मा ग्रथितगुणभरां स्वानुभूतिप्रचाराम् ।
संसाराम्भोधिभीतांश्चरणशरणगान् मानवान् वीतमानान्
उद्धर्तुं साधुवर्यं शमसुखनिरतं तं दयालुं भजेऽहम् ॥२॥

यदीयमधिगम्य वै गुरुकृपोपदेशामृतं
हृताखिलमनोमलः विगलितत्रितापो जनः ।
निरञ्जनपदाश्रयानुभवमालभेतानिशम्
गुरु तमहमाश्रये किल दयालुसंज्ञं मुनिम् ॥३॥

प्रसङ्गात् साधूनां परिहृतनिजाज्ञानविततिः
पुराजन्माभ्यासात् सपदि भवबन्धं विजितवान् ।
भजन् रामं प्रेम्णा विमलहृदयो योऽजनितराम्
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥४॥

सुखासीनं शान्तं भवजलधिदुःखप्रशमनम्
जनैः सेव्यं शश्वद्धृदि कृतहरिध्यानममलम् ।
अखण्डज्ञानौघं रहितगुणदोषं सुखकरं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥५॥

यदीया सद्वाणी श्रुतिवचनसारं निदधती
हृदज्ञानं हन्ति श्रवणपथगा शुद्धमनसाम् ।
नृणां भक्तिश्रद्धाऽऽदरपरधियां सौख्यजननी
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥६॥

परित्यज्य प्राज्यां सुतधनयुवत्यादिममताम्
भवाम्भोधेर्भीताः शरणमुपयाताः कतिचन ।
दयार्द्रालोकेनामितसुखयुतास्तेऽपि विहिता
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥७॥

दुरन्ते संसारे दुरितनिलये दुःखजनके
विरक्तिं, सद्भक्तिं ह्युपदिशति यो रामपदयोः ।
यदीयं स्वच्छान्तः करणमनिशं त्यक्तविषयं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥८॥

विपज्जालग्रस्तोद्धरणकृतयत्नः शुचिमनाः
विविक्ते देशे यो भजति किल नैरञ्जनपदम् ।
सदानन्दं शान्तं निरवधिगुणं सुन्दरतनुं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥९॥

पदं यत् सौख्यानां स्वयमखिलदीनावनपरं
जपन्तं रामाख्यं परमपरमं ब्रह्मनिलयम् ।
निराकारं नित्यं प्रशमिततमःस्तोममभितं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥१०॥

तपःसिद्धं भावात् स्फुरदनुभवो बुद्धिजलधिः
कृतोपेक्षः श्रीमान् स्वयमधिगते सिद्धिनिकरे ।
जनान् सर्वज्ञो यः सुखयति च सद्बोधवचनैः
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥११॥

युगादौ योगीन्द्रा भवजलधिमग्नान् हतधियो
दुराशाभूयिष्ठान् स्वशरणगतांश्चक्रुरनघान् ।
कलौ तद्वद्दीनोद्धरणपरवान् योऽजनि महान्
दयालु तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥१२॥

मनोवाक्कायैर्ये विहितबहुभावाश्चरणयो-
र्दयालोर्दासत्वं मनसि दधतो नित्यमनघाः ।
महान्तः संतस्ते जगति विदिता ज्ञानविभवै-
स्त्रिसन्ध्यं स्तोत्रस्य प्रपठनपराः संतु सुधियः ।

श्री श्रीमद्द्रविडसहस्रोदीच्याचार्येत्युपपदवाचक-
गुर्जरदेशीयबृहत्सभास्थद्विजवररामचंद्रपण्डितप्रणीतं
श्री दयालुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

यहाँ विविध पन्थो के निरूपण का प्रसङ्ग है। इसीमे उक्त पंक्ति द्वारा निरंजनी-पन्थ व उनके प्रवर्त्तक का निर्देश है, अत बखनाजी, जग्गाजी, खेमजी, चैनजी ने अपनी-अपनी रचनाओ मे हरिदासजी का उल्लेख किया है। वे यही हरिदासजी है, इसमे अन्य विकल्प को कोई स्थान नही है। राजस्थान मे यही सिद्ध महात्मा हरिदासजी हुए है जिनके पश्चात् निरंजनी सम्प्रदाय चला। स्वय राघोदासजी ने ही अपनी भक्तमाल मे उक्त पन्थ का निरूपण किया है जिसमे निरंजनी विशेषण व कई चमत्कारी सिद्धियाँ प्रदर्शित करने वाले यही हरिदासजी है। प्रयागदासजी का कर सिर पर रखने वाले वाक्य का स्वत ही अन्य उद्धरणो से महत्व नही रहता, न वह युक्ति पर ठीक उतरता है। सम्भव है ऐसा उल्लेख कुछ साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से किया गया हो। क्योकि राजस्थान मे सन्त-परम्परा मे "दादूपंथी और निरंजनी ही प्राचीन है।

इसी प्रसङ्ग मे उस मत पर भी विचार करना सङ्गत है जो कि स्वामी पूर्णदासजी नवलगढ परचई-लेखक स्वामी जानकीदासजी बालोतरा-निवासी ने अपने निर्मित हरिपुरुषजी के जीवन-चरित्र मे व्यक्त किया है। इन दोनो ने हरिदासजी को पयहारी कृष्णदासजी के शिष्य अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी से दीक्षा लेने का उल्लेख किया है। अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी का काल सम्वत् १६५० से पीछे आता है। यदि इन्ही से हरिदासजी ने दीक्षा ली है तो उनका दीक्षाकाल सोलह सौ साठ-सत्तर के बीच आता है। दीक्षा मे तिलक-माला-कण्ठी लेने तथा सगुणोपासना अपनाना अनिवार्य था। क्योकि वैष्णव-सम्प्रदाये सभी सगुणोपासक ही है और उनने भक्तिमार्ग पर ही बल दिया है। हरिदासजी ने यदि इनसे दीक्षा ली होती तो वे निर्गुण उपासक नही होने चाहिए थे। पर वे परम निर्गुण उपासक थे। उनने तिलक-माला-कण्ठी-मूर्ति आदि का तीव्रता से खण्डन किया है। इस स्थिति मे हरिदासजी ने वैष्णव-मत मे दीक्षा ली—यह कैसे संगत माना जाय ? दूसरे, काल का मेल भी नही बैठता। हरिदासजी अग्रदासजी के काल से पहिले ही ब्रह्मलीन हो गए थे। फिर पूर्णदासजी तथा जानकीदासजी ने ऐसा क्यो उल्लेख किया ? हम इस पर सक्षेप मे इनके प्रमाणरूप उद्धरणो को जहाँ पहिले स्थान दिया है, वही विवेचन कर आये है। यहाँ थोडा और विस्तार से विचार किया जाता है—

मेरे विचार से हरिदासजी के पश्चात् खेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी व अमरपुरुषजी इन छः महापुरुषो की परम्परा तक निरंजनी सम्प्रदाय निर्गुण उपासक ही रहा। यह काल सत्रहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध तक आता है। इसके पश्चात् मन्दिर, बगीची आदि स्थान अपनाने से मूर्तिपूजा का प्रारम्भ हुआ, साथ ही फिर तिलक-माला-कण्ठी-जनेऊ आदि अपनाये गए। इस परिवर्तित स्थिति को प्राचीनता से मिलाने के विचार से ही उक्त

श्री दयालु स्तोत्रम्

श्री कालिदासकविकृतम्

दयालुं तं वंदे हरिमिव गुरुं बोधवचनम्
जनानामज्ञानां भवजलधिविश्रामतरणिम् ।
विशेषात् साधूनां श्रमजनितमोहादिहरणं
शरण्यं विज्ञानां, प्रथितमहिमानं स्वयशसा ॥१॥

सुखावासं वंदे तमिह हरिदासं सुचरितं
समाधिस्थं रम्यं त्रिगुणरहितावस्थमचलम्
हरेः रूपं साक्षादजमनुपमज्ञानविभवम्
निजानां शिष्याणां प्रभवति विबोधाय य इह ॥२॥

तमीडेऽहं हंसोचितपरमयोगैकनिलयं
विधिज्ञं योगानां स्मृतनिजजनं लोकरमणम् ।
कवीनां यः स्वामी दिशति नितरां ज्ञानममलं
चिदानंदे सत्ये प्रणिहितमतिर्ब्रह्मणि सदा ॥३॥

रसज्ञः सेर्वेषां जगति तनुभाजां रसनया
यदुक्तं तद्विज्ञस्त्वमसि भगवन् ! भावभणितः ।
कथं त्वां स्तोतुं वै प्रभवति जनः शास्त्ररहितः
अतस्तेऽहं वाचा प्रणतिमनुतिष्ठामि सततम् ॥४॥

दया चेद् भूयात् ते सकलजनतायाः शिवकरी
तदाऽयं संसारः परम इह भक्तोऽपि भवति ।
दयालुस्त्वं भूया अहमपि चिदानंदसरसी–
निमग्नः संसारोपहितमनुतापं न हि भजे ॥५॥

दयालो ! त्वं दीनान् प्रभुरसि भवाम्भोधिपतनात्
समुद्धर्तुं, लोके न हि भवति तादृक् त्वदितरः ।
न ये त्वां सेवन्ते हरिपदसमर्चाविरहिताः
कथं तेषां न स्याज्जननमरणोपद्रवभयम् ॥६॥

निजानां संस्थाने गुरुवर ! मनोज्ञे सुविदिते
अखण्डैश्वर्यत्वादचलसुखसम्पत्तिभरिते ।
तवास्मिन् सौभाग्यं लसतु सततं "गाढ" निलये
वसन्ते सत्संमेलनमनुपमं यत्र नियतम् ।।७।।

सदा सेव्यः सद्भिः परमनिरवद्यैर्यतिवरैः
निजानंदोत्कण्ठैर्वविदिषुसमूहैः परिवृतः ।
त्वमस्मिन् संसारे प्रभवसि रवीन्दूपमतया
परब्रह्माभासोज्ज्वदमलभासां वितरणे ।।८।।

वरैर्वर्णै रम्यं सकलनिगमोपासनफलं
परप्रीत्या स्तोत्रं कविकृतमिदं गायति तु यः
पुमान् वाचा धन्यः स भवति सदैवात्र भुवने
मुनीनां वै पूज्यो भवति नितरां कण्ठपठनात् ।।९।।

इति श्रीमत्कालिदासकविकृतं
श्रीदयालुस्तोत्रं समाप्तम् ।

दोनो लेखकों ने वैष्णव-सम्प्रदाय से सम्बन्ध जोड प्रयागदासजी से दीक्षा लेने का उल्लेख किया। उधर हरिदासजी आमेर मे पहुँचे, तब वे अपनी साधना से सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। सिंह का परचा आमेर ही का है। कालसाम्य का अभाव, वाणी मे प्रबलता से निर्गुण भक्ति का प्रतिपादन तथा तिलक-माला-कण्ठी, मूर्ति आदि के खडन से सिद्ध हो जाता है कि पूर्णदासजी व जानकीदासजी का वैष्णव-सम्प्रदाय मे दीक्षित होने का उल्लेख काल्पनिक व निराधार है। उसकी कोई युक्तिसङ्गत प्रामाणिकता नही है। सारांश–हरिदासजी महाराज ने न तो प्रयागदासजी दादूजी महाराज के शिष्य से, न ही अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी से दीक्षा ली। वे आरम्भ से ही गोरखनाथजी से या उनकी परम्परा के किन्ही सिद्ध नाथ-महात्मा से दीक्षित हुए–यही संगत है।

जाति-सम्बन्धी मतभेद, जो "दबिस्तानुलमुजाहिब" के लेखक ने व्यक्त किया है, इसका संक्षेप मे हम प्रारम्भ मे निराकरण कर आये है। अत· पुन उस पर और कुछ विशेष लिखने की आवश्यकता नही है।

रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य आशारामजी दाधीच ने भी अपने द्वारा रचित जीवन-चरित्र मे "हरिदासजी" के उपदेष्टा विप्ररूपधारी परमेश्वर को बताया है। जैसे एक विशेष परिस्थिति से प्रेरित हो पूर्णदासजी तथा जानकीदासजी ने वैष्णव-महात्मा से उपदेश दिलाने का उल्लेख किया है, उसी तरह यह आशारामजी की कल्पना है। हरिदासजी के उपदेशक दादूजी के शिष्य प्रयागदासजी थे या अग्रदासजी के शिष्य प्रयागदासजी थे या विप्ररूपधारी परमात्मा थे—इस सबका औचित्य स्वयं महाराज हरिदासजी ने ही निरस्त कर दिया है। जबकि वे अपनी वाणी मे स्पष्ट उल्लेख करते है—

गुरु हमारे गोरष बोलिये, पाडा हमारी चेली ॥
सत का शब्द सहज घर खेलूँ, इहिं विधि दुरमति पेली ॥३॥

× × × गुरुदेव का अंग

मांई मूँडूँ सिद्ध की, भजूँ निरंजन नाथ ॥
हरिदास जन यूँ कहै, सिर गोरष का हाथ ॥५॥

× × × गुरुदेव का अंग

जन हरिदास नाथ का बालक, रहे नाथ की छाया ॥
पूर्ण ब्रह्म परम सुषदाता, निरभै निरंजन राया ॥६॥

× × × गुरुदेव का अंग

"घट में गोरष ज्ञान विचार"

× × × ज्ञान-उपदेश जोग-ग्रन्थ

पिंड ब्रह्मण्ड में दोय सिध, ज्ञान अरु गोरष लहिए ॥
जन हरिदास भ्रम छाँड़ि, ज्ञान गोरष तहाँ रहिए ॥

× × × ज्ञान-उपदेश जोग-ग्रन्थ

गोरष भवण गवण करि जीवे, सुख में सींगी बाजै ॥

× × ×

अवधू ऐसा ज्ञान विचारा ?
ज्यौं में अलख अकल अविनाशी, सुरति सु यह मति जागी ॥
गोरष गोपी परसि पर निरभै, अनहद सींगी बाजी ॥

× × ×

जग सोवे गोरष जन जागे, ऐसा परम निधानी ॥

× × ×

सूता गोरष लिया जगाय, जन हरिदास ताकी बल जाय ॥

× × ×

जाणौं जोग भोग नहिं जाणौं, नाथ इसी विधि खेलै ॥
जन हरिदास गोरष सत सन्मुख, अमी महारस झेलै ॥

यह कुछ पंक्तियाँ महाराज हरिदासजी की वाणी से उद्धृत की गई है। इनसे सिद्ध हो जाता है कि हरिदासजी महाराज गोरखनाथजी या उनके किन्ही योग्यतम अनुयायी से दीक्षित हुए थे। विकल्प में इस विचार से लिख रहा हूँ कि गोरखनाथजी के काल का समन्वय हरिदासजी से बैठता है या नही—यह अभी संदिग्ध है। वैसे तो गोरखनाथजी अजर-अमर भी माने जाते है।

स्वयं हरिदासजी की वाणी की रचना भी यह सिद्ध करती है कि उनने वाणी की रचना मे भी नाथ-वाणियों का अनुगमन किया है। उनने आरम्भ से लघु-ग्रन्थों की रचना की है। उन सबके आमुख मे प्रकरण नाम दिये गए है। वे सब नाम माला जोगग्रन्थ, ज्ञान-उपदेश-जोगग्रन्थ इस तरह दिये गए है। सभी के अन्त में

जोगग्रन्थ अवश्य दिया गया है। इनमे से कई ग्रन्थों की रचना भी नाथ-वाणियो के सदृश है।

जैसे—प्राणमात्रा जोगग्रन्थ है—

रहता सो भाई बहता सो वहणा,
अवधू उलटा गोता मार आकास में रहणा।
अरथ की अन्ध्यारि मिथ्या न भाखवा,
निरंजन मात्रा जतन सू राखवा॥

मनचरित्र जोगग्रन्थ—

प्र०—स्वामीजी कौंण अंधारा कौंण उजास,
कौंण अस्थान निज करण प्रकाश।
कौंण अस्थान मन रहे समाय,
कौंण अस्थान मन भूखा जाय॥

उ०—अवधू त्रिविध अंधारा ज्ञान उजास,
नाभि कँवल निज किरण प्रकाश।
ता अस्थान मन रहे समाय,
इन्द्रिय अस्थान मन भूखा जाय॥

सूर-समाधि जोगग्रन्थ—

साग धक धूणि भुज मुख हाथ फेरताँ।
आज के द्योस की बाट नित हेरताँ॥
कोट दौड़े बुरज दुसमणां दलां खेरताँ।
भौमि वापे तणे देखिजे फेरतां॥
जेर जोगी मरद आपणी जेरताँ।
जन हरिदास साहिब सन्मुख सही सूर तिण वेर का।
सूर समाधि अगाध व्रत जन हरिदास मन मांहि।
पैला न भाजै मला आपण भाजि न जाहिं॥६॥

अन्य महात्माओं की वाणियो मे इस तरह जोगग्रन्थ नही मिलेगे, न ही इस प्रकार की रचना मिलेगी। इन रचनाओ मे नाथ-वाणियो का आदर्श स्पष्ट है। तीसरा एक व्यावहारिक आधार भी है। वह है डीडवाणे मे जोगामंढी नाम से नाथो का स्थान। जिसकी महत्ता को निरंजनी सम्प्रदाय ने सैकडो वर्षो तक मान्यता दी।

डीडवाणे मे जहाँ महाराज हरिदासजी (हरिपुरुषजी) का समाधि-स्थान है, वहाँ वसन्त-पंचमी से सायकाल धमाल-फाग-होरी आदि का गायन आरम्भ हो जाता है, जो कि फाल्गुन सुदी ६ तक बराबर चलता है। पहिले बहुत से महात्मा वसन्त-पंचमी को डीडवाणे पहुचते थे और वे वहाँ महाराज हरिदासजी की निधन-तिथि (फाल्गुन सुदी ६) तक धमाल-होरी-फाग, सत्संग, भजनो का आनन्द लेते थे। मेरी बाल्यावस्था तक इस धमाल के प्रारम्भ करने से पहिले, वसन्त-पचमी को समागत तथा आगत साधु प्रात. जोगामढी जाते थे तथा वहाँ नारियल भेट करते थे, अबीर-गुलाल चढाते तथा वही धमाल का आरम्भ करते थे। यह क्रम हरिदासजी महाराज के ब्रह्मलीन होने से लेकर बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध -भाग तक चलता रहा है। इस व्यावहारिक रिवाज से सिद्ध होता है कि हरिदासजी महाराज को जिन नाथ महात्मा ने या गोरखनाथजी ने उपदेश दिया था। उनके आवास का सम्बन्ध इस जोगामढी स्थान से है। यह स्थान पर्याप्त प्राचीन है। इस तरह स्वय हरिदासजी महाराज के कथन, वाणी की रचना तथा व्यावहारिक-पद्धति का प्रचलन–ये इतने सुस्पष्ट प्रमाण है कि इनके पश्चात् हरिदासजी के गुरु कौन थे ? उनने किससे दीक्षा ली ? इस विषय मे किसी तरह की शंका-समाधान की आवश्यकता नही रहती। हरिदासजी के उपदेष्टा नाथ थे—यह सिद्धान्त युक्तियुक्त व सप्रमाण सिद्ध है।

स्वामी हरिदासजी का काल—

अब हम काल-सम्बन्धी प्रश्न पर विचार करते है। हरिदासजी का काल कबसे कब तक का माना जाय–यह प्रश्न विवादग्रस्त है। इसमे जो-जो विरोधाभास है, उनको प्रमाण व युक्ति की कसौटी पर परख कर निश्चय करना है। काल के बारे मे किन-किन का क्या अभिमत है तथा उस अभिमत का आधार क्या है—इसको भी सम्यक् परखने की :आवश्यकता है। वैसे हरिदासजी के कुछ जीवन-चरित्र लिखने वालो ने तो उनका जन्म-काल सम्वत् १४७५ तथा निधन-काल सम्वत् १५९५ लिखा है। पुराने परचई-लेखको मे केवल रघुनाथदासजी ने काल का उल्लेख किया है। वह इस रूप मे है—चवालीस वर्ष घर मे रहते हुए गृहस्थ-जीवन बिताया। पश्चात् चवालीस वर्ष भजन-तप-साधना-सिद्धि व भ्रमण मे बिताए। इनने मृत्युकाल सम्वत् १६०० फाल्गुन शुक्ला ६ लिखा है। इनके विचारानुसार अठ्यासी वर्ष हरिपुरुषजी ने शरीर रखा। इस विधि से उनका जन्म-काल १५१२ आता है। हरिरामजी तथा प्यारेरामजी ने काल का कोई उल्लेख नही किया है।

मत्रराज-प्रभाकर के लेखक, परचई-लेखक पूर्णदासजी, रामचन्द्रजी गुजराती के शिष्य ग्राशारामजी दाधीच तथा जानकोदासजी ने सम्वत् १४७५ मे जन्म तथा १५९५ मे ब्रह्मलीन होना लिखा है। 'जोधपुर की हिस्ट्री' मे सम्वत् सोलह सौ से निरञ्जनी सम्प्रदाय का प्रारम्भ लिखा है। पचोली - वंशीलालजी जिनका वंश-परम्परागत मारवाड राज्य से प्रशासनिक सम्बन्ध है तथा उनको मारवाड राज्य द्वारा दी गई निरंजनी सम्प्रदाय की सनदो की विशेष जानकारी है, उनका मत भी यही है कि हरिपुरुषजी का देहावसान सोलह सौ से पहिले हो गया। एक प्राचीन पत्र स्वामी सम्पतरामजी की पुस्तको मे था। उसमे कबीरजी ग्रादि कई महात्माग्रो के जन्म-काल व निधन-काल के ज्ञापक-दोहे लिखे हुए है, उसमे भी महाराज का काल वही चौदह सौ पिचहत्तर व पन्द्रह सौ पचाणवे लिखा है। उपर्युक्त सभी लेखक मानते है कि हरिपुरुषजी की ग्रायु एक सौ बीस वर्ष की रही। परचई-लेखक रघुनाथ-दासजी के ग्रनुसार ग्रायु ग्रठहत्तर वर्ष की रही।

"दबिस्तानुलमुजाहिब" के लेखक ने हरिपुरुषजी का निधन-काल सम्वत् १७०२ लिखा है। जोधपुर से वाणी का प्रकाशन हुग्रा है, उसमे लिखे गए जीवन-चरित्र मे भी सम्वत् १७०० निधन-काल लिखा है। हिन्दी-साहित्यकारो का उल्लेख हम पीछे कर ग्राए है, उनने इनके काल के सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है। उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा के लेखक माननीय श्री परशुरामजी चतुर्वेदी एम. ए , एल-एल. बी ने उनके काल के बारे मे प्राप्त सभी मतो का उल्लेख किया है। पर उनने निश्चित कोई मत इस विषय मे व्यक्त नही किया। उनने गुलेरीजी, पुरोहित हरिनारायणजी ग्रादि के मतो का उल्लेख किया, पर स्वयं हरिदासजी महाराज की छै चकवै वाली साखी मे ग्रकबर के नाम का उल्लेख देखकर उनका विचार किसी एक मत पर टिका नही। चन्द्रधरजी गुलेरी एम ए. के नागरी-प्रचारिणी पत्रिका मे लिखे गये लेख मे, जो कि सम्वत् १९७७ के ग्रङ्क मे निकला है—उनने उसमे हरिदासजी का रचना-काल सम्वत् १५२० से १५९७ तक का माना है। पुरोहित हरिनारायणजी ने "सुन्दर-ग्रन्थावली" की भूमिका मे सम्वत् १६५६ दीक्षाग्रहण-काल व सम्वत् १६७० इनका ग्रवसान-काल लिखा है।

काल-निर्णय मे विशेष बाधक श्री हरिपुरुषजी की वह साखी है, जिसमे छ चक्रवर्त्तियों का उल्लेख किया गया है।

छै चकवै मुचकंद कहाँ, कहाँ विक्रम कहाँ भोज ॥
सामंत पृथ्वी चौहाण कहाँ, कहाँ ग्रकबर नोरोज ॥

—हरिदास वाणी
भ्रमविध्वंस जोगग्रन्थ

उपर्युक्त मत-मतान्तरो से हमारे सामने चार मत ऐसे आते है जो १६७०, १७००, १७०२ और १६५० से १६७०–७५ तक आता है। इन चारो मतो पर क्रमशः विचार करना उपयुक्त रहेगा।

सम्वत् १६७० अवसान-काल हरिपुरुषजी का था–यह अभिमत पुरोहित हरिनारायणजी बी. ए. जयपुर का है। उनके इस मत का समर्थक है–एक प्राचीन पत्र की नकल जिसमे प्रयागदासजी के शिष्यो का विवरण दिया है। उसमे हरिदासजी निरंजनी का भी उल्लेख है। अवश्य प्रयागदासजी के आठ-दस शिष्यो मे हरिदासजी भी एक शिष्य थे और सम्भव है उनका देहावसान भी सोलह सौ सत्तर मे हुआ हो। मेरी बाल्यावस्था मे मैने पुराने महात्माओ से सुना था कि बडे भंडार के क्षेत्र मे दादू-पन्थियो के कोई स्मारकस्थान है। सम्भव है प्रयागदासजी के किन्ही शिष्यो के स्मृतिरूप कोई चबूतरी या छत्री हो। पर प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य हरिदासजी थे, वे ये ही निरंजनी-सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक हरिदासजी थे—ऐसा युक्तियुक्त प्रतीत नही होता। क्योकि प्रयागदासजी के समकक्ष दादूजी के शिष्य वखनाजी, जग्गाजी व सुन्दरदासजी ने अपनी रचनाओ मे हरिदासजी महाराज का समादर के साथ नानक, कबीर, नामदेव, रैदास आदि महात्माओं के समकक्ष-कोटि मे स्मरण किया है। सन्तो के परिचयात्मक साहित्य मे नाभादासजी की भक्तमाल के पश्चात् राघोदासजी की भक्तमाल का स्थान है। राघोदासजी ने सगुण चार सम्प्रदाय के भक्तो का निरूपण करने के पश्चात् नानक, कबीर, दादू तथा निरञ्जनी सम्प्रदाय का निर्गुण उपासकों मे निरूपण किया है। यदि हरिदासजी प्रयागदासजी के ही शिष्य थे तो फिर निरञ्जनी सम्प्रदाय का दादू-पन्थी सम्प्रदाय से भिन्न अस्तित्व ही कहाँ से आया और निरञ्जनी हरिदासजी का निरूपण क्यो किया गया ? इसके समाधान मे पुरोहितजी ने लिखा हैं कि सम्वत् १६५६ मे हरिदासजी ने प्रयागदासजी से दीक्षा ली। बाद मे वे नाथो के अनुयायी बन गये और १६७० मे उनका देहावसान हो गया। जैसा पीछे मैने शिष्यत्व के प्रश्न पर विचार करते हुए स्वयं हरिदासजी के ही वे उद्धरण दिये है जिनमे उनने गोरखनाथजी से ज्ञान ग्रहण करने का स्पष्ट उल्लेख किया है। ईश्वर-चितन मे लगने वाले मरात्माओ की वृत्ति ऐसी उच्छृङ्खल नही होती कि वे तीसरे दिन गुरु बदलते रहे। सभी महात्माओ ने अपमे उपास्य ईश्वर से भी अधिक गुरु को महत्व दिया है। अत· हहिदासजी वस्तुतः प्रयागदासजी विहाणी के शिष्य होते तो वे अपने को गोरखनाथ से ज्ञान लेने का कदापि उल्लेख नही करते। यहाँ यही मानना होगा कि पुरोहितजी ने नामसाम्य के कारण ही हरिदासजी को प्रयागदासजी का शिष्य लिख दिया है। उनने उन उल्लेखो पर ध्यान नही दिया जो जग्गाजी, वखनाजी, सुन्दरदासजी, रज्जब शिष्य खेमजी, जनगोपाल-शिष्य चैनजी तथा भक्तमाल-रचनाकार राघोदासजी ने अपनी-अपनी कृतियो मे किया है। यहाँ उन उद्धरणों को पुनः देने की आवश्यकता नही। वे सब पीछे तत्-तत् प्रसङ्ग मे उद्धृत है।

दूसरे दो मत है–"दबिस्तानुलमजाहिब" व जोधपुर से प्रकाशित वाणी मे जीवन-चरित्र देने वाले साधु देवादासजी का। मजाहिब लेखक ने सम्वत् १७०२ हरिदासजी का अवसान-काल लिखा है, जन्म-काल लिखा नही। जोधपुर से प्रकाशित वाणी मे जीवन-चरित्र मे–जन्म सोलहवी शताब्दी तथा अवसान-काल सम्वत् १७०० फा० शु० ६ लिखा है। दोनो ही लेखको ने किस आधार से यह काल लिखा है उसका कोई विवेचन नही है। देवादासजी ने तो स्वीकार भी किया है कि जीवन-चरित्र की प्रामाणिक सामग्री है नही, जो कुछ सुना है उसी के आधार पर लिखा जाता है। केवल श्रुत आधार की काल के बारे मे विशेष प्रामाणिकता नही मानी जा सकती। जबकि उसके विरुद्ध पडने वाले प्रमाण अधिक सहेतुक हो। जिन उपपत्तियो से पुरोहितजी के कालोल्लेख का समन्वय नही बैठता, तब उनके लिखे काल से भी ३०-३२ वर्ष और आगे के काल की संगति का उन प्रमाणो से कैसे मेल बैठ सकता है? अतः इन तीनो कालो के विषय मे यही कहा जा सकता है कि इनका औचित्य अन्य प्राप्त प्रमाणो से संगत नही है।

अब हम छै चकवै वाली साखी पर आते है। वह साखी स्वयं हरिदासजी की है। प्रकरण है भ्रमविध्वंस का। उसमे निरूपण किया गया है कि बडे-बड़े सामन्त, महान् योद्धा व विपुल धन-सम्पत्ति वाले सम्राट् सब समाप्त हो गये। हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, रावण, कंस, शिशुपाल, पाण्डव और कौरवो की असारता व्यक्त करते हुए ही अन्त मे यह साखी आती है। इस साखी के पूर्वार्द्ध मे मुचकुन्द, विक्रम, भोज का उल्लेख आता है। उत्तरार्द्ध मे पृथ्वीराज, अकबर व नोरोज का उल्लेख है। नोरोज अकबर का विशेषण नही है–ऐसा हो तो फिर छः चक्रवर्त्ती न रहकर पाँच ही रह जायँ। अत. अकबर तथा नोरोज को दो भिन्न-भिन्न सम्राट् मानने चाहिएँ। मेरे विचार से यहाँ अकबर का जो उल्लेख है, वह मुगल सम्राट् न होकर कोई अन्य अकबर होना चाहिए। क्योकि यदि मुगल सम्राट् अकबर ही इस उल्लेख मे माना जाय तो फिर हरिदासजी का अवसान सत्रह सौ के करीब ही आता है। कारण, अकबर का अवसान सम्वत् १६६४ मे हुआ। हरिदासजी ने अपनी रचना मे उसके मरने से पहिले–जीवन-काल मे ही उसका उल्लेख अपनी वाणी मे किया हो तो भी सम्वत् सोलह सौ पचास से पहिले का यह उल्लेख नही माना जा सकता। स्वामीजी की रचना जब सोलह सौ पचास के आस-पास ठहरती है तो फिर उनका निधन भी सोलह सौ सत्तर-अस्सी के करीब आता है। ऐसा मानने से फिर जिन-जिन महात्माओं ने, जिनका कि काल सोलह सौ चालीस से नब्बे तक का है। वखनाजी, जग्गाजी, चैनजी व खेमजी ने अपनी-अपनी रचनाओ मे हरिदासजी को नानक, कबीर, रैदास के साथ स्मरण किया है—वह असंगत है या समसामयिक मानकर उनका उल्लेख किया है। उनने जो उल्लेख अपनी रचनाओं मे किया है वह समसामयिक मानकर नही किया, क्योकि समसामयिक स्थिति मे न तो सम्प्रदाय ही का कोई स्वरूप माना

जा सकता है, न उनका ही । अत. उक्त रचनाकारो ने हरिदासजी का उल्लेख उनके निधन के पश्चात् तथा उनकी सम्प्रदाय बन जाने पर ही किया है—यह युक्तियुक्त पक्ष है । हरिदासजी की छठी पीढी मे महात्मा सेवादासजी हुए है, जिनकी परचई पोता-शिष्य रूपदासजी ने लिखी है । उनने सेवादासजी का जन्म-काल इस तरह लिखा है—

सोलह सौ सताणवें, चैत सुदि नौमी दिन ॥
ता दिन बाजे बाजिये, प्रगटै सेवा जन ॥
ईश्वरकला अवतार जन, राजगुरु घर संत ॥
रूपदास जन का कहूँ, महिमा बहोत अनंत ॥
नवव्याकरण भागवत पढ़ि, पायो सतगुरु ज्ञान ॥
महा विरक्त वैराग होय, धार्यो निरगुण ध्यान ॥
सतरा सो अठाणवे, वद पड़वा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधाइया, कियो ब्रह्म में वास ॥४॥

रूपदासजी की परचई की उक्त चार साखियोसे सेवादासजी का निश्चित काल-ज्ञान होता है—सोलह सौ सताणवे उनका जन्म-काल, सत्रह सौ ग्यारह दीक्षा-काल व सत्रह सौ अठाणवे अवसानकाल । यदि हरिदासजी का ही हम सोलह सौ सत्तर-अस्सी तक रहना माने तो फिर क्या खेमजी, चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी ये सब चार पीढियाँ दस वर्ष मे ही समाप्त हो गई । इन चारो के निधनकाल निम्न रूप से भाट की बही मे दर्ज है । खेमजी संवत् १६१२ जेठ सुदी ६, चत्रदासजी सवत् १६६४ वैशाख बदी ११, पोकरदासजी का देहावसान संवत् १६६६ और दयालदासजी १७४५ मे । दयालदासजी के ही शिष्य सेवादासजी थे । उक्त कालक्रम मे कोई असगति प्रतीत नही होती । अत. यह मानना कि हरिदासजी सोलह सौ सत्तर-अस्सी तक रहे, उक्त कालो से विपरीत पड़ता है । अतएव यही मानना होगा कि छै चकवै की साखी मे उद्धृत अकबर मुगल साम्राज्य वाला न होकर कोई अन्य अकबर होना चाहिए । इसी तरह नौरोज भी कोई और प्राचीन सम्राट होना चाहिए । ऐसा मानने ही से दादूपन्थी लेखकों व निरजनी लेखको के मतो का औचित्य रहता है, अन्यथा सब मतो के उल्लेख असम्बद्ध होते हैं, जिसका कि कोई अकाट्य विरोधी प्रमाण नही है । अब हम कुछ फुटकर रचनाएँ नीचे उद्धृत करते हैं जिनका सम्बन्ध कालक्रम से है—

बालोतरे से प्राप्त—

चौदह सो पिचोहतरे, जन्म लियो हरिदास ॥
सांखल के घर अवतरे, क्षत्रिय वंश निवास ॥
क्षत्रिय वंश निवास, तेजस्वी मूर्ति विराजै ॥
क्षत्रिय सूर न'होय, मात को दूध जे लाजै ॥
पीछे गोरखनाथ जी, दीन्हों ज्ञान प्रकाश ॥
चौदह सो पिचहोतरे, जन्म लियो हरिदास ॥१॥
पन्द्रह सो पिचाणवे, कियो जोति में वास ॥
फागण सुदि की षष्ठमी, परम जोति प्रकाश ॥
परम जोति प्रकाश, भेद सब सतगुरु जान्या ॥
अलख निरंजन इष्ट, ताहि का तत्व पिछान्या ॥
वीसा सो वपु राखियो, जन हरिदास निज दास ॥
पन्द्रह सो पिचाणवे, कियो ज्योति में वास ॥२॥

सम्पतरामजी का प्राचीन पाना—

पन्द्रह सौ बारोतरे, फागण सुदी छठ सार ॥
वैराग ग्यान भक्ति कूँ, लियो हरी अवतार ॥
पन्द्रह सै के बारह गये, हरि धार्यो अवतार ॥
ज्ञान भक्ति वैराग्य दे, जीव किये भव पार ॥
पन्द्रह सै छप्पन समय, वसन्त पंचमी जान ॥
तब हरि गोरष रूप धरि, आय दियो ब्रह्मग्यान ॥
सोलह सैरे सई के, छठि सुदि फागण मास ॥
परम धाम भये प्रापतीं, नगर डीड हरिदास ॥४॥

कालपोषक दो मुख्य विचार है—पहिला संवत् १४७५ से १५९५। दूसरा संवत् १५१२ से १६००। परचई-लेखको मे सबसे पुराने हरिरामजी है। पर उनने

काल का उल्लेख किया नही। उनके पश्चात् है रघुनाथदासजी। इनने वही काल लिखा है जो प्राचीन पत्र-साखियो मे है। जोधपुर हिस्ट्री का भी यही मत है। चन्द्रधरजी गुलेरी के लेख गत काल का समन्वय भी इसी काल से बैठता है और यही उपयुक्त भी बैठता है। अत. मै उपर्युक्त सब विवरणो के ऊहापोह के पश्चात् इसी पक्ष पर पहुंचता हूँ कि हरिदासजी महाराज का काल सोलहवी शताब्दी ही ठीक है। उनका जन्म-काल पन्द्रह सौ बारह, दीक्षाकाल पन्द्रह सौ छप्पन, निधन-काल संवत् सोलह सौ। जब तक इसके विपरीत कोई अकाट्य सपुष्ट प्रमाण उपस्थित नही होता, तब तक यही काल मानना उचित व संगतिपरक है।

॥ इति परिचयखण्ड ॥

विवेचनात्मक उत्तरखण्ड

भूमिका

१. संक्षिप्त-जीवनी

परिचय-खण्ड मे महाराज श्री हरिपुरुषजी (हरिदासजी) के जीवन का विस्तार मे विश्लेषण आ गया है, पर वह शृङ्खलाबद्ध नही है। इसलिए यहाँ पुनः संक्षिप्त जीवनी का उल्लेख किया जा रहा है।

हरिदासजी का जन्म सम्वत् १५१२ मे हुआ। वे शाखला गोत्र के क्षत्रिय थे। ग्राम कोलिया उस समय शाखला क्षत्रियो की जागीर का प्रमुख स्थान था। कोलिया से उत्तर-पूर्व दो कोस पर कापडोद ग्राम था। यह कापड़ोद ग्राम ही महाराज हरि-पुरुषजी की जन्मस्थली है। आज भी यह ग्राम आबाद है। शाखलो के भी कुछ घर अब भी है। प्राचीन समय मे क्षत्रियो का आजीवन भूमि-अधिकार से या लूट-डकैती से चला करता था। हरिसिहजी का बाल-जीवन अन्य बालको की तरह ही व्यतीत हुआ। उनके माता-पिता का नाम ज्ञात नही हुआ है। वयस्क होने पर उनका विवाह हो गया तथा गृहस्थी के पालन के लिए उनने भी डकैती का मार्ग अपनाया। डीड-वाणे से कोलिये को आने वाले मार्ग मे जगल मे एक कुआ था, जिसकी संज्ञा पीछे से खोसल्या कुआ हुई, वही उनके लूटने का प्रमुख स्थान था।

कालक्रम से एक दिन एक महात्मा का उधर आने का संयोग हुआ। हरि-सिहजी ने उनको भी लूटने के विचार से रोका। महात्मा ने उनको समझाया कि मनुष्य-जन्म पाकर यह पाप-कर्म कर रहे हो—इसका फल कौन भोगेगा ? हरिसिहजी ने कहा कि जो लूट के माल से मेरा कुटुम्ब पेट भरता है, वही इस पाप का फल भोगेगा। महात्मा ने कहा—इसकी जाँच तो करो। तब हरिसिहजी ने महात्मा को एक पेड से बाँध दिया तथा घर आकर कुटुम्बियो से पूछा कि कहो, मै जो यह लूट-डकैती करके नर-हत्या से धन लाता हूँ, उस पाप के भागीदार कौन होगे ? कुटु-म्बियो ने उत्तर दिया कि 'जो हत्या-लूट करेगा, वही उस पाप का भागीदार होगा।' इस उत्तर ने हरिदासजी की सहज मानवीय भावना को उद्वेलित किया। वे वापिस लौटते हुए अपने इस कुकर्म पर विचार करने लगे। महात्मा के पास आने तक उनका अन्तर्मन बदल गया। उनको अत्यन्त आत्मग्लानि हुई। महात्मा को खोल, विनयान्वित हो, उनसे क्षमा माँगी तथा अपने कल्याण के लिए मार्गप्रदर्शन की प्रार्थना की।

महात्मा ने आध्यात्मिक-पथ का उपदेश दिया तथा आत्मचिन्तन मे लगने का निर्देश कर अन्तर्धान हो गए। श्रुत-परम्परा मे इन्हे गोरखनाथजी कहा जाता है। उक्त उपदेश प्राप्त हुआ उस समय उनकी अवस्था चवालीस वर्ष की थी—स्त्री-पुत्रादि कुटुम्ब भी था। आपने महात्मा मे उपदेश प्राप्त करते ही अपने शस्त्रादि उसी "खोसल्ये कूए" मे डाल वहाँ से दो-तीन कोस पर पहाडी प्रदेश की सबसे बडी पहाडी 'तीखी डूँगरी' की ओर प्रस्थान कर दिया। उस पहाडी मे पहुचकर ईश्वर-चिन्तन मे लग गए। तीव्र वैराग्य की उत्पत्ति हो गई और वे अनवरत आत्मचिन्तन मे लग गये।

उनका निरन्तर आत्मचिन्तन पर्याप्त समय तक इस डूँगरी पर चला। जब स्थितप्रज्ञ की स्थिति हो गई व चिन्तन का कार्य स्थायी वृत्ति मे सम्यक् स्थान पा गया, तब आप अपनी अनुभूति के अनुसार जन-समुदाय को मार्ग-प्रदर्शन के लिए भ्रमण को निकल पड़े। अनेक स्थानो का भ्रमण कर अन्तिम समय के समीप डीडवाणे मे आये तथा यही सम्वत् सौलह सौ की फाल्गुन शुक्ला षष्ठी को वे ब्रह्मलीन हो गए। इस तरह आयु का पूर्वार्द्ध सासारिक जीवन मे व्यतीत हुआ और उत्तरार्द्ध आत्मचिन्तन मे लगा। अठ्यासी वर्ष की आयु का उपभोग कर, संसार को शुभ सदेश प्रदान कर वे अपनी विशुद्ध साधनानुभूति के निचोडरूपी "अनुभव वाणी" को हमे प्रदान कर गए जिसके आधार से हम भी आज तक सन्मार्ग प्राप्त कर रहे है। उनका नश्वर शरीर चला गया, पर उनकी अनुभूति आज भी अक्षुण्ण है।

डकैती का कार्य निर्दयता की पराकाष्ठा है। आजीविका के लिए हरिसिंहजी ने यह मार्ग अन्धानुकरण से अपनाया था। वे प्रतिदिन खोसल्ये कुए के पास के जगल मे छिपे रहते थे और इन्तजार करते रहते थे इक्के-दुक्के पथिक का। मुसाफिर ही उनका शिकार था और उस शिकार का धन-दौलत थी उनकी आजीविका की पूर्ति का साधन। उनने इस काम को करते समय कभी यह नही सोचा था कि यह काम अच्छा नही है। कुटुम्ब भी प्रसन्न था उनके इस पैदावार के सिलसिले से। मनुष्य मे सत्संस्कार भी दबे रहते है, कदाचित् उनको अंकुरित करने का कोई हेतु आ जाय तो मनुष्य की चालू परिस्थिति मे बहुत बडा अन्तर हो जाता है। हरिसिहजी के जीवन को बदलने का भी एक दिन मौका आ गया। दैवात् उस पथ पर एक दिन एक आत्मजयी महात्मा आ निकले। हरिसिहजी ने नित्यकर्मानुसार उनको भी रोका। महात्मा ने विचारा कि एक मानव किस तरह रास्ता भूल गया है। सर्वोत्कृष्ट मानव शरीर पाकर तथा बुद्धि व विचार की क्षमता रखते हुए भी प्रलोभन तथा अपने उत्तरदायित्व को ठीक से निर्वाह करने का सही मार्ग न पकड पाने से यह हिंसा तथा तस्करकर्म मे ही अपना श्रेय मानने लग गया है। महात्मा का हृदय दयार्द्र होता ही है। उनका ध्येय प्राणिमात्र का कल्याण है। महात्मा ने निश्चय

किया कि इसको इस जघन्य पापकर्म मे हटाना चाहिए। उनने हरिसिंहजी को सम्बोधित कर उनकी अन्तर्निहित सद्भावना को जागृत किया कि हे मानव! कुलीन क्षत्रिय वंश मे जन्म लेकर तू प्राणिमात्र का रक्षक होने के स्थान पर इस कर्म से भक्षक बन गया है—यह किसलिए ? इस चौरकर्म से धनोपार्जन कर झूठी ममता मे जिस कुटुम्ब को अपना मान उसका पालन-पोषण करता है, क्या वह भी तेरे इस पापकर्म के फलभोग मे तेरा साथी है ? इस प्रश्न पर तुमने कभी विचार किया है। हरिसिहजी ने तपाक से उत्तर दिया—जिनके भरण-पोषण के लिए ही मैने यह कार्य अपनाया है तथा उन्ही की आरामदारी के लिए मै दिन-रात जो कष्ट उठा रहा हूँ—वे मेरे इस कर्म के फलभोग मे क्या भागीदार नही होगे ? अवश्य ही मेरे वे साथी है। महात्मा ने प्रेरणात्मक-भावना से उनको प्रेरित किया कि तुमने यह मिथ्या विश्वास कैसे अपनाया है ? क्या कभी तुमने अपने कुटुम्ब से इस बात की चर्चा की है ? नही की है तो आज यह परीक्षा तो कर लो कि वस्तुत: तुमने जो धारणा बना रखी है—वह ठीक है या गलत। हरिसिहजी के मन मे संशय पैदा हुआ कि हमने इसका निर्णय तो कभी नही किया, आज देख तो ले कि कुटुम्ब की भावना क्या है ? वे महात्मा को वही बाँधकर कुटुम्ब के पास गए तथा उक्त प्रश्न किया। कुटुम्बियो ने प्रत्युत्तर दिया कि दुनिया मे क्या कभी ऐसा हुआ है कि करेगा कोई और भरेगा कोई ? हम तो तुम्हारे आश्रित है, तुम चाहे जैसे कमाओ, हमारा भरण-पोषण तुम्हारे जिम्मे है। जिस कार्य से तुम धनोपार्जन करोगे उसका परिणाम तो तुम्ही को भोगना होगा—कर्म मे कोई किसी का भागीदार नही बन सकता। हरिसिंहजी की चिरकाल से प्रसुप्त सद्भावना जागृत हुई। कुटुम्ब की झूठी ममता के बन्धन हिल उठे। वे आत्मग्लानि से सन्तप्त, उन्ही पैरो वापिस लौटकर महात्मा को खोल, उनके चरणो मे नतमस्तक हो प्रार्थना करने लगे कि हे महात्मन्! मेरा कल्याण कीजिए। मुझे वह सत्पथ बतलाइए, जिस पर चलकर मै इस मानव शरीर द्वारा कल्याण प्राप्त कर सकूँ। महात्मा ने हरिसिंहजी के व्यामोह को विगलित देख उपदेश दिया और सकेत किया कि तेरा कल्याण आत्मचिन्तन मे है। महात्माजी की यही प्रेरणा हरिसिंहजी के गृह-त्याग का कारण बनी। उनने उसी क्षण शस्त्र-पाती कुएँ मे डाल सामने दिखाई देने वाली 'तीखी डूँगरी' का रास्ता लिया। इस तरह महात्मा का मिलन उनका उपदेशहेतु बन हरिसिहजी के जीवन को आध्यात्मिक-चिन्तन का साधक बना दिया।

२. साधना

कापड़ोद के डकैत हरिसिहजी अब हरिदासजी हो गए थे। उनने 'तीखी डूँगरी' को अपना चिन्तन-स्थान बनाया। डूँगरी के शिखर पर ही उनने अभ्यास आरम्भ कर दिया। वृक्ष और पहाड़ी के टोले ही उनके चिरसङ्गी बने। दीक्षा-गुरु

गोरखनाथजी थे या कोई आत्मनिष्ठ अन्य नाथ-महात्मा ? उनने साधना का क्या मार्ग बतलाया—यह तो स्पष्ट नही है । पर हरिदासजी महाराज ने साधना के पश्चात् जो अपनी अनुभूत वाणी रची, उसके विविध प्रसङ्गों से पता लग जाता है कि उनने साधनाकाल मे योग और निर्गुण-भक्ति का आधार लिया । चित्तवृत्ति के निरोध के लिए योग के विविध मार्ग है—हठयोग, राजयोग और लययोग । उनने हठयोग की कौन-कौन सी क्रियाये की या अन्य किस योग-मार्ग का अवलम्बन लिया, इस विकल्प मे इतना ही स्पष्ट विदित होता है कि—आसन का अभ्यास तो हुआ ही, प्राणायाम का अभ्यास भी किया गया है । देह और मन के निग्रह मे उक्त दोनो साधन अत्यावश्यक है । आसन से शरीर को काबू मे किया जा सकता है । सामान्यतः शरीर निरन्तर एक रूप मे नही रखा जा सकता । उसके चलने-फिरने, बैठने, सोने आदि के विविध कर्म है, पर आसन का अभ्यास उसके इन विविध कर्मो को एक रूप मे बदल देता है । इसी तरह मन के उत्थान तथा अनेकताओ का सम्बन्ध प्राण से है । प्राण की क्रिया को कुम्भक के अभ्यास से स्थिर किया जा सकता है । जब प्राण स्थिर हो जाते है, तब मनोवृत्ति मे भी स्थिरता आ जाती है । प्राण और देह पर साधक का पूरा अधिकार हो जाने पर साधक को स्वस्वरूप की अनुभूति सहज मे ही हो जाती है । वृत्ति द्वारा विविध विषयोपभोग मे लगी इन्द्रियाँ अन्तर्मुख हो शरीरपिण्ड मे होनेवाली विविधताओ के आनन्द लेने लगती है । साधको की अनुभूति से प्रतीत होता है कि शरीर मे स्थित षट् या अष्ट चक्रो, इडा, पिगला, सुषुम्णा, वंक-नाल, त्रिकुटि, शून्य स्थान, अमृत-निर्झर, अनहद नाद, दिव्य-प्रकाश आदि अनेक आश्चर्यकारक आधार है, जिनकी ओर वृत्ति का प्रवाह मुड जाने पर वृत्ति मे बाह्य संसार के किसी भी पदार्थ की वासना उत्पन्न नही होती । प्राणायाम का महत्व सर्वविदित है, जिसका कि आर्य-सस्कृति मे दैनिक-जीवन मे अनिवार्य उपयोग आव-श्यक माना गया है । प्राणायाम का अभ्यास प्राण के प्रवाह को ठीक रखने का एक-मात्र साधन माना गया है । यदि कोई व्यक्ति नियमत· थोडा सा भी प्राणायाम का साधन अपनाए हुए है तो उसके चमत्कारी फल से वह व्यक्ति अपरिचित नही रह सकता । आध्यात्मिक-साधना मे तो यह अपना विशेष स्थान रखता ही है—समाधि का यह अनिवार्य अंग है । समाधि ही वह अवस्था है, जब वृत्ति का स्वस्वरूप मे विलय होता है और यही वह परमानन्ददायिनी अवस्था है, जिसकी कि सब प्रकार की साधना के निर्देशको ने परम प्रशंसा की है । जैसा कि ऊपर व्यक्त किया गया है कि हरिदासजी महाराज की वाणी के प्रसङ्ग मे ही उनकी साधना की कुछ झलक हमारे सामने आ जाती है । जैसा कि उनके निम्न वाक्यो से व्यक्त होता है—

जोगी ज्ञानखड्ग कर धारे , मनसा जीति मनोरथ मारे ।।
आसण छाँड़ि अनत नहिं जाय, ता संगि रमें निरंजन राय ।।

डूगरी

कापडोद

कापडोदग्राम

विषय विष तजौ भजौ हरिवीर , सुनि मंडल में निरभै नीर ।।
ऊंच नीच सब सूँ सम भाय , मन वच कर्म रहो मन लाय ।।
नाथ निरंजन निरभै जोगी , जुरा न जन्म भोग नहिं रोगी ।।
खरच्याँ घटे न दीयाँ जाय , सोई वित चित में रह्या समाय ।।

साधक जोगी को क्या करना है ? उसको वासनामय शत्रुओ को जीतने के लिए क्या तैयारी करनी है ? कैसे वह उस अलौकिक धन की प्राप्ति कर सकता है जो न घटता है, न विभाजित होता है ? हरिदासजी कहते है—

वैस निरन्तर अलख जगावे , आसण अमर अगम भर पावे ।
भूखा रहे न धापि न खाय , मनसा चले न पर घरि जाय ।।
ब्रह्म अग्नि में काया दहै , मन चंचल निहचल होय रहै ।
काम क्रोध का भड़े जंजीर , परम सिद्ध जहाँ जाल न कीर ।।
वार पार नहिं अगम अछेह , धरती बरषे अम्बर तेह ।
निर्मल धार अपार अनन्त , ता सुष लाग रहे सब सन्त ।।
निगम अगम गुरुगम मग होय , पवन निर्लेप अम्बर धोय ।।
रमताराम निरंजन राय , राषी वसत साह कूँ खाय ।।
जग में यहै जोग संग्राम , कोई करो आपणां काम ।
ए पासा चोपड़ ए सारी , अबकै जीति जाहू भावे हारि ।।

जोगसंग्राम-ग्रन्थ—८

उपर्युक्त उद्धरण मे व्यक्त किया गया है कि साधक को अपने साधन-काल मे सुस्थिर आसन से रह ज्ञान खड्ग ले काम-क्रोधादि प्रबल रिपुओ को मार, मनसा को वश मे करना चाहिये, तभी वह उस चिरन्तन सुख की उपलब्धि कर सकता है जिस सुख मे अब से पहिले के साधक-सन्त निवास कर रहे है। इस जोगसंग्राम मे सफल होने पर ही साधक का लक्ष्य पूरा हो सकता है—इस साधन को अपनाकर कोई भी साधक अपना काम कर सकता है। इसी से मिलती-जुलती भावना निम्न पदो से व्यक्त होती है—

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरे , जाता मनकूँ उलटा फेरे ।
महादेव का मता पिछाणै , मन दशों दिशा सूँ उलटा आंणे ।।

मनसा देवी सबकूं खावे, हमको मनसा साच बतावे।
हम जोगी जोग जुगति जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे ॥
पवन गोट का पारा बांधे, उलटि सुरति गगन को सांधे।
काम क्रोध का मूल उपारे, गगन मंडल में आसण धारे ॥
अगम पियाला भर भर पीवे, अरूप रूप विचारत जीवे।
हरि सुखसिधु तहाँ भय नाहीं, हरिजन हँस वसे ता मांहि ॥

उक्त उद्धरण भी जोगसग्राम की भावना का ही द्योतन करता है। हरिदासजी ने अपने लिए तथा आध्यात्मिक साधक के लिए दोनों ही स्थानो मे जोगी शब्द का प्रयोग किया है। जोगी से–यहाँ यही अभिप्राय है कि देहस्थित चेतनतत्व को उसके मूलाधार अखण्ड ब्रह्मवाच्य-चेतन से मिलाने की साधना करना। इस पथ के पथिक को पथभ्रष्ट करने वाले षड्रिपुओ मे काम-क्रोध का प्राबल्य माना है। काम से अभिप्रेत विषय की सभी प्रकार की कामना से है, जिसका हम चाह शब्द से भी व्यवहार किया करते है। वैसे काम स्त्री-सभोग के अर्थ मे भी रूढ है, पर यहाँ ज्ञानेन्द्रियो की सभी वासनाओ को लेकर काम शब्द का प्रयोग है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में भी निर्देश किया है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥
(गीता अध्याय ३)

भगवत्प्रयुक्त रजोगुणसमुद्भव काम शब्द की नीलकण्ठी टीकाकार ने इसी भाव को व्यक्त करने वाली व्याख्या की है। वे कहते है—

काम एष इति। एष प्रसिद्ध काम "सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेयाथ वित्तं मे स्यादथ कर्म कुर्वीय" इति श्रुतेरिदं मे भूयादिदं मे भूयादिति तीव्राभिलाषहेतुभूतश्चेतसोऽनवस्थितत्वापादको वृत्तिविशेष.। इसी अभिप्राय का पोषण मधुसूदनी तथा श्रीधरी मे हुआ है। क्रोध भी काम का ही परिवर्तित रूप कहा गया है। कामना के विघात तथा अहङ्कार के आवेग से काम ही क्रोध का रूप धारण करता है। अत काम-क्रोधरूपी शत्रु को विजित करना साधक के लिए अत्यावश्यक है। हरिदासजी ने अपनी वाणी मे इसी विचार से काम-क्रोध की समाप्ति का उल्लेख किया है।

साधन-काल मे एकाग्रवृत्ति बने रहने के लिए आवश्यक है कि वे गुण-धर्म जो वृत्ति मे क्षोभ पैदा करने के हेतु है, सबसे पहिले निवृत्त किये जायँ, अन्यथा साधनाजन्य क्लेश को प्रसन्नता से सहन करने की क्षमता उत्पन्न नही होती। बिना ऐसी

क्षमता के साधक का लम्बे समय तक कठोर साधना मे लगे रहना कैसे सम्भव बने ? अतः कामादि शत्रुओ को परास्त कर देह तथा मन को वश मे कर लेने से ही साधक वृत्तिनिरोध की भूमिका सम्पादन करने मे समर्थ बनता है ।

हरिदासजी ने ऐसा ही किया । वे काम, क्रोध, अहङ्कारादि विकारी भावो से मुक्त हो शरीर-मन पर पूरा निग्रह रखते हुए मनोजयी बने । साधन के प्रारम्भ मे वृत्ति के आधार के लिए किसी अवलम्बन को साधक को आवश्यकता रहती है, तदर्थ नामजप का अवलम्बन अत्यन्त उपयोगी रहता है । निर्गुण हो या सगुण दोनो ही प्रकार के भक्तो ने नामजप को प्रमुख साधन के रूप मे अपनाया है । योगियो ने त्रिकुटि, अनहद नाद को वृत्ति का अवलम्बन माना है । प्रणव का जप–सोहं का जप प्राण के आवागमन के साथ करने का भी निर्देश है । निर्गुण सन्त-साधको ने परम शुद्धस्वरूप समष्टिव्यापक शुद्धब्रह्म को "राम" शब्द से गृहीत कर उसी के जप का अभ्यास किया तथा उसी का उपदेश किया है । उनके विचार से राम वही है जो अशेष-प्राणी-अप्राणी सृष्टि मे व्याप्त है । दृश्य-अदृश्यसृष्टि का कोई भी भाग उसकी व्यापकता से विरत नही है—वह सबमे है, सब उसमे है, वही उनका उपास्य राम है। ब्रह्म के व्यवहार के लिए अनेक नाम वेदोपनिषदो, स्मृतियो, पुराणो मे प्रयुक्त हुए है । ब्रह्म से उस व्यापक-चेतन का संकेत है–जो जाति, गुण, धर्म, काल, कर्मादि की किसी उपाधि से आवृत नही । इसी ब्रह्म का उपयुक्त वाच्य-शब्द निरंजन भी है । हरिदासजी ने अपनी रचना में स्थान-स्थान पर ब्रह्मवाचक इस निरंजन शब्द का प्रयोग किया है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनने जप के लिए निरंजन राम को अपना उपास्य बनाया । इसके प्रमाणभूत उनके कुछ वचन इस तरह है—

भजि करुणानिधि करतार नांम नारायण लीजै ।
भजि निरामूल निरसिध काम आरम्भ यह कीजै ॥
भजि अलख निरंजननाथ, छाँडि विष अमृत पीजै ।
भजि परम उदार अपार ज्ञान गहि ध्यान धरीजै ॥
जन हरिदास वारपार कीमत नहिं राम नाम मोटो रतन ।
उरमंडण उर धारि प्रेम प्रीति दीजै जतन ॥१६॥

× × ×

परम ग्यान पर ध्यान परम गुरु गुरुगमि गावौ ।
राग दोष रस पांच रखै मन तहां न चावौ ॥
काम क्रोध अभिमान कुपह कांटा मत लावौ ।
अलख भजन उर धरौ मरो मति मौत चुकावौ ॥

जन हरिदास मन गहि पवन ब्रह्म अगनि विष वन दहौ ।
अगम वस्तु अन्तरि अगह तहाँ उनमनि लागा रहौ ॥८॥
(कवित्त)

उक्त दो पदो मे अलख भजन, ब्रह्म अग्नि, अलख निरंजन, राम नाम मोटो रतन—ये शब्द है जो उपर्युक्त धारणा को सिद्ध करते है। निरजन राम का और भी स्पष्टीकरण देखिए—

अलख निरंजन उर बसै, राम नाम निज भेद ॥
राम विसारयां होत है, सही कन्ध का छेद ॥१॥
हरि अपार पार को नांहीं, साधू जन खेलै ता मांही ।
जन हरिदास भज केवल राम, निरमल नाम तहाँ विसराम ॥

हमारी आतमा ए रामसनेही जांणि,
आदि अंत था हरि सब सोई, तूँ तासूँ त्रांणक वांणि ॥टेर॥
जाति वरण कुल नांहीं जाके, सो निकुला निरधार ।
ऊँडो अथघ थाघ नहिं आवे, नहीं वार नहिं पार ॥

× × ×

सतगुरु दीया भेद बताय, रहै राम दूजा सब जाय ।
धरी देह तेता आकार, सो क्यूँ कहिये सिरजनहार ॥
जाके रागद्वेष कछु व्यापै नाहिं, सोई रमता राम सकल घट मांहिं ॥

उक्त उद्धरणो से निरंजन-राम का सम्यक् समर्थन हो जाता है। वाणी में ऐसा कोई प्रकरण नही है जिसमे महाराज हरिदासजी ने परब्रह्म का ही रामनाम से वर्णन न किया हो। हरिदासजी ने अपने साधन-काल के आरम्भ मे गुरु-उपदेशानुसार इसी व्यापक ब्रह्मस्वरूप-चेतन का रामनाम से स्मरण किया, उसी का ध्यान किया, उसी में वृत्ति को आरूढ कर अपनी साधना को सफल बनाया।

हमारी आर्य-संस्कृति के मूलाधार वेद, उपनिषद्, स्मृतियां, पुराण, गीता आदि सभी ने उस अशेष व्यापक चेतन-तत्व का—जो किसी भी उपाधि से आवृत नही है—"ब्रह्म" शब्द से निरूपण किया है। जैसा कि श्रुतियो तथा गीता के उद्धरणों से प्रमाणित होता है—

सर पाडादेवी जी का मन्दिर

पीपली मन्दिर

भूताबावडी, नागौर

श्रुति में–सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ?

× × ×

सच्चिदानन्दात्मानमद्वितीयं ब्रह्म भावयेत् ।

× × ×

अहं ब्रह्मास्मीति अनुसंधानं कुर्यात् ।

× • × ×

मायाकार्यमिमं भेदमस्ति चेद् ब्रह्मभावनम् ।
देहोऽहमिति दुःखं चेद् ब्रह्माहमिति निश्चयः ॥

× × ×

ज्योतिर्लिङ्गं भ्रुवोर्मध्ये नित्यं ध्यायेत् सदा मुनिः ।
आत्मनमात्मनः साक्षात् ब्रह्मबुद्ध्या सुनिश्चलम् ॥
देहजात्यादिसंबन्धान् वर्णाश्रमसमन्वितान् ।
वेदशास्त्रपुराणानि पदपांसुमिव त्यजेत् ॥

× × ×

भ्रान्ता एवाखिलास्तेषां क्व मुक्तिः क्वेह वा सुखम् ।
अद्वितीयं ब्रह्मतत्वं न जानन्ति यदा तदा ॥

× × ×

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।
यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्वमेव त्वमेव तत् ॥

× × ×

सर्वव्यापारमुत्सृज्य अहं ब्रह्मेति भावय ।
अहं ब्रह्मेति निश्चित्य त्वहंभावं परित्यज ।

× × ×

सत्यमात्मा ब्रह्मैव ब्रह्मात्मैवात्र ह्येव न विचिकित्सितव्यम् ।
त्वं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि आवयोरन्तरं न विद्यते ॥

त्वमेवाहमहमेव त्वम् ।

× × ×

स्वतः पूर्णः परात्ममात्र ब्रह्मशब्देन वर्णितः ।
अस्मीत्यैक्यमरामर्शोत्तेन ब्रह्म भवाम्यहम् ।।
एकमेवाद्वितीयं सन्नामरूपविवर्जितम् ।

× × ×

ब्रह्मशब्देन तद् ब्रह्म स्वप्रकाशात्मरूपकम् ।
मायाविद्ये विहायैव उपाधी परजीवयोः ।।
अखण्डं सच्चिदानन्दं परं ब्रह्म विलक्ष्यते ।

× × ×

रामपरक श्रुति—आद्यो रा तत्पदार्थः स्यान्मकारस्त्वं पदार्थवान् ।
तयोः संयोजनमसीत्यर्थे तत्वविदो विदुः ।।
नमस्त्वमर्थो विज्ञेयो रामस्तत्पदमुच्यते ।।

× × ×

उपर्युक्त ब्रह्मनिरूपक-श्रुतियों का दिग्दर्शनमात्र है। सब उपनिषद् ब्रह्म ही का निरूपण करते हैं। अब कुछ उद्धरण "गीता" के दिये जाते है—

गीता— एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्म निर्वाणमृच्छति ।।७२।।

× × × [गीता अध्याय २]

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।१५।।

× × × [गीता अध्याय ३]

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ।।२४।।

× × × [गीता अध्याय ४]

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

× × × [गीता अध्याय ५]

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥२१॥

× × × [गीता अध्याय ५]

योन्तःसुखोऽन्तराराम: तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

× × × [गीता अध्याय ५]

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

× × × [गीता अध्याय ७]

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् !
गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ॥
अनन्त देवेश जगन्निवास !
त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥३७॥

× × × [गीता अध्याय ११]

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम-
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥३८॥

× × × [गीता अध्याय ११]

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥२॥

× × × [गीता अध्याय १३]

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥३–४॥

× × × [गीता अध्याय १४]

अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥५३॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥५४॥

× × × [गीता अध्याय १८]

उक्त गीता के उद्धरण उसी ब्रह्म चेतन तत्व का निरूपण करते है, जिनका पीछे श्रुतिवाक्यों मे निरूपण है । कबीर, नानक, दादू, हरिदास, हरिनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि सब महात्माओ ने इसी निर्गुण-चेतन को ही रामनाम से सम्बोधित करते हुए स्वय आराधना की है तथा इसी राम का स्मरण-ध्यान करने का उपदेश दिया है । मैने पीछे व्यक्त किया है कि—इन निर्गुण उपासक सन्त-भक्तो ने श्रुति-निरूपित शुद्ध व्यापक-चेतन-ब्रह्म को निरंजन शब्द से भी व्यवहार किया है । स्वामी हरिदासजी ने तो निरजनरूप राम का ही चिन्तन किया था । उनके पश्चात् निरंजनी-सम्प्रदायके सन्त भी अपने स्मरण तथा जप मे राम के साथ निरजन शब्द को जोड़ राम निरञ्जन हरि निरञ्जन इसी नाम का चिन्तन करते आए है । इस निरञ्जन शब्द की उपासना के कारण ही यह सम्प्रदाय निरञ्जनी कहलाया, न कि कबीरजी के बाद उनकी परम्परा के सन्त कबीर-पन्थी तथा दादूजी के पश्चात् उनकी परम्परा के सन्त व सम्प्रदाय दादू-पन्थी कहलाते है । वैसे हरिदासजी के अनुयायी-सन्तो की संज्ञा हरिदास-पन्थी होनी चाहिए थी, पर निरञ्जन की उपासना के कारण वे हरिदास-पन्थी न कहलाकर निरञ्जनी कहलाए । सम्भव है कि हरिदासजी की साधना पर उपदेशदाता गोरखनाथजी या अन्य नाथ-महात्मा का प्रभाव भी हुआ हो, जैसा कि नाथ-वाणियों में अलख तथा निरञ्जन शब्द का बहुप्रयोग मिलता है । हम नाथ-

वाणियो के उद्धरण यहाँ नही दे रहे है, पर जिनने नाथ-वाणियो का अवलोकन किया है, उनसे यह बात छिपी नही है। हरिदासजी की वाणी मे नाथ-वाणियो का अनुगमन है, यह हम वाणी-विवेचन-प्रसङ्ग मे करेगे। यहाँ तो इतना ही व्यक्त करना है कि हरिदासजी ने अपनी साधना के प्रारम्भ मे जिस रामनामजप को आधार बनाया, वह निरञ्जनरूप राम था न कि अवताररूप धारण करनेवाला राम। हरिदासजी धीरे-धीरे अपनी साधना मे सफलता प्राप्त करते हुए आगे बढते गए। जब मन विषय-वासना के विष से मुक्त हो गया तथा उसका सम्बन्ध विषय-प्रवृत्त इन्द्रियो से न रह कर आत्मतत्व से हो गया तब वह मन जागतिक-पदार्थों से उदासीन होकर आत्मतत्व के रसास्वादन मे लग गया। मनोनुबन्ध से इन्द्रियो के सहचार से विविध भोग-वासनाएँ जागृत होती थी, उनका उच्छेद हो गया। काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, राग-द्वेषादि परम शत्रुओ से वे मुक्त हो गए। जब त्रिगुणात्मक-भावना से वृत्ति हट कर सुरति-निरति रूप से उस एक ही आधारभूत आत्मतत्व मे स्थिर होगई तब सभी प्रकार के अनिष्टहेतु समाप्त हो गये। महाराज हरिदासजी निश्चल मन और स्थिर-वृत्ति से आत्मनिष्ठ होकर साधना की सुदृढ भूमिका मे आ गए, तब फिर उन्हे नाम-जप के आधार की आवश्यकता नही रही। साधना की यह दशा ही सिद्धि का हेतु होती है। साधक मे जब त्रिपुटी का सामञ्जस्य हो जाता है तब फिर साध्य, साधक व साधना की विभिन्नता नही रहती। गुरु-निर्देशानुसार आत्मसंयम मे दृढ रहकर हरिदासजी ने वह अवस्था प्राप्त कर ली और वे साधक से सिद्ध-कोटि मे आ गए। वे अविद्या के विकारो से ग्रसित जीव-भाव की स्थिति से निकल ब्रह्मभाव की स्थिति मे आ गए। अब वे एक सामान्य हरिदास मानव न रहकर विश्वव्यापक अखण्ड निर्मल चेतन ब्रह्मतत्व मे ही समाहित हो गए थे और उसी के स्वरूप हो गये थे। इस तरह वे अपनी दृढ़ तथा कठोर साधना से साधक से सिद्ध बनने मे सफल हुए।

३. गाढा विहाणी—

जिस समय महात्मा के उपदेश से हरिदासजी को अपने स्वार्थी कौटुम्बिक जनो से अत्यन्त ग्लानि हुई तथा वे वैराग्य के उद्वेग से अपने डकैत जीवन का परित्याग कर आत्मचिन्तन के विचार से 'तीखी डूँगरी' पर आए तब उनके पास ऐसा कोई साधन नही था कि वे अपने जीवनयापन को बिना किसी तरह की विघ्न-बाधा से चला सके। आरम्भ मे उन्हे किस तरह की कठिनाइयाँ आई होगी, क्योकि वे अपने निर्दय कर्म से उस क्षेत्र से तो परिचित थे ही। सम्भव है उनके कुटुम्बियों ने पूरा प्रयास किया होगा कि वे अपने कौटुम्बिक जीवन मे ही वापिस आए। पर उन पर उनका कोई असर नही हुआ और वे उस निर्जन स्थान मे ही अपना डेरा लगा अपनी साधन-क्रिया मे सलग्न हो गए। इस 'तीखी डूँगरी' के इधर उधर और भी पहाड़ियाँ है। पहाड़ियो के बीच के नाले-खोले तथा झाडियो के कारण यह

स्थान और भी भयावह था। सामान्यतः वह स्थान एक तरह से चोर-डाकुओं का आश्रयस्थान था। इस तरह के स्थान मे नागरिको का आवागमन कैसे सम्भव होता। हरिदासजी ने कितने समय तक इस स्थान पर एकाकी रहकर अपने आहार-पानी की क्या व्यवस्था की ? इसको ठीक से कहना शक्य नही है। संभव है उनकी इस तरह की कठोर साधना के आस-पास के ग्रामक्षेत्रो तक चरवाहो द्वारा समाचार पहुचे हो और श्रद्धालु मनुष्यो ने उनके आहार-पानी की व्यवस्था की हो। ऐसे ही श्रद्धालु मनुष्यो मे सर्वोपरिगणनीय स्थान गाढा वियाणी का है। गाढा जी डीडवाणे के रहने वाले थे। 'तीखी डूँगरी' डीडवाणे से तीन कोस दूर है। वे नित्य नियम से प्रात काल घर से भोजन तथा एक जल की गगरी लेकर डूंगरी पहुँचते और महाराज के दर्शन कर भोजन-पानी रख वापिस लौट आते। उनका यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जब तक कि हरिदासजी महाराज डूंगरी पर साधना करते रहे। हरिदासजी महाराज का शायद पहला चमत्कार इस गाढे भक्त को ही मिला। चमत्कार की घटना इस तरह है—एक दिन ग्रीष्म ऋतु मे गाढाजी नित्यनियमानुसार भोजन व जल की गगरिया लिये डूँगरी पर चढ रहे थे कि उनके पैर फिसल गये जिससे वे गिर गये साथ ही भोजन व जल का पात्र भी गिर गया। भोजन तो किसी पात्र मे व्यवस्थित होने से सुरक्षित रह गया पर मिट्टी की गगरिया पहाड के पत्थर पर पड़ कैसे सुरक्षित रहती ? वह फूट गई पानी सब बह गया। भोजन का समय हो ही गया था गाढाजी को जल नष्ट होने का परम क्लेश हुआ। वे सोचने लगे कि यदि वापिस चलकर डीडवाणे से पुनः जल लाता हूँ तो आज का दिन समाप्त हो जायगा और महात्मा भूखे-प्यासे कितना कष्ट पायेंगे। यदि केवल भोजन ही लेकर चलूँ तो जल की समस्या कैसे हल होगी ? इस तरह की पशोपेश में कुछ समय बिता क्षीण और दुःखी मन से केवल भोजन लेकर ही वह डूंगरी पर पहुच गये। महाराज को नमस्कार किया। भोजन आगे रख खड़े ही रह गये। महाराज ने उन्हे खिन्न-उदास देख पूछा कि गाढाजी ! आज क्या कारण है ? इतने उदास क्यो हो ? गाढ़ाजी ने उत्तर दिया महाराज दुर्भाग्य से या मेरी असावधानी से आज जल की गागर यहाँ ऊपर आकर फूट गई और सारा जल बह गया। अब आप कैसे तो भोजन करेगे और कैसे जल की व्यवस्था होगी इस क्लेश से मैं अत्यन्त-खिन्न हूँ। महाराज सब स्थिति समझ गये। सहज भाव से उनने कहा—गाढाजी, इसका ऐसा क्लेश करना ठीक नही है। गागर तो फूटी नही है शायद आपको भ्रान्ति हो गई हो। जाइये देखिये तथा गागर भरी है ले आइये। गाढाजी स्तंभित से हुए उनके मन मे सकल्प हुआ कि गागर तो फूट ही चुकी महाराज उसके भरी होने का कैसे निर्देश कर रहे है ? गाढाजी बोले-महाराज गागर तो फूट ही गई उसके तो छोटे-छोटे टुकड़े हो गये। उसमे अब पानी रहन कैसे सम्भव है ? आप तो अब भोजन करिये। महाराज ने पुनः शान्त-चित्त से निर्देश किया कि आप जायँ तो सही,

गागर भरी न मिले तो वहाँ तक जाने का ही श्रम है। गागर गिरी वह स्थान चोटी से बहुत दूर नही था, कठिनाई से फर्लाङ्ग भर की दूरी होगी। गाढाजी संशयात्मक भावना से चले और जहाँ गागर गिरी थी वहाँ पहुचे–देखते है कि वस्तुतः गागर वही की वही है और स्वच्छ जल से भरी है। गाढाजी के हर्ष का पारावार नही रहा। उन्हे जो आत्मग्लानि गागर गिरने से हो रही थी, वह परम हर्ष मे बदल गई। वे गागर उठा शीघ्र से ऊपर आए तथा जल की गागर रख अत्यन्त श्रद्धा से महाराज के चरण पकड लिये। महाराज ने सान्त्वना दी तथा घर लौटने का निर्देश किया। गाढ़ाजी हर्षोन्मत्त से वापिस घर को चल दिये और महाराज की इस सिद्धि का बार-बार स्मरण करने लगे।

हरिदासजी महाराज के प्रति गाढ़ाजी की वैसे ही अत्यन्त श्रद्धा थी, पर इस चमत्कारी घटना के पश्चात् तो वे उनके अनन्य श्रद्धालु-सेवक बन गए। गाढाजी नि.संतान थे—उनके कोई पुत्र-पुत्री उत्पन्न नही हुए थे। दूसरे, अवस्था भी अब बुढापे की ओर जा रही थी। वे डीडवाणे से तीन कोस नित्य आने-जाने मे भी कुछ क्लेश मानने लग गए थे। हरिदासजी महाराज की साधना सिद्ध हो गई थी, इसलिए अब महाराज भी डूँगरी पर ही रहना अनिवार्य नही समझते थे। गाढाजी ने महाराज की प्रसन्नता देख अपनी दोनो ही आकाक्षाएँ उनके सामने रखी। महाराज ने उनकी दोनो ही इच्छा पूर्ण होने का निर्देश कर दिया। डूँगरी का परित्याग कर महाराज डीडवाणे पधार आये। उनने नगर से उत्तर की ओर जङ्गल मे आसन कर लिया। गाढ़ाजी को अब घर से एक मील आने-जाने का रह गया, वे उसी तरह भोजन और जल वहाँ पहुँचाने लगे। समय पाकर उनके सन्तान भी हो गई, जिसका नाम द्वारिकादासजी सुना जाता है। गाढाजी ने महाराज के निवास-स्थान के पास एक कूप भी बना दिया, जो गोमती कूप के नाम से अब भी भंडारजी महाराज के स्थान के पास अच्छी स्थिति मे मौजूद है। इस तरह गाढ़ाजी की भक्तिभावना व सेवा का क्रम डूँगरी की तरह यहाँ भी उस समय तक चलता रहा, जब तक महाराज का शरीर रहा। डूँगरी का परित्याग कर डीडवाणे पधार आने के पश्चात् महाराज यदा-कदा भ्रमणार्थ जाने लगे। इच्छानुसार भ्रमण कर पुनः डीडवाणे पधार आते थे। डीडवाणे पधारते ही गाढाजी द्वारा उसी प्रकार सेवा का क्रम प्रारम्भ हो जाता था। गाढाजी की इस परम निष्ठा तथा प्रेम के कारण ही महाराज ने उनके नाम की निरन्तर स्मृति के लिए इस स्थान की संज्ञा ही गाढा हो जाने का निर्देश कर दिया था। बावन बीघे का यह भूमि-क्षेत्र आज भी गाढा नाम से प्रसिद्ध है। राज्य के सर्वे विभाग मे भी इसका दाखिला गाढा के नाम से ही है। इस तरह सेवक और स्वामी का यह ओतप्रोत सम्बन्ध सोलहवी शताब्दी से आरम्भ हो आज इक्कीसवी शताब्दी तक उसी क्रम से अक्षुण्ण चल रहा है।

४. भ्रमण व चमत्कार-प्रदर्शन

महाराज हरिदासजी डीडवाणे मे निवास कर कुछ काल के लिए राजस्थान के भ्रमण को निकल पडे। उनके भ्रमण का ठीक-ठीक निरूपण तो शक्य नही है, पर परचईकार रघुनाथदासजी ने अपनी परचई मे जैसा उल्लेख किया है, उसी आधार से उनकी भ्रमण-यात्रा का निरूपण किया जा रहा है। राजस्थान भ्रमण का विवरण आरम्भ करने से पहिले एक स्थानीय घटना का निरूपण करना आवश्यक है जिसका सम्बन्ध डीडवाणे नगर से है। महात्माओ के परचई-लेखको का मुख्य लक्ष्य उन द्वारा किये गए अलौकिक चमत्कारी कार्यो का निरूपण करना रहा है। उसी का अनुसरण महाराज हरिदासजी के तीनो परचई-लेखको ने किया है। तीनो मे प्रमुखता मै रघुनाथदासजी को देता हूँ। उनने ही महाराज की परचई कुछ विस्तार से लिखी है। उसमे जन्म-मृत्यु, आयु, काल आदि का विवरण भी है। पिछले प्रकरण मे व्यक्त किया जा चुका है कि गाढा वियाणी के आग्रह से महाराज 'तीखी डूँगरी' से डीडवाणे आ गए थे। डूँगरी पर तो गागर का चमत्कारी परचा गाढे को दिखाया ही गया था—डीडवाणे मे भी इसी तरह की एक चमत्कारी-घटना घटित हुई थी। महाराज हरिदासजी नगर मे किसी के यहाँ भिक्षा पाने जा रहे थे। रास्ते मे एक स्थान पर एक गृहस्थ अपना घर बनवा रहा था। घर की भूमि मे एक पीपल का वृक्ष भी था—वैश्य उसके कटवाने का विचार कर रहा था। पीपल के कटने की बात को लेकर कुछ अन्य नागरिक भी एकत्रित हो गए थे। एकत्रित व्यक्तियो मे कुछ पीपल को काट देने की राय दे रहे थे, कुछ न काटने की। महाराज हरिदासजी ने भी उधर से निकलते यह चर्चा सुनी, उनने भी व्यक्त किया कि पीपल न काटा जाय। वैश्य ने नम्रता से निवेदन किया कि महाराज इसको न काटने से आगे जब इसकी वृद्धि होगी, तब इसके विस्तार तथा मूल (जड़) शाखाओ से, स्थान को क्षति पहुँचना अनिवार्य है। महाराज ने कहा—इसकी वृद्धि के भय-वश ही इसको काटना चाहते हो तो यह तथा तुम्हारा वश दोनो ही वृद्धि नही करेगे। ये इसी रूप में रहेगें, अतः इसको काटना नही। महाराज इतना कहकर चले गए। वैश्य दुविधा में उलझ गया, अन्त मे पीपल न काटने का ही निश्चय रहा। वह पीपल अद्यावधि तक उसी रूप मे अवस्थित है। अब उस स्थान को मन्दिर का रूप प्राप्त हो गया है। आज भी हम उक्त पीपली-मन्दिर मे जाकर उस पीपली को देख सकते है, जो सवा-चार सौ—साढे चार सौ वर्षों से उसी रूप में वर्तमान है।

उक्त घटना के पश्चात् जैसा ऊपर लिखा है, महाराज की राजस्थान-यात्रा आरम्भ हुई। वे डीडवाणे से पश्चिम की ओर चले। पैदल यात्रा करने वालो के लिए कोई निश्चित संकेत नही रहता। मौज आई जितना चले, जहाँ इच्छा हुई वहाँ ठहर गए। महाराज हरिदासजी की वैसे बाहरी स्थानों में चर्चा भी हो गई थी कि वे

हरिपुरुष जी महाराज की समाधि

समाधि-प्रवेश द्वार, डीडवाना

एक खूँखार डाकू से पलट कर महान् सिद्ध पुरुष हो गए है। उनका तप-तेज भी साधारण नागरिक को आकर्षित करने वाला था। वे जहाँ जिस ग्राम मे ठहरते, वहाँ सत्सग तथा आध्यात्मिक चर्चा भी अवश्य चलती। वे जन-साधारण मे आध्यात्मिक-चिन्तन की भावना को जागृत करते रहते थे। धीरे-धीरे चलते-चलते वे नागौर मे जा पहुंचे। नागौर उन दिनो एक स्वतन्त्र राज्य था। राष्ट्रकूट (राठौड) क्षत्रिय वहाँ राज्य करते थे। नगर के पश्चिम मे कुछ दूरी पर एक सुन्दर बावडी थी। बावडी मे मधुर जल का स्रोत भी था। पर बावडी पर भूत-निवास की चर्चा फैल जाने से लोगो का आना-जाना नही था। नगर से दूर होने तथा जङ्गल मे होने से महाराज को वह स्थान उपयुक्त लगा। उनने बावडी पर ही आसन लगा लिया। रात्रि मे बावड़ी पर रहने वाले भूत ने विविध चेष्टाएँ, महाराज को भयभीत करने की की। पर उनकी दृष्टि से तो सभी तरह की भेद-भावना समाप्त थी, अत. भूत की चेष्टाओं का उन पर क्या प्रभाव होता ? वे आत्मचिन्तन मे मस्त थे। भूत ने समझ लिया कि यह कोई साधारण प्राणी नही है। अन्यथा मेरे द्वारा की गई वीभत्स चेष्टाओं से प्रभावित हुए बिना रहता नही। अन्त मे भूत ने महाराज से अपने उद्धार की प्रार्थना की। महाराज ने वाणी के प्रारम्भिक ग्रन्थ 'ब्रह्मस्तुति' का पाठ करने का उपदेश किया, इसीसे भूत का अनिष्ट-योनि से छुटकारा हुआ तथा उस बावडी के लिए जो एक भीतिभरी भावना फैली हुई थी, उसका भी निवारण हो गया। नागरिक महाराज के पास सत्सग के लिए आने लगे। कुछ दिन तक ज्ञान-चर्चा कर महाराज नागौर से आगे मेडते की ओर प्रस्थान कर गए। नागौर की इस भूत-बावड़ी का बहुत थोड़ा सा ऊपरी भाग आज भी दिखाई पड़ता है। उस ऊपरी अंश को छोड शेष पूरी बावड़ी मिट्टी से भर गई है और भूमि के गर्भ मे है।

नागौर से चलकर मेडते मे कुछ काल ठहर आगे अजमेर की ओर महाराज ने प्रस्थान किया। रास्ते मे आने वाले ग्रामो मे आवास करते हुए सत्संग-ज्ञान-चर्चा से जन-साधारण की मनोभावना मे आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति को जागृत करते जाते थे। धीरे-धीरे यात्रा करते हुए, पुष्कर होकर कालान्तर मे अजमेर पहुच गए। अजमेर उस समय यवन प्रशासकों के प्रशासन मे था। हिन्दू और इस्लामन-धर्मों की दो संस्कृतियो का वह एक तरह से संघर्ष-काल था। शासक के नाते मुसलमानों का प्राधान्य तो था ही; धार्मिक मतभिन्नता भी गहरी थी। हिन्दू-धर्म की प्रतीक-उपासना का एकेश्वरवादी इस्लाम-धर्म मे कोई स्थान नही था। मूर्ति-पूजा को मुसल्मान बुतपरस्ती मानते थे। उनकी मान्यता थी कि खुदा को छोड इस तरह पाषाण-मूर्तियो की उपासना ईश्वर से गद्दारी है, इसलिए वे एक तरह से हिन्दुओं को काफिर समझते थे। यह भावना एक तरह से व्याप्त होने के कारण हिन्दू-धर्मी सन्त-महात्माओ के प्रति भी उनका दृष्टिकोण प्रतिगामी रहना स्वाभाविक था।

महाराज अजमेर पहुंचे । शायद उस समय के अजयमेरु (अजमेर) नगर मे कुछ बाहर जहाँ आजकल दौलत बाग है, सामान्य जंगल के क्षेत्र मे ठहर गए । धीरे-धीरे नागरिको को पता लगने पर महाराज के पास पर्याप्त नागरिको का आवागमन होने लगा । अधिकारियो के पास भी चर्चा हुई । उनको एक हिन्दू-फकीर का इस तरह महत्व बढना शायद अच्छा न लगा होगा । सम्भव है किसी सकेत से या अनायास एक मदोन्मत्त हाथी उधर आ निकला—लोगो ने महाराज से आग्रह किया आसन छोड़ने का, पर सन्त जन को भीति किसकी ? उनका हृदय सब प्राणियों की ओर प्रेममय रहता है । लोग भय से इधर-उधर हो गए, महाराज स्वस्थान पर उसी तरह बैठे रहे । हाथी समीप आया—उसकी मस्ती न मालूम कहाँ गई ? उसने अपना मस्तक महाराज के चरणो पर रख दिया । महाराज ने उसके मस्तक पर अपना दयार्द्र-कर फेर शान्त और सीधे रहने का निर्देश किया । कहते है कि उसके पश्चात् उस हाथी ने जो कि पहले बडा बदमिजाज था, प्राणियों का हनन करता था—कभी किसी प्राणी पर आक्रमण नही किया । हाथी का यह परिवर्त्तन देख नागरिकों की श्रद्धा महाराज में और बढी तथा उस स्थान पर एक भाटे का हाथी बनाकर रख दिया, अब तक भी वह स्मारक 'हाथी-भाटे' के नाम से प्रसिद्ध है । वह स्थान अब नगर मे आ गया है तथा निरजनी सन्तो के अधिकार में है । इस घटना के कुछ काल पश्चात् अजमेर मे निवास करते हुए वे सिद्ध अजयपाल से तथा परशुरामजी व खोजीजी मे भी मिले, ऐसा निरूपण परचईकार ने किया है ।

अजमेर से पुन. प्रवास-यात्रा आरम्भ हुई । घूमते हुए किसी ग्राम मे एक चारण मे विविध चर्चा चली—इसी प्रसग मे "बारहपदी जोगग्रन्थ" का निरूपण हुआ व चारण को उपदेश भी । आगे चलते-चलते टोडा रायसिह पहुच गए । टोडा रायसिह भी बहुत प्राचीन कस्बा है । उस समय उसकी प्राकृतिक शोभा भिन्न रूप मे ही रही होगी । टोडे मे महाराज ने जहाँ आसन किया, वहाँ एक सर्प की बाँबी का मुख था । कहावत थी कि–यह सर्प कोई भोमिया है तथा किसी खजाने पर रहता है । सर्प अति भयङ्कर भी था । सर्प का नाम ताषो लिखा गया है, शायद यह तक्षक का अपभ्रंश रूप है । महाराज तो निश्चिन्तता से अपने ध्यान मे मग्न थे ही उन्हे यह ज्ञात नही था कि: आज आसन किसी सर्प की बाँबी पर लग गया है । रात्रि मे सर्प बाँबी से निकला तो बाँबी पर एक तेजस्वी महात्मा को बैठे देखा । महाराज का ध्यान तो अन्तर्निहित था, उन्हे पता नही था कि बाँबी से सर्प निकल उनके सम्मुख ही स्थित है । सर्प का स्वभाव वैसे क्रोधी होता ही है, पर ताषो ने महाराज को ध्यानावस्थित देख किसी प्रकार का रोष नही किया व वैसे ही बैठा रहा । कुछ काल पश्चात् जब महाराज ने नेत्र खोले तो सामने एक भयङ्कर सर्प को देखा । महाराज ने अपने साधन-काल मे अहिंसा-वृत्ति की दृढ़ता प्राप्त कर ली थी । जैसा कि योग-दर्शनकार का निर्देश है—

सूत्र— अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ॥३५॥

(साधन-पाद)

महाराज की मनोजयी-दशा तथा सत्वोद्रेक के कारण उनके समक्ष आने वाले प्राणी पर उनका प्रभाव अवश्य ही पड़ता था। सर्प की मनोवृत्ति भी बदली, वह शान्त तथा धीरभाव से अपनी जगह पर बैठा रहा। महाराज ने निर्देश किया कि जिस भूगर्भ के धन पर तू रक्षा के रूप मे आरूढ है यह निरर्थक है। इस व्यामोह का परित्याग कर एकत्रित सम्पत्ति को सत्कर्म मे आने दे, ताकि तेरा कल्याण हो। ताषो ने महाराज का निर्देश ध्यान से सुना तथा अपनी मनोवृत्ति का परिवर्त्तन कर उस योनि से मुक्त हुआ। महाराज ने कुछ दिन टोडे मे निवास किया। ईश्वर-चिन्तन, सत्सग व उपदेश द्वारा जन-कल्याण का लक्ष्य भी साथ-साथ चलता रहा।

टोडे से प्रस्थान कर महाराज उत्तर दिशा मे चल दिये। वे स्थान-स्थान पर आवास करते हुए, सत्संग से अपने अनुभव को व्यक्त करते हुए भ्रमण मे प्रवृत्त थे। कहते है कि इस यात्रा मे महाराज हरिदासजी को एक सिद्ध महात्मा भी मिले। इस आइस सिद्ध ने जब सुना कि एक अच्छे महात्मा इस ओर भ्रमण-यात्रा कर रहे हैं, तो आइस ने महाराज हरिदासजी की परीक्षा करनी चाही कि देखे इनमे कैसा महात्मापन है ?

आइस ने सिंह का रूप बनाया और महाराज के सामने पहुंचा। महाराज हरिदासजी सिद्ध आइस की भावना को समझ गए। जब सिंह रूप मे आइस महाराज के सामने आया, तो महाराज ने उसको 'खर' नाम से सम्बोधित किया, जिससे कि सिंह का धारण किया हुआ रूप खरस्वरूप मे बदल गया। एक-दो दिन व्यतीत हो जाने पर जब आइस सिद्ध वापिस अपने स्थान पर नही गए, तब शिष्यो ने गुरु की तलाश की। प्रमुख शिष्य महाराज हरिदासजी के समीप पहुंचे। महाराज ने शिष्यो से कहा कि आप लोग किनको तलाश कर रहे हो ? सिद्धजी तो देखो—वे खर बने हुए घास चर रहे है। शिष्यों ने गुरुजी की स्थिति देख महाराज हरिदासजी के चरण पकड़ लिये। महाराज ने पुनः उनको स्वस्वरूप मे हो जाने का निर्देश किया और सिद्धजी पुनः स्वस्वरूप में बदल गए। आइस ने महाराज की करामात देख उनकी वन्दना की। हरिदासजी महाराज ने सिद्ध को संकेत किया कि इस तरह हरिजनो के साथ संघर्ष करना संगत नही। आत्मचिन्तन ही साधु का मुख्य कर्त्तव्य है, उसी में संलग्न रहना चाहिए।

सिद्ध आइस को इस तरह चमत्कार दिखा महाराज ने पुनः अपनी यात्रा की ओर धीरे-धीरे चलते जोबनेर पहुंच गए। जोबनेर उस समय अच्छा कस्बा था।

महाराज ग्राम से बाहर एकान्त स्थान मे विराज गए। धीरे-धीरे ग्रामवासी महाराज के पास आने-जाने लगे और सत्संग द्वारा लाभ उठाने लगे। पूरे कस्बे मे महाराज को लेकर यह चर्चा चल गई कि एक बहुत ही अच्छे महात्मा यहाँ पधारे है। उस समय जोबनेर मे एक वैष्णव महात्मा भी थे, जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा कस्बे मे थी। इन महात्मा के पास भी महाराज हरिदासजी की महिमा सुनाई पड़ी। महात्मा ने सोचा कि यदि यह महात्मा अधिक दिन यहाँ रहेगे तो सम्भव है अपनी मान्यता तथा प्रतिष्ठा मे कमी आए। महात्मा ने न मालूम क्यो? एक दिन ऐसा संकल्प किया कि इनको क्यों न विष दे दिया जाय? यह विचार उठते ही महात्मा ने एक विषमिश्रित जल का पात्र अपने शिष्य को देकर कहा कि जाओ उन महात्मा के पास और उन्हे ज्ञात करो कि आपके गुरु गोरखनाथजी ने यह जलपात्र प्रसादरूप मे भिजवाया है, सो इसका पान करो। महात्माजी के शिष्य ने, निर्देशानुसार वह पात्र ले जाकर महाराज के आगे रख दिया तथा जैसा गुरुजी ने कहा था वैसे ही उनको निवेदन कर दिया। महाराज हरिदासजी सब बात समझ गए। शिष्य ने जो जलपात्र रखा था, उठा कर सब विषगर्भित-जल का पान कर लिया और पात्र उनको वापिस कर दिया तथा शिष्य से कहा कि आप महात्माजी से जाकर कह देना कि गुरु महाराज द्वारा भेजा हुआ वह अमृत-रस बडा ही सुस्वादु था। शिष्य ने लौटकर ज्ञात कर दिया कि महात्मा ने बड़ी प्रसन्नता से उस जल का पान कर लिया और यह पात्र वापिस कर दिया है। गुरुजी ने मन मे विचारा कि रात को ही महात्माजी परमधाम पहुंच जायेगे। दूसरे दिन वैष्णव-सन्त यह समाचार सुनने को आतुर थे कि समागत महात्मा ब्रह्मलीन हो गए। पर वैष्णव महात्मा की मनोवृत्ति पूरी न हुई। महाराज हरिदासजी पर उस विषवारि का कोई प्रभाव नही हुआ। वे नित्य की तरह ही प्रसन्न मुद्रा मे आत्मचिन्तन मे सलग्न थे। प्रसंग से बातचीत मे जब वैष्णव-महात्मा को पता लगा कि वे महात्मा तो बड़े आनन्द मे है तथा प्रतिदिन की तरह ही आत्म-चिन्तन व सत्संग मे रत है। वैष्णव-महात्मा को अपनी कृति पर बडी ग्लानि हुई, वे हरिदासजी महाराज के पास गए तथा अपने द्वारा किये गए उस निंद्य-कर्म के लिए उनने अत्यन्त नम्रता से क्षमायाचना की तथा प्रार्थना की कि वे उन पर अनु-ग्रह करे, जिससे उनकी मनोवृत्ति आत्मचिन्तन मे संलग्न हो। हरिदासजी महाराज ने कहा कि महात्मन्! ईर्ष्या-द्वेष को आश्रय मत दो—भेदबुद्धि का परित्याग करो। सब सृष्टि एक ही चिरन्तन-शक्ति मे समाहित है। जाति, धर्म, गुण-भेद से भेद करना सङ्गत नहीं। सबसे प्रेम करो, सबको अपना ही स्वरूप समझो। वैष्णव-महात्मा पर महाराज के इन वाक्यो का प्रभावोत्पादक असर हुआ। उनने अपनी सब भौतिक सम्पत्ति महात्माओ की सेवा मे लगा देने का निश्चय किया। बहुत विशाल सन्त-सम्मेलन किया गया और अपनी सब सम्पत्ति का उसमे उपयोग कर दिया गया। वैष्णव सन्त-महात्मा हरिदासजी मे परम श्रद्धा रखने लगे।

महाराज हरिदासजी को जोबनेर मे पर्याप्त समय हो गया था, अत· महाराज ने अपनी यात्रा पुन' प्रारम्भ कर दी। वे जोबनेर से भ्रमण करते आमेर आ गए। आमेर उन दिनों कछवाहों की राजधानी थी। महाराज ने आमेर मे आकर एक गहन पहाडी पर आसन किया। उन दिनों इन पहाडों मे घने जंगल तथा अनेकों जलस्रोत थे। सिह-व्याघ्रादि हिंसक जन्तुओ का भी यहाँ प्रवास व आवागमन रहता था। महाराज ने जिस डूँगर पर आवास किया था, वहाँ भी सिंह-व्याघ्रो का प्रतिदिन आवागमन होता था।

रात्रि को महाराज ध्यानावस्थित थे। घूमते हुए एक सिह आया। उसने महाराज को देखा। उनकी अहिसामय शान्त शीतल दृष्टि पड़ते ही सिंह की हिसावृत्ति का निवारण हो गया, सिह भी कुछ समय तक वही बैठा रहा। प्रात काल का समय होने लगा तो सिह जंगल मे चला गया, महाराज वही विराजे रहे। चरवाहों द्वारा नागरिको को महाराज के पहाड़ पर विराजने का पता लगा। लोगो का आवागमन होने लगा। लोगो को पता था कि इस स्थान पर रात्रि मे हिसक प्राणी आते है अतः उनने महाराज को नीचे चलने का बहुत आग्रह किया। पर महाराज के तो हिसा-वृत्ति का लवलेश शेष नही था, अत· वे वही विराजे रहे। लोगो को भी ज्ञात हो गया कि रात्रि मे हिमक पशु आते है, पर वे महाराज के पास वैसे ही बैठे रहते है–जैसे कि अहिसक प्राणी बैठा करते है। कुछ दिन आमेर मे निवास कर महाराज ने पुन· अपनी यात्रा आरम्भ की। वे आमेर से खेतड़ी की ओर प्रस्थान कर रहे थे। रास्ते मे एक ग्राम मे महाराज विश्राम कर रहे थे—वहाँ कुछ ग्रामवासी महाराज के दर्शनार्थ आए, उनमे एक पगु ब्राह्मण भी था। सन्त-महात्माओ के प्रति चिरकाल से भारतीय जनता परम श्रद्धा रखती आई है। पंगु ब्राह्मण मे भी उस श्रद्धा के अकुर थे। उसके स्फुरणा हुई कि क्या महात्मा के प्रसाद से मेरा यह पंगु-दोष निवृत्त नहीं हो सकता ? विप्र की इस स्फुरण के साथ ही महाराज का ध्यान भी उसकी ओर आकर्षित हुआ। महाराज ने उसकी दैन्य-दशा देख ब्राह्मण को सम्बोधित किया कि हे विप्र देवता ! ऐसे अक्रिय कैसे बैठे हो, खडे होओ तो। महात्मा की अमोघ वाणी ने अपना प्रभाव दिखलाया। विप्र के पैर–जो वर्षो से अक्रिय थे, सक्रिय हो गए। विप्र खडा हो गया ओर अन्य मनुष्यो की तरह चलने-फिरने लगा। स्वामीजी आगे चलकर सिघाणे ग्राग पहुंचे। वहाँ कुछ दिन का आवास रहा। ग्राम के अनेकों नर-नारी महाराज के दर्शन व प्रवचन से लाभ उठाते थे। उन सत्संगी पुरुषो मे ग्राम के एक शाहजी भी थे। शाहजी ग्राम के सभी कार्यों मे सहयोग देते थे, धर्मात्मा प्रवृत्ति के पुरुष थे। शाहजी के एक ही पुत्र था। दैवयोग से शाहजी के उस पुत्र का अचानक देहावसान हो गया। महाराज हरिदासजी ग्राम मे किसी सज्जन के भोजन करने को पधार रहे थे। रास्ते मे ही शाहजी का घर था। शाहजी के घर पर ग्राम-जनों की भारी भीड़ लग गई थी, सभी लोग शोकातुर थे, रोना-पीटना

मच रहा था। महाराज ने साथ चलने वाले भक्त मे इस कारुणिक-दृश्य का कारण पूछा। उसने बताया कि महाराज! आपके परम श्रद्धालु-धर्मात्मा अमुक शाहजी के इकलौते पुत्र का देहावसान हो गया है। सारे ही ग्राम मे इस घटना से परम शोक छा गया है। महाराज ने उक्त समाचार सुने, उनका दयार्द्र-हृदय द्रवित हो गया। वे शाहजी के घर गए, महाराज को आए देख शाहजी ने धैर्य अपनाकर महाराज का स्वागत किया। महाराज ने शाहजी से कहा—आज क्या बात है? किस कारण सारा घर तथा समागत-जन शोक-संतप्त है? शाहजी ने उत्तर दिया—महाराज कुछ नही, आपका जो एक बच्चा था वह चल बसा है। उसी के कारण सब ओर शोक छाया हुआ है। महाराज ने मृत बच्चे के पास बैठ, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए सम्बोधित कर कहा कि—भाई! इतने क्या सोये हो? उठो, अब सोने का समय नही है। बच्चा आँख खोलकर तुरन्त खडा हो गया। शाहजी, परिवार व एकत्रित जन-समुदाय बच्चे को जीवित देख परम हर्ष मे मग्न हो गए। महाराज शाहजी के घर से निकल, जिस सज्जन के घर निमन्त्रित थे, वहाँ चले गए। ग्राम मे घर-घर महाराज के इस चमत्कार की ही चर्चा होने लगी, महाराज ने अब अधिक ठहरना उचित नही समझा। दूसरे दिन सिघाणे से पुनः यात्रा प्रारम्भ कर दी। सिघाणे से चलते हुए खेतड़ी, सीकर आदि का भ्रमण करते हुए पुनः डीडवाणे आ गए। सम्भव है उनने और क्षेत्रो का भी भ्रमण किया होगा। उपर्युक्त भ्रमण का निरूपण रघुनाथदासजी कृत परचई मे आया हुआ है। इन भ्रमण-स्थानो का परचईकार ने उल्लेख किया है, उन सब स्थानों मे चमत्कारी-घटनाओ का सम्बन्ध था। चमत्कारी-घटनाएँ सत्य मानी जायँ या काल्पनिक? आज के इस युग मे इस विषय पर मतभेद हो सकता है। योगी और आत्मजयी महात्माओ मे अलौकिक-शक्ति आ जाती है, इसको अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के युग मे भी ऐसी अनोखी घटनाएँ घटित होती रहती है। अतः उपर्युक्त घटनाओ को कपोल-कल्पना ही माना जाय ऐसा आग्रह क्यों किया जाय? घटनाओ को बाद दे दिया जाय तो भी इन स्थानो के भ्रमण मे तो किसी प्रकार की शङ्का नही है। इस भ्रमणवृत्ति से सिद्ध होता है कि हरिदासजी महाराज ने आत्मनिष्ठ होने के पश्चात् राजस्थान के विस्तृत क्षेत्र मे भ्रमण किया और अपनी साधना तथा अनुभूति से लोक-कल्याण के लिए पर्याप्त प्रयास किया। उनकी भ्रमण-यात्रा डीडवाणे से ही आरम्भ हुई थी और डीडवाणे मे ही आकर समाप्त हुई। यह यात्रा इनकी एक-कालिक है या भिन्न-भिन्न-कालिक—इसका कोई प्रामाणिक उत्तर नही है। परचईकार के उल्लेख से तो यह एककालिक ही प्रतीत होती है, यदि एककालिक न हो तो भिन्न-भिन्न-कालिक होने पर भी यात्रा के औचित्य में किसी तरह का अन्तर नही आता। पुनः डीडवाणे पहुंचने के पश्चात् महाराज डीडवाणे ही विराजे। किस काल से किस काल तक यह यात्रा हुई, इसका काल मेरी समझ से १५७० से १५८५ माना जाना सङ्गत है। रघुनाथदासजी के उल्लेख से

उनका जन्म १५१२, गृहत्याग तथा साधना का आरम्भ १५५६, साधना की पूर्ति १५७०, डीडवाणे आना तथा वहाँ निवास १५८०, पश्चात् यात्रा। यात्रा से वापसी के पश्चात् अन्तिम समय तक डीडवाणे निवास। सम्वत् १६०० मे ८८ वर्ष की आयु मे देहत्याग। गाढाजी का देहावसान महाराज से पहिले हुआ या पश्चात्–इसका कोई प्रामाणिक आधार नही है।

५. वाणी, भाषा और विषय—

वाणी—महात्माओ की रचना की संज्ञा "वाणी" है। जैसे प्रामाणिकता के विचार से आर्ष-रचना का महत्व है, इसी तरह पहुंचे हुए महात्माओ का अनुभव-निचोड जिस रचना मे आता है–वह रचना आर्ष-रचना के सदृश मानी जाती है। भाषा-साहित्य मे उसके लिए "वाणी" शब्द का प्रयोग है।

इस शब्द का नाथ-सिद्धो की रचना के लिए शायद सबसे पहिले प्रयोग प्रचलित हुआ है। उसके पश्चात् महात्मा कबीर, नानक, हरिदास, दादू आदि महान् सन्तो की रचना के लिए इस शब्द का व्यवहार हुआ।

महाराज हरिदासजी की "वाणी" मे क्या निरूपण किया गया है तथा उनकी भिन्न-भिन्न क्या रचनाएँ है? यह ठीक से समझने के लिए उनकी रचना की पूरी तालिका दे देना उचित प्रतीत होता है।

वैसे उनकी रचना का प्रारम्भ "लघुग्रन्थावली" से है। सैतालीस ग्रन्थो के पश्चात् उन्नीस राग-रागनियो मे एक सौ बयासी पद है। पदो के अन्त मे तीन आरती है। कडखा बारह आठ रेखते है। कवित्त सोलह, कुण्डलियाँ १०६ और चान्द्रायण चौसठ है। अन्त मे साखी भाग है, चौतीस अंगो की तीन सौ चार साखी है। चार श्लोक भी आए है, जिसकी प्रकरणानुसार तालिका इस रूप मे है—

लघु ग्रन्थावली—

१–ब्रह्मस्तुति, २–मूलमंत्र जोगग्रन्थ, ३–नाममाला, ४–नाम-निरूपण, ५–निरंजन-लीला, ६–साधुचाल, ७–अगाध अचरज, ८–जोगसंग्राम, ९–अष्टपदी, १०–वन्दना, ११–निराकार-वन्दना, १२–निरपषमूल, १३–प्राणप्रसिद्ध परमात्मापूजा, १४–समाधि-जोग, १५–योगध्यान, १६–प्राणमात्रा, १७–आत्म-अभ्यास, १८–उत्पत्ति-हेतु, १९–शब्द-परीक्षा, २०–वीरा रस-वैराग, २१–भ्रमविध्वंस, २२–उपदेश-चितावणी, २३–मनचरित, २४–मनमद-विध्वंस, २५–मनहर, २६–मनप्रसङ्ग, २७–मनमत प्रकार, २७–मन उपदेश, २९–व्यावला, ३०–तोडरमल, ३१–अमृतफल, ३२–ज्ञान-उपदेश, ३३–वारजोग, ३४–हंस-प्रमोद, ३५–बडी तिथि, ३६–लघुतिथि,

३७–चालीसपदी, ३८–चतुर्दशपदी, ३९–तीसपदी, ४०–बारहपदी, ४१–बावनी, ४२–सूर-समाधि, ४३–सूरसमाधि अर्थ, ४४–प्रवृत्ति-निवृत्ति, ४५–माया छन्द, ४६–जोगमूल सुखजोड, ४७–ज्ञान-अज्ञान परीक्षा। इन सैतालीस लघुग्रन्थो मे दो—वन्दना व निराकार-वन्दना केवल गद्य में हैं, शेष पैंतालीस छन्दोबद्ध है। पद्यबद्ध अधिकाश ग्रन्थ साखियो में है। शेष मे दो-तीन तरह के छन्दो का प्रयोग हुआ है। विषय-निरूपण प्राय. ग्रन्थ के नामानुसार हुआ है। किसी-किसी ग्रन्थ का निरूपण रूपक द्वारा किया गया है। कृषि, युद्ध, मद्य-निर्माण आदि को आधार बना आध्यात्मिक विषय का विवेचन किया गया है। ग्रन्थो के नामकरण, छन्द तथा विषय-निरूपण की शैली से सिद्ध होता है कि महाराज हरिदासजी की ये रचनाएँ नाथ-वाणियो का अनुकरण करती हैं। प्रश्नोत्तर-रूप मे विषय-विवेचन करना, अवधू के सम्बोधन से विषय-विवेचन करना नाथ-वाणियो की प्रमुखता है। हरिदासजी महाराज ने इन लघुग्रन्थो मे उसी पद्धति को अपनाया है।

पद—

ग्रन्थो के पश्चात् पद-रचना है। पद-रचना का विश्लेषण इस रूप मे है—१–राग गौड़ी पद गुणतीस, २–राग भैरव पद दो, ३–राग रामकली पद दस, ४–राग आसावरी पद अठारह, ५-रागसोरठ पद छब्बीस, ६-राग भैरों पद उन्नीस, ७–राग विलावल पद चौदह, ८–रागगूजरी पद एक, ९–राग टोडी पद एक, १०–राग का लंगडा पद एक, ११–राग नट पद छः, १२–राग मल्हार पद तीन, १३–राग सारंग पद छः, १४–राग वसन्त पद आठ, १५–राग अडाणो पद दो, १६–राग कान्हडा पद ४, १७–राग मारू पद ग्यारह, १८–राग केदारो पद ४, १९–राग विहंगड़ो (विहाग) पद दो, २०–राग धनाश्री पद पन्द्रह, अन्त मे तीन आरती है। कडखा व रेखता ये पद भाग मे ही सम्मिलित समझने चाहिए। इनकी संख्या बारह, आठ, बीस है।

कवित्त, कुण्डलियाँ, चान्द्रायण—

पदों के पश्चात् सोलह कवित्त है। विभिन्न प्रकरणो पर एक सौ नौ कुण्डलियाँ हैं। अंग विशेष पर चौसठ चान्द्रायण है।

साखी भाग—

वाणी का चौथा अंग साखी भाग है। जिसका विश्लेषण इस रूप मेंहै—१–गुरु-देव का अंग, दस साखी। २–गुरु-सिख पारख अंग, तेरह साखी। ३–सुमिरण का अग, बारह साखी। ४–विरह का अंग, छः साखी। ५–परचै का अंग, पन्द्रह साखी। ६–चितावणी अंग, उन्तीस साखी। ७–मन का अंग, बीस साखी। ८–माया का अंग, चौबीस साखी। ९–चाणक का अंग, अठाईस साखी। १०–भ्रमविध्वंस का

अंग, तेरह साखी। ११–भेष का अंग, सात साखी। १२–साच का अंग, दो साखी। १३–साधु का अंग, अठारह साखी। १४–मध का अंग, एक साखी। १५–उपदेश का अग, सात साखी। १६–विचार का अंग, एक साखी। १७–विश्वास का अंग, ग्यारह साखी। १८–पतिव्रता का अंग, छ साखी। १९–विरक्त का अंग, दो साखी। २०–सूरातन का अंग, चौबीस साखी। २१–कर्त्ता का अग, दस साखी। २२–सजीवन का अंग, तीन साखी। २३–दया-निर्वैरिता का अंग, एक साखी। २४–साध-महिमा का अंग, छ साखी। २५–करुणा का अग, एक साखी। २६–कामी नर का अंग, चौदह साखी। २७–साधु परीक्षा का अग, सात साखी। २८–साधु संगति का अग सात साखी। २९–हेतु प्रीति का अग, तीन साखी। ३०–निन्दा का अंग, तीन साखी। ३१–भय का अंग, एक साखी। ३२–कुशवद का अंग, एक साखी। ३३–दुविधा का अग, चार साखी। ३४–चितकपटी का अंग, चार साखी। इस तरह चौतीस अगो मे तीन सौ चार साखियाँ है। अन्त मे चार श्लोक भी दिये गए है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हरिदासजी महाराज की संपूर्ण वाणी चार भागो मे विभक्त है—१–लघुग्रन्थ, २–पद, ३–कुण्डलियाँ, कवित्त व चान्द्रायण। ४–साखी भाग। उक्त चतुर्विध रचना मे सबसे बड़ा पहिला भाग है। पूरी रचना का जोड़ अनुमानत: तीन हज़ार है।

भाषा—

वाणी की भाषा उस समय की हिन्दी कही जा सकती है। हम यहाँ भाषा के विकास-क्रम का विशद निरूपण आवश्यक नही मानते। किस तरह सस्कृत से प्राकृत, पैशाची व अपभ्र श भाषा का रूप बना। अपभ्र श मे भी फिर प्रदेश-विशेष-मे बोल-चाल की भाषा के मिश्रण से भाषाओ के प्रायोगिक-रूपो मे अन्तर आया। महाराज़ हरिदासजी का जन्म तथा कार्यक्षेत्र राजस्थान का मारवाड उपप्रान्त है। उक्त प्रदेश मे बोली जाने वाली मारवाडी राजस्थानी भाषा के शब्द भी हरिदासजी महाराज की रचना मे आने अनिवार्य थे। मेरी समझ मे हरिदासजी की वाणी मे हिंन्दी का जैसा रूप है, वह आगे चलकर खडी बोली के रूप मे कही जाने वाली हिन्दी भाषा के अधिक निकट है। राजस्थान मे जितने भी महात्मा-सन्त रचनाकार हुए है, प्रायः उनकी भाषा का एक-सा ही रूप सामने आता है। जो महात्मा कुछ शिक्षित थे, उनकी भाषा मे कुछ प्राजलता अधिक है। अधिकाश सन्त-महात्मा साधक थे, उनने विधितः सस्कृत आदि भाषाओ का अध्ययन किया हो–ऐसा प्रतीत नही होता। फिर भी उनकी रचनाओ मे भाषा का जो रूप सामने आता है, वह विशेष भाषाशास्त्र के सिद्धान्तो से विपरीत नही है। हरिदासजी महाराज संस्कृत भाषा के जानकार थे या पठित थे–ऐसा प्रतीत नही होता। पर उनकी अधिकाश रचना सुसम्बद्ध है। कही-कही छन्दो के प्रयोग मे मात्रा या वर्णो का ठीक से प्रयोग नही हुआ है। व्याकरण के सिद्धान्तो का निर्वाह सम्यक् रूप से होना सम्भव नही, क्योकि जब वे व्याकरण

के सम्यक् जानकार नही तो उसके प्रयोग मे भूले रह जाना स्वाभाविक है। भाषा के शाब्दिक प्रयोग-भेद से दो रूप माने गए है--डिगल और पिगल। डिंगल भाषा वह है-जो प्राकृत के अधिक समीप है। पिगल भाषा का वह रूप है, जिसमे अप-भ्रंश शब्दो के प्रयोग बहुत कम होते है। हरिदासजी महाराज की रचना भाषा के पिगलरूप मे आती है। लघुग्रन्थो मे एक-दो रचनाएँ कुछ ऐसी है, जिनमे कुछ डिगल का सा आभास होता है। भाषा की वास्तविकता तो आप जब उनकी वाणी का अनु-शीलन करेगे तो आप ही आपको प्रतीत हो जाएगी ? फिर भी यहाँ कुछ उद्धरण दे देना आवश्यक है, जिससे भापा-शैली का स्वरूप हमारी समझ मे अच्छी तरह आ सके।

ऊँच नीच निरभै मते, कोई भजो मुरारि ॥
भवसागर तिरवो कठिन, हरि नांव उतारे पारि ॥
नारायण के नांव की, मैं वलिहारि जाव ॥
भृङ्गी कीट पतङ्ग ज्यूँ, दुरे दूसरो नांव ॥
अलष अगम अविगत कहो, कहो निरंजन राम ॥
अरत कहो अलिपत कहो, अंत धणी सूँ काम ॥
गुरु हम सूँ ऐसी करी, जैसी गुरु सूँ होय ॥
अगम ठौर आनंद सदा, पला न पकड़े कोय ॥

ये रचना की चार साखियाँ है। पहिली साखी मे 'तिरवो' शब्द के स्थान पर "तिरना" कर दे तो मेरी समझ से यह विशुद्ध खडी बोली का रूप बन जाता है। तीसरी साखी मे "धणी" शब्द ठेठ मारवाडी का प्रयुक्त हुआ है। 'धणी' शब्द मालिक या स्वामी के लिए प्रयोग किया जाता है। यदि 'धणी' शब्द के स्थान पर 'प्रभु' शब्द का प्रयोग कर लिया जाय तो पूरी साखी विशुद्ध खडी बोली मे परिणत हो जाती है। चौथी साखी के प्रथम व द्वितीय चरण मे "सूँ" का प्रयोग है, इसको "सै" मे बदल देने पर यह साखी भी विशुद्ध खडी बोली मे परिणत हो जाती है। उक्त उद्धरणो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पन्द्रहवी-सोलहवी शताब्दी में हिन्दी के जैसे रूप का प्रयोग रचनाओ मे हुआ है, उस पर व्रजभाषा का प्रभाव रहा है। उक्त काल का हिन्दी-साहित्य प्राय: ही व्रजभाषा की प्रधानता से युक्त था। राजस्थान मे हिन्दी-भाषा का जो रूप चला उसमे व्रजभाषा तथा गुजराती भाषा का मिश्रित रूप देखने मे आता है--

गहि गुरु ग्यान अगम कूँ ध्यावे, अगम अथाह थाह कोई पावे।
घट घट अघट सकल घट सोई, गुरगम तास लहै जन कोई ॥

उलटा खेल सहज घर आवे, धुनि में ध्यान तहाँ मन लावे ॥
अवगति अगम अगम गम कीया, नौ ग्रह पलट गगन रस पीया ॥
ता रस मुनि जन रया समाय, ता रस मनवा उलटि न जाय ॥
आपा गलि मिटिया अभिमान, अब हम जाण्यां जान सुजान ॥
दरिया रूप वार नहिं पारं, तामें मच्छा प्राण हमारं ।
काल न जाल नहीं भै नेरा, झूले न खेले मांज बसेरा ॥

सहज पियाला परम सुख, भरि भरि पीवे प्राण ।
आतम अंतरि देषिये, अवगति का अहनांण ॥

उक्त उद्धरण मे यदि "कूँ" "तास" "ता" "जाण्या" "झूले" "माज" इन शब्दो के स्थान पर "को" "ताहि" "तिहि" "जाना" "माँहि" इन शब्दो का प्रयोग हो तो यह पद बदल कर आधुनिक-हिन्दी के बहुत समीप आ जाता है। उक्त पद्य मे 'जाण्या' तथा 'झूले' शब्द मारवाडी के है। पद्य मे शब्द-योजना तथा प्रवाह अर्थ को व्यक्त करने मे स्पष्ट है। भाषा का स्वरूप जैसा है, उससे यह नही कहा जा सकता कि रचनाकार सर्वथा ही अशिक्षित है। पद्य अपने आपमे पूर्ण है, छन्द की पूर्ति है, अर्थानुबोध स्पष्ट है, भाषा मे चुस्ती है, शब्द-योजना प्रदेशानुबन्ध से सङ्गत है।

पद—गाफिल नींद न करिए रे ?

जीवण नहीं मरण शिर ऊपर ता मरणे से डरिए रे ॥टेर॥
रजनी मोह नींद भर सूता, परम भेद नहीं पाया रे ।
अति अभिमान वदत नहिं काहू, हीरा सा जन्म गमाया रे ॥
गहि गुरु ज्ञान जागि जिव जोगी, झूठे भरम भुलाना रे ।
हरि सूँ विमुख नाच नाना विधि, छाडि तजे सुलताना रे ॥
आयौ थौ तूँ सांचे सौदे, काचे लागो भाई रे ।
अठवाडा हम बिछड़त देख्या, जागो राम दुहाई रे ॥
अब तूँ समझि देषि निसि वीति, पैंडा करणा ल्योई रे ।
तस्कर बहुत दूर घर तेरा, साथी संग न कोई रे ॥
जन हरिदास राम भजि भाई, देखि देखि पगि धरणा रे ।
हरि दरबार झूठ नहिं भावे, तिल तिल लेषा भरणा रे ॥

यह एक पद का उद्धरण है। भाषा का रूप प्रादेशिक प्रयोग से स्पष्ट है। ता, तिस, काहू, सुं, आयौ थौ, पैडा, आदि शब्दप्रयोग व्रजभाषानुबन्धी है। भावाभिव्यक्ति मे कोई न्यूनता नही है।

सूरसमाधि जोगग्रन्थ—

आपणे आपणे गह भर्‌यां बोलतां।
घणां अमला कियां आंखि नहिं खोलता॥
खारकां वायकां और कूँ छोलता।
सारधारा मँही देखि तन तोलता॥
मूँछ गहि सापुरस न्याय हसि बोलता।
आज का द्यौस नें खडग सत मोलता॥
पडिया लग करि दाहिणों, वांवे भुज गहि ढाल।
आप अखाड़ै आयके, सब कों दीसै माहल॥

इस पद मे प्रादेशिक भाषा की प्रधानता है; साथ ही यह डिगल रचना के अधिक समीप है। पद मे प्रयुक्त शब्दो से अर्थ को सरलता से नही जाना जा सकता। पद मे दुरूहता है। उपर्युक्त चार उद्धरणो से वाणी मे प्रयुक्त भाषा शैली का स्वरूप हमारे सामने आ जाता है। राजस्थान के अन्य महात्मा दादू, हरिनामदास, दरियाव, रामचरण, रामदास आदि की रचनाओ की अपेक्षा हरिदासजी की रचनाओ मे प्रादेशिक शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। जैसा कि निम्नलिखित शब्दो से प्रतीत होता है—

मारवाड़ी भाषा के शब्द—

सारिषो, गुडै, सवला, वापडा, निवेडा, रिण, टूक व्है, मूछाला, ददकारता, वाथौ, दाखिओ, परणवाना, वाग, पैला, पिसण, माल्हता, घणां, थोडा, वावडै, घुरे, खसै, कायंरा, चुडला, भाजसी, कुंजरा, धमके, उरा, भलका, हेरता, काने, पगडा, हुडकणी, सूंधो, पलान, बूडा, ऊंडो, थाघ, दाघा, काठे, खूंणे, मैगल, आंणिवा, अस्थान, भाडा, भैचक, खिरे, अपूठे, मांडे, पूठा, डाव, मंडया, काची, जामै, सीम, ब्रटपाडे, रूंधा, लूंणहरामी, मेवासा, नाह।

उपर्युक्त कुछ शब्दों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट ध्यान मे आ जाता है कि रचनाकर ने अपनी भावना व्यक्त करते समय बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्दो की उपेक्षा नही की, प्रत्युत उनका स्थान स्थान पर प्रयोग कर अपनी

प्रादेशिकता को सम्यक् सिद्ध कर दिया है। हरिदासजी राजस्थान के थे, अत. राजस्थानी मे व्यवहृत होने वाले शब्दो का प्रयोग उनकी वाणी मे होना अनिवार्य था। वाणी मे प्रयुक्त भाषा का क्या रूप है ? इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन ऊपर किया जा चुका है। बहुत विस्तृत विवेचन की इसलिए आवश्यकता नही है कि पाठक-जन वाणी का अनुशीलन करेगे तो भाषा की विभिन्न स्थिति उनके सामने स्वतः आ जायगी अत. एतद्विषयक जो निरूपण किया गया है, वह पर्याप्त है।

वाणी में विषयनिरूपण—

विवेच्य विषयों का वर्गीकरण किया जाय तो उनको दो भागों मे बाँटा जा सकता है–पहिला पारमार्थिक व दूसरा व्यावहारिक। इन्ही को अपर शब्दो मे कहे तो आध्यात्मिक-भौतिक नाम से भी कह सकते हैं। आध्यात्मिक विषय मे उन प्रतिपाद्य विषयो का समावेश समझना चाहिए, जिनमे चेतन तथा जड तत्वो की वास्तविकता का निरूपण कर मानवीय जीवन की सार्थकता के एकमात्र लक्ष्य मुक्ति या मोक्ष का निरूपण किया जाता है। व्यावहारिक या भौतिक विषयो मे वे सब विषय सम्मिलित है, जिनमे जागतिक भौतिक पदार्थो की उत्पत्ति, विकास तथा उनकी प्राप्ति व प्रयोग का विवेचन रहता है। दोनो ही विषयो का प्रतिपादन ससार मे अनादिकाल से चला आ रहा है। विश्व की सभी भाषाओ मे इन्ही दोनो वर्गगत विषयो का विवेचन चलता रहता है। हमारे देश के साहित्य मे भी सहस्रो वर्षो से ये विषय प्रतिपादित होते रहे है। वेद, वेदाग, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ, धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण आदि के रूप मे जो हमारा उच्चतम साहित्य है, उसमे इन उभय वर्गों पर विभिन्न दृष्टिकोणो से विचार किया गया है।

महात्मा हरिदासजी ने संसार की असत्यता व नि सारता समझ महात्मा के निर्देश से गृहत्याग किया था। उनके मानस मे कौटुम्बिक स्वार्थपरायणता के विपरीत असत्य संसार से उदासीनता व आत्मतत्व की प्राप्ति की तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हुई थी, अतः अपनी साधना के पश्चात् उनमे आध्यात्मिक-भावना की ही प्रधानता रहना अनिवार्य था। अस्तु, उनकी वाणी मे एकान्ततः आध्यात्मिक विषय का ही प्रतिपादन हुआ है।

महात्मा हरिदासजी एक साधक थ, वे लेखक या रचनाकार नही थे। अतः उनकी वाणी मे हम एक परम साधक की अनुभूति का ही सम्यक् दिग्दर्शन देख पाते है। वाणी मे उनने अपनी साधना का भी दिग्दर्शन कराया है तथा साधना से वे जिस निश्चय पर पहुँचे, उसका निरूपण किया गया हैं।

आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रमुखतया तीन साधन-मार्ग निश्चित किये गए है—ज्ञान, भक्ति व कर्म। इन त्रिविध मार्गों से साधना द्वारा आत्मस्वरूप

की प्राप्ति व चिरन्तन आनन्द की उपलब्धि की जा सकती है। ज्ञान मे तात्विक निश्चय, भक्ति मे विविध उपासना व कर्म मे योग का समाहार है।

महाराज हरिदासजी ने आत्मानन्द की प्राप्ति की–वह संयुक्त दो साधनों के द्वारा उन्हे प्राप्त हुई—ऐसा उनकी वाणी के अनुशीलन से कहा जा सकता है। वे दो साधन थे–निर्गुण भक्ति तथा योग। अत. वाणी मे प्रमुखतया इन्ही विषयो का विशद विवेचन हुआ है।

निर्गुण भक्ति तथा योग—

भक्ति शब्द का व्यावहारिक प्रयोग तो मेरी समझ से सगुणोपासना के ही लिए है। भक्ति शब्द का मूल अर्थ है सेवा। सेवा अभेद मे नही की जा सकती है। सेव्य और सेवक दो होने से ही सेवा की सार्थकता होती है। सगुणोपासना के आधार से ही नवधा-भक्ति का निरूपण किया गया है। अर्चन, स्मरण, कीर्त्तन आदि तभी किये जा सकते है, जब हम अपने उपास्य को अपने से भिन्न माने। इसीलिए भक्ति-समर्थको ने अद्वैत सिद्धान्त को न अपना, द्वैत सिद्धान्त को स्वीकार किया। द्वैत तथा अद्वैत के सिद्धान्तो पर भारतीय शास्त्रो मे बहुत विस्तृत विवेचन हुआ है। जैमिनि, बादरायण, कपिल, कणाद, गौतम, पातञ्जलि आदि दार्शनिको ने अपने-अपने दर्शनों मे द्वैत-अद्वैत विषयो का निरूपण किया है। अद्वैत के निरूपणकर्त्ता महर्षि बादरायण है। महर्षिकृत इस दर्शन का नाम वेदान्त-दर्शन है। यह दर्शन एकान्तत. अद्वैतपरक है, उसकी स्थापना भगवान् शङ्कराचार्य ने की। अत· इसका अब 'शङ्कर-वेदान्त' के नाम से भी व्यवहार होता है। दार्शनिको के मतभेद तथा उनका विवेच्य विषय अत्यन्त गम्भीर है। उस पर यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नही। महात्माओ ने भक्ति को तो अपनाया पर द्वैतपरक भक्ति को उनने नही माना। उनकी भक्ति अद्वैतपरक है, इसीलिए उसकी संज्ञा निर्गुण भक्ति हुई। निर्गुण भक्ति का अभिप्राय मेरी समझ से यह है कि अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार एक ही नित्यसत्य-तत्व मे अनन्य निष्ठा रखना। महात्माओं ने इसी अद्वैत ब्रह्मतत्व मे अपनी परम श्रद्धा स्थापित की अतः ये निर्गुण भक्त कहलाए। महाराज हरिदासजी ऐसे ही निर्गुण भक्त थे। उनने अपनी वाणी मे स्थान-स्थान पर इस परम तत्व की उपासना व इसका चिन्तन करने का निर्देश किया है। इस तत्व की उपासना मे न पूजा की, न अर्चना की आवश्यकता है, इसमे केवल अपनी मनोवृत्ति को तन्निष्ठ करने की आवश्यकता है। वृत्ति मे विविध विकल्पो का उत्पत्ति-विनाश होता रहता है। वृत्ति के इस चांचल्य का निवारण करने के लिए मन तथा इन्द्रियो को अधीन करना आवश्यक है–तदर्थ योग की साधना की आवश्यकता हुई। योग की साधना के भी कई रूप है—राजयोग, लययोग, हठयोग आदि। महात्माओं ने योग की साधना मे प्रमुखतया राजयोग का

ग्राश्रय लिया है। कोई-कोई क्रिया हठयोग की भी ग्रपनाई गई है। सबसे ग्रधिक प्राण के नियन्त्रण पर बल दिया गया है। प्राण का नियन्त्रण–प्राणायाम साध्य है। ग्रत. प्राणायाम का योग मे विशद निरूपण है। इसी से फिर सविकल्प, निर्विकल्प समाधियो की पूर्ति होती है। महात्माग्रो ने मनोनिरोध के लिए ही प्राण साधना को ग्रपनाया ग्रौर इडा, पिगला व सुषुम्ना पर नियन्त्रण कर उन्मनि दशा को प्राप्त किया। इस दशा को सहजावस्था भी कहा गया है। जब वृत्ति निश्चल हो जाती है, तब उसमे किसी प्रकार का सङ्कल्प-विकल्प नही होता। क्षोभ की तरगे नही उठती, यही वृत्ति की सहज दशा है, यह दशा उत्पन्न होने पर ही साधक स्थितप्रज्ञ बनता है। स्थितप्रज्ञ ग्रवस्था का भगवान् कृष्ण ने गीता के द्वितीय ग्रध्याय के पचपनवे श्लोक से बहत्तरवे श्लोक तक सम्यक् निरूपण करते हुए स्थितप्रज्ञ दशा को ही ब्राह्मी स्थिति बतलाया है–यही मुक्तावस्था है। महात्माग्रो ने ग्रपनी साधना मे निर्गुण भक्ति तथा योग द्वारा इसी ग्रवस्था की प्राप्ति की थी। ग्रत उनकी वाणी मे साधन के निरूपण मे इन्ही दोनो का स्थान-स्थान पर प्राबल्य प्रकट होता है। हम यहाँ एतद्विषयक कुछ वाणी के बचन सङ्कलित करते है ताकि ग्राप उनसे उक्त कथन का ग्रौचित्य जान सके—

निर्गुण नाम–

राम भजे तो ग्रानन्द होय।

दीनानाथ दयाल दयानिधि, चिंताहरण सकल विधि सोय ॥टेर॥

हरिदासजी का राम कैसा है ? ध्यान दे—

परम उदार ग्रपार ग्रखंडित, पूर्णब्रह्म भजन कर लोय।
ग्रौसर एसो बहौडि नहिं पावे, हरि बिन कबहूँ भला न होय ॥
ग्रानन्दरूप ग्रखिल ग्रविनाशी, करणहार करता रस जांणी।
जहाँ तन धरे तहां ही साथी, प्रेम प्रीति कर ताहि पिछाणी ॥
नारायण निर्वाण निरख नित, गरवहरण गोविन्द उरधारी।
जन हरिदास भजो ग्रविनाशी, गुरगम यो ही ज्ञान विचारी ॥

ग्रवधू ऐसा ज्ञान विचारा।
है हरि ग्रकल सकल विच व्यापी, रहे सकल तै न्यारा ॥टेर॥
ल्यौ में ग्रलख ग्रकल ग्रविनाशी, सुरति सु यह मति जागी।
गोरष गोपी परसिपर निरभे, ग्रनहद सींगी वाजी ॥

निजपुर प्राण बसे निति निहचल, पवन सुरति सति माला।
ब्रह्म छोल में भूलैं खेलैं, पीवे अगम पियाला ॥
निकट नाथ निज रूप निरन्तर, नाम निरंजन राया।
जन हरिदास तिनहीं को वंदो, मन फिर मनहिं समाया ॥

भज मन अकल देव मुरारी।
नांव गहि रे नांव गहि, हरि लेत उतारे पारि ॥टेर॥
निकट नांव निजरूप बड निधि, सुखसिंधु वार न पार।
ता सिंधु मांहि बसे हंसा, चुगे मोती चार ॥
अगम अगाध अपार नरहरि, निरख रे दिल मांहि।
दास जन तहां सदा सनमुखि, हिल्या हीरा खांहि ॥
जहां गांव न ठांव न वरण वाडी, मन पकड़ रे निधि जोय।
जन हरिदास रसना राम रटि हूँ, पीव सदा संग सोय ॥

उपर्युक्त तीन पदों मे नाम के विशेषणो पर ध्यान दीजिये। उक्त विशेषणों से स्पष्ट है कि हरिदासजी का उपास्य वही अगाध ब्रह्म है, जिसको हम सत्-चित्-आनन्दरूप से निर्देश करते है। "आनन्द रूप अखिल अविनाशी, 'ब्रह्म छोल में भूलै खेलै, "निरख रे दिल माहि" ये तीन पदो की तीन पंक्तियाँ किस विशेष का संकेत करती है—यह स्पष्ट है। आगे साधना मे योग के अनुसरण को व्यक्त करने वाले भी दोतीन पद उद्धृत किये जाते हैं—

मन रे उलटि सहज घरनाया ? तव लग वादि वक्या वोराया ॥टेर॥
नाभि कँवल में पवन निरोधे, तो सत गुरु का चेला।
मन गहि पवन अगम घर खेलूँ, करूँ अगम सूँ मेला ॥
उलटा खेलि गगन में पेसूँ, सुरति सहज घर धारूँ।
परम जोति सूँ हिलमिल खेलूँ, एसा अरथ विचारूँ ॥
जन हरिदास निरभै निधि परसूँ, परम सिन्धु में न्हाऊँ।
जठर अगनि में प्राण न होमूँ, आवागमन चुकाऊँ ॥

अणबोल्या गावे जे कोई , अजपा जाप निरन्तर होई ।।टेर।।
भजौ निरंजन भरम गमाय , जुरा न व्यापै काल न खाय ।
जोनी संकट आवे नांहि , प्राण समावे हरिपद माँहि ।।
सुषमनि फेरि घेरि घर आनें , अरथ विचारे अगम पिछाणे ।
मूल कँवल में पवन निरोधे , तब मन कूँ मनही परमोधे ।।
त्रिविध ताप तज सहज विचारे , जागि न सोवै जीति न हारे ।
त्रिवेणी तट बैसे जाय , धुनि में ध्यान रहे लौ लाय ।।
आसा मेट निरास संभारे , सून्यमंडल में आसण धारे ।
सात समंद मधि डारे धोय , जन हरिदास जोगी जन सोय ।।

×

अब हम रामभजन सुख पाया ।
काम किवांडी जड़ी जतन सूँ , मोह मता मुरझाया ।।टेर।।
विकसत कँवल सबद सत सुनिया , सुनि मंडल में सारं ।
वरसै सुन्नि गगन रस भीजे , सदा अखंडित धारं ।।
चन्द सूर एकै रथ बैठा , पवन विरोले वाई ।
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ।।
स्यो धरि सकति सकति सूँ मेरा , भरम गया भै भागा ।
गगनमंडल में वसै उडांगर , ऊँचे आरंभ लागा ।।
निराकार निरलेप निरन्तरिं , महल मिलै वनमाली ।
सुख में सीर अखिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ।।
घट घट अघट अगह अविनाशी , वंकनालि रस पाया ।
पांचू थकत छक्या रस खेलै , आनन्द अरथ समाया ।।
नवधण धरा गरक गुण तीनूं , रामरतन धन नेरा ।
वूठै मेह पहम रुति पलटै , सुख में रहे वसेरा ।।
है हरि अकल सकल की शोभा , जागि लहै सो जीवै ।
जन हरिदास तातै रावलिया , अगम पियाला पीवै ।।

उपर्युक्त तीन पदो मे साधन-काल मे महात्मा हरिदासजी ने योग का आश्रय लिया तथा आगे भी साधक को यदि वह निर्गुण उपासना का इच्छुक है तो योग का आश्रय लेना चाहिए–यह व्यक्त होता है। उदाहरण और देने की मै आवश्यकता नही समझता। उक्त उदाहरणो से यह सिद्ध हो जाता है कि महाराज की वाणी मे निर्गुण भक्ति तथा योग का पर्याप्त निरूपण है, अत. यही वाणी का मुख्य विवेच्य विषय सिद्ध होता है।

६. सैद्धान्तिक पक्ष—

वाणी के स्वरूपज्ञान के पश्चात् पाठक को यह जिज्ञासा उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि महात्मा हरिदासजी ने व्यावहारिक-जीवन के लिए क्या सिद्धान्त स्थिर किये तथा पारमार्थिक-जीवन के लिए क्या साधना तथा क्या लक्ष्य रखे ?

जैसा मै पीछे व्यक्त कर आया हूँ कि हरिदासजी के उपदेशक गुरु महात्मा गोरखनाथजी या अन्य कोई नाथ-महात्मा थे। उनने अपनी साधना मे वही मार्ग अपनाया, जैसा कि नाथ सिद्ध महात्मा अपनाते आये थे। वाणी की रचना मे भी नाथ-वाणियो का अनुगमन किया गया है, तब सैद्धान्तिक पक्ष पर नाथ-सिद्धो की मान्यताओ का प्रभाव न होता यह कैसे हो ?

मेरी मान्यता है कि पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर अब तक की शताब्दियो मे जितने भी निर्गुण सन्त-साधक हुए है, उन पर नाथ-सिद्धो की विचारधारा का प्रभाव किसी न किसी अंश तक अवश्य पडता रहा है। निर्गुण भक्त-साधको की परम्परा का प्रारम्भ कबीरजी से हुआ है। कबीरजी के समकक्ष तथा उनसे पीछे होनेवाले महात्माओ ने कबीरजी का अनुगमन किया है। कबीरजी केवल एक सन्त या साधक ही नही थे, वे उच्च कोटि के विचारक भी थे। कबीरजी ने कुछ सिद्धान्त नाथ-सिद्धो के स्वीकार किये जैसे केवल शास्त्रीय पक्ष की ही मान्यताओ से जीवन को बाँध दिया जाय–यह युक्तियुक्त नही है। किसी पक्षविशेष से युक्त ही धर्म धर्म है, ऐसा कहना या मानना असंगत है। जातीय भेदभाव व ऊँच-नीच की कल्पना असगत है, यदि उसका निरूपण किन्ही शास्त्रो मे हुआ हो। इसीलिए स्वयं कबीरजी ने तथा परवर्ती सभी निर्गुण साधक-सन्तो ने वेद, कुरान, सापेक्ष धर्म तथा जातिवाद से अपना मतभेद व्यक्त किया है। कबीरजी ने कुछ अपनी स्वकीय विचारधाराएँ भी व्यक्त की है। कबीरजी के पश्चात् या समकाल मे होनेवाले महात्माओ का झुकाव इसी रूप मे देखा जाता है कि वे नाथ-सिद्धो तथा कबीरजी के निश्चयो से सहमत है।

अवतारवाद—

महात्मा हरिदासजी की वाणी मे आप देखेंगे कि उनने सगुण भक्ति को मान्यता नही दी। इसलिए अर्चन, पूजन, कीर्त्तनादि तथा अवतारवाद का उनने

कोई महत्व स्वीकार नही किया। उनकी धारणा है कि दस अवतार या चौबीस अवतारों की केवल कल्पना है। जो परम चेतन-सत्ता, जिसको हम व्यापक ब्रह्म के नाम से स्मरण करते है, वह बराह, मत्स्य, हयग्रीव, नृसिह, वामन आदि के रूप मे अवतार धारण करे--इसका कोई औचित्य नही है। उन्हे ईश्वरावतार मानकर उस व्यापक-विशेष चेतन-सत्ता (ब्रह्म) की अवज्ञा करनी है। उनके विचार मे परम सत्ता-चेतन ब्रह्म अवतार-विशेष के रूप मे अवतरित नही होना चाहिए। जिनको हम अवतार संज्ञा देते है, वे अन्य सृष्टि के प्राणियो की तरह ही उत्पन्न हुए है। उनमे अपनी साधना से कुछ विशेषताएँ आयी—यह दूसरी बात है। अवतारो के विषय मे गोरखनाथजी, कबीरजी व हरिदासजी की रचना के निम्न अश देखिए—

तुझ पर वारि हो अणघड़िया देवा।
घड़ी मूरति को सब कोई सेवै, ताहि न जांणे भेवा ।।टेर।।
तूँ अविनासी आदू कहिए, मोहिं भरोसा पड़िया।
सब संसार घड्या है तेरा, तूँ किनहूँ नहिं घड़िया ।।१।।
दश औतार औतिरिया तिरिया, वै पण राम न होई।
कमाई अपणी उनहूं पाई, करता औरे कोई ।।२।।
तूँ पूरण ब्रह्म पुरुष प्रिथमी का, सूरति मूरति सारा।
श्रवणों सुण्या न नैनां देख्या, तेरा घडने हारा ।।३।।
तूँ तो आप आप तैं हूवा, तूँ देष्या उजियारा।
गोरष कहै गुरु के सबदां, तूँ ही घड़ने हारा ।।४।।

(पद ५८ गोरख वाणी पृ० १५४)

तिंहि साहब के लागहु साथा, दुइ दुख मेटिके होहु सनाथा।
दशरथ कुल अवतरि नहि आया, नहिं लंका के राव सताया।
नहि देवकि के गरभहिं आया, नहीं जसोदा गोद खेलाया।
प्रिथमी रमन दमन नहिं करिया, पैठ पताल बली नहिं छलिया।
नहिं बलिराज से मांडल रारि, नहिं हिरनाकुस वद्धल पछारी।
होय वराह धरनि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्रि न करिया।
नहिं गोवरधन कर नहिं धरिया, नहिं ग्वालन संग वन वन फिरया।
गंडक सालिगराम न सिला, मच्छ कच्छ होय नहिं जला हिला।

द्वारावती शरीर न छाड़ा, लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा।
साखी—कहहिं कबीर पुकार कै, वा पथ मति भूल॥
जिहि राखे अनुमान कै, थूल नहीं अस्थूल॥
(रमैणी बीजक पृ० ८४–८५)

दस औतार दसूँ ए देसो, औरां और चढावे।
सो बाजीगर भला क नांही, एक कूँ करे गमावे॥टेर॥
परम पुरष का पार न पावे, आसा सूँ रस लूधा।
सूधा राह सहज नहिं छोड्या, ऊजड़ पड्या अलूधा॥१॥
निराकार निरभै रे सन्तो, जो आकार सजावे।
हीडागर हीडा को बोड़े, सो भी धणी कहावे॥२॥
तरंग सिन्धु सो भी हरि नांहि, निहचै जाय विलावै।
जन हरिदास अविनासी भजतां, भौजल निकट न आवे॥३॥
(वाणी पद भाग पृ० २०१)

सतगुरु दीया भेद बताय, रहै राम दूजा सब जाय॥
धरी देह तैता आकार, सो क्यूँ कहिए सिरजनहार।
जाकै राग-द्वेष कछु व्यापै नाँहीं, सोइ रमता राम सकल घट माँही।
भक्ति हेत कोइ भक्त पठाया, आप अगाध यहाँ नहिं आया।
पहरयाँ भेष मिटी भषभूरी, नैडा राम बतावे दूरी॥२॥
दस ओतार कहो क्यूँ भाया, हरि अवतार अनन्त करि आया।
जल थल जीव जिता अवतारा, जल ससि ज्यूँ देखो तत सारा॥३॥
हरि अपार पार को नाँहीं, साधू जन खेले ता माँहीं।
जन हरिदास भज केवल राम, निरमल नांव तहाँ विसराम॥४॥
(वाणी पद भाग पृ० २८८)

उपर्युक्त चार पदोमें एक गोरखनाथजी का व एक कबीरजी का तथा दो हरिदासजी के है। चारो पदों मे एक ही भाव है कि परमपिता परब्रह्म परमेश्वर अवतार धारण नही करता। हरिदासजी की वाणी मे अनेक स्थानो मे इसी आशय का निरूपण है। हम और उदाहरण नही देते—उनका 'चालीसपदी ग्रन्थ' इसी भावना से ओतप्रोत है।

मूर्त्तिपूजा—

जब अवतारवाद को हरिदासजी ने स्वीकार नही किया—तब मूर्त्तिपूजा मे उनकी निष्ठा होने का प्रश्न ही नही उठता । क्योकि मूर्त्तिपूजा का आधार ही सगुणोपासना है । अवतार की मान्यता को लेकर ही राम-कृष्णादिको की मूर्त्तियो व मदिरो का निर्माण हुआ । मूर्त्तिपूजा का औचित्य है या नही, यह पर्याप्त विवादग्रस्त विषय है । जड वस्तु को परम चैतन्य के रूप मे मानना व देखना संगतिपरक नही । मूर्त्तियाँ मनुष्यो के द्वारा बनाई जाती है । मूर्त्तियो के रचयिता कारीगर सामान्य मनुष्य होते है । अत. महात्माओ ने उस परब्रह्म परमेश्वर को मूर्त्ति मे अवरुद्ध करना उचित नही माना । उनकी तो मान्यता है कि वह परमपिता परमेश्वर अणु-अणु मे व्याप्त है । कौन सा ऐसा क्षेत्र है, कौन सी ऐसी जगह है, जहाँ उसका अभाव है ? हरिदासजी ने इस विषय मे अपनी क्या सम्मति व्यक्त की है—उसको देखने पर उनकी भावना को समझने मे कोई बाधा नही होगी । वे कहते है—

ज्यूँ मूरति त्यूँ ही सिला, राम बसे सब माँहि ॥
जन हरिदास पूरण ब्रह्म, घाट वाधि कछु नाँहि ॥१॥

माणस परमेश्वर किया, सो तो करता नाँहि ॥
जन हरिदास करता पुरसि, व्यापि रह्या सब माँहि ॥२॥

नहिं देवल सूँ वैरता, नहिं देवल सूँ प्रीति ॥
कृत्रिम तज गोविन्द भजे, या साधाँ की रीति ॥३॥

लोक दिखाओ मत करै, हरि देखे त्यूँ देख ॥
जन हरिदास हरि अगम हैं, पूरण ब्रह्म अलेख ॥४॥

जन हरिदास साची कहै, साहबजी की सौंह ॥
पाहन को करता कहै, ताका काला मौंह ॥५॥

देवल माँही देव है, घट घट धरया बणाय ॥
जन हरिदास या चूँध है, तूँ गुण गोविन्द का गाय ॥६॥

हरिदासजी के उपर्युक्त वाक्यो मे मूर्त्तिपूजा सम्बन्धी उनकी भावना का चित्र स्पष्ट सामने आ जाता है । उनका तर्क है कि यदि मूर्त्ति मे भगवान् साक्षात् रूप में विराजमान है तो उस शिला मे, जिससे मूर्त्ति बनती है, परमेश्वर क्यो नही है ? मूर्त्ति मनुष्य द्वारा ही बनाई जाती है, अत. मनुष्यकृत मूर्ति उस परमेश्वर का प्रातिनिध्य कैसे करे ?—जो मनुष्य का स्वयं निर्माणकर्त्ता है । हरिदासजी मूर्त्तिपूजा को

लोक-दिखावा मानते है। उनका निर्देश है कि कृत्रिममूर्त्ति मे परमेश्वर को खोजने की अपेक्षा उसकी सर्वत्र व्यापकता विद्यमान है, उसी मे अपना ध्यान लगाना ठीक है। हरिदासजी के मत मे अवतारवाद और मूर्तिपूजा का कोई औचित्य नही है।

धर्मविशेष और जातीयता—

निर्गुण सन्त साधको ने इन दो पक्षो के विरुद्ध बहुत बल दिया है। धर्म को पक्षापक्षी मे बाँटना तथा जातीयता के आधार पर मनुष्य-मनुष्य मे भेद करना वे सर्वथा असंगत समझते है, क्योकि उनका व्यावहारिक आधार आत्मतत्व है। महात्माओ ने प्राणिमात्र के लिए एक धर्म माना है, जिसको हम प्राणिमात्र का धर्म या मानव-धर्म नाम से कह सकते है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि विभिन्न धर्मो की कल्पना का कोई तात्विक आधार नही है, सब धर्मो मे प्राणि-मात्र के हित की धारणा अपनाई गई है, जो कुछ भेद माना गया है वह विविध रूढ़ियो पर अवलम्बित है। महात्माओ ने तथ्य की ओर ही ध्यान दिया है। तथ्य मे परिवर्तन की आवश्यकता नही। रूढ़ियो मे कालानुबन्ध से पुन पुन परिवर्त्त न होता रहता है, इन्ही के कारण एक-एक धर्म मे और उपधर्मो की कल्पना बनती है। उदाहरणतः सनातन धर्म इसमे फिर शैव, शाक्त वैष्णव धर्मो की कल्पना। इसी तरह रूढ़ियो की हेरा-फेरी से सापेक्षिक धर्म विशेषों मे उपधर्मो की उत्पत्ति होती रहती है। इसका परिणाम फिर आगे जाकर वर्गवाद मे पनपता है, जिससे विश्वकल्याण का मार्ग रुक जाता है। वर्गवाद की प्रबलता का परिणाम फिर आपसी सघर्ष को जन्म देता है। इतिहास के पृष्ठों मे इस संघर्ष से उत्पन्न विश्वयुद्धो के भयानक चित्र अङ्कित है।

महात्माओ की दृष्टि आत्मा पर होती है। आत्मा मे न विभिन्न धर्म है, न विशेष जाति, अत वे सब प्राणियो के साथ आत्म-बन्धुभाव से व्यवहार करने के समर्थक होते है। उनके सामने न कोई हिन्दू है न कोई मुसलमान, न कोई बौद्ध है, न कोई ईसाई। न वे किसी को ब्राह्मण मानते हैं, न वे किसी को शूद्र। न उनके सामने कोई संन्यासी है न कोई शेख, उनके सामने एक ही चेतन तत्व है जिससे उनमे सजीवता है। इस चेतन तत्व से सम्बन्ध विच्छिन्न होने पर किसी भी प्राणी का धर्म व जाति उसका अस्तित्व कायम नही रख सकते। अतः वे सब निःसार व काल्पनिक हैं। विश्व-कल्याण, देशोन्नति या समाज के उत्थान का आधार यह महात्माओं का सिद्धान्त बने, तभी सबका उत्कर्ष बढ़ सकता है, अन्यथा धर्म विशेष और जाति-विशेष का यह विष न विश्व मे शान्ति रख सकता हैं, न मनुष्य-मनुष्य को समीप ला सकता है, अतः सन्त साधको ने धर्मविशेष तथा जातीयता को अनुपादेय बताया है तथा उसमे वस्तुतः विचार किया जाय तो औचित्य भी है।

उक्त विषयो पर उनका दृष्टिकोण क्या है? तदर्थ नीचे कुछ उक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—

हिन्दू तुरक एक कल लाई, राम रहीम दोय नहिं भाई ॥
यहाँ बामण वहाँ मुल्लव करे, वेद कतेब कथे विसराम।
राम संभारि दूर कर मैं तैं, आखरि एक अलह सूँ काम ॥
ये सब जीव उपाया साहब, ता सूँ मार पड़ो क्यों दूरि।
जन हरिदास यह अरथ विचारे, ता सूँ खालिक सदा हजूरि ॥
पाँच तत्व का पूतला, रज वीरज की बूँद।
एकै घाटी नीसरचा, बामण चत्री सूद ॥
शूद्र वैश चत्री विप्र, विद्या विसतार न वादं।
नहिं हिन्दू नहिं तुरक, सराह नहि सबद न साधं ॥
चारि वरण का मूल कहाँ, हरि परम सनेही पीव।
हारि जीत भुरकी पड़ी, तहां अलूधा जीव ॥
विविध धर्म तपस्या विविध, चलत देह के भाय।
सु तो पंथ कोई और है, जहाँ सात समद लंघि जाय ॥

उपर्युक्त साखियो का अर्थ स्पष्ट है।

नामस्मरण—

महात्मा हरिदासजी ने निर्गुण-भक्ति को अपनाया था। अतः भक्ति मे नाम-चिन्तन का आधार भी लिया जाता है और पिछले साधको को मार्ग-दर्शन मिलता है। स्वयं हरिदासजी ने भी नामस्मरण को आरम्भ मे अपनाया था, ऐसा प्रतीत होता है और वह नाम था—निरञ्जन राम का। वाणी के प्रायः सभी प्रकरणो मे जहाँ भी प्रसङ्ग आया है, महाराज हरिदासजी ने निरञ्जन शब्द का प्रयोग किया है। मै पीछे "साधना" के विवेचन मे इस विषय पर पर्याप्त लिख आया हूँ, पुनः उसके उल्लेख की आवश्यकता नही है। निरञ्जन शब्द व्यापक विशुद्ध (माया-अविद्या रहित) ब्रह्म के लिए विशेषण रूप मे प्रयुक्त होता है।

श्रुतियों मे तथा दर्शनों मे जहाँ तत्व-विवेचन किया गया है, वहाँ ब्रह्म के निरूपण में यही उल्लेख किया गया है कि वह केवल एक ही विशुद्ध तत्व के रूप मे

अशेष ब्रह्माण्ड मे व्यापक है। निर्गुण शब्द भी एक तरह से इसी बात को व्यक्त करता है कि जो तत्व गुण-धर्मरहित है, वह निर्गुण-शब्दवाच्य है। यहाँ गुण शब्द प्रकृति के त्रिगुणात्मक रूप के लिए व्यवहृत है। जहाँ कपिल ने जड प्रकृति को एक तत्व के रूप मे स्वीकृत किया है, वहाँ अन्य दार्शनिको ने माया-अविद्या नाम से जड का निरूपण किया है। निर्गुण तथा निरञ्जन एक ही अर्थ को सिद्ध करते है कि वह परब्रह्म व्यापक तत्व गुणरहित अंजन (माया-अविद्या) रहित है। हरिदासजी का राम यह निरञ्जन राम था। हरिदासजी ने इस नाम को क्यो अपनाया ? इसका सीधा प्रत्युत्तर यह है कि हरिदासजी के गुरु गोरखनाथ या कोई नाथ-महात्मा थे, उनने ब्रह्म को "अलख निरञ्जन" शब्द से सम्बोधित किया है। कबीरजी ने भी नाम-चिन्तन मे "निरञ्जन राम" का निर्देश किया है। हरिदासजी ने भी उसी का अनुगमन किया है। मै यहाँ नाथवाणी, बीजक या हरिदासजी की वाणी के उद्धरण देकर लेख-वृद्धि करना संगत नही मानता। उक्त महात्माओ ने "अलख निरञ्जन" या "निरंजन राम" का नाम-चिन्तन अपनाया, अतः निरंजनी सम्प्रदाय मे आज तक नामस्मरण मे "अलख निरजन सब दुखभंजन—राम निरंजन हरि निरंजन" का व्यवहार प्रचलित है। साधना का हम पीछे दिग्दर्शन कर आये है। मेरे विचार मे हरिदासजी के सिद्धान्त पक्ष मे जो वैशिष्ट्य है वह ऊपर व्यक्त किया जा चुका है। सगुणोपासना, मूर्त्तिपूजा, धर्मविशेष, जातीयता, विविध देवी-देवता—इन पक्षो को हरिदासजी ने स्वीकार नही किया। वे व्यापक मानव-धर्म के अनुयायी थे, उसी का उपदेश किया। प्राणिमात्र मे स्नेह, अपने मे अकिचनता या परम गरीबी, सब प्राणियो के साथ आत्मिक सम्बन्ध, उस अचिन्त्य व्यापक चित्शक्ति मे अनन्य श्रद्धा—यह ही उनका लक्ष्य या ध्येय था, इसकी पूर्ति उनने निरंजन राम के स्मरण-चिन्तन से तथा यौगिक-साधना द्वारा मन-इन्द्रियो को वश मे करके की।

७. द्वादश-महन्त निरंजनी—

राघोदासजी कृत भक्तमाल मे द्वादश निरंजनी-महन्तो का विवरण है। इससे यह तो स्पष्ट है ही कि उक्त विवरण मे दिये सभी महात्मा निरंजनी थे। उक्त बारह निरंजनी महात्माओ का क्रम इस तरह है—१–लपट्यौ जगन्नाथ, २–श्यामदास, ३–कान्हडदास, ४–ध्यानदास, ५–खेम, ६–नाथजी, ७-जगजीवन, ८–तुरसीदास, ९–आनदास, १०–पूर्णदास, ११–मोहनदास, १२–हरिदास। इस क्रम मे हरिदासजी का नाम अन्त ही अन्त मे है। पर जहाँ बारहो का भिन्न-भिन्न वर्णन किया है उस वर्णन-क्रम मे हरिदासजी छठे है। इससे स्पष्ट है कि भक्तमालकार ने उक्त विवरण मे नामोल्लेख किये है, उनका पहिले या पीछे, बड़े-छोटे से सम्बन्ध नही है। उनके विचार से उक्त बारह महात्मा ही निरंजनी सम्प्रदाय में प्रमुखस्थानीय थे। इसी भाव का समर्थन स्वामी हरिरामजी के इस कथन से होता है—

जन हरिदास हरि सुमर दास तुरसी तत्त पाया।
श्याम तजी सब श्यामता पद पूरण ध्याया ॥
ध्यान धरत हरि मिले नाथ मतिनाथ ही गाया।
कान्हड़दास कृपालु खेम पुनि षेम समाया ॥
मोहन भजे मुरारि दास जगजीवन सिद्धवर।
आनदास जगन्नाथ भये प्रभु के अनुचर ॥
घाटवाध इनमें नहीं अधिकारी निज धाम के।
द्वादश महन्त निरंजनी सदा बसहु हरिराम के ॥१॥

राघोदासजी की भक्तमाल का रचनाकाल १७७० माना जाय, तो हरिरामजी का काल भी अठारहवी शताब्दी है। जैसा उनने स्वरचित 'छन्द रत्नावली' के अन्त मे काल का निर्देश किया है—

सम्बत् सर नव मुनि शशि नभ नवमी गुरु मानि।
नगर डीड दृढ़ कूप तहिं ग्रन्थ जन्मथल जानि ॥

अङ्कगणना के विपरीत क्रम से १७९५ का सम्वत् 'छन्द रत्नावली' की रचना का है। मतलब—राघोदासजी व हरिरामजी समसामयिक से ही थे। हरिरामजी ने अपने इस पद्य मे सभी को उच्च महात्मा के रूप मे स्मरण किया है। निरजनी सम्प्रदाय मे दर्शनदासजी के शिष्य प्यारेरामजी ने भी भक्तमाल की रचना की है। उसमे उनने हरिदासजी महाराज को छोड शेष एकादश का स्थानादि सहित इस तरह निरूपण किया है—

जगन्नाथ थिरोली में थिरता जु पाय रहे,
पूर्णदास पूरे मत भंभोर रहाइये।
तुरसीदास शेरपुर सार सार काढ लियो,
टोडा माँहि नाथ जिन निरंजन गाइये ॥
श्यामदास दत्तवास दुविध्या को दूर कर,
आनदास लुहाली में सदाई रहाइये।
मोहनदास मोह तजि देवपुर रहे आय,
कान्हड़दास चाड़सू परचो जिन पाइये ॥

> महर जू सामोद माँहिं ध्यानदास धरचो ध्यान,
> जगजीवण भादवे मेलो जू रचाइये।
> षेमदास सिवहाड़ साचो मत जिन थाप्यो,
> बारै ठौर बारे म्हंत ऐसी विधि गाइये।

अन्तिम चरण मे 'बारै' का उल्लेख है।* बारहवे डीडवाणे हरिदासजी है, जिनका निरूपण विस्तार से भक्तमाल के आरम्भ मे किया है। प्यारेरामजी की भक्तमाल का काल १८८३ है।

हरिरामदासजी महाराज के शिष्य रामदासजी, उनके शिष्य दयालदासजी, जिनकी पर्याप्त रचनाएँ है, उनने भी भक्तमाल की रचना की है। उनका काल १८४० से १८८० है। उनकी भक्तमाल मे जहाँ निरजनी सम्प्रदाय का निरूपण प्रारम्भ हुआ है, उनने भी पहिले द्वादश निरंजनी महात्माओ का परिचय दिया है—

> हरिदास पुनि श्यामदास तुरसी धन पूरण।
> जगन्नाथ जन षेमदास मोहन मन चूरण॥
> कानड़ ध्यान जू दास भया जगजीवन पारा।
> आनदास जू नाथ भाल तथ अरथ विचारा॥
> राम सुमर मन जीत जग षट् सरोज उर मंजनी।
> अंजन तज निरंजन मिले पंथ द्वादश निरंजनी॥४१५॥छंद.

इनने महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो का भी परिचय नामोल्लेख से किया है। हरिदासजी से छठी पीढी मे हुए परम सन्त महात्मा सेवादासजी का भी उक्त भक्तमाल मे निरूपण है। उपर्युक्त सभी सन्त-लेखको ने इन बारह सन्तो को निरंजनी निर्गुणोपासक भक्त माना है। हरिदासजी निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक माने गए है। राघोदासजी ने इनका विवरण करते हुए व्यक्त किया है कि ये सब कबीरजी मे श्रद्धा रखने वाले थे। उनकी उक्ति यह है—

> "अब राषहिं भाव कबीर को इम एते महन्त निरंजनी"

जैसा मै पहिले निवेदन कर आया हूँ कि कबीरजी के पश्चात् हुए सभी महात्माओ ने उनको परम श्रद्धा से स्मरण किया है तथा अनेको महात्माओ ने उनमें गुरुभाव भी प्रदर्शित किया है। राघोदासजी ने अपने छप्पय के अन्तिम चरण मे इसी का संकेत किया है।

जगन्नाथजी, तुरसी, श्याम, खेमदासजी आदि निरंजनी ही थे—यह तो सिद्ध है। पन्थ-प्रवर्त्तक हरिदासजी महाराज हुए—यहभी स्पष्ट है। "उत्तर-भारत की सन्त-परम्परा" के माननीय लेखक पं० परशुरामजी चतुर्वेदी ने राघोदासजी की भक्तमाल के आधार पर चार निर्गुण सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक नानक, कबीर, दादू, जगन—माने है। जगन नाम से उधर द्वादश महन्त निरंजनी मे कोई है नही, अत. चतुर्वेदीजी ने सम्भावना की कि शायद राघोदासजी ने लपट्यो जगन्नाथ के नाम से प्रथम जिनका निरूपण किया है, दूसरे छप्पय मे उन्ही का संक्षेप "जगन" कर लिया गया है और वे ही निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक कहे जा सकते है। चतुर्वेदीजी ने स्वयं ही आगे इस सम्भावना को अप्रामाणिक मान लिया है। मेरी समझ से राघो-दासजी के छप्पय को ध्यान से देखा जाय तो इस सम्भावना का निराकरण हो जाता है।

राघोदासजी का छप्पय इस रूप मे है—

नानक सूरज रूप भूप सारे परकासे।
मघवा दास कबीर ऊसर सूसर वरषा से॥
दादू चन्द सरूप अमी कर सबको पोषे।
वरन निरंजन मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे॥
ये चार महन्त चहुँ चक्कवै च्यारि पंथ निरगुन थपे।
नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे॥३४२॥

उक्त छप्पय मे चारो निर्गुण मत-प्रवर्त्तको का नामोल्लेख है। जैसे नानक को सूरज रूप, कबीर को इन्द्र रूप और दादू को चन्द्र रूप व्यक्त कर चौथी लाइन मे "हरिदासजी" का हरि नाम से उल्लेख है जैसा कि "वरन निरंजन मनो त्रिषा हरि जीव संतोषे" से स्पष्ट है। हरि से यहाँ अभिप्रेत हरिदासजी है न कि हरि का अर्थ यहाँ हरना—दूर करना है। यदि हरना—दूर करना अर्थ मानते है तो फिर आगे जो "ये चार महन्त चहुं चकवै" की सङ्कलना कैसे ठीक बैठेगी? क्योकि नानक, कबीर, दादू ये तो तीन ही हुए। चौथी लाइन का अर्थ यह कर लेते है कि इन तीनो ने निरंजन का निरूपण कर सन्ताप रूपी तृषा से पीडित प्राणियो की तृषा की निवृत्ति की, तो चौथा फिर कौन आयेगा? अत यहाँ चतुर्थ लाइन मे हरि शब्द का प्रयोग हरिदासजी के लिए ही व्यवहृत है। कारण, उन्होने प्रमुखतया निरंजन का निरूपण ही अपनी वाणी मे विशेष किया है। मेरी समझ से छप्पय की चतुर्थ लाइन का यही अर्थ है—हरिदासजी ने संसार के विविध भोग-पदार्थो की तृषा से पीड़ित मनुष्यो को निरंजन के विवेचन द्वारा संतोषे—सुखी किये। तभी "ये चार महन्त चहुं चक्कवै" की

सार्थकता होती है। इसी छप्पय की अन्तिम पंक्ति मे "नानक कबीर दादू जगन राघो परमातम जपे" लिखा है। यहाँ चौथे हरिदासजी होने चाहिए थे, पर नाम जगन का आया है। आगे जहाँ राघोदासजी ने द्वादश महन्तों का निरूपण किया है, वहाँ किसी जगन का वर्णन नही है। अत यहाँ जगन पद मे या तो लेखक की भूल से दिया गया है या अन्य कोई भूल हुई है। मेरी समझ से जगन की जगह "जु हरि" ऐसा शब्द होना चाहिए था। जिससे पीछे की तथा आगे के वर्णन की सङ्गति बैठती है। राघोदासजी ने द्वादश महन्तो के निरूपण मे हरिदासजी के लिए ही निरजनी विशेषण का प्रयोग किया है, जिससे निरजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक रूप मे हरिदासजी को माना जाय। मैने भूमिका के परिचय खण्ड मे इस पर पर्याप्त विचार किया है, अत. उसकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नही है। निरजनी सम्प्रदाय मे आरती के साथ धमाल तथा गुदडी के गाने की पद्धति चिरकाल से प्रचलित है। गुदडी एक लावणी भजन है, जिसके रचयिता भाऊदासजी नाम के निरजनो महात्मा हुए है, इनके कुछ अन्य भजन भी है। यह गुदडी भजन हरिदासजी महाराज की गुदडो को लक्ष्य कर रचा गया है। इसका प्रारम्भ है—

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुम्हारी पातक जारणी ॥
सतगुरु चरण रंज मैं धारूँ, गुरु गोरष का ज्ञान विचारूँ।
तीखे शिखर ध्यान हरि धार्‌या, भर्म कर्म सब दूर निवार्‌या ॥
कठिन साँकड़ा मौतज फन्दा, हरिदास जन हरि का बन्दा।
एक पलक में सब तज दीन्हा, काम क्रोध ममता मारणी ॥१॥

इस पद मे उपर्युक्त रूप की आठ कड़ियाँ है। सातवी कड़ी मे उन द्वादश महात्माओं का उल्लेख किया गया है—

कानड़ मोहन षेम हजूरी, आनदास पूर्ण मत पूरी।
श्याम साँकड़े ध्यान लगाया, जगजीवन तुरसी तत्त पाया ॥
नाथ ध्यानजी है अवधूता, जगन्नाथ केवल पद पहुँता।
जिनकी पदरज जो कोई ध्यावे, जन्म जन्म अघ हारणी ॥७॥

× × ×

नरीदासजी नरहरि दूजा, दास नारायण पीपा सूँगा।
परशुराम शारंग मत वाला, धन्य मनोहर पोकर काला ॥

विरक्तवाडा

श्री सेवादासजी महाराज की समाधि

श्री अमरपुरुषजी महाराज की समाधि, डीडवाना

महरवान मन की गति जानी , बावन शिष्य भये परवाणी ।
जन भाऊदास कै शीश विराजै, ऐसा यह सन्त निरंजणी ।।८।।

उक्त दो पद्यों मे हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे से कुछ प्रमुख शिष्यो के नाम दिये गए है । द्वादश निरंजनी सन्तो मे हरिदासजी से शेप एकादश का पहिले उल्लेख किया है, पश्चात् औरो का । इससे प्रतीत होता है कि ये-तुरसी आदि एकादश महात्मा भी हरिदासजी मे गुरुभाव रखते थे, चाहे वे उनके ही शिष्य हो या साथी । दूसरी परम्परा गाढे मे जहाँ हरिदासजी महाराज की समाधि है, उसके चारो ओर पहिले इन सब सन्तो की बारह साले यानी तिबारे बने थे । इसका सार यह है कि सबका यहाँ गाढे मे ही निवास था और इनके उत्तराधिकारी भी सब डीडवाणे से ही सम्बन्ध रखते है । खेमजी, नाथजी, मोहनदासजी व पूर्णदासजी हरिदासजी के ही शिष्य थे । खेमजी ने तो "वैराग्य लच्छी ग्रन्थ" के अन्त मे स्वय लिखा है—

"गुरु मेरे हरिदास , कियो जिन ब्रह्म प्रकाश"

नाथजी भी शिष्य थे । परम्परा से व गुरुमान्यता तथा व्यावहारिक-अब तक के सम्बन्ध से अन्यो के लिए यह तो कहा ही जा सकता है कि वे हरिदासजी महाराज में गुरुभाव रखने वाले थे । भाऊदासजी ने गुदडी की रचना की, उस समय सम्प्रदाय में प्रचलित विचारधारा से एकादश निरजनी महात्मा हरिदासजी के अनुगामी थे तथा बावन शिष्यो मे अग्रणी थे । खेमजी, नाथजी, मोहनदासजी, पूर्णदासजी, जग-जीवनजी आदि का शिष्यत्व सिद्ध है । अतः जब तक अन्य कोई विरोधी प्रमाण सामने न आए, तब तक इन एकादश महात्माओ के लिए यही निश्चय रखना सङ्गत है कि ये हरिदासजी के शिष्य तथा अनुगामी थे ।

८. शिष्य-प्रशिष्य—

हरिदासजी के जीवनकाल मे अनेकों उनके शिष्य हो गए थे । उनके सब शिष्य तथा शिष्यो के शिष्य कितने थे ? इसकी वास्तविक संख्या का कोई आधार नही है । परम्परा-प्रचलित उनके बावन प्रमुख शिष्य माने गए हैं, जिनकी परम्पराएँ पर्याप्त समय तक चलती रही है । बावन शिष्यो की प्रधानता का एक और कारण भी माना जा सकता है—सन्यासियो के पश्चात् चार वैष्णव सम्प्रदायो का आविर्भाव है । वैष्णवो मे बावन द्वारा माने जाते है । मेरे विचार से इन बावन द्वारो का अनुकरण वैष्णव सम्प्रदाय से पीछे बनने वाले सम्प्रदायो ने बावन शिष्यो के रूप मे किया है । प्रायः ही कई सम्प्रदायो मे सम्प्रदायाचार्यो के पश्चात् उनके बावन शिष्य होने की परम्परा प्रचलित है । दादूजी के भी बावन शिष्य प्रमुख गिनाये गए हैं ।

महाराज हरिदासजी के हो सकता है बावन से भी अधिक शिष्य हों, पर परम्परागत व्यवहार मे बावन का ही प्राधान्य है और इन बावन की 'थांभा' संज्ञा की गई थी। जैसा ऊपर द्वादश निरजनी महन्तो के विवरण-प्रसङ्ग मे भाऊदासजी की "गुदडी" के दो चरणो मे इक्कीस नामो का उल्लेख कर आगे "बावन शिष्य भये परवाणी" कह कर शेष इकतीस के नाम "गुदडी" मे व्यक्त नही किये गए है। पुराने साधुओं की परम्परा से सुने-लिखे नाम है, उन्ही की मान्यता सङ्गत है। वैसे निरञ्जनी सम्प्रदाय का एक वही भाट भी है जिसकी बही मे भी बावन शिष्यों के नाम लिखे है। हम यहाँ दोनो ही सूचियाँ दे रहे है। सम्भव है-अनेको नाम दोनो सूचियो मे हो व कुछ नामो में विभिन्नता हो।

साधुपरम्परा के आधार की सूची—

१-खेमदासजी बड़ा, २-महरबानजी, ३-ऊधोदासजी, ४-टीकूदासजी, ५-गोविन्ददासजी, ६-सुन्दरदासजी, ७-चरणदासजी, ८-सारगदासजी नागौरी, ९-कल्याणदासजी, १०-नरहरिदासजी तपस्वी, ११-दयालदासजी वैद्य, १२-रामदासजी पीपावंशी, १३-नारायणदासजी खीची, १४-दयालदासजी काबरा, १५-भगवानदासजी, १६-नारायणदासजी नारनौली, १७-केवलदासजी, १८-अमरदासजी, १९-मोहनदासजी बडा, २०-रामदासजी निराकारी, २१-नरीदासजी, २२-भगवानदासजी मथरिया, २३-नारायणदासजी काबरा, २४-ठाकुरदासजी मेडीवाला, २५-भगवानदासजी चेल्यो, २६-गोपालदासजी गोकली, २७-श्दामदासजी वलीवाला, २८-खेम हजूरी, २९-खेमदासजी खाटरा, ३०-जगन्नाथदासजी काबरा, ३१-कल्याणदासजी लाम्बे, ३२-वोहिथदासजी, ३३-राघोदासजी पीपावशी, ३४-राघोदासजी अवधूत, ३५-रामदासजी इवाणी, ३६-दयालदासजी विजैवर्गी, ३७-पूर्णदासजी डीकरा, ३८-परमानन्दजी डोकरा, ३९-नरहरिदासजी नामावंशी, ४०-ध्यानदासजी, ४१-मनोहरदासजी, ४२-पेखादासजी, ४३-ध्यानदासजी दूसरा, ४४-रामदासजी लोहाटी, ४५-ध्यानदासजी विजैवर्गी, ४६-दयालदासजी पीपावंशी, ४७-नारायणदासजी मेवाडा, ४८-बलरामदासजी भँवर, ४९-मोहनदासजी ज्ञानी, ५०-मथुरादासजी पूर्विया, ५१-गोपालदासजी हरड और ५२-गोपालदासजी धनावंशी।

सन्त-परम्परा से उपर्युक्त बावन शिष्यो की नामावली है। महाराज के कुछ और शिष्यो के नाम भी सन्त-परम्परा से प्राप्त है, वे इस रूप मे है—१-केसोदासजी रीरीवाला, २-बालकदासजी (नाथजी), ३-खेमदासजी तोषणीवाल, ४-विष्णुदासजी, ५-तुरसीदासजी चूलीका, ६-दास सूँघाजी, ७-दास पीपाजी, ८-जोगीदासजी, ९-ईसरदासजी नरीयवंशी, १०-वेणीदासजी ठाडेश्वरी, ११-दयालदासजी कावरा, १२-श्यामदासजी, १३-श्यामदासजी धाकर, १४-परसदासजी, १५-दयालदासजी गरसरावत, १६-राघोदासजी संन्यासी, १७-महरदासजी काबरा, १८-महर-

दासजी पीपावंशी, १९–श्यामदासजी काबरा, २०–सुखरामदासजी विजैवर्गी, २१–जयमलरामजी, २२–माधोदासजी अग्रवाल, २३–विष्णुदासजी सोढाणी, २४–नाथी बाई मालपाणी और २५–रामा बाई नागौरवाली।

ब्रह्मभाट की बही के आधार की सूची—

१-खेमदासजी बडा, स्थान--काला डेहरा। २-३–रामदासजी, महरवानजी, ग्राम–चौमू। ४–ऊधोदासजी, खानपुर। ५–भगवानदासजी, लाडनूँ। ६–सारग-दासजी, नागौर। ७-८–चत्रदासजी, मनोहरदासजी, ग्राम–साँभर। ९–नारायण-दासजी खीची, जोधपुर। १०-११-१२–महरुमदासजी, गोविन्ददासजी, विष्णुदासजी, ग्राम–भावरी। १३–नारायणदासजी, ग्राम–नारनौल। १४–नरहरीदासजी, ग्राम–नारेली। १५-१६–केवलदासजी, श्यामदासजी, पचेवर। १७–नरीदासजी, फतेहपुर (शेखावाटी)। १८–राघोदासजी, झुंझुनूँ। १९-२०-२१–दयालदासजी, रामदासजी, खेमदासजी, देवगाँव। २२-२३-२४–छोटे खेमजी, भगवानदासजी, मथुरादासजी, ग्राम-आसोप। २५-२६–सूरदासजी, वनमालीदासजी ग्राम--नीमेड। २७--नारायणदासजी ग्राम--वामण। २८--बालकदासजी (नाथजी) डीडवाणे। २९-३०--पहलाददासजी, टीकूदासजी, ग्राम--चूला। ३१-३२--नारायणदासजी काबरा, रामदासजी निराकारी, स्थान--ढढेरू। ३३-३४-३५-३६-३७--टीकू, घीसा, केसोदासजी, काला, चरणदासजी, ग्राम--ढढेरू। ३८--कल्याणदासजी। ३९--पिडदासजी। ४०--रूपदासजी। ४१--मोहन-दासजी। ४२--दास पीपाजी। ४३--दास सूँघाजी। ४४--पाडा देवी। ४५--रघुनाथ-दासजी। ४६--दामोदरदासजी। ४७--सुन्दरदासजी। ४८--टीकूदासजी। ४९- गोविन्द-दासजी। ५०--परमानन्दजी। ५१--गाढाजी वियाणी।

उपर्युक्त दोनो सूचियो मे आठ-दस नामो का अन्तर है, शेष नामो मे साम्य है। अत· दोनो ही सूचियो की उपादेयता है, ऐसा स्वीकार करना संगत है। भाऊ-दासजी ने अपने गुदडी भजन मे जिन इक्कीस नामो का उल्लेख किया है। वे इन दोनो सूचियों मे आ गए है।

यह अनुमान करना अनुचित नही है कि महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे अनेको ऐसे थे कि जिनके अनेको शिष्य बन गए थे। उनके नामो का पता लगने का कोई साधन नही है। उक्त शिष्य नामावली की परम्परा मे आज भी सैकडो स्थान विद्यमान है जिनमे उनकी परम्परा प्रचलित है। जैसे हरिदासजी महाराज के शिष्य बडे खेमजी उनकी परम्परा मे इस समय भी सैकडो स्थान तथा कई सौ सन्त मौजूद है। खेमजी महाराज की सातवी पीढी में महान् सिद्ध महात्मा अमरपुरुषजी महाराज हुए है। उनके छियानवे शिष्य थे और सब ही सिद्ध-कोटि के महात्मा हुए। गाढे मे जो विरक्तवाडा संज्ञा से स्थान·विशेष है, वह सब अमरपुरुषजी महाराज के शिष्यों की

परम्परा से सम्बन्धित है। इनकी नामावली को किसी ज्ञानराय नामक चारण ने पद्यों मे निरूपित किया है वह इस रूप मे है—

चौपाई—विरकत साध सन्त है भारी, ज्ञान के पूरण अधिकारी।
तासु सिष है अति ब्रह्मचारी, अमरदास निरंजनी अवतारी॥
बड़ो सिष षेमजी है नाम, केवल एक राम सूँ काम।
दास प्रहलाद पूरण सन्त, बीच के जुग में केवल मन्त॥
दास मंगल है साध सवाई, आषण कियो जोधपुर माँई।
कंठी बांध र पाट बैठायो, नारायणदास तिलक निज पायो॥
नरहरदास पूरण साध, खाटू बैठा मतै अगाध।
जीवणदास विहारीदास, कोड़ी एक न राषै पास॥
दामोदरदास देवीदास, कीं जिन सभी कल्पना नास।
रतनदास रु कृपाराम, हरि बिन और न कोई काम॥
रूपदास सन्त है भारी, अनभै वाणी विसतारी।
हरजीदास दास भगवान, सन्त जन राखै उनका मान॥
मोहनदास नाम दो सिष, माधोदासजी पूरण रिष।
देईदास निरंजनराम, रतनदास अरु शिवराम॥
टीकमदास अरु बुधदास, राम भजत है श्वासोश्वास।
पूरणदास जू जगराम, निहचै भजे हरि को नाम॥
परमानन्द साध दो भारी, निसदिन हरि की कथा उचारी।
वेणीदास मनोहरदास, विचरै जग में रहे उदास॥
मनोहरदास केवलदास, थिर मन रहे बारह मास।
तुलसीदास अरु केसो, पन्थ गहि साध कै तैसो॥
सुखरामदास दास जैराम, निरभै भजै प्रभु को नाम।
राघोदास दास मुनिलाल, रातें रहैं हरि के ध्याल॥
रामजीदास दास मलूक, बासी खाय माँग र टूक।
कोमलदास मुकुन्ददास, सुन्दर रहै जगत उदास॥

ोलिया समाधि स्थान

कोलिया बगीची

रामाकिसनजी महाराज

मोतीरामजू सूरतराम, निसदिन एक हरि सूँ काम ।
रामजीदास दासआनन्द, देवादास कोई न फन्द ॥
किरपादास अगरधर भेष, जग में विचरै राषै टेक ।
मगनीराम है केसोदास, वे नहिं पड़े जम की पास ॥
शीतलदास अगमदास, वे नहिं पड़े जम की पास ।
सदाराम दास है लिषमी, भजन सूँ काटी वार विषमी ॥
हेमदास है गरीबदास, राम भजै सब बात उदास ।
रामजनदास दास है भूधर, विचरे धरा मुलक इहिं मुरधर ॥
कुशलदास अरु लाल ही दास, जुगलदास जग रहै उदास ।
लछीराम पुनि सहज ही राम, निहचलदास सरै सब काम ॥
षेमदास पुनि तिलोकदास, मेटी उनने जम की त्रास ।
हरवंशदास चरण निज दास, राम रटत है बारह मास ॥
दयाराम अरु दास जयराम, दरसणदास जपै निज नाम ।
निर्मलदास दास भगवान, थिर ये रहे न एकै स्थान ॥
मेघदास है हिरदै राम, भजन करत है आठों याम ।
भक्तराम है जगन्नाथ, दास गोपाल है जिनके साथ ॥
विशनदास है उदयराम, राम भजै कर गुरु के काम ।
बलरामदास है अतीतराम, आँख मूँद भजै हरि नाम ॥
मयाराम है संगदास, राम भजै वन करै वास ।
हरभक्तराम पुनि दीपदास, राम रटैं ये एक श्वास ॥
चरणदास दास है केसो, काहू सूँ नहिं राषै लेसो ।
कानड़दास दास है साजन, ता कै गुरु को माने राजन ॥
सहजराम अरु कृपाराम, भगवत भजन और नहिं काम ।
कृपादास है चैनराम, वन वास करै फिर रटैराम ॥

दोहा— वाई वीजाँ वामणी, छोटो खाटू वास ॥
राम भजन सूँ कामहै, जग सूँ रहे उदा ।

हरिदास के पंथ में, अमरदास है सिष ॥
छिनवें मूरत साध हैं, विरकत पूरे रिष ॥२॥

चौपाई—अमरदास कै शिष्य सुप्यारे, वन में रहें जगत सूँ न्यारे।
ज्ञानराय निज करे डंडोत, सब सन्तन कूँ पावाँधोक ॥

दोहा— ज्ञानराय के वंश में, जनम्यो है दानूँ राय।
दोनों कर जोड़े वीनती, सन्तों के चरणाय ॥२८॥

उक्त विवरण अमरपुरुषजी महाराज के शिष्यो का है। अमरपुरुषजी महाराज का काल सत्रह सौ पिचहत्तर से अठारह सौ बयालीस तक का है। अमरपुरुषजी का जन्म सत्रह सौ पचपन, वैराग्य-धारण सत्रह सौ पिचहत्तर, स्वर्गारोहण अठारह सौ बयालीस, कार्तिक बदी चौदस। यह एक खेमजी की परम्परा का दिग्दर्शन है। नाथजी, शारंगदासजी, महरवानजी, नारायणदासजी आदि हरिदासजी के अन्य शिष्य-प्रशिष्यो का बहुविस्तार है, अत. उसका निरूपण शक्य नही है। आगे हम परिशिष्ट मे कुछ तालिकाएँ देगे, जिससे इस पर विशेष प्रकाश पडेगा। हरिरामदासजी महाराज सीथल रामस्नेही सम्प्रदाय-प्रवर्त्तक के पोताशिष्य महाराज दयालदासजी ने भी अपनी भक्तमाल मे हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो के नामोल्लेख किये है। यह नाम परम्पराप्राप्त नामावली व ब्रह्मभाट की बही की नामावली से अधिकाश मिलते है, अतः उनका उल्लेख भी यहाँ नही किया गया है।

९. सम्प्रदाय का प्राक्मध्य उत्तररूप—

किसी भी महात्मा का सम्प्रदाय चलाने का लक्ष्य नही हुआ करता। वे तो व्यक्तिशः ही जन-कल्याण के लिए नि.स्वार्थ भाव से प्रयास करते है। अपनी अनुभूति तथा धार्मिक लक्ष्यों की वास्तविकता को बताकर जन-समुदाय की भ्रान्त धारणाओं का निराकरण ही उनका एकमात्र ध्येय रहता है। ऊँचे आदर्श वाले महान् पुरुषो के पुनीत आचरण तथा निर्मल विचारधारा से आकर्षित सैंकड़ों-सहस्रो व्यक्ति उनके सानिध्य मे आते है उनमे से अनेकों मायिक-पदार्थो का मोह त्याग आत्मकल्याण के लिए उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लेते है। धीरे-धीरे इन्ही शिष्यो की परम्परा एक सम्प्रदाय व एक पन्थ का रूप ग्रहण कर लेती है।

महाराज हरिदासजी का निरञ्जनी पन्थ या सम्प्रदाय इसी तरह बना। आरम्भ मे इसमे वे ही साधक सम्मिलित हुए, जो हरिदासजी की कथनी-करणी से प्रभावित हुए। यह इस पन्थ का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इस प्राक्रूप के समय मे जितने भी महाराज के शिष्य-प्रशिष्य हुए, वे अपने-अपने घर-कुटुम्ब व धन-

सम्पत्ति का त्याग कर परम वीतराग-भावना से ओतप्रोत थे। अत. ये सभी सिद्ध-पुरुष तथा "निर्मानमोहा जितसंगदोषा" थे। न इनको घर की आवश्यकता थी—क्योकि घर तो ये स्वकीय छोड-छोडकर आए थे। न इनको धन की, कुटुम्ब की, पद की, मान की चाह थी। ये थे त्याग-वैराग्य की मस्ती वाले फकीर। आत्मचिन्तन ही इनका लक्ष्य था—त्याग ही इनका भूषण था। न इनमे किसी तरह की बनावट थी, न था दम्भ-कपट। एक गुदडी तथा एक पात्र—यही इनकी साज-सज्जा थी। हरिदासजी महाराज का अवसानकाल सम्वत् पन्द्रह सौ पिचानवे या सोलह सौ सूचित है। एक शताब्दी तक सम्प्रदाय का यही रूप चला। इसका अनुमान इससे किया जा सकता है कि निरञ्जनी सम्प्रदाय के स्थानो मे शायद ही कोई स्थान हो जो सत्रहवी शताब्दी का बना हुआ हो। सबसे पुराने स्थान डीडवाणे मे होने चाहिए। महाराज हरिदासजी की समाधि तथा प्रमुख एकादश महात्माओ की शालाएँ–ये सब सत्रहवी शताब्दी के अन्त मे या अठारहवी के आरम्भ मे बनी हुई होनी चाहिए। अठारहवी शताब्दी के तो अनेको स्थान उपलब्ध है। अत. इस स्थान बनने की प्रवृत्ति से यही अनुमान होता है कि जब तक सम्प्रदाय मे–परम त्यागी, अत्यन्त वैराग्यवान् महात्मा रहे, तब तक प्रवृत्ति का कोई भी कार्य सम्पन्न नही हुआ। अत. हरिदासजी महाराज के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् की एक शताब्दी तक का काल प्राक्काल के रूप मे माना जा सकता है, जिसमे न स्थानो का निर्माण था, न ही अन्य किसी प्रकार के संग्रह की प्रवृत्ति को स्थान था। यह इस सम्प्रदाय का श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काल कहा जा सकता है, जिसमे सभी महात्मा परम त्याग-वैराग्य से सम्पन्न थे।

मध्यकाल—सम्वत् १७०१ से १८७५–

अठारहवी तथा उन्नीसवी शताब्दी के तीन चरण निरञ्जनी सम्प्रदाय का मध्यकाल माना जा सकता है। इसी काल मे इस सम्प्रदाय का पर्याप्त विस्तार हुआ। इसी काल मे बहुत से आध्यात्मिक-साहित्य के संरक्षण तथा निर्माण का कार्य भी हुआ। महाराज के समसामयिक तुरसीदासजी, मोहनदासजी, जगजीवनजी, खेमजी, ध्यान-दासजी की रचनाएं उपलब्ध है। महाराज हरिदासजी की वाणी की तरह ही मोहन-दासजी व तुरसीदासजी की वाणियाँ है। तुरसीदासजी की वाणी हरिदासजी महा-राज की वाणी से शायद दुगुनी बडी है। मोहनदासजी की वाणी हरिदासजी की वाणी से छोटी है। जगजीवनजी की रचना अभी पूरी प्राप्त नही है। जितना अंश प्राप्त हो रहा है, उससे यह अनुमान तो अवश्य होता है कि इनकी रचना पर्याप्त होनी चाहिए। खेमजी की रचना बहुत थोडी प्राप्त है। ध्यानदासजी की रचना भी जो उपलब्ध है, वह खेमदासजी की रचना से कुछ अधिक है। कल्याणदासजी की रचना पर्याप्त है। मतलब—महाराज हरिदासजी के समसामयिक व शिष्यगणो में अधिकतः साधक व आत्मजयी महात्मा थे। उनमे से कुछ ने अपनी अनुभूति को अपनी रच-नाओं द्वारा भी व्यक्त किया था।

महाराज हरिदासजी के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् उनके सहयोगी तथा शिष्यो मे से कोई उनका उत्तराधिकारी हुआ या आचार्य-परम्परा प्रचलित हुई—ऐसा कोई प्रामाणिक आधार सामने नही है। क्योकि महाराज के साथियो व शिष्यो में भी कोई इस तरह की भावना थी नही कि कोई महाराज हरिदासजी के स्थान पर आचार्य या महन्त बने। अल्पाश मे कोई किसी का नाम इङ्गित करता है तो उसका कोई प्रमाण नही। वैसे व्यवहार मे स्पष्ट है कि पूरे निरञ्जनी सम्प्रदाय का कोई महन्त नही है।

जैसा ऊपर व्यक्त किया गया है कि महाराज हरिदासजी के शिष्य बडे खेमजी का परिवार इस सम्प्रदाय मे सबसे अधिक विस्तृत हुआ। उनकी सातवी पीढी मे सेवादासजी महाराज के शिष्यो मे अमरपुरुषजी महाराज अत्यन्त तेजस्वी व महात्मा तथा परम प्रभावशाली व्यक्ति हुए। उनके शिष्यो-प्रशिष्यो की सख्या कई सैकड़ो मे थी। उनके शिष्यो मे भी अनेको महात्मा ऐसे हुए, जिनके शिष्य-प्रशिष्यो का बडा परिवार बन गया। डीडवाणे मे विरक्त बाडा इसका प्रबल प्रमाण है। उक्त बाडा अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यो का ही स्थान है। मैने स्वयं इस बाडे मे सम्वत् १९९० के समय करीब पाँच-छः सौ साधुओ को देखा है। अमरपुरुषजी महाराज की इस परिवार-वृद्धि मे बाडे के महन्तो की परम्परा प्रारम्भ हुई। संख्या-बल व स्थान-बाहुल्य के कारण ये बाडे के महन्त ही आगे चलकर सब निरञ्जनी-सन्तो मे महन्त के रूप मे मान्यता पाने लगे।

खेमजी महाराज की तरह ही नाथजी महाराज की परम्परा मे भी साधुओ का बाहुल्य रहा और भी महाराज के शिष्य-प्रशिष्यो मे पर्याप्त वृद्धि के कारण इस मध्यकाल मे सम्प्रदाय का स्वरूप पर्याप्त विवर्द्धित हुआ तथा उसका विस्तार भी काफी हुआ। राजस्थान मे प्राय. सभी रियासतो मे निरञ्जनी सन्तो के स्थानो की स्थापना हुई। कुछ स्थान राजस्थान से बाहर भी स्थापित हुए, पर अधिक वृद्धि राजस्थान मे, राजस्थान मे भी जोधपुर-मारवाड़ का स्थान सबसे आगे है। मारवाड का कोई भी क्षेत्र ऐसा नही था कि जहाँ इस सम्प्रदाय के साधुओ का स्थान स्थापित न हुआ हो। वृद्धि और ह्रास कालज स्वभाव है।

जिस तरह सोलहवी शताब्दी से इस सम्प्रदाय का आरम्भ हो धीरे-धीरे अभिवृद्धि हुई, वह अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दी मे पराकाष्ठा पर पहुँची। जब अधिक विस्तार हुआ, अधिक स्थान बने। अधिक प्रचार हुआ तो फिर जन-सम्पर्क की अधिकता से समाज मे कई तरह की कमजोरियो ने अपना स्थान बनाना आरम्भ किया। त्याग-वैराग्य मे न्यूनता आने लगी, जागतिक-भावनाओ का प्राबल्य हुआ, पूजा-प्रतिष्ठा ने अहङ्कार की अभिवृद्धि की और आध्यात्मिक-जीवन के स्थान पर लौकिक-

भावनाप्रधान जीवन ने धीरे-धीरे प्रवेश प्रारम्भ किया। उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के पश्चात् वृद्धि का रूप रुका तथा ह्रास का श्रीगणेश हुआ।

उत्तरकाल—१८७५ से अब तक—२०१८ तक—

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे वृद्धि का प्राबल्य रुका, पर उस समय भी सैकडो महात्मा इस रूप मे थे कि जिनके कारण सम्प्रदाय के महत्व मे अधिक कमी नही आई। बीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध तो अधिक ह्रास वाला नही कहा जा सकता। संख्या मे साधुता मे पूर्वापेक्षा न्यूनता का श्रीगणेश हुआ, वह धीरे-धीरे पनप रहा था। बीसवी शताब्दी का उतरार्द्ध एक तरह से इस सम्प्रदाय का ह्रासकाल कहा जा सकता है। डीडवाणे के मेले पर जहाँ अठारहवी-उन्नीसवी शताब्दी मे साधु कई सहस्रो की संख्या मे उपस्थित होते थे, वह संख्या प्रबल वेग से न्यून हो रही थी। बीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे यह संख्या घटते-घटते एक सहस्र के आसपास ही आ गई।

इस कमी के कई कारण माने जा सकते है। मुख्य कारण तो यही था कि धीरे-धीरे प्रशस्त साधुओ की कमी होती जा रही थी। जैसे त्यागी-वैरागी व भजनीक महात्मा पिछले काल मे अधिक संख्या मे सम्प्रदाय मे थे, अब वैसे महात्माओ की संख्या अत्यल्प हो गई थी। दूसरा हेतु, बीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे प्लेग, इनफ्लुएञ्जा आदि महामारियो का प्रकोप। इससे सैकडो ही साधुओ की सहसा न्यूनता हो गई। तीसरा, विचारधारा का परिवर्त्तन—लोगो मे नवीन विचारसरणी के संस्कार प्रवेश कर रहे थे। सामाजिक नेताओ का तथा राजनैतिक नेताओ का रुख साधुवर्ग के सर्वथा विपरीत था। वे जनसमुदाय के समक्ष बिना किसी सम्यक् जानकारी के विविध प्रकार के आक्षेपो का आरोप करते रहते थे। साधुवर्ग का जनसमाज मे महत्व होने के कारण अनेको जातियो ने नकली साधु बन जनता को ठगने का सिलसिला जारी कर दिया। चोर, उचक्के, खूनी व्यक्ति अपने अपराध को छिपाने के लिए साधु का वेष बना पुलिस को धोखा देने लगे। इस तरह विविध प्रकार के कारण मिलकर न केवल निरञ्जनी सम्प्रदाय का ही; अपितु अशेष साधुवर्ग का ह्रास करने लगे। जिन साधु-समाजो मे संख्या लाखो तक थी, उनका ह्रास होते हुए भी वह वैसा प्रतीत नही हो सकता था, जैसे सन्यासी वैष्णव सन्त-समाज। जिनकी संख्या सहस्रो तक ही थी, उनका ह्रास अत्यधिक प्रतीत होने लगा। वह क्रम अब भी जारी है। अब साधु बनने की प्रवृत्ति तो बहुत ही न्यून है, जो बने हुए है उनका ह्रास दिन-दिन होना अवश्यम्भावी है।

जब निरञ्जनी सम्प्रदाय अपनी वृद्धि तथा महत्व मे अच्छी स्थिति मे था, तब इसका व्यावहारिक सौकर्य के विचार से सात मण्डलो मे विभाजन किया गया था।

उनकी संज्ञाएँ निम्न थी—१-डीडवाणा मण्डल, २-शेखावाटी मण्डल दो, ३-मेड़ता मण्डल, ४-बीकानेर मण्डल, ५-नागौर मण्डल और ६-जोधपुर मण्डल । आज भी ये मण्डल तो उसी रूप मे है पर अब इन मण्डलों के साधुओ की संख्या जहाँ सहस्रो थी, वहाँ सैंकडो और जहाँ सैंकडो थी वहाँ अब कुछ इकाइयो मे रह गई है। इस तरह आरम्भ, मध्य तथा उत्तरकाल का रूप हमारे सामने है। सम्भव है जो स्थिति आज है, तदनुसार इक्कीसवी शताब्दी के अन्त तक निरञ्जनी सम्प्रदाय का अस्तित्व नगण्य सा ही रहेगा—ऐसा अनुमान करना असङ्गत नही है।

१०. निरञ्जनी सन्तों की हिन्दी साहित्य को देन—

हिन्दी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने वाले सज्जनो से यह छिपा नही है कि हिन्दी की प्रारम्भिक रचनाएँ प्राकृत के अपभ्रंश भाषावर्ग मे प्रारम्भ हुई थी। मेरा जहाँ तक ध्यान है–महात्माओ द्वारा भाषा मे अपने विचारो को व्यक्त करने का आरम्भ नाथ-सम्प्रदाय से आरम्भ हुआ है। राजस्थान मे अभी तक प्राचीन साहित्य के अन्वेषण का कार्य जिस तत्परता मे होना आवश्यक है, उस तरह से होना आरम्भ नही हुआ है। सन्त-साहित्य की ओर तो और भी कम से कम ध्यान दिया जाता है। इस स्थिति का सामान्य दिग्दर्शन मै भूमिका के पूर्व खण्ड मे कर आया हूँ।

राजस्थान मे सोलहवी शताब्दी से उन्नीसवी शताब्दी तक के काल मे कई साधु-सम्प्रदायो का जन्म हुआ है। निर्गुण भक्ति-उपासना का आरम्भ जब से हुआ, तब से नाथो, योगियो तथा कबीर, नानक, हरिदास, दादू, हरिरामदास, रामचरण, दरियाव, रामदास आदि महात्माओ ने इस धारा को अपने-अपने अनुभव रूपी स्नेह-सलिल से सिंचित कर इसका राजस्थान मे पर्याप्त पोषण किया। निर्गुण भक्ति मे मन्दिर, छुआछूत, शैव, वैष्णव, शाक्त, तान्त्रिक आदि के आपसी विवाद को कोई स्थान नही है। उस परब्रह्म परमेश्वर को जिस किसी नाम से चिन्तन करना मात्र इस भक्ति का ध्येय रहता है। जिस समाज मे उपासना की एक-रसता नही रहती, वह समाज एक रूप से संगठित नही रहता—जब समाज का सगठित एक रूप नहीं रहता तो वह न तो अपने धर्म की सुरक्षा कर सकता, न अपने देश की स्वतन्त्रता को सुरक्षित रख सकता। उपासना की विविधता समाज को विविध वर्गों मे बाँटकर उनमे नीच-ऊँच, छुआछूत आदि की कलुषित भावनाएँ उत्पन्न कर देती है। सगुणोपासना मे इसीलिए विविध वर्गो का रूप सामने आता है। महात्माओ ने, सिद्ध-योगियो ने इसी दोष को ध्यान मे रख उस अचिन्त्य शक्ति को निर्गुण रूप मे स्मरण करने पर ही अपना सारा प्रभाव लगाया। यह बात उनने अपनी ओर से की हो ऐसा नही है। अपने यहाँ तो अनन्त काल से परमेश्वर को निर्गुण, अरूप, निर्धर्म निर्देश करते ही आए है। वेद-उपनिषदो ने इसका अत्युत्तम निरूपण किया है। उत्तर-मीमांसा

दर्शन तो इसी के निरूपण मे बना है। "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" सूत्र मे उपलक्षित ब्रह्म क्या है ? वह अशेष ब्रह्माण्ड मे व्यापक अचिन्त्य-चेतनसत्ता ही निर्गुण ब्रह्म है। महात्माओ ने इसी ब्रह्म को अपनी उपासना का लक्ष्य बनाया। निरजनी सम्प्रदाय की तो संज्ञा ही इस अर्थ को स्पष्टत: व्यक्त करती है, क्योकि विशुद्ध ब्रह्म का ही अपर-पर्याय निरञ्जन शब्द है। सब प्रकार के प्रकारो का नाम ही अंजन या माया है। उससे रहित आत्मशक्ति का नाम निरञ्जन है। उस निरंजन की उपासना करने के कारण ही इस सम्प्रदाय की संज्ञा निरंजनी हुई है।

निरञ्जनी सम्प्रदाय के महात्माओ की अब तक जितनी भी रचनाएँ प्राप्त हुई है, वे सब हिन्दी भाषा मे ही है। केवल दो स्तोत्र ही अब तक की रचना मे ऐसे सामने आए है जो संस्कृत मे है—एक है डीडवाणा निवासी पडित रामचन्द्रजी गुजराती कृत तथा दूसरा स्तोत्र है किसी कालिदास कवि कृत। रचनाकारो मे सब संस्कृत से अनभिज्ञ थे—ऐसा नही है। कई महात्मा सस्कृत के अच्छे विद्वान् होते हुए भी उनने रचना हिन्दी मे की। प्राप्त रचनाकारो का काल सोलहवी शताब्दी से बीसवी शताब्दी तक का है। रचनाकारो की रचना का संक्षिप्त परिचय दो रूपो से दिया जा सकता है—पहिला कालक्रम से व दूसरा विषयक्रम से।

मेरी समझ से कालक्रम की अपेक्षा विषयक्रम अधिक उपयुक्त है। अत· तदनुसार संक्षेप मे उसका विवरण उपस्थित किया जाता है—

विषयक्रम से अब तक प्राप्त साहित्य के तीन वर्ग किये जा सकते है, जैसे—१—वाणियाँ, २—अनुवाद और ३—स्वतन्त्र रचनाएँ। सन्त-साहित्य मे वाणियो का प्रथम स्थान है, उस रचना मे रचयिता महात्मा के अनुभव की प्रतिच्छाया स्पष्ट सामने आती है। वाणी-रचना मे प्रमुखत· दो विभाग रहते है-साखी भाग, पदभाग। साखी भाग मे प्रकरणानुसार विषय-निरूपण किया जाता है, जैसे—गुरुदेव का अंग, गुरुमहिमा का अंग, स्मरण का अंग, साधु का अंग, माया का अग व काल का अंग। अंग शब्द प्रकरण-निर्देशक है। स्मरण, साच, काल, माया आदि विषय-निर्देशक शब्द हैं। अनेको महात्मा वाणियो मे कुछ ग्रन्थ विशेष भी लिखते है। कवित्त, झूलना, सवैया, छप्पय, पवगम आदि कई छन्दो मे भी रचनाएँ मिलती है। पद भाग मे राग-विशेष मे पद-रचना होती है।

आत्मतत्वानुसन्धानकर्त्ता साधक-महात्माओ मे अधिकाश ने वाणियाँ ही लिखी हैं और वे ही महात्माओ की रचना मे उत्कृष्ट स्थान रखती है। दूसरे वर्ग मे अनुवाद के ग्रन्थ है, जो या तो किसी पुराण-गाथा से सम्बन्धित है या फिर किसी आध्यात्मिक विषय की रचना का अनुवाद है। स्वतन्त्र रचनाओ मे विविध विषयो का समावेश है पर वे है—या तो सन्त परिचय ज्ञापक या नैतिक आध्यात्मिक विषय का निरूपण

करने वाली। उपर्युक्त तीनो विषयो से सम्बन्धित रचनाओ का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है—

१. विषय—वाणियाँ

निर्गुणपरा भक्ति वाले उपासक आत्मनिष्ठ महात्माओ ने अपनी रचनाए वाणी रूप मे की है। उनका एक ही लक्ष्य था—स्वस्वरूप का परिचय। अतः उनने अपने साधना-सिद्ध जो भी विचार व्यक्त किये, वे वाणी संज्ञा से ही प्रचलित है। निरञ्जनी सम्प्रदाय के जिन-जिन महात्माओ ने वाणियाँ लिखी, उनका प्रारम्भ महाराज हरिदासजी की वाणी से होता है।

हरिदासजी महाराज की वाणी—

महाराज हरिदासजी की वाणी का परिचय इसी भूमिका के खण्ड मे सम्यक् आ चुका है, अत. उस पर विशेष लिखने की आवश्यकता नही। महाराज की वाणी का रचनाकाल सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। जैसा कि पीछे व्यक्त किया जा चुका है।

तुरसीदासजी की वाणी—

महाराज तुरसीदासजी हरिदासजी महाराज के समसामयिक थे। भक्तमाल-कार राघोदासजी ने जिन द्वादश निरञ्जनी महापुरुषो का अपनी भक्तमाल मे निरूपण किया है, उन्ही मे एक तुरसीदासजी है। ये शेरपुर मे रहते थे-ऐसा व्यक्त किया गया है। तुरसीदासजी क्या हरिदासजी के शिष्य थे या निरजन की उपासना करने के कारण निरञ्जनी कहलाये। इस पर यहाँ अधिक विचार सम्भव नही। भाऊदासजी की रचना "गुदडी" मे तो उनने जगजीवनजी, श्यामदासजी, तुरसीदासजी आदि को महाराज हरिदासजी के ही शिष्य कहे है। वे कहते है—

कानड़ मोहन षेम हजूरी, आनदास पूर्ण मत पूरी॥
श्याम सांकड़े ध्यान लगाया, जगजीवण तुरसी तत पाया॥

× × ×

महरवान मन की गति जाणी, बावन शिष्य भये परमाणी॥
जन भाऊदास के सीस विराजै, यह सब सन्त निरंजनी॥

उपर्युक्त पद्य स्पष्ट है। फिर भी तुरसीदासजी की रचना मे गुरुरूप में हरिदासजी का उल्लेख न मिलने से यह तर्क उठता है कि वे गुरु थे; तो उनका उल्लेख आवश्यक था। तर्क असंगत नहीं-उनने गुरुरूप में कबीरजी का उल्लेख भी किया है।

अत: इस प्रसंग पर तुरसीदासजी की वाणी के उद्धरणो का निरूपण होगा, वही कुछ विवेचन संगत रहेगा। निरञ्जनी सम्प्रदाय की पंच-वाणियो मे तुरसीदासजी की वाणी को स्थान दिया गया है, साथ ही इनकी वाणी मिलती भी निरंजनी सम्प्रदाय में है। इनका रचनाकाल महाराज हरिदासजी के समसामयिक होने से सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध ही कहा जा सकता है। इनकी वाणी के अन्य वाणियो की तरह ही दो भाग है। साखी भाग मे दो सौ प्रकरणों मे चार हजार दो सौ दो साखियाँ कही गई है। चार लघुग्रन्थ है, उँन्तीस रागनियो मे चार सौ इकतालीस पद कहे गए हैं। कुल रचना अनुष्टुप् श्लोक या दोहे के रूप मे छः हजार व इससे कुछ ऊपर हो सकती है। इनकी वाणी मे योग तथा वेदान्त के विषयो का विस्तार से विवरण है। भाषा भी एकान्तत. ग्रामभाषा नही है।

जगजीवनजी, मोहनदासजी, ध्यानदासजी, कल्याणदासजी, सेवादासजी, नरीदासजी, आत्मारामजी, रूपदासजी की भी वाणियाँ प्राप्त है। इनमे से कल्याणदासजी, सेवादासजी, मोहनदासजी की वाणियाँ प्राप्त हैं। वे साखी-पद भाग से युक्त है। कल्याणदासजी व मोहनदासजी महाराज हरिदासजी के शिष्य थे—ऐसा विदित होता है। मोहनदासजी द्वादश निरञ्जनी महापुरुषो मे है। सेवादासजी हरिपुरुषजी महाराज की छठी पीढी में दयालदासजी महाराज के शिष्य थे। विस्तार के विचार से इनकी वाणी भी तुरसीदासजी की वाणी से भी कुछ बडी है, जैसा कि विभिन्न रचनाओ से स्पष्ट है। साखी भाग मे अंग ५७, साखी ३५६१ है। ग्रन्थ संख्या दस है। कुण्डलियाँ अंग ३४, संख्या तीन सौ निन्नानवे है। छप्पय बीस, सवैये चार, चान्द्रायण अंग बारह, संख्या एक सौ चोतीस है। रेखते अंग नौ, सख्या चवालीस। पद भाग राग इक्कीस, पद चार सौ दो है। इस प्रकार सम्पूर्ण रचना का जोड़ दोहे-छन्द से आठ हजार से ऊपर जाता है। इनका जन्मकाल सम्वत् सोलह सौ सतानवे व अवसानकाल सत्रह सौ अठानवे है। अत. रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध मानना चाहिए। सेवादासजी महाराज की रचना सुन्दर है।

मोहनदासजी व कल्याणदासजी की वाणियाँ पूरी प्राप्त नही है। जितना अंश देखने मे आया है उसी से सिद्ध होता है कि इनकी रचनाएँ और भी होनी चाहिएँ। इनका काल सोलहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध व सत्रहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध समझना चाहिए। क्योकि वे महाराज हरिदासजी के शिष्य होने के नाते उनके समक्ष रहे हैं। महाराज हरिदासजी का काल सम्वत् पन्द्रह सौ बारह से सोलह सौ तक का है। सम्वत् पन्द्रह सौ छप्पन तक वे गृहस्थ थे। सम्वत् पन्द्रह सौ छप्पन के अन्त मे उनने गृह-परित्याग कर नाथजी से दीक्षा ग्रहण की थी। अतः मोहनदासजी व कल्याणदासजी आदि का सम्बन्ध हरिदासजी महाराज से पन्द्रह सौ साठ-सत्तर के पश्चात् ही होना संगत है।

दोनों की प्राप्त रचनाओं मे साखी भाग–ग्रन्थ, चान्द्रायण तथा पद मिले है। कल्याणदासजी की रचना ग्राम जावले वाली वाणी मे पर्याप्त है। ग्राम कोलिये की बडी वाणी मे भी कल्याणदासजी की रचना प्राप्त है, पर वह जावले वाली पुस्तक से न्यून है। इनकी पूरी रचना दोनो वाणियो मे नही है। मोहनदासजी की रचना अगरचन्दजी नाहटा, बीकानेर के "अभय" पुस्तकालय मे एक गुटके मे है—अन्य कोई प्रति उपलब्ध नही है। प्राप्त प्रति मे जो रचना है, वह पूरी है—ऐसा प्रतीत नही होता।

जगजीवनजी व ध्यानदासजी भी महाराज हरिदासजी के समकालीन थे। द्वादश निरजनी महन्तो मे इनकी गणना है। निरजनी सम्प्रदाय की परम्परा से ये महाराज हरिदासजी के शिष्य थे। अत· इनका रचनाकाल भी सोलहवीं शती का उत्तरार्द्ध व सत्रहवीं का पूर्वार्द्ध मानना चाहिए। उक्त दोनो सन्तो की अब तक प्राप्त रचना अपूर्ण है। मेरे सग्रह की तीन-चार पुस्तको मे इनकी जो रचना उल्लिखित है, उसमे साखी-ग्रन्थ–पद भाग है। जगजीवनजी की प्राप्त रचना से ध्यानदासजी की रचना और भी न्यून है। जब तक पूरी रचना सामने नही आए–रचना की विभिन्नता व सख्या के विषय मे कुछ कहना संगत नहीं है।

नरीदासजी—

नरीदासजी महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे थे। इनकी रचना का संग्रह केवल फतेहपुर के बड़े अस्थल मे ही मिला है, और कही किसी पुस्तक मे अब तक देखने मे नहीं आया है। उक्त पुस्तक मे भी जो रचना इनकी है, वह अपूर्ण है। रचना का आरम्भ पदो से है। उन्नीस राग-रागनियो मे ग्यारह सौ बानवे पद है। उन्नीसवी रागनी मे मारू के पद अट्ठावन अङ्कित है। साखी, ग्रन्थ, चान्द्रायण, रेखता, कवित्त, सवैये आदि भी इनने रचे या नही—यह नही कहा जा सकता। पदों की रचना सरस है। काल इनका सत्रहवी शताब्दी का मध्यकाल समझना चाहिए।

आत्मारामजी—

महाराज आत्मारामजी सिद्ध पुरुष थे। इनकी रचना से ध्वनित होता है कि ये सुशिक्षित भी थे। महाराज विजयसिहजी इनमे अत्यन्त श्रद्धा रखते थे। उनने अपने जोधपुर राज्य के नागौर आदि सभी किलो मे इनकी छतरियाँ बनवाई थी। इनका देहावसान सम्वत् अठारह सौ पन्द्रह-सोलह मे हुआ था। इनकी रचना भडारी जयरामदासजी, डीडवाणे की एक प्रति मे उपलब्ध है। कुछ रचना बाड़े के महन्तजी के संग्रह की एक प्रति मे भी है, पर पूरी रचना किसी मे भी नही है। प्राप्त रचना में इनके कुण्डलियाँ, सवैये, चान्द्रायण तथा पद उपलब्ध है। साखी भाग नहीं जैसा है। कुण्डलियों मे ही कही-कही साखियाँ आई है। इनकी रचना में नीति का

निरूपण सुन्दर है। मारवाडी भाषा के शब्दप्रयोग भी पर्याप्त हुए है। ये महाराज हरिदासजी के किस शिष्य की परम्परा मे थे—यह विदित नही है। इनका रचना-काल अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध सिद्ध है, क्योकि उन्नीसवी के प्रारम्भ मे तो ब्रह्मलीन हो गए थे।

रूपदासजी—

रूपदासजी की भी रचना वाणी के रूप मे प्राप्त है। रूपदासजी महाराज हरिदासजी की आठवी पीढ़ी मे हुए है। इनकी जो रचना प्राप्त है, वह पूरी है या नही—यह सशयास्पद है। रूपदासजी की परम्परा का स्थान बालोतरे मे है। सन्त जानकीदासजी, जिनने महाराज हरिदासजी का पद्यमय जीवन-चरित्र लिखा है, इन्ही की परम्परा मे है। रूपदासजी की रचना ग्राम लाघडिया स्थान की एक प्रति मे प्राप्त है। उसमे उनकी ५३५ साखियाँ, कुण्डलियाँ एक सौ पैतीस, चान्द्रायण तेईस, सवैये चौदह, रेखते उन्तीस तथा पद उन्यासी है। उक्त प्रति मे रूपदासजी की रचना के अन्त मे फुटकर वाणी सम्पूर्ण इस उल्लेख से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनकी उक्त प्रति मे उल्लिखित रचना पूरी नही है। रूपदासजी सुशिक्षित थे, साथ ही साधक-सन्त थे। उनने सेवादासजी की परचई भी पद्य मे लिखी है। उनकी रचनाओ का अनेकों पुस्तको मे उल्लेख मिलता है। रचना का क्रम सङ्गत है। काल इनकी रचना का अठारहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। क्योकि इनने सेवादासजी की परचई के अन्त मे सम्वत् अठारह सौ तीस मे उसकी पूर्त्ति का उल्लेख किया है।

इस तरह उपर्युक्त महाराज हरिदासजी सहित दस निरजनी सन्तो की वाणियाँ प्राप्त है। यहाँ इनका सामान्य परिचयमात्र दिया है। इनका विवेचन प्रसङ्गानुसार किया जायगा।

२. अनुवाद-रचनाएँ—

वाणियो की रचना के पश्चात् दूसरा वर्ग अनुवाद-रचनाओ का है। इस वर्ग में अधिक रचनाएँ नही है। अब तक जो साहित्य देखने मे आया है, उसमे तीन ग्रन्थ अनूदित सामने आए है—१-अध्यात्मरामायण, २-वैराग्यवृन्द और ३-कार्तिक-माहात्म्य। तीनो पुस्तको के रचनाकार स्वामी भगवानदासजी निरञ्जनी हैं। ये सुशिक्षित तथा साधक महात्मा थे। इनकी रचनाओ से प्रतीत होता है कि ये संस्कृत के भी अच्छे ज्ञाता थे। कारण, जिन तीन पुस्तको का इनने पद्यानुवाद किया है, वे तीनो ही मूलत· सस्कृत-साहित्य की पुस्तके है। अध्यात्मरामायण प्रमुखतया वेदान्त-विषय का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है। इसका पद्यानुवाद जैसा किया गया है, उससे सिद्ध हो जाता है कि अनुवादक उक्त विषय का सम्यक् ज्ञाता है; साथ ही

भावाभिव्यक्ति मे कुशल है। 'वैराग्यवृन्द' यह 'भर्तृहरि-शतक' का पद्यानुवाद है। भर्तृहरि-शतक की रचना संस्कृत वाङ्मय मे अपना विशेष स्थान रखती है। उसका पद्यानुवाद साधारण शिक्षित व्यक्ति से होना सम्भव नही। सस्कृत-श्लोक के पूरे भाव को हिन्दी पद्य मे ले आना कुशल रचनाकार का हो काम है। वैराग्यवृन्द का पद्यानुवाद व्यक्त करता हैं कि उसका रचनाकार विज्ञ तथा भावाभिव्यक्ति मे कुशल है। भर्तृहरि का प्रथम पद्य व उसका अनुवाद देखिए—

दिक्कालाद्यनवछिन्नानंतचिन्मात्रमूर्त्तये ॥
स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

अनुवाद-कवित्त—देस काल भेद नाँहि वस्तु सो प्रछेद कांही
मनहर अनंत सरूप आं ही चिदानन्द रूप है।
आप ही को आपु जानैं आप अनुभो प्रमानै
जैसे मणि जोति नामै निर्मल अनूप है ॥
तेज हूं ते तेजरूपी शीतल सदा अनूप
व्यापक विविध भूत महाराज भूप है।
कर ले नमसकार भगवान उर धार
नीकै कै निहार सो तो तेरो ही सरूप है ॥१॥

संस्कृत-श्लोक के निहित भाव का हिन्दी पद्य में स्पष्टीकरण कर दिया गया है। रचना मे उचित प्रवाहमय भाव-व्यञ्जना का सम्यक् विकास है। तीनो शतकों का यह पद्यानुवाद अभी प्राचीन संग्रह की ही विभूति है। इसके प्रकाशन की तो बात ही क्या कही जाय ? शायद इस रचना का अभी तो साहित्यकारों को परिचय ही नहीं है। रचनाकाल सम्वत् सत्रह सौ तीस है। कार्त्तिक-माहात्म्य भी इसी तरह हिन्दी पद्यो मे अनूदित किया गया है। उसका रचनाकाल सम्वत् सत्रह सौ बयालीस है। अध्यात्मरामायण का काल इसके बाद का है। अनुवाद-वर्ग मे ये ही तीन रचनाएँ दृष्टिगत हुई है। तीनो के रचयिता एक ही है—स्वामी भगवानदासजी निरञ्जनी। इनकी अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ भी है।

३. वर्ग तृतीय—विभिन्न विषयों की रचनाएँ

उपर्युक्त दो विषयों मे ग्यारह रचनाकारों के नाम आए है; शेष सोलह रचनाकार ऐसे है, जिन्होने स्वतन्त्र रचनाएँ की है। अब तक के अन्वेषण से इन सत्ताईस महात्माओ की रचनाकार के रूप मे जानकारी मिली है। ग्यारह महात्माओं

की रचना का संक्षिप्त विवरण ऊपर आ गया है, शेष का विवरण आगे दिया जा रहा है। कालक्रम से इनके नाम इस तरह आते है—

१–खेमजी, २–भगवानदासजी, ३–मनोहरदासजी, ४–रामजीदासजी, ५–लालदासजी, ६–हरिरामदासजी, ७–सन्तदासजी, ८–अमरपुरुषजी, ९–जगरामदासजी, १०–चतुर्भुजदासजी, ११–रूपदासजी, १२–रघुनाथदासजी, १३–प्यारेरामजी, १४–रतनदासजी, १५–भाऊदासजी, १६–उदयरामजी, १७–पूर्णदासजी और १८–जानकीदासजी। भगवानदासजी व रूपदासजी के नाम वाणी, रचना व अनुवाद विषय मे आए हुए है। दुबारा नाम इसलिए आए कि इनकी अन्य स्वतन्त्र रचनाएँ भी है।

उक्त सोलह सन्तों की रचना मे सामान्य-विशेष सभी तरह की रचनाएँ हैं। उक्त वर्ग मे पहिला नाम खेमजी का है, जो कि महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे है। खेमजी की रचनाएँ—१–चिन्तामणि, २–वैराग लच्छी ग्रन्थ तथा पद मिले है। इनकी और भी रचना है या नही—यह निश्चय से नही कहा जा सकता।

भगवानदासजी रचित अमृतधारा, विचारमाला, अनभै हुलास–ये तीन ग्रन्थ और प्राप्त हैं। तीनों ही मे वेदान्त के विषय का निरूपण है। मेरी समझ से भाषा-साहित्य मे वेदान्त विषयक-निरूपण का यह अन्यतम प्रयास था।

भगवानदासजी के समकालीन ही मनोहरदासजी हुए है। ये भी शिक्षित व्यक्ति थे। इनके दो ग्रन्थ प्राप्त हुए है—१–षट् प्रश्नोत्तरी, २–सप्त-भूमिका।+षट्-प्रश्नोत्तरी गद्य-पद्यात्मक है—विषय वेदान्त है। सप्तभूमिका मे साधना के अंग है। इनकी रचना और भी होनी चाहिए। खेमजी का काल सत्रहवी शताब्दी तथा भगवानदासजी व मनोहरदासजी का रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। रामजीदासजी की रचना बहुत कम प्राप्त है। ये महाराज हरिदासजी के शिष्य या साथी मोहनदासजी के शिष्य थे। कुछ सवैया पद ही इनके प्राप्त है। लालदासजी की एक चितावणी प्राप्त है, और रचना होना संदिग्ध है। हरिरामदासजी सुशिक्षित तथा साधक सन्त थे। वे साहित्य तथा छन्दशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उनने छन्दशास्त्र से सम्बन्धित "छन्द रत्नावली" पद्यमय निर्मित की। दूसरा ग्रन्थ उनका "परमार्थ-पंच-सतसई" है। यह परमार्थ सम्बन्धी यानी नैतिकता के जीवन से सम्बन्धित विषयो पर अच्छा प्रकाश डालती है। और भी इनकी फुटकर रचनाएँ है। काल इनका अठारहवी शताब्दी है। इनकी 'परमार्थ पचसतसई' प्रकाशित होने तथा जनसमुदाय के हाथ मे जाने जैसी है। सन्तदासजी का एक अष्टकमात्र प्राप्त है। अमरपुरुषजी सेवादासजी के शिष्य थे। इनके मात्र ९ पद प्राप्त है। जगरामदासजी व चतुर्भुजदासजी ये आत्मारामजी के शिष्य थे। इनकी भी फुटकर रचनाएँ है। रूपदासजी की

+ इनके चार ग्रन्थ और मिले है।

वाणी से भिन्न सेवादासजी की परचई और है। रघुनाथदासजी ने हरिदासजी महाराज की परचई रची है। इनके फुटकर पद भी हैं। प्यारेरामजी ने भक्तमाल की रचना की है। रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। रतनदासजी की होलियाँ तथा धमाल व भाऊदासजी की गुदडी प्राप्त है। उदयरामजी की रचना "सारसंग्रह" है। यह निरञ्जनी सम्प्रदाय के महात्माओ की वाणियो का एक तरह से संग्रह है। प्रमुखतया हरिदासजी, तुरसीदासजी और सेवादासजी के एक विषयात्मक वचनो का अंगानुक्रम से संग्रह है। रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दी का अन्त व बीसवी का प्रारंभ काल है। पूर्णदासजी व जानकीदासजी ने हरिदासजी महाराज का जीवन-चरित्र लिखा है। काल पूर्णदासजी का बीसवी शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। जानकीदासजी का उत्तरार्द्ध है। इस तरह अब तक प्रकाश मे सत्ताईस महात्माओ की रचनाओ का यह संक्षिप्त परिचय है। सब रचनाएँ हिन्दी भाषा मे है। विषय-विचार व स्वानुभव के अनुसार इनका कितना महत्व है—यह उन सज्जनो से छिपा नही है, जिनने सन्त-साहित्य का कुछ रसास्वादन किया है। इन सन्तो की हिन्दी-साहित्य को यह महत्व-मय देन अनुपम है। हिन्दीसेवियो ने हिन्दी-साहित्य के रीति, भक्ति, काव्य, छन्द, नाटक, कथा-कहानी, उपन्यास, इतिहास आदि विषयो पर जितना ध्यान दिया है, वहाँ सन्त-साहित्य की एक तरह से उपेक्षा-सी की गई है। कुछ साहित्य-सेवियो ने इधर ध्यान दिया है। उनकी तरह और भी साहित्य-प्रेमियो को राजस्थान के इन सन्तों की हिन्दी-साहित्यसेवा का मूल्याङ्कन करना चाहिए, अन्यथा यह अलभ्य साहित्य धीरे-धीरे क्षीण होता हुआ प्रलुप्त न हो जाय। इस खतरे को न होने देना—यह राज्य तथा साहित्य-सम्पत्ति की रक्षानिमित्त बनी संस्थाओ का प्रमुख कर्त्तव्य है। आशा है वे राजस्थान मे उपेक्षित सन्त-साहित्य की अब और उपेक्षा नही करेगे।

११. उपसंहार—

महाराज हरिदासजी की जीवनी तथा निरञ्जनी सम्प्रदाय का परिचयात्मक विवरण उपर्युक्त दो भागो मे समाप्त हुआ है। हरिदासजी महाराज के परिचय मे आए विवरण के कुछ अंश सम्प्रदाय-परिचय मे पुन: आये ह। विषय के स्पष्टीकरण के विचार से ही ऐसा किया गया है। उक्त दोनो विवरण लिखे गए है—उनमे इस बात का ध्यान रखा गया है कि केवल अपनी कल्पना के आधार पर किसी तथ्य को आधारित न किया जाय। प्रमाण व युक्तियुक्त विवेचन मे जिसका औचित्य प्रतीत हो, उसी को मान्यता दी जाय। काल को छोडकर अन्य सब विषय मेरी समझ से निर्भ्रान्त है। काल के बारे मे मतभेद हो सकता है, पर जिस मत को गृहीत किया गया है वह साधार है। आधारो की प्रामाणिकता को तब तक चुनौती नहीं दी जा सकती, जब तक उसके विपरीत वैसे ही आधार प्रमाण सहित न हो।

महाराज की वाणी की रचना का विशद विवेचन इसलिए नही किया गया है कि वाणी सम्पूर्ण दी जा रही है। वाणी का स्वाध्याय करते समय यह ध्यान मे

रखना आवश्यक है कि यह कोई काव्य-ग्रन्थ नही है—यह महात्माओ की सहज वाणी से निकली उनके अनुभव की प्रतिध्वनि है। हरिदासजी की गणना साहित्यकारो मे नही है; उनकी गणना है आत्मानुभूति करने वाले वीतराग-साधको मे। अत उनकी रचना मे भाषा, छन्द, भाव, अलङ्कारादि साहित्यिक अङ्गो के परिपुष्ट रूप देखने की भावना न रख यह, देखना है कि उनने जिन तथ्यो का निरूपण किया है वे तथ्य उनके जीवन मे कहाँ तक व्यवहृत हुए। इसीसे उनकी प्रामाणिकता व अनुभूति को आँकना है। तभी हम उनके विषय मे तथ्य के अधिक समीप पहुच सकेगे।

प्रत्येक व्यक्ति का सोचने-विचारने का अपना तरीका होता है। अतः एक व्यक्ति का विचार सर्वमान्य नही माना जाता। भारतीय सस्कृति मे इसीलिए आर्ष-वाक्य ही प्रमाण माने जाने का निर्देश है। आर्ष वे व्यक्ति है, जिनका जीवन सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त हो गया है—विश्व उनका कुटुम्ब है, विश्व का कल्याण ही उनका लक्ष्य है। अपने लिए जिनको किसी भी प्रकार की इच्छा नही है। राग और द्वेष रूपी कल्मष का कोई किञ्चित् अंश शेष नही है। ऐसे महापुरुष ऋषिपुङ्गवो के वाक्य निर्भ्रान्त कहे जा सकते है।

मेरी विचाराभिव्यक्ति मेरी समझ के अनुसार है। अतः यह प्रामाणिक समझी जाय—ऐसी मेरी भावना नही है। सम्भव है मेरे कथोपकथनो मे कही सदोपता हो, तदर्थ ज्ञात होने पर उसका परिशोध करना मै अपना कर्त्तव्य मानता हूँ। हरिदासजी महाराज के जीवनवृत्त व निरञ्जनी सम्प्रदाय का परिचयात्मक यह विवेचन कैसा है? यह सन्तप्रेमी साहित्यिको की भावना पर निर्भर है।

भाद्रपद शुक्ला १० सम्वत् २०१८
ता० २०-९-१९६१ सन्
(दादू महाविद्यालय, जयपुर।)

मङ्गलदास स्वामी

परिशिष्ट

॥ निरंजनी सम्प्रदाय का प्राप्त साहित्य ॥
लेखकों के नाम व उनकी रचनाएं

संख्या	रचयिता का नाम	रचनाएँ	काल	मुद्रित-अमुद्रित	विशेष
१	श्रीमान् महात्मा हरिदासजी (हरिपुरुषजी)	वाणी (साषी, कुण्डलिया पद भाग) लघुग्रन्थ संख्या ४६	सोलहवी का अंतिम चरण	मुद्रित प्रथम संस्करण	मंदिर कुञ्जविहारीजी जोधपुर के महात्मा देवादासजी द्वारा सम्वत् १९८८ मे जोधपुर से प्रकाशित ।
२	,, स्वामी तुरसीदासजी	वाणी (साषी पद भाग) लघुग्रन्थ ४	सोलहवी का अन्त सत्रहवी का आरम्भ	अमुद्रित	गुसाई तुरसीदासजी द्वादश निरञ्जनी महात्माओ मे है। (इनका केन्द्रस्थान शेरपुर कहा गया है।)
३	,, स्वामी जगजीवणजी	लघु ग्रन्थ दो तथा पद प्राप्त है	,, ,,	अमुद्रित	इनकी और रचनाएँ भी होनी चाहिए, ये भी द्वादश मे है।
४	,, स्वामी ध्यानदासजी	लघु ग्रन्थ ३ तथा चान्द्रायण प्राप्त है	,, ,,	अमुद्रित	इनकी ये ही रचनाएँ है, ऐसा न मान और रचनाएँ मिलने की संभावना है। (द्वादशमे)
५	,, स्वामी मोहनदासजी	वाणी (साषी पद भाग प्राप्त है)	,, ,,	अमुद्रित	ये भी द्वादश निरञ्जनी महात्माओ मे है।
६	,, स्वामी षेमदासजी	इनका एक ग्रन्थ तथा कुछ पद मिले है, एक चितावणी है ।	सत्रहवी सदी	अमुद्रित	हरिदासजी महाराज के शिष्य द्वादश महन्तो मे भी ।
७	,, स्वामी नरीदासजी	इनकी प्राप्त रचना पद भाग १९ रागो मे प्राप्त है वह अपूर्ण है।	सत्रहवी का उत्तरार्द्ध	अमुद्रित	ये महाराज हरिदासजीके बावन शिष्योमे है फतेहपुर शेखावाटीमे इनका स्थान है।

८	,, स्वामी मनोहरदासजी	१. षट्प्रश्नोत्तरी, २. शतप्रश्नोत्तरी ३. ज्ञानमंजरी, ४. वेदान्त-परिभाषा ५. ज्ञानचूर्ण वचनिका, ६. सप्तभूमिका	अठारहवी का पूर्वार्द्ध	अमुद्रित	ये सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध काल के है, इनकी रचनाएँ प्रशस्त है। रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का पुर्वार्द्ध है।
९	,, स्वामी भगवानदासजी	१. अमृतधारा, २. वैराग्यवृन्द, ३ अध्यात्म रामायण, ४ कार्तिक-माहात्म्य।	,, ,,	मुद्रित अमुद्रित	इनका समय सतरहवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध व अठारहवी का पूर्वार्द्ध—सम्भव है इनकी रचना और मिले।
१०	,, स्वामी सेवादासजी	वाणी (साखी, पदभाग, कवित्त, चान्द्रायण) लघु ग्रन्थ संख्या १०।	अठारहवी सदी	अमुद्रित	ये खेमजी की पाँचवी पीढी मे हुए, इनका रचनाकाल अठारहवी सदी है। गुसाईं तुरसीदासजी के समान ही इनकी रचना है।
११	,, स्वामी आत्मारामजी	वाणी (कवित्त, कुण्डलिया, इन्दव आदि तथा पद।	,, ,,	अमुद्रित	अब तक की प्राप्त रचना पूरी नही है, इनकी और रचना है।
१२	,, कल्याणदासजी	वाणी (साखी पद भाग, लघु ग्रन्थ ग्यारह।	सत्रहवी-सदी	अमुद्रित	इनकी भी जो रचना मिली है, वह पूर्ण नही है। और भी रचना है। लेखनकाल १८२६।
१३	,, हरिरामदासजी	१ परमार्थ पंच सतसई, २. छन्द रत्नावली, ३. हरिदासजीको परचई ४. कुण्डलियां १४७।	अठारहवी सदी	छन्द रत्नावली मुद्रित है, शेष रचना अमुद्रित है	परमार्थ पञ्चसतसई की जो प्रति है, उसका लेखनकाल १८५२ है।
१४	,, रामजीदासजी	सवैया पद गुरुमहिमा के।	अठारहवी सदी	अमुद्रित	ये मोहनदासजी के शिष्य थे, इनकी और रचना अप्राप्त है।

संख्या	रचयिता का नाम	रचनाएँ	काल	मुद्रित-अमुद्रित	विशेष
१५ ,,	जगरामदासजी	गुरुवन्दना के छप्पय व पद	अठाहरवी सदी	अमुद्रित	ये महात्मा सिद्ध आत्मारामजी के शिष्य थे। सम्भव है इनकी और भी रचना हो।
१६ ,,	चतुर्भुजदासजी	गुरु-महिमा की साखिया	,, ,,	,,	,, ,, ,,
१७ ,,	अमरपुरुषजी महाराज	केवल कुछ पद	उन्नीसवी सदी	,,	ये महाराज सेवादासजी के शिष्य, सिद्ध व महान् महात्मा थे।
१८ ,,	रघुनाथदासजी	हरिदासजी महाराज की परचई	,, ,,	,,	ये महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे।
१९ ,,	रूपदासजी	१. वाणी (साखी, पद, चाद्रायणादि) २. सेवजी की परचई।	,, ,,	,,	ये भी महाराज अमरपुरुषजी के शिष्य थे, इनकी रचना पर्याप्त तथा प्रशस्त भी है।
२० ,,	प्यारेरामजी	भक्तमाल।	,, ,,	,,	ये अमरपुरुषजी के पोताशिष्य दर्शनदासजी के शिष्य थे।
२१ ,,	उदयरामजी	सारसंग्रह।	उन्नीसवी बीसवी सदी	अमुद्रित	इस ग्रन्थ मे हरिदासजी, सेवजी, तुरसी, कबीरजी आदि महात्माओ की रचना का संग्रह है।
२२ ,,	सन्तदासजी	अष्टक गुरुवन्दना मात्र।	,, ,,	,,	इनकी अन्य कोई रचना अब तक तो प्राप्त नही है।
२३ ,,	रतनदासजी	पद होलियाँ।	,, ,,	,,	इनकी होलियाँ तथा धमाले भी है।
२४ ,,	भाऊदासजी	गूदडी।	,, ,,	मुद्रित	इनकी अभी तक तो यही रचना प्राप्य है।
२५ ,,	कोमलदासजी	हरिपुरुषजी की परचई।	बीसवी सदी	अमुद्रित	छन्द, दोहे व चौपाइयो मे रचना है।
२६ ,,	पूणदासजी	,, ,, ,,	,, ,,	अमुद्रित	ये नवलगढ़ शेखावाटी के रहने वाले थे।

२७	,,	पं० रामचन्द्रशर्म्मा गुजराती	दयालुस्तोत्र (संस्कृत मे रचना)	बीसवी सदी	मुद्रित	ये डीडवाणे के ही निवासी थे। मुद्रण-काल १८४८।
२८	,,	आशारामजी दाधीच	दयालुपुरुषमहिमा।	,, ,,	,,	ये पंडित रामचन्द्रजी के शिष्य थे तथा डीडवाणे के ही निवासी थे।
२९	,,	कालीदासजी	दयालु अष्टक (संस्कृत मे)।	,, ,,	अमुद्रित	रचयिता का ठीक पता नही है।
३०	,,	स्वामी जानकीदासजी	श्री हरिपुरुष जीवन-चरित्र	,, ,,	मुद्रित	ये निरञ्जनी संत बालोतरा निवासी है। रचनाकाल १८६२।

॥ महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यों में से कुछ शिष्यों की परम्परा ॥

षेमजी की परम्परा

१ महाराज हरिदासजी
२ षेमजी बडा
३ चत्रदासजी
४ पोकरदासजी
५ दयालदासजी
६ सेवादासजी
७ अमरपुरुषजी
८ नारायणदासजी
९ दोनदासजी
१० जीवणदासजी
११ श्रीरामदासजी
१२ गोविन्दरामजी
१३ हनुमानदासजी
१४ बालमुकुन्दजी (वर्त्तमान)
डीडवाणा

शारंगदासजी की परम्परा

१ महाराज हरिदासजी
२ शारंगदासजी
३ जगजीवणजी
४ राघोदासजी
५ भूधरदासजी
६ चेतनदासजी
७ देवादासजी
८ जुगलदासजी
९ जानकीदासजी
१० अखैरामजी
११ चैनरामजी
१२ पीताम्बरदासजी
१३ केशोदासजी
१४ आशारामजी (वर्त्तमान)
नागौर

पींपाजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ पीपाजी
३ शीतलदासजी
४ ऊधोदासजी
५ गरीबदासजी
६ मानदासजी
७ जैरामदासजी
८ सन्तदासजी
९ हरिकिसनदासजी
१० श्यामदासजी
११ शीतलदासजी (२)
१२ नवलदासजी
१३ चतरदासजी
१४ हनुमानदासजी
१५ रामदासजी
१६ नृसिंहदासजी (वर्त्तमान)
नागौर

मोहनदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ मोहनदासजी महाराज
३ भगवानदासजी
४ वनमालीदासजी

५ पोकरदासजी नागा
६ प्रेमगौडजी
७ बालकिसनजी (लोटनजी)
८ जयरामदासजी
६ आत्मारामजी
१० अगमदासजी
११ भरतदासजी
१२ वल्लभदासजी
१३ चन्द्रदासजी
१४ पूर्णदासजी (वर्त्तमान)
डीडवाणा

*नरहरदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ नरहरदासजी
३ कल्याणदासजी
४ लिषमीदासजी
५ गङ्गादासजी
६ मनीरामजी

* यह विवरण भाट की बही के आधार पर है। संभव है नरहरदासजी व कल्याणदासजी के बीच दो पीढी के नाम नही आये है।

७ कल्याणदासजी
८ नारायणदासजी
६ आशानन्दजी
१० रामदासजी
११ परमेसजी
१२ भरतदासजी (बीकानेर)

नारायणदासजी की परम्परा

१ हरिदासजी महाराज
२ नारायणदासजी
३ हरीरामजी
४ रूपदासजी
५ सीतलदासजी
६ लक्ष्मणदासजी
७ गङ्गादासजी
८ नृसिहदासजी
६ मनशारामजी
१० वलरामदासजी
११ किसनदासजी
१२ आशारामजी
१३ पीताम्बरदासजी×

× इनके पश्चात् एक पीढी और हो गई है— (जोधपुर)

महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो मे से कइयो की परम्परा अभी तक चल रही है जैसा ऊपर व्यक्त किया है। महाराज के शिष्य नाथजी, परसरामजी, जगजीवणजी, नारायणदासजी, महरवानजी आदि की परम्पराएं भी विद्यमान है। इनकी प्रणालिया यथा वत् प्राप्त न होने से नही दी गई है।

हरिदासजी महाराज के कुछ शिष्यो की परम्परा का विशेष विस्तार हुआ, जैसे षेमजी, नाथजी, महरवानजी आदि। इनमे भी षेमजी की परम्परा अधिक विस्तृत हुई।

॥ निरञ्जनी सम्प्रदाय के कुछ महापुरुषों की नामावली ॥

१ महाराज हरिदासजी
२ षेमजी
३ नाथजी
४ जगजीवणजी
५ ध्यानदासजी
६ तुरसीदासजी
७ मोहनदासजी
८ जगन्नाथदासजी
९ श्यामदासजी
१० आनदासजी
११ कानडदासजी
१२ पूर्णदासजी
१३ कल्याणदासजी
१४ नरीदासजी
१५ पीपाजी
१६ नारायणदासजी
१७ परसरामजी
१८ शारंगदासजी
१९ महरवानजी
२० नारायणदासजी (नारनौल)
२१ मनोहरदासजी
२२ पोकरदासजी
२३ दयालदासजी
२४ सेवादासजी
२५ आत्मारामजी
२६ अमरपुरुषजी
२७ हरिरामदासजी
२८ रूपदासजी
२९ रामदासजी
३० बालकदासजी

विद्वान् साधक

१ मनोहरदासजी
२ भगवानदासजी
३ हरिरामदासजी
४ सेवादासजी
५ रूपदासजी
६ रमतारामजी महाराज
७ मगनीरामजी महाराज
८ मधुसूदनजी महाराज
९ महन्त हनुमानदासजी
१० पुरुषोत्तमदासजी
११ घनश्यामदासजी
१२ पं० मोतीरामजी
१३ पं० माधोदासजी
१४ पं० लक्ष्मणदासजी

योगी—साधक—भजनीक

१ नाथजी
२ तुरसीदासजी
३ सेवादासजो
४ अमरपुरुषजी
५ दरसणदासजी
६ मुनिजी महाराज
७ आत्मारामजी
८ नारायणदासजी
९ प्रेमदासजी
१० प्रह्लाददासजी
११ मनोहरदासजी
१२ राघोदासजी
१३ भक्तरामजी
१४ तुलसीदासजी
१५ रामाकिसनजी

॥ भाऊदासजी की गुदड़ी ॥
(हरिपुरुषजी के शिष्यों पर प्रकाश)

श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥
सतगुरु चरण रंज में धारूँ , गुरु गोरष का ग्यान विचारूँ ।
तीषे सिषर ध्यान हरि धारया, भर्म कर्म सब दूर निवारया ॥
कठिन साँकड़ा मौतज फन्दा , हरीदास जिन हरि का वन्दा ।
एक पलक में सब तज दीन्हा , काम क्रोध ममता मारणी ॥१॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

कठिन पन्थ सन्तों का मारग , सतगुरु शब्द सुनाया तारग ।
पाँवर जीव कील में केता , सतगुरु शरणै आया जेता ॥
सतगुरु शरण अभय पद पाया, ग्यान घटा अमृत झर लाया ।
नाम प्रताप ऐसो है भाई , आवा जू गमन निवारणी ॥२॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

कनक कामणी नदियाँ भारी , जा में वह गये सब नर नारी ।
उनको तिरकर जो कोई भागा , केवल नाम निरंतर लागा ॥
मोह द्रोह माया मद लूटे , सतगुरु शरणाँ आये छूटे ।
कठिन पन्थ सन्तों का मारग , खाँडे की धार दुधारणी ॥३॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

धन्य भूमि वह सन्त विराजे , नगर डीडपुर शोभा राजे ।
जाके दर्शन जो कोई आवे , मनवांछित मुक्ति फल पावे ॥
वेर वेर दर्सन वलिहारी , सन्त शिरोमणि मंडली भारी ।
दर्सन सेती सब दुख नासै , गूदड़िया सन्त उधारणी ॥४॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

फागण सुद छठ का मेला, त्यागी तपसी होवे भेला।
शीतल कोमल पर उपकारी, भजन भूमिका लागै प्यारी ॥
ऐसे सन्त बड़े अवधूता, बाना तो विरकत गुदड़ी धारणी ॥५॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥
रामानन्द के दास कबीरा, नामदेव भक्तन में शूरा।
कलियुग में नीसान बजाया, निराकार का पन्थ चलाया ॥
निर्गुण भक्ति करी कलियुग में, युग युग में भक्ति वधारणी ॥६॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥
कानड़ मोहन खेम हजूरी, आनदास पूर्ण मत पूरी।
श्याम साँकड़ै ध्यान लगाया, जगजीवण तुरसी तत पाया ॥
नाथ ध्यानजी है अवधूता, जगन्नाथ केवल पद पहुँता।
जिनकी पदरज जे कोई धारे, जन्म जन्म अघ जारणी ॥७॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥
नरीदास जन नरहरि दूजा, दास नारायण पींपा सूँवा।
परसराम शारंग मतवाला, जन मनोहर पोकर काला ॥
महरवान मन की गति जांणी, बावन शिष्य भये परवाणी।
जन भाऊदास के सीस विराजै, यह सब सन्त निरंजणी ॥८॥
श्री हरिपुरुष महाराजा गुदड़ी तुमारी पातक जारणी ॥टेर॥

॥ सन्तदासजी कृत अष्टक ॥

धन्य धन्य स्वामी हरिदासजी दयालु पदवी हरि दई।
मरुधर अपावन भूमि ताको प्रगट पावन कर दई॥
आदि निरंजन पन्थ पकड्यो पाप ताप निकंदना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥१॥
ज्ञान गोरष मिले जब तें मूठ काठी कर गई।
कर भजन ले वैराग्यपूर्ण सुरति हरि में रम रही॥
काया कसणी देय भलि विधि जोग जुगति जानंदना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥२॥
पांच तत्व गुण रचित माया तहां मन नहिं लाइयो।
निर्गुण रमताराम व्यापक ब्रह्म उर मधि धाइयो॥
पवन परचै सदा अरचै भाव भक्ति चित चंदना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥३॥
जोति जगमग घूरे अनहद आतमा हरि पद छिवे।
पांच सखि भर देत प्याला हरिदास जन हरिरस पिवे॥
दत्त गोरख कबीर नामदेव छके सनक सनंदना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥४॥
निवृत्ति, ग्यान, विचार, शील संतोष भलि विधि धारियो।
प्रवृत्ति, मोह, अज्ञान, मत्सर काम क्रोध जु मारियो॥
देव निरंजन गादि दीन्ही पटा वगस्या अति घना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥५॥
जो जीव जगप्रवाह तें टल शरण तुमरी आइहैं।
करि भजन ले वैराग्य ग्यान विचार हरिपद पाइहैं॥
पांच कोटि जू जीव तुम संग काटिहै कर्म बंधना।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना॥६॥

जोबनेर में भक्त कपटी जहर पी समझाइयो ।
अजयमेरु में मस्त हस्ती चरण शीश नवाइयो ।।
नागौर प्रेत स सर्प टोडे सिंह को पलट्यो मना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ।।७।।
डीडपुर में डूँगरी ज्यूँ गागरी गिरि राखिहै ।
देवि को दीक्षा दई जन हरीदास हरि आप है ।।
विप्र पंगु पंथ चाल्यो शाहसुत आनंद घना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ।।८।।
वर्ष सौ पीछे जु तिन तें प्रगट सेवादासजी ।
करि भजन ले वैराग्यपूर्ण नाम दृढ़ विश्वासजी ।।
पंथ निरंजन प्रगट जग मैं सब ही सन्त सुलक्षणा ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रजपद वंदना ।।९।।
यह अष्टक स्वामी हरिदासजी को पढ़े सुने अरु गावही ।
जन्म जन्म के पाप नासे भक्ति मुक्ति फल पावही ।।
सन्तदास जू सदा सुखिया मिलै हरि आनंद घना ।
जन हरिदास ब्रह्मप्रकाश सतगुरु सन्त रज पद वंदना ।।१०।।

।। इति सन्तदासजी कृत अष्टक सम्पूर्ण ।।

श्री हरि पुरुष जी महाराज, डीडवाना

श्रीदयालवे नमः

महाराज श्री हरिदासजी की वाणी

ग्रन्थ-ब्रह्मस्तुति*

ग्यान न ध्यान अवीह अजाप, अरत अतत न माइ न बाप ॥
जगदीस अरीस निकंप निघात, हतोज हतोज विशंभर तात ॥१॥

अवीह=भयरहित। अरत=अरक्त। अतत=पञ्चतत्व नही। अरीस=क्रोधरहित। निकंप=स्थिर। निघात=कालादि चोटरहित। हतोज=ऐसा।

अमुरीद अपीर अहेत अहाथ, अदुष असुष निरंजन नाथ ॥
अहुंमेव न टेव असेव अदेव, अवात अघात असिंभ अभेव ॥२॥

अमुरीद=किसी का शिष्य नही। अपीर=गुरुरहित। अहेत=हेतहीन, ममता-रहित। निरञ्जन=मायारहित। अहुंमेव=प्रमाणरहित। टेव=आदत। अदेव=देवता-रहित। असिंभ=अजन्मा।

निरलेप निसाज निहचोभ निसोभ, निहकाम निजाम निरास निर्लोभ ॥
निर्मूल निस्थल निरसिंध त्रिधंध, अजीत अतीत अवन्ध अकन्ध ॥३॥

निहचोभ=आकांक्षारहित। निजाम=जन्मरहित। निरसिंध=संयोगरहित। त्रिधंध=जिसका स्वयं काम नही। अतीत=कालादिक्रमरहित। अकन्ध=देहहीन।

निदोह निछोह निमोह निसास, निपंक निसंक निडंक निरवास ॥
निरंक निटंक निरवंट नितास, अनन्त सनन्त ब्रह्म प्रकास ॥४॥

निपंक=मलरहित। निरंक=निरक्षर। निरवंट=अविभक्त। निटंक=तोलहीन। नितास=निर्भय। सनन्त=उपाधिभेद से शान्त।

पाठभेद—मूलपाठ का आधार पांच पुस्तकें है। उनके लेखनकाल के क्रम से १-२-३-४-५ इन अंको में व्यक्त किया है। पाठ का भेद किन प्रतियो मे है—यह "शब्द" के आगे दिये अंकों से जानिये।

निरलोभ=३-४-५। नि ˚ के स्थान मे नृ=३-४-५।

---

* महाराज हरिदासजी निर्गुण उपासक हुए है। निर्गुण चित्शक्ति को शास्त्रों ने ब्रह्म शब्द से प्रतिपादित किया है। इसलिए महात्मा हरिदासजी सर्वप्रथम अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। ब्रह्मस्तुति मे उस व्यापक अधिष्ठान चेतन का विविध रूपों मे स्मरण किया गया है।

अमान अथान अरुति अवाट , अचिंत अनंत अथित अघाट ।।
निदोष निपोष अरेह अथाट , गोपाल गुवाल अमित अपाट ।।५।।

अवाट=बिना रास्ते। अथित=स्थानरहित। अरेह=सीमारहित। अथाट=आडम्बर-विहीन। अमित=अपार। अपाट=स्थायी विस्तार नही।

दयाल अकाल अजाल विराट , अभाल अपाल अताल निराट ।।
सालूम मालूम लतीफ गुंजार , हकीम• फहीम सतार जवार ।।६।।

विराट=सर्वव्यापी । अभाल=अदृष्ट। अपाल=सीमाहीन । अताल=अथाह। निराट=वस्तुत., बिलकुल। सालूम=सत्यस्वरूप। मालूम=ज्ञानस्वरूप। लतीफ=आनन्द-मय। गुञ्जार=गर्जना करने वाला। हकीम=चिकित्सक। फहीम=सर्वज्ञ। सतार=कुलीन। जवार=महापराक्रमी।

वेचगुनि वेचुनि लहंग करीम , बेआदि बेदादि षुदाइ रहीम ।।
बेसवेह वेनिवेह बेनिगेह बेताब , बेनिमुनि बेहूनि षांना न षराब ।।७।।

वेचगुनि=रंगरहित । वेचूनि=अनुपम । लहंग=निहंग । करीम=कृपालु । बेदादि=सर्वोपरि सुनने वाला। षुदाइ=खुदा, परमात्मा। रहीम=दयालु। बेसवेह=निराकार। बेनिवेह=अजन्मा। बेनिगेह=दृष्टि से न दिखने वाला। बेताव=शान्तस्वरूप। वेनिमुनि=उपमारहित। बेहूनि=कहा न जाय। षाना=श्रेष्ठ। षराब=बुरा।

खहूह अरूह अगम इलाज , नापैद नाकैद षुदीन अवाज ।।
हजूरिन दूरिन वैरिन मार , षालिक मालिक अथाह अपार ।।८।।

खहूह=विश्वम्भर। अरूह=अन्त करणरहित। अगम=शोकरहित, अगम्य। इलाज=औषधरूप। नापैद=अनुत्पन्न। नाकैद=बन्धनरहित। षुदीन=स्वयं मे स्थित। अवाज=शब्द से आगे। हजूरि न=सामने नही, अप्रत्यक्ष। दूरि न=दूर नही। वैरि न=शत्रु नही। मार=काल, मृत्यु। षालिक=कर्त्ता।

हाजिर नाजिर सहसदयाति , औजूद जहूद न जीवन जाति ।।
हिरस विरस न जेर गुमान , सिरजनहार विरध न ज्वान ।।९।।

हाजिर=प्रकट। नाजिर=नजर मे आने वाले। सहसदयाति=अव्यक्त स्वरूप। औजूद=देहरहित। जहूद न=मजहबरहित। हिरस विरस न=हर्ष-शोकरहित। जेर=दुर्बल नही। गुमान=गर्वविहीन।

सालूम मालूम सबै सुलतान , षालिक मालिक अजब निसांन ।।
जाहिर माहिर सदैव बशीर , अलैव अलाह अमुरींद अपीर ।।१०।।

पाठभेद—अथिति=३-४।

माहिर=सर्वज्ञ, प्रवीण । सदैव=नित्य, अविनाशी । बशीर=सहायक । अलैव=अलख । अलाह=देशकाल-परिच्छेदरहित ।

परवरदिगार निरविकार निगर्व गनिय , दानाई साहिब फुनान फनिय ॥
राजक रजाइ सुरजन सूर , सवजांन अमान अषंडित नूर ॥११॥

गनिय=महाधनी । दानाई=सर्वश्रेष्ठ । फुनान फनीय=अविनाशी । राजक=रिजक देने वाला । रजाइ=आज्ञा, कृपा । सुरजन=देवरूप ।

रजा न सजा तन तोष न त्रास , हठ हार न जीत अभ्यास न नास ॥
वेरजान वेरान हैरान मुकाम , कलाम न ताम न सीत न घाम ॥१२॥

वेरजान=अकाम । वेरान=महाशून्य । हैरान=चकित । मुकाम=आश्रयस्थान । कलाम न=अकथनीय । ताम न=अधिष्ठान नही ।

उदार अपार अजार अरूप , अषार अलार असार अधूप ॥
अधूप अदेह अधर अडर , अषिर अतिर अछेह अमर ॥१३॥

अजार=अजर । अषार=अक्रोधी । अलार=पीछा करने वाला नही । असार=निरालम्ब । अधूप=त्रिविध तापहीन । अधर=आधारहीन । अषिर=अखंडित । अतिर=अलंघनीय । अछेह=अपार । अमर=नित्य ।

अरेष अदेष अभेष निजोग , अलेष अरीझ अषीज निभोग ॥
अबीज अनाथ अवाथ निरोग , अलष अभष अजष अलोग ॥१४॥

अरेष=असीम । अदेष=अदृश्य । निजोग=सम्बन्धहीन । अषीज=अक्रोधी । निभोग=वासनाहीन । अवाथ=अगृहीत । अभष=कालरहित । अजष=शान्त । अलोग=सबसे अलग, देशरहित ।

अदष अपष अचष अवोट , अभूल अभाल अडोल अचोट ॥
अतोल अमोल अबोल निषोट , अझोल अभेद अछेद अलोट ॥१५॥

अदष=अकथनीय । अचष=स्वादरहित । अवोट=अछूत । अभूल=अज्ञान विहीन । अभाल=अदृश्य । अडोल=स्थिर । अचोट=आघातहीन । अबोल=अनिर्वचनीय । निषोट=मलविक्षेपरहित । अझोल=अकम्पित । अछेद=अखण्ड । अलोट=अपरिवर्त्तनीय ।

अभंग अरंग असाथ असंग , अजेर अजोर अफेर अजंग ॥
असूर अकूर अमिल अमोड , हरिनंट सनंट अनंत अथोड ॥१६॥

अभग=अविभाजित । असाथ=एकाकी । अजेर=दौर्बल्यरहित । अजोर=किसी

पर बल नही करना । असूर=स्वयंप्रकाश । अक्रूर=दयालु । अमोड=बदलने वाला नही । हरिनंट=बाजीगर । सनंट=परम नट । अथोड़=अनल्प ।

असोच अपोच अलोच गंभीर , अबद्ध न सिद्ध धराधर पीर ॥
असोस अदोस अलिप अगाध , तोहि वार न पार अचोर न साध ॥१७॥

अपोच=कायर नही । अलोच=आलोचना से रहित । गंभीर=गहरा । अबद्ध=बन्धनरहित । धराधर=पृथ्वी को धारण करने वाला । पीर=औलिया । असोस=शोषणहीन । अदोस=विकाररहित । अलिप=अलिप्त । अगाध=अथाह । अचोर=चोर नही ।

अछीन अदीन अभूष अपान , विश्वंभर नाथ अनाथ अदान ॥
अहर अपर अचर निधाह , अमर अधर अजर अथाह ॥१८॥

अछीन=क्षयरहित । अनाथ=जिसका कोई स्वामी नही । अदान=दानदाता नही । अहर=हरण न किया जा सके । अपर=परात्पर । निधाह=सन्तापहीन । अजर=जरारहित ।

अचढ अपड़ पुरुष न नारि , अझर अभार अधार बिचारि ॥
अपैर अनैर निवैर निषंड , नितोज नितोज रच्यो ब्रह्मंड ॥१९॥

अचढ़ अपड़=चढने-पडने से रहित । अझर=स्रावहीन । अपैर=पैररहित । अनैर=न्यारा नही । निषंड=अविभाजित । नितोज नितोज=सत्यस्वरूप ।

सरवंग संवूह वयम विथार , जहां स तहां मुकता दरबार ॥
इला नहिं अंव न तेज न वाइ , अकास न वास जुरा नहिं ताइ ॥२०॥

सरवंग=सर्वव्यापक । संवूह=समष्टिरूप । वयम=व्ययहीन । विथार=पीडा-रहित । जहाँ से तहाँ=सर्वत्र । मुकता दरबार=मुक्तद्वार । इला=पृथ्वी । अंब न=पानी नही । वाइ=वायु । वास=निवास । ताइ=उसके ।

अविहड़ अजड़ अपड़ अगड़ , अघड़ अनड़ अभड़ अजड़ ॥
विनांण प्रवाण वप नांव न नेह , अगणित निहार उछाह अछेह ॥२१॥

अविहड=वियोगरहित । अजड़=मूल बिना । अघड़=बनावट विहीन । अनड़=अनाड़ीपन नही । अभड़=योद्धा नही । अजड़=ज्ञानस्वरूप, जड़ता रहित । विनांण-प्रवाण=परम चतुर । वप=अशरीरी । नांव न=संज्ञाहीन । निहार=हार नही, थके नही । उछाह=उत्साहरहित । अछेह=अन्तरहित ।

पाठभेद—अवंग=३-४-५ । अव्यंद=२ । अघूत=५ ।

अकाज न राज अठग विचारि , गहर गंभीर समाधि मुरारि ॥
अदेह असाज अगेह अविद , असलि अहल अचल अजिंद ॥२२॥

अकाज=कार्यहीन। न राज=जिस पर कोई राजा नही। समाधि=निश्चल दशा। मुरारि=निरञ्जन। असाज=कोई सामग्री नही। असलि=वास्तविक, सही। अहल=अकम्पित। अजिद=जीवभाव नही।

गरीबनिवाज समंद निगाज , मछ कछ न नीर न कीर न साज ॥
भयानन भूत औधूत न धूत , उदास न तास पिता नहिं पूत ॥२३॥

समंद निगाज=समुद्रवत् गम्भीर। भयानन=महाकालवत्। भूत न=पञ्चभूत नही। धूत न=धूर्त नही। उदास न=सब सृष्टि पर ध्यान देने वाला।

मठ मोनि न जोनि न स्याम न सेत , न मोह न दोह न क्रोध न हेत ॥
अलिंग असंग निरंग निसोर , रहैति कहैति जनम न जोर ॥२४॥

अलिंग=चिह्नरहित। निरंग=अवयवविहीन। रहैति=रहणी नही। कहैति=कहणी नही।

अदत अमत अवत अजत , अगिर अतिर असर अहत ॥
निराकार अपार अरुष न रुष , रसराज न रैत न दुष न सुष ॥२५॥

अदत=अदेय। अमत=मतमतान्तररहित। अवत=वाणीरहित। अजत=अजेय।

रस वेद कतेब न रोज न राग , सुष सेझ न दुष अनीद अजाग ॥
निगम अगम त्रिविध न त्रास , तत आनंदमूल अनंत प्रकास ॥२६॥

रस वेद=वेद का पक्ष नहीं। कतेब न=कुरान का हुक्म नही। रोज न=रोना नही, रोजे नही। न राग=गाना नही। सेझ=शय्या। निगम अगम=वेदशास्त्र नही। त्रिविध=तीन गुण नही। त्रास=भय। तत=तू।

सुष आदि अनादि विजोग न सोग , वप वोट न चोट अजिग अजोग ॥
इकलस पुरिस हरि ऊँच न नीच , तन ताप न तेज विघन न बीच ॥२७॥

विजोग=वियोग। न सोग=शोक नही। वोट=आड नही। चोट=प्रहार। इकलस पुरिस=एकरस रहने वाला। बीच=मध्य नही।

तूँ पाक अछाक अछिय अभेव , निरंजन नाथ इहै तोहि टेव ॥
निरसिंध निरधार अरथ न आंन , परम पुरुष पयोधर पान ॥२८॥

पाक=पुनीत। अछाक=अतृप्त। इहै=यह। तोहिं टेव=तेरी आदत। अरथ न आन=दूसरा कोई धन नही। पयोधर पान=तूँ स्तनपान नही करता, अजन्मा।

पाठभेद—अछिक-२। यहै-३-४। पुरिष-२।

अभूष अरूष अजर जहाज, तोहि काम न क्रोध न लोभ न लाज ॥
तत आस उदास अहेत न हेत, जप जोनि न जीव रगत न रेत ॥२६॥

अरूष=स्निग्ध, रौक्ष्यहीन। अजर जहाज=जीर्ण न होने वाला वाहन। तत=तत्व नही। जोनि न=कोई योनि नही। रगत=रज। रेत=वीर्य नही।

अधर अकर सुखाँ सुखरासि, समाधि अगाध इह अरदासि ॥
अहल अचल अपल अवैद, अपार विचार अधार अकैद ॥३०॥

अकर=करणीरहित। इह अरदासि=यही प्रार्थना। अहल=अज्ञेय। अपल=कालातीत। अधार=निराधार। अकैद=बन्धन-विहीन।

दोहा— जन हरिदास अरचित अनंत, गिणती ग्यांन न कोइ ॥
साध जांण सुमरिण करै, मन आलंबन होइ ॥३१॥
साची माला सुरति की, लै सुनि समाना चित्त ॥
धुनि मांहि धन पाइया, राम सरीषा वित्त ॥३२॥
जन हरिदास अवगति अगम, रहै सकल तैं दूरि ॥
सतगुरु मिले तो पाइए, हरि जहाँ तहाँ भरपूरि ॥३३॥

जाण=समझ। आलबन=आधार। लै=लय। सरीषा=समान।

॥ इति ब्रह्मस्तुति समाप्त ॥

पाठभेद—सुमरण-५। आलंबन-१। धुंन्य मांही-२। पाइये-२।

॥ अथ मूलमन्त्र जोगग्रन्थ ॥

दोहा—सुर नर मुनि द्रिगपाल दिनि, रोम सिध थिर नांहि ॥
येक सकति की पलक में, कितना आवै जांहि ॥१॥
अलष पलक लागे नहीं, हरि सकल भवन पतिराइ ॥
अणहूवा सो • रहेगा, जो हूवा सो जाइ ॥२॥
पारब्रह्म सूँ प्रीति परम निज भेद विचारे ॥
ज्ञान षड्ग ले हाथि आंन अनरथ अरि मारे ॥३॥
साजनिवाजि निरभै करण, हरि सुरनर सबका ईस ॥
नाथ निरंजन परदुषहरण, जहाँ तहाँ जगदीस ॥४॥
उपजि न विनसै येक रसि, हाजिर जहाँ हजूर ॥
पूरण ब्रह्म अकास ज्यौं, जहाँ तहाँ भरपूर ॥५॥
लकड़ी काटी कटत है, अगनि न काटी जाइ ॥
दार अगनि ज्यों परम गुरु, जहाँ तहाँ समिभाइ ॥६॥
फूल वास तिल मैं दुरी, तिल का तैल फुलेल ॥
हरिजन हरि ऐसे मिल्या, अरस परस यहु षेल ॥७॥
वार पार मधि नाहिं, राम भजि भेद बताया ॥
जहाँ तहाँ गोपाल, गाइ ज्यौं आगे गाया ॥८॥
नाराइण निरवांण, ताहि कोइ विरला जांणै ॥
धागै लागा जाइ, आप कूँ आप पिछाणै ॥९॥
हारि जीति हठ सुपठ, निकट निज वसत न दरसै ॥
भूठ तहाँ जाइ दुरै, फिरै तो पारस परसै ॥१०॥
निरसंसै निरदंद, जोर नहि जेर न जरणां ॥
नादविंद नहिं जीव, जनम नहिं अवधि न मरणां ॥११॥

पाठभेद—दुषहरन-१-३-५। एकरसि-३-४-५। ज्यूँ-२-३-४-५। नृवाण-३-५। निकटि-२-३-४-५। बस्त-३-४-५।

शब्दार्थ—दिनि=सूर्य। रोमसिध=लोमस ऋषि। साजनिवाज=सब सिद्धि देने वाला। दार=काष्ठ। दुरी=समाई। धागै लागा=सुरति द्वारा। जेर=दौर्बल्य।

निराकार निहचल अचल, हरि अभराभरण अनंत ॥
परम ग्यान पर ध्यान दे, हरि सुपह लगावे सन्त ॥१२॥

तरवर अगम अरुति, बीज अंकुर नहि आया ॥
पंचतत नहिं पोष, फूल फल डाल न छाया ॥१३॥

निरालंब निरलेप, निडर निरभै निहकामी ॥
निरामूल निहकर्म, सुतौ हंरि अन्तरजामी ॥१४॥

ब्रह्मविचार अपार अजीत, अरि लगै न नरहरि ॥
अखिल अतिर सुचि सुथिर, गया भजतां भै थरहरि ॥१५॥

परगट परमगति परममति, परमनाथ परपोष ॥
परम सनेही परम सुष, अलैह अगैह निरदोष ॥१६॥

अषिर अपर बेहद सुथिर, अजर अमर निज नाथ ॥
अधर सुधर मीठा मधुर, चितहित मनकरि हाथ ॥१७॥

अछल अमल अनहित अटल, अकल सकल बलि जांव ॥
ए सब करि सबतैं अगम, बहुड़ि अकरता नांव ॥१८॥

अधर गहर विसंभर अकर, तन धन सुत वनिता नहिं प्रीति ॥
भजि इकलस एक अनेक गत, रजा तहाँ रस रीति ॥१९॥

अलिप अछिप जहाँ तहाँ छिप्या, छाया पड़े न छोह ॥
सकल भवनपति सतिसदा, निरामोह निरदोह ॥२०॥

अहत अमित अवगति अजित, अनंत सनंत मुरारि ॥
चिदानन्द अरिचित अरत, चित मांही वित धारि ॥२१॥

पाठभेद—मूल–१। क्रम–२–३–४–५। प्रगट–३–४–५। अलह्-अगहै–४–५। अक्षर–५। ये–२। यकलस–३–४। अहित–५। अहैत–४। अजत–४–५।

शब्दार्थ–अभराभरण=न भरने वाले को भर देने वाला। सुपह=सन्मार्ग। अरुति=बेमौसम। अरि=शत्रु। भै=भय। थरहरि=कम्पायमान। अषिर=अक्षर। अकल=कलन रहित, कलारहित। इकलस=निरन्तर। रजा तहां रसरीति=ईश्वर आज्ञा में रहे तभी उस आत्मरस-प्राप्ति की रीति आती है। छाया पड़े न छोह=उस निराकार में न माया की छाया पडती है, न गुणों के सम्बन्ध से कोई क्षोभ होता है। सतिसदा=सर्वदा सत्य। सनंत=अन्तरहित। अरचित=अनिर्मित। अरत=अनाशक्त।

रस रोग भोग जोगी नहीं, निरादेह निरवास ॥
बरणबिबरजित कहि अकहि, उदर उबर नहिं सास ॥२२॥
अघट सनट नहिं करमपट, भरम न कोई भेष ॥
घट धरि घड्या न अब घटै, अपरंपार अलेष ॥२३॥
प्राणनाथ अकरण करण, भगवंत धरणीधर हरि ॥
राम नाम गोविन्द भजौ, परपंच पष परिहरि ॥२४॥
अलख निरंजन अवगति राम, निराकार निरभै विसराम ॥
हरीदास जन यूँ कहै, ररंकार मूल निज नाम ॥२५॥
मूलमंत्र सतगुरु दिया, दुष सुष दोइ दुरचा सराप ॥
आठ पहर की उनमनी, अंतरि अजपा जाप ॥२६॥
ग्यान ध्यान यहु दान, नांव उनमानि ज्यौं लीजै ॥
गरब छाडि गोविन्द भजौ, भजि इम्रित पीजै ॥२७॥
नांव धरूं तौ में डरूं, वहुड़ि भजन तहाँ नाँव ॥
जन हरीदास की बीनती, वाप राम बलि जांव ॥२८॥
बेकीमति कीमति कहा, भजि परपंच पष तजि दोइ ॥
जन हरीदास हरि सुमिरताँ, काँटा लगै न कोइ ॥२९॥

॥ इति मूलमन्त्र जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अव घडै–४–५। गोविद–३–४–५। न्यरभै–२। त्रिभै–१। यो–४–५। विष तज अमृत पीजँ–५। वहौडि–२–३–४। सुमरता–१–४–५।

शब्दार्थ—उदर=जन्म लेना। उबर=बचना। सनट=सुनृत्यकर्त्ता। घड्या=बनाया, रचा। दुरचा=हरचा, छिपा। उनमनी=अन्तर्वृत्ति। यहु=यही। नांव धरूं तो मै डरूं वहुडि भजन तहाँ नाव=परब्रह्म का कोई नाम नही, उसके नामकरण से मै डरता हूँ–फिर भी स्मरण के लिए नाम की कल्पना की जाती है। पष तज दोइ=द्वैत का पक्ष त्याग। कांटा=जन्ममरणरूप, दु ख-सुखरूप।

॥ अथ नाममाला जोगग्रन्थ ॥

भजि करुणांनिधि करतार, करम भै भरम निवारण ॥
समरथ सिरजनहार, बिवधि जम का फंद जारण ॥१॥
केसो रमताराम, हाथ जन कै सिर धारण ॥
नाराइण गोपाल, संत राषण रिप मारण ॥२॥
परम सनेही नाथ, त्रिविध गुण गहर गुदारण ॥
अबिनासी हरि अषिल, करण निरविष दुषदारण ॥३॥
इनका करो प्रहार, रघुनाथ निज आँषि उधारण ॥
गैबलि करि गोविंद, चिंता अरि विरष उपारण ॥४॥
अपरंपार अपार, पार भौसिंध उतारण ॥
तुम नरहरि निरवंस, वंस तोहि साध सुष कारण ॥५॥
निरसंसै सूँ प्रीति, ताहि संसो क्यों ग्रासै ॥
जहां अजपा तहां वैसि, बात अणभै अभ्यासै ॥६॥
नट निरभै निरभेष, अरीझ हरि रीझै नाँहि ॥
निरमल निकट हजूरि, अगहि अभि अंतर माहि ॥७॥
परम रीति पर प्रीति, परम निधि आपण स्वामी ॥
जुरा काल भै हरण, करण निरभैं निज नामी ॥८॥

पाठभेद—समरथ-३-४। बिबिधि-४। रुघनाथ-४-५। भौस्यंध-२। स्यों-१। क्यूँ-२-५। नृमल-३-४। अगह-३-४-५।

शब्दार्थ—नाममाला जोगग्रन्थ=निरञ्जननाममाला के निरूपण का ग्रन्थ। जन कै=साधक भक्त की। त्रिविध गुण गहर गुदारण=त्रिगुणात्मक गंभीर माया को हटाने वाला। इनका=कामादि षड्रिपुओं का। गैबलि=हस्ती की तरह बल दो। तुम नरहरि निरवंस, वंस तोहिं साध सुष कारण=हे नरहरि! आप निर्वंश है-सन्तानरहित है, पर साधु जन आपकी सन्तान है तथा आपको सुख पहुंचाते है—आप अपने भक्तो तथा साधकों से ही प्रसन्न रहते है। जहाँ अजपा तहाँ वैसि, बात अणभै अभ्यासै=जिस हृद्गुहा में अजपा-जाप का स्थान है, वही वृत्ति को स्थिर कर अभ्यास द्वारा आत्मानुभूति करिये। नट=जगन्निर्माता नट है। अभि अन्तर=हृदय की जानने वाले, बाह्य तथा अन्तर की जानने वाले। पर प्रीति=अतिस्नेह। आपण=अपनी। जुरा=बुढ़ापा।

परम पुरिष परकास , लहै कोई गुरु गम सूरा ॥
सोई ब्रह्म सचराचर , सकल विश्वव्यापी पूरा ॥९॥

परम तेज परजोति , परम दुषभंजण सोई ॥
परमसुनि परदेव , जीव जागि सुमिरै नहिं लोई ॥१०॥

परम ग्यान पर ध्यान हरि , परम सुष साच बतावे ॥
परम जोग पर भोग हरि , परम गति ले पहुँचावे ॥११॥

निरालंब निरलेप , अचल चरणां चित धारं ॥
हरि निरगुण निरछेह , वार नहि लाभै पारं ॥१२॥

अकल अभेद अछेद , निरूप निरभै घर पाया ॥
निराकार निरवाण , प्राण मन तहाँ समाया ॥१३॥

अवगति अगम अलेष , ताहि कोई विरला परसै ॥
अजोनी असथिर अचिंत , अभि अंतरि दरसै ॥१४॥

अदिष्टि अषिर अरूप , अथाह निरमोह स न्यारं ॥
निरामूल निरधार , निकुल निरपष निज सारं ॥१५॥

परमतत्त परभेद , सकल जुग मंड़ण जोगी ॥
पारब्रह्म हरि अषिल , रस रोग रसना नहिं भोगी ॥१६॥

अधर अजर समि भाय , जीव सब जलि थलि पोषै ॥
अकह निरंजन देव , साध सुमिरै मन चोषै ॥१७॥

पाठभेद—आतम–३ । गुर–२–३–४–५ । विस्व–२–३ । विस–४ । भंजन–३–४–५ । घर के स्थान पर "पद"–३ । नृवांग–२–५ । प्रसै–१ । अस्थिर–४–५ । अदिष्ट–१ । निरमोह सूँ–४ । प्रभेद–१ । जग–४ । सम–४–५ । अकहि–३ । साधु–१ ।

शब्दार्थ—परकास=ज्ञानज्योति । गम=भेद । लोई=हे जीव । निरछेह=नि.सीम । लाभै=मिले । परसै=स्पर्श करे । असथिर=स्थिर । निकुल=वशविहीन । परभेद=(परम ज्ञान) परम भेद या अभेदी भेदरहित । रसरोग=जो रसास्वाद का इच्छुक नही–जो इन्द्रियभोग रहित है । सम भाय=सबका मित्र । पोषै=पोषण करे । अकह=अकथनीय । चोषै=अच्छे, शुद्ध मन से ।

अहत अछीज अनेक, निरास निरभै सुष सारं ॥
अकरम अरत अलोक, विरषा रस इमृत धारं ॥१८॥
येकमेक भरपूरि, दूरि तोहिं कहूँक नेरा ॥
निज तरवर निरसिंध, प्राण तहाँ पंषी मेरा ॥१९॥
अषंड षंड ब्रहमंड, सकल में साच लुकाया ॥
जन हरीदास हरि अघट, आथि गुर गम तै पाया ॥२०॥
जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूँ, हरि पठवै तहाँ जाँव ॥
जन हरीदास की बीनती, मैं हरि नहिं छाडूँ हरि नाँव ॥२१॥

॥ इति नाममाला जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अहैत-४। ब्रषा-२। इम्रत-३-५। एकमेक-३-४-५। निड़रा-४। ब्रह्मंड-१-५। गुरु-१। छाड़ौ-१-५।

शब्दार्थ—येकमेक=ओतप्रोत, व्याप्त। निज तरवर=माया अविद्यारहित ब्रह्मरूप निज तरवर-आप ही ऊर्ध्वमूल अधःशाखा वाले अश्वत्थ वृक्ष हो "प्राण तहाँ पंषी मेरा" वहाँ सद्-असद् वृत्तिमय पंखों से रहित प्राणमय मेरा पक्षी निवास करता है। आथि=अर्थ, तत्व, अन्त में।

॥ नामनिरूप जोगग्रन्थ ॥

नाम निरूप परम सुष, जांणै बिरला कोइ ॥
जन हरीदास ताकूँ भजै, तबही आनंद होइ ॥१॥
परापरै पूरणब्रह्म, फेरि तहाँ मन लाइ ॥
गरब छाँड़ि गोविन्द भजो, जनम अमोलक जाइ ॥२॥
सतगुरु मिले तो पाइये, हरि परम सनेही तात ॥
बहौड़ि बहौड़ि लाभै नहीं, इह औसर इह घात ॥३॥
भै छाँड़ो निरभै भजो, गुणाँ रहित गोपाल ॥
अगम ठौर आनंद सदा, जुरा जनम नहिं काल ॥४॥
जोगारंभ का मूल है, हरि अवगति अपरंपार ॥
सुषसागर समरथ धणी, सबका सिरजनहार ॥५॥
निरभै पद नर करि चढ्या, मनिष जनम भल देह ॥
निराकार निसदिन भजौ, हरि अगणित अनंत अछेह ॥६॥
मनिष जनम षरचै रषे, हरि विण दूजी ठौर ॥
सास उसासां नांव लै, नर दौरि सकै तो दौर ॥७॥
जागि जीव सोवे कहा, प्रथम मोह तजि मांण ॥
साध मुलक तहाँ वास करि, जम ले सकै न दांण ॥८॥
भगति करौ भगवंत की, मन दीन्हा सिधि होइ ॥
मन विण दीन्हा मन लडू, षाइ न धाया कोइ ॥९॥
पाप पुनि दोन्यौं बिरष, तहाँ करै मन पान ॥
मन ये दोन्यौं तरवर तजै, तब पावे भगवान ॥१०॥

पाठभेद—भजो-२-५। ग्रब-१। बहुडि-१। यह-३-४-५। रहैत-२-४। रहत-३-५। जन्म-३। अविगति-१। सम्रथ-२-३-५। चढ्यो-१। दौडि-१। डाण-४-५। दोन्यू-३-५। ए-३-४-५।

शब्दार्थ—बहौड़ि=बहुरि, पुन.। औसर=मौका। घात=ताक। करि चढ्या=हाथ लगा। प्रथममोह=अनादि अज्ञान। माण=मान, अहङ्कार। दाण=(दड) कर। धाया=तृप्त हुआ।

भरम छांड़ि निरभै मतै, निरभै बसत विचारि ॥
गुरु आषिर कर वांण धरि, मोह महा रिप मारि ॥११॥
करि धारण केसौ भजौ, समझि न कीजै सोच ॥
यहु औसर चलि जायगा, बहौड़ि न लाभै पोच ॥१२॥
राम भजौ विषया तजौ, घर मांही घर एक ॥
ता घर स्यूँ लागा रहौ, छांडो द्वार अनेक ॥१३॥
हरि सुमिरण हिरदै धरो, विथा न पहुँचै वीर ॥
काइर टलि कांनै चल्या, लग्या न सुष को सीर ॥१४॥
परम पुरिष मैं रिप भजौ, लता न लागै लोइ ॥
अवधि घटै ग्रासै जुरा, हरि भजतां होइ स होइ ॥१५॥
नांव विसंभर नाथजी, लष चौरासी प्रतिपाल ॥
सब काहू की करत है, ता तैं राम दयाल ॥१६॥
मन सजन तो सूँ कहूँ, मानौं साच हदीस ॥
काल जाल लागै नहीं, सुमिरतां जगदीस ॥१७॥
ऊँच नीच निरभै मतै, कोई भजौ मुरारि ॥
भौसागर तिरबो कठिन, हरि नाँव उतारै पारि ॥१८॥
भूधर तैं बाजी रची, बाजी मांहि कलाम ॥
षट दरसण षोजत फिरैं, पषापषी विसराम ॥१९॥
कालहरण करता पुरिस, सुमिरताँ गुण एह ॥
चित माँही वित ले रहो, ज्यूँ बहौडि न धरिये देह ॥२०॥
वनमाली भजताँ भला, जुरा जनम नहिं तोहि ॥
मैं नहिं छाँड़ो राम को, राम न छाँड़ै मोहि ॥२१॥

पाठभेद—बस्त-१-३। अक्षर-३। सूँ-३-४-५। कायर-२। पुरुष-१-४-५। होय-३। प्रतपाल-२-५। तोस्यो-१। कह्यो-१। द्रसण-१। येह-२। च्यत-२। धरिए-४-५।

शब्दार्थ—आषिर=अक्षर, उपदेश। करि धारण=धारणा, श्रद्धासहिता। पोच= डरपोक, कायर। विथा=पीडा। काइर=डरपोक, पोच। कांनै=एक ओर, टाला देना। लता=लात, धक्का। लोइ=लोक। हदीस=निश्चित शब्द। कलाम=हद कर दी।

वात हाथ रघुनाथ कै, सदा साध कै साथि ॥
पैलै अंगि छाड़ै नहीं, जाकौ पकड़ै हाथि ॥२२॥
नाराइण के नाँव की, मैं बलिहारी जाँव ॥
भृङ्गी कीट पतंग ज्यूँ, दुरै दूसरो नाँव ॥२३॥
परमानन्द के आसरै, जाइ पड़ै जब जीव ॥
हरि महरि निजर देषै जबै, तबै जीव सूँ सीव ॥२४॥
सकल वियापी संगि बसै, हरि समरथ सिरजनहार ॥
साहिब ही तैं पाइये, साहिब का दीदार ॥२५॥
अविनासी आसण अमर, अजरावर नग एक ॥
राम दया तैं पाइये, हरि सुमिरण भाव विवेक ॥२६॥
इलम पढ़ै पढ़ आरबी, च्यारि पढ़ै मुष वेद ॥
सदगति सुख सब तैं अगम, सब कोई करै उमेद ॥२७॥
अषिल तुम्हारी बंदगी, बहोत करे वहौं भाइ ॥
अलाह कृष्ण अरिहंत कहै, कोई कहैं षुदाइ ॥२८॥
सब कोई चाहे तुझकूँ, तूँ तौ सब ही माँहि ॥
तुम ही तैं तुम पाइये, बन्दे तैं कुछ नांहि ॥२९॥
पारब्रह्म परदुषहरण, प्राण तहाँ मन लाइ ॥
भेद सहित भै रिप भजो, हरि गाई जै त्यूँ गाइ ॥३०॥
मिहरि कहौ मीरां कहौ, कोई कहौ अनंत ॥
निराधार निरगुण कहौ, तथा कहौ भगवंत ॥३१॥

पाठभेद—रुघनाथ–४-५। जाकू–२-३-४-५। कै–४। ज्यो–१। अंगी–२। मिहिरि–१। मैहैरि–४। संम्रथ–३-४। चारि–१। बहु–१। अल्हा–३-५। अल्ह–४। तुझि कूँ–३-४। सहत–३-५। सहैत–४। महरि–३।

शब्दार्थ—पैलै=दूसरे के, अन्त तक। पैलै अंग=प्रथम अंग, चरण। महरि=दया, अनुग्रह। सीव=ब्रह्म। नग=अमूल्य रत्न। विवेक=सत्यासत्य विचार। इलम=विद्या। आरबी=अरबी, कुरान। भेदसहित=सत्यासत्य विवेक सहित। मिहरि=दयालु। मीरां=महान्।

निरामूल निरपष कहौ, कहौ निरषर नांव ॥
निरमोही निरदुंद कहौ, वा अरचित की बलि जाँव ॥३२॥

अलष अगम अवगति कहौ, कहौ निरंजन राम ॥
अरत कहौ अलपत कहौ, अंत धणी सूँ काम ॥३३॥

धरती धारण अमरवर, नांवं दया द्यौ ज्ञान ॥
आतम अंतर राषिये, धणी तुम्हरौ ध्यान ॥३४॥

अपणी अपणी अकलि लै, सब को पठवै पांण ॥
पार न लाभै पैर तां, इहै रजा रहमांण ॥३५॥

हारि जीत सुष दुष रहत, निगम अगम रस एक ॥
हरि ज्यूँ का त्यूँ ही देषिये, यौ ही बड़ा बमेक ॥३६॥

कहा अतोल को तोलिये, अलष अभेद अदेह ॥
ग्यान ध्यान मति गति अगम, अजपा राम अछेह ॥३७॥

निराकार निरभै निड़र, निराभूल निज नाथ ॥
भुज अनंत लोचन अनंत, परै न पहुंचे हाथ ॥३८॥

जहाँ तहाँ हरि देषिये, वार पार मधि नाँहि ॥
सकल बियापी संगि बसै, ताहि छाड़ि मति जांहि ॥३९॥

मोह दोह मैं तैं मनी, काम कोध भ्रम दूरि ॥
मन उनमनि लागा रहै, तहां बस्त भरपूरि ॥४०॥

चित चंचल निहचल भया, मन कै पड़ै न राइ ॥
हरि निरगुण निरभै मतै, जहाँ तहाँ समि भाइ ॥४१॥

पाठभेद—निरदुंद–१। अविगति–१। अलपति–१। धणी स्यूँ–१। आतम–२-४। अहै–२। रहमान–२-३-४। रहैत–२-३। ज्यौ–१। त्यौ–१। तोलिए–३-४-५। देषिए–४-५। बसत–२-४। च्यत–२।

शब्दार्थ—अरचित=अनिर्मित, अनादि। अलपत=निर्लिप्त। धणी=स्वामी। पाण=बल, ताकत। रजा=हुक्म। मनी=अहंकार, मान्यता। बस्त-अलभ्य वस्तु, परब्रह्म।

हरि चिंतामणि सबमें बसै , जाणें विरला कोइ ॥
राम दया तब जाणिये , साध कहै त्यूँ होइ ॥४२॥
गंग जमन मधि मुकति फल, सतगुरु दिया बताइ ॥
मन लोभी लालचि पड्या , ता सुष में रह्या समाइ ॥४३॥
अनंत साध आगे भया , परसि परसि भौ पार ॥
जन हरीदास सिर कै सटै , जहाँ तहाँ दीदार ॥४४॥

॥ इति नामनिरूपण जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरञ्जनलीला जोगग्रन्थ ॥

गाइ गाइ गावे कहा , गावण मांहि बिमेक ॥
एक गाइ दह दिसि गया , एकां परस्या एक ॥१॥
गुर हम स्यूँ एसी करी , जैसी गुर तैं होइ ॥
अगम ठौड़ आनंद सदा , पला न पकड़ै कोइ ॥२॥
गुर निरभै चेला निड़र , गुर निराकार सब माँहि ॥
चेला तन धरि तहाँ मिल्या , सो तन धरि नाचै नांहि ॥३॥
प्रगट परम गुर पारब्रह्म , परम सनेही सोइ ॥
आप दिषावे आप कूँ , करम किवाड़ी षोइ ॥४॥
राषणहारा राषि तूँ , आप आपणें हाथि ॥
भी फिरि मन चाले नहीं , ऊठि और के साथि ॥५॥

पाठभेद—च्यंतामणि–२ । त्यौ–१ । मुक्ति–३ । लालच–४-५ । प्रसि–१ । दिहि–३ । दिस–४-५ । हम सूँ–३-४-५ । सूँ–२ । ठौर–१ । परगट–१-५ । उठि–१-५ ।

शब्दार्थ—गंग जमन मधि मुकति फल=इडा-पिगला के बीच सुषुम्ना मे प्राण आधारित करने पर मुक्तिरूपी फल मिलता है । ता सुख मे=विषय-वासना के सुख मे । भौ=संसार । दीदार=दर्शन, आत्मपरिचय । परस्या=मिला, प्राप्त किया ।

साजिनिवाजि निरभैकरण, भरम विथा भै दूरि ॥
परम पुरष परदुषहरण, हरि जहाँ तहाँ भरपूरि ॥६॥
अरस परस आनंद सदा, थक्या आंन सब गोंण ॥
हरि समरथ सुष निभर भरि, कीमत करै स कौंण ॥७॥
निरगुण का गुण का कहूँ, कथिये कहा अकथ ॥
अकल तुम्हारे आसिरे, सकल भवन समरथ ॥८॥
गंग जमन मधि एकरस, सुष में सुरति निवास ॥
जोगारंभ लागा रहै, त्रिवेणी तटि वास ॥६॥
परापरै परसिध पुरष, माया रहैत अभंग ॥
सेवग की सेवा करै, साध तहाँ परसंग ॥१०॥
नानाविधि सुणि सुणि असुणि, बहु विधि करै विचार ॥
जन हरीदास लहि लहि अलहि, हरि अवगति अपरंपार ॥११॥
त्रिविध ताप संसौ न सूल, परमभेद आनंदमूल ॥
उदै न अस्त आवे न जाइ, सकल वियापी सहज भाइ ॥१२॥
मोह दोह आसा न पास, बरणविबरजित सुयंप्रकास ॥
काम क्रोध त्रिष्ना न ताप, ग्यान ध्यान जोगी न जाप ॥१३॥
तात मात सांसो न संक, साह वैद रोगी न रंक ॥
घट घटा रसना न रीति, ऊँच नीच परसै न प्रीति ॥१४॥
निरालंब निरलेप राइ, रहण डसण वप नहीं ताहि ॥
धरणी गिगनि समंद न हीर, जल ज्वाला मछी न कीर ॥१५॥

पाठभेद—गोंन–२-३-५। सू–२-३। निरगुन–१। भुवन–१। येकरस–२। रहत–३-४-५। वहो–३-५। अपरम–४। त्रिवधि–२-३-५। असत–२-५। संसो–१। ग्यगनि–२।

शब्दार्थ—साजनिवाजि=सब सामग्री का दाता। भरम=सत् मे असत्, असत् में सत्। विथा=जन्म-मृत्यु की पीड़ा। भै=द्वैतभय। थक्या=हारा। गंग जमन=मन प्राण, इडा पिंगला। जोगारंभ=चित्तवृत्तिनिरोध। त्रिवेणी=त्रिकुटी। अभंग=अविभक्त। त्रिविध ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक। सांसो=सशय। रसण डसण= रसना का स्वाद।

पुरिष नारि श्रवणां न सास , पांन पान इन्द्री न आस ॥
गुण गीत नाद न्यारा न नेह , हरि वृद्ध बाल छोटा न छेह ॥१६॥
तेजपुंज निहचल निवास , बाहरि भीतरि ज्यूँ आकास ॥
जन हरीदास भजि सहज भाइ, सकल वियापी राम राइ ॥१७॥

अस्तुति इंदव छन्द

सुतो हरि हुवा न होसी न आवे न आया , हितहीन बितहीन भूषा न धाया ॥
ग्यानेन ध्यानेन वरणै न भेषं , अकजै न काजे न रूपे न रेषं ॥१८॥
सिध ही न साधेन सेवा न पूजा , गुरहीन चेला न एकै न दूजा ॥
घटहीन पटहीन नटहीन बाजी , नैंडा न न्यारा न रूसै न राजी ॥१९॥
नादेन विंदेन सिधि न गाई , छलहीन बलहीन मारै न षाई ॥
धरती न गिगने न चंदे न सूरा , सिलतान सिन्धेन वोछा न पूरा ॥२०॥
उपजे न विनसै न त्रिधै न वालं , करणा न क्रोधं न काया न कालं ॥
घरहीन वनिता न वस्ती न सून्यं , रसिया न रोगी पापै न पुन्यं ॥२१॥
जपहीन तपहीन कुलहीन लाजै , मतिहीन मुगधै न रुतहीन गाजै ॥
मरिहीन मारै न जीवैंन जौंरा , रनहीन वनहीन वाड़ी न भौंरा ॥२२॥
आदे न अंतहीन वारै न पारं , वीजै न वकला न मीठा न षारं ॥
वंधहीन मुकता न कलपै न कहरं, निरभै न भैहीन मिश्री न जहरं ॥२३॥
जरणा न जोगी न इच्छया न वाचै, नरहीन नारी न हीरा न काचै ॥
गुणहीन गाथा न भरमै न भेदं , तनहीन त्रासै न कंधहीन छेदं ॥२४॥

पाठभेद—त्रिध-१ । सहजि-२-३ । गुरु-१ । गगने न-४-५ । वृद्धे न-३-४ । पुनि-४ । मुग्धै-१ । अंछचा-४ ।

शब्दार्थ—छेह=अन्त, पार । सहज भाइ=स्वभाव, सहजवृत्ति से । रूसै=नाराज । सिलता=सरिता, नदी । सिन्धे=समुद्र । मुगधै=मोहित । रुत=ऋतु, मौसम । जौरां=बल, मद । कहर=काल, क्रोध । वाचै=वाणी का विषय । कंध=(धड़) ग्रीवा ।

वपहीन विनसै न ग्रभै न मूलं , मंत्रै न वैरी न संसै न सूलं ॥
रिणहीन राजा न सेन्या न साथी , मुलकै न माया न असहीन हाथी ॥२५॥
राचै न विरचै न रीझै न रोवे , मनहीन मौनी न मैला न धोवे ॥
रहता न बहता फूटा न सारं , सुषहीन दुषहीन चिंता न चारं ॥२६॥
थितहीन थांनै न आसा न पासं , बैठा न चलिहै न देवे न दासं ॥
सूद्र न षत्रीन विप्रेन वंसै , गिरहीन तरहीन सरहीन हंसै ॥२७॥
जरणा न षीजै न कणहीन छोहो , इंद्री न धाते न मांसै न लोही ॥२८॥

दोहा– वारपार मति गति अगम , परै न पहुँचै हाथ ॥
जन हरीदास सो कौंण है , भरे आभ सूँ बाथ ॥२६॥
मसि कागद पहुँचै नहीं , अगम ठौड़ है लोइ ॥
जन हरीदास ऐसी कथा , जाणें विरला कोइ ॥३०॥
जन हरीदास अवगति अगम, जहाँ भ्रांति नहिं छोति ॥
हम बात तहाँ की लिखत हैं , कर लेषणि विण दोति ॥३१॥

॥ इति निरञ्जनलीला जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—मित्रै–१ । च्यंता–२ । थितिहीन–१ । छत्रीन–२ । विनि–४ ।

शब्दार्थ—मत्रै=मित्र, सखा । रिण=युद्धभूमि । अस=अश्व, घोडा । राचै=आसक्त, अनुरक्त । विरचै=विरक्त । थित=स्थिति । पास=बन्धन । षीजै=क्रोध करे । छोही=छिलका, तुस । आभ=आकाश, बादल । मसि=स्याही । छोति=छुआछूत, अस्पृश्यता । दोति=दवात ।

॥ अथ साधचाल मोतीदाम छंद ग्रन्थ ॥

पाँच अटकि उलटा चलै, डोरै लागा जाय ॥
येक दिहाड़ै साच मैं, सहजै रहै समाय ॥१॥
आपा का ईंधण करै, काम क्रोध फुनि छार ॥
येक दिहाड़ै साच में, सहजि मिलै भरतार ॥२॥
आपै न चढणाँ, वादै न करणाँ ॥
निरति सूँ चालिवा, सुरति सूँ बोलिवा ॥३॥
काम कूँ ग्रासिबा, मिथ्या न बोलिवा ॥
तीनि गुण षाइबा, रवि ससि मेलिबा ॥४॥
परम पद पाइबा, नौ नाथ नाथिबा ॥
सात सागर सोषिवा, नौसे नदी उलटिवालिबा ॥५॥
प्राण पुरिस पोषिवा, बहत्तर छाजा न षेलिवा ॥
दुष सुष मेटिबा, सुर तैतीस तारिवा ॥६॥
अहुं मेव मारिवा, गिगन चढ़ गरजिवा ॥
इन्द्र उपदेसिवा, अथाह थाघिवा ॥७॥
अदिष्ट विचारिवा, कोड़ी सूँ न षेलिवा ॥
हीरा न हारिबा, अरथ का नेत्र उघाड़िबा ॥८॥
अनरथ न पालिवा, सील संतोष की सनाह अंगि पहरिवा ॥
सुमिरण की सौंज लेवा, अगम कूँ चालिवा ॥९॥

पाठभेद—एक–३-४-५। खेलिवा–१।

शब्दार्थ—अटकि=रोककर। डोरे=सुरति रूप धागे से। दिहाडे=दिन। आपा=गर्व। निरति=निरख कर, देखकर, निराधार वृत्ति। सुरति=ध्यानमय, साधार वृत्ति। रवि=प्राण, इडा। ससि=मन, पिंगला। नौ नाथ=नवद्वार। सागर=रसादि सप्त धातु। नदी=नाडियां। बहत्तर=बहत्तर कोठे। अहु=आपा। गगन चढ गरजिवा=निराधार वृत्ति से अनहद नाद। थाघिवा=थाह लेना। कोडी=मायिक पदार्थ। हीरा=मनुष्यजन्म (ब्रह्मरत्न)। अरथ=सत्यज्ञान। सनाह=कवच।

धरचा में अधर दरसिवा , सुष कै स्यंधि पैसिवा ॥
परम जोति परसिवा , पाँच परमोधिवा ॥१०॥
मेर चढ़ि बोलिवा , काया गढ़ सोधिवा ॥
मन कूँ कंचन ज्यूँ तोलिवा, सुरति सहज घर आंणिवा ॥११॥
मान अमान एक करि जांणिवा, काची सराफी षोटा न लेंणा ॥
मंहगे मोल का मन है रे , अवधू सुँहगा न देंणा ॥१२॥
सतगुरु सवदां षेलिवा , कलस मैं कूप आंणिवा ॥
नीर उलटेगा पालि सोषेगा , तव परापरै परमभेद जाणिवा ॥१३॥
विहंगम उलटेगा मालै में आवेगा, त्रिछ कुँ ग्रासिवा परमभेद पावेगा ॥
मैं तैं मेटिवा मेर में वसुधा रोपिवा, गगनमंडल की गुफा में पेसिवा ।१४।
धोषे न धोषिवा मूलकँवल दिष्टि रोपिवा, पीव का मिलाप कूँ तरसिवा ॥
अगम पियाला पीयवा , अलेष पुरस परसिवा ॥१५॥
अलेषं अथाहं उंडौ अपारं , वसुधा न गगनं ज्वाला न धारं ॥
पाणी न पवन वारै न पारं, चंदै न सूरं द्योसे न राती ॥१६॥
काया न माया न पूजा न पाती, संसै न सोगं न भोगं न रोगं ॥
जोगैं न वाणीं न , जाएयों न जांणी ॥१७॥

पाठभेद—प्रम–१ । सरापी–३-४-५ । गिगनि–१ । दिसटि–३-४ ।

शब्दार्थ—धरचा मे अधर दरसिवा=स्थूल शरीर मे आत्मतत्व देखना । पाँच=ज्ञानेन्द्रियाँ । परमोधिवा=उपदेश देना । (अन्तर्मुख करना) सुरति=वृत्ति । काची=नकली । सुँहगा=सस्ता । ऊँडो=गंभीर, गहरा ।

मेर चढि बोलिवा=दशम द्वार मे प्राण का निरोध कर अजपा जाप करना ।

१३ वी साखी=सतगुरु के शब्दो को धारण कर प्राणरूपी कलश मे ब्रह्मनिश्चय-रूपी कूप लाना । वृत्तिप्रवाहरूपी नीर उलटेगा, आत्मपरक होगा तब विविध वासना-मय पाल समाप्त होगी और परापर विशुद्ध चेतन का रहस्य जानेगा ।

१४ वी साखी—मनरूपी पक्षी बाहर से पलटकर अन्तर्मुखी होगा । माले में-अपने आत्मस्वरूपरूपी घोसले मे आवेगा तब विविध भोगेच्छारूपी वृक्ष को उखाड़ेगा और आत्मज्ञानरूपी परम रहस्य का भेद पावेगा ।

मेर मे–दशम द्वार मे वृत्तिमय वसुधा को स्थित करना । गगनमंडल हृदयरूपी गुफा मे मन का प्रवेश कर समाधिस्थ होना ।

नमो देव करणामई , परमदेवाय नमो ।।
अथघ थाघ्यो न जाइ , अगम भेवाय नमो ।।१८।।

पार उर वार तिस थाह नांहि नमो , मोह ममता नहीं धूप छांही नमो ।।
समद गिगन नांहि जड़ता जोगं नमो, मेर गिरवर नहीं भोग रोगं नमो ।१६।
डाँण डाकर नहीं घणो थोड़ै नमो , ग्वाल नहीं ग्वालणी कंस जोड़ं नमो।२०।
जनम जठरा नही त्रिध वालं नमो , आइ जावे नहीं नदी नालं नमो ।।
उठि वैठे नहीं जागि सोवे नमो , आदि नहीं अंत नहीं त्रिघ्न होवे नमो ।२१।
परसि परिवार नहीं रोसे रंगं नमो, निकट निरलेप निज साध संगं नमो ।।
गहर गुण रूप गुण तीन नांही नमो, षंड ब्रह्मंड सब तुझ मांही नमो ।।२२।।
गहर गलता न करमो न काया नमो, अगम असथांन निज भेद पाया नमो ।।
अमर असथूल वरणं न वासं नमो, सकल सिरि साच आसा न पासं नमो ।२३।
सवद नहीं स्वाद सरवंग सांई नमो, करण करतार मैं तुझ तांई नमो ।।
वाद बकवाद विटरूप नाँही नमो, परम निज रूप सर्वज्ञ सांई नमो ।।२४।।
दिष्टि नहिं मुष्टि देवै न दासं नमो, डाल नहीं मूल नहीं नांव नासं नमो ।।
अमर अजरा जनमैं न जाया नमो , अषंड करणामई राम राया नमो ।।२५।।

जन हरीदास अंतरि अगहि , परम भेद निज रूप ।।
बाहरि सुषसागर मैं अणसरचा , ते उलटि न झाँकै कूप ।।२६।।

।। इति साधचाल मोतीदाम छंद जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—वैसे-१ । विघ्न-१ । गहैर-३-४ । अस्थान-१-५ । अस्थूल-१ ।

शब्दार्थ—अथघ=अथाह । डांण डाकर=दंड, टैक्स, लाग । रोसे=क्रोध । विट-रूप=विकृत रूप, बहुरूपिया । अणसरचा=प्रवेश नही किया । झाके=देखे

॥ अथ अगाध अचरज जोगग्रन्थ ॥

गोरष हणूँ भरथरी सुषदेव, सिध सनकादिक सुषसारं ॥
नारद संकर मुनि ब्रह्मादिक, अगणित साध परस भये पारं ॥१॥
चंद सूर कीया दोइ दीपक, करि तारामंडल करतारं ॥
अनंत लोक विसपाल विसंभर, सकल' सह्याया तो सारं ॥२॥
रूप न रेष भरम नहिं भंजन, ताहि भजौं भजि भ्रमजारं ॥
बेद कतेब कहै दोइ बाताँ, दोइ आगै नर निसतारं ॥३॥
ग्यांन न ध्यान पाप नहिं पुनियर, अधर अलेष नहिं चकचालं ॥
भेद अभेद अरीझ अछेदं, सुनि सदा रस रहतालं ॥४॥
राज न रीति प्रीति नहिं परघत, कलपि न झलकै करतारं ॥
रमता राम सकल विसव्यापी, निरषि निरषि सो निरधारं ॥५॥
निज निरसिघ अगहै अभि अंतरि, अकल अनूप नहिं त्रिध वालं ॥
धरणि अकास व समंद सुमेरं, लष चौरासी प्रतिपालं ॥६॥
उपजि न विनसै जागि न सोवे, आलस नींद न आकारं ॥
पुरष न नारि करै नहिं क्रीड़ा, अगम अगोचर ततसारं ॥७॥
गाँव न ठाँव विघन नहिं वासं, सास उसास न नौद्वारं ॥
पूरण ब्रह्म परम सुषदाता, आस उदास न आचारं ॥८॥
× नौ से नदी बैहतरि छाजा, इन्द्री पांच न चित चारं ॥
पेट न पीठि नैन नहिं नासा, हाथ न पांव न घट धारं ॥९॥
जोति न छोति सूँनि नहि संकट, तेजस पुंज न भूभारं ॥
भेष अरेष अलेष अदेषं, आदि अषंडित अवजारं ॥१०॥

पाठभेद—दीपग-२-३-४। चितचालं-२। विस्व-१।

शब्दार्थ—हणूँ=हनुमान। विसपाल=जगतपालक, दुःख से रक्षा करने वाला। कतेब=कुरान। चकचालं=चक्र की तरह घूमने से रहित। विस=विश्व, व्याप्त। वासं=निवास, लेशमात्र। छोति=स्पर्श रहित। अरेष=असीम, निराकार।

× नौ से नदी=नौसे नाड़ियाँ। वैहतरि छाजा=बहत्तर कोठे।

वार न पार मुनि नहि वकता , अगहि अकहि तहाँ धुनि धारं ॥
ऊँच न नीच वरण नहि अवरण, कहर न व्यापै तसकालं ॥११॥
अवगति अगम अगैह अभि अंतर, नाथ निरञ्जन निरकारं ॥
गरजै गगन मगन मन उनमनि , निसदिन दरसै दीदारं ॥१२॥
निज निरलेप सकल जुग करता , सकलस पोषै सुष न्यारं ॥
सकल निरंतर सरमन व्यापै , आनंदरूप अगम पारं ॥१३॥
दिष्टि न मुष्टि ग्यान नहि गुष्टि , संकट व्रत न विणजारं ॥
नेह न गेह भोग नहि रोगं , जटा न जोगी नभ नालं ॥१४॥
सीत न धूप मीन नहिं पांणी , कीर न डालै किस जालं ॥
स्याम न सेत रगत नहिं रेतं , तरवर मूल न तिसडालं ॥१५॥
भवण न गवण पिता न सहोदर , मोह न दोह न परिवारं ॥
परम उदार परम निधि निरभै , निज चिंतामणि चितधारं ॥१६॥
अरध न उरध जोग नहिं जापं , अजर अजोनी ×तसभालं ॥
अगम अथाह परम सुषसागर , नाथ अनाथं प्रतिपालं ॥१७॥
ज्यूँ आकास सकल भंजन जल , सब मैं दीसै आकारं ॥
हाथ गह्या कांई गहत न आवे , यूँ सब घट मैं घटधारं ॥१८॥
निरभै निरवांण अषिल अविनासी, अबरण बरण न विसतारं ॥
दीरघ लघु लोभ षिम्यां नहि षींजै, हरि निरसिध निकट न्यारं ॥१९॥
निरगुण निरधात गात गुण नांहीं , निज निरमूलस निज सारं ॥
जोग न भोग पाप नहिं पुनियर , पूत अऊतन परिवारं ॥२०॥

पाठभेद—अगह-अकह–१-३-४ । सुरमन–१ । गुष्टं–१ । तसडालं–१ । च्यंतामणि–२ । ज्यो–१ । यो–१ ।

शब्दार्थ—मुनि=मौनि । कहर=क्रोध । तसकालं=काल का काल । सरम=श्रम, थकावट । गुष्टि=गोष्ठी, विचार द्वारा । व्रत=वृत्ति-आजीविका । विणजारं=व्यापार । नालं=अल्प नही । कीर=धीवर । रेतं=वीर्य । काई=कुछ । गहत=पकड़ मे । निरधात=रजवीर्य रहित । ×तसभालं=उसको देखो ।

वल नहिं अवल निरूप निरषर , सदा सनेही सुषसारं ॥
निड़र निराट विराट अनंत हरि , सब कुछ करि सब तैं न्यारं ॥२१॥
अधर अरूप अथाह अजूंनी , अनंत अमूरति अवजारं ॥
दीनदयाल काल नहिं करणा , त्रिविधि न व्यापै ततसारं ॥२२॥
हरपति प्राण सदा संगि समरथ , परसि परमतत भै पारं ॥
उदै न अस्त आंन नहिं अटपट , तरवर मूल न इलधारं ॥२३॥
सुभ नहिं असुभ गिणत नहिं अगणित, भष नहिं अभष मधुर षारं ॥
विक्रत नहिं विकल अकल अभि अंतर, तन मनसा मन तहाँ धारं ॥२४॥
इम्रत नहिं जहर कहर नहिं करणा मनहिं अमर न औतारं ॥
नर नहिं अनर अजर अमरानंद , है पण सारां सिरसारं ॥२५॥
वल नहिं अवल अचल नहिं चंचल, धर नहिं अधर न अहंकारं ॥
लालच नहिं लोभ भ्रम नहिं निहभ्रम, नट बाजी करि नट न्यारं ॥२६॥
निरमल निरछोह निरास निरंतरि , निज तत तहाँ निज मन धारं ॥
संकट नहिं सरम करम नहिं अकरम, भरम न व्यापै तिस भारं ॥२७॥
परम जोति परकास परमसुष , अगम अगम सोई उर धारं ॥
ऊँच न नीच वरण नहिं अवरण, गति नहिं अगति न है कारं ॥२८॥
सकल वियापी अलष अप्रंपर , लष नहिं अलष न मै मारं ॥
परम उदार अपार अषंडित , रटि रसना रटि ररंकारं ॥२९॥
अगैह अकैह उर तैं अवजारण , सूँनिमंडल में सहज प्रकास ॥
जन हरिदास पति परसि परमसुष , अरिदल जीति अभैपुर वास ॥३०॥

॥ इति अगाध अचरज जोगग्रन्थ संपूर्ण ॥

पाठभेद—अजोनी–१ । समथ–२-३-४ । विकरत–१-३-४ । अमृत–१ । अमर–३ । भरम–२-३-५ । प्रकास–१-५ । वर्ण–१ । अपरंपर–१ । सूंन–१ ।

शब्दार्थ—निराट=निपट, कतई, बिल्कुल । अजूनी=अजन्मा । करणां=करुणा । आंन=अन्य । इलधारं=पृथ्वी का धारक । निरछोह=क्रोधरहित । अप्रंपर=अपरम्पार ।

॥ अथ जोगसंग्रामजोगग्रन्थ ॥

जोगी ग्यान षड़ग करि धारै, मनसा जीति मनोरथ मारै ॥
आसण छाड़ि अनत नहिं जाइ, ता संगि रमै निरंजन राइ ॥१॥
दीरघ रोग विवोग निवारै, कौड़ी सटै न हीरा हारै ॥
परधन हरै डरै नहि लोइ, आपा डारै तो यूँ होइ ॥२॥
विषया विष तजौ भजौ हरि वीर, सूँनिमंडल में निरभै नीर ॥
ऊँच नीच सब सूँ समभाइ, मन वच कम तहाँ मन लाइ ॥३॥
निरभै नृवांण परम सुषसार, आदि अनादि वार नहिं पार ॥
जुरा न व्यापै काल न षाइ, हम कूँ सतगुर दिया बताइ ॥४॥
अलष अभेद गहर गुणग्रामी, प्रांणनाथ हरि अंतरजामी ॥
कोई ग्यानी लहै ग्यान गुर औरे, षीर नीर ज्यूँ सब ही ठौर ॥५॥
भजि भगवंत असुर अरि मारि, सूँनिमंडल में मंढ़ी सँवारि ॥
ताली लागी बैठा मांहि, गंग जमन जल पीवै नांहि ॥६॥
मोह द्रोह मैं तैं करि दूरि, रमता राम रह्या भरपूरि ॥
व्यापक अंगनि बसै सब मांहि, गुर विण गैला लाभै नांहि ॥७॥
अप्रवांण निधि अगम विचारै, आप तिरै साथी संगि तारै ॥
पवन पियाला उलटा धरै, भरि भरि पीवै अजराजरै ॥८॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी, जुरा न जनम भोग नहिं रोगी ॥
परच्याँ घटै न दिया जाई, सोई वित चित में रह्या समाई ॥९॥

पाठभेद—यो-१-३। स्यो-१। ल्यौ-३। निरवाण-१-५। षाय-१। सतगुरु-१। सतगुरि-२। प्राननाथ-१। अंतरिजामी-१। ज्यौ-१। सून-१। गुरुविण-१। द्रोह-१। संग-१-५।

शब्दार्थ—अनत=अन्य, दूसरी जगह। दीरघ रोग विवोग निवारै=आत्मतत्व के वियोगरूपी दीर्घ रोग का निवारण करे, जन्ममृत्युरूपी दीर्घ रोग। परधन हरे=साधना द्वारा ब्रह्म के सत् चित् आनन्दरूपी धन को प्राप्त करे। नृवाण=गतिरहित, मोक्षरूप। गुरऔर=गुरु सम्मुख। ताली=लगन, समाधि। अप्रवाण=प्रमाणरहित। वित=धन।

८ वी साखी—पवन पियाला उलटा धरे=प्राण को सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे स्थित करे।

काल न जाल जीव नहिं जाया , नट ज्यूँ घट धरै न घट धरि आया ।।
पूरण ब्रह्म परसि पति प्रांण , दुरमष पड़ै न जम ले डांण ।।१०।।
ग्रह वैराग न विरह विवोगी , पाप पुनि परवेस न भोगी ।।
उलटी सुरति सूँनि मैं धारि , तब जाइ दरसै देव मुरारि ।।११।।
थिर नहिं अथिर अरूप अछाया , निरगुण निरधार निरंतर पाया ।।
गरजै गिगन मगन मन लोई , हरि कूँ भजै सो हरि सम होई ।।१२।।
षिर नहिं अषिर सरम नहि सोग, वप नहिं विथा वैद नहिं रोग ।।
जहाँ प्रगटै तहाँ ऐसी करै , अवरण अगनि विथा वन चरै ।।१३।।
आस उदास मोह नहि माया , ग्यान विग्यान धूप नहिं छाया ।।
करम किंवाड़ी कल सूँ षोई , है तो सही लहैज कोई ।।१४
संकट नहि सरम भरम नहि भेद , जठरा नहि जुरा कंध नहि छेद ।।
सकल वियापी सब तैं दूरि , अवगति जहां तहां भरपूरि ।।१५।।
छल नहिं अछल चिंत नहिं चाही, घट पट अघट भरम नहिं ताही ।।
तज अभिमान अगैह यूँ गहणाँ, जागि लागि नर उनमनि रहणाँ ।१६।
ड़र नहिं निड़र निरगुण निजरूप, उदै न अस्त सीत नहिं धूप ।।
घर नहि अघर पुरष नहिं नारि , परपंच प्रीति जीति नहिं हारि ।।१७।।

पाठभेद—गृह्–१-३ । प्रवेस–१-५ । गिगनि–१ । स्यों–१ । यौ–१ । असत–२-३ । पुरिष–१ । प्रपंच–१ ।

शब्दार्थ—षिर नहि अषिर=क्षराक्षररहित । सरम=श्रम, थकावट । वप=वपु, शरीर । कल=कला-अभ्यास, ज्ञान-कर्म-भक्ति । चाही=चाहना ।

११ वीं साखी—उलटी सुरति सूंनि मे धारि=वृत्ति को अन्तर्मुख कर शून्य-ब्रह्मस्थान में धारण करे ।

१२ वी साखी—गरजै गिगन मगन मन लोई=अनहद नाद मे लगकर मन मगन-मस्त हो जाय ।

१३ वी साखी—जहां प्रगटै तहां ऐसी करै , अवरण अगनि विथा मन चरै=जिस घट मे ज्ञानाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है, उस घट मे ऊपर कथित स्थिति उत्पन्न हो जाती है । ज्ञानाग्नि वर्णविहीन है–उसका स्थूल रूप नही है, उसके प्रकट होते ही सासारिक व्यथाओ का वन दग्ध हो जाता है ।

नरहरि भजन अहोनिसि करै, ताहि जालै अगनि न मार्‍या मरै ॥
संकटि पड्याँ साथ रुघनाथ, जहां तहां जन कै सिर हाथ ॥१८॥
उलटा षेलि अपूठा आवे, जैसी भूष तिसा भरि भावै ॥
निरभै निज नांव निरंतरि रह्या, सापणि डसै न परलै बह्या ॥१९॥
अनरथ अनंत तहां जीव जाइ, ता कूँ सरप सदा संगि षाइ ॥
जहर दाढ़ि कंठ लागी दोइ, राम भज्यां नर निरविष होइ ॥२०॥
बैसि निरंतर अलष जगावै, आसण अमर अगम घर पावे ॥
भूषा रहै न धापि न षाइ, मनसा चलै न परघरि जाइ ॥२१॥
ब्रह्म अगनि मैं काया दहै, मन चंचल निहचल होइ रहै ॥
काम क्रोध का झड़ै जंजीर, परमस्यंध जहाँ जाल न कीर ॥२२॥
वार पार नहि अगम अछेह, धरती बरसै अंबर तेह ॥
नृमल धार अपार अनंत, ता सुषि लाग रहै सब संत ॥२३॥
निगम अगम गुर गमि गम होइ, पवन नीर लै अंबर धोइ ॥
रमताराम निरंजन राइ, राषी बसत साह कूँ षाइ ॥२४॥
परम उदार अपार अनंत, अवरण वरण अगैह भगवंत ॥
उलटी गंग जमन मैं आंणि, तोहि पिछांणैं ताहि पिछांणि ॥२५॥

पाठभेद—जिन–१। अनर्थ–१। कठि–२-४। परमसिंध–३-४-५। निरमल–१। सुष–३-५। अवर्ण–१। वर्ण–१।

शब्दार्थ—सापणि=माया। अनरथ अनत तहाँ जीव जाइ=अनन्त संसारी-पदार्थों में जीव जाता है। सरप=काल रूपी सर्प। ब्रह्म अगनि=ब्रह्मज्ञान। झड़ै=झड़ जाय।

२० वीं साखी—जहर दाढि कंठ लागी दोइ=रागद्वेष रूपी दो जहर भरी दाढ मन में लगी हुई है।

२३ वी साखी—धरती बरसै अबर तेह=धरती–सद्वृत्ति हृदयाकाश मे आत्मानन्द की वर्षा करती है, उसकी सरसता हृदय मे बैठती है।

२४ वी साखी—पवन नीर लै अबर धोइ=प्राणायाम साधना रूपी जल से हृदय के कल्मष की शुद्धि करे, मन निर्मल करे। राषी बसत साह कूँ षाइ=वासनामय साहूकाररूपी मन सांसारिक-भोगो की इच्छा रखता है–वह इच्छा या वासना ही उसका काल है, भोगो के फल प्राप्त करने को जन्ममृत्युमय कारण बनता है।

२५ वी साखी—उलटी गंग जमन मै आणि=मन रूपी गङ्गा को यमुना रूपी प्राण मे लगाओ।

ग्रिह वन नहि तहाँ मठ छाइ, वंकनालि इंम्रत रस षाइ ॥
ग्यान गुफा मैं आरंभ करै, जोगी जीवै जोरां मरै ॥२६॥
भौ सागर ड़र अनंत अपार, ता तिरिवे कौ इहै विचार ॥
मन विष छाड़ि विसंभर भजौ, काम क्रोध विषया विष तजौ ॥२७॥
परमानंद परम सुषसार, ताहि भजौ भज तजौ विकार ॥
जामण मरण जुरा भै डरणा, अब मरि साहिब मारग सिर धरणां ॥२८॥
काहू सूरवीर का काम, काइर कदे कहै नहिं राम ॥
मांड़ि संग्राम घाव घटि सहै, परदल जीति परम गति लहै ॥२६॥
जुग मैं इहै जोग संग्राम, कोई करौ आपणां काम ॥
ए पासा चौपड़ि ए सारि, अबकै जीत जाहु भावै हारि ॥३०॥
जन हरीदास कहै मंत एह, वड़ निधि हाथ चढी नर देह ॥
गोविन्द भजौ राम की आंण, वहोड़ि न लागै जम का वांण ॥३१॥

॥ इति जोगसंग्रामग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—गिरह-१। भव-१। तरिवे-१। ये-२। वहुडि-१।

शब्दार्थ—वंकनालि=श्रुति, सुषुम्ना। मंत=मन्त्र। एह=यही। आण=सौगन्ध।

२६ वी साखी—ग्रिह वन नही तहाँ मठ छाइ=शरीररूपी, घर संसाररूपी वन को छोड, भौतिक पदार्थो का त्याग कर आत्मरूप चेतन मे घर बनावे, स्थिति करे। वंकनालि इम्रत रस षाइ=मेरुदण्डगत सुषुम्ना द्वारा प्राण को सहस्रारदल-ज्ञान-चक्र में स्थिर कर समाधिस्थ हो आत्मस्वरूपप्राप्ति रूपी परमानन्ददायी अमृत रस का पान करे। अब मरि साहिब मारग सिर धरणा=अब जीवन्मृत हो परमेश्वर-प्राप्ति के मार्ग को ही शिरोधार्य कर।

॥ अथ अष्टपदी जोगग्रन्थ ॥

हम हेरूँ अवगति कूँ हेरैं, जाता मन कूँ उलटा फेरैं ॥
महादेव का मता पिछांणैं, मन दसूँ दिसा तैं उलटा आंणैं ॥१॥
मनसा देवी सब कूँ षावे, हम कूँ मनसा सांच बतावैं ॥
हम जोगी जोग जुगति गमु जांणे, वहती नदी अपूठी आंणे ॥२॥
पवन गोटि का पारा बांधे, उलटी सुरति गिगन कूँ सांधैं ॥
काम क्रोध का मूल उपाड़ै, गगनमंडल मैं आसण धारैं ॥३॥
अगम पियाला भरि भरि पीवैं, रुप अरूप विचारत जीवैं ॥
हरि सुषसिंध तहाँ भै नांहीं, हरिजन हंस बसै ता मांही ॥४॥
परम जोति अंतर मन राषै, ×हरि हीरा विण चुणि न भाषै ॥
जन हरीदास निज निरषिये, मन की ठौड़ उठाइ ॥
सुरति सुलटि उलटा चढ़ै, तौ अगम तहां चलि जाइ ॥१॥
लहिये अगम निगम तैं आगे, अंतरि नींद नेत जब जागे ।
*ससिहर कै घर सूर समावे, उलटि कवल कँवलापति पावे ॥
सब मैं राम दूर हरि नांहि, ज्यूँ ज्वाला काष्ठ घृत पै मांहिं ।
यहु निज सुष जाग्या सो जांणै, सूता अरथ कहां सूँ आंणै ॥

पाठभेद—सुषस्यध-२ । सिसहरि-१ । ज्यौ-१ । कासट-२ । स्यो-१ ।

शब्दार्थ—हेरूँ=खोजी, तलाश करने वाला । महादेव का मता पिछाणे=शकर का मत है-निरन्तर चिन्तन, उसको पिछाणे, जाने । मनसा=लालसा, चाह । अपूठी=वापिस । आणे=लावे । सुलटि=सुलभ । नेत=नेत्र । ससिहर=चन्द्रमा के स्थान, इडा-नाडी मे । सूर=सूर्य, पिगला नाडी । कँवल=हृदयकमल-षट् कमल को ऊर्ध्वमुख हो । पै=पय, दूध ।

दूसरी साखी—बहती नदी अपूठी आणै=ज्ञानेन्द्रियो की विषयो की ओर जाने वाली वृत्ति रूप नदी को आत्मस्वरूप प्राप्ति की ओर मोडे-अन्तर्मुख करे ।

तीसरी साखी-पवन गोटि का पारा बाँधै=प्राणप्रवाह को प्राणायामादि की साधना से स्थिर कर उसकी गुटिका द्वारा चञ्चलतामय मनरूपी पारे को बाँधे, निश्चल करे ।

× हरि हीरा विण चूणि न भाषै=विशुद्ध स्थिर हुआ मनरूपी हस स्वस्वरूप-चिन्तन रूप हीरे-मोतियो को छोड़ सासारिक भोगरूपी चुग्गे को अब नही खाता ।

* ससिहर के घर सूर समावे=दशम द्वार मे इडा नाडीरूप चन्द्रमा सहस्रारदल-ज्ञानचक्र मे स्थित है, वहाँ प्राणरूपी सूर्य को समाहित करे, स्थिर करे ।

अगम अथाह वार नहिं पारं, ता का कैसा भेद विचारं।
वरण विवोग रोग नहि जाना, परम भेद ऐसा असथांना ॥
सकल समीपी सकल सुहावा, तीन लोक त्रिभवनपति रावा।
सुषमनि उलटि गगन मैं आंणी, सुनिमंडल मैं षेलै प्रांणी ॥
सुषमनि परमसिंध मैं झूलै, तारुति कँवल केतकी फूलै।
नाभि सरोवर निज जल नेरा, मन मतवाला झूलै मेरा ॥
भागा भरम भेद जब पावा, तब मन उलटि सहज घरि आवा।
गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण।
जन हरीदास हरिसिंध मैं, षेलै साध सुजांण ॥२॥
सो अणभै जोगी नांव अनंता, जटा न जूट पांच नहिं तंता ॥
सकल समीपि अकल निज नांमी, प्रांण अधार गहर गुणग्रामी।
आदि अंति हरि की हरि जांणै, सुनि रूप वहु वाणिक वांणै ॥
आदि न अंति लहै कोई भेवा, सुरति संबाहि परमसुष लेवा ॥
जुरा न जनम आइ नहिं जावा, अगम अथाह थाह को पावा।
तेरू समद तिरण व्रत धरि है, वार न पार कहां लगि तिरि है ॥

पाठभेद—प्रम-१-२। अस्थाना-१। तीनि-४। त्रिभुवन-१। केतगी-१-२। घर-३-४-५। व्रषा-१-२। समीप-५। वहो-५। जन्म-३। लूं-२। तरि-१।

शब्दार्थ—असथाना=अगम स्थान। तारुति=उस समय। कँवल=हृदयकमल। केतकी=ऋतंभरा प्रज्ञा, त्रिकालज्ञ। निज जल=आत्मानन्द। झूलै=स्नान करे। छीलर=ओछा पानी। निवांण=निचाई। अणभै=अनुभव। तंता=तत्व। सकल समीपी=सबका साक्षी। वहु वाणिक=विविध रचना।

गगन गरजि वृषा भई, छीलर भया निवांण=गगन-दशम द्वार मे जब प्राण का स्थैर्य हो अनहद नाद की गर्जना के तत्रस्थ चन्द्रमा द्वारा अमृत की वर्षा होने लगी, तब निवांण—नीचे अकिञ्चन विषय-भोग सब छीलर—महत्वहीन हो गये, निष्प्रभ हो गये।

पंषी उलटि गिगन कूँ धावै , ऊँचा अगम कौंण गम पावै ।
×चेला पांच मिलावणि मेलै , सो परम जोग का घर मैं षेलै ॥
अगम भेद आगा लगू , हरि परम सनेही सोइ ।
अब मन तहाँ विलंबिया , उलटि न पूठा होइ ॥३॥
तस नांव निरंजन अवगति राया, परम उदार परम सुष छाया ।
तरवर अकल अगम फल हूवा , चंचा चोल रहै तहाँ सूवा ॥
कामी काग वहाँ नहि आवै , आसा कीचि उलटि तहाँ जावै ।
सकल समीपि अकल निज पावा , अवरण वरण भिन नहिं भावा ॥
सब सूँ एक रंक क्या राणा , दुष पावे तै करम बंधाणा ।
करम बंधाइ बहुत दुष पावै , चढ्या दिसावरि षोटा षावै ॥
षोटा षाइ मूल मति हारै , रषेन बूड़सि कुल कै गारै ।
कुल करतूति कहाँ लौं करिहौं , जांमि जांमि जामौं फिरि मरिहौं ॥
परपंच प्रीति मोह नहिं दोहा , सरणि उधार परम सुष सोहा ।
हरि सफसफा गहर गंभीरं , नहिं सो षीर नहीं सो नीरं ॥
निरभै निरगुण निज निराकारं , मीठा नहीं नहीं सो षारं ।
तिस परिवार पिता नहि माया , ना ग्रिह करै न काहू जाया ॥
आदि अंत ना उपज न आया , जो उपज्या सो सहज विलाया ।
सहजि विलाया तै सति नांही , ऐसे समझि देषि मन मांही ॥
नहिं आवै नहिं जाइगा , आवै जाइस और ।
निराकार निज रूप है , सो व्यापि रह्या सब ठौर ॥४॥

पाठभेद—मिलावनि–३-४ । मिलावन–५ । जोति–३-४-५ । अविगति– १ । उहाँ–१-३-५ । भिन्न–१ । कर्म–१ । रिषेन–१ । फुनि–१ । त्रिगुण–२ । न्यज–२ । गिरह–१ । सहज–१ ।

शब्दार्थ—रषेन=रखना, कदाचित् । बूडसि=डूबेगा । गारै=कीच । करतूति=करणी । सफसफा=शुद्ध, माया-अविद्यारहित । ग्रिह=घर । जाया=पैदा किया । विलाया=विलीन हुआ ।

×चेला पाँच मिलावणि मेले=जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय रूप मन के चेले है, विषय-प्रवृत्ति मे भिन्न-भिन्न तरह की प्रवृत्तियो में प्रवृत्त होते हैं, उनको मिलावण मेले–एक स्थान मे आत्मस्वरूप की ओर लगावे । जहाँ पाँचों ही एक स्वस्वरूप रूप विषय मे ही रत हो जायँ–लग जायँ ।

तहाँ सीत न धूप गांव नहिं ठांम, परम सनेही मन विश्राम ।
दिष्टि अदिष्ट भेद अभेदं, तरवर डाल मूल नहि छेदं ॥
अजर अरीझ आस नहिं पासं, उतपति षपति नांव नहिं नासं ।
व्यापक ब्रह्म मोह नहिं माया, बेहद पच्या भेद भल पाया ॥
प्रगट गुपत गुपत गोपालं, संकर इष्ट काल का कालं ।
अगम अरूप सांसौ नहिं सोगं, नांव सिरषर भोग न रोगं ॥
हरि है हेम वार नहिं पारं, समद गगनन वेद विचारं ।
मूल अमूल करम नहिं काया, अंतरि अगह परम सुष पाया ॥
सकल समीपि सकल सुष, सकल भवनपति राइ ।
अब मन तहाँ विलंबिया, सो सुष मैं रह्या समाइ ॥५॥
या औसर हरि का होइ रहिये, भवण रच्या सो भूधर कहिये ।
नांव विसंभर विसपति रावा, पूरण ब्रह्म परसि पति पावा ॥
×करता करण चरण चित धारं, दामणि दिष्टं जोति उजारं ।
निज निरलेप निकटि निराकारं, अगम अषंडित अगम विचारं ॥
*ससि परकास्यां तिमिर विलाया, मन भया मगन परम सुष पाया ।
देवाधरदेव तहाँ मन धरिहूँ, मन गहै पवन इहै व्रत करिहूँ ॥
हरि निरस्यंघ निकुल निरधारं, अंतरि निरंतरि निकटि न न्यारं ।
निधि पाई निरभै भया, निधि परम सनेही राम ॥
प्राणी मांही पैसि करि, मनि पाया विसराम ॥६॥

पाठभेद—ठांव-३-५ । दिसटि-२ । गुप्त-३ । इसट-२ । निरक्षर-३-४ । अगहिं-२ । भुवण-१ । प्रसि-१ । च्यत-२ । निकट-१ । प्रकास्यां-१ । हौ-१ । न्यकुल-२ । न्यधि-२ । विश्राम-३-४ ।

शब्दार्थ—दिष्टि अदिष्टि=रूपरहित । अरीझ=अनासक्त । पासं=बन्धन । सांसो=संशय । सोगं=शोक । हेम=सुवर्ण की तरह शुद्ध, शीतल । विलंविया=लगा । भवण=संसार । देवाधरदेव=देवताओं का उपास्य देव । गहै=पकड़े । निकुल=वंशविहीन, अजाति ।

× वही कर्त्ता है, वही करण साधन है, उसी के चरणो मे चित्त लगाओ ।

* ससि-मन ज्ञान-ज्योति से प्रकाशित होने पर मल, विक्षेप, संशयरूपी तिमिर नष्ट हो गया ।

गहि गुर ग्यान अगम कूँ ध्यावै , अगम अथाह थाह कोई पावै ।
घटि घटि अघट सकल घट सोई , गुर गमि तास लहै जन कोई ॥
उलटा षेलि सहज घरि आवै , धुनि मैं ध्यान तहाँ मन लावै ।
अविगति अगम अगम गमि कीया , नौ ग्रह पलटि गिगन रस पीया ॥
जा रसि मुनि जन रह्या समाई , तारसि रुचि मन उलटि न जाई ।
आपा गलित मिथ्या अभिमाना , अब हम जान्यां जान सुजाना ॥
दरिया रूप वार नहिं पारं , ता मैं मछला प्राण हमारं ।
काल न जाल नहीं भै नेरा , झूलै षेलै मंझि बसेरा ॥
सहजि पियाला परम सुष , भरि भरि पीवै प्रांण ।
आतम अंतरि देषिये , अवगति का अहिनाँण ॥७॥
सो परमेसुर प्रथमी प्रतिपालं , करम विपाक हरण अघजालं ।
पारब्रह्म चरणां चित धरिहूं , हरिपति छाँड़ि और नहि वरिहूं ॥
तात न सीत नहीं सो षारं , जुराहरण जगदीस जुहारं ।
गुणग्राही गोविंद गुण गावा , भजि भजि राम परमपद पावा ॥
परमस्थंव मैं प्राणी डारं , उनमनि लागा प्रेम वधारं ।
आतम परआतम सूँ मेलौ , परमहंस सूँ हिलिमिलि षेलौ ॥
परमजोति आचार विचारं , परमसुनि मिलि प्राण उधारं ।
जन हरीदास हरि अगम है , अथघ न थाघ्यो जाइ ॥
तहाँ नामा दास कबीर सा , केता रह्या समाइ ॥८॥

॥ इति अष्टपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—ऊँचो अगम कौंण गम पावै–१ । गम–३-५ । नौग्रिह–३-४ । नवग्रह–५ । जाण्या-जाण-सुजाण–१ । मंझ–२-५ । प्रान–३-५ । प्रमेसुर–१ । वरहूँ–५ । जुरा-हरन–५ ।

शब्दार्थ—गुर गमि=गुरु उपदेश से । धुनि=अनहद नाद । नौग्रह=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्त करण । आपा गलित=देहाध्यास नष्ट । मछला=मच्छी रूप । मंझि=भीतर । अविगत=विगतरहित, अविवेच्य । अहनांण=निशान, चिह्न, प्रतिरूप । तात=गर्म ।

॥ अथ वन्दना जोगग्रन्थ ॥

नमो नमो परब्रह्म, परमगुर नमसकार ।
आतमा अभ्यास, परमात्मा प्राणनाथ ॥
परम पुरिष निरंजन निराकार, निरामय निरविकार निरास ।
अविनासी निराधार एकंकार, अपरंपार उदार ॥
पारब्रह्म करणहार करतार, जगत गुर अंतरजामी ।
अजनमा सरवजांणणहार, अजपा जाप ब्रह्म अगनि प्रकास ॥
अनेक असाध रोग जारणहार, अलिप अछिप निरालंब ।
निरलेप निरदंद निरमूल निरसिंघ, परमजोग परमभोग परमगति निरगुण ब्रह्म ॥
प्रममत प्रमग्यान प्रमध्यान, प्रमतेज प्रमजोति ।
प्रमधाम प्रमविश्राम, अधर अमल × अहल अजर ॥
अतिर अथिर अपिर अपर, अषर अधर मीठा मधुर ।
अरंग अभंग निरंग, निमोह निछोह निभोग ॥
निजोग निरूति निरोग, संजोग विजोग न सांसा नांही सोग ।
हुवा न हौसी न आवै न आया न, जनमै न जीवै न छाया न माया न ॥
जागै न सोवै न भूषा न धाया न, उठै न वैसै न रीझै न क्रोधम ।
जपहीन तपहीन, ध्यानै न बोधम ॥
इन्द्री न ततहीन गातै न धातै न, वनिता न सुतहीन जनमै न तातै न ।
अलष पुरष की आठौं पहर, करै वंदना कोइ ॥
जन हरीदास कालवांण लागै नहीं, हरि भजि निरमल होइ ॥१॥
मन उनमनि लागा रहै, कहाँ संझ्या कहाँ प्रात ॥
जन हरीदास ता साध कूँ, जम करि सकै न घात ॥२॥

पाठभेद—नमस्कार–१ । प्रमातमा–२ । अव–२-४ । अल्यप–२ । प्रमजोग प्रमभोग प्रमगति–१-२ । पुरुष–१ । आठूँ–१ ।

शब्दार्थ—अलष पुरस=ब्रह्म । घात=प्रहार । × अहल=कम्पनरहित ।

सिध साधक की वंदना, ग्यान ध्यान धरि देष ॥
जन हरीदास एक अमरफल कर चढ्यो, अपरंपार अलेष ॥३॥

॥ इति वंदना जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरञ्जन निराकार वंदना ॥

नमो नमो परब्रह्म परम गुर आतमा अभ्यास,
प्रमातमा आलोकन ।
आनंद परमानंद सिध साधिक नमसकार,
नमो नमो रमताराम नारायण नरस्यंघ ॥
सकल निरंतरि नरहरि निरवाण निरविग्रह,
नमो नमो निरामय निरविकारं ।
स्वयंब्रह्म सकल वियापी, निरंजन निराकारं ।
जन हरीदास वंदते एकाकारं, अविनासी अपरंपार उदारं ॥

॥ इति निरञ्जन निराकार की वन्दना समाप्त ॥

॥ अथ निरपषमूल जोगग्रन्थ ॥

गुर सिष सूँ समझाइ करि, भजन बताया राम ।
या सेवा या वन्दगी, यहु आरंभ यहु काम ॥१॥

पाठभेद—आतमा–२-५ । प्रमात्मा–३-४ । नमस्कार–१ । सुयंब्रह्म–३-४-५ । स्यूँ–१ । याह–१ ।

शब्दार्थ—एक अमर फल=स्वस्वरूप प्राप्ति रूप । आलोकन=अवलोकन, देखना ।

झूठा सुष संसार का, कलई का सा रंग।
हौड़ा हौड़ी पड़त है, तामैं जीव पतंग ॥२॥
काहे कूँ परदुष सहे, दूर पड़ेगा जाइ।
मनिषा जनम अनूप है, मन सकै तौ हरि गुण गाय ॥३॥
काम क्रोध त्रिसना तजौ, त्रिविधि ताप गुण देह।
सांई का सुमिरण करौ, परम सयाणप एह ॥४॥
मन अपणां सूँ कहत हूँ, अपणा ग्यान विचार।
गोविंद भजि भरमै कहा, धसि मति डूबै धार ॥५॥
विष पीवै इम्रत कहै, कनक कटोरा मांहि।
याह मरणै की सौंज है, पीवैस जीवै नांहि ॥६॥
निसवासुरि ग्रासै जुरा, मन सोवै कहा गँवार।
लालच तजि मैं तैं मनी, भजि राम नाम ततसार ॥७॥
पाँचो इन्द्री फेरि करि, सुरति सहज घर धारि।
अनंत साध आगै चल्या, सोई राह संभारि ॥८॥
मोह दोह की अगनि मुषि, दाझत है जीव जाइ।
जलत जलत भरमत फिरत, यौं ही गया विलाइ ॥९॥
सूतां सरवस जात है, जागिर करौ विचार।
हरि परम सनेही परमसुष, अगम वार नहिं पार ॥१०॥
जोगी जागै जुग सोवै, मोह महल मैं जाइ।
मोह महल मैं सरप है, जब सोवै तब षाइ ॥११॥
सोवण का सुष और है, जागण का सुष और।
जब जाग्या तब एकरस, तहाँ साधाँ की ठौर ॥१२॥

पाठभेद—मानषा-३। त्रिष्णा-३-४-५। देह-२। निसवासुर-३-४-५। सर्प-३।

शब्दार्थ—होडा होडी=देखादेखी। परदुख=परपदार्थजन्य दुःख। सयाणप=चातुर्य। धसि=प्रवेश कर। कनक कटोरा=मनुष्य देह। दाझत=जलता। सूतां=मोह-निद्रा मे। सरप=वासनारूपी सर्प। जागण=विवेक-विचार से सचेष्ट रहना।

जीव जोगी जागै सदा, कबहूँ सोई न जाइ।
इंहि आरंभ लागा रहै, धुनि मैं ध्यान लगाइ ॥१३॥

माया के रसि रसक हैं, बात कहत हैं दोइ।
राम रसायण अजब है, पीवेस रसिया होइ ॥१४॥

कहूं स्वामी कहूँ सेवगी, माया ही परि मूँठि।
लड़त जुड़त यूँ ही करत, गया किता ही ऊठि ॥१५॥

मरकट का कर कब गह्या, मूंठि दई फंद माही।
मूठी छांड्या छूटि है, तौ घर घर नाचैं नांही ॥१६॥

कुंजर कै भै मैं ड़रूँ, सो ड़र सह्या न जाइ।
काम हेति परवसि पड्या, बेड़ी लागी पाइ ॥१७॥

काहू कै रस रहत का, काहू कै रस काम।
काहू कै रस जोग का, हरि जन कै रस राम ॥१८॥

काहू कैं रस ग्यान का, काहू कैं रस नाद।
काहू कैं रस भांमिणी, काहू कै रस वाद ॥१९॥

काहू कै रस मांनि का, काहू कै रस भेष।
काहू कै रस वैरता, ×सदा निरंतरि रेष ॥२०॥

कोइला जलि काला भया, वहौड़ि कसोटी पांहि।
अगनि दिपां तैं प्रजलै, कसर रही कछु मांहि ॥२१॥

कसरि मानि जहाँ तहाँ वसै, जांणै विरला कोइ।
साँध्या आटै लूँण ज्यूँ, कैसे न्यारा होइ ॥२२॥

जिन सूँ हरि किरपा करी, अपणै अंगि लगाइ।
तिनकै अंतरि हरि वसै, हरि विण कछु न सुहाइ ॥२३॥

पाठभेद—अहि–१। यहि–४। लाग्या–१। फंध–५। परजलै–३। सूंध्या–४-५। ज्यौ–१। स्यूँ–१। हरि विन–४-५।

शब्दार्थ—जोगी=साधक, सचेत। दोइ=द्वैतभाव। मूंठि=हाथ, पकड। रहत=रहनी, बनावटी रूप। भांमणि=स्त्री। वाद=विवाद। वहौड़ि=पुनः। सांध्या=मिलाया।

तन मांही तीरथ भला, तहाँ मन निरमल होइ।
पाँचो इन्द्री फेरि करि, भूलै विरला कोइ ॥२४॥
काया मांही कँवलदल, तहां बसै करतार।
अवरण वरण अकैह अगैह, अगम वार नहिं पार ॥२५॥
काया मांही कँवलदल, तहां बसै भगवंत।
जन हरीदास षेलै तहां, कोई कोई विरला संत ॥२६॥
पवन पलटि निरभै भया, गगन पहूँता जाइ।
काल चोट चूकै नहीं, अंति पड़ै भै आइ ॥२७॥
धरम नेम तीरथ वरत, अट पट पूजा आंन।
जोग जिग तपस्या तुला, ए जन कै जहर समांन ॥२८॥
दिष्टि रूप दीसै जिको, एक सवद विसतार।
ऊँच नीच अवरण वरण, मैं तैं मोह विकार ॥२९॥
कहुं इम्रत कहुँ कहुँ जहर, कहुँ नाहर कहुँ गाइ।
कहुं मारै कहुँ मारिये, कहुँ षाजै कहुँ षाइ ॥३०॥
कहुँ हिंदू कहुँ घटि तुरक, वाल व्रिध कहुं कैद।
कहुँ नारी कहुँ घटि पुरष, कहुँ रोगी कहुं वैद ॥३१॥
कहुं सूकर कहुँ स्वान गति, मोर म्रिघ उर काग।
कहुं जोगी कहुँ भोगिया, कहुँ रोवै कहुँ राग ॥३२॥
सुद वैस षत्री विप्र, कहुँ मछली कहुँ नीर।
कहुं निरभै निरवैरता, कहुं जाली कहुं कीर ॥३३॥
हैवर षर कुंजर गहर, कहुं काइर कहुं सूर।
कहुं राजा होइ रिण मैं मंड्या, दहुं दिसि वाजै तूर ॥३४॥

पाठभेद—पांचू–२-५। अवर्ण–१। वर्ण–१। अकह–५। अगह–५। तपसा–१। जक्यो–१। इमरत–१। जहैर–२। मिरग–१। मृघ–३-४। शुद्र–१। क्षित्री–१। नृभै–५। गहैर–२-४।

शब्दार्थ—कँवलदल=हृदयकमल, अष्टदल। पवन=प्राण। ए जन कै जहर समान=ये आत्मचिन्तक साधक के लिए विषतुल्य है। म्रिघ=मृग। हैवर=घोड़ा।

सीत उसन विरषा कहुँ, जड़ चेतन बहु जाति।
कहुँ दिनकर अंवर अरक, कहुँ ससिहर कहुँ राति ॥३५॥
करामाति दे ले कहुँ, पैकंबर कहुँ पीर ॥
गुपत प्रगट विचरत फिरत, करि दीरघ सुलप सरीर ॥३६॥
अठ सिधि नव निधि सुभ असुभ, कहुँ कंचन कहुँ काच ॥
कहुँ धीरज हरि ध्यान मैं, कहुँ निकलप विट वाच ॥३७॥
अरथ गरथ आगम सुगम, सिध साधै गहि ठौड़ ॥
राम भजन सुष अगम है, ए सब वैलि दौड़ ॥३८॥
धर अंबर तारा तिमर, गिर सर समंद अथाह ॥
कहुँ दाता कहुँ षोसिलैं, कहुँ तोटा कहुँ लाह ॥३९॥
सवद सवद पैनें चलै, सवद सवद कूँ षाइ ॥
सवद सवद कूँ पोष दे, सवदै सवद समाइ ॥४०॥
दोइ सवद दीसै दुरसि, एक कहै सो कौंण ॥
अपिर सवद अवगति मिलै, सिषर दसूँ दिस गौंण ॥४१॥
वेद सवद का भेद है, ब्रह्म सवद सुष और ॥
ब्रह्म सवद पै वेद की, कहौ कहाँ लौं दौर ॥४२॥

पाठभेद—नौनिधि-४-५। धीरजि-२-४। ठौर-३-५। पोषिदे-२। दुरस-१-४। दिसि-१। कहांलूं-१।

शब्दार्थ—अरक=सूर्य। ससिहर=चन्द्रमा। सुलप=छोटा, अल्प। अरथ=अर्थ। गरथ=ग्रन्थ, शास्त्र। आगम=पुराणेतिहास। वैलि=समीप की, उरली। तोटा=घाटा, नुकसान। लाह=लाभ, फायदा। पैने=तीखे।

४१ वी साखी—दोइ सवद दीसै दुरसि=द्वैतपरक शब्द दु:खदायी है। कोई साधक ज्ञानी ही एक ब्रह्म का निरूपण करता है।

ब्रह्म निश्चयात्मक अक्षर शब्द से अव्यक्त मे मिलता है। सिषर भेदजनक शब्द से, भ्रमित मन दसों दिशाओं मे विविध वासनाओं मे उलझता है।

४२ वी साखी—वेद त्रिगुणात्मक विषय का निरूपण करता है कर्म का निरूपण करता है अतः वह भेदपरक है। ब्रह्म के निरूपण करने वाले शब्द अभेदक हैं, उनका सुख अक्षय है।

वेद सवद की मूढि मन , जहां तहां चलि जाइ ॥
अगम सवद सूँ मन मिलै , तौ अटपट कछु न सुहाइ ॥४३॥
सपतपुरी भरमत फिरै , नौ ऊँषर भरमै और ॥
राधा रस गोपीचरित , इहै वेद की दौर ॥४४॥
अघट कहत है घट धरचा , घट घट अघट न होय ॥
वेद कथा सठ समझि मन , इष्ट कहत हैं दोइ ॥४५॥
दुवध्या दिल तैं दूर करि , इहै जाणि जीव मांहि ॥
माया का गुण अनंत है , परमेसुर दोइ नांहि ॥४६॥
साध सुमरि सदगति भया , परापरै पति येक ॥
परमेसुर दोइ कहत है , मन अपणां की टेक ॥४७॥
मन सज्जन तोसूँ कहूँ , समझिर करौ विचार ॥
यहु कछु उदबुद देषिये , दोइ कहै करतार ॥४८॥
भगति हेति हरि वप धरचा , भरम करण कूँ दूरि ॥
करता सवलक भरम धूँ , भरम रह्या भरपूरि ॥४९॥
इहै दैत दुनिया इहै , मारै षोसे षांहि ॥
समरथ की वाजी रची , घटै वधै कछु नांहि ॥५०॥
वाजी सूँ वाजी रमै , करि करि नाना रूप ॥
कहुँ ग्रासै कहुँ ग्रासिये , सहर साह कहुँ भूप ॥५१॥
नहिं हिन्दू सूँ वैरता , नहिं मुसलमान सूँ प्रीति ॥
सब कछु करि सबतैं अगम , याह साहिब की रीति ॥५२॥

पाठभेद—स्यूँ–१ । भ्रम–३-४ । चयरित–२ । यहै–३ । दुविध्या–१ । एक–३-४-५ । तोस्यूँ=१ । भगत हेत–५ । सम्रथ–२-३-४ । कुछ–२-१ ।

शब्दार्थ—दुवध्या=संशय । दैत=द्वैत, मैं-तै ।

४३ वी साखी—कर्मनिरूपक वेदवाक्यों से मूर्ख मन इधर-उधर हो सकता है। जब मन एकात्मक निरूपक शब्द निश्चय से आत्मनिष्ठ हो जाता है तब फिर उसको वासनामय अटपट विविध प्रवृत्तियाँ अच्छी नही लगती ।

सप्तपुरी—अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका ॥
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैते मोक्षदायिकाः ॥१॥

नौ ऊषर=नौ क्षेत्र–कुरुक्षेत्र प्रभासक्षेत्रादि ।

तुरक कहै मका भला, जहां साहिब की ठौर ॥
हिंदु जाइ मथुरा बस्या, इहै दहुँ की दौर ॥५३॥
हिंदु थापै देहरा, मुसलमान मसीति ॥
पषा पषी जग पचत है, इहै दहूँ की रीति ॥५४॥
मुसलमान रोजा करै, हिंदू ग्यारसि आंन ॥
मैं बड़ मैं बड़ होत है, इहै बड़ा हैरांन ॥५५॥
हिंदू चाल्या तीरथां, तुरक पीर तहां जांहि ॥
दिल मांही दीदार था, गोता मारया नांहि ॥५६॥
जिबह किया बकरी भिसति, लिषी कतेबा मांहि ॥
तौ अपणां गला कटाइ करि, भिसति वसै क्यूँ नांहि ॥५७॥
अपणै करि कांटा चुभै, तब काढ्यां ही सुष होइ ॥
यूँ साहिब सूँ वैरान है, बात कहत हैं दोइ ॥५८॥
काजी का बेटा मरै, तब काजी कै उरि पीर ॥
यूँ परमेसुर सबका पिता, भला न मानैं वीर ॥५९॥
गाइ भिसति मुरगी भिसति, जिवह किया जीव और ॥
ए दोजिग मैं दुरत हैं, नहीं भिसति मैं ठौर ॥६०॥
मनिष मरै तब जालिये, जालिर न्हावण जांहि ॥
हिन्दू की करणी कहा, जे मारि मड़ा कूं षांहि ॥६१॥
भैंरू आगै बाकरा, भैंसा मारै जाइ ॥
×चाँवड़ चिन्ता डाकणी, मांही बैठी षाइ ॥६२॥

पाठभेद—जुग-१ । दुहुं-१ । क्यौं-१-३ । यौं-१ । भिस्ति-२-३-४-५ । ज्यवह-२ । जिवहि-१ । ये-२ । जग-१ । मिनष-५ । च्यंता-२ ।

शब्दार्थ—दहुँ=दोनों । जिवह=कुर्बानी, कत्ल । भिसति=स्वर्ग । कतेबा=कुरान । वैरान=विमुख । दोजिग=नरक । दुरत=गिरते । मड़ा=मृत, मुर्दा, मेडा । चाँवड=देवी ।

× चाँवड-चाह विविध भोग की वासनारूपी चिन्ता वही डाकिणी है-आयु को खाती रहती है ।

पषा पषी मन छाड़ि कै, निरपष होइ सुष देष ॥
निरपष सूँ निरषष मिलै, तौ पूरण ब्रह्म अलेष ॥६३॥
पषा पषी सब को मिलै, निरपष मिल्या न जाइ ॥
जौ कबहुं निरपष मिलै, तौ निरपष पष कूं षाइ ॥६४॥
नहिं उपजै नहिं षपैगा, नहिं आवै नहिं जाइ ॥
सब कुछ करि सब तैं अगम, जहाँ तहाँ रह्या समाइ ॥६५॥
मन सबका असवार है, पैंड़ा करे अनेक ॥
मन उपरि असवार है, विरला कोई एक ॥६६॥
जन हरीदास मैदान मैं, मन अपणां दौड़ाइ ॥
दिसूं दिसा सूं फेरि करि, अगम तहाँ लै लाइ ॥६७॥
जन हरीदास मन माछली, माया का जल मांहि ॥
जब विछुरै तब ही मरै, ता तैं विछुरै नांहि ॥६८॥
जो हूवा सो ना रहै, था सो रह्या समाइ ॥
जन हरीदास आछै मतै, तहाँ रहौ लै लाइ ॥६९॥

॥ इति निरपषमूल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ प्राणपसिद्धि परमात्मापूजा जोगग्रन्थ ॥

औधू जोगी जुग तैं न्यारा,
घटै न वढै सदा ज्यूं का त्यूं, रहै सकल तैं न्यारा ॥१॥
पहली हुवा न पीछे विनसै, जागि तहाँ मिलि रहिये ॥
जांमण मरण जुरा भै जमडंड, काहे कूं सिर सहिये ॥२॥

पाठभेद—रह्यौ-१ । दसौ-१ । विछुड़ै-५ । जग तै-३-५ । ज्यौ-१ । त्यौ-१ ।

शब्दार्थ—असवार=चालक । पैडा=विविध वासनामय मार्ग । दसूँ दिसा=भौतिक पदार्थों की ओर । विछुरै=अलग हो । आछै मतै=मुक्ति की चाह, आत्मजिज्ञासा । औधू=मन, साधक, शिष्य । जोगी=जगनिर्माता ।

तरवर संसार विवधि फल लागा, जीव तहाँ सब जीवै ॥
उपजै षपै वसै ताही मैं , मगन हुवा रस पीवै ॥३॥
कहिये कहा कौंण यह मानैं , यहु रस सब कूँ भावै ॥
एक आध सापणि का सुत ज्यूं , अदिष्टि होइ सुष पावै ॥४॥
यहु सुष तजै न वा सुष लागै, जागति जाइ न जाणी ॥
पहुंचै कौंण दूरि बेगमपुर , वीचि गहर गुण पांणी ॥५॥
सवद सुणैं सुणि सांच पिछाणैं, जोग मूल गहि जागै ॥
उलटा षेलि परमसुष पहुँचै , माया बांण न लागै ॥६॥
निरपष वसत निजरि मैं राषै ., पष दोन्यौं पर षोवै ॥
सरम सिला अरि उर तै षेसै , अवला उदरि न सोवै ॥७॥
काया करम भरम करि कांनै , निज विश्रांम न लहिये ॥
आतम कै असथांनि न पहुँचै, तब लग परलै वहिये ॥८॥
पष की पासि पचत है सबको , सत पुरषां सुष दूजा ॥
वाहरि भेष दसा तन मिरतग, उरि आदर की पूजा ॥९॥

पाठभेद—काहि–१ । कुंण–१ । याहि–१ । येक–२ । अदिष्ट–२ । अद्दष्ट–५ । इहु–२-४ । षेल–५ । वस्त–३-४ । निजर–५ । दोन्यू–४ । उदर–३-४ । विसरांम–३ । आत्म–२-५ । प्रलै–१ । पास–१ । पहुँचत–१ । मृतग–३-४ । मृतक–५ । उर–३-५ ।

शब्दार्थ—विवधि फल लागा=वासना, लोभ, मोह-मदादि । बेगमपुर=अमरापुर, मुक्तिस्थान । गहर=गम्भीर । गुण=त्रिगुणात्मक संसार । उलटा षेलि=आत्ममय मनोवृत्ति से । निरपष वसत=निर्गुण ब्रह्म । कांनै=एकओर । परलै=जन्ममृत्यु के प्रवाह मे । पासि=बन्धन । पचत=पचाती, खाती ।

४थी साखी—जैसे सर्पिणी के बच्चों मे से कोई उस परिधि या घेरे से निकल जाता है, वही बचता है । अन्यथा जो घेरे मे रहते है, उनको सर्पिणी खा जाती है । इसी तरह वासना के घेरे से जो प्राणी निकल जाते है वही स्वस्वरूप मे निष्ठ हो जीते है, अन्यथा विविध कर्मो के फल भोगने को जन्मते-मरते रहते हैं ।

७ वी साखी—सरम सिला अरि उर तै षेसै=सरम सिला लोकाचार रूपी भावनामय शत्रु को उर से दूर करे, तभी जन्ममृत्यु से बचे ।

९ वी साखी–वाहरि भेष दसा तन मिरतग=बाहर से देखने पर तो साधक मे भी कोई न कोई भेष दिखाई पड़ता है, पर अन्तर से मन को मृतक बना लिया—संकल्प-विकल्परहित कर लिया है ।

नर औतार जात है हरि विणि, सूनी सेझ न सोई ॥
यांह बातां कोइ पार न पहुँता, साध कहै सब कोई ॥१०॥
यहु सुष छांड़ि और सुष आगै, बात अगम की कहिये ॥
है हरि अगम निगम तैं न्यारा, गुर गमि होइ तौ लहिये ॥११
जैसे कहै रहै भी तैसे, चित मैं भरम न आंणै ॥
पैंडा करै मरै नहिं मारया, पंथ पुरातम जांणै ॥१२॥
पहुंचै विथा न विष वन पैसे, वप तजि वसत विचारै ॥
निरभै नाथ भजै भजि निरभै, बाजी सूँ षेल न हारै ॥१३॥
वसि दरवारि मरिसि मां हठ करि, अगम तहां मन दीजै ॥
राम विसारि सोइमां हरि भजि, अवधि घटै तन छीजै ॥१४॥
अंतरि और कहै कछु औरै, अरथ और ही बूझै ॥
सवद कहै ताहि राह न चालै, साच सवद मैं सूझै ॥१५॥
ना दुष गहै न सुष को सोधै, अगम अरथ उर धारै ॥
गहि गुर ग्यान मोह तजि मैं तैं, काम क्रोध रिप मारै ॥१६॥
सतगुर सवद आथि संग साथी, झूठै भरमि न लागै ॥
नौ षंड पुहुमि उलटि मन उनमनि, नांव निडर ले जागै ॥१७॥
निरभै वसत सकल विस्वव्यापी, घट तजि अघट विचारै ॥
जोगी मरै न जोरां जीवै, हीरा जनम न हारै ॥१८॥

पाठभेद—हरि विन–३-५। इहां–२। या–५। पहुंचै–३। इहु–२। चिति–१। पुरात्म–१-३ ५। वनि–२-४। वस्त–३-४। दरवार–१। मरसि–३-४। कूँ–२-३। पहौमि–२-४। विस–१-५। जन्म–३।

शब्दार्थ—आणै=लावे। पैंडा करे=साधना द्वारा मुक्ति मार्ग की पूर्ति करे। पुरातम=प्राचीन, वास्तविक। वप तज=देहाध्यास छोड़। मरिसि मां=मरेगा नहीं। सोधे=षोजे। बूझै=समझे। आथि=अन्त मे। नौषंड पुहुमि=नवद्वार वाली देह, नौ खंड वसुधा। जोरां=जबरन।

१३ वी साखी–पहुंचै विथा न विष वन पैसे=विष—विषयरूपी जहर से दूर रहे, वासना के जङ्गल में प्रवेश करे नहीं तो त्रिविध ताप की कोई पीड़ा नही पहुंचती।

आसण अचल मेर गिर उपरि, मन हसती गहि बांधा ॥
उलटा चल्या सवोड़ि पहूँता, पैंडे पार न लाधा ॥१९॥
सासि उसासि अगम अरि जीत्या, जागि परम गुर पाया ॥
अधर अरेष अथाह अषंडित, नांव निरंजन राया ॥२०॥
वसुधा जीति वास हम कीया, षबर षालिक की जांणी ॥
अरथ विचारि अंक भरि उलटा, सुष में सुरति समांणी ॥२१॥
जोगी जागि न सोवै निसदिन, ग्यान गुफा में आया ॥
भैंरू कीलि कसर सब काढ़ी, सूता वीर जगाया ॥२२॥
ग्यान गूदड़ी सहज निरालंब, पिसण पवन गहि बांधी ॥
गंग जमन मधि आसण अवधू, चेलै सतगुरु लाधी ॥२३॥
अषिल अछेद निरूप निड़र घर, फेरि तहाँ मन लाया ॥
नलिनी का सूवा की नांई, आपै आप बंधाया ॥२४॥
ना विष गहै न इंम्रत छाड़ै, पाप पुनि दोइ दूजा ॥
साध धरमि अंतर नहिं पाड़ै, तौ अवगति की पूजा ॥२५॥
आलस करै न आरंभि लागै, ता कूँ जमराइ न मारै ॥
अजरा जरै अरीझ रिझावे, जीतण कूँ षपै न हारै ॥२६॥

पाठभेद—आसन–१। ऊपरि–३। हस्ती–३-४। षलक–१। भैरो–५। कील– १। सहज्य–२। मध्य–२। औधू–३-४। अमृत–१। धरम–३-४।

शब्दार्थ—मेर गिरि=गगनमंडल। सवोड़ि=किनारे, अन्तिम लक्ष्य पर। सास-उसास=प्राणस्थैर्य द्वारा। वसुधा=देह, पृथ्वी, जगत्। षालिक=खलक का स्वामी ब्रह्म। समांणी=समाई। भैरू=क्रोध। कीलि=वश मे कर। पिसण=कामादि चोर। पवन गहि=समाधिस्थ हो। दूजा=न्यारा, अलग। साध धरम=साधक के कर्त्तव्य मे। पाडै=पड़ने पर।

२३ वी साखी—गंग जमन मधि आसण अवधू=इडा-पिंगला के बीच सुषुम्ना मे प्राण का आसन करना, प्राणप्रवाह करना।

२६ वी साखी—आलस करै न आरभि लागै=साधना मे आलस्य न करे, न ही सासारिक वासनाओ या प्रवृत्तियो मे उलझे। अजरा जरै अरीझ रिझावे=सूक्ष्म संस्कार की वासनाओ को जारै—पचा ले, शुद्ध चिन्तनस्वरूप परमतत्व जो किसी वस्तु से रीझता नही—प्रसन्न नही होता उसको विरहरूपी परम प्रेम से रिझावे।

निरभै भया गया डर ड़रतां, साच सबद मैं पाया ॥
चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा, तहां कछु अलष लषाया ॥२७॥
चंद सूर समि सुरति सहज धरि, अरथि अलूधी आसा ॥
परम जोति परकास परमसुष, तहाँ हमारा बासा ॥२८॥
मन निहचल निरभै सुष लागा, रहै, सकल तैं न्यारा ॥
गंगा मूल अमूल अधर घर, तहाँ पड़ि रह्या विचारा ॥२९॥
जहाँ जहाँ वरण तहाँ बहु बंधण, काल कहर की छाया ॥
अवरण अगम सुगम जब समझ्या, तन ही मैं तत पाया ॥३०॥
सत रज तम गुण रजा रहत रस, तहाँ विलंब्या चीया ॥
चेला पाँच पसरताँ थाका, रस ही मैं रस पीया ॥३१॥
कहन सुनन सुष तैं सुष आगै, अगम सहै रहै लोई ॥
तहाँ बसै ताहि दाँण न लागै, पहुँचै विरला कोई ॥३२॥
या मन तै मन और अगम है, सकल वियापी सारा ॥
परम सुनि परवाण न कोई, निज विश्राम हमारा ॥३३॥
साथ संवाहि सहज धरि राषै, वंकनालि रस पीवै ॥
इला पिंगला सुषमनि समि करि, परचै लागा जीवै ॥३४॥
राम दयाल देव करणां मैं, परम तत पति पूरा ॥
अरस परस आनंद अभि अंतरि, बाजै अनहद तूरा ॥३५॥

पाठभेद—निहिचल–२-४। पड़–५। वहाँ–२। अवर्ण–३। रहैत–४। सह–३-४। न्यज–२। विसराम ५। समाहि–१। प्यंगला–२। अभ्य–२।

शब्दार्थ—अरथि=आत्मतत्व। अलूधी=लगी रहे। आसा=चाह। वरण=वर्ण, जातिभेद। रजा=छूटा। रहत रस=नित्य सत्य आत्मतत्व। चीया=विशुद्ध मन। पाँच=पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ। पसरताँ=विषयो मे जाते। थाका=थका, विरत हुआ। सहै=सो, वह। दांण=दण्ड, कर। परवाण=नापतोल। साथ संवाहि=साथियो को संभाल। वंकनाल=मेरुदण्ड।

२७ वी साखी—चेला ले नाथ गुफा मैं पैठा=नाथ—निश्चल मन ने चेला—चलने वाली इन्द्रियो को अन्तर्मुख कर हृदयगुहा में प्रवेश किया।

२९ वी साखी—गंगा मूल अमूल अधर धर=परम आनन्दरूपी गंगा की धारा का मूल वह अमूल परब्रह्म है।

परम जोति परकास परमसुष , आतम अंतरि लहिये ॥
करम कपाट भरम करि कानैं , अगम तहाँ मिल रहियै ॥३६॥
आसण छाँड़ि पराँ विणि उड़िया , अलष त्रिष घर पाया ॥
रस फल षाइ वहुड़ि मन रसिया , रस ही मांहि समाया ॥३७॥
उलटा पवन आकासि पहुँता , अकर तहाँ कर दिया ॥
परम उदार अपार अषंडित , वास तहाँ हम कीया ॥३८॥
आसा मेटि निरास निरंतरि , गुर गमि गैला लाधा ॥
×बादल विण बीज व्यौम मैं चमकै, घण वरिषा वन दाधा ॥३६॥
इंद्री मन प्राण अरथ कै आसणि, अगम तहाँ फिरि लागा ॥
धुनि मैं ध्यान परसि पद निरभै , भरम गया भै भागा ॥४०॥
मन निहचल निरधार निरंतरि , मछ मूँवा विण पांणी ॥
पष दोऊँ परला मैं डूबा , धुनि मैं धजा समांणी ॥४१॥
*आसण अनंत फिरै था फेर्या , गावै था सो गाया ॥
पारस परसि भया मन कंचन , निज विश्राम समाया ॥४२॥
जोग न भोग जुरा भै जीत्या , भूलि पड्या भै नांही ॥
शून्यमंडल मैं सकल वियापी , प्राण वसैं ता मांही ॥४३॥

पाठभेद—आतम–३-४। परां विन–३-५। उड्या–१। त्रिष–३-४। विरष–५। न्यरास–२। विणि–२। विरषा–३। यन्द्री–२। आसण–५। न्यरंतरि–२। विणि–२-३। दौड–१। न्यज–२। विस्राम–२। विसराम–५। सुनि–४-५।

शब्दार्थ—परां विणि=माया, ममतारूपी पङ्खो के बिना। अलष त्रिष=अगोचर समष्टि चेतनरूपी। आकासि=दशम द्वार। लाधा=मिला, पाया। मछ=मन मीन। विण पांणी=वासनारूपी जल बिना। पष=पक्ष, समर्थन। धुनि=अन्तर्नाद, अनहद-शब्द। धजा=वृत्ति। भूलि पड्या भै नाही=वह भूलकर भी संसार को भोगवासना मे नही आता, न ही जन्ममृत्यु के भय से त्रस्त होता है।

× व्योम–दशम द्वार मे निराधार वृत्ति से बिना बादल के ज्ञानज्योतिरूपी बिजली चमकने लगी। परमानन्द प्राप्तिरूप वर्षा से वासनारूपी वन का विनाश हो गया।

* मन के विषयप्रवृत्तिरूपी अनन्त आसन थे, जिनमें वह भ्रमित था, उसको निश्चल कर अन्तर्मुख किया।

संकट नहिं सरम करम नहि अकरम, धरे अधर घर पाया ॥
ता सुषि लागि सहज घर मूंनि, बोलै नहीं बुलाया ॥४४॥
ग्यांन न ध्यांन जोग नहिं भोगी, नहिं तहाँ गरू न चेला ॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ, अरिचित नाथ अकेला ॥४५॥
पूरण ब्रह्म अलष हरि अरिचित, रूप अरूप अछाया ॥
षीर नीर ज्यूँ सकल निरंतरि, ना तस काल न काया ॥४६॥
राग दोष रस मैं तैं नांही, जीव जनम नहिं जोगी ॥
अंग न भंग निरंग निरषर, ना तहाँ वैद न रोगी ॥४७॥
अरत अथाह उजागर अर रिपु, सतगुरि साच बताया ॥
मनसा चलै न यहु मन छाड़ै, प्रांणनाथ पति पाया ॥४८॥
वप नहिं विथा वरण नहिं अवरण, ग्यांन ध्यांन नहिं दूजा ॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी, तहाँ हमारी पूजा ॥४९॥
ग्यांन विचार वमेक अगम गति, वार पार नहिं लहिये ॥
हरि दरिया सुष देषि दसौं दिसि, तहाँ ठग्या सा रहिये ॥५०॥
जलि थलि जहाँ तहाँ करणा मैं, रहै सकल तैं न्यारा ॥
जन हरीदास मन ता सुषि लागा, गुरगमि अगम विचारा ॥५१॥
सब देवां सिरि देव दयानिधि, छिपै न काहू छाया ॥
जन हरीदास मन ता सुषि लागा, सतगुरि साच बताया ॥५२॥

॥ इति प्राणप्रसिद्धि परमात्मापूजा जोगग्रन्थ ॥

पाठभेद—अक्रम–४। मौनी–३-५। ज्यौ–१। त्यौ–१। अरिच्यत–२। अरचित–३। जन्म–४। न्यरंग–२। अरि–३-५। इहु–४। विवेक–१। दसूँ–२-४। गुरुगमि–१। सतगुरु–१। सतगुर–५।

शब्दार्थ—सरम=सुख। मूंनि=मगन, दत्तचित्त। अरचित=अनादि। ना तस=नहीं उसको। अर रिपु=काम-क्रोधादि शत्रुओं का शत्रु। वप=शरीर। ठग्या सा=लुभाया हुआ, फिदा। छाया=आवरण।

॥ अथ जोगसमाधि जोगग्रन्थ ॥

अवधू जोगी जुग तैं न्यारा,
पद निरवांण निरंतरि बैठा, चिंता का करि चारा ॥१॥
सबद विचारि सहज घरि षेलै, नांव निरंतरि जागै ॥
×मनसा डाकणि मारती मारै, तौ नगरी चोर न लागै ॥२॥
इन्द्री कसै धसै मन दह दिसि, मन कूँ अटकि न राषै ॥
तन पाटण तहाँ मन मैवासी, नांनां विधि रस चाषै ॥३॥
चिता कूँ चिंता फिरि ग्रासै, अगनि अगनि कूँ सोषै ॥
जल विणि न्हाइ निरंतरि षेलै, अब मन पड़ै न धोषै ॥४॥
तन जीतै ताकूँ तत दरसै, तत रहै गुणां तै जूवा ॥
जाणेगा कोई जोगेसुर, जा घट परचा हूवा ॥५॥
अधर अगम कोई विरला पहुँचै, सतगुरि साच बताया ॥
जा सुष कूँ हम न्यारा कहता, सो सुष नैड़ा पाया ॥६॥
दांणी मारि दांण मैं दीया, अपणा मूल न हारं ॥
पूँजी रहै विणज त्यूँ विणजूँ, पैंड़ा अगम अपारं ॥७॥
ना ग्रिह करूँ न वन वसि भरमूँ, घर मांही घर पाया ॥
सो घर सकल घरां तै न्यारा, ता घरि प्रांण समाया ॥८॥

पाठभेद—औधू–१। नृवाण–२-४। ड़ाकण–५। दिहि–४। विन–३-४। तब–१। द्रसै–१। त्यौ–१। विणजौ–५। ग्रह–२-५। करौ न–२। भ्रमूं–५।

शब्दार्थ—निरवांण=गतिरहित, मुक्त। चिन्ता=वासना। कसै=निग्रह करे। धसै=प्रवेश करे। अटकि न=निरोध कर। पाटण=नगर। मैवासी=गढ़पति, अधिपति। चिता=भोगवासना। चिंता=चिन्तन, आत्मचितन। अगनि=संतापाग्नि। अगनि=ज्ञानाग्नि। जल विण न्हाइ=भोगवासनामय जल को त्याग आत्मानन्द रस मे स्नान करे। तत=आत्मतत्व। जूवा=जुदा। नैडा=पास, समीप। दाणी=दण्ड दिलाने वाला, चञ्चल मन। दाण=कर। पूंजी=नामचिन्तनरूपी सम्पत्ति। पैंडा=मार्ग, राह।

× मनसा—चाह या वासनारूपी डाकिनी सब प्राणियो को भोग भोगने में प्रवृत्त कर मृत्युबन्धन मे डालती है। जो साधक वासनारूपी डाकिनी से छुटकारा पा लेता है, उस साधक के मनुष्य-जीवनरूपी नगरी मे काम, क्रोध, लोभादि चोर नही लग सकते।

प्रगटी सुवधि कुवधि कण षूटा, भरम गया भै हारी ॥
अंजन मांहि निरंजन दरसै, अण भै कथा विचारी ॥९॥

नीच करम न्यारा हम न्यारा, भया अचंभा भारी ॥
पैंडे चलूँ न काँटा लागै, उलटीं पंथ सँवारी ॥१०॥

गुणगत गया मिल्या मोहि निरगुण, निरगुण सुष वार न पारा ॥
सहज समाधि पवन गहि पांचू, हम दहूँ पषा तैं न्यारा ॥११॥

मैं मेरा मन अकलि उजालै, अगम तहां लै लाया ॥
उलटा चल्या अनल का सुत ज्यूँ, सहजै सूँनि समाया ॥१२॥

पैंडे चलेस पारि पहुँचै, वेसि रहै सो हारै ॥
अरथ कियां अनरथ सब छूटै, ऐसा अरथ विचारै ॥१३॥

सील संतोष दया दरवारी, षिमा हमारै दाई ॥
ग्यांन विचार वमेक सिंघासण, सुष मैं सुरति समाई ॥१४॥

×निरभै डंड निरास अधारी, कंथा अजर अपारं ॥
भिष्या अगम निरंतरि ड़ीवी, आसण सूंनि हमारं ॥१५॥

जोग विचारि जुरा हम जीती, अगम वसत सो पाई ॥
निरभै भया निरंतरि मेला, उलटी ताली लाई ॥१६॥

पूरब छाड़ि पछिम नहि षेलौं, कजली वन बिष बारी ॥
*देस कांवरू कर गहि तौलौं, सींगी सूनि हमारी ॥१७॥

पाठभेद—चलौं न–१-५। ले–४-५। वैठि–२-३। छिमा–१। जोगि–१। लायी–१।

शब्दार्थ—सुवधि=तात्विक मति। कुवधि=कुमति, भोगवासनामय मति। अंजन=माया, माया का कार्य। पैंडे चलूँ=आत्मचिन्तन के मार्ग चलूँ। दहूँ=दोनो। अकलि उजालै=कलनरहित ब्रह्मप्रकाश मे। अनल=अनल पक्षी। वेसि रहे=बैठ रहे, साधना को त्याग दे। कंथा=ब्रह्मरूपी गूदड़ी। ड़ीवी=पात्र। पूरब=ज्ञानसूर्य। पछिम=अज्ञान-तम। कजली वन=भोगो का जङ्गल।

× निर्भयतारूपी डंड डंडा–आशाहीन भावना का आशा।

* वासनाजन्य भोगमय संसारसुख को ज्ञान-विचाररूपी तुला मे तोलूँ।

आसा का ईंधण हम कींया, चिंता अगनि बुझांणी ॥
×नदी निवासै वहती थाकी, चढ्या अपूठा पांणी ॥१८॥
※काम हमारे कागद बांचै, आषर अगम विचारै ॥
यहु मत गहैस पारि पहूंचै, वैसि रहै सोई हारै ॥१९॥
मंझ देस तहाँ मंढी हमारी, तन बाघंबर कीया ॥
धूंई ध्यान सहज की मुद्रा, अगम पियाला पीया ॥२०॥
मेरडंड का मारग लाधा, उलटा पवन चढ़ाया ॥
दसवैं द्वारि निरंजन जोगी, हम गुरगम तैं पाया ॥२१॥
तेरह तीन प्रांण घर चौथे, परम सुनि मन पूरा ॥
+सोपी भया पिसण पिसण भया सोषी, गढ़ पड़ि सकै न चूरा ॥२२॥
दषिण देस दूरि हम छाड्या, उतर हमारा वासा ॥
निरभै भया निरंतरि मेला, अणभैपद अभ्यासा ॥२३॥
जोगी सदा सहजि घर षेलै, =वसुधा गहि वसत विचारी ॥
जा गिरवर तैं गंगा निकसै, ता गिरि गुफा हमारी ॥२४॥

पाठभेद—च्यन्ता-२। अगन्य-२। इहु-२। पार-१-५। तेरै-३। दक्षण-३-४-५।

शब्दार्थ—आसा=आगन्तुक भोग। चिन्ता=वासनारूपी चिन्ता। यहु मत=आत्मविचार। वैसि रहे=सासारिक भावो मे लिप्त रहे। मंझ देस=हृदयमन्दिर। धूंई ध्यान=ध्यानरूपी धूणी। तेरह=अष्ट प्रकृति पंचभूत। तीन=सत, रज तम—जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। चौथे=तुर्यावस्था मे। पिसण=लुटेरे, शत्रु। दषिण देस=संसार। उतर=अध्यात्म देश। गिरवर=दशम द्वार, सर्वोपरि ब्रह्म। गंगा=आनन्दरूप गङ्गा।

× आशा-तृष्णा की नदी जो संसार के भोगो की ओर बही जा रही थी, बंद हो गई तथा उलट कर आत्मस्वरूप की ओर बहने लग गई।

※ काम मोक्षरूपी भावना हमारे कागद वाचै—वेद, उपनिषदादि का स्वाध्याय करे।

+ विषयसुख जो पहिले सोपी—सुखदायी मित्र लगते थे, वे अब पिसण—शत्रु हो गए है। जो विवेक विचारादि पहिले शत्रु से लगते थे, वे अब अति मित्र से लगने लगे हैं।

= वसुधा—बुद्धि को गहि स्थिर कर वसत—सत्य ज्ञानमय वस्तु का विचार किया।

इला पिंगुला सुषमनि मेला , त्रिवेणी तटि न्हाया ॥
जोग समाधि प्राण ले सूता , जागै नहीं जगाया ॥२५॥
×अरथ विचारि अगनि मैं पैठा, नऊँ नाथ संगि लीया ॥
✻आइस बलै अंगीठी तापै , ऊपरि आसण कीया ॥२६॥
+सात समंद मोती फिरि सोष्या, मछ मूवा विण पांणी ॥
गोपी तजि कान्ह अगम कूँ चाल्या, अनभै कथा पिछांणी ॥२७॥
मरकट पै बाजीगर नाचै , सब्द निरंतरि बाधा ॥
पूरा बासण कदे न झलकै , जौ झलकै तौ आधा ॥२८॥
तीतरि बाज पगां तलि रौंध्या, छाली विग्रह चारै ॥
गूँगा अरथ अगम का बूझै , बहरा अरथ विचारै ॥२९॥

पाठभेद—पिगला-१ । सुषमन-१-५ । अगम-३ । आय-५ । उपरि-१-२ ।

शब्दार्थ—अगनि=ब्रह्माग्नि । नऊँ नाथ=पांच ज्ञानेन्द्रियां, चारों अन्त करण ।

× अरथ विचारि—तात्त्विक विषय विचार ज्ञानज्योति में प्रवेश किया । नऊँ-नाथ—चारों अन्त करण व पांचों ज्ञानेन्द्रियों को साथ लिया ।

✻ आइस—मन जोगी के विकार जल रहे हैं—वह ज्ञानज्योति से तप रहा है, निखर रहा है ।

+ विवेकरूपी मोती ने षड्रिपु—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष तथा अहङ्कार रूपी सातों समुद्रों का शोषण कर लिया । कुवृत्ति रूपी मछलियाँ मर गईं । विविध वृत्तिरूपी गोपियो को विशुद्ध मनरूपी कान्ह अगम स्वस्वरूप की ओर ले चला । तब जो अध्यात्मज्ञान कथारूप मे सुनते थे, उसको स्वकीय अनुभव में जान लिया ।

२८ वीं साखी—निरन्तर अनहद शब्द मे बँधा हुआ वृत्ति वाला जीव बाजीगर मन रूपी मरकट को वश में कर नाच रहा है—प्रसन्न हो रहा है ।

२९ वीं साखी—संतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को पैरों तले रौंद दिया । अकिंचनतारूपी बकरी ने अहङ्काररूपी व्याघ्र को चर लिया—खा लिया ।

सांसारिक पदार्थों से उदासीन मौनी—मनरूपी गूँगा अगम इन्द्रियातीत आत्म-पदार्थ के अर्थ को बूझै—जानै । लौकिक-वार्त्ता सुनने से विरत बहरा मन ही आत्म-तत्व के अर्थ को विचारता है ।

पिंगुला ऊठि पगां विण चाल्या , आंधै लोचन लाधा ॥
तरवर पात फूल फल डाला , वीज समूला षाधा ॥३०॥
धूजै धणक उलटि सर लागा , लोग तमासै आया ॥
मुरगी वपरी जिवैह मुलांना , काजी न्यौंति बुलाया ॥३१॥
चींटी कै मुष मेर समानां , मूसै गिली मंजारी ॥
दादर सरप समंद मैं डारया , लौंकी परि असवारी ॥३२॥
मकड़ी का सिर माषी तोड्या , जंबक स्यंघ जगाया ॥
कुंजरिं मग्र दंत तव चूरया , हिरणी चीता षाया ॥३३॥
रवि ससि पकड़ि दाढ़ तलि राष्या, नकटी नाथि नचाई ॥
सुसा हमारै षेती राषै , वाड़ी मिरघ न षाई ॥३४॥

पाठभेद—विणि–२-४। धनक–३-५। वपडी–१। ज्यवह्–२। न्यू ति–४-५। समांणां–१। सिंघ–३-४। हिरनी–१। मृघन–४-५।

३० वी साखी—चञ्चलता–कल्पनारूपी पैरो से हीन पगुल मन –ऊठि–सजग हो आत्माभिमुख हो गया। अज्ञान और अविवेक नेत्रों से विहीन अन्धे मन ने विवेक विचार रूपी नेत्र प्राप्त किये। निर्भ्रान्ति सत्य ज्ञानरूपी बीज ने अज्ञानरूपी वृक्ष के वासनाजन्य प्रवृत्ति, विषयभोग, कामक्रोधादि पत्ते फल-फूल डाल सहित खा लिये।

३१ वी साखी—गुरु–उपदेश रूपी वाण उलट अन्तर मे लगा तो मनरूपी धनुष धूजने लगा। शील, सन्तोष, त्याग, वैराग्यादि गुण रूपी लोग पलटे हुए मन के चरित्ररूपी तमाशे को देखने आए। निश्चल बुद्धि रूपी मुर्गी ने मलिन मुल्लारूपी मन को जिबह् किया–कत्ल किया, आत्मतत्व जीवरूपी काजी को निमन्त्रित कर बुलाया।

३२ वी साखी—अन्तर्मुखवृत्तिरूपी चीटी के मुख मे अहङ्काररूपी मेरु समाया–विलीन हो गया। आत्मविचाररूपी मूसे ने वासनारूपी बिल्ली को निगल लिया। लयरूप वृत्ति पर आधारित नाम चिन्तनरूपी दादुर–मेढक ने संशयरूपी सर्प को ज्ञान-समुद्र मे डाल दिया।

३३ वी साखी—परा भक्तिरूपी मक्खी ने मायारूपी मकडी का सिर तोड दिया। परम प्रेममय जम्बुक ने जीवात्मारूपी सिंह् को जगाया–सचेष्ट किया। वैराग्य-रूपी मस्त हाथी ने मोहरूपी मगर को चूर-चूर कर दिया। शीलमय वृत्तिरूपी हिरणी ने कामरूपी चीते को खा लिया।

३४ वी साखी—रवि-शशि–प्राण तथा मन को साधना द्वारा वशीभूत कर माया रूपी नकटी के ज्ञान की नाथ डाल नचाई। षट् साधना रूपी खरगोश ने आध्यात्मिक अभ्यासरूपी खेती की रखवाली की। जिससे विषय विकाररूपी मृग उस बाड़ी को किसी तरह का नुकसान न पहुंचा सके।

मांनि अमांनि अगनि दोई दीरघ, सुर नर असुर संघारया ॥
जो मारग जीतण कूँ पपता, सो पैंडा हम हारया ॥३५॥

अकल अभेद अछेद अषंडित, निरामूल निरधारं ॥
इंहा न उहाँ निकटि नहिं न्यारा, अगम वार नहिं पारं ॥३६॥

सोई निरभै निज नाथ सदा संगि मेरे, जुरा मरण भै भागा ॥
अनहद सवद गिगन मैं गरजै, मूलकँवलि मन लागा ॥३७॥

उपजि न विनसै जुरा न व्यापै, ना सो मरै न मारै ॥
पिजै न षेलै जागि न सोवै, सोई निरगुण इष्ट हमारे ॥३८॥

ना तस मोह दोह पण नांही, ना तस काल न काया ॥
ना सो पुरष नारि भी नांही, ना तस धूप न छाया ॥३९॥

जोग न भोग न्यकटि नहिं न्यारा, उदै असत दोइ नांहीं ॥
मैं तैं तजे भजेगा सोई, व्याप रह्या सब मांही ॥४०॥

घणा कहूँ तो कहणि न आवे, थोड़ा कहूँ तो षारा ॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ, रहै सकल तैं न्यारा ॥४१॥

जन हरिदास पति परस परमसुष, झड्या सहज में ताला ॥
जोग समाधि जुरा नहिं व्यापै, जा घटि अगम उजाला ॥४२॥

जुरा न व्यापै जोगियां, चिंता काल न षाई ॥
करम भरम धुंई किया, सुष मैं रह्या समाई ॥४३॥

सुष अगाध सब तैं अगम, पहुंचै विरला कोई ॥
जन हरीदास तहाँ षेलिये, तब ही आनंद होई ॥४४॥

पाठभेद—सिघारया-३-५। वहां-२-५। न्यकटि-२। उपज्यन-२। तस्य-१। निकट-३-४। च्यंता-२। षाय-१-४।

शब्दार्थ—गिगन=शून्यमण्डल, दशम द्वार। मूलकँवल=हृदयकमल। षिजै न=क्रोध न करे। ना तस=नहीं। मैं=मेरा। तैं=तेरा। झड्या=पड़ा, गिरा। धूंई किया=जलाया, भस्म किया।

जोग भेष सतगुरु दिया , आतम कूँ उपदेस ॥
जन हरीदास मन तहाँ बसे , जहाँ संतन का परवेस ॥४५॥
जोग समाधि अगाध व्रत , पारब्रह्म सूँ प्रीति ॥
जन हरीदास तहाँ षेलिये , तन मन त्रिसना जीति ॥४६॥

॥ इति जोगसमाधि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ जोगध्यान जोगग्रन्थ ॥

दूर देस तहाँ सौदा मेरा , सतगुरि आय जगाया ॥
पैंडे चलूँ न काँटा लागै , उलटी राह बताया ॥१॥
×मन घर प्रांण प्रांण घर मनसा, बंकनालि में बाई ॥
अगम अर्थ सोई कथा कहत हूँ, सतगुरि वसत बताई ॥२॥
तन पाटण तहाँ वास हमारा, नौ दरबार जड़ाया ॥
सूँनिमंडल में जोति चमकै , उलटा पवन चढ़ाया ॥३॥
*आवध बिन संग्राम करम बिण आरंभ, त्रिगुण सषी सुत षाया ॥
=जटा पंषि पाणी में पैठी , मीन सूंनि घर पाया ॥४॥

पाठभेद—चलो न–१ । सून्य–२ ।

शब्दार्थ—दूरदेश=ब्रह्मलोक । पैंडे चलूँ न=विषय-वासना के मार्ग चलूँ नही । काँटा=चुभन, विषय अप्राप्तिजन्य संताप । उलटी राह=अन्तर्मुखवृत्ति । नौ दरवार=नौ दरवाजे । आवध=शस्त्र । त्रिगुण सषी=सद्‌बुद्धि । सुत=ज्ञानरूपी पुत्र ।

× मन का घर–हृदय वहाँ प्राण को ले जाय, प्राण का घर नाभि–वहाँ मनसा-वृत्ति को ले जावे । वंकनाल मे प्राण का वहन करना इस अभ्यास से अगम पदार्थ मिलता है ।

* आध्यात्मिक संग्राम बिना शस्त्र का है, आत्म-परिचय का साधन लौकिक-कर्म से निवृत्त वृत्ति से है । निश्चल वृत्तिरूपी आत्मसखी के ज्ञानरूपी पुत्र ने त्रिगुणात्मक धर्मो के भावो को खाया–समाप्त किया ।

= विवेकमय-बुद्धिरूपी मयूरी ने आत्मप्रेम रूपी पानी मे प्रवेश किया । सुरति वृत्तिरूपी मीन ने सूनि घर–दशम द्वार मे स्थान पाया ।

+राजा भयो रैत रैत भई राजा, ऊपर आसण कीया ॥
=रुति पलट्यां रम फीका लागै, यैकै रस वस जीया ॥५॥
मीठा जहाँ तहाँ मन लागा, फल करि गहूँ न षारा ॥
घरि घरि चैन राज रस यैकै, निरभै नगर हमारा ॥६॥
निरगुण निज भेद सकल तैं न्यारा, सकल निरंतर दरसै ॥
घटि घटि अघट करम पट लागा, विरला कोई परसै ॥७॥
ऊँनिण आइ आकास गिरास्या, विणि विरषा रुति आई ॥
ता रुति साष सहज मैं निपजै, षेती विष वावन लागै काँई ॥८॥
कांटी झड़ै प्राण कण निपजै, विणि परचै कण छीजै ॥
डूबै उदिकन अगनिन ग्रासै, ऐसा आरंभ कीजै ॥९॥

पाठभेद—एकै-४-५। फल कर-३-५। ऊंन्यण-४। ऊंनण-५। ग्रास्या-१। गराम्या-३। विण-२। विण-४। प्रचै-१। बूडै-१।

+ अज्ञानावस्था मे मन राजा था, वह ज्ञानावस्था मे प्रजा बन गया। बुद्धि, विवेक, विचारादि जो मन के राज्य मे प्रजावत् थे, वे अब राजा हो गए। यानी मन, इन्द्रियों के सचालक हो गए। ऊपर—शून्यमंडल दशम द्वार मे निवास किया।

= रुति पलट्या—संसार में लगी वृत्ति बदली-आत्मपरक हुई। ऋतु-परिवर्त्तन हुआ तब संसारी पदार्थों का रस फीका लगने लगा। येकै रस वस-आत्मानन्द रूपी एक ही रस मे लगकर जीया-जन्ममृत्यु से छूट कर अमर हुआ।

७ वी साखी—निर्गुण तत्व अपने भेदरहित सबसे-जड प्रपंच से न्यारा है पर सब मे सर्वदा दिखाई देता है। घट घट मे-सब प्राणियो मे वही अघट चेतन तत्व व्याप्त है। कर्मजन्य अज्ञान का पर्दा आडा आया हुआ है अतः जो कोई विरला साधक कर्म-बन्धनो से मुक्त होता है वही उस तत्व को परसता है-प्राप्त करता है।

८ वी साखी—विरहरूपी ऊंनिण-अग्नि ने आकर हृदयाकाश को व्याप्त किया, उत्कट आत्मप्रेम रूपी वर्षा बिना ऋतु के आई। उस स्थिति मे सहज ही आध्यात्मिक खेती की उत्पत्ति हुई, उस खेती को अब विषय-वासना रूपी झोला कभी लगने का नही।

९ वी साखी—हे साधक! साधना का ऐसा आरम्भ करिए, जिससे कर्मरूपी कांटी झड़ जाय, प्राणसाधना से आत्मपरिचय रूप कण की उत्पत्ति हो। यदि आत्म-तत्व की प्राप्ति नही हुई तो जीवनरूपी कण बिना लक्ष्य प्राप्ति के नष्ट हो जायगा। इसलिए ऐसे साधन मे लगो, जिससे न तो भवसागर मे डूबो, न ही कालाग्नि से ग्रसित हो।

गिरवर मैं धात धात मैं गिरवर , गिरवर धात न पाया ॥
भेष भरोसे मति कोई भूलै , जब लग यहु मत नाया ॥१०॥
चौमासे दोइ चात्रिग ग्रास्या , निरपषि निजरि समाया ॥
सात समद मोती मैं वास्या , मरजीवा ले आया ॥११॥
नवघण टूटा बरसती थाकी , भार अठारह पाई ॥
चिंता षिवणि गाजै गत आपौ , वसुधा गिगन समाई ॥१२॥
गागरिका पांणी कूवा पीवै , भया अचंभा भारी ॥
उलटी नेज अगम सूँ लागी , पड़ि फूटी पणिहारी ॥१३॥

पाठभेद—इहु-२ । चात्रग-२ । निरपष-३-४ । नौघण-१ । स्यूँ-१ ।

१० वी साखी—गिरवर-सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ चेतनतत्व के धातु त्रिगुणात्मक, पंचभूतात्मक, स्थूल तत्व आश्रित है। धातु स्थूल तत्वो में चेतन व्याप्त है, पर चेतन-तत्व स्थूल देहादि का नाशक नही है, उनका नाश कर्मानुबन्धिकालजन्य है। केवल भेष से काल की चपेट टल जाय ऐसी भूल कोई न करे। काल जब ही जीता जायगा, जब साधना मे आत्मज्ञान की प्राप्ति की जाय।

११ वी साखी—एकाग्र आत्मरत वृत्तिरूपी चातुर्मास दशा ने अज्ञान तथा मोहरूपी दो चात्रग पक्षियों को ग्रसित किया, जिससे द्वैत बुद्धि का निवारण हो। निरपष—धर्म, जाति, कुलादि का पक्ष निवृत्त हो व्यापक समत्व दृष्टि प्राप्त हुई। विशुद्ध मन रूपी मोती मे साधना की सत्य भूमिका सिद्ध हुई। इस तरह-मरजीवा-जीवन्मृतक साधक जीवन्मुक्त अवस्था को ले आया-प्राप्त हुआ।

१२ वी साखी—नवघण—पाँचों इन्द्रियाँ व चारो अन्त.करणरूपी बादलों की घटायें बरस-बरस थक गईं। भार अठारह—आठ महत् दस लघु सिद्धियाँ पुष्ट हुईं। चिंता षिवणि—वासना रूपी बिजली की गरज व प्रधानता समाप्त हुई। गत आपौ-अहंकार नष्ट हुआ। वसुधा वृत्ति गगन-दशम द्वार मे स्थिर हुई अर्थात् समाधिदशा प्राप्त हुई।

१३ वी साखी—आत्मतत्वरूपी कूआ देहध्यासरूपी गागर का पानी पीने लगा, जिससे अति आश्चर्य हुआ, उलटी नेज-वृत्तिरूपी नेज-डोरी अन्तर्मुख आत्माभिमुख हुई। अगम सूँ-ब्रह्म से लगी, ब्रह्मनिष्ठ हुई। वासनामय पणिहारी पड़ी-खत्म हुई, तब भोगरूपी गगरी भी फूट गई।

मेरडंड वाई चढ़ छेद्या, जलमल अगनि ग्रास्या ॥
मिट गया त्रिवधि तिमिर या तन तैं, परम सूर परकास्या ॥१४॥
सीमरता सकला जुग सूता, पडदा परहा न होई ॥
उदै कँवल तहाँ अगनि वलत है, जागि न देषे कोई ॥१५॥
सत रज तम गुण काम क्रोध मद, मोह, दोह कस दीया ॥
पांणी जलै अगनि जल सोषै, ऐसा आरंभ कीया ॥१६॥
मुद्रा सबद सुवधि कंठि सींगी, ग्यांन चक्र करि धारं ॥
चेला पांच जटा सिरि जरणां, आसण सूनि हमारं ॥१७॥
पैंडा अधर अगम उरिं अंतरि, उदबुद कथा अभेदं ॥
पिम्यां षड़ग लै ऐसे षेलूँ, जनम मरण सिरि छेदं ॥१८॥

पाठभेद—मेरदड-१ । सुवुधि-१ । षेलौ-१ । जन्म-४ ।

१४ वी साखी—वाई प्राण-मेरुदण्ड सुषुम्ना मार्ग द्वारा गगनमडल मे पहुचा, प्रदीप्त योगाग्नि ने वासना के जल व भोग के कालुष्य का शोषण किया, देह के त्रिविध ताप निवृत्त हो गए-मल, विक्षेप, अध्यासरूपी तिमिर-अज्ञानान्धकार का भी निवारण हुआ और परम सूर-विशुद्ध ब्रह्मतेज का प्रकाश फैला ।

१५ वी साखी—सासारिक भोग-विलासमय शीत से त्रस्त सब संसार सो रहा है-अज्ञानरूपी अन्धकार का पर्दा दूर नही हो रहा है । उदै कँवल-नाभिकमल मे ज्ञानज्योति जल रही है पर कोई जागकर-सचेत होकर देख नही रहा है ।

१६ वी साखी—त्रिगुणात्मक अन्त-करण के धर्म, काम, क्रोध, मोह आदि सब को कस दिये-काबू मे कर लिये । ज्ञानाग्नि प्रदीप्त हो विषयवासना के जल को जला रही है-शोषण कर रही है । ऐसा आरंभ कीया-इस तरह की साधना मे लगा हूँ ।

१७ वी साखी—साधक रूपक द्वारा अपना भेष बता रहा है । शब्द-अनहद शब्द का श्रवण मुद्रा है, कण्ठ मे अजपा-जाप होता है वह सीगी है, ज्ञानरूपी चक्र वही हाथ मे कडा है, पांचो ज्ञानेन्द्रिया है वे ही शिष्यवर्ग है, जरणां है वही सिर पर जटा है, शून्य-गगनमंडल मे वृत्ति की स्थिति वही आसन है ।

१८ वी साखी—पैंडा-मार्ग हमारा अधर निरालंबी है, चेतन से सम्बन्धित है, अगम-इन्द्रियातीत स्वस्वरूप है वही हृदय में निवास करता है । यह अभेदरूपी ज्ञानकथा उदबुद-अद्भुत है । क्षमारूपी खड्ग को ले जन्ममृत्यु के कारणरूप काल का सिर काट देता हूँ ।

अजपा जाप मंत्र मैं सीष्या , लोभ लहरि सब झाड़ं ॥
काली नागणि डसण न पावै , गिणि गिणि डाढ उपाड़ं ॥१९॥
पाणी मैं पैसि न परसूँ पांणी , अगनि बस अगनि न ग्रासं ॥
गुणां पैस निरगुण होइ निकसूं , आसा बसि रहूं निरासं ॥२०॥
आरंभ करूँ कर रहूं निरारंभ , जीवण कूँ षपूँ न हारूँ ॥
छाडूँ साथ न साथी राषूं , ना मैं मरूँ न मारूँ ॥२१॥
अटक्यां रहूँ न आण्यां आऊं , चालूँ नहीं चलाया ॥
सोऊँ सहज न हठ करि जागूं , भूषा रहूं न धाया ॥२२॥

पाठभेद—प्रसौ–१ । गिरास–२-४ । निकस्यूं–१ । करौ–१-५ । रहौ–१ । कौ–१ । षपौ–१ । हारौ–१ । छाडौ–१ । राषौ-१ । मरौ–१ । मारौ–१ ।

१९वी साखी—मैने अजपा जाप वृत्तिमय चिन्तन का मन्त्र सीखा है। लोभ-लालसा की लहरे सब झाड झडक दी है–दूर कर दी है। मायारूपी काली नागिन अब काट नही सकती, उसकी विषय-वासना–काम क्रोधादि सब डाढ जडें गिन-गिन कर निकाल दी है।

२०वी साखी—रज-वीर्यरूपी पानी से उत्पन्न इस देह मे रहकर भी देहाध्यास रूप पानी का स्पर्श नही करता। काम-क्रोधादि की इस देह मे अग्नि जलती रहती है, पर मै उस काम-क्रोधादि विषयवासनादि अग्नि से ग्रसित नही हूँ। त्रिगुणात्मक शरीर मे रहकर भी मै निर्गुण होकर उससे तटस्थ हूँ। विविध आशा वाले मन के साथ रहते हुए भी मै सब आशाओ से मुक्त हूँ।

२१वी साखी—साधना रूपी कर्म का आरम्भ करता हूँ, पर वह कर्म निष्काम है। अत. आरम्भ दिखते हुए भी निरारम्भ है। मुक्त होने के प्रयास मे हूँ, इसमे आने वाली बाधाओ से हारूँगा नही। अपने आत्मस्वरूप का साथ छोड़ूँगा नही. ज्ञानेन्द्रियो को अन्तर्मुख कर साथ रखूँगा। न मै काल-कवलित होऊँगा, अभेदभावना मे किसी का मे मारक भी नही।

२२वी साखी —कामादि प्रवृत्तियो से रुकूं नही, लोभ-लालसा के बुलाने पर आऊं नही, मन के चलाने से चलूं नही, सहज दशा प्राप्त कर समाधि मे सोऊं। सासारिक प्रवृत्तियो के दुराग्रह से जागूं नही, अपनी साधना छोड़ूं नही, स्वस्वरूप-प्राप्ति के परमानन्द से तृप्त रहूं पर उससे धापूं नही–विरत नही होऊं।

ज्यूँ आकास सहज गुण ग्रासै, गुण कोई व्यापै नांही ॥
अवधू तन मन ऐसे राषै ज्यूँ, चंदा जल मांही ॥२३॥
साहिब अघट साध सब घट धर, कीमति कहत न आवै ॥
वार पार कोई मधि न जांणै, सब कोई अगम बतावै ॥२४॥
परमपुरिष परम्यांन परमसुष, परापुरैं पति पाया ॥
जन हरीदास मन उनमनि लागा, सहजैं सुनि समाया ॥२५॥
पारब्रह्म पति परम सनेही, समद रूप सब मांही ॥
जन हरीदास साध सुषि लागा, धार पार कछु नांही ॥२६॥

॥ इति जोगध्यान जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ प्राणमात्रा जोगग्रन्थ ॥

ॐ प्राणमात्रा सुणौं हो साधौ,
हरि भजन का भेद, कांम क्रोध का करिवा छेद ॥
एकपहि राषिवा पाँच साथी, मन मैमंत मारिवा हाथी ॥१॥
मैं तैं मोह दल जीतिवा जोगी, जुरा भै मेटिवा पवन रस भोगी ॥
सबद की गूदड़ी सास सब धागा, अचाहि की सूई लै सींवणै लागा ॥२॥

पाठभेद—ज्यौं–२। कहैत–२। उनमन–२। पंच–१।

शब्दार्थ—प्राणमात्रा=प्राण का काल से नियन्त्रण। एकपहि=एक स्थान, एकाग्र। मैमंत=मस्त। मैं तैं=मेरा तेरा। पवन रस भोगी=प्राणसमाधि रस। अचाहि=अनिच्छा।

२३वी साखी–जैसे आकाश में विविध वर्णों की प्रतीति होते हुए भी आकाश सब वर्णों से अलिप्त रहता है–ऐसे ही आत्मसाधना मे लगा साधक अपने तन-मन को सब विषय-भोगों से अलिप्त रखे जैसे जल, मे चन्द्रमा।

निरास मैं मुद्रा सील संतोष सति चेला, ध्यांन की धूई तहां सिधां का मेला ॥
दया धीरज डंड साच करि गहिवा, विचार कै आसण उनमनि रहिवा ॥३॥
सबद की सींगी सहज की माला, जत की कोपीन तहाँ जोग का ताला ॥
निरमोह मढी निहचल वासा, जरणां की जटा सिरि देषिवा तमासा ॥४॥
निरास उड़ाणी अकल की छाया, अधर उठि चालिवा तजिवा काम क्रोध काया॥
भेद सिर टोपी तन वाघंबर, निरगुण जो घोटा सूनि वस्ती न घर ॥५॥
×पाताल का पांणी आकास कूँ चढ़ाइवा, कलपना सरपणी पवन मुषि पाइवा ॥
सतगुर सबद लै अगह अगम उर धारिवा, ग्यांन का चक्र लै काल कूँ मारिवा
बारह सोलहकला लै एक घरि आणिवा, जोगका मूल यह जुगति सब जांणिवा।
गुर का सबद लै भौंरा जगाइवा, सरप चंवई तजि अगम तहाँ जाइवा ।७।
देषि पग धरिवा दया पंथ करिवा, उद्र भरि न सोइवा धात करि न धरिवा ॥
भैभीत नग्री मोहनी माया, कामना मिटी तब जोग पंथ पाया ॥८।
रहता सो भाई वहता सो वहणां, अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहणां ॥
अरथ की अंधारी मिथ्या न भाषिवा, निरंजन मात्रा जतन सूँ राषिवा ॥९॥

पाठभेद—दड–१। वसती–२। अपणी–१-५। अगैह–१। बारह–३-५। देषि पाव धारिवा–१। उदर–१। नगरी–१। अर्थ–४-५।

शब्दार्थ—भेद=रहस्य, ज्ञान, तथ्य। वारह=सूर्य की कला, पिंगला। सोलह=चन्द्रमा की सोलह कला, इडा। इडा-पिंगला को एक घर सुषुम्ना मे आणिवा—लाना। भौरा=जीवात्मारूपी भ्रमर। सरप ववई=संशय का मूल। देषि=ज्ञानदृष्टि से। दया पंथ करिवा=मन, वचन, कर्म से अहिंसक रहना। उद्र भरि=अति आहार कर। धात करि न धरिवा=सोना, चादी आदि धातु को लेना नही। भयभीत नग्री=देह रूपी नगरी कालभय से भयभीत है। रहता=एकाग्र मन। वहता=चंचल मन। अरथ की अंधारी=रूप, रस, शब्दादि विषयो का अन्धकार न आने देना।

× पाणी–शुक्ररूपी द्रव जो स्वभावत अधोगति है, जिसके निकलने का स्थान मूत्रेन्द्रिय है। उस पाताल स्थान से वीर्य को आकाश मे चढाना–ऊर्ध्व रेता होना। मन की चंचलतारूपी सर्पिणी को प्राणायाम की साधना द्वारा समाप्त करना, सतगुरु के उपदेशानुसार पकड़ मे न आने वाले इन्द्रियातीत चेतन तत्व की स्वानुभूति करना, नित्यानित्य विवेक रूपी चक्र से काल पर विजय पाना।

डीवी मवूरी ओर कूँ न देवा, आकास की भिष्या भाव सूँ लेवा ॥
*वाई न झलकै भरम सब छाड्या, परमतत परसतां मेर मधि गाड्या ॥१०॥
वंमि निरंतरि आरंभ करिवा, काया कमडल अमीरस भरिवा ॥
×चिता डाकणी फिरि गई लाजै, अनहद सींगी गगन सुर वाजै ॥११॥
जीवता मरै सु जुगि जुगि जीवै, अगम का पियाला छक्या रस पीवै ॥
उरम धुरम सुषमना भोगी, अकल तरवर तहाँ वसै प्राणनाथ जोगी ॥१२॥
जन हरीदास सतगुर सवद कहै त्यौं कीया, अकलि कै आसरै अगम गढ़ लीया
साध सब ही वसै तहां मैं नांहो, जन हरीदास मन सुरति प्राण वसै ता मांही॥
जन हरीदास चेत्या सतगुर चितावै, सोवै सो षोवै जागै सो पावै ॥१३॥

॥ इति प्राणमात्रा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ आत्माअभ्यास जोगग्रन्थ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन जल तेज न लोई ॥
अगम ठौड़ करसण तहां, चोर कर लगै न कोई ॥१॥
पांणी विणि पांणी, अतिर हाथां विणि तिरणां ॥
वारिन रहणां थाकि, पारि जाइ वहुड़ि न फिरणां ॥२॥

पाठभेद—जुग जुग–५। अकल–३-४। श्रुति–४। वार न–३-५। पार–३। वहौडि–३-४-५।

शब्दार्थ—डोवी=पात्र। आकास की भिष्या=अनायास प्राप्त भिक्षा। उरम धुरम=इडा पिंगला। अकल=कलनरहितचेतन। अकलि कै=साधना द्वारा, शुद्ध बुद्धि मे। चेत्या=सावधान हुआ। अगम ठौड=परमधाम, आत्मनिष्ठ। करसण=कृषि, खेती। वारिन=इसी किनारे, संसार मे ही। पार जाइ=पार पहुच, आत्मसाक्षात्कार कर। वहुड़ि=वापिस, पीछा।

* वाई न झलकै—प्राण अनवस्थित न हो यौगिक क्रियानुसार ही उसका प्रवाह रहे।

× विषयभोग की वासनारूपी चिन्ता लज्जित होकर चली गई।

एकै साथी साथि, गया साथी गत दूजा ॥
देवलि देवलि पैसि, पसरि मन करे न पूजा ॥३॥
हारि जीति दोइ देस, तहां सब जीव का वासा ॥
देषि तमासा डरचा, वहौड़ि मोहि आवै हासा ॥४॥
चिता की लगै न ओट, वोट सतगुर की आया ॥
सतगुर साहस धीर, सु तौ सतगुर तैं पाया ॥५॥
ग्यांन सिंघासणि बैसि, एक आरंभ हम कीया ॥
ब्रह्म अगनि परजालि, पवनमुषि परवत दीया ॥६॥
गया पाप परचंड, त्रिवधि मैं तैं भ्रम भागा ॥
उलटा गोता मारि, प्रांण निरभै सुषि लागा ॥७॥
पाँच सषी लै साथि, परम सुषसागरि झूल्या ॥
विवधि वेलि फल झड्या, कँवल विणि पाणी फूल्या ॥८॥
डाल समाया मूल, काम यहु सतगुर कीया ॥
त्रिवेणि असथांनि, जड़ां मैं पावक दीया ॥९॥
×गंग जमन मधि वेसि, चंद घरि सूर समाया ॥
परम जोति परकास, अगम गुरगम तैं पाया ॥१०॥

पाठभेद—स्यिघासणि–१। प्रजाल–१-५। प्रवत–१। प्रचंड–१। भरम–१-५। नृभै–२-८। विविधि–१। असथान–५।

शब्दार्थ—देवलि देवलि=मन्दिर-मन्दिर। हासा=हसी। वोट=आड़, ओट। एक आरंभ=आत्मचिन्तन। परजालि=प्रज्वलित कर, जलाकर। पवनमुषि=प्राण-सिद्धि। परवत दीया=अहङ्कार हटाया। पाँच सषी=अन्तर्मुखी पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ। झूल्या=स्नान किया, ओत-प्रोत हुआ। विवधि वेलि=वासनामय लता। कँवल विणि पानी फूल्या=हृदयकमल बिना विषयभोगरूपी पानी के प्रफुल्लित हुआ। डाल समाया मूल=डाल रूपी जीव मूल व्यापक ब्रह्म मे समाया। त्रिवेणी असथांनि जडां मै पावक दीया=तीन गुणो के प्रपञ्चरूप भौतिक भावनाओ की जड़ मे ज्ञान की अग्नि लगाई।

× गंग जमन–श्वास-प्रश्वासरूपी प्राण सुषुम्ना द्वारा दशम द्वार मे समाय

घेनि धाम परहरचा , पसरि पांणी नहिं पीवै ॥
परम सूँनि घरि धसै , कुपह केरड़ा न जीवै ॥११॥
अरचित अरत अभंग , नाथ निरभै निरभेदं ॥
जहाँ तहाँ भरपूरि , पूरि लै आस उमेदं ॥१२॥
वार पार मधि नांहि , छिपै नहिं काहू छाया ॥
अदिष्टि अथिर अरूप , अगह उरि अंतरि पाया ॥१३॥
तहाँ सापणि नहि संचरै , ड़हकि दोइ डंक न धारै ॥
प्रथम चढ़ै नहिं जहर , =मंत्र गारड़ू न मारै ॥१४॥
भैरूं न लगै न भोग , सीस भोपी नहिं तौलै ॥
देवल विणि देव अभेव , तहां कुलफ कोइ जड़ै न षोलै ॥१५॥
अरध छांड़ि उरधै चढ्या , राग विणि रागनि वाजै ॥
ब्रह्म अगनि आभरण , सबद विणि सींगी वाजै ॥१६॥
तुला नहीं तहाँ तुल्या , विप्रा विणि वेद पढाया ॥
अगनि विना अस होम , पुनि विण पुन्य समाया ॥१७॥

पाठभेद—घ्येन-२ । प्रहरचा-१ । अक्षर-३-५ । अगहि-४ । डहक-३ । पुन्य-२ ।

शब्दार्थ—घेनि धाम परहरचा=स्थिर वृत्तिरूपी गाय ने सासारिक घर का परित्याग किया-मोह छोडा । पसरि पांणी नहि पीवै=वृत्ति अब सासारिक पदार्थों मे जा विषयभोग के पानी को नही पीती । कुपह=कुमार्ग । केरडा=बछडा । सापणि=वासना, माया । डहकि=उचककर । दोइ डंक=राग, द्वेषमय । गारडू=सतगुरु, मंत्र-दाता । भैरूं=काल । भोपी=माया । कुलफ=कुन्दा, सॉकल । अरध=नीचे । उरधै=ऊपर, ऊँचा । आभरण=गहने, आभूषण । तुला=विचार, तकडी ।

१७ वी साखी—बिना तकड़ी के विचाररूपी तुला मे तुला । बिना पंडितो के सतगुरु उपदेश से वेद-आत्मज्ञान पढ़ा । बिना बाहरी अग्नि के ज्ञानाग्नि मे सब प्रकार की वासनामय सामग्री का होम किया । जप, तप, दानादि पुण्य कर्म किये बिना परम पुण्य-स्वस्वरूप की प्राप्ति की ।

आरंभ विणि आरंभ , करम विणि करम स कीजै ।।
विणि तपस्या तप तहाँ , पाठ विणि पाठ पढीजै ।।१८।।

ईंधण विणि ईंधण , अगनि विणि अगनि स जारै ।।
विण ही निद्रा नींद , भूष विणि भूष संभारै ।।१९।।

नव नाथ लै साथि , मेर चढ़ि आसण धारया ।।
जोगारंभ विणि जोग , भोग विणि भोग विचारया ।।२०।।

नीर न झलकै पारा मारया , यहु आरंभ हम कीया ।।
ठगता जिकै सुतौ ठग ठावा , पकड़ि अगनि मुषि दीया ।।२१।।

पाठभेद—अग्नि-१ । इहु-२ । ज्यके-२ ।

१८ वी साखी—बिना किसी स्थूल क्रिया के आत्मचिन्तन का आरम्भ किया । स्थूल कर्मो के बिना चिन्तन, ध्यान, समाधि आदि कर्म मे लगा। तितिक्षामय पञ्चाग्नि आदि तप को छोड मन.संयम का तप होने लगा। बाहरी वाणी के पाठ बिना धारणा वृत्ति से स्वस्वरूपरूपी पाठ निरन्तर पढने लगा ।

१९ वी साखी—काम, क्रोध, लोभ, मोहादि ईंधन वाली विषयाग्नि को छोड त्याग, वैराग्य, शील, जरणा आदि की ईंधन वाली ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित कर सम्पूर्ण कर्म जलावे । बाह्य निद्रा-सुषुप्ति के बिना समाधिरूप योगनिद्रा ले। भोग-पदार्थो की भूख को छोड ब्रह्मानन्द रस की भूख जागृत करे।

२० वी साखी—अन्तर्मुख पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ, चारो अन्त.करण-ये नव नाथ साथ ले मेर चढ-सुषुम्ना द्वारा प्राण को दशम द्वार मे पहुचा, आसन धारया-प्राण को स्थिर किया। बिना यम-नियमादि अष्टाग योग की साधना के राजयोगरूपी योग के अभ्यास मे लगे। सांसारिक भोगो के बिना स्वस्वरूप प्राप्ति रूप परम भोग भोगने का निश्चय किया।

२१वी साखी—नीर न झलकै-मन में चचलता न रहे, पारा मारया-वीर्य का पाचन कर ऊर्ध्वगामी बनाया। हमने यह साधन प्रारम्भ किया। लोभ, मोह तृष्णा, काम आदि ठग मन को ठगने वाले थे, उन सबको ज्ञानाग्नि द्वारा दग्ध किया।

जन हरीदास सतगुर का चेला, ड़रै न सोवै जागै ॥
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन, तौ नगरी चोर न लागै ॥२२॥

॥ इति आत्माअभ्यास जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उतपति अहेत जोगग्रन्थ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन जल तेज न पांणी ॥
द्योस नहीं जदि राति, तदि कहि कौंण विनांणी ॥१॥
सात समद मरजाद, नहीं गिर भार अठारा ॥
चौरासी लष जाति, नहीं जदि मंडल तारा ॥२॥
आदि सकति नहिं सेस, विष्ण ब्रह्मा नहिं आया ॥
जनम जुरा नहिं मौत, जीव नहिं काल न काया ॥३॥
पुरष नारि रस पाँच, हाट पाटण न पसारा ॥
दामणि गिगनि न गाज, नहीं विरषा घण धारा ॥४॥

पाठभेद—कूंण-१ । गिरि-१ । विष्णु-१ । विसन-२ । पुरिष-१ । पाटणि ४। वरिषा-३। वृषा-५।

शब्दार्थ—व्योम=आकाश । द्योस=दिन। विनांणी=चतुर, विशेषज्ञ। रस पाँच=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय पाँच । हाट=बाजार, दुकान। पाटण= नगर, कायानगरी। दामणि=विषय-वासनामय बिजली। गाज=गर्जना। घण=बादल।

२२ वी साखी—महाराज हरिदासजी कहते है कि सतगुरु-कृपा से अब न तो षड्रिपुओं का भय है। अज्ञान निद्रा में सोवें नही, योग-साधना द्वारा सदा सजग रहते हैं। सर्वदा सहजावस्था में वृत्ति को स्थिर किये हुए हैं, तब अब इस काया नगरी मे काल-कर्मादि चोर कोई नही लग सकतें।

गरड़ नौ कुली नाग, मंत्र गारड़ू न गहरं ॥
डसण नहीं अह डंक, नहीं इम्रत नहिं जहरं ॥५॥
वीरविदोष न पोष, भूत डाकणि नहिं भेदं ॥
भैरूं जोगनि भोग रस रोग, रसना नहि कंध न छेदं ॥६॥
सात वार रुति तीन, घड़ी महूरत नहिं लोई ॥
पहर दिन पष मास, वरस जुग वरणन कोई ॥७॥
षुध्या त्रिसा नभ नींद, सेज सुष सोभ न घर ही ॥
नहिं वैरी नहिं मित्र, नहीं निरभै नहि डर ही ॥८॥
सुद्र वैस षत्री विप्र, विद्या त्रिसतार न वादं ॥
नहिं हिंदू नहिं तुरक, सरा नहि सवद न स्वादं ॥९॥
नहीं चंद नहिं सूर, हारि हठ जीति न मनही ॥
मुकति सिधि नव निधि, चित नहि चाहि न धन ही ॥१०॥
सिध साधिक जोगी जती, पीर नहीं पैकंबर ॥
नहीं कुतब नहिं गौस, दत्त नहि देव दिगंवर ॥११॥
नहिं तपस्या जिग जाप, नहीं करता नहिं कीया ॥
नहीं जोर नहिं जेर, जोग गोरष नहि लीया ॥१२॥
नहीं सूर नहिं गाइ, जवै तन तेग न तूटा ॥
नहीं हेत मुष हाथ तदि, स्वाद कहुँ लिया न छूटा ॥१३॥
नहि पाप नहीं पुंनि, दया निरदै नहिं माया ॥
नहीं मोह नहिं दोह, दूत दुसह नहि दुष सुष छाया ॥१४॥

पाठभेद—इमरित–१। त्रस–१। विस्तार–१। मुक्ति–५। डिगंवर–३-४। ज्यग–२। जग–३। निरदय–३।

शब्दार्थ—नौ कुलि=नौ वंश सर्पों के। डसण=काटना। वीरविदोष=तान्त्रिक। कंध=ग्रीवा, धड। रुति=सर्दी, गर्मी, बर्षा। षुध्या त्रिसा=भूख-प्यास। नभ=नाभी, गहरी। सरा=कुरान की दण्डनीति। जवै=जिबह, हलाल। तेग=करद, छोटी तलवार। निरदै=निर्दयी, क्रूर।

नहीं मील संतोष, गहर मति गुरू न चेला ॥
नहीं ग्यांन नहिं ध्यांन, आप तदि अलष अकेला ॥१५॥
नहीं विरह वैराग, नहीं सेवग नहि स्वामी ॥
षट् दरसण पष नहीं, तदि आथि अरचित वहु नांमो ॥१६॥

महल दरगह सेझ सुष, नहिं, वहौ नारी छंदा ॥
नहीं जोध जर कंवर, नहीं गै गौड़ि करंदा ॥१७॥
नहिं पाइक नहीं फौज, चूक नहिं चाल न धरही ॥
सूंब जाचिग दातार, नहीं कौड़ी नहि कर ही ॥१८॥
रैंत नहीं राजा नहीं, दैत नहीं देवाइर ॥
नहिं षत्री नहि षड़ग, सूर रिण तूर न काइर ॥१९॥
नहीं नाद नीसांण, है न वहता गैवा वल ॥
नहिं सांवत नहिं सूर, भींछ रिण हांकन कावल ॥२०॥
तदिस अषंडित राम, आथि अव साथी सोई ॥
सब जीवां का जीव, तास गति लषै न कोई ॥२१॥
जहाँ तहाँ गोपाल, गोप सब मैं गोपालक ॥
नहीं जोर नहिं ज्वान, नहीं बूढा नहिं वालक ॥२२॥
सिरजनहार अपार, नांव नाराइण लीजै ॥
निरामूल निरस्यंध, तहाँ फिरि सरवस दीजै ॥२३॥
ये सब करि सब तैं अगम, हरिजन हरीदास निरभै निड़र ॥
प्रांण हंस मोती चुगै, मांनसरोवर मंझि घर ॥२४॥

पाठभेद—इकेला-५। अरिचित-४। वहौ-३-४। वहु-१। जरकंव-३-४। जाचिक-१। आदि-३। फिर-३। ए-३-४।

शब्दार्थ—षट् दरसण=जोगी, जंगम, सेवड़े, बौद्ध संन्यासी, शेष। जरकँवर=धन, सन्तान। गै गौड़ि करंदा=मस्ती वाले हाथी नही। पाइक=दास, सेवक। गैवावल=दैवी वल। सूंब=सूम। जाचिग=मांगने वाला। दैत=दैत्य। देवाइर=देवता। रिण=रणभूमि। तूर=तुरही। सांवत=अति शूरवीर। भीछ=सेनापति। कावल=उल्टा, विपरीत। तदिस=तहां। आथि=आखिर. अन्त में। मंझि=मध्य, बीच।

जन हरीदास उदबुद कथा, परमगति गुर गमि लहिये ॥
वर वन गिरि तर कंदरा, राम राषै तहाँ रहिये ॥२५॥

॥ इति उतपतिग्रहेत जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सवदपरीछा जोगग्रन्थ ॥

भगत जंगम जोगी जती, सोफी कहा संन्यास ॥
माया की छाया छक्या, निरमै ठौड़ निरास ॥१॥
वाद कियां वित घटत है, ×अपत परमदत जाइ ॥
मनिष जनम धरि हरि भजै, मन फिरि मनहीं समाइ ॥२॥
राग दोष मैं तैं मनी, जहां तहां मन देत ॥
प्राणनाथ पति छांड़ि करि, भार सगै सिर लेत ॥३॥
ग्यांन आंषि माया मुदित, जीव जागि सकै तौ जागि ॥
अपणा पला छुड़ाइ करि, पतित परम सुष लागि ॥४॥
विप्र वेद काजी इलम, दहूँ पपा दोइ तात ॥
वीचि समंद उभा इथां, कहै तहां की वात ॥५॥
जैन धरम कांटा करम, भरम करि सकै न दूरि ॥
चिदानंद सब तैं अगम, जहां तहां भरपूरि ॥६॥
च्यारि वरण का मूल कहां, हरि परम सनेही पीव ॥
हारि जीति भुरकी पडी, तहां अलूंधा जीव ॥७॥

पाठभेद—गिर–२-३। जहाँ–२। परम दत–३-४। सिरि–३-४। दहौ-५। चारि-१।

शब्दार्थ— तर=तरु, वृक्ष। छक्या=धापा, तृप्त हुआ। ग्यान आँषि माया मुदित=ज्ञानरूपी नेत्र प्राप्त है पर अज्ञान से ढके हुए है। इलम=कुरान, विद्या। दहूँ पषा=दो पक्ष, हिन्दू-मुसलमान। इथा=यहा। काटा=शूल, कर्मबन्धन की झाडी। च्यारि वरण=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। अलूंधा=उलझा।

× अपत–अर्पित प्राप्त मनुष्य जन्मरूपी परम दत–परम धन जाइ–व्यर्थ जा रहा है।

षट् दरसण सोध्या सबै, सु तौ और ही रीति ॥
ऊलामाली जहां तहां, षषा पषी विपरीति ॥८॥
गावण सूं रोवण भला, रोवण गावण मांहि ॥
राम वियोगी जीव कै, तलफि तलफि मरि जांहि ॥९॥
लाष गरंथ का अरथ यह, कोटि पदां पद सेष ॥
साहिब सबतैं सनमुषि सदा, तूँ सनमुष होइ देष ॥१०॥
अनंत साषि साधाँ कही, मांहि रतनपति राम ॥
उलटा गौता मारि करि, करो आपणां काम ॥११॥
तज तनसुष चोवा चंदन सूँधो, सब अंगि हीरा हेम उजास ॥
सु तौ सिंगार कोइ और है, जहां मिटै काल की त्रास ॥१२॥
सिला बैसि तपस्या करै, कंद मूल षणि षाइ ॥
वा तपस्या कोइ और है, जहां त्रिवधि ताप सब जाइ ॥१३॥
वहौ विधि भोजन लेत है, दुरचा देह की वोट ॥
वौह भौजन कोई और है, तहां मिटै काल की चोट ॥१४॥
धर्म नेम तीरथ विरत, प्रीति हेत मन मांहि ॥
सु तौ तीरथ कोई और है, जहां सबै पाप झड़ि जांहि ॥१५॥
चारत लै देही डंडै, अन आंवलि करि षात ॥
सु तौ चारत कोई और है, जहां काम क्रोध भ्रम जात ॥१६॥
पांच अगनि साधै सु तौ, फल ताकै तहां जाइ ॥
ब्रह्म अगनि प्रगटी नहीं, डाल मूल सब षाइ ॥१७॥
देह पेह निरगुण दसा, अनफा सूँ निरगुण लेत ॥
निरभै पदि पहुँता नहीं, लग्या कौंण सूँ हेत ॥१८॥

पाठभेद—विवोगी-४-५। इहै-२। यहै-३। साष-२। षिणि-२। वहु-१। तीर्थ-५। व्रत-१। आमल-५। भरम-१-५। पद-३-५। स्यूँ-१।

शब्दार्थ—उल्टा गोता=वृत्ति अन्तर्मुख करि। सूंधो=इत्र। हैम=सोना। उजास=प्रकाश। षणि=खोद कर। वहौ=अनेक, विविध। दुरचा=छिपा। वोट=ओट, आड़। चारत=व्रत विशेष, चान्द्रायणादि। डंडै=दण्ड दे, कष्ट दे। आंवलि=मलिन। अनफा सू=विनानफे, निष्काम। पहुँता=पहुंचा। हेत=प्रेम, स्नेह।

विवधि धरम तपस्या विवधि, चलत देह कै भाइ ॥
सु तौ पंथ कोई और है, तहां सात समंद लंघि जाइ ॥१९॥

सतगुर सबदां मन बध्या, घाटि उतारघा आथि ॥
दूजा लाडू दूरि गया, एकै लाडू हाथि ॥२०॥

चिंतामणि दरई तहां, सु तौ सबै सुष लेत ॥
वा चिंतामणि कोई और है, प्रगट परम पद देत ॥२१॥

धाह अगनि सुष प्रजलै, तांवा लीया ताइ ॥
सु तौ तावा कंचन भया, जब पारस परस्या जाइ ॥२२॥

स्याह लाल जरदा सुपेद, गिरवरि सुत हाथि हजूरि ॥
लोह पलटि कंचन करै, सो पारस कहूँ दूरि ॥२३॥

हीरा की सोभा कहा, सु तौ चौर ले जाइ ॥
वो हीरा कोई और है, उलटि चौर कूँ षाइ ॥२४॥

मांनि अमांनि दोइ गरव गत, प्रगट परमपद हाथि ॥
कांमधेन सुरही सबै, सु तौ कांमधेन तहां साथि ॥२५॥

मन मरजीवा तन समद, उलटा गोता षाइ ॥
हीरा ले न्यारा रह्या, षारा जल न सुहाइ ॥२६॥

चंदन तरवर की संगति, वसै स चंदन होइ ॥
अरस परस गति एक है, नांव धरण कूँ दोइ ॥२७॥

चंदन तरवर विवधि वन, चंदन मिलै न काहू रंगि ॥
और व्रिछ चंदन भया, मिलि चंदन कै संगि ॥२८॥

पाठभेद—परगट-४। मुषि-३। परजलै-३। सपेत-४-५। गिरवर-४-५। वोह-१। ग्रव-१। कांमधेनि-३-५। येक-२। विविधि-१। व्रिष-१। विरछ-३।

शब्दार्थ—सात समंद=षड् विकार, काम-क्रोधादि तथा सातवां अहङ्कार। दूजा लाडू=सासारिक पदार्थ। दरई=द्रवित, प्रसन्न। धाह=लपट, ज्वाला। हीरा की सोभा कहा सु तौ चौर ले जाइ=उस मनुष्य-जन्मरूपी हीरे की क्या शोभा है? जिसको काम, क्रोधादि चोर चाहे जिधर ले जाय। सुरही=गाय।

कलप व्रिछ सब तैं अगम, सतगुरि दिया बताइ ॥
ज़ा परस्यां दोजग दुरै, काम क्रोध भ्रम जाइ ॥२९॥
दत्त आपै दालिद गमै, मन का तोटा दूरि ॥
सु तौ दाता सब तैं अगम, जहां तहां भरपूरि ॥३०॥
जात लगी जोगी ठग्या, भज़न करत सब साध ॥
सब देवां सिरि देव है, हरि अपरंपार अगाध ॥३१॥
सुष सीतल इम्रत सुधा, मन करत प्रेम धरि पांन ॥
सु तौ चंद कोई और है, प्रगट हरै अभिमांन ॥३२॥
कँवल विगसि प्रगटी किरणि, घट मैं अघट उजास ॥
पछिम दिसि ऊगा अरक, नष सिष नाभि प्रकास ॥३३॥
आठ पहर इम्रत सुधा, अरस परस रस एक ॥
सु तौ इन्द्र कोई और है, दूजा इन्द्र अनेक ॥३४॥
जनम जुरा घट पट नहीं, जम की लगै न गाज ॥
सु तौ राजा कोई और है, जा का सब परि राज ॥३५॥
सब देवां सिरि देव है, सब साहां सिरि साह ॥
सब सुलितांना सिरि सुलतांन है, हरि पूरण ब्रह्म अथाह ॥३६॥
लष चौरासी जीव जहाँ तहां, नाना विधि दीदार ॥
ए सब करि सब तैं अगम, अनंत जोग विसतार ॥३७॥
वसै कहां नांहीं कहां, कौंण सकै औगाहि ॥
वार पार कीमति नहीं, नांव धरत है ताहि ॥३८॥

पाठभेद—भरम-१। दाल्यद-२। द्रालद-५। इमरित-१। येक-२। सुल-ताना-५। ये-२। विस्तार-४।

शब्दार्थ—परस्या=स्पर्श किये। दत आपै=आनन्दरूपी धन दे। दालिद गमै=गरीबी जाय। सु तौ=वह। जात लगी जोगी ठग्या=जो साधक पुजने लगता है, वह ठगा जाता है। कँवल विगसि=नाभिकमल खिला। प्रगटी किरणि=ज्ञान-ज्योति जगी। पछिम दिसि=आत्मनिष्ठ दशा। ऊगा=उदय हुआ। अरक=सूर्य, ज्ञानभानु। इम्रत सुधा=चन्द्रकिरण। साहां=साहूकार। सुलतान=बादशाह। दीदार=आकार, दर्शन। औगाहि=पता लगा सके।

नांव धरूँ तौ मैं डरूँ, हरि अपरंपार अछेह ॥
सुत तात मात वनिता नहीं, गांव देस नहिं देह ॥३९॥
जन हरीदास पति का वरत, अपणैं हिरदै धारि ॥
पर पांणी लागै नहीं, उलटी पंथ सँवारि ॥४०॥
परमसिध परवांण कहां, वहौ कीमति करत गये हारि ॥
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै वसत विचारि ॥४१॥

॥ इति सवदपरीछा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ वीरारस वैराग जोगग्रन्थ ॥

क्या कहिये कहणी कहा, रजमां रहणी मांहि ॥
सो साहिब के हाथि है, दै तौ अचरिज नांहि ॥१॥
रहणी तो जे हरि भजै, रहै निरन्तरि लागि ॥
वलता बुझै अंगार सब, वहौड़ि न झलकै आगि ॥२॥
को चरचै को वंदिजै, को निंदै गहि छार ॥
षेलै साध समाधि मैं, कलपै नहीं लगार ॥३॥
जौ कलपै तौ कसर है, कछु किरची मन मांहि ॥
अगम तहाँ पड़दा इहै, निज तत परस्या नांहि ॥४॥
ज्यूँ हम देषैं त्यूँ कहै, ऊँची करि करि वांहि ॥
कुरंग स्यंघ वैसे नहीं, एक व्रिछ की छांहि ॥५॥

पाठभेद—धरौ–१-५। डरौ–१-४। व्रत–१। परमस्यंध–१। न्यज–२। सिंघ–३-४। येक–३-४।

शब्दार्थ—पति=ब्रह्म। वरत=व्रत। परवांण=परिमाण, नाप-तोल। रजमा=महल। चरचै=पूजे। वंदिजै=वन्दना करे। कलपै=तरसता रहे। =कसर=कर्मों। किरची=अस, सदोषता। इहै=यही। निजतत=आत्मतत्व। कुरंग=मृग। स्यंघ=सिंह।

दुनिया सूँ बांई दई, परमेसुर सूँ प्रीति ॥
साधाँ का सुष अगम है, याह कछु उलटी रीति ॥६॥

करम कठिन रहणी कठिन, कठिन साध की टेक ॥
ज्याँह वाताँ साँई मिलै, सो कोई कठिन विवेक ॥७॥

विरह चोट लागी नहीं, साध सबद सुष दूरि ॥
काम क्रोध मैं तैं मनी, पग दे सक्या न चूरि ॥८॥

या बेदनि कटिवौ कठिन, जांणै विरला कोइ ॥
दया जहां आरंभ नहीं, आरंभ दया न होइ ॥९॥

दया देस तहां वास करि, निरभै पद भजि रांम ॥
धीरज मैं धन मिलेगा, यहि औसर यहु कांम ॥१०॥

मन चंचल निहचल भया, गळ्या ग्यांन की पालि ॥
जाग्या सो मरमै नहीं, सूता पड़ै जंजाल ॥११॥

×पाणी मांहि पैसि करि, धरै निरन्तर ध्यान ॥
मन मछली चितवत रहै, बड़ी विपति यहु ग्यांन ॥१२॥

अगम तहाँ पहुँता नहीं, गुण इन्द्र्या का प्रतिपाल ॥
गुर भीवर सिष माछली, तकि तकि म्हैलै जाल ॥१३॥

साध तहां सुरभष सदा, हरि सुमिरण सूँ हेत ॥
ष्याल पळ्या षर षात है, जा का सूँना षेत ॥१४॥

पाठभेद—परमेश्वर-३-५। व्यरह-२। तहाँ-१। न्यहचल-५। प्रितपाल-३। मष्य-१।

शब्दार्थ—टेक=जिद, आग्रह। बेदनि=पीडा। दया=अहिंसा। आरंभ=सकाम कर्म, यज्ञादि। गळ्या=रुप गया। भीवर=मछुवा। सुरभष=सुकाल, जमाना। ष्याल पळ्या=संसार के खेल मे पड जाने से। षर=गधा।

× बगुला पानी मे बैठ निरन्तर ध्यान करता है पर उस ध्यान का लक्ष्य मछली की हिंसा है। अतः इस तरह वक-ध्यान लगाने से लक्ष्य-प्राप्ति नही हो सकती।

प्रांण सनेही सोइ मां, सुमरि सनेही रांम ॥
अलप आव आलस कहा, सुपना का सा कांम ॥१५॥
बार बार तो सूँ कहूँ, तूँ करै न अपणा काज ॥
गोविंद भज जीवण इसा, जिसा वील का राज ॥१६॥
काल कहर चितवत रहै, तकि तकि रोपै डांण ॥
डांण पड्यां कहि कहा करै, अज्या सिंघ सूँ मांण ॥१७॥
गोरू ग्वाल ही छाड़ि करि, षेत विडाणा षाइ ॥
मार सहै संकटि पड़ै, संकटि पड़ि पछिताइ ॥१८॥
आप सराहै आप कूँ, चाहे मांनि सुहाय ॥
साहिब साध न आदरै, यौ ही बड़ा अभाग ॥१९॥
साध तहां निरवैरता, जहां वैर तहां प्रेत ॥
परमेसुर पति छांड़ि करि, नरक जांण सूँ हेत ॥२०॥
मन मरकट मति छाड़ै नहीं, कूरम मति सूँ दूर ॥
उलू आंषि अछौप है, तौ दोस कहा कहि सूर ॥२१॥
चिंता की डाली भई, सुसा प्रांण ता मांहि ॥
काम क्रोध आंण्या अड्या, मरणा सूझै नांहि ॥२२॥
पांच स्वान पांचूं दिसा, आइ पहूँता वीर ॥
कुवधि काल चितवत रहै, तकि तकि मारै तीर ॥२३॥
मोह पासि करि काल कै, फांध्या सब संसार ॥
मिरघ तहां पगि मति धरै, यौ ही अरथ विचार ॥२४॥

पाठभेद—सुमिरि–१। सुमर–५। कहौ–१-५। जीवन–३। क्या–३-५। अजा–१। नरकि–२। मत–३-४। च्यंता–२। कुबुधि–१।

शब्दार्थ—सोइमां=सोवे मत। आव=आयु। वील=जुगनू। डाण=दाव, मौका, कर। गोरू=गाय-बैल। विडाणा=दूसरो का, औरो का। आदरै=सत्कार करे। मरकट मति=चंचल बुद्धि। कूरम मति=अन्तर्वृत्ति। अछौप=अदृश्यता, नही देखना। डाली=छबड़ी, पीजरा। अड्या=अटका, रुका। पांच श्वान=काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय। फांध्या=फँसाया। मिरघ=मन मृग।

रांवण सूँ मन मति मिलै, न करि कंस सूँ प्रीति ॥
ब्रह्मा का वर छाड़ि दै, संकर का वर जीति ॥२५॥
तिण परि किण की बोस की, जीवण ऐसा जांणि ॥
रांम सनेही सुमरि मन, सुरति सहज धरि आंणि ॥२६॥
विष तरवर नैं फल जड़ै, सो फल विष ही होइ ॥
ताकूँ साध न आदरै, कोटि करै जै कोइ ॥२७॥
भरम छाड़ि भरमै कहा, करम कठिन छिन वात ॥
राम कहत झड़ि जांहिगा, ज्यूँ तरवर का पात ॥२८॥
निसप्रेही निरभै मतै, सूंनि सुधा रस षाइ ॥
उलटा षेलि आकास मैं, सुष मैं रहै समाइ ॥२९॥
लोकारंजन होत है, मनिष जनम का भंग ॥
हिरस धका दे जात है, इहै स काचा रंग ॥३०॥
जहाँ आपौ तहाँ ऊरमी, हरस तहाँ विभचार ॥
ए दोन्यों मोटी व्यथा, संतौ करौ विचार ॥३१॥
राम रसाइण अजब है, दूजा रस करि दूरि ॥
या वेदन कूँ हरि जड़ी, है हाजरां हजूरि ॥३२॥
नैंडा है न्यारा नहीं, न्यारा नैंडा नांहि ॥
परमेसुर सब तैं अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ॥३३॥

पाठभेद—म्रघ–२। मृघ–२। मृग–५। जाइगा–५। न्यस–२। हरसि–१। हरस–२। अहैस–३। ये–२। व्याप–१।

शब्दार्थ—किणकी=फुंहार, लघुबिन्दु। निसप्रेही, नि:स्पृह बेलाग। सूंनि-सुधारस षाइ=निराधार वृत्ति से आत्मनिष्ठ हो परमानन्द रूपी अमृत का पान करे। उलटा षेलि आकास मैं=अन्तर्मुखवृत्ति हृदयाकाश मे स्थिर करे। लोकारंजन=जाति-कुल व्यवहार में। हिरस=चाह, आसक्तिमय प्रेम। ऊरमी-षट्ऊर्मि=हर्ष, शोक, लोभ, मोह, मद, इर्ष्या। मोटी=बड़ी, महान्। दूजा रस=भोग-वासनामय रस। हाजरां हजूरि=सब काल मौजूद।

साखी २५-वी रावण सूं मन मत मिलै=कामरूपी रावण क्रोधरूपी कंस से सम्बन्ध मत जोड। ब्रह्मा का वर=सांसारिक पदार्थों की ममता छोड़। शंकर का वर=रजोगुण की भावनाओ को जीत।

मन मैला हरि निरमला, मन चंचल हरि थीर ॥
मन थिर होइ न हरि मिलै, सांभलि आतम वीर ॥३४॥

अवगति भजि आलस कहा, इहै बाधक फंद जांणि ॥
रांम विसारयां होत है, मनिष जनम की हांणि ॥३५॥

ज्यूँ मकड़ी माषी गहै, कंठ पकड़ि ले जाइ ॥
यूँ निगसावा जीव कूँ, काल विधूंसै आइ ॥३६॥

माया दीपक देषिये, रांम न सूझै पीव ॥
आप अंधारे आपकै, पड़ि पड़ि दाझै जीव ॥३७॥

धरम नेम तीरथ वरत, तुला तुलत है जाइ ॥
छाज बजावे डोकरी, ऊँट षेत कूँ षाइ ॥३८॥

राजा की चौरी करै, दुरै रंक की वोट ॥
रंक वोट कहि क्यूँ टलै, कहर काल की चोट ॥३९॥

षांट गाइ करि वारणै, सुषी न देष्या कोइ ॥
लात मारि चलि जात है, भाजन का भग होइ ॥४०॥

जल माया जिव माछली, षुसी वसै ता मांहि ॥
काल कीर वाँसै वहै, निहचै छाड़ै नांहि ॥४१॥

लोक लाज सिर देत हैं, देत न लावै वार ॥
सिर साहिब कूँ सौंपतां, तूँ क्यूँ करै विचार ॥४२॥

सती जलै सूरा मरै, कठिन वात पल कांम ॥
निसप्रेही निज साधकै, राति द्योस संग्राम ॥४३॥

पाठभेद—नृमला-२। आत्म-४-५। यहै-३ एह-५। वधिक-१। विधौसे-१-५। दीपग-२-५। व्रत १। क्यौ-३-४। लोग-१। दिवस-१।

शब्दार्थ—मैला=वासना से कलुषित। थीर=स्थिर, निश्चल। निगसावा=स्वामिहीन, गुरुहीन, विना सहायक, निस्सहाय। विधूंसै=नाश करे। माया दीपक=भौतिक दृष्टि से। ऊँट=अहंकाररूपी ऊँट। दुरै=छिपै, ओट ले। भाजन=वर्त्तन। वांसै वहै=साथ चलता है। राति द्योस=रातदिन।

अजब बात पैंडा अगम , जीव जागि सकै तो जागि ॥
मन मज्जन तोसूँ कहूं , यहु वीरा रस वैरागि ॥४४॥
कजली वन रेवा नदी , गै राषै मन मांहि ॥
ऐसे हरि सूँ मन मिलै , तौ फिरि विछुड़ै नांहि ॥४५॥
पैंडे मरै तौ परमसुष , पहुँता हरि समि होइ ॥
जन हरीदास हरि भजन की , घाटी लहै न कोइ ॥४६॥
जन हरीदास कहि क्यूँ दुरै , रांम भजन रस रीति ॥
भृकुटी मांही देषिये , जाकै जैसी प्रीति ॥४७॥

॥ इति वीरारस वैरागजोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ भरमविघूंस जोगग्रन्थ ॥

आलम षलक ऊपरै षालिक , करता करण वरण विसतार ।
वसुधा तुया अगनि तत वाई , रवि ससि सोभा भार अठार ॥१॥
चौदा भवण गवण गुण ग्रामी , तारामंडल रचण त्रिय लोक ।
सागर सपत अष्ट गिर परवत , नदी निवासै वहै अलोप ॥२॥
स्यो सक्ति सक्ति विष्ण ब्रह्मादिक, नव घण दांमणि इंद्र कुमेर ।
षांणी च्यारि च्यारि विधि वांणी, घटि घटि अहुँ मंडाणा मेर ॥३॥

पाठभेद—गह–१ । स्यूँ–१ । सौ–५ । विछुरै–१ । भ्रकुटी–१ । विस्तार–१ । त्रय–१ । सप्त–३ । असट–२ । सकति–२ । विसन–२ । नौ–१-३ । चारि चारि–१ । चह–१ ।

शब्दार्थ—अजव बात=आत्मचिन्तन में लगना अजब अनोखी बात है । पैडा अगम=मार्ग निराधार है । गै=गयन्द, हाथी । विछुडै=अलग हो । घाटी=कठिन रास्ता । क्यूँ दुरै=क्यों छिपे । भृकुटी=आंखो मे । आलम=सर्वज्ञ । षलक=संसार । तुया=पानी । भार अठार=अशेष वनस्पति । चौदा भवण=चौदह लोक । त्रिय लोक=पाताल, भू, स्वर्ग । स्यौ सक्ति सक्ति=शक्ति सहित शिव । कुमेर=कुवेर । षांणी च्यारि=चतुर्विध सृष्टि–अंडज, स्वेदज, उद्भिज, जरायुज । च्यारि विधि वाणी=परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी । अहुँ=अहङ्कार । मंडाणा=बना हुआ । मेर=मेरु पर्वत ।

सुर नर असुर षसै आप मैं , माया दडी स ममता जेरि ।
षेलि षिरचा कै अजहूं षेलसि , माया घटै न ममता फेरि ।।४।।

ब्रह्मा कै वरसि अनंत जुग वीचै, सोई ब्रह्मा डरै विघन वष काल ।।
वोछी आव अणुरा षोटा , ए झूठे सुष झूठा भोपाल ।।५।।

वांणी तजि कठिन कुव श्रिकरि कानैं, सुमरि सुमरि अंतरि निज सार ।।
निज पुरिष निरषि निरषि निज नैडो, जन हरीदास हरि परम उदार ।६।

हैवर गैवर गांव गढ़ , महल मगन रस राज ।।
छत्र सिघासण सेझ सुषि , वाजा गहरी गाज ।।७।।

नरपति भोपति दरि षड़ा , सिजदा तन तोलंत ।।
जा दिसि देषें सौ नवें , हुँकारै वोलंति ।।८।।

तषत षड़ा कौड़ी षुसी , राता काचै रंगि ।।
अरक अगनि मैं ऊजला , वो हरि हीरा नहि संगि ।।९।।

माल मुलक पुंगडा पुहौम , षग पतिवरता नारि ।।
कर जोड्या आगै षड़ी , अरस परस दीदार ।।१०।।

पाठभेद—अणौरा-५ । ये-२ । भूपाल-२ । दिस-४ । पुहम-१ । पतिभरता-१ ।

शब्दार्थ—कांनै=एक ओर । निज नैडो=अपने अति समीप । हैवर=घोडे । गैवर=श्रेष्ठ हाथी । दरि षडा=आगे खड़े । सिजदा=नमस्कार, सलामी । पुंगडा=बाल-बच्चे । पुहौम=भूमि, राज ।

४थी साखी—ममतारूपी छोटी मायारूपी दडी को लेकर मनुष्य, देवता, राक्षस षसै-लडते हैं, खेलते है । बहुत से खेलकर धाप गये, बहुत से और खेलेंगे । पर यह ममता तथा माया का फेर कभी न घटता है, न कम होता है ।

५वी साखी-ब्रह्मा के एक वर्ष मे अनेकों युग बीत जाते हैं । वही ब्रह्मा काल-रूपी विघ्न से डरता है । तब अति अल्प आयु वाले हे मनुष्य ! तू व्यर्थ ही इन झूंठे सुख देने वाले मायिक पदार्थो में क्यों उलझता है ?

९वी साखी—सिंहासनो पर बैठने वाले बादशाह कौडी-राज्यसंपत्ति आदि सामग्री मे ही खुशी है, प्रसन्न है । पर उनका यह सब साज-बाज विनाशी है, कच्चा रंग है । जो सूर्य तथा अग्नि को प्रकाश व ताप देने वाला चेतन तत्वरूपी हीरा है, वह हीरा उसने प्राप्त करने का प्रयास नहीं किया । अतः उसका जागतिक प्रयास व्यर्थ है ।

राग कलावंत हुड़कणी, काजी मिसर वमेक ॥
अगम उरक अंतरि नहीं, वैली कथा अनेक ॥११॥
वहौ विधि वागा वहु सषी, वहौ सौंधा वहु पान ॥
वहौ विधि भोजन वहु रतन, हीरां जड़त पलांण ॥१२॥
हेम जड़त हथ सांकलां, गलि मोतिन की माल ॥
या जल मैं वूड़ा घणां, ऊँडो अनंत अताल ॥१३॥
हरि तजि परकीरति रता, साच न मांनै कोइ ॥
के दाधा के दाझसी, या दीवा की लोइ ॥१४॥
पांच कडी षडकै सदा, त्रिवधि ताप का जाल ॥
के मारया के मारिसी, कांठै उभौ काल ॥१५॥
लंकापति रांवण कहां, कुंभकरण कहाँ वंस ॥
हिरणाकुस हिरणाषि कहां, महिसासुर कहां कंस ॥१६॥
जुरासिंध सिसपाल कहां, दुसासण कहां भींव ॥
कैरुंदल पांडु कहां, षगां जू पडती सींव ॥१७॥
छ चकवै मुचकन्द कहां, कहां विक्रम कहां भोज ॥
सांवत पृथी चौहाण कहां, कहां अकबर नौरोज ॥१८॥
एती मन तोसूँ कहूं, सुणि सति सोभा कानि ॥
मैं तैं तजि तूँ राम भजि, कह्यौ हमारो मानि ॥१९॥

पाठभेद—मिश्र–१। वहु–१। जडित–१। प्रकीरति–१। त्रिविधि–१। महिषासुर–१ जुरास्यंच–२। स्यसपाल–२। सिसुपाल–१। कैरो–१। पंडो–१। प्रथी–२। प्रिथी–४। येती–२। तज्य–२। भज्य–२।

शब्दार्थ–वागा=कीमती पोशाक। सौघा=इत्र। ऊँडा=गहरा। परकीरति रता=त्रिगुणात्मक प्रकृति के पदार्थों मे लगा हुआ। दाधा=जला। दाझसी=जलेगे। पांचकडी=शब्दादि पाच विषयो की कड़ी। त्रिवधि ताप=आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक। काठै=पास, समीप। षगां जू=फौज मे, सेना मे। सीव=सीमा, फटाव। सति शोभा=सत्य की शोभा।

११वीं साखी–कलावतों के गाने, पंडित-काजियों के उपदेशादि अनेक प्रवृत्तिया निस्सार हैं, जो अगम्य आत्मतत्व है उसको देखने के लिए जब तक ज्ञानभानु का उर में उदय न हो, तब तक अन्य उपर्युक्त सब प्रयास व्यर्थ है।

घूंणै बैठा क्या करै, करि कछु वेगि उपाइ ॥
अलष पुरिस कै आसरै, चौडे मंडे न आइ ॥२०॥

दुषदारण दुरमतिहरण, मैं तैं हरण गुमान ॥
त्रिवधि ताप तृष्णा हरण, भजि भूधर भगवान ॥२१॥

गरव गुमान आपां हरण, तारण तिरण मुरारि ॥
वोछामन पूराकरण, हरि भजि भेद विचारि ॥२२॥

कांम क्रोध पांचो पिसुण, दुष सुष नदी विकार ॥
ए दीरघ वोछा करण, भजि भौ भंजनहार ॥२३॥

साच कहूं तौ मैं डरूँ, कहिसूँ रह्यो न जाइ ॥
राम संतोष्या सकल सुष, भावै दुनिया रहौ रिसाइ ॥२४॥

रामरसिक हरिरस षुसी, आन रसिक रीसांहि ॥
हरीदास जन यूँ कहै, मैं हरि छाड़ो नांहि ॥२५॥

राम न छाड़ौं मैं डरूँ, ऊँडै धसै वलाइ ॥
पतिवरता पति कूँ तजै, तब ही षोटा षाइ ॥२६॥

प्यास्या जब ही जल पिवै, तब ही आनंद होइ ॥
विष की किरची मेल्हि करि, पीयां न जीवै कोइ ॥२७॥

आल वाल करता फिरै, साध हौंण की सोभ ॥
पैलै मनि देषै पतित, मन अपणां की षोभ ॥२८॥

जन हरीदास दुनियां तरक, राम भजन की टेक ॥
लागि रह्या ते ऊवरचा, दाधा और अनेक ॥२९॥

पाठभेद—पिसुण–१ । ये–२ । दीर्घ–१ । कहिस्यूं–१ । यों–१ । छाडूं–३–४ । डरौ–१–५ । पतिव्रता–१ । प्यासा–१ । हूंण–५

शब्दार्थ—वोछामन=ओछा मन, संसारी वासना में लगा मन । वोछा=छोटा, क्षुद्र । कहिसूँ=कहूँगा । रीसांहि=नाराज होंगे । आल-वाल=टालमटोल, इधर-उधर । होण की=होने की । षोभ=क्षोभ, खीज ।

जन हरीदास दुनियां तरक , विकट रूप विष झाल ॥
साँच कहूँ तौ लड़ि पड़ै , मिलि षेलूँ तौ काल ॥२०॥

॥ इति भरमविधूंस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चिंतावणी उपदेस जोगग्रन्थ ॥

आन ध्यांन गुर ग्यांन विणि , चलत देह कै भाइ ॥
अपणां षोटा ही षरा , करि षोटौ षोटा षाइ ॥१॥
मन मछली करि कीर कै , गिण्यां भरत है सास ॥
लोभ जाल लागा रहै , विपति नदी मैं वास ॥२॥
अपरि अथिर षर करत है , चिर सुष पल न सुहात ॥
इतवत चितवत विवधि रस , अलप सुष छिन मात ॥३॥
वालक कालै ना डरै , देत सरप मुषि हाथ ॥
कै चाल्या कै चलेगा , भरि अनरथ उरि वाथ ॥४॥
छाया छवि काया उदै , देह दिवासा होइ जात ॥
बड़ा हुवा दीया बुझ्या , विपति बड़ाई वात ॥५॥

पाठभेद—षेलौं-१ । इतउत-३ । षिर-५ । छिव-१ ।

शब्दार्थ—आन=मर्यादा, कांण । विणि=बिना । षोटो=बुरा, देहाध्यासी । करि कीर कै=धीवर के हाथ में । अपरि अथिर षिर करत है=मनुष्य संसार मे आ और और नष्ट होने वाले कामो मे ही लगा रहता है ।

४थी साखी —बालक-अज्ञानी मनुष्य काल से डरता नही, विषय-वासनामय सर्प के मुख मे हाथ देता है। अनर्थ को अपनाने से या तो नष्ट हो गया या हो जायगा ।

५वी साखी—बच्चे मे छाया छवि-माता पिता का प्रतिबिब होता है, उसीसे उसके शरीर का बिकास होता है। तरुणावस्था मे उसी से लावण्य प्रतीत होता है। पर बड़ा हुआ बुढापा आया तो वह लावण्य समाप्त हो जाता है काल पाकर देह का नाश हो जाता है, ऐसे शरीर का गर्व करना विपत्ति बढाना है ।

झटकि पटकि आसा अटकि, भटकि धरत उरि काच ॥
त्रिवधि ताप मैं सोइ रह्या, समझि न देखे साच ॥६॥
चंचल चपल जम चोट सिरि, दुरया देह की वोट ॥
आठ पहर अचवत जहर, कहि कौंण जनम का षोट ॥७॥
षट मद छक उदमाद छक, छक माया छक आंन ॥
पाव धरत छाया तकत, पसरि करत पष पांन ॥८॥
डिंभ सिंभ इन्द्री अटकि, चलौ लहौ येक लोभ ॥
लहौ गहौ गलि मिलि रहौ, है हरि सब सतन की सोभ ॥९॥
तमकि धमकि ततगति पतित, काल ठगत ठग तोहि ॥
मोह मंढी में सोइ रह्या, इहै अचंभा मोहि ॥१०॥

पाठभेद—कूंण-१। स्यंभ-२। इक-३। गहि-३।

६ठी साखी-झटपट सचेष्ट हो भोगो की आशा को रोक। इन भोगो मे भटक हीरे के भरोसे काच क्यों ग्रहण करता है? क्यो त्रिविध तापो से संतप्त हो रहा है? समझि-सचेत हो जो सत्य आत्मचितन है उसमे लग।

७वी साखी—अरे नटखट दुराग्रही चपल मन! देहाध्यास की ओट-आड ले क्या? यम-काल की चोट सिर आती है उससे बच सकेगा। निरन्तर विषय-वासनारूपी जहर को पी रहा है। अरे! यह किस जन्म का पाप है?

८वी साखी—रे मन! षट मद छक–छै मदो (जाति, रूप, विद्या, राज, धन, पद) मे मस्त है–उन्मत्त हो रहा है, माया के फेर मे पागल है, गर्व मे अन्धा हो रहा है, पैर धरती पर नही टिकते हैं, छाया देख–अपना प्रतिबिम्ब देख देख अकडता है संसारी उलझनों मे फँस भेदमय विष को पी रहा है। चेत इस सबका परिणाम क्या होगा? विचार और इनसे अपने को मुक्त कर।

९वी साखी—डिंभ सिभ पाखंड तथा ठगी की आड़ मे इन्द्रियलोलुपता की पूर्ति करते रहना मनुष्यजन्म का लक्ष्य नही है। मानवजीवन की सफलता आत्म-प्राप्ति में है। उसी लक्ष्य की पूर्ति के साधनो मे घुलमिल जाओ, तद्रूप बन जाओ। सब महात्माओं ने इसी उद्देश्यपूर्ति को शोभनीय बताया है।

१०वी साखी—संसारी भोगो मे उछल-कूद कर उस परमतत्व की प्राप्ति के प्रयास मे तू पिछड़ रहा है। कालरूपी ठग तेरे को ठग रहा है। तू मोहरूपी महल मे निश्चिन्त सो रहा है। तेरी इस स्थिति को देख बड़ा अचम्भा हो रहा है।

अईयाह अकलि कहिये कहा, सू तौ कौंण उपदेस ॥
मनिष जनम नग परमदत, कुपह करत क्यों पेस ॥११॥
तूंवी तजि सति गति गजत, लजत वजत लघ लोभ ॥
तिरत तकत विचि ही थक्या, अईया चढ़त है सोभ ॥१२॥
चमक चेति चकत भया, जहाँ तहाँ जल पूरि ॥
आसा वसि चिंता डस्या, सू तौ घाट कहुँ दूरि ॥१३॥
हरि करौ दया द्यो मिहरि परि, उर धरि ऊँडौं आज ॥
पीव जीव मरि जाइगा, सुणत समंद की गाज ॥१४॥
विवधि अवधि गति मति गई, है बाकी भी जात ॥
चिंता चिंत चित मैं वसैं, चित मैं भी चिंता की वात ॥१५॥
ठगत ठगत ठग ठगि गया, वुग उजल वैठा आइ ॥
गत जोवन जीती जुरा, चल्या देह छवि छाइ ॥१६॥

पाठभेद—कुपहि–२। क्यू–२। तज्य–२। अया–१। चक्रित–१। चक्रत–३। च्यंता–१।

शब्दार्थ—अईयाह=यह। नग=रतन। परमदत=सर्वश्रेष्ठ धन मानवजीवन। कुपह=कुमार्ग। पेस=हाजिर। द्यो=देवो। मिहरि परि=दया के साथ।

१२वीं साखी—तूंबी-पात्र का परित्याग कर अपने को परम त्यागी दिखाता है पर समय आने पर लोभ को लेकर झगडता है। यह दिखावा तो तिरने का करता है पर झूठी शोभा के लालच मे पार न पहुंच बीच ही मे थक जाता है।

१३वी साखी—चेति–उपर्युक्त दशा से जब चेता–सावधान हुआ तो चमक चकित हो देखने लगा। तो वासना, तृष्णामय समुद्र भरा है। आशा के वशीभूत चिन्ता से डसा हुआ है, जिस संसार सागर से पार–अगले किनारे पहुँचना है वह घाट तो बहुत दूर है।

१५वीं साखी—ससार के अनेक प्रपंचों मे ही बुद्धि तथा आयु चली गई, जो कुछ शेष है वह भी जा रही है। नाना भावनाओ की चिन्ता चित्त मे बसी हुई है साथ ही मन मे कालचक्र की स्मृति भी पैदा होती है, पर इन सब उलझनों से मोह तथा अज्ञान के कारण छुटकारा नही मिलता।

१६वी साखी—मिथ्या, छल, कपट से जो मनुष्य दूसरों को ठगने-धोखा देने में लगा रहा, वह स्वयं भी वासना, तृष्णा, लोभ मोह द्वारा ठगा गया। इसी उधेड-बुन में बगुले की तरह देह का लावण्य, सौन्दर्य खो मनुष्य जन्म को व्यर्थ खोकर कालकवलित हो गया।

तन जीरण धूजत डरत , मरत मुदित अभिमांन ।।
लोकलाज सुधि बुधि गई , पसरि करत पष पांन ।।१७।।
धमकि न धर पांव धरि सकै, नैंण झरत धुनि सीस ।।
कर कंपै श्रवणां असुण , अजहुं भजत नहिं ईस ।।१८।।
वारौडी बैंठो रहै , बोलै तौ मुषि छारि ।।
कटुक वचन सब सिरि सहै , बह्या मोह की धारि ।।१९।।
सवद् कहत रसनां अटत , नटत घटत नहिं घाट ।।
लटकि लटकि लुटि लुटि उठत, तकत टटोलत षाट ।।२०।।
जीव हलचल धरती धरचा , मरत कुटंब सूँ हेत ।।
यूँ करियो यूँ मति करो , सीष अजहुँ यह देत ।।२१।।
इहै विरति सब जीव की , देत काच समि हेम ।।
जीव काया तरवर तजि पंषी चल्या, वहौड़ि कुटंव सूँ पेम ।।२२।।
आंन ध्यान गोविंद विमुष , दुरचा काल की छांह ।।
तात मात नौतन कुटंव , नौतन भाई बांह ।।२३।।

पाठभेद—नैंन-३ । कुटक-३-४ । यौ-१ । अजौ-१ । गोव्यद-२ ।

शब्दार्थ—वारोडि=बाहर, द्वार पर । अटत=अटकती, लडखडाती । विरति=वासना, चाह । आन ध्यान=भौतिक पदार्थो की चिन्ता । दुरचा=छिपा । नौतन=नूतन, नवीन ।

१७वी साखी—शरीर जीर्ण हो गया, कापने लगा, मृत्यु भय से भीत है पर फिर भी अभिमान मे मर रहा है । समझ-बूझ, लोक-लाज समाप्त हो गई, फिर भी वासना के चक्र मे पड विषयपान के फेर मे है ।

१८वी साखी—धमाके के साथ अब पाव धरती पर नही पडते बुढापे के कारण आंखों मे पानी आता है, सिर कापने लग गया है, हाथ भी धूज रहे है, कानो से सुनना कम हो गया है, तो भी परमेश्वर को याद नही करता ।

२०वी साखी—शब्द बोलते जीभ अटकती है, बुढापा आ गया है पर विषय-वासना की भावना न घटी है, न उससे दूर होने की सोचता है, सहारा ले ले कठि-नाई मे उठ पाता है नेत्रो का जोर लगा खाट को टटोलता है-यह अवस्था होते हुए भी संसारबन्धन से मुक्त होने का विचार उत्पन्न नही होता । कैसी खेद की बात है ?

२३वी साखी—संसारी-भोगो मे ही लगा रहा, परमेश्वर से विमुख हुआ काल को छाया मे छिपा, पर अन्त मे जीवन समाप्त कर नये माता, पिता, भाई, बहन, कुटुम्ब प्राप्ति की भावना लिये चला गया ।

जांणि बूझि बौरा भया, देत सिला तलि हाथ ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन नाथ ॥२४॥

॥ इति चिंतावणी उपदेस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनचरित जोगग्रन्थ ॥

गुरु कीजै कछु ग्यान कूँ, सतगुर ग्यान बताइ ॥
किसि विधि निरभै आतमां, निज तत परसै जाइ ॥१॥
सतगुर चरणां सिर धरूँ, मैं सति पूछौं तोहि ॥
परमसनेही कहां बसै, कहि समझावौ मोहि ॥२॥
को मुरीद माला कहां, लीजै कवण बुलाइ ॥
कहां रहिये कहां गाइये, सतगुर भेद बताइ ॥३॥
अवधू मन मुरीद माला मतौ, सुरति सहज घर लाइ ॥
आतम कै असथानि रहौ, अणबोल्या कछु गाइ ॥४॥
स्वामीजी मनहि चरित मनसा लहरि, केता लिया तुड़ाइ ॥
मन ऊँडै ले अणसरै, सतगुर भेद बताइ ॥५॥
अवधू मन कूँ पालिवा अगम कूँ चालिवा, अगम कै आसरै प्राण लावे ॥
रूप त्रिणि राचिवा मद त्रिणि माचिवा, तौ काल की चोट मैं
कौण आवे ॥६॥

पाठभेद—किहि-१। त्रिभै-१ प्रसै-१। धरौं-२-५। पूछूं-२-३। कौण-५। औघू-१। च्यरित-२।

शब्दार्थ—बौरा=पागल। मुरीद=शिष्य, चेला. जिज्ञासु। मतौ=मत, विचार। अणबोल्या=अजपा जाप। तुड़ाइ=अलग हो, सम्बन्ध छोड़। अणसरै=बिना अटके।

२४वीं साखी—समझबूझ कर भी पागल हो काल की शिला के नीचे हाथ दे रहा है। हरिदासजी महाराज कह रहे हैं—अरे! निर्भय हो काल पर विजयी होने को उस निरंजननाथ को क्यों नही भजते ?

मन है स फूटे भांडे का नीर है स्वांनरूपी रूप करता है फटक मणि
फूस की आगि है , ज्यूँ फूट जावे ॥
मन कै मतै न षेलिवा रे अवधू , मन के मतै षेलै सो षोटा षावे ॥७॥
स्वामीजी सति का सवद विचारिवा फूस की आगि तै कौंण मन बोलिये
फूटे भांडै कै नीर तै कौंण मन बोलिये, कौंण मन फटकमणि ज्यूँ फूट जावे ॥
स्वानरूपी कौंण मन बोलिये , कोण मनवा अभेदी ना भेद पावे ॥८॥
अवधू फूटै भांडे का नीर वोलिये, जे पाँचों चूरा चरै ॥
फूस की आगि वोलिये , जे दसों दिसा परजरै ॥
स्वांनरूपी रूप करतां परम भांई पड़ै, फटकमणि ज्यूँ मन फूटि जावे ।
उलटेगा मन मन को वेधेगा , तव यौं ही मन हीरा कहावे ॥९॥
स्वामीजी मन कै कौंण राह कौंण चाल, कौंण मूल कौंण डाल ॥
परमभेद तैं कौंण मन लहै , सतगुर होइस वूझ्यां कहै ॥१०॥
अवधू मन के मनसा राह अनंत चाल, धीरज मूल मोह डाल ॥
उलटा षेलि मन मन कूँ गहै , तौ मन कै अग्र परम निधि लहै ।११।
स्वामीजी मन कै कौंण रूप कौंण चाल, कौंण रंग कौंण काल ॥
कौंण असथांनि मन उनमनि रहै, कौंण असथांनि मन अगहा गहै ।१२।
अवधू मन कै बहौतरि रूप दोइ चाल, तीनि रंग सहज्य काल ॥
गगन असथांनि मन उनमनि रहै, नाभि असथांनि मन अगहा गहै ।१३।
स्वामीजी कौंणस मैंगल कौंणस भोई, कौंण महावत कौंणस छोई ॥
वेड़ी कौंण परसि मन जीवे , प्यासा कौंण कहां मन पीवे ॥१४॥

पाठभेद—पूछ्या–१ । अगरि–१ । अगृ–३ । बहुतरि–१-३ । सहज–३-४ । प्रसि–१ ।

शब्दार्थ—वूझया=पूछने पर । अग्र=आगे, परे । वहौतरि=अनेक तरह के, विविध । दोइ चाल=संकल्प-विकल्प, प्रवृत्ति-निवृत्ति । तीन रंग=सात्विक, राजस, तामस । असथानि=जगह, स्थान । उनमनि=सहजावस्था । अगहा=मन, बुद्धि, इन्द्रियों से पकड़ा न जाय ।

अवधू मनस मैंगल धीरज भोई, ग्यांन महावत ध्यानस छोई ।।
वेडी प्रेम परसि मन जीवे, प्यासा प्रेम सूंनि रस पीवे ।।१५।।

स्वामीजी कौंण कूँ राषिवा कौंण कूँ ग्रासिवा, कौंण करिवा नव षंडं ।।
कौंण सवद ले निरंतरि षेलिवा, कौंण षड़ग लै मेलिवा रवि चंदं ।।१६।।

अवधू मन कूँ राषिवा मनसा कूँ ग्रासिवा, त्रिवधि करिवा नव षंडं ।।
सतगुर सवद ले निरंतरि षेलिवा, ग्यान षड़ग ले मेलिवा रवि चंदं ।।१७।।

स्वामीजी कौंण को मारिवा कौंण घरि आंणिवा, कौंण विधि राषिवा वारी ।।
कौंण के पहरै जागिवा, कौंण असथांनि मिल षेलिवा सारी ।।१८।।

अवधू मन कूँ मारिवा सहज घरि आंणिवा, काया वन राषिवा वारी ।।
सील संतोष ले पहरै जागिवा, गगन असथांनि मिलि षेलिवा सारी ।।१९।।

स्वामीजी कौंण कूँ पकड़िवा कौंण कूँ चरिवा, कौंण का मेटिवा पसारा ।।
कौंण सवद लै निरभै षेलिवा, कौंण सवद गहि वांधिवा पारा ।।२०।।

अवधू मन कूँ पकड़िवा संसै को चरिवा, मोह का मेटिवा पसारा ।।
निरषर सवद लै निरभै षेलिवा, मन पवन गहि वांधिवा पारा ।।२१।।

स्वामीजी कौंण गयास गया कौंण जाता राषणां, उलटी सुरति कौंण रस चाषणां
कौंण रस पीवेगा स जीवेगा, कौंण रस लेणां ।।
कौंण रस विष करि छांड़णां, सो इम्रत करि न पीवणां ।।२२।।

अवधू मन गया सो गया जाता राषणां, उलटी सुरति अगम रस चाषणां ।
पीवेगा स जीवेगा, तत रूप लेणां ।।
पांचूँ इन्द्री रस विष करि छाड़णां, सो इम्रत करि न पीवणां ।।२३।।

पाठभेद—पेम-१। म्यल-२। गिगन-१। अस्थांन-१। पांचों-१। यन्द्री-१। इमरति-१।

शब्दार्थ— मैंगल=मस्त हाथी। भोई=सेवक, पालक। छोई=हौदा, झूला, बिछावना। त्रिविध=तीन गुण, तीन ताप। नव षंडं=टुकड़े-टुकड़े कर देना। रवि चदं=प्राण-मन। चरिवा=खा जाना, खत्म कर देना। पसारा=फैलाव, विस्तार। पारा=शुक्र, वीर्य।

स्वामीजी त्रिष रूप तैं कौंण बोलिये , अगनि रूप तैं कौंण छाया ॥
सुष रूप तैं कौंण बोलिये परम भेद तैं कौंण बोलिये, तहां काया न माया २४
अवधू त्रिष रूप तैं ग्यांन दगधी , अगनि रूप तैं काम छाया ॥
सुष रूप तैं परम संगी , परम भेद तैं निरंजन राया ॥२५॥
स्वामीजी कौंण तत पलटिवा कौंण घर आंणिवा, कौंण पुरस लेवा पाली ॥
कौंण असथानि मन उनमनि रहिवा, कौंण असथानि लाइवा ताली ॥२६॥
अवधू पांच तत पलटिवा सहज घर आंणिवा, प्रांण पुरस लेवा पाली ॥
अरध असथांनि उनमनि रहिवा , परम असथांन लाइवा ताली ॥२७॥
अवधू भरम का भांडा भांजिवा
त्रिवधि ताप मेटिवा , इला पिंगुला राषिवा नारी ॥
लोभ लू टालिवा वंकनाल वालिवा , तहां देषिवा झिलमिल जोति
उजाली ॥२८॥
स्वामीजी भरम का भांडा तैं कौंण
बोलिये , त्रिवधि ताप तैं कौंन बोलिये ॥
कौंण बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तैं कौंण बोलिये वंकनालि तैं कौंण बोलिये , तहां देषिवा झिलमिल जोति
उजाली ॥२९॥
अवधू भरम का भांडा ते भेंचक
बोलिये , त्रिवधि ताप तीनि गुण बोलिये ॥
मन पवन बोलिये , इला पिंगुला नारी ॥
लोभ लू तें कनक कामणि बोलिये , वंकनाल सुषमनि बोलिये ॥
उलटेगी सुषमना परमसिंध भेदेगी , तहाँ देषिवा झिलमिल जोति
उजाली ॥३०॥

पाठभेद—कूंण-५ । प्रम-१-५ । अस्थान-१-३ । पुरिस-१ । भ्यांजवा-२ । टाल्यवा-२ ।

शब्दार्थ—ग्यांन दगधी=दिखावटी या वाचक ज्ञानी । परमसंगी=चिरसाथी । पांच तत पलटिवा=पांचो ज्ञानेद्रियो को शब्दादि विषयों से हटा आत्माभिमुख करना । प्राण पुरस लेवा पाली=प्राण पुरुष श्वास-प्रश्वास का प्राणायाम द्वारा निरोध करना । अरध अस्थांनि=नाभिप्रदेश । परम अस्थान=गगनमंडल, दशम द्वार ।

अवधू दुष सुष मेटिवा संतोष धरि
रहिवा, सहज समाइवा ते जोगं ॥
हंस सूँ परमहंस मिलाइवा तहां लागि काटिवा काल रोगं ॥३१॥
स्वामीजी दुष सुष का घर कौंण
बोलिये, संतोष का घर कौंण बोलिये ॥
सहज समाइवा ते कौंण जोगं, परमहंस ते कौंण बोलिये तहाँ
लागि काटिवा काल रोगं ॥३२॥
अवधू दुष सुष का घर अहमेव
बोलिये, संतोष का घर समता बोलिये ॥
सहज समाइवा ते परमजोगं ॥
परमहंस पारब्रह्म बोलिये तहाँ लागि काटिवा काल रोगं ॥३३॥
स्वामीजी पांच इन्द्री पचीस प्रकृति, कौंण अस्थानि राषिवा ॥
, कौंण अस्थानि राषिवा वाई ॥
कौंण अस्थानि मन कूँ राषिवा, कौंण अस्थानि रहिवा समाई ॥३४॥
अवधू पाँच इन्द्री पचीस प्रकृति, उनमनि अस्थानि राषिवा ॥
वंकनाल में वाई ॥
मूल अस्थांनि मन कूँ राषिवा, सूँनि अस्थांनि रहिवा समाई ॥३५॥
ज्यूँ कुंभ जल सूँ भरया जल मांहि
धरया, अंतरि निरंतरि नीर माया ॥
यूँ भरमि भूला पष्य भेद पावे नहीं, सकलव्यापी कहै राम राया ॥३६॥
स्वामीजी कौंण फुनि फुनि षिरै
कौंण भ्रमता फिरै, कौंण के आसिरे सच कौंण पावे ॥
सति का सबद बोलो हो स्वामीजी, काल की चोट में कौंण आवे ॥३७॥

पाठभेद—घर–१। सहजि–४। स्यूं–१। मिलायव–२। प्रक्रति–२। असथानि–२। यौं–१। भरमता–२। सत्य–२।

शब्दार्थ—अहमेव=अहंकार ही। समता=समभाव। सहज=स्वाभाविक, माया अविद्या रहित चेतन। वाई=प्राण। वंकवाल=सुषुम्ना। षिरै=नष्ट हो, खंड खंड हो।

अवधू काया फुनि फुनि फिरै हंस
भ्रमता फिरै, हंस परमहंस नहिं पाया ॥
हंस परमहंस पावेगा तब नहीं
भ्रमेगा, जब साच पाया ॥३८॥

स्वामीजी भोजल ते ऊँडो अथाह, अजर सबद विकारं ॥
माया मोहनी पांच प्रबल बहै, कहां लागि उतरबौ पारं ॥३९॥

अवधू मैं तै मेटिवा संतोष घरि रहिवा, अजर सबद करिवा आहारं ॥
परम जोति कै परचै षेलिवा, उनमनि लागि उतरिवा पारं ॥४०॥

स्वामीजी कोंण तुमारी जाति बोलिये
कोंण तुम्हारा कुल बोलिये, कोंण ग्यान ले भया उदासं ॥
कोण देस कोंण दिसा, कहां तुम्हारा प्राण पुरिस का वासं ॥४१॥

अवधू अनिल पुरिस हमारी जाति करतूति हमारै कुल बोलिये।
बोलिये, ब्रह्मग्यान ले भया उदासं ॥
दया देस एक दिसा बोलिये, परम सूनि तहां हमारा प्राण
पुरिस का वासं ॥४२॥

स्वामीजी कोण तरवर कोंण छाया, तुम्ह कहां के पंषी कहां आया ॥
कोंण उडाणा कहाँ समाया ॥
अवधू अकल तरवर सकल छाया, अम्हे परमसूनि के पंषी अरध सूनि आया।
उलटि उडाणा परम सूंनि समाया ॥४३॥

पाठभेद—प्रमहंस–१-४। आया–१। उतरिवा–१-५। अहारं–४-५। प्रम–१। प्रचै–१। सून्य–२। हमे–१-५।

शब्दार्थ—हस=जीवात्मा। ऊँडा=गहरा। अथाह=जिसकी गहराई का पता नही। अजर सवद=कटुवचन। अनिल पुरिस=प्राणपुरुष। करतूति=करणी, साधना। परमसूनि=परब्रह्म। अकल=कलनरहित, शुद्ध। सकल छाया=सर्व व्यापक। अम्हे=हम। उलटि उडाणा=अन्तर्मुख हो।

स्वामीजी कौंण अषंडित कौंण अरूप, कौंणस सीतल कौंणस धूप ।
कौंणस कलपै कौंणस वहै, कौंणस विनमैं कौंणस रहै ॥
कौंण अस्थानि मन उलटा जाई, कौंण अस्थानि मन रहै समाई ॥४४॥

अवधू ब्रह्म अषंडित मनस अरूप, मनस सीतल पवनस धूप ।
चित्तस कलपै मनसा वहै, दिष्टि विनसै अदिष्टि रहै ॥
गगन अस्थांनि मन उलटा जाइ, सहज सूंनि में रहे समाइ ॥४५॥

स्वामीजी कौंण अंधारा कौंण उजास, कौंण अस्थांनि निज किरणि प्रकास ।
कौंण अस्थांनि मन रहै समाइ, कौंण अस्थांनि मन भूषा जाइ ॥४६॥

अवधू त्रिवधि अंधारा ग्यांन उजास, नाभि कंवल निज किरणि प्रकास ॥
ता अस्थांनि मन रहै समाइ, इंद्र्या अस्थांनि मन भूषा जाइ ।४७।

स्वामीजी कौंणस तरवर कौंणस छाया, पंषी प्राण कहां विलमाया ॥
पंषी तिको कौंण फल खाय, सति सति स्वामीजी कहो समझाय ॥४८॥

अवधू अकल तरवर सकल छाया, पंषी प्राण तहां विलमाया ॥
उलटा षेलि अगम फल लहै, सतगुरु सबदां निरभै रहै ॥४९॥

स्वामीजी तुम्हे अगम भेद कि वार पारं, अगम अरथ कि ध्यान धारं ॥
दया दरगह कि मिहरि दसतं, विग्यान पैठे कि ग्यान गुष्टं ॥
जुरा जीती कि दसवैं द्वारं, ×उरघ फूट्या कि झड्या तालं ॥५०॥

अवधू हमे अनंत भेदं अजब स्वादं, परम दिष्टि अगम नादं ॥
दया दरगह मिहरि दसतं, विग्यान पैठे ग्यान गुष्टं ॥
जुरा जीती दसवैं द्वारं, ×उरघ फूट्या झड्या तालं ॥५१॥

पाठभेद—द्रष्टि-५ । अद्दष्टि-५ । गिगनि-१ । जाय-१ । समाय-१ । औघू-१ । तुमे-१-५ । के-५ । गुसटं-२ । फूटा-३-४-५ । अम्हे-३ । अमे-५ । दिसटी-२ । दस्तं-३-४ ।

शब्दार्थ—कलपै=तरसे, कल्पना करे । दिष्टि विनसै=दिखने वाले सब पदार्थ नष्ट होते हैं । अदिष्टि रहै=मन, इन्द्रिय से गृहीत न होने वाला अगोचर तत्व ही नित्य रहता है । उजास=उजाला, प्रकाशमय । × उरघ फूट्या=मेरुदंड का ऊपरी अवरोध दूर हुआ ।

स्वामीजी तुम्हे कौंण ग्राही कहां सीधा, कौंण मोती कहां बीधा ॥
कौंण उलटि षेल्या कौंण पीया, सेस के मुषि कौंण दीया ॥
कौंण मेला कहां बैठा, पांच जोगी कहां पैठा ॥५२॥
अवधू हमें सारग्राही सबदि सीधा, मन मोती निज अरथि बीधा ।
मन उलटि षेल्या पवन पीया, *सेस के मुषि सिंघ दीया ॥
रवि ससि मेला चौकि बैठा, पांच जोगी गुफा पैठा ।
नव नाथ निहचल देषि भाई, गंग उलटी गगनि आई ॥५३॥
स्वामीजी कौंण धागा कहां लागा, कौंण निहचै भरम भागा ।
कौंण जोगी अवधूत वाला, कौंण आसण कौंण मृगछाला ॥५४॥
अवधू सुरति धागा सहज लागा, भेद पाया भरम भागा ।
प्रांण जोगी अवधूत वाला, गगनि आसण मन मृगछाला ॥५५॥
स्वामीजी कौंण टोपी कौंण कंथा, कौंण चेला कौंण पंथा ॥
कौंण झोली कौंण सिष्या, कौंण डीवी कौंण भिष्या ॥
कौंण जाप कौंण माला, कौंण जोगी कौंण पियाला ॥५६॥
अवधू तत टोपी षवरि कंथा, पांच चेला अगम पंथा ॥
उरध झोली सबद सिष्या, ग्यांन डीवी अजर भिष्या ॥
अजपा जाप मन माला, प्रांण जोगी पवन पियाला ५७॥
स्वामीजी कौंण धूंई कौंण पलीता, कौंण अगनि कौंण वलीता ॥
कौंण चौपड़ि कौंण सारी, कौंण षेलै ध्यान धारी ॥५८॥

पाठभेद—स्यंघ-२। नो-१। म्रघछाला-२। मृघछाल-३। भ्रम-१। भ्यष्या-२। भष्या-५। भ्यष्या-२ प्रान-४। अग्नि-१।

शब्दार्थ—ग्राही=ग्राह्य, चाहना। सीधा=सिद्ध हुआ, सफल हुआ। कंथा=गूदड़ी। सिष्या=शिक्षा, सीख। भिष्या=भिक्षा, भीख। चौपडि=चौपड।

५३वी साखी—इडा-पिंगला का मेल हुआ, मन वृत्ति हृदय मे स्थित हुए, पांच जोगी पाच प्राण गुफा मे पैठा नाभि मे स्थिर हुए। पांचो ज्ञानेन्द्रियां चारों अन्त:करण निश्चल हो गये, सुषम्ना उलट गगन मंडल में, दशम द्वार में आ गई।

* कुण्डलिनी रूपी सर्प के मुख मे प्राण रूपी सिंह को दिया।

अवधू धुनि धूई प्रेम पलीता, ब्रह्म अगनि कांम क्रोध वलीता ॥
चित चौपाड़ि पचीस सारी, प्राण षेलै ध्यान धारी ॥५६॥

दोहा—मनहि चरित निज ग्यांन है, सतगुरु दिया बताय ॥
जन हरीदास हरि अघट है, घटि घटि रह्या समाय ॥६०॥

॥ इति मनचरित जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनमदविधूंस जोगग्रन्थ ॥

सतगुर कह्या मो आरंभ करिहूँ, अलष निरंजन हिरदै धरिहूँ ॥
हरष सोग चिंता सब जाई, मृघी पकड़ि सिंघ कूँ षाई ॥१॥
मनसा घटा गहर जल पूरि, चेला पांच अगनि मुषि चूरि ॥
पांणी जलै मीन मन मरै, ऐसा आरंभ जोगी करै ॥२॥
आसा नदी अपूठि वहै, इम्रत झरै गगन रस रहै ॥
नव मैं नदी निवासी निहचल भई, आसा त्रिष्ना भूषी गई ॥३॥
आसण अधर पवन मन हाथि, सुरति जोगणीं जागै साथि ॥
परम जोति आनंद अभ्यास, निरभै भया काल का नास ॥४॥
आसा कै घरि चिंता वसै, काल रूपणि जीवहि डसै ॥
गंग जमन मधि वैसे जाई, तब जोगी चिंता कूँ षाई ॥५॥

पाठभेद—पेम १ । च्यंता–२ । मिरगी–१ । म्रची–१ । इमिरत–१ । तिसना–१ ।

शब्दार्थ—पचीस सारी=पचीस पंचभूतों की प्रकृति, वे ही सारी है, गोटें हैं। मृघी पकड सिंह कूं षाई=निश्चल वृत्ति रूप मृगी मन रूपी सिंह को खा लेती है, स्थिर कर लेती है। चेला पांच अगनि मुषि चूरि=पांच ज्ञानेन्द्रियों की बाह्यवृत्ति को ज्ञानाग्नि से दग्ध करो। पाणी जलै मीन मन मरै=संसारी भोग भोगने की वासना रूप पानी जल जाय, तब मीनरूपी मन स्थिर हो मरै। आसा के घरि चिंता वसै=वासना जब तक है, तब तक चिन्ता भी बनी रहती है।

सत रज तम तिमर मोह तजि माया, मन निहचल निरभै घरि आया ॥
पूठा फिरचा छाड़ि घट घाट , ग्यांन ध्यांन गढ़ि लग्या कपाट ॥६॥
त्रिकुटि कोट में आसण मांड़ै , राजा तीन दंड दै षांड़ै ॥
षोलि कपाट घाट वट लहै , परहरि डाल मूल निज गहै ॥७॥
इन्द्री पांच परपंच करि घेरै , जोग मूल कै धागै जेरै ॥
*जुगति विचारै अजरा जरै , गुरगमि ध्यांन निरंतरि धरै ॥८॥
असलि गरीबी आपा डारै , मरणहार कहा ले मारै ॥
सूनै घरि विसहर कहा षाइ , मन दूजै घरि रह्या समाइ ॥ ९ ॥
हारि जीति का पासा डारचा , वाजी जीती ड़ाव विचारचा ॥
षेलणहार गया मुष गोइ , ता का पला न पकड़ै कोइ ॥१०॥
जोग मूल गहि जोगी जागै , पैंडै चलै न कांटा लागै ॥
धूंई ध्यान ग्यान की छाया , मुद्रा सवद निरंतरि पाया ॥११॥
पांच तत की मंढी संवारै , मिरतग होइ काल कूँ मारै ॥
सतगुर कहैस सोई सूझै , ×तव अगम गाइ घर ही में दूझै ॥१२॥
अलष निरंजन साथी मेरा , परम जोग पद पूरा ॥
काइर उलटि जात जहां का तहां , पहुँचै कोई सूरा ॥१३॥

पाठभेद—तृभै-५ । गढ-३-५ । प्रनच-१ । मुंह-१ । म्रितग-२ । मृतक-३ ।

शब्दार्थ—निरभै घरि=स्वस्वरूप रूपी घर। त्रिकुटि=भृकुटि मध्य । राजा तीन=मन की त्रिगुणात्मक दशा। षोलि कपाट=कुण्डलिनी-कपाटरूप मेरुदंड के कपाट । परपंच करि घेरै=विषयो से विमुख करे । विसहर=काल, सर्प । डाव=दाव, मौका । मुष गोइ=मुँह छिपाकर, विविध चाह वाला मन जब अन्तर्मुख हुआ, तब उसने सासारिक भोगो का परित्याग कर दिया। धूईं ध्यान=ध्यान ही की धूँणी। पांच तत की मंढी संवारै=शरीर रूपी घर को ज्ञानज्योति से सज्जित करे। मिरतग होइ=जीवन्मुक्त होकर ।

* जुगति विचारै अजरा जरै=यम-नियमादि साधनो का युक्तिपूर्वक प्रयोग कर अजरा-मन की वासनामय वृत्ति उसको जरै, पचावे-वृत्ति में एकाग्रता लावे ।

× तव अगम गाइ घर ही में दूजै=गुरु उपदेशानुशार साधक स्वस्वरूपप्राप्ति के साधन मे लगे तो मन-वाणी से अप्राप्त आत्मतत्त्वरूपी गाय घर मे-अपने ही भीतर परमानन्दरूपी दूध देने लगे।

ग्यांन गदा लै मन कूँ मारै, ब्रह्म अगनि दे लंका जारै ॥
होम जिग अंतरि धुनि होइ, पाप पुंनि तहां लकड़ी दोइ ॥१४॥
+अब तो एक एक सूँ लग्या, जब लाग्या तब मन मन ठग्या ॥
दीनदयाल सतगुर की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥१५॥
पैंडा अधर उलटि परवरै, नहीं घाट कंटकि कहा करै ॥
तारामंडल चंद सूर तजि ऊंचा जाई, परम जोति में रहे समाइ ॥१६॥
भोलि भूल ममता सब गई, अब तो बात और ही भई ॥
परम उदार अवगति की दया, करता राज रैति सो भया ॥१७॥
जोगमूल का जांखे भेद, जनम जुरा कंध नहिं छेद ॥
छिपी बात अभि अंतरि लहै, सबद विचार उनमनी रहै ॥१८॥
मन गहि पवन मेर गिर चूरै, भँवर गुफा में आसण पूरै ॥
ससिहर कै घर आंणे सूर, सबद अनाहद बाजै तूर ॥१९॥
मन भया मगन परम सुष मांही, ग्यांन गुफा मन छाडै नांही ॥
अरस परस आनंद रस एक, हारि जीति की रही न टेक ॥२०॥
त्रिवेणी तटि तालि लागी, मन थिर पवन सुषमना जागी ॥
दसवैं द्वार बस्या मन जाइ, वंकनालि इम्रत रस षाई ॥२१॥

पाठभेद—ज्यग-२। धुन्य-२। येक यक-२। सो-१। कटक-३-४। तज्य-२। रैत-४-५। येक-१।

शब्दार्थ—लंका जारै=वासनामय गढ़ रूपी लंका को दग्ध करे। भोलि भूल ममता सब गई=सत्य चेतन को असत्य असत्य, पंचभूतात्मक शरीर को सत्य समझने की भोली भूल तथा देहाध्यास की ममता सब दूर हो गई। करता राज रैत सो भया=विषय में लगा मन इन्द्रियों पर राज करता था, वह अब विषय से हट आत्मा की ओर हो रैत-प्रजा की तरह वश मे हो गया। जोगमूल=चित्तवृत्ति की एकाग्रता, सहजावस्था प्राप्त करना यही जोग का मूल है। मन गहि पवन मेर गिरि चूरै=मन-प्राण को एकाग्र कर वासना तथा अहंकार के पहाड़ का चूर्ण करे। भँवर गुफा=दशम द्वार। त्रिवेणी तटि=त्रिकुटी तीर। वंकनालि=सुषुम्ना प्रणाली।

+ अब तो एक एक सूं लग्या=अब तो निश्चल हुआ एकाग्र मन उसी व्यापक विभु एक तत्व में ही लग गया है।

सूनिमंडल मैं सींगी वाजै, मानों घटा दहूँ दिसि गाजै ॥
सहजि पियाला भरि भरि पीवै, मन मतिवाला जोगी जीवै ॥२२॥
ब्रह्म अगनि सवहि मन दह्या, तरवर एक अषंडित रह्या ॥
ता तरवर मैं मेरा वासा, परम जोति पूरण परकासा ॥२३॥
तहां काम क्रोध जोग नहिं भोग, मांनि अमांनि हरष नहिं सोग ॥
अलष निरंजन निरभै नाथ, राग दोष हेत नहिं हाथ ॥२४॥
राजन रीति अंग नहि भंग, घर परिवार सुत वनिता नहिं संग ॥
ता दरवारि लेषक को लहै, दिल मालिक सव दिल की लहै ॥२५॥
सव मैं वसै सकल की लहै, मुष तैं फेरि ज्वाव नहिं कहै ॥
वारपार नहिं अगम अगाध, तहाँ एक आध कोई पहुँचै साध ॥२६॥
रसना मुष सीस हाथ नहिं पांव, घर नहिं अघट वैर नहिं माव ॥
रूप अरूप भेष नहिं जहां, माया अगनिन व्यापै तहाँ ॥२७॥
काल न जुरा देह नहिं दीन, जीवन जनम पुष्ट नहिं षीन ॥
ताकी कीमत कोई कैसे कहै, कहत कहत वौरा होइ रहै ॥२८॥
जन हरीदास तहां काल न जाल, पूरण ब्रह्म अनंत प्रतिपाल ॥
रमता राम निरंजन राइ, अब तौ मन तहां रह्या समाइ ॥२९॥
दिल मालिक षालिक साहिब मेरा, जन हरिदास वरिं जाया चेरा ॥
पकड़ि हाथ जिन छाडो मेरा, पड्या रहूं चरणां तै नेरा ॥
काल जाल लै करै न केरा ॥३०॥

॥ मनमदविधूंस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—मानूं–२-४। सहज–५। येक–२। प्रकासा–५। हेति–१। रीत–५। जाव–१। नहिं–२-४। छीन–१। कहैत कहैत–२-४। मालक–५। मै–५।

शब्दार्थ—सूनिमडल=दशम द्वार। सहज पियाला=सहज अवस्था रूपी प्याला। वन दह्या=विषय-वासनारूपी जंगल ज्ञानाग्नि से जल गया। तरवर एक=चेतन तत्वरूप एक वृक्ष। हेत=हित, स्नेह। ता दरवार लेषक को लहै=उस अखड व्यापक ब्रह्म के दरबार का कौन लेखक वर्णन कर सकता है, वह वर्णनातीत है। ज्वाव=उत्तर। षीन=क्षीण, दुर्बल। षालिक=जगत्पिता।

॥ अथ मनहठ जोगग्रन्थ ॥

*बांण पकड़ि ऊभा रह्या, मन फिरि लागा भूठ ॥
नीसांणा न्यारा रह्या, मंड़ी और ही मूंठि ॥ १ ॥
साच सबद माने नहीं, भूठ तहा चलि जाइ ॥
मनसा वाचा करमनां, गनिका को व्रत ताइ ॥ २ ॥
*मन हम सूँ घड़ि कूल ज्यूं, रषे दिषावै छेह ॥
बाई का गुण छाड़ि दे, वसुधा का गुण लेह ॥ ३ ॥
अगम तहाँ पहुँता नहीं, रही भरम की रेष ॥
मन का मारया मरैहगा, करि करि नाना भेष ॥ ४ ॥
माया का कादौं मंड्या, कल्यासु निकसै नांहि ॥
अरस परस होइ मिल रह्या, ज्यौं माषी गुड़ मांहि ॥ ५ ॥
सिंघ स्याल रनिवनि वसै, वसती सकै न चूरि ॥
के वसती के वनि वंध्या, साध दोहूं सूँ दूरि ॥ ६ ॥
साध वंध्या हरि अवंध सूँ, हरि वंध्या साध कै भाइ ॥
परम सनेही परम सुष, तहां रह्या ल्यौ लाइ ॥ ७ ॥
हरि सुमिरण मन हठ मतौ, सो मैं छाडौ नांहि ॥
रामरतन धन अजब है, ले राष्या मन मांहि ॥ ८ ॥

पाठभेद—चल्य–२। क्रमना–२। गन्यका–२। ताहि–१। सौ–१। ज्यौ–१। मरैगा–१। कादूं–१-३। ज्यूं–१-४। रनवन–४-५। दूहूँ सू–१-३। स्यूं–१। रहे–५। छाडू–२-४।

शब्दार्थ—गनिका=वेश्या। ताइ=वह, उस मन का। वाई का गुण छाडि दे=वायु अस्थिर होती है, तद्वत् चंचलता का त्याग कर। कादौ=कीचड़। कल्यासु=फँसा। रनिवनि=एकान्त जंगल मे। भाई=भाव।

* गुरु-उपदेश रूपी वाण लगा पर साधक शिष्य उभा रह्या–वैसे ही बना रहा–साधना में नही लगा तब उसका मन फिर उन्ही संसार के भूठे पदार्थो मे उलझ गया। नीसांणा–लक्ष्य न्यारा ही रह गया और ही मूंठ मंडी–उपदेश निष्फल रहा।

रंक हाथि हीरा चढ्या, सतगुरि दिया बताइ ॥
ताकूँ मैं छाड़ूँ नही, छाड्यां सरवस जाइ ॥ ६ ॥

पातिसाह बल करि कह्या, नांमां कहौ खुदाइ ॥
सदा संगि गऊ बछ ज्यूं, जन कै राम सहाइ ॥१०॥

राम धणी मनमुषि सदा, सकल काल का काल ॥
पातिसाह नामौं कहै, तूँ मति पड़ै जंजाल ॥११॥

तब नामै मन हठ किया, गहि गुर ग्यांन बिचार ॥
मैं हरि सुमिरण छाड़ूं नहीं, सिर परि समरथ सिरजनहार ॥१२॥

पै पांया पाषांण कूँ, देवल फेरया देह ॥
माया जल भेदै नहीं, छांनि छवाइ एह ॥१३॥

सेज मंगाई जला सूँ, सो बहुडि न जल में जाइ ॥
तब नामै मन हठ किया, मूंई जिवाइ गाइ ॥१४॥

एक बोड़ि हिंदू तुरक, एकै दास कबीर ॥
मन हठ ले ऊभा रह्या, सिर परि साहस धीर ॥१५॥

टेक रहो तन मति रहो, टेक गया पण जाइ ॥
ऐसी टेक कबीर की, चौड़े रह्या बजाइ ॥१६॥

फुनि बात सुणो प्रहिलाद की, कहि समझाऊँ लोइ ॥
मन हठ करि गोविंद भज्या, धका न लागा कोइ ॥१७॥

गिर जल ज्वाला तैं बच्या, पिसण गया पचि हारि ॥
नहीं साध कूँ सांकडौ, यौ ही अरथ विचारि ॥१८॥

ध्रू बालक कैसी करी, धरचा न कोइ भेष ॥
मन हठ करि मांड्या मरण, जहां इष्ट तहां देष ॥१९॥

पाठभेद—सनमुष-१-५। येह-२। स्यौ-१। येक-२। गिरि-१। पिसूण-१।

शब्दार्थ—रंक=दरिद्री। बलकरि=जोर देकर। छानि=छप्पर। पिसरण=हत्यारा। साकड़ौ=कष्ट, दुःख।

अगम सवद सुषदेव सुरया, संकरि कह्या सुणाइ ।।
तन दीया गण्या सवद, यूँ मन हठ सूँ घर जाइ ।।२०।।

इन्द्रलोक सूँ ऊतरी, रंभा करि सिंगार ।।
तव सुषदेव न्यारा रह्या, धस्या न वहती धार ।।२१।।

जनक जनक सव कहत है, अमरलोक सूँ वाथ ।।
जनक मता कछु और था, दुष सुष रहत अनाथ ।।२२।।

पांव अगनि मुष ऊवरै, जनक कहावे सोइ ।।
इहां दाधा वहां दाझि है, इहै भरोसा मोहि ।।२३।।

जाइ मछंदर पड़ि रह्या, माया तर की छाँह ।।
गोरष कछु भोला न था, जिन गुर काढ्या गहि वाँह ।।२४।।

राजपाट तजि भरथरी, किया आपणा काज ।।
जोग ध्यान राजा लहै, तौ वै क्यूँ छाड़ै राज ।।२५।।

हस्ती घोड़ा गांव गढ़, सुत वनिता परिवार ।।
कहै माता मैंणावती, तजि गोपीचंद यहु छार ।।२६।।

यहु सुष विष समि देषिये, लाधी सौंज न हारि ।।
अगम वस्त अंतरि वसै, उलटा गोता मारि ।।२७।।

वल छाड्या निरवल भया, गहि गोपीचंद गुर ग्यांन ।।
सूनि मंडल मैं रमि रह्या, अगम ठौड़ असथांन ।।२८।।

पाठभेद—यौ–१ । तैं–१ । यन्द्र–२ । सिणगार–५ । को कहै–४-५ । कुछ–१ । यहां–२ । मछिन्द्र–१ । मछंद्र–५ । ज्यनि–२ । क्यौं–३-४ । हसती–२ । वसत–२ । न्यरवल–२ ।

शब्दार्थ—धस्या न=प्रवेश नही किया । वाथ=आलिंगन । दाधा=जला । दाझि=जलेगा । छार=राख, नष्ट होने वाले । लाधी=प्राप्त हुई । सौंजन=सौभाग्य, मनुष्य देह रूप सामग्री । वल छाड्या=सांसारिक राज्य-बल को त्यागा । निरवल=दीन, गरीब, गर्व परित्याग । सूंनमंडल=दशम द्वार । अगम ठौड=ब्रह्मप्रदेश ।

छत्र सिंघासण छाड़ि गया , ऐसी व्यापी आइ ॥
माया संगि सांई मिलै , तो बलक छोड़ि क्यों जाइ ॥२९॥
सेहझ तुलाइ गीदवा , इहै रंक कै ईद ॥
पथर तलै विछाइ करि , सांई भज्या फरीद ॥३०॥
रतन पारषू मन हठि किया , षोज्या सब ही भेष ॥
तब वाकूँ गोरष मिल्या , ए मन हठ का गुण देष ॥३१॥
ग्रन्थ नांव मन हठ मतौ , मन कै मन हठ दोइ ॥
एकै मन हठ हरि मिलै , एकै पड़दा होइ ॥३२॥
काम क्रोध मैं तैं मनी , पग दे सक्या न चूरि ॥
या मन हठ मन बूड़िये , हरि सूँ पड़िये दूरि ॥३३॥
गुण जीतै गोविंद भजै , निरभै निज घरि आइ ॥
या मन हठि मन नीपजै , झांई पड़ै न काइ ॥३४॥
काल कहर गरजत फिरै , दिन दिन व्यापै रोग ॥
जन हरीदास हरि भजन विन, जहां तहां विपति विवोग ॥३५॥
जन हरीदास दुरभष तहाँ , जहां न हरि सूँ हेत ॥
जे नर लग्या न हरि हठी , जम द्वारै डंड देत ॥३६॥
जन हरीदास गोविंद भजौ , भूलां भली न होइ ॥
अब भूला ते फिरैहगा , ऊझड़ पैंडा दोइ ॥३७॥

॥ इति मनहठ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—स्यंघासण-२ । वलष-५ । क्यूँ-२ । ये-२ । न्यरभै-२ । स्यो-१ । ते-१ । उजड़-३ । उजड़ि-५ ।

शब्दार्थ—सेहझ=अति मुलायम बिछावना । गीदवा=तकिया । पडदा=आवरण । झांई=मायिक पदार्थों की परछाई । दुरभष=काल, दुःख । उझड़=ऊबड-खाबड, जन्म-मरण रूप बीहड मार्ग मे ।

॥ अथ मनपरसंग जोगग्रन्थ ॥

मनपरसंग सुणो हो साधो, तुम सूँ कहूँ सुणाइ ॥
कबहूंक मन विषया तजै, कबहूंक विष फल षाइ ॥१॥

मनमा का लाडू करै, कछू न आवै हाथि ॥
मन भूषो भरमत फिरै, गुण इन्द्रया कै साथि ॥२॥

या मन की या रीति है, जहां तहां चलि जाइ ॥
कबहूँक लौटे छार में, कबहूंक मलि मलि न्हाइ ॥३॥

यहु मन पुरिष नारि सुत मात, यहु मन बन्धु यहु मन तात ॥
यहु मन मूरिष यहु मन देव, या मन का कोई लहे न भेव ॥४॥

यहु मन भक्ति रूप होइ जाइ, यहु मन भजै निरंजन राइ ॥
तुला बैसि कंचन दे काटि, यहु मन बिकै बिडाणै हाटि ॥५॥

यहु मन दाता होइ दत करै, यहु मन भूषो मांगै मरै ॥
आरंभ करै रहै निरदंद, यहु मन मुकता यहु मन बंध ॥६॥

यहु मन द्वादस पैंडा करै, पसु ज्यूँ षेत बिडाणा चरै ॥
आप आपकूँ रोपै पास, यहु मन करै आपका नास ॥७॥

लष चौरासी घट यहु मन धरै, पलक पलक मैं जामें मरै ॥
कबहू भूषा कबहू धाया, मन ही मन को चेटक लाया ॥८॥

यहु मन माह वैद ठगराज, सूकर स्वान सिंघ गै वाज ॥
स्याह लाल पीली मध रेष, यहु मन करै किरकटा भेष ॥९॥

पाठभेद—मूरप-५। हुइ-२-४। निरदुंद-१। मुक्ता-१-५। इहु-२-३। स्यंघ-२। करकटा-१।

शब्दार्थ—परसंग=प्रकरण, विषय। तुला बैसि कंचन दे काट=त्याग, वैराग्य की तुला में बैठ धन-सम्पत्ति की वासना को छोड। विडाणैं=औरो के, विषयो के। हाट=दूकान। निरदंद=तटस्थ, अलिप्त। मुकता=मुक्त, स्वतत्र। द्वादश पैंडा=बारह बाट, अनेक मार्ग। पास=फांसी, बन्धन। चेटक=करामात, करिश्मा। गै=गज, हाथी। वाज=वाजि, घोड़ा। किरकटा=किरकट की तरह विविध रूप बदलना।

यहु मन तरवर यहु मन छाया , यहु मन विरकत यहु मन माया ॥
राति द्योस मन रहै उदास , यहु मन करै गुफा मैं वास ॥१०॥
यहु मन सुर नर असुर अतीत , जरष रींछ मृघा भयभीत ॥
सतगुर कहैंस यहु मन करै , छाड़ै कुपह सुपह पग धरै ॥११॥
साध सबद मानै सुमसार , या मन का कछु अगम विचार ॥
यहु मन रनवन यहु मन सहर , यहु मन इम्रत यहु मन जहर ॥१२॥
तीरथ बरत करै समि भाइ , यहु मन अगम तहां चलि जाइ ॥
यहु मन अमरी वजरी जरै , सबद फुरण कूँ या विधि करै ॥१३॥
पैंडा अनंत न आवै वोड़ , कहौ कहां लौं दीजै जोड़ ॥
जोग ध्यांन धुनि यहु मन धरै , यहु मन भेष वहोत्तरि करै ॥१४॥
जन हरीदास कै याही रीति , अरस परस हरि ही सूँ प्रीति ॥
जन हरीदास या मन सूँ डरै , राति द्योस हरि सुमिरण करै ॥१५॥

॥ इति मनपरसंग जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनमतौ जोगग्रन्थ ॥

फिटि फिटि रे मन विकट , वहौत नाटक कहा नाचै ॥
कवहू दाता होइ दत करै , कवहू जाचिग होइ जाचै ॥१॥
मन जोगी जंगम सेष , मन बहु भेष वणावै ॥
दूधा धारी होइ , फिरै भरमै दुष पावै ॥२॥

पाठभेद—मिरघ-१ । म्रिघा-२ । मृगा-५ । इमिरत-१ । फुरन-१ । धुन्य-१ । ध्यौं-१ । ज्याचग-२ ।

शब्दार्थ—कुपह=कुपथ, बुरा मार्ग । सुपह=सुपथ, अच्छा रास्ता । रनवन=वीरान जंगल । अमरी=अमर होने की । वजरी जरै=वज्रोली क्रिया से वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाये । फुरण=फुरणा । धुनि=अनहद नाद । वहोत्तरि=विविध, बहत्तर कोठो मे घूमे । फिटि-फिटि=धिक् धिक् । जाचिग=याचक, माँगने वाला ।

मन गहि वैसे मूंनि, निज सूनि की षवरि न पावे ॥
माथो मूंछ मुड़ाइ, छापा वहु तिलक वणावे ॥३॥
चौका देवे चाहि, रसना कै हाथि बंधावे ॥
मन विषिया संगि रमै, मन माया सूँ लावे ॥४॥
मन सूरातन सवल, मैंन मुष मोड़ि करि भागै ॥
मन इन्द्रया आधीन, दौड़ि काया गढ़ लागै ॥५॥
मन वहौ जोधा बलवन्त, मन वहौरंगा विरंगा ॥
मन रूपक परिजलै, दीपक ज्यूँ जलै पतंगा ॥६॥
मन गिरवर मन कूप, मन गंभीर मन गंदा ॥
मन अंधा मन घोर, मन सीतल मन चंदा ॥७॥
मन नीकौ मन नीच, मन फलै मन फूलै ॥
मन फिरि मरै पियास, मन परम सुषसागरि भूलै ॥८॥
मन तारै मन तिरै, मन ले पार उतारै ॥
मन चौरासी का जीव, फेरि ऊँडै दह मारै ॥९॥
मन जंवक मन गिरझ, कऊवा का रूष वणावै ॥
मन सूकर मन स्वान, महापरलै वहि जावै ॥१०॥
मन पांणी मन लाइ, मन कौड़ी मन हीरं ॥
मन कंचन मन काच, मन मुरीद मन पीरं ॥११॥
मन मैलो मन निरमलौ, मन साचो मन सूचौ ॥
मन नीकौ मन नीच, मन उतिम मन ऊँचौ ॥१२॥

पाठभेद—मौंन–३-४। वहौ–३-५। वहु–१। ज्यौ–१। औडे–१। दहि–१। कवा–१। नृमला–३-१। नक्यो–१।

शब्दार्थ—मूंनि=मौन धारण कर। रूपक=रूप पर, सौन्दर्य पर। परिजलै=प्रज्वलित हो, जल जाय। नीकौ=अच्छा, भला। ऊंडै=गहरे, गंभीर। दह=जल से भरा गड्ढा। जंवक=जम्बुक, स्याल। गिरझ=गृध्र, गीध। मुरीद=शिष्य, जिज्ञासु। सूचौ=शुद्ध, पवित्र। ऊंचौ=सर्वोत्तम

मन मोती मन सीप, मन वहो दीप दिषावे ॥
मन सिलता मन सिध, मन फिरि मन ही समावे ॥१३॥
सुषमनि उलटि फेरि, साच मन निकट बतावे ॥
वंकनालि विश्राम, फेरि नामी सूँ लावे ॥१४॥
*पांणी मांही पैसि, अगम का हीरा ल्यावे ॥
मन फिरि ग्रासै कांम, क्रोध की ठौर उठावे ॥१५॥
मैं तैं गरब गुमान, निमष तहां रहण न पावे ॥
गगनमंडल मठ छाय, अगम सूँ सुरति लगावे ॥१६॥
आगै अणभै सीर, गगन रस उलटा आवे ॥
जन हरीदास मन विकट है, बहुत रूप करि जाइ ॥
पकड़ीजै तौ परमसुष, ढीलौ छोड्यां षाइ ॥१७॥

॥ इति मनमतौ जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मनउपदेस जोगग्रन्थ ॥

कबहू फाड़ै कबहू जोड़ै, कबहू सीवै कबहु तोड़ै ॥
कबहू सोवै कबहू जागै, कबहू जोग ध्यान सूँ लागै ॥१॥
कबहूक अलप आहारी थोड़ा षाई, कबहूक टूका लेइ अघाई ॥
कबहू हेत प्रीति अणरागी, कबहू सुरति निरंजन लागी ॥२॥

पाठभेद—वहु-१ । स्यघ-२ । निकटि-४-५ । ठौड-३-४ । स्यौ-१ ।

शब्दार्थ—सुषमनि=सुषुम्ना नाडी । वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग, मेरुदंड से दशम-द्वार तक । निमष=पल भर, क्षण । अणभै=अनुभूत, प्रत्यक्ष । अघाई=धाप कर ।

* पाणी मांही पैसि अगम का हीरा ल्यावे=सहस्रार दल में चन्द्रमा द्वारा स्रवित पानी मे प्राण स्थिर कर अगम आत्मारूपी हीरा लावे, स्वस्वरूप की प्राप्ति करे ।

कवहूँ चिंता कै घरि वहै, कवहूँ अटकि अपूठा रहै ॥
कवहूँ ग्यान ध्यांन उरि धारै, कवहूँ ऊलटि आपकौं मारै ॥३॥
कवहूँ जरणां अजराजरै, कवहूँ सवद कह्यां षिजि मरै ॥
कवहू पांचू इन्द्री दवै, कवहूं मेर तेर ले ऊँचा भवै ॥४॥
कवहूँ मोह विरछ फल षाइ, कवहूँ साध संगति चलि जाइ ॥
कवहूं त्रिविधि ताप मैं वसै, कवहूँ ब्रह्म अगनि मैं धसै ॥५॥
कवहूं हरि तरवर तहां जाइ, कवहूं वैसै पूठा आइ ॥
कवहूं ल्यौ कै पैंडे जीवे, कवहूँ अगम पियाला पीवे ॥६॥
कवहूं हारि जीति रस रीति, कवहूँ राम भजन सूँ प्रीति ॥
कवहूँ काया कांमणी कसै, कवहूँ काया सूँ मिलि षेलै हसै ॥७॥
कवहूँ चंद सूर समि करै, कवहूँ ध्यांन अलष का धरै ॥
कवहूँ त्रिवेणी संगि न्हावै, गुरगमि वस्त अगोचर पावै ॥८॥
कवहूँ उलटा षेलि काया सव सोधै, सुंनिमडल मैं पवन निरोधै ॥
हठ करि मरै न वैसे हारि, अगम ध्यांन धरि सहज विचारि ॥९॥
षटचक्र मैं एकै डोरि, सतगुर सवद गया मन चोरि ॥
एकमेक अंतरि कछु नांहि, पूरण ब्रह्म वसै ता मांहि ॥१०॥
वंकनालि इंम्रत रस षाइ, मन माया छाया वैसे न जाइ ॥
मेरडंड मधि डोरी लहै, ब्रह्म अगनि काया वन दहै ॥११॥

पाठभेद—च्यंता-१। कूं-३-४। पाचो-१-५। व्रिछ-२। वृछ-३। चकर-१। येक-२। कुछ-१। इमिरत-१।

शब्दार्थ—अणरागी=राग से रहित, अनासक्त। आपकौ मारे=अपना निग्रह करे। षिजि=कुपित हो, गुस्से मे हो। दवै=जलावे, दग्ध करे। ऊँचा भवै=अभिमान करे, गर्वित हो। घसै=बूडे, प्रवेश करे। पूठा=पीछा, वापिस। ल्यौ=लौ, ध्यान, आत्म-चिन्तन की लगन। चन्द्र सूर समि करै=इडा-पिंगला मे चलने वाले विषम प्राण को सम करै-सुषुम्ना मे लावे। त्रिवेणी=त्रिकुटिस्थान। षट्चक्र मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञाचक्र। एकै डोरी=सुषुम्ना-प्रवाह।

दसवैं द्वारि वसै मन राजा, सवद अनाहद वाजै वाजा ॥
जन हरीदास मन वसि भया, गया भरम सव और ॥
एक एक सूँ मिलि रहया, तब पाइ निरभै ठौर ॥१२॥

॥ इति मनउपदेस जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ ×अथ व्याहलो जोगग्रन्थ ॥

दिषण देस सहर कुंदनपुर, पवणि छतीस सुषारी ॥
राजा भलो लोग निति निरभै, कन्या राजकंवारी ॥१॥
रांणी कहै सुणौ राजाजी, विलम न कीजै कांई ॥
वाई वडी बडो बर हेरो, आदू आदि सगाई ॥२॥
निज पुरि नगरि वसै कँवलापति, सकल सिरोमणि स्वांमी ॥
बर वे आदि विघन नहिं बेगम, घटि घटि अंतरजामी ॥३॥
घटै न वधै सदा ज्यूँ का त्यूँ, विरंचि न वुरो लषावे ॥
राम भरतार परम सुषदाता, सो म्हारै मन भावे ॥४॥

पाठभेद—येकयेक–२। ज्यो-त्यो–२। भ्रतार–२।

शब्दार्थ—दक्षिण देस=देह, शरीर। पवणि छत्तीस=पंचभूत, पचीस प्रकृति, तीन गुण, मन, प्राण, वृत्ति। राजा=आत्मा। भलो=शुद्ध। राजकुँवरि=सुरतिवृत्ति। राणी=सद्बुद्धि। विलम न=विलम्ब, देर। निज पुरि नगरि=अपने हृदय में। वसै कँवलापति=साक्षी चेतन।

× व्याहलो जोगग्रन्थ एक वैवाहिक रूपक के रूप मे वर्णन किया गया है—उक्त रूपक मे यह बताया है कि कैसे जीव राजा वृत्ति रूप कुँवरि को साक्षी चेतन मे सम्बन्धित करना चाहता है पर मनरूपी रुकमैया इसमे बाधा डालता रहता है। रूपक में पात्रादि का यह स्वरूप है। नगरी शरीर। छत्तीस जाति, त्रिगुण मन, प्राण पचभूत भूतात्मक प्रकृतियाँ। राजा=आत्मा, जीव। राणी=सद्बुद्धि। कुँवरि=सुरति वृत्ति। रुकमैया=मन। वर=साक्षी चेतन है। अन्त मे सद्वृत्ति रूप कुँवरी का साक्षी चैतन से सम्बन्ध हो गया है, मन की चाल या बाधा चली नही।

मकल भवन करता करणां मैं, विथा न व्यापै काई ॥
राजा कहै सुणो रुकमईया, तहां दीजै रे! वाई ॥५॥

रुकमईयौ कांइ कह्यो न माने, आंन सगाई हेरै ॥
राजा कहै देषि वर वरि स्यां, अटकि अपूठा फेरै ॥६॥

चंदेरी सिसपाल असुर अरि, लगन॰ तहां लिष दीया ॥
हैवर गैवर पाइक पाला, वहौ जोधा संग लीया ॥७॥

केहरि कहो घास क्यूँ चरिहै, आंणया असुर बुलाई ॥
जीवण नहीं मरण सिर ऊपरि, जीभ षांडि विष षाई ॥८॥

सांसो सिसपाल चंदेरी चिंता, सो वर तहां वसीजै ॥
गरव गुमान दैत वहौतेरा, ममता को रस पीजै ॥९॥

परमसनेही प्रांणनाथ हरि, सदगति सदा सगाई ॥
अलष पुरिस अवगति वर सिर परि, किरतम बरयो न जाई ॥१०॥

किरतम तिकौ सकल सति विनसै, अविनासी म्हारौ सांई ॥
आदि अंति हरि सदा सनेही, प्रांण वसै ता मांही ॥११॥

विप्र बुलाइ अवला पाइ लागी, रांम तहां चलि जाई ॥
मींव मलो कांई दोष न दीजै, रुकमईयौ दुषदाई ॥१२॥

अव हरि रषे हाथ तैं छाड़ौ, पति म्हारा हूँ थारी ॥
व्याकुल भई माघ नित हेरौं, दरसौ देव मुरारी ॥१३॥

ब्राह्मण विरह मींव मै म्हारै, कहौं तिका मन भावै ॥
रुकमइयो रौस कह्यो नहिं माने, भूंडौ मरम उठावै ॥१४॥

पाठभेद—सिमुपाल–१। ल्यष–२। वहुतेरा–१। विणसै–२-५।

शब्दार्थ—रुकमईया=मन। आन=ओर, सासारिक वासनाओं मे। सगाई=सम्बन्ध। हेरे=तलाश करे। अटकि=मनाकर, रोककर। अपूठा=पीछा, वापिस। सिसपाल=संशय। हैवर=घोड़े। गैवर=हाथी। पाइक=सेवक। वहु जोधा=काम, क्रोध, लोभ मोहादि। केहरि=सिंह। आंण्या असुर=अहंकारादि राक्षस। किरतम=बनावटी, जगत् के पदार्थ। विप्र=विरहरूपी विप्र। माघ=मार्ग, वाट। भूंडौ=बुरा, बेतुका।

घड़ी मुहूरति आज सुदिन दिन, पतिवरता यौं भाषै ॥
चीरी लिषी विप्र नैं दीन्हीं, रषे विप्र विचि राषै ॥१५॥
मन सुध विप्र गयो बेगमपुर, लिष्या सु ले पहुँचाया ॥
देषि देषि हरि कागद वांच्या, चलौ विप्र म्हे आया ॥१६॥
साचा सवद राषि सिर ऊपरि, आनंद अंगि न मावै ॥
ब्राह्मण हरिसुष हेरि वधाई मांगै, नैंड़ी जान वतावै ॥१७॥
अनंत कोटि ब्रह्मंड सौंज संगि, इन्द्र कुमेर घणेरा ॥
ब्रह्मा अनंत महादेव अगणित, चंद सूर वहोतेरा ॥१८॥
ए नवनाथ सिध चौरासी, सुर तेतीस सवाया ॥
नारद मुनि जन साध सकल संगि, हरि ईसा भेद सूँ आया ॥१९॥
सील संतोष सति दया सवूरी, करम कपूर उडाया ॥
यूँ सै उठि सहैले दौड्या, पवन तुरी चटकाया ॥२०॥
आरती करि करि चरन पलोटै, के चरचै के गावै ॥
प्रेम प्रीति चंदन घसि इंहि विधि, परसि परसि सुष पावै ॥२१॥
साथि सषी लै षेलण कै मिसि, निज बर हेरण आई ॥
वड़ कँवार हरि देष निजरि भरि, नषसष रह्या समाई ॥२२॥
वड़ विसरांम तहां हरि उतरै, आतम अंतरि नेरा ॥
सषी सहेली मंगल गावै, मनसा चांवरि फेरा ॥२३॥

पाठभेद—विपर-४। सुधि-१। आणंद-१। सूँज-५। ये-२। सिद्ध-१। स्यो-१। सत-२-५। चरण-१। प्रसि-१। षेलन-५। निजर-४-५। नषसिष-१। विश्राम-३-५। आत्म-३-४। चावर-५।

शब्दार्थ—चीरी=लगनरूप चिट्ठी। घणेरा=बहुत सा, अनेको। भेद=प्रकार। पलोटै=चांपे, दबावे। मिसि=बहाना। बड विसराम=हृदयरूपी महल।

नैंणां राम वसौं हरि वैंणा, सकल सुषां सुष लाधा ॥
*सुर तेतीस घेरि घर आया, सतगुर डोरा वांधा ॥२४॥
अरधै उरधै चौंरी चरचै, तहां हथलेवा दीया ॥
अति उछाह अवला मनि आनंद, हरि सूँ फेरा लीया ॥२५॥
रली रंग राग नाना विधि, ×सूनिमंडल कै छाजै ॥
पति सूँ प्रीति जीति गुण दूजा, वेणि गगन मैं वाजै ॥२६॥
ग्यान गुलाल केसरि वहौ करणां, अरथ अवीर पिंडाया ॥
आजि मषी हरि महल पधारया, भल म्हारै मनि भाया ॥२७॥
मुंदरि सेज माच उर अंतरि, समता सौडि विछाई ॥
राम राइ तहां आय विराज्या, सो सुष कह्या न जाई ॥२८॥
गात गुफा में गम करि राषूँ, सेझ सनेही आया ॥
विणि दीपग दह दिसि उजियाला, आंगणि चौक पुराया ॥२९॥
घरि घरि मंगलचार सदा सुष, वर वरयौ वनमाली ॥
सुष में मीर अषिल अविनासो, परम जोति सूँ ताली ॥३०॥
परणि परसि हरि संगि कर लीन्ही, पति को पलौ न मेल्हूँ ॥
जन हरीदास निसदिन अति आनंद, ता आनंद में षेलूँ ॥३१॥

॥ अथ व्याहलो जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद— वसै–१। मन–५। सौं–१। स्यो–१। गिगन–१। वहु–१। आज–१-५। भल–१५। मुन्दर–५। राषौं–१-५। दीपक–३। उजियारा–५। घर-घर–५। स्यू–१। संग–१-५।

शब्दार्थ—नैंणा=नेत्र। वैंणा=वांणी। अरधै उरधै=मूल–अपान स्थान। उरधै दशम द्वार के बीच मे हृदय-गुहा। रली–मनचाही। गात=काया, शरीर। गुफा=हृदयगुहा। मेल्हूँ=छोड़ूँ, धरूँ।

* सुर तेतीस घेरि घर आया=सुर प्राण तेतीस मेरुदण्ड तथा ग्रीवा के म्होरो में से सुषुम्ना नाडी द्वारा प्रवाहित हो घर आया—दशम द्वार सहस्रार दल मे स्थिर हुआ।

× सूनिमंडल के छाजे=गगनमण्डल-ब्रह्मरन्ध्र के छाजे–किनारे।

॥ ×अथ टोडरमल जोगग्रन्थ ॥

अनहद बेणि बजाइ, तोड़रमल जीतोजी ॥
हरि भज उतरे पार, तोड़रमल जीतोजी ॥१॥

मन गहि पवन अगम गम कीया, परम सनेही पाया ॥
पांच सषी मिलि मंगल गावै, आंगणि चौक पुराया ॥२॥

चित चौकी हरिचरणां राष्या,, कंवल सिंघासण दीया ॥
इला पिंगुला करै आरती, प्रेम कलस उरि लीया ॥३॥

गगनमंडल मैं रच्यो मांडहौ, पांच तणी ल्यौ तांणी ॥
आतम परआतम हथलेवौ, पीव संगि षेलै प्रांणी ॥४॥

जन हरीदास हरि अरस परस होइ, नैंणा नेह बंधाया ॥
जाकी थी सो महल पधारया, राम सनेही आया ॥५॥

॥ इति टोड़रमल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ इमृतफल जोगग्रन्थ ॥

असलि भाव जब अंतरि आवे, ग्यान विचार बमेक बतावे ॥
दया मबूरी जरणां जोग, त्रिवधि ताप का लगै न रोग ॥१॥

पाठभेद—च्यत-२। स्यंघासण-२। विमेक-१। त्रिविध-१।

शब्दार्थ—तोडरमल=जीवात्मा। पांच सषी=पाचों ज्ञानेन्द्रियाँ। कँवल=हृदय-कमल। उरि=अन्त.करण मे। माडहौ=विवाह-मण्डप, माडा। नैंणा=नजरों मे, नेत्रों मे। जरणां=सहनशीलता।

× यह ग्रन्थ भी एक रूपक रूप में है। विवाह के पश्चात् कुछ उत्तरकर्म होते हैं, व्याजतः यहाँ भी उसका निरूपण किया गया है।

सील संतोष फुनि अजपा जाप , परिहरि गया पुरातम पाप ॥
सत अर सहज पवन मन हाथि , मनसा पांचो चेला साथि ॥२॥
इतउत कोई सकै न फूटि , मूल गया ममता का छूटि ॥
समता सुबुधि विद्या मन साथि , भगति जोग दोइ लाडू हाथि ॥३॥
काम गयंद चींटी फिरि घेरया , पकड़ि सील सांकलि सूँ जेरया ॥
निरभै भया नगर मैं राज , तीतर कै मुषि देष्या वाज ॥४॥
पवन पियाला इम्रत पान , एकादसी अषंडित ध्यान ॥
हेतभाव प्रेम का वंध , मन का छूटि गया सव दंद ॥५॥
सतगुर एक इम्रत फल दीया , सो हम हेतप्रीति सूँ लीया ॥
मीठा अजव अकल समि भाइ , ताकी फंकि विथा सव जाइ ॥६॥
यहु इम्रत फल जापै होइ , ताका पला न पकड़ै कोइ ॥
पैंडा अधर अपूठीं चाल , अव कै सतगुर किया निहाल ॥
हारि जीति का पासा गया , ऊजल निरमल निरभै भया ॥७॥
जांणि वूझि जागै सो जीवै , सहज समाधि सदा रस पीवै ॥
अजपा जाप भजन वलि जांव , ऊजड़ गया वस्या फिरि गांव ॥८॥
सो इम्रत फल हिरदै धारया , हिरदै धारि काल भै मारया ॥
माया दीन्हा मोलि न लहिये , सरवस दे ताका होइ रहिये ॥९॥
ग्रासै जुरा अवधि तन छीजै , तन मन दै लाभै त्यूँ लीजै ॥
रूप न रेष वार नहि पार , या फल का कछु अगम विचार ॥१०॥

पाठभेद—वत–१ । मुष-५ । सुवधि–२-४ । अषंडत–५ । धंध–१ । सौ–१ । अकलि–१ ! इहु–१-५ । सहजि–२-४ । हुइ–२ । त्यो–१ ।

शब्दार्थ—पुरातम=पुराना, अनेक जन्मो का । पाचो चेला=अन्तमु‍ंखी ज्ञानेन्द्रियां । चीटी=आत्माकार वृत्ति । जेरया=वश मे किया । तीतर के मुष देख्या वाज=विषयप्रवृत्त मन रूपी वाज तीतर रूप चित्त पर आक्रमण किया करता था, वही वाज रूप मन विषयविमुख हो अन्त.करणस्थित चित् शक्ति रूप तीतर के मुख में है, वश में है । एकादसी=एकाग्रवृत्ति, स्थिरवृत्ति । फंकि=फाकी, प्रयोग, साधना । जांणिवूझि=पहचान, ज्ञात कर, सोच-समझ । ऊजड़=सूना, उजड़ा हुआ । लाभै=मिले, प्राप्त हो ।

तरवर डाल फूल फल नांहि , साषीभूत वसै सब मांहि ।।
मात पिता गांव नहिं ठांव , अलष निरंजन ताका नांव ।।११।।
विद्यानगरि वसैं सव लोग , मन का छूटि गया सब सांसा सोग ।।
जन हरीदास अब ऐसी भई , मनसा उलटि अगम तहां गई ।।१२।।
ल्यौ की डोरि सुरति मधि धागा, मन निहचल निरभै सुधि लागा ।।

।। इति इम्रतफल जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

।। अथ ज्ञानउपदेश जोगग्रन्थ ।।

पांच तत्त गुण तीन , धात तहां सात समोई ।।
जाग्रत सुपन सुषपति पांच , ज्ञान इंद्रि पचीस प्रक्रति लोई ।।
हेत अहेति अलसाक निद्रा , चित चंचल निहचल नांही ।।
पांच कर्म इन्द्री दुष सुष , मन प्रांण वसै ता मांही ।।१।।
राग दोष अभिमान , डिंभ पाषंड अहंकारा ।।
कांम क्रोध भ्रम मोह , आसा हठ लोभ अग्यांन अंधारा ।।२।।
सीत उसन षुध्या त्रिषा , मांनि अमांनि पष पोषै ।।
ममत मनोरथ सोच पोच , संगि सांसो सोषै ।।३।।
कुबधि अविद्या कलपना , चिंता त्रिसना तहां लहिये ।।
च्यारि अवस्था षट्चक्र , घट सूँ ओघट यूँ कहिये ।।४।।

पाठभेद—नगर-४-५ । कर्म-१ । करम-४ । त्रिष्ना-३-४ ।

शब्दार्थ—विद्यानगरि=आध्यात्मिक-विद्या या परा विद्या की बस्ती । सासा=संशय, भ्रम । पाच तत्त=पाच तत्व-आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी । गुण तीन=सत्व, रज, तम । धात तहा सात समोई=रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि, शुक्र, सात धातुओ का संयोग । अलसाक=आलस्य, अकर्मण्यता । दोष=द्वेष । डिंभ=छल । च्यारि अवस्था=जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या ।

घट में गोरष ग्यांन ब्रह्मविचार, हणवंत हेत विसन वमेक ।।
भरथरी भाव महादेव मन, जलंधरी पाव जोग नारद नेह ।।४।।

लषमणां कंवार लषण वत्तीस, सुषदेव संतोष गोपीचंद आनंद ।।
सिंगी रिष सील चरपट चित्र, प्रेम प्रहलाद परमगुर प्रकास ।।६।।

ध्रू धूनि अजैपाल अरथ, जनक जांणपणे चौरंगीनाथ चौथी दसा ।।
अंवरीक अचाही सती कणेरी साच, सनक स्वांति नागाअरजन नेह ।७।

सनक सनंदन सहज हठताली हठ, नेम कँवार निहक्रम हालीपाव हेत ।।
निहकंप कवीर मींडकीपाव परमोध, नांमदेव नेठाव धूंधलीमल ध्यान।८।

रहति रैदास औघड़नाथ अघट, पण पींपो प्रथीनाथ प्राण ।।
समझि सोभो रहणी रामचंद, दत्त दया मगरधज मुनि ।।६।।

घटि घटि गोरष ग्यांन, सु तौ सब घट की देषै ।।
दया करै ताहि कहै, और के पडे न लेषै ।।१०।।

नाथ पाकड़ै हाथ, पकड़ि हरिचरणां राषै ।।
भजौ निरंजन नाथ, सवद सतगुर यूँ भाषै ।।११।।

पिंड ब्रह्मंड में दोइ सिध, ग्यांन अर गोरष लहिये ।।
जन हरीदास भ्रम छाडि, ग्यांन गोरष तहां रहिये ।।१२।।

।। ज्ञानउपदेश जोगग्रन्थ ।।

पाठभेद—कुमार-१ । अंबरीष-१ ।

शब्दार्थ—वमेक=विवेक, ज्ञान । धुनि=शब्द, अखण्डित शब्द । जाणपणे=जानकार, तत्ववेत्ता । अचाही=बेचाही । स्वांति=शान्ति, अक्षोभ । सहज=स्वाभाविक । हठ=आग्रह । निहक्रम=निष्काम । निहकम्प=अचञ्चल । परमोध=उपदेश, शिक्षा । नेठाव=सर्वथा, बिल्कुल, दृढनिश्चयी । रहति=रहनि, चरित्र । पण=प्रतिज्ञा, व्रत ।

॥ अथ वार जोगग्रन्थ ॥

वार वार मनकूँ परमोधूँ, मन गहि पवन सहर सब सोधूँ ॥
आदित अगम ग्यांन उरि धारै, मात वार का भेद विचारै ॥१॥
जोग मूल गहि जोगी जागै, धुनि में ध्यांन तहां मन लागै ॥
हरि सुष वार पार मधि मांहि, निरभै घर लाधा घर मांही ॥२॥
सोमवार सहजि मन जागै, पवन निरोधै आरंभ लागै ॥
×अरध उरध मधि घूंम चढावै, वहौत भांति सूँ वेगर लावै ॥३॥
काया करम मैल सब षोवै, धूप लगावै अंबर धोवै ॥
मंगलवार वार है नीका, और सकल रस लागै फीका ॥
मन गहि पवन अटकि घर आवै, गंग जमन मधि पैंडा पावै ॥
वरषै अमी अखंडित धारा, सुषमनि सींचै वाग हमारा ॥४॥
बुधवार अनभै बुधि वांणी, अगम वसत अभि अंतर जांणी ॥
त्रिवेणी तट ताली लागी, इन्द्री पांच सुबधि ले जागी ॥
वंकनालि इंम्रत रस पीवै, परचै लागा जोगी जीवै ॥५॥
ब्रसपति विष वन मांहि न रहिये, विष फल षाइ वहौड़ि दुष सहिये ॥
विष वन वारपार मधि नांहि, सुर नर असुर वसैं ता मांहि ॥
पैंडा अधर परमगति भूला, पूठा फिरै न जम वंध षूला ॥६॥

पाठभेद—परमोधौ–१ । सोधौ–१ । आरंभि–४ । आरंभ्य–२ । वहुत–१ । आया–१ । पाया–१ । अणभै–३-४ । वस्त–३-४ । विसपति–१ । व्रिसपति–२ ।

शब्दार्थ—सहर=कायानगरी । सोधूँ=साफ करूँ, शुद्ध करूँ । आदित=रविवार । अगम ग्यांन=परम ज्ञान, आत्मज्ञान । अटकि=रोककर । पैंडा=पथ, मार्ग । त्रिवेणी=भृकुटिस्थान । ताली लागी=लौ लगी, ध्यान लगा । विष वन=संसार । पैंडा अधर=निराधार वृत्तिमय मार्ग । पूठा=पीछा, वापिस ।

× श्वास-प्रश्वास रेचक-पूरक प्राणायाम के पश्चात् विभिन्न प्राणायाम की साधना कर इन्द्रियों और मन के मैल को साफ करे । ज्ञानज्योतिरूपी धूप लगावे, गगनमण्डल की स्वच्छता करे ।

सुकरवार सहज घर लाधा, नीर न झलकै पारा बांधा ॥
मार अठारा पसरि न पोषै, नभ वहणि पवन धरणि नहि सोषै ॥
निरभै भया भरम सब भागा, ल्यौ की डोरि उनमनि लागा ॥७॥

थावर थिर सतगुर समझाया, पूरण ब्रह्म तहां काल न काया ॥
परम जोति परकास विराजै, सुनिमंडल मैं सींगी बाजै ॥
सो धन सुझि किरपण का हीरा, देषि देषि मन राषूँ धीरा ॥८॥

सात वार का भेद विचारूँ, पैंडे चलूँ न बैठा हारूँ ॥
औघट घाट तहां मन जागै, भया अपंक पंक नहिं लागै ॥
जन हरीदास सतगुर की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥९॥

॥ इति वार जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ हंसपरमोध जोगग्रन्थ ॥

स्वामीजी पड़दा कौंण परमनिधि आड़ा, कहां षेलि दुष पावै ॥
पहिरया स्वांग साच नहिं दरसै, सो फिर कहाँ समावै ॥१॥

पाठभेद—शुक्रवार-१। सहज्य-२। सुझ-१-३। विचारौं-१। हारौं-१। कूँण-१। फेरि-४।

शब्दार्थ—थावर=शनिवार। हारूँ=खोऊँ, हार जाऊँ। अपंक=शुद्ध, निर्मल। पंक=कीच, विषयवासनामय। पडदा=आवरण, आड। स्वांग=बनावटी भेष।

७वी साखी—सुकरवार सहज घर लाधा=शुक्रवार लाभदायी वार है जिसमे अपना स्वाभाविक घर-आधार ब्रह्म प्राप्त हो गया। बद्ध पारा जैसे विचलित नही होता है वैसे ही न तो प्राणमय न ही वीर्यमय पानी उछलता है-प्राण तथा वीर्य दोनो स्थिर हैं। बीस दिन की भार संज्ञा है-वर्ष के अठारह भार होते है। अभिप्राय है कि मन अब किसी भी दिन पसरि-विषयों मे जाकर पोषण प्राप्त नही करता। नभ वहणि पवन=गगनमण्डल ब्रह्मरन्ध्र मे स्थित हुए प्राण मूलाधार में-अपानस्थान में आ उस अमृत का शोषण नहीं करते, जिसका स्राव ब्रह्मरन्ध्र-केन्द्र मे चन्द्रमा द्वारा होता रहता है।

अवधू त्रिवधि ताप मैं झूलै षेलै , परम भेद नहिं पाया ।।
अंतरि अगनि गोपि ज्यूँ की त्यूँ , देषा देषि दुराया ।।२।।
स्वामीजी काँटा कौंण कहाँ सूँ लागा , कौंण सूई लै काढ़ै ।।
वांणी कौंण अगम घरि षेलै , मेर कहाँ लै चाढ़ै ।।
अवधू काँटा कुवधि गड्या उरि अंतरि, ग्यांन सूई लै काढ़ै ।।
वाणी ब्रह्म अगम घरि षेलै , मेर गगन मुष चाढ़ै ।।४।।
स्वामीजी उदबुद कथा कहा कहि वरणूँ, त्रिवधि ताप की छाया ।।
दिष्टि पड़ै पण निकसै नांही , या काँटै मव पाया ।।५।।
अवधू निहचा पषै परम पद न्यारा , निरमल ग्यांन न आया ।।
जहाँ निज ग्यांन सुरति कै नाकै , तहाँ काँटा चूणि षाया ।।६।।
स्वामीजी सूना सहर कौंण विधि वासै, सहजि समाधि लगावै ।।
×उलटा षेलि आकास गरासै , गम मैं अगम बतावै ।।७।।
अवधू सतगुर का चेला समि षेलै , गुण तज निरगुण दरसै ।।
लोहा पलटि होइ जब कंचन , तब पारस मणि परसै ।।८।।
स्वामीजी कौंण किवाड़ी जड़ै जतन सूँ , कौंण पियाला चाषै ।।
जाता कौंण फेरि घरि आंणै , सुरति कहाँ लै राषै ।।
अवधू काम किवाडी जड़ै जतन सूँ , पवन पियाला पीवै ।।
मन कूँ पकड़ि सहजि घरि आंणै , ल्यौ कै पैडे जीवै ।।१०।।

पाठभेद—ज्यो–१ । त्यो–१ । कुवुधि–१ । गिगनि–१ । दिमटी–२ । द्रष्ष्टि–५ । ग्रासै–१ ।

शब्दार्थ—गोपि=छिपी हुई । दुराया=छिपाया । उदबुद=अद्भुत, अनोखी । दिष्टि पड़ै=नजर पड़ती है, ध्यान जाता है । निहचा=सशय-विपर्यय रहित, दृढ़ धारणा । पषै=पक्ष, सापेक्षिक-धर्म, व्रत, तप, पुण्यादि । आणै=लावे ।

× उलटा षेलि आकास गरासै=प्राणप्रवाह को जो अपान से उठकर मुख मार्ग मे आता-जाता है, सुषुम्ना द्वारा मेरुदण्ड की ओर उलट कर गगनमंडल मे प्रवेश करे, तभी गम मे–दृश्यमान इस पञ्चभूतात्मक देह मे–अगम चेतन तत्व बतावे, प्राप्त करावे ।

स्वामीजी कौंण अटकि अरि उर तैं डारैं, मुकतैं महल विराजै ॥
गोरष मैंत्रण गवँण करि जीवै, सुष मैं सींगी वाजै ॥११॥
अवधू सतगुर सवद साहि सति आवध, तसकर मारि मनावै ॥
आसण अचल तहां मन निंहचल, निरभै वस्त बतावै ॥१२॥
स्वामीजी दीरघ घटा कौंण मुषि सोषै, वद्दल विचन विछोवै ॥
सात समंद जल तिरण कठिन है, कैसें परचा होवै ॥१३॥
अवधू मनसा घट पवन मुषि पीवैं, मोह मनोरथ मारैं ॥
मन गहि पवन गवन बेगमपुरि, सुरति सहज घरि धारैं ॥१४॥
स्वामीजी कौंण वमत कर सूँ गहि डारैं, प्रांण कहां सुष पावैं ॥
मन कूँ कहां कसैं कंचन ज्यूँ, सौलैह कला दिषावैं ॥१५॥
अवधू गरव गुमान चरणां तलि चूरैं, अरथ अवीर षिंडावैं ॥
मन कूँ ब्रह्म अगनि में होमैं, सुवधि सुहागा लावैं ॥१६॥
स्वामीजी कौंण घटैं तन कौंण प्रकासैं, नौधा भगति न भावै ॥
सीतल ठौड़ सदा रस पीवैं, निरभै निज घरि आवैं ॥१७॥
अवधू रजनी घटत उदै भया सूरं, दोइ दोइ चरण दुराया ॥
षेलैं प्रांण निगम तैं आगैं, निज तरवर की छाया ॥१८॥
स्वामीजी जोगी कहो कौंण रस छाडे, कौंण जडी लै जीवै ॥
कौंण गुफा में निसदिन षेलै, कौंण पियाला पीवै ॥१९॥

पाठभेद—मुक्तै-५। भुंवण-१। कठिण-२। प्रान-१-५। सोल्ह- ४-५। नल्य-२। अर्थ-१। नृभै-५। चरन-३-५।

शब्दार्थ— साहि=साहूकार, सहायक, बौहरा। सति=सत्य। आवध=आयुध, शस्त्र। बेगमपुरि=स्वस्वरूप, आत्माधिष्ठान ब्रह्म। रजनि=अज्ञानमय अन्धकार, तमोगुण। उदै भया सूरं=ज्ञानमय सूर्य उदय हुआ। दोइ दोइ चरण दुराया=मेरा-तेरा—मै-तू रूप भेदवृत्ति, राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि द्वन्द्व दुराया—छिप गए, समाप्त हो गये।

११वी साखी—साधक गुरु से ज्ञात करता है कि किसको रोकना, किन शत्रुओ को भगाना, किस मुक्त महल में स्थिर होना जिससे ज्ञान द्वारा उस आधार-अधिष्ठान मे पहुँचकर जन्म-मृत्यु से छुटकारा पाऊँ, चिरन्तन सुख में मस्त रहूँ, अनहद नाद की सीगी बजती रहे। इसका साखी बारह मे प्रत्युत्तर है।

अवधू निरभै नौ दरवार न जाचै , षिमां जड़ी लै जीवै ॥
ग्यांन गुफा मैं निसदिन षेलै , अगम पियाला पीवै ॥२०॥
स्वामीजी भौजिग मांही मंढी विराजै, सुर तैतीस पिछाणैं ॥
चांवड कै सिरि चोट लगावै , भैंसा राषै थांणैं ॥२१॥
अवधू भोपा भू का भार उतारै , भैरूँ का भै न्यारा ॥
अनहद सवद एक रस अंतरि , छाड़ि गया पूजारा ॥२२॥
×त्रिवधि ताप तिण तूल तरक तजि , मूल कँवल दल फूलै ॥
ग्यांन चक्र लै अरिदल जीतै , त्रिवेणी मंगि झूलै ॥२३॥
स्वामीजी कौंण जोग तामैं मन निरभै, रोग रति भरि तोड़ै ॥
आमण कौंण कहां सो वैठा , सुरति कहां ले जोड़ै ॥२४॥
अवधू मन निहचल निज वस्त वतावे, रोग पलटि होइ जोगी ॥
ग्यांन तषत वैठा रस पीवे , परम सुनि रस भोगी ॥२५॥
स्वामीजी आतुरि छाड़ि अगम घरि षेलै, अंतरि अलष लषावै ॥
ताका रूप कहां धू कैसा , समझि विना सुष नावै ॥२६॥

पाठभेद—षिम्या-२। येकरस-२।

शब्दार्थ—नौ दरवार न जाचे=नेत्र, मुख, श्रवणादि द्वारा विषय की चाह न करे। षिमा=क्षमा। भौजिग माहि मढी विराजै=ससार मे देहरूपी घर है। सुर तेतीस पिछाणै=शरीर मे इन्द्रियो तथा अङ्गविशेषो के देवताओ को पहचाने—सुर शब्द देवपक्ष व प्राणपक्ष दोनो मे लग सकता है। चावड=तृष्णा, चिन्ता। भैंमा=भावरूप भैसे को थाणै—स्वस्वरूप मे ही लगाए रखे। आतुरि=आतुरता, जल्दबाजी, बिना-सोचे विषयो मे लग जाना।

× त्रिविध ताप देने वाले विषयरूपी तृण वासनारूपी रुई को नर्क मे-विचार से तज—छोड।

२२वी साखी—हे अवधू! भोपा, पडे, पुजारी, पुरोहितादि जो सकाम कर्म की प्रवृत्ति मे जनसाधारण को उलझाए रहते हैं जो कि तीर्थस्नान, व्रत, पुण्यादि, दानादि से पाप-निवारण का चकमा देते हैं। भैरूं—अभिमान का भय साथ है। जब आत्मचिन्तन मे लगने पर ब्रह्माण्ड मे व्यापक एकरस अनहद नाद की अन्तर मे प्रतीति होने लगती है तब सकाम-कर्म की भावना वाला पुजारी नही रहता—चला जाता है, फिर भोपो का भी असर नही होता है।

अवधू हरि परस्या तव ही मन निरभै, कै हरि परस्या नांही ॥
उनमनि लाग भया मन हीरा, वहौडि न व्यापै झांई ॥२७॥
सतगुर सवद सांच करि मानौं, सतगुर साच वताया ॥
ब्रह्म जीव का ज्यौं है मेला, त्यौं सतगुर समझाया ॥२८॥
जल मैं अगनि अगनि मैं जल है, सव कूँ दीसै पांणी ॥
प्रगटि झाल अगनि जल सोष्या, तव अगने अगनि समांणी ॥२९॥
स्वामीजी या तो अजर कहो क्यौं जरिये, षुध्या विना क्यूँ भावै ॥
पांणी अगनि किसी विधि सोषें, मन परतीति न आवै ॥३०॥
अवधू सतगुर सवद अगम की पैडी, ता चढ़ि लंघै पारा ॥
काय्या कष्ट अगनि में डारया, तव जलि वलि भया अंगारा ॥३१॥
स्वामीजी संजम कौंण कहाँ धसि झूलै, धोती कौंण मंगावै ॥
निरभै डोरि कहां लै राषै, कौंण कलस भरि ल्यावै ॥३२॥

पाठभेद—वहुडि–१। प्रतीति–१-५। लघो–५। कसट–२।

शब्दार्थ—परस्या=स्पर्श किया, मिला। झाई=परछाही, प्रतिविम्ब।

२६वी साखी—पचभूत वाले इस शरीर की उत्पत्ति शुक्र–शोणितरूप जल से–तरल से है। उसी शरीर मे जो आत्मतत्व है वह तेज–प्रकाशरूप होने से अग्नि है। उस आत्मतत्व के एकाश मे माया है वह जलरूप है। अतः स्थूल दृष्टि से सब पानी ही प्रतीत होता है। पंचभूत व माया ही दिखाई देते है। जब ज्ञानाग्नि की झल प्रज्वलित हुई तो उसने पचभूतात्मक शरीर के अध्यासरूप पानी को व अविद्या-जनित मिथ्या जगत् मे सत्य की भ्रान्तिरूप जल का शोषण कर लिया, तब देहस्थ आत्मतत्वरूप तेजोमय अग्नि अपने मूल अधिष्ठान ब्रह्म मे समाहित हो गई–अभेद स्थिति बन गई–यही अग्नि मे अग्नि का समाना है।

३०वी साखी—साधक गुरु से प्रश्न करते है कि अजर वस्तु का जरना पानी का अग्नि को शोषण करना इसकी मन मे प्रतीति कैसे हो। इसका उत्तर साखी मे नहीं है। सामान्यतः अविद्या अजर है। असत्य जगत् की प्रतीति अविद्या से ही है पर जब सत्यासत्य का निश्चयात्मक ज्ञान हो जाता है तब अजर अविद्या जर जाती है–पच जाती है, समाप्त हो जाती है। इसी तरह विरहाग्नि का शोषण स्वस्वरूपानन्द पानी कर लेता है।

अवधू संजम सील ग्यांन धसि झूलै, धोती ध्यान लगावै ॥
सुषमनि डोरि गगन मैं रोपै . षिमां कलस भरि ल्यावै ॥३३॥
स्वामीजी कौंण वस्त जा सूँ मन परसै, कैसे चौका देवै ॥
कौंण वस्त लै आगै अरपै . कौंण जतन सूँ सेवै ॥३४॥
अवधू आतम परमातम पति परसै , मनसा चौका देवै ॥
प्रेम प्रीति लै आगै अरपै . वहौत जतन सूँ सेवै ॥३५॥
स्वामीजी देवल कौंण कहां सो मूरति, सेवग क्यूँ सुष पावै ॥
चौकी कौंण कहां सो राषै , पाती कौंण चढावै ॥३६॥
अवधू ऊधा कँवल सुलटि करि सूधा, वटवै वस्त बतावै ॥
चित चौकी हरिचरणां राषै , तन मन पाती लावै ॥३७॥
स्वामीजी पैंडा कौंण किमी विधि चलिवो, निरषि निरास विचारै ॥
रूपकि रचै न घरि घरि नाचै , जुरा जोगिणि हारै ॥३८॥
अवधू पैंडा अधर पगां विणि चलिवो, आंषि अनूप उघारै ॥
आनंद सहित एक रस पीवै , करम करणूँ का डारै ॥३९॥
स्वामीजी अवला कौंण अगम घर पेलै, पूत परीषिन जाया ॥
जामत सबै सकल कुल सनमुषि , परम सूँनि सूँ लाया ॥४०॥
अवधू बाँझ भई जब वेटा आया , वेटै वनषंड जारा ॥
रसना पषै पेम रस विलसै , परचै प्रांण अधारा ॥४१॥

पाठभेद—प्रसै–१। आत्म–१-४। परमात्म–१-४। वहत–१। विन–३-५। सनमुष–३-५।

शब्दार्थ—धसि=प्रवेश कर, तन्मय हो। झूलै=स्नान करे, एकमेक हो। वस्त= अमूल्य पदार्थ, आत्मतत्व। अरपै=भेंट करे, समर्पण करे। ऊँधा कँवल सुलटि करि सूधा=षट् चक्रो के कमल अधोमुखी होते हैं उनको सुषुम्ना मे प्राण प्रवाहित कर ऊर्ध्व-मुख करना। वटवै=हृदयरूपी वटुए मे। रूपक रचे न=साग न बनावे, कार्पटिक ढोंग रचना। आंषि अनूप=ज्ञानरूप नेत्र। पगा विणि= बिना पैरो के, सुरति द्वारा। बाँझ भई=निश्चल हुई, वासनारहित। वेटा=पुत्र, निर्भ्रान्त रूप ज्ञानमय पुत्र। वैसे लोक मे बाँझ के सन्तान सभव नही पर आत्मसाधना मे बुद्धि स्थिर हो वासनाहीन हो तब वह बाँझवत् हो जाती है–तभी ज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न करने मे सक्षम होती है। वनषड=जंगल, विविध वासनामय जंगल।

स्वामीजी तीन लोक नांना रस विलसै, अंति काल दुषदाई ॥
तीन लोक आगै सुष स्वामी, सो सुष देह बताई ॥४२॥

अवधू दिष्टि न मुष्टि ग्यांन नहि गाथा, रहै सकल तैं न्यारा ॥
तीन लोक आगे सुष जैसा, ताका वार न पारा ॥४३॥

स्वामीजी सो सुष कहो किमी विधि लाभै, करम न व्यापैं काया ॥
जन हरीदास सतगुर कूँ पूछै, समझावो गुरराया ॥४४॥

अवधू आत्म के असथांन लहीजै, मन थिर है तो पावै ॥
परसत सबै देह गुण त्यागै, पीव मैं प्राण समावै ॥४५॥

स्वामीजी आत्म का अस्थांन कहां है, जा मैं अलष लुकाना ॥
मैं स्वामी सतगुर सति पूछौं, तुम हो बहोत सयाना ॥४६॥

अवधू सबद जहां तैं उठि चलत है, उलटा पवन समाई ॥
मौंज सहित सुषमनि नदी, तहां मिलै जो जाई ॥४७॥

स्वामीजी मन मतिवाला प्रेम का, पीवै प्रेम अघाई ॥
रोम रोम तन मन मिलै, एकमैक सुष थाई ॥४८॥

अवधू अंतरि कुछ दीसै नहीं, ज्यूँ जल जल ही समाइ ॥
तब हरि हरिजन एक है, जन हरीदास सति भाइ ॥४९॥

॥ इति हंसपरमोध जोगग्रन्थ समाप्त ॥

पाठभेद—कौं-१ । प्रसत-१-५ । लुकारणा-१ । वहुत-१ । सियारणा-१ । महैन-२ । सहत-५ । विले-३ । येक-२ ।

शब्दार्थ—गाथा=कथा, कहानी । लुकाना=छिपा, अदृश्य । सयाना=प्रवीण, स्याणा, परम विज्ञ । मौज सहित=रेचक, पूरक, कुंभकसहित-प्राणायामादि सहित । अघाई=तृप्त होकर, धाप कर ।

॥ अथ तिथि जोगग्रन्थ ॥

ग्यान सबद सति अरथ विचारै , मावस मन का मेल उतारै ॥
सुरति संवाहि बसै निरदावै , सांच न छाड़ै झूठ न भावै ॥
मैं तैं मोरचा मोटा मांही , तिल तिल काढ़ै राषै नांही ॥
*सोलह कला समझि घरि आवै , अरधै उरधै ताली लावै ॥
करम कलणि कांने करै , ब्रह्म अगनि मैं जारि ॥
जन हरीदास मावस बरत , कोई करसी साध विचारि ॥१॥
पड़वा पलटि सुपह पथ जांणै , मूल मता मैं मनसा आंणै ॥
भरम न भेदै मन न डुलावै , गुर परसाद परम पद पावै ॥
×सतजुग आदि जागि जुगि जीवै, पवन निरोधै अंबर धोवै ॥
जुरा न व्यापै जुगि जुगि जीवै, सहज समाधि सदा रस पीवै ॥
पड़ता पासा छाड़ि दै , बैसै अजर जहाज ॥
जन हरीदास पड़िवा सुपह , सकल तिथ्यां सिरिताज ॥२॥
बीज बिबधि बिष बांण चुकावै , मन गहि पवन गगन मठ छावै ॥
यहु पण साहि पिसण पड़ि पेलै, अगम उजास तहां मिलि षेलै ॥
हरि सुष हेरि हजूरि बतावै , आनंद मैं गोविंद गुण गावै ॥

पाठभेद—अर्थ–५। सुरचा–२-३ ।-सोल्ह–५ । गुरु–१ । तिथा–५ । वाणि–१ । गगनि–१ । इहु–२ । मिल्य–२ ।

शब्दार्थ—संवाहि=संभाल, वृत्ति को अन्तर्मुख कर। मोरचा मोटा=भेदभावना का प्रबल सामना। करम कलणि काने करै=सकाम कर्म के दलदल को दूर करे। मूल मता मे=तत्वविचार मे वृत्ति को लगावे। वीज=द्वितीया तिथि। विष वाण= जहरीले तीर, विषय-वासनामय विषाक्त बाण। पण=व्रत, प्रतिज्ञा। साहि=साहूकार, श्रेष्ठ पुरुष, दृढ साधक। पिसण=लुटेरे, डाकू, काम-क्रोधादि। हजूरि=सम्मुख।

*सोलह कलामय चन्द्रमा ब्रह्मरन्ध्रगत मध्यबिन्दु मे है, उसको समक्ष जान वही प्राण का घर है, प्राण को वहां ला-समाधिस्थ हो।

× जो तत्व सतयुग आदि युग युगो मे पहिले है, उसीको सचेत हो सम्पूर्ण विश्व मे देख प्राण का प्राणायाम द्वारा निरोध कर समाधि-साधना मे लगे ताकि हृदयाकाशरूप अम्बर स्वच्छ हो-निर्मल हो।

कांम न झलकै कलपि न जांणै . ये नौ नाथ हाथ मैं आंणै ॥
तीज इसी विधि कीजियै, ज्यूँ सति मानैं साह ॥
साहिब सूँ मिलि षेलिये, आगै बसत अथाह ॥३॥
तीजस त्रिसना तिल तिल षांडै, तीन गुणां आगै पग मांडै ॥
*इला पिंगुला सुषमनि मेलैं, बैसि निरंतरि चौपड़ि षेलै ॥
साध मंडली साथि विराजैं, अनहद नाद अषंडित बाजै ॥
चंद सूरि समि अरथ विचारैं, धुंनि मैं ध्यांन कँवल दल धारैं ॥
तीज रमत पीव तैं डरूँ . पिव रूठां कहां ठौर ॥
जन हरीदास आनंद भया, छूटि गया भ्रम और ॥४॥
चौथिस च्यारचौं चोट चुकावै, मझि सुदेस बसै सुष पावै ॥
करज न काढ़ै मूल न हारैं, आंन न जाचै राम जुहारैं ॥
आइ साषि ससझि घरि आवै, यहु सुष साहि सदा सुष पावै ॥
करम कपाट झड्या सब ताला, आतम अंतरि जोति उजाला ॥
चौथिस चौपड़ि षेलिये, दोइ दोइ चौट चुकाइ ॥
तीन तजि सारी मेल्हिये, चौथा घर मैं जाइ ॥५॥
पांचै पांच पलांट पहिलावै, बैसि दुलीचै लोग बुलावै ॥
साजन सैंण पिसण को नांही, अरथ अबीर पड्या सब मांही ॥
ग्यांन गुलाल केसरि वहाँ करणां, अंग लगाइ चलो हरिचरणां ॥

पाठभेद—ए-३-४। ज्यौं-१। स्यूँ-१। त्रिष्ना-३-४। डरौं-१। च्यारूँ-५। वहु-१।

शब्दार्थ—कलपि=तरस, लालायित। बैसि=बैठ, स्थिर हो। साध मडली=दैवी सम्पत्तिगुणसम्पन्न। च्यारचों चोट=काम, क्रोध, लोभ, मोह का वार। मंझि सुदेस=शुद्ध हृदयदेश के मध्य। दोइ दोइ=भेद भाव, कामादि दो दो के द्वन्द्व मेरा-तेरा। तीन तजि=तीनो गुण, तीन अवस्था जागृतादि। पांच पलटि पहलावै=पाचों ज्ञानेन्द्रियों को पलटि अन्तर्मुखकर आत्मा मे लगावे। दुलीचै=गलीचे, जाजम, हृदय-प्रदेश मे बैठ। साजन=हितैषी, शील, सत्य, सन्तोषादि। पिसण=चोर लुटेरा, काम-क्रोध-अहंकारादि। अरथ=मतलब, सत्यज्ञान।

*इडा, पिंगला, सुषुम्ना तीनों को सम कर त्रिकुटि-भ्रूमध्य स्थान मे लावे।

सूकड़ि समता उरि घसि लाई, सषी महेली साथि बुलाई ॥
पाँचै पीव परसण भया, भेद सहित भगवंत ॥
रासमंडल मैं होत है, घरि घरि राग वसंत ॥६॥
छठि छक्या छक लाधा भारी, महलि पधारैं देव मुरारी ॥
×गंगा उलटि जमन में आँणी, वाहरि भीतर एकै पांणी ॥
गिरवर गरक गया ता मांही, अगम अथाह थाह कछु नांही ॥
रूप अरूप मोह नहिं माया, निज निरलेप निरंजन राया ॥
चाँदणि छठि आई सषी, मिटि गया मोह अंधार ॥
अरस परस मिलि षेलिये, अब औसर याह वार ॥७॥
सातैं समझि पड़ी सुष पाया, आनंद सहित अरथ मैं आया ॥
*निरभै सीर नीर निज नेरा, ता सुषि लागि रह्या मन मेरा ॥
वहौत दिनै तैं या रुति आई, वस्त अथाह न जाइ छिपाई ॥
जाँणि वूझि ऐसा कछु कीया, अब हरि हम अपणाँ करि लीया ॥
मातैं सातौं समि सदा, निजपुर नगर निवास ॥
विणि वादल वरसा सदा, छह रुति वारह मास ॥८॥

पाठभेद—ल्याई-५। सहैत-२। या-३। वहुत-१। मातूँ-२।

शब्दार्थ—सूकडि समता=समता रूपी चन्दन। घटि छक्या छक लाधा भारी=अन्तःकरण तृप्त हो गया-भारी मौका मिला। जाणि वूझि=सोच-समझकर। सातो=ज्ञानेन्द्रिया पाच, मन, प्राण—समि सदा-सम स्थिति मे बनाये रहे।

× गंगा उलटि मन को अन्तर्मुख कर जमन मे—प्राण मे आंणी-मिलावे। मन-प्राण दोनों सुस्थिर हो तो पिड-ब्रह्माड मे व्याप्त परमानन्द रूप एक ही पानी की प्रतीति हो। जब परमानन्द की प्राप्ति हुई तो उस अगम अथाह आनन्दसमुद्र मे अहंकाररूपी महापर्वत गरक हो गया—विलीन हो गया।

* कालादि भयो से रहित सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्म की सीर—प्रवाह मे अमृत नीर प्रवाहित है, वह आत्मा के अत्यन्त समीप ही है।

आठैं आठ काठ करि कांनैं , छल बल छाड़ि इहै हरि मानैं ॥
जंबुकि स्वान सिंघ दोइ मारया , हिरणी आगे चीता हारया ॥
मूसा कै मुषि चढी मंजारी , तीतरि बाज करां वीचि धारी ॥
×पंष सवांहि समद मैं पैठा , आला अटल तहां जाइ बैठा ॥
आठैं अरथ विचारिया , फूलीं सब वन राइ ॥
भंवर कंवल रस पात है , पर दोइ दई उड़ाइ ॥६॥
आज मधी नैं नींद न आवैं , जागि न सोऊँ कंत रिसावैं ॥
वंकनालि मैं गरजैं बाई , सेझ सुहाग मिलै सुषदाई ॥
बरसैं धरणी गगन रस आवैं , रांम भरतार भजौं मोहि भावैं ॥
परम उदार सकल सुषरासी , अगम अलेष अगह अविनासी ॥
नौं द्वारौं मन ना बहै , दसवैं रह्या समाइ ॥
जन हरीदास आतुर मिटी , आनंद मैं दिन जाइ ॥१०॥

पाठभेद—स्यघ-२। सवारि-२। वरा-३। भजूं-२-४। आएाद-१।

शब्दार्थ—आठैं आठ काठ करि काने=आठों प्रकार के (रूप, धन, विद्या, पदादि) अहङ्काररूपी काठ को दूर करो। जबुकि=आत्मनिष्ठ वृत्तिरुप शृगाली ने। स्वान सिंघ दोइ मारया=कामवृत्तिरूप कुत्ते को और क्रोधरूपी सिंह दोनो को मार लिये। हिरणी आगे चीता हारया=स्थिर बुद्धि रूपी हिरणी से चञ्चल मनरूपी चीता हार गया। मूसा कै मुषि=ज्ञानरूपी चूहे के मुख। चढी मजारी=ममतारूपी मजारी-बिल्ली खत्म हुई। तीतरि वाज करा वीचि धारी=सतोषरूपी तीतर ने लोभरूपी बाज को अपने पंजे मे दबोच लिया है। वंकनालि=सुषुम्ना मार्ग। वरसैं धरणी=सुरतिवृत्ति आत्मनिष्ठ हो एक रस से बरस रही है। गगन=दशम द्वार-ब्रह्मरंध्र मे निरन्तर अमृत रस का स्राव हो रहा है।

× निश्चल शुद्ध मन विवेक-विचाररूपी पंख संभाल-ब्रह्म समुद्र मे प्रविष्ट हुआ-अटल स्थान मे जा बैठा। पर दो दई उडाइ=द्वैतभावमय दोनों परों को उडा दिया-हटा दिया।

दसमी देव दया करि आया , सीतल नैंण वैंण सुष पाया ॥
जल मैं कुंभ कुंभ मैं पांणी , सकल वियापी यूँ सति जांणी ॥
+अकलि उजालैं मेर उड़ाया , ×भंवरां का रस वेलि षाया ॥
ग्यांन निजरि भरि देषें लोई , सव घटि राम और नहिं कोई ॥
दसमां हरि दरसण दिया , हरि परम सनेही पीव ॥
सव सेभ्फां सांई वसै , जागि न देषै जीव ॥११॥

ग्यारसि करत वहौत दिन वीता, एकादसी न जांणै रीता ॥
जव लग निज तत निजरि न आवै, दुवध्या षेल वहौत दुष पावै ॥
कंचन छाड़ि काच वसि काचा , षड़चर षिम्यां नही सति वाचा ॥
या सुष वा सुष अंतर भारी , कहां दिनकर कहां राति अंधारी ॥
अंतरि धुनि एकादसी , वंकनाल रस षाइ ॥
मन उनमनि लागा रहै , नांना नेह चुकाइ ॥१२॥

पाठभेद—नैन वैन–३-५ । भौंरा–१-५ । सकल–५ । वहुत–१ । षिमा–१-५ । मन्य–१ । सत–५ ।

शब्दार्थ—जल मे कुंभ कुंभ मे पाणी=जैसे तालाब, कुण्ड, कूण्डी आदि मे जल भरा है उसमें से घडा भरते हैं तो घड़ा जल मे डूबता है, घड़े मे भी जल है–मतलब घडे मे तथा घडे के बाहर एक ही जल है । इसी तरह व्यापक चेतन घट रूप शरीर में तथा बाहर व्याप्त है । सव सेभ्फां=सब पलंगों पर, घट-घट मे । एकादसी=एकरूपता, अनन्य दशा । रीता=रीति, तरीका । दुविध्या=संशय मे पड़, अनिश्चित स्थिति । कंचन=आत्मचिंतन रूप सोना । काचा=कच्चा, अदृढ़, अस्थिर मति । षड़चर=पशुतुल्य । षिम्या=क्षमा ।

+अकलि उजालैं मेर उडाया=अकलि–कलन रहित व्यापक ब्रह्म का घट मे साधना से प्रकाश कर सशयरूप मेर–पहाड को उडा दिया, हटा दिया ।

× मन रूप भँवरे का जो कि इन्द्रियों द्वारा विषय रस ग्रहण करने मे संलग्न था, उसके रस को निश्चल बुद्धि रूपी बेलि ने खा लिया–मन-इन्द्रियो को विषयों से हटा अन्तर्मुख कर आत्मनिष्ठ कर दिया ।

*वारसि दांन पुनि क्यों कीजै, मनिष जनम धरि यहु सुष लीजै ॥
गरब गुमांन परचि निरदावै, अगम अगाध सहज सुष आवै ॥
सत रज तम गुण मोह पसारा, यह दत यौ नर जागि संवारा ॥
पति सूँ प्रीति जीति गुण दूजा. हाथ पसारि करो यह पूजा ॥
हरि सुमिरण हिरदै सदा, पाप पुनि दोइ दांन ॥
वारसि तहां मिलि षेलिए, जहां न दूजी आंन ॥१३॥

तेरसि तहां वसै मन मेरा, नहि सो दूरि नहीं सो नेरा ॥
ना कोउ लहै न काहु लाधा, हिंदु तुरक दोऊं षषि वांधा ॥
×वेद कतेव कथै रुचि मांनी, +यहु पण साहि रहे अभिमांनी ॥
अपणौ अपणौं रसि मतिवाला, सब जग छक्या विरध काहा वाला ॥
तेरसि ताहि पिछांणि रे, निर्काट निरंजन राइ ॥
परम सनेही संगि वसै, प्राण तहां मठ छाइ ॥१४॥

चवदसि रांमचरण नहिं छाडूँ, जुवारी ज्यों तन मन वाडूँ ॥
दरसण देषि रेष तजि राई, जहां पड़दा तहाँ आन सगाई ॥
रटताराम अट्या अरि हारया, ÷मूँवा जिवाया जीवत मारया ॥

पाठभेद—वृध-५ । न्यरंजन-२ । प्रम-१ । छाडौ-१ । वाडौ-१ ।

शब्दार्थ—निरदावै=निष्पक्ष । दत्त=वैभव, सम्पत्ति । वाडूं=वारूँ, न्योछावर करूँ, दाव पर लगाऊँ । अट्या=अटका, मन स्थिर हुआ ।

* वारसि दान पुनि क्यौ कीजै=कर्मबन्धन के कारण दान-पुण्य क्यो किये जायँ ।

× वेद कतेव कथै रुचि मांनी=वेद-कुरान के कथन में विश्वास करने वाले ।

+ यहु पण साहि रहे अभिमांनी=जो साधक इसी हठ मे–इस प्रतीक्षा मे रह गये कि काम्य-कर्म ही जीवन का लक्ष्य है, वे सापेक्षिक धर्म, जाति आदि के ही अभिमान मे उलझ गये ।

÷ मूँवा जिवाया जीवत मारया=वृत्ति, विवेक, बुद्धि आदि जो मृतवत्–निष्क्रिय थे, उनको प्रबुद्ध किये, जागृत किये, सक्रिय किये । मन, इन्द्रियाँ जो विषय-भोग मे लग जीवित थे, सक्रिय थे, उनको मारा–विषय–वासना से छुड़ा अन्तर्मुख किया ।

मन निहचल निरभै निधि मांही, जहां तहां राम दूरि हरि नांहीं ।।
चौदसि चितवणि सब मिटी, अणबोल्या कछु गाइ ।।
जन हरिदास चंचल गया, निहचल रह्या समाइ ।।१५।।
सुर तैंतीस घेरि घरि आया, *पून्यौं मन फिरि मन ही समाया ।।
सकल समीपि सकल तैं न्यारा, पूरण परमानंद पियारा ।।
दुरमति दूरि दूरि हरि नाहीं, सबतैं अगम बसै सब मांही ।।
परमसिंध सुष वार न पारा, ता सुषि लागा प्राण हमारा ।।
जन हरीदास सोलाह सुतिथि, सदगति सुपहि लगाइ ।।
पून्यूँ पीव परसण भया, अंतरजामी आइ ।।१६।।

।। इति तिथि जोगग्रन्थ समाप्त ।।

।। अथ लघुतिथि जोगग्रन्थ ।।

मावस मन उलटा चढ्या, कला सँवारै चंद ।।
फिरि लागा उनमनि सूँ, छूटि गया सब दंद ।।१।।

पाठभेद—नृभै–५ । चितवनि–१-५ । पून्यू –४-५ । पूरन–२ । सुपैह–१-५ । दुद–१ ।

शब्दार्थ—चितवणि=याद, स्मृति, विषयचिन्तन । अणबोल्या=बिना शब्द किये, ध्यानवृत्ति से स्मरण । सुर तैंतीस=आठ वसु=(पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, सूर्य, चन्द्र, तारे) एकादश रुद्र=(ज्ञानेन्द्रिय–कर्मेन्द्रिय-मन) बारह आदित्य= प्रति राशि प्रतिमास । इन्द्र और प्राण । दश इन्द्रियाँ, दश प्राण, पाच अन्त करण, आठ प्रकृति ।

* पून्यौ मन फिरि मन ही समाया=स्थूल मन भोग–वासनामय बदल कर आत्माभिमुख सूक्ष्म मन मे समा गया–बदल गया तब पून्यों का प्रकाश व्याप्त हुआ ।

१ ली साखी—मावस मन–तमोमय मन भोगो से विमुख हो उल्टा चढ्या– अन्तर्मुख हुआ आत्मनिष्ठ हुआ । चन्द्रमा की तरह प्रकाशमय मन अब शील, सन्तोष त्याग, वैराग्यादि कलाएँ संवार रहा है । फिर उनमनि–सहजावस्था मे बदल सब आठ द्वन्द्वो से–कालकर्मादि से मुक्त हो गया है ।

पड़िवा पष पर सब तजी , सु तौं और ही वाट ।।
गगनमंडल आसण किया , लांघ्या औघट घाट ।।२।।
बीजस बीज न षोइये . राषौ बीज अबीज ।।
जन हरीदास गरजै गगन , सहजि चमकै बीज ।।३।।
तीज त्रिगुण रस घेरि करि , ब्रह्म अगनि मैं जारि ।।
दौं लागी ×दरिया जलै , तुरिया भेद विचारि ।।४।।
चौथि चाह चक्रत भया , उलटी तालो लाई ।।
गंग जमन मधि पैसि करि , मीन मगर गई षाई ।।५।।
पांचैं पांचौ फेरि मन , सुरति सहजि धरि धारि ।।
मन तारामंडल छेदि गया, उलटी पंथ सँवारि ।।६।।
छठि अछिप घट मैं छिप्या, पूरण परमानंद ।।
परसि परसि पावन भया , जहां तहां आनंद ।।७।।
सातैं सर ऊसर भया , पहमि पलटि गत नीर ।।
मछली बसै आकास मैं , लगी प्रेम की सीर ।।८।।
आठैं अरि सब परिहरि गया, असलि उदै भया ग्यांन ।।
आठ पहर इम्रत सुधा , वाज पियालै पांन ।।९।।

पाठभेद—फेरिकै-५ । अग्नि-१ । चक्रित-१ । वैसिकै-५ । पांचू-२ ।

शब्दार्थ—वाट=राह, साधनमार्ग । वीजस वीज न षोइये=वीज-द्वितीया तिथि वही सफल है जिसमें आत्मचिंतन रूपी बीज को भुलाया न जाय । वीज=बिजली, ज्ञानज्योति । दौ लागी=लाय लगी । चक्रत=चकित । मीन मगर गई षाई=स्थिर बुद्धि रूपी मीन-मछलीने-मन रूप मगर को खा लिया विषयो से हटा आत्माभिमुख कर दिया । पांचौ=पंच ज्ञानेन्द्रियाँ । तारामंडल=गगनमंडल, दशम द्वार । अछिप= नहीं छिपने वाला, प्रत्यक्ष । सर=सरोवर, विविध वासनामय तालाब ।

८ वी साखी—सातैं सर ऊसर भया=वासनामय सरोवर ऊसर हो गये-सूख गये । पहमि-भावनामय भूमि बदली, त्रिष्णा तरल सूख गया, सुरतिवृत्ति रूपी मछली हृदयाकाश में पहुँच आत्म प्रेम की सीर में लग गई ।

× दरिया जलै=विविध भोगो की भावना का समुद्र जलने लगा ।

+ नौंमी नवैं सँवारिये, अनड़ न मोड़े अंग ॥
मन फेरयां तन फिरत है, मनिष जनम को भंग ॥१०॥
दसमी देह दुरंग गढ़, दिह दिसि सौर लगाइ ॥
मेवासी करसा भया, मिल्या रैति होइ आइ ॥११॥
एकादसी अभंग है, जहां दुवध्या तहां दोइ ॥
जन हरीदास एसा वरत, जांणै विरला कोइ ॥१२॥
दोइ राह तजि द्वादसी, जोगी देष्या जागि ॥
ब्रह्म अगनि मैं घरि किया, रह्या निरंतर लागि ॥१३॥
तेरसि तन मैं परम तत, पांच तत ते और ॥
बसै कहां नांही कहां, जहां तहां सब ठौर ॥१४॥
चौदसि मन चौथी दसा, गया लोक तज लाज ॥
चंद मिल्या आनंद सू, अनहद सबद अवाज ॥१५॥
पून्यूँ पष पूरा भया, सहजि सरया सब काम ॥
जन हरीदास आतम अंतरि, परम सनेही राम ॥१६॥

॥ इति लघुतिथि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—व्है-१। येकादसी-२। दुविध्या-२। तज्य-२। चवदसि-२।

शब्दार्थ—एकादसी अभंग है=साधना से प्राप्त सहज दशा अभंग है, अडिग है। दुविध्या=भेदवृत्ति, अनिश्चित स्थिति। दोइ राह तज द्वादसी=द्वादसी वही सार्थक है जब दोइ राह दो-मार्ग हिन्दू-मुसलमान, प्रवृत्ति-निवृत्ति के विकल्प को छोडे, एक ही मार्ग अपनावे। ब्रह्म अगनि=ब्रह्मप्रकाश। परम तत=चेतन तत्व, श्रेष्ठ सारमय। चंद मिल्या आनंद सू=नूरमय शुद्ध मन आनंद रूप ब्रह्म से मिला।

+ नौमी नवैं सँवारिये=नौमी को नवे पाच ज्ञानेन्द्रियो, चारो अन्त.करणो को सँवारिये-स्वच्छ करिये, चेतन तत्व मे लगाइये।

११ वी साखी—दशमी तिथि कब सफल हो, जब इस देहरूपी दुरग गढ, पखा पखी, भेद-भावनामय, प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप गढ के चारो ओर विवेक-विचार-मय दारु बिछा दी जाय इससे वागी मन जो शासक-सेनापति रूप था, वह अब रैति-प्रजा बन, कृषक हो आध्यात्मिक खेती मे लग जाय।

॥ अथ चालीसपदी जोगग्रन्थ ॥

आतम ग्वालणि हे सषी, हरि भजि विलम न लाइ ॥
निरभै नांव निरंजनां, तूँ तासूँ ताली लाइ ॥१॥
अवगति की गति लषै न कोई, साधां सुष कूँ गाया ॥
गगनमंडल में गुफा सोधि लै, तहां निरंजन राया ॥२॥
मछ रूप करि वेद उधारया, ऐसा अचरिज कीया ॥
भगति हेति हरि आप पधारया, लै ब्रह्मा कूँ दीया ॥३॥
*भूला तोले कूप सिंधु सूँ, कूप सिंध क्या कीजै ॥
कूप कलै थागर अविनासी, अविनासी रस पीजै ॥४॥
क्रम रूप मथ्यां मैंणारंभ, मथि मधकीटक मारया ॥
अकल आप अविनासी आया, जन का कारिज सारया ॥५॥
अविनासी कहूँ आइ नहिं जावै, हम देष्या सब मांही ॥
जठर अगनि तैं रहै निराला, लिपता जाण्यां नांही ॥६॥
भगति हेत वाराह विधूँस्या, धरणि दाढ़ धरि राषी ॥
हरि आपणां आप निवाजै, स्यौ सनकादिक साषी ॥७॥
स्यौ सनकादिक अपणां सुष कूँ, उनमनि ताली लावै ॥
मरजीवा हीरा ले आवै, वार पार नहिं पावै ॥८॥
जन प्रहलाद बहौत दुष पाया, छूटी नांही ताली ॥
तब हरि नरहरि रूप बनाया, जन परतग्या पाली ॥९॥

पाठभेद—ग्वालनि-१ । तास्यौ-१ । इचरिज-२ । विधौस्या-१ । प्रतंग्या-१ ।

शब्दार्थ—तोले=तुलना करे, बराबरी करे। कलै=क्षीण हो, नष्ट हो। मैणारंभ=समुद्र। वाराह=वाराह अवतार। विधूंस्या=नाश किया, मधुकैटभ का सहार किया। निवाजै=प्रसन्न हो, महरवान हो। स्यौ=शिव। मरजीवा=समुद्री गोताखोर। तालो=लौ, लगन।

* कूपसदृश अवतार सिंधु समान व्यापक ब्रह्म को भूले-बेसमझ मनुष्य बराबर कहते मानते है पर उनकी बराबरी कैसी? कूप अवतार क्षीण सत्ता होते है, नष्ट हो जाते है। समुद्र रूप व्यापक चेतन अविनाशी है, इसलिये सगुणोपासना मे न उलझकर निर्गुण उपासना द्वारा ब्रह्मानन्द रस का पान करिये।

नरहरि रूप कहौं क्यूँ हरि का , तेजपुंज परकासा ॥
माई बाप कुल नांही वाकै , सुनिमंडल मैं वासा ॥१०॥
बलि राजा पूरा जिग कीया , तब इंद्र हेत हरि आया ॥
पांव पतालि सीस असमाना, लंब तड़ंग कहाया ॥११॥
कहन सुनन की या विधि नांही, कह्या सुन्या बनि नावै ॥
हरि अपार पार को नांही . अगह गहण क्यूँ आवै ॥१२॥
परसराम पत्री जब आया , तब दैतां वल कीया ॥
असुर विधूंसि हरि विप्र निवाज्या. भगतां कूँ सुष दीया ॥१३॥
भगत भला जो प्रीति पिछांणैं . मन परफूलत नाचै ॥
हरि हीरा हिरदै मैं राषै , कौड़ी रूप न राचै ॥१४॥
रामचंद्र बाण जब लीया , सुर तेतीस छुड़ाया ॥
रांवण मारि लंका गढ़ तोड्या , राज बभीषण पाया ॥१५॥
रमतारांम और है भाई , समझि देषि मन मांही ॥
षुध्या त्रिसा रोग नहिं व्यापै, वार पार कछु नांही ॥१६॥
हरि गोकल मैं ग्वाल नचाया, निरविष कीया काली ॥
कंस केस चांणौर पछाड्या , मथुरा मैं बनमाली ॥१७॥
ना वनि वसै न मथुरा आवै, अलष लष्या नहिं जांही ॥
अवरण वरण ऊँच क्या नीचा, परपूरण सब मांही ॥१८॥
बुध अवतार महाबल कीयौ , अघासेनि दल मारया ॥
भगति हेति हरि ऐसे आया , भू का भार उतारया ॥१९॥

पाठभेद—प्रकासा—१-५ । ज्यग—२ । तडाक—१ । कहण-सुणण—१-५ । सुण्या—१-५ । वंणि—१-५ । न्यवाज्या—२ । प्रफुलति—१ । कुछ—१ । गोकुल—१ । चाणूर—४-५ । जाई—१ ।

शब्दार्थ—असमाना=आकाश, आसमान । कौडी रूप न राचै=भौतिक नाशवान् पदार्थों मे आसक्त न हो । निरविष=विषरहित । काली=यमुना का कालियादह । अघासेनि=पापो की फौज का सहार किया ।

भू कूँ भार न जाण्यां कोई , जाकै हरि रषवाला ॥
हम तो हरि ऐसें करि देष्या , वूढ़ तरण नहि वाला ॥२०॥

वेद कहै हरि सांभलि आवैं , सूरज संकट निवारण ॥
निहकलकी औतार कहावैं , कली कालिग कूँ मारण ॥२१॥

हरि कूँ कलंक न जांण्या कोई, कलंक न कोई लागै ॥
हरि अगाध ऐसे करि देषो , वांवैं दाहिणैं पीछे आगै ॥२२॥

निराकार आकार एकही , दुविध्या जाणीं नांही ॥
हरि थोड़ा कैसे करि देषूँ , है साहिब सब मांही ॥२३॥

तुम भूले औतार न जांण्या , साधां का सुषदाई ॥
निराकार कूँ सोई सेवैं , जो सहजै सुंनि समाई ॥२४॥

*हम भूले तुम पढ़ि षढ़ि वूड़े , सबद सुणैं कहा भाषै ॥
उतपति पावक परलौ व्है तव , जीव कहां ले राषै ॥२५॥

निरमल देव सदा निहकांमी , नांव निरंजन राया ॥
यों ही पावक यौ ही परलौ , सब याही मांहि समाया ॥२६॥

पाठभेद—अवतार–१। न्यराकार–२। येकही–२। अवतार–१। प्रलो–१। होड–१। नृमल–४।

शब्दार्थ—साभलि=संभलकर, सुमरण के साथ। दुविध्या=दो रूप, द्वैतपन। सेवैं=पूजै, ध्यावे, ध्यान करे। सहजै=अनायास, आसानी से। पावक परलौ=वडवाग्नि द्वारा प्रलय हो।

२१ वी साखी—जिस शक्ति ने पानी मे–गर्भ पर आवृत जलीय स्थिति मे गर्भपोषक अग्नि को रखा, उसी शक्ति का सम्पूर्ण संसार मे रजमा है–करामात है, प्रभाव है। उसी महाशक्ति मे सम्पूर्ण प्रकृतिजन्य समग्र दृश्य पदार्थों का विलय होता है। उस महान् सर्वदा रहने वाली शक्ति को न जान अवतारादि मे भ्रान्त होना अज्ञान है।

* हम भूले तुम पढि पढि वूडे=साधक वाचक ज्ञानी से कहता है कि हम निर्गुण उपासना में लग भूल करते हैं तो तुम केवल विना–विचार के शास्त्र पढ़ उनका रहस्य जाने विना अज्ञान में डूब रहे हो।

साहिब अभर धरचा सब दूजा, मिलता जांण्या नांही ॥
हम कूँ कहो पढ़ो समझाओ, आसंक्या मन मांही ॥२७॥
चौदा लोक रच्या जिनि बाजी, सो बाजीगर नहिं पाया ॥
उतपति पावक परलो व्है तब, सागरि जाइ समाया ॥२८॥
परलौ कहौ कहां है स्वामी, ज्यूँ याह आसंक्या भागै ॥
घटि घटि जठर अगनि का बासा, घट घट मांही जागै ॥२९॥
घट तौ पांच तत का मेला, रहता जांण्या नांही ॥
जठर अगनि का बासा व्यौरौ, आसंक्या मन मांही ॥३०॥
जठर अगनि पांणी में राषी, कुछ रज मां जुग मांही ॥
ता रज मैं सारा जुग छीजै, रहता जाण्यां नांही ॥३१॥
छीजै जैसा उपजै तैसा, घटना जांण्या नांही ॥
तुम अगाध वोछी मति मेरी, याह आसंक्या मन मांही ॥३२॥
मैं सब मांही सकल तैं न्यारा, जे कोइ सतगुर सरणैं आवै ॥
आपा मानि तहां मैं नांही, म्रतग व्है सोई पावै ॥३३॥
आपा वड़ाक ना तुम्ह स्वामी, आपै का मैं कीया ॥
बाजी सबै तुम्हारी दीसै, तुम ही आपा दीया ॥३४॥
कहण सुणण की या विधि नांही, कह्या सुण्यां वणि नावै ॥
पीर जति अवतार अवलिया, ऐसा रूप दिषावै ॥३५॥
रूप कहो कैसा है स्वामी, हम तौ देष्या नांही ॥
अब बंदे कूँ रूप दिखाओ, दरसण देहु गुसांई ॥३६॥

पाठभेद—चवदा-१ । जब-४ । सम्रि-१ । मिरतग-१ । मृतग-५ ।

शब्दार्थ—आसंक्या=आशका । छीजै=नाश हो । उपजै=पैदा हो । वोछी=अल्प, थोडी । म्रतग=अहंकार रहित, आपा छोड, जीवन्मुक्त । वडाक=महान्, विशाल ।

३२ वी साखी—छीजे जैसा उपजे तैसा=तू न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है नही घटता-बढता है । तेरे इस एक रस रहने वाले रूप को कैसे समझे ? यह शंका कैसे निवृत्त हो ?

परिहरि पाप जाप जपि अजपा , नांव निरंजन लीजै ॥
त्रिवेणी तटि ताली लागी , ता आनंद मन छीजै ॥३७॥
आनंद कहौ किसी विधि लाभै , वहौड़ि न सांसो सौषै ॥
ब्रह्म अगनि मैं बैसि सहज धरि, आतम तरवर पोषै ॥३८॥
घर ही मांही दरस परस है , काया मंज्या पावै ॥
सतगुर सबद साच करि पकड़ै , ता डौरै लागा आवै ॥३९॥
रामसनेही चिती चढ्या , दूजा देषण चंग ॥
हरि रंग चढ्यौ न ऊतरै , उड़ि उड़ि जाइ पतंग ॥४०॥
जब हरि हीरा करि चढ़ै , मेल्है रंक छिपाइ ॥
जन हरीदास हरि अघट है , कोई गाफिल षोटा षाइ ॥४१॥

॥ इति चालीसपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चौदापदी जोगग्रन्थ ॥

सतगुर का चरणां चित धरिहूँ , अनिन्न भृगति सोई मैं करिहूँ ॥
गुर विन ग्यांन न पावै कोई , जो पावै तौ नृमल न होई ॥
धाग धाग करि गुर सुलझावै , गुर की सुलझि उलझि नहिं आवै ॥
गुर किरपा तैं हरि निधि पाई , जिन पाई तिन वहौत छिपाई ॥

पाठभेद—निरंतर-५ । तट-५ । च्यती-२ । चित-३-५ । शिर-१ । निरमल-१ । ज्यन्य-२ । वहुत-१ ।

शब्दार्थ—लाभै=मिले, प्राप्त हो । ब्रह्म अगनि=आत्मतत्व की ज्योति में । मंज्या=साफ हुए, शुद्ध हुये, मंजकर । चंग=चंगा, सुन्दर, अच्छा । गाफिल=असावधान । नृमल=विशुद्ध, निःसंशय । धाग धाग करि=तार-तार सुलझाकर ।

*परगट करैस परगट पैंडा, परगट आइ पहूँचै नेड़ा ॥
पारि पहूँता उलटा ल्यावै, महापुरष तातैं वन छावै ॥
रनि वनि रहे जगत तैं न्यारा, राम भजै सारां सिर सारा ॥
गरव कलणि केता कल्या, तिन का लेषा नांहि ॥
वात चलावै सुरग की, षेलै नरकां मांहि ॥१॥
गुरगमि नहीं दुनी भरमावै, वा निज साहिव की षवरि न पावै ॥
आपै चल्या करम संग लीया, राम भजन कवहूँ नहिं कीया ॥
राम भजन विन जेती आसा, तेती सकल काल की पासा ॥
करमहीण ऐसा वैरागी, हरि तजि माया मीठी लागी ॥
माया वार पार कछु नांही, तेरू थकित भया ता मांही ॥
भांति भांति करि आड़ी आवै, ता तैं कोई वचण न पावै ॥
एक समैं स्योजी डहकाया, वांसै लाग्या दौड्या आया ॥
माया का वल अनंत है, वचण न पावै कोइ ॥
रे मन! कौड़ी मति गहै, यहु हीरा रूप न होइ ॥२॥
तौ हरि हीरा जौहरी पिछाणै, कौड़ी रूप निकट नहिं आंणै ॥
राम रसांइण सव तैं मीठा, सो तो जुग षारा करि दीठा ॥
तरसि ढूकि पीवै को नांही, गरक भये सव माया मांही ॥
माया मीठी नैडा आंणै, वांह पकड़ि नरकां कूँ तांणै ॥

पाठभेद—प्रगट-१ । महापुरिष-१ । स्वरग-५ । थकत-१-थकति-२ । जुगि-२ । जुग-४-५ ।

शब्दार्थ—गरव कलणि=अभिमान के कीचड़ में । डहकाया=बहकाया, भ्रान्त किया । वांसै लाग्या=माया से मोहित । तरसि ढूकि पीवै को नाही=लालायित हो उस राम-रसायन को ढूकि-लगकर कोई पीता नही । नैडा आणै=समीप ले, मोहित कर अपनी ओर खीचे ।

* आत्मप्राप्ति का जो विज्ञापन करता है-ढिंढोरा पीटता है तो उसका पेडा-साधना दिखाऊ ही समझनी चाहिये । दिखावे की वासना से साधक सिद्धि के समीप पहुँचकर भी वापिस लौट आता है, स्खलन हो जाता है । इसीसे महापुरुष एकान्त निवास करते हैं, जिससे संगदोषवश साधना मे बाधा उपस्थित न हो ।

राम भजन बिन विधि व्यौहारा, तेती सकल काल की मारा ॥
नर निबला सबली है माया , धाई नहीं सकल चुणि षाया ॥
रोग बध्या दारू घणी , लावै कोई नांहि ॥
तातैं रोगी बापड़ा , हसतां नरकां जांहि ॥३॥
यो ही भोग रोग होइ आवै , जैसा करै स तैसा पावै ॥
आपै चल्या अरथ नहिं आवै , सोइ मरै जको विष षावै ॥
मूल मंत्र जांणै कछु नांही , विसहर लै मेल्है गल मांही ॥
जैसा फुनग तैसी है माया , जे षाया तै वहोड़ि न आया ॥
माया कलणि कल्या जुग सारा , है कोई साच बतावणहारा ॥
हरि इंम्रत रस छांड़ि करि , विष कूँ दौड्या जाहि ॥
कूवै राता मींडका , समंद समझि कछु नांहि ॥४॥
गुरगम समझि इसी परि आई , ऐसा अकल सकल पति राई ॥
नांव निरंजन अंतरयामी , हरि निरमल परपूरण स्वांमी ॥
तब सात समंद नहिं भार अठारा, तब था सोई अब सिरजनहारा ॥
गिर परवत नहिं मंडल तारा , समझि नहिं कछू वार न पारा ॥
निराकार आकार विनि , अनंत भवन के राव ॥
ताकूँ भज रे ! प्राणियां , दुर्लभ ऐसो डाव ॥५॥
जोग ध्यांन सूँ जब धुनि लाई, तब हरि एक एक रे ! भाई ॥
पवन न पांणि धरणी आकासा , चंद न सूर देव नहिं दासा ॥
घोस न राति जाति नहिं कांई , अब याह जाति छोत ले आई ॥
छोति छोति करि जगत भुलाया, तातैं निज कणि हाथ न आया ॥

पाठभेद—ज्यको–२ । जिको–५ । तिसी–५ । समद–१-४ । न्यरमल–२ । थ्रि–१ । येक्येक–२ । दिवस–१ । ज्नाति–२ ।

शब्दार्थ—निवला=कमजोर, असमर्थ । धाई नही=तृप्त नही हुई, सबको खाती हुई भी माया अतृप्त रहती है । दारू घणी=औषध बहुत है, मायाजन्य रोग की औषध भी अपार है पर करता कोई नही । विसहर=कालरूपी सर्प । फुनग=फणी, सर्प । कल्या=फँसा, गरक हुआ । राता=अनुरागी, लालायित । राव=राजा । डाव=दाव, अवसर । छोति=अस्पृश्यता ।

परपंच रातौ प्रांणिया, हरि सूँ नांही हेत ॥
परवसि पड्यौ विगूचसी, अव तूँ चेत अचेत ॥६॥
मन परपंच करि वहौत भुलाया, उलझ्या वार पार नहिं पाया ॥
पकड़्या झूंठ साच नहिं न्हालै, आप जलै औरा कूँ जालै ॥
पार गहै कोई जन पूरा, पूरा गुर का सेवग सूरा ॥
सूरातन की सौंज संभारै, काम क्रोध त्रिष्णा सव मारै ॥
मन की तरंग सकल चुणि पावै, ×उलटै अरहट वाडी पावै ॥
ना वाड़ी मांही पौहप परकासा, तहां निज सेव करै निज दासा ॥
सौंज संवारी भजन कूँ, अव कै यहु आकार ॥
कौड़ी गहि हीरा तजै, ताकूँ वार न पार ॥७॥
जव आकार न था अवतारा, ब्रह्मा सिसटि उपावणहारा ॥
स्यौ सनकादिक नारद नांही, समझि समझि देष्या मन मांही ॥
हरि विण और न देवी देवा, सालिगरांम न क्यूँ ही सेवा ॥
जल ज्वाला परवेस न कीया, विसन वेद पीछे कर लीया ॥
ना वाजीगर की षवरि न पाई, सव वाजी मांहि रह्या उलझाई ॥
कउवा क्यौं मोती चुगै, हंसा तजि कहां जाहि ॥
मान सरोवरि सकल सुष, तहाँ वैठा केलि कराहि ॥८॥
जव दुष सुष था न गुरू नहिं चेला, पांच तत्त का नांही मेला ॥
सीत न धूप राग रंग नांही, जामै मरै न आवै जांही ॥
जव कोई विप्र न था विप्रेला, वो एकाएकी रमे अकेला ॥

पाठभेद—वहुत–१। तिष्ना–१। प्रकासा–२-४। इहु–२-४। सिष्टि–१-३। देई–१। विष्णु–१। प्रवेस–१। रहे–५। झूठा–२। वोह–१। येकायेकी–२।

शब्दार्थ—विगूचसी=दुःख भोगेगा। न्हालै=देखे। जल ज्वाला=जन्म तथा मृत्यु वाले अवतार परब्रह्म के नहीं है। केलि=कल्लोल, खेल। विप्रेला=ब्राह्मणपन, जाति–परम्परा।

× उलटै अरहट वाडी पावै=मन को अन्तर्मुख कर वृत्तिरूप वाडी को पावे वृत्ति को सुदृढ़ बनावे।

या कै नांही रूप न रेषा, अब कछु रूप तमासा देषा ॥
*रूप रूप कूँ रसि रसि गावै, ×रूप चल्या ताकी सुधी न पावै ॥
निराकार हरि निरमला, नांव निरंजन देव ॥
अब जिनि भूले प्रांणिया, तूँ रहता कू सेव ॥९॥
भूला बहौत समझि नहिं कांई, ऊँच-नीच की बात चलाई ॥
=आवै जाइस ऊँचक नीचा, *ता मैं ले ले डारे सींचा ॥
आडा ले ले चौका ढारे, पसुवापरी यौं क्यूँ न संभारे ॥
कौंण ऊँच कौंण है सुद्रा, जामै मरैस एकै उद्रा ॥
गरभवास में जब ले दीया, दिया संकटि रुहि रुचि पीया ॥
पी पी सहिरे रह्या दस मासा, अब कछु ऐसा कहै तमासा ॥
कहणी सुणणी दूरी करि, अंतरि षोट न राषि ॥
तूँ हरि भजि रे! प्रांणिया, सुणि साधां की साषि ॥१०॥
कहै सुणै पणि रहणी झूठा, जमस्रूं रजू रांम सूँ रूठा ॥
ऊँधै मुषि दस मास झुलाया, भजन षोट दै बाहरि आया ॥
×कलि की बाव भषी सुष पाया, आवत समै षसम बिसराया ॥

पाठभेद—बहुत-१। येकै-२। भ्रम-१-५। पिए-१। बाहिर-५।

शब्दार्थ—सीचा=पानी के छीटे देना। पसुवापरी=पशुपना। पी पी सहिरे=माता का रस-रक्त पीकर। रहणी=चरित्र। षोट=आड। कलिकी=माया की। बाव=हवा। षसम=मालिक, स्वामी।

* रूप रूप कूँ रसि रसि गावै=ईश्वर के अवतार मानकर सगुण उपासना गा गाकर करता है।

× किन्तु अवतार के प्रतीक मूर्ति या-चित्र को हटा ले तो फिर उस सगुण अवतार की खबर कैसे पावे।

= आवै जाइस ऊँचक नीचा=अस्पृश्यता मानने वाला औरों से स्पर्श न हो, इसलिये आते जाते ऊँचा-नीचा टल टल कर चलता है।

+ तामे ले ले डारे सीचा=भूमि मे शुद्धि के लिये पानी के छीटे देता है।

× कलि की बाव भषी सुप पाया=माया की हवालगी कि भोगों मे सुख मनाने लगा।

वाचा दे दे आयो भाई, सो वाचा क्यों भूलै लाई ॥
जोर करै मसकीन सतावै, जठर अगनि दिन चीत न आवै ॥
जब तूँ परलै कीट पतंगा, तब यह गरब कहाँ थौ गंदा ॥
गरब गुमान सब दूरि करि, वा निज साहिब कूँ जांणि ॥
वा निज साहिब कूँ बिण भज्या, मनिष जनम की हांणि ॥११॥
हांणि कह्या कोई न पतीजै, निहचै मृघ बधिक कूँ धीजै ॥
जम नित बधक सदा नर हिरणां, चौरासी में दौड्या फिरणां ॥
कबहूँ पर पसु कीट पतंगा, मोर मृघ गति नाना रंगा ॥
कबहूं सूकर स्वांन सियारा, कबहूँ कउवा गति बिचारा ॥
कबहूं इजगर पंषी गोहा, ए दुष पावै हरि सूँ दोहा ॥
परला मांही आवै जावै, आंधा पसु बहौत दुष पावै ॥
रांम भजै तौ सकल सुष, नहिंतर सब दुष साथि ॥
षोटा पटा लिषाइया, षरा न आवै हाथि ॥१२॥
नाई सुबुधि कुबधि सूँ काला, साध नहीं कोई बिष ज्वाला ॥
भजन भेद जांणै कछु नांही, *कुबधि षड़हिया काषां मांही ॥
छापा तिलक भरम की पूजा, अंतरि करम कातरी दूजा ॥
मनसा मन कै मतै चलांणै, अंतरि की साहिब सब जांणै ॥
अंतरि षोट तहां हरि नांही, तातै बूड़ा परला मांही ॥
करम भरम सब दूरि करि, रहसि रहसि गुण गाइ ॥
तूँ हरि भज रे! प्रांणिया, नहितर काल अचूक्यौ षाइ ॥१३॥

पाठभेद—मिरध–१। मृग–५। वधिक–१। ये–१-२। नहीतो–५। कुछ–१। अंतर–४-५।

शब्दार्थ—परलै कीट पतंगा=जब तू कीट–पतंगों की तरह मरता है। हांणि=हानि, नुकसान। बधिक=शिकारी, मारने वाला। धीजै=विश्वास करे। दोहा=द्रोह, शत्रुता। षडहिया=खड़िया। काषा मांही=कन्धे पर। रहसि रहसि=बार बार, प्रसन्नतापूर्वक। नहितर=नही तो।

* कुबुद्धि रूपी खड़िये को कन्धे पर डाल रखा है।

पामी काल मही सूँ भाई, पसवै समझि पड़ी नहिं कांई ॥
कनक कामणी कूँ मन दीया, राम भजन कबहू नहिं कीया ॥
पाँच तत्त का झूठा मेला, हरि भज प्रांणी चलसी अकेला ॥
अनंत लोक जिन किया पसारा, सो सब मांहि सकल तैं न्यारा ॥
भगति उधार विड़द है जाको, निहचै नांव न छाडूँ ताको ॥
नांव गहै तो ही सुष पावै, भौ सागर में वहौड़ि न आवै ॥
साची सतगुर की सरणाई, अजब अनूप वस्त निज पाई ॥
गोविंद भज रे! प्रांणिया, हरि इम्रत रस पीव ॥
जन हरीदास हरि अनंत है, सु कहा विचारा जीव ॥१४॥

॥ इति चौदापदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ तीसपदी जोगग्रन्थ ॥

ऊँचा महल सेझ सुष सूंधा, मनहरणी नाना विधि नारी ॥
हैदल गैदल देषि छक्या छकि, नाचत गया नरांपति हारी ॥
छल बल करि वसुधा वसि कीन्ही, जम सूँ बल करि सक्या न छूटि ॥
हरि सुष छाड़ि साहि सुष कौड़ी, कलपत गया किता सिर कूटि ॥२॥
किरपण मरै न मूके माया, काठौ करि राषै कसि काच ॥
पहुँती जुरा विथा तन बीतौ, सूझै नहीं वड़ो सुष साच ॥३॥
करि करतूति भया नर चकवै, अदिष्टि चक्र वहै गुण एह ॥
रांम नाम निज भेद न जाण्यौ, गै ज्यूँ डारि गया सिर षेह ॥४॥

पाठभेद—इकेला-१। सौंधो-१-५। अदृष्ट-५।

शब्दार्थ—विड़द=महिमा, यश। सूँघा=इत्र, फुलेल। हैदल=घोडों का दल। गैदल=हाथियो का समूह। कलपत=कलपते, अफसोस करते। किरपण=कंजूस। पहुँती=आई, प्राप्त हुई। जुरा=बुढ़ापा। चकवै=चक्रवर्ती सम्राट्। अदृष्टि चक्र=कालचक्र।

यहु संसार सकल विष कौ वन , गोव्यंद सगौ सनेही राम ॥
राम चोट जम चोट न लागै , मदगल मोह न व्यापै कांम ॥५॥
नाथ निरंजन निरषि निरंतरि , हरि हरि सुमरि गरक गत सूल ॥
वाजीगर भजौ भजौ कांई वाजी, डाला छाड़ि गहौ निज मूल ॥६॥
नौषंड पहौम पलटि पहिरावै , नाटिक फिरि नट सुष जोवै ॥
नट सुष देषि तजै सुष वाजी , हरि भजि इम कलिविष सव धोवै ॥७॥
मन गहि सवल अवल होइ हरि भजि, आवध पांच अटकि अरि मार ॥
हरि हरि सुमरि सुमरि नर हरि हरि, उलटौ षेलि पड़ै मति षारि ॥८॥
भजि मन रांम कांम करि कण कण, मैं तैं छाड़ि मुगध मतिहीण ॥
सुनिमंडल मैं सहज सुधारस , ता रसि वसि सहजैं ल्यो लीन ॥९॥
स्वाति वूँद वरषा रुति विगसै , आपौ समटि रहै जल मांहि ॥
सागर को जल सीप न परसै , मिलि षेलै तो मोती नांहि ॥१०॥
सुष संसार समद जल षारौ , षारै जल लागा भूलि जीव ॥
निरभै सीर नीर निज नैडो , आंषि उघाडि न देषै पीव ॥११॥
करता करण सकल जुग जोगी , ता जोगी सूँ प्रीति लगाई ॥
यहु पण साहि आंन तजि अनरथ, जुरा न व्यापै काल नहिं षाई ॥१२॥
अगहि अरीझ कहौ किम रीझै , जव लग घट मैं दूजी आंण ॥
कावल छाड़ि राम भजि केवल , तौ ता रुति रीझै रहिमांण ॥१३॥

पाठभेद—किलविष–१ । सुन्य–१ । संमद–१ ।

शब्दार्थ—मदगल=गर्व, अहङ्कार । गरक=सराबोर, तर, तन्मय । वाजी= भौतिक सम्पत्ति, माया । पहौम=पृथ्वी, भूमि । आवध=शस्त्र, आयुध, ज्ञान षड्ग । षारि=षारडा, ऊसर भूमि, अनित्य सुख । कण कण=पल-पल । मुगध=मोहित । मतिहीण=सद्बुद्धि मे रहित । विगसै=प्रगटै, खिलै । दूजी आण=दूसरो दृढता, संसारी पदार्थो का मोह । कावल=कुगैले, कुमार्ग । तौ ता रुति=तो उस दशा, उस अवस्था मे ।

* यहु पणि साहि आन तजि अनरथ=हे साहि साधक आत्मचितन के पण-प्रतिज्ञा को पकड । बन्धन तथा जन्म-मरण के देने वाले अनर्थकारी कर्मों का परित्याग कर ।

ज्यूँ माता सुत प्रीति विचारै, अभि अंतरि आनंद उछाह ॥
यूँ नर नाथ नांव ले निसदिन, इणि औसरि यहु वडौज लाह ॥१४॥
निरमै थकौ नाचि मां घरि घरि, कहर न सूझै काल डर ॥
भजि भगवंत अंति पछिताइस, मरसि पछैही हमैं मर ॥१५॥
जैसे कुरंग नाद सुणि श्रवणां, षंड, षंड षंडियौ तन ॥
यूँ सति सुरति साध की हरि सूँ, तव जाइ दरसै रामधन ॥१६॥
ज्यूँ ल्यौ लीन मीन पण पाणी, जौ छाड़ै तौ छूटै देह ॥
यूँ मन सुरति प्रांण गोव्यंद रत, तत्र जांणीजै राम सनेह ॥१७॥
इंद्रादिक कवल लहै लहि लोभी, मधकर ता सुषि रहै समाइ ॥
भार अठार फूल नाना विधि, यहु सुष तजै न वा वन जाइ ॥१८॥
चिंतामणि राम चाहतां लाधौ, निहचल वसत निजरि भरि जोइ ॥
आतम अंतरि अगहि अषंडित, परचा पषै न जांणै कोइ ॥१९॥
कामधेनि करतार सदा संगि, सुमिरण सार इहै सुष साहि ॥
जोगी जती पीर पैकंवर, ज्यूँ वंछै त्यूँ ही फल ताहि ॥२०॥
कलप त्रिछ हरि किलविष कारण, निरमल निकटि करण निरवास ॥
जा सुष कूँ संसार न जांणै, ता सुषि लागि रह्या निज दास ॥२१॥
आलस मकरि राम भजि भ्रमसि, जुरा पहुँती जनम जाइ ॥
वीतै जनमि वलै पछताइस, हरि गाइ सकै तौ ह्वै गाइ ॥२२॥
जैसे फुर्निग मेल्हि मणि चेजै, जोति उजालै करै जाइ ॥
यौं हरि अकल सकल की सोभा, तूँ तिणि विधि हरि स्यूँ ल्यौं लाइ ।२३।

पाठभेद—अभ्य-२। राम-४। ह्वै-१। हरिस्यूं-१। यन्द्रादिक-२। यहि-४। एह-५। विरछ-१-५। मरमसि-४-५। पछतायसि-५। सत-१।

शब्दार्थ—इण औसरि=इस मौके पर। लाह=लाभ। पछताइस=पछतायगा। हमै=अभी, इसी समय। कुरंग=हिरण, मृग। नाद=शब्द, आवाज। जाणीजै=जांणिये, समझिये। इन्द्रादिक=इन्द्रियाँ, मन-प्राणादि। मधकर=मनरूपी भँवरा। ज्यूं वंछै=जैसे चाहे। निरवास=गन्ध रहित, वासना रहित। मकर=माकर, मतकर। भ्रमसि=भ्रमता रहेगा। वलै=फिर। ह्वै=अभी। चेजै=चुगा करे, पूर्ति करे।

गहि गुर ग्यांन जाग जीव जोगि , सतगुर सवद साहि सति वांण ।।
षोलि कपाट आव गढ़ माही , साथी मिलै मिलै दीवांण ।।२४।।

सुर नर असुर सुरांपति कौं सुर , अकल अजोनि अंतरि देव ।।
ता सुषि जागि जांणि जीव लागौ , निसदिन करै निरंतरि सेव ।।२५।।

गहि गुर ग्यांन ध्यांन धरि अंतरि , हीरौ चढ़ियो हाथि हरि ।।
वीसरि जाऊँ तौ वलै न लाभै , काठौ राषूँ रंक परि ।।२६।।

निज नरसिंघ अगहि अभि अंतरि , घटि घटि अघट रह्या भरपूरि ।।
इकलस जोति एक रसि अंतरि , भूला भला वतावै दूरि ।।२७।।

रमताराम परम सुष सागर , गुणां रहत निरगुण निज देव ।।
आनंद रूप अषिल अविनासी , निहचल साध करै नित सेव ।।२८।।

जठरा नहीं जुरा अहुं नही आलस , वप नहिं विथा परम सुषसार ।।
दीनदयाल देव करुणा मैं , है गोविंद निरधारां आधार ।।२९।।

जन हरिदास पति परसि परम सुष , सतगुर सवद पहरि सति भेष ।।
है हरि अकल सकल विस व्यापी , निहचल वसत निजरि भरि देष ।।३०।।

।। इति तीसपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—सत–१ । अकलि–१ । अगेह–१ । गुनां–५ । निरगुन–५ । आणद–१ ।

शब्दार्थ—गढ माही=हृदयरूपी किले मे, गगनमंडल मे । अजोनि=चौरासी लाख योनियों से रहित । हीरौ=मनुष्यजन्मरूपी रत्न । वीसरि जाऊँ=भूल जाऊँ । काठौ=दृढता से, मजबूती से । रंक परि=कृपण की तरह । इकलस=एक रूप । गुणा रहत=सत, रज, तम रहित । निहचल=स्थिर, अचञ्चल । जठरा नही=जन्म नही । अहु=भी, अहङ्कार । वप नही=शरीर नही ।

॥ अथ बारहपदी जोगग्रन्थ ॥

रोटी रटणि रामजी मोटी, आलस मकरि आवछै छोटी ॥
लष चौरासी जूँणि मैं लौटी, षोटा देह छूटसो षोटी ॥
मैं तैं छाड़ि जागि जीव रोटी, कुदरति काल झालसी चोटी ॥
एक कनक अरु कांमणी, काल' दाढ़ ए दोइ ॥
यां दोन्यां विचि आइ करि, वंचै विरला कोइ ॥१॥
तैं मनिष जनम भ्रमतां भल पायो, सो तैं कौड़ी सटे गमायौ ॥
×हटवाड़ै वाजी डहकायो, षरच्यौ कहां कहां तैं पायौ ॥
गुण तजि निरगुण राम न गायौ, भूषौ जाइसि भूषवरि आयो ॥
भूष न मागी मै न गयो, *तिणचर तिण तहां जाइ ॥
सुर गुण तिण सुष छाड़ि करि, पस निरगुण का गुण गाइ ॥२॥
हरि सुष छाड़ि और सुष रीधा, करसी कहा कहा तैं कीधौ ॥
काच सटे कंचन कांई दीधौ, इम्रत छाड़ि जहैर जड़ पीधौ ॥
मन मोती माया मणि वीधौ, मारग छाड़ि कुमारग लीधौ ॥
छाड़ि कुमारग पंथ लै, कांई सहै सिरि भार ॥
वार वार तोसूँ कहूँ, यौही ग्यांन विचार ॥३॥

पाठभेद—दहुवा-१। मिनष-५। अवर-१। जहर-५। मण-५।

शब्दार्थ—रोटी=रोजी, कमाई। मोटी=बडी। आवछै छोटी=आयु थोडी है। जूंणि=जूंण, योनि। टोटी=टोटीड, अज्ञानी, मूर्ख। झालसी=पकडसी। हटवाडै=बाजार, हाट। डहकायो=बहक गया। भूष घरि आयो=नाशवान् पदार्थों की ओर लगा। तिणचर=पशु। पस=पशु, अज्ञानी। रीधौ=रँध गया, गल गया। कीधौ=कीयौ। दीधौ=दिया। जड़=अचेतन। पीधौ=पीया। लीधौ=लिया। कांई=क्यौ। सहै=बर्दाश्त करे।

× हटवाड़ै वाजी डहकायौ=संसार के नाशवान् पदार्थों की विविधता मे बह गया।

* तिणचर तिण तहां जाइ=पशु जहां घास की सम्भावना समझता है, वही जाता है। इसी तरह विवेकहीन मानव-पशु भी ससार के नाशवान्, घर, धन, स्त्री-पुत्रादि पदार्थों की ओर ही लगा रहता है।

इतवत चितवत अवधि विहांणी, त्रिषा न भाजै वोछै पांणी ॥
लालच अगनि रहै लपटांणी , मनसा पकड़ि सहजि घरि नांणी ॥
दहदिसि षड़ा जगाती दांणी , जम दरवारि जाइवौ प्रांणी ॥
नाथ निरंजन अलष विनांणी , रांम भजन की गली न जांणी ॥
राम भजन का भै-नहीं, दूजौ दूजै भाइ ॥
आंन ध्यांन गुर ग्यांन विणि , षोटौ षोटा षाइ ॥४॥
अरि रिप ग्यांन उरि नहिं छाजै, तव लग चिता चोट न भाजै ॥
माया तरवर जीव जाय विराजै, अंध अकंध निलाज निलाजै ॥
गोविंद् कांई न भजै तन साजै , कुदरति काल सदा सिरि गाजै ॥
काल जाल लीयौ फिरै , जीव कहां कूँ जाइ ॥
अंति काल छाड़ै नहीं , षंड षंड करि षाइ ॥५॥
गहि गुर ग्यांन उरहौं काइ नावै, जहां जहां वंध्यौ तहां दुष पावै ॥
दावानलि पैठो पछितावै , होइ पतंग जले जलि जावै ॥
निरभै ग्यांन निराट न भावै , भूषो फिरै घरि घरि भरमावै ॥
भरम छाड़ि गोविंद भजौ , हरि परम सनेही तात ॥
कोई जन जाग्या सो जांणसी , यहु औसर यह घात ॥६॥
भजि रे ! राम पतित हरि पावन, परापरै भै भीड़ चुकावन ॥
प्रगट आप कूँ आप वतावण , पारब्रह्म पष पांच छुड़ावण ॥

पाठभेद—इतउत-३ । च्यता-२ । पावरण-१ । चुकावरण-१ ।

शब्दार्थ—इतवत=इधर-उधर । अवधि=नियत समय, आयु । विहांणी=खत्म हुई, चली गई । त्रिषा=प्यास, भोग की तृष्णा । भाजै=मिटे नही, दूर नही हो । वोछे पांणी=थोड़े पानी से । नांणी=नही लाया । दांणी=कर लेने वाले, दण्डनायक । दूजौ दूजै भाइ=संसार-सुख ही भाता है । अरि रिप ग्यान उर नहि छाजै=कामादि शत्रुओ का शत्रु जो आत्मज्ञान, वह जब तक उर-अन्त करण मे नही आवे । भाजें=हटै, दूर हो । अध अकध=विवेक विचार के नेत्र बिन अन्धा, सोच-समझरूपी सिर से रहित । निलाज निलाजै=लज्जाहीन से लज्जा ही लजाती है । उरि हौ काइ नावै=उरो इधर निवृत्ति मार्ग की ओर क्यो नही आता ? दावानलि=संतापाग्नि । निराट=इच भर भी, किञ्चित भी । भै भीड चुकावन=कालादिभय से रक्षा करने वाला ।

पूरण ब्रह्म माथ मंगि लावण , बरिषा सुनि निरंतरि सावण ॥
नप सप रोम रोम रस पांवण ,
रस पीवै जीवै तिकौ , मन की दुवध्या षोइ ॥
रमिया रम मैं मिलि रह्या , टलै न दूजा होइ ॥७॥
सुरनि संवाहि परमि अविनासी, हरि विणि और सकल जमपासी ॥
दुरमनि काल कहर की दासी , घटि घटि वसै डसै मसवासी ॥
सुर नर असुर सकल की मासी , आणंद अरथ परम सुषरासी ॥
सकल सुषां की मौज हरि , जांणै विरला कोइ ॥
गुण पोषै निरगुण कथै , यूँ हरि भगति न होइ ॥८॥
×त्रिसना षार पार मैं दाधो , पस ज्यूँ वारि परायै वांधो ॥
पासो काल वहौत विधि पाधो , रांम भजन को भेद न लाधो ॥
पूरो नहीं अधूरो आधो , सदगति होसी गाइ रे माधो ॥
माधो मनां विमारिमां , हरि परम सनेही राम ॥
हरि तरवर सुष छाड़ि करि , कांई सहै सिरि घाम ॥९॥
माथ संवाहि जुरा चलि आई , स्याह सेत सजन दुषदाई ॥
भूजै सीस ईस मजि भाई , षड़चर रषै पड़ै मति षाई ॥
गहि गुर ग्यांन घ्यांन धरि धाई, हरि हरि सुमरि सुमरि सुषदाई ॥
सकल सुषां की मौज हरि , वार पार मधि नांहि ॥
देह गेह दुनियां तरक , प्रांण गरक ता मांहि ॥१०॥

पाठभेद—वरषारुति-१ । नषसिप-१ । आनद-४-५ । कहै-५ । बहुत-१ । घ्याई-२-४ ।

शब्दार्थ—संवाहि=संभाल । डसै=काट ले । मसवासी=मच्छर की तरह । षार=ऊसर भूमि । दाधो=जला । वहौत=विविध प्रकार से, काम, क्रोध, लोभ, मोहादि द्वारा । पाधो=पाया । घाम=ताप, सन्तापरूपी धूप । षड्चर=पशुवृत्ति वाला मनुष्य । धाई=दौडकर, अनुरक्त हो ।

× त्रिसना षार षार में दाधो=विविध भोगवासना की षार मे पड सन्ताप की अग्नि मे दग्ध होता रहता है । पशु ज्यूँ वारि परायै वांधो=जैसे पशु दूसरे के द्वारा बँधा रहता है उसी तरह तू भी विनाशी भोग-पदार्थों के मोह में बँध रहा है ।

होसी तन छार भार तजि लोई , हरि विणि सगौ न सूझै कोई ॥
गाफिल जागि अभागि न सोई , सास उसासे उर मल धोई ॥
या गति जाणैं विरला कोई , कै जासूं हरि किरपा होई ॥
हरि भजि विष तजि नृमल होई, ×उनमनि रहै भरम सब षोई ॥
राम संभालि परम सुष सोई , काल सीस पर निस दिन जोई ॥
मन उनमनि लागा रहै , पीवै निरमल नीर ॥
त्रिवेणी तटि न्हावतां , जमका झड़ै जंजीर ॥११॥
भजि भगवंत करम करि कांने , तजि अभिमान इहै हरि मांने ॥
मन गहि सुरति राषि प्रसथांने , हरि परगट गाड़ गाड़ मा छाने ॥
सुष संसार धारि तजि आनै , पोथी प्राण राम लिषि पानै ॥
पोथी प्राँण संभालि करि , नाँव निरंजन लेह ॥
जन हरीदास हीरा जनम , कौड़ी सटे न देह ॥१२॥

॥ इति बारहपदी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बावनी जोगग्रन्थ ॥

बावन अषिर लोक सब , सुर नर लोक अनंत ॥
घरयास धूँवा जाईगा , अषै अषिर भगवंत ॥१॥
सिध साधक जोगी जनक , सुर नर कहैं विचारि ॥
ये सब करि सब तैं अगम , तहां कछु जीति न हारि ॥२॥

पाठभेद—तज्य-२ । निरमल-३-५ । अभ्यमान-२ । प्रस्थाने-२ । जन्म-४ । अक्षर-४-५ ।

शब्दार्थ—सास उसासे=रेचक पूरक की क्रिया द्वारा । काने=किनारे । घरयास= बनाया हुआ, जगत । धूँवा जाइगा=समाप्त होगा, नष्ट होगा ।

× उनमनि रहै भरम सब षोई=संशय-विपर्यय आदि सब भ्रान्तियो को दूर कर ध्यान की सहज अवस्था प्राप्त कर ।

मुसलमान हिंदू मवै, वहौ विधि करैं विमेक ॥
दोइ नाम दीमैं दुरस, करता सवका एक ॥३॥
×सवद तहां मंचर पड़ै, संचरि सरवस जाइ ॥
निह मवद निरभै वसत, फेरि तहां मन लाइ ॥४॥
ऊँकार आदि है माया, षंड-षंड करि रूप वणाया ॥
जलि थलि जहां तहां रही समाय, माया षाजै माया षाइ ॥५॥
कका कसर असुर चलि आया, जुध कीजै गुर आप जगाया ॥
गहि गुर ग्यांन ध्यांन उरि धारौ, मारणहार महारिप मारौ ॥६॥
षषा षवरि षलक की पाई, सींधूड़ै वाजै सहनाई ॥
ठाई ठीकी पड़ै लड़ाई, साथी हरि साथी जीत जुध भाई ॥७॥
गगा गरव कहौ क्यौं कीजै, निस दिन आव घटै तन छीजै ॥
वाजै रिण तूर न वाई दीजै, अरि दल जीति अगम गढ़ लीजै ॥८॥
घघा घात वात एक करियै, भवसागर भैंचकतैं डरियै ॥
राषै राम तिसी विधि रहियै, आसा छाड़ि परम गति लहियै ॥९॥
नना नाथ हाथि मन राषौ, मुष तैं मिथ्या सवद न भाषौ ॥
सुषमनि फेरि वेरि घरि आवौ, गंग जमन मधि मंढी वंधावौ ॥१०॥

पाठभेद—वहु-१। विवेक-५। दुरसि-३-४। म्यथ्या-२।

शब्दार्थ—दुरस=नीरस, दुःख देने वाला। संचर=चेतन जड से मिला हुआ। अविभक्त। माया षजै माया षाइ=जो माया मे लगे हैं-भोगते है, उनको अन्त मे माया खा लेती है। कसर असुरि=अज्ञानमय असुर। महारिप=काल। षलक=संसार। सीधूडे=युद्ध गीत, रणक्षेत्र में। ठाई ठीकी=निशाने पर वार हो। न वाई दीजै=टाल-मटोल न करना। गंग जमन मधि=इडा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना मे।

× जब तक साधना वाणी के शब्द से की जाती है, तब तक वृत्ति मे धारणा बनती नही है, ऐसी साधना मे लगे रहे तो सरवस जाइ-जीवन निष्फल चला जायगा। साधना मे वाणी का व शब्द का सहारा त्याग कर वृत्ति मे ही उपास्य की धारणा करना तभी मन, प्राण, वृत्ति का समन्वय होगा और सहज दशा की प्राप्ति होगी।

चचा चूक पड़त है भारी , कब 'भजस्यौ' अब भजो मुरारी ॥
भटकौ कहा भटक भी मरणां , चितरणहार अगह उरि धरणां ॥११॥
छछा छाप अगम की वांचो , निहचल 'व्है' 'निरभै' रंगि राचो ॥
पासा 'हाथि' आथि छक सारी , अब चूकौ तौ बाजी हारीं ॥१२॥
जजा जागि जुरा दल आया , सुर नर असुर पागड़ै लाया ॥
वासै काल जुरा भै डरणां , निरगुण भजौ अभषि भषि जरणां ।१३।
झझा झरै मरैगा सोई , 'याह' वातां सिध साध न होई ॥
भजि भगवंत छाड़ि सुष दूजा , 'इंहि' विधि करौ नाथ की पूजा ॥१४॥
नना नाहर कै संगि छाली , जवक भेडर टलै नहिं टाली ॥
चौड़े बैठी रहै निराली , तिण देवोटन ता कै लाली ॥१५॥
टटा अटल तहां टलि रहिये , 'परघरि' वसि परदुष 'क्यौं' सहिये ॥
चिंता वसै डसै घर मांही , तब लग निज घर 'लाधा' नांही ।१६।
ठठा ठिकविण ठौड़ न लहिये , फूटै मनि फीटा क्यूँ वहिये ॥
जांणि जहर इंम्रत करि पीजै , काच सटै कंचन 'क्यूँ' दीजै ॥१७॥
डडा हड़ हड़ क्यौं हँसियै , सापणि का मुष मांहि वसियै ॥
छल बल करि षासी कै षाधा , निगसांई निगुसवाँ लाधा ॥१८॥
ढढा 'ढह्या' कूप ढिग रहिये , कूप ढहै तब तौ संगि ढहिये ॥
विवधि 'विजोग' विपति संगि सहिये, तौ दारण 'दोजगि' दुष सहिये ॥१९

नोट—'   ' कॉमों के मध्य मे दिये गए शब्दो को पाठभेद समझे।

पाठभेद—भजिस्यौ–१-३ । होय–५ । नृभै–५ । हाथ्य–२ । यां–५ । अंहि–१ । यहि–४ । प्रघरि–१ । क्यूँ–२-५ । लाभै–५ । क्यौं–१-३ । ढहै–१ । जोग–२-३-४ । दोज्यग–२ ।

शब्दार्थ—चितरणहार=जगत का कर्त्ता । आथि=आखिर, अन्त मे । पागडै लाया=किनारे लाया । वासै=पास ही, समीप ही । झरै=मन-इन्द्रियो को भोगो मे लगायेगा । ठिकविण=उचित स्थान, ठीक ठिकाना । फीटा=लज्जा रहित । हड हड=ठहाका मारकर । सापणि=मृत्यु । निगसाई=बिना मालिक का । निगुसवाँ=निर्धनी । ढह्या कूप=नाशवान् शरीर । ढिग=पास, समीप । विजोग=विछोह, जुदाई । दारण=दारुण, भयङ्कर ।

णणा रति मांही रस पाया, पीवत छक्या सहज घरि आया ॥
अहि वोढण ज्यूँ तजि गुण काया, भेदी जाइ अभेद समाया ॥२०॥
तता तात पिता सुत सोधौ, मूल कँवल मधि पवन निरोधौ ॥
सुत कै हेति पिता घरि आवै, निरभै थकौ निड़र घर पावै ॥२१॥
थथा थाकि 'कुपहि' करि कांनैं, चाल्यौ सुपहि छाड़ि रह्यौ छानै ॥
करसि काल्हि आज त्यूँ कीजै, निरपष ह्वै निरभै पद लीजै ॥२२॥
ददा दुसह गया 'निति' 'दहिता', जहां तहां आइ पिसण कर गहता ॥
सत रज तम दुरभष दुष सहिता, निरभै भया मिल्या हरि रहता ॥२३॥
धधा ध्यांन धणीं कौ धरियै, 'मिरतग' छाड़ि अमर वर वरियै ॥
गया कुसाथी साथी आया, निरभै नाथ निरंजन पाया ॥२४॥
नना नांव निरंतरि लीजै, सिरकै सटै तुरत सिर दीजै ॥
साह मिलै तिंह घाट मिलीजै, सौदौ घटै न पूँजी छीजै ॥२५॥
पपा पिसण देह गुण जारण, घात सहत आपा घरि मारण ॥
हरि 'परिहरि' विसतार न कीजै, 'परवसि' पड़ि 'परदेस' वसीजै ॥२६॥
फफा फेरि सारि सब जोई, हरि विणि सगौ न सूझै कोई ॥
तजि अभिमांन राम भजि लोई, साह विणि सूनी सेझ न सोई ॥२७॥
बबा बोल कुबोल न कहियै, राषै राम तिसी विधि रहियै ॥
सुष 'संसार' निजरि सुष नावै, घरि जायाँ घर की तब पावै ॥२८॥

पाठभेद—कुपह्–४-५। नित–१-५। दहता–१-५। सहता=१–५। मृतग–४-५। प्रहरि–१। प्रवसि–१। प्रदेस–१। संसारि–१।

शब्दार्थ—अहि वोढण=सर्प की केचुली की तरह। तात=हे मन! पिता=परब्रह्म। सुत=जीवात्मा। सोधो=तलाश करो। थाकि=थककर, हैरान होकर। कुपहि=कुमार्ग, नाशवान् पदार्थों की प्राप्ति में लगना। सुपहि=निवृत्ति मार्ग। छानै=गुप्त, छिपा। दुसह=असह्य। दहिता=जलाता। मिरतग=मरा हुआ, विनाशी। अमरवर=अविनाशी परब्रह्म। कुसाथी=काम-क्रोधादि। साथी=हितैषी मित्र, शील, संतोष, त्याग, वैराग्यादि। तिंहि घाट=उसी तरह। पिसण=लुटेरे, लोभ, मोह, अहंकारादि। घात सहत=वार सहते। नावै=नाममात्र का। जायाँ=गये, पहुंचे।

ममा मरम नदी क्यौं वहिये , गहि गुर ग्यांन कनारै रहिये ॥
आलस छाड़ि अवधि तन छीजै , राम दया दरसै त्यूँ कीजै ॥२६॥
ममा मोह किसी विधि करिये , मरणा सही इहै उर डरिये ॥
'औघट' छाड़ि 'घाटि' जाइ तरिये, चित वित घटै न पूठा फिरिये ॥३०॥
ममा मधि डरै मरैगा सोई , विणि मूँवा सिध साध न कोई ॥
अगम उरक गुरगमि सिष वांचै , सवद विचारि मिलै सुष सांचै ॥३१॥
यया या विणि अवर न दूजा , मन गहि पवन करौ हरि पूजा ॥
दीसै जिकौ सुतौ 'सव' माया , फल ताकौ छाड़ौ फल छाया ॥३२॥
जजा जोग मूल जो जांणै , इन्द्री मन प्रांण एक घरि आंणै ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै , परचा लागै जोगी जीवै ॥३३॥
ररा मन राषि रजा मैं रहिये , विणि हरि रजा 'वहोत' दुष सहिये ॥
राम विसारि पसरि दुष पीया , दिन दस पांच कहा जो जीया ॥३४॥
लला लहै गहैगा सोई , जहां 'देषूँ' तहां अवर न कोई ॥
गावणहारा कहा कहि गावै , आदि अंति कोइ मधि न पावै ॥३५॥
ववा अगम अरथ हम पावा , डरि डहक्या उरहि डरि षावा ॥
तरवर अगह तहां करि वासा , देषै अवधू अगम तमासा ॥३६॥
ससा सुष मैं सींगी वाजै , परम उदार अरथ उरि छाजै ॥
पद 'निरवांण' निरंतरि जागै , गढ़ि संचर पड़ै न तसकर लागै ॥३७॥

पाठभेद—अवघाट-१ । घाट-३-४ । सति-१ । बहुत-१ । देषौं-१-५ । नृवांण-२ । निरवान-५ ।

शब्दार्थ—किसी विधि=किस तरह । चितवित=चिन्तनरूप धन । पूठा=वापिस, पीछा । या विणि=इसके बिना । अवर न=और, दूसरा । परचा=परिचय, जानकारी । डहक्या=बौराया ।

३१वी साखी—मधि डरै-विचार से जन्म-मृत्यु दु.ख से डरेगा वही मरेगा, जीवन्मुक्त हो सकेगा । बिना जीवित-मृतक हुए साधक सफल नही हो सकता । मन-बुद्धि की पहुँच से आगे जो आत्मतत्व है वह गुरु उपदेशानुसार अपने अन्तर मे समझे । जो साधक गुरुनिर्दिष्ट उपदश को विचारेगा, तदनुसार साधना मे लगेगा वही चिरन्तन सुख की प्राप्ति करेगा ।

षषा षेप लगी घरि आवै , मोवैं रषै चोर मति लावै ।।
निरभै वसत नफौ घरि आवै , तव लगि मैं तैं मूल गमावै ।।३८।।

ससा समझि विना दुष भारी , गाफिल पर्यौं मरै छकि सारी ।।
चेतन 'रहै' तौ चोट चुकावैं , पासा हाथि आथि घरि आवै ।।३६।।

हहा हेत सहत सर लागा , वसंता षलै तिके षल भागा ।।
सतगुर वोट चोट नहिं काई , 'सनमुषि' रहि लावै त्यूँ लाई ।।४०।।

'षषा' षूनी मारि मनाया , मैवासी करि रैति वसाया ।।
अविनासी निरभै सुष दीया , करता जोर जेर सो कीया ।।४१।।

लला लालच लोभ न करियै , चालो देषि धणी भै डरियै ।।
करम 'कसर' छाड़ो छकि छाया, अवगति भजौ अवधि दिन आया ।४२।

वावन 'अषिर' पंडित कहै , सवद सवद का संचर लहै ।।
संचर छांड़ि निसंचर होइ , जन हरीदास ता समि नहिं कोइ ।।४३।।

वावन अषिर पढ़ै व्यौपाई , अषिर अगम तहां रहै समाई ।।
जन हरीदास निरभै तव होइ , उदै 'अस्त' मैं तैं नहिं दोइ ।।४४।।

।। इति बावनी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—होइ–५ । सनमुष–५ । क्ष-क्षा–४-५ । कसरि–३ अक्षर–३-४-५ । असत–२-५ ।

शब्दार्थ—सोवे=अज्ञाननिद्रा मे । रषै=रखवाली करै, सावधान रहे । छकि= मौका । हेत सहत=प्रेमाभक्ति सहित । सर लागा=गुरु उपदेशमय वाण लगा । वसता= निवास करता, रहता । षलै=षल, दुष्ट, अहङ्कारादि, देहरूपी खलिहान मे । षूनी= खोटापन, विषयी मन । मारि मनाया=मारि-निरोध कर अन्तर्मुख होने को मनाया, सहमत किया । मेवासी=गढ़पति । रैति=अन्तर्मुख बनी इन्द्रियरूप प्रजा । धणी भै= स्वामी के भय से । संचर=विनाशी । असंचर=अविनाशी, सत्य । व्यौपाई=सम्यक् समझकर । उदै अस्त=जन्म-मृत्यु, आना-जाना ।

॥ अथ ×सूरसमाधि जोगग्रन्थ ॥

'इहां' बमेक 'वहां' मोह दल, षेत बुहारचा देष ॥
'ऐ' मारैं कै वै मारि 'ल्यैह', ※संचर रहे न सेष ॥
साथ दोउ दिसा देषि जै मारिषौ, बात थोड़ी हवै लाभर्मा पारिषौ ॥
गैंद गाजै गुड़ै कहर मैं भींति भौ, संग्राम जीतै तिकै सीम 'ग्रै' सॉवतौ ॥
मिल्या सबला मबल पलै बाजसी आज तौ, +बापड़ा बड़ बड़ै रहै
औ गाढ़ ज्यौं ॥
जन हरीदास आसा मुषी, मबै कहावै सूर ॥
अंति निवेड़ा होवसी, जब रिण बाजै तूर ॥१॥
तूर बाजै भलां आजि रिण मारका, नालि गोला जिरह टूक व्हैं मारका ॥
मरद मूँछाल रिण देषि ददकारता, =भींछ बाथां पड़ै बार नहीं पारका ॥
जोर तोलै तुलैं भार 'तन' धारता, आज देषिये दुरत दोषीयां मारता ॥
तेग झड़फ बरछी बहै, मार मुँहे मुँहि पांहि ॥
अंतरि दीसै बिगसता, करि तोरण बंदण जांहि ॥२॥

पाठभेद—यहाँ–२। उहाँ–१। यै–१। ल्यौ–४। लौ–३। लै–५। दै–१-५।
नन्य–१।

शब्दार्थ—षेत=रणभूमि। बुहारचा=साफ किया हुआ। मारि ल्यैह=मार लेंगे। सारिषौ=बराबर, समान। पारिषौ=परीक्षा। गैंद गाजै=हाथी चिघारते है। कहर भै=मृत्युभय। सावतौ=सामन्त, अति शूरवीर। पलै=युद्धक्षेत्र मे। तूर बाजै=रणभेरी बज रही है। नालिगोला=तोपे-गोले दग रही हैं। जिरह टूक व्है सारका=खरे लोहे के बख्तरो के टुकडे हो रहे है। ददकारना=ललकारना। तेग झडफ=तलवारो की झडप हो रही है। बिगसता=प्रसन्न होता।

× सूरसमाधि जोगग्रन्थ मे युद्ध का रूपक लेकर मोह तथा विवेक (ज्ञान) के संघर्ष का निरूपण है। वीररस के निरूपण मे पिंगल की अपेक्षा डिंगल अधिक उपयुक्त रहता है। महाराज हरिदासजी ने इस लघुग्रन्थ मे अनेक डिंगल शब्दो का प्रयोग किया है। इस ग्रन्थ को ठीक से समझने के लिए इसके आगे के ग्रन्थ को साथ-साथ पढा जाय तो भाव समझने मे सुविधा होगी।

※ संचर रहे न सेष=इसमे किसी तरह का फर्क नही है।

+ औगाढ ज्यौ=युद्धभय से जो छिपे हुए है, वे ही झूठी शेखी बघार रहे है।

= भींछ बाथां पड़ै=भिचते हुए शत्रु-समूह मे घुसे जा रहे है।

परणिवानौं षड़ा सार मान्हा चढ़ै, पाइकां पाइकां आज पडणा पड़ै ।।
×वागलै आप भल फौज सनमुषि षड़ै, *ताकातां हांकता जोध हांका करै ।।
आज पैला दलां देषि मारै मरै, +गुरज वाजै सिरां पिसण धुक धड़हड़ै ।।
=सौंण अकारा आज का, पड़ै मडां सिरि मार ।।
सवकों दीसै म्हालता, गहि • 'पांचू' हथियार ।।३।।
आपणैं आपणैं गहि भरचा वोलता, घणा अमलां किया आंषि नहिं षोलता
()षारकां वाइकां 'अवर कूँ' छोलता, आज का द्यौस नैं षडग सति मोलता ।।
मारधारां 'मुँहि' देषि तनतोलता, मूँछ गहि सापुरिस न्याइ हसि वोलता ।
पड़िया लग कर दाहिणैं, वांवै भुज गहि ढाल ।।
आप अषाड़ै आपकै, सव कोई दीसै 'माल्ह' ।।४।।
सकल साचै मतै दलै दोषियां दला, सूर रिण आहुड़ै षेत षेसै षलां ।।
तीर गोलां वहै वांण छूटै छड़ां, घुरै नीसांण सल मांण मोटा भड़ां ।।

पाठभेद—पाचौ-१-५ । और कूँ-५ । मही-२-३ । माल-१-५ ।

शब्दार्थ—परणिवानौ=वरण करने को, मृत्यु को आलिगन करने को। वागलै=बागडोर ले, नेतृत्व सँभाले। मडां=सिपाही, पैदल। गहि भरचा=गर्व से भरे। म्हालता=उछलते हुए। सार धारां=तलवार की धार मे। सापुरिस=निडर योद्धा। पडिया लग=शैल, खड्ग, तलवारादि। माल्ह=बडा, प्रधान। दबै=मर्दन करे। रिण आहुडै=रण मे उमङ्ग मे जाय। षेत षेसै षलां=शत्रुओं से संघर्ष कर रहे है। घुरै नीसाण=नौबतें गम्भीर-घोष करती है, नीसाण—ध्वज फहरा रहे है।

× वागले आप भल फौज सनमुषि षडै=स्वय विवेक सेनापतित्व करते हुए अपनी फौज के सावन्तों का संचालन कर रहे है।

* ताका ताहा कता जोध हांका करै=शत्रु की ओर ताकते हुए शूरवीर गर्जना के साथ बढावा दे रहे हैं।

+ गुरज वाजै सिरां पिसण धुक धड हुडै=शिर पर खड्ग तलवारे बज रही है, पिसण—शत्रु भयङ्कर प्रहारो से धूज उठे है, घबड़ा गये है।

= सौंण अकारा आज का=चपल घोड़े जो आकरे-तेजीवाले है, धावा कर रहे हैं।

() षारका बाइका अवर कूँ छोलता=कठोर वचन कहते हुए शत्रुओं को तिरस्कृत कर रहे हैं।

×जांणि वणराव चूरै चरै वणचरां,*दामणि झडां विधि सार धूकै धडां ॥
पड़ग लिये 'षत्री' षसै, मँझ्या महारिण मांहि ॥
=लोह घरट घमसांण मुषि, पड़ै स पींस्या जांहि ॥५॥
तौ वाजतै लोहडै पाव मांड्या षरा, काइरां कंदरे गया छिपि 'भ्रंषरां' ॥
षारकौ मारकौ सूर ठावां नरां, घणां चूड़िला 'भाजसी' आज काहू घरां ॥
वीजली तेग कड़कै पडै कुंजरां, जोग संग्राम जोगी 'जुटै' पंजरां ॥
धूम धाम वाजै धका, वापैता मुँहि लाज ॥
अणी मिल्या मैंदान, मंड्यो अषाडो आज ॥६॥
संग्राम जीतै 'जकै' भेद लै यूँ करै, मछर छाडै नहीं पैंड साम्हा मरै ॥
चंद सूरिज मिलै दुरजन षमै षडहडै, जम दाढ़ धमकै उरां करि मूँग
अवला छडै ॥
सरप की जीभ ज्यूँ परै अखीं झलका करै,
के लड़े के लड़षड़े थश्या उलटा पडै ॥
मांण न मूकै आपणो, मलै परायो मांण ॥
ऊपर वाडै वोलतां, वोल्या तै परवांण ॥७॥

पाठभेद—षत्री-५। झंकरा-५। भाजस्यै-१। जुडै-४। ज्यकै-२।

शब्दार्थ—षसै=लडै। षरा=सच्चा शूरवीर। काइरा कंदरे गया छिपि झंषरा=डरपोक भग-भगकर दराजो मे छिप गए। घणा चूडिला भाजसी=बहुत सी स्त्रियो के आज चूड़े फूट जायेंगे। तेग=तलवार। कुंजरा=हाथियो पर। जुटै=इकट्ठे हो। वापैतां मुंह लाज=अपने वंश की लाज है। अणी=फौज। मछर=क्रोध। उरा=छाती पर। परै=दूर। माण न मूकै=अपने मान को छोड़े नही। मलै=तहस-नहस कर दे।

× जिस प्रकार वन मे विचरण करने वाले वनचर वन को चूंटते-खाते रहते है, इसी तरह शूरवीर शत्रु की फौज का सहार कर रहे है।

* बिजली की चमक की तरह तलवारे चमक रही है—शत्रुओ के शिरो पर पड रही हैं।

= जो भयङ्कर शस्त्रो की मार मे पडता है वह पिस जाता है जैसे, घरट मे वस्तु पिसती है।

मांगि धक धूणि भुज हाथ मुषि फेरतां, आज का 'दिवस' की वाट नित हेरतां ।।
कोट दौडे बुरिज दुसमणाँ दलाँ पेरताँ, 'भौमि' वापैतणी देषिजे फेरतां ।।
×जेर जोगी मरद आपणी जेरतां, जन हरीदास साहब सनमुषि सही
सूर तिणि वेरका ।।

सूर समाधि अगाध व्रत, जन हरीदास मन मांहि ।।
पैलानैं भाजैं भलां, आपण 'भाजिन' जांहि ।।८।।

कै मारैं कै मरि मिटै, सिर दे लेह निज ठौर ।।
जन हरीदास सूरा तिको, काइर का मत और ।।

काइर टलि कानैं चलै, डरता रहै दुराइ ।।
जन हरीदास ता पतित का, दरसण करैं बलाइ ।।

सूर तहां धीरज सदा, मनि आतुरता नांहि ।।
हैदल गैदल देषि करि, झीकै झाझां मांहि ।।

जन हरीदास मसतग रह्या, हरि को सौंप्या जांणि ।।
दूजा माथा सिरि पड्या, वैली षैंचा तांणि ।।

तीर तुपक 'गोली' वहै, विनसि जाइगा चाम ।।
सूरां का मैदान मैं, कहा काइर का काम ।।९।।

।। इति सूरसमाधि जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—धोस-३-४। भौम्य-१। भाज्यन-५। वरछी-३।

शब्दार्थ— कोट दौडे=किलेको तोड दे। वापैतणी=बपौती की, वंश-परम्परा को। काइर टल काने चले=डरपोक टलकर किनारा लेते हैं। दुराइ=छिप कर।

× साधक, योगी और मर्द अपनी कमियो को हरा रहे है।

॥ अथ सूरसमाधिअर्थ जोगग्रन्थ ॥

मोह कहै बमेक सूँ, वैर किया सुष कौंण ॥
मेरी वसुधा ऊपरै, तूँज करत है गौंण ॥१॥
आप सराहे आपकूँ, कौंण वड़ाई एह ॥
तेरी वसुधा तूँ घणी, तौ तूँ सिर साटै देह ॥२॥
जीवरपी जरणां इहां, 'उहां' आसा की आरथि ॥
मोह बमेक दोन्यूँ मरद, आइ मँड्या भारथि ॥३॥
इहां तूर सतगुर सबद, राग दोष वहाँ तूर ॥
जन हरीदास काइर डरै, सूरां दूणौं नूर ॥४॥
सील गयंद जहां अणसरै, काम 'गयंद' मिटि जाइ ॥
जन हरीदास ता घटि मदन, 'वहौड़ि' न गरजै आइ ॥५॥
असलि ग्यांन जा घटि उदै, अंतरि प्रगटै आइ ॥
तहां जन हरीदास अग्यान गत, लोभ कहां ठहराइ ॥६॥
मांनि अमांनि हसती 'उहां', इहां दया गरीबी देष ॥
जन हरीदास 'चौदंत' भया, संचर 'रहै' न सेष ॥७॥
उहां कुबुधि नालि दारू गरब, गोला मैं तैं मांहि ॥
बमेक साथि सनमुष लड़ै, मार मुँहै मुँहि पांहि ॥८॥
इहां सुबधि नालि दारू दरद, गोला विरह अपार ॥
जन हरीदास काइर डरै, पड़ै भडां सिरि मार ॥९॥
पाप पुनि जोधा वहां, इहां जोधा वैराग ॥
जन हरीदास निरभै मतै, 'दुहूँ' उपाड़ी वाग ॥१०॥

पाठभेद—वहाँ–१-४ । गइंद–२ । बहुडि–१ । वहाँ–२-५ । चवदंत–१ । रह्या–१-५ । दहौ–५ ।

शब्दार्थ—गौंण=गवन, जबरन अधिकार । साटै=बदले मे । जीवरपी=ढाल । भारथि=संग्राम, युद्ध । तूर=तुरही, रणभेरी । नूर=चमक, तेजस्विता । मदन=काम । अग्यान गत=अज्ञान नष्ट हुआ । चौदंत=आमने-सामने । मेष=बाकी । नाल=तोप । भडां=सैनिक, योद्धा । उपाड़ी=सँभाली, बागडोर–नेतृत्व सँभाला । वाग=लगाम, मेनापतित्व ।

इहां भजन गुरज उहां 'त्रिविधि' रस, षेत मंड्या षल आज ॥
जन हरीदास काहू घरां, आज निकंटो राज ॥११॥

कहै संतोष असंतोष सूँ, अपणी अपणी टेक ॥
तूँ तौ चाकर मोह कौ, मेरे धणी वमेक ॥१२॥

अणमैं वांणी वाण इहां, उंहां मनोरथ तीर ॥
मोह वमेक 'धौंचक' करैं, काइर धरै न धीर ॥१३॥

इहां हेत षड़ग षेडी षिमां, उहां चिंता ढाल षड़ग छोह ॥
जन हरीदास लोभी नरां, आज वाजिसी 'लोह' ॥१४॥

इहां विचार अभिमान, उहां घरट दहुँ दल मांहि ॥
महाजोध मांजै घरट, काइर पीस्यां जांहि ॥१५॥

इहां तप तरवारि 'त्रिसना' उहां, पड़ै चोट सूँ चोट ॥
सूरवीर साचै मतै, काइर ताकै वोट ॥१६॥

इहां तत्त तरवारि करि, उहां चाहि तेग करि लोइ ॥
इहां षंजर धुनि ध्यान करि, उहां षंजर गुण दोइ ॥१७॥

इहां जमदाढ़ करि जोग की, उहां जमदाढ़ गुण देह ॥
ताती सीली दोंइ मिली, चंद सूर गुण 'येह' ॥१८॥

इहां सेल अनहद सवद, 'विवधि' सवद उहां सेल ॥
मोह 'वमेक' मारैं मरैं, मंड्या पहम परि षेल ॥१९॥

पाठभेद—त्रिवधि–२-४। त्रिवध–४। घूँचक–५। लौहि–४। तिसना–१। त्रिष्ना–३। एह–४-५। विविधि–१। विमेक–१।

शब्दार्थ—निकंटो=निष्कण्टक। टेक=हठ, आग्रह। चाकर=सेवक। धौचक=उत्पात, ऊधम। षेडी=इस्पात, खरा लोहा। छोह=क्रोध, गुस्सा। लोह=विविध शस्त्र। महाजोध=परम शूरवीर। भाजैं=तोड़े, मोरचा भङ्ग करे। पीस्या=पीसते, नाश करते। चाहि=तृष्णा, इच्छा। तेग=तलवार। गुण दोइ=रज, तम। जमदाढ़ि=मृत्यु, काल।

मन राजा काया सहर, मोह बमेक सुत दोइ ॥
जन हरीदास 'जीत्या' बमेक, मोह गया मुँह गोइ ॥२०॥

॥ इति सूरसमाधिअर्थं जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवर्त्ति-परवर्त्ति जोगग्रन्थ ॥

सपत धात की सौंज सब, अहुँ गिर 'परगट' कीया ॥
नौ दरवाजा राषि, त्रिगुण तहां चूना दीया ॥१॥
पांच तत सति छोह, महा सुन्दर पुर काया ॥
नाना बुरज अनेक, चित्र कांगुरा बणाया ॥२॥
नौ सै पाई कोट, पाँच 'पायक' अभिमानी ॥
महल 'वहैतरि' मांहि, दोइ वारूँ पटरानी ॥३॥
चित्त चंचल परधांन, वात नाना विधि वांनी ॥
रंग रोम रस साहि, मन राजा रज ध्यानी ॥४॥
आपै का सिरि छत्र, 'अहूँ' आवध कर मांही ॥
'परवै' सेती प्रीति, नेह निरवै सूँ नांही ॥५॥
परवै करै सिंगार, हाँक दे 'लोक' हँकारै ॥
निरवै रहै निरास, नहीं काहू कै सारै ॥६॥

पाठभेद—जीता-१ । प्रगट-१ । पाइक-३-४ । वहैतर-३-५ । अहं-१ । प्रवै-१ । लोग-१ ।

शब्दार्थ—गोइ=छिपा कर । सपत धात=रसादि सात धातुओ से बना शरीर । अहुँ गिर=अहङ्कार रूपी पहाड़ । सति छोह=सत्य, क्रोध । नौ सै षाई=नौ सौ नाडियाँ । पाच पाइक=पञ्चज्ञानेन्द्रिय प्रधान सेवक । वहैतरि=कोठे । पटरानी=महारानी, वृत्ति बुद्धि दोनो । परधान=मंत्री, प्रधान सलाहकार । रज ध्यानी=राजधानी, देहरूप राजधानी । परवै=प्रवृत्ति । निरवै=निवृत्ति मार्ग ।

निरवै पुत्र वमेक, सुवधि कुलवंती नारी ॥
सील संतोष परधान, ग्यांन चाकर षगधारी ॥७॥
सरधा कै वर सील, संतोष कै 'सुमता' नारी ॥
षिमा वरयो वर ग्यांन, विचार वारूँ दरवारी ॥८॥
परवै कै सुत मोह, कुवधि सूँ फेरा लीया ॥
कांम क्रोध परधांन, लोभ अग्यांन 'सँगि' कीया ॥६॥
रुति वरयौ वर कांम, क्रोध 'हंसि' 'हिंसा' परणी ॥
आसा कै वर लोभ, अग्यांन कै चिंता घरि घरणी ॥१०॥
'चौसटि' चेड़ी साथि, छकी अपणै रंग राती ॥
दुष सुष दोइ दरवार, तहाँ षेलै मदमाती ॥११॥
मनसा मनहरै, चरै नानाविधि षंडै ॥
काम क्रोध 'अभिमान', तहाँ फिरि आसण मंडै ॥१२॥
कुवधि घटा घरहरै, षिंवै नानाविधि गाढ़ी ॥
लोभ लूँव झड़ मंड्या, मोह की सेन्या ठाढ़ी ॥१३॥
महा मनोरथ राति, 'तहाँ' कछु सूझै नांही ॥
सांसो 'हंस्या' चित्त, षुसी षेलै ता मांही ॥१४॥
सोग विवोग अभिमान, 'तहाँ मिलि षेलै सारी ॥
देषि प्रांण थरहरया, उरयां मै मान्या भारी ॥१५॥
तहाँ विचार वमेक बुलाया, सील संतोष ग्यांन संगि आया ॥
वीड़ा सव काहू कूँ दीया, हाथ पसारि षुसी 'हुइ' लीया ॥१६॥

पाठभेद—सुमिता-१। संग्य-२। हँस्या-२-३। चौष्टि-५-४। परघान-५। हिसा-१। अंहू-३-४। व्है-१।

शब्दार्थ—पग धारी=खड्गधारी। वर=पति। वरयो=अपनायो, पति स्वीकार कियो। वारूँ=न्यौछावर करूँ। दरवारी=दरबार के प्रमुख सदस्य। रुति=रत, आसक्त। परणी=व्याह किया। घरणी=गृहणी, पत्नी। चौसटि चेडी=चौसर-कला मे सहेलीरूप मे। षंडै=विभक्त करे। मडै=रोपे, लगावे। षिवै=चमकै, प्रतीत हो। गाढ़ी=गहरी, खूब। ठाढी=मजबूत। सांसो=संशय, भ्रम। हंस्या=हिंसा। थरहरया=कम्पित हुआ। वीडा=जिम्मेदारी उठाना, उत्तरदायित्व लेना।

सेन्या मोह सबल है भाई , ज्यूँ जांणौ त्यूँ करौ लड़ाई ॥
कहै विचार प्रथम जुध मेरा, मारि क्रोध मुक्ता द्यों डेरा ॥१७॥
संक पंक भय नांही मेरे , मारूँ काम क्रोध के डेरे ॥
कहै संतोष पाँचि वसि करिहूँ, लालच छाड़ि लोभ सूँ लरिहूँ ॥१८॥
ना मैं डरूँ न जुध करि हारूँ , लालच लोभ षेत धरि मारूँ ॥
सील काम अपणे वस कीया, 'परवल' जीति दाढ़ तलि दीया ॥१९॥
ब्रह्म अगनि मैं 'जारि' उड़ाया, निरभै प्रांण नांव सूँ लाया ॥
प्रगट्या ग्यांन अग्यान भ्रम भागा, धीरज बाँण मोह कै लागा ।२०।
काइर कहै कहा वल मेरा , मिटि गया काम क्रोध सा चेरा ॥
षिमा षड़ग लै हाथि , चिंत हिंस्या दोइ मारी ॥
सांसौ गयौ विलाइ , दया कै महल पधारी ॥२१॥
सुवधि कुवधि कौ ग्रासि , साथि 'सुमता' कै चाली ॥
सरधा कै करि बांण , मोह की सेन्या पाली ॥२२॥
सिदक सवूरी सांच , जोग वलि जरणां जारै ॥
सोग विवोग अभिमान , मोह का मूल उपारै ॥२३॥
काम रूति अटि सवल , और अणभै रुति आई ॥
झड्या मनोरथ पान , ×मेर सिरि गंग समाई ॥२४॥

पाठभेद—प्रवल-१-५ । जालि-२ । सुमिता-१ ।

शब्दार्थ—मुक्ता=खूब, बहुत । संक पंक=घबराहट, झिझक । पाच वसि=ज्ञानेन्द्रियों के वश मे । षेत=रणक्षेत्र । परवल=प्रवल, सजोर । षिमा=क्षमा । चित=चिन्ता । हिस्या=हिसा । सासौ=संशय । विलाइ=विलीन, गायब । ग्रासि=खाकर । पाली=परवरिश की, रक्षा की । सिदक=सचाई । जोग वलि=साधना-शक्ति से । सोग विवोग=शोक, वियोग । अटि=अटकी, रुकी । अणभै=अनुभव । झड्या=अलग हुआ, दूर हुआ ।

× मेर सिरि गंग समाई=दशमद्वार मे सुरतिवृत्ति पहुंची ।

*'ल्योंकी' कै मुत जागि, सिंघ वन माँही मारचा ॥
×महकी करै मलार, सुसै फिरि स्वान 'सिधारचा' ॥२५॥
षिमा मँत्रारै सेरू, वसै चींटी निरदावै ॥
'महर्की' करै 'मिंगार', षेत पर पांण न पावै ॥२६॥
+मूसा कै उरि सेस, उलटि जल माँही पैठा ॥
कुंजरि चढ्या 'आकास', मछ कुंमसथलि बैठा ॥२७॥
पिमण गया पग छाड़ि, भरम का ताला भागा ॥
तरवर बेक अनूप, प्राण 'तिंहि' तरवरि लागा ॥२८॥
=वसुधा सूँ जड़ नांहि, ∸गोढ तरवर नहिं पाया ॥
इंम्रत फल रस रूप, महासुष सीतल छाया ॥२९॥
ता तरवर में वास, मोह नहि व्यापै माया ॥
निरालंब निरलेप, अगम गुरगम तैं पाया ॥३०॥
परसि निरंजन देव, भेद लाधा 'भ्रम' भागा ॥
आनंद अगम अथाह, मन मनसा तहाँ लागा ॥३१॥
'परम' ग्यान पर ध्यांन, आन रस 'परसि' न पीवै ॥
परम मूनि परदेव, जागि लागै सो जीवै ॥३२॥

पाठभेद—लौकी–१। स्यंघारचा–२। महिषी–१। सेंणगार–१। आकासि–१-३। तहा–१। भरम–१-५। प्रम–१। प्रसि–१।

शब्दार्थ—ल्यौ की=लगन की। महको=भक्तिरूप मक्खी। षर=काम-क्रोधादि। मूसा=विचाररूप चूहा। सेस=संशयरूप सर्प। कुंजर=प्राणरूप हाथी। चढ्या आकास=दशम द्वार मे पहुँचा। मछ=मनरूपी मछली। गोढ=जड, मूल। आन=अन्य, और। परसि=स्पर्श कर।

* ल्यौ की–लगन के ज्ञानरूपी सुत जागृत है, सावधान हैं। अज्ञानरूपी सिंह को देहरूपी वन मे मार लिया।

× भक्ति रूप महकी=मक्खी प्रसन्न हो रही है, संतोषरूप सुसे ने लोभरूपी कुत्ते का संहार कर दिया है।

+ मूसा–विचाररूपी चूहे ने संशयरूप सर्प को निगल लिया।

=वसुधा सूं जड नाहि–पञ्चभूतात्मक शरीर मे अब अध्यासरूपी जड नही है।

∸ गोढ तरवर नहि पाया–ब्रह्मरूप अविनाशी तरुवर का मूल प्राप्त नही किया।

परम तेज पर जोति, जोंति मैं जोति 'निवासा' ॥
उलटा चढ्या अकासि, मूल मंडल मैं वासा ॥३३॥
ब्रह्म 'छोलि' में छक्या, लोभ की 'लाइ' बुझांणी ॥
ब्रह्मा विष्न महेस, सेस भागा विणि पांणी ॥३४॥
नारद सेती नेह, ग्यांन गोरष रजध्यांनी ॥
अनहद सबद उचार, सुरति निज सबद समांनी ॥३५॥
पाँचौ 'पांडू' फेरि, घेरि अपणै घरि आया ॥
चांवड़ कै सिरि चोट, भेद भैरूं का पाया ॥३६॥
'केरूं' सेनि अपार, अटकि अरि फौज उड़ाई ॥
चंद सूर समि किया, तत्त सूं ताली लाई ॥३७॥
'नौसै' जोगणि साथि, फेरि जाता मन लीया ॥
*अनंत सिधां सूं प्रीति, सहज मैं स्यौ रस पीया ॥३८॥
नऊँ नाथ निज ठौर, अकल तरवर की छाया ॥
ग्यांन 'सिंघासणि' वैसि, राम रटतां पति पाया ॥३९॥
जथा तिलां मैं तैल, 'काष्ठ' मैं अगनि निवासा ॥
जथा दूध मैं घिरत, 'पहौप' मैं परमल वासा ॥४०॥

पाठभेद—न्यवासा–३-५ । छोल्य–२ । छोल–५ । लहर–५ । पाडौ–५ । कैरो–१ । नवसै–१ । स्यंघासण–२ । कासट–२ । पहुप–१-५ ।

शब्दार्थ—लाइ=अग्नि । बुझाणी=शान्त हुई, बुझी । ब्रह्मा विष्न महेस=रज, सत, तम । सेस=सशयसर्प । भागा विणि पाणी=मायारूपी पानी के अभाव मे भग गया । नारद=नामचिन्तन रूप नारद । पांचौ पाडू=पाचो ज्ञानेन्द्रियाँ । चावड=कुमति । भैरूं=भ्रम रूप । केरूं सेन अपार=विकाररूप कौरवो की अपार सेना है । चंद सूर=मन-प्राण । तत्त=ब्रह्मतत्व । नौसै जोगणि=नौ सौ नाडियाँ प्राण के साथ है । नऊँ नाथ निज ठौर=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ चारो अन्त करण अन्तर्मुख है । जाग्या=साधना मे लगा, सचेत हुआ ।

* अनंत सिधां सूं–नानाविधि साधनसम्पत्ति से प्रेमकर सहज दशा मे पहुच कर आत्मानन्दरूपी कल्याणदायी रस का पान किया ।

यूँ जन हरीदास अवगति अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ॥
कोई जन जाग्या सौ जांणिहै, सूता जांणै नांहि ॥४१॥

॥ इति निरवर्त्ति-परवर्त्ति जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मायाछंद जोगग्रन्थ ॥

फ़ूहड़ी धूहड़ी धावंती, डंक भरे भर पावंती ॥
राम विमुष तहाँ जावंती, मोह नदी में न्हावंती ॥
अपणै अंगि लगावंती,
करणहार करतार जगतगुरु, दीनदयाल भुलावंती ॥
कबहुँ भांमणी कबहूं माता, अपणी पोलै राषि षिलावंती ॥
कबहूं रूसै कबहूँ तूसै, नेह 'म्रदंग' बजावंती ॥
कबहूँ ताती कबहूँ सीली, जीवां जेरि जिरावंती ॥
जोगणि होइ 'जुग' उद्रहि जालै, जहर 'पियाला' पावंती ॥
भूँडै 'मुँहडै' डाकणि डोसी, भूला नैं भरमावंती ॥
ऊँच नीच सब सूँ मिलि षेलै, भूषी भोगि लगावंती ॥
'दुहूँ' अंगां आपण व्है षेलै, नाना भेष बणावंती ॥
डाकणी पापणी सापणी भांमणी, भोगणी भेद दे रोगणी ॥
जोगणी जागणी, भूतणी लागणी ॥
भूकरी सूकरी कांगणी कूकरी, आछणी चोपणी नरक की टोकणी ॥
जरजरी जहरणी, कालगति कहरणी ॥

पाठभेद—मिरदंग-१-५। जग-५। प्याला-१। मौहडे-२। दहूँ-३। दहौ-५।

शब्दार्थ—फ़ूहडी=बेशहूर। घूहडी=मैली, मलीन। षोलै राषि=गोद में बैठा। रूसै=नाराज हो। तूसै=तुष्ट हो, राजी हो। जेरि=जेरबार करना, हैरान करना। भूँडै=बुरे, विकृत। मुँहडै=मुँह से। डोसी=डोकरी, पुरानी। दुहूँ अगां=स्त्री, पुरुष। भूकरी=गधी। जरजरी=जीर्ण, क्षीण करने वाली। कहरणी=कष्टदायक।

त्रिवधि तन धारणी, हेत दै मारणी ॥
आंवणी जावणी, डहकि डहकावणी ॥
साध मै थरहरै, प्रगट मारी मरै ॥
पांव पाछा धरै, अगनि मै पैसतां धसै पाछी परै ॥
जन हरीदास माया मतै, मिलै म माया होइ ॥
हरि साचा सूँ साचा मिलै, तौ पला न पकड़ै कोइ ॥

॥ अथ मायाछंद जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ जोगमूल सुखजोगग्रन्थ ॥

नीचै डाल मूल भया ऊपरि, 'अजा' सिंघ सूँ झूँझै ॥
मकड़ी कूँ माषी नहिं छाड़ै, आंधा कूँ सब सूझै ॥१॥
मूसै दौड़ि बिलाइ पकड़ी, चिड़ै सिचाणा षाया ॥
सास बहू कै पागे लागै, समंद बूँद मैं पाया ॥२॥

पाठभेद—अज्या–२-५।

शब्दार्थ—त्रिवधि=त्रिगुणात्मकरूप वाली। डहकि=वहक, भ्रान्त हो। साध मैं=साधु साधको से डरे। थरहरै=कम्पित हो। अगनि=ज्ञानाग्नि। पैसता=धँसता, प्रवेश करता।

१ली साखी—मूल–पूर्णब्रह्म सर्वोपरि है, माया आदि डालियां है जो मूल से बाद मे हैं देह मे विवेकविचार का मूल मस्तिष्क ऊपर है हाथ-पैर आदि शाखाये नीचे है। सुस्थिर गुणरहित अजारूपवृत्ति अहङ्काररूपी सिंह से झूँझ रही है। कुबुद्धिरूपी मकडी को सद्मतिरूप मक्खी समाप्त करती है। विषयवासनारूप नेत्र नष्ट हो गये ऐसे अन्धे को पुरा आत्मज्ञान दिखाई देने लगा।

२री साखी—आत्मविचारमय चूहे ने दौडकर–झपटकर वासनारूपी बिल्ली को पकड लिया। सन्तोषरूपी चिडे ने लोभरूपी बाज को खा लिया। त्रिष्णारूपी सासू–प्रेमाभक्तिरूपी बहू के पैरो पडी, वशीभूत हुई। आत्मारूपी बूँद में परब्रह्मरूपी समुद्र की प्राप्ति हुई।

पिंगुलै 'माग' अगम का लाधा, बहरै सब कछु सुँणिया ॥
मूरिष 'पिंडत' की गति पाई, सूत जुलाहा बुँणिया ॥३॥

मीन मगर कूँ षावण लागी, 'दादरि' उरग पचाया ॥
पांणी मांही अगनि प्रगटी, तिल मैं मेर समाया ॥४॥

सींचत वाड़ी सब 'कुँमिलावै', काटव बहु फल लागा ॥
चोर साह कै 'मिंदरि' पैठा, साह 'गिरह' तजि भागा ॥५॥

षाट पुरिस पर सोवण लागी, हांडी अन मैं रांधी ॥
'म्रतग' जम कूँ दई सासना, गाइ वाछड़ै वांधी ॥६॥

पाठभेद—माघ–१-५। पडित–३-५। दादर–३-५। कुमलावै–५। म्यदरि–२। मिंदर–५। गृह–५। मृतक–४-५।

३री साखी—संकल्प-विकल्परूपी पैरो के बिना पंगुल मन ने अगम आत्मतत्व प्राप्ति का मार्ग पाया। बाहरी शब्दो को सुनने की भावना से विहीन बहरे ने अनहद नाद का श्रवण किया। सासारिक पदार्थो से उदासीन मूर्ख ने तात्विक ज्ञान की पंडिताई प्राप्त की। सुरतिवृत्तिरूपी डोरी–सूत ने आत्मतत्वरूप जुलाहे को बुन लिया, पा लिया।

४थी साखी—निर्गुणभक्तिरूपी मछली ने मोहरूप मगर को खा लिया। तात्विक ज्ञानरूपी दादुर ने सशयरूप सर्प को पचा लिया–नि.शेष कर दिया। प्रेमप्रवाहरूप पानी मे विरहाग्नि की उत्पत्ति हुई। ज्ञानरूप तिल मे अज्ञानरूप मेरु समा गया–समाप्त हो गया।

५वी साखी—विषय वासना के पानी से यदि भक्तिरूपी बाडी को सीचा जाय तो वह कुम्हला जायगी। विषयवासना को जैसे-जैसे काटते जाओगे–हटाते जाओगे वैसे ही वैसे भक्तिरूप बाड़ी पुष्ट होगी और उसमे त्याग, शील, सत्य, सन्तोषादि विविध फूल खिलने लगेगे। आत्मविचाररूपी चोर देहाभिमानरूपी शाह के घर मे प्रविष्ट हुआ तो देहाभिमानरूप साह देहरूपी घर को छोड़ कर भाग गया–निकल गया।

६ठी साखी—प्रेमाभक्तिरूपी खाट साधक पुरुष पर सोने लगी–मस्तीरूप मे सर्वदा चढी रहने लगी। आत्मविचाररूपी अन्न मे देहाध्यासरूपी हाँडी को राँध लिया, विगलित कर लिया। जीवन्मुक्त अवस्था वाले मृतक साधक ने काल को सासना दी, काल को जीत लिया। विषयों की ओर जाती हुई वृत्तिरूपी गाय को सुस्थिर प्राणरूपी बछड़े ने बाँध ली, रोक ली।

फूल कली मैं गया समाइ, सो कबहूँ नहिं फूलै ॥
तन पांणी मैं मीजै नांही, विणि पांणी निति झूलै ॥७॥
×'पांचौ' मिलि मन मल उपायो, बुरै पंथ नहिं जांही ॥
निसदिन ग्यांन गुफा में पांचौ, बाहरि निकसे नांही ॥८॥
'सातूं' समद सुपाया चौड़े, जल की ठाहर षोई ॥
वैरी आय मिल्या चाकर व्है, गिरवर ढाह्या दोई ॥९॥
सतगुर थिति समझाई अंतरि, ता तैं निसदिन जागा ॥
तीन ताप तन की तब भागी, सीतल सुष तब लागा ॥१०॥
लेता डांण जगाती 'डंड्या', सब अपणैं वसि कीया ॥
गहि गुर ग्यांन ध्यांन धरि अंतरि, 'साहि कूँ' सरवस दीया ॥११॥
सूक 'त्रिष' तजि 'वहौ' सुष पाया, *तरवर अकल वसेरा ॥
सीत धूप दोऊँ नहिं व्यापै, पकड्या निहचल डेरा ॥१२॥

पाठभेद—पाचूं–२-४। सातौ–१-३। दंड्या–१। साहिब कूं–१-५। वृष–३। वृछ–५। वहु–१।

शब्दार्थ—थिति=स्थिति, दशा। डाण=कर। जगाती डड्या=विषयों को प्राप्त करने वाले जगाती मन को दंडित किया, निरुद्ध किया। साहकूं=परमेश्वर को। सूक त्रिष तजि=संसाररूपी निष्फल वृक्ष को छोड। सीत धूप=सुख दुःख, माया अविद्या।

× पांचो ज्ञानेन्द्रियो ने अन्तर्मुख हो आत्मनिष्ठ रहने का अच्छा निश्चय किया।

* तरवर अकल वसेरा=कलनरहित परब्रह्मरूपी वृक्ष मे बसेरा–निवास कर लिया।

७वी साखी—विविध विषय की भावना के फूल निश्चलवृत्तिरूप कली मे समा गये अतः उनके पुनः खिलने की कोई आशा नही। देहाध्यास से रहित आत्मविचार मे लगा हुआ स्थूलशरीर अब विषयभोग के पानी से नही भीजता–उनमे प्रवृत्त नहीं होता। वह अब बिना पानी वाले आत्मानन्दरूपी सरोवर मे नित्य झूलता है, उसी मे ओतप्रोत रहता है।

९वी साखी—काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अहङ्काररूप सातो समुद्रो का शोषण कर लिया। भोगरूपी जल की ठाहर–स्थान वासना थी, उसको निर्मूल कर दिया। शब्द स्पर्शादि जो प्रबल पाँच विषय वैरी थे वे अब सेवक बन गये, ममता और मोह के दोनो पहाडों को ढहा लिया।

मोह अर दोह दहुँ तैं न्यारा, सुष मैं जाइ समाया ॥
सतगुर सरणि भली मति उपजी, पाता सोई पाया ॥१३॥

मनसा वाचा आरंभ तजियौ, करम करै नहिं काया ॥
सुमिरो 'एक' अषिल अविनासी, परहरि छोटी छाया ॥१४॥

उपजी अकलि वड़ाई त्यागी, असलि गरीवी आई ॥
भजौ निरंजन परहरि दुष सुष, छाड़ी आंन सगाई ॥१५॥

निरंजन सदा सहाइ हमारै, कांम न विगड़ै कोई ॥
आसा त्रिसना छाड़ि मनोरथ, मन की दुविध्या षोई ॥१६॥

पाक पीर सूँ भेट्या भै तजि, तव सव कुछ समझाया ॥
असलि अकलि हिरदा मैं मेल्ही, साध संगति सुष पाया ॥१७॥

पाक पाक मैं जाइ समावे, ठौड़ मैल कूँ नांही ॥
मैल मैल की जाइगा पहुंचै, समझि देष मन मांही ॥१८॥

माया मैल सकल जुग मैला, निरमल साधू कोई ॥
पांच स्वाद तजि भजै 'निरंजन', सकल मैल तनि घोई ॥१९॥

हिरदै मैल रती नहिं राषै, भजै सदा 'अविनासी' ॥
गरभवास सो कवहु न आवै, पड़ै न जम की पासी ॥२०॥

तन मैं कँवल तहां मन मेरा, उलटि न वाहरि आवै ॥
स्वाद 'वसत' का भारी लाधा, निसदिन इंम्रत पावै ॥२१॥

जैसे सीप समद मैं ऊँडै, स्वांति वूँद लै पैठी ॥
षारो पांणी पीवै नांही, समटि आपणपौ वैठी ॥२२॥

पाठभेद—येक–२-५। न्यरजन–२। अभिनासी–१। वस्त–१-४।

शब्दार्थ—परहरि छोटी छाया=सांसारिक नाशवान पदार्थों की छोटी छाया का आश्रय छोड दिया। दुविध्या=अनिश्चय भावना। पाक पीर सूँ=माया अविद्याहीन परब्रह्म से। भेट्या=मिला। मैल=अविद्या, अज्ञान। जाइगा=स्थान। पांच स्वाद=पांचो विषय। कँवल=हृदय कमल। वसत=वस्तु, आत्मज्ञान। आपणपौ=अपनापन।

जैसे निजरि चकोर न षंडै, सीतल सुष कूँ लौड़ै ।।
अंगार चुगै पर दाझै नांही, निजरि चंद सूँ जोडै ।।२३।।

चात्रिग नीर नीच नहिं पीवै, ऊँच बूँद कूँ चाहै ।।
तन पोवै 'पण' छाडै नांहि, ऐसी सदा निबाहै ।।२४।।

हंस 'मुकताहल' निसदिन 'टूँगै', करंक काग तैं न्यारा ।।
काग कुबधि सूँ नेह न बांधै, ऐसी गहै विचारा ।।२५।।

कीटी 'भ्रंग' गहै सै हिरदै, भ्रंग हेत नहि वारा ।।
काया का गुण सब ही त्यागै, तब जाइ पहुँचै पारा ।।२६।।

कुरंग नाद सूँ सुरति लगावै, देह विसरि सब जाई ।।
'धीरज' पकडि गहै पण काठो, बांण बधिक का पाई ।।२७।।

मीन मरै पांणी जब त्यागै, बिणि पांणी नहिं जीवै ।।
भजै निरंजन ऐसे साधू, 'अविनासी' रस पीवै ।।२८।।

पतंग दीप कूँ सरवस देवै, तन मन आपो षोवै ।।
ऐसे साधू सनमुष हरि सूँ, उलटि न पाछो जोवै ।।२९।।

चोरी चोर करै हिरदा 'सुध', तजै देह की आसा ।।
मोटो माल गहै हिरदा मैं, समझि दाहिणी भासा ।।३०।।

सती अगनि मैं काया होमै, पीव प्रीति कै आटै ।।
तजै सासरो पीहर त्यागै, मन कितहूं नहिं बांटै ।।३१।।

सूर पीठि पाछी नहिं फेरै, सनमुष घोड़ा घालै ।।
पैला अरि दल जीत सबै ही, साहिब तजि नहि चालै ।।३२।।

पाठभेद—परिण-३-४। ठोंगै-५। मुक्ताहल-३-४। भृंग-५। भिरंग-१। वीरज्य-१-४। अभिनासी-१। सुद-५।

शब्दार्थ—लौडे=चाहे, प्राप्त हो। अगार=अग्नि। दाझै=जले। चात्रिग=चातक, पपीहा। नीच नीर=भूमि पर पडा पानी। पण=प्रतिज्ञा, हठ। टूंगै=चुगे। कीटी=कीट, लट। गहै पण काठो=दृढ प्रतिज्ञा करे। सुध=निर्मल। दाहिणी भाषा=आत्मोपदेश, ब्रह्मवाणी। आटै=वास्ते, लिये। बांटै=लगावे, खडित करे।

चंदन और त्रिछ नहिं होइ, 'और' 'त्रिछ' सब काचा ॥
'और' 'त्रिछ' चंदन की संगति, व्है चंदन सति वाचा ॥३३॥

हीरा मांहि पड़ै नहि झांई, पाँच रंग की कोई ॥
फूटि फटकि मणि वेगी जावे, दुष सुष व्यापै दोई ॥३४॥

सतगुर सरणि गई सब 'दुवध्या', 'एक' निरंजन पाया ॥
करम 'विवरजित' सकल वियापी, सो मेरे मनि भाया ॥३५॥

पापर 'पुंनि' 'दहुं' तैं न्यारा, साधां का मत आया ॥
ऐसी समझि पड़ो हिरदा मैं, करम अर भरम वहाया ॥३६॥

साच 'कहूं' मिथ्या नहिं 'बोलूँ', अविनासी सुष दीया ॥
मन की कसर दई सब नीचै, तव अपणां करि लीया ॥३७॥

जन हरीदास 'अविनासी' संगति, आवागवँण चुकाया ॥
अमर जड़ी हिरदा मैं राषी, स्वाद समद मैं पाया ॥३८॥

जन हरीदास निरभै पद पाया, भै नहिं व्यापै कोई ॥
जैसे 'नदी' 'समद्रि' पहुँचै, एक हुवा 'तजि' दोई ॥३९॥

जन हरीदास काया तजि माया, अरूप रूप सूँ मिलिया ॥
जैसे आटै लूँण न अंतर, एकमेक व्है मिलिया ॥४०॥

॥ इति जोगमूल सुषजोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अवर-१। विरष-१। दुविध्या-१। येक-२। विवरजत-४। पुण्य-५। दुहुं-१। दहौं-५। कहौं-१। बोलौं-१। अभिनासी-१। नदियां-५। समद-५। तज्य-२।

शब्दार्थ—झांई=प्रतिविम्ब, परछांही। वेगी=शीघ्र, जल्दी। विवरजित=रहित। दहुं=दोनों से। कसर=खोट, कमी। आवागवँण=आना-जाना। समद=आनन्द सागर।

॥ अथ अज्ञानपरीक्षा जोगग्रन्थ ॥

बुराई छाड़ि भलाई पकड़ी, मैं 'तजि' निरभै गाया ॥
ध्रयादिक छाड़ि अधर सूँ लागा, मल तजि निरमल पाया ॥१॥
हीरा गहि कौड़ी सूँ न्यारा, कंचन काच छुड़ाया ॥
कूप छाड़ि सागर सूँ लागा, झूठ तजि साच सुहाया ॥२॥
मुकताहल गहि गुंजा 'सूँ' विरकत, विष तजि इम्रत पीया ॥
थोथा छाड़ि 'कणूँका' साह्या, छाछि तजी घ्रत लीया ॥३॥
मरकट मति त्यागी हिरदा तैं, कूरम मति लै जागा ॥
काग 'बुधि' सूँ विरकत हूवा, हंस बुधि सूँ लागा ॥४॥
उल्लू ग्यांन नहीं 'मन' मानै, चकोर ग्यांन चित धारया ॥
भंवर वासना लेह कँवल की, मींडक का मत हारया ॥५॥
काइर का मत परहरि प्रांणी, सूर मता में रहिये ॥
बहौ पुरषां सूँ मिलतां नारी, पतिवरता क्यूँ कहिये ॥६॥
पतिवरता पति कूँ नहिं छाड़ै, स्यंघ घास नहिं पाई ॥
साधू सदा भजै अविनासी, चौंर चौंर पै जाई ॥७॥
सति सील में रहै अहो निस, असती कांम कै काठै ॥
सती असति संगि नहिं वैठे, सती असती तैं नाठै ॥८॥
कंचन चिरम बराबरि तूलै, पड्या अगनि में व्यौरो ॥
चिरम जलै कंचन ज्यूँ कौ त्यूँ, मिटै चिरम कौ जोरौ ॥९॥
पड़ै फटिक में पांचो झांई, हीरा में नहि पैठे ॥
अहरणि घण 'विचि' हीरा ठहरै, चोट 'फटिक' परि वैठे ॥१०॥

पाठभेद—तज्य-२ । कणौका-५ । कुवधि-३-५ । मन्य-२ । मनि-४ । विच-५ । फटक-५ ।

शब्दार्थ—ध्रयादिक=पचभूत के पदार्थ । कूप छाडि=पाक्षिक धर्म । झूठ तजि=मिथ्या सँसारी पदार्थ छोड़ । मुक्ताहल=मोती, शुद्धब्रह्म । विरकत=दूर, उदासीन । थोथा=सारहीन । मरकट मति=चँचलता । कूरम मति=अन्तर्मुखी वृत्ति । काग बुद्धि=मलीनता, मलिनमति । हंस बुद्धि=निर्मलमति, संशय-विपर्ययहीन । सील=चरित्ररक्षा । काठै=समीप, पास । नाठै=भागे, दूर रहे । तूलै=तुलती है । व्यौरौ=विवरण, फल ।

ग्यांनी और अग्यांनी 'मिलतां', मतौ मिलै नहीं कोई ।।
वाकै हिरदै 'एको' आवै, वाकै हिरदै दोई ।।११।।
धरम नेम तीरथ 'व्रत' पूजा, अग्यांनी आन दिढावै ।।
ग्यांनी एक निरंजन सुमरै, पांचू स्वाद छुड़ावै ।।१२।।
धरी देह धणीं कूँ राषै, विणि आकार न मानै ।।
अग्यांन कै ऐसी मति हिरदै, अविनासी नांही जानै ।।१३।।
ग्यांनी देह झूठ करि 'जांणै', विणि देही कूँ धावै ।।
'एक अर' पांच 'पचीसूँ' परहरि, सुष मैं जाइ समावै ।।१४।।
अग्यांनी भरम करम सूँ लागै, आंन कथा नहिं भूलै ।।
ब्रह्मग्यांन सूँ हेन न लावै, जल थल मांही झूलै ।।१५।।
ग्यांनी भरम करम सब त्यागै, अणभै कथा सुणावै ।।
सुमिरै एक अषिल अविनासी, आंन कथा नहिं भावै ।।१६।।
अग्यांनी कूँ ग्यांनी नहि मानै, दहुं मना मत दोई ।।
ऊँठ अर भैंसि मतो न 'मिलई', भावै देषौ जोई ।।१७।।
पतिवरता विभचारणी, संगति सुष नहिं कोई ।।
तेल नीर सूँ ना मिलै, 'ल्हसण' चंदण भी दोई ।।१८।।
सांचै झूठे ना मिलै, मिलै न काइर सूर ।।
रात्यूँ द्योसै ना मिलै, मिलै न लौहे हेम हजूर ।।१९।।
लौहै काइ लागि है, कंचन काई नांहि ।।
अग्यांनी ग्यांनी ना मिलै, समझि देषि मन मांहि ।।२०।।

पाठभेद—म्यलतां–२। येको–२। वरत–३। जाने–२-५। एकर–५। यक-अर–२। पचीसौ–४। मिलहै–५। ल्हसन–३।

शब्दार्थ—मतौ=विचार। पांचू स्वाद=शब्दादि पाचो विषय। धरी देह धणी को राषै=धणी ईश्वर को धरी देह–देहधारी अवतार के रूप मे माने। पाच पचीसूँ=पञ्चभूत व उनकी प्रकृतिया। जल थल=भौतिक पदार्थों मे। झूलै=स्नान करे, निमग्न रहे। रात्यौं द्योसै=रात दिन से नही मिलती।

ग्यांनी आरंभ ना करै, रहै निरालंब होइ ॥
अग्यांनी आरंभ करै, सदा सहै दुष दोइ ॥२१॥

ग्यांनी पाप करै नहीं, डर पकड़ै जगदीस ॥
अग्यांनी पाप करै सही, भजै न केवल ईस ॥२२॥

ग्यांनी गाफिल ना रहै, सदा सुचेत 'सुभाइ' ॥
अग्यांनी गाफिल रहै, फिर फिर विष फल पाइ ॥२३॥

ग्यांनी कपट करै नहीं, कपट करै अग्यांन ॥
ग्यांनी सुमिरै अलष कूँ, अग्यांनी सुमिरै आंन ॥२४॥

संगति 'तजि' अग्यांन की, ग्यांनी संगति पेल ॥
ग्यांनी नांव बतावसी, त्रिवधि ताप तजि तैल ॥२५॥

'निरंजन' सरषौ दुष नहीं, मारि सकै नहीं काल ॥
जैसे गहरा समद में, पड़ै न झीवर जाल ॥२६॥

वोछौ पांणी 'अवर' सव, माया कौ अंग देष ॥
बिना निरंजन डोलसी, करिसी वहौला भेष ॥२७॥

जल थल मांही भरमणा, बिना निरंजन नांव ॥
जोनि संकटि आवणा, फिरणा ठाऊँ ठांव ॥२८॥

माया तजि भजि नांव निरंजन, जीवन अंजली नीर ॥
यहु औसर भी बहौड़ि न लाभै, जम का काटि जंजीर ॥२९॥

सतगुर तोहि समझावै नीकै, तूँ क्यूँ 'भूल्यो' जांहि ॥
ग्यांन दाढ़ 'समता' 'जिभ्या' सूँ, काया का गुण षांहि ॥३०॥

पाठभेद—सुभाय-४। तज्य-२। न्यरंजन-२। और-३-४। भूलो-२-३। समिता-१। ज्यभ्या-२।

शब्दार्थ—आरंभ=फलदायी कर्म। दोइ=जन्ममृत्युमय दो दुख। गाफिल=असावधान। तैल=स्नेह, आसक्ति। डोलसी=चौरासी लाख यौनि मे फिरेगा। वहौला भेष=अनेको शरीर धारण करेगा। ठाऊँ ठाँव=स्थान स्थान पर।

मैं सूँ अलष निरंजन भजिये, गाफिल 'रहिए' नांहि ॥
पांच स्वाद तजि परहरि दुष सुष, यहु मत गहि मन मांहि ॥३१॥
भारी दुष है राम विसारयां, लष चौरासी जूँनि ॥
प्रेम प्रीति सूँ भजि अविनासी, ज्यौं पहुँचै चौथी सूँनि ॥३२॥
मौत दिहाड़ा आवै नैड़ा, तूं क्यूँ गाफिल सोवै ॥
निरंजन भजि तजि आन सगाई, तूँ क्यूँ जनम 'अविरथा' षोवै ॥३३॥
काल कहर सूँ डरपै नांही, ले ज्यूँ चिड़ी सिंचाणा ॥
विना निरंजन 'याह' गति होइ, जम कै लोकि सिधांणा ॥३४॥
वार वार तोकूँ समझाऊं, अजहुं समझ्या नांही ॥
संसार सकल सुपना सा देषै, तौ समझ्या मन मांही ॥३५॥
ब्रह्मा विसन महेस और इंद्र 'सकतिलौं', असिथिर कोई न दीसै ॥
असथिर एक अषिल अविनासी, और काल सवन कूँ पीसै ॥३६॥
गोरषनाथ कबीर कूँ, काल सकै नहिं मारि ॥
जन हरीदास निरंजन मांहि समाइया, पहुंच्या 'पैलै' पारि ॥३७॥
जन हरिदास सुष पाइया, सतगुर सरणै आइ ॥
वास किया सुषसिंध मैं, काल कदे नहि षाइ ॥३८॥
जन हरीदास भरमै नहीं, पाई निहचल ठौर ॥
भागा भरम विकार सब, सहर गया तजि चौर ॥३९॥
जन हरीदास अविनासी पाया, काया नगरी मांहि ॥
सो जहां तहां भरपूरि है, कबहूँ विनसै नांहि ॥४०॥

॥ इति ज्ञानपरीक्षा जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ लघुग्रन्थावली समाप्त ॥

पाठभेद—रहिये-२। इवरथा-२। या-५। सक्तिलौ-३·४। पैली-५

पाठभेद—लष चौरासी जूंनि=चौरासी लाख योनि। चौथी सूंनि=चौथी, तुर्यावस्था, सहज दशा। दिहाडा=दिन। नेडा=पास, नजदीक। सिचांणा=बाज। सिधाणां=गया, पहुँचा। असिथिर=अचल। पीसै=रौदे, चूर्ण कर दे। भरमै नही=भ्रान्त न हो। चौर=काम-क्रोधादि रिपु।

॥ अथ पदभाग राग गौडी ॥

[१]

च्यारि पहर दा कांम है विणजारिया, तेरे जागणदा छक 'येहवे' ॥
सोवणदी विरिया नहीं विणजारिया, तूँ नांव निरंजन लेहुवे ॥
नांव निरंजन लेहु अहो निसि, विलम न कीजै वीरवे ॥
जैसा कमावे पावे तैसा, नहीं किमीदा मीरवे ॥
सुष थोड़ा दुष वहोड़ि अनंत है, रांम भजै क्यों नांहिवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया, तूँ मति भूला जाहिवे ॥१॥
वाल अवस्था गति मति वुधि थोड़ी विण०, दुष सुष जांणै नहीं अयांणवे ॥
मोह लग्या माया ठग्या विणजारिया, तूँ भूला नांव 'भुलानवे' ॥
नांव भुलाना फिरै बौरासा, दिन दिन पैंडा होइवे ॥
कहूँ कहूँ डरै कहूँ मिलि षेलै, असथन मांगै रोइवे ॥
देह अवस्था पलटण लागी, परा षजीना जाइवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया, सकै तौ हरि गुण गाइवे ॥२॥
ज्वान अवस्था जोर वहोत है, सकै तो जोर निवारवे ॥
हरि सुमिरण हिरदै धरौ विणजारिया, चालौ देषि विचारिवे ॥
चालौ देषि विचारि सहज घरि, साचा सौदा लेहुवे ॥
करि 'मनिष' जनम हीरा चल्या, कौड़ी सटे न देहुवे ॥
भै छाड़ो निरभै भजो, इहै तुम्हां सूँ गूँझवे ॥
जन हरीदास कहै विणजारिया, लेषा देणा तुझवे ॥३॥

पाठभेद— एहवे-३-४ । भूलाणवे-३ । मनष-१ । मिनष-५ ।

शब्दार्थ—विणजारिया=हे जीव ! हे मन ! छक=अवसर, मौका । अयाणवे=अजान । वौरा सा=पागल सा, वहका हुआ । पैंडा=उन्मत्त । असथन=स्तन । परा षजीना=मनुष्य जन्म । ज्वान=तरुण, जवान । जोर=वल, शक्ति । सहज घरि=निर्गुण ब्रह्म । साचा सौदा=आत्मज्ञान का । गूँझवे=गोपनीय बात । तुझवे=तुम्हे, तुझको ।

वरस पचास पूठ तैं दीया, तेरा तीजा पहरा एहवे ।।
सुत वनिता परिवार वगेरा विण०, मूल हमारा थेहवे ।।
मूल हमारा थेह वड़ा मैं, 'वहौत' लिया सिर भारवे ।।
अंति कालि कोई संगि न चालै, फूटी हांडी लारवे ।।
कै गाड़ै कै जंगलि जालै, पूठा वैसे आइवे ।।
जन हरीदास कहै विणजारिया, भी 'ज्यंद' अकेला जाइवे ।।४।।

अवधि सवाई वह गई विणजारिया, तूँ चाल्या पूँजी हारिवे ।।
और विणज सब ही कीया विण०, तूँ सक्या न रांम संभालिवे ।।
सक्या न रांम संभालि सहज धरि, सतगुर सरण आइवे ।।
माल मुलक है गै ज्यूँ का त्यूँ, चाल्या षोटा षाइवे ।।
समझि नहीं तैं षरा न लीया, भला न उपज्या भाववे ।।
जन हरीदास कहै विणजारिया, तेरी भोजल विचि थाकी नाववे ।।५।।

[२]

मनिष जनम धरि हरि भजौ, नांव निरंजन लेहुवे ।।
नग निरमोलिक करि चढ्या, कौड़ी सटै न देहुवे ।।
कौड़ी सटै न देहू हीरा, वास जलि थलि है सही ।।
तन धरै धरि 'मरह' जामैं, भगति हरि न्यारी रही ।।
राम भजि हरि सबल साथी, मरम भै चिंता तजो ।।
अपरंपार अपार अवगति, मनिष जनम धरि हरि भजो ।।१।।

पाठभेद—वहुत–१ । जिंद–४-५ । मरै–१-३ ।

शब्दार्थ—पूठ तैं=पीछे को, खो चुका । थेहवे=स्थिर रहने वाला । पूठा=वापिस, पीछे । ज्यद=जीव । अवधिस=आयु तो । वाई=व्यर्थ, निष्फल । थाकी=थकी, हार गई । नग=मनुष्य-शरीररूपी हीरा । निरमोलिक=अमूल्य । वास=निवास । मरहू=मरना । जामैं=जन्मना ।

'जनम' 'अमोलिक' जात है, जांणै कोई नांहिवे ॥
रांम भजन का मै नहीं, निसदिन भूला जाहिवे ॥
निसदिन भूला जाहि जहां तहां, गुर ग्यांन विणि दुष पाइया ॥
हरि भजन रम रीति न्यारी, बहौड़ि फिर पछताइया ॥
भूल दीरघ प्रथम दुष सुष, विथा या कासूँ कहै ॥
भगवंत भजि नर जुरा ग्रासै, जनम 'अमौलिक' जात है ॥२॥

नगर अविद्या तहाँ नर वसै, मन माया सूँ हेतवे ॥
ममता मदिमाता फिरै, चेतै नहीं अचेतवे ॥
चेतै नहीं अचेत अजहूँ, करम वसि परदुष सहै ॥
गुर ग्यांन विणि नर न्याइ अंधा, काच सूँ कंचन कहै ॥
षवरि विणि नर षाइ षोटा, कांम 'विमहरि' संगि डसै ॥
काल के करि कैम निसदिन, नगर अविद्या तहाँ नर वसै ॥३॥

मोह महल मैं मन 'सोवै', चिंता सोड़ विछाइवे ॥
सांसै की सज्या भई, मनसा जहां तहां जाइवे ॥
मनसा जहां तहां जाइ 'दह' दिसि, त्रिवधि आवध संगि थव्या ॥
सुष सील साथी साथि नांहि, कुवधि काँटा उर अव्या ॥
हरि नांव निरमल नीर न्यारा, करि मसि लगी मभी सूँ धोवै ॥
अग्यांन 'असथलि' पांच रस वसि, मोह महल मैं मन सोवै ॥४॥

भवसागर सभर भरया, तहां 'तुम्हारा' वासवै ॥
वोहिथ हरिजी का नांव है, दूजी झूठी आसवै ॥

पाठभेद—जन्म-३ । अम्मोलिक-२ । विसहर-५ । सूवे-१ । दहि-४ । असथल-५ । तुमहारा-१ ।

शब्दार्थ—दीरघ=भारी, बडा । न्याइ=बिल्कुल, सर्वथा । षवरि=जानकारी, पूरा ज्ञान । विसहरि=काल, सर्प । सासै=सशय । सज्या=शैय्या, खाट । त्रिवधि आवध= तीनों गुणरूपी शस्त्र । थव्या=लगा, चिपका । मसि लगी=कालिमा, मलीनता । असथलि=स्थान, आधार । पाच रस=पाँच विषय-रस । वोहिथ=नौका ।

दूजी भूठी आस हरि विणि, तहाँ क्यों मठ छाइये ॥
राम 'भजि' मन राषि निहचल, पार ऊतरि जाइये ॥
अगह गहिये अकह कहिये, अमर भजि अजरा जरचा ॥
जन हरिदास हरि विणि पार नांही, भवसागर सूभर भरचा ॥५॥

जुग मैं ऐसा सा जीवणां, 'सुपने' का सा कामवे ॥
जाव धणीं कूँ देवणां, भज्यौ न केवल रामवे ॥
भज्यौ न केवल राम 'इकलस', एक रसि लागा रहो ॥
संसार दुष सुष पाइ वेड़ी, कुपह कुसंगति क्यों वहो ॥
गोव्यंद गावौ गरव छाड़ो, जांणि जहर न पीवणां ॥
तव संगि तात मात न सगा वंधू, जुग मैं ऐसासा जीवणां ॥६॥

या सुष का दुष अनंत है, गिणती ग्यांन न होइवे ॥
सो सुष पहिली छाड़णां, पलान 'पकड़ै' कोइवे ॥
पला न पकड़ै कोइ तेरा, इहै अरथ विचारिये ॥
जागि पंथी कहा सोवै, सोइ 'सरवस' हारिये ॥
उलटा पंथ 'सम्हाल' पंथी, सति सवद सतगुर कहै ॥
विवधि विष वन मांहि विसहर, या सुष का दुष अनंत है ॥७॥

यहु तन तौ यूँही गया, सरचा न कोई कांमवे ॥
पर निंद्या करि मैं वड़ा, भज्या न कवहुं रांमवे ॥
भज्या न कवहूँ रांम इहि छकि, माया कै छकि मिलि रह्या ॥
हरि परम गति 'परमाण' 'परहरि', नीच जल नीचा वह्या ॥
जहर फल जुगि आइ षाधा, जीव सव परवसि भया ॥
हरि प्रांणनाथ म निकटि न्यारा, यहु 'तन' तौ 'यूँ' ही गया ॥८॥

पाठभेद—भज्य-२। सुपना-३-४। इकलसि-३। पकरै-१। सर्वस-३। सवार-५। प्रमाण-प्रहरि-१। दिन-१। यौ-१।

शब्दार्थ—सूभर=भरपूर, खूब। जाव=उत्तर, जवाब। जांणि=समझकर, जानते हुए। पंथी=पथिक, बटोही। उलटा पंथ=आध्यात्मिक मार्ग, निवृत्ति मार्ग। जुगि=संसार। षाधा=खाया।

अपणैं अपणैं मन मतै, चालत है सब कोइवे ॥
मरणा है जीवण नही, जीवत मरै न कोइवे ॥
जीवत मरै न कोइ परवसि, मरण दुष सिरपरि घणां ॥
'मरोह' जोगी मरण मीठा, मरिभजौ साहिब आपणां ॥
संसार में कोई अमर नांही, अमर हरि भजि गुणगतै ॥
हरि 'परमसंगी' जांणि भूला, अपणैं अपणैं मनमतै ॥९॥

आड़ा डूँगर वन घणा, नदियां ऊँडा नीरवे ॥
दूर दिसावरि चालणां, मन धरि सकै न धीरवे ॥
मन धरि सकै न धीर यहु दुष, सुषमना फूटी वहै ॥
जैसा वाहै लुँणै तैसा, नफा 'टोटा' सिरसहै ॥
और कूँ यहु दोस नांही, कीया पावे आपणां ॥
जन हरीदास दुरमष दुष दारण, आड़ा डूँगर वन घणां ॥१०॥

[२]

मन रे तूँ स्याणा नहीं अयाणा रे !
थोड़ी राति वहौत क्या सोवे, जागि न देषि दिवानां रे ॥टेर॥
माया देषि कहा मन फूल्यो, देही देषि 'मसतानां' रे ॥
झूठी काया झूठी माया, झूठै हेति 'वंधाना' रे ॥१॥
हटवाड़ा आवै ज्यूँ विछड़ै, समझि देषि गेवानां रे ॥
आज नहीं तौ काल्हि न रहणां, मरण नदी वहि जाणां रे ॥२॥

पाठभेद—मरो-४-५। प्रमसंगी-१। तोटा-१। मस्तानां-४। वधाणा-५।

शब्दार्थ—मरोह=मरो, वासनारहित बनो। गुण गतै=तीनो गुणो मे रहित बनो। डूँगर=काम, क्रोध, लोभादि। वन घणां=सशय, अज्ञान, भ्रमादि। नदियां=तृष्णा, वासना, इच्छा आदि। दिसावरि=विदेश, परदेश। फूटी वहै=अपना मार्ग छोड़ कर अनवस्थित चले। लुँणै=काटे, पावे। दारण=कठिन। स्याणा=ज्ञानी, विचारवान्। अयाणा=अज्ञानी, बेसमझ। विछड़ै=दूर हो, वियोग हो। गेवाना=गर्व मे गाफिल।

भौपति वहौत कलै माया मैं, मीर मुलक 'सुलतानां' रे ।।
जन हरीदास विरला जन कोई, उलटी 'पांष' 'उडाणां' रे ।।३।।

[४]

सजन सनेह रा वे, गांण हरि गुण गाइ ।।टेर।।
भँवर ज्यौं मन फिरै दह दिसि, काल दह दिसि है सही ।।
जहां लागै तहां काँटा, निज नांव विणि निरभै नही ।।१।।
अजहु जिवड़ा कहा सोवै, जुगति जांणि न जागही ।।
आक जड़ क्या दूध सींचै, अंति आंब न लागही ।।।।२
जांणि ऐसे भजो गोव्यिंद, परसि हरि रस पीजिये ।।
जन हरिदास हरिगुण गाइ 'निसदिन', प्रांण हरि कूँ दीजिये ।।३।।

[५]

सोई दिन आवेगा, अपणो रांम संभालि वे ।।टेर।।
अनेक रावण सेनि जोधा, मांणि मूँका तै गया ।।
काल झल मैं सकल आया, तनस दावानलि दह्या ।।१।।
असुर सुर षसि पहुम ऊपरि, पहुम कर गहि तोलता ।।
'जुरासिंघ' वलि कहां विक्रम, बोल अंवला बोलता ।।२।।
पाँच 'पांडौ' कहाँ कैरूँ, एक गैलै सव वह्या ।।
'सिसपाल' सेन्या कहाँ 'जादू', कहौ जै कोई रह्या ।।३।।
'हिरणाकुस' हिरणांषि मुचकंद, करण महा दानी भया ।।
कहौ छल वल कहां माया, अंति सव षाली गया ।।४।।

पाठभेद—सुलितांना–४ । पंप–१-५ । उड़ाना–४-५ । न्यसदिन–२ । जुरास्यंध–२ ।पांडू–३-५ । स्यसपाल–२ । जादौं–५ । हिर्णाकुस–४ ।

कलै=फँसे, रुक जाय । सनेहरा=सनेही, प्रेमी । जुगति=उपाय, साधना । आंब न=आम नहीं लगे । मांणी=महामानी । मूँका=मूक, चुपचाप । झल=ज्वाला, लपट । तनस=शरीर तो । षसि=लड-झगड । अँवला=विपरीत, उल्टा ।

धरचा धूँवा सकल विनसै , काल काँटा लागिहै ॥
अधर बसत अनूप अंतरि , कोइ साध गुरगमि जागिहै ॥५॥
पतिसाह भोपति कहां सुरपति , जाल सब परि डारिहै ॥
जन हरीदास 'सूछिम' होइ जल ज्यूँ , कोइ चोर हरिजन टारिहै ॥६॥

•[६]

जिवड़ा जाय कहा तूँ रहसी वे ,
करणहार करतार न जांण्यौ , सलिल मोह संगि वहसी वे ॥टेर॥
काची परष 'सराफी' पोटी , ता तैं परदुष सहसी वे ॥
राम नांम निज भेद न जाण्यों , काल चटा तैं गहसी वे ॥१॥
हरि 'प्रीतम' सूँ प्रीति न वांधी , झूठ तहां जाइ 'ठहसी' वे ॥
जब जम आया झूठ विलाया , रसन तालवै फहसी वे ॥२॥
जब इहि जीवड़ै किया पयाणा , बहुड़ि न यहु तन लहसी वे ॥
जन हरीदास माया अपराधिणि , 'वहौत' भांति करि दहसी वे ॥३॥

[७]

समझि देषि 'कुछ' नांही रे !
तूँ नांही नांही सूँ लागा , साच न सूझै मांही रे ॥टेर॥
परमसनेही छाड़ि आंपणौ , विष इम्रित कर षाजै रे ॥
सूकर स्वांन स्याल कउवा गति , काल सदा सिरि गाजै रे ॥१॥
हंस बटाऊ परघरि वासा , अब तूँ समझि सयाणाँ रे ॥
पांच सात दिन एक आव मैं , ऊठि अकेला जांणा रे ॥२॥

पाठभेद—छूछिम–१ । सरापी–४ । प्रीत्म–२ । ढहिसी–१ । वहुत–१ । कछु–४-५ ।

शब्दार्थ—धरचा=उत्पन्न हुआ । धूँवा=नाश । चौर=कामादि, कालरूप । सलिल मोह=मोह की नदी मे ।। काची परष सराफी पोटी=संसारी भोगो मे सुख समझना यह परख–परीक्षा या सराफी झूठी है, खोटी है । चटातैं=चट म, क्षण मे । गहसी वे=पकड़ेगा । ठहसी वे=ठहरेगी । फहसी=फँसेगा । दहसी वे=जलावेगी, सन्तप्त करेगी । नाही=नाशवान, विनाशी ।

कालकहर की चोट सकल सिरि, कै मारचा कै मारै रे ॥
जन हरीदास भजि रामसनेही, सरणैं राम उवारे रे ॥३॥

[८]

तव हरि हम कूँ जांणैंगे, जांणैंगे हरि जांणैंगे ॥टेर॥
मात पिता परिवार सकल तजि, सवसूँ उलटी तांणैंगे ॥
हरि है साच 'और' सव झूठा, वा हरिसूँ 'वाणिक' वांणैंगे ॥१॥
आंन दसा सूँ जव मन 'थाक्या', करम भरम संगि नांणैंगे ॥
राम 'रसाइण' का मतिवाला, आदू प्रीति पिछांणैंगे ॥२॥
सौंकणि उलटि सपी जव 'हुँहिगी', उलटी नदी चलायेंगे ॥
पारा वांधि प्रेम रस पीया, राम रोम 'रुचि' माणैंगे ॥३॥
जन हरिदास सांसा सव भागा, राम रसाइण पीवैंगे ॥
आन सकल सुप विष भरि देष्या, हरि 'सम्रथ' भजि जीवैंगे ॥४॥

[९]

तव हम हरि गुण गावेंगे, गावेंगे गुण गावेंगे ॥टेर॥
काम क्रोध सांसा सव जीत्या, मोह मता मुरझांवेंगै ॥
'पांचो' पकड़ि आप वसि 'लहैंगे', वंकनालि रस पावैंगे ॥१॥
दुप सुप छाड़ि सहज घरि पेले, कुवधि सुवधि सूँ षावैंगे ॥
ऊजड़ छाड़ि सुलटि मन उलटा, एक 'दसा' कूँ लावैंगे ॥२॥
सतगुर सवद चांदिणा मेरे, अगम तहां हम जावेंगे ॥
तेज पुंज परगट परपूरण, सूँनि मंडल मै पावैंगें ॥३॥

पाठभेद—अवर-१ । वाणक- ५ । थाका-२-३ । रसायण-५ । होहिगी-४ । रुच्य-२ । समरथ-१-५ । पाचू-१-४ । ल्यहेगे-१ । दिसा-१ ।

शब्दार्थ—वाणिक=सम्बन्ध, वणाव । नाणेगे=नही रखेगे । सौकणि=सौक, डाह रखने वाली, विषयरत इन्द्रियाँ । उलटि=अन्तर्मुख हो । पारा वांधि=शुक्र को ऊर्ध्वगामी कर, मन सुस्थिर कर । मुरझावेगे=कुम्हला जायेंगे, सत्वरहित । वंकनालि=सुषुम्नाद्वारा । ऊजड=उजाड, संसाररूपी वन । एकदसा=सहज दशा । चांदिणा=प्रकाश । सूँनि मंडल=शून्य मंडल ।

घटि घटि अघट घटत हरि नांही , सोई रमतारांम रमावैंगे ।।
जन हरिदास दाम हरि भजि भजि , हरि ही मांहि समावैंगे ।।४।।

[१०]

समझि देषि मन मेरा रे !
या 'जग' मांहि जागि हम देष्या , सगा न कोई तेरा रे ।।टेर।।
तात मात वनिता सुत बंधू , जतन जीवतां करि ही रे ।।
मूँवा जालि बालि घरि आवै , ता 'मरहट' तैं डरही रे ।।१।।
राम बिसारि हारि मति चालौ , कहि समझाऊँ लोई रे ।।
माया सांचि संगि ले जाता , देष्या सुण्या न कोई रे ।।२।।
जामैं मरै मरै फुनि जामैं , 'मरत' लोक मैं आवै रे ।।
जन हरिदास देषि मतिमंदा , गोव्यंद काँई न गावै रे ।।३।।

[११]

राम नहीं वीसरूँ हो , मेरे गुरगमि दियो बताइ ।।टेर।।
ज्यूँ 'नटणीं' निरभै थकी हो , बरतैं लागी जाइ ।।
इतवत चित डोलै नहीं , चित वरतैं 'रह्यो' समाइ ।।१।।
मरजीवौ समदां धसै हो , तन मन सुरति समाइ ।।
वीचि कहूँ अटकै नहीं , निज सीप संभालै जाइ ।।२।।
गुरज नाल गोला वहै हो , 'धणंक' बांण सर पूरि ।।
स्यांम 'काज' सनमुष लड़ै , उलटि न षेलै सूरि ।।३।।
ज्यूँ चात्रिग 'घणकूँ' रटै हो , पिव पिव करत बिहाइ ।।
यूँ जन हरीदास हरि नांव मैं , मन सहजैं रह्यो समाइ ।।४।।

पाठभेद—जुग–१-३ । मडहट–१ । म्रत–२ । मृत–४ । नटनी–५ । रह्या–२ । धनक–४-५ । काजि–४ । घन कूँ–१-२ ।

शब्दार्थ—जतन=उपाय । मरहट=मशान, मरघट । वीसरूँ=भूलूँ । वरतैं= वरत, रस्सा । धसै=प्रविष्ट हो, अन्दर जाय । धणंक=धनुष । घणकूँ=मेघ, बादल को ।

[१२]

है बलवंती माया !
लीया षड़ग सकल सिरि पेलै , षांण मतै कै षाया ।।टेर।।
माया पुरस नारि फुनि माया , माया आंन सगाई ।।
माया स्वामी माया सेवग , वहौत भांति करि आई ।।१।।
जोगी संगि जोगणि होइ चाली , भगतणि भगत मनाया ।।
सोफी संगि सोफणि व्है चाली , माथै मुकट वणाया ।।२।।
सींगी रिष ख्रषिम 'व्है' सोष्या , नारद रूप फिराया ।।
संकर का मन मांही पैठी , नाना भांति नचाया ।।३।।
अगनि रूप होइ में तें पंडै , परसि परसि परचावे ।।
जन हरीदास विरला जन कोई , उलटि परम पद पावे ।।४।।

[१३]

जीवड़ा जागि न देषै लाईवे !
जम जागत है तूँ क्या सोवे , राम सुमरि मेरा भाईवे ।।टेर।।
निसदिन आव घटै तन छीजै , ज्यूँ अँजली का पांणीवे ।।
'तजि' अलसाक अलप है जीवण, समझि देष 'अभिमांनी'वे ।।१।।
मात पिता सुत वित भी नारी , संगि न चालै कोइवे ।।
तासूँ लागि विकट 'मति' वौरा, 'मनषि' 'जनम' निधि षोइवे ।।२।।
वांसै वाहर छिप्या न छूटै , देही जुरा वुढ़ांणीवे ।।
पंडर केस हाथ 'नैंणांपार' , काल 'धजा' फहराणीवे ।।३।।

पाठभेद—होइ–२-३ । तज्य–२ । अभ्यमानी–२ । मत–५ । मिनख–५ । जन्म–४-५ । नैना–२-५ । धुजा–१ ।

शब्दार्थ—पैठी=प्रवेश हुई । पंडै=कण-कण करदे । परचावे=प्रेरित करे, प्रवृत्त करे । लाई वे=दु:ख, संताप, मृत्युमय ज्वाला मे । अलसाक=आलस । विकट=डरावना, भयंकर । मति वौरा=विकृत बुद्धि । पंडर=सफेद ।

'औघट' घाट विचाले दरिया , तहां भेरा नांव मुरारीवे ॥
तहां लागि तैं पार न कीया , परदेसी अहंकारी वे ॥४॥
जहां उदै न 'अस्त' काल नहि काया, सोइ परम सनेही तेरा वे ॥
हरीदास जन टेरि कहत हूँ , तहां चलो जीव मेरा वे ॥५॥

(१४)

राम असाँड़ा सांई हो !
राषौ वोट चोट क्यौं लागै , समझि पड़ै कुछ नांही हो ॥टेर॥
पांच पचीस सदा संगि षेलै , आंवर करै अवाई हो ॥
तुम्ह अटकौ तौ वहौड़िन व्यापी, हम वल कछु न वसाई हो ॥१॥
तारण तिरण परम सुषदाता , यहु दुष कासूँ कहिये हो ॥
करम विपाक'विघन''होइ' लागा, तुम्ह राषौ तौ रहिये हो ॥२॥
समद अथाह अगह करणा मैं , गौड़ि करै नित गाजै हो ॥
ता मैं मछ कमल सा षेलै , 'मांझि' दुरै सो षाजै हो ॥३॥
ऐ अघरूप अनंत मोही जारै , अंध कूप मैं घेरा हो ॥
जन हरीदास कूँ आस न दूजी , रांम भरोसा तेरा हो ॥४॥

[१५]

समझि सुष पाइया रे , ता सुष मैं रह्या समाइ ॥टेर॥
समझि सवाई तव पड़ी , जव सतगुर 'भये' सहाइ ॥
गुर 'किरपा' तैं हरि भज्यो , गुर दिया साच वताइ ॥१॥
अगम पियाला रुचि पिया , त्रिसना तपति वुझाइ ॥
पूरै गुर वित वहौड़िया , सूरा होइ सो षाइ ॥२॥

पाठभेद—अवघाट–१ । असत–२ । विघ्न–१ । व्है–१ । माझ–५ । भए–३-५ । कृपा–५ ।

शब्दार्थ—भेरा=नौका । असांडा=हमारा । आवर=आवरण, पर्दा । करम विपाक=कर्मों के फल । गौडि करै=उछाले दे, तरंगित हो । सवाई=अधिक, विशेष । वित=आत्मा का ज्ञानरूपी धन । बहौडिया=वापिस कराया ।

'निसि' भूला दिन समझि है, दिन भूला समझै नांहि ॥
तूँ तांका संग छाड़ि दे, काहै 'भौजलि' जाहि ॥३॥
'जुग' सगला भौंजल पीवै, हरि जन पीवै नांहि ॥
जन हरीदास 'ज्यांह' परि भज्या, ते षोटा अनंत न षांहि ॥४॥

[१६]

गाफिल नींद न करिपे रे!
जीवण नहीं मरण सिर ऊपरि, ता मरणां सूँ डरिये रे ॥टेर॥
रजनी मोह नींद भरि सूता, परम भेद नहिं पाया रे ॥
अति अभिमान वदत नहिं काहू, हीरा सा 'जनम' गमाया रे ॥१॥
गहि गुर ग्यांन जागि जीव जोगी, झूठै भरमि भुलाना रे ॥
हरि सूँ विमुष नाचि नानाविधि, छाड़ि चले 'सुलतांना रे ॥२॥
आयौथौ तूँ साचे सौदे, काचे लागौ भाइ रे ॥
हटवाड़ा हम 'विछुड़त' देष्या, जागौ रांम दुहाइ रे ॥३॥
अब तूँ समझि देष निसि बीती, पैंडा करणां लोई रे ॥
तसकर वहौत दूरि घर तेरा, साथी संगि न कोई रे ॥४॥
जन हरिदास रांम भजि भाई, देषि देषि पांव 'धरणां' रे ॥
हरि दरवारि झूठ नहि भावै, तिल तिल लेषा 'भरणां रे ॥४॥

(१७)

संतो! मान मरोड्यां मारे रे,
डिंभक सा डाकणि चूंणि षाया, कोई 'अतक' पड्या पुकारे रे ॥टेर॥
साधां कौ मै भारी मानै, हरि सूँ नातौ पालै रे ॥
आपै चढ्या चढ़ी गटकावै, पावक होइ परजालै रे ॥१॥

पाठभेद—निस–२-३। भौजल्य–२। भवजल–५। जग–४-५। ज्यां–४-५। जन्म–३-५। सुलिताणा–१। विछडत–५। धरना–५। भरना–५। मिरतग–१। मृतक–४-५।

शब्दार्थ—सगला=सब, पूरा। मरोड्यां मारै=ऐंठे दे रहा है। डिभक=बच्चा। आपै चड्या=अहङ्कार मे लिप्त।

जन सूँ जेठ वहू कौ नातौ, आडौ पडदौ रापै रे ॥
दूजा सव देवर करि देष्या, रसनां आगै चापै रे ॥२॥
आंवरि 'करि' सकल जग उपरि, घट घट मांही जागै रे ॥
जन हरीदास सिर छाड्यां पेलै, ताकां चरणां लागै रे ॥३॥

(१८)

'निद्रा' मांही थकी मसोसे,
वादि चढ़ी गिरि ऊपरि पेलै, लाधी 'वरतणि' पोसै ॥टेर॥
पहली 'नैंण' 'वैंण' कंठ रोकै, 'चेतन' घणां चुकावे ॥
पांव पड़ै रीड़ा तैं फीड़ा, कांई कल छिटकावै ॥१॥
आंवरि करै अकल की चेडी, आई जै त्यूँ आवै ॥
ता आगे कोई जोगी जुध करि जागै, उलटी ताली लावै ॥२॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै, निरभै नाद वजावै ॥
जन हरीदास निद्रा अपराधणि, गंग तरंग दिषावै ॥३॥

(१६)

राम भजन हिरदै नहीं हेत, जहां तहां अपणां मन देत ॥टेर॥
मोह दोह माया मदमाता, देषो जीव जहर फल पाता ॥
हारि जीति का पासा हाथि, नरकि चलै दुरमति ले साथि ॥१॥
जव लगि जीव पांच का चेरा, तव लग काल न छाड़ै केरा ॥
जन हरीदास नर नींद न जागै, साच कह्या काँटा सा लागै ॥२॥

पाठभेद—करै-४। न्यद्रा-१। व्रतणि-१। वरतण-५। नैन-३। वैन-३। चेतनि-१।

शब्दार्थ—जनसू=ईश्वर-सेवक सूँ। आवरि करि=पर्दा डाला। माही थकी=भीतर बैठी हुई। मसोसे=मसले। वादि=आग्रह, हठवश। लाधी वरतणि पोसै=प्राप्त ईश्वरचिन्तन-प्रवृत्ति को छीन ले। चेतन=चेतना, चित्त, चिन्तन। रीडा तै फीड़ा=इधर-उधर, लड़खडाते। चेडी=चुड़ैल सी लगकर।

(२०)

मंतो मदर भेष 'पण' त्रिस्ना व्यापै, भजन भेद यहु नांही रे ।।
वाहरि साहूकार कहावे, गांठी छोड़ा मांही रे ।।टेर।।
दीसैं स्यंघ स्याल तैं 'कायर', जब लग जोग न लाधा रे ।।
सांमैं पकड़ि आप बस कीया, कुबँधि कांमणी दाधा रे ।।१।।
पहरि सनाह संगि नहि साही, 'बटवाड़ा' घर रूँधा रे ।।
साहिब छाड़ि पेत पिसि चाल्यो, लूँण हरामी सूँधा रे ।।२।।
सांवत तिको सूर सति सोई, 'जिनि' मन मेवासा मठ कीया रे ।।
जन हरिदास सोई मतिवाला, जिनि राम 'रसायंण' पीया रे ।।३।।

(२१)

आये साध भये अहलाद, जिन कै नही विषै रसवाद ।।टेर।।
उनका क्या 'वरणों' विसतार, रामसनेही मेरे प्रांण आधार ।।
सीतल कोमल सन्त सधीर, जनम जनम की मेटी पीर ।।१।।
जन हरीदास आनंद जस होइ, साध मिल्या विष डारचा धोइ ।।

(२२)

राम भजन विन जनम जुवारी, चालत है अपणा वित हारी ।।टेर।।
रे मतिहीण समझि मन लोई, हरि विणि सगा न सूझै कोई ।।१।।
उनमनि लागि गगन रस पीवै, अपणां जनम सफल करि जीवै ।।२।।
जन हरीदास गोविंद गुण गावे, सहज समाधि परम पद पावै ।।३।।

पाठभेद—परिण–३ । काइर–२-३ । वटपाडा–५ । ज्यनि–२ । रसाइण–३-५ । वरनूं–३-५ ।

शब्दार्थ—केरा=पीछा । गांठी छोडा माही रे=गठरी मे तत्व कुछ नही । पहर सनाह=कवच पहन । साही=फौज । वटवाडा=बटमार, डकैत । रूँधा=रोक लिया । अहलाद=आह्लाद, प्रसन्नता, हर्ष । सूझै=दीखे, ज्ञात हो । उनमनि=निराधार ध्यान दशा । गगन=दशम द्वार ।

(२३)

पांडे ! कैसा भजन तुम्हारा ,
मन कूँ पकड़ि सहजि धरि पेलौ, माया षड़ग दुधारा ।।टेर।।
मैं मति 'पूछौं' तुम्ह मति कहियो, राषौ कहा दुराया ।।
मन है एक कहां लावोगे . एक ब्रह्म दूजी माया ।।१।।
कंचन छाड़ि काच सूँ पेलौ , तव लग काची मारी ।।
माया गहो ब्रह्म 'व्है' बैठा , 'इहै' अचंभा भारी ।।२।।
अरथ करै अनरथ उरि अंतरि , परम भेद नहिं पाया ।।
जन हरीदास ऐसा अपराधी , स्वामीपणैं सताया ।।३।।

(२४)

दस अवतार दसूँ 'ए' देसी , अवरां अवर चढ़ावै ।।
सो वाजीगर भलाक नांही , एक कूँ करै गमावै ।।टेर।।
परम 'पुरस' का पार न पावै , आसा सूँ रस लूधा ।।
सूधी राह सहज ही छाड्या , 'ऊजड़' पड्या अलूधा ।।१।।
×निराकार निरभै रे संतो , जो आकार सजावै ।।
हीड़ागर हीड़ा कूँ दौड़े . सो भी धणीं कहावै ।।२।।
तरंग 'सिंध' सो भी हरि नांही , निहचै जाइ विलावै ।।
जन हरीदास अविनासी भजतां , भव जल निकटि न आवै ।।३।।

पाठभेद—पूछूँ–३-४ । होई–५ । यहुतौ–१ । वे–२ । पुरिष–१ । ऊजडि–४ । स्यध–२ ।

शब्दार्थ—दुराया=छिपाकर । स्वामीपणे=ऊँचेपन का अभिमान । दस अवतार दसूँ ए देसी=दसो अवतार इसी भूमि पर के हैं । अवरा अवर चढावे=उन अवतारो का अन्य अन्य रूप मे वर्णन कर भ्रान्त करे । आसा सूँ रस लूधा=आशा वासना के रस लेने का लोभी बना । अलूधा=उलझा, गुमराह हुआ ।

× जो निराकार कालादि भयहीन परब्रह्म है वह कभी अवतार धारण नही करता । क्या हीडागर-सेवा करने वाला सेवक भी कभी घर का स्वामी हो सकता है ?

(२५)

अवधू आसण वैसण झूठा,
जब लग मन 'विश्राम' न पावै, पथ तजि फिरै न पूठा ॥
ग्यांन गुफा जांणै नहि जोगी, अगम अरथ काहा बूझै ॥
पांच अगनि में पड़ि पड़ि दाझै, वा सीतल ठौड़ न सूझै ॥१॥
*त्रिविधि विकार वालि अरि ईंधण, धूँई ध्यान न धारै ॥
ब्रह्म अगनि आकास न भेदै, तौ पारा क्यूँ मारै ॥२॥
='निगम' अगम तहां लगै न 'आसण', 'गरव' नाद निति वाजै ॥
नगरी मांहि भुगति वसि भूषा, जहां तहां उठि भाजै ॥३॥
मन गहि पवन अटकि ले उलटा, परम जोग उरि धारै ॥
जन हरीदास 'निरवास' 'भरम' तजि, निरगुण जस 'विसतारै' ॥४॥

(२६)

राम रस मीठा रे अब पिया ही सुष होइ ॥टेर॥
मीठा ऐसे जांणिये रे, पीवै नारद सेस ॥
मतिवाला गोरष पीवै, रुचि रुचि पिवै महेस ॥१॥

पाठभेद—विसराम-५। न्यगम-२। आसन-४। ग्रब-१। त्रिवास-५। भ्रम-५। विस्तारै-३-४।

शब्दार्थ—आसण वैसण=आसन मार कर ध्यान लगाना। पूठा=वापिस, अन्तर्मुख। पांच अगनि=शब्दादि पांच विषयो की आग। दाझै=जलै, दग्ध हो। सीतल ठौड=परम आनन्द देने वाले आत्मज्ञान रूपी स्थान। परम जोग=अखंडाकार आत्मवृत्ति। निरवास=वासनारहित।

* कामादि शत्रु ममता-मोह अहङ्कारादि विकारो की इन्धन जला न दी जाय ध्यान रूपी घूणी न तापे ज्ञानाग्नि मे प्रकाशित हो प्राणसाधना से षट्चक्रो का भेदन करते हुये आकाश सहस्रार दल मे न स्थित हो तो पारा कैसे मरै-रसायन कैसे सिद्ध हो कैसे ब्रह्म प्राप्ति हो।

= निगम वेद से भी अज्ञात अगम ब्रह्म तत्व-वहाँ कैसे वृत्ति और प्राण का आसन लगे, स्थैर्य हो जबकि द्वैत-भावना से भीतर जात्यादि अहङ्कार का नाद शब्द गूंज रहा हो। काया मे भोगों को भोगने की भूख लगी हुई है उससे मन बार-बार विषयवासनाओ की ओर उठ उठ भाग रहा है।

सींगी रिष वन में पीया रे , हरि रस इम्रित धार ॥
सुषदेव पी निरभै भया , ताकूँ जांणैं सब संसार ॥२॥
गोपीचंद 'निरमल' पीवैं रे , पीवैं हँणवँत वीर ॥
जोगी पीवै भरथरी , जाका अमर भया सरीर ॥३॥
नाम कबीरा निति पीवैं रे , हरि रस 'वारूँ' वार ॥
जन हरदास'ज्यांह'हरि भज्या , 'त्यांह' भागा 'भौ' भार ॥४॥

(२७)

राम रस ऐसा रे , अमली बिणि पिया न जाइ ॥टेक॥
सोफी को पीवैं नहीं रे , 'कुपछि' पड्या सब कोइ ॥
आरति सूँ अमली पीवैं , पी मतिवाला होइ ॥१॥
सोफी सब उलटा पड्या रे , अमली रह्या लुभाइ ॥
भँवर गुफा का घाट में , उनमन सूँ मन लाई ॥२॥
अमली सब 'संसार' है रे , रह्या बिषै मन लाइ ॥
जन हरीदास हरि रस पिया , दूजा कछु न सोहाइ ॥३॥

(२८)

करम भरम का किया कलेवा , सांसा जल ज्यूँ पीया ॥
ताती सीली सहज 'समांणी' , हमतौ उलटे पैंडे जीया ॥टेर॥
सूधै राह सकल जुग चालै , पसवां तहां विलाया ॥
रसना स्वाद 'बहत' यूँ बूड़ी , 'वो' निरगुण नाह न पाया ॥१॥

पाठभेद—त्रिमल-१ । वारौ-५ । ज्या-५ । त्या-५ । भव-१ । कुपछ्र-५ । सँसार-४ । समानी-२-४ । वहोत-५ । वोह-४ ।

शब्दार्थ—वारूँ वार=बारम्बार । ज्या=जिनने । त्याह=तिनके । भौ भार=ससार का भार । अमलो=व्यसनी । सोफी=सोफिया-व्यसन करने वाला । कुपछि=कुपथ मे । आरति सूँ=आसक्ति मे, लगन मे । भँवर गुफा=दशम द्वार । कर्म=बन्धन-कारी कर्म । सासा=सशय । ताती सीली=निन्दा-स्तुति । पसवाँ=पशुवृत्ति वाले ।

निरमल कथा परमपद नेड़ा, अधर अमर निज भालैं ॥
सुलटी सुरति अगम रस पीवैं, 'परगट' पामा रालैं ॥२॥
मैलि चढ्या साचैं रंगि राता, काचैं रंगि मन नांहीं ॥
हरीदास ऐसा जन कोई, वास करैं हरि मांही ॥३॥

॥ इति रागगौड़ी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग मालीगौडी ॥

(२९)

ऐसा परापरैं परभेव, गुरू विना को देवै ॥
'मसतग' ऊपरि 'हमत' राषै, आपणां करि लेवैं ॥टेर॥
अजब धन अजब मन, अजब सुष होवैं ॥
अजब तेज अजब रूप, तरसि तरसि जोवै ॥१॥
अगम गति अगम मति, अगम निधि पावैं ॥
अगम अगम अगम अगम, सतगुर ले लावैं ॥२॥
अनंत सूर निकटि नूर, जोति जोति मिलावैं ॥
जन हरीदास निकटि वाम, दास व्है म पावैं ॥३॥

(३०)

सकल व्यापी हो निरंजन, तूँ सनेही साचा ॥
'और' सकल जाचि 'देषे', कहा जांचूँ काचा ॥टेक॥

पाठभेद—प्रगट–५। मस्तग–३। मस्तक–५। हस्त–३-५। अवर–१। देष्या–५।

शब्दार्थ—रालै=फेंके, पटके। सैल चढ्या=शिखर चढ़ा, साधन के उच्च स्तर में पहुँचा हुआ। परापरैं=परा वाणी से आगे। तरसि=लालायित हो। लै लावे=ध्यान लगावे। सूर=सूर्य।

*जागि लागि प्रेम प्रीति, आंन रीति नांही ॥
×मन पवन अगम गवन, परम सिंध मांही ॥१॥
अगम ग्यांन अगम ध्यांन, अगम अरथ छाया ॥
अगम जोग अगम भोग, अगम अगम पाया ॥२॥
परम तेज परम जोति, परम भेद ऐसे ॥
जन हरीदास अरस परस, षीर नीर जैसे ॥३॥

॥ इति राग माली गौड़ी समाप्त ॥

॥ अथ राग रामगिरि ॥

(३१)

कांइ रे मन! तूँ पर घरि जांहि, हरीजी सा सुषदाई कोई नांहि ॥टेर॥
हरी हीरा बिसरजै क्यूँ नांही, अजब 'षांणि' तेरे घट मांही ॥१॥
=इहै 'सुबधि' चिंतामणि भई, कौड़ी कुबधि सहज ही गई ॥२॥
जन हरीदास सुषसागर रांम, 'नित' सारया साधां का काम ॥३॥

[३२]

आव हमारे आंगणै, 'ग्रह' त्रिभुवन राइ ॥
तुम्ह बिन मैं बिलषी 'फिरौं', अब रह्यो न जाइ ॥टेर॥

पाठभेद—पानि–३-५। सुबुधि–१। न्यन–१। निति–३। ग्रिह–३। गृह–५। फिरूँ–३-४।

शब्दार्थ—जागि=सावधान हो। आन=दूसरी। सिंध=समुद्र, ब्रह्मसागर। अजब=अद्‌भुत। नित सारचा साधा का काम=सर्वदा भक्तों के काम पूरे किये। ग्रह=घर। हृदयकमल में। बिलषी=बिलखती, तड़पती।

* सजग हो अनन्य प्रेम अपनी आत्मा से करो और कल्याण का कोई मार्ग नहीं है।

× अगम सागररूप-परब्रह्म है, मन-प्राण का निरोध कर उसी अगम स्थान मे जाओ।

= यह सुमति ही चिन्तामणि है, इसके प्रादुर्भाव से सांसारिक वासनाओं मे लगी कुबुद्धि आसानी से ही निवृत्त हो गई।

कुल करणी सगली तजी, हरि आनंद मांही ॥
तन तजिवे की वेर है, मिलिये 'क्यूँ' नांही ॥१॥
आरति ऊँणा रति घणी, मेरा मन मांही ॥
दरस परस की वेर है, पति 'छाड़ौ' नांही ॥२॥
मती पिछाणै सांच कूँ, मनां न 'आंणै' हीण ॥
मन आतम एकै मतै, तुंम ही सूँ ल्यौ लीन ॥३॥
जन हरीदास हरि सूँ कहै, तुम विन तन छीजै ॥
'प्रेम' पियाला पाय करि, अपणां करि लीजै ॥४॥

(३३)

वाजीगर वाजी रची, माया 'विसतारा' ॥
वाजी सूँ वाजी रमै, वाजीगर न्यारा ॥टेक॥
काम क्रोध अभिमान का, लै डेरूँ 'वाया' ॥
जल थल जीव जहां तहां, वाजी भरमाया ॥१॥
*अहूँ वास ममता चढ़ी, नव डोरि पसारी ॥
मोह ढोल वाजै सदा, नाचै नर नारी ॥२॥
दुष सुष गोटा ऊछलै, माया मद पीया ॥
ब्रह्मा 'विष्न' महेस लौं, वाजी वसि कीया ॥३॥
मन चंचल निहचल भया, निरभै घरि आया ॥
जन हरीदास वाजी तज्यां, वाजीगर पाया ॥४॥

पाठभेद—क्यौं-३-४। छाड़ूँ-३-४। आनै-३। पेम-१। विस्तारा-१-४। वाहृया-२-४। विसन-२।

शब्दार्थ—सगलो=पूरी, सब। आरति ऊँणा=विरहणी उदास है। रति घणी=प्रेम बहुत है। वाजीगर=ससाररूपी बाजी को बनाने वाले जगदाधार। डेरूँ=डमरू। वाया=बजाया। अहूँ=अहङ्कार। नव=पाच ज्ञानेन्द्रियां, चारो अन्त.करण। वाजी तज्या=माया को छोडे, वासना त्यागे।

× अहङ्कार ने निवास किया ममता सासारिक पदार्थो की चाह चढी वढी इन्द्रिये तथा अन्त.करण ने अपनी भावना की डोर फैलाई।

(३४)

मूरिष सूँ मूरिष मिलैं, मिलि वाद वधारैं ॥
समझ्या हरि सुमिरण करैं, आपा सब डारैं ॥टेक॥
काम क्रोध 'त्रिस्ना' तजैं, संगति सुष पावैं ॥
भवसागर दूतर तरैं, गोविंद गुण गावैं ॥१॥
संगति कीजै साध की, मति मारग बतावैं ॥
भूलां सूँ कोइ जिनि मिलौ, भूलौ भरमावैं ॥२॥
×सांग काछि माया मंड्या, हरि विचि भौ भारी ॥
जन हरीदास माया तजै, ताकी बलिहारी ॥३॥

(३५)

जागौ रे! अब नींद न कीजै, थोड़ी राति न सोवो रे ॥
कोड़ि कोड़ि लैंणी का हीरा, कौड़ी सटे न षोवो रे ॥टेक॥
चेतनि रहौ रषै मति चूकौ, काम क्रोध 'भ्रम' जारौ ॥
तारणहार पषै क्यूँ तिरिसौ, मोटो 'जनम' न हारौ ॥१॥
प्रांणी कांई काल न आपो, 'दिन' 'दिन' नेड़ो आवै ॥
ज्यूँ बालक नां हाथां बाटी, हाड़ौ आइ छिनावै ॥२॥
जन हरिदास कालकर ऊपरि, मेल्हि तिलां ज्यूँ जोवै ॥
हरि तैं विमुष दाढ़ तलि दरड़ै, मूल मधि मनवो षोवै ॥३॥

पाठभेद—तिसना–१। त्रिसनां–२। भरम–५। जन्म–४-५। दिन्य–दिन्य–२।

शब्दार्थ—वाद=विवाद। वधारे=बढावे। सांग काछि=भेष बना कर। कोडि-कोड़ि=करोड़ो की कीमत वाला। चेतनि रहो=सावधान रहो। रषै मत चूको=जन्म सफल करने की रक्षा में कभी मत गफलत करो। पषै=पक्ष, मदद बिना। मोटो जनम=महान् श्रेष्ठ मनुष्य-जीवन। कालकर ऊपरि=काल का हाथ सिर पर है। मेल्हि=रख। दरड़ै=चबा जाय।

× केवल साग तो अत्यन्त त्यागी का बनाया, पर भीतर माया की अपार चाह है ऐसे आत्मा कैसे प्राप्त हो ईश्वर प्राप्ति मे बाधक अपार संसार पड़ा हुआ है।

[३६]

हिन्दू तुरक 'के एक षुदाई' . राम रहीम दोइ नहिं भाई ॥टेक॥
इहां बांमण उहां मुला बकरैं, वेद कतेब कथैं विसरांम ॥
रांम संभालि दूर करि मैं तैं, आषिर एक 'अलह' सूँ काम ॥१॥
काजी वंदे जोर न करणां . सांचा सबद सुणौं सति कांनि ॥
करद सँवाहि गला क्यूँ काटौ, कुछ तौ डर साहिब का मांनि ॥२॥
ए सब जीव उपाया साहिब, ताकूँ मारि पड़ो क्यूँ दूरि ॥
जन हरीदास यहु अरथ विचारै, तासूँ 'षालिक' सदा हजूरि ॥३॥

[३७]

संतो ! राम रजा में रहिये,
मन दे प्रांण सीस दे सदगति, रांम रांम यूँ कहिये ॥टेक॥
'ग्रिह' परिवार मोह तजि मैं तैं, मन की गति मन जांणै ॥
तजि 'अभिमांन' भजौ 'अविनासी', अंतरि अलष पिछांणै ॥१॥
सब संसार कहै कछु नांही, सांई कै 'मनि' भावै ॥
पूरण ब्रह्म परम सुषदाता, अपणै मारगि लावै ॥२॥
×हरि तैं विमुष लोग सब मानैं, सदगति सुण्यां न कोई ॥
*नींदै लोग रांम वित चित मैं, ता 'समि' 'और' न कोई ॥३॥
जन हरिदास रांम कै सरणै, रहै राम ही गावै ॥
'भौ' सागर तिरै निरंजन परसै, निज विसरांम समावै ॥४॥

पाठभेद—एक कल लाई–३-४-५ । अल्ह–४-५ । षाल्यक–२ । गृह–४-५ । अभ्यमांन–२ । अभिनासी–१ । मन्य–२ । सम्य–२ । अवर–१ । भव–१ ।

शब्दार्थ—बकरैं=बोले, कहे । करद=छुरी । सँवाहि=सँवार, पेना कर । पालिक=खुदा, परमात्मा । हजूरि=सम्मुख, अनुकूल । नीदै=निन्दा करे ।

× परमेश्वर मे विमुख हैं–सांसारिक लोग धनादि के कारण बडाई करते हैं वस्तुतः वैसे व्यक्तियो मे किसी की भी सद्‌गति हुई हो ऐसा देखने मे नही आया ।

* संसारी लोग जिसकी निन्दा करते हैं –पर– उसके हृदय मे रामरूपी धन भरा है, उसके समान कोई श्रेष्ठ नहीं है ।

(३८)

एक हरि एक हरि, एक हरि साचा ॥
अलष भजि अलष भजि, सुफल करि वाचा ॥टेक॥
अविनासी पूरणब्रह्म, तहां मन दीजै ॥
रांम भजि रांम भजि, परम गति लीजै ॥१॥
गाइ गोपाल मति, सुमरि मन रांमा ॥
काल लागै नहीं, सरै सब कांमा ॥२॥
एक ह्वै एक होइ, निरभै मतै रहिये ॥
जन हरीदास गुर ग्यांन गहि, 'अगहि' यूँ गहिये ॥३॥

(३९)

'अवगुण' मोहि अनंत करणां मै, काम क्रोध रस भावै ॥
ता रसि लागि नींद भरि सूता, तुम्ह विणि कौंण जगावै-माधो ॥टेक॥
दारण दस मास 'दुषित' 'ग्रभि' अंवला, जल मल भोजन कीया ॥
वहता मल मूत्र नासिका ऊपरि, उरध मास में लीया-माधो ॥१॥
तप करि कष्ट राज रसि लागा, निहचल रांम न गाया ॥
तप बल घट्या काल फिरि ग्रास्या, परहथि प्रांण विकाया-माधो ॥२॥
कीट पतंग मीन 'म्रघ' विसहर, स्वान सिंघ वप धारया ॥
सूकर स्याल काग 'क्रिमि' कुंजर, ऐसे फिरत फिरत पचि हारया-माधो ।३।
जलि थलि वास जुरा संगि मेरे, काल कहर की छाया ॥
जन हरीदास अपणां करि राषो, पतित सरणि अब आया-माधो ॥४॥

पाठभेद—अगह-५। अवगण-३-५। दुषत-५। ग्रभ-५। म्रिघ-१। मृग-५। क्रम-३। क्रुम-५।

शब्दार्थ—वाचा=वाणी। ग्रभि=गर्भ। अँवला=उल्टा, ऊँधा। पर हथि=और के हाथ, पराये वश। म्रघ=मृग। विसहर=सांप।

(४०)

बाबा इहै गरीबी झूठी,
मन अर पवन दोऊ ये फूटा, मनसा फिरै न पूठी ।।टेक।।
त्रिवधि ताप की कंथा पहरी, मनी टोप सिरि जाकै ।।
राग दोष की कांना मुद्रा, कही गरीबी ताकै ।।१।।
पहरया भेष रेष ज्यूँ की त्यूँ, मोह मटी बसि जींवै ।।
तन कै भेष रांम नहिं रीझै, विष इम्रत करि पीवै ।।२।।
पांच चौर 'परदेसी' पहुंता, मिलि षेलै ता मांही ।।
मन में जोर मुषि गहै गरीबी, असलि गरीबी नांही ।।३।।
जन हरिदास आन तजि अनरथ, मनि रांम नांम व्रत धारै ।।
राग दोष काहू सूँ नांही, या असलि गरीबी तारै ।।४।।

।। अथ राग आसावरी ।।

(४१)

अवधू ऐसा ग्यांन विचारा,
है हरि अकल सकल विस व्यापी, रहै सकल तै न्यारा ।।टेक।।
न्यौ मैं अलष अकल अविनासी, सुरति सुपह मति जागी ।।
गोरष गोपि परसि निधि 'निरभै', अनहद सींगी वागी ।।१।।
निज पुरि प्रांण बसै निति निहचल, पवन सुरति सति माला ।।
'ब्रह्मछोल' मैं झूलै षेलै, पीवै अगम पियाला ।।२।।
'निकटि' नाथ निज रूप निरंतरि, नांव निरंजन राया ।।
जन हरीदास निंदौ कौ वंदौ, मन फिरि मन ही समाया ।।३।।

पाठभेद—प्रदेस–५ । न्यरभै–२ । ब्रह्मछोलि–२-४ । न्यकटि–२ ।

शब्दार्थ—फूटा=बिखरा, बाह्य विषयों मे लगा । पूठी=पिछली, वापिस, अन्तर्मुख । कथा=गुदडी । मनी=अहङ्कार । रेप=लकीर, भोगमयवृत्ति । पाच चौर=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ । परदेसी पहुता=विषयो मे लगी । जोर=ब्रह्म,ताकत । अनरथ=अन्याय । गोरप गोप=गुह्यज्ञान । ब्रह्मछोल=ब्रह्मानन्द की तरङ्ग मे । झूलै=स्नान करे, सराबोर हो । निंदौ=निन्दा करे । वंदौ=वन्दना करे, प्रशसा करे ।

(४२)

संतो सो जोगी 'निमतारै',
उलटी चाल सदा रस पीवै, उलटा भेद विचारै ॥टेक॥
'जप' लग मांन ग्यांन मन माचा, रांम कहै कहि जीवै ॥
उलटि पलटि का प्रेम पिवाला, ज्यूँ जागै त्यूँ पीवै ॥१॥
सो मतिवाला जुगि जुगि जीवै, सहज मरे रस लीया ॥
छाक्या फिरै सदा ही रावल, गुरि पाया उनि पीया ॥२॥
पी पी अवधू भया दिवांना, निज सरूप सो जान्यां ॥
जन हरीदास हरि का रस विलसै, सो जोगी 'मनि' मान्या ॥३॥

(४३)

अवधू मैं मेरा मन समझया,
मन जाइथा पणि 'जांणि' न दीया, फेरि सहज घरि लाया ॥टेक॥
के वपधरि वैकुंठ विचारै, 'म्रत' लोक का मारया ॥
जो वैकुँठ धरया सो विनसै, इम कछु अगम विचारया ॥१॥
नरक सुरग दोऊ हम तोल्या, ग्यांन तराजू मांही ॥
'दोन्यूं' विथा बराबरि दीसै, इन मैं घटै वधै 'कछु' नांही ॥२॥
तीरथ 'व्रत' जोग 'जिग' तपस्या, वडी विथा 'जुग' मांही ॥
जन हरीदास ए मलकरि देष्या, इन कूँ परसै नांही ॥३॥

(४४)

संतो है कोई जोगी जोग जुगति गमि जांणै !
बहती नदी ग्यांन कै पारे, वांधि अपूठी आंणै ॥टेक॥

पाठभेद—न्यसतारै-२-४। तव-१। मन्य-२। जाण-१-३। मिरत-१। मृत-४। दोन्यौं-१। को-१। वरत-३-४। ज्यग-२। जग-४-५।

शब्दार्थ—उलटी चाल=अन्तर्मुखी हो। छाक्या=तृप्त हुआ। जाइ था=विषयों की ओर जा रहा था। वप धरि=शरीर धारण कर। विथा=पीडा, दर्द। मल करि=मलीन, पापमय। बहती नदी=सासारिक पदार्थों मे लगी वृत्ति। अपूठी=वापिस, पिछली।

राजस तामस 'स्वातिग' ग्रासै, सेस नाग कूँ पीवै ।।
अलष अधारी आसा राषै, ऐसा जोगी जीवै ।।१।।
सूषिम गली 'निजरि' मैं राषै, पांच चरण तलि चूरै ।।
परमजोति कै परचै षेलै, अनहद सींगी पूरै ।।२।।
सुरति सँवाहि सहजि घरि धारै, निरमल नेह निवासा ।।
जन हरीदास ऐसा जन कोई, देषै अगम तमासा ।।३।।

(४५)

मन रे! सो साचा वैरागी,
त्रिकुटि कोट ऊपरि तत आसण, सुरति 'निरंजन' लागी ।।टेक।।
ग्यांन षड़ग लै वन मैं पैसे, चेला पांच विवोगे ।।
वसत गोपि सतगुर सूँ परगट, परम सूँनि रस भोगे ।।१।।
सागर 'सपत' 'अष्ट' मंड़ल मैं, नदी निवासै तांणै ।।
उनमनि रहै एक रसि लागा, जोग मूल 'विधि' जांणै ।।२।।
अरथ करै करि अरथै दरसै, निज विसरांम न भूलै ।।
गुरगमि 'अवघट' घाटी लांघै, त्रिवेणी संगि झूलै ।।३।।
मन कूँ पकड़ि सहज घरि षेलै, सुरति सहज घरि धारै ।।
जन हरीदास अहरण घण कसणी, तव हरि हाथ पसारै ।।४।।

पाठभेद—सातिग-१ । नजरि-१ । निजर-५ । न्यरंजन-२ । निरंजण-४ । सप्त-५ । असट-२-४ । वंध-३-४ । औघट-५ ।

शब्दार्थ—ग्रासै=खा जाय, नष्ट करे । सेस नाग=संशयरूपी सर्प को समाप्त करे । सूषिम गली=मनोवृत्ति । पाँच=ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचो विषय । सुरति=वृत्ति । सँवाहि=सँभाल । त्रिकुटि कोट=भ्रूमध्य, आग्या चक्र मे । तत आसण=तत्व का स्थान, ब्रह्मरन्ध्र, सहस्रारदल । विवोगे=दूर करे । वसत गोपि=गुप्तवस्तु, परिछिन्न ब्रह्म । सागर सपत=रसादि सप्त धातु । अष्ट मंडल=आठो चक्र, आठो कमल । अरथ करै=तत्वज्ञान कहे ही नही । अरथै दरसै=तत्वज्ञान अपनावे, अनुभव मे लावे । निज विसराम=चिर-सुख प्राप्ति का स्थान । अवघट घाटी=मेरुदण्डगत इडा-पिंगला सुषुम्ना के प्रवाह की प्रणाली । त्रिवेणी=इड़ा-पिंगला, सुषुम्ना समरूप मे । जन हरीदास अहरण घण कसणी=हरिदासजी कहते हैं—जैसे अहरन घन की चोट को सहन कर वस्तु निर्माण करता है, वैसे ही साधक मन, प्राण, इन्द्रियो पर निग्रह करता हुआ अपना लक्ष्य प्राप्त कर ले ।

(४६)

मन रे! सो साचा जूवारी,
जूवैं षेलि 'परमनिधि' परमैं, वहौड़िन रोपैं सारी ॥टेक॥
पहली 'षेलि' वहुत दिन हारया, सतगुर समझि न आई ॥
अब वो डाव चरणतलि चूरया, उलटी मार चलाई ॥१॥
तीन पांच नव डाव न षेलैं, 'चलि' दसवैं घरि आई ॥
अब याह सारि पड़ै नहिं कार्ची, ठौड़ 'अमौलिक' पाई ॥२॥
दुष सुष डाव चाल चौरासी, त्रिवधि ताप तजि पामा ॥
मारी प्रांण प्रेम घरि सौंपी, अरथि अलूधी आसा ॥३॥
चित चौपड़ि चेतन घरि चौथे, दोऊ 'मेल्हि' जुग हूवा ॥
षेलै सदा सुरति कै नाकै, फूटि न चाले जूवा ॥४॥
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन, निज तरवर की छाया ॥
जन हरीदास सतगुर कै सरणैं, करमन व्यापैं माया ॥५॥

(४७)

पांड़े अपनी अगनि बुझावो,
हम तो अपणैं राह चलत हैं, 'तुम' काहे दुष पावो ॥टेक॥
था 'तुम' कौंण कहां तैं आया, अनंत लोक फिरि भाई ॥
अब तो तुम वांमण 'होइ' बैठा, चौरासी विसराई ॥१॥
'गरभवास' ऊँधैं मुषि रहता, सपत धात रस पीया ॥
अब तो तुम्ह चौका दै जीमो, वहां चौका किस दीया ॥२॥

पाठभेद—परमन्यधि–१। षेल्य–२। पेल–५। चल्य–२। अमौल्यक–२। मेलि–१। तुम्ह–३·४। व्है–१। ग्रभवास–१।

शब्दार्थ—वहौडि न=फिर, पुन.। डाव=पासा, दांव। तीन=तीनो गुण। पाच=पांच विषय, रागादि पञ्चक्लेश। नव=नवद्वार। दसवैं=दशमद्वार ब्रह्मरन्ध्र। अमौलिक=बहुमूल्य। अरथ अलूधी आसा=वासना तथा वृत्ति वास्तविक लक्ष्यसिद्धि में लगी। उनमनि=लयवृत्ति।

कुल 'अभिमान' आंन वप पूजा , इहै विथा 'होइ' लागी ॥
जे 'यह' जाति भली थी पांड़े , तौ सुषदेव क्यौं त्यागी ॥३॥
रांम विसारि हारि मत चालौ , आंषि अनूप उघाड़ो ॥
क्रोध चंडाल सदा संगि पेलैं , ता का मूल उपाड़ो ॥४॥
पांच तत का सकल पसारा , प्रांण तहां दुष पावै ॥
जन हरीदास बांमण सति सोई , उलटा ब्रह्म समावै ॥५॥

(४८)

रांम सुमरि जन ऊजला भया रे , परम सनेही अपणां सोधि लिया रे ।टेक॥
सकल उपाइ सकल तै न्यारा , सब देवल मैं रमै हो 'चितारा' ॥१॥
सकल 'भवन' कूँ पालै पोषै , 'कहा' पूजा लै दास संतोषै ॥२॥
जन हरीदास प्रणवै निज दासा, जीव सीव संगि एकै पासा ॥३॥

(४९)

चलणा रे मन विलमन कीजै , रांम भजन का लाहा लीजै ॥टेक॥
जहां जहां जाऊँ जहां जम मारै, करणां सागर सरणि उवारै ॥१॥
दुष सुष नदी वहैं दोइ भारी , ता मैं रांम विमुष भूलै 'अधिकारी' ॥२॥
जन हरीदास औसर भल पाया, ममता मेटि भजौ राम राया ॥३॥

(५०)

सो सुष सुखियो संत विनांणी ,
'वीज' चमंकै वादल 'गरजै' , चढ्या अपूठा पांणी ॥टेक॥

पाठभेद—अभ्यमान–२ । व्है–१ । याह–१ । या–५ । च्यतारा–२ । भुँवण–१ । क्या–१ । इधिकारी–२ । वीजल–१ । गाजे–१ ।

शब्दार्थ—अनूप=अनोखी, ज्ञाननेत्र । ऊजला=शुद्ध, प्रकाशमय । चितारा=चित्र करने वाला, जगत्पिता । वीज चमंकै=ज्ञानज्योति प्रगटे । वादल गरजै=अनहद ध्वनि हो । चढ्या अपूठा पांणी=वृत्तिप्रवाह बाहर से उलट कर अन्तर्मुख हो गया ।

जोगी रोग रति भरि तोड़ै , 'वोषद' अगम बतावै ।।
आसण छाड़ि अगनि में पैसे , उलटी ताली लावै ।।१।।
गंग जमन मधि पवन निरोधै , विष तजि बसन पिंछाणै ।।
गिणि गिणि तार अकल सूँ सांठै, निरगुण का गुण जांणै ।।२।।
छै सै सहस इकीसूँ धागा , अगम तहां ले जोड़ै ।।
निरभै थकी निरंजन परसै , तिल भरि तार न तोड़ै ।।३।।
सेस महेस 'विसन' गहि ब्रह्मा , काटि काटि कम लावै ।।
भरि भरि अगम पियाला पीवै , भाठी चौक 'चिगावै' ।।४।।
मढ़ी अषंडित मांही बैठा , जोगी एक विराजै ।।
जरणां जड़ी जटा मैं राषै , सुष में सींगी बाजै ।।५।।
तिणि ही झालरि बाजा बाजै , तिणि ही देवलि देवा ।।
सूँनि मंडल में ध्यांन हमारा , तिणि ही मूरति सेवा ।।६।।
जन हरिदास अधर उठि चालै, ताका पला न कोई तांणै ।।
तिणि धरती वे सहर एक देष्या , विरला कोई जांणै ।।७।।

(५१)

अवधू माणिक चौकि'महानिधि' लाधी, कह्यां न को पति'आवै' ।।
जा का मोल तोल कछु नांही , सिर सौंपै सो पावै ।।टेक।।

पाठभेद—वोषधि–१ । विष्न–१-५ । चिकावै–१ । महान्यधि–२ । यावै–१ ।

शब्दार्थ—रोग रति भर तोडै=वासना, सगयादि का लेश भी न रहने दे । वोषद अगम बतावै=मन, बुद्धि, इन्द्रियो मे आगे अगम-चेतनतत्वरूप औषधि प्राप्त करावे । आसण छाडि=मायिक पदार्थो की इच्छा का त्याग । अगनि मैं पैसे=ज्ञानाग्नि में स्थित हो । गंग जमन=इडा-पिगला । अकल सू=कलनरहित, मायारहित ब्रह्म मे । साठै=जोडे । छै सै सहस इकीसू धागा=इक्कीस हजार छ सौ श्वासरूपी धागे । सेस=अहङ्कार । महेस=तमोगुण । विसन=सतोगुण । ब्रह्मा=रजोगुण । भाठी=भट्ठी । मंढी अषडित=दशमद्वार, गगनमंडल मे । झालर=स्थिरवृत्तिरूपी झालर । वाजा वाजै=अनहद शब्द से । अधर=निराश्रयवृत्ति । वे सहर=बेगमपुर, शून्यस्थान । माणिक चौक=हृदयप्रदेश मे । महानिधि=परम धन, आत्मप्राप्ति ।

अधर मधर निरमल निहकांमी , नांव निरंजन राया ॥
'धरे' अधर सूँ 'परचा' कीया , सो फिरि तहां समाया ॥१॥
अवरण वरण सकल सँगि रहिता , 'पतिवरता' पति छाजै ॥
भगति सधीर आधार हमारे , चौकी चढ्या विराजै ॥२॥
अरध उरध मधि अगम अधारी , निज तत नैड़ा दरसै ॥
मन मतिवाला भरि भरि पीवै , घटा विनां घण वरसै ॥३॥
उलटी नदी गुणां 'सूँ' न्यारी , महा नीर अति मीठा ॥
सेभ्कां राजा राम पधारचा , 'महलि' उजाला दीठा ॥४॥
नैड़ा निपटन जांणै कोई , करम काट 'वहौ' लागा ॥
जन हरीदास सुष सागरि पैठा , 'भौ सागर' मैं भागा ॥५॥

(५२)

'जोगिया' अलष अभेवा रे !
आरंभ कौंण कहां 'तेरा' आसण, करूँ किसी विधि सेवा रे ॥टेक॥
सकल रूप रसरूप 'विवरजत', सकल रूप तैं कीया ॥
सकल रूप करि सब तैं न्यारा , साधां कूँ सुष दीया ॥१॥
चिंत न चाहि प्रीति नहिं 'परघत', सकल निरंतरि न्यारा ॥
अगहि अरूप अथाह अषंडित , अगम वार नहिं पारा ॥२॥
मैं मेरा उनमांनि विचारचा , करम कूप तजि काया ॥
उलटी सुरति गगनि मैं गरजै , तहां कछु अलष लषाया ॥३॥

पाठभेद—धरये-१ । प्रचा-१ । पतिभरता-१ । तैं-३ । महल्य-२ । महल-५ । वहु-२ । भवसागर-१ । जुगिया-२-३ । तेरो-५ । विवरजित-१ । प्रघत-१ ।

शब्दार्थ—चौकी=अन्त'करणरूपी चौकी पर । अरध=मूलाधार चक्र । उरध=दशमद्वार, सहस्रारदल । मधि=अनहदचक्र, हृदयस्थान । घटा विना घण वरसै=वाह्य बादलों के बिना तालुप्रदेश से निरन्तर झरने वाला अमृत रस बरस रहा है । सेझां=हृदयरूपी शैय्या पर । महलि=देहरूपी महल मे । उजाला=ज्ञानज्योति का प्रकाश । दीठा=देखा । चित=चिन्तन, कामना । चाहि=इच्छा । परघत=दूसरे का घात, हिंसा । उनमानि=अन्दाज ।

(५३)

सुणि लै रे ! साह संदेसा ,
साह कहाइ चोर संगि रापो , जाव 'करोगे' कैसा ।।टेक।।
त्रिमना एक रहै घट भीतरि , निज पद अटकै नांही ।।
ऊँच नीच की माया पांचौ , सो पड़ै रसोई मांही ।।१।।
मैं तैं चितचोर चित पैठा , षंड षंड करि कांपै ।।
अति 'अभिमान' काम वसि काचा, करम कथा कण थापै ।।२।।
सोई साह सदा संगि षेलै , मन की ठौड़ उठावै ।।
वंकनालि 'इंम्रत' रस पीवै , रम ही मांहि समावै ।।३।।
पकड़ि तराजू मन कूँ तोलै , हरि इंम्रत रस पीवै ।।
जन हरिदास साह सति सोई , यूँ सांचा करि जीवै ।।४।।

(५४)

हरि 'विण' जांणि षोटा षात ,
रामजी सूँ प्रीति नाहि , उठि 'दह' दिसि जात ।।टेक।।
भजि निरंजन भरम भंजन , हरि अरि गंजन नाथ ।।
आपणा करि आप राषै , सीस परि धरि हाथ ।।१।।
काल का मैं बंधन कांपै , जाप अजपा आप आपै ।।
उनमनि असथांन , सौदत अवर नांही अभै आपै दांन ।।२।।
नरक का मैं कुँड़ 'टालै' , काल चोट न बहौड़ि सालै ।।
जुरा ग्रासै नांहि सीस दे ताहि, भगति आपै नरहरि वसत है सब मांहि ।३।

पाठभेद—भरोगे-५ । अभ्यमान-२ । इंम्रित-१ । विणि-२-३ । दहि-४ । पालै-१ ।

शब्दार्थ—जाव=जवाब । षाचौ=खीचते हो, अपनाते हो । मैं तैं=मेरा-तेरा भेदवृत्ति । सोई साह=वही साहूकार हो । सदा संगि षेलै=जो सदा आत्मस्वरूप मे लीन रहे । मन की ठौड=मन की प्रवृत्ति, विषयवासना को । वंकनालि=सुषुम्ना । तराजू=विवेक विचाररूपी तकडी मे । आपण करि=अपनाकर । काँपै=काटै । आपै= प्रदान करे । सीस दे ताहि=उसको आत्मसमर्पण कर ।

भरम जल मैं पार लहिये, पेलि उलटा अगह गहिये ॥
, हरि पूरण ब्रह्म अगाध ॥
जन हरिदास निरभै ध्यांन'निरमल', तहां बसत है सब साध ॥४॥

(५५)

संतौ ! सहणै व्है सुप लाधा,
महतौ पकड़ि आप बसि कीयो, सतगुर सबदां बांधा ॥टेक॥
महतौ रोक्यां उपरि महती, किलौ करै कलि नारी ॥
कह्यौ काहू को मांनै नांही, तब गलि गोतो दै मारी ॥१॥
राज बलाही मतै आपणैं, फिरि फिरि करै बुराई ॥
ताकौ सिर जरवा सूँ कूट्यौ, यूँ भागो बड़ भाई ॥२॥
गांव सुहागणि मारग रोक्यो, आड़ी आड़ी आवै ॥
जन हरीदास सोई ततवेत्ता, जौ या 'तैं' पलौ छुड़ावै ॥३॥

(५६)

अवधू ! वेलि आंषि उझांणी,
पैली आंषि सहज मैं षूली, याह सतगुर की सहनांणी ॥टेक॥
पाइक पांच पौलि मैं अटक्या, ग्यांन गुफा मैं आया ॥
गिगन मंडल मैं आसण अवधू, धुनि मैं ध्यांन लगाया ॥१॥

पाठभेद—नृमल-३-४। पै-५।

शब्दार्थ—सहणै व्है=सयाना होकर, सचेष्ट हो आत्मचिन्तन मे लगने से। महतो=मनरूपी महते को। महती=मनसा किलकारियाँ भरने लगी। राज वला ही=अहङ्काररूपी राजवलाही ने। मतै आपणै=अपनी मर्जी से ही। ताको सिर जरवाँ सूँ कूट्यो=इस अहङ्कार का सिर गरीबी-अकिञ्चनता की हथौडियो से चूर-चूर किया। गांव सुहागणि मारग रोक्यो=कुमतिरूपी वलाहिण आड़ी आ विघ्न करने लगी, उसको स्थिर सुमति द्वारा परास्त किया। उझांणी=मिच गई। पैली आषि=परादृष्टि। सहनांणी=निशानी, चिह्न। पाइक पांच=मन की सहायक पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। पौलि मैं=वृत्ति जाने के मार्ग, दृष्टि, घ्राण, रसना आदि। ग्यांन गुफा=आत्मस्थान मे।

ऊँधा कँवल सुलटि करि सूवा , अनहद सवद उचारा ॥
गंग जमन समि रवि ससि मेला , सहजि भया मतिवारा ॥२॥
गम मैं अगम अगम मैं गम है , मन फिरि मन ही समाना ॥
जन हरीदास कछु कहत न आवै , अब हम भया दिवांना ॥३॥

(५७)

मन रे ! सो सतगुर मैं चेला ,
'आनद' महत अगम घरि षेलै , परम जोति सूँ मेला ॥टेक॥
मन गहि पवन गवन गुरगम तैं , पछिम देस पंथ जांणै ॥
सुरति सँवाहि समद मैं पैसे , वसत 'अमोलिक' आंणै ॥१॥
स्वारथ की सीर अटकि अरि अवधू, परसि परम निधि देषै ॥
ए नवनाथ हाथ मैं राषै , तब दिन लागै लेषै ॥२॥
पाइक पांच एक रसि रोकै , गोरष कड़ी सलूझै ॥
जरणां जड़ी जोग जत जांणै , सो या अरथ ही बूझै ॥३॥
सूँनि मंडल मैं बैसि 'निरंतरि' , अणवोल्या 'नित' गावै ॥
जन हरीदास सोई गुर मेरा , जो या अरथ समावै ॥४॥

(५८)

जागि न देषो रे ! हरि नेरा ,
तजि 'बहौ' रूप धूप नहिं व्यापै, सुष मैं सहजि वसेरा ॥टेक॥

पाठभेद—आनंद-२-३ । अमोल्यक-३ । न्यरंतरि-२ । न्यत-२ । निति-३ । वहु-१ ।

शब्दार्थ—ऊँधा कँवल=चक्रो के उल्टे कमलो को । गंग जमन समि=इड़ा-पिंगला समस्थान मे । रवि ससि मेला=सूर्य-चन्द्र मे प्राण का निवास । मन फिरि मन ही समाना=मन मलीनता को त्याग विशुद्धरूप मे बदल गया । दिवांना=मस्ताना । अनहद सहत=अनहद शब्द सहित । अगम घर=सहज स्थान, ब्रह्मरन्ध्र प्रदेश । पछिम देस=वकनालि, सुषुम्ना मार्ग । पंथ=मार्ग । सुरति सँवाहि=वृत्ति स्थिर कर । समद=अगाध व्यापकब्रह्म मे । नव नाथ=पाचों ज्ञानेन्द्रियाँ, अन्त करण चतुष्टय । गोरष कडी=ज्ञान की दृढता । सलूझै=सुलझै, सुगम हो । जरणा=सहनशीलता । सूंनि मंडल=दशमद्वार । अणवोल्या=बिना शब्द, अजपा जाप । धूप=ताप, त्रिविध ताप । वसेरा=विश्राम ।

रमतारांम परम सुष दाता, सकल लोक ता छाया ॥
ता सुष लागि साध अविनासी, अमर लोक फल पाया ॥१॥
आनंद अनंत अनंत 'अघजारण', अनंत चंद तैं 'सैला' ॥
अनंत भाण परकास परमपद, अनंत 'जोति' का मैला ॥२॥
आनंदरूप अगहि अविनासी, अगम तहां गम कीया ॥
जन हरीदास निधि देषि निजरि भरि, जनम सुफल कर लीया ॥३॥

(५९)

'निद्रा' मारै 'मसत' दिवानी,
राव रंक उमराव चुणि मारचा, ऐसी है गैबांनी ॥टेक॥
जोगी जती सेवड़ा सोफी, तिनहु 'तैं' रहै न छानीं ॥
आप निरंजन जुग मैं थापी, काल तणी निसानी ॥१॥
जुग सोवै गोरष जन जागै, ऐसा परम निधानी ॥
जीव जंत सबही वसि कीया, सबहिन कै 'मन' मांनी ॥२॥
जोग जुगति गमि जांणै नांही, निद्रा कै वसि हूवा ॥
जन हरीदास केता नर नारी, माया मांही मूवा ॥३॥

॥ अथ राग आसावरी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सोरठी ॥

(६०)

पल पल जाइ रे! मन जाइ,
करम लागौ 'भरमि' भूलौ, रह्यौ काल लुभाइ ॥टेक॥

पाठभेद—अघजारन-१। षैला-२। ज्योति-१। न्यद्रा-२। मस्त-३-४। सूं-५। मनि-४। भरम-१।

शब्दार्थ—सैला=शीतल, ठण्डा। भांण=सूर्य। गैबांनी=गैब से आनेवाली। छानी=छिपी, गोपनीय। थापी=स्थापित की। गोरष जन=ज्ञानी पुरुष। निधानी=स्थान, अधिष्ठान।

एक सुवटौ उलटि बैठौ, 'विरछ' भीतरि आइ ॥
सोइ विरछ वोछौ असुर मिनी, घात लागां पाइ ॥१॥
एक कलस सुंदरि नीर भरियो, नां पीवै 'पणिहारि' ॥
सोइ कलस फूटो छाड़ चाली, वड़ौ 'अवसर' हारि ॥२॥
पहर 'च्यार सैं' सहज बीती, भयौ मूल गमाइ ॥
गयो वासुर 'रैंणि' आई, नर चल्यौ पोटा पाइ ॥३॥
काल आइ जब फिरयौ 'दौलो', समझि न 'पड़ई' काइ ॥
जन हरीदास हरि का भजन विणि, नर रह्यो जमपुर 'जाइ' ॥४॥

(६१)

हरि सुष निमष 'छाड़ौं' नांहि,
रांमपति मेरे जीवनि जीव की, रहौ मन ही मांहि ॥टेक॥
फुनिग सोभा गयां व्याकुल, बावरौ होइ जाइ ॥
रांम मणि मेरे वसो 'मसतगि', परम संगी राइ ॥१॥
आतमा असथांन 'नरहरि', गया थरहरि ओर ॥
परम जोति प्रकास पूरण, जहा तहां सब ठौर ॥२॥
गरब गांठि न रही मन कै, राग दोष न रेष ॥
जन हरीदास कै राम संगी, प्रांणनाथ अलेप ॥३॥

(६२)

मन तोसूँ कहुँ मन हो, वारूँ वार सुणाइ ॥
अंध तजि अभिमान आपौ, गलित हरि गुण गाई ॥टेक॥

पाठभेद—व्रिप–१ । पणिहार–३ । औसर–३-५ । च्यारुय–१-५ । रैंनि–१ । दौल्यू–२-३ । पडही–३ । छाई–५ । छाडूँ–४ । मस्तगि–३-५ । नरहर–३ ।

शब्दार्थ—सुवटौ=मनरूपी सूवा । उलटि वैठो=संसाररूपी वृक्ष मे आ वैठा । विरछ=संसारवृक्ष । वोछो=ओछा, नाशवान । असुर मिनी=अविद्यावासनारूप बिल्ली । कलस=मानव देह । नीर भरियो=जीवनरूप जल भरा । पणिहारि=अस्थिर वृत्ति । चार सै=चारों–बाल, किशोर, तरुण, वृद्ध । गयो वासुर=जीवनरूपी दिन गया । रैणि आई=कालरूपी रात्रि आई । फुनिग=सर्प । सोभा=मणिरूप शोभा । थरहरि=काँप उठे । ओर=कामादि रिपु ।

पार परहरि सार सत अगहि , गम अरथ विचारि ॥
हरि नांव विणि निरवाह नांही , रषै चालै हारि ॥१॥
ग्यांन 'दाढ़' उगालि अरि अघ , सहज सब सिधि होइ ॥
सपत धात सुधात वसिकरि , सुरति निज नग पोइ ॥२॥
'परमनिधि' निज छाड़ि निसदिन, विषै फल रुचि षांहि ॥
भरम जल पसु जांणि पीवै , गरक दिनि दिनि जांहि ॥३॥
प्रांण संगी 'परसि' 'परगट' , प्रेम प्रीति लगाइ ॥
जन हरिदास रसना रांम 'रटि हो', जुरा जोरै थाइ ॥४॥

(६३)

भजि मन ! अकल देव मुरारि ,
नांव गहि रे ! नांव गहि , हरि ले उतारे पारि ॥टेक॥
निकटि नांव निरूप बड़निधि , सुष 'स्यंध' वार न पार ॥
ता स्यंध मांही वसै हंसा , चुगै मोती चार ॥१॥
अगम अपार अगाध नरहरि, निरषि रे दिल मांहि ॥
दास निज तहां सदा सनमुषि , हिल्या हीरा षांहि ॥२॥
जहां गांवन ठांवन वरण वाढ़ी , मन पकड़ि रे निधि जोइ ॥
जन हरिदास रसना रांम रटिहौ , पीव सदा संगि सोइ ॥३॥

(६४)

रांम राइ मांगू भगति तुम्हारी , सो तो त्रिवधि ताप तैं न्यारी ॥टेक॥
रिधि न मांगू सिधि न मांगू , 'मुकति' न मांगू देवा ॥
आदि अंति तुम सूँ मिलि 'षेलूँ', यहु आरंभ या सेवा ॥१॥

पाठभेद—दाड़ि=१ । प्रमनिधि–१ । प्रसि–१ । प्रगट–१ । रटहो–५ । सिंध–३-५ । मुक्ति–३-४ । पेलौ–५ ।

शब्दार्थ—पार=खारा, अनित्य संसाररूप निःसार । निरवाह=गुजारा । उगालि=चबाकर, खाकर । अरि=कामादि शत्रु । अघ=पाप, अकर्म । सपत धात सुधात वसि करि=रसादि सात धातुओ मे बने शरीर को कब्जे मे कर । स्यंध=सिन्धु, समुद्र । चार=अच्छी खुराक ।

निरमल ग्यांन ध्यांन धुनि निरमल, प्रेम प्रीति परकासा ॥
आसण अचल तहां मन निहचल, तुम ठाकुर में दासा ॥२॥
संजम सील साच सति सुमिरण , पति सूँ प्रीति 'अनेरी' ॥
जन हरीदास कूँ आस न दूजी , आस अनाहद तेरी ॥३॥

(६५)

माधवे ! कठिन जल भ्रम पूरि ,
सकल व्यापी हो सनेही , करो 'कलविष' दूरि ॥टेक॥
जोग ले जाइ 'वसूँ' वनपंड़ि , 'रहूँ' तार्ली लाइ ॥
देषतां मन ऊठि गै ज्यूँ , दंत धरि लै जाइ ॥१॥
पवन गहि लै गगन 'राषूँ' , मेर 'डंड' चढ़ाइ ॥
नाथ तुम्ह 'विचि' बह पड़दा , दूर 'पड़िये' जाइ ॥२॥
चोट हरि विन अवर नांही , काल ग्रासै आइ ॥
जन हरीदास उदास ता तैं , आंन कछु न सुहाइ ॥३॥

(६६)

तोकूँ विड़द किसो दे गाऊँ ,
जुग 'चारौं' वेदां वांचीजै , पैलो पार न पाऊँ ॥टेक॥
अगम अपार पार नहिं कोई , पार न किनहूँ पाया ॥
तूँ है एक मांड़ सब तेरी , 'सुनौ' निरंजन राया ॥१॥
'सूरज' तपै सोई तेज तुम्हारो , घुरै इन्द्र के वाजा ॥
यहु परताप तुम्हारो स्वांमी , तुम्ह जोगी तुम्ह राजा ॥२॥

पाठभेद—अखेरी-१ । कल्यविप-२ । कलिविप-५ । वसौ-१ । रहौ-१ । राषौ-५ । डंडि-१ । विच-५ । पडिए-४-५ । च्यारूँ-५ । सुणौ-१ । सूरिज-२ ।

शब्दार्थ—परकासा=तेजमय । अनेरी=अत्यन्त, घनेरी । कलविप=मलीनता पाप । उठ गै ज्यूँ=हाथी की तरह चलायमान । पडदा=आवरण । माड=विश्व, संसार ।

सात समद इल मूलि न लोपैं, 'त्यांह' किनि पाज वंधाई ॥
जे लोपै मरजाद तुम्हारी, तौ नीर धूलि 'होइ' जाई ॥३॥

तुम्ह तौ आप सकल घटि भीतरि, तुम्ह ही रहौ उदासा ॥
जन हरीदास कूँ 'चरणां' राषौ, मेटो जम की त्रासा ॥४॥

(६७)

मन रे ! झूटा आस पसारा, सब तजि भजि सिरजनहारा ॥टेक॥
धन जोबन सुत माया, 'यह' बादल की सी छाया ॥
जहां बैसि सुष पाया, ताकूँ फिरि धूप जलाया ॥१॥

'हस्ती' घोड़ा गढ़ पाया, अपणां करि मुलक बसाया ॥
चाल्या तब दीया रोई, वा कै संगि न चाल्या कोई ॥२॥

साह बैंद 'सुलितांना', मैं मेरी मांहि भुलाना ॥
इहै काल का फंधा, जीव जागि न देषै अंधा ॥३॥

या हटवाड़ा की वाजी, जिनि ठगै 'मिसर' मुनि काजी ॥
षट दरसण सब ठगि षाया, वाजी का मरम न पाया ॥४॥

मात पिता सुत भाई, सब स्वारथ मिली सगाई ॥
तहां लागि जीव लोइ, 'चिंतामणि' कर तैं षोई ॥५॥

ऊँचा महल अवासा, नांना विधि भोग विलासा ॥
त्रिवधि ताप अहंकारी, भूलो रे वाजी हारी ॥६॥

तेल फुलेल सिरि डारै, नानाविधि देह सँवारै ॥
किसा कांम की काया, वूरयां कै अगनि 'जलाया' ॥७॥

पाठभेद—तिहा-१। हुइ-४। चर्णा-५। याह-१-३। हसती-२। सुल्यताना-२। मिश्र-१। चितामण-५। जराया-१।

शब्दार्थ—इल=इला, भूमि। धूप=संताप, त्रिविध ताप। फंधा=फन्दा, बन्धन। चिंतामणि=अमूल्य मनुष्य देह। अवासा=आवास, रहने का स्थान। वूरचा=गाड़ा, दफनाया।

सतगुर मिलि साच बतावैं, जो पोजैं सो पावैं ॥
जन हरीदास हरि नीका, हरि सकल धरम सिरि टीका ॥८॥

(६८)

मन रे ! उलटि सहज घरि नाया, तब लगि 'वादि' बक्या बौराया ।टेक।
'नाभि' कँवल मैं पवन निरोधूँ, तौं सतगुर का चेला ॥
मन गहि पवन अगम घरि पेलूँ, करूँ अगम सूँ मेला ॥१॥
उलटा 'पेलि' गगन मैं 'पैसूँ', सुरति सहजि घरि 'धारूँ' ॥
'परमजोति' सूँ हिलिमिलि 'पेलूँ', ऐसा अरथ 'विचारूँ' ॥२॥
जन हरीदास निरभै निधि 'परसूँ', परमसिंध मैं न्हाऊँ ॥
जठर अगनि मैं प्राण न होमूँ, आवा गवण चुकाऊँ ॥३॥

(६९)

अब मोहि दरस दिषाइ माधवे,
यहु 'औसर' लाभै नहीं, दिन दिन घटतो जाइ माधवे ॥
प्रीति घटै तौ जिनि मिलो, तुम परमसनेही राइ माधवे ॥
मैं जन बांध्या प्रेम सूँ ॥टेक॥
एक अंदेसो म्हारे मन बस्यो, सो हम बिसरैं नांहि माधवे ॥
निकटि वसौ न्यारा रहौ, एकै 'मंदिर' मांहि माधवे ॥
कै 'मिलि' हौ कै तन 'तजूँ', अब मोहि जीवण नांहि माधवे ॥
प्रांण उधारण तुम्ह मिलौ ॥१॥
अबला मनि व्याकुल भई, तुम्ह क्यूँ रहे रिसाइ माधवे ॥

पाठभेद—वाद–४ । नाभ–५ । षेल–३ । पैसौ–१ । धारौ–५ । प्रमजोति–१ । षेलौ–१-५ । विचारौं–१ । परसौ–१ । अवसर–१ । म्यंदिर–२ । म्यलि–२ । त्यजूँ–२ ।

शब्दार्थ—टीका=शिरोमणि, प्रमुख । नाया=नही आया । वादि वक्या=व्यर्थ बकवास किया । वौराया=पागल हुआ । उलटा पेलि=आत्माभिमुख हो । गगन मैं पैसूँ=ब्रह्मरन्ध्र मे निवास करूँ । परमसिंध=अतिसुखसागर । अंदेसो=सशय, जिज्ञासा ।

तुम्ह मिलि हो तौ 'मिलि' 'रहूँ', नहितर मिल्यो न जाइ माधवे ॥
अंतरजामी आंतरौ, जनम 'सिरांनो' जाइ माधवे ॥
परमसनेही 'तुम्ह' मिलो ॥२॥
पांच सषी सनुमषि भई, सुषमनि सहज समाइ माधवे ॥
मन पवना मेला भया, तुम्ह दवर मिलोगे आइ माधवे ॥
आत्म अंतरि आइये, जन हरीदास वलि जाइ माधवे ॥
दरसण 'द्यौहु' दयालजी ॥३॥

(७०)

पोइवादे रे ! पोइवादे, मांहिला मनोरथ पोइवादे ॥टेक॥
निरगुण नाह न आया, तातैं जीवड़ै 'वहौत' दुष पाया ॥
अव पिव विलमन कीजै, जन दुषिया कूँ सुष दीजै ॥
नैंन पलक भरि जोइवादे ॥१॥
अव विरहणि कूँ सुष दीजै, पिव अपणी करि राषीजै ॥
प्रेम पियाला पावौ, मेरा तन की तपति बुझावौ ॥
अरस परस मिलि सोइवादे ॥२॥
पिव निकटि निरंजन 'नैंरा', भवभंजन संत सधीरा ॥
जन हरीदास हरि पाया, सुषसागर मांहि समाया ॥
हीरै हीरा पोइवादे ॥३॥

(७१)

दरसण दे हो देव दरसण दे, मोहि नैंन पलकभरि परसण दे ॥टेक॥
आव घटै तन छीजै, तुम्ह हो तैसी कीजै ॥
भवसागर वार न पारा, मेरे तुम्ह ही राषणहारा ॥१॥

पाठभेद—मिल्य–२। रहौं–५-१। सिराणो–१। तुम–५। देहु–१। बहुत–१। नीरा–५।

शब्दार्थ—सिरानो=क्षीण होना, घटना। पाच सषी=अन्तर्मुखी पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। षोइवादे=गमाने दे, खत्म करने दे। नाह=पति, स्वामी। हीरै हीरा पोइवादे=आत्मतत्व को परमात्मतत्व मे मिलाने दे।

देवा 'विलमन' कीजै, मोहि विरहणि कूँ सुष दीजै ॥
तुम्ह विन 'पीड़' न जांणै कोई, पीया पड़दै प्रीति न होई ॥२॥
साहिव मेरा पूरा, जाकै वाजै अनहद तूरा ॥
जो मेवै सो पावै, तातैं विरहणि विलम न लावै ॥३॥
मोहि विरह मतावै सांई, मैं अवला तुम्ह ही तांई ॥
ज्यूँ 'घन' कूँ तरसै मोरा, यूँ हरीदास जन तोरा ॥४॥

(७२)

आयो उलटि जाऊँ नहीं,
दयाल हो 'किरपाल' माधो, मन मँड्यो चरणां मांही ॥टेक॥
संसार भार अपार 'अपरवल', 'जहां' काचा रंग ॥
आप थापी महापापी, भगति पाड़ै भंग ॥१॥
भरम जल मैं कल्या केता, अजहूं कलि कलि जांहि ॥
राम विना मेरे धणी नांही, नहिं 'वसूँ' किलविष मांहि ॥२॥
वास 'जग मैं' त्रास जम की, अलप जीवन मोहि ॥
जन हरिदास कूँ विसवास तेरा, मैं न छांड़ौं तोहि ॥३॥

(७३)

संतो ! कुवधि काल तैं डरिये,
भवसागर 'तिरिवे' के तांई, देषि देषि पग धरिये ॥टेक॥
लीयां षड़ग द्वारि जम ठाढ़ा, घात पड़ै 'तव' मारै ॥
हरि का जन कोइ संक न मानै, हरि हथियार संभारै ॥१॥

पाठभेद—विलंवन-१। पीर-१। धरण-१-५। कृपाल-५। अप्रवल-४-५। जहा-५। वसौ-१। जुग मैं-१-५। तरिवे-५। जव-५।

शब्दार्थ—उलटि जाऊँ नही=वापिस ससार की मोह-ममता मे नही जाना है। है। अपरवल=महान्वली, अजेय,। आप थापी महापापी=यह मनचाही करने वाला मन महापापी है। कल्या=फँसा, रुक गया। कुवुधि काल=देहाध्यास की कुभावना ही काल का कारण है। घात पड़ै=दांव लगे, मौका हो। संक=प्रभाव, भय।

सुणि सूरज सुत सवद हमारा, ऐसी कदे न होई ॥
गोविन्द का जन जम कै द्वारै, जात न देष्या कोई ॥२॥
मैं मेरा डर सँगि करि लीया, चालि 'उहां' जहां भाई ॥
साचा लै हरिचरणां राष्या, सजा झूठ कूँ ध्याई ॥३॥
'निसवासुर' निरभै गुण गावै, कहि कहि रांम पुकारै ॥
जन हरीदास परगट परमेस्वर, ताका काज सँवारै ॥४॥

(७४)

मन पंषिया मैं तू जाण्यौ रे भाई, उलटै 'षेलि' परमनिधि पाई ॥टेक॥
अगम अगहि अंतर अविनासी, मन निहचल काया तन कासी ॥१॥
अवरण वरण करम नहिं काया, सूषिम ब्रह्म सुसीतल छाया ॥२॥
जन हरीदास निरभै भै नांही, 'म्हारो' प्रांण वसै हरि तरवर मांही ॥३॥

(७५)

अब मैं जांण्यौं हो जाण्यौ, गोविंदो म्हारै मनि 'वस्यौ' ॥टेक॥
अकल सेवा 'करूँ' इहि विधि, मन ही मन समझाइया ॥
नाह निरगुण 'सेझ' आया, परसि सो पति पाइया ॥१॥
साच गहि सति सदा सनमुषि, सषी सब सेवा करै ॥
हरि 'निकटि' निसदिन प्रेम वरसै, तहाँ सिर चरणां धरै ॥२॥
आतमा असथांन आनंद, सवद अनहद वाजिया ॥
कोटि सूरज तेज दरसै, कोटि चंद विराजिया ॥३॥
अगम था सो इहां पाया, प्रांण पीव संगि लाइया ॥
जन हरिदास आसा अरथि लागी, मन मगन मठ छाइया ॥४॥

पाठभेद—वहां–४। न्यसवासुरि–१। षेल्य–२। मेरो–५। वसै–१। करौ–१। सेज–५। न्यकटि–२।

शब्दार्थ—सूरज सुत=धर्मराज। ध्याई=दिलाई। सूषिम ब्रह्म=अति सूक्ष्म चेतनतत्व। अकल=अविनाशी। अरथि लागी=ठीक जगह लगी, लक्ष्यस्थान पर पहुंची।

(७६)

देव न 'जाणूँ' तेरा भेव, तुम्ह कैसे सति मानौं सेव ॥टेक॥
सतगुर मिलि साच वताया, अगम पुरिस ताको 'यह' माया ॥
ताहि भेद जांणै कोइ नांही, सेष सेभ्र पौढ़े जल मांही ॥१॥
जल ही मैं जल होइ समाया, अगम जोग का भेद न पाया ॥
भेद लहै सोई गुर मेरा, जनमि जनमि हूँ ताका चेरा ॥२॥
इहै विचारि पार नहिं कोई, 'सालिगरांम' स रांम न होई ॥
सालिगरांम सहज का देवा, 'मनि' मानें त्यूँ कीजे सेवा ॥३॥
'मसतग' धरै गला मैं राषै, भूठा सदा भूठ ही भाषै ॥
द्वारै मेल्है आला मांही, भूठ भूठ यहु साहिव नांही ॥४॥
अव तूँ समझि देष जीव मेरा, हरि विन और 'कौंण' है तेरा ॥
हरि निरवंध 'वंधनि' नहि आवै, संपटि जड्या सो हरि न कहावे ।५।
हरि परवसि पड़ै न परसंगि आवै, सवहिन तैं न्यारा निरदावै ॥
हरि सव मांहि सकल हरि मांहि, ता साहिव कूँ चिन्है नांहि ॥६॥
'निराकार' निरंजन राई, जन हरीदास ताका गुण गाई ॥
'वो' अविनासी विनसै नांही, दूजा विनसै आवै जांही ॥७॥

(७७)

मन समझाइ लै रे, मन गहि गुर ग्यांन विचार ॥
आनंदरूप अगहि अविनासी, अगम वार नहिं पार ॥टेक॥
आलस आवै साच न भावै, विष का पीवणहार ॥
आसा वसि पड्या डरया अपराधी, जागै नहीं लगार ॥१॥

पाठभेद—जाणौं–१ । या–५ । साल्यगराम–२ । मन्य–२ । मन–५ । मस्तगि–३-४ । कौन–५ । वघन्य–२ । वधणि–५ । न्यराकार–२ । वोह–१ ।

शब्दार्थ—इहै विचारि=यह तो विचारो कि ससार के पदार्थों का पार पाओगे ? सहज=स्वाभाविक, नित्यसत्य । द्वारै=मन्दिर मे । मेल्है=धरे, रखे । सर्पाट जड्या=पिटारी मे रखा, बन्ध किया । लगार=कुछ भी, थोडा सा भी ।

हरि निज नांव नहीं उरि अंतरि , समझै नहीं 'गंवार' ॥
कै तै 'गये' जांहिगे कै तै , सलिल मोह की धार ॥२॥

यहु संसार पार मैं दीसै , ता मैं दाझै जीव अपार ॥
पीवत छकै थकै निज 'मारग' , मै तैं मोह 'किंवार' ॥३॥

तजि अभिमान आन तजि सेवा, माना नेह निवार ॥
हरीदास जन हरि गुण गावै , जा कै रांम अधार ॥४॥

(७८)

राम विसारि मांरे 'प्रान' ,
कुवधि परिहरि सुमर हरि हरि , सुरति 'सिंध' निधान ॥टेक॥
उदरि अवला जठर झलमैं , तहां लियो राषि ॥
गाइ हरि अभिमांन तजि नर , आन सवद न माषि ॥१॥

सिंघ स्याल पतंग कुंजर , सरप कीटी काग ॥
मछ कछ 'होइ' जलां डोल्यौ , तोकूँ अजहूँ न आइ लाज ॥२॥

'मानिषा' अवतार वड़ निधि , षाइये कहूँ 'कालि' ॥
जन हरिदास समझि विचारि सदगति, रांम नाम संभालि ॥३॥

(७९)

'जोगिया' लाधौ प्रीति पछैरो , ता तैं मल नहिं आवै नेरो ॥टेक॥
चंद सूर समि कीया , सतगुर मिलि सावणि दीया ॥
'जतन' जतन करि धोवै , तातैं वहौड़ि न मैला होवै ॥१॥

द्वादस 'आंगुलि' वाई , गहि सुषमनि सहजि समाई ॥
तरसि अगम रस चाषै , ममता सौं मेल न राषै ॥२॥

पाठभेद—गेवार–२। गए–४। मारगि–१। गिवार–२। प्रांण–१-४। स्यिध–१। व्है–१। मान्यषा–२। काल्ह–४। जुगिया–२-४। वहुत–१। आंगुल–३-४

शब्दार्थ—दाझै=जले। आन=और। निवार=दूर कर। झल मैं=ज्वाला में। लाधौ=मिला, प्राप्त हुआ। प्रीति=परमप्रेम। पछेरो=चादर। मल=मलीनता। चंद सूर=इड़ा-पिंगला। सावणि=उपदेशरूपी साबुन। तरसि=अतिचाह से, लालायित हो।

जन हरीदास हरि नेरा, तहां प्रांण विलंब्या मेरा ॥
हरि प्रीति 'पछेरा' दीया, ताकूँ हम वोढ़न जीया ॥३॥

(८०)

गोविंद किसौ औगुण मांहि,
सुष नांव सागर छाड़ि हरि को, दुष 'चल्या' जमपुर जांहि ॥टेक॥
कहति जोगी रहति रोगी, रोग की वरि षांनि ॥
मोइ रोग दिन दिन डाल मेल्है, वूड़ि गया अभिमांनि ॥१॥
पहरि मुद्रा मगन हूवा, रहतिन आई हाथि ॥
पछै रावल छाड़ि कावल, चल्या 'जुग कै' माथि ॥२॥
पांच राषि न प्रेम पीया, 'दसूँ' दिसा कूँ जांहि ॥
देषि अवधू 'अकलि' ऊँधा, अजहूँ चेतै नांहि ॥३॥
हरि नांव निरमल 'निकट' नांही, विकटि 'षेलै' वाइ ॥
जन हरिदास जोगी छाड़ि आसण, जमलोकि आवै जाइ ॥४॥

(८१)

मन रे! जगत भूलौ 'जोइ',
अलष की गति लषै नांही, भेषि भगति न होइ ॥टेक॥
तीरथ 'व्रत' सव मांड़ 'ऊली', तहां चालै जांहि ॥
झूठ सूँ संसार राता, साच देषै नांहि ॥१॥
नदी उलटी वहै निस दिन, संमदि लागी जाई ॥
×ता समंद का कछु भेद दूजा, तूँ तहां ताली लाइ ॥२॥

पाठभेद—पछेवरा–१। चले–४-५। जग कै–५। दसौ–१। अकल्य–२। न्यकट–२। पल्है–२। जोय–१। वरत–२। वोली–१-२।

शब्दार्थ—विलंब्या=लगा, आश्रित हुआ। कहति=कथनमात्र। रहति=रहनी। डाल मेल्है=फैलाव करे। वूडि गया=डूब गया। कावल=गलत रास्ते, कुमार्ग। पाच राषि=पांचो ज्ञानेन्द्रियो को वश मे कर। ऊली=इधर की, संसारवंधन की।

× उस आनन्द सागर का रहस्य और ही है तू वही ध्यान लगा।

मो समंद अति दुप सुप न व्यापै , जन थाह पावै नांहि ॥
×ता समद मांहि बसै हंसा , हिल्या हीरा षांहि ॥३॥
भरम जल जब जांणि पीवै , तब पार पावै नांहि ॥
जन हरिदास 'कलिजुग' वहैं जोरै , ता मैं बह्या स्वामी जांहि ॥४॥

(८२)

अब मैं हरि बिन आन न जांचू , भजि भगवंत मगन व्है नांचू ॥टेक॥
हरि मेरा करता हूँ हरि कीया , मैं मेरा मन हरि कूँ दीया ॥१॥
ग्यांन ध्यांन प्रेम हम पाया , जब पाया तब आप गमाया ॥२॥
हरि रांम नाम व्रत हिरदै 'धारौं' , परम उदार निमष न 'बिसारौं' ॥३॥
हरि गाइ गाइ गावैथा गाया , मन भया मगन गगन मठ छाया ॥४॥
जन हरिदास आस तजि पासा , हरि निरगुण निज पुरी निवासा ॥५॥

(८३)

सोई देवा सोई सिरजनहार , जाकै जोग ध्यांन का बहु बिसतार ॥टेक॥
नाथ निरंजन वार न पार , निराकार निरमल ततसार ॥
ताहि भेद जांणैं नहिं कोइ , भेदी हरि सूँ न्यारा नहिं होइ ॥१॥
जाकी 'आग्या' पवन चलै दिन राति, माइ बाप 'तिस' नांही जाति ॥
सोभा कहा कहीजै जाकी , सकल मांड़ या दीसै ताकी ॥२॥
जाकै हुकम इंद्र मेघ बरसावै , जीव जंत सकल सुष पावै ॥
करि अभिमान इंद्र अलसाकै , तौ वाकूँ मेटि और कूँ थापै ॥३॥

पाठभेद—कल्यजुग-२ । धारूँ-३ । बिसारूँ-३ । अग्या-१ । तस-१ ।

शब्दार्थ—जोरै=प्रबल । जाचूँ=माँगू, याचना करूँ । आप गमाया=आपा खोया । मांड=भूतल, ससार । अलसाकै=आलस करे, अवज्ञा करे ।

× उस महाआनन्ददायी समुद्र में ही वह परब्रह्मरूपी हंस निवास करता है, जो उन हंस से मिलता है वही मोती चुग सकता है ।

जां भैं काल सकल जुग 'पाई' , निसवासुर दौड़तां विहाई ॥
जवही करैं काल विसवाम , तवही देपि काल का नास ॥४॥
जाकै सागर 'सपत' षुसी सूँ धीर , उलटि न चालैं तिनका नीर ॥
उलटि नीर वरतैं तिन माही , हरि आग्या भी मेटैं नांही ॥५॥
गिर परवत भी रहसी नांही , अनल पंष ज्यूँ ऊड्या जांही ॥
थाप्या जिहि उड़ावैं सोई , वा जोगी विन जुगत न होई ॥६॥
भार अठारा कैसे रहै , दावानल उन कूँ भी दहै ॥
पावक 'परलौं' वरतैं मांहि , 'सातूँ' समद सूकता जांहि ॥७॥
तारा मंडल 'झूठा' विसवास , निराकार निरभैं निज दास ॥
जो दीसैं सो 'रहसी' नांहि , हरिजन रिल 'मिलसी' हरि मांहि ।८।
देषो धरती कहां आकास , रवि ससिहू का व्हैगा नास ॥
उलटि सूनि फिरि सुनि समांही , अंवर धर 'वोड़ैं' जल मांही ॥९॥
परलैं ब्रह्मा इंद्र अनेक , सुर तैंतीसूँ परलैं देष ॥
जो आकार स 'थिर न' रहाइ , 'निरभैं' एक निरंजन राइ ॥१०॥
आंन आस काल की पास , विन हरि भजन झूठ विसवास ॥
जन हरीदास भज रमतारांम , आदि अंत हरिही सूँ काम ॥१०॥

(८४)

हरि इंम्रत रस पाया है , वा मीठा सूँ मन लाया है ॥टेक॥
'दुबध्या' नहीं सदा रस पीवैं , रांम भजन विन कैसे जीवैं ॥
दुबध्या तौ माया को दास , रांम भजै 'पण' कुल की पास ॥१॥

पाठभेद—पाय–५ । सप्त–१-५ । प्रलौ–१ । सातौं–१ झूठ–४-५ । रहता–१ । म्यलसी–२ । वूडै–१ । विनस्या–१ । न्यरभैं–२ । दुविध्या–१ । पिण–१ ।

शब्दार्थ—जा भैं=जिसके भय मे । विसवास=रुके । धीर=धैर्ययुक्त, स्थिर । थाप्या=स्थापित किया, उत्पन्न किया । उड़ावै=उडा दे, समाप्त कर दे । वोडै=डुबोवे । दुबध्या=संशय, अनिश्चय । पण=पर । कुल की पास=कुटुम्ब का बन्धन ।

कांटा दोऊँ डारै षोइ, तौ सहजैं ही आनंद होइ ॥
भरम अंधारा राषै नांही, दरपण ज्यूँ देषै घट मांही ॥२॥
भरम सही कछु 'वरतैं' और, निसवासुर मन नांही ठौर ॥
दरपण मोरचा डारचा षोइ, तौ सहजैं ही दरसण होइ ॥३॥
ऊजड़ चलै न पैंडे जाइ, भूषा रहै न धापि न षाइ ॥
जौ ऊजड़ तौ पूजै आंन, जौ पैंडा तौ कुल मैं मान ॥४॥
'दहूं' गुणां सूँ न्यारा रहै, सो जोति सरूपी दरसण लहै ॥
*जौ भूषा तौ हरि सूँ हेत, जौ धाया तौ फिरै अचेत ॥५॥
×जोगी चालै ऐसै भाइ, सूनि सहर की 'मिष्या' षाइ ॥
तन मन 'तौलि' अकासां चढ़ै, सो जोगी मरवै नहिं डरै ॥६॥
नां 'ग्रह' करै न वन मैं रहै, 'पांचू' 'करम' सहज ही दहै ॥
जौ 'गिरही' तौ चित्त उदार, वैरागी तौ मन कूँ मार ॥७॥
'दोन्यौं' चालै ऐसै भाइ, तिनकूँ काल न परसै आइ ॥
मैला रहै न ऊजल होइ, आपा दोऊँ डारै षोइ ॥८॥

पाठभेद—व्रतै–१-५। दुहूं–१। म्यष्या–२। तौल्य–२। गृह–४-५। पांचौ–४। कर्म–१। ग्रिही–१। दोन्यूं–२-५।

शब्दार्थ—काटा दोऊ=भेदभाव और ममता-मोह का। वरतै=व्यवहार करे, दिखावा। दरपण मोरचा=मनरूपी दर्पण का मैल खो देना। ऊजड चालै=अपथ में चले, प्रतीक उपासना। पैंडे जाइ=एक व्यापक परमात्मा की उपासना के मार्ग मे नही जाता। धाया=तृप्त हुआ, अघाया। पाचो करम=नित्य, नैमित्तिक, संचित, क्रियमाण, प्रायश्चित्तात्मक। गिरही=गृहस्थ। ऐसे भाइ=इस विचार से। आपा दोऊँ=नीच-ऊँचपन का अहङ्कार।

* जो सांसारिक भोगों की भावना तज आत्मचिन्तन की भूखवाला हो, तो उसी का परब्रह्म से स्नेह हो सकता है। यदि वह सांसारिक-भोग भोगकर तृप्त है तो समझो वह अचेत–गाफिल है, उसका कल्याण नही।

× जो साधक सचेत हो साधनारत है वही व्यापक परब्रह्म के शून्य शहर—सहस्रारदल में भिक्षा प्राप्त कर सकता है।

जौ मैला तौ व्यापै कांम, जौ निरमल तौ दूजा रांम ॥
तातैं रहिये 'म्रितग' होइ, ताकी बात न बूझै कोइ ॥९॥
ना दुष गहै न सुष कूँ जाइ, ऐसै षेलै सहज सुभाइ ॥
×सुष तहां दुष अनंत अपार, तातैं भजिये सिरजनहार ॥१०॥
रांम नाम कहि ताली लावै, तब कछु भेद महल का पावै ॥
पाप 'पुनि' की आसा नांही, रांम रटणि राषै घट मांही ॥११॥
माया दिसि रहै जन सोइ, रांम भजन का आनंद होइ ॥
जन हरीदास तब भई पिछांणि, जब मिटि गई कुटंब की बांणि ।१२।

(८५)

'जुगिये' लाधी प्रीति विचारै, तातैं 'गरड़' चढ्यौं 'रिप' मारै ।टेक।
इहै सकल सिधि साधौ, अवगति कूँ आराधौ ॥
निरमल निज ग्यांन विचारं, निराकार निरधारं ॥
अगम वार नहि पारं, जहां पाती पांच उतारं ॥१॥
इहै सहज तप करणां, तातैं बहुड़ि न जांमण मरणां ॥
'इन' मारगि अणसरणां, देषि देषि 'पग' धरणां ॥
*ल्यौ लागा जन जीवै, तहां भार अठारा पीवै ॥२॥

पाठभेद—मृतक-४-५ । पुन्य-२ । जोगिए-५ । गरडि-१ । रिपु-१ । इण-१ । पाव-५ ।

शब्दार्थ—सोई=वही, निरपेक्ष । जुगिये लाधी प्रीति विचारै=साधक योगी प्राप्त हुई प्रेमाभक्ति को अपनाये रहे । गरड चढ्यो=ज्ञानरूपी गरुड पर चढकर । रिपु मारै=काम-क्रोधादि का नाश करे । इहै=इसी साधना से । अवगति कूँ आराधौ=जिसका ठीक विवरण नही, उस परब्रह्म की आराधना करो । पाती पाच=पांच विषय-वृत्तियां । अणसरणा=अनुसरण करो, चलो ।

× जहां सासारिक सुख माना जा रहा है वहां राग-द्वेष, योग-वियोगादि के अपार दुःख भी हैं ।

* जिसकी वृत्ति ध्यान मे स्थिर हो गई वही साधक अमर होता है–जन्म-मृत्यु से छूट जाता है । इस दशा मे जब साधक पहुच जाता है तो फिर देहस्थ—अठारह भार (दस यम-नियमादि, ज्ञान, गरीबी, गुरुधर्म, श्रद्धा, शील, सन्तोष, निर्दोष वाणी, विनय) सब परमानन्द रस का पान कर तृप्त होते है ।

इहै सकल सुषधारं, उलटि आप कूँ मारं ॥
निज तत निज ग्यांन विचारं, परापरैं सुष सारं ॥
वरषा रस इंम्रित धारं, तहाँ 'परस्यूँ' प्रांण उधारं ॥३॥

इहै सकल सुष भेषैं, उलटि अगम कूँ देषै ॥
करि अवगति सूँ सीरं, पांच 'पुरिस' कौ भीरं ॥
गंग जमन विचि हीरं, तहाँ परसि निरंजन पीरं ॥४॥

हरीदास जन सोई, जाकै त्रिवधि ताप नहिं होई ॥
पिव कैं पहरैं लागैं, सदा निरंतरि जागैं ॥
गुड़िया गहि गगन चढ़ावै, सुषसागर मांहि समावैं ॥५॥

॥ इति राग सोरठी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग भैरूं ॥

(८६)

नांव दे नांव दे नांव दे देवा, हरि नांव कौ आसिरौ नांव की सेवा ॥टेक॥
नांव विश्राम 'द्यौ' नांव की छाया, नांव 'निरवांण' तैं रामजी पाया ॥१॥
मैं भलौ भजन द्यौ भूप हरि तेरी, वीनती सांभलौ वापजी मेरी ॥२॥
काल 'कृपाल' हूँ 'वहौत' विधि पाया, डरया डरि दीन ह्वै आसिरैं आया ।३।
सकल संसार का स्वाद सब कूड़ा, जन हरिदास का भाग मैं नांव ही रूड़ा ।४।

पाठभेद—परस्यूँ–१ । पुरप–५ । दे–१ । नृवाण–५ । किरपाल–२-४ । वहुत–१ ।

शब्दार्थ—वरषा रस=बरसने वाला रस, तालुप्रदेश मे आनेवाला रस । भेषैं=पंथ मे, भेप मे । अवगति सूँ=विवरणरहित ब्रह्म से । सीरं=सीर, साझा । गुड़िया गहि गगन चढ़ावै=सुरतिवृत्ति को प्राणसहयोग से दशमद्वार में ले जावे । मैं भलौ=कालभय, अकर्म का भय अच्छा है । सामलो=स्वीकार करो । रूड़ा=अच्छा, सुन्दर ।

(८७)

नांवदे नांवदे नांवदे राया, नांवदे नाथ मैं नांव सुणि आया ।।टेक।।
ग्यांन सूँ ध्यांन द्यौ भजन द्यौ देवा, त्यूँ करौ रांम 'ज्यूँ' मैं करौं सेवा ।।१।।
प्रेम सूँ प्रीति द्यौ भजन द्यौ मांही, सीस देस्यूँ पणि 'मेल्ह' सूँ नांही ।।२।।
जन हरीदास की वीनती सांभलौ स्वामी, जागि तौ मोइमां जागि हरि जामी ।३।

(८८)

रांम भजै तौ आनंद होइ,
दीनानाथ दयाल दयानिधि, चिताहरण सकल त्रिधि मोइ ।।टेक।।
परम उदार अपार अषंडित, पूरणब्रह्म भजन करि लोइ ।।
'औसर' इसौ बहौड़ि नहिं आवै, हरि विण कवहुँ भला न होइ ।।१।।
'आनंद' रूप अषिल अविनासी, करणहार करतार स 'जांणि' ।।
जहां तन धरै तहां ही साथी, प्रेम प्रीति करि ताहि 'पिछाँणि' ।।२।।
नाराइण 'निरवांण' निरषि निति. 'गरवहरण' गोविंद उर धारि ।।
जन हरिदास भजौ अविनासी, गुर गमि यौंहि ग्यांन विचारि ।।३।।

(८९)

राम नाम अंतरि उर धारि, हरि हरि सुमरि सुमरि रिप मारि ।।टेक।।
आंन आस पास करि दूरि, रमतारांम रह्या भरपूरि ।।१।।
अकल निरंजन निरभै नाथ, जहां तहां जन कै सिरि हाथ ।।२।।
काल जाल की लगै न चोट, हरीदास जन हरि की वोट ।।३।।

पाठभेद—ज्यौं–१ । मेल्हि–५ । अवसर–१ । आणद–२ । जानि–४-५ । पिछानि–३-४-५ । नृवाण–४-५ । ग्रवहरण–१ ।

शब्दार्थ—सोइ मां=ममता-मोह की नीद मे सोवे मन । हरि जामी=अन्तर्यामी, माक्षी चेतन । पिछाणि=पहचान, जान । आन आस पास करि दूरि=जो सासारिक पदार्थों की आशा तुमने अपना रखी है, उसको दूर करो ।

(९०)

मैं तौ राँम न 'छाड़ौं' तोहि, तूँ हरि मीठा लागै मोहि ॥टेक॥
पालै पोषै सेवा करै, ताहि छाड़िको 'दोजगि' परै ॥१॥
ऊँच नीच अंतर कछु नाँहि, परम उदार सकल घट माँहि ॥२॥
जन हरीदास भजि राजा राँम, आदि अंति हरि ही सूँ काम ॥३॥

(९१)

अणबोल्या गावै जे कोई, तौ अजपा जाप 'निरंतरि' होई ॥टेक॥
भजौ निरंजन भरम गमाइ, जुरा न व्यापै काल न षाइ ॥
'जोनी' संकट आवै नाँहि, प्राँण समावै हरि पद माँहि ॥१॥
सुषमनि फेरि घेरि घरि 'आँणै', अरथ विचारै अगम पिछाँणै ॥
मूल कँवल मैं पवन 'निरोधै', तब मन कूँ मनही 'परमोधै' ॥२॥
त्रिवधि ताप तजि सहज विचारै, जागि न सोवै जीति न हारै ॥
त्रिवेणी तटि बैसे जाइ, 'धुनि' मैं ध्यांन रहै ल्यौ लाइ ॥३॥
आसा मेटि 'निरास' सँभारै, 'सूँनि' मंडल मै आसण धारै ॥
सात समंद मसि डारै धोइ, जन हरीदास जोगी जन सोइ ॥४॥

(९२)

राषि राषि प्रभु साहिब मेरा, 'तुम्ह' साहिब मैं बंदा तेरा ॥टेक॥
नरक वास द्यौ तौ भी मैं 'ल्यूँ', जो हरि लोक बसेरा ॥
जोर नहीं बंदे का कोई, बंदा जहाँ तहाँ हरि तेरा ॥१॥

पाठभेद—छाडूँ-१-४। दोज्यग-२। न्यरंतरि-२। जूनी-२-३। आनै-३-५। न्यरोधै-२। प्रमोधै-१-५। धुन्य-२। न्यरास-२। सुन्य-२। तुम-४-५। लूँ-३। ल्यौं-५।

शब्दार्थ—दोजगि=दोजख, नरक। मूल कँवल मैं=मूलाधार चक्र मे। परमोधै=उपदेश दे, मन ही मन का परिवर्त्तन करे। आसा मेटि=लौकिक आशाएँ छोड। निरास सँभारै=चेतनतत्व मे लगे। सात समंद=रसादि धातु, कामादि षड्रिपु व अहङ्कार। मसि डारै धोइ=इनका मैल निवारण कर ले।

जा का चेरा ताकै सारै, दषल और का नांही ॥
जे तुम्ह मारौ मारि 'निवाजौ', मी चित चरणौं मांही ॥२॥

तुम्ह साहिब मैं मुलाजादा, चोटी कटा तुम्हारा ॥
घरि जायां की लाज वहीजै, 'औगुण' किता हमारा ॥३॥

कीजै आस 'असंगा' कैसा, करो 'जिका' मनि भावै ॥
जन हरीदास चरणां कै सरणै, मौज मिहरि सुष पावै ॥४॥

(६३)

जागि मन बालका, ग्यांन गहि पूता ॥
कालका मुष मैं, निडर 'होइ' सूता ॥टेक॥

जोर तजि मोर मया, रांम भजि भाई ॥
जुरा सहित सेन्या, सीम परि आई ॥१॥

केस पलट्या सु तौ, सेत जहां का तहाँ ॥
काल सनमुषि षड़ा, छिप्या छूटै कहाँ ॥२॥

जन हरीदास भगवंत भजि, भाव धरि लीजै ॥
अवर आरंभ कहा, कांम यहु कीजै ॥३॥

(६४)

हरि हीरौ हिरदै बसै, गोव्यंद गुण गावै ॥
आदि अंति संगी सदा, 'तासूँ' मन लावै ॥टेक॥
अनल पंष आकास मैं, अवनी नहिं आवै ॥
'आनंद' मैं ऊँची दसा, अपणौं भष पावै ॥१॥

पाठभेद—न्यवाजौ–२। अवगुण–१। आसंगा–२। जक्यूं–१। व्है–१। तास्यूं–१। आणंद–२।

शब्दार्थ—दषल=हस्तक्षेप, दस्तन्दाजी। निवाजौ=कृपा करो, प्रसन्न हो। असंगा=प्राशंका। मिहरि=दया। ग्यांन गहि पूता=पवित्र निर्मल आत्मज्ञान प्राप्त कर। अवर=और, दूसरा। आरंभ=प्रवृत्ति, काम। अवनी=भूमिपर। भष पावै=वही आकाश मे ही अपना भोजन प्राप्त करे।

इजगर कै संचा किसा, कहुं हीण न भाषै ॥
ताहि विसंभर देत है, अपणौं व्रत राषै ॥२॥
लष चौरासी जीव है, सब कूँ दे सांई ॥
हरि जन कै सांसा किसा, मन हरि पद मांही ॥३॥
रांम विसारयां विघन है, जम ग्रासै रे भाई ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, तजि आंन सगाई ॥४॥

(६५)

'यूँ' हम छाड्या जग व्यौहार, सुष थोड़ा दुष अनंत अपार ॥टेक॥
माता पूत पिता नहिं कोई, स्वारथ आय मिल्या पष दोई ॥
विछड़ण 'यहाँ' 'मिलण' नहि आगे, तातैं मोहि बाजी सी लागै ॥१॥
सासू सुसर नहिं को सारा, यहु सब दीसै मोह पसारा ॥
कांम हेति जलत हैं लोई, तूँ काहू सगा न तेरा कोई ॥२॥
मनसा अटी मिटी सब दौड़, गहि गुर ग्यांन वसै निज ठौड़ ॥
जन हरीदास गोव्यंद गुण गाइ, सकल वियापी रांम सहाइ ॥३॥

(६६)

काहे कूँ 'अभिमांन' करीजै, निसदिन आव घटै तन छीजै ॥टेक॥
सिला बैस सांवण तप करै, सीयालै पांणी मैं मरै ॥
पांच 'अगनि' ऊन्हालै षाई, फल भुगतै भी नरकाँ जाई ॥१॥
तीरथ 'वरत' करै भमि भाई, तंत मंत सीषै मन लाई ॥
तुला बैसि कंचन दे कोटि, 'निहचै' विकै विडाणै हाटि ॥२॥

पाठभेद—यौं–१-३। इहा–१-५। म्यलन–२। अभ्यमान–१। अग्नि–१। व्रत–१-४। न्यहचैं–२।

शब्दार्थ—संचा किसा=संग्रह कौन सा। हीण न भाषै=दैन्यमय वचन कहे नहीं, गिडगिडाये नहीं। व्रत राषै=प्रतिज्ञा पाले। बाजी सी लागै=दिखावा सा लगता है। सारा=साला। काम हेत=जिन कामनाओं के लिए हे लोई-जीव ! जलता है। मनसा अटी=चाह हटी, मन बदला। तत मंत=तन्त्र-मन्त्र। निहचै=निश्चय। विकै विडाणै हाटि=दूसरो की हाट पर बिकता है, वासनावश औरो के अधीन होता है।

जैसा विरछ तिमा फल होइ , पाप पुंन्नि परतछि फल दोइ ॥
यहु फल छाड़ि अगम फल गहै , सो पंषी निरभै ह्वै रहै ॥३॥
जन हरीदास ये मन का कांम , निरभै होइ भजै नहिं रांम ॥
आंन इष्ट संकट व्रत करै , नट ज्यूँ नाचि नाचि घट धरै ॥४॥

(९७)

तूँ गहि भरचा न सोई रे , कछु ग्यांन दिष्टि ले जोई रे ॥टेक॥
अब तूँ चेति अचेत रे , षोलि ग्यांन का नेतरे ॥
हरिजी कै सुमिरण लागि रे , अकलिअंध 'यूँ' जागि रे ॥१॥
करम हीण कछु जांणि रे , 'पांचू' उलटा आंणि रे ॥
प्रेम पियाला पीव रे , हरि भजि ऐसे जीव रे ॥२॥
हरि हीरा कंठि राषि रे , सुणि साधां को साषि रे ॥
जन हरीदास यूँ जांणि रे , अंतरि अलष पिछांणि रे ॥३॥

(९८)

अवगति अगम कहरगति वाजी , निद्रा आइ घटा ज्यूँ गाजी ॥टेक॥
हेत प्रीति दै आंवरि करै , निद्रा संगि जीवत हि मरै ॥१॥
घट घट मांहि डाकणि वसै , 'स्यंघ' रूप ह्वै जीवहि डसै ॥२॥
जन हरीदास निद्रा सूँ 'नेह' , अंतकालि मुँहि पड़सी 'षेह' ॥३॥

(९९)

हरि जन जुगति विचारै जागै , डरै न सोवै सांपणि लागै ॥टेक॥
×लोचन तीन तरल तनि धारै , षट्‌दरसण दाढ़ तलि मारै ॥१॥

पाठभेद—यौं-१ । पांच-१-३ । सिघ-३-४-५ । हेन-३-५ । रेत-३-५ ।

शब्दार्थ—सो पंषी=वह साधक, वह जीव । गहि भरचा न सोइ रे=ममता-मोह की गहरी नीद मे मत सो । नेतरे=नेत्र, आंखें । अकलि अंध=ज्ञानहीन, बेअक्ल । कहर गति वाजी=सासारिक प्रवृत्तियां काल के मुख मे ले जाती हैं । आवरि करै-आवरण करे, पर्दा डाले । षेह=धूल, रेत । लोचन तीन=त्रिगुणात्मक दृष्टि ।

× त्रिगुणात्मक-भावना से प्रेरित होकर प्राणी विविध कर्मों की नदी मे बहता है । षट्‌दर्शन की भेदभावना प्राणियो को अपनी दाढ़ मे पीसती है ।

*सांसौ मुष फैलायां आवै , सकल भवन ले तालू लावै ॥२॥
सुर नर असुर अँधारै लाधा , चिंता सांपणि चुणि चुणि षाधा ॥३॥
कांम क्रोध 'डसणि' धरि चाषै , लालच उदर तहां लै राषै ॥४॥
जन हरिदास रांम भजि भाई , तूँ सांपणि कै संगि न जाई ॥५॥

(१००)

हरिभजि हरिभजि हरिभजि भया , हरि विणि 'जनम' अविरथा गया ।टेक।
साच पिछांणि आंन 'तजि' अनरथ , जम जागत है जागि रे ॥
आदि अंति हरि सदा सनेही , तूँ ताकै सुमिरण लागि रे ॥१॥
इन्द्री पांचि राषि रस एकै , गुण गोव्यंद का गाइ रे ॥
दीनदयाल देव करुणा मैं , हरि सकल 'भवन' पति राइ रे ॥२॥
जन हरीदास हरि परम सनेही , ग्यांन निजरि भरि देषि रे ॥
सूँनि मंडल मैं सकल वियापी , हरि पूरण ब्रह्म अलेष रे ॥३॥

(१०१)

राम सुमरि नर नरहरि भजौ , कांम कोध विषिया बन तजौ ॥टेक॥
तजि अभिमांन भजौ क्यूँ न संत , भौ सागर तिरण नांव भगवंत ॥
काटौ क्यूँ न काल का जाल , सुमरि सुमरि गोव्यंद गोपाल ॥१॥
जैसे 'अगनि' 'काष्ट' मैं रहै , काढ़ी कढ़ै न काठै दहै ॥
जन हरीदास अब ऐसी भई , भजतां रांम बिथा सब गई ॥२॥

पाठभेद—डसण-१-४। जन्म-१। त्यज-२। भुवण-१। अग्नि-१। कासट-२।

शब्दार्थ—सांसौ=संशय। अँधारे लाधा=अज्ञान से ग्रसित मिले। डसणि धरि चाषै=दांतो से काटकर चख रहे हैं। सापणि=वासना, चिन्ता। अविरथा=व्यर्थ, बेमतलब। रस एकै=एक रस, अन्तर्मुख। संत=हे श्रेष्ठ साधक ! काढी कढै न काठै दहै=जैसे काठ मे रहने वाली अग्नि निकालना चाहो तो निकलती नही और उसी काठ को जला देती है, इसी तरह वासना-इच्छा की अग्नि मनुष्य मे रहकर मनुष्य को जलाती रहती है।

* सांसारिक देहादि नाशवान पदार्थो को सत्य मानकर नित्य सत्य वस्तु की उपेक्षा बनाये रखने वाला संशय मुँह फैला रहा है, सारा संसार इस संशय की चपेट मे आया हुआ है।

(१०२)

नैड़ा छाड़ि दूरि कहां जाँव ?,
पैंडा अगम सुगम माधां 'सूँ', गोकुल नगर विसंभर नांव ।।टेक।।
सेवग जहां तहां ही स्वामी, सबद बिचारि बस्या निज ठौर ।।
चूँधी आंषि चपल मति पोटी, चितवततां सब मिटि गई दौर ।।१।।
काया कुंभ प्रांण जल पूरिक, घटि घटि अलष लुकाया ।।
अवगति अगम निरंतरि न्यारा, ज्यूँ दरपण मैं छाया ।।२।।
साच पिछांणि परम परपूरण, वार पार कछु नांहि ।।
जन हरीदास 'इंद्रया' रस न्यारा, व्यापि रह्या सब मांहि ।।३।।

(१०३)

अरथ करैं पणि ऊलौ आसौं, मरम भूष नहिं भागी ।।
निधि नैड़ी 'पणि' आपन झूडै, उलटि अगम नहिं थागी ।।टेक।।
प्यास बहौत अंतर मैं लागी, रोगी कदे न जीवै ।।
कुपछि पड्यो वोषद नहिं नेड़ी, मरण नदी जल पीवै ।।१।।
कौड़ी विणजि पुसी व्है बैठा, नैड़ो साच न लीयौ ।।
हरि हीरौ घरि मांही भूलो, करज बहौत 'सिरि' कीयौ ।।२।।

पाठभेद—स्यूँ-१ । यन्द्रया-२ । परण-३-४ । विणज-१ । सिर-५ ।

शब्दार्थ—गोकुल नगर=इन्द्रियों के कुल का नगर-देह, शरीर । चूँधी आंपि= सासारिक पदार्थों के आकर्षण मे चकित नेत्र । चितवततां=आत्मचिन्तन करते ही । साच पिछाणि=सत्य चेतनतत्व जानकर । अरथ करै पणि ऊलो आसौ=ज्ञान की ऊँची बाते करे पर, आसक्ति संसार मे ही लग रही है । निधि नैडी पणि आप न झूडै= निधि आनन्द-सुख का खजाना अपने मे ही है पर उसको सौरा नही जाता-प्राप्त नही किया जाता । उलटि अगम नहिं थागी=वृत्ति को आत्मतत्व की ओर फेरकर उसका थाह-पता नही लिया । कुपछि=कुपथ्य मे । वोपद=औषधि । कौडी विणज= लौकिक धन-वैभव प्राप्त करने का व्यापार किया । नैडो साच न लीयौ=पास ही अटूट अविनाशी खजाना था पर वह नही लिया गया । करज=ऋण, पाप-पुण्यरूप ।

चंदन वास विकट करि दीठी , सीध जड़ी मन मानी ।।
जन हरीदास ते जम कै द्वारै , महापुरिस बड़ जानी ।।३।।

(१०४)

चौंका देवै चित दौड़ावै , रसना कै 'रसि' लूधा ।।
लागी चोट 'भरम' माया की , अरथ न आवै सूधा ।।टेक।।
पासी पड़ू आपणी ताँणै , मोटी मीच न जोवै ।।
'दोन्यौं' आँषि अरथ की फूटी , नैंण बेकरै धोवै ।।१।।
कोइ उलटा 'षेलि' परमपद परसै, पैंडै चल्यौ न जीवै ।।
ताकी कहा कुसलता कहिये , मरण नदी जल पीवै ।।२।।
जाकूँ कहूँ स मोकूँ मारै , माया कै मद माता ।।
जन हरीदास तिनकी गति ऐसी , दीसै जम पुरि जाता ।।३।।

।। इति राग भैरूँ सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग विलावल ।।

(१०५)

आंधा जीव अभागिया , सूझै कछु नांहि ।।
निसदिन वाघणि षात है , फूल्या मन मांहि ।।टेक।।
रोम रोम मैं रमि रही , सूषिम 'व्है' पीवै ।।
सांपणि सरवस लेत है , ता देष्यां जीवै ।।१।।

पाठभेद—रस-४-५ । भ्रम-१ । दोन्यूं-४-५ । षेल-५ । होइ-३-४-५ ।

शब्दार्थ—विकट=भयङ्कर । दीठी=देखी । सीध जड़ी=संसारी पदार्थ । रस लूधा=रसना रस में लुभाया । सूधा=सीधा, वास्तविक । पासी=फाँसी, बन्धन । मोटी मीच=अन्तकाल, मृत्यु । अरथ की=समझ की, मतलब की । नैंण=नेत्र । बेकरै धोवै=बेकरे घास के पानी से धोता है । पैंडै चल्यो न जीवै=संसार के मार्ग से चलने वाला कालचक्र से नहीं छूटता । वाघणि=स्त्रीरूप शेरनी, वासनामय शेरनी ।

राम सगा सो परहरया , कछु भुरकी डारी ॥
डाकरिण डसि डसि षात है , षोटी रे षारी ॥२॥
जन हरीदास कहिये कहा , कछु कहत न आवै ॥
विष कीड़ा विष ही षुसी , इंम्रत नहिं भावै ॥३॥

(१०६)

हरि जन वाघणि देषि डरै ,
सेवा करै प्रांण तन सोषै , सुषिम 'अगनि' चरै ॥टेक॥
अवला कहै पणि सवला पावै , जांणै कोई नांहि ॥
नष 'सिष' सुधा मूल उपाड़ै , मीठी दे दे मांहि ॥१॥
त्रिया कहै पणि तुरत 'गिरासै' , सुषिम वीर चलावै ॥
कचा तूँतड़ा कांनै डारै , सार सकल चुणि षावै ॥२॥
या कांमणि कूँ मति कोई धीजै , कांम कटक ले आवै ॥
'काया' कोट चोट 'सूँ' तोड़ै , पहली चोट सजावै ॥३॥
जन हरीदास ज्यां हरि रस पीया, ते मतिवाला माता ॥
'तिनकै' वाघणि निकट न आवै , परम तेज रंगि राता ॥४॥

(१०७)

तव लग कह्यां सुरयां कछु नांही , जीव तलफि अघजरता रे ॥
उन पति की गति कवहू न जानी, लोग कहैं पतिवरता रे ॥टेक॥
रांम रसायण वूँद न पीया , सांसै सूल न चूकी रे ॥
अरस परस होइ सेझ न षेली , तब लग सुपने सूती रे ॥१॥

पाठभेद -अग्नि-१ । सष-२-४ । ग्रासे-१ । काचा-१ । स्यूँ-१ । ज्यनकै-२ ।

शब्दार्थ—त्रिया कहै=कहने को तो तिया-स्त्री कहलाती है । गिरासै=खाये । काया कोट=कायानगरी । चोट सूँ=प्रहार से, आत्मनिश्चयरूपी दृढ़धारणा की चोट से । तलफि=तड़पता, विकल होता । अघजरता=पापो के सन्ताप से जल रहा है । सांसै=संशय की ।

मन में पिव अपणै कर बैठी, 'सकति' सुहाग न लीया रे ॥
तिनकै अजहुं परमपद अलगा, परचै प्रेम न पीया रे ॥२॥

त्रिविधि ताप तजि निरष परमपद, उलटि तहां ही रहिए रे ॥
जन हरीदास तव लग सब झूँठी, कहौ कवन सूँ कहिए रे ॥३॥

(१०८)

रांम सनेही साधवा, निज निरषत जीवै ॥
अगम पियाला प्रेम का, अनहद रस पीवै ॥टेक॥

ब्रह्मछोल ऐसी वहै, गुण देह विसारै ॥
सेवग चंद चकोर 'ज्यूँ', निज सुरति न टारै ॥१॥

रांम मरीषा व्है रहै, विसराम न मेलै ॥
मगन हुवा हरि रस पिवै, ल्यौ लागी षेलै ॥२॥

मन उनमनि लागा रहै, चरणां चित राषै ॥
जन हरीदास सो जन भला, कछु आंन न भाषै ॥३॥

(१०९)

समद नीर माछली विरोलै, सूषिम सीरां पीवै ॥
पैली कथा परमपद सुनतां, मन मींडका न जीवै ॥टेक॥

जब ही सुणै तबै दुष पावै, पुषते साध पुकारै ॥
माया की छाया मैं वैठा, ऊला अरथ विचारै ॥१॥

निरभै कहै रहै भै मांही, सुरति 'सुपहि' नहिं जागी ॥
नांव 'निरूप' निकटि नहिं न्यारा, करम भालि 'कँठि' लागी ॥२॥

पाठभेद—सक्ति—३-५ । ज्यौं—१ । मुपह—५ । न्यरूप—१ । कंठ—१-५ ।

शब्दार्थ—सकति मुहाग=आत्मचिन्तन द्वारा अजर-अमर सुहाग की शक्ति प्राप्त नही की । निज निरषत=अपना स्वरूप देख । विरोलै=आलोड़न करे, मन्थन करे । पैली कथा=आत्मज्ञान का उपदेश । पुषते=सच्चे साधक । सुरति सुपहि नहिं जागी=वृत्ति अच्छे मार्ग चलने को जागृत नही हुई । करम=सकाम कर्म ।

अंतरि नेत तहां हरि नेरा , वै निज आंपि उभांणी ॥
जन हरीदास ताका सँग परिहरि , लैं बूड़ैं बिणि पांणी ॥३॥

(११०)

गुरु को सबद साच करि पकड़ै , भै का मारया जागैं रे ॥
'तिन को' चित साधां का चरणां , दिन दिन दूँणो लागैं रे ॥टेक॥
भजन भेद लीया ते जीया , भोग रोग 'व्है' लागा रे ॥
आगैं ही केई भोगी बूड़ा , ता तैं सुषदेव भागा रे ॥१॥
निरमल नहीं तिके नित बूड़ा , ता का पोटा हेरूँ रे ॥
'और' सकल भवसागर बूड़ा , नांमा छींपा तेरूँ रे ॥२॥
दास कबीर सकल जुग 'परगट' , पीपैं परचा पाया रे ॥
'भवसागर' मैं भेराँ बांध्या , भगताँ भेद बताया रे ॥३॥
जन रैदास नीच कुल ऊँचा , ताकूँ तीन लोक सब जाँणैं रे ॥
जन हरीदास वैं निरभै देष्या , तातैं उलटी ताँणैं रे ॥४॥

(१११)

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह , आनँद रूप सकल घटि रांम ॥टेक॥
घटि घटि नारद घटि घटि सेस , घटि घटि ब्रह्मा 'विष्न' महेस ॥
घटि घटि ध्रू देषो धरि ध्यांन , घटि घटि भींव भरथ हनमान ॥१॥
घटि घटि ममता घटि घटि मोह , घटि घटि कंचन घटि घटि लोह ॥
घटि घटि आवै घटि घटि जाइ , घटि घटि षेलै घटि घटि षाइ ॥२॥

पाठभेद—जिनको-१ । होइ-३ । ओवर-१ । प्रगट-१-५ । भौसागर-५ । बिसन-२ ।

शब्दार्थ—अंतरि नेत=विवेक-विचार के अन्तर्नेत्रो से । उभाणी=अलसायी । भै का=जन्ममरण के भय से । बूड़ा=डूबा । निरमल=शुद्ध, वासनारहित । पोटा=बुरा, खराब । हेरूँ=तलाश करने वाला, गुरु । तेरूँ=तैराक । भेरा=पाज, पुल ।

घटि घटि रांवण लंक 'दवार', घटि घटि कैरूँ सेनि अपार ॥
सूता गोरष लिया जगाइ, जन हरीदास ताकी वलि जाइ ॥३॥

(११२)

मेरे मन की चोरियां, मैं जांणू रे भाई ॥
स्रषिम व्है उतरै चलै, विसहर व्है षाई ॥टेक॥
विषिया कै 'वनि' मन वसै, सो कैसे जीवै ॥
कांम घटा गरजै सदा, नांनां रस पीवै ॥१॥
'वहौं' छाजां पेलै षुसी, वहौ रूप निहारै ॥
रसना कै रस ऊतरै, जांणै त्यूँ मारै ॥२॥
श्रवणां सुष ले नाद का, परमल सुष नासा ॥
कुवधि कलाली कांमना, तहां षेलै पासा ॥३॥
जन हरीदास विषया तजै, गोब्यंद गुण गावै ॥
छाजै वैसे ग्यांन कै, तव ही सच पावै ॥

(११३)

जे लागी तो जागि रे, सूतौ क्यूँ हारै ॥
सतगुर कै सर वेधिया, कहि 'क्यूँ' न पुकारै ॥टेक॥
सवद तीर ताता षरा, लागै तौ मारै ॥
कोड्यां मध्ये 'एक' 'को', 'तनि' चोट सहारै ॥१॥
अभि अंतरि भलका रह्या, सतगुर का लाया ॥
नष 'सष' 'लूँ' सालै नहीं, तौ षाली वाह्या ॥२॥

पाठभेद—दुवार-१। बन्य-२। वहु-१। क्यौं-१। येक-२। कोउ-१। तन्य-२। सिष-१। लो-१।

शब्दार्थ—सूता=सोया हुआ, मोहनिद्रा मे। गोरष=ज्ञान। विसहर व्है=सांप होकर। वहौ छाजां=अनेक प्रवृत्तियो मे। नाद का=शब्द, अनहद नाद। परमल=सुगन्ध। छाजे वैसे=ऊपर वैठे, दृढता से स्थिर हो। जे लागी तौ=गुरु उपदेश लगा है तो। सर=निरपेक्ष वचनवांण। सहारे=सहन करे। भलका=तीर की चोट, वचन-वाण का असर। सालै नही=वेधे नही, आर-पार न हो।

करम कड़ी काठी जड़ी, ममता कै धागै ॥
जन हरीदास ता जीव कै, 'तनि' चोट न लागै ॥३॥

(११४)

जब लग मन 'बाहरि' फिरै, माया की छाया ॥
तब लग तत दरसै नहीं, सति साच न पाया ॥टेक॥

बात कहै 'रुचि' अगम की, पेलै गम मांही ॥
उलटी मूँठि पताल कूँ, सूझै कछु नांही ॥१॥

अपमारग की आपदा, घुलि गांठि न पोलै ॥
लोक लाज लालच पड्या, निरपष ह्वै पोलै ॥२॥

जन हरीदास आसा सुषी, जीया अणजीया ॥
हरि सुष सागर न्यारा रह्या, माया मद पीया ॥३॥

(११५)

रूप न रेष घणौं नहिं थोड़ौ, धरणि गिगन फुनि नांही रे ॥
अकल सकल सँगि रहै निरंतरि, ज्यूँ चंदा जल मांही रे ॥टेक॥

अगम अथाह थाह नहि कोई, थाह न कोई पावै रे ॥
जैसा भजन तिसा सब कोई, मन उनमानि बतावै रे ॥१॥

सागर में कुंभ कुंभ में जल है, निराकार निज ऐसा रे ॥
सकल लोक ऐसे हरि मांही, रूप कहाँ 'धू' कैसा रे ॥२॥

अचल अघट सब सुष का सागर, घट घर सब वा मांही रे ॥
जन हरीदास अविनासी ऐसा, कहै तिसा हरि नांही रे ॥३॥

पाठभेद—तन-१-५। बाहर-१। रुच्य-२। थो-१-४।

शब्दार्थ—काठी=दृढ़। तत=तात्त्विक वस्तु आत्म पदार्थ। पेलै गम माही=संसार की मायामोह मे खेल रहा है। अपमारग की आपदा=अनित्य जगत के पदार्थ की प्राप्ति के गलत मार्ग मे विविध आपदाएँ भोगता है। आसा सुषी-सुखी आशाओं मे लगा हुआ। घणौं=अधिक। थोड़ो=अल्प।

(११६)

मीठा लागे रामजी, दूजा सब षारा ॥
परसि निरंतरि षेलिया, समझ्या सोई सारा ॥टेक॥

पछिम दिसा मनि फिरि चल्या, पूरब दिसि आया ॥
सहजि सदा झड़ होत है, मन मनहि समाया ॥१॥

सूँनि सुधा रस पीजिये, प्रति प्रांण अधारा ॥
झिलिमिलि झिलिमिलि होत है, 'वरिषा' बहु धारा ॥२॥

गंग चली फिर गिगन कूँ, गिरवर गत छाया ॥
जन हरीदास आनँद भया, तन मैं तत पाया ॥३॥

(११७)

'जिनि' जिनि हरि नांव गह्यौ,
उलटा षेलि चल्या सुषसागरि, दुष दरिया विष दूरि दह्यौ ॥टेक॥

धरि विसवास करम करि कुटका, हरिरस रसना जांनि रस्यौ ॥
तजि संसार धार तैं उतरै, हरि 'तरवर' मन जाय वस्यौ ॥१॥

सुरति सँवाहि 'परम' निधि परसै, 'एकै' ही ल्यौ लागि रह्यौ ॥
सहज समाधि गवन बेगमपुरि, कालपूर दुष दूरि दह्यौ ॥२॥

गरव गुमांन चरण तल चूरया, उर अंतरि निज नांव धरयौ ॥
जन हरीदास सुषसागरि बैठा, अघ अजराइल चमकि डरयौ ॥३॥

पाठभेद—बरषा-२-४। ज्यन-२। तरवरि-२। प्रम-१। यैकै-२।

शब्दार्थ—पछिम दिसा=मेरुदण्ड। पूरब दिसि=भृकुटि मध्य, त्रिकुटि। गंग=निश्चलवृत्ति। गिरवर गत छाया=मोह तथा अहङ्काररूपी पहाड़ नष्ट हुए। उलटा षेलि=संसार का मोह त्यागकर आत्माभिमुख हो। दुष दरिया=संसार सागर। विष दूरि दह्यौ=संसार का जहर नष्ट किया। करम कर कुटका=कर्मों की भावना टूक-टूक कर दी, समाप्त कर दी। हरि रस रसना जांनि रस्यौ=रसना हरिरस मे ही लीन हो गई। सुरति सँवाहि=वृत्ति को सँभाल। बेगमपुरि=ब्रह्मधाम, सहस्रारदल। अघ अजराइल चमकि डरयो=पापरूपी शूरवीर चमका तथा भयातुर हो गया।

(११८)

अलष निरंजन निरगुणां, मेरा मन मांही ॥
झूठा सुष संसार का, षोटा कछु नांही ॥टेक॥
जीव जीव कैं आसिरै, आमा धरि आवैं ॥
अंति आस पूजै नहीं, पाछे पछितावैं ॥१॥
प्रांणनाथ पति छाड़ि करि, माया जलि झूलैं ॥
अंतिकाल छाड़ै नहि, काहे कूँ फूलैं ॥२॥
जन हरीदास ऐसी कथा, जांणै सो जीवैं ॥
सूँनि मंडल में वैसि करि, निरभै रस पीवैं ॥३॥

॥ इति राग विलावल सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग गूजरी ॥

(११९)

सषी री! अब पिवकै मनि भाई,
उड़ि उड़ि जाइ पतँग रँग नपरौ, हरि रँग चल्यौ न जाई ॥टेक॥
'औगण' वहौत सील नहि साची, वहौत करी लंगराई ॥
सौकणि सकल घेरती थाकी, पिव 'परगट' 'सेम्फ' बुलाई ॥१॥
रूप दरस मोपै कछु नांही, तन सिणगार न कीया ॥
मांसो इहै रैंणि दिन व्यापै, पिव क्यूँ 'आपा' दीया ॥२॥

पाठभेद—अवगुण–१। प्रगट–१-५। मेझि–१। आदर–३-४।

शब्दार्थ—झूलैं=स्नान करे। फ़ूलैं=प्रसन्न हो, प्रफुल्लित हो। शून्य मंडल=दशमद्वार। पतंग रग=सांसारिक सुखों का रङ्ग। लंगराई=ढिठाई, टेढापन। सौकणि=पति की अन्य स्त्रियां, जीवरूप पति की वासना, तृष्णा, ममता आदि सौकिनियां। घेरनी थाकी=घेरा देती-देती थक गई। परगट=प्रत्यक्ष हो, सामने आ। सेभ=हृदय-कमल में। सांसौ इहै=संशय यहां। व्यापै=व्याप्त होता है। आपा=महत्व, आदर।

जन हरीदास सांसा सब भागा, तब पीव अंचरैं लाई ॥
बांह पकड़ि हरि अंदरि लीन्ही, जम की मिटी दुहाई ॥३॥
॥ इति राग गूजरी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग तौड़ी ॥

(१२०)

ऐसे रांमराइ जांणीला, पांचू उलटा आंणीला ॥टेक॥
'औघट' घाटी पीईला, हरि भजि ऐसे जीईला ॥१॥
त्रिकुटी कापड़ धोई ला, भँवर गुफा मैं सोईला ॥२॥
जोति सरूपी जोईला, हरि भजि हरिसा होईला ॥३॥
दीनदयाल पिछांणीला, जन हरिदास तैं आंणीला ॥४॥
॥ इति राग तौड़ी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग कलंगड़ो ॥

(१२१)

रांमसनेही 'जीवनि' मेरी, तेरे चरन कँवल परि वारी फेरि ।टेक।
हरि जन कै 'मंदिर' हरि आवो, मैं व्याकुल तुम्ह दरस दिषावो ॥१॥
'वेदनि' विरह विथा तन मांही, पड़दा 'षौलि' मिलौ क्यूँ नांही ।२।
जन हरीदास कै आस तुम्हारी, विलम कहा पतिदेव मुरारी ॥३॥
॥ इति राग कलंगड़ो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—अवघट-१। जीवन्य-२। म्यदिर-२। मिदरि-३। वेदन-१। षोल्य-२।

शब्दार्थ—अचरैं=अञ्चल में, गोद में। पाचू=ज्ञानेन्द्रियां। उलटा=अन्तर्मुख, आत्माभिमुख। औघट घाटी पीईला=वंकनालि से प्राणो को दशमद्वार मे स्थिर कर अमृत पीऊँगा। जीईला=जीऊँगा। त्रिकुटी=भृकुटिमध्य। पिछांणीला=पहिचानना।

॥ अथ राग नट ॥

(१२२)

तुम्ह बिन मिटत न जांनी पीर ,
धनक धारि जोधा मॅगि मेरे , मैंबामी बलबीर ॥टेक॥
मेरा करम मूल का लागू , ताकूँ परी 'तनि' भीर ॥
बेड़ी कठिन कहौ 'क्यौं' काटौ , कुल मरजाद जँजीर ॥१॥
'औगण' बहौत भजन नहि कीया, मन कौ मतौ अधीर ॥
भव जल वार पार कछु नांही , क्यूँ करि 'पकड़ूँ' तीर ॥२॥
है हरि अकल सकल बिसब्यापी , मैं काचै करवै नीर ॥
जन हरीदास चरणां का चेरा , सरणि रापि 'रघुबीर' ॥३॥

(१२३)

तुम्ह हरि बसौ मिंदरि आइ ,
नैंण निसदिन भरत नीभर , प्रांण पीव बिण जाइ ॥टेक॥
आत्मा 'अस्थांनि' आतुर , बिरह बिसहर पाइ ॥
मन भया व्याकुल कब मिलौगे , सकल ब्यापी राइ ॥१॥
हरि माघ निज पंथ सदा हेरूँ , आंन पंथ न सुहाइ ॥
पीव पीड़ दुप दूरि कीजैं , देव दरस दिपाइ ॥२॥
'तुम्ह' जांणते हौ कहूं काम्रूँ , कहत न आवैं काइ ॥
जन हरीदास कूँ दीदार दीजैं , पेम प्रीति चषाइ ॥३॥

पाठभेद—तन्य-२ । क्यूँ-२-५ । अवगुण-१ । पकरौ-१ । रुघवीर-२-४ । असथ्यान-२ । तुम-५

शब्दार्थ—धनक धारी=धनुष वाले, सतगुरु । जोधा=शूरवीर । मेरा करम= मेरे सकाम कर्म । भीर=विपत्ति, सकट । कुल मरजाद=वशपरम्परा की । काचे करवैं= बिना पके घडे मे, नश्वरदेह मे । नीभर=झरने की तरह झरते है । माघ=मार्ग, पथ । दीदार=दर्शन ।

(१२४)

भजि मन ! रांम सजीवनि मूरि ,
प्रेम प्रीति अंतरि ल्यौ लागी , हरि सकल रहे भरपूरि ।।टेक।।
'जग सूँ' प्रीति कहां 'लूँ' कीजै , सकल काल की चोट ।।
उलटौ पेलि अनल का सुत 'ज्यूँ', पकड़ि रांम की वोट ।।१।।
है हरि अकल सकल विसव्यापी , नेरां वसौहक दूरि ।।
भन हरीदास निज रूप न 'जांण्यौ', ता पसवां मुषि धूरि ।।२।।

(१२५)

अब हम रांम भजत सुष पाया ,
कांम किवाड़ी जड़ी जतन सूँ , मोह मता मुरझाया ।।टेक।।
बिगसत कँवल सवद सति सुँखिया , सुँनि मंडल मैं सारं ।।
वरषै धरणि गगन रस भीजै , सदा अषंडित धारं ।।१।।
चंद सूर एकै रथि वैठा , पवन विरौलै बाई ।।
गंग जमन मधि हीरा दरसै , सुषमनि सहज समाई ।।२।।
स्यौ घरि 'सक्ति' सक्ति सूँ मेला , भरम गया भै भागा ।।
गगन मंडल मैं वसै उड़ागर , ऊँचै आरंभि लागा ।।३।।
निराकार निरलेप निरंतरि , महलि मिले वनमाली ।।
सुष मैं सीर अषिल अविनासी , परम जोति सूँ ताली ।।४।।
'घटि' 'घटि' अघट अगह अविनासी, वंकनालि रस पाया ।।
पांचौ थकित छक्या रसि पेलै , आनँद अरथि समाया ।।५।।

पाठभेद— जुगम्यौं-१ । लौं-१ । ज्यौं-१ । जान्यौं-५ । सकति-२ । घटघट-३-५ ।

शब्दार्थ--मूरि=जडी । वोट=आड़, सहारा । पसवां=पशु जैसे प्राणी । जड़ी जतन सूँ=उपाय द्वारा, साधन द्वारा कामना के किवाड़ बन्द कर दिए हैं । विगसत=खिलता हुआ, प्रफुल्लित । कँवल=हृदयकमल । धरणी=वृत्तिरूपी पृथ्वी । चंद सूर एकै रथ बैठा=इड़ा-पिंगला समस्वर से प्रवाहित है । पवन=प्राण । विरौलै=आलोड़न करै, रस लेवे । गंग जमन=मन-प्राण । स्यौ घरि=ब्रह्मस्थान में । सक्ति=सूक्ष्मवृत्ति । उड़ागर=मनपक्षी ।

'नवघण' घटा गरक गुण तीनूँ, रांम रतन धन नेरा ॥
वूठे मेह पहम रुति पलटै, सुष मैं महजि वसेरा ॥६॥
है हरि अकल मकल की सोमा, जागि लहै मो जीवैं ॥
जन हरीदास ता तैं रावलिया, अगम 'पियाला' पीवैं ॥७॥

(१२६)

जव मन मैं तैं मोह चुकावे,
उनमनि रहै निरंतरि निसदिन, कलपि न काठ लगावैं ॥टेक॥
मन मैं तन तन मैं मन पेलै, 'पांच भांति' की पूजा ॥
आंटी आप आपणी वान्ध्या, तव लग हरि सूँ दूजा ॥१॥
षोलि कपाट करम करि कांनैं, अकरमि अरथि समावैं ॥
पूठा फिरै न पर दुष देषै, निरभै निज घरि आवैं ॥२॥
इन्द्री पांच अटकि ले उलटी, ल्यौ की डोरि लगावैं ॥
आसा छाड़ि निरास विचारै, थकित भया थिति पावैं ॥३॥
उलटा पेलि अकास गिरासै, गम मैं अगम विचारै ॥
जन हरिदास मरण जांमण का, तव दोन्यौं पंथ हारै ॥४॥

(१२७)

संतो! राम कह्यां वणि आवैं,
जीवन अलप कठिन है कलिजुग, हरि विन 'कौंन' छुड़ावै ॥टेक॥
मन की तरंग अनंत 'वहौ' छाजा, ता तैं अरथ न आवैं ॥
ताकी आस वास मधुकर 'ज्यूं', जहां लागि तहां जावैं ॥१॥

पाठभेद—नोघण-५। पयाला-१। पांच भूत-१-५। कूंण-१। बहु-१। ज्यौ-१।

शब्दार्थ—नव घण घटा=अन्तर्मुखी इन्द्रियां, विशुद्ध अन्तःकरण चतुष्टयरूप बादलों की घटा उठ रही है। गरक=सराबोर, ओतप्रोत। रावलिया=साधक योगी। आंटी आप आपणी वाध्या=अपने ही सकाम कर्मों के बन्धन से आप बँध रहा है। षोलि कपाट=अन्तःकरण के अज्ञान-पटो को खोल। ल्यौ=लगन, तीव्र चाह। थिति=स्थिति, स्थैर्य। अकास=शून्य मडल। वहौ छाजा=अनेक प्रवृत्तियां।

हरितैं पलटि पतित व्है दूजा, साच कह्यौ न सुहावै ॥
नवका छाड़ि पड़ै सागर में, भरमि भरमि दुष पावै ॥२॥
जम की त्रास तिको वसि सहसी, जिन पैला 'प्रेम' न पाया ॥
जन हरीदास या जिव का वासा, मन कै हाथि विकाया ॥३॥
॥ इति राग नट सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग मलार ॥

(१२८)

संतो ! षेती की रुति आई,
औसर इसौ वहौड़ि नहि लाभै, अब जीत्या ज्यां वाही ॥टेक॥
धरती सूडि झाड़ अलसोट्या, विरहा 'अगनि' 'जलाई' ॥
'सुबधि' सौमि रांम जल वूठा, यूँ वाड़ी बनि आई ॥१॥
हाली भला भली सज सगली, एक मतै व्है लागा ॥
ब्रह्म साषि यूँ नीपजि आई, धुर का टोटा भागा ॥२॥
अनंत 'आतमा' अवर न जाचै, षलै 'वहौत' सुष पाया ॥
निज तत तिकौ लाटतां लीयौ, लाटै लोग धपाया ॥३॥
'इसा' भेद कोई विरला जांणै, 'जाकूँ' काल जाल मै नांही ॥
जन हरीदास हरि साष सकल भरि, विलसी आनँद मांही ॥४॥

(१२९)

सषि हो ! गगन गरजि घन आये,
सुँणि सुँणि सबद कँवल निज विगसत, अंतरि अलष लषाये ॥टेक॥

पाठभेद—पेम-१। अग्नि-१। जराई-१-५। सुबुधि-१। आत्मा-१-५। वहुत-१। ऐसा-१। जाकौं-१।

शब्दार्थ—नवका छाडि=आत्मचिन्तनरूप नौका को त्याग। ज्या वाही=जिनने बोई, तत्वज्ञान-रूपी अनाज की खेती के लिए यम, नियम, ध्यान, धारणा, समाधि-रूपी खेती जिनने बोई है। धरती सूडि=अन्त करण निर्मल कर। झाड़ अलसोट्या=अहङ्कार और मद-मोहादि झाड साफ कर लिये। हाली भला=विशुद्ध मनरूप हाली। भली सज सगली=वृत्ति, विवेक-विचारादि साथी भी सब भले है। धुर का=चिरकाल का, मूल से। षलै=खलिहान मे, राशि में। धपाया=तृप्त किया।

सेझ सुहाग भाग बड़ ग्वालणि, ब्रह्मझोल सुष पाये ॥
मन मैमंत राम रसि मातौ, धसि सुषसागर न्हाये ॥१॥
मोर मगन 'चात्रिग' सुष चितवत, बीज चमकि झड़ लाये ॥
अनहद सबद गोपि धुनि गरजत, पिव मिलि प्रेम 'वढ़ाये' ॥२॥
मथुरा मंडल होत अति आनँद, वेलि बधत बन छाये ॥
जन हरीदास जल पूरि परमगति, परम जोग पति पाये ॥३॥

(१३०)

सषी हो ! सांवण मास विराजै,
अरस परस कौतूहल देष्या, उरध कँवल कै छाजै ॥टेक॥
परमल प्रीति उमँगि जल उलट्या, गगन 'गरज' घण आया ॥
दांमणि उलटि आभ मैं पैठी, नौ वण 'न्योंति' बुलाया ॥१॥
वादल त्रिवधि पवन मुषि पीया, वंकनालि मैं वाई ॥
निरमल नीर अहो 'निस' वूठा, घटा मेर मैं आई ॥२॥
*'औघट' घाट अघट मैं अटक्या, सुषमनि सहजि समांणी ॥
ये नवनाथ नींद भरि सूता, नदी निवासै तांणी ॥३॥

पाठभेद—चात्रिक-१। बधाये-१। गरजि-१। न्यूंति-५। न्यसि-२। अवघट-१।

शब्दार्थ—मैमंत=मस्ती मे। धसि=भीतर प्रवेश कर। मोर=मन-मयूर। चात्रिग=चित्त, अन्त करण। वीज चमकि=ज्ञानज्योति प्रकट हो। गोपि=गुप्त। मथुरा मंडल=कायानगरी में। वेलि वधत=नामचिन्तनरूप बेल बढ रही है। उरध कँवल=सहस्रारदल। दांमणि=ज्ञानज्योति। आभ मैं=गगनमडल मे। नौघरा=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, चार अन्त करण। वादल त्रिवधि=त्रिगुणात्मक-वासना के बादल। पवन मुषि=प्राणायाम की साधना से।

* वासना, ममता, मोह, काम-क्रोधादि की कठिन घाटियाँ सब साफ हो गई हैं। सुषुम्ना नाड़ी सहज दशा मे समाई हुई है। ये नवों नाथ—पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ चार दसाये अन्त-करण की परम शान्त हैं। नदी निवासै ताणी=विविध वात-वह नदी-रूप नाड़ियाँ पूर्ण हैं, कुंभकमय हैं।

×इन्द्र अकाम अरथ मैं मीना, परसि परम सुष लीया ॥
जन हरिदास परस जल पैलो, मीन माछला जीया ॥४॥
॥ इति राग मलार सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सारंग ॥

(१३१)

रांमचरण छाड़ौ नहीं, भौजलि भूलि न 'जाइ' ॥
सुरति समाणी साच मैं, म्हारै मनि पायो विसरांम ॥टेक॥
अगनि विना ईंधण जलै, जल विन मलि मलि न्हाइ ॥
विनि जिभ्या जस होत है, तहां मन रह्या समाइ ॥१॥
विनि श्रवणां सींगी सुणै, विनि पांवा पंथ होइ ॥
नौ द्वारा मन ना वहै, जांणै विरला कोइ ॥२॥
साथ सकल ले सावतो, षसमैं षेत कमाइ ॥
विनि वाड़ी फल होत है, जो जांणै सो षाइ ॥३॥
'नैंन' समाना नूर मैं, हरि नूर निरंतरि आप ॥
जन हरीदास आनँद सदा, 'विछरन' वड़ौ संताप ॥४॥

(१३२)

अवधू गुर विन ग्यांन न लाभै,
कहा भयो जे दांमणि दरसी, जल विनि वोछै आभै ॥टेक॥

पाठभेद—जाव-५। नैंणा-१। बिछुडन-१-३।

शब्दार्थ—अगनि विना इंधण जलै=स्थूलाग्नि के बिना ज्ञानाग्नि से विषय-विकाररूपी ईंधन जल रहा है। जल विन मल मल न्हाइ=दृश्यमान पानी के बिना आत्मानन्द की नदी में मल-मलकर स्नान कर रहे है। विनि जिभ्या जस होत है=जीभ के बिना वृत्ति से चिन्तन हो रहा है। साथ सकल ले सावतो=सावत मन-शुद्ध मन ने सद्बुद्धि, स्थिरवृत्ति, निश्चलप्राण आदि को साथ मे ले लिया है।दामणि=विजली। दरसी=देखी, चमकी।

× इन्द्र मन अकास-शून्यमंडल में भीने आत्मतत्व को परस परम सुख प्राप्त किया। ब्रह्मतत्वरूपी पैलो जल परस आत्मा, मन, प्राण, वृत्ति आदि मीन-मछलियाँ जी गयी-अमर हो गयी।

जब लगि निज तत 'निजरि' न दरसै, तब लग प्यास न भाजै ॥
कहा भयौ जैं सूकै भांडै, षाली बाई गाजै ॥१॥
'नौघण' घटा 'गरजि' जब बरसै, तब हाली सुष पावै ॥
आरंभ करै माष व्है सांम्ही, 'कस' करि करज चुकावै ॥२॥
जन हरिदास दोष तजि दुरमष, रांम रसाइण पीवै ॥
वूठै मेह पहम रुति पलटै, परचै लागा जीवै ॥३॥

(१३३)

'भौजल' ऊँडा हो केमवे, रहिये 'कोंण' अधारि ॥
अजर जिहाज नांव हरि तेरो, वेली बॉह पसारि ॥टेक॥
जम कै लोकि सदा हूँ रहती, दहती जम की लाइ ॥
अब मैं रांम सजीवनि पायौ, 'जमपैं' पलौ छुड़ाइ ॥१॥
कुबधि सषि घरि जाहु आपणैं, सुबधि कहै कर जोड़ि ॥
मैं पतिवरता हरि पिव पायौ, कुल मरजादा तोड़ि ॥२॥
पांच सषी सहज घरि पेलैं, तन मन सेझ बिछाइ ॥
जन हरिदास जब आतुर देष्या, तब बैठा हरि आइ ॥३॥

(१३४)

सुषसागर साहिब नेरा, जहां लागि रह्या मन मेरा ॥टेक॥
निरमल ग्यांन ध्यांन धुनि निरमल,, निरमल कूँ मन दीया ॥
ता जोगी संगि सहजैं षेलूँ, जिन जोगी 'जुगि' कीया ॥१॥

पाठभेद—निजर-४। नवघण-१। गरज्य-२। कसि-३। भवजल-१। कूँण-१। जमतैं-१। जग-५।

शब्दार्थ—निज तत=ब्रह्मस्वरूप, आतमस्वरूप। सूकै भाडे=खाली बर्तन, दिखावटी साधक। वाई वाजै=वाचक साधक का कथन। नौघण=नवधा भक्ति। हाली=मन। साम्ही=अनुकूल, अच्छी। वूठै=बरसे। वेली=साथी। वाह=हाथ, भुजा। कुबुधि सषि=मायिक पदार्थों की प्राप्ति की मति। पांच सषी=अन्तर्मुखी इन्द्रिया।

'नैंना' रांम वसै हरि 'वैंना', हिरदै रह्या समाइ ॥
रोम रोम हरि सुमिरण लागा, मेरे गुरगम दियौ वताइ ॥२॥
आनँद रूप अषिल अविनासी, सुष मैं सुरति समांणी ॥
जन हरीदास निधि देषि निजरि भरि, घट घट अघट विनांणी ॥३॥

(१३५)

अवला पिव विन क्यौं रहूं, निसदिन तलफि तलफि तन जाइ ।टेक।
स्वाति वूँद सहजां पीवै, नां पीवै नाड़ारौ नीर ॥
विरह अगनि तन 'जालियौ', जिहिं व्यापै सो जांणै पीर ॥१॥
प्रेम पियाला चित चढ्या, अव पिव हो मोहे प्रेम पिलाइ ॥
रोम रोम हरि रस पियौ, तन विछुड़ै तहुं प्रेम न जाइ ॥२॥
पतिवरता विभचारिणी, दोऊँ अनत न वैसे एकै साथि ॥
फटिक मणि तव लग भली, जव लग हीरा न आवै हाथि ॥३॥
अनंतपुरी आगै वसी, रांमभजन विन चले हौ ठगाइ ॥
'उत्तमपुरी' आंमिर भयो, अव पीव प्रेम मगन रस पाइ ॥४॥
अधिक दरद 'कासूँ' कहूं, व्यापत है मेरा मन मांही ॥
जन हरीदास तन मन सज्या, अव पिव हसि वोलो क्यूँ नांही ।५।

(१३६)

मन तन जाइलो रे, या सुषि रहिये कौंण अधारि ॥
अव तजि भरम सरम गहि हरि भजि, साच तहां सुष पारि ॥टेक॥
आपै कलणि कर्‍यौ अपराधो, अकल 'पुरिस' कैसे पाइहौ ॥
सकल भवन पति राइ ॥

पाठभेद—नैंणा–१ । वैंणा–१ । जारियो–१ । उत्मपुरी–४-५ । कास्यूँ–१ । पुरुष–१ ।

शब्दार्थ—विनांणी=बनाने वाला, रचयिता । नाडारौ=छोटे सरोवर का । अनंतपुरी=अनेक जन्म । उत्तमपुरी=नरजन्म । आमिर=आगमन, आना ।

सकल सुष अगम विचार , अपार परम तत ॥
हरि भजि लीजै प्रेम वधाई ॥१॥
समझि समझि निज , तत निज मन धरि ॥
अधर अधर भजि , भजि निसत्रासुरि ॥
अपणौं निज तत नेम विचारि ॥
जन हरिदास स्वास ध्रिग हरि विन, कौड़ी मटे न हीरा हारि ॥२॥

॥ इति राग सारंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग वसंत ॥

(१३७)

तुम्ह भजौ निरंजन जनम जाइ , कौंण नींद सूते अघाइ ॥टेक॥
काल वांण गहि तकत 'तोहि' , जीव लागि रहे मत्र मदन 'मोहि' ॥
रांम भजन विन कौंण वात , जहां तहां जम करत घात ॥१॥
राति 'द्यौस' तन होत छीन , जैसे वोछे पांणी मगन मीन ॥
काल कीर निति परच षाइ , रांम समंद तहां क्यौं न जाइ ॥२॥
प्रांणनाथ सूँ प्रीति धारि , गुरग्यांन सवद हिरदै विचारि ॥
हरि अगाध भजि तजि जंजाल , जन हरीदास तहां काया न काल ।३।

(१३८)

मन मतिवाला राषि ठौर , पलक पलक हरि निकटि वौर ॥टेक॥
इतउत चितवत गई विहाइ , हरि है हजूरि मन तहां लाइ ॥
प्रेम प्रीति का 'देइ' वंध , ज्यूँ उलटि न षेलै मन अकंध ॥१॥

पाठभेद—तोह–४ । मोह–४ । दिवस–१ । देह–१-५ ।

शब्दार्थ—आपै=अहङ्कार की । कलणि=दलदल मे । धिग=धिक्कार । अघाइ=अतितृप्त हो, धापकर । मदन मोहि=काम और ममता मे । वोछे पाणी=थोडे पानी में, कम गहरे मे । वौर=बहुत । अकध=मरने को ।

नाभि कँवल निज सुरति लाइ, तहां वसत है रांम राइ ॥
हरि सकल वियापी परमदेव, ताकूँ 'वहौत' भांति तूँ तहां सेव॥२॥
जागि जागि रे जागि जांचि, हरि अगम अगम तूँ तहां राचि ॥
जन हरीदास हरि सकल साच, हरि निकटि निकटि मन बिकट नाचि ।३।

(१३९)

मतिवाली मालिण नांही दूरि, हरि परमसनेही है हजूरि ॥टेक॥
अरध उरध मधि कँवल मूल, आतम निज फूली ब्रह्म फूल ॥
अजव वास कछु कहि न 'जाइ', तहां मनसा मालणि रही 'लुभाइ' ।१।
रवि ससि मेला पछिम धूरि, तहां नदी 'निवासै' वहै पूरि ॥
भरि भरि पीवै अठारै भार, तहां वसुधा भीजै अषंड धार ॥२॥
सकल वियापी सहज भाइ, मथुरापति महलां वसे आइ ॥
जन हरीदास तहां 'चरण' लागि, जहां गोपी ग्वालणि रमै फागि ॥३॥

(१४०)

सषि हो! मास वसंत विराजै,
गोपी ग्वाल घेरि गोकुल मैं, वेणि मधुर धुनि वाजै ॥टेक॥
धागै सुरति पांच नग गूँथ्या, मन मोती मधि आया ॥
विगसत कँवल परम निधि 'परगट', हरि कूँ हार चढ़ाया ॥१॥
गरव 'गुलाल' चरण तलि चूरया, अरथ अबीर पिंडाया ॥
परमल प्रीति परसि परिपूरण, पिव मैं प्रांण समाया ॥२॥

पाठभेद—बहुत-१। जाय-५। लुभाय-५। नवासै-१। चरन-५। प्रगट-१। गुमांन-३।

शब्दार्थ—जांचि=तलाश कर, याचना कर। राचि=प्रमी बन, अनुरक्त हो। मतिवाली मालिण=मनसामालिन। मधि कँवल=हृदयकमल। अजव वास=अनोखी गन्ध। रवि ससि मेला=मन-प्राण का सङ्गम। पछिम धूरि=मेरुदण्ड से सुषुम्ना के अन्तिम आश्रय तक। नदी निवासै=नौ सौ नाडियां। अठारै भार=शरीरस्थ सब तत्व। वसुधा=साधनारूप भूमि। गोपी ग्वाल घेरि गोकुल मैं=कायानगरी मे गोपी-ज्ञानेन्द्रियां, ग्वाल-मन को घेरो, अन्तर्मुख करो। वेणि=बांसुरी, अनहद नाद। पांच नग=पञ्चप्राण, अपानादि।

बंकनालि निहचल नौ निरमैं , यें कौतूहल भारी ॥
जन हरीदास आनँद निज नगरी , षेलै फाग मुरारी ॥३॥

(१४१)

भवनैं भँवर बाग निज लाग्रौ , ताकी 'उतम' बास लै जीवैं ॥
निरमैं डोरी 'निरति सुँ' लागी , मगन भयो रस पीवैं ॥टेक॥
ब्रह्मफूल की बास 'मस्त' है , अर्मा महारस लागा ॥
सुषदेव पी मतिवाला हूवा , ऊठ बना कूँ भागा ॥१॥
मुंनि मंडल की वाड़ी बिलमैं , सहजि सकल रस लाधा ॥
जन हरीदास 'हरजी' का सेवग , जम कै बंधणि न बांधा ॥२॥

(१४२)

मन मतिवाला सहज माइ , जोग मूल गहि रह्या समाइ ॥टेक॥
ब्रह्मअगनि बरषा अपार , भरि भरि पीवैं अठारैं भार ॥
गंग जमन मधि बसंत राग , भँवर गुंजारैं 'गहर' बाग ॥१॥
चंद सूर रथ फिरथा फाग , ग्यांन ध्यांन ल्यौ गगन लाग ॥
प्रेम प्रीति का पहौप हाथि , पांच सषी सब मौंज साथि ॥२॥
हरष सोग दुष दुरथा दोइ , 'यह' गति जांणै साध कोइ ॥
त्रिवेणी तटि ध्यांन धारि , परम जोति 'प्रगटै' मुरारि ॥३॥
सकल वियापी रांम राइ , परम 'पुरष' गति लषि न जाइ ॥
जन हरीदास अवगति अनंत , भजि अलष निरंजन करि बसंत ।४।

पाठभेद—उत्म–४-५ । निरंतरि–१-३-५ । मसत–२ । हरिजी–३-५ । गहैर–२-४ । याह–१ । परगट–५ । पुरुष–१ ।

शब्दार्थ—नौ निरमै=इन्द्रियां, अन्त-करण । विलसै=उपभोग करे । वधणि=बन्धन । गंग जमन मधि=इडा-पिंगला के मध्य सुषुम्ना मे । चंद सूर=मन और प्राण । दुरथा=छिपा । त्रिवेणी तटि=भृकुटिमध्य ।

(१४३)

चलो सषी जहां रांमराइ, रांमराइ विन रह्यो न जाइ ।।टेक।।
यहु आलस कहा लग्यौ तोहि, वात सषी यह कहौ मोहि ।।
जनम अमोलिक चल्यौ है जात, नांऊ तरवर लगै फिरि तूटे पात ।१।
एक महर मैं विवधि राज; हसती पाइक हेम वाज ।।
काल वांण 'लिऐ' फिरत मांहि, तहां वस्या कछु चैन नांहि ।।२।।
परम उदार आनंद अछेह, सुत तात मात जीवैन देह ।।
जन हरीदास मन तहां लीन, समद विछौहे 'मरै' मीन ।।३।।

(१४४)

चलहु सषी करि वसंत राग, 'जिसि' वन मनमोहन रमै है फाग ।।टेक।।
'पांच' सषी सव सौंज हाथि, मिलि 'पेलण' चाली पीव साथि ।।
तुम्ह अगाध मैं न क्यूँ जीव, आइ रुति वसंत रंगि रमौह पीव ।१।
ज्यूँ चकवी मनि रहै उदास, ऐसै आतम फूली ले सुवास ।।
'पहौप' वास मैं रही लुभाइ, ऐसो वाग वन्यौ पिव रमौ हौ आइ ।२।
जन हरीदास मन अति उमंग, ऐसा लागा प्रेम रंग ।।
प्रेम पियाला घटत नांहि, हरि अगाध जन पीवत जांहि ।।३।।

।। इति राग वसंत सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग अडांणो ।।

(१४५)

कहु और कै कहै सँइया, 'तुम्ह' जिनि हमपै ठौर छुड़ावो ।।
अव हमसूँ ऐसे मन राषो, अंतरि जोति जगावो ।।टेक।।

पाठभेद—लिये-२ । मरेहै-२ । ज्यसि-२ । पंच-१ । खेलन-१ । पहुप-१ । तुम-५ ।

शब्दार्थ—टेतू पात=जीवनवृक्ष के आयुरूप पत्ते टूट रहे हैं। एकसहर=कायानगरी एक है। समद=ब्रह्मसागर। विछौहे=वियोग मे। आतम=जीवात्मा। सँइया=हे स्वामी ! ठौर=आत्मप्राप्ति का स्थान ।

तन सूँ तन मन सूँ मन मेला, अंतरि अंतरि मेला ॥
और सकल सुप विषमरि लागत, तुम्ह लागत हौ सेला ॥१॥
नैननि मैं नैन वैननि मैं वैना, समझि समझि सुप दीजै ॥
तुम्ह बिन जीव चात्रिग की नांई, तलफि तलफि तन छीजै ॥२॥
तुम्ह बिन पीर न जांणै कोई, तुम्ह ही ढौरी लाई ॥
जन हरीदास गुर झुरकी डारी, बिरहनि बिरह जगाई ॥३॥

(१४६)

पिव पाये हो जागि लागि अब मोहि भागि, सीतल सबद सुहाये हो ॥टेक॥
मन ही सूँ मन मेला, वैन ही सूँ वैन सेला ॥
निज घरि नैन समाये हो ॥१॥
जांनि जांनि प्रीति लाये हो, सेझां सनेही आये हो ॥
आज मो मनि भाये हो ॥२॥
जहां तहां सुष मेरे, मोहिहूँ चित तेरे ॥
आनँद अनंत रिझाये हो ॥३॥
'भवनि' 'गवन' कीया, मन मेरा हरि लीया ॥
अरस 'परस' रस पाये हो ॥४॥
जन हरीदास तहाँ वास, सुष मैं सुष निवास ॥
समझि समझि सुष पाये हो ॥५॥

॥ इति राग अडाणो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—भवन-४। गवनि-५। प्रस-१।

सेला=शीतल, सुषदायो। ढौरी लाई=लौ लगाई, भक्ति जागृत की। मन मेला=मन मे ही मन का समावान। मोहिहूँ=मोहित करूँगा।

॥ अथ राग कनड़ौ ॥

(१४७)

संत सुधारण जम चोट विदारण, परम उदार करतार विसंभर ॥टेक॥
गहर गंभीर संमद भवतारण, हरि पावक पावक पष जारण ॥
पारब्रह्म अघ मेटण कारण ॥१॥
जलि थलि वास अरि आस निवारण, नाँव निरूप घट घाट संवारण ॥
हरिजन हरीदास भू भार उतारण, हरि परम जोति जस उर विसतारण ॥२॥

(१४८)

जो कवहू मन हरि जी सूँ लागै,
जठर अगनि में 'वहोड़ि' न षेलै, जम कै पटै चढ़ै नहिं आगै ॥टेक॥
त्रिवधि ताप तत पांच न परसै, जोनी जीव 'जनमि' नहिं आवै ॥
तजि संसार धार तैं उतरै, उलटो षेलि परम पद पावै ॥१॥
मन गहि पवन गवन हरि चरणां, चरणां रहै तरसि तत दरसै ॥
जन हरीदास मन पलटि परमगति, निरमल होइ निकटि निधि परसै ॥२॥

(१४९)

जो कवहू मन हरि सुष जांणै,
उनमनि लागि अगम घरि षेलै, 'और' सकल सुष आदि न आंणै ॥टेक॥
ज्यूँ तरमूल पहम मैं पेरै, सव जल सेझै जाइ समावै ॥
यूँ सति सुरति निरषि निधि निरमै, या सुषि अटकि उलटि नहिं आवै ॥१॥
ज्यूँ दूरि सुत अनल गगन कूँ उलटै, ग्यांन प्रकास पिता 'पष' जोवै ॥
यूँ फिरि जीव सींव संगि षेलै, जनम जनम का कलि विष धोवै ॥२॥

पाठभेद—वहुरि-१। जनम्य-२। अवर-१। पषि-१।

शब्दार्थ—जठर अगनि मैं=गर्भवास में। पटै=जम के हिसाब में, मृत्युमुख मे। धार तैं=ममता की धार से। तरसि=चाव से, लगन से। तरमूल=वृक्ष की जड़। पहम मैं पेरै=भूमि मे प्रवेश कर लेती है। सींव=ब्रह्म।

सलिता गौड़ि करै तव न्यारी , समद समाइ समद समि होवै ।।
जन हरीदास यूँ अरस परस मिलि , हरिजन हरि मैं प्रांण समोवै ।।३।।

(१५०)

साजिनिवाजि परमपद आपै , रांम दयल अमर करि थापै ।।टेक।।
करता करण सदा सँगि जाकै , चितवनि कहौ कहा धू ताकै ।।१।।
करम कुठार विथा हरि 'कांपै , जन हरीदास नरहरि हरि जापै ।।२।।

।। इति राग कनड़ौ सम्पूर्ण ।।

।। अथ राग मारू ।।

(१५१)

'जुगि' जागिन जोया रे ,
नर देही हरि ना भज्यो , यूँ ही तन षोया रे ।।टेक।।
स्वारथ का सब को सगा , वादल की छांही रे ।।
सुपनै का सुष छाड़ि दे , जागै क्यूँ नाही रे ।।१।।
झूठा सुष संसार का , साचा कर लीया रे ।।
मोह नदी मैं वहि गया , माया मद पीया रे ।।२।।
'मूरिष' कूँ समझाइये , 'औगण' करि वूझै रे ।।
आपा की भ्रांटी पड़ी , सति साच न सूझै रे ।।३।।
परमसनेही रांमजी , साचा सुषदाइ रे ।।
जन हरीदास गोव्यंद भजो , मरमौ मति भाइ रे ।।४।।

पाठभेद—जग-५ । मूरष-१ । अवगुण-१ ।

शब्दार्थ—सलिता=सरिता, नदी । गौडि=गर्जना । समोवे=समाविष्ट करे, समावे । साजनिवाजि=सब प्रकार की सामग्री देने वाला । चितवनि=देखना, नजर मे । धू ताकै=निश्चलब्रह्म को देखे । वूझै रे=समझे रे, माने रे ।

(१५२)

अपणो हीरा जनम न हारि ,
वार वार तोहूँ 'कहूँ' , तूँ योहि ग्यान विचारि ॥टेक॥
जागि लागि सोवै कहा , हरि सुमरणि सुष माहि ॥
अंति आस पूजै नहीं , तूँ कालरि बीज न वाहि ॥१॥
भूष न भाजै मैं तजै , जम की मिटै न त्रास ॥
तूँ क्यूँ रोपै आप कूँ , अंध आपनैं पास ॥२॥
जौ जाग्या तो सोइमा , जौ सूता तौ जागि ॥
जनम 'अमोलिक' जात है , तूँ आंधा 'आरंभ' लागि ॥३॥
सुर नर घर पावै नही , पंडित लहै न जांण ॥
जहां आपौ तहां आंतरो , मोहि अजरावर की आंण ॥४॥
रांम भजन सुष 'परहरै' , माया तहां मन जाइ ॥
जा घरि सुवधि न संचरै , मोह रह्या लपटाइ ॥५॥
तात मात बंधू सषा , सुत वनिता सुष लोइ ॥
सब को स्वारथ का सगा , घट छूटा सगा न कोइ ॥६॥
परम सनेही रांम है , 'और' सगा दिन चारि ॥
जन हरीदास दूज्या तज्या , तजि लीया रांम सँभारि ॥७॥

(१५३)

वेली लो तत वेली लो , काटी वेलि वधैली लो ॥टेक॥
चंद सूर दोउ 'समि' करि राष्या , सास सवद संगि लाया लो ॥
गंगा मूल तहां रस उलटै , वेलि 'तको' रस षाया लो ॥१॥

पाठभेद—कहौं-१ । अमोल्यक-२ । आरंभि-२-३ । प्रहरै-१ । अवर-१ । सम-१ । तिको-१ ।

शब्दार्थ—कालरि=खार की भूमि में । रोपै=गाड़े । आरंभ लागि=साधना मे लग । आंतरो=अन्तर, भेद । आंण=सौगन्ध । घट छूटा=देहपात हुआ, मरा । वेली=तत्त्वनिष्ठवृत्ति । काटी वेलि=मायकि पदार्थों से हटाई हुई वृत्ति । चंद सूर=इड़ा-पिंगला नाड़ी । सास सवद संगि लायालो=प्राण को रोक कर सोहं शब्द से सम्बन्धित किया । गंगा मूल=नाभिप्रदेश ।

निज निरसिंध अगहि 'अभि' अंतरि, वरण विवरजत वांणी लो ॥
इला पिंगुला सुषमनि मेला, ता सुषि वेलि समांणी लो ॥२॥
तरवर अगम अणीं तहां लागी, वेलि किया विसतारा लो ॥
काटी वेलि अमर फल लागै, विनि काटी फल पारा लो ॥३॥
वास विकट कोई पान न पंडै, मिरघ वसै ता मांही लो ॥
'पाइक' पांच पहरवा राष्या, उदै 'अस्त' दोइ नाँही लो ॥४॥
गमन मंडल मैं वेलि विलूँधी, मूल मता मैं आया लो ॥
जन हरीदास आतम कै अंतरि, सतगुर साँच वताया लो ॥६॥

(१५४)

जिवड़ा जनम सिरायो रे,
सोवत सोवत सोइ रह्यो, 'अजुँ' नींद न धायो रे ॥टेक॥
'जनम' अमोलिक जात है, विषया रस मांही रे ॥
काल गह्यो ग्रासै जुरा, जागै क्यूँ नांही रे ॥१॥
जा कूँ तैं तन मन दिया, अपणां करि लीया रे ॥
इन मैं तेरा को नहीं, भूलै विष पीया रे ॥२॥
सूतां सरवस जात है, जांणै सो जागै रे ॥
जन हरीदास आछै मतै, हरि सुमिरण लागै रे ॥३॥

(१५५)

रैंणि गई दिन जाइ, सषी मैं क्यूँ करूँ ॥
हरि विन कछु न सुहाइ, विछोहे मैं डरूँ ॥टेक॥

पाठभेद—अभ्य–२। पायक–३-४। असत–२। अजहुं–५। जन्म–५।

शब्दार्थ—तरवर अगम अणी तहां लागी=अगम ब्रह्मवृक्ष मे वृत्ति की अणी-अग्र भाग लगी। मिरघ=विषयविरत मन। पाइक पांच=पांचो ज्ञानेन्द्रियां। विलूँधी=छाई। सिरायो=बीता, समाप्त हो रहा। आछै मतै=आत्मचिन्तन मे। विछोहे=वियोग मे।

जल विन मीन कहो क्यौं जीवै, जाकैं जीवण पांणी ॥
ऐसे हम हरि विन दुष पावत, तलफत रैंण विहाणी ॥१॥
पिव पिव करत विरह तन जारचो, चात्रिग घन कूँ टेरै ॥
यूँ मम प्रांण दुषित हरि 'तुम्ह' विन, मनसा मारग हेरै ॥२॥
जन कै 'भवण' 'गवण' हरि कीजै, विलम कहा तुम आवौ ॥
रमताराम सकल विस व्यापी, हा हरि दरस दिषावौ ॥३॥
'याह' वड़ विथा रांम भल जांणै, विरह वसै तन मांही ॥
जन हरीदास हरि 'महलि' पधारो, कै अव जीवन नांही ॥४॥

(१५६)

सेभ सनेही आव, आवौ देव नरहरि ॥
विकल भई मन मांही, क्यूँ हो पीव परहरि ॥टेक॥
सुरति संवाहि माघ नित हेरूँ, चित चेतन चौकी चढ़ी ॥
तलफि तलफि तन जाइ, भुरकी भै पड़ी ॥१॥
'यहु' विसवास आस निज अंतरि, अवला चौवारै षरी ॥
मसतग दे दे हाथ, पंथ 'हेरूँ' हरी ॥२॥
जांण प्रवीण परमसुष दाता, विरहणि विरहा परजरी ॥
जन हरीदास वलि जाइ, विलम कहा करी ॥३॥

(१५७)

वालम विरह विवोगी रे,
भुरकी मोपरि डारि गयो, 'जुग' मंडण जोगी रे ॥टेक॥

पाठभेद—तुम–५। भवन-गवन–५। या–५। महल–५। इहु–२। हेरौ–१। जग–५।

शब्दार्थ—विहांणी=बीती। भवण=स्थान, हृदयप्रदेश में। गवण=गमन। परिहरि=त्याग दी, छोड दी। माघ=मार्ग, वाट। हेरूँ=देखूँ। चित=अन्तःकरण। चौवारे=अन्त करण में वृत्ति। भुरकी=मोहनी।

सारा सुष संसार का, मोहि षारा लागै रे ॥
तूँ मेरा जीवन जीव की, रहो नैंना आगै रे ॥१॥
परम सनेही पीतमा, प्रांन न तैं प्यारा रे ॥
महलि पधारो माधवे, सारां सिरि सारा रे ॥२॥
विरहणि कै रस एक तूँ, दूजा सब ज्वाला रे ॥
जन हरीदास 'यूँ' वीनवैं, 'ग्रह' आवो वाला रे ॥३॥

(१५८)

रे मैं रांम रस पीया रे,
छाकि चढ़ी सुधि वीसरी, सिर सौदा कीया रे ॥टेक॥
अगम पियाला 'प्रेम' का, सहज पिया धरि ध्यांन ॥
इतवत चितवणि मिट गई, अब 'विछरन' मरण समांन ॥१॥
जिन पीया सो जानि है, 'और' न जांने कोइ ॥
रसिया रस मैं मिलि रह्या, अब टलै न दूजा होइ ॥२॥
कहा करूँ ऐसी भई, मन पड्या दरीवैं जाइ ॥
जन हरीदास मतिवालि मैं, मेरा मन हरि लिया चुराइ ॥३॥

(१५९)

अरे मैं पी मतिवाला रे,
'छाक चढ़ी सुधि वीसरी', पीया अगम पियाला रे ॥टेक॥
गोली चाढ़ी ग्यांन की, ममता कस दीया रे ॥
कांम क्रोध 'वालणि' वल्या, गमही गुड़ कीया रे ॥१॥
गिगन मंडल माटी चिगै, सरवै वहाँ धारा रे ॥
पांच सषी सनमुष सदा, गुर पावण द्वारा रे ॥२॥

पाठभेद—यौं–१। ग्रिह–३-४। पेमका–१। विछुडण–१। विछरण–५। अवर–१। "सुरति समानी साच मैं" वालण–५।

शब्दार्थ—वीनवै=विनती करे। छाक चढ़ी=मस्ती आई। दरीवे=दरबार मे। मतिवालि मैं=मस्ती मे, प्रेममगन। वालणि=पलीता, ईंधन। गिगन मंडल भाठी चिगै=सहस्रारदल मे रुकी हुई वृत्ति की भट्टी।

रांम रसाइण रीति है, साधां कूँ भावै रे ॥
जो पीवै सोई छकै, छकि मांहि समावै रे ॥३॥
प्रेम पिया तव जांणिये, तन मैं मन आवै रे ॥
जन हरीदास आछै मते, कछु आंन न भावै रे ॥४॥

(१६०)

गोव्यंदो ज्यूँ जांणै त्यूँ गाइ,
'जनम' अमोलिक जात है, तूँ हरि सूँ हेत लगाइ ॥टेक॥
अलष निरंजन उरि वसै, रांम नाम 'निज' भेद ॥
रांम विसारयां होत है, सही कंध का छेद ॥१॥
'रवि ससि' मिलै न मुकति फल, पति सूँ प्रीति न होइ ॥
करमकाट मोरचा जव्या, तूँ नांव नीर लै धोई ॥२॥
सात समद 'नौ' सै नदी, वनी अठारा भार ॥
गिर रवि ससि तारा मंडल, तहां परै दीदार ॥३॥
एक सैज का सोवणां, एक महल मैं वास ॥
जन हरीदास हरि सूँ मिल्या, गहि प्रेम प्रीति परकास ॥४॥

(१६१)

निरंजन नाइ लागा हो,
भरम अँधारा मिटि गया, सूता था जाग्या हो ॥टेक॥
अगम तहां गम को नहीं, मैं गम करि लीया हो ॥
प्रीति 'पयाला' 'प्रेम' का, तुम्ह दीया पीया हो ॥१॥

पाठभेद—जन्म–१। न्यज–२। रवि-सिस–२-३। नव–१। पियाला–१-३। पेम–१।

शब्दार्थ—सही=निश्चय से। कंध का छेद=सिर कटे, नाश हो। सात समद=रसादि सप्तधातुरूप सागर। नौ सै नदी=नौ सौ नाड़ियां। सैज का=शैय्या, हृदयरूपी शैय्या पर। नाइ=नाम।

जा कै गांव ठांव कुल को नहीं, कैसे करि पाउँ हो ॥
गुरि डोरी दीन्ही साच की, तिसि लागा आउँ हो ॥२॥
भगति निवाजण मैं सुण्या, तुम्ह कारिज सारया हो ॥
नांमा जन रैदास सा, ले पारि उतारया हो ॥३॥
अगम पियाला प्रेम का, तुम्ह दीया पीया हो ॥
गोरषनाथ कबीर सा, अपणां करि लीया हो ॥४॥
पींपा सोंझा सेन सा, हरि लोक बसाया हो ॥
जन हरीदास हरि मौज सुँणि, चरणां चलि आया हो ॥५॥

॥ इति राग मारू सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग केदारो ॥

(१६२)

सनेही प्रांण आलस कियो रे अघाइ,
हरि हरि सुमरि सगौ हरि तेरो, तूँ हरि का गुण गाइ ॥टेक॥
माल मुलक अपणां करि बैठा, तेरां नांही कोइ ॥
'यहां' सुष अलप अनंत दुःष आगे, अंति चलैगो रोइ ॥१॥
काहे कूँ 'सिर' भार सहत है, सकै तो बोझ उतारि ॥
जन हरीदास भजि रांमसनेही, तूँ अपणा काज सँवारि ॥२॥

(१६३)

मन रे ! गोव्यंदा गुण येह,
'भगत' भव रिपु भरम भंजन, करण संत सनेह ॥टेक॥

पाठभेद—इहां–२-३-४। सिरि–२-३। भगति–१-३।

शब्दार्थ—निवाजण=अतिकृपालुता, वात्सल्य। मौज=आनन्द। अघाइ=धाप-कर, अत्यन्त। सगौ=मित्र, सहायक।

सोई ब्रह्म सनाथ निरपष, 'पषि' वंध्या जनकै भाइ ॥
अकल तरवर सकल व्यापी, अगहि गह्यौ न जाइ ॥१॥
परम जोति प्रकास पूरण, अगम वार न पार ॥
जन हरीदास सों सुष राषि नैंना, निरषि वारूँ वार ॥२॥

(१६४)

मन रे ! गोव्यंदा गुण गाइ,
अव कै जव तव ऊठि चलैंगो, कहत 'हूँ' समझाइ ॥टेक॥
अटकि अरि हरि ध्यान धरि मन, सुरति हरि 'ह्यूँ' लाइ ॥
भजसि भगवंत भरम भंजन, संत करण सहाइ ॥१॥
तरल 'त्रिष्ना' त्रिवधि रसि वसि, गलत गत तहां चंद ॥
जाइ जोवन जुरा ग्रासै, जागि रे मतिमंद ॥२॥
मोह मन रिप ग्राह मैं तैं, गहर जल गुण देह ॥
जन हरिदास आजिस कालि नांहि, हरि भजन करि लेह ॥३॥

(१६५)

जागौ रे ! अव नींद न कीजै, 'निस' दिन आव घटै तन छीजै ।टेक।
वहौत दिनां तै यहु छक पाया, सो तो कौड़ी सटै गमाया ॥
हीरा था पणि हाथ न आया ॥१॥
कांम क्रोध माया मद माता, निस दिन काल न देषे षाता ॥
रांम भजौ हरि 'समरथ' दाता ॥२॥
ग्यांन प्रकास निजरि 'नित' 'येही', दुरिहै तन न रहै या देही ॥
जन हरीदस भजि रांमसनेही ॥३॥

॥ इति राग केदारो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—पष-५ । हौ-१-५ । स्यूँ-१ । त्रिसना-२ । न्यस-२ । समथ्र-४-५ । न्यत-२ । एही-२-३ ।

शब्दार्थ—पषि वंध्या=पक्ष में हुआ, सहायक बना । जन कै=प्रेमी के, भक्त के । वारूँवार=बारबार । अटकि=रोक । अरि=कामादि शत्रु । त्रिवधि रसि=त्रिगुणात्मक पदार्थों की चाह । चंद=शुद्ध मन । गुण देह=भौतिक शरीरगत पांच शब्दादि गुण । दुरिहै=छिपेगा, नष्ट होगा ।

॥ अथ राग विहंगड़ौ ॥

(१६६)

रातड़ियां बान सिराणी ,
पिय विन प्रांण 'तरसि' तलफत है , ज्यूँ मछली विन पांणी ॥टेक॥
अंतरि चोट विरह की लागी , नष सिष चोट समांणी ॥
विकल भई हरि अजहुं न 'आये' , हरि जाणत हैं मैं जांणी ॥१॥
जांण प्रवीण परमसुष दाता , निरगुण नाह विनांणी ॥
प्रीति विचारि मिलौ 'परमानंद' , अवला नही विडांणी ॥२॥
कहा कहिये कछु कहत न आवै , उनमनि रहैत लुभाणी ॥
जन हरीदास हरि सूँ मन मान्या , आदि अंति सुष जांणी ॥३॥

(१६७)

हसि का सूँ वोलिये ,
पीव सूँ परचो नांहि , अन्तर षोलिये ॥टेक॥
रैंणिस वाई वहि गई , तन मन वैठि षोइ ॥
हुँ वहु कुचील कुदरसणी , 'सकति' सुहागन होइ ॥१॥
पीव कै 'पतिव्रता' घणी , तहां रहै मन लाइ ॥
हूँ तरसू वोले नहीं , यौ दुष कहां समाइ ॥२॥
अवला को वल को नही , 'प्रीतम' रहे रिसाइ ॥
सदा 'संगाथी' रांम या , मोहि प्रेम पियाला पाइ ॥३॥
अंतरजांमी तुम्ह विना , दूजा कछु न सुहाइ ॥
जन हरीदास हरि विन मिल्यां, जनम 'अमोलिक' जाइ ॥४॥

॥ इति राग विहंगड़ो सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—तरस-५ । आए-३-४ । प्रमानंद-५ । सक्ति-५ । पतिव्रता-१ । प्रीत्म-५ । सँगाती-५ । अमोल्यक-२ ।

शब्दार्थ--रातड़ियां=रातें सिराणी=बीत गई । विनाणी=जगत्कर्त्ता । विडांणी=दूसरो की, औरों की । वाई=व्यर्थ । कुचील=गन्दी, मैली । कुदरसणी=कुरूप । तरसूँ=विलखूँ ।

॥ अथ राग धनाश्री ॥

(१६८)

रांम सनेहीडा हरि विन, दूजा अलप सनेह ॥
दूजा देषत 'जाहिला', ज्यूँ धूँवर का मेह ॥टेक॥
तन धन जोवन ना रहै, दुवध्या दरसन होइ ॥
चौरासी चौपड़ि मँडी, ता मैं चोट न वंचै कोइ ॥१॥
पूत कलित परिवार मैं, सकल रह्या 'उलझाइ' ॥
स्वारथ का सवको सगा, अंति अकेला जाइ ॥२॥
समझि पड़ी सतगुर मिल्या, पैंडा दिया वताइ ॥
जन हरीदास आनँद भया, ता सुष मैं रह्या समाइ ॥३॥

(१६९)

'प्रीतम' प्रांणियां रांमसनेही जोइ,
रांमसनेही विन भज्यां, कवहूं न 'त्रिपति' होइ ॥टेक॥
जिन जल तैं पैदा किया, सगली सौंज वणाइ ॥
सो सदा संगाती गोव्यंदा, तूँ तासूँ ताली लाइ ॥१॥
ज्यूँ वादल मिलि वीछड़ै, आप आप कूँ जांहि ॥
दिन दस का मेला भया, निहचै रहणां नांहि ॥२॥
'वहौड़ि' वहौड़ि लाभै नहीं, मनिष 'जनम' अवतार ॥
अव कै नरहरि ना भज्यौ, तो तोकूँ वार न पार ॥३॥
चढ़ि मति वूड़ै वापड़ा, 'सलिल' मोह की धार ॥
जन हरीदास हरि गाइलै, भजि केवल सिरजनहार ॥४॥

पाठभेद—जाइला-५। उरझाइ-१। प्रीतम-४-५। तिरपति-३। बहुरि-१। अन्म-५। सल्यल-२।

शब्दार्थ—जाहिला=आयगा। दुवध्या=असमजस, संशय। कलित=स्त्री। जल तैं=शुक्र से। सगली=सब, सम्पूर्ण। सौंज=सामग्री। ताली=लगन, संयोग। वूड़ै=डूबे। बापड़ा=दीन, तुच्छ।

(१७०)

अवधू अगम पियाला पीजै,
हरि रस अजर जरै तौ जीजै, सिर दै सौदा कीजै ।।टेक।।
सत रज तम रस पांच 'रहत' रस, ता रस सूँ मन लागा ।।
इंम्रत झरै प्रांण रस पीवै, भरम गया भै भागा ।।१।।
मन गहि पवन सहस दस संगी, दस छौड़ सहस सूँ सारा ।।
'एकै' डोरि एक रसि लागा, गुर गमि ग्यांन विचारा ।।२।।
विगसत कँवल परम तत दरसन, 'परसि' परम तत पाया ।।
जन हरीदास मधुकर मतिवाला, बंकनालि रस पाया ।।३।।

(१७१)

वा देस सनेह रा, जहां उदै अस्त अघ नांहि ।।
रूप अरूप यार सव यारां, 'जिद' बसै ता मांहि ।।टेक।।
स्यांम न सेत पीन रँग रहता, अगम वार नहिं पारा ।।
जहां तहां सुणै जहां तहां देषै, रहै सकल तैं न्यारा ।।१।।
मुकतै महलि जाइ मन बैठा, गुर किरपा नैं लहिये ।।
उनमनि रहै तिकौ मिलि षेलै, वातां वादि न वहिये ।।२।।
पछिम देस हाट नहिं पाटण, सौदा तहां हमारा ।।
जन हरिदास विणज सिर साटै, विणज विणज मन प्यारा ।।३।।

पाठभेद—रैत-५। येकै-२। प्रम-१। ज्यंद-२।

शब्दार्थ—सत रज तम=त्रिगुणात्मक। रस पाच=पञ्चभूतात्मक रस। एकै डोरि=स्थिरवृत्ति। विगसत=प्रस्फुटित, खिलने पर। मधुकर=मनभ्रमर। उदै अस्त=जन्म-मृत्युरहित। अघ=पाप। जिद=जीव, प्राण। मुकतै महल=मुक्तस्थान, आत्मनिष्ठ होना। पछिम देस=ब्रह्मदेश, गगनमण्डल। विणज=व्यापार, सौदाकर।

(१७२)

तब मन 'निरमलो रे', जब लागै हरि नांइ ॥
मरमै तौ लागै नहीं, लागै तौ मरमै कांइ ॥टेक॥
रांम भजै विषिया तजै, समझि पिछांणै साच ॥
साच सनेही गोंव्यंदौ, अवर सकल सुष काच ॥१॥
मोह द्रोह ममता तजै, भजै निरंजन देव ॥
सकल वियापी 'सँगि' बसै, आनँद अलष अभेव ॥२॥
अरकरूप आसा सुपी, दीसै सब संसार ॥
जन हरीदास के राम है, 'जीवनि' जगत अधार ॥३॥

(१७३)

संतो! सतगुर परउपगारी,
भौजलि वह्या जात जब देष्या, तब गुर बांह पसारी ॥टेक॥
मेरा करम काल व्है लागा, तब गुर 'वोषद' लाई ॥
थोड़ा रोग वहुत दारू दे, वेदनि दूर गमाई ॥१॥
आतम कँवल सिंघासण करिहूँ, रतन जड़ाऊँ मांही ॥
तन मन वारि वारि मैं डारूँ, तौ भी ऊरण नांही ॥२॥
उपजी प्रीति परम सुष पाया, तब गुर मिल्या हमारा ॥
जन हरीदास ले चरणां राष्या, मेट्या भरम अँधारा ॥३॥

(१७४)

वीर वटाऊ वा हरिजी सूँ, कहियो रे जाइ ॥
रातड़ियां दूभर भई, मोहि तारा गिणत विहाइ ॥टेक॥

पाठभेद—नृमलो रे–२-५ । संग–५ । जीवन्य–२ । वोषदि–१ ।

शब्दार्थ—निरमलो रे=शुद्ध, वासनारहित । काई=क्यों । अरक=सूर्य । भौजलि=संसारसागर में । वोषद=दवा, औषधि । दारू=दवाई । ऊरण=कर्जरहित, ऋणमुक्त । वीर वटाऊ=हे भाई पथिक ! दूभर=भारी, कठिन ।

सांवण मास अकेलियां, सेझ न सूतो जाइ ॥
पिव नैड़ो परसै नहीं, मोहि विरह विलंव्यो आइ ॥१॥
रैंणि अँधेरी मैं दुषी, चरण दुरांणा दोइ ॥
तलफि तलफि तन जात है, मेरो नाथ 'मिलावै' कोइ ॥२॥
विरह मंढ़ी मैं वास है, ताला वेली जीव ॥
जन हरीदास हरि आइये, मेरे परम सनेही पीव ॥३॥

(१७५)

रांम मिलाइलै हां हो, मेरे परम सनेही राइ ॥
वहौतक दिन 'विछड्यां' भया, अव मोपै रह्यौ न जाइ ॥टेक॥
परम सनेही प्रीतमा, सेझ असांड़ी आव ॥
तुम्ह 'कहियत' हौ सोहनां, मुझ तुझ देषणदा चाव ॥१॥
अंतरजांमी आंतरो, नैड़ा वसौक दूरि ॥
'अवला' पीव पावै नहीं, मेरा नैन रह्या जल पूरि ॥२॥
हर दम यहु तन जात है, हम वल कछु न वसाइ ॥
महल पधारो माधवे, जन हरीदास 'वलि' जाइ ॥३॥

(१७६)

सुमरि सनेही आपणौं, जाकी आदि 'अंति' मधि नांहि ॥
सतगुर साच वताइया, मेरा प्राण वसै ता मांहि ॥टेक॥
पांडू 'कृष्ण' समीप था, गल्या हिंवालै जाइ ॥
लोहा कूँ पारस मिलै, तौ क्यूँ कांटी षाइ ॥१॥

पाठभेद—म्यलावै–२। विछुरयां–१। कहिइत–१। बिरहनि–५। वल्य–१।
अंत–१। किसन–२।

शब्दार्थ—विलंव्यो=लग्यो, उत्पन्न हुयो। ताला वेली=व्याकुल, छटपटाना।
असाड़ी=हमारी। सोहना=सुन्दर। चाव=तीव्र इच्छा। गल्या=गल गये। हिंवालै=
हिमालय। कांटी=काठा, जर लगना।

काया क्यूँ गोपी हड़ैं, यह इचरज मन मांहि ॥
'अनिन' भगत गोपी नहीं, कै वो करता नांहि ॥२॥
पलक फुरंता जुग फुनां, हरि जुग थापै पल मांहि ॥
छल वल करि हरि क्यूँ लड़ै, समझि पड़ै कछु नांहि ॥३॥
हिरणाकुस रांवण हत्या; जुरासंध सिसुपाल ॥
जन हरीदास यूँ जाणिये, यहु कालहि ग्रासै काल ॥४॥

(१७७)

सतगुर दिया भेद बताइ, रहै रांम दूजा सब जाइ ॥टेक॥
धरी देह तेता आकार, सो क्यूँ कहिये सिरजनहार ॥
जाकै राग द्वेष कछु व्यापै नांही, सोइ रमतारांम सकल घट मांही ॥१॥
भगति हेत कोई भगत पठाया, आप अगाध इहां नहिं आया ॥
पहरया भेष मिटी भक भूरि, नैड़ा रांम बतावै दूरि ॥२॥
दस 'अवतार' कहो क्यूँ माया, हरि अवतार अनत करि आया ॥
जलि थलि जीव जिता अवतार, जल ससि 'ज्यूँ' देषौ तत सार ॥३॥
हरि अपार पार को नांहि, साधु जन षेलैं ता मांहि ॥
जन हरीदास भजि केवलरांम, निरमल नांव तहां विसराम ॥४॥

(१७८)

गोव्यंद भज मन मांहिला, अब जनि चालै हारि ॥
हरि सुमिरण सब तैं सिरै, हरि भजि निज जन उतरै पारि ॥टेक॥
सतगुर माथै कर धरया, सोवत लिया जगाइ ॥
सोवण की बरियां नहीं, इंहि हटवाड़ैं आइ ॥१॥

पाठभेद—अन्यन-२ । औतार-५ । ज्यौं-१ ।

शब्दार्थ—हड़ै=लूटे । अनिन=अनन्य, परम । फुरंता=फुरता, स्फुरण होना, क्षणभर मे । फुना=फना, समाप्त हो । ग्रासै=खाय । अगाध=अथाह । मिटी भक भूरि=खानपान की चिन्ता मिटी । माहिलां=अन्तरात्मा । बरियां=समय । ईंहि हटवाड़ै=इसी संसार के बाजार में ।

हटवाड़ै विणजी भली, लै रे लाइ लाह ॥
पोटा चुँणि कानै करी, तौ दोसन दै लो साह ॥२॥
माथ सकल लै सावतौ, गगन मंडल मठ छाइ ॥
लूकांई लागै नहीं, आणंद मैं दिन जाइ ॥३॥
मरण नदी जल मत पिवै, पीवत लेइ तुड़ाइ ॥
बूड़ै लौं रे वापड़ा, निकस्यौ बहुड़ि न जाई ॥४॥
सुणि संगी तोसूँ कहूँ, आंधा अपरि न चाल ॥
मन का मूल 'उपाड़िलै', थारै अंतरि ऊँड़ा साल ॥५॥
जन हरीदास हरि गाइलै, अंतरि अलष पिछांणि ॥
मन मधुकर मुकर्‌यौ फिरै, उलटि अपूठो आंणि ॥६॥

(१७९)

प्रीतम प्रांणिया तूँ 'निज', देवल वैठो आइ ॥
निज देवल षोज्यो नहीं, तौ जासी जनम ठगाइ ॥टेक॥
देवल एक षंभ दोइ जाकै, पांच भांति रंग दीया ॥
दस दरबार वहोत्तर छाजा, गली गाँव 'वहौ' कीया ॥१॥
वहोत जतन करि वांणिक वांण्या, ऊपरि कलस षढ़ाया ॥
ए दोइ रतन उजागर दीसै, वहौत भाँति सूँ लाया ॥२॥

पाठभेद—उपारिलै–५। न्यज–२। बहु–१। बहुत–१।

शब्दार्थ—विणजी=व्यापार। रे लाइ=हे भोले। लाह=लाभ। कानै करी=एक ओर, दूर करिये। सावतौ=सामन्त, पूर्ण। लू काई=किसी तरह का संताप। अपर न=दूसरी ओर, विषयभोग में। ऊँडा=गहरा। साल=घाव। मुकर्‌यो=विमुख।

पद १७९ का अर्थ—हे प्राणी! उस प्यारे प्रीतम के पास आकर बैठो। यदि तुमने अपना सही स्थान नही खोजा तो यह मनुष्यजन्म ठगाकर चला जायगा। यह एक देवल–देवरारूप शरीर है, इसमे दो पैरो के खम्भे हैं, पांच तत्त्व का रङ्ग है, दस दरवाजे और बहत्तर छज्जे हैं, विविध नाडी-स्रोत गलियाँ हैं, हृदय-मस्तिष्कादि कई गाँव इस देहनगरी मे हैं, परमात्मा ने पूरे यत्न से इस शरीर को रचा है, इस देह के सिररूपी कलश चढाया है, नेत्ररूपी दो रत्न हैं, जिनसे सब पदार्थ दिखाई पडते हैं।

ता में सागर 'सपत' 'अष्ट' गिरि परवत, नदी निवासैं लाई ।।
वसुधा भार अठार गगन फुनि , तीनि सबल ठकुराई ।।३।।
दोइ 'प्रधान' सदा संगि षेलैं , तिन गति लषी न जांहि ।।
मूनी एक 'मूनि' गहि बैठा , सो तैं षोज्या नांहि ।।४।।
ता मैं व्रत चौइस वार तिथि कवला, अगम 'निगम' ता मांहि ।।
गरजै गगन गहर धुनि ऊठै , वेद धुनि होइ ता मांहि ।।५।।
तारा मंडल भौंण भौंणपति , नवूँ नाथ संगि लीया ।।
जोगी एक जुगति सव जांणै , 'सहजि' षोजि सुष लीया ।।६।।
सुर तेतीस वसै ता मांही , तीरथ पुरी सवाया ।।
सेस महेस 'विसन' ब्रह्मादिक , रवि ससि संग लगाया ।।७।।

पाठभेद--सप्त-१-४। असट-२। परधान-३-४। मून्य-२। न्यगम-२। सहज्य-२। विष्न-३-४।

इसमे रसादि धातुग्रो के सात सागर है, ❀ अष्टचक्ररूप पहाड है, नौ सौ नाडियां ही नदियां है। इस देहरूपी पृथ्वी मे अठारह भार-वनस्पति व आकाश भी व्याप्त है, तीन गुणो की तीन अवस्थाओ की ठकुराई है, मन और बुद्धि ये इस नगरी मे प्रधान हैं, इनका जीव के साथ खेल चलता है, इनकी गति आसानी से नही जानी जाती। इस देह मे एक आत्मा मुनिरूप मे मौन लिए हुये बैठा है, उसकी हे प्राणी! तैंने तलाश नही की, इस शरीर मे ही एकादशी, पूर्णिमा आदि के चौबीस व्रत, सात वार, पन्द्रह तिथियाँ है। वेद-स्मृतियाँ भी इसी मे है, हृदयाकाश मे अनहद शब्द की ध्वनिरूप गर्जना हो रही है, वही वेद के मूल प्रणव-वाच्य ॐकार की भी ध्वनि होती रहती है। तारा मडल-ब्रह्माण्ड, चौदह लोक और उनके अधिपति तथा नऊँ नाथ-पाच ज्ञानेन्द्रिया चार अन्त करण ये सब साथ है। इसी देह मे आत्मतत्वरूप एक योगी भी विराजमान है जो सब क्रियाओ का ज्ञाता है। इसने सहज व्यापक ब्रह्म को खोज चिर सुख प्राप्त किया। वसुरुद्रादि तथा इन्द्रियाधिपति तैंतीस देवता भी इस देह मे है, चौसठ तीर्थ सात पुरी भी इसी मे है। शेष-प्राण, महेश-तम, विष्णु-सत, ब्रह्मा-रज, रवि-शशि-मन-प्राणादि भी सङ्ग मे हैं।

❀ देह मे आठ गिरिश्रृङ्खलाएँ है—मेरुदण्ड मे सुमेरु, पीठ मध्य हिमालय, वाम स्कन्ध मे मलय, दक्षिणस्कन्ध मे मन्दराचल, दक्षिण कर्ण मे विन्ध्य, वामकर्ण मे मैनाक, ललाट के मध्य भाग मे पतिशैल, ब्रह्मकपाट मे (दशमद्वार) कैलाश पर्वत है।

*इन्द्र कुवेर दांमणि झिलिमिलि , गगन गरजि घण आया ॥
जन हरीदास एक अचरज देष्या , सोइ देवल मूरति पाया ॥८॥

(१८०)

म्हारी आतमा हे रांमसनेही जांणि ,
आदि अंनि था अब हरि सोई , तूँ तांसूँ बांणिक बांणि ॥टेक॥
जाति वरण कुल नांही वाकै , सो 'निकुला' 'निरधार' ॥
ऊंडौ 'अथग' थाह नहि लाभै , नहीं वार नहिं पार ॥१॥
पार न लाभै निज चिंतामणि , परा परै निज सार ॥
जलधर पवन गगन अरु ज्वाला , वाकै एक सबद 'विसतार' ॥२॥
सात ममंद धर मार अठारा , सबहिन कूँ हरि पावै ॥
सूनि सनेही सहजै वरपा , उलटी नदी चलावै ॥३॥
उलटी नदी अगम गम नांही , कोई विरला जन जांणै ॥
मन कूँ पकड़ि महज घरि पेलै , 'पांचौं' उलटा तांणै ॥४॥
निज जन निज चरणां का चेरा , तेउ न जांणै भेव ॥
उलटी सुरति अगम रस पीवे , करै 'अकल' की सेव ॥५॥
सेवा अकल सकल विधि जांणै , वप घट वरणि न जांहि ॥
निराकार निरंजन ऐसैं , व्यापि रह्या सब मांहि ॥६॥

पाठभेद—न्यकुला–२ । न्यरधार–२ । अथघ–१ । विस्तार–५ । पाचू–२-४ । अलप–२ ।

शब्दार्थ—बांणक बांणि=आडन कर, सम्बन्ध बना । निकुला=कुल व परम्परा विहीन । अथग=अथाह । थाह=गहराई का अन्त । सूनि=निर्गुण ब्रह्म । उलटी नदी=बाह्यवृत्ति को उलट अन्तर्मुख करे । पाचो=पांचो ज्ञानेन्द्रियां । अकल=गुण, धम, जाति की कलन से रहित । वप=शरीर, देह ।

* जागृत कुण्डलिनी मे प्रकाशमय दामिनि–बिजली झिलमिला रही है, ब्रह्मरन्ध्र स्थान मे प्राण पहुँचा । महाराज हरिदासजी कहते हैं, उक्त साधन के फलस्वरूप इस शरीररूपी देवल को अभिव्यक्त हुई आत्मनिष्ठवृत्ति ने खा लिया, एक चेतनरूप शेप रहा ।

स्यौं सनकादिक रहे निरंतरि , सेस सहस मुष गावैं ॥
गोरष हणू भरथरी सुषदेव , उलटी सुरति चलावैं ॥७॥

सुरति चलावैं पार न पावैं , थाघत मांहि समाया ॥
व्यापक ब्रह्म ऐसे हम जांण्या , गहणी मांहि न आया ॥८॥

भजि गोपाल अकल अविनासी , हरि 'निरमल' निज सारा ॥
भौ सागर तिरिवे कूँ भेरा , षेइ उतारै पारा ॥९॥

पारि उतारै नरक 'निवारै' , सुष पावैं निज दास ॥
ज्यूँ हरि गाया त्यूँ सुष पाया , सुष सागर में वास ॥१०॥

दास कबीर 'नाम दे' छींपौ , उलटी ताली लावैं ॥
अगम अगम करि तन मन षोजै , तन षोज्यां चित पावैं ॥११॥

ज्यां तन षोज्या ते घरि आया , उलटि अकल सूँ लागा ॥
जन हरीदास अविनासी भजतां , काल भरम 'भै' भागा ॥१२॥

(१८१)

तुम्ह आवो हो राम तुम्ह आवो, अहो मेरे अंतरजामी देव ॥टेक॥

साथण सषी सहेलड़ी , एक मनी एक तार ॥
पंथ निहारै पीव कौ , मिलिये सिरजनहार ॥१॥

विरहणि विरह विवोगणी , 'दरसणि' कारण पीव ॥
विकल भई विलंबै कहाँ , ताला बेली जीव ॥२॥

अगम गवण गम कौ नहीं , चितवत रैंणि विहाइ ॥
मुष दिषलावो गोव्यंदा , जन हरीदास वलि जाइ ॥३॥

पाठभेद—न्यिरमल–२ । नृमल–४ । न्यवारै–२ । नामदेव–१-५ । भय–१ । दरसण–५ ।

शब्दार्थ—थाघत=थाह लेते, अन्त लेते । गहणी मोहि=पकड मे, वश मे । साथण=साथ देने वाली । सहेलड़ी=सखी । विलंबै=अटके, रुके ।

(१८२)

वसत विडांणी रे जिवड़ा हरि सगौं, हरि सुमरैं क्यौं नांहि ।।टेक।।
नरपति भौंपति दरि पड़ा, ढाल धुजा फहराइ ।।
अवधि वदीती सँगि को नही, ऊठि अकेलो जाइ ।।१।।
हैदल गैंदल सगि चलैं, पर दल जीतैं राड़ि ।।
माल मुलक ज्यूँ का त्यूँ रहै, अंति चलैं कर झाड़ि ।।२।।
सिरि छत्र सिंघासण बैसणां, ऊँचा ऊँचा महल अवास ।।
या 'सुषि' हरि सुष वीसरयौ, ता तैं तेरो जमपुर वास ।।३।।
परम सनेही 'प्रीतम' आपणौं, जीवनि जगत अधार ।।
जन हरीदास हरि गाइलैं, हरि सकल सुषां सिर सार ।।४।।

(१८३)

रावड़ी सवाइ हो रामजी वह गई, पल पल छीजैं हो गात ।।
करणां सुणि करणांमई, महलि पधारो हो नाथ ।।टेक।।
सव मतिवाला हो रांमजी सव छक्या, नींदड़ी न आवैं हो मोइ ।।
मेरी वेदन रांमजी जांणि है, कै जिमि वेदनि होइ ।।१।।
यहु तन यूँ ही रांमजी जात है, हम वल कछु न वसाइ ।।
परमसनेही रांमजी 'तुम्ह' मिलौ, हरि सकल भवन पति राई ।।२।।
चरणां चौकी रांमजी चित 'धरूँ', आतम सेझ सँवारि ।।
नैंन लुभानां रामजी प्रीति सूँ, दरसौ देव मुरारि ।।३।।
जन हरीदास रांमजी यूँ वीनवैं, मेरा नैंनन षंडै हो धार ।।
दरस दिषावौ रांमजी आपणौं, हरि समरथ सिरजनहार ।।४।।

।। इति राग धनाश्री सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—सुष-५ । प्रीतमा-४-५ । तुम-५ । धरौ-१ ।

शब्दार्थ—विडाणी=औरो की, दूसरो की । दरि=दरवाजे, हाजिर । अवधि=नियत समय, आयु । वदीती=बीती, समाप्त हुई । हैदल=घुडसवारो की सेना । गैंदल=हाथियो की फौज । राड़ि=लड़ाई, युद्ध । अवास=आवास, रहने का स्थान । षडै=खण्डित करे, सीमा को तोड़कर बहे ।

॥ अथ आरती ॥

(१८४)

आरती जग जीवण देवा, आतम अगर निरंतरि सेवा ॥टेक॥
चित चौकी हरि चरणां धरिहूं, 'आत्म' कँवल सिंघासण करिहूँ ॥
दीपग ग्यांन सबद उजियाला, पांचू पहौप सुरति की माला ॥१॥
प्रीति परस ज्यौं चंदन लाऊँ, प्रेम कलस ले कलस वधाऊँ ॥
सूँघौं साच ग्यांन गहि झारी, वहौ विधि चरचौं देव मुरारी ॥२॥
'निरमल' नेह चँवर करि झनकै, गगन मंडल मैं झालरि ठनकै ॥
जन हरिदास भया मन मंजन, आत्म आरती करै निरंजन ॥३॥

×

अविचल आरती अवगति तेरी, रामसनेही 'जीवनि' मेरी ॥टेक॥
'जोनी' जनम जुरा नहि जाकै, वरण न वप रूप नहि ताकै ॥
अकुल अतीत सकल घट माँही, अपरंपार प्रमति कछु नाँहि ॥१॥
अमंग अभंग अरंगी रामां, पूरणब्रह्म परम सुष धामां ॥
अगम अगाध वार नहिं पारा, सो पति मेरे प्राण अधारा ॥२॥
रमतारांम सुमरि मन मांही, कलिविष 'सहजि' सवै मिट जांही ॥
जगिमगि जोति सकल परकासा, प्रेम प्रीति गावै जन हरिदासा ॥३॥

(१८५)

तेरी आरती हो अलष निरंजन राइ, हो नाथ निरंजन राइ ॥
स्यौ 'विरंच' पार नहि पावै, सेस सहसमुषि गाइ ॥टेक॥
धरती अंबर तैं रच्या, चंद सूर मधि कीव ॥
पावक पवन अंव हरि किया, लष चौरासी जीव ॥१॥

पाठभेद—आतम–२। तृमल–४-५। जीवन्य–२। जूनी–१-२। सहज्य–२। विरचि–५।

शब्दार्थ—पाचौ पहौप=पांचो ज्ञानेन्द्रियाँ ही पुष्प हैं। सूंघौ=इत्र। वप=शरीर। प्रमति=प्रमाण, माप। स्यौ=शिव। अव=पानी।

आप निरंजन वप धरै, 'भगति' हेत हरि आइ ॥
अनंत रूप अवगति अविनासी, तुम गति लषी न जाइ ॥२॥
अनंत भवन करि ऊथपै, करण मतैं मोइ होइ ॥
तुम वलिवंत जीव सव 'निरवल', पार न पावै कोइ ॥३॥
सुर नर सव जैं जैं करैं, अगम कहत है वेद ॥
निराकार बणनांमी, तुमगति कोई न पावैं भेद ॥४॥
अधम उधारण हम सुनें, अव कै है भल डाव ॥
जन हरिदास जगत गुरु स्वामी, दीजैं भगति पसाव ॥५॥

॥ इति आरती सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सोरठी ॥

(१८६)

वासुर जाइ रे निसि आइ पहूंती, निहरौ रौह निरदावैं ॥
हरि भजि सैंण वैंण सुणि विक्रत, वलेन यहु छक आवैं ॥टेक॥
तजि तिण रूप पिजै कांइ पड़चर, परिहरि विषै सगाई ॥
घट छूटां दुष सहसी फीटा, रांम सुमरि सुषदाई ॥१॥
रे रिसमोड़ फिरै काँई रूठो, रूठां किम रंग रहसी ॥
अव कांई कर जन आपैं काल्हा, वलेज यहु दुष दहसी ॥२॥

पाठभेद—भगत-५ । न्यरवल-२ । नृवल-३-४ ।

शब्दार्थ—ऊथपै=स्थापित करे । घणनामी=अनेको नाम वाला । पसाव= इनाम, बक्सीस । वासुर=दिन । निहरौ=समीप, नजदीक । विक्रत=विकारी, पापी । वलेन=फिर । पड्चर=पशुवृत्ति । फीटा=निर्लज्ज । रहसी=रहेगा । काल्हा=बेसमझ, गलती करने वाला ।

आई माप परच मां षोटा , कण कण कांइ षिंडावै ॥
पांच पचीम प्रांण मन मनसा , दे लै कांइन घरि 'नावै' ॥३॥
सील संतोष 'सति' दया सवूरी , इंण अवसरि इम कीजै ॥
जन हरीदास सति मनसा वाचा , रसनां रांम रटीजै ॥४॥

॥ इति राग सोरठी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ राग सीधू ॥

(१८७)

ग्यांन वड़ राज मन साहि साचै मतै , सुमरि हरि निडर निज नांव पाया ॥
ग्रासि गुण ग्राह भंजि रांम जरणा जड़ी , सोइ मा ग्रासि है काल काया ।टेक।
गाइ गोपाल 'किरपाल' करणामई , अकल अरूप उरि ध्यांन धारूँ ॥
मंत मैं रिपहरण निपट 'निरभै' करण , रांम छाडूँ नहीं छाड़ि हारूँ ॥१॥
गहर मैं भीत त्रिष्ना नदी 'तषि' वहै , अनंत आगे वह्या मित नांही ॥
साध आकास मैं अटकि उलटा चढ्या , प्रांण मन सुरति आकास मांही ।२।
समद संसार जल सुजल 'तिरिवो' कठिन,जन हरिदास निति नेम हरिभजन कीजै
परम उदार करतार 'सम्रथ' धणी , नाथजी हाथि गहि राषि लीजै ।३।

(१८८)

कांम झल हेति सांसै पसु वहि गया , कोई वैद मिलियो नहिं सवद सांचो ।
आंषि फूटी अघट अवर दिसि ऊघड़ी , अरथि आंजी नहीं आंनि रातौ ।टेक।

पाठभेद—आवै-५ । सत-२ । क्रिपाल-१-५ । न्यरभै-२ । तटि-५ । त्यरवो-२ । समरथ-१ ।

शब्दार्थ—षोटा=बुरा । षिंडावै=बिखेरे । गुण=त्रिगुण, सत-रज-तम । मित नांही=संख्या नही, पारावार नही । अटकि=मन-इन्द्रियो को रोक । झल=ज्वाला । पसु=अज्ञानी मनुष्य । वैद=सतगुरु । सवद साचो=ब्रह्मउपदेश । अघट=चेतन । अवर दिसि=विपरीत दिशा मे । ऊघड़ी=खुली । अरथि आंजी नही=स्वस्वरूप देखने का अंजन नही लगाया ।

त्रिवधि तिण रूप मेर हरि बिच मँड्यो , थंभ दोइ सांकलां जड्यो जोवै ॥
परम निधि भेद मध माथ लाधौ नहीं , मूल पसु 'आपको' आप षोवै ।१।
रोग मैं रोग अघ रोग दारुण दहै , कुवधि कांटै कल्यौ सुवधि नांई ॥
काच सू परसि निज साच न्यारो रह्यो , भेद तजि 'भरम'जलि धस्यौ धाई ।२।
×रोग तोड़ै तिको एक सूँ एक ह्वै , 'नांव' तौ निज जड़ी निकट जांणें ॥
जन हरिदास भजि रांम मन मैल राषै नहीं, सुरति संभार मैं उलटि तांणें ।३।

(१८९)

गुर पीर बिन नीर की परष लाभै नहीं , सीर निज निज 'भगति' परस जीवै ॥
गगन चढ़ि सींचबो पछिम दिसि बावड़ी, उलटि सींचै तिको साध पीवै ।टेक।
सुरति की डोरि सजि अगम घरि षेलिबौ, अगम घरि षेलि निज कँवल फूलै ॥
सुँनि मैं साच निधि कँवल उलटि सुलटि, गहरि मति ग्वालणि गोपि भूलै ।१।
अरक घरि तरक तजि समंद सुत समि करै, द्वादसी छाड़ि दिसि एक ध्यावै ॥
पैसि पाताल मैं अगम जल आंणिवा , सहज घरि आतमा बेलि पावै ।२।
आप मैं अलष लषि उलटि षेलै नहीं , प्रीति परवांण निज प्रेम चाषै ॥
जन हरिदास निजरूप निरवांण निरमलकथा, प्रांण 'असथांन' निज सुरति राषै

(१९०)

निज भगत सदा निज रूप निरषत रहै , अकल अलगो नहीं सकल मांही ॥
सकल सुषसागर अगम अंतरि अगहि , ऊगि बरतै तिको अगम नांही ।टेक।

पाठभेद—आपरौ–२-३ । भ्रम–५ । नाई–१ । भक्त–५ । अस्थान–१ ।

शब्दार्थ—त्रिवधि=त्रिगुणात्मक । थंभ दोइ सांकला जड्यो जोवै=अहङ्कार के खम्भे मे राग-द्वेष की साकल से बँधा हुआ देखना है। रोग मैं रोग=जन्ममृत्युरूप । अघ=पाप । कल्यौ=फँसा हुआ । भेद तजि=द्वैतबुद्धि को छोड । भ्रम जल=संशय के पानी मे । धस्यौ धाई=दौड़कर प्रवेश किया । परष लाभै=पहचान मिले । गगन चढ़ि= दशमद्वार मे पहुच कर । पछिम दिसि=सुषुम्ना मार्ग । निज कँवल=आत्मकमल । अरक घरि=इडा । समंद सुत=मन । द्वादसी छाडि=अनेक विषयो मे जाना, बारहबाट होना । पैसि पाताल मै=नाभिकुण्ड मे पहुच कर । ऊगि=उदय हो, उत्पन्न हो । बरतै= अस्त हो, विलीन हो ।

× वही साधक जन्म-मरण के रोग से मुक्त होता है जो व्यापक एक चेतन ब्रह्मतत्व मे एकमेक हो जाता है ।

सति सदा आप आकार सौं सत नहीं , परम निज सार सो सकल सांई ॥
'और' पंषी तिकौं ठौड़ पावै नहीं , अनल पंषी रमै उरवार मांही ।१।
अकल तरवर तिकौं सकल जग ऊपरै , डाल विन मूल विन सदा छाया ॥
आइ जावै तिकौं समझि मन सति नहीं , रूप धारै तिती सकल माया ।२।
सकल त्रियापीक मति परम पति आपणौं,'गगन असथांन मन उलटि लाया ॥
जन हरिदास'परकास'पांचौ पिसण'परजल्या',धरचा मैं अधर घट निकट पाया ॥

(१६१)

सुमरि मन रांम सतिरूप समृथ धणीं , भजसि भगवंत भव सिंध भारी ॥
जांणि जगदीस भव ईस अवसर इहै , 'विवधि' बहु फंध काटै मुरारी ।टेक।
साहि गुर ग्यांन जिव जागि नैड़ी जुरा , जांणै तौ जोर करि कांइ सोवै ॥
इसौ हीरा जनम वले वहौड़ि लाभसी नहीं, काच सूँ लागि कण कांइ षोवै ।१।
प्रांण परवांणि सिरि मौत मोटी विथा , काल वटपाड़ नित घात हेरै ॥
कलित परिवार सुत सकल स्वारथ सगा, आदि संगी सदा रांम तेरै ।२।
वँवलतर छांह कांटा घणां कांमना , रचसि मा रहसि अटि धार मांही ॥
जन हरिदास हरि हेर मन फेरि भरमै कहा, निजरि भरि देष हरि दूरि नांही ।३।

(१६२)

काल जम जाल की चोट जोरै वहै , मारीजै मीर कछु संक नांही ॥
तास मैं कांपि निज नांव हरि चित चढ्यौ, रहै निज नांव निज सुरति मांही ।टेक।
राव रांणां गहै जोर कोई ना रहै , 'सहजि' साझै सकल अकल चेड़ौ ॥
काच कानै कियौ साच सहजै लियो , भजो रे भलो निज नांव नेड़ौ ।१।

पाठभेद—अवर-१ । प्रकास-१-५ । प्रजल्या-१-४ । विविध-१ । सहज्य-२ ।

शब्दार्थ—उरवार=आकाश के अन्तर्भाग मे । काच सूँ लागा=माया-मोह मे उलझा । कण कांइ षोवै=मनुष्यजन्मरूप हीरा क्यो गँवाया ? काल वटपाड़=कालरूप डाकू । वँवलतर=संसार बबूलवृक्ष है । रचसि मा=आसक्त मत होना । जोरै वहै= वेग से, प्रवलता से बहती है । मारीजै मीर=बड़े-बड़े शूरवीर मारे जा रहे है । चेडो= चेटक, भूतप्रेतादिक लग जाना । काच कानै कियो=काचरूप सांसारिक पदार्थो से मन को हटाया ।

अकल की आस धरि आंन सब दूरि करि, सकल सांसौ मिट्यौ साच पायौ ।।
ता साच की वोट निज दास निति ऊबरया, रापि साचा धर्णी सरणि आयौ ।२।
भगत की भीड़ हरि आप आतुर करैं, प्रीति पूरैं सदा कांम सारैं ।।
जन हरिदास हरि नांव कौ तत परि चिनचस्यौं, रांम प्रहलाद'ज्यूँ'प्रीति'पालैं' ।

(१६३)

रांम भजि रांम भजि जुग काल पार्गौ,
मन देषि रे देषि छक भलो लार्गो, इसौ अांमर वले वहौड़ि लाभसी नहीं ।।
सौहड़ सीधड़ चढ़ै छत्र ससनग धरैं, निज नांव परतीति हरि निकट नांहीं ।।
अजर की चोट नरपति छत्र मारिया, पड्या भूपाल धुक धरणी मांही ।१।
जाकै सीसदस वीसभुज कोटलंका जिसो, ससद झिलिमिलि करैं सबल पाई ।।
तिकौं दसरथ सुत रांमचद्र मारियो, काल की चोट मैं सकल आई ।२।
इन्द्र की क्या कहूँ 'वहौत' ब्रह्मा डरैं, करै करणां कहैं काल मारैं ।।
जन हरिदास निज भगत कबीर नांमा जिसा, सबल की वोट नहीं काल मारैं ।३।

(१६४)

जाति कौ भेद पणि सकल ऊपरि भयो, राम रंग रंग्यौ रंगि 'भलौ' रातौ ।
दास कबीर जमलोकि जावै नहीं, अलप रस पीवै मसतांन मातौ ।।टेक।।
चोट सूँ चोट पिसि पेत चाल्यो नहीं, पांच परबल पिसण मारि लीया ।
अकल की वोट जम चोट लागै नहीं, उलटि का पुलट रस भला पीया ।१।
साध की चाल सुँणि सकल सांसो मिट्यो, कह्यौ त्यूँ रह्यौ कछु संक नांही ।
आंन की आस विसवास बांधौ नहीं, रह्यौ 'पण' रह्यौ रमि रांम मांही ।२।

पाठभेद—ज्यौ-१ । पारै-३-५ । बहुत-१ । भले-१-५ । पिण-१ ।

शब्दार्थ—आतुर=तेजी से, उतावलेपन से । सौहड सीधड चढ़ै=हाथी-घोडो पर चढे । धुक=धडाक से । रातौ=लग्यो । चोट सूँ चोट=आघात, वार-पर-वार । पिसि=सरककर, चलकर । पेत=क्षेत्र, कर्मभूमि । पाच परबल पिसण=पाँच इन्द्रियाँ जो प्रबल लुटेरों जैसी थी । अकल की वोट=परब्रह्म की ओट-सहारे पर ।

जल में कँवल पण नीर भेदै नहीं, जगत में भगत इम रहै जूवा।
जन हरिदास हरि समद में वूँद कबीर जन, समद में वूँद मिलि एक हूवा ॥३॥

(१६५)

ग्रहड़ौ थकौ रांम गुण गावै, दूजी दिसा लियो मन तांणि ॥
एक दिसा निरभै व्है लागौ, नांमौ नरहरि कै दीवांणि ॥टेक॥
माया दल देषि न डरियो छींपो, ग्यांन षड्ग वलि 'कीधी' चूरि ॥
हरि रस पीवै अडिग मन अवधू, अनहद वेणि बजावै तूरि ॥१॥
मन का नास करो मति कोई, नामैं मन पलट्या दस दीप ॥
उलटि सुरति 'अकल' रस पीवै, निज तत निरषत रहै समीप ॥२॥
सब तैं अगम अडिग निज लाधौ, अंतरि उलठो आवै नांहि ॥
जन हरीदास नाँमें निज दीठौ, सो नूर विराजै 'नैंना' मांहि ॥३॥

(१६६)

मोटि मैं मेरस फेरिकै हूवौ, हरि मोट में बीजो कोई नांहि ॥
चवदै 'भवन' 'गवन' गुण ग्रामी, उपति षपति सकल हरि मांहि ॥टेक॥
समद अथाह तिको नर थाघै, हरि अथाह थाघियौ न जाई ॥
कोइ थापै अथघ अगम घरि पेलै, निज तत निरषत रहत समाई ॥१॥
×गगन अगम गोव्यंद गम जांणै, गोव्यंद गम कोई लहै सु साध ॥
उलटौ पेलि अकल रस पीवै, परसै अवगति अगम अगाध ॥२॥
मन उनमनि निकटि निधि जोवै, सुरति सँवाहि गहै मन 'पौंन' ॥
जन हरीदास अवगति गति ऐसी, भेद अभेदी लहै स 'कौंन' ॥३॥

पाठभेद—कीधा–४-५। गगन–५। नैंणा–१-३। भवण–१-२। गवण–१-२। पौण–१। कौण–१।

शब्दार्थ—ग्रहडौ=गम्भीरता से, मस्त होकर। ताणि=तानना, खीचना। कीधी चूर=चूर्ण कर दिया। अवधू=निस्पृह। दीठौ=अपना रूप देखा। थाघै=थाह ले। पौन=प्राण। अभेदी=स्व और पर भेद से रहित।

× आकाश अगम है, इसका गम गोविन्द को है। गोविन्द की जानकारी कोई श्रेष्ठ साधक ही कर सकता है।

(१९७)

मांवत 'सोहड़' सूर मति मनमुषि , रांम तणां 'बोलिगाणां ।।
आवध सार टोप सिरि सुमिरण , कांकड़ि आइ मँडाणां ।।टेक।।
पैली फौज घटा घण घरहर , अरि आतुर भल होड़ा ।
साथ भलाज रांम भजि भांजे , टिकि टिकि मर्कस थोड़ा ।।१।।
पाच पचीस मोह दल माया , कांम क्रोध दल पूरा ।।
पड़कै सेल पड़ा पड़ि पसतां , वाजै अनहद तूरा ।।२।।
'गुरजि' 'नालि' गोला सर छूटै , कमध उपाडै थांणा ।।
पागि पिवै ज्यूँ आभै दामणि , काइर कटक उडांणा ।।३।।
मन गहि पवन पलटि पहिरावै , आछा अमल चहोडै ।।
जन हरिदास मानि ममता तजि , यौं मेवासा तोडै ।।४।।

(१९८)

गोरषनाथ तुम्हारी गति मति , कोई सुर नर मुनि नहि जांणै ।।
जांणै सिध साधक अर अलष निरंजन, गोरष मुनि सुधारस मांणै ।।टेक।।
जीत्या भरम करम करि कांनै , गगन चढ्यो रस पीवै ।।
जा मांही मिलि छांटा 'रालै' , सो मिरतग मति जीवै ।।१।।
जांणै जोग भोग नहि जांणै , नाथ इसी विधि षेलै ।।
जन हरीदास गोरष सति सनमुषि , अमी महारस मेलै ।।२।।

।। इति राग सीधू सम्पूर्ण ।।

पाठभेद—मुहड-१ । उलगाणा-१ । गुरज्य-२ । नाल्य-२ । डारै-३-४ ।

शब्दार्थ—सोहड=हाथी । बोलिगाणा=पहचानवाला । आवध सार=सार-ग्राहीपने का आयुध शस्त्र है । कमध=कमन्द, भूँझार । पाग=षड्ग । पिवै=चगकै । आभै=बादलों मे । दामणि=बिजली । चहोड़े=पीवे, चुस्की ले । मेवासा=गड, किला । रालै=डाले, फेके । मिरतग=मरा हुआ ।

॥ अथ राग रेषता काफी ॥

(१६६)

सइयां उलटि देषि हजूरि,
औज़द में मौज़ूद मीरां, कहां षोजै दूरि ॥टेक॥
निकटि 'निज' निधि तिरण तारण, न्जि सुरति तहां पूरि ॥
दिल मांही मका इहै मथुरा, पांच परचल चूरि ॥१॥
मही मुरतिव गरद गाफिल, साहि क्या सुलतांन ॥
हरदम हज़ूरि सँभाल निसदिन, दरद सूँ 'दीवांन' ॥२॥
*चुस्त चसमां उरध अन्तरि, गरव 'गस्त' निवांरि ॥
हैस हाजरि अगम यारां, आमिकां दीदारि ॥३॥
×दरवार दोजिग गरक गुमरां, मनीं मारै मीर ॥
+मिहरिका मकसूद 'एही', पड़द पोसे पीर ॥४॥
=दिल सदा स्वाफी कहर कसकरि, पीव सदा सँगि मोइ ॥
जन हरिदास आसा काटि पासा, 'भिसति' पेलौ कोइ ॥५॥

पाठभेद—न्यज-२। दीवाण-१। गसत-२। येही-२। भिस्त-५।

शब्दार्थ—औज़ूद=शरीर मे। मौज़ूद मीरां=परमात्मा मौज़ूद है। पाच=पाँचो ज्ञानेन्द्रियाँ। मही=पृथ्वी, राज्य। मुरतिव=लवाजमा, साजसज्जा। गरद=धूलवत्, तहस-नहस। गाफिल=असावधान। दरद=विरह-वेदना। दीवांन=पागल, स्वामी। हैस=है, सत्य है।

* नेत्र जो वाह्यरूप देखने मे ही रहते हैं, उनको मजबूती से बन्द कर अन्तर देखने मे लगा। अभिमान और गुस्से को दूर करो।

× जो गुमराह है—गलत रास्ते मे गरक है, वह नरक के दरवाजे पर खडा है। मनी—अहङ्कार बडे-बडे मीर—शाह-सुल्तानों तक को मारता रहता है।

+ मिहरि—मेहरबानो का लक्षण यही है कि वह परमपिता अपने भक्त की पर्दे से ही सहायता करता रहता है।

= दिल को सदा निर्मल रख, क्रोध का निवारण कर। अपने स्वरूप के नित्य सानिध्य में रह। महात्मा हरिदासजी कहते हैं कि वासना की फांसी काटकर भिसति—स्वर्ग मे कोई भी आनन्द का उपभोग कर सकता है।

(२००)

सइयां दुरसि है दीदार ,
सैतांन का सिर तोड़ि निरभै , षेलि ष्यालीं यार ।।टेक।।
अरवाह में मन आंणि उलटा , हैस हाजरि होइ ।।
एक सूँ मिलि षेल षुसमति , कहैर कांटा षोइ ।।१।।
सिर 'न्वाइ' परसि कुराँन कात्रिज, बैसि पढि दिल माँहि ।।
तहाँ षालिक षलिक षूरिक , 'षुदी' षालि जाँहि ।।२।।
रूह राजे रब रस रुचि , गहर गुण गलताँन ।।
हैम हाजरि अगम याराँ , मोमिनाँ सुलताँन ।।३।।
पीर मुरसिद एक आसण , अरस परसै दोइ ।।
जन हरिदास पित्रसूँ ष्याल परगट, सहज सिजदा होइ ।।४।।

(२०१)

मेरै एक तूँ रहमाँन ,
मकसूद मेरा प्रीति तुझसूँ , 'और' सूँ क्या काम ।।टेक।।
तूँ था सदा भी सदा रहमी , निकुल तूँ निरधार ।।
और सब आधार तेरे , तूँ पाक 'परवर' दिगार ।।१।।
बे षुदि बे आदि बेगम , अजर अचल अचाल ।।
चिदानंद अरूप अवगति , षबरि दाराँ ष्याल ।।२।।
तूँ अकहि सब कहि सुँणत है , कहै तैसा नाँहि ।।
जन हरिदास अमर अलेष निरभै , तूँ षेलि ता सुष माँहि ।।३।।

पाठभेद—नाइ–१ । षुसी–५ । अवर–१ । प्रवर–१-५ ।

शब्दार्थ—दुरसि=कठिन, दुर्लभ । दीदार=दर्शन । सैतान=चञ्चल मन । अरवाह=अन्त:करण । कहैर=कालका । षालिक=परब्रह्म । षलिक=संसार । षुदी=अहङ्कार । रूह=आत्मा, जीव । रब=परमात्मा । मुरसिद=मुरीद, भक्त, शिष्य । सिजदा=प्रार्थना । मकसूद=खास । निकुल=वशविहीन । षबरिदारा=सावधानी से, होशियारी से ।

(२०२)

क्या कहूँ रब कछु कहत न आवै ,
हूवा मो जाइगा जाइ सो सनि नहीं , अलाह आले में रह्या रहावै ॥टेक॥
रिजक राजिक रजा पलक पालिक पुसी, है तिसा हैस जाँणै न कोई ॥
यार का यार दीदार यारॉ दसत ,नूर निरसिंधि निज रूप सोई ॥१॥
'जिंद' में जिंद अरवाह मैं 'एक' तूँ , सकल भरपूरि निज दूर नांहि ॥
बंदगी छाड़ि बंदा कहाँ ऊबरै , मगन मसतॉन तम नूर मांहि ॥२॥
निजर भरि काइमा देषि कलमा इहै , सेज सुक्रॉन सो सकल सांई ॥
जन हरिदास दिल वारि उरस दिल आॅसकाँ,पूत्र दीदार निज महल मॉँहि ।३

(२०३)

तेरे मोष का सुष मोहि ,
नैंन भर निज नूर देखूँ , मै न छाडूँ तोहि ॥टेक॥
साँई सेज आया मुझ भाया , प्रीति का उरिहार ॥
इसक तेरा रहौ मेरे , यार तूँ दिलदार ॥१॥
सूरति मेरी वारि फेरी , ज़िंद मैं घर छाइ ॥
पोलि घट पट देष नैंना , रहूं उरि लपटाइ ॥२॥
मिहरि मालिक पवरि पालिक , परसताँ भै पार ॥
मारि गोता दरस पाया , उरस में दीदार ॥३॥
महरवांन दीवान दाना , जहांस तहां सुष आज ॥
जन हरीदास कै सुष रहो तेरा , 'और' सुष सूँ लाज ॥४॥

पाठभेद—ज्यद-२ । येक-२ । अवर-१ ।

शब्दार्थ—दसत=हाथ में । जिंद=जीव । सुक्रांन=सुखधाम । दिलदार=परम-प्रिय । मिहरि=मेहरबानी, कृपा । उरस=हृदय मे ।

(२०४)

'अलाह' आव यारां यार,
इसक है बेहाल व्याकुल, दरस द्यौ दीदार ।।टेक।।
इसक तेरा जिद मेरा, जाइ यहु तन जाइ ।।
तुम्ह जांणने हो कहूँ कासूँ, कब मिलोगे आइ ।।१।।
फरक फारिक तरक दुनिया, है तुसांड़ा चाव ।।
सेक्ष मेंड़ी आव सइयां, सीस पर धरि पाव ।।२।।
अलाह आले विरह जाले, विरह घाले घाव ।।
जन हरिदास कूँ दीदार दीजै, पूब पालिक आव ।।३।।

(२०५)

दुनिया दुरसि भूली दीन,
वा षसम की कछु षबर नांही, और की आधीन ।।टेक।।
एक जलेषां का जाप जांणै, आदमाँ असथान ।।
एक पीरां मईदां जाइ लागा, ऐसा सा कछु ग्यांन ।।१।।
इक जड़ी बूटी धात पाषंड, इष्ट भैंरू वीर ।।
सुरति सुलटिन चल्या उलटा, वहि गया तलसीर ।।२।।
एक तंत मंत उड़ंत आगम, सुरति दह दिसि पूरि ।।
जन हरिदास तिनकूँ 'भिसत' कैसी, रह्या पालिक दूरि ।।३।।

(२०६)

बंदे बंदगी हुसियार,
जोर कर भी जेर 'होइगा', बहौत पाइगा मार ।।टेक।।
भूलिगा मैं फूलि बैठा, जहां स तहां जम त्रास ।।
काल नटकै हाथि डोरी, कंठ बंध्या कपि ज्यूँ पास ।।१।।

पाठभेद—अलह-१ । अल्है-५ । भेस्त-४-५ । व्हैगा-१-५ ।

शब्दार्थ--बेहाल=बुरी हालत, दुर्दशा । फारिक=निवृत, मुक्त । तुसाडा=तुम्हारा । मेंडी=मेरी । जलेपा=एकपीर । सुलटि न=भूलभी नही । तलसीर=नीचा, रसातल मे । तत मत=तन्त्रमन्त्र । भिसत=स्वर्ग । जेर=हैरान, परेशान, दुखी ।

पालव्या पुर पिसुण पहुँता , गुण ग्रास गोव्यंद गाइ ।।
हरि नांव लैं मन छाड़ि में तें, जनम जूवा जाइ ।।२।।
सोर दह दिसि जोर लागा , तूटि है गढ़ देह ।।
जन हरिदास जोगी जागि जुध करि, रांम आवध लेह ।।३।।

।। इति राग रेषता काफी सम्पूर्ण ।।

।। पद भाग समाप्त ।।

।। अथ कवित्त छप्पय ।।

तुम्हस तीरथ तुम्ह वरत , तुम्हस पौरष सवलाई ।
तुम्हस बंधु तुम्ह बाँह , आंन चित अटै न काई ।।
तुम्हस मात पिता परिवार , तुम्हस सज्जन सुषदाई ।
तुम्हस ग्यांन तुम्ह ध्यांन , रांमजी राम दुहाई ।।
अगम वस्त अंनर अगह , कलविष काटण तापती ।
जन हरीदास कै एक तूँ , आंन न जांचू वापजी ।।१।।

×

गुर दीरघ 'ज्यूँ' मेर , समंद ज्यूँ थाह न कोई ।
मति गंभीर ज्यूँ गगन , चंद ज्यूँ सीतल सोई ।।
सम 'दिष्टी' ज्यूँ सूर , पवन ज्यूँ लिपै न लोई ।
वसुधा ज्यूँ मन धीर , परम संगी गुर सोई ।।

पाठभेद—जिम–१ । द्रिष्टी–४ ।

शब्दार्थ—पुर=नगर, कायानगरी । पिसुण=चोर-लुटेरे । राम आवध=ईश्वर-चिन्तनरूपी शस्त्र ग्रहण कर । अटै=अटके, लगे । ज्यूँ मेर=सुमेरु पर्वत की तरह । लिपै=लिप्त हो ।

जन हरीदास गुरगम अगम, कहत न आवै क्या कहूं।
गुर गोव्यंद चरणारविंद, भाइ विट लागा रहूं ॥२॥

×

जहां सागर सलिता नांहि, पवन गिर प्रथमी नांहि।
वरण नहीं वैकुंठ, विघन कौतूहल नांहि॥
वप घट नहीं विचार, करम भै भरमैं नांहि।
'रवि' ससि 'द्यौस' न राति, तिमर ताराइण नांहि॥
व्यापै सीत न धूप, गगन वसुधा फुनि नांहि।
जन हरीदास सब तैं अगम, तास गम कोइ विरला लहै॥
दीवान इसा जाचू नहीं, एक मम दीवान स 'और' है ॥३॥

×

अवगति गति कौं लहै, कौंण गैणांइर मापै।
कौंण मेर कूँ तोलि, थापना उलटि थापै॥
कौंण समद जल तिरै, कौंण गुर याह मति आपै।
ब्रह्म 'अगनि' मैं पैसि, कौंण सिध अंतरि तापै॥
जन हरीदास पूरणब्रह्म, नहिं नैडा नहि दूरि।
कीमत कहि कहि कहि अकह, हरि जहां तहां भरपूरि ॥४॥

×

जोग जिग असमेद, सीस गहि ईस चढ़ावै।
पांच अगनि तप मिला, करौ ऊभा तप मावै॥

पाठभेद—रिव-१-३। दिवस-१। अवर-२-३। अग्नि-१।

शब्दार्थ—भाइ विट=भावना सहित। ताराइण=तारामण्डल। तासगम=उसकी ठीक जानकारी। गैणाइर=समुद्र, गणितज्ञ। अकह=अकथनीय। असमेद=अश्वमेध यज्ञ। करौ ऊभा=हाथ ऊँचे किये हुए।

अंब विवर तन सीत, सुतौ सब तीरथ न्हावै।
कासी छाड़ै देह, हेम वसि हाड़ गमावै॥
विवधि धरम तपस्या विवधि, फल भुगतै परदुष सहै।
जन हरीदास हरि नांव विण, नर कहि कौंण वोट निरभै रहै॥५॥

×

अगम 'तीरथ' गुर गम सुगम, अगम तपस्या जिग जोग विचारौ।
एकादसी अगम, अगम नांव नरहरि न विसारौ॥
संत सूरातन अगम, अगम गुर ग्यांन उरि धारौ।
गंग जमन मधि वैसि करि, अगम 'वस्त' अंतरि लहौ॥
जन हरीदास निरभै मतै, तहां उनमनि लागा रहौ॥६॥

×

लोक लाज पष भेष, तहां मिलि जनम न हारौ।
रांम नाम उरि धरौ, पाप जन 'परन' पसारौ॥
'भौ' सागर वार पार मधि नांहि, घट घाट तजि अघट विचारौ।
परम ग्यांन पर ध्यांन हरि, निज नाथ नर निमष न विसारौ॥
जन हरीदास इंद्री अटकि, पिसुण पलटि 'परमगति' लहौ।
अगम वस्त अंतरि अगहि, तहां उनमनि लागा रहौ॥७॥

×

'परम ग्यांन' 'परम ध्यांन', परमगुर गुर गम गावौ।
राग दोष रस पांच, रपे मन तहां नचावौ॥

पाठभेद—तीर्थ-१। वसत-२। प्रन-१। भव-१। प्रमगति-१। प्रमग्यान-१। प्रमध्यान-१।

शब्दार्थ—अंव=पानी। विवर=गढा। हेम वसि=बर्फ मे रह। अगम तीरथ=आत्मस्वरूप परब्रह्म। गग जमन मधि=इडा-पिगला के मध्य सुषुम्ना। उनमनि=सहजदशा, लयवृत्ति। परन पसारौ=पक्ष मत फैलाओ। घट घाट तजि=देहाध्यास त्याग। पिसुण=कामादि लुटेरे। परमगुर=परब्रह्म।

कांम क्रोध अभिमान, कुपहि काँटा मति लावौं।
अलप भजन उरि धरौं, मरौं मरि मौंन चुकावौं॥
जन हरीदास मन गहि पवन, ब्रह्म अगनि विप वनि दहौं।
अगम वमत अंतरि अगहि, तहाँ उनमनि लागा रहौं॥८॥

×

पूत कलित परिवार, माल 'वहौ' मुलक वड़ाई।
ऊँचा महल अवास, मैंल मजन सुपदाई॥
वहौ सूँघौ वहु पान, सेझ पासा दरयाई।
कर धरि मूँछ मरोड़, कहै मेरीज दुहाई॥
हरि सुमरिण हिरदै नहीं, दह दिसि माया घेर।
जन हरीदास यूँ जांणिये, यहु तिल सुप दुप अस मेर॥९॥

×

जहां जीव तहाँ सीव, वीचि माया का सरवर।
गिरवर अजंग उत्तंग, विवधि विप का वन तरवर॥
सरप सिंघ जप जुरा, जीव धरि मकैंन तहां धर।
नदी वहै मैंमंत, मझ मरणां मधि 'इहै' डर॥
जन हरिदास हरि तहां चलौ, ग्यान पर उर धरि तजि घर।
जहां जीव तहाँ सीव, वीचि माया का सरवर॥१०॥

×

पाठभेद--वहु-१। यह-३-४। यहु-५।

शब्दार्थ--मरौ=अहङ्कार त्यागो। पवन=प्राण स्थिर करो। दुहाई=आज्ञा, हुक्म। सीव=कूटस्थ चेतन। गिरवर अजंग=वृक्षरहित पहाड। उत्तङ्ग=ऊँचे शिखर वाले। विवधि विप का वन तरवर=मोह के जगल में वासना के अनेक प्रकार के जहरीले वृक्ष है। सरप सिंह जप जुरा=संशय, काम, क्रोध, बुढापा आदि। नदी वहै मैंमत=उत्ताल-तरङ्गोवाली तृष्णा की नदी बह रही है। मझ=बीच। ग्यान पर=आत्मज्ञान के अवलम्बन से।

गहर बाग रंग राग, तहां ध्यान धरि जोगी बैठा।
जंबकि मारया सिंघ, सूर ससिहर अंग पैठा॥
गया पाप 'पर'देस, पहम तजि धुर तैं धैठा।
*गंग चढ़ो ब्रह्मंड, अब्या हठ करता हैठा॥
×अरस परस रस परम गति, परम भेद निरभै भया।
त्रिवधि तिमर गति गरब 'गति', जन हरीदास सतगुर दया॥११॥

×

नाथ मछिंदर देषि, देषि गोरष गुण रता।
रह्या धणी सूँ लागि, छाड़ि भव जल का मता॥
गोपीचंद भी जांणियै, जोग ध्यान एसे गह्या।
है गै मै गै छाड़ि करि, माया तैं न्यारा रह्या॥
सुषदेव भी माया तजी, वास छाड़ि वन मैं वस्या।
जन हरीदास ते ऊबरया, जुग सारा माया डस्या॥१२॥

×

पाठभेद—प्र-१। गत-४-५।

शब्दार्थ—गहर बाग=सहस्रारदलरूपी बगीचा। रग राग=विविध अनहद शब्द। जंबकि=शुद्ध मनरूपी शृगाल ने। मारया सिंह=मोहरूपी सिंह को मार लिया। सूर ससिहर अंग पैठा=मन-प्राण सुस्थिर हो आत्मचिन्तन मे लगे। पहम तजि धुर तैं धैंठा=निर्लज्ज पाप मूल देह को छोड गया। त्रिवधि तिमिर गति=त्रिगुणात्मक अज्ञान का अँधेरा दूर हुआ। गरब गति=अहङ्कार नष्ट हुआ। मता=मत, विचार। है गै मै गै=घोडे-हाथी, भूमि-घरबार। डस्या=काटखाया।

* सुषुम्ना तथा सुरतिवृत्ति ब्रह्माण्ड (दशमद्वार) मे पहुँची। हैंठा—विषयभोग की नीची प्रवृत्ति के आग्रह से मन अब रुक गया।

× अभेद ज्ञान से व्यष्टि चेतन समष्टि से एकरस हो, शरीरगत चेतन तथा विश्वव्यापक चेतन एक रस हो परम गति—मोक्ष की प्राप्ति की। ब्रह्म ही सत्य है और सब दृश्य-अदृश्य संसार के पदार्थ नाशवान हैं, इस परम भेद को समझ कर जन्मने-मरने के भय से मुक्त हो गया।

नाथ निरंजन देपि, अंति मंगी सुपदाई।
गोरप गोपीचंद, सहजि सिधि 'नौ' निधि पाई॥
नामें दास कबीर, रांम भजतां रस पीया।
पीपें जन रैदास, बड़े छकि लाहा लीया॥
अणभै 'वस्त' संभालि करि, जन हरीदास लागा तहीं।
रांम विमुप दुविध्या करें, ते निरवल पहुंचें नहीं॥१३॥

×

हैवर गैवर गांव, फौज फरहर 'बहौ' पाइक।
बहौ जोधा दरवारि, पसैं आंपू मो पाइक॥
तरवारयां तन तौलि, चड़ें अंणियां मुँह लाइक।
प्रतिमाली करि थरि विवरि, वकै मुपि विक्रत बाइक॥
लोह छाक गोली गिलैं, पर दल जीतैं पर पुरा।
तउं जन हरीदस हरि नाँव विनि, नर विकट रूप दीसैं वुरा॥१४॥

×

बीर घटा घरहरै, जुटैं गै रिण में गाजैं।
पड़ैं लौह वौछाड़, पड़ग पसतां रिंण बाजैं॥
करवट कर सूँ तोलि, पिसणां तन पिसण अवाजैं।
सूरवीर सनमुषि चढ़ें, षेत तजि काइर भाजैं॥
नीर उतरयो बीर, नांव पत्री 'पणि' लाजैं।
दोऊँ पपां निरभै रतन, स्यांम धरम अरमांण॥
हरीदास जन यूँ कहै, वाल निमांणो जांण॥१५॥

×

पाठभेद—नव-१। वसन-२। बहु-१-३। पण-३-४।

शब्दार्थ—अणभै वस्त=आत्मतत्व को अनुभूत कर। पसै=संघर्ष करे, लडे। अंणियां=फौजे, अग्रभाग मे। वक=वकवाद करे। विक्रत=बुरे। बाइक=वचन, शब्द। विकट=भयङ्कर। वौछाड=वार पर वार। पत्री पणि=शूरवीरपन। स्याम धरम=वफादारी, स्वामिभक्त।

भजि करणां निधि करतार, नांव नाराइण लीजै।
भजि निरामूल निरसिंध, कांम आरंभ 'यहु' कीजै॥
भजि अलष निरंजन नाथ, छाड़ि विष 'इंम्रत' पीजै।
भजि परम उदार अपार, ग्यांन गहि ध्यांन धरीजै॥
जन हरीदास वार पार कीमत नहीं, रांम नांम मोटों रतन।
उर मंड़ण उर धारि, प्रेम प्रीति दीजै जतन॥१६॥

+

॥ इति कवित्त सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कुण्डलियां ॥

साचा गुर साचै मतै, भजै निरंजन नाथ।
जन हरिदास ता साध का, सिष क्यूँ छाड़ै साथ॥
सिष क्यू छाड़ै साथ, नांव निज भेद बतावै।
अवरण अगहि अरूप, अगम गुर गम तैं पावै॥
'गरव' छाड़ि गोव्यंद भजौ, सिरि सतगुर का हाथ।
साचा गुर साचै मतै, भजै निरंजन नाथ॥१॥

×

काचा गुर काचै मतै, काचा ही फल षाइ।
बुगला का 'दिष्टांत' दे, सो बुगला ही हो जाइ॥
सो बुगला ही हो जाइ, ध्यांन बुगला ज्यूँ धारै।
पांणी मांही पैसि, मीन पांणी मैं मारै॥

पाठभेद—यौ-१। इमरत-१। ग्रव-१। दिसटान्त-२।

शब्दार्थ—अरमाण=अरमान, मन की बात। उर मडण=हृदय को सुशोभित करने वाला। बुगला ज्यूँ=बगुले की तरह नकली ध्यान।

जन हरीदास दुरभष तहां, जासूँ प्रीति न लाइ।
काचा गुर काचै मतै, काचा ही फल पाइ॥

॥ अथ गुर-सिष पारष अंग ॥

गुर सिर 'पर' कर तब धरैं, जब गुर लाइक होइ।
बिन ही परचै सिष करैं, बड़ा अचंभा दोइ॥
बड़ा अचंभा दोइ, बात या 'कासूँ' कहिये।
पोटा गुर के साथ, 'परम' गति कदे न लहिये॥
अगम ठौड़ आसण अचल, जन हरीदास गुर सोइ।
गुर सिर पर कर तब धरैं, जब गुर लाइक होइ॥३॥

×

गुर होइ सिष साषा करैं, मीनी का सा मोह।
जन हरीदास उदबुद कथा, भला बिगोया 'द्योह'॥
भला बिगोया द्योह, गंम सुष नैड़ा नांही।
जहर जड़ी जिव पांहि, अहं तरवर की छांही॥
काची संगति बूड़िये, साहिबजी की सौंह।
गुर होइ सिष साषा करैं, मीनी का सा मोह॥४॥

॥ इति गुरुसिष पारष अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—परि-२-४। कास्यूँ-१। प्रम-१। दोह-१।

शब्दार्थ—दुरभष=काल, सकामकर्म। परचै=आत्मा की जानकारी। पोटा=झूठा, बनावटी। सिष साषा=शिष्य-प्रशिष्य। मीनी का सा मोह=बिल्ली के मोह की तरह। बिगोया=डुबोया, गँवाया। द्यौह=दिवस, आयु। जहर जड़ी=विषयवासनामय जड़ी। अहं तरवर=अहङ्कार के वृक्ष। बूडिये=डूबिये, नष्ट होइये। सौंह=सौगन्ध।

॥ अथ साधु को अंग ॥

संगति कीजै साध की, मन की दुवध्या षोइ।
साध बतावै परम सुष, पहुँचै बिरला कोइ॥
पहुँचै बिरला कोइ, देह सुष दिलतैं धोवै।
जाइ बसै दरबारि, नींद भरि निसहै न सोवै॥
हरीदास आनंद इहै, दूजा दषल न होइ।
संगति कीजै साधु की, मन की दुवध्या षोइ॥५॥

×

संगति कीजै साध की, जा सूँ रामदयाल।
अरस परस आनंद सदा, गाई जै गोपाल॥
गाई जै गोपाल, प्राँणहति प्राँण पिछाँणै।
धरयौ धरयाँ कूँ छाड़ि, अधर 'अभि' अंतरि जाँणै॥
जन हरीदास हरि परसताँ, पला न पकड़ै काल।
संगति कीजै साध की, जा सूँ रामदयाल॥६॥

×

साध मिल्याँ सुष पाइये, भजिये केवल रांम।
नर न्यारा गोव्यंद विमुष, तहाँ नहीं साध का कांम॥
तहां नहीं साध का कांम, धस्या ऊंडा जल मांही।
विणजै संष सराप, हाट हीरा को नांही॥
जन हरीदास हरि परस कूँ, लोचन दोइस कांम।
साध मिल्यां सुष पाइये, भजिये केवल रांम॥७॥

×

पाठभेद—अभ्य-२।

शब्दार्थ—दुवध्या=संशय, अनिश्चय। निसहै=अज्ञान की रात्रि में। धरचौ धरचा कूँ छाडि=दिखलाई देने वाले आधार-सहारे का त्याग कर। धस्या=प्रवेश किया। विणजै=व्यापार करे, सौदा करे। दोइस=दो ही, ज्ञान और विचार।

रांम सनेही साधवा, वड़ा वैद जग मांहि।
सूता जीव जगाइ करि, और देस ले जांहि॥
और देस ले जांहि, सबद राषै ज्यूँ रहिये।
सबद कहै त्यूँ करै, सबद कसणी सब सहिये॥
जन हरीदास ता मुलक मैं, जुरा काल मै नांहि।
रांम सनेही साधवा, वड़ा वैद जग मांहि॥८॥

×

साध सदा भेला रहै, कबहूँ दूरि न जांहि।
जिन की जड़ ऊँडी गड़ी, ब्रह्मभौमि ता मांहि॥
ब्रह्मभौमि ता मांहि, सुरति निज जाइ समाई।
दरसै परसै पेम, परम निधि अंतरि पाई॥
जन हरीदास तहाँ अगम फल, हिंलिया हरिजन षांहि।
साध सदा भेला रहै, कबहूँ दूरि न जांहि॥६॥

×

कोई आवो प्रीति लै, कोई आवो अरि भाइ।
साध दहूँ कूँ पोषदै, वो वाका फल पाइ॥
वो वाका फल पाइ, रूँष तैसा फल दरसै।
आंधी कै मुषि धूरि, घटा मुषि पांणी वरसै॥
जन हरीदास आछै मतै, सुष मैं रह्या समाइ।
कोई आवो प्रीति लै, कोई आवो अरि भाइ॥१०॥

×

शब्दार्थ—और देस=ब्रह्मधाम। सबद राषै=उपदेश के अनुसार। कसणी=कसौटी। भेला=अरस-परस, एकरूप। जड़=मूल, वृत्तिरूपी जड आत्मनिष्ठ हो। हिंलिया=हिला हुआ, अनुभवी। अरि भाइ=शत्रुभावना से, वैरी होकर। पोष दे=पोषण करे, मदद करे। रूँष=वृक्ष। आछै मतै=आत्मविचार, सन्मार्ग।

आठ पहर की उनमनी, आठ पहर की प्रीति।
आठ पहर सनमुष पड़ा, यह साधां की रीति॥
यह साधां की रीति, एक रसि लागा जीवै।
अगम पियाला हाथि, रांम रस पावै पीवै॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, आंन असुर अरि जीति।
आठ पहर की उनमनी, आठ पहर की प्रीति॥११॥

॥ इति साधु को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

हरि 'भजि' भेद विचारि, हारि मति चालौ लोई।
'एकै' साथी साथ, 'और' साथी नहिं कोई॥
और साथी नहिं कोई, जांणि याह जीव मैं साची।
रसनां रांम रटारि, रषे मति थापै काची॥
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, सौंज त्यांह सद्गति षोई।
हरि भजि भेद विचारि, हारि मति चालौ लोई॥१२॥

×

कहा दिषावे और कूँ, उलटि आप कूँ देष।
कर लेषणि मसि कागद कहाँ, लिषिये तहाँ अलेष॥

पाठभेद—भज्य-२। येकै-२। अवर-३।

शब्दार्थ—एक रसि=एकाग्र बुद्धि। असुर अरि=राक्षसरूपी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि वैरियो को। हारि=व्यर्थ खोकर। एकै साथी=एक चेतन ही सच्चा साथी है। रटारि=रट। लेषणि=कलम, स्थिरवृत्तिरूपी कलम से। मसि=स्याही, निर्भ्रान्त ज्ञान की स्याही। कागद=हृदयरूपी कागज मे।

लिपिये तहां अलेप, सुतौं निरमल करि लीजैं।
दिल कागद करि पाक, सुतौं लिपि लिपि टिक दीजैं॥
जन हरीदास हरि सुमिरतां, संचर रहैं न सेष।
कहा दिषावे और कूँ, उलटि आप कूँ देष॥१३॥

×

गुर गोव्यंद गोव्यंद भजन, गोव्यंद ही सूँ प्रीति।
हरीदास जन 'यूँ' कहै, याह साधां की रीति॥
याह साधां की रीति, अगम गुर गम तैं पाया।
निरामूल निरसिंध, काल मैं जाल न काया॥
जन हरीदास तहां एक सुष, नहीं हारि नहिं जीति।
गुर गोव्यंद गोव्यंद भजन, गोव्यंद ही सूँ प्रीति॥१४॥

×

निस दिन रांम संभालि, जागि निरभै पद लहिये।
जहाँ तहाँ मन लाइ, प्रांण परदुष 'क्यू' सहिये॥
प्रांण परदुष क्यूँ सहिये, सिर जुरा जम चोट न सूझै।
देह षेह व्है जाइ, जीव अपणी करि बूझै॥
जन हरीदास अवगति अगम, फेरि मन तां सुष रहिये।
निस दिन रांम संभालि, जागि निरभै पद लहिये॥१५॥

×

॥ इति सुमिरण को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—यौ-१। क्यो-१।

शब्दार्थ—पाक=पवित्र, शुद्ध। संचर=अन्तर, छिद्र बाकी न रहे। उलटि=अन्तर्मुख हो। अगम=मन-बुद्धि से गम नही। एक सुष=परमानन्द। जागि=चेति, ज्ञानमय हो। जहा तहा=इधर-उधर, विषयभोग मे। जुरा=बुढापा। सूझै=दीखे।

॥ अथ विरह को अंग ॥

सनी हौंण की हौंस धरि, तन जालण कूँ जाहि।
लोक लाज ले जलत है, असल सती सौ नांहि॥
असल सती सौ नांहि, पीव की षवरि न लावी।
धीरज रह्या न लोइ, चली कुल कै पषि बाँधी॥
जन हरीदास ऐसा विरह, जहाँ तहाँ जुग मांहि।
सती हौंण की हौंस धरि, तन जालन कूँ जांहि॥१६॥

॥ इति विरह को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ ग्यान विरह को अंग ॥

वात सुणे सुणि पीव की, सिर तैं डारया चीर।
लिया 'संदौरा' हाथ मैं, पैंडे लागी वीर॥
पैंडे लागी वीर, देह सुत वित सव भूली।
जीव गया तहाँ पीव, पैंमि दावानल झूली॥
जन हरीदास संसार की, लगी न काई सीर।
वात सुणे सुण पीव की, सिर तैं डारया चीर॥१७॥

×

विरह मंदी मैं पैस करि, दह 'दिसि' दीन्ही आगि।
जीव लग्या पणि पीव कै, रही निरंतरि लागि॥

पाठभेद—सिदौरा-१। दिस-५।

शब्दार्थ—हौंस=चाह, उमङ्ग। पषि=पक्ष में, समर्थन में। सिदौरा=पलीता। पैंडे=रास्ते, मार्ग। दावानल=ताप, अग्नि पर बैठ। सीर=हवा।

रही निरन्तरि लागि, आंन चित वोट न धारी ।
प्रगट जली मैंदानि, लोक लज्या सब डारी ॥
जन हरीदास पिव का विरह, तहाँ वसै धसि जागि ।
विरह मंढी में पैस करि, दह 'दिसि' दीन्ही आगि ॥१८॥

×

असलि सती 'आतुर' कहा, अर आलस भी नांहि ।
धीरे धीरे उठि चली, एक रेप मन मांहि ॥
एक रेप मन मांहि, 'और' दुनिया सब पारी ।
जीव गया तहाँ पीव, देह लै षेह में डारी ॥
जन हरीदास ऐसा विरह, धस्या छाड़ि कहाँ जाहि ।
असलि सती आतुर कहा, अर आलस भी नांहि ॥१९॥

॥ इति ग्यान-विरह को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चितावणी को अंग ॥

आइ सिंघासण वैंसता, हँसि हँसि करता बात ।
सुत वनिता परिवार सूँ, ऊठि गया करि घात ॥
ऊठि गया करि घात, मात संगि तात न माया ।
माई संगि न भौमि, अंति साथी नहिं काया ॥
कहुं काल चोट चूकै नहीं, जन हरीदास तिलमात ।
आइ सिंघासण वैंसता, हँसि हँसि करता बात ॥२०॥

×

पाठभेद—दिस–५ । आतुरि–१-२ । अवर–१ ।

शब्दार्थ—आतुर=व्याकुल, शीघ्रता । एक रेष=एक लक्ष्य, एक ध्येय । तिल-मात=तिल भर ।

चोवा चंदन लाय तन, करता 'वहौत सिंगार'।
जन हरीदास ते मानई, जलि वलि हूवा छार ॥
जलि वलि हूवा छार, भार अपणैं सिर धारचा।
या रसना कै स्वादि, जीव नानाविधि मारचा ॥
'वहोड़ि' वहोड़ि जामैं मरै, जुरा काल भै लार।
चोवा चंदन लाइ तन, करता वहौत सिंगार ॥२१॥

×

माल मुलक है गै घणां, छत्र छांह मद छाक।
के मारचा के मारसी, काल करत है ताक ॥
काल करत है ताक, अंति कोइ छूटै नांही।
सुर नर असुर अनंत, सकल जम कै मुष मांही ॥
जन हरीदास 'गोव्यंद' भजौ, और सवै सुष थाक।
माल मुलक है गै घणां, छत्र छांह मद छाक ॥२२॥

×

तन धरि धरि मरि मरि गया, हरि हरि भजैं न भेद।
सदगति सुष जांणै नहीं, तहां कंध का छेद ॥
तहां कंध का छेद, आंन नर वोट न छूटै।
दस दरवाजा रोकि, काल काया गढ़ लूटै ॥
जन हरीदास अवगति अगम, भूठी 'और' उमेद।
तन धरि धरि मरि मरि गया, हरि हरि भजै न भेद ॥२३॥

×

पाठभेद—बहुत-सिगार-१-२। वहुडि—१। गोविन्द—३-४। अवर—१।

शब्दार्थ—चोवा=इतर, तेलफुलेल। छार=राख। वहोडि=फिर-फिर, पुनः। मद छाक=मद की मस्ती। थाक=थक जाने वाले। कंध का छेद=गर्दन कट जाना, मरना। वोट=आड, सहारा। उमेद=आशा।

जागौ रे सोवो कहा, अवधि घटै घटि वीर।
कहा कहां लौं राषिये, फूटै मांडै नीर॥
फूटै मांडै नीर, गरक गाफिल नर सोवै।
भजै नहीं भगवन्त, वहौड़ि मल सूं मल धोवै॥
जन हरीदास सुर नर असुर, सब मछली जम कीर।
जागौ रे सोवो कहा, अवधि घटै घटि वीर॥२४॥

×

जन हरीदास निसदिन घड़ी, बाजै 'बारू' बार।
घटत घटत सब दिन घट्या, मरणां सदा तयार॥
मरणां सदा तयार, त्याइ निधड़क नर सोवै।
मोह द्रोह छकि छक्या, मूल माया मदि पोवै॥
जनम अमोलिक जात है, यूं निति करै पुकार।
जन हरीदास निसदिन घड़ी, बाजै 'बारू' बार॥२५॥

×

राजा रांम न बोलगै, नाराइण निरसिंघ।
जन हरीदास तै मानई, जांहि अधोगति अंध॥
जांहि अधोगति अंध, अग्यांन आलम 'उरि' लागा।
'त्रिवधि' अँधारै बैसि, ग्यांन बोढण नहिं नागा॥
आंन ध्यांन गुर ग्यांन बिन, और अनेरा बंध।
राजा रांम न बोलगै, नाराइण नरसिंघ॥२६॥

॥ इति चितावणी को अंग सम्पूर्ण॥

पाठभेद—बारौ-४-५। उर-५। त्रिविधि-१।

शब्दार्थ—फूटै मांडै=विनाशी देह, दसद्वारों का शरीर। मल सूं मल धोवै=कर्मफल के कीच को सकाम-कर्म से धोना। कीर=धीवर, मछली पकड़ने वाला। निस दिन घड़ी=रात-दिन की घड़ी। बोलगै=जाने, पहिचाने। त्रिवधि=त्रिगुणात्मक। ग्यान बोढण=ज्ञानमय चादर। अनेरा=बहुत, घणा।

।। अथ परचा को अंग ।।

विन वादल विरषा सदा, छह रुति वारह मास ।
आतम अंतरि देषिये, परम जोति 'परकास' ।।
परम जोति परकास, प्रांण सागर मैं झूले ।
अनहद सवद उचार, सुरति निज साच न भूले ।।
जन हरीदास आनंद भया, अरथि समांणी आस ।
विन वादल विरषा सदा, छह रुति वारह मास ।।२७।।

×

ग्यांन पत्र मनसा भुगति, निस दिन वैठा षाइ ।
आसा राषै अलष मैं, भरमत फिरै वलाइ ।।
भरमत फिरै वलाइ, सिंघ 'तव' महल पधारै ।
मूसो ग्रासै सेस, सुसो सुनहा कूँ मारै ।।
जन हरीदास उदवुद कथा, तहां मन रह्या समाइ ।
ग्यांन पत्र मनसा भुगति, निस दिन वैठा षाइ ।।२८।।

×

षग ऊड्या आकास कूँ, चींटी परां समाइ ।
जहाँ चींटी का गंम नहीं, तहां षग वैठा जाइ ।।
तहां षग बैठा जांइ, मुलक 'वोह' 'अवरै' भाइ ।
सीत धूप रस रहत, एक रस तौ सुषदाइ ।।

पाठभेद—प्रकास–१ । जब–५ । वो–५ । औरे–५ ।

शब्दार्थ—विन वादल विरषा सदा=बाहरी बादलो के बिनः ब्रह्मरन्ध्र से तालुप्रदेश मे अमृतरस बरस रहा है। सागर=आनन्द सागर। ग्यान पत्र=ज्ञान की पत्तल मे। मनसा भुगति=मनसा का भोजन। सिंघ=ब्रह्म, आत्मा। मूसौ ग्रासै=ज्ञान-रूपो चूहा खावे। सेस=संशयसर्प। सुसा=सतोषरूपी खरगोश। सुनहा=क्रोधरूपी कुत्ते को। षग=शुद्धमनरूपी पक्षी। चीटी=सुरति-वृत्ति।

जन हरीदास चींटी तिको, उलटि न पूठी जाइ।
पग ऊच्या आकास कूँ, चींटी परां समाइ ॥२९॥

×

ग्यांन गुफा में पैसि करि, बैठा ताली लाइ।
सुष पाया सतगुर मिल्या, सूता लिया जगाइ॥
सूता लिया जगाइ, हरि आप कूँ आप बतावैं।
घट घूँघट पट षोलि, साध तहां दरसण पावैं॥
जन हरीदास आनँद इहै, तहां मन रह्या समाइ।
ग्यांन गुफा में पैसि करि, बैठा ताली लाइ ॥३०॥

×

परा परै पूरणब्रह्म, 'परम' जोति 'परकास'।
सकल वियापी सँगि बसै, सब तैं रहै उदास॥
सब तैं रहै उदास, वार नहिं लाभैं पारं।
निज तरवर निरसिंध, प्रांण तहां बसै हमारं॥
जन हरीदास अंतरि अगहि, मन का तहां निवास।
परा परै पूरणब्रह्म, परम जोति परकास ॥३१॥

×

सब को सरवस देत है, अपणी अपणी प्रीति।
साहिब कूँ सरवस दिया, याह 'कछु' उलटी रीति॥
याह कछु उलटी रीति, जीति गुण गोव्यंद गावैं।
सुँन्य मंडल में पैसि, सांच सूँ सुरति लगावैं॥

पाठभेद—प्रम-१। प्रकास-१। कुछ-१।

शब्दार्थ—ग्यांन गुफा=शून्यमण्डल, दशमद्वार। घट घूँघट पट पोलि=घट मे माया के आवरण व देहाभिमानरूपी पट (पर्दे) को खोल कर। लाभै=मिले, पावे।

जन हरीदास आनँद भया, छूटी सवै अनीति।
सब को सरवस देत है, अपणी अपणी प्रीति ॥३२॥

×

सहर अधर पैंडा अधर, कसर करम नहिं कोर।
धरम अधर रहणीं अधर, अधर सबद की घोर॥
अधर सबद की घोर, अधर वरिषा घण आया।
जहाँ तहाँ भर पूरि, अधर गुर गम तै पाया॥
जन हरीदास निरभै नगर, तहाँ जम करि सकै न जोर।
सहर अधर पैंडा अधर, कसर करम नहिं कोर ॥३३॥

×

निगम अगम मन तहां वसै, जहां साधां की ठौर।
परमानंद पति परसतां, छूटि गया भ्रम ऑर॥
छूटि गया भ्रम ऑर, रांम निरभै सुष पाया।
रूप रेप रस रहत, काल भै जाल न काया॥
जन हरीदास अंतरि अगई, पहुँचण का पंथ ऑर।
निगम अगम मन तहाँ वसै, जहां साधां की ठौर ॥३४॥

×

सोवत सोवत सोइ रह्या, जागि जागि कहां जाइ।
सोवण जागण तैं अगम, तहां मन रह्या समाइ॥

शब्दार्थ—अनीति=बुराई, सांसारिक पदार्थों की आसक्ति। सहर अधर=उस चेतनतत्त्व का कोई आधार नहीं है। पैंडा अधर=उस आत्मतत्व की प्राप्ति का मार्ग भी अधर है, क्योकि उसकी प्राप्ति वेद-शास्त्र प्रतीक पूजा से न होकर लयवृत्ति मे ही साध्य है। निगम अगम=वेद से भी जो न जाना जाय। सोवत सोवत=अज्ञाननिद्रा मे सोते-सोते। जागि जागि कहां जाइ=जप, तप, तीर्थ, दान, पूजा आदि के द्वारा जाग-जागकर भी सकामकर्मफल के कारण विविधजन्म ग्रहण करता रहता है।

तहां मन रह्या समाइ, प्रथम अपर्णं धरि आया।
निगमूल 'निरसिंध', अगम गुर गम तैं पाया॥
जन हरीदास अवगति अगम, तहां मन रह्या समाइ।
सोवत सोवत सोइ रह्या, जागि जागि कहां जाइ॥३५

×

मन चंचल निहचल भया, त्रिवेणी तटि वास।
आंपि अजब अंजन पड्या, परम जोति परकास॥
परम जोति परकास, अगह अघ विनि अघजारण।
सीत धूप रस रहैत, करम भै भरम निवारण॥
जन हरीदास पति परसतां, कांम क्रोध का नास।
मन चंचल निहचल भया, त्रिवेणी तटि वास॥३६॥

×

धुनि मांहि मुनि मठ रच्या, 'दह' 'दिमि' बाजैं तूर।
जन हरीदास आनंद भया, सहजि प्रकास्या सूर॥
सहज प्रकास्या सूर, अजर निरभै निरधारं।
तहां मन रह्या समाइ, वार नहि लाभै पारं॥
अजब बात आनँद 'इहै', जहाँ तहाँ निज नूर।
धुनि मांहि मुनि मठ रच्या, दह दिमि बाजैं तूर॥३७॥

×

पाठभेद—निरम्रंथ-२। दहि-४। दिस-५। यहै-३-५।

शब्दार्थ—त्रिवेणी तटि=भ्रूमध्य त्रिकुटिस्थान। अजब अजन=निर्भ्रान्त ज्ञानाजन। अगह अघ विनि अघ जारण=वह मन-इन्द्रियों की पकड से बाहर है, निष्पाप है, पापों का विनाशक है। पति परसना=उस विश्वपति व्यापक-ब्रह्म मे एकत्व होने पर। धुनि=अनहद नाद के स्थान में। मुनि=मौन मन, राग-द्वेष से रहित मन। मठ रच्या=अपना स्थान बनाया।

मन चंचल निहचल भया, भरम न कोई भूत।
पहली का पैंडा तज्या, उलटि चल्या अवधूत ॥
उलटि चल्या अवधूत, निरषि निरभै पद लागा।
कांम क्रोध अभिमान, आंन अनरथ अरि भागा ॥
जन हरीदास आनंद भया, उलझि 'सलूभया' सूत।
मन चंचल निहचल भया, भरम न कोई भूत ॥३८॥

॥ इति परचा को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ मन को अंग ॥

अधर नीर आकास मैं, राषै विरला कोइ।
मन पांणी 'मुषि' सबद कै, राष्यां ही सुष होइ ॥
राष्यां ही सुष होइ, हरि नांव मन कै मध धारै।
ब्रह्म अगनि 'परजलै', मन पारा यूँ मारै ॥
नीर पलटि पावक तवै, गत जन हरीदास पष दोइ।
अधर नीर आकास मैं, राषै विरला कोइ ॥१॥

×

पाठभेद—सलूधा-१। मुष-१। प्रजलै-१-५।

शब्दार्थ—पहली का पैडा तज्या=मायिक वस्तुओं को प्राप्त करने की प्रवृत्ति त्याग दी। उलझि=सांसारिक-बन्धनो मे उलझा हुआ मन। सलूभया=वासना-विहीन मन आत्माभिमुख हो सुलझ गया। अधर नीर आकास मैं=निराश्रय-वृत्ति प्रवाहरूपी पानी को दशमद्वार-ब्रह्मरन्ध्र मे कोई विरला ही रख सकता है। मन पाणी मुप सवद कै, राष्या ही सुष होइ=चञ्चलस्थितिमन पानी की तरह प्रत्येक वासना में बह जाता है, उसको गुरुमुष से निकले उपदेशमय शब्दों से रोक कर रखा जाय तभी अविनाशी सुख की प्राप्ति सम्भव है। ब्रह्म अगनि परजलै=व्यापक चेतन मे लय हुई वृत्ति से उत्पन्न ब्रह्माग्नि प्रज्वलित हो तभी। मन पारा यूं मारै=मन को इस प्रकार मारा जा सकता है-स्थिर बनाया जा सकता है।

मन कै वसि सव जीव है, मन वसि करै सो कोइ ।
जन हरीदास मन राज है, तहां राज विराजी होइ ॥
तहां राज विराजी होइ, नाच मन 'वहौत' नचावै ।
तवही घुमी उछाह, 'वहौड़ि' तवही दुष पावै ॥
रांम भजन का भै नहीं, पैंडा तजै न दोइ ।
मन कै वसि सव जीव है, मन वसि करै स कोइ ॥२॥

×

मन विसहर मुष पांच, आंषि अणगिणत तमासा ।
द्वादस डसण षट जीह, मोह वंबइ तहाँ वासा ॥
मोह वंवइ तहाँ वासा, पूँछ गहि 'च्यंता' तांणै ।
डंक भरै तहां जहर, जुगति कोइ जोगी जांणै ॥
जन हरीदास गुर ग्यांन जड़ी, ले गहि मुष कीलै आसा ।
मन विसहर मुष पांच, आँषि अणगिणत तमासा ॥३॥

×

'पांचू' इन्द्री 'सरप' मन, च्यंता जहर मुष लोइ ।
कील्या तव निरविष भया, डंक भरि सकै न कोइ ॥
डंक भरि सकै न कोइ, जुगति जांणै तव जागै ।
नाग दवणि हरि नांव, रहै मन का मुष आगै ॥

पाठभेद—बहुत–१ । बहुरि=१ । चिता–३-४ । पाचौ–१ । सर्प–१ ।

शब्दार्थ—राज विराजी होइ=चेतनात्मा मन की अनवस्था से अप्रसन्न होता है । तव ही=जब चाहे, क्षण-क्षण मे । दोइ=दो, सङ्कल्प-विकल्प । मन विसहर=मन-रूपी सर्प । मुष पाच=ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पांच मुखो से । आपि अणगिणत=वासनामय अपार आँखे है । द्वादश डसण=मन की बारहवाट है, वही उसके दाँत हैं । षट् जीह=काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष मे प्रवृत्तिरूपी छ जिह्वाए हैं । मोह वंवई तहा वासा=संसार का मोह वही उसकी बाँबी–बिल है, वही उसका निवास है । कील्या=मन्त्र मे जड (बाध) देना, गुरु-उपदेश मे अन्तर्मुख करना यही उसका बाँधना है । डक भरि सकं न कोइ=अब किसी के डङ्क नही भर सकता–काट नही सकता, विषयवासना मे नही लग सकता ।

जन हरीदास मन उनमनि लागा रहै, पवन सुरति संग दोइ ।
पांच इन्द्री मरप मन, च्यंता जहर सुप लोइ ॥४॥

×

जन हरीदास कहिये कहा, रूप गै 'ज्यूँ' मन धारै ।
काया बन मैं चरै, डरै नहि डहकि न हारै ॥
डरै नहि डहकिन हारै, चलै अपणी गै गोड़ै ।
सुर नर असुर अनंत, सुतौ तिणका ज्यूँ तोड़ै ॥
विवधि दांत धरि चूरि, सुतौ सब 'सिसटि' संघारै ।
जन हरीदास कहिये कहा, रूप गै ज्यूँ मन धारै ॥५॥

×

मन पंषी काया सुबन, 'डाली डाली' चाव ।
आँपि अनंत हित सुप अनंत, विवधि पंष 'बहौ' पांव ॥
विवधि पंष बहौ पांव, सुतौ सति सवद न माषै ।
हरि तरवर सुप अगम, विवधि तरवर फल चाषै ॥
जन हरीदास चंचल चपल, झूठ भरम तहाँ भाव ।
मन पंषी काया सुबन, डाली डाली चाव ॥६॥

×

पाठभेद--ज्यौं-१ । सिष्टि-१-५ । डारी-डारी-१ । बहु-१ ।

शब्दार्थ--पवन सुरति=प्राण तथा वृत्ति । गै ज्यूँ=हाथी की तरह । गै गौडे=मस्ती मे आए हुए हाथी की तरह । विवधि दात=नाना प्रकार के वासनारूपी दातो से । सिसटि=सृष्टि, संसार । डाली डाली=विविध विषयों मे प्रवृत्तिमय डाल-डाल पर । सति सवद=सत्यवाणी, आत्मचिन्तन । विवधि तरवर फल चापै=अनेक विषय-भोगरूपी फलों को चखता है ।

ज्यूँ मन फेरै त्यूँ फिरै, मन कूँ फेरै नांहि।
निवाला पूजा तकै, व्याह वाहरां जांहि ॥
व्याह वाहरां जांहि, पांहि 'अर' 'विक्रत' गावैं।
डीवी मांहि दिष्टि, अहै मिथ रूप कहावैं ॥
जन हरीदास ऐसा जती, हम देष्या कलि मांहि।
ज्यूँ मन फेरै त्यूँ फिरै, मन कूँ फेरै नांहि ॥७॥

×

नांव तुम्हारौ रांमजी, लेतां लगै न दाम।
मन निकमौ वैठो रहे, करै 'और' ही काम ॥
करै और ही काम, ग्यांन उरि अन्तरि नांहि।
हरि सुषसागर छाड़ि, वसै विष का वन मांहि ॥
जन हरीदास जामैं मरै, हरि सूँ इहै हरांम।
नांव तुम्हारो रांमजी, लेता लगै न दाम ॥८॥

॥ इति मन को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ माया को अंग ॥

एक वीज ताका विरछ, अनंत रूप 'वहौ' माइ।
ता तरवर का फूल मैं, सव 'को' रह्या समाइ ॥

पाठभेद—अरु-३-४। विकरत-१। अवर-१। वहु-१। कोइ-१।

शब्दार्थ—निवाला=अच्छे भोजन। पूजा तकै=सम्मान चाहे। व्याह वाहरा=विवाह, बारवां तथा द्वादशा। विक्रत गावै=भ्रम मे डालने वाले प्रवृत्तिमय उपदेश दे। डीवी माहि=पात्रपर, चढावे भेट की ओर। एक वीज=मूलप्रकृति।

सब को रह्या समाइ, 'वहौत' भूषा वहौ धाया।
ताही मैं उपजै षपै, आप ही आप वंधाया॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, तहाँ साध एक कोड जाइ।
एक वीज ताकां विरछ, अनंत रूप वहौ माइ॥१॥

×

माया दरषत जहरफल, अगम वार नहिं पार।
'च्यारि' षांणिका जीव सब, गरक फरक विसतार॥
गरक फरक विसतार, षुसी षेलै ता मांहि।
जन हरीदास हरि सुष अगम, तहां तै पहुंचे नांहि॥
षट् दरसण उड़ि उड़ि थक्या, विवधि पंष उरि भार।
माया दरषत जहरफल, अगम वार नहिं पार॥२॥

×

या अंजन 'सूँ' प्रीति है, तहां निरंजन दूरि।
अंजन भंजन होइगा, तहां काल भै पूरि॥
तहां काल भै पूरि, जनम ऐसा 'क्यू' हारै।
भी कौड़ी सूँ हेत, हाथ सूँ हीरा डारै॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, तजि मांन वड़ाई धूरि।
या अंजन सूँ प्रीति है, तहां निरंजन दूरि॥३॥

×

पाठभेद—बहुत-१। चारि-१। स्यूँ-१। क्यौ-१-३।

शब्दार्थ—च्यारि षांणि=चारो अण्डजादि योनियाँ। उड उड़ थक्या=नाना धर्मपन्थो की उड़ान उड़-उड़कर थक गये। विवधि पष=अनेक भिन्न-भिन्न सिद्धान्त-रूपी पङ्ख। या अजन सूँ=इस माया से। अंजन भंजन होइगा=जहाँ माया प्राप्ति का ही लक्ष्य होगा।

सकल वियापी सँगि वसैं, दुरचा देह की वोट ।
दूजा 'औगुण' को नहीं, या अंजन का पोट ।।
या अंजन का पोट, जागि जोगी जुध कीजै ।
ग्यांन पड़ग लै हाथि, रिण जीत काया गढ़ लीजै ।।
जन हरीदास हरि सुष तहां, जम करि सकैं न चोट ।
सकल वियापी सँगि वसैं, दुरचा देह की वोट ।।४।।

×

माता 'होइ' सेवा करैं, देह पलटि होइ नारि ।
पिता पलटि सो पूत होइ, देष्या सोच विचारि ।।
देष्या सोच विचारि, वात 'यह' का सूँ कहिये ।
आप आप सूँ जांणि, आप तैं न्यारा रहिये ।।
जन हरीदास हरि सुमिरतां, उरकरि लगै न गारि ।
माता होइ सेवा करैं, देह पलटि होइ नारि ।।५।।

×

।। अथ मन को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ चाणक को अंग ।।

तकत तकत तकि तकि थक्या, चलत चलत गया हारि ।
वकत वकत वकि वकि वक्या, मन कूँ सक्या न मारि ।।
मन कूँ सक्या न मारि, देह सुष दुरभष दारण ।
पारब्रह्म सुष दूरि, रह्या माया का कारण ।।

पाठभेद—अवगुण-१ । हुइ-२-४ । याह-१ ।

शब्दार्थ--दुरचा=छिपा । वोट=ओट, आड । दुरभष दारण=भयङ्कर दुःख, अति क्लेश ।

जन हरीदास हरि सुष अगम , तहां मन सक्या न धारि ।
तकत तकत तकि तकि थक्या , चलत चलत गया हारि ॥१॥

×

पढ़त पढ़त पढ़ि पढ़ि अपढ़ , अरथ करत भये अंध ।
हरि 'परहरि' चाल्या कुपहि , 'गल' मैं तैं दोइ फंध ॥
गल मैं तैं दोइ फंध , नांव नरहरि नहिं लीया ।
पारब्रह्म पति छाड़ि , 'और' नाना रस पीया ॥
जन हरीदास नर ना भजै , नाराइण निरस्यंध ।
पढ़त पढ़त पढ़ि पढ़ि अपढ़ , अरथ करत भये अंध ॥२॥

×

सुणत सुणत सुणि सुणि असुण , कथत कथत 'गए' कोड़ि ।
रहत रहत रहि रहि वह्या , पालि गया मन फोड़ि ॥
पालि गया मन फोड़ि , रांम भजि पार न कीया ।
काम क्रोध अभिमान , मोह माया मद पीया ॥
जन हरीदास हरि सुष अगम , तहां मन सक्या न जोड़ि ।
सुणत सुणत सुणि सुणि असुण , कथत कथत गए कोड़ि ॥३॥

×

एकादश गीता पढ़ी , अणभै अरथ अनेक ।
पैंडा दोइ दोइ करत है , बात करत है एक ॥
बात करत है एक , सुरति तहां लागी नांहि ।
परापरैं पति छाड़ि , धस्या ऊँडा जल मांहि ॥

पाठभेद—प्रहरि–१ । गलि–१ । अवर–१ । गये–२ ।

शब्दार्थ—धारि=लगा, स्थिर । अरथ करत=वाचक ज्ञानी, शब्दो के अर्थ कर-कर । गल मै तै दोइ फंध=मेरा-तेरा इस भेदभावना के गले मे दो फन्दे है । रहत रहत=माया के पदार्थो मे रह-रहकर । पालि=सीमा, बांध । पैंडा=मार्ग । दोइ दोइ=तेरा-मेरा । सुरति=वृत्ति । परापरैं=परब्रह्म । ऊँडा जल=संसारसागर मे ।

जन हरीदास नर बोलै दुरसि, वांणी विवधि वमेक।
एकादश गीता पढ़ी, अणभै अरथ अनेक ॥४॥

×

वैत इलम पढ़ि आरवी, सवका करै वयान।
भी फिरि दुनिया 'सूँ' मिलैं, इहै वड़ा हैरान ॥
इहै वड़ा हैरान, परम सुषि पहुँता नांहि।
आपा कै अस्थांन, वसै विष का वन मांहि ॥
जन हरीदास निरविष नहीं, चित मांही वित आंन।
वैत इलम पढ़ि आरवी, सवका करै वयान ॥५॥

×

च्यारि वेद 'चारयूँ' पढ्या, इलम आरवी आथि।
मन चंचल निहचल नहीं, तौ कछू न आया हाथि ॥
तौ कछू न आया हाथि, वात कहि व्यौरा दीया।
हरि 'सम्रथ' विचि वोट, जहर 'इंम्रत' करि पीया ॥
जन हरिदास कहिये कहा, नर मन सक्या न नाथि।
चारि वेद चारयूँ पढ्या, इलम आरवी आथि ॥६॥

×

पाठ पढ्या 'सुम्रत' सवै, इलम आरवी आथि।
कहिये त्यूँ रहिये नहीं, तौ कछू न आवै हाथि ॥
तौ कछू न आवै हाथि, अलष गति लषै न कोई।
पारब्रह्म पति छाड़ि, अवधि षर ज्यूँ नर षोई ॥

पाठभेद—स्यूँ–१। चारचौ–१-५। समरथ–१। इमरित–१। सुमिरत–१।

शब्दार्थ--दुरसि=बुरी, अप्रिय। इलम=विद्या। आरवी=अरबी, कुरान। वयान=वर्णन। आपा=गर्व, अहङ्कार। वित आन=दूसरा धन, भौतिक सम्पति। व्यौरा=जानकारी, वर्णन। नाथि=वश मे करना। सुम्रत=याद करते, चिन्तन करते। षर=गधा।

जन हरीदास कहिये कहा, मन वसै विडांणै साथि।
पाठ पढ्या सुम्रत सवै, इलम आरवी आथि ॥७॥

×

सव 'सुम्रत' श्रवणां सुण्यां, सव देष्या औगाहि।
भरथर सत के सवद का, अरथ करै वहौ भाइ॥
अरथ करै वहौ भाइ, अरथ अनभै सव जांणै।
अगम निगम दिष्टांत, कथा मैं 'परसंग' आंणै॥
जन हरीदास 'औगण' इहै, त्रिवधि ताप तन ताहि।
सव सुम्रत श्रवणां सुण्यां, सव देष्या औगाहि ॥८॥

×

स्वामीं तौ वैठा सही, मांनि छांनि की छांहि।
मांनि छांनि उड़ जाइगा, जव जम पकड़ै वांहि॥
जव जम पकड़ै वांहि, पकड़ि धरती सूँ मारै।
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, नर कौंण दरवारि पुकारै॥
माया ठगि ठगि षात है, यौं मति जांणें षांहि।
स्वामी तौ वैठा सही, मांनि छांनि की छांहि ॥९॥

×

जन हरीदास सवको सुषी, राग दोस रस हाथि।
अरस परस होइ मिलि रह्या, गुण इंद्र्या कै साथि॥
गुण इंद्र्या कै साथि, जहर 'इंम्रत' करि पीवै।
साधां वरजी वात, तहां ही लागा जीवै॥

पाठभेद—सुमरत-१। समृत-३। प्रसंग-१। अवगुण-१। इमरित-१।

शब्दार्थ—औगाहि=छानबीन कर। भरथर सत=भर्तृहरिशतक। परसग आणैं=प्रकरण लावे, दृष्टान्त दे। त्रिवधि ताप=आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। मानि छानि की छांहि=गर्व के छप्पर की छाया मे। यौ मति जांणैं षाहि=ऐसा मत समझ कि ये छल करते है। जहर=विषयभोगरूपी विष। साधां वरजो=महात्माओ ने जिसके लिए मना किया।

कोइ जन जाग्या सो जांणसी, रांम नाम निज आथि।
जन हरीदास सब को सुषी, राग दोस रस हाथि ॥१०॥

×

भेष पहरि भांडी करी, हारि जीत 'सूँ' हेत।
अरस परस वाइक जहर, 'यूँ' लाडू करि लेत॥
यूँ लाडू करि लेत, हेत रस बांटैं भारी।
अधिक प्रीति 'परवेस', मिलैं ज्यूँ स्वांन मँजारी।
जन हरीदास कहिये कहा, चेतै नहीं अचेत॥
भेष पहरि भांडी करी, हारि जीत सूँ हेत ॥११॥

×

लोगां सेतीं प्रीति, साध देष्यां दुष पावै।
विरकत दीसैं दूरि, इहै मोहि अचिरज आवै॥
इहै मोहि अचिरज आवै, जहर दारण दुष दाषै।
नीसांणां की बात, मूँठि दुविध्या मैं राषै॥
जन हरीदास 'औगण' इहै, आप का औगण छावै।
लोगां सेती प्रीति, साध देष्यां दुष पावै ॥१२॥

×

तामस गुण रस वैरता, राजस रस अभिमांन।
स्वातिग रस गुण लुड़षड़ी, तहां जीव तोड़ै तांन॥

पाठभेद—यौ-१। प्रवेस-५। अवगुण-१।

शब्दार्थ—निज आथि=असली धन। भांडी करी=भांडपणा किया, दिखावट मे ही रहा। वाइक=वाक्य, शब्द। यूँ लाडूकर लेत=अपने दिखावटीपन को भी महत्व का मान लेना। औगण छावै=अपने अवगुण छिपावे। रस वैरता=तम का गुण क्रोध। राजस रस अभिमान=रजोगुण का रस अहङ्कार। लुडषड़ी=मीठा बोलना।

तहां जीव तोड़ै तांन, घर स चौथा नहिं पाया।
भेष धरया धरि छिप्या, जीव जीवाँ की छाया॥
जन हरीदास कहिये कहा, कहि कौंण न पूजै आन।
तामस गुण रस वैरता, राजस रस अभिमांन॥१३॥

×

स्वादी सूँ स्वादी मिलै, जहां समझि तहां साच।
मांनि अमांनि मै तैं मनी, स्वाद नचावै नाच॥
स्वाद नचावै नाच, पांच इन्द्री रस पीवै।
जहां जीव का वास, तहां ही लागा जीवै॥
जन हरीदास हरि स्वाद तजि, कूँण गहै करि काच।
स्वादी सूँ स्वादी मिलै, जहां समझि तहां साच॥१४॥

×

ऊपर वाड़ै सेरियां, कहै पीव सूँ प्रीति।
'याह' वातां सहि परसि करि, कौंण गया जुग जीति॥
कौंण गया जुग जीति, रांम सुष लहै न क्यूँ ही।
साषी सवद अरथ, कहै कहि ज्यूँ का त्यूँ ही॥
जन हरीदास औगण इहै, रजा आंन रस रीति।
ऊपर वाड़ै सेरियां, कहै पीव सूँ प्रीति॥१५॥

×

पषा पषी सवकौ मिलै, जहर भरया मुष नाग।
जन हरीदास वोल्यां विगति, कहां कोइल कहां काग॥

पाठभेद—यह–१।

शब्दार्थ—स्वादी सूँ=सांसारिक पदार्थों को चाहने वाले से। समझि=तत्व-ज्ञान। साच=सत्य, निर्गुण तत्व। तहां ही=उसी मे, वही। सेरिया=गलियाँ, रास्ते। याह वातां=इन दिखावटी बातो से। रजा=आज्ञा, हुक्म। पषा पषी=अपने-अपने पक्षधर्म को लेकर।

कहां कोइल कहां काग, भेष भी व्यौरा भारी।
वाह अचवै रस आंब, काग करकां विभचारी ॥
वरण छाड़ि अवरण भजै, ताकै 'मसतगि' भाग।
पषा पषी सब कौ मिलै, जहर भरया मुष नाग ॥१६॥

भूलि गया भांडी करी, परम सनेही रांम।
जहां तहां तैं जीव सब, न्याइ सहै सिर घांम ॥
न्याइ सहै सिर घांम, नाँव निरभै नहि पाया।
सूक 'त्रिछ' सूँ प्रीति, अगम हरि तरवर छाया ॥
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, कदे न नर निहकाम।
भूलि गया भांडी करी, परम सनेही रांम ॥१७॥

॥ इति चाणक को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कामी नर को अंग ॥

काम गयंद गरजत फिरै, पवन धजा फहराइ।
जा जा घटि संचर करै, सो काम रूप 'व्है' जाइ ॥
सो काम रूप व्है जाइ, संक काहू की नहिं मानै।
'वसती' मांहि उजाड़, कोस द्वादस की जानै ॥
जन हरीदास गति मति हरै, बुधि बल कछु न बसाइ।
काम गयंद गरजत फिरै, पवन धजा फहराइ ॥१॥

×

पाठभेद—मस्तगि–१-३। त्रिष–१। होइ–५। वस्ती–१-५।

शब्दार्थ—वरण छाडि=सगुण तज। ता कै मसतगि भाग=उसके उत्तम भाग्य है। सर घाम=त्रिविध-सताप सहना। सूक त्रिछ=संसारसुख सूखे वृक्ष वत् है। हरि वर छाया=चेतनरूपी वृक्ष की सवदा सुखदायी छाया है। काम गयंद=कामरूपी क=शका, मर्यादा। उजाड=सूनापन, निर्जन।

ग्यांन तषत तैं ऊतरया, झुक्या झरोषै आइ।
देषि मगन मन मोहनी, पीछै लागा 'धाइ'॥
पीछै लागा धाइ, चोरि चंचल चित लीया।
संकर तैं कोइ सबल, काम अपणै वसि कीया॥
जन हरीदास कहिये कहा, बहौत भांति करि षाइ।
ग्यांन तषत तैं ऊतरया, झुक्या झरोषै आइ॥२॥

×

घटत घटत सब यूँ घट्या, ज्यूँ किसांण का लौह।
जन हरीदास जीव करत है, आप आपणां दौह॥
आप आपणां दौह, दुषस दारण तहां जीवै।
पारब्रह्म पति छाड़ि, 'और' नाना रस पीवै॥
साच सबद श्रवणां सुणै, तब उरि प्रगटै छोह।
घटत घटत सब यूँ घट्या, ज्यूँ किसांण का लौह॥३॥

×

जन हरीदास संसार सुष, लौह 'अगनि' की प्रीति।
लौह घटै कोइला जलै, दहूँ अँगा याह रीति॥
दहूँ अँगा याह रीति, कहा पुरस कहा नारी।
क्रोध अगनि 'परजलै', धवणि दोइ दुष सुष भारी॥
मोह लुहार मैं तैं सु 'घण', विथा गई वप जीति।
जन हरीदास संसार सुष, लौह अगनि की प्रीति॥४॥

×

पाठभेद—अवर-१। अग्नि-१। प्रजलै-१। घन-३-४।

शब्दार्थ—झुक्या झरोषै आइ=कामप्रवृत्ति मे प्रवृत्त होना। ज्यूँ किसाणां का लौह=जैसे किसान के हल का फाल घिसता रहता है। दौह=द्रोह, वैर। दुषस दारण=वासना की अपूर्तिजन्य अत्यन्त दु.ख सहता है। छोह=क्रोध। संसार सुष=बिषयभोग का सुख। धवणि=धौकनी। मै तै सुघड़=मेरा-तेरा का भेदरूपी घन। वप=शरीर, देह।

नारी कै पषि नर वँध्या, ग्यांन परां पष नास।
फिरि देषै आकास कूँ, मी उड़णैं की आस॥
भो उड़णैं की आस, 'सकति' उड़णैं को नांहि।
धरचो धरचा सूँ हेत, विवधि 'चिंता' घट मांहि॥
जन हरिदास नर जामै मरै, जलि थलि जहां तहां वास।
नारी कै पषि नर वँध्या, ग्यांन परां पष नास॥५॥

×

जन हरीदास नारी नरां, मोटी विथा विकार।
रूप दीप सुर नर पतंग, जल वलि तन मन छार॥
जलि वलि तन मन छार, अंति 'दोन्यूँ' पष छीजै।
काम करद कर कुवुधि कै, जिवह किया कै कीजै॥
एक दुरन कूँ वोट है, रांम नाम ततसार।
जण हरीदास नारी नरां, मोटी विथा विकार॥६॥

×

रांम स वन मैं छल्या, अकलि ब्रह्मा की षोवण।
पारासुर तपहरण, मुचकंद सिसपाल विगोवण॥
मुचकंद सिसपाल विगोवण, गरव लंका गढ़ हारण।
रांवण सैन्या मारि, नरकि नरकासुर डारण॥

पाठभेद—सक्ति-३-५। च्यंता-२। दोन्यौ-१।

शब्दार्थ—पषि=पक्ष मे, साथ। ग्यान परां=ज्ञानरूपी पङ्ख। धरचो धरचा सूँ हेत=नाशवान भौतिक-पदार्थों से प्रेम। मोटी विथा=बड़ी पीड़ा। रूप दीप=स्त्री के मोहकरूपरूपी दीप मे। काम करद=कामरूपी छुरी। जिवह=कत्ल, संहार। विगोवण=डुबोने वाला।

जन हरीदास नारी सरूप, 'परमगति' उरतैं धोवण।
रांम स वन मैं छल्या, अकलि व्रह्मा की षोवण ॥७॥

×

जदपि 'मछिंदर' मन डिग्या, देषि नाटक घट नारी।
राजा जत जतन करत, धूंत्यो धूतारी ॥
धूत्यौ धूतारी, काम वसि तौ मति काची।
पकड़ि नचायो कान्ह, साथि महियारी नाची ॥
जन हरीदास तनु ठग्या, देह जव गंगा धारी।
जदपि मछिंदर मन डिग्यो, देषि नाटिक घट नारी ॥८॥

×

दुस्सासण की भुजा, लात दै उरां उपाड़ी।
पांडौ लै पैठी हेम, 'सेनि' कैरवाँ सँघारी ॥
सेनि कैरवाँ संघारी, चिरत एक और बणाया।
जन हरीदास दसरथ सुत, सो रांमचंद्र वनवास पठाया ॥
सींगी रिषि वन मांहि ठगि, साथ लै चली ठगारी।
दुस्सासण की भुजा, लात दै उरां उपाड़ी ॥९॥

॥ इति कामी नर को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—प्रमगति-१। मछिंद्र-१। सेन्य-२।

शब्दार्थ—परम गति=मुक्तिमार्ग की इच्छा। उर तै धोवण=हृदय से धो देना, निकाल देना। डिग्या=झुका, लड़खड़ाया। राजा=भर्तृहरि। धूत्यौ=ठगा। धूतारी=ठगनी। महियारी=स्त्रियाँ, गोपियाँ। शंतनु=राजा शान्तनु। उरां=छाती पर। हेम=हिमालय में।

।। अथ भरम-विधूंस को अंग ।।

पुरस नारि मैं तैं नहीं, नहि पासा नहिं सारि ।
उाव नहीं चौपड़ि नहीं, नहीं जीति नहिं हार ।।
नहीं जीति नहिं हार, इहै मोहि 'इचरज' आवै ।
नहीं काल नहि जाल, कौण जमलोक पठावै ।।
जन हरीदास जीव तुलत है, आप आपणौं भारि ।
पुरस नहीं मैं तैं नहीं, नहिं पासा नहि सारि ।।१।।

×

ऊँच नीच निरभै मतै, कोई 'परसो' पाँव ।
ता करि तैसा फल चढ़ै, जाकै जैसा भाव ।।
जाकै जैसा भाव, तिसै सुष जाइ समावै ।
गुण धरि माया सूँ मिलै, निरगुण निरभै पद पावै ।।
जन हरीदास षेलौ कहूँ, दहूं अँगा यहु 'दाव' ।
ऊँच नीच निरभै मतै, कोई परसो पाँव ।।२।।

×

मेरे हिरदै मँड रह्या, निरगुण जस विसतार ।
माई मूँडूँ आन की, लार उड़ाऊँ छार ।।
लार उड़ाऊँ छार, भार सिरि सह्या न जाई ।
भजि करणहार करतार, छाड़ि दूजा दुषदाई ।।

पाठभेद—अचिरज-५ । अचरिज-१ । प्रसो-१ । डाव-५ ।

शब्दार्थ— डाव=दांव, मौका । इचरज=आश्चर्य । तुलत है=तुलना, समानता करना । आपणै भाइ=अपने अहङ्कार के अनुसार । परसो=स्पर्श करो, उसमे लगो । गुण धरि=सगुण उपासना, सकाम कर्म । दहु अँगा=दोनो ओर, ऊँच नीच मे । आन की=और की । छार=राख ।

जन हरीदास काचा 'इसट', ले जाई काली धार ।
मेरे हिरदै मँड रह्या, निरगुण जस विसतार ॥३॥

॥ इति भरम विधूंस को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ उपदेश को अंग ॥

अवधि घटै ग्रासै जुरा, काल पहूँता आइ ।
रांम भजो विषिया तजो, जनम अमोलिक जाइ ॥
जनम अमोलिक जाइ, जीव जाणैं तौ जांणी ।
हरि सुमिरण उर धारि, आन उरि इसट न आंणी ॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, फेरि तहां मन लाइ ।
अवधि घटै ग्रासै जुरा, काल पहूँता आइ ॥१॥

×

मन सज्जन एक वात, घात या तुम्ह सूँ कहिये ।
तजि कांम क्रोध अभिमांन, रांम राषै 'तहां' रहिये ॥
रांम राषै तहां रहिये, सिर जुरा मरण जमचोट न लागै ।
आतम कै 'असथान', जोग जरणां ले जागै ॥
जन हरीदास निरभै 'वसत', अगाहि अभिअंतरि लहिये ।
मन सज्जन एक वात, घात या तुम्ह सूँ कहिये ॥२॥

×

पाठभेद—इष्ट–१-५ । त्यूं–३ । अस्थांन–१-५ ।

शब्दार्थ—काचा इसट=कामनामय उपासना । घात=ताक, मौका । आतम कै असथान=अधिष्ठानचेतन, व्यापक ब्रह्म । जोग=योगसाधन से । जरणां=सहनशीलता । निरभै वसत=कालभय से रहित चेतनतत्व ।

गरव छाड़ि गोव्यंद भजौ, भूलि पड़ौ मति कोइ ।
जन हरीदास हरि सी 'वसत', भूलां भली न होइ ॥
भूलां भली न होइ, फुनिग मणि विणि क्यूँ जीवै ।
जहर पियाला कहर, हाथ अपणौं नर पीवै ।
उरि अंतरि कांटा अहूं, ग्यांन निजर लै षोइ ।
गरव छाड़ि गोव्यंद भजौ, भूलि पड़ौ मति कोइ ॥३॥

×

आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ ।
आप आप कूँ छाड़ि करि, आप आप तहां जाइ ॥
आप आप तहां जाइ, रांम निरभै सुष जांणौं ।
ता सुषि रहै समाइ, आंन उरि 'इसट' न आंणौं ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, मैं तैं मोह चुकाइ ।
आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ ॥४॥

×

जन हरीदास सिर कै सटै, कोई स्यौदा ल्यौह ।
सिर सौंप्यौ संसार कूँ, 'यहु' साहब कूँ द्यौह ॥
यहु साहब कूँ द्यौह, मूल योहीं मत साचा ।
रांम अषंडित गाइ, गहौ सतगुर की वाचा ॥

पाठभेद—वस्त–५ । इष्ट–१-५ । इहु–२ ।

शब्दार्थ—फुनिग=फणिसर्प । कहर=काल । काटा अहुं=अहङ्काररूपी शूल । आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षांहि=मन ही मन को मारकर चञ्चलता हटा उसके कालुष्य काट देता है । आप आपकौ छाडि करि, आप आप तहां जाइ= मन अपने देहाध्यास को त्याग अपने आधार चेतनतत्व मे समाहित हो जाता हैं । स्यौदा लेहु=वस्तु खरीदो, विणज करो । सिर सौप्यौं=सिर सौप, उस विषयवासना मे अपने को लगाया । यहु साहब कूँ द्यौह=यह जीवन परमपिता को अर्पण करो । वाचा= वाणी, उपदेश ।

मदन मोह मैं तैं तजौ, एक भला मत यौह।
जन हरीदास सिर कै सटै, कोई स्यौदा ल्यौह ॥५॥

×

जन हरीदास रचि मा विरचि, नांव निरंजन लेह।
जा सूँ तूँ अपनी कहै, सो तौ दूजी देह ॥
सो तौ दूजी देह, झूठ सूँ नेह न कीजै।
उलटा गौता मारि, अगम अनहद रस पीजै॥
पांच तत्त तत्ता मिलै, दुरे देषतां देह।
जन हरीदास रचि मा विरचि, नांव निरंजन लेह ॥६॥

×

'जो' तूँ चाहे मुझ्झ कूँ, तौ आंन न धरि उर भाव।
मैं मारथा मै मिलूँगा, मैं न्यारी धरि आव ॥
मैं न्यारी धरि आव, जागि देषै नहिं लोई।
अरस परस रस 'एक', 'और' संचर नहिं कोई ॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, ए पासा ए डाव।
जो तूँ चाहे मुझ्झ कूँ, तौ आंन न धरि उरि भाव ॥७॥

×

आंन वोट ऊभा अजूँ, सकै तौ पड़दा डालि।
साहिब कै पड़दा नहीं, तूँ अपणी वोट सँभालि ॥

पाठभेद—जे-१। येक-२। अवर-१।

शब्दार्थ—मदन=काम। रचिमा विरचि=रचितसृष्टि के पदार्थों मे आसक्त मत हो। जासूँ तू=जिस काम को तू। झूठ सूँ=असत्य से, नाशवान पदार्थ से। पांच तत्त तत्ता मिलै=यह पाँच तत्वो का शरीर अन्त मे अपने-अपने तत्वो मे ही मिल जाता है। आंन न धरि=और का मत न अपना। मै मारचा=अहङ्कार को मारने से। मै मिलूँगा=आत्मतत्व प्राप्त होगा। सचर, नहिं=संचार नही, प्रवेश का मार्ग नही। आन वोट=वासना का सहारा, देवी-देवताओं की आड।

तूँ अपणी वोट सँभालि, जागि नर जागि न सोई।
नर नाराइण देह, रांम विनि वादि न षोई॥
जन हरीदास अंतरि अगहि, अगम 'वसत' सोइ भालि।
आंन वोट ऊभा अजूँ, सकै तौ पड़दा डालि॥८॥

×

जहां जीव तहां जोर है, जोर जीव कै साथि।
सहर मांहि वाजी मँडी, षाली पासा हाथि॥
षाली पासा हाथि, साथि सव षोटा साथि।
कांम क्रोध अभिमांन, मोह मद वहता हाथि॥
जन हरीदास गोव्यंद भजौ, हरि निरभै निज आथि।
जहां जीव तहां जोर है, जोर जीव कै साथि॥९॥

×

वैर विरषि हिरदै वसै, दिन दिन वधतौ जाइ।
या वेदन कूँ हरि जड़ी, लाइ सकै तौ लाइ॥
लाइ सकै तौ लाइ, रोग कोइ रहण न पावै।
जन हरीदास तजि आंन, रांम भजि रांमहि गावै॥
अरि तरवर सींचै जिकौ, तिको जहर फल षाइ।
वैर विरष हिरदै वसै, दिन दिन वधतौ जाइ॥१०॥

×

पाठभेद—वस्त–१-५।

शब्दार्थ—वादि न=व्यर्थ ही। भालि=भली है, देख। जहा जीव=जिस ओर प्रवृत्ति है। सहर माहि=कायानगर मे। षोटा साथि=झूठे मित्र, आसुरी सम्पत्ति के हिसा, क्रोध, अज्ञानादि। वैर विरषि=ईर्ष्यारूपी वृक्ष। अरि तरवर=शत्रुरूपी वासना के वृक्ष को।

भलै मतै बुधि ऊपजै, बुरै मतै बुधि जाइ।
भलै मतै गोव्यंद भजै, बुरै मतै विष षाइ॥
बुरै मतै विष षाइ, पाप का तरवर बोवै।
रांम नाम व्रत छाड़ि, काल कै घर मैं सोवै॥
जन हरीदास या जीव 'व्रति', चलत देह कै भाइ।
भलै मतै बुधि ऊपजै, बुरै मतै बुधि जाइ॥११॥

×

धनि माता मैंणावती, पुत्र किया 'दरवेस'।
निज बुधि ग्यांन बताइ करि, असलि दिया उपदेस॥
असलि दिया उपदेस, काल पै प्रांण छुड़ाया।
'भौ' सागर तैं काढ़ि, नाथ का चरणां लाया॥
गोपीचंद निरभै भया, मिटि गया मोह अँदेस।
धनि माता मैंणावती, पुत्र किया दरवेस॥१२॥

॥ इति उपदेस को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ समरथाई को अंग ॥

जहां जल तहां हरि थल करै, थल तहाँ फिरि जल होइ।
कुदरति तेरी बापजी, गति मति लषै न कोइ॥
गति मति लषै न कोइ, रांम तुम्ह सब कै दाता।
जीव हरांमी षोर, अहुं माया मदमाता॥

पाठभेद—वृत्ति-१-५। द्रवेस-१। भव-१।

शब्दार्थ—भलै मतै=अच्छे विचार, सद्भावना। व्रति=वृत्ति, भावना। दरवेस=फकीर, त्यागी। मोह अँदेस=ममतासशय। थल करै=भूमि कर दे। अहुं=अहङ्कार। मदमाता=गर्व मे उन्मत्त।

जन हरीदास हरि परसतां, गहर विथा गत दोइ।
जहाँ जल तहाँ हरि थल करै, थल तहाँ फिरि जल होइ ॥१॥

×

जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूं, मैं राषै तहाँ नांहि।
मैं राषै तहाँ मैं रहूं, तौ मैं बूड़ा मांहि ॥
तौ मैं बूड़ा मांहि, नाथ याह तुम्ह सूँ कहिये।
पारब्रह्म पति छाड़ि, आन मारगि क्यूँ वहिये ॥
जन हरीदास 'गोव्यंद' विमुष, भौंदू भूला जांहि।
जहाँ हरि राषै तहाँ मैं रहूँ, मैं राषै तहाँ नांहि ॥२॥

×

कहा अमाप का मापिये, वार पार मधि नांहि।
सकल वियापी सँगि वसै, ताहि छाड़ि मति जांहि ॥
ताहि छाड़ि मति जाहि, रोग मैं भोग न लोई।
अरस परस मिलि षेलि, पार नहिं पावै कोई ॥
जन हरीदास अवगति अगम, जहाँ तहाँ सव मांहि।
कहा अमाप का मापिये, वार पार मधि नांहि ॥३॥

×

रांम रजा गिरि सर सरूँ, सर तहाँ फिरि गिरि होइ।
रंक राव राजा सु रंक, उलट पलट पष दोइ ॥

पाठभेद—गोविन्द–३-४।

पाठभेद—गहर=गम्भीर। गत दोइ=जन्ममरणगत–समाप्त हो गए। मै राषै=अहङ्कार के अनुसार। वूडा=डूबा। भौदू=बेवकूफ, अज्ञानी। वार पार मधि=आदि, अन्त, मध्य। रोग मैं भोग न लोई=हे भाई! संसार के सुखरूप रोग के भोग मे मत लगो। रजा=निर्देश, आज्ञा। सर=सरोवर। सरूँ=नदी।

उलट पलट पष दोइ, नांव करता तौ करसी।
षाली भरै भंडार, भरया षाली करि धरसी॥
जन हरीदास उदवुद कथा, ऐसा समथ सोइ।
रांम रजा गिरि सर सरूँ, सर तहाँ फिरि गिरि होइ॥४॥

×

अरि भंजन अनरथ हरण, 'गरव' हरण गोपाल।
जन हरीदास अकरण करण, हरि अकल सकल विसपाल॥
हरि अकल सकल विसपाल, नाथ निरभै निरधारं।
निराकार निरलेप, वार नहिं लाभै पारं॥
मन चंचल निहचल तहाँ, जम का लगै न जाल।
अरि भंजन अनरथ हरण, गरव हरण गोपाल॥५॥

×

वात नाथ कै हाथि है, करता करै सो होइ।
जन हरीदास गोव्यंद विमुष, सदगति सुण्यां न कोइ॥
सदगति सुण्यां न कोइ, जीव सींव कहा जांणै।
हरि आप आपणां ग्यांन, नांव दै नैंड़ा आंणै॥
हरिजन हरिदास राषै तहाँ, जहाँ दषल नहिं कोइ।
वात नाथ कै हाथि है, करता करै सो होइ॥६॥

×

जन हरीदास हरि अगम है, 'पहुंचै' विरला कोइ।
साहिवजी की वंदगी, साहिव ही तैं होइ॥

पाठभेद—ग्रव-१। पहौचै-५।

शब्दार्थ—धरसो=धरेगा, रखेगा। उदवुद=अद्भुत। अरि भजन=मोहादि शत्रु-नाशक। विसपाल=विश्वपाल, जगतरक्षक। सद्गति=श्रेष्ठगति, मुक्तदशा। सीव=परब्रह्म। नैणा आंणै=समीप लावे। वंदगी=सेवा, उपासना।

साहिव ही तैं होइ, मैल हरि मन का धोवै।
पूरणब्रह्म अगाध, करम कांटा सव षोवै॥
अधर निड़र निरभै 'नृगुण', तहाँ मन लगै न लोइ।
जन हरीदास हरि अगम है, पहुँचै विरला कोइ॥७॥

॥ इति समथाई को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साध को अंग ॥

तब थी सो मति अब नहीं, तब 'तौटा' अव लाह।
दोषी सव सोषी भया, चौर भया सव साह॥
चौर भया सव साह, साच लैं सौदै लागा।
भजैं निरंजन देव, आंन अनरथ अरि भागा॥
जन हरीदास हरि सुमिरतां, सव घरि सदा उछाह।
तब थी सो मति अब नहीं, तब तौटा अब लाह॥१॥

×

राग दोष हिरदै नहीं, कर सूँ करै न चोट।
'मुष' 'मथ्या' वोलै नहीं, श्रवणां सुणैं न षोट॥
श्रवणां सुणैं न षोट, नांव निरभै सुष पाया।
ता सुषि रह्या समाइ, छाड़ि सव छोटी छाया॥

पाठभेद—निरगुण-१। टोटा-१। मुषि-५। मिथ्या-३-४।

शब्दार्थ—करम काटा=संचितादि कर्मों के शूल। लगै न=प्रवृत्त नही, लगे नही। :तौटा=नुकसान, घाटा। लाह=लाभ, मुनाफा। दोषी=अपराधी, मन, बुद्धि, वृत्ति आदि। सोषी=सुखी। उछाह=उत्साह, उमङ्ग। दोष=द्वेष। कर सूँ=हाथ से। चोट=प्रहार, आघात। मथ्या=झूठ। षोट=दोष, निन्दा। छोटी छाया=माया की छाया।

जन हरीदास हरि सुमिरतां, दुरी आंन सब वोट।
राग दोष हिरदै नहीं, कर सूँ करै न चोट ॥२॥

॥ इति साध को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साच को अंग ॥

साच सबद हीरा षरा, राषै विरला कोइ।
पष पाड़ा लागै नहीं, सो फिरि हीरा होइ॥
सो फिरि हीरा होइ, सीस कै साटै लीजै।
जन हरीदास भीं 'वहोड़ि', कांम हीरा का कीजै॥
जैसा किसव तैसा उतन, छाप पड़ै नर लोइ।
साच सबद हीरा षरा, राषै विरला कोइ ॥१॥

॥ इति साच को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ विरकताई को अंग ॥

सील सज्या निरगुण दसा, अंतरि अति अणराग।
जन हरीदास निज निरषतां, वड़ी 'ल्हूस' वैराग॥
वड़ी ल्हूस वैराग, निजर जो नित तत आवै।
सनमुषि देषै सांच, ग्यांन गैवर चढ़ि ध्यावै॥

पाठभेद—वहुड़ि-१। लहूस-५।

शब्दार्थ—दुरी=छिपी, दूर हुई। पष पाडा=झूठे पक्ष मे। किसव=काम। उतन=यत्न, उपाय। छाप=प्रभाव, असर। सज्या=शय्या, सजावट। अणराग=अनासक्ति, वैराग्य। ल्हूस=उमङ्ग। गैवर=हाथी।

थाघै समंद अथाह, अगम का हीरा ल्यावै।
'परषि' परषि निज पारषू, हीरा उन हीरां जिसा ॥
प्रापति व्है तौ पाइये, सील सज्या निरगुण दसा ॥१॥

॥ इति विरकताई को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवैरता को अंग ॥

आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ।
आप आपणां नास करि, न्याइ रसातलि जाइ ॥
न्याइ रसातलि जाइ, आप कूँ आप सतावै।
काच महल वसि स्वांन, डसै डसि डसण गमावै ॥
जन हरीदास सब आतमा, एक रूप वहौ भाइ।
आप आप कूँ मारि करि, आप आप कूँ षाइ ॥१॥

॥ इति निरवैरता को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सूरातन को अंग ॥

सूर वीर साचै मतै, साचा रोपै पाँव।
पैला अरि दल जीति करि, रांम भजन सूँ भाव ॥
रांम भजन सूँ भाव, भेद कोइ विरला जांणै।
गंग जमन मधि पैसि, पांच पाइक पड़ि तांणै ॥

पाठभेद—प्रषि-१।

शब्दार्थ—थाघै=थाह ले। स्वांन=कुत्ता। डसै=काटे। डसण=दांत। गंग जमन मधि पैसि=सुषुम्नामे वृत्तिको आरूढ़ कर। पाच पाइक=पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। पड़ि तांणै=परीक्षा करे, टटोले।

जन हरीदास साचै मतै, रमै स सांचा डाव।
सूर वीर साचै मतै, साचा रोपै पाँव ॥

॥ इति सूरातन को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ भेष को अंग ॥

कालरि वाहै षेत, साह की पूँजी षोवै।
भेष धरयां भी भरम, परम गति जागि न जोवै ॥
परम गति जागि न जोवै, षुसी षेलै ता मांहि।
चित मांही वित विपति, नांव 'नाराइण' नांहि ॥
जन हरीदास मसि करि लगी, वहौड़ि मसी सूँ मसि धोवै।
कालरि वाहै षेत, साह की पूँजी षोवै ॥१॥

॥ इति भेष को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निगुणा को अंग ॥

'औगण' ग्राही जीव की, सुणौ संत एक वात।
गुण छाड़ै औगुण गहै, तजि 'इंम्रत' विष षात ॥
तजि इंम्रत विष षात, नांव हिरदै नहिं धारै।
कुवधि काच करि गहे, हाथ 'सूँ' हीरा डारै ॥

पाठभेद--नारायण-१। अवगुण-१। इमरत-१। तैं-१।

शब्दार्थ--कालरि=दलदल भूमि, खारडा। भरम=संशय। वित विपति=दु:ख देनेवाले भोगों की चाह। मसि=स्याही, अज्ञानकालिमा। गुण छाड़ै औगुण गहै=दैवी-सम्पदा के गुण छोडता है और आसुरीसम्पदा के अवगुण ग्रहण करता है। कुवधि काच कूं करि गहै=प्रवृत्तिरूपी शीशा को ग्रहण करता है।

जन हरीदास आठूँ पहर, चढ़ै ऊतरै घात।
औगुण ग्राही जीव की, सुणौ संत एक बात ॥१॥

×

चंदन वृच्छ उपाड़ि, जहर तरवर जड़ राषै।
पारब्रह्म पति छाड़ि, विवधि वांणी नर भाषै॥
विवधि वांणी नर भाषै, षेप घरि आई षोवै।
ग्यांन सिंघासणि छाड़ि, सूल सज्या सुष सोवै॥
जन हरीदास हरि सुष अगम, दुषस दारण सुष दाषै।
चंदन वृच्छ उपाड़ि, जहर तरवर जड़ राषै ॥२॥

॥ इति निगुणा को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ हैरान को अंग ॥

कहत कहत कहि कहि अकहि, सुणत सुणत सुष सार।
लहत लहत लहि लहि अलहि, अगम वार नहिं पार॥
अगम वार नहि पार, नांव कछु धरया न जाई।
निराकार निज सार, साध 'परसै' सुषदाई॥
जन हरीदास अरचित अरत, हरि सम्रथ सिरजनहार।
कहत कहत कहि कहि अकहि, सुणत सुणत सुष सार ॥१॥

॥ इति हैरान को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—प्रसै-१।

शब्दार्थ—चंदन वृच्छ उपाड़ि=आत्मतत्व की प्राप्तिरूप साधना के चन्दन वृक्ष को उखाड़ रहा है। षेप घरि आई षोवै=मनुष्यशरीर की प्राप्तिरूप अमूल्यधन को व्यर्थ खो रहा है। दुष स दारण=कठिन दुःखो को। सुष दाषै=सुख समझता है, सुख कहता है।

॥ अथ हेतप्रीति को अंग ॥

मेरा मन हरि सूँ लग्या, हरि मेरा मन मांहि।
मैं हरि 'कूँ' छाड़ूँ नहीं, हरि मोहि छाड़ै नांहि॥
हरि मोहि छाड़ै नांहि, हरि आप कूँ आप बतावै।
निराकार निरलेप, साध कूँ पैंडे लावै॥
जन हरीदास हरि 'सुमिरतां', जुरा काल भै नांहि।
मेरा मन हरि सूँ लग्या, हरि मेरा मन मांहि॥

॥ इति हेत-प्रीति को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ निरवैरता को अंग ॥

चींटी कूँ दीजै धका, तब ही अनरथ होइ।
तंत मंत का जाप जपि, बुरा करौ मति कोइ॥
बुरा करौ मति कोइ, जीव पैला दुष पावै।
सबद जगावै बीर, बीर अपणौ भषि आवै॥
जन हरीदास साहिब सहित, वैर पड़त है दोइ।
चींटी कूँ दीजै धका, तब ही अनरथ होइ॥१॥

॥ इति निरवैरता को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ कुण्डलियां सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—को–१। सुमरतां–१-२।

शब्दार्थ—पैंडा=रास्ता, मार्ग। अनरथ=जुल्म, बुरा। तत मंत्र=तन्त्रमन्त्र। पैला=अन्य, दूसरा। भषि आवै=खाने को आए, बलि लेने। दोइ=जीव घात ईश्वर अवज्ञा।

॥ अथ चान्द्रायण ॥

॥ श्री गुरदेव को अंग ॥

गुर समथ सिरजनहार, सनेही रांम है।
भजि करुणांनिधि करतार, भजन सूँ कांम है॥
विलमन कीजै वीर, रैन का जांम है।
हरि हाँ–जन हरिदास निरमल अंग अभंग, अजब विश्रांम है॥

॥ इति गुरदेव को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

चंद सूर रथ अटकि, निरंजन पाइये।
उलटी पंष सँवारि, तहां मन लाइये॥
तजि घट 'औघट' घाट, अगम तहां जाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास गगन गुफा मैं पैस, गरक गुण गाइये॥१॥

×

सील संतोष विचारिस, ग्यांन जगाइये।
उलटि पंष सँवारि, अगम तहां जाइये॥
निगम अगम रस एक, तहां मठ छाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि तरवर मैं वास, अगम फल षाइये॥२॥

×

पाठभेद—अवघट–१।

शब्दार्थ—जांम=याम, पहर। विश्राम=आराम, शान्ति। चंद सूर रथ अटकि=इडा-पिंगला मे चलने वाले प्राण को रोक सुषुम्ना मे लाए। उलटी पंष सँवारि=मन-इन्द्रियो को अन्तर्मुख कर उनके पक्ष सँवारिये। गगन गुफा=दशमद्वार, ब्रह्मरन्ध्र। पैस=प्रवेश कर। गरक=तल्लीन हो। निगम अगम रस एक=वेद-श्रुति जिसको अगम कहते है, वह चेतनतत्त्व सर्वदा एक रस है।

ग्यांन चक्र लै हाथि, सव न षंड षेलिये।
परम जोति विश्रांम, तहां मन मेलिये॥
वरषा वारा मास, अमी रस झेलिये।
हरि हाँ—जन हरिदास आंन धरम सव झूठ, पवन सूँ पेलिये॥३॥

×

रांम नाम व्रत धारि, विषै विष डारिये।
सुषमनि पवन सँवाहि, 'त्रिवधि' रस टारिये॥
पैंडा करणां वीर, देषि पाँव धारिये।
हरि हाँ—जन हरिदास उलटा पवन निरोध, स पारा मारिये॥४॥

×

राजा रांम विसारि, सजन मन हारिये॥
मोटा वैरी मोह, महा रिप मारिये।
कांम क्रोध अभिमांन, 'अगनि' मुषि जारिये॥
हरि हाँ—जन हरिदास भजि रांमस, कांम सँवारिये॥५॥

×

पारब्रह्म सूँ प्रीतिस, रीति विचारिये।
दूजी रीति अनीति, हाथ तै डारिये॥
कांम क्रोध मनमैल, अगनि मुषि जारिये।
हरि हाँ—जन हरिदास अभ्यास, अलष उर धारिये॥६॥

×

पाठभेद—त्रिविधि-१। अग्नि-१।

शब्दार्थ—ग्यांन चक्र लै हाथि=आत्मज्ञान का चक्र हाथ मे ले। सवन षंड=मल, विक्षेप, संशयादि सब दोषो को नष्ट कर। पवन सूँ पेलिये=प्राणायाम समाधि-साधना से सब बन्धनो की पेलिये—दूर करिये। विषै विष=विषयों का जहर। त्रिवधि रस=त्रिगुणात्मकरस। पैंडा करणां=रास्ता तय करना। उलटा पवन निरोध=प्राण का प्रवाह सामान्यतः नाभि से नासिका द्वारा होता है, इसको उलटि मेरुदण्ड की ओर से प्रवाहित कर रोकना। स पारा मारिये=चंचलमनरूपी पारे को मारिये—स्थिर करिये। महा रिप=प्रवल शत्रु। अगनि मुषि जारिये=ज्ञानाग्नि द्वारा जलाइये। सँवारिये=सफल करिये। अभ्यास=साधना।

अब तौ एक अनूप, उलटि पर धरत है।
सूनि मंडल मैं बैसि, सु आरंभ करत है॥
भज अलष निरंजन नाथ, अभषि भष जरत है।
हरि हाँ—जन हरिदास निरभै भया निसंक, साध नहिं डरत है॥७॥

×

ग्यांन गुफा मैं पैसि, 'अगनि' 'परजारिये'।
आठ काठ अभिमान, तहाँ लै डारिये॥
रस पाँच सात गुण तीन, अगनि मुषि जारिये।
हरि हाँ—जन हरिदास ब्रह्म अगनि 'परकास' अगाध विचारिये॥८॥

॥ इति गुरदेव को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ परचा को अंग॥

लोक लाज पष भेष, अपूठी चाल है।
त्रिवेणी तटि ध्यांन, तहां एक लाल है॥
गरव सिला करि दूरि, इहै वड़ साल है।
हरि हाँ—जन हरिदास पूरणब्रह्म अगाध, अमोलिक माल है॥१॥

×

पाठभेद—अग्नि–१। प्रजारिय–१। प्रकास–१।

शब्दार्थ—अभषि भष=लोभ, मोह, काम, क्रोधादि की खुराक खा। निसंक= शङ्कारहित। अगनि परजारिये=ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करिये। आठ काठ=आठ मद (जाति, राज, तप, वल, कुल, रूप, विद्या और पद) का ईंधन। रस पांच=छः रस, पांच विषय। सात=रसादि सातधातुमय देहाध्यास। गुण तीन=सत, रज, तम। अपूठी=उलटी, विपरीत। लाल=अनमोल आत्मतत्व। साल है=चुभन, क्लेश। अमोलिक माल है=अमूल्य धन है।

अलष निरंजन नाथ, स साथी सूर है।
भजि करणहार करतार, सु रांम हजूर है॥
दीनानाथ दयाल, सवन का मूर है।
हरि हाँ–जन हरीदास तेजपुंज परकास, अषंडित नूर है॥२॥

×

रुति पलट्यां मन मांहि, अचंभा होत है।
नीर बूँद निरमोलक, हीरा होत है॥
हीरै हीरा वेध्या जाइ, पोत का पोत है।
हरि हाँ–जन हरिदास उन हीरां की, जाति हमारा गोत है॥३॥

×

परम सनेही रांम, तहां मन जात है।
वंकनालि 'विसरांम', सदा रस षात है॥
भजिये रमता रांम, इहै वड़ घात है।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि परम उदार, अपार हमारा तात है॥४॥

×

गंग जमन मधि पैसि, अगम तहां जाइये।
'परमजोति' परकास, परम गति पाइये॥
वार पार मधि नांहि, कहा कहि गाइये।
हरि हाँ–जन हरिदास तेजपुंज रस एक, तहां मन लाइये॥५॥

×

पाठभेद—प्रकास–१। विश्राम–३। प्रमजोति–१।

शब्दार्थ—मूर है=मूल है, आधार है। रुति पलट्यां=ऋतु बदलने पर, मन वाह्यवृत्ति को छोड अन्तर्मुख हुआ। नीर बूँद=वीर्य तथा रज से पैदा शरीर। गोत है=गोत्र, कुल। घात है=अवसर है, मौका है। तात है=पिता है, जनक है।

जन हरिदास ल्यौ लाइ, तहां चल जाइये।
जहां न व्यापै धूप, न सीत सताइये॥
वरषा वारा मास, तहां वसि जीजिये।
हरि हाँ—जन हरिदास अगम पियाला हाथि, सदा रस पीजिये॥६॥

×

जन हरिदास भजि रांम, भली यह टेक है।
जाइ वसै ता देस, तहां रस एक है॥
वंकनालि विसरांम, सदा हरि पाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास झिलमिल झिलमिल होइ, तहाँ मन लाइये॥७॥

॥ इति परचा को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ काल को अंग ॥

जीव सूता नींद अघोर, मनी मद षात है।
काल करत है ताक, पकड़ि लै जात है॥
काल तमाचा जोरि, लग्या मुरझात है।
हरि हाँ—जन हरिदास गरवहरण गोपाल, वचन की घात है॥१॥

×

नर सूता जागै नांहि, नींद की छाक है।
माया छाया विरष स, तरवर आक है॥

पाठभेद—बिरछ-२।

शब्दार्थ—ल्यौ लाइ=लौ लगा, वृत्ति लगा। धूप न=गर्मी नही, सन्ताप नही। सीत सताइये=स्वर्गादि सुख की शीतलता नही सताती। टेक है=प्रण है, हठ है। नीद अघोर=प्रगाढ नीद, अज्ञाननिद्रा। मनी मद षात है=मन अहङ्कार के नशे मे है। छाक है=मस्ती है, तृप्ति है।

समझि पड़ी घर दूरि, काल की ताक है।
हरि हाँ-जन हरिदास रांम भजन विनि घातस, वात वेपाक है ॥२॥

×

जीव मोह लपेट्या मांहि, गरक गड़ि जात है।
काल तमाचा जोरि, षुसी सूँ षात है॥
संकट पड्यां दुष होइ, तलफि मरि जात है।
हरि हाँ-जन हरिदास भजि 'परमसनेही' रांम, भजन की घात है ॥३॥

×

रांम नाम व्रत छाड़ि, आंन सुष लेत है।
जहर पियाला हाथि, पीवण सूँ हेत है॥
काल तकत है तोहि, अग्यांन अचेत है।
हरि हाँ-जन हरिदास सास अमोलिक आथि, कुपहै क्यों देत है ॥४॥

×

राजा रांम विसारि, कहां घर करौहगा।
लष चौरासी जोनि, जनम धरि मरौहगा॥
पड्या काल की वंदि, सदा सुष भरौहगा।
हरि हाँ-जन हरिदास 'गरभवास' दस मास, अगनि मुषि जरौहगा ॥५॥

×

बूढ़ा हूवा वीर, नैंन भी सरत है।
काल पहूंता आइ, अजूँ नहिं डरत है॥

पाठभेद—प्रमसनेही-१। ग्रभवास-१।

शब्दार्थ—बेपाक है=अशुद्ध है, नापाक है। गरक=गहरा, अन्तर। हेत है=प्रेम है। आथि=अर्थ, धन। कुपह=कुमार्ग में, कुप्रवृत्ति में। वंदि=बन्धन।

मोह नदी मैं पैसि, बूड़ि क्यूँ मरत है।
हरि हाँ–जन हरिदास रांमसनेही साध, भजन ही करत है ॥६॥

×

काल जाल की चोट, न सूझै जीव कूँ।
माया कै सुषि लागि, 'विसारै' पीव कूँ ॥
विष मूली मतिहीण, षुसी सूँ षात है।
हरि हाँ–जन हरिदास ते, अंत समूला जात है ॥७॥

×

कहै आथि 'औधूत', 'सकति' का पूत है।
राति 'द्यौस' जक नांहि, लग्या कोई भूत है ॥
उलझि न सुलझ्या मूल, सुरति का सूत है।
हरि हाँ–जन हरिदास काल न छाड़ै ताहि, दूत परिदूत है ॥८॥

॥ इति काल को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ चितावणी को अंग ॥

नर देही नर धारि, 'कुपहि' उरझात है।
आसा नदी 'गरक', भजन की घात है ॥
मोह दोह पष मांहि, पसू पचि जात है।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि राजारांम अगाध, साध अमर फल षात है ॥१॥

×

पाठभेद—विसारचो–५। अवधून–१। सक्ति–५। दिवस–१। कुपह–३-४। ग्रक–१।

शब्दार्थ—पैसि=धँसकर, प्रवेश कर। विसारे=भूले। जक नांहि=शान्ति नही। उलझि न सुलझया मूल=सुरति का सूत है—सुरतिवृत्तिरूपी सूत मूलतः जीवन के प्रारम्भ से उलझा वह अभी तक सुलझा नही है। पसू=अज्ञानी पुरुष। पचि जात है=मनुष्यजन्म निष्फल गँवा देता है।

विष वन मांहि पैसि, विषै रस षात है।
जहां तहां तन धारि, 'वहौड़ि' मर जात है॥
जीवन है छिन वात, काल की घात है।
हरि हाँ–जन हरिदास आंन धरम उर धारि, रांउ इतरात है॥२॥

×

काया विष वन विवधि, तहां क्यूँ राचिये।
विष फल फूल अनेक, षात हीं माचिये॥
कांटा लागै पांइ, तहां पड़ि पाचिये।
हरि हाँ–जन हरिदास लष चौरासी घट धारि, पहौम परि नाचिये॥३॥

×

वोछी छाया देषि, जहर फल षात है।
मनि चढ़ी जहर की छाकि, वहुरि इतरात है॥
राजा रांम विसारिस, नरकां जात है।
हरि हाँ–जन हरिदास पूरणब्रह्म अगाध, 'और' मिथ्या सब वात है॥४॥

×

नांव निरंजन लेह, सनेही जागि रे।
वुगला वैठा आइ, उडाणां काग रे॥
नवपण गया रिसाइ, लुकटिया हाथि रे।
हरि हाँ–जन हरिदास भी, अति कमाइ साथि रे॥५॥

×

पाठभेद—बहुरि-१। अवर-१।

शब्दार्थ—पैसि=प्रवेश कर। छिन वात=क्षणिक। रांउ=राजा, नृप। माचिये=उन्मत्त होइये, पागल होइये। पाचिये=पकना। पहौम=पृथ्वी पर। वोछी छाया=नाशवान पदार्थों की अल्प छाया। इतरात है=अकडता है, ऐठता है। विसारिस=भुलाकर। वुगला वैठा=बाल सफेद हो गए। उडाणां कागरे=काले बाल समाप्त। नवपण=यौवन। लुकटिया=सहारे के लिए लकड़ी।

'नाए' नौ तन की, वात सदा ही रहत है।
छूटि जाइगी काल्हि, साच करि गहत है॥
याहि भरोसे लागि, 'कुपहि' क्यूँ वहत है।
हरि हाँ-जन हरिदास रांमसनेही साध, रांम ही कहत है॥६॥

×

घड़ी घड़ी तन जाइ, न लागै साच सूँ।
कंचन कर सूँ डारि, रह्या मिलि काच सूँ॥
पिव सूँ 'परचा' नांहि, कहावै राव रे।
हरि हाँ-जन हरिदास हरि, भेद न जानै वावरे॥७॥

×

गैंद करै गड़डाट, सदा दरवार मैं।
रांम सनेही छाड़ि, छक्या भठि छार मैं॥
चौरासी लष चौट, वहैंगे धार मैं।
हरि हाँ-जन हरिदास वे रांन, वसै घसि षार मैं॥८॥

×

कर गहि मूँछ मरोड़ि, मछरि मनि मांवता।
नांनां विधि रस राग, रजा मैं गांवता॥
सुत बनिता सुष सेझ, महल गढ़ मालिया।
हरि हाँ-जन हरिदास ते जोधस, जंगल जालिया॥९॥

×

पाठभेद—नाये-२। कुपह-३-४। प्रचा-१।

शब्दार्थ—नौ तन=जवानी। कुपहि=कुमार्ग। परचा=मिलाप, जानकारी। गैंद=गयद, हाथी। छक्या भठि छार मै=विषयभोग की भट्ठी मे राख हो रहा है। रान=राणा। मर्छार=मात्सर्य। जोधस=शूरवीर।

'सूँधौ' तैल फुलेलस, अंगि लगावता।
नांनां विधि देह सँवार, महल मैं आंवता॥
षांन पांन वहौ भोग, षुसी सूँ षात है।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति, समूला जात है॥१०॥

×

आइ झरोषै वैसि, षुसीं मन कीजता।
काम क्रोध अभिमान, 'अगनिमुष' छीजता॥
देता लेता षोसि, अहं मन भांवता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते जोध, गया पछितांवता॥११॥

×

पड़दा रहता पौलि, पहरवा जागता।
पर धन लेता चूरि, कहर 'होइ' लागता॥
सूरवीर संग्राम, सगै रिंण गाजता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति, गया यूँ वाजता॥१२॥

×

आइ तखत परि वैसि, छत्र सिरि धारता।
दह दिसि जोधा देषि, मनी विसतारता॥
पर घर पर दल चूरि, षलै षसि मारता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते भूप भष्या काल, षडग करि धारता॥१३॥

×

पाठभेद—सौधौ- १-३। अग्निमुष-१। व्है-१।

शब्दार्थ—सूँधौ=इत्र, सुगन्ध। झरोषे=दीवानखाने, उच्चस्थान। अगनि मुष=नाना सन्तापों से। षोसि=लूट। पौलि=दरवाजा, प्रवेशद्वार। पहरवा=पहरेदार। चूरि=पीस, दबाकर। कहर=काल। मनी विसतारता=दूसरो के राज लेने की मनसा बढ़ाते। षलै=रणखेत। षसि=लड़ाई कर।

गोपी ग्वाल नचाइ, गाइ वन चारता।
मुथरा मूँधि मारि, पिसण षस मारता॥
कर सूँ डूँगर तोलि, जोर विसतारता।
हरि हाँ–जन हरिदास ते अंति गया तन छाडि,'वहौत' तन धारता॥१४॥

×

नौग्रह पाये बाँधि, घुसो व्है बोलता।
मोह महल मैं वैसि, षड़ग करि तोलता॥
अहुं गांठ उर धारि, 'बहौडि' नहिं षोलता।
हरि हाँ–जन हरिदास काल दल्या दहकंध, मनी मद बोलता॥१५॥

॥ इति चितावणी को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ माया को अंग॥

मोह दोह मैं गरक, सुरति काचै लगी।
नहिं रांम नाम सूँ प्रीति, प्रगट माया सगी॥
सकल जीव अँगि लाइ, सदा जागै नंगी।
हरि हाँ–जन हरिदास माया ठगि षाया संसार, सु तौ साधां ठगी॥१॥

×

आथि वसत है साथि, सदा ही रहत है।
कांम क्रोध अभिमानस, आसा दहत है॥
'त्रिसना' तरंग अनेक, तहां मन वहत है।
हरि हाँ–जन हरिदास विरला कोइ साध, परम गति लहत है॥२॥

पाठभेद--बहुत-१। बहुरि-१। तिसनां-१। त्रिष्नां-३-४।

शब्दार्थ--मूँधि मारि=उलट कर, त्याग कर। पिसण=शत्रु, चोर-लुटेरे। नौ ग्रह पाये वाधि=मंगल, बुध आदि नवग्रह कैद कर रखने वाले। दहकंध=रावण। काचै लगी=नाशवान पदार्थ प्राप्त करने मे उलझो। आथि वसत=मूल्यवान वस्तु, आत्मपरिचय। दहत है=जलाता है।

माया छाया बैसि, 'कौंण' सुष लेत है।
प्रीति करै 'या' रीति, कपट का हेत है॥
जनम अमौलिक जाइस, ऊसर षेत है।
हरि हाँ—जन हरिदास भी अंति, रसातल देत है॥३॥

×

माया चढ़ी सिकार, तुरी चटकाइया।
कै मारचा कै मारि, पताषा लाइया॥
जन हरिदास भजि रांम, सकल जग घेरिया।
हरि हाँ—मन जाय बसै दरवार, तहां तै फेरिया॥४॥

×

माया का दल देषिस, काइर कांदरे।
षिसि चाल्या तजि षेत, धका सूँ धसि परे॥
ऊजल निरमल नांहिस, काले कापरे।
हरि हाँ—जन हरिदास हरि, भेद न जांणै वापरे॥५॥

×

माया सूँ मन लाइ, कहा सुष सोइये।
हीरा जनम अथाह, अमोलिक षोइये॥
'गरभवास' दस मास, सदा दुष पाइये।
हरि हाँ—जन हरिदास भजि रामस, ठौड़ चुकाइये॥६॥

×

पाठभेद—कूँण-१। याह-१। ग्रभवास-१।

शब्दार्थ—तुरी=घोडा। चटकाइया=चाबुक लगाया। पताषा=पताका, ध्वजा। दरवार=राजसभा, आत्मा के सम्मुख। कादरे=किनारा करे, बचे। काले कापरे=मलिन संस्कार। ठौड़=जगह, प्रवृत्ति मे लगी वृत्ति को बदलिये।

जन हरिदास तजि आंन, भजौ हरि भोर सूँ ।
माया का दल देषि, मँड्या है जोर सूँ ॥
नर नरवै सुर मारि, लिया षग कोर सूँ ।
हरि हाँ–जन हरिदास काली पीली धार, धसी दस वोर सूँ ॥७॥

×

कै आवै कै जांहि, चलाऊ लोग है ।
माया मोह विवोग, इहै वड़ रोग है ॥
जहर जड़ी जिव षाइ, कहै यहु भोग है ।
हरि हाँ–जन हरिदास भजि रांम, भया भल जोग है ॥८॥

×

सूक 'विरछ' संसार, तहां मन लाइये ।
काल गरासै आइ, 'वहौडि' पछिताइये ॥
रहणां नहीं निदान, अकेला जाइये ।
हरि हाँ–जन हरिदास तसमात, निरंजन गाइये ॥९॥

॥ इति माया को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ उपदेश को अंग ॥

जोग मूल की वातस, घात विचारिये ।
सांसो हंस्या छाड़ि, मना सब डारिये ॥
जपिये अजपा जाप, आंन धरम सब हारिये ।
हरि हाँ–जन हरिदास अलष भजन 'उरि' धारि, अलेष जुँहारिये ॥१॥

×

पाठभेद—वृछ–३-४ । वहुड़ि–१ । उर–१ ।

शब्दार्थ—भोर सूँ=समय रहते, सवेरे । नरवै=बादशाह, रावराणा । षग कोर सूँ=तलवार की नोक से । काली पीली धार=वासना-तृष्णा को धारा । दस वोर सूँ=चारों ओर से, दसद्वारो से । चलाऊ=चलायमान, अस्थिरवृत्ति । भल जोग है=अच्छा संयोग है । तसमात=इसलिये । सासो=संशय, सदेह । हंस्या=हिंसा । अलेष जुँहारिये=परब्रह्म की वन्दना करिये ।

त्रिवेणी तटि वास, तहां क्यूँ न जाइये।
ए पासा 'ए' डाव, सीस लै न्वाइये॥
वोछै पांणी पैसि, समद क्यूँ छाड़िये।
हरि हाँ–जन हरिदास भज अलष निरंजन नाथ, तहां मन लाड़िये॥२॥

×

'मनिष' जनम नग हाथि, कुपह क्यूँ डारिये।
मोह महल मैं सोइस, जनम न हारिये॥
नष सिष लागा रोगस, रोग निवारिये।
हरि हाँ–जन हरिदास ग्यान षडग ले हाथि, काल मैं मारिये॥३॥

॥ इति उपदेश को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ सूरातन को अंग॥

भड़ाँ हाक है कंप, तीर गोला वहै।
सुभट न ताकै वोट, चोट सनमुष सहै॥
ग्यांन षडग लै हाथि न, फिर पूठा फिरै।
हरि हाँ–जन हरिदास सूर वीर अरि जीतस, हरि का व्है रहै॥१॥

×

समंद रूप संसार, अधर उठि चालिये।
षाग बाग रस 'एक', पवन पड़तालिये॥
पिसणा उपरि चोटस, सनमुष घोड़ा घालिये।
हरि हाँ–जन हरिदास पैला अरिदल जीत, परम दुष पालिये॥२॥

×

पाठभेद—ये–२। मनष–१। येक–१।

शब्दार्थ—लाड़िये=लडाइये, राजी करिये। सुभट=योद्धा, शूरवीर। षाग वाग रस एक=ज्ञानषड्ग सँभाल मनोवृत्ति एक रस रख, स्थिर कर। पालिये=रोकिये, मना करिये।

जोग पंथ मैं पैसिस, पूठि न फेरिये।
ग्यांन षड़ग लै हाथि, सबल गढ़ घेरिये॥
ल्यौ डोरी करि साहि, तहां मन जेरिये।
हरि हाँ–जन हरिदास अलष निरंजन नाथ, निरन्तर हेरिये॥३॥

॥ इति सूरातन को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सजीवणी को अंग ॥

हरि पूरणब्रह्म अगाध, अषंडित रांम है।
साध बसै ता देसि, मुलक निहकांम है॥
जुरा काल मै नांहि, सीत नहिं घांम है।
हरि हाँ–जन हरिदास परा परै पति एक, अजब विसरांम है॥१॥

॥ इति सजीवणी को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ पतिब्रत को अंग ॥

रजा तुम्हारी रांम, कहौ त्यूँ मैं करूँ।
मन गहि पवन सँवाहि, अटकि उलटी धरूँ॥
ब्रह्म 'अगनि' मैं पैसि, अभष अजरा जरूँ।
हरि हाँ–जन हरिदास रांम नांम व्रत धारि, न आंन व्रत आचरूँ॥१॥

×

पाठभेद—अग्नि–१।

शब्दार्थ—पैसिस=प्रवेश कर, लग कर। पूठि=पीठ न दे, पलटे नही। निह-काम=निष्काम। रजा=निर्देश, आज्ञा। सँवाहि=सँभाल कर, सचेष्ट कर। आन=और, दूसरा। आचरूँ=आचरण करूँ।

पीव जीव की जीव, निरंजन राइ है।
उपजि न विनसै मूल, न आवै जाइ है॥
परम 'पुरष' 'परकास', साध मन लाइ है।
हरि हाँ—जन हरिदास 'परगट' घूँघट मांहि, एक को पाइ है॥२॥

॥ इति पतिव्रत को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ साध को अंग॥

वोछा करैं गुमांन, वड़ां कै नांहिरे।
भादों वरसै मेह, नदी घररांहि रे॥
दरिया उभलै नांहि, ता मांहि समाहि रे।
हरि हाँ—जन हरिदास यों साध, देषि जुग मांहि रे॥१॥

×

रांम सनेही साध, मँडे मैदान मैं।
पहरी सील सनाह, 'गरक' गुर ग्यांन मैं॥
वाजै अनहद तूर, वसै धसि रांम मैं।
हरि हाँ—जन हरिदास धुनि ध्यांन, सदा विसराम मैं॥२॥

×

जहां जीव तहां सीव, एक को जांणि है।
मन कूँ पूठा फेरि, सहजि घरि आंणि है॥

पाठभेद—पुरिष-१। प्रकास-१। प्रगट-१। ग्रक-१।

शब्दार्थ—घूँघट मांहि=हृदय के पर्दे में। वोछा=छोटा, क्षुद्र, तुच्छ। घररांहि रे=गर्जती हैं। दरिया=समुद्र। उभलै=छलके, सीमा त्यागे। सीव=ब्रह्म।

जोग मूल की वातस , घात पिछांणि है ।
हरि हाँ–जन हरिदास भज पूरणब्रह्म अगाध, सुतौ ब्रत वांणि हैं ।।३।।
।। इति साध को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ मन को अंग ।।

चंचल मन कूँ चूरि , कहां चलि जाइगा ।
करि विषहर का रूप , इहै फिरि षाइगा ।।
जड़ी सजीवण लाइ , कछू न वसाइगा ।
हरि हाँ–जन हरिदास हरि राइ , तहां उरझाइगा ।।१।।
।। इति मन को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ समरथाई को अंग ।।

हरि जहां तहां प्रतिपाल , हमारी करत है ।
हरि आप आपणां ध्यान , हमारै हिरदै धरत है ।।
सब षलक रांम सुष छाड़ि , अगनि मैं जरत है ।
हरि हाँ–जन हरिदास मन उलटा चढ्या आकास, मारया नहि मरत है ।।१।।
।। इति समरथाई को अंग सम्पूर्ण ।।

।। अथ कुबुधिनर को अंग ।।

अनंत घाट घट मांहि , सदा ही घड़त है ।
कंचन हिरदा मांहि , काच लै जड़त है ।।

शब्दार्थ—हरिराइ=परब्रह्म । उरझाइगा=लगाएगा । अनंत घाट=अनेकों सङ्कल्प । कंचन=विशुद्ध चेतनतत्व ।

ऊजड़ चाल्या जांहिस, आषड़ि पड़त है।
हरि हाँ जन हरिदास सब षलक दिवाना आथि, कहां कूँ षड़त है ॥१॥

×

वाद विवाद निवारि, 'वहौडि' पछिताइगा।
हरि सूँ नांही हेत, रसातल जाइगा॥
मदन मोह गुण मांहि, गरक लपटाइगा।
हरि हाँ—जन हरिदास राजा रांम विसारिस, षोटा षाइगा ॥२॥

॥ इति कुबुधिनर को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ इति चान्द्रायण सम्पूर्ण ॥

॥ अथ साषी भाग ॥

जन हरिदास कै ग्यांन 'गुर', सतगुर सिरजनहार॥
निधि पाई निरभै भया, अरस परस दीदार ॥१॥

जन हरीदास कै ग्यांन गुर, साधां सेती प्रीति॥
साध सदा गोव्यंद भजै, देही का गुण जीति ॥२॥

जन हरिदास कै ग्यान गुर, गूदडियां सूँ नेह॥
दुष सुष दोइ व्यापै नहीं, गूदड़ियां गुण 'एह' ॥३॥

गोरष हमारा गुरु बोलिये, पाड़ा हमारी चेली॥
सति का सबद सहज घरि षेलूँ, 'इहि' विधि दुरमति पेली ॥४॥

पाठभेद—बहुरि-१। ग्रुरु-१। येह-२। अहि-१।

शब्दार्थ—ऊजड़=उजाड़, बेरास्ते। निधि पाई=खजाना पाया, आत्मतत्व जाना। अरस परस=एकमेक, आमने-सामने। दीदार=दर्शन। दुरमति=कुमति, सकाम-कम की प्रवृत्ति।

माई मूँडूँ सिद्ध की, 'भजूँ' निरंजन नाथ ॥
हरिदास जन यूँ कहै, सिरि गोरष का हाथ ॥५॥

दिष्टि दई सतगुर मिल्या, हीरा लिया सुभाइ ॥
हरीदास जन जौंहरी, षोटा कदे न षाइ ॥६॥

बलती 'अगनि' बुझाई करि, सीतल किया अँगार ॥
जन हरीदास आनन्द भया, सतगुरु का उपगार ॥७॥

बलती अगनि बुझाइ करि, सीतल किया सरीर ॥
जन हरीदास गुर गम तैं, पीया निरमल नीर ॥८॥

जन हरीदास नाथ का बालक, रहै नाथ की छाया ॥
पूरण ब्रह्म परम सुष दाता, निरभै निरंजन राया ॥९॥

जन हरीदास सतगुर सबद, अंतरि लागा बांण ॥
हरि हेरत हरि मन हरया, इत उत लहै न जांण ॥१०॥

॥ अथ सिष पारिष को अंग ॥

गुर गिरही माया गहै, सिष बैरागी होइ ॥
जन हरीदास मत 'क्यूँ' मिलै, परगट पैंडा दोइ ॥१॥

गुर लागा संसार सूँ, सिष अंतरि हरि साच ॥
जन हरीदास मत क्यूँ मिलै, 'बोह' कंचन बोह काच ॥२॥

गुर सिष दोऊ उठि चल्या, जन हरीदास हरि मांहि ॥
सिष चालै गुर बाहुडै, तौ वे गुरु सिष नांहि ॥३॥

पाठभेद—भजौ-१ । अग्नि-१ । क्यौ-१ । वो-४-५ ।

शब्दार्थ—दिष्टि=नजर, विवेक-विचारमय नेत्र । जौहरी=रत्नपरीक्षक, जीवन्मुक्त । षोटा=नकली, विनाशी । बलती अगनि=वासना-तृष्णा की प्रज्ज्वलित वह्नि । गुर गम तैं=गुरुउपदेश से । अंतरि=हृदय मे । इत उत=इधर-उधर, माया-ममता में । गुर गिरही=गुरु मायामुखी है । बाहुड़ै=मुडे, पीछे आवे ।

जन हरीदास भै सिंध तजि, भै रै बैठा जाइ ॥
सो गुर सिष कूँ ले चल्या, अपणैं मतै मिलाइ ॥४॥
जो कुछ गुर सिष सूँ कह्या, सो जै गुर पै होइ ॥
जन हरीदास करि बँदगी, गुर गोव्यंद नहिं दोइ ॥५॥
गुर निरभै गोव्यंद भजै, तैसा ही सिष होइ ॥
जन हरीदास मत एक है, तब कहण सुणण कूँ दोइ ॥६॥
जन हरीदास गुर गारडू, विष झाडै झड़ि जाइ ॥
सिष सठ तौ गुर क्या करै, सिष फिर विषही षाइ ॥७॥
जन हरीदास गुर क्या करै, सिष मूरष गुणजार ॥
'इंम्रत' पाया ना पिवै, विष का पीवणहार ॥८॥
ग्यांनी गुर सूँ सिष मिलै, सो सिष भी ग्यांनी होइ ॥
इष्ट एक एकै भजन, तब कहिबे कूँ दोइ ॥९॥
बात कहै आकास की, आप रसातलि जाइ ॥
वा ग्यानी गुर सूँ मूरष भला, सकै न 'और' भुलाइ ॥१०॥
सिष साचा साचै मते, गुर दीरघ भ्रम नास ॥
रहत एक एकै बसत, एक दिसावरि बास ॥११॥
सिष सूता जागै नही, रैंणि 'पहूँती' आइ ॥
वा सिष कै मतै गुर मिले, तौ अंति रसातल जाइ ॥१२॥
पच्छिम देस पंथ परिहरै, पूरब रहै समाइ ॥
वा गुर कै मतै जो सिष मिलै, पारि पहूँचै जाइ ॥१३॥

॥ इति सिष पारिष को अंग सम्पूर्ण ॥

पाठभेद—इमरत–१ । अवर–१ । पहौतो–४ ।

शब्दार्थ—भै रै–नौका में । मतै मिलाइ=विचार में सहमत कर । गारडू=विषनिवारक । गुणजार=गुण-चोर । दीरघ भ्रम नास=असत्य को सत्य और सत्य को असत्य, इस भारी भ्रम का निवारण । रैंणि=कालरात्रि । पच्छिम देस=भौतिक प्रवृति का जीवन । पूरब=आध्यात्मिक प्रवृत्तिमय ।

॥ अथ विरह को अंग ॥

विरहणि ऊभी दरद सूँ, अबला सूँ क्या मांण ॥
कै मिलि हो कै तन तजूँ, सुँणि हो कंत सुजांण ॥१॥

जन हरीदास कासूँ कहूँ, अपणैं घर की लाइ ॥
ज्यूँ जान्या त्यूँ ही जन्या, जालि बलि रह्या समाइ ॥२॥

विकल भई बिलंवे कहां, ताला वेली जीव ॥
हरीदास जन विरहणी, मिलो सनेही पीव ॥३॥

अंतरि विरहा आइया, रोम रोम सब मांहि ॥
जन हरीदास कै हरि मिलो, कै अब जीवण नांहि ॥४॥

अविनासी आठौं पहर, अपणैं हिरदै धारि ॥
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै ग्यांन विचारि ॥५॥

'षफनी' षफन' सारिषी, पहिरै विरला कोइ ॥
जन हरीदास ब्रह्म अगनि मैं पैसकरि, जलि बलि 'कोइला' होइ ॥६॥

॥ इति ॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

साहिबजी की बंदगी, कीजै तन मन लाइ ॥
जन हरीदास षेलौ तहां, जहां काल न परसै आइ ॥१॥

अविनासी 'आठौं' पहर, अपणैं हिरदै धारि ॥
जन हरीदास निरभै मतै, निरभै 'वस्त' विचारि ॥२॥

पाठभेद—कफनी-कफन-१। क्वैला-१। आठूँ-१-४। वसत-२।

शब्दार्थ—माण=मान, रूठना। लाइ=विरहाग्नि। ताला वेली=छटपटाहट, अति आतुरता।

नांव निरंजन 'निरमला', भजतां होइस होइ ॥
हरीदास जन यौं कहै, भूलि पडै मत कोइ ॥३॥
हठ करि कोई मति मरौ, परै न 'पहुंचै' हाथ ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन नाथ ॥४॥
हरि ऐसा हितू विसारि मा, ऊठि 'और' कै साथि ॥
लोक लाज वहि जाइगा, हीरा न आवै हाथि ॥५॥
उलटा गोता मारि करि, अंतरि अलष विचारि ॥
रांम भजन आनन्द सदा, कदे न आवै हारि ॥६॥
सनकादिक जोगी जनक, मति गति लषै न कोइ ॥
जन हरीदास 'ताकूँ' भजौ, भजतां होइस होइ ॥७॥
मैं हरि सुष छाड़ौ नहीं, वात कहत 'हूं' तुझ ॥
हरिदास जन यूं कहै, मीठा लागै मुझ ॥८॥
मैं हरि सुष छाड़ौ नहीं, मीठा लागै मोहि ॥
करम कठिन सब कंकरा, ग्यांन सूप ले सोहि ॥९॥
मैं हरि सुमिरण 'छाड़ौं' नहीं, मन कूँ मारि अटकि ॥
जन हरीदास करम भरम सब तूँ तड़ा, गहि गुर ग्यांन फटकि ॥१०॥
जन हरिदास निरभै मतै, भजौ निरंजन राइ ॥
काल झाल लागै नहीं, सुष मैं रह्या समाइ ॥११॥
जन हरीदास या जीव कूँ, अटकि अटकि समझाइ ।
दूजी दुरमति दूर करि, हरि चरणां चित लाइ ॥१२॥

॥ इति ॥

पाठभेद—नृमलौ-५ । पहोंचै-२ । अवर-१ । ताकौ-१ । हौ-१ । छाडूँ-३-४ ।

शब्दार्थ—हितू=हितैषी । विसारि मा=भूल मत । और कै=अन्यों के, विषय-वासनाओ मे । मति गति=बुद्धि द्वारा । सोहि=शोध, साफकर । अटकि=बाहर जाने से रोक । दुरमति=वासनाबुद्धि ।

॥ अथ परचा को अंग ॥

जन हरीदास सुष अगम है, सोधि लहै ते संत ॥
अरस परस आनँद सदा, 'बाराह' मास वसंत ॥१॥

जन हरिदास वसंत रुति, फूल्या सब ही बाग ॥
'ब्रज' मांहि कौतिग भया, हरि जन षेलै फाग ॥२॥

रांम तहां 'सूधों' सहज, बाजै राग अनंत ॥
चंदन 'पुहिप' गुलाल ले, षेलै संत वसंत ॥३॥

जन हरीदास तहां जाइये, बाराह मास वसंत ॥
पांन पहौप जहां का तहां, षेलत है सब संत ॥४॥

जन हरिदास वसंत रुति, षेलै गोपी ग्वाल ॥
हरि सनमुष जहां का तहां, करि पहौप न की माल ॥५॥

जन हरिदास वसंत रुति, प्रगटे राम अगाध ॥
प्रेम प्रीति का पहौप ले, षेलै चरचैं साध ॥६॥

जन हरीदास 'परचा' पषै, कौड़ी काची सारि ॥
डाव पड्यां छूटै नहीं, कांनै लीजै मारि ॥७॥

घरि आई निरभै भई, डाव पड्या 'यूँ' होइ ॥
जन हरीदास ता सारि कूँ, पासा लगै न कोइ ॥८॥

पाठभेद—वारा-३-४। वृज-४-५। सौधो-१। पुहप-१। प्रचा-१। यौ-१।

शब्दार्थ—सोधि लहै=तलाश करले, प्राप्त कर ले। वसंत=आनन्दमय स्थिति। व्रज मांहि=शरीररूपी ब्रजभूमि मे। चंदन पुहप गुलाल ले=प्रेम-मय चन्दन श्रद्धा के पुष्प भक्ति की गुलाल ले। गोपी ग्वाल=मन-इन्द्रियाँ। चरचै=अर्चना करे, पूजा करे। परचा पषै=अनुभव बिना। कौड़ी काची सारि=(सारि) मनुष्यशरीर (कौडी) धन-सम्पदा प्राप्ति मे लगा कच्ची सार की तरह चाहे जब नष्ट हो जाता है। डाव पड्या=अवसर पड़े।

परम जोति पलटै नहीं, कोटि करै जे कोइ ॥
लोहा कूँ पारस मिलै, परसिर कंचन होइ ॥६॥
जन हरीदास अंतरि अगह, 'दीपग' एक अनूप ॥
जोति उजालै 'षेलिये', जहां छांहड़ी न धूप ॥१०॥
विवधि पहौप सेवा विवधि, मधि 'मोतियन' की माल ॥
जन हरीदास षेलौ तहां, जहां गोपी गाइ न ग्वाल ॥११॥
आछा इष्ट कबीर का, अगम वार नहिं पार ॥
हरीदास जन 'मिलि' रह्या, गहि गुर ग्यांन विचार ॥१२॥
जन हरीदास अंतरि अगह, परम जोति परकास ॥
अगम 'ठौर' आनँद सदा, मन का तहां निवास ॥१३॥
तिरता तिरता तहां गया, जहां अचंभा और ॥
चित्त कपटी पहुँचै नहीं, तहां साधां की ठौर ॥१४॥
भै भागा निरभै भया, हरि सकल वियापी एक ॥
हरीदास जन यूँ कहै, ता सुषि पहुँता पुरष अनेक ॥१५॥

॥ इति ॥

पाठभेद—दीपक-१। षेलिए-३-४। मोतिइन-४-५। मिल्य-२। ठौड-५।

शब्दार्थ—परम जोति=शुद्धचेतन। अतरि=अपने भीतर, हृदय मे। अगह=पकड़ मे न आने वाला, मन-बुद्धि और इन्द्रियो से आगे। दीपग=ज्ञानदीप। जहां गोपी गाइ न ग्वाल=जिस दशा मे मन, इन्द्रियाँ व वृत्ति का वाह्यसम्बन्ध न रहे। आछा=सर्वोत्तम।

।। अथ चितावणी को अंग ।।

आदि 'अंति' गोविंद सगा, दूजा सगा न कोइ ।।
जन हरीदास दूजा सगा, सो फिरि बैरी होइ ।।१।।

जन हरीदास संकटि पड़्यां, सगा न सूझै कोइ ।।
रांम सगा सो 'परहर्‌या', कुसल कहां तैं होइ ।।२।।

घट छूटै फाटै तिमर, मन धरि सकै न धीर ।।
जन हरीदास तब हरि सगा, रषै विसारै वीर ।।३।।

एक राति का सोवणां, जीवण ऐसा जांणि ।।
जन हरीदास हरि भजन विणि, ताहू मांही हांणि ।।४।।

नष सष सूँ पैदा किया, जांणिक चितर्‌या मोर ।।
जन हरीदास हरि वीसर्‌या, सो वड़ा हरांमी षोर ।।५।।

'वीज' चमक आभै दुरै, यूँ सति जांणी देह ।।
हरीदास जन यूँ कहै, रांम भजन करि लेह ।।६।।

मरणां है जीवण नहीं, जीवत मरै न कोइ ।।
जन हरीदास जीवत मरै, सो अविनासी होइ ।।७।।

जा मुषि रांम न ऊचरै, आंन कथा मन चोल ।।
जन हरीदास ते मांनई, काग बिलाई कोल ।।८।।

जा मुषि रांम न ऊचरै, रसनां वैठी हारि ।।
जन हरीदास ते मांनई, सूकर की उणिहारि ।।९।।

पाठभेद—अन्त्य-२। परिहर्‌या-१। बीजि=३।

शब्दार्थ—दूजा सगा=स्त्री-पुत्रादि कुटुम्बीजन। परहर्‌या=त्याग दिया, छोड़ दिया। कुसल=कल्याण, क्षेम। फाटै तिमर=अज्ञानता का अन्धकार हटे। रषै=रखे, याद करे। विसारै=भूले, संसारी साथियो को भूले। हाणि=नुकसान, क्षति। जाणिक=जैसे। चितर्‌या=बनाया, चित्रित किया। आभै दुरै=आकाश में लीन हो। जीवत मरै=मद-मोह त्यागे। आन कथा=निन्दास्तुति। चोल=राजी, प्रसन्न। उणिहारि=समान, सदृश।

प्राणनाथ पति छाड़ि करि, 'भूँदू' भूला जांहि ॥
जन हरीदास ते मांनई, न्याइ हलाहल षांहि ॥१०॥
जन हरीदास या जीव कै, दुष सुष चालै साथि ॥
अब या चीरी क्यूँ मिटै, ता दिन आई हाथि ॥११॥
जीव सीव कै सँगि वसै, करँम जीव कै साथि ॥
जन हरीदास षेलो कहूँ, दोऊँ पासा हाथि ॥१२॥
क्या 'जाणौं' कछु काल्हि है, 'काईज' वाजै वालि ॥
जन हरीदास औसर इहै, तूँ अपणा रांम सँभालि ॥१३॥
कालां कै हलचल भई, धौला वैठा आइ ॥
जन हरीदास गढ़ पालटया, गुण गोविंद का गाइ ॥१४॥
अहिपुर महिपुर इंद्रपुर, स्यो ब्रह्मा 'लौं' जोइ ॥
जन हरीदास दूभर दुनी, सूभर भरया न कोइ ॥१५॥
जन हरीदास गोविंद भजौ, तजो आंन उपदेस ॥
अवगति गति जांणै नहीं, ब्रह्मा 'विष्न' महेस ॥१६॥
छांह देषि नर बबूल की, वसै वटाऊ आइ ॥
जन हरीदास पैडा थक्या, सूल गड़ी 'जब' पाइ ॥१७॥
राति वसै दिन उडि चले, 'यौह' संसार सराइ ॥
जन हरीदास दुनिया सबै, पैंडे लागी जाइ ॥१८॥

पाठभेद—भौदू-१ । जाणूँ-१ । काई-१ । लूँ-२ । विसन-२ । तब-३-४ । इहौ-२ ।

शब्दार्थ—भूँदू=अज्ञानी, बेसमझ । न्याइ=कतई । चीरी=पापपुण्य, जन्म-मरण । सीव=माया-अविद्यारहित चेतन । दोऊँ पासा=मुक्ति तथा बन्धन । कांईज=कैसी । वाजै=बहे, प्रवाहित हो । वालि=हवा । औसर इहै=समय यही है, मौका यही है । गढ पालट्या=जवानी गयी बुढापा आ गया । दूभर=दुःखरूप । दुनी=संसार । सूभर=सुखरूप आत्मज्ञान । वसै=रहे, निवास करे । वटाऊ=राहगीर, पथिक । पैडा=रास्ता, मार्ग । सराइ=ठहरने की जगह ।

'जग' हटवाड़ै विणज कूँ, मिले वटाऊ आइ ॥
जन हरीदास सब जात है, दिन दस पीठ लगाइ ॥१९॥
कोई काहू का नहीं, ऐ सब कोठी वाल ॥
साह कहौ क्यूँ आदरैं, पढ़ि पढ़ि चले कुचाल ॥२०॥
जन हरीदास पारिष पषै, विणजत है सब कोइ ॥
फिरि पीछै पछिताइगा, जब नांणा देष्या षोइ ॥२१॥
जन हरीदास ऊँचा अधिक, त्रिया ज पहरै चीर ॥
ते भी अगनि जलावसी, सोनैं सँवा सरीर ॥२२॥
जन हरीदास संसार सूँ, प्रीति करै 'जिनि' कोइ ॥
काल चोट चूकै नहीं, दुष सुष व्यापै दोइ ॥२३॥
जब ही 'करि' कांटा लगै, तब ही धूजै मन ॥
हरीदास जन यूँ कहै, ज्यूँ किरपण का धन ॥२४॥
राजा रांम विसारि करि, जीव रसातलि जाइ ॥
जन हरीदास चौरासी भरमत फिरै, फिरि फिरि षोटा षाइ ॥२५॥
जन हरीदास हरि नांव लै, आठ पहर इक सार ॥
एक पलक जिनि वीसरै, जम की वाहर लार ॥२६॥
जन हरीदास गोविंद भजौ, देह 'दुरांणी' वीर ॥
कहौ कहां लो राषिये, काचै भांडे नीर ॥२७॥

पाठभेद—जुग-१। जिन-४। कर-३-४। दुरानी-१-५।

शब्दार्थ—हटवाड़ै=बाजार मे। पीठ लगाइ=दुकान लगा। कोठीवाल=थोक व्यापारी, बनावटी साधक। साहू=सेठ, परमेश्वर। आदरै=अङ्गीकार करे, स्वीकार करे, सम्मान करे। पारिष पषै=अनुभवहीन। नाणा=रकम, सम्पत्ति। ऊँचा अधिक=बहुमूल्य। सोने सँवा=कान्तिवान, सोने जैसा। किरपण=कंजूस, मूँजी। इकसार=एकाग्रवृत्ति। वाहर लार=पीछा करनेवाले। दुराणी=क्षीण हो रही है, छिप रही है।

अविनासी सूँ आंतरो, नरक कूप सूँ हेत ॥
जन हरीदास औसर भलो, चूका भला अचेत ॥२८॥

रांम 'समद' न्यारा रह्या, पांवा पड्या जंजीर ॥
जन हरीदास नर भूला फिरै, मन धरि सकै न धीर ॥२९॥

॥ इति ॥

॥ अथ मन को अंग ॥

फूटै कुंभ न जल रहै, वहता कहै न रांम ॥
जन हरीदास गोविंद भजै, जा कै मन विसरांम ॥१॥

जन हरीदास मन सावता, तहां वसै हरि नीर ॥
कनक कटोरै ठाहरै, वाघणि वप का षीर ॥२॥

सीस अमोलिक अजव था, दीन्हा सौंहगी 'ठौर' ॥
जन हरीदास मन मसकरा, मन की उलटी 'दौर' ॥३॥

मन ही सूँ मन 'फेरिकै', मन का तजै विकार ॥
तव जन हरीदास पैंडा कटै, वाकी रहै न लार ॥४॥

मन सा को वैरीं नहीं, मन सा सगा न कोइ ॥
जन हरीदास मन काच समि, मन फिरि कंचन होइ ॥५॥

मन फूटा कण कण हुवा, फेरि घड़ै सो रांम ॥
हरीदास जन यौं कहै, नहीं और का कांम ॥६॥

पाठभेद—सवद-१। ठौड़-१-३। दौड-१-३। फेरकरि-१।

शब्दार्थ—रांम समद=सुखसागर ब्रह्म। पांवा जड्या जंजीर=कर्मबन्धन की बेडियां। फूटै कुंभ=फूटे घडे मे। वहता=चञ्चल मनवाला। मन सावता=मनस्थिर हो। ठाहरै=ठहरे, रुके। सौहगी=सस्ती, कम कीमत मे। दौर=दौड़। फेरिकै=पलट कर, आत्माभिमुख करके। लार=पीछे, शेष। मन फूटा=मन बिखरा, अनेक विषयों में लगा।

जाकै नष चष कर मुष सिर नहीं, चरण नासिका नांहि ॥
ऐसा मन मेवासिया, काया नगरी मांहि ॥७॥
मेरा मारया ना मरै, और 'वाट' व्है जाइ ॥
वाजारी 'वहौ' रूप करि, पूठा वैसे आइ ॥८॥
जव आवै तव मारिए, याकी ठौड़ उठाइ ॥
गुर का सवदां भूँकि करि, ज्यूँ मन मनसा कूँ षाइ ॥९॥
जन हरीदास आलस कह्या, ग्यान तुला मन तोलि ॥
मन दीन्हा सांई मिलै, माया मिलै न मोलि ॥१०॥
ग्यांन ध्यांन 'सुधि बुधि' गई, भाव गयां भै जाइ ॥
जन हरीदास सरवस गया, तब मन दीया मुकलाइ ॥११॥
निज करतूति कमांण करि, 'सुवधि' चिला लै चारि ॥
ग्यांन ध्यांन का वांण करि, मन मेवासी मारि ॥१२॥
हिरदा हुजदा अजव है, फेरि तहां मन आंणि ॥
जन हरीदास 'तीसूँ' तषत, तहां तँगोटी तांणि ॥१३॥
जन हरीदास घट की घटा, सुरति दांमणी देष ॥
मन पांणी पांणी मिल्वा, परस्या नहीं अलेष ॥१४॥
जन हरीदास तत तेज का, सब घटि गरजै आइ ॥
मन पांणी मनसा घटा, वरसत गया विलाइ ॥१५॥

पाठभेद—घाट-१। बहु-१। सुध-बुध-५। सुबुधि-१। सुरति-४। तीसौ-१-३।

शब्दार्थ—चष=चक्षु, नेत्र। कर=हाथ। मेवासिया=गढपति, देह का स्वामी। वाट=मार्ग, विषयो की ओर। पूठा=वापिस, पीछा। भूँकि कर=कहकर, बारबार ध्यान आकर्षित कर। माया मिलै न मोल=आत्मज्ञान की प्राप्ति धन से नही खरीदो जा सकती, इसकी प्राप्ति तो जीवन को उत्सर्ग करने से ही होती है। तव मन दीया मुकलाइ=जब मन को अपनी इच्छानुसार चलने को छोड दिया जाय तो ज्ञान-ध्यान, भाव-भक्ति आदि सब ही समाप्त समझिये। चिला=वाण के आगे का फलक। हिरदा हुजदा=हृदयरूपी उत्तम स्थान। तीसूँ तषत=तीसो दिन। तँगोटी=छोलदारी, सद्विचार की छोलदारी। सुरति दांमणी=वृत्तिरूपी बिजली। मन पांणी पांणी मिल्या=मन का प्रवाहरूप पानी वासना के प्रवाहमय पानी मे मिल गया। परस्या नही=स्पर्श नही किया, सम्बन्ध नही जोड़ा। तत तेज का=चेतनतत्त्व का।

सदा सनेही रांम है, ताही सूँ मन लाइ ॥
जन हरीदास देह सहित धौला कहा, दीजै अगनि जलाइ ॥१६॥

सुई मुँई धागा थक्या, कंथा सींवै कौंण ॥
जन हरीदास मन दरजी जहां का तहां, करै और ही गौण ॥१७॥

माई 'मूँडू' मन की, जें कितहूँ चलि जाइ ॥
हरीदास कंठ तैं गह्या, कहि सरप 'कौंण' कूँ षाइ ॥१८॥

मन निरमल निरभै मतै, छाड़ै सबै विकार ॥
जन हरीदास तब पाइये, अलष 'पुरष' भरतार ॥१९॥

जन हरीदास सतगुर सबद, तहां मन रह्या समाइ ॥
अवधू सोई जांणिये, चुणि चुणि मन कूँ षाइ ॥२०॥

॥ इति ॥

॥ अथ माया को अंग ॥

भूषा सब भूषी भष्या, धाया कोई नांहि ॥
'औरां' कूँ परमोध दे, आपण नरकां जांहि ॥१॥

जन हरीदास साषी सबद, सब कोइ कहै बणाइ ॥
कहत कहत माया मिलै, कौंण भेद किस भाइ ॥२॥

माया छाया वै करि, जीव जहर फल षाइ ॥
जन हरीदास ता जीव कूँ, काल पकड़ि ले जाइ ॥३॥

पाठभेद—मूँडौ–१। कूँण–१। पुरिष–१। अवरां–१। कौ–१।

शब्दार्थ—सुई मुँई=वासना की सूई मरी। धागा थक्या=मनोवृत्ति प्रवाह का धागा भी रुक गया। कंथा=जीवनरूपी गुदड़ी। गौण=गमन, अन्य प्रवाह मे प्रवाहित है। अवधू=आत्मनिष्ठ साधक। भूषा=भोग भोगने की प्रवृत्ति वाले। भूषी=माया, तृष्णा। धाया=तृप्त।

मोह लगाम 'त्रिसना' तुरी, चित चौगानों हाथि ।।
जन हरीदास माया दड़ी, चलै न काहू साथि ।।४।।

मेर तेर चौगान बिचि, 'त्रिसना' तुरी नषाइ ।।
जन हरीदास केते गये, माया गींद गुडाइ ।।५।।

अणभै की कथणी कथै, अंतरि लागी लाइ ।।
मंजारी पै प्रीति 'ज्यूं', मन माया कूं जाइ ।।६।।

जन हरीदास माया नरां, मारै अंगि लगाइ ।।
पहली सजन व्है मिलै, पछै 'पिसण' व्है षाइ ।।७।।

जन हरीदास माय मिल्यां, सो ब्रह्म मिलै नहिं जाइ ।।
दूजा 'औगुण' को नहीं, माया लिया तुडाइ ।।८।।

जन हरीदास माया बिरछ, फल बिकार रसरूष ।।
ता तरवर पंषी बसै, न्याइ सहै सिरि धूष ।।९।।

माया भैंसि विराट वप, जीव बिलंबे आइ ।।
काल काग छाडै नहीं, वै लागै 'वोह' षाइ ।।१०।।

तेलि मांहि माषी पड़ी, तन का हूवा भंग ।।
जन हरीदास माया मिल्या, तिन का योही ढंग ।।११।।

माषी तौ गुड़ मैं गड़ी, तली कडाही मांहि ।।
जन हरीदास मीठै ठगी, तूं मति मीठौ षांहि ।।१२।।

पाठभेद—त्रिष्ना-४-५ । ज्यौ-१ । पिसुण-१ । अवगुण-१ । वो-३-५ ।

शब्दार्थ—तृष्णा तुरी = तृष्णारूपी घोडी । माया गीद=सम्पदामय दडी । गुडाइ=इधर-उधर फैंक कर । अणभै=अनुभव । कथणी कथै=कथन करे । लाइ=तृष्णा की आग । मंजारी पै प्रीति ज्यूं=बिल्ली का जैसे दूध से प्रेम । अं.गुण=दोष, अवगुण । तुडाई=तुडवाकर, आध्यात्मिक प्रवृत्ति से हटाकर । पषी=मन पषी । माया भैंसि विराट वप=माया ने अज्ञान का अन्धकार फैला, भैस की तरह अपना विराट् रूप बनाया है । भंग=विच्छेद, नाश । ढग=दशा, हालत । मीठेठगी= विषयभोग की मिठास ने मनोवृत्ति को ठगी ।

माया की छाया रहै, कहै अगम की बात ॥
हरीदास जन 'यूं' कहै, 'याह' 'सौरां' की घात ॥१३॥
माया देष्यां मन षुसी, मुलकि पसारै हाथ ॥
जन हरीदास तूं मति करै, वाह सौरां को साथ ॥१४॥
माया देष्यां मन षुसी, 'विछडयां' बहौत बिवोग॥
ये बुग ध्यानी बापडा, कैसे साधे जोग ॥१५॥
जन हरीदास'सांसां'मिटया, माया की गम लध ॥
रूसि रह्या ते ऊबरया, षुसी हुवा ते षध ॥१६॥
जन हरीदास माया तजी, जहाँ माया तहाँ रोग ॥
तीन लोक का राज दे, तौ भी बिपति बिवोग ॥१७॥
माषी मुंह काला करै, अंतरि बैठी आइ ॥
हरीदास सो जन भला, माषी देइ उडाइ ॥१८॥
छल बल करि जहाँ की तहाँ, पूठी बैसे आइ ॥
जन हरीदास गोबिंद बिमुष, ताकूं माषी षाइ ॥१९॥
रांम भजै सो ऊबरै, सतगुर सरणै आइ ॥
जन हरीदास ता साध कूं, कदै न माषी षाइ ॥२०॥
माया तणै अंधारड़ै, फिरि लागा सब जीव ॥
हरीदास जन 'यूं' कहै, कैसे परसै पीव ॥२१॥
माया बाग 'बिवधि' फल, दुष सुष फूल फरक ॥
जन हरीदास चौरासी लष जीव सब, मधुकर होइ गरक ॥२२॥

पाठभेद—यौ-१ । या-५ । स्यौरा-५ । बिछुड्यां-१ । ससा-१ । यौ-१ । विविधि-१ ।

शब्दार्थ—सौरा=शोहदा, दुष्चरित्र । बुगध्यानी=नकली साधक, ठग महात्मा । गम लध=असलियत मिली । रूसी रह्या=रूठि रह्या, अप्रसन्न हुए । षध=षाया । माषी मुंह काला करै=माया रूपी मक्खी जिस पर बैठती है, उसका मुंह काला करती है, जीवन निष्फल बना देती है। ऊबरै=बचे सुरक्षित रहे । अंधारडै=अंधेरे मे । मधुकर= भौरे हो ।

संग कीयां सांपणि डसै, आइ अंधारै षाइ ॥
जन हरीदास सूक बिरछ की छांहडी, कहौ मुकति 'क्यूं' जाइ ।२३।
काया माया झूठ है, साच न जाणी बीर ॥
जन हरीदास कहि का की भागी त्रिषा, पी 'म्रग' त्रिसनां को नीर ॥२४॥

॥ चाणिक को अंग ॥

कीरतन्यां काचै मतै, जपै न केवल रांम ॥
जहां तहां नाचत फिरै, माया मिलै न रांम ॥१॥
चोटी ऊपरि चोट, कै लागी कै लागसी ॥
गहो रांम की वोट, ते नर निरभै 'जागसी' ॥२॥
माला मुंह काला करै, चोटी ऊपरि चोट ॥
जन हरीदास निरभै मतै, गहो रांम कीं वोट ॥३॥
दुनिया सूं दिल दे मिलै, साधां सूं उरि और ॥
हरीदास जन यूं कहै, पहुंचेंगे किस ठौर ॥४॥
आप भजन कूं आलसी, 'औरां' कूं दे आड़ ॥
जन हरीदास हरि तैं विमुष, पसू पड़ेंगे षाड़ ॥५॥
जन हरीदास सुष अगम है, मथि काढै ते संत ॥
जल थोड़ा आँधी घणी, अैसा ग्यान अनंत ॥६॥
भौंह मांहि अंतरि विथा, बौलै मीठै माइ ॥
जन हरीदास निगुरा तिको, निहचै नरकां जाइ ॥७॥

पाठभेद—क्यौ-१। मृग-५। जागिसी-१-४। अवरा १।

शब्दार्थ—अंधारै=अज्ञान मे। कीरतन्या=कीर्त्तन करने वाले, दिखाऊ भक्त। काचै मतै=अस्थिर विचार, दिखाऊ भक्ति। आड़=बाधा, रुकावट। भौहमाहि अन्तर व्यथा=दिखाने मे भाव भंगी परम त्याग की दिखावे, पर भीतर से वासना की पीड़ा से व्याकुल।

गुण पोषै निरगुण कथै, सुरति न 'लागी' साचि ॥
जन हरीदास काचै मतै, बहौत गया यूं नाचि ॥८॥
ग्यांन ध्यांन पोथ्यां लिष्या, हिरदै सक्या न राषि ॥
जन हरीदास ता साध की, हित दै 'सुणी' न साषि ॥९॥
चाल्या था 'पणि' बाहुड्या, हीरा बैठा हारि ॥
जन हरीदास कौडी रता, तिन का संगि निवारि ॥१०॥
जोरीं करि चौरी करै, बैसि ग्यांन की छांह ॥
हरीदास जन यूं कहै, ताकी भूठी बाँह ॥११॥
आपा की आंटी पड़ी, दुष सुष व्यापै दोइ ॥
जन हरीदास चौथी दसा, 'चतर' न पहुँचै कोइ ॥१२॥
जहां आपौ तहां आंतरो, करणांसागर दूरि ॥
जन हरीदास आपौ मिट्यां, है हरि सदा हजूरि ॥१७॥
पैंड एक आघा चलै, पग दस पूठा जाहि ॥
जन हरीदास कहणी कहा, रजमा रहणी मांहि ॥१४॥
मनसा का बादल भया, कांम क्रोध जल जोर ॥
जन हरीदास कहणी सरस, रहणी बडी कठोर ॥१५॥
आपै चढि ऊंचा भया, कोटि करम लै साथि ॥
दौड्या था हरि हेम कूं, कौड़ी आई हाथि ॥१६॥

पाठभेद—लागै--१। सुणै–१। पिण–१। चत्र–१।

शब्दार्थ—गुणपोषै=सात्विकादि तीनो गुणों का पोषण करे, बढावे। निरगुण कथै=कथा-उपदेश मे निर्गुण की महिमा कहे। ता साध की=ब्रह्मनिष्ठ महात्मा की। हित दै=ध्यान से, श्रद्धा से। साषि=शब्द, उपदेश। भूठीबाँह= भूठा सहारा, मिथ्या सहयोग। चौथी दसा=सहज अवस्था, मुक्त दशा। आतरो= अन्तर, भेद। आघाचलै=आगे चले। रहणी मांहि=आचरण मे, रहन-सहन-व्यवहार में। आपै चढि=अहंकार से अपने को ऊँचा माने।

सिंघ सदा बन में वसै, गीदड़ गरजै आइ ॥
एक दिहाड़ै थाप की, सहजै सिर में षाइ ॥१७॥

जन हरीदास केहरि गरज, जंबक लहै न जांण ॥
जब केहरि केहरि मिलै, तब गरज्यां 'परवाण' ॥१८॥

मोड़ा माथा मांनई, ताल वजावै तोड़ि ॥
जन हरीदास उनकी संगति, नां पहुँचावै वोड़ि ॥१९॥

अरथ करै अनरथ नहिं छूटै, तातैं फिरि फिरि भांड़ा फूटै ॥
हरीदास जन अैसी कहै, कोई उलटा षेलि परम पद लहै ॥२०॥

'मूनी' वाहणि 'जोइ' करि, ऊपरि बैठा साह ॥
जन हरीदास या विणज मैं, तोटा घणां क लाह ॥२१॥

भूष प्यास संकट सहै, सहै विडांणा भार ॥
जन हरीदास मूनी वलद, का सूं करै पुकार ॥२२॥

उलटी नै सुलटी कहै, ऊंधी नै सूंधी ॥
जन हरीदास सांसै ड़सी, दुनिया चकचूंधी ॥२३॥

कहां कागद कहां मिनिष दिल, लिषी साध की बात ॥
कर तैं छूटा लागी पवन, उड्या उड्या जात ॥२४॥

पाठभेद—प्रवाण-१ । मौनी-१ । जोति-३ ।

शब्दार्थ—सिंघ=काल केहरी । एक दिहाडै=एक दिन । परवाण=प्रमाण । मोडामाथा=नकली वेष धारण करने वाला । अनरथ नहिं छूटै=हिंसा, काम, क्रोध, छल-कपट आदि अनथ नही छूटते है । मूनी=मौन रखने वाला, न बोलने वाला । वाहणि=वहन करने वाले, बैल-घोड़े आदि । तोटा=नुकसान, घाटा । लाह=लाभ, मुनाफा । विडाणा=ओरो का । सांसै डसी=संशय से ग्रसित, सन्देह मे उलझी । कहाँ कागद कहाँ मनिष दिल, लिषी साध की बात=अनुभवी महात्माओ का उपदेश केवल कागज मे लिख लेने से क्या लाभ हो? यदि वह उपदेश हम धारण नही करते । जैसे लिखित कोई पत्र हाथ से छूट कर हवा मे कहाँ का कहा व्यर्थ उड जाता है । इसी तरह लिखित वेद-शास्त्रो का महत्व उनमे कहे गये उपदेश को धारण करने से है, अन्यथा नही ।

झूठै कर आघा किया, मन की मिटी न रेष ॥
*जन हरीदास तरसुत जल्या, संगति का गुण देष ॥२५॥
पांन अगनि मुष ऊबरै, गोला ताता होइ ॥
जन हरीदास साची संगति, जलतन देष्या कोइ ॥२६॥
हेम अगनि मुख जालिये, धांतां संगि लगाइ ॥
जन हरिदास कंचन तिकौ, बिकै लोह कै भाइ ॥२७॥
लोहा जल सूं धोइये, तब लग कांटी षाइ ॥
जन हरीदास पारस मिल्यां, मंहगै मोलि बिकाइ ॥२८॥

॥ भरमविधूंस को अंग ॥

ज्यूं मूरति त्यूं ही सिला, रांम बसै सब मांहि ॥
जन हरींदास पूरण ब्रह्म, घाटि बाधि कहुँ नांहि ॥१॥
माणस परमेसुर किया, सो तौ करता नांहि ॥
जन हरीदास करता 'पुरसि', ब्यापि रह्या सब मांहि ॥२॥
नहिं देवल सूं बैरता, नहिं देवल सूं प्रीति ॥
'किरतम' तजि गोविंद भजै, याह साधां की रीति ॥३॥

पाठभेद—पुरस-५ । क्रितम-१ । किरत्म-४ ।

शब्दार्थ—तरसुत=तरुसुत=पीपल का पता । हेम=सोना । धातां=धातुएं, लौह-ताम्बा आदि । कांटी=जर, मैल । माणस परमेश्वर किया=रामकृष्णादि मानव शरीरधारी को परमेश्वर कहते है । देवल=पाषाणमूर्ति । किरतम तजि= वनावटी ईश्वर को छोड ।

* पुराने समय मे दैवी परीक्षा का चलन था । झूठ और सत्य का निर्णय अग्नि-संसर्ग से किया जाता था, जैसे सीताजी की परीक्षा की गई । इस प्रसंग का साषी-२५-२६ मे निर्देश है । झूठे के साथ से पत्ता जल जाता है, सच्चे के साथ नही जलता ।

लोक 'दिषावौ' मति करै, हरि देषै ज्यूं देष ॥
जन हरिदास हरि अगम है, पूरणब्रह्म अलेष ॥४॥

जन हरीदास साची कहै, माहिबजी की 'सौंह' ॥
पाहण कूं करता कहै, ताका काला 'मौंह' ॥५॥

जैन धरम माया 'सरूप', 'परस्यां' लागै पाप ॥
जन हरीदास निरभै मतै, भजौ निरंजन जाप ॥६॥

साची कथा सुणावतां, मति कोई मानै रीस ॥
अलष निरंजन छाड़ि करि, भजै भरम चौईस ॥७॥

जैन धरम सब तैं बुरा, भला कहै सौ कौंण ॥
'सूने' घर मैं सरप है, तहां न कीजै गौंण ॥८॥

जैन धरम सोध्या सबै, ग्यांन सूप ले हाथि ॥
फटकि फटकि फटकूं कहा, कोई कुणका लगै न हाथि॥९॥

जैन धरम की बातड़ी, सांभलि मनना बीर ॥
ऊजड़ कूप उजाड़ि मैं, तहां छाया नांही नीर ॥१०॥

जैन धरम की बातड़ी, सुणत सुणत 'भया' भोर ॥
जन हरीदास जहाँ का तहाँ, घर मै मैं तैं चोर ॥११॥

पांच तत का पूतला, रज बीरज की बूंद ॥
एकै घाटी नीसरचा, बांमण षत्री सूद ॥१२॥

देवल मांही देव है, घटि घटि धरचा बणाइ ॥
जन हरीदास 'याह' चूँधि है, तूँ गुण गोविंद का गाइ ॥१३॥

पाठभेद—दिषावा–१ । सू ह–५ । मुंह–३ । सरप–२ । प्रस्या–१ । सूना–१-५ । भए–१ । या–१ ।

शब्दार्थ—सौह=सौगन्ध, शपथ । परस्या=अपनायां । रीस=गुस्सा, बुरा । गौण=गवन । सोध्या=देखा, तलाश किया । कुणका=तत्वकण । नीसरचा=निकले, उत्पन्न हुए । सूद=शूद्र, अन्त्यज । चूंधि=भ्रम, अज्ञान ।

॥ भेष को अंग ॥

भेष पहरि भांडी करी, फेरि धराया नांव ॥
जन हरीदास 'सांमी' 'पणौ', बहौड़ि रोग मैं पांव ॥१॥
जन हरीदास बादल बिगति, बूठां ब्यौरा होइ ॥
भेष बराबरि करि मिले, सुमिरण का सुष दोइ ॥२॥
जन हरीदास गोविंद विमुष, तिन सिरि जम का हाथ ॥
बाहरि मूँडित 'देषिये', भीतरि सलवा साथ ॥३॥
जन हरिदास कहै या जग मैं, एक अचंभा भारी ॥
हम टोपी काहै कूं पहरैं, उलटी चाल हमारी ॥४॥
सांग काछि सोहरा हुवा, हीरा न आया हाथि ॥
जन हरीदास तांडौ लद्यो, तब सब कुता साथि ॥५॥
जन हरीदास तांडौ लद्यौ, तब सब कूंता साथि ॥
संगि तांडौ संग ही कुता, कछू न आया हाथि ॥६॥
निरभै पद गावे नहीं, गाईज रस रागे ॥
हरीदास जन यूं कहै, मोडा भला न काग ॥७॥

॥ साच को अंग ॥

मिथ्या सबद न 'बोलिए', जन हरीदास यहु आन ॥
बंबल बिरछ लागै नहीं, पारिजाति कै पांन ॥१॥

पाठभेद-- । स्यामी-१ । पनौ-५ । देषिए-३-४ । बोलिये-२ ।

शब्दार्थ--भाडी करी=भाडपन किया । बूठा=बरसना । ब्यौरा=विवरण, असलियत । सलवा=सशय का सल । साग काछि=सागबना । सोहरा हुवा=राजी हुआ, सुख माना । ताडो लद्यो=पडाव उठा । कुत्ता=केवल भोजनार्थी श्वान सम मनुष्य । रस राग=रसिया गाना । मोडा=मुण्डित । आन=दुहाई, शपथ । पारिजाति=देववृक्ष, हारश्रृङ्गार ।

×धर कद्रज कद्रज बिरछ, भी कद्रज फल पात ॥
जन हरीदास ता बिरछकुल, विपति नदी बहि जात ॥२॥

॥ साध को अंग ॥

तेल कडाही जलत है, कल विन झलन बुझाइ ॥
जन हरीदास सीतल भया, तब चंदन पहुंता आइ ॥१॥

काम क्रोध त्रिसनां तजी, त्रिबधि ताप का नास ॥
रांम नाम हिरदै सदा, जन हरीदास यौ दास ॥२॥

गूदडियौ आछै मतै, भजै निरंजन राइ ॥
जन हरीदास ता साधकी, 'महिमा' कही न जाइ ॥३॥

चित मांही वित ले रहया, सम्रथ सिरजनहार ॥
जन हरीदास ता साध का, मिलि कीजै दीदार ॥४॥

पाव पलक छाडै नहीं, हिरदा तैं हरि नाँव ॥
जन हरीदास ता साध की, मैं बलिहारी जाँव ॥५॥

आठौं पहर भजै अविनासी, 'इहै' भेष मन मांहि ॥
रूंड मूंड कहा टोपी-पहरयाँ, देह भरोसा नांहि ॥६॥

पाठभेद—महमा-५ । इहि-४ ।

शब्दार्थ—कल विन=सामयिक सूझविना । यौ दास=वहीसच्चा महात्मा है । पाव पलक=क्षण भर भी । इहै भेष=यही रग ।

×खराब भूमि मे खराब ही बीज से उत्पन्न वृक्ष जिसके पत्ते-फल भी बुरे हों उस वृक्ष का व उस की परम्परा का क्या महत्व है ? इसी तरह मनुष्य भी जो गन्दा रहने का अभ्यासी है, गन्दे उसके विचार है और गन्दी ही उसकी क्रिया है उसका जीवन व्यर्थ है ।

रांम भजन आनंद सदा, आठौं पहर अछेह ॥
रांम भजन बिन मांनई, बादि गमावे देह ॥७॥

'ना' काहू सूं बैरता, मोह न बांधै साध ॥
जन हरीदास आठौं पहर, 'भजिए' रांम अगाध ॥८॥

भाव भगति गोबिंद भजन, जाकै हिरदै होइ ॥
जन हरीदास ता साध कूं, गंज न सकै कोइ ॥९॥

भाव भगति गोविंद भजन, दया दिढ़पण दाषि ॥
जन हरीदास गुरग्यान गहि, ये साथी संगि राषि ॥१०॥

'परम' सनेही रांम है, कै रांम तुम्हारे सन्त ॥
जन हरीदास हरि भजन बिन, पासी 'और' अनंत ॥११॥

अलष निरंजन नाथ सति, सति रांम रांम का साध ॥
जन हरीदास 'बरणूं' कहा, 'याह' तौ बात अगाध ॥१२॥

मन उलटा चढ्या आकास कूं, पवन सुरति लै हाथि ॥
जन हरीदास ता साध कै, सदा निरंजन साथि ॥१३॥

जाष्यूं को लागै नहीं, 'भजिए' केवल रांम ॥
जन हरीदास ता साध का, निरभै पद 'बिसरांम' ॥१४॥

नरक सुरग सब 'परहरया', गहि गुर ग्यांन विचार ॥
जन हरीदास ता साध सूं, सनमुष सिरजनहार ॥१५॥

पाठभेद—नहि-१। भजिये-२। प्रम-१। अवर-१। बरणौ-१। या-४ ५। भजिये-२। विश्राम -५। परिहरया-१।

शब्दार्थ—अछेह=विना अन्त, निरन्तर। मोह=ममता, अनुराग। गंज=परास्त, हराना। दिढपण=मजबूती, दृढता। पासी=बन्धन, बाधाये। उलटा चढ्या आकास कूं=मन अन्तर्मुख हो लय वृत्ति से गगनमंडल ब्रह्मरन्ध्र मे पहुंचा। जाष्यूं=जोखिम, धन, सम्पत्ति मे।

जन हरीदास 'सो' जन भला, भजै अषंडित रांम ॥
राग दोष मैं तैं नहीं, जोग मूल सूं कांम ॥१६॥
अजब 'इष्ट' रहणीं अजब, अजब बात सूं हेत ॥
जन हरीदास षेलै तहाँ, कोई साध सुचेत ॥१७॥
गूदडियो निरभै मतैं, चालै उलटी चाल ॥
जन हरीदास ताकी संगति, जब तब करै निहाल ॥१८॥

॥ मधि को अंग ॥

बैरागी ग्रिह वन तजै, मधि कै पैंडे जाइ ॥
जन हरीदास आपा रहत, सुष मैं 'रहचा' समाइ ॥१॥

॥ उपदेश को अंग ॥

सीष भीष की बातड़ी, सांभलि मनवा बीर ॥
भीषत भीषत ही पछै, होइ समद सूं सीर ॥२॥
बात कहत पैंडा थकै, चलतां होइ स होइ ॥
जन हरीदास हरिधाम तहां, पहुंचै बिरला कोइ ॥३॥
अजब साषि साचा सबद, घर मैं रहै न सोइ ॥
जन हरीदास गोविंद भजै, पला न पकड़ै कोइ ॥४॥
इत उत 'चितवणि' छाडि दे, मनसा मरैं तो मारि ॥
जन हरीदास हीरा जनम, कौडि सटै न हारि ॥५॥

पाठभेद—सोई-१ । इसट-४ । रहे-१ । चितवनि-१-५ ।

शब्दार्थ—अजब=अनोखा, अद्भुत । सुचेत=सावधान हुए । सीष=ग्रहण कर । भीष की बातडी=निरन्तर आत्मचिन्तन मे लगने की बात सीख जाना । चितवणि=देखना ।

जन हरीदास लीजै नहीं, कंचन बदले काच ॥
जो 'कछू' गया स जांण दे, तूं रहता सूं राच ॥६॥
रहता रमता रांम है, दूजा कोई नांहि ॥
जन हरीदास यूं जांणि करि, सो राख्या मन मांहि ॥७॥
आग्या मांगू अगम की, अगम सुगम यूं होइ ॥
हरीदास जन यूं कहै, भूलि 'पडौ' मति कोइ ॥८॥

॥ विचार को अंग ॥

हरीदास 'कहिए' कहा, देष्या 'सोचि' विचारि ॥
झूठा सुष सूं लागि करि, हरि सुष चाल्या हारि ॥९॥

॥ वेसास को अंग ॥

पूरण हारा पूरि है, जन हरीदास हरि राइ ॥
'जल' 'थल' कीट पतंग 'लूं', जहां तहां रह्या समाइ ॥१॥
सांई सब कूं देत है, बहौडि कबहूं नहिं लेत ॥
हरीदास जन यूं कहै, बाकै देबाहीं सूं हेत ॥२॥
जन हरीदास दाता दई, दूजा कोई नांहि ॥
सब कुछ करि सब तैं अगम, व्यापि रह्या सब मांहि ॥३॥
अैसा कोई एक है, बीस तीस तौ नांहि ॥
आतस लागा मन 'सथिर', निरभै निजपद मांहि ॥४॥

पाठभेद—कुछ-१। पड़े-१। कहिये-२। सोच-४। जलि थलि-२-३-४। लौं-१। सुथिर-१।

शब्दार्थ—सुगम=सरलता से प्राप्त। हरिराइ=राजाओं का राजा परमेश्वर। दाता दई=बड़ा दानी। आतस=व्याकुल हो, आतुर हो।

आतस लागा मन चलै, तौ मांगिर भिष्या षाइ ॥
जन हरीदास उदिम अजब, भजै निरंजन राइ ॥५॥

इजगर उदिम करत है, आतस लागा दोइ ॥
जन हरीदास वैराग 'व्रत', तहां कछु उदिम न होइ ॥६॥

इहि उदिम अवगति भजै, गंग जमन मधि बास ॥
जन हरीदास तब देषिये, षरम जोति 'परकास' ॥७॥

परा परै पूरणब्रह्म, तहां मन रह्या समाइ ॥
जन हरीदास अैसा उदिम, और उदिम कूं षाइ ॥८॥

तन का उदिम कहां 'रहै', जब मन 'पिंगुल' होइ ॥
जन हरीदास 'मिरतग' पगां, चलत न देष्या कोइ ॥९॥

जे कबहू मिरतग चलै, तौ बीचि बिटंब कोइ और ॥
जन हरीदास मूंवां पछै, नहीं 'कुटंब' मैं ठौर ॥१०॥

सत रज तम षट ऊरमी, मैं तैं मोह जात सुष गोइ ॥
जन हरीदास विग्यांन व्रत, तहां उदिम नहिं होइ ॥११॥

॥ पतिवरता को अंग ॥

सेवग हाजरि 'चाहिए', साहिब सदा हजूरि ॥
'पून्यूं' पूरा चंद ज्यूं, जहां तहां भरपूरि ॥१॥

पाठभेद—व्रिति-२ । प्रकास-१ । करै-३ । पिंगुण-२ । मृतग-१-५ । कुटुम्ब-१ । । चाहिये-२-३ । पून्यौ-१ ।

शब्दार्थ—उदिम=उद्योग, प्रयास । इजगर=अजगर सर्प । गंग जमन मधि वास= इडा-पिंगला के मध्य मे सुषम्ना का वास है उसमे प्राण प्रवाह करना । पिंगुल= पंगुल, स्थिर, निश्चल । मिरतग पगां=काम न देने वाले पैरों से । विटम्ब=विडम्बना, साजिश । षट् ऊरमी=भूख, प्यास, हर्ष, शोक, जन्म, मरण । विग्यानव्रत=आत्मज्ञान प्राप्ति की दृढ़ता, प्रतिज्ञा । सेवग हाजिर चाहिए=साधक अपनी साधना मे तत्पर रहना चाहिए ।

वार पार मति गति अगम , आदि अंति मधि नांहि ॥
जन हरीदास आनंद सदा , प्राण बसै ता मांहि ॥२॥
ब्रह्मग्यांन ब्रत निंदतां , भला न कहसी कोइ ॥
जन हरीदास एक छाडि दूजा भजै , जे दूजा सति होइ ॥३॥
दूजी पूजा काल की , पकड़ि काल ले जाइ ॥
जन हरीदास रांम छाडि दूजा भजै , तासूं मिलैं बलाइ ॥४॥
जन हरीदास याही कठिन , सब कौ चाहे मान ॥
'कहिं धू' कैसे मानिये , बींद बिहूणी जान ॥५॥
बींद अमर बरि बरण तजि , सुष मैं सुरति निवास ॥
'पतिवरता' पति कूं मिलै , कै निसदिन रहे उदास ॥६॥

॥ विरकताई को अंग ॥

वैरागी माया तजै , रांम भजन सूं प्रीति ॥
जन हरीदास षेलौ कहूं , देही का गुण जीति ॥१॥
हाटां बाटां ही रहै , भजै निरंजन नाथ ॥
आंन कथा मानै नहीं , हरि भगतां कौ साथ ॥२॥

॥ समरथाई को अंग ॥

आगै पीछै रांमजी , पूरणब्रह्म अगाध ॥
हरीदास जन यूं कहै , ता सुषि लागि रहया सब साध ॥१॥
रांम दया 'सनमुषि' सदा , जे हरिजन सनमुष होइ ॥
काल जाल लागै नहीं , पाडा लगै न कोइ ॥२॥

॥ इति ॥

पाठभेद—कहि द्यौ–१–३ । पतिव्रता–१ । सनमुष–४-५ ।

शब्दार्थ—निंदता=निंदा करना, हेय बताना । बलाई=दुर्भाग्य । हाटां बाटा ही रहे=जिस साधक ने मन, प्राण, वृत्ति को वश मे कर लिया है, उसको गिरि-गुफा या निर्जन वन की आवश्यकता नही, वह चाहे बाजार मे बैठा रहे या रास्ते मे, उसके ध्यान मे कोई बाधा उत्पन्न नही होती ।

॥ सूरातन को अंग ॥

कोड़ि रूपस वारि है, हीरा रूपस पारि ॥
लेगा कोई जौंहरी, मेल्है सीस उतारि ॥१॥
'अगनि' दहै दुख पाइये, बुधि बल कछु न बसाइ ॥
यूं ऊंचा सूं गिरि पड़ी, पर दुख सहै वलाइ ॥२॥
तन तूटो कुटका हुई, रती न मानी संक ॥
षेत षरै मन थिर नहीं, रे दोहणी निसंक ॥३॥
सनमुष व्है श्रवणां सुणी, तैं आपणी सुवालि ॥
षागां मुहि षिसतांषिमा, रे दोहणी दयाल ॥४॥
दया इहै साधां सुपहै, चाली निज घर ताकि ॥
जन हरीदास यूं जांणिये, 'बहोडि' न चढ़ई चाकि ॥५॥

पाठभेद—अग्नि १। बहुडि–१-५।

शब्दार्थ—वारि है=ऊलीओर है, इस किनारे है। पारि=उस पार, संसार सागर से पार। तूटो=टूटा, भग्न हुआ। कुटका=कण कण, टुकड़े टुकड़े। सक=भय, कांण। दोहणी=हाँडी, पात्र, मनुष्य शरीर।

साषी–२—गर्भाग्नि से सतप्त हो गर्भकाल मे बहुत क्लेश पाया, पर वहाँ वल-बुद्धि का कोई वश नही चला। काल पाकर गर्भ से बाहर आया तो फिर माया-मोह मे पड देह रूप यह हाँडी फिर अनेकों दु:ख उठा रही है।

साषी–३—तन तूटौ चंचल हुये मन की वृत्ति कुटका हुई विषयों मे लग खड खंड हुई, विचलित मन तथा वृत्ति ने किसी तरह की शका–मर्यादा नही रखी। यदि ससार के युद्ध क्षेत्र मे मन स्थिर नही तो फिर यह कायारूप हाँडी निशंक हो, कर्म बन्धनों मे उलझती है।

साषी–४—रे दोहणी हे काया रूपी हाँडी जब आत्मपरिचय की तीव्र लगन से गुरु के सम्मुख हो उनका सत्य उपदेश सुना–उसको अपनाया और साधना से अपने को सँभाला, तब धैर्यपूर्वक दयालुता से बिना प्रतिहिसा की भावना के काम-क्रोध-लोभ मोहादिको के आघातो को निष्फल कर दिया।

रांम भजै निरभै थकी, तकी न काई वोट ॥
लागी पण भागी नहीं, 'उरि' पाहण की चोट ॥६॥

भागां को भै को नहीं, जे मन मांडै धीर ॥
परवत सुत सूं बांजि करि, लीकां राष्यौ नीर ॥७॥

लिषमी सुत अरु गिरि सुता, आज मंड्यौ भारथ ॥
पिसणां मांही पैसि करि, भला दिखाया हथ ॥८॥

सूरवीर साचै मतै, भजै सनेही रांम ॥
जन हरीदास ता साध का, सरै सही सूं काम ॥९॥

सीस दैंण की ठौड़ है, तूं अपणा सिर देह ॥
जन हरीदास सिर कै सटै, रांमरतन धन लेह ॥१०॥

पाठभेद—उर-५।

शब्दार्थ—भागांको=टूटने का, भागने का। परवतसुत=पत्थर। लषमीसुत=मिट्टी। सटै=वदले में, एवजी में।

साषी-५—गुरु उपदेश तथा महात्माओं की दया का यह परिणाम है कि अब संसार से विरत हो तुम अपने मूलस्थान समष्टिचेतन ब्रह्म की ओर अग्रसर हो रही हो। हरिदासजी महाराज निर्देश करते हैं कि अब यह समझो कि पुनः जन्म-मृत्यु के चाक पर नहीं चढना है।

साषी-६—उपरोक्त रूप में जब साधक की धारणा दृढ हो गई तो वह निर्भय हो आत्मचिन्तन मे लग गया। अब और किसी सहारे की आवश्यकता नहीं रही। अब वासनारूपी विविध पत्थरों की चोट लगती है तो भी अबवृत्ति आत्म-चिन्तन से भंग नही होती।

साषी-७—यदि साधना से मन सुस्थिर हो गया है तो फिर वृत्ति के कभी लडखडाने का कोई भय नही है। अब तो बाजी लगा कर काम-मद-मोहादि से जीवन रूपी नीर को सुरक्षित कर लिया है। अब पुनः कर्मबन्धन में पडने की कोई संभावना नही।

साषी-८—आज अहंकार के साथ विवेकसम्पन्न सद्बुद्धि का युद्ध चल रहा है। सद्बुद्धियों ने भी षड्रिपु तथा आसुरी सम्पत्ति के दुर्गुणों को दूर खदेड़कर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है।

जन हरीदास हरि मिलण कूं , अंतर किया बिचार ॥
जे सिर साटै हरि मिलै , तौ 'सिर सौंपूं' सौ बार ॥११॥
सिर तेरा तूं सिर धणीं , मुझ सिर सूं क्या काम ॥
सिर है बिष का तूंवडा , तूं सुष का सागर राम ॥१२॥
जोग 'पंथि' पग मति धरै , धरै तो सीस उतारि ॥
हरीदास जनू यूं कहै , यो ही अरथ विचारि ॥१३॥
अगन सिंघासण अगनि समि, काचा टिकै न कोइ ॥
जन हरीदास बैठा तहां , दिन दिन आनंद होइ ॥१४॥
जन हरीदास मैदान में , खेलत है गोडारि ॥
कोड्यां मध्ये एक कौ , ले जैं पै ते मारि ॥१५॥
सिंघ भषौ विषहर डसौ , भावे झडौ सुभाइ ॥
जन हरीदास गोविंद भजौ , तन सूं सुरति चुकाइ ॥१६ ॥
काइर सूं काइर मिलै , सूर मिलै सति सूर ॥
जन हरीदास आनन्द सदा , वाजै अनहद तूर ॥१७॥
मेर उलटि वसुधा भषी , 'प्रवल' 'प्रवत' नांहि ॥
बिणि पांषा ऊँचा चढ्या , वस्या आकासां मांहि ॥१८॥

पाठभेद—सिर सौप्या जै-१पंथ-१-३ । परवल-३ । परवत-३ ।

शब्दार्थ—अगन सिंघासण=ज्ञानाग्नि रूप सिंहासन। गोडारि=गोइन्द्रियाँ, उनके द्वारा। तन सूं सुरति चुकाइ=देहाध्यास से वृत्ति को हटाकर। मेर उलटि=मन अन्तर्मुख हो। वसुधा भषी=वासना को भषी-निर्मूल की। प्रवल प्रवत=दुर्लंघनीय काम-क्रोध-मोह-मदादि पहाड। बिणिपाषा=विना स्थूल पंखो के, विवेक-विचार से।

साषी—१८ मेर उलटि-मन आत्मनिष्ठ हो वासना रूपी वसुधा को समाप्त की। अहंकार, मद-मोह कामादि प्रबल पहाडवत् बाधक थे उनको साफ किया। स्थूल परो के विना विवेक-विचार के पखो से ऊपर उठ दशम द्वार-ब्रह्मरन्ध्र मे निवास किया।

मेर अडिग उलटी गंगा , आपा राल्या सूर ॥
जन हरीदास तब 'देषिए', नैंणा मांही नूर ॥१६॥
'पांचू'' इन्द्री फेरि करि, रांम भजन करि सूर ॥
जन हरीदास काइर वरां, काल बजावै तूर ॥२०॥
जन हरीदास पीव परसिये, पींच अटकि ल्यौ लाइ ॥
डावै करि मस्तग धरै, सूरा सनमुषि जाइ ॥२१॥
सीस उतारचा सूरि वै, छाड़ी तन की आस ॥
अंतरि राता एक सूं, परम जोति परकास ॥२२॥

॥ काल कौ अंग ॥

'एक' दिहाडै इन्द्र कूं, पकडि पछाडै काल ॥
हरीदास जन यूं कहै, गोपी रहे न ग्वाल ॥१॥
रांम दया न्यारी रही, राषण हारा कोड़ि ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, काल गहै घट तोड़ि ॥२॥
रांम नाम व्रत छाडि करि, जहां तहां जीव जाइ ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, काल तहां ही षाइ ॥३॥

पाठभेद – देषिये–२ । पाचौ–१-४ । येक–२ ।

शब्दार्थ—उलटि गंगा=वृत्ति बदली-अन्तर्मुख हुई । आपा=नाना अहंकार । राल्या=फेका, दूर किया । पाच अटकि–इन्द्रियो को रोक । एक दिहाड़ै=एक दिन । कोडि=करोड़ो ।

साषी१६— मन को निश्चल किया, वृत्ति को उलट प्राण से सम्बन्धित किया अहंकार तथा देहाध्यास को निर्मूल किया वही शूरवीर है, सच्चा योधा है । हरिदासजी महाराज कहते है ऐसे शूर साधको को ही वह परम नूर परभ ज्योति "नैणा मांहि" यानी प्रत्यक्ष होती है । एसे साधक ही ब्रह्मप्रकाश से प्रकाशित होते हैं ।

जन हरिदास गोबिंद भजो , गहि गुर ग्यांन विचारि ॥
करि कत्रांण कैवर 'लिये' , काल षड़ा दरबारि ॥ ॥४॥

देह षेह व्है जाइगी , मुंहि पडैगी मार ॥
जन हरीदास गोविंद भजौ , गहि गुर ग्यान बिचारि ॥५॥

हरि सुषसागर परहरया , कीच रह्या लपटाइ ॥
जन हरीदास ना जीव कूं , हिलियौ हाडौ षाइ ॥६॥

आसा कै घरि जम बसै , डा़व पड़ै तब षाइ ॥
हरीदास जन यूं कहै , हरिजन तहां न जाइ ॥७॥

पैले जलि पहुँता नहीं , उला जल की आस ॥
जन हरीदास सुरगुण कथा , तहां काल की पास ॥८॥

जन हरीदास मोटी विथा , करम काल जीव मांहि ॥
रांम भजै सो ऊबरै , दूजा छूटै नांहि ॥९॥

काल दहूं दिसि देषिये , जहां तहां भरपूरि ॥
जन हरीदास गोबिद भजौ , सो काल जाल सूं दूरि ॥१०॥

॥ संजीवणि को अंग ॥

'वोषद्' अजब अनूप है , जरै तो 'जुरा' न षाइ ॥
जन हरीदास तूटै बिथा , सुष मैं रहै समाइ ॥१॥

पाठभेद—लिया-१-५ । औषदि-५ । काल-५ ।

शब्दार्थ—कैवर=कितनी वार । कीच=वासना-तृष्णा के कादे मे । हिलियौ=हला हुआ । हाडौ=काल रूपी काग । आसा=चाह, भौतिक पदार्थों की इच्छा । पैलेजलि=परम आनन्ददायी चेतनतत्व रूपी जल । उला जल=विनाशी संसारसुखरूपी जल । करमकाल=सकाम कर्मरूपी काल । वोषद=औषधि, अमृत जडी, आत्मचिन्तन-रूप बूंटी । जरै तै=पचै, आत्मसात् हो ।

गूंगा कूं वोषद दई, 'षाइर' किया उषाल ॥
जन हरीदास ता जीव का, चूका नहीं जंजाल ॥२॥
वोषद जरै तो मन मरै, षाइर करै उषाल ॥
जन हरीदास ता जीव कूं, अंति 'गिरासै' काल ॥३॥

॥ दया निरवैरता को अंग ॥

चींटी फीटी व्है रही, रती न मानै संक ॥
पगां तलि रौंदी मरै, माथै चढै कलंक ॥४॥

॥ साध महमा को अंग ॥

जन हरीदास आनंद इहै, मन अपणां परमोधि ॥
करड़ा पंथ कबीर का, सो हम लीया सोधि ॥१॥
पीठि दई संसार सूं, परमेश्वर सूं प्रीति ॥
जन हरीदास कबीर की, याह कछु उलटी रीति ॥२॥
उलटै पैंडे परम सुष, परम साध तहां जाहि ॥
हरीदास जन यूं कहै, निगुरा पहुंचै नांहि ॥३॥
अगनि न जालै जल नहिं बूडै, झड़ि झड़ि पडै जंजीर ॥
जन हरीदास गोबिंद भजै, निरभै मतै कबीर ॥४॥
मारि मारि काजी करै, कुंजर बंदै पांव ॥
जन हरीदास कबीर कूं, 'लगै' न ताती बाव ॥५॥

पाठभेद—षायर–२ ग्रासै–१ । लगी–१ ।

शब्दार्थ—उषाल=उल्टी, वमन । चूका= चुकता, निवृत्त हुआ । जंजाल= माया के बन्धन । फीटी=निर्लज्ज । निगुरा=गुरु विना, अकृतज्ञ । बंदै=बन्धे, बान्धे गये । तातीबाव= वासना तृष्णा की हवा ।

राषणहारा एक तूं, मांरणहारा कोड़ि ॥
जन हरीदास कबीर का, कोई मता सक्या नहि मोडि ॥६॥

॥ करणा को अंग ॥

राति अंधारी सरप डर, सषी त सजन दूरि ॥
जन हरीदास हरि अगम है, करणां कीयाँ हजूरि ॥१॥

॥ कामी नर को अंग ॥

करम कडाही काम जल, मैं तैं लुकटि मांहि ॥
जन हरीदास जीव जलत है, जांणै कोई नांहि ॥१॥
रांम नाम न्यारा रह्या, 'नांणा' नारि साथि ॥
जा सुष की गति मति अगम, सो सुष नाया हाथि ॥२॥
साचा जोड़ा रामजी, दूजा जोड़ा झूठि ॥
दूजा जोड़ा विनस सी, काची देह करूठि ॥३॥
रांम रतन न्यारा रह्या, कौड़ी लीया मारि ॥
जन हरीदास नर नारियाँ, नरां बिलंबी नारि ॥४॥
डूंगर तै पसु उतरै, सारणि दौड़ा आइ ॥
जन हरीदास नारी मतै, मिलैस षोटा षाइ ॥५॥
तन मन दे सरबस लिया, भूषी भामणि षाइ ॥
जन हरीदास नारी मतै, मिलैस षोटा षाइ ॥६॥

पाठभेद— नैणा-१ ।

शब्दार्थ—मता=मत, विचार । मै तै लुकटि=मेरे-तेरे की भेदभावना-रूप लकडी । नांणा=धन, सम्पत्ति, मूल्य । विनससी=नष्ट होगा । करूंठि=कतई, निकम्मी । कौडी=धन, वैभव, माया । भामणि=स्त्री वनकर ।

तन मन दे सरबस दिया, भूषी भांमणि षाइ ॥
जन हरीदास नारि नरकि, बाँह पकडि ले जाइ ॥७॥

जोगणि ले जुई हुई, भोग करण सूँ भेद ॥
साहिब सूं पाछा फिरै, तहां कंध का छेद ॥८॥

जन हरीदास परनारियाँ, रोपै 'नजरि' गँवार ॥
गगन चढ्या धर मैं धसै, बूड़ा काली धार ॥९॥

जन हरीदास नारि संगति, साध करो मति कोइ ॥
नारी संगति संकर ठग्या, कुसल कहाँ तैं होइ ॥१०॥

जन हरीदास गोविंद भजौ, सुरति सहज घरि धारि ॥
नारी हरि भजि हरि मिलै, तो भी संग निवारि ॥११॥

मन उनमनि लागा रहै, नांही और उपाय ॥
जन हरीदास नारी संगति, भी कंध का 'घाव' ॥१२॥

हरि तैं सुरति उतार करि, पूठा बैसे आइ ॥
जन हरीदास याही कठिन, महा मँहीऽहै षाइ ॥१३॥

जन हरीदासपर कांमणी, नैंण बांण भरि षाइ ॥
सतगुरु सबद संभाल करि, रालै बांण चुकाइ ॥१४॥

साध पारिष को अंग

जहाँ जल तहाँ ज्वाला नहीं, हरि तहाँ मैं तैं नांहि ॥
जन हरीदास केहरि कुरंग, एकै बनि न बसांहि ॥१॥

पाठभेद—निजरि-१। बाव-२।

शब्दार्थ—जुई=जुदी। रोपै=गाडे, लगावे। धर मे=धरा मे, नीचे, विनाशी भौतिक पदार्थो में लगे। कंध का=गर्दन का। महामही=अति महीन, परम सूक्ष्म। रालै=डालै, दूर करदे।

स्याम बरण दोन्यों दुरसि , एक अजब अनुराग ॥
जन हरीदास बोल्यां बिगति, कहाँ कोइल कहाँ काग ॥२॥
जन हरीदास उदबुद कथा , 'दोन्यों' ऊजल भाइ ॥
हंस अजब मोती चुगे , बुगला मछी षाइ ॥३॥
जहाँ बुगला तहाँ हंस अरति , जन हरीदास दुष दोइ ॥
बा सांतरि सरभर लगै , चारै व्यौरा होइ ॥४॥
सीतल 'द्रिष्टि' चकोर की , चंद वसै ता मांहि ॥
जन हरीदास ज्वाला चुगै , देषो दाझै नांह ॥५॥
उदरि समाइ 'स' चूंणि लै , रहै निरंतरि लागि ॥
जो कवहू सांचो करै , तो जालै जलती आगि ॥६॥
उदर समाइ स चूंणि लै , अंतरि रहै उदास ॥
जे कवहू सांचो करै , तो पांषा होइ 'बिणास' ॥७॥

॥ साध संगति को अंग ॥

साध संगति 'निरमल' दसा , जे मनि होवै मैल ॥
जन हरीदास तिल तैल का , कैसा भया फुलेल ॥१॥
तिल फिरि षेल्या 'पहौप' सूँ , अरस परस रस रूप ॥
जन हरीदास संगति सरस, कैसा भया अनूप ॥२॥
जन हरीदास चंदन संगति , वसै स चंदन होइ ॥
'वांस' वास भेदै नहीं , सक्या न आपा षोइ ॥३॥

पाठभेद—दोन्यूं–३-४-५। दिसटि–२। सु–१। बिनास–५। नृमल–३-४-५। पुहुप–१। वासि–१।

शब्दार्थ—दुरसि=दिखाई दे, कुरूप। सांतरि=तैयारी, सामग्री। सरभर= अगवानी उचित सम्मान। चारै=खाने पर, भोजन करने पर। समाइस=समाये, आवश्यकतानुसार। चूणि लै=चुगाकरे, खाये। सांचो=संचय, संग्रह। निरमल दसा= शुद्ध अन्तःकरण। मैल–मलिनता, गदगी। पहौप=पुष्प। आपा षोइ=गर्व नष्ट कर।

बांस सदा ही 'बसत' है, चन्दन की जड़ मांहि ।।
जन हरीदास निरबास यूं, भीतर भेद्या नांहि ।।४।।
निस वासुर गोविंद भजै, कबहू विसरै नांहि ।।
तिन की संगति कीजिये, ले जाइ बसती मांहि ।।५।।
जन हरीदास काची संगति, सारा फूटै मन ।।
जोति प्रकास न कर सकै, ज्यूं पांणी मांहि रतन ।।६।।
जब ही जल सूं काढिये, तब ही करै प्रकास ।।
जन हरीदास साची संगति, सोधि करै सो दास ।।७।।

।। हेत प्रीति को अंग ।।

सूरिजबंसी कंवल का, जन हरीदास मत जोइ ।।
रवि विगस्यां विगसै भलां, 'अस्त' रहै मुष गोइ ।।१।।
जन हरीदास कमोदनी, 'इष्ट' एक विसवास ।।
ससि विगस्यां विगसै भलां, नहींतरि रहै उदास ।।२।।
जन हरीदास सुत हंस का, कलपि न करै अकाज ।।
भूषा रहै कै मोती चुगै, कुल अपने की लाज ।।३।।

।। निंद्या को अंग ।।

षेत निंदाणां नीपजै, सिरटा मोटा होइ ।।
जन हरीदास निंद्या भली, जे करि जांणै कोइ ।।१।।

पाठभेद—वस्त-४ । असत-२ । इसट-२ ।

शब्दार्थ—भेद्या = प्रवेश किया । बसती मांहि = आध्यात्मिक लोक मे । सारा=पूरा, साबुत । फूटै=बिखरै, खंडित हो । सोधि करै=तलाश करके । रवि विगस्यां=सूर्य प्रकट होने पर । विगसै=खिलै, प्रफुल्लित हो । अस्त=छिपने पर । ससि=चन्द्रमा । कलपि=कलप कर, विचलित होकर । निंदाणा=निनान करने से, साफ करने से ।

जन हरीदास कहिये कहा, मुगध न मानैं मूरि ।।
अगम अरक आकासि रथ, षिजि षिजि डारै धूरि ।।२।।
कै बाँवै कै दाहिणैं, कै ग्यांनहींण गत लार ।।
जन हरीदास गोविंद भजौ, 'ए' दह दिसि करै पुकार ।३।।

भै को अंग

भै भुरकी उलटी पड़ी, वोषद लगै न काइ ।।
जन हरीदास भी भै भला, जे नष सिष रहे समाइ ।।१।।

कुसवद को अंग

कुटक बचन कोडि कसर, रुचि 'मति' राषो कोइ ।।
जन हरीदास यूं जांणिये, या काढ्यां ही सुष होइ ।।१।।

दुवध्या को अंग

आंव ईष किसमिस बिदांम, थोहरि रस नालेर ।।
जन हरीदास जल 'एक' है, कुछ कणूंके का फेर ।।१।।
प्राण एक कुणका करम, पाप पुनि विसतार ।।
'गोपि' वीज लै अणसरचा, अपणी अपणी धार ।।२।।

पाठभेद—ये-१। मत-२। येक-२-३। गोप्य-१-५।

शब्दार्थ—मुगध=मोहित, आसक्त। अरक=सूर्य। षिजिषिजि=क्रोधित होकर। ग्यानहीण=अज्ञानी, मूर्ख। गत लार=गये-बीते का संग। भै भुरकी उलटो पडी=भय की भुरकी उलटी पडी, विपरीत पडी बुरे कर्म पाप तथा काल का भय होना चाहिये था, वह नही होता। वोषद=दवाई, औषधि। कुटक वचन=कडुवा बोलना। कौडि=कितनी बडी। कसर=कमी, न्यूनता। कणूंके का=गुप्त बीज, प्रारब्धफल। अणसरचा अनुसार, मुताबिक।

कण होतासण होमिये, तब कड़व कसर मिटि जाइ ॥
जन हरीदास निरमल 'वसत', निरमल मांहि समाइ ॥३॥

करम कड़ी काठी जड़ी, बांण न लागै कोइ ॥
मूरिष नर हरि तैं विमुष, सदगति सुण्यां न कोइ ॥४॥

चितकपटी को अंग

जन हरीदास हरिजन मिलै, तब ही आनन्द होइ ॥
चितकपटी कोई मत मिलौ, जा कै अंतरि दोइ ॥१॥
मुष तैं मीठी दे मिले, चित मांही कछु और ॥
हरीदास जन यूं कहै, पहुंचेंगे किस ठौर ॥२॥
ध्यांना दरिया दोय है, साहिब और संसार ॥
तुम किस 'दरियाव' की माछली, हम सूं कहौ विचार ॥३॥
जग दरियाव में देह है, साधां सेती प्रीति ॥
हरि दरियाव कूं चलत है, इहै हमारी रीति ॥४॥

श्लोक

अदृष्टं निरक्षरं, बीजविवरजित तरवरं ॥
त्रिलोक तस्य छाया, स्वाद जाणंत ते बीतरागी ॥१॥

पाठभेद—वस्त–४-५। दरिया–१।

शब्दार्थ—कण=बीज। होतासण=हुताशन, अग्नि। कडवकरस=कटुरस। कर्म कडी काठी जडी=प्रारब्ध कर्मफल की कडी मजबूत लगी हुई है। ध्यांना=हे ध्यानदास (ध्यानदासजी महाराज हरिदासजी के शिष्य थे)। दरिया=समुद्र। साषी ३–४ ध्यानदासजी को उपदेश के रूप मे कही गई थी।

जास मुषि झलझलंत ज्वाला, चिंणगी खरिक बांइकं ॥
आपै आप जलंत रे मानवा, तस्य प्राणी जीवनं वृथा ॥२॥

अणचं भस्म ते समो बनचरं, मानि अमानि जोगेश्वरं ॥
उनमनी अवस्था सारग्राही, निरमलं मन अस्थिरं ॥३॥

ऊंचा अवास सुष सेज्या, नाना भोजनं जलं हवा ॥
'मद मस्त' कुंजर दरबारि जोधा, तऊं काल ग्रासंतरं रे मानवा॥४॥

स्तुति की साषी

अगम सुष नहां मिल रहे, जीत मोह मदन रिप कांम ॥
जहां लोक वेद की गम नहीं, अगम ठौड़ विसरांम ॥१॥

सुर नर गति जांणै नहीं, ब्रह्मा विष्न महेश ॥
जन हरिदास तहाँ रम रह्या, पार न पावै शेष ॥२॥

किरतम तज बर अमर बर, सतगुरु कै उपदेश ॥
जन हरीदास तहाँ मिलि रह्या, जहां संता किया परवेस ॥३॥

नग्र नाम बेगमपुरा, बेगम होइ बसांहि ॥
तहाँ कोई पहुँचे संत जन, दूजां की गम नांहि ॥४॥

जहां रैणि द्योस उतपति नहीं, चंद नहीं तहाँ भान ॥
जहाँ पावक पवन पांणी नहीं, तहां जन हरीदास का असथान ॥५॥

---

* महाराज हरिदासजी की वांणी चितकपटी अंग के निरूपण के साथ समाप्त हो गई। आगे जो श्लोक दिये गये है तथा स्तुति फलस्तुति की साषियाँ महाराज हरीदासजी की कही हुई नही है।

फल स्तुति साषी

जन हरीदासजी कृत कियो, सुनि उधरै जिज्ञास ॥
जो या कूं हिरदै धरै, तिन की पुरवै आस ॥१॥

नर नारी कोऊ पढ़ौ, पढ़ै सु उतरै पार ॥
हरीदास जन यूं कहै, रांम नाम तत सार ॥२॥

कलि मांही यो कलप तर, सवदन मैं सिद्धांत ॥
या कू सुमरै रैंणि दिन, कबहू न होवे अंत ॥३॥

इति श्री स्वामी हरीदासजी को कृत संपूर्णम्

॥ महापुरुप योगसिद्ध महाराज हरीदासजी की वांणी सम्पूर्ण ॥

— हरि ॐ तत्सत् —

॥ उत्तरखण्ड ॥

निरंजनी सम्प्रदाय के अन्य रचनाकारों की रचना के कुछ अंश

॥ गुसांई तुलसीदासजी की संक्षिप्त जीवनी ॥

गुसांई तुलसीदासजी का जन्म किस स्थान और किस सम्वत् मे हुआ-इसका उचित आधार प्राप्त नही है। वैसे वे महाराज हरीदासजी के समसामयिक थे। अत: उनका जन्म सोलहवी शताब्दि मे तथा स्वर्गारोहण सतरहवी शताब्दि का माना जा सकता है। भाऊदासजी के मतानुसार ये महाराज हरिदासजी के शिष्य होने चाहिये तथा भक्तमालकार राघोदासजी के मत से ये स्वामी हरिदासजी के समसामयिक तथा द्वादश महन्त निरजनियो मे एक है। इनके विषय मे राघोदासजी ने लिखा है—

छन्द १—

सीतल नैन चवै बिग बैन महामन जीत अतीत करारो।
माया को त्याग नहीं अनुराग भिक्षा कृत भोजन सांझ संवारो॥
ब्रह्म जिग्यासी अभ्यासी है, नाम को जोग जुगति सवै विधि सारो॥
राघो कहै करणी जित सोभित देषो हो दास तुरसी को अषारो॥

उक्त निरूपण से स्पष्ट है कि ये नाम-चिन्तन तथा योग-साधन मे प्रवीण थे। इनका अधिकांश आवास शायद शेरपुर मे था जैसा कि राघोदासजी ने द्वादश महन्त निरंजनियो के स्थानो के विषय मे लिखा है। "शेरपुर तुरसी जु" वाणी नीकी ल्याये है" स्थान निर्देश के साथ उत्तम वाणी निर्माण का भी संकेत है। निरंजनी सम्प्रदाय के सन्त रचनाकारों मे जो अब तक अवगत हुए है बृहद रचना मे दो का ही नाम सामने आयेगा, वे है महात्मा तुरसीदासजी व महात्मा सेवादासजी। महात्मा तुरसीदासजी की रचना मे साषी-ग्रन्थ-पद तथा श्लोक सम्मिलित है। प्रारंभ मे साषी भाग है। इनने अग स्थान पर प्रकरण शब्द का प्रयोग किया है। वाणियो के साषी भाग मे प्रायः गुरुदेव का अग सर्वप्रथम आता है। इनने अग के स्थान मे प्रकर्ण शब्द दिया है-गुरुदेव का प्रकर्ण, साध का प्रकरण, सुमरण का प्रकर्ण आदि। साषी भाग मे १७२ प्रकर्ण है। साषियो का जोड सवाचार हजार के करीब है। साषी के पश्चात् चार लघु ग्रन्थ है। १ ग्रन्थ चौ अक्षरी, २ ग्रन्थ करणी सार, ३ ग्रन्थ साध सुलक्षण, ४ ग्रन्थ तत्वगुण भेद—इनमे करीब सौ दोहे छन्द जितनी रचना है। पद भाग मे राग २९ उनतीस मे चार सौ इकसठ पद है। श्लोक १८ तथा एक शब्दी है।

इस तरह इनकी रचना का योग सात हजार से अधिक आठ हजार के करीब है। वाणी मे निर्गुण निरंजन की उपासना पर ही बल दिया गया है। भाषा मे ओज है, भाव स्पष्ट है, भावाभिव्यक्ति मे काठिन्य नही है। जैसे हरिदासजी महाराज ने प्रमुखतया गोरषनाथजी का अनुसरण किया है वैसे इनने कवीरजी का अनुसरण किया है। अन्य महात्माओ की वाणी की तरह ही इनकी वाणी का महत्व है। इनकी वाणी का विवेचन एक स्वतन्त्र विषय है। उसका यहाँ प्रसंग नही है—सामान्यतः इनके जीवन का इतना ही उल्लेख साध्य है विस्तृत जीवन के ज्ञापक साधनों का अभाव है। आगे इनकी वाणी के कुछ अंश दिये जाते है, जिससे आप इनकी रचना के महत्व को समझ सकेगे।

महाराज तुलसीदासजी की रचना

ब्रह्मनाम स्तुति—

ओम परमज्योति परकासि, परब्रह्म परापरं ॥
परानंद परमादिपुरुष, परमात्मा परमेस्वरं ॥१॥
परमतत्वं परमतेजं, परमशान्ते स्वरूपकं ॥
परमपद समांन सर्व सिधि, अजरो अमर अनूपकं ॥२॥
परम निर्गुण निराकार, निरक्षरो निराश्रयं ॥
निर्विकार निराधारः, निर्विग्रहो निरामयं ॥३॥
परम अरचित अषिल अकुल, अमल अगह अगोचरं ॥
परम अज अवि अनंत अवर्ण, अचिंत चित्त चिन्ताचरं ॥४॥
अखण्डो अस्थिरो अमूर्ति, अचल अमित अंतः परं ॥
अद्रष्टो अडिगो अडोलो, अधर अलिपत अविहरं ॥५॥
अतीतो अजितो अनीहो, अवीहो आरजनं ॥
असंगी अभंगी अरंगी, उदीतो अगंजनं ॥६॥
भूमि वायुन तुया तेजं, आकाम यो निरन्द्रियं ॥
मात्रा न अन्तःकरण, चतुर्विंशति रहित अस्थूलं ॥७॥
बाल बृद्धो न तरुणो वा, आदि अन्त मध एकरसं ॥
अनुभूत अछेद अनिच्छित, अलषरूप अभेषसं ॥८॥

शिरोमणि सर्वंग सर्वगति, सुधासिन्धु सम्पूर्णं ॥
अजोनि आवेन जाइ, जन्म दुःख निर्मूलनं ॥९॥
कालदंडन कर्मखंडन, महिमंडन मनमलहरं ॥
विश्वंभर विश्वपूर्ण प्रभु, वाक् मनस् अगोचरं ॥१०॥
परम पावन पापहरता, परम कारज सारणं ॥
परमसुष कल्यानकारी, जन्म मृत्यु निवारणं ॥११॥
मोक्षपद अर्पण अभेता, अनंत भै भ्रम भंजनं ॥
नमो नमो गुरु शान्त स्वामी, तुरसी पद रज वन्दनं ॥१२॥

॥ इति ब्रह्मनाम स्तुति ॥

॥ गुर अस्तुति महिमा प्रकर्ण ॥

साषी—

गुरु दाता महामोक्ष का, गुरु मसतग का मौर ॥
तुरसी गुरु सम को नहीं, पूजि जगत में और ॥१॥
तुरसी गुरु कारन सब धर्म का, उपदेसन हारा ॥
गुरु ही तैं लंघि जाईए, महाभव जल पारा ॥२॥
चत्र षष्ठ नव अष्टदश, सबही मांही सोइ ॥
गुरु की महिमा अनंत है, बरनि सकै का कोइ ॥३॥
गुरु समद हुतें अधिक, गरवा गहरा सोइ ॥
तुरसी ता पटंतरवे कूं, वस्त न त्रिभुवन कोई ॥४॥
तुरसी सत्य द्वीप नव षंड भू, तीन लोक कै मांहि ॥
गुरु समान गुरु ही वहै, दूजा कोऊ नांहि ॥५॥
अकिंचन आतमाराम, गुण इन्द्रीजित सार ॥
तुरसी ऐसा सतगुरु, निरंजन निरविकार ॥६॥

चौपाई—

राग न रोस न कछू सरीर , आनन्दी ऊँडा मति धीर ॥
तुलसी कोमल सदा कृपाल , अधम अनाथनि करन निहाल ॥७॥

साषी—

तुरसी अधमनि उधरते , पतितन करत जु पार ॥
ताहि कठिनता को नहीं , गुरु समरथ अधिकार ॥८॥

॥ अस्तुति गुरुमहिमा प्रकर्ण समाप्त ॥

॥ अथ अति उत्तम सुमिरन विधान प्रकर्ण ॥

साषी—

तुरसी अति उत्तम भजन , का पै वरण्यों जाइ ॥
लष्यौहूज कापै परै , भाग होइ तो पाइ ॥१॥
तुरसी पूरब पुन तैं पाइये , कै पूरा गुरु होइ ॥
कै सतसंगति ध्यांन तें , और उपाय न कोइ ॥२॥
तुरसी रविवत रामको , अति ही नाँव निहकाम ॥
रोम रोम होयों करें , सहजै सुमिरन रांम ॥३॥
तुरसी रोम रोम ररंकार धुनि , सहजैं चली जु जाइ ॥
ज्यूं कारज बिना कुंभार कौं , सहजै चाक फिराइ ॥४॥
तुरसी चाक फिरयौ करै , विन ही कारज सोइ ॥
यूं उर वाहर सन्त कै , परम जाप नित होइ ॥५॥
विन ही जपिया जाप होइ , अषंड उरमें ऐन ॥
तुरसी करमाला विनां , विन रसना विन वैन ॥६॥
रसना हिलै न कर चलै , ढूलै न मनसा सोइ ॥
तुरसी मन ही होइ रह्या , सहज रांम रत होइ ॥७॥
कर माला फेरन की , षटपट मिट गई आंन ॥
तुरसी यह मन रह गया , अहल आतमा ध्यांन ॥८॥

तुरसी आतमध्यांन सूं, निमष न न्यारा होइ ॥
ज्यूं मूषक पारा पीया, व्है रह्या ऐसै सोइ ॥९॥
तुरसी महावज्र पापीन को, हो तो परदा वांम ॥
सो धूँवर ज्यूं फट गयो, चित रह गयो एक ही रांम ॥१०॥
तुरसी राम नाम ही रह गयो, या चित मांही सोइ ॥
ज्यूं हस्त पग जु दार कै, उतरन कबहु न होइ ॥११॥
कबहु न उतरई दार तैं, हस्ती को भोंई ॥
तुरसी यों चित रह गया, सुमिरन में सोई ॥१२॥
टारचा हूँधो ना टरैं, रहे कामादिक टारि ॥
तुलसी चित्र की वेल को, का करै वाजिब यारि ॥१३॥
ज्यूं गिरवर की छाया मैं, नेको कंपजु नांहि ॥
तुरसी यूं मन होइ रह्या, रांम नाम कै मांहि ॥१४॥
तुरसी ब्रह्मभावना यहै, नांम कहावै सोइ ॥
रसना करमाला विना, अषंड उर मैं होइ ॥१५॥
यह सुमिरन संतनि कह्या, सारभूत संजोइ ॥
भवसागर की जहाज इह, चढैसु लंघै सोइ ॥१६॥
॥ इति ॥

॥ अथ लै को प्रकर्ण ॥

चौपाई—

तुरसी लै मारग षगधारा, तहाँ कोऊन कर सकै संचारा॥
चन्दचकोर ज्यों चित ठहराइ, तव कहूं तहाँ अनसरयौ जाइ॥१॥

साषी—

तुरसी लै मारग षगधारवत, अति ही अगम जु सोइ ॥
पपील पुनि पंछी तहाँ, पहुँच सकै नहिं कोइ ॥२॥

तप तीरथ के धरम सूं, जप तप सूं जानि ॥
तुरसी ध्यानहू सूं अधिक, ल्यौ मारग परवांनि ॥३॥
जहाँ कोऊ जाय न सकै, पहुंचि न सकै संदेश ॥
तहाँ ब्रह्म ल्यौ लाइकै, संतनि कियो प्रवेश ॥४॥
तुरसी सन्त तहाँ गये, रांम नाम ल्यौ लाइ ॥
जहाँ रवि उदौ न कर सकै, ससिहु न सकै उगाइ ॥५॥
तुरसी संत तहां गये, जहाँ क्रोध न व्यापै कांम ॥
रांम नाम ल्यौ लाइ कै, कियो ब्रह्म विश्रांम ॥६॥
तुरसो संत तहाँ गये, जहाँ नहि पंच को पसार ॥
तीनों गुण करि ना सकै, छिन भर तहाँ संचार ॥७॥

चौपई—

तुलसी लय मारग है ऐसा, पंछी षोज मीन मग जैसा ॥
अति ही अलहि लह्यौ नहीं जाइ, के ते करि करि थके उपाइ ॥८॥

साखी—

रात द्यौस चिन्त्यौ करै, तन मांहि थिर होइ ॥
तुरसी आतमरांम कूं, लै मध पावै सोइ ॥९॥
तुरसी लै समान कोऊ नहीं, उत्तम मारग आंन ॥
साधुजननि दिषाइयो, करि अतीत परवांन ॥१०॥

चौपई—

तुरसी लै अनंत ब्रह्मंडै छेदै, लागी होइ तो वज्रहू भेदै ॥
उलंघि जाइ जगतगुरु जहाँ, आदि अंति लपटी रहै तहाँ ॥११॥

साषी—

तुरसी जहां जु ल्यो तहाँ एनहीं, संकलप विकलप दोइ ॥
निवांव नीर लै व्है रह्या, यह मन चिन्ता षोइ ॥१२॥
चिन्ता गई मन थिर भयो, तुरसी लै मधि पाइ ॥
सकल मनोरथ उठि गये, नांव रह्या ठहराइ ॥१३॥

का सुभ असुभ गिन्यो करै, सुनि सुनि संसै ग्यांन ॥
एक ही सुं लो लाइ रहु, ज्यौं चकोर ससि ध्यांन ॥१४॥
भावै दुःष हो देह कूँ, भावै सुष होइ आइ ॥
उभै सीम परि धारि कै, एक ही सूं ल्यौ लाइ ॥१५॥
ल्यौ लागी तब जांनिये, रह जाइ वचन अबोल ॥
तुरसीं मन को रथ थकै, इन्द्री होंहि अडोल ॥१६॥
जैसे चित्र की पूतरी, रह जाइ एक हीं ठौर ॥
तुरसी एसे ब्रह्म सूँ, होइ रहु चन्द चकोर ॥१७॥
तुरसी कहँ लों आषिये, या लै को उनमांन ॥
लगी होइ तो ना टरै, भल निकस जाहु जन प्रांन ॥१८॥
तुरसी प्रांन पयान तै, दुष अनन्त होइ सोइ ॥
तोऊ लै भंग होवे नहीं, जो लगी ब्रह्म सूँ होइ ॥१९॥

॥ इति ॥

॥ अथ चारण को प्रकर्ण ॥

साषी—

जिन बोलन की संक्या नहीं, काढै वचन कठोर ॥
तुरसी वे परतछि पसु, संत जनां के चोर ॥१॥
संत वचन मानै नहीं, अपनी कहै बनाइ ॥
तुरसी एसे पतित सूँ, बकि बकि मरै वलाइ ॥२॥
जे निरदावे हरि भजै, जग सूँ तिनका तोर ॥
तिनहूँ सूँ मांडे षुदी, अधम हरांमी षोर ॥३॥
आप उभै चष अंधरे, औरनि सूँ कहे कांन ॥
तुरसी एसे पसून सूँ, कछू न चालै पांन ॥४॥
प्रभात वचन जु ऊचरै, साँझ न लौ न निरवाहि ॥
मिथ्यावादी मनमुषी, एसे बहु जग मांहि ॥५॥

जिनकै बोलै बंद नहीं, वृथा तिनहू का भेष ॥
इन्द्री विकल जु होय रहे, तुरसी विसर विवेक ॥६॥
काछ वाछ निकलंक विना, वैरागी भल और ॥
षट् दर्शन में होहु किन, तिहिं तीन लोक नहिं ठौर ॥७॥
काछ वाछ निकलंक विना, वैरागी व्है कोय ॥
तुरसी कोटि धर्म गहो, वारू भींत जु सोय ॥८॥
जिन कै बोले बंद नहीं, साच न हिरदै मंझरि ॥
ते आयर यूं ही गये, जनम जूवा लै हारि ॥९॥
जिनकै बोले बंद नहीं, ते वादि कहावै सन्त ॥
सन्त नाम सो पाय है, जो काछ वाछ निकलंक ॥१०॥
जावत छूटै न जग तरंग, भगत हुवै का होय ॥
तुरसी भक्त अनन्य सो, जग रंग बैठा षोय ॥११॥
गिनेमने उचरे वचन, सो साधू सति सार ॥
तुरसी षाली कुंभ लौं, बकवो करै गंवार ॥१२॥
बकिवो करै जु रैनदिन, चुप गहि जपहि न नांम ॥
उन जड़ जीवन कै हिरदै, कहौ कहाँ है रांम ॥१३॥
मन राषत संसार कौ, तन व्है गयो वदीति ॥
धृग धृग सो स्वांमीपनौ, तामैं यह विपरीति ॥१४॥
नहिं समता लवलेस तहाँ, नहिं पल पर उपगार ॥
पाप पतिग्रह झेल कै, षरज्यूँ बहै जु भार ॥१५॥
परधन परत्रिय परकथा, यह उर भजन विचार ॥
धृग धृग सो स्वांमीपनो, तुरसी मांथै मार ॥१६॥
स्वांमीपनो तहाँ सुष नहीं, दुख दलिद्रता अनंत ॥
तुरसी उर बाहरि सदा, धन ही धन झंषंत ॥१७॥
उत कुल की क्रिया छुटी, इत न भजै भगवांन ॥
तुरसी ते अध विच रहे, ज्यूँ बघूर को पांन ॥१८॥

तुरसी माया भई न ब्रह्म भयो , विचही वितेइ आव ॥
ते नर यूँ ही पच गये , ज्यूँ दरिया विच नांव ॥१९॥
घर के भये न गगन के , रहे बीच ही झूल ॥
तुरसी दरसन पहरि कै , जे गये रांम गुन भूल ॥२०॥
तुरसी इत पुनि गुरु रिझये नहीं , उत रिझये नहीं रांम ॥
कुटम्ब त्यागि कुटली नरनि , अंध कमाये कांम ॥२१॥
वहाँ वन में ही परे , छूटि गयो उर आराम ॥
उन ही और आलंब नहीं , है आलंबन काम ॥२२।
दिवस उदम करितवो करे , वकते ही जु बिहाय ॥
रैन रहे सठ सोय के , मन जहाँ तहाँ भरमाय ॥२३॥
अहनिस षोवे अंध यूँ , इन्द्रीहिन के चाय ॥
तुरसी तत वैराग नहिं , है कछु वड़ी वलाय ॥२४॥
तहाँ वूड वैराग की , जहाँ बढ्यौ वहु मान ॥
तुरसी सुहावे नहीं , संतनि को सुग्यांन ॥२५॥
विरागी होय विषै तन , फिरि जु पयाना देय ॥
सो षलु कंचन त्याग कै , कौडि कर मधि लेय ॥२६॥

चौपई—

भाव पढि गुनि वेद पुरांन , अछिर अछिर को समझो ग्यांन॥
जावत विषै न भोग विसारै , तावत परै नरक के द्वारै ॥२७॥
मति निन्दा कर मांनो कोय , हम कहैं सतोतर साषी सोय ॥
मल पंडित मुरष होहू कोय , बिषया त्यागै मुक्ति जु होय ॥२८॥

साषी—

कासी वसौ क मगहि मल , जावत मुक्ति न जाय ॥
तुरसी तावत मर रही , कांम क्रोध सूँ काय ॥२९॥
काम क्रोध काया महीं , महा मलेछ वसांहि ॥
ताहि निवार सकै नहीं , ऊपरि मल मल न्हाहि ॥३०॥

॥ इति ॥

साषी—

॥ अथ सील को प्रकर्ण ॥

जितेक वरने धर्म, वेदन मांही सोय ॥
तुरसी ता सवहीन में, सील समांन न कोय ॥१॥

सकल शास्त्र स्मृति कहै, पुनि कहै सन्त सुजान ॥
तुरसी सील सुधर्म समि, नहीं धर्म कोऊ आन ॥२॥

चौपाई—

सील धर्म सवही को टीको, सील विना सव लागै फीको ॥
तुरसी जो मुष सुन्दर होय, नासा विना न सोभत सोय ॥३॥

साषी—

नासा विना न सोभई, सुन्दर नर को मुष ॥
तुरसी एसे सील विन, सवही धर्म निरुष ॥४॥

एकादसी जु आदि दे, जावतेषु व्रत सार ॥
तुरसी ता सवहीन में, सील सुव्रत अधिकार ॥५॥

सील विना एकादसी, सील विना तप दांन ॥
तुरसी एसे जानहु, ज्यूं कुंडल विन कांन ॥६॥

एक अनेकन वांन सू, भजी भजी फिरै सोय ॥
तुरसी ता भौ भीत कूं भजि, अभै भया कहि कोय ॥७॥

तुरसी सत व्रत सील व्रत, दया व्रत प्रतिपालि ॥
सव व्रतन में सार ये, संतनि लिये नृवालि ॥८॥

चौपाई—

ता मै सील धर्म अधिकाई, दया सत्यता तास सहाई ॥
तुरसी जा उर उदए एह, सुफल रूप है तिनकी देह ॥९॥

साषी—

तुरसी सील सुधर्म की, महिमां वर्ण न जाई ॥
ताहि जप तप जग्यादि व्रत, रहे सकल सिर नाई ॥१०॥

जहाँ सील संतोष तहाँ, जहां संतोष तहाँ सुष ॥
तुरसी जहाँ सुष सुपन हू, देषिये न दुष मुष ॥११॥
दुष सुष नाहिंन देषिये, बढि रह्यौ धीरज ध्यांन ॥
तुरसी सील संतोष जहाँ, तहाँ तहाँ ए सहनान ॥१२॥

चौपाई—

तुरसी सील संतोष जु सोऊ, त्रिविध तिमिरहर दीपग दोऊ॥
जा उर उद्यत भए है आय, धनि धनि ता नर की काय ॥१३॥
अलप अन्न अलप ही जु पानी, अलष ही निद्रा अलप ही वांनी ॥
तुरसी एसी जुगति गहावे, सोई सुष भलै सील को पावे॥१४॥
तुरसी नैना नींवा राषै निच, त्रिया देष नहिं चलावै चित्त ॥
आदि अंत एसे जु रहावे, सोई सुष भलै सील को पावे ॥१५॥
तुरसी जितेक त्रिय देषियत जग मांहीं, लघु दीरघ मध जहाँ तहाँ ही ॥
माता वहन पुत्री जु जनावै, सो सुष भलै सील को पावे ॥१६॥

साषी—

पतिव्रत ताहू सूं अधिक, सदा सीलवंत नारि ॥
तुरसी वा भुगतै अलप सुष, वा सुष अछै मुरारि ॥१७॥
सिंघ हरौ गिर तैं परौ, भावै वहौ सिर लोह, ॥
ए जु त्रास भलो होइयो, पै सील भंग मत होहु ॥१८॥
अगनि दहौ नदियां वहौ, मल कुंजर मारौ ध्याइ ॥
एजो त्रास सहूँ प्रीति सो, पै सील गयो न सुहाइ ॥१९॥
सुष संमै धन जाहु सब, माया विसवा वीस ॥
तुरसी तन मन तव लगै, सील रहो सद सीस ॥२०॥
सील गये सव जात है, ग्यांन ध्यांन वैराग ॥
सील रहे सव रहत है, तुरसी मसतक भाग ॥२१॥

॥ इति ॥

॥ अथ सवद को प्रकर्ण ॥

साषी—

महा कुसवद के बांण सूँ, कसकै नहीं लगार ॥
तुरसीदास वा दास की, मैं वलि वारंवार ॥१॥
कुसवद सुनि कानन में, कसकै नाहिन सोय ॥
तुरसी ऐसा सन्त जन, कलि मैं विरला कोय ॥२॥
तुरसी कुसवद का करै, जो वसहू हो दास ॥
परै समद विच बीजुरी, कहा जरावै तास ॥३॥
साधु जन संसार, ज्यूं जल मांही चन्द ॥
काल जाल में नावई, कहा करै कोऊ मन्द ॥४॥
कोटिक षल कहि कहि कुवक, सांधि सांधि मारौ वांन ॥
जदपि अगनि उसन है, पानी सू का पान ॥५॥
मनसा वाचा कर्मणा, संतन की गति एह ॥
तुरसी सवद कुसवद सुनि, उझकि न दिखवे छेह ॥६॥
काम दहै अन तन वहै, कुसवद सहै शरीर ॥
तुरसी गुरु मति गहि रहै, सो पावे सुष सीर ॥७॥
तुरसी सुष की सीर ए, जहाँ क्रोध नहिं लेस ॥
स्वप्न तरहू न व्यापई, धन छमाविह देस ॥८॥
तुरसी छिति की सहनता, पुनि परमारथ सोइ ॥
उभै अंग जिन दिढ गहै, तौ गंजि न सकै कोइ ॥९॥
कहा करै कोऊ आय कै, कांमी क्रोधी जीव ॥
झलकाये झलकै नहीं, सन्त सदा रत सींव ॥१०॥
अपने सन्त स्वभाव कूँ, तऊ न छाडै सन्त ॥
जे कोऊ करवतहू जु गहि, मस्तग कूं विहरंत ॥११॥

चौपाई—

तुरसी धरती हुवा रहै, षूंद सवन की आपन सहै ॥
आपन तऊ न दुषवै सोइ, जो करवत तन विहरै कोइ ॥१२॥

साषी—

अगनि हू तै अति उष्ण, अज्ञांनी कौ वैन ॥
तुरसी ताहि सहार लै, सोई साधू ऐन ॥१३॥
मैंण रूप जाको हिदो, पांनी रूपी प्रांण ॥
तुरसी कुसब सो सहै, दूजे अगनि समांन ॥१४॥
तुरसी कुसबद की अगनि, सुसबद नीर सिराय ॥
महा सुसीतल होय रहे, सन्त नाम सो पाय ॥१५॥

॥ इति ॥

॥ अथ ग्रन्थ चौअखरी ॥

चौपई—

गुरु परसाद अकल परवांणी, वैसनु तँणी जु चाल वषांणी ॥
जो यह अखर करै विचारा, जो चिन्है सो उतरै पारा ॥१॥
प्रथमे विसरै माया मोह, विसरै प्रीति वैरता दोह ॥
विसरै ममता मान बडाई, विसरै हरि बिन बुरी भलाइ ॥२॥
विसरै आपा अरु अभिमांन, विसरै बुदी गरब गुमान ॥
विसरै परपंच बादविवा॑, विसरै षट्रस इन्द्री स्वादं ॥३॥
विसरै कांम क्रोध का संग, विसरै कुबुधि विषै का रंग ॥
विसरै अति गति निद्रा भूष, विसरै पाप पुण्य सुख दुःख ॥४॥
विसरै पाषंड कपट स्वभाव, विसरै रूष रंग रस चाव ॥
विसरै हसन वकन की वांणी, विसरै कलह कल्पना कांणी ॥५॥

दोहा—

विचरै सतसंगति मही, कीरति करै अघाय ॥
सोई परम निज वेसनूँ, जो पति को विसर न जाय ॥६॥

चौपई—

साहे रांम नाम तत सार, साहे समता ग्यांन विचार ॥
साहे बुद्धि विवेक परकास, साहे भाव भगति विसवास ॥७॥

साहे जत सत सील संतोष, साहे दया धर्म तजि दोष ॥
साहे निज करनी आधार, साहे नाँव निरंजन सार ॥८॥
साहे दीन गरीबी ग्यांन, साहे दिढ कर धीरज ध्यांन ॥
साहे निरति सुरति मन पवन, साहे निज निर्मल निज चरन ॥९॥
साहे परमारथ निज स्वारथ, साहे अरथ पेलि सब अनरथ ॥
साहे साँच झूठ छिटकाय, साहे प्रेम प्रीति निज ध्याय ॥१०॥

दोहा—

साहे निज तत निर्मला, साहे ए मत सार ॥
सोई परम निज वेसनूँ, कण ले कूकस डार ॥११॥

चौपई—

न करै तीरथ वरत की आसा, न करै जप तप आन उपासा ॥
न करै पाथर पूजा सेवा, न करै नाना विधि नषेवा ॥१२॥
न करै विभिचारी का संग, न करै कामनि कनक कुसंग ॥
न करै द्रव्यविणज व्यापार, न करै सिष साषा परिवार ॥१३॥
न करै आसन घर घर वारं, न करै पढ गुन वहु विस्तारं ॥
न करै परवरती सूं नेह, सो भगता में पाप न षेह ॥१४॥
न करै परनिंद्या उपहासी, न करै प्रीति विना अविनासी ॥
न करै किस सूं वैर न भाव, न करै हरि विन आंन उपाव ॥१५॥

दोहा—

प्रीति करै निज देव सूँ, मन का भरम नसाय ॥
सोई परम निज वेसनूँ, जन तुरसी वलि जाय ॥१६॥

चौपई—

आरति सूँ हरि नाँव उचारे, आरति सूं निज रूप निहारे ॥
आरति सूँ अनभै रस पीवे, आरति सूं मरि वहुरि न जीवे ॥१७॥
आरति सूँ निर्मल जस गावे, आरति सूं निज तत दरसावे ॥
आरति सूँ चीन्ह पद सोइ, जा चिन्हे फिरि जन्म न होइ ॥१८॥

आरति सूँ पति सूँ मन लावे, आदि मध्य अंत रामहि गावे ।।
आरति सूँ पेषै पति सुन्दर, जाकै दरस मिटै दुष दुंदर ।।१६।।

दोहा—

आरति सूँ सेवा करै, तन मन आतम लाइ ।।
सोइ परम निज वेसनूँ, निर्मल मांहि समाय ।।२०।।

एसी करनी जो करै, सो निज हरि की देह ।।
तुरसी जां मन मरन का, भांजै सकल सनेह ।।२१।।

।। इति ।।

।। अथ करणीसार जोगग्रन्थ ।।

दुरलभ जोग संग्राम कठिन षांडे की धारं ।।
थाके संकर सेस और जीव कहा विचारं ।।१।।

सुर नर मुनि जन पीर रहे भव जल उरवारं ।।
गुर गम ग्यांन विचार गहै विरला जन पारं ।।२।।

समदिष्टि समभाय रहै निरवैर निरासं ।।
सो जन उतरै पार काल नहि करै विनासं ।।३।।

जाकै शत्रुन मित्र नहीं संगि दूजा कोइ ।।
सदा रहै निरवंध साध जन कहिए सोइ ।।४।।

नहीं किसी सूँ नेह देह का सुष नहिं चाहे ।।
सीत उसन सिर सहै आदि अंत एसी निरबाहे ।।५।।

घर वन दोऊं रीति रचै नहि इन सूँ भाई ।।
कनक कांमनी त्यागि रहे उनमन ल्यौ लाई ।।६।।

एसी रहनी रहे तास कूँ लेहू पहचांनी ।।
कहै साच रहे काच सोई परहरिए प्रांनी ।।७।।

सबद सरोतर कहै मिथ्या नहिं कबहू बोले ॥
षोजे पद निरवांन काहे को वन वन डोले ॥८॥
आसा त्रिसना छाडि तजै सब जग व्यौहारं ॥
रहे निरंतर लागि सोई जोगी तत सारं ॥९॥
काया को वस करै मोह तजि मनसा मारै ॥
एसा अवधू जान काल मैं दूरि निवारै ॥१०॥
निरधन रहे उदास नहीं संगि दूजा भावै ॥
ए कलमल अवीह सोई अवधूत कहावै ॥११॥
नहीं आगली चाह पीछै संसा नहिं कोई ॥
रमै सीगी परवानि देवगति कहिये सोई ॥१२॥
निंदहु वंदहु कोई नहीं किस ही सू वैर न भावं ॥
सब देषे समभाय जिसा रंक तैसा रावं ॥१३॥
आसन अस्थिर करै हाँडै नहिं घर घर द्वारं ॥
अजगर की गति गहैं पावै अलप अहारं ॥१४॥
चंचल मेल्है मारि उलटि अमृत रस पीवै ॥
एसा अवधू जांनि मरै नहिं जुग जुग जीवै ॥१५॥
लालच लोभ निवारि आतमा अस्थल आवै ॥
तहाँ बाजै अनहद तूर नूर का दरसन पावै ॥१६॥
कूवा वाय निवाण करै नहि वाडी वागं ॥
आसन मढी मसान तजै सब वाद विवादं ॥१७॥
तंत मंत औषधि जडी वूंटी नहि जांणै ॥
अविगति बिन आराध झूठ सबही कर मांनै ॥१८॥
परिहरि वाद विवाद तजै सबहिन का साथं ॥
चकमक ज्वाला झारि करै नहिं जीव का घातं ॥१९॥
स्वाद सकल संग तजै षाटा मीठा अरु षारा ॥
इन्द्री भोग न देय सोई जोगी मन सारा ॥२०॥

इडा पिंगला फेरि पछिम को उलटा ध्यावैं ॥
भँवर गुफा कै घाट पीवै अमृत सच पावै ॥२१॥
अमृत पीवे अघाइ तपति सब तनकी जाइ ॥
थकित होइ ता मांहि जास कै बापन माइ ॥२२॥
परिहरि पांच पचीस दोय तजि एक पिछानें ॥
सतगुरु कै परसाद इसी गति विरला जानें ॥२३॥
तजै दुःख अरु सुष गगन में आसन लावै ॥
तहां देषै निज नूर मगन ह्वै मांहि समावै ॥२४॥
यह निज ग्यांन विचारि कै उनमन रहै समाय ॥
तुरसीदास अंतर नहिं भगति होय हरि आय ॥२५॥

॥ इति ॥

॥ साध सुलछन जोगग्रन्थ ॥

साधु जन संसार में रमै सुभाइ सुभाइ ॥
काहू कै रंगि ना मिलै अपनै रंगि रहाइ ॥१॥
सुष वांनी सुसबद चवै कुसबद कहै न काहि ॥
सील सबूरी साह करि चलै एक हीं माहि ॥२॥
निरपष निरदावै रहे वरतै सदा विचार ॥
काम क्रोध अहंकार का संग न करै लगार ॥३॥
दया मया हिरदै रहै सदा सुमति सुमेल ॥
हरदम हरि का नाँव ले मन अरु मनसा भेल ॥४॥
परनिंदा भावै नहीं परपंच पलन सुहाइ ॥
पर आतम सूँ प्रीति कर परचै विलंबै ध्याय ॥५॥
विष इम्रत भंजन यही भिन्न भिन्न करि लेय ॥
विष त्यागै अमृत गहै एसा काज करेय ॥६॥

अलप अहारी अलपतुय अलपहि निद्रा नेह ।।
अलप रमनि रमै जुगति सूँ अलप ही सवद करेह ।।७।।
आदू मारग आदि मत आदू गहै विचार ।।
आदि अन्तर रटिवो करै निराकार निज सार ।।८।।
करम तजै कर्ता भजै करै न जग की कांनि ।।
काया नगरी षोज कै करता लेहु पिछांनि ।।९।।
षिरै षपै सो ना भजे अविनासी सूँ नेह ।।
देह तणा सुष त्यागि कै होय रहे सम षेह ।।१०।।
होय रहै सम षेह लों तन मन आपा जारि ।।
आरति सूँ आतम महीं राम रमै इक तारि ।।११।।
मुख जु आंन उचरै नहीं परपंच सुनैन कान ।।
उभै लोपना उलटि कै धुनि में राषै ध्यांन ।।१२।।
को निंदै वंदौ कोउ करौ न आदर भाव ।।
कहुवाँ चित्त न लागई हरि भजवे को चाव ।।१३।।
सुष दिस कबहून पग धरै दुख देषन मुरझाय ।।
दुष सुष द्वै समान करि समता सम निरताइ ।।१४।।
सम जु लोष्ट सम कंचन सम जु मांन अपमांन ।।
सीत उष्ण सम करि गिनै सम चौरासी जांन ।।१५।।
सम जु धूप सम छाँहरी सम पानी सम पाल ।।
सम सेत फटक मणि मोतिया सम कंकर सम लाल ।।१६।।
सम मन पवना तन मही निरति सुरति सामान ।।
नादविंद सम कर भजै पूरन परम निधान ।।१७।।
परापरी सूँ रच रह्या साह सु लछन एह ।।
तुरसी एसा सन्त जन प्रतछ प्रभु की देह ।।१८।।

।। इति ।।

राग सोरठि—

धनि धनि गुरुदेव हमारा हो ?

जिनहु कृपा करि काढ लिये हैं, बूडत वहि संसारा हो ।।टेक।।
अनेक जन्म की अरज निवारी, सवद दिया तत सारा हो ।।
नाँव जहाज चढाय जुगति सूँ, षेयत तारे पारा हो ।।१।।
गुप्त वस्तु प्रगट दिषलाइ, प्रगट किया प्रहारा हो ।।
अब तन मन फिर भयेज पावन, परसि परसि पिव प्यारा हो ।।२।।
अविचल वर को बांह गहाई, दैके बहुविधि भारा हो ।।
जन तुरसी पूरण सुष पायो, सतगुरु कै उपगारा हो ।।३।।

२ रामराय भेष अनेक बनाया, तुम सा साहिब कवहू न गाया ।।टेक।।
माया कै मदि यहु मन मातौ, दुवध्या बहुत उठाई ।।
निराकार निरलेप निरंजन, भजे नहीं रघुराई ।।१।।
इह मनवा अपराधी कांमी, चेतै नहीं गवाँरा ।।
राम सुरति कवहु नहिं आवै, औरें करे पसारा ।।२।।
तुम विन कौन उवारे जन कूँ, तुम मेरे प्राण अधारा ।।
तुरसीदास कहै जन तेरा, मेटौ सकल विकारा ।।३।।

३ हरि विन भूले बहुत अग्यांनी, अविगत की गति विरला जांनी ।टेक।
जोगी जंगम अरु संन्यासी, पषा पषी सूं राता ।।
निरपष होइ राम नहिं जान्या, काम क्रोध मद माता ।।१।।
सुषसागर अविनासी राजा, नहिं तस वार न पारं ।।
तासू रचिन सक्या नर भूंदू, विषय रींझ भये छारं ।।२।।
तजे विकार मोह मद मछर, हरिपद दिढ कर साहे ।।
रहे समाय मगन होय मांही, आंन दिसा नहिं चाहे ।।३।।
सुगह गहै लहै सुष सोइ, पद महि जाय समावे ।।
जन तुरसी वोह साध सिरोमणि, बहुरिन भौजल आवै ।।४।।

४ सूरा सोई साध कहावे, नित सांई के मन भावै रे ।।टेक।।
ग्यान षडग ले मन कूँ मारै, पांचो पिसन निवारे रै ।।
सीस विहूना जुरै काल सूँ, चौडे षेत बुहारे रै ।।१।।
पाछा पाँवन देय पलक भर, सनमुष होय संभारे रै ।।
गुरु परसाद् मेवासा तोरे, एसा कारज सारे रै ।।२।।
तन मन सीस स्वामी को सौंपे, हरि भज जन्म सुधारे रै ।।
जन तुरसी सोई गुरु मेरा, आप तिरे मोहि तारे रै ।।३।।

५ मन रे आतमरत होय रहिए ?
आदि अन्त मध मनसा वाचा, यहै जोग दिढि गहिए ।।टेक।।
नाना कथा निगम मत नाना, तहाँ वहक नहिं वहिए ।।
निहचौ परचौ पकरि नाव कौ, दुरमति दोष यूं दहिए ।।१।।
कोटिक ग्यांन ध्यान मत कोटिक, कोटिक मारग कहिए ।।
षोजत बूझत सुनत सुनावत, परमति पार न लहिए ।।२।।
केऊ आसतिक केऊ नासतिक, केऊ जनम केऊ नहिए ।।
एसे या झकझोल मांहि पर, काहे कूँ रोग वढइए ।।३।।
राग दोष विसराम विकल बुधि, भ्रम लै धार वहहीए ।।
जन तुरसी उर मै आरंभ करि, परमातम पद गहिए ।।४।।

राग आसावरी

६ सौई संत सतगुर का चेला, पूरव तजि पछम करे मेला ।।टेक।।
नौ सै नदी कूप में आनै, वाहर सोलह सम कर जानै ।।
दछिन तज उत्तर करै वासा, तव पछिम सूर करै परकासा ।।१।।
गंगा उलटि मेर कूँ ल्यावै, धरति उलटि आकास समावै ।।
अब तुरसी या पदहि विचारै, आप तिरैसो और हि तारै ।।२।।

७ माई रे सो सतगुर की जानै ,
मन वच कर्म अपने उर अंतरि , अलपहि अहं न आनै ।।टेक।।
मान वडाई धरै उठाई , दीन होय दिल मांही ।।
हरष हरष हरि का गुन गावै , पलहु विसरै नांही ।।१।।
जासुष में यहु जग लपटांना , ताहि देष नहिं भूलै ।।
नऊँ नाला फेर पछम कूँ , त्रिवेणी संगि भूलै ।।२।।
तन मन आला जीत जुगति सूँ , गहै सिध सरनाई ।।
जन तुरसी पूरण सुष पावे , जन्म मरन मिटि जाई ।।३।।

८ सतगुर एसा भेद वतावे , जाका भाग वडा सोई पावे ।।टेक।।
वारह मास पलटि षट भाई , अनरुत के घर रहो समाई ।।
पछिम कँवल में करि लेहु वासा , तहाँ प्रगटै जोति होय प्रकाशा ।।१।।
तहाँ अनाहद वाजहिं वाजा , हरि कै नाम मगन मन राजा ।।
जन तुरसी ऐसी गति पाई , सतगुर आप दइ समझाई ।।२।।

६ एसा कहिये नाँव तुम्हारा , सुमरत कटै जु कोटि विकारा ।।टेक।।
राई मान वसंदर एता , जारै काठ भसम करै केता ।।
जैसे प्रगट सूर तम जाई , नांव लेत अघजाइ विलाइ ।।१।।
तुरसीदास विलंबन कीजे , केवल रांम नाम जप लीजे ।।२।।

१० हरि विमुषन का संग न कीजै , तन मन सौंप राम जप लीजै ।।टेक।।
साच झूठ कूँ सम कर ध्यावै , आपन भूला और भुलावै ।।
इन्द्रिन स्वारथ पैले साच , माने नहीं साध की वाच ।।१।।
दया दीनता ग्यांनन ध्यांन , निरभै होय भुगतै विषयान ।।
तुरसी इनका संग निवारि , साचा साहिब लेहु विचारि ।।२।।

११ विषया नदी लंघै सोई ग्यांनी , नेकन परसै ताको पानी ।।टेक।।
रूपधार में नैन न देई , श्रवणहु अपने वस करि लेई ।।
नासा रसना तुक रस त्यागै , कवहुन फेर धरे तहाँ पागै ।।१।।

ये पंचो रस विरसजु जानैं, अतीत ही मिथ्या करि मानैं ॥
मिथ्या जान मिटा है रागा, कछून राषै तांतू तागा ॥२॥
एसौ यहु वैराग उर धरई, ता जिहाज आरोहन करई ॥
करि आरोहन उतरै पारा, गुरु षेवट समरथ दातारा ॥३॥
बिन वैराग विवेक बिनाही, किनहू पारंगत लही जु नांही ॥
जिन पायो यहु परम विचारा, भले गये तुरसी वेहि पारा ॥४॥

राग रामकली

१२ संतो है कोऊ एसा ग्यांनी,
तन मन जीत भरम सब पेलै, नांव जपै निरवांनी ॥टेक॥
काल काम का मुंहडा मोडे, क्रौध तनां सिर भानैं ॥
लोभ मोह दोऊ दलपरहरि, सब घट रांम ही जानै ॥१॥
आसा त्रिसना तजै कल्पना, बुरी भली सब त्यागै ॥
रहै अडोल चलै निसवासर, सोवे नही सदा नित जागे ॥२॥
सत रज तम तीनूं गुण परिहरि, चौथा चित वित लावै ॥
कहै तुरसी पूरण पद पेषै, सुष महिं जाइ समावै ॥३॥

१३ सो जोगी जो या मनकूँ मारै, मनकूँ मार मनोरथ जारै ॥टेक॥
ग्यांन षडग संवाहि अवधू, पांचो पिसन निवारे रै ॥
निरभै होय निसंक निसदिन, निरमल नांव उचारे रै ॥१॥
सिव नगरी में आसण धारे, उलटि अगम विचारे रै ॥
त्रिवेणी तट लावै ताली, परम जोति निहारे रै ॥२॥
काम कलपना निकट न आवै, गलत होय गुन गावे रै ॥
जन तुरसी एसा जन जोगी, परम पदारथ पावे रै ॥३॥

राग गोडी

१४ एसा है सोई अवधू जांनी,
ओरे अवधू वाद ही कहावत, वोले वेद जु वांनी ॥टेक॥

आपा मांही आपा जानै, ज्यूं रवि चन्दा पानी ॥
निवाव नीर लोरहै तहाँ थिर होइ, प्रीति ब्रह्मसूँ वानी ॥१॥
वोहू योही यहु है पुनि वोही, तामैं संसै नांही ॥
जो जुगति सूँ उलटि पहिचानें, देह जगत सूँ कानी ॥२॥
गहि गुरुग्यांन पंच कूं भूते, छठा कूँ उर आनी ॥
सातई जु बुधि सम कर राषै, आदि अन्त इक तानी ॥३॥
तनही में त्रिभवनपति पेषै, लेइ तत पहिचानी ॥
जन तुरसीं एसा जन जोगी, वहुरिन जन मैं आनी ॥४॥

१५ उलटि अमी रस पीजिये, आतम अंतरि आइ ॥टेक॥
कहा विवधि व्याकरन पढे रे, का पढे वेद पुरांन ॥
तन मन के मल ना मिटै, विन भजिये भगवान ॥१॥
का जप तप तीरथ किये रे ?, का पूजा व्रत दांन ॥
सब परिहरि हरि नांव लै, तूँ साहि सुद्रिढ गुरग्यांन ॥२॥
यहै जोग यहै जुक्ति है, यहै भक्ति यहै भाव ॥
पांच पचीसूँ फेरि कै, परापरी पद ध्याव ॥३॥
परापरी पद परस कै, भर्म कर्म कटि जांहि ॥
जन तुरसी तन ऊधरै, मन मिले महासुष मांहि ॥४॥

१६ संतो सो है राम हमारा रे ?,
नाद विवरजित विंद विवरजित, नहिं तस वारन पारा रे ॥टेक॥
सकल वियापी सब ते न्यारा, सब का सिरजनहारा रे ॥
सब दुषषंडन भवभयभंजन, तेजपुंज निरकारा रे ॥१॥
सब सुषसागर सब सुषदाता, सकल सरोवन सारा रे ॥
सब गुन रहित अकुल अविनासी, तरुन वृद्ध नाहिं वारा रे ॥२॥
ब्रह्मा विष्नु महादेव नारद, सबहि करहिं विचारा रे ॥
पारन पावै अगम बतावे, नांव लेहि इकतारा रे ॥३॥

आवन जाय मरै नहिं जनमै, अविगति अलष अपारा रे ॥
जन तुरसी एसा रांम हमारा, ताहि सुमरै वारंवारा रे ॥४॥

राग धनाश्री

१७ सो सुष देहु जागत गुरु मोही,
जा सुष सुं सवही दुष नासै, आय मिलूँ प्रभु तोही ॥टेक॥
जा सुष सूँ भरमादिक छूटै, करमन व्यापै कोई ॥
तन मन आत्म मांहि रामजी, अति गति आनंद होई ॥१॥
जा सुष सूं जम जरान ग्रासै, दुष सुष नासै दोई ॥
सत रज तम तीनों गुन आगै, आत्म असथिर होई ॥२॥
जा सुष सूं सवही जन रचिकै, पार पहूँते सोई ॥
सो सुष भोगत है जन तुरसी, देहु कृपावंत होई ॥३॥

॥ इति ॥

---

९. महात्मा जगजीवणदासजी ।

जगजीवणदासजी महाराज भी निरंजनी सम्प्रदाय के गणनीय महात्माओं मे थे। उनके जन्मस्थान तथा जन्म व तिरोहित होने के काल का यथार्थ कोई पता नही लगता, क्योकि महात्माओ का जीवन तो निवृत्तिप्रधान होता ही था, अतः वे इस बात की आकाक्षा ही कब कर सकते थे कि उनका तरीके से जीवनचरित लिखा जाय।

केवल इनका सामान्य परिचय राघोदासजी की भक्तमाल से प्राप्त होता है। उनने व्यक्त किया है कि जगजीवणजी ने साधाना के द्वारा अपने गुरु से भी अधिक अपने को सिद्ध किया तथा जगजीवणजी ने अपना स्वतत्र पंथ भी चलाया। उनने द्वादश निरंजनी महन्तो मे ही इनका निरूपण किया है।

इन्दव छन्द—

भादवे के जगजीवणदासहु पंचम वर्ष तज्यो हरि गायो।
सील संतोष सुभाव दया उर ताहिं तैं ईश्वर कै मन भायो॥

त्याग वैरागरु ग्यांन भलै मत तातैं भयो गुरु तैं जु सवायो।
राघव सो लहि ग्यांन गुरु कर एसो भयो फिर पंथ चलायो ॥१॥

भाऊदासजी की गुदडी के अनुसार ये हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे आते है। निरजनी सम्प्रदाय मे ही जगजीवणजी महाराज के अनुयायी अपने को जगजीवणपंथी की संज्ञा से सम्बोधित करते है। वैसे ये भी डीडवाणे मे आने-जाने का तथा व्यावहारिक व्यवहार निरंजनी साधुओ मे ही करते है। अब भी इनके थाभे की परम्परा मौजूद है। एक स्थान नागौर मे भी है जिसमे परम विद्वान् महात्मा माधोदासजी इस समय मौजूद है। आप सस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् है। आपके गुरुभाई लक्ष्मणदासजी भी अति विद्वान् थे। ओर भी इनकी परम्परा के स्थान है। जगजीवणदासजी की पूरी रचना तो प्राप्त नही है। प्राप्त रचना मे दो लघु ग्रन्थ चितावणी तथा प्रेमनामा है। चितावणी मे चालीस साषी है। प्रेमनामे मे गुनसठ साषी है। आगे पद है।.सात राग मे करीब साठ के पद प्राप्त होते है। जनश्रुति से और वाणी नागौर मे होने की सुनी जाती है। वाणी मे इनने विशेषतः कबीरजी का अनुगमन किया है। उपासना का क्रम तो वही है जो निरंजन निराकार का महाराज हरिदासजी ने अपनाया है। उनकी रचना का तारतम्य व भाषादि का विवेचन पूरी रचना प्राप्त हुए विना करना संगत प्रतीत नही होता; वैसे आगे दिये गये उद्धरणो से जानकारी हो ही जायगी।

॥अथ जगजीवणदासजी की वाणी लिखंते॥

अथ चिंतामणि जोगग्रंथ

आप निरंजन संत सब कृपा करि दिया रंग ॥
गुरुकृपा तैं पाइये चिंतामणि का अंग ॥१॥
चिंतामणि चौथी दशा लखै सु पावे सुख ॥
जाइ धसै वा सिंध में बले न दरसे दुःख ॥२॥
पूंजी तो परमेश्वर तणी तूं मति खरचै बीर ॥
दरगह लेखा माँगिसी कौन रंक को मीर ॥३॥
तूं बनिजारा पार का पूंजी जमैं लगाई ॥
चेतन रहो चूकी रखे तो उत्तर दिया जाई ॥४॥

जै जानै तो उर गहि उरगहि पकड़ि निन ॥
जिन जल सूं पैदा किया सोई मांचा मिन ॥५॥

मन बनिजारा जागिरे सोवै कहा अघोर ॥
सूताँ पूंजी हारिमी के मुमि लेंगा चोर ॥६॥

विगति बैल गमि गूमि करी, नाँव वस्त ननमार ॥
सुमति पटाट सब सूंडिका, सतगुरु हाकणहार ॥७॥

तसकर बैठा घट मही निमदिन करि हैं घात ॥
ग्यान खड़ग हथियार गहि मानि हमारी बात ॥८॥

जन्म जन्म का संग रहैं बिछुड़ै नहीं लगार ॥
चेतन रहो केड़ौ करि यों आमर या बार ॥९॥

पांच तीन का जुथ मिल्या माँही मोम्या मन ॥
राति अधेरी मै खरी काया मेड़ा बन ॥१०॥

इह पैंडे बहु लूटिया दुनियां केरी राह ॥
सांमलि सतगुरू यों कहै अदली दगई जाह ॥११॥

गर्भवास में राखियो कहि नर किती एक बार ॥
सकैत हरि गुण गाइले विसरै काँइ गँवार ॥१२॥

जठर अगनि में जोगियो राखि लीये गर्भवास (भ्रमवास) ॥
आतुर होय आगे खड़ा हरि सुमरो साँसों मास ॥१३॥

दुःख जामण दुःख मरण है दुःख मात पिता हरप मोग ॥
दुःख बंधु दुःख जाति पांति दुःख कुटम्बी लोग ॥१४॥

दुःख जीवण दुःख व्याहणा दुःख नारी मोग विलास ॥
दुःख ही दुःख संपति मिली दुःख दुःख केरी आम ॥१५॥

जा दुःख सुख करि लेखिया इण अंधे संसार ॥
सुपना केरी नांवरी क्यूं उतरै सो पार ॥१६॥

दुनियां केरी द्रिष्टि बंध नहीं रहावो कोई ॥
देखत ही उठि जायगा आजकाल्हि दिन दोई ॥१७॥
भौजल अथग अपार है काम क्रोध मछराई ॥
हर्ष शोक का तट मंझ्या पड़ै मोह पचि जाइ ॥१८॥
कोई एक तिरि है संत, जन जाकै राम सहाई ॥
सतगुरु नेरैं बैसि करि प्रेम प्रीति ल्यौं लाई ॥१९॥
नैन बैन श्रवण करया दीया करि चालण कूं साज ॥
सो साहिब तूं बिसरयो कहा कहां मुख लाज ॥२०॥
रे मंदभागी प्राणियां दीनबंध गुण चोर ॥
परम सनेही बीसरयो कहां लहैगो ठौर ॥२१॥
ज्ञान पलीता लाइ करि दगध्या बन विकार ॥
सैवासा सो मठ किया लहै न दूजी बार ॥२२॥
मन मैवासी पाकड़ै अनन्त न देई जान ॥
बेडी विरह पहराइ कैं लावै सतगुरु बांन ॥२३॥
बिगति बिगति का दुःख सह्या गरम संकट बहौ त्रास ॥
लख चौरासी भरमियों तहू न छूटी आस ॥२४॥
सकल बियापी सकल में सब माँही सब दूरि ॥
जैसे चंदा उदिक में सकल रह्या भरपूरि ॥२५॥
गहि बिसवास आस गहि जीव चेतन ह्वै चेत ॥
बार बार पावै नहीं मनिष जन्म का नेत ॥२६॥
मनिषा देही दुलभ है सब जीवन में सार ॥
कृपा करि तोकूं दई सजिलै सिरजनहार ॥२७॥
महापतित के पावन वहै निर्बल के आधार ॥
निर्धन के धन दीनबंध सरनाई साधार ॥२८॥
जल थल थावर जीव जंत परलै कीट पतंग ॥
सूक्ष्म होइ होई औतरया तऊ न मोड्या अंग ॥२९॥

चंदन रूंष विराग बड़ भार अठाग जाति ॥
काटि बाढ़ि बहु बैहरया तउन सुमरया नाथ ॥३०॥

परम सनेही परम गुरू परकाजां परवान ॥
परमार्थ कै कारनै यौं परापरै परवान ॥३१॥

निराकार निरंजना निर्विकार निहस्वाद ॥
काया माया बन नही नही बिंद नही नाद ॥३२॥

अखण्ड अमर अगाध हरि वार पार कुछ नांहि ॥
सब साधन मिलि भाखिया है न्यारा अरमांहि ॥३३॥

सुख तरवर छाया रहत मूल डाल पत नांहि ॥
इमृत फल प्रकासिया सब साधू मिलि खांहि ॥३४॥

सब स्वादन मैं स्वाद है सब प्यारन में प्यार ॥
सब सुखन में सुख है सब सारन में सार ॥३५॥

हरि ही माता हरि ही पिता हरि कुटुम्ब परिवार ॥
हरि बंधु हरि सजनता हरि यारन में यार ॥३६॥

निरभै घर जहाँ भै नहीं भाव भक्ति सुखरूप ॥
कृपा करि तोकूं दई असा तत अनूप ॥३७॥

सतगुरु परस चिताइया जीव चेतन ह्वै चेन ॥
गुप्त वस्त प्रगट करी अंजन बाहा नेनि ॥३८॥

यूं चिंतामणि ग्रंथ है अनंतकोट बिसरांम ॥
जे षोजे सौ परसि है सरै सकल, बिध काम ॥३९॥

मनसा वाचा कर्मनां अविनासी की आस ॥
गुर कबीर प्रताप तैं कहै जगजीवनदास ॥४०॥

चिंतावणी जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥१॥

।। अथ प्रेमनांमो जोग ग्रंथ ।।

नाम निरंजन प्रेम अंग साखी गुरू प्रवांन ।।
मनसा वाचा कमना नांहि दूजी आन ।। १ ।।
पेमी कै पति प्रानै है तन मन वै आधार ।।
रोम रोम में रमि रह्या बिसरे नहिं लगार ।। २ ।।
जैसे मछली जल बिना पेमी कै करतार ।।
निसबासुर बिछुटै नहीं बिछुट्यां होई प्रहार ।। ३ ।।
जैसे अमली अमल कूं निरधन के धन होई ।।
पेमी के पिव बालही राखै पिंजर पोई ।। ४ ।।
जैसे माता पूत कूं ज्यूं नारी भरतार ।।
पेमी के चित पिव बसै ज्यूं जूवारी सारि ।। ५ ।।
पेमी के परतीति है हरि है हृदा मांहि ।
पेम बिना खाली सबै भूला भटकैं कांहि ।। ६ ।।
राता माता पेम में सुख में रहे समाय ।।
या पेमी की पारखा हरि तजि अनंत न जाय ।। ७ ।।
पेमी पीपल पेम में दया :दीनता हारि ।।
ग्यान गरीबी दरदबन्द गुरबाइक उर धारि ।। ८ ।।
पेम तहां ही पीव है पीव बिन पेम न होई ।।
पेम बिनां हरि कौण का मति गरिबानों कोई ।। ९ ।।
पेम तहां प्रवति नहीं नहीं न आसा पास ।।
नांव मईं ज्यौं लीन होइ ममकत साँसा सास ।।१०।।
पूरां सूं परचा भया पीया पियाला धाप ।।
जन्म जन्म की चिंतना मिटी, साहिब पाया आप ।।११।।
ऐकै सेती एक है दुतिया नांहीं कोय ।
पेमी कै परतीति है, दूजी भांई होय ।।१२।।

मनिखा देही पाइ कर मन नहिं लाया राम ॥
पेम स्वाद जाण्यां नहीं भेष धरया बेकाम ॥१३॥
सदा समीपी सावधान जिनि हरि नांहि न रेष ॥
ज्यूं दरपन में देखि है अरस परस मुख एक ॥१४॥
रिध सिध आवध, जोग जिग नेम ब्रत तप दान ॥
पेम पियारा पीव कूं पेम बिनां सब आंन ॥१५॥
तीर्थ पूजा जाप धर्म पट्कम कुल आचार ॥
पेम बिना किस काम का बिन सज्या सिंगार ॥१६॥
सदई झड़ लागा रहै बरपै निरमल पेम ॥
ब्रह्मराज अखंडतपुरी नाहिंन बासुर व्योम ॥१७॥
सुख सरवर जनहंस हैं मुख मुक्ताहल म्वांहि ॥
पेमी रमि है पेम सूं उड़ि उडि अनंत नजांहि ॥१८॥
अविनासी जहां मैं नहीं मांही निर्मल हीर ॥
को मरजीवा काढिसी जहां जाल न काल न कीर ॥१९॥
अगम अगोचर तट मंझ्या मंझैं पेम की नाव ॥
जो बैसो सो परसि है नांहि न दुतिया भाव ॥२०॥
प्रेमलछन हरिभक्ति है कोई साधैं संत सुजान ॥
चौरासी मरमै नहीं लगै न काल का बांन ॥२१॥
जम डरपै ता दास सूं जांकै अंतरि भाव ॥
पेम पमोज सूं पातला ज्यूं आया त्यूं जाव ॥२२॥
बैरागी होई बन बसै उपजै नहीं वियोग ॥
पेम बिना दोऊँ थक्या बादि बिसारया रोग ॥२३॥
बैरागी चंदन बावनों ताँकी बास सुबास ॥
पेम पियाला पाइया जग सूं रह्या उदास ॥२४॥
सतगुरु मिलर जगाईया पीया पियाला पेम ॥
पथरगल पांणी हूआ ज्यूं र सुहागा हेम ॥२५॥

शब्द सुहागा विरह अग्नि, दीया प्रेम लगाय ॥
सतगुरु कंचन काच तैं कीन्ही कंचन काय ॥२६॥
ज्ञान हथोड़ो दिल अहरणी दऊँ बिच लाया ताव ॥
सतगुरू हिकमती कीया बारा बांनी माव ॥२७॥
कसत कमत कसणी सही कसि कसि पाया प्रेम ॥
सतगुरू मेरा हिकमती कीया सोल्हा वांनी हेम ॥२८॥
अमली सब संसार है कनक कांमणी स्वाद ॥
साचा प्रेमी संत जन ताहि विष नहीं आवै आद ॥२९॥
प्रवृति तज निवृत भया, एक नांव की चाहि ॥
पतिव्रता पति सूँ रज्यू, रहै प्रेम लपटाहि ॥३०॥
ज्यूं मोती गजराज सिर ज्यूं गिरवर में धात ॥
ज्यूं बिसहर संग मणि वसै यूं प्रेमी हरि साथ ॥३१॥
जैसे पावक काष्ठ में ज्यूं पै मांही घीव ॥
ज्यूं तिलन में तेल है यूं प्रेमी में पीव ॥३२॥
समिहू संग इम्रत वसै, ज्यूं फूलन में वास ॥
ज्यूँ चंदन में ठंडिता, यूं हर मांही दास ॥३३॥
जैसे मिसरी ईख में ज्यूं हीरा में जोति ॥
ऐसे जग में नांव है, मया एक ही पोति ॥३४॥
घट घट भीतर मन बसै ज्यूं वासर में सूर ॥
ज्यूं जल सेती जल मिलै यूं प्रेमी में नूर ॥३५॥
नूर मिल्या उस नूर सूं न्यारा किया न जाइ ॥
प्रेमी मिल्या उस पीव सों ज्यो जोते जोति मिलाइ ॥३६॥
अनल पंख आकास घर धर धरती सूं नेम ॥
गगन गौंन लागो रहै या प्रेमी की प्रेम ॥३७॥
दूरि सनेही बिचि घणां क्यूं करि पहुँतौ जाइ ॥
जोइ रह्यो हरि समंद में, पेमी पाँष तुलाइ ॥३८॥

प्रीतम चाहे प्रीतमां कब आंष्यां में अंप ।।
कोईक मिलि है संत जन प्रेम प्रीति दे दंप ।।३९।।
प्रेम पांष जन कूं दई करि कृपा करतार ।।
भौ जलसिंध अथाह तिरि दरस्या देव मुरारि ।।४०।।
बिन पैरन का पंथ है दिष्टिविवर्जित ठौर ।।
प्रेम परचै पाइए ज्यूं मुख उपजै मौर ।।४१।।
चुंबक चुणि है लोह कूं पुरुष पुरातम प्रीत ।।
अरस परस हर सूं मिलै या प्रेमी की रीत ।।४२।।
रनबन बस्ती बिच रहै मिल्या अर्न्तानी न्याइ ।।
प्रेमी मिले न देह गुण ज्यूं पत्थर की राइ ।।४३।।
प्रेमी के मंगल सदा बाजै अनहद तूर ।।
सोच पोच आनैं नहीं ज्यूं दहीं दलां बिच सूर ।।४४।।
जैसे सती सत काया खसम संग जीवन जाली देह ।।
यों प्रेमी अंग न मोड़ ही निराकार निज देह ।।४५।।
कुंज पुकारै कुरलि करी सुरत रहै उन पास ।।
प्रेमी अपना जान करि साहिब पोषै दास ।।४६।।
चूंणि चुगै चितवनि करै, चुणि चुणि जोवैं दूर ।।
अंतरजामी प्रेमबस है हाजरां हजूर ।।४७।।
नेह दहौं का एक सा क्या सांई क्या संत ।।
जो कुछ होइगा जिंद में सोई फलेगा अन्त ।।४८।।
कँवल बात प्रेमी तणी जल है जहाँ समीप ।।
निरंजन भजि न्यारा रखा ज्यूं दरिया मोती सीप ।।४९।।
लष चौरासी इन्द्र आदि नवषंड ब्रह्मंड इकीस ।।
प्रेम नाव जन कूं दई ताहि दरिया जगदीश ।।५०।।
साहिब सम दाता नहीं नहीं जन सौं मंगणहार ।।
प्रेम मौज दाता दई सब मौजन में सार ।।५१।।

मन महुवा गुड़ जान करि , भाठी गुरमुष धार ॥
अमी पियाला जिनि पिया , विसरया देह विकार ॥५२॥
अकल कला ल्यों बारनी , रही गगन मठ छाई ॥
जन्म जनांणों डारि करि , कहै पाई हरि पाई ॥५३॥
त्रिगुण ताप सूं तरक दे , निरास मांहि आस ॥
चौथे आश्रम संत जन , तहां प्रेमी का बास ॥५४॥
प्रेम सलिता हरषित चली , चालिया नेह लगाइ ॥
जाइ धसै हरि समंद में , सुख में रहै समाइ ॥५५॥
हीरा मोती लाल घणां , वैरागन बड़ नग ॥
मुक्ति षेत निरंजनपुरी , जहाँ पेमी लिया रंग ॥५६॥
छौंतन भ्रांति मै भ्रम नहीं , नहीं नाद जग विंद ॥
पूरण ब्रह्म पेम वसि , निराकार निरजंद ॥५७॥
मात्र गिरा ही भाव वसि , नहिं रिध सिध विवेक विचार ॥
अकल सरूपी सकल में , जा का वार न पार ॥५८॥
महा प्रेम अँग ग्रंथ है , निजसंतन किया बिचार ॥
गुरू कबीर प्रताप तें , कहै जगजीवन सार ॥५९॥
॥ इति प्रेमनामों जोगग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ ग्रंथ अथ पद ॥

राग धनाश्री

अब और सरनि कित जाऊँ ,
आरति हरन नहीं कोई दूजो काहे कूं भेष लजाऊँ ॥ टेक ॥
हरि हैं दयाल संतन सुखदाई , और नहीं कोई देव ॥
आगे अधम उधारे केते , जोई जोई लागे सेव ॥
जल थल पावक गज सिंह आपौं , राषि लिये दे हाथ ॥
मुख करि कहाँ बड़ाई भाषौं , हरि हैं अनाथन के नाथ ॥

पतित पावन हरि बिड़द तुम्हारो, मैं पतितन अधिकार ।।
जगजीवन सति बिड़द तुम्हारो, जैं मोहि उतारो पार ।।३।।
तैरो जन चरन सरन तकि आवै,
कहर काल की बहोत त्रास हैं, हरि बिन कौन छुड़ावै ।।टेक।।
पांच तीन पच्चीसूं प्रकृति, देत फिरैं बहो माई ।।
हरि बिन और कौन सूं कहिए, रहे करम उरझाई ।।१।।
मनसा नदी बहै निसबासुर, रहन नहीं या गासी ।।
नांव जिहाज गहि पारन पकरै, मुनि सतगुरु की सासी ।।२।।
मैं बलहीन महा सठ अवनां, हरि अघमोचन अविनासी ।।
जगजीवन जन करै बीनती, काटि करम की पासी ।।३।।
हरि हूँ सब पतितन पतिसाह,
असी और कौन पै होइ हैं, दीरघ करम अथाह ।।टेक।।
काम क्रोध का कोट हमारे, आवा गवन दरबार ।।
मनसा नारी सुहागनि थरपि, जम सेती व्यवहार ।।१।।
चिंता पजीनों घटत नही कबहूं, मनोरथ उमराव ।।
चित चंचल कुटवाली दीनी, राजस राजा राव ।।२।।
ब्रह्मंड यकीस लोक त्रिय तांई उपजै, पतित मत्र लोक अपार ।।
पतितन मांहि पतित सिरनामी, और पतित सब लार ।।३।।
त्रिष्णा गाज बाज सिर घूमै, नौबति बाजा मार ।।
जगजीवन जन सरनै आया, लीजै अधम उधार ।।४।।
अविद्या हम हेरि सकेली,
अबिगति की गति हम सूं रहि न्यारी भई मूढ़ मति मेरी ।।टेक।।
मारत मन तौऊ अति चंचल, धीर न धरत लगार ।।
ताहि तूरस मोर मगन मन, लंपट विषै बिकार ।।१।।
मल तें उपजि मांनि रुचि मलतें, पीयो हलाहल पान ।।
अगनि प्रवेस मषे करत नित, परहरि सदा अस्थान ।।२।।

हरिपद विमुख अज्ञानभाव अति, एही प्रतिज्ञा मेरी ॥
जगजीवन जगप्रान जगतपति, जाँपरि सजीम तेरी ॥३॥

राग आसावरी—

आव सजन मेरी मैजडी, मैं वारणां तेरे ॥
पलक पलक ज्यूं जुग फिरे, सुख हिवडै मेरे ॥टेक॥
जैसे दादर पावसाँ, घण वरषै मेहा ॥
एसे विरहनि पिव मिल्यां, उपजै बहु नेहा ॥१॥
जैसे अमली अमल बिन, मछली बिन नारा ॥
दिल मालिक दिल में वसै, जानें पर पीरा ॥२॥
प्रीति तुलाई प्रेम गींदवो, भाव कली विछाऊँ ॥
पौढें पीव पियारडा, ऊभी वाल हिलाऊँ ॥३॥
अगर चंदन ल्यो लेपनां, मंदल सुख वासा ॥
अमी पियाला साह संगि, दीपक परकासा ॥४॥
बहुतक दिन बिछुरयां भया, तन ताला वेली ॥
जगजीवन बिलसांइयां, मिलि मुझसूं खेली ॥५॥

राग बिलावल—

रे घड़ियाले बीनती सुन मेरा भाई ।
मेरा पियारा पाइया, मन बटी वधाई ॥टेक॥
ज्यूँ ज्यूँ घड़ियाँ मैं सुणों, मेरा प्राण डराई ॥
बहुतक दिन मों पीव मिल्या, मत बीछुड़ि जाई ॥१॥
मिलत मिलत मिल ही रहूँ, बिछुरन नहि भावै ॥
मैं भूखी हरि दरस की, मोहि अजक लगावै ॥२॥
काया महल सिंगारिया, मति सेज वनाई ॥
दीपक ज्ञान रतन का, मिलियां सुखदाई ॥३॥
प्रेम प्रीति आरति भई, अमी रँग पीता ॥
अरसपरस आनंद भयै, भागि सब चिंता ॥४॥

घटत घटत घड़ियां घटी, काना मंतिर सुनावें ॥
जगजीवन केते गये, अब साहिब भावें ॥५॥
मैं मति आणें रे मना, कहा करें अनाला ॥
जिन सिरज्या जल बूंद सूं, सो है प्रतिपाला ॥टेक॥
इंड़ा टींटोडी तणां, राख्या घटि छिटकाइ ॥
गज निरास होइ टेरिया, हरि लिया बंचाइ ॥१॥
जल थल गिर ज्वाला मही, जहाँ तहाँ रखवाला ।
प्रहलाद प्रत्यंग्या पूरि है, घट भया उजाला ॥२॥
सुनि सूली सरथर तणी, नांम देव बंचाया ॥
लोह लंगर पग घालकै, कबीर तिराया ॥३॥
साखि सुणत खातिर भई, भौ भागा भारी ॥
जगजीवन मुसकिल कहा, जा कै देव मुरारी ॥४॥
विनती सुणौ हो मेरी नाथजी, तूं समरथ देवा ॥
मैं प्रान अबला बली, कछु होत न सेवा ॥टेक॥
बहौ बिध ज्ञांन सुनाइया, कसनी बहौ त्रासा ॥
महाराजि निलजा समझै नहीं, फिर बाही आसा ॥१॥
ऊठत बैठत कल्पनां, दग्धै दिन राति ॥
करुनां सुनि करुना भई, जन पकरौ हाथि ॥२॥
लख चौरासी भ्रमत फिरयौ, कछु चलत न उपाई ॥
जगजीवन सूं कर दिया, हरि ल्यौह बचाई ॥३॥
महर करौ महरवानजी, अपना करि रापो ॥
मैं तुमही सूं लागा रहूँ, सोई बुधि आंपो ॥टेक॥
मम जालि समझै नहीं, मेरा बसि नांहि ॥
तुमसूँ कहा दुराइए, तुम दरसौ मांहि ॥१॥
आगे पीछे एक तूं आलम आधारा ॥
तुम्हीं तैं पतियाइए, सब खेल तुम्हारा ॥२॥

उजु निवाज कलमां पढै, कर जप तप तै आसा ॥
जगजीवन दरवेस कै, पावन की प्यासा ॥३॥

राग सारंग

प्रीतम आवौजी अब जिन लावो बार
चौमासौं दूभर भरौ, मुझि बिरहन के आधार ॥टेक॥
मास सावण तजी तरणी, आतम किया सिंगार ॥
लवैं चात्रग घरहरैं घन, बीजल्याँ चमकार ॥१॥
पीव बिनां मेरो बदन बिलपै, टिकत नांही सांस ॥
मरम सांवण जाइ अहलौं, कहाँ बधावौं आस ॥२॥
भादवैं मैं पडयौं मनकै, नदियां नीर बहाइ ॥
राम बिना मेरी सेज सूनीं, कैसे रैनि बिहाइ ॥३॥
सुनि सपि एक अचरज भयौ, सुपनै भयो संदेस ॥
भादवो अति जाइ गहरौ, आइ करौ उपदेश ॥४॥
आसोज मैं अैसी भई, मेरो चित न धरहै धीर ॥
लाल बिन मेरैं नहीं कोई, कौंन जानै पीर ॥५॥
पंथ जोऊ नैन रोऊँ, घड़ी चितऊँ बाट ॥
आसौज मैं घन भई आतुर, बहोर नांहा थाट ॥६॥
कातिग मंगलचार जनकै, पूरई सब आस ॥
पीव आए मनाँ भाए, दरसीए सब दास ॥७॥
करी कृपा दीन ऊपरि, परसि पद नृबान ।
जगजीवन जन केली कातिग, नांहिन दूजी आन ॥८॥

राग सोरठ

सजन आव हम घरि आव ।
बार बार छक नांही इहड़ौ, यो मिलिबा कौ डाव ॥ टेक ॥
पहर ब्यारूँ जांहि अहला, बिन कंत सुजान ।
मैं अबला बलहीन, तुम सूँ कोई न पूजै पान ॥१॥

तलब तेरी व्यापे निसदिन , ज्यूँ चात्रिग चितवन नीर ।
करुनां सुनि कृपाल स्वामी , वेगी बुझावों पीर ॥२॥
अवधि घटति जाय पल पल , ताला बेलो जीव ।
तुम जांण प्रवीण प्रभूजी , महल पधारों पीव ॥३॥
बिथा तन की कहूँ कासूँ , कथ्या न को पतिआइ ।
तुम दीनबन्धु दयाल कहियो, रह्या बदेमां छाइ ॥४॥
तुम सरखि सोहृद सुमङ सांचा , बिड़द गुधारण राव ।
जगजीवन जन मिले पीत्म , आत्म अधिक उछाव ॥५॥

देवा तेरी भगति दीजै मोहि ।
सुरति धागा नांव मनका , राखूँ पिंजर पोइ ॥ टेक ॥
जपौं अजपा जाप निसदिन , अषंड सुमरण होई ।
दाषिलै तेरा संत भेला , बाण न लागे कोई ॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेस सुर नर , देतां सुणिया दांन ।
सकल तजि तुम सरनि आया, राषो जन को मान ॥२॥
आस तेरी करो रछा मेरी , मोहि मिलन को चाव ।
जगजीवन जन केरी बिनती , देव दया करि आव ॥३॥

माधौजी दुर्लभ दर्शन तोर ।
मैं निबला औं करम बलिवंत कछू न पूजै जोर ॥ टेक ॥
मन मनसा सुरति चंचल , इनका एहि सुभाव ।
गुप्त प्रगट बहैं सदई , करै नहीं ठहराव ॥१॥
जोगध्यांन बहौ पठन आवध , नाना मत अपार ।
पेम बिना परसन नहीं , वै साचा सिरजन हार ॥२॥
जोगी जति तपी सन्यासी , सब ही कह्यो पुकारि ।
गुरू कृपा तैं ऊबरै , नहींतर चाल्यो हारि ॥३॥

जीव सीव दोऊँ रहत सुमिलत, बीचि भइ अंतराइ ॥
दया गरीबी भाव उर गहै, तो हर करै सहाइ ॥४॥
कांम आरंभ मोह माया, औ जीव बैठो धार ॥
जगजीवन जन सरनि आया, लीजै राम उबार ॥५॥

मन रे होइ हर का वोलिगानां, ज्यूँ तेरे कोई न लागै बानां ॥टेक॥
तूँ परिहर त्रिषै सगाई, पी पेम पियाला भाई ॥
रहो रैनि दिन माता, तो कूँ दरवै आप बिधाता ॥१॥
जांके अनंत कोटि उमरावा, वै पांवें मौज समावा ॥
खरा खजीनां खावैं, फिरि भौसागर नहिं आवै ॥२॥
हरि अकल भवन को राजा, जांकै बाजै अनहद बाजा ॥
कहै जगजीवन दासा, तूँ करि चरनां मैं वासा ॥३॥

मन रे सांचा राम दिवांना, जांकै बाजै प्रगट नीसांना ॥टेक॥
एक बूंद सूं सब जग कीया, राव रंक सुलिताना ॥
एतौ भोपति दिवस च्यार कै, कूड़ा करत डकांना ॥१॥
गण गंध्रप सब ही चल है, सो क्यूं ही न ठहराई ॥
रांवण सा बड़ जोधा होता, तिनकी षबर न पाई ॥२॥
धरती गगन नहीं कछु अस्थिर, चलि हैं सकल मंडाणां ॥
जगजीवन वै संत न चल है, ज्यो परस्या पद निर्बानां ॥३॥

जीवड़ा हरि राखै त्यूं रहिए ।
मुस्कलि बहोत पड़ी या जीवकों, यौ दुष कासूं कहिए ॥टेक॥
लागूं पिंड ब्रह्मंड पण लागूं, लागूं च्यारि षांणिका जीव ॥
यौ सांमो मोहि निसदिन ब्यापै, जानैं अंतरजामी पीव ॥१॥
सतगुरु सरन लाज संतन कूं, दूजी कछू न सहाइ ॥
आगैं अधम उधारे केते, बोलत निगम बड़ाइ ॥२॥
पल पल छीजै राम न रीझै, झूठ जग मैं बासा ॥
हर हौ दयाल महर कर माधौ, कहै जगजीवन दासा ॥३॥

पंथीड़ा पूछै रे बिरहणी आपि , म्हारा पीवजी रा बैण ॥
कब घर आवो साहिब कब मिलू , जोऊँ दिन अरु रैण ॥टेक॥

बहुत बधाई आपिहू , वहला ल्याव संदेश ॥
बहुतक दिन बीछुरयां भया , मो मन मांहि अंदेस ॥१॥

ग्रह आंगन भावै नहीं , विष लागै संसार ॥
बिरहन बेदन विषम गति , दरस्यां होइ करार ॥२॥

कब घर आवौ साहिब कब मिलू , हरि परम सनेही राइ ॥
महल उजालौ प्रभु पति मिल्यां , सेज सुरंगी थाइ ॥३॥

गोवल गूड़ी ऊछरी , प्रगटया जैं जैं कार ॥
जन्म जन्म का दुःख मुच्या , धनि त्रिरियांधन वार ॥४॥

षोडश आभूषण साजिया , साज्या सकल सिंगार ॥
जगजीवन दुलहन कहै , दरस्या राम भरतार ॥५॥

कही रे बटाउ पीवनै संदेसड़ौ , बिरहनि बूझै च्याइ ॥
अवध सवाई साहिब बहि गई , पीछैं कहा जी करोगे आइ ॥टेक॥

हिवड़ै अरहट लाइया , कबर मिलोगे नाथ ॥
ऊभी जोऊँ आंगणें , मस्तक दीया हाथ ॥१॥

बिरह कासीद पठाईया , तुम बैग पधारो राइ ॥
तुम बिन घडी न आलगें , तलफत रैनि बिहाइ ॥२॥

सुपनै झषि है आत्मां , उठि उठि जोऊँ बाट ॥
तुम बिन सूनी सेजड़ी , मोहन जोवै पाट ॥३॥

बहौतक दिन बिछरयां भया , ताला बेली जीव ॥
राम दयाल दया करो , महल पधारौ पीव ॥४॥

जगजीवन जन बीनवै , सुनि सतगुरू सिरजनहार ॥
दरसन दीजै देवजी , अब जिन लावो बार ॥५॥

जिंदवा जाणि रैं जग जातौ, समझि मूढमति भाई ॥
राम सुमरि सकल सुखदाता, परहथि कांइ बिकाई ॥टेक॥
चकवै बहौत सूर सांचत, पातसाह सुलतानां ॥
देपत निजर खांक में मिलिया, कौंण रंक कूंण रानां ॥१॥
जाकै हस्ती घोड़ा गांव गढ़ गूडर, खरच खजीनां भारी ॥
ऊभी दुरम हवेली छाड़ी, करता म्हारी म्हारी ॥२॥
नौबत तेग नगारा बाजैं, लड़ैं फौज झूंझारा ॥
चलती बेर कहूं खबर न पाई, हुवै गया महल अंधारा ॥३॥
सूर सोई लड़ै माया सूं, लड़ि भिड़ि आपौ उबारै ॥
सतगुरू सबद सिल्है करि सत की, मन मैवासी मारै ॥४॥
इन धूतारी सब बसि कीया, कांम काल ह्वै गिलिया ॥
जगजीवन वै जोगी जुगता, हरि भजि हरि मैं मिलिया ॥५॥

मन चेति रे चेति कांई झूठरातौ ।
अलप जीवन संसार सांसै पड्यौ, सुमरि लै रांम सति रांम नातौ ॥टेक॥
कामदल क्रोधदल लोभदल मोहदल, पेलिया छा संग्राम साही ॥
साचरी सांगलै सफर लै जरनां हो, सनमुख जंग जीति भाई ॥१॥
सबद सनाह समसेर गह ग्याँन की टोट सतगुरू सबद ध्यान धीरा ॥
प्रेम तुरंगि चढि सुरति लगाम दे, पकड़ि पांचूं करि हाथि हीरा ॥२॥
सोहड़ सांवत लड़ै सुगध पाछा पडै, पेलीया पिसण रिण रांम द्रोही ॥
नालि गोला बहैं काइरा किम सहै, मंडि रहे खेत कमधज सोई ॥३॥
बिरह बिधि आरबा भाव भीड़ि कुंजरां, मेलिभार्थ जस जोध लीया ॥
राजिरै काजि तन काटि कुटका कीयौ, मौत नैं मारि जन जुगति जीया ।४।
अदलि अैसी भई स्याम सुनमुख सही, जीतियागढ़ अरि भांजि भारी ॥
दास जगजीवन मौज दे मांनियां, हरि करी किरपा जन लीया तारि ॥५॥

मनां बूझी रे बूझि छक जाइ भारी ।।
जम जुरा जोध असाध आगम दहै सुमर रघुनाथ या नाहि थारी ।।टेक।
देह नै गेह मन भूलि भांतै पड्यौ , करमनें भरम कलि बड भारा ।।
साखि सुणि आगिली समझी सतगुर कहै, होइ तूझै नर रालिपारा ।।१।।
कनकनै कांमणी भगति भांगी बड़ो, संतजन होई क्यूं हाथ माहै ।।
रामनै दोस नही नाकै टल्या करै , करतूति मांई पार पावै ।।२।।
रिधनै सिध सब झूठ गनि साधना , धरि बैराग धगि नांव मांही ।।
नाटकी चेटकी भरमि ज्ञान भेद बिन , होइ ल्यौ लीन संभालि सांई ।।३।।
दयानै दीनता देष साहिब सबै , धरणि नैं गगन अंतै चंद सूरा ।।
तीन को त्याग करि दृष्टि चौथे धरि , दास दरसैं जहाँ दरस नूरा ।।४।।
निरमला तेज सुख सेज सांई रमैं , झिलमिलै ज्योति जहाँ आप देवा ।।
भावरी पूजि दिल दूजी दरसै नहीं , जहाँ दास जगजीवन करैं सेवा।।५।।

नर निरषि रै निरषि निज तत देवा ।।
लोभनैं मोंह सब झूठ कांनै करी , मननैं पवन धुनि धारि सेवा ।।टेक।।
देवनैं देहरा देषि मांही पड़ा , गुरु सबद दीपक लाइ पूजा ।।
कुवध ना पाट षोलि पालक दरस , भावनें भोग हरि नांह दूजा ।।१।।
झालरी घंटा बेहद बाजा बजै , संप चक्र गदा पदम पहीप पानी ।।
ज्ञांन का परमल विज्ञान का कलस भरि, अरस नै परम जन जुगति जानी ।।२।।
काम निहकांम तीन गुण निरगुण होइ, ससि भान ममि राषि दोइ ।।
सेवग स्वामी साच पप राचिया , जिम नीर में नीर भिन नांहि कोइ।। ३।।
विवधि वसंत जहाँ आनन्द आरती , मंगलचार तहाँ मत भेला ।।
दास जगजीवन परमपद परसिया , जोति में जोति मिलि करै केला ।।४।।

मेरे मन जागि जन्म करि पांवन ।
जैसे दूध दुहे करि कढ़ावत , कढ़ावतै दे जावन ।।टेक।।
ईख तैं रस रस तैं गुड़ कीन्हों , गुड़ तैं खांड कमाई ।।
कूंजा ढ़ाल भई जब मिसरी , मंहगै मोलि बिकाई ।।१।।

जैसे सीप समंद जल भीतरि, उर धरि रषै हीर ॥
बहोर्‌यूं जतन करै पुनि वाकौ, अंदर न भेदै नीर ॥२॥
अैसें जानि भजौ बनवारी, तन मन प्रीति लगाइ ॥
जगजीवन जब जग तै न्यारा, बहौरिन उदर समाइ ॥३॥

हिंडोलनो :—

अनंग हींडोलनौ हींडै हरि के दास ।
अधिक रूप उछाह आनंद, सबकी पुरवै आस ॥टेक॥
पांच तीन पचीस प्रकृति, काम क्रोध दोऊं नांहि ॥
मन मनसा नाद बिंद, मिलि रहै एकैं ठांइ ॥१॥
अधर खंभ अगाध अनभै, प्रेम प्रीति ल्यौ डोरि ॥
नवरंग नवलं किसोर नागर, रहै हरि सूं जोरि ॥२॥
चमेक बादल बिवोग बिजुरा, स्वांति बूंद बरखाइ ॥
चाहै चात्रिग लवै सदई, घरहरै घन आइ ॥३॥
नांव नग जड़ाव झिलिमिलि, परम ज्यौति अपार ॥
अपार पेलै आतमरांम सूं मिलि, सांज्या सोडि सिंगार ॥४॥
इंगला पिंगुला गंगा जमुनां, सुरसती समभाइ ॥
त्रिबेनि तटि अकल तरवर, तहां रहे लुभाइ ॥५॥
जहां गगन मंझ जिलिमिलितारी, चतुर दशवैं द्वार ॥
अरस परस दोऊँ मिले मंगल, रमै प्रभु पति नारि ॥६॥
जहां रैनि द्यौसन तरंग तारा, अगम आनंद रूप ॥
नूर निरमल मुक्ति माधौ, जहां छांह न धूप ॥७॥
समाधि सागर भरयौ लालनि, मंझु मोती हीर ॥
हंस खेलैं चुगह चंचु बिन, महा अमीरस हीर ॥८॥
परम सुख परमांन परमल, सरस सुगंध सनेह ॥
अघटा घटा घटा घट घट, निराकार निज देह ॥९॥

जहां जोग ध्यांन निबांन नहचल , सब संतन बिसराम ॥
जगजीवन जन देव निरंजन , अमर अखंडित ध्यांम ॥१०॥

अथ आरती—

आरती आरतिहरन तुम्हारी , निराकार की मैं बलिहारी ॥टेक॥
काया देवल देव अबिनासी , मन करि पूजा मनसा दासी ॥१॥
तन का तिलक पहोप ल्यौपाती , परम पुरुष जहां निज जन जाती ।२।
दीपक अनत अनत प्रकासा , बाजा अनंत अनंत खड़े दासा ॥३॥
अलख देव जा का सकल पसारा , कहै जगजीवन दास तुम्हारा ॥४॥
आरति रांम निरंजन भावै , तेतीसूं मिल मंगल गावै ॥टेक॥
चित करि थाल जोति जीव जागै , सबद अनाहद बाजा बागै ॥१॥
घंटानाद प्रेमरस बांनी , अबिगति की गति जाइ न जानी॥२॥
घटमैं अनंत बजावै बाजा , सतगुरू सेइ सरै सब काजा ॥३॥
जस उनमांन सास उन आगै , जगजीवन जन चरनां लागै ॥४॥

साखी—

गाजे पठिये सुमरिये , लाजे उनमन ध्यान ॥
जगजीवन हरि सुमरिये , कबहू न बकिये आंन ॥१॥
आन बक्यां अंतर परै उपजै सोग संताप ॥
जगजीवन हरिभजन बिन सबद सबद मैं पाप ॥२॥

॥ इति ॥

३. स्वामी ध्यानदास जी

निरंजनी सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक स्वामी हरिदासजी के पश्चात् उनकी परम्परा मे, शिष्य-प्रशिष्यो तथा अनुयायी महात्माओं मे अनेक रचना कर हुए है। महाराज हरिदासजी के शिष्यो या समकालीन साथियो मे ही स्वामी ध्यानदासजी है। जन्म का व तिरोहित होने का निर्णीत समय तो ज्ञात नही है, वैसे इनका काल सोलहवी का उतरार्ध व सत्तरहवी शदी का पूर्वार्ध समझना चाहिये। ये भी द्वादश निरंजनी महन्तों मे सम्मिलित है भाऊदासजी ने महाराज हरीदासजी के शिष्यो मे नाथजी तथा ध्यानदासजी का अवधूत विशेषण से निर्देश किया है। प्यारेरामजी ने अपनी भक्तमाल मे इनका सामोद श्थान माना है। राघोदासजी ने रामदासजी और ध्यानदासजी का म्हार में होना माना है तथा साषी-पद-कवित्त की इनकी रचना का उल्लेख किया है।

छप्पय—

ग्यांन भक्ति वैराग त्यागि जिन नीको कीन्हौ।
भिक्षा पाई मांग जागि मन ईश्वर दीन्हौ॥
वांणी निर्गुण कथी आंन की आस उठाई।
साषि कवित पद ग्रंथ मांहि परब्रह्म सगाई॥
अंजन छाडि निरंजनी राघौ ज्यौं की त्यौं कही।
रामदास अरु ध्यांन की म्हार मधि महिमा भई॥१॥

उक्त पद्य से सिद्ध होता है कि राघोदासजी के काल मे इनकी रचना उपलब्ध थी और पर्याप्त संख्या मे निर्मित थी। मैने जहाँ तहाँ निरंजनी सम्प्रदाय के साहित्य का अन्वेषण किया तथा संग्रह किया उनमे इनकी रचना मे दो लघु ग्रन्थ गुण-माया-सवाद, गुणादिबोध मिलते है। साषी तथा कवित्त व पद भी नही मिले हैं दो साषी दो पद सामने आये है। चान्द्रायण अवश्य सौ से ऊपर है। भाषा राजस्थानी मिश्रित है। जब तक विशेष रचना प्राप्त न हो, तब तक प्राप्त रचना तक ही इनका सम्बन्ध माना जायगा।

॥ अथ श्री ध्यानदासजी का गुण माया संवाद जोगग्रन्थ ॥

एक कनक अरु कांमनी, सब जग लीया तुड़ाय॥
साध गहै मत मछ कौ, चढै अपूठे बाइ॥१॥

संतो सहजि सुनि मन लागा ,
उनमन चढ्या आकस सब परहरि, सबद गगन चढ़ि नागा ॥२॥
पांच पचीस उलटि घरि आवैं , तब मन अनंत न डोलैं ॥
मूरति मांहि अमूरति दरसै , नाना बांनी बोलैं ॥३॥
देह उलटि दरीया भई , तबै मन रह्या समाइ ॥
रोम रोम बाजा घुरै , असथिर बैठो आइ ॥४॥
सूरौ जुडै सकल के आगे , काइर सीस छिपावै ॥
सतगुरु मिलै मूल जब बांधै , परम सुनि तब पावै ॥५॥
कहीऐ कहां ब्रह्म की महिमां , तेजपुञ्ज अविनासी ॥
रूप अरूप कहां लगि बरनौं , नहीं गिरही वनवासी ॥६॥
अलप अभेद गहर गुनग्रामी , सरव भूत सुखदाई ॥
निराकार का गुन की महिमा , मो पै कही न जाई ॥७॥
ना वो तरुन विरध पणि नांही, ना वो गुरु न चेला ॥
सूक्ष्म रूप सकल तैं न्यारो , नहीं बिरछ नहीं बेला ॥८॥
ना वो उदै अस्त पणि नांहीं , सहजि सुनि पणि नांहीं ॥
गुण तैं रहत निरंतरि बैठा , ध्यान धरै तब मांही ॥९॥
अकल अभेव अतीत सकल संगि, गुन तैं रहत विराजै ॥
दरीया धरनि सेस फुनि आपै , यंद्र लोक ॐ गाजै ॥१०॥
आपै चन्द सूर फुनि आपै , सप्त दीप नवखण्डा ॥
रापै अधर इकीसूं ब्रह्मण्ड , ऐसो पुरष अखण्डा ॥११॥
जार्‌यौ जरै न काट्यो सूके , पेल्यौ न जाइ न आवै ॥
काया नांही काला पनि नांही , दो जग कौन पन्दावै ॥१२॥
बाजी सूँ बाजी रमैं , गुन सूं गुन भरमावै ॥
अवगति तहां और कछू नांहीं , माया मोडि नचावै ॥१३॥
कंकाली केड़ै ऊई , कोई रहै सनेही साध ॥
अगम ज्ञान ऊपरि कऊं , माया सूं संवाद ॥१४॥

जीवतडां जग मैं रऊं, मूंवा न छोडौं लार ॥
पारा रिषसा पीटिया, डरपूं नहीं लगार ॥१३॥

हूँ छौं चेड़ी पहल की, हरि के रहूँ हजूरि ॥
षटदरसन मोमें मैंल्या, साध करत है दूरि ॥१४॥

सिध मा स्त्रासाधिक चुणि लीया, राज सुंरा को भांड्यो ॥
मौन जटाधर फेरि नचाया, यसो अखाड़ौ मांड्यौ ॥१५॥

काइर पडे सूरवां झूझै, सिव साधक सब हारया ॥१६॥
सींगी रिष नारद मुनि ज्ञानी, चतर चुणे चुणि मारया ॥१७॥

मन में हंसी देखि कर बिगसी, जोर जुलम जुध कीयौ ॥
च्यारि जुग कौ जोगी हो तौ, मोडि मंछिंद्र लीयौ ॥१८॥

हैहैकार भयौ वसुधा मैं, गोरष लागो गाढ़ौ ॥
अवधू सक्ति उडाई चटक्यां, मरद मरोडर काढ्यौ ॥१९॥

ब्रह्मा विष्णु तलै दे बैठी, रुद्र रोलि सुणि भागौ ॥
सूरा जुरे कंदरै काइर, मडीन देषै आगौ ॥२०॥

संकर जाय सुनि में बैठौ, बहुत रूप करि आई ॥
राष्यौ आय भगति की आगल, अवगति आंपि दिखाई ॥२१॥

सक्ति अहेडै नीसरै, धकौ सबल सूँ भागौ ॥
गोरष कहै चालती मारूं, कांनि गुरू तौ लागौ ॥२२॥

जुध मांही जोगी जुड़ै, काल कण्ठ चलि आयौ ॥
माया कहै मारती बोरू, गोरष हाथ उठायौ ॥२३॥

गुर कै वचन भरतरी झूझै, सक्ति सबद तैं मारी ॥
गंन गंध्रप जिनि सब संघारे, दलबल का अधिकारी ॥२४॥

हस्तामल हेलौ कीयौ, सुनिब बसष्टि वरियांम ॥
काचां नै कांमन करै, नहीं तहां लग कांम ॥२५॥

मकनि मन्नायां ऊपरैं, बैठी करैं मलार ॥
दतकैं मन दुवध्या नहीं, काबू करैं हथियार ॥२६॥
जडमरथ भृड़ी मंड्या, मिल्या आत्मा मांहि ॥
मोनी मैंवासै रहै, माया कै बसि नांहि ॥२७॥
कपल उतीरे उतरयौ, कित्रम निपनि लेखैं जुरयौं ॥
खुर बजायौ सार, रामचन्द्र सा ऊधरया छा दसवां औतार ॥२८॥
सुखदेव जुडै सकल कै आगै, रांकै रीठि संबाही ॥
नामदेव नीसान बजावै, साधू मिल्या सहाई ॥२९॥
नींका झूँभयौ नांनिकौ, सतगुर सबद सहारि ॥
निगम मोमि कान्हौ जुडै, अंगध कीयौ हथियार ॥३०॥
हवा जुड़ै हेला करै, जारि चिकौ वांजीद ॥
मुसलमान महमंद लडै, पीरां मांहि फरीद ॥३१॥
नभ सूं लडै बहावदी, जोवाकों उनमांन ॥
गुरगमि गोपीचन्द लड़ै, गूदड़ियौं मुलतान ॥३२॥
रामानन्द कारौ कीयौ, कहां जावांला वीर ॥
अनीं मिल्यां माजै नही, पत्री मंड्यौ कबीर ॥३३॥
दसौ दिसा जोधा जुड़ै, कीया ब्रह्म में वास ॥
भीडि पड्यां माजै नही, रिण रूतौ रैंदास ॥३४॥
पीपै मांही पलटि कर, डेरा दीया अगाऊ आइ ॥
भागां पणि छाडै नहीं, षत्रीपनौ लजाइ ॥३५॥
सूरवीर सोंझो जुड़ै, सबद लीयां हथियार ॥
मालां कै डर वाहुरयौ, मरद दिखाइ मार ॥३६॥
हरिजन झूझै हरष सूं, काइर हूवा उदास ॥
मौह मोडि चालै नहीं, समन मोहिल हरदास ॥३७॥
ससतर सक्ति संबाहिया, खेतन जाऊं छोडि ॥
माया आवै मारती, केता लीया मरोड़ि ॥३८॥

झलका वाहै भरम का, दुरमति लीयां कमांण ।।
भागां पणि छाडै नहीं, भरि भरि मारै बाण ।।३९।।
जन कै पाषर प्रेम की, ग्यान तनौं गज गाह ।।
षेत मांहि पत्री मंड्या, सक्ति उल घरि जाह ।।४०।।
नौ जोगेश्वर दाहिणैं, बांवै महादेव मस्तांन ।।
सक्ति सिचांनां ज्यूं उडी, पछै न पावै जांन ।।४१।।
कुत्ती सूं कांई डरै, बैठौ ध्यान धनी सूं लाइ ।।
फाड्या कांनां बाघनी, फिसल पड्या नैं खाइ ।।४२।।
चहुँ दिसा साधू पड़ा, सब सन्तन को साथ ।।
परतन छोड़ा जीवंती, जौरती उठावै हाथ ।।४३।।
ऊंचा चढ़ि असमान कूं, गगन बइठा जाइ ।।
साधौं का दीदार की, महमा कही न जाइ ।।४४।।
अरध कंवल भाठी चिगै, उरधै बसैक लाल ।।
ऊर्म धूर्म सुषमना, पाया निगम निराल ।।४५।।
सुनि मांहि बाजा घुरै, नाना सबद रसाल ।।
ध्यानदास तब पाइये, सतगुर होइ कृपाल ।।४६।।
ध्यानदास सतगुर कीया, हमसूं वहौ उपगार ।।
भौसागर सूं काढि करि, कीया पैली पार ।।४७।।

।। इति गुण-माया-संवाद जोगग्रन्थ संम्पूर्ण ।।

।। अथ गुणादि बोधग्रन्थ ।।

चन्द सूर तहां कछू नही, नहीं धरनि आकाश
पवन नहीं पाणी नहीं, नहीं तहां भोग त्रिलास ।।१।।
तेज नहीं तारा नहीं, नहीं तहां रूप अरूप ।।
सबद नहीं सुरता नहीं, नहीं छाया नहीं धूप ।।२।।

विष्णु नहीं ब्रह्मा नहीं, नहीं संकर नहीं साध ॥
सहज सरूपी राम था, अबगति अलह अगाध ॥३॥
षडग नहीं पत्री नहीं, नहीं धनक नहीं बांन ॥
उतपति परलै कछू नहीं, नहीं आवन नहीं जान ॥४॥
भिस्त नहीं दोजिग नहीं, करम धरम नहीं कोइ ॥
ना कोई जनमै ना मरै, बिनसै जै कछू होइ ॥५॥
सुनि सरूपी रमि रहया, नहीं दूजा असथूल ॥
पेड़ नहीं साषा नहीं, नहीं डाल नहीं मूल ॥६॥
सुनि सरुपी सबद सूं, सूरति उपजी एक ॥
सूरति सूं माया हुई, ताका मता अनेक ॥७॥
ऐक सबद माया कहै, तूं मारे भरतार ॥
पिता साषि पालूं नहीं, अबला को औतार ॥८॥
आदिपुरस सांसै पड्यौ, लागी कौन बलाइ ॥
गुन करतां औगुन हुवा, वैरी कीयौ उपाइ ॥९॥
बाप बीर छोडै नहीं, पूत पूत करि पाइ ॥
मन जीतै मनसा हडै, बांधि नरकि ले जाइ ॥१०॥
पिता साषि जै पाल जै, सुनि माया मैंमन्त ॥
तसकर राखै दोइ घर, आगै और अनंत ॥११॥
रंग फेरि रांमत करी, ब्रह्मा विष्णु महेस ॥
विषै बान लागै नहीं, जै जै तुम आदेस ॥१२॥
पलौ मांडि माया कहै, ब्रह्मा बूझूं तोहि ॥
परलै करसूं पलक में, कै घरि बासौ मोहि ॥१३॥
बासै लागी ब्यसन कै, कोमल कथा पिछानि ॥
मनी कीयां मारू षरी, छोड़ौ नहीं निदान ॥१४॥
तांमस करि ताता हुवा, यौ अनरथ क्यूं होइ ॥
पहली म्हे माता कही, अब घरि वासां तोहि ॥१५॥

तब पाव मांडि ऊभी रही, भस्म कीया पल मांहि ॥
एक सबद माया कहै, अकलि बिना यौं जांहि ॥१६॥
सुनि हाथ लागै नहीं, हमसूं पूगी आइ ॥
करम कसाई कौ लीयौ, को पुत्र विनासै माइ ॥१८॥
सुनि संकर साची कहूँ, ग्यान मांहि गम देष ॥
तोहि मारि माया कहै, सेऊं चरन अलेख ॥१८॥
स्वाति सबद संकर कहै, और रूप धरि आव ॥
इतनौ षडग उठाइजे, तितनौ घाले घाव ॥१९॥
दोन्यौ बीर जिवाइदे, कै फिरि मारौ मोहि ॥
तीन्यूं व्है बांधा तनी, ज्यूं घर वासां तोहि ॥२०॥
तब अमी सीचि ऊंभी रही, सती सूर समि भाइ ॥
ऐक सबद ऐसौ कह्यौ, मुरदा लिया जिवाइ ॥२१॥
सुणौ बीर ब्रह्मा कहै, जीवांला कै काल ॥
देह धरी हरि भजन कूं, उलटा पड्या जंजाल ॥२२॥
अकलि सोधि संकर कहै, घर मैं ऊठी लाइ ॥
फलसा ही सूं परजली, सौ कित बांची जाइ ॥२३॥
घरवासी घरनी करी, मनसा कौ आतार ॥
बस्ती मेल्हिर बन वसै, तऊ न छाडै लार ॥२४॥
ग्यांन समझि संकर कहै, नीच करम कछू नांहि ॥
आपा सौंपै अलप कूं, सो सदा जीवै जग मांहि ॥२५॥
सदा जीवै जुगि जुगि अमर, सूतर ब्रह्म विचार ॥
ज्यूं पारस तांबै छिवै, कंचन होत न बार ॥२६॥
दिनां बडौ कीजै कहां, अकलि बड़ी तो मांहि ॥
जोग साध सेवा करौ, कांठौ छाडौ नांहि ॥२७॥
अकलि बडी आसण अडिग, ग्यांन लीन औधूत ॥
धरौ जोग संकर लियौ, वै माया का पूत ॥२८॥

ब्रम्हा घडै कुलाल ज्यूं , बिष्न धरै औतार ॥
जोग साध ऊभा रह्या , सो देखै सब छार ॥२९॥
आडी तिरछी सांम्ही , सक्ति तनी तरवार ॥
षड दुष्मन संसार सब , कतल कीया इन मारि ॥३०॥
सावत्री ब्रम्हा वरी , लिछमी बिसन घराहि ॥
पारवती संकर कनै , नारी और नरांह ॥३१॥
माता सूं नारी भई , पूत भया भरतार ॥
ऐसा अचिरजि देखि करि , मागे मागणहार ॥३२॥
जे भागा ते ऊबरया , मारया खलक फिटाइ ॥
जाकै आदि अंकूर था , ताकै निकटि न जाइ ॥३३॥
अगम कथा ऐता हुवा , दत गोरष सुषदेव ॥
हनूमान लछमन जती , पैंडा अगम अछेव ॥३४॥
मूल मछन्द्र ऊपनो , सकल जोग ता मांहि ॥
ताकै सिष गोरष जिसा , माया के बसि नांहि ॥३५
जाकै सिष गोरख जिसा , सो गिरही क्यूं होइ ॥
महामाया सूं षिम षरी , चत्र न समझै कोइ ॥३६॥
केता मारि डिगाईया , केता डिगता जांहि ॥
एकै सीत टंटोलिजे , हाथ न दीजै मांहि ॥३७॥
कोई नांइ लागि न्यारा रहे , सुख दुष लखै न कोइ ॥
अलख भजै आसा तजै , सो कछू निरभै होइ ॥३८॥
गोपि कथा नारद सुनि , महादेव को जाप ॥
नौ जोगेस्वर जनक कै , संकर कौ परताप ॥३९॥
राजा कोडि निनांनवै , नरवै साधै जोग ॥
सिध चौरासी नाथ नौ , तिनका मिल्या संजोग ॥४०॥
रांकौ बांकौ नामदेव , रामानन्द रैदास ॥
करड़ी कथा कबीर की , अगम निजरि आकास ॥४१॥

परचा सूं पीपौ मिल्यौ, सोंझौ काढै सीव ॥
पांचौ दे बैठा तलै, तब मुख देष्या पीव ॥४२॥
किती कथा काठैं रही, अगिणत साध अनेक ॥
सारगराही सकल कौ, बंदीवांन दिस देषि ॥४३॥
करनां सुनि करनंमई, जन की करौ सहाइ ॥
आदिनाथ बिरदावली, 'ध्यानदास' बलि जाइ ॥४४॥
आदि अंति मधि संत सब, अगिणत गिन्या न जांहि ॥
ध्यानदास साहिब सुमिर, सब आये उस मांहि ॥४४॥

॥ अथ श्री स्वामी ध्यानदासजी का चान्द्रायण ॥

राम राम रमि राम निरंजन गाइरे ।
यूं तूं जपिए करतार, पछै तन जाय रै ॥
हरि हरि सुमरि अयांन कहा नर सोय है ।
हरि हां ध्यानदास बिण एक कोण का कोय है ॥ १ ॥
नारायण गोब्यंद गोपालस गाईये ।
तौ दीनानाथ दयाल निरंजन पाईये ॥
राम रहीम करीम अलाह उरि आंनि रै ।
हरि हां ब्रह्मा विष्णु महेस जपै सोई जानि रै ॥ २ ॥
गंगा जमुना आंणि मिली दरियाव कूँ ।
मन मनसा का प्रेम मिलेगा भाव कूँ ॥
भाव तहां भगवन्त सुरति रस मांनई ।
हरि हां औ तीरथ जन ध्यान जगत कहां जांनई ॥ ३ ॥
मसि कागद नहीं दोतिन लेखणि नावड़ै ।
जीव का कहां तुडांण उलटि ओंहटा पड़ै ॥
सुरगुण बांजी जांणि निपट निरगुण घणी ।

हरि हां ध्यानदास यौह ग्यांन मैंन गूंगा नग्गी ॥ ४ ॥
गूंगा केरी मैंन न समझै कोय रै।
पुस्तग बेद पुरांण पढ्यां क्या होय रै॥
भरम जड़ी जीव छांडि न गावै रांम रै।
हरि हां ध्यानदास रंगराग न चावै कांम रै॥ ५॥
नट नाटिक संसार कहा रंग रोस रै।
थक्यो बटाऊ बीचि नग्र नौ कोस रै॥
घोस थकां चलि पंथि पछै व्है सांझ रै।
हरि हां ध्यानदास सुतसालन जांणै बांझ रै॥ ६॥
मनिख जनम की मौज, भला यौह पोत है।
कालद मांनक देत फेर नहीं जोत है॥
ध्यानदास भजि राम अंति सिर मौत है।
हरि हां यौह सरवर यौह हंस बिछेहा होत है॥ ७॥
केसौ रमता राम भजौ भगवंत रै।
लागि रहे बहु संतस कोटि अनंत रै॥
बेद पुराण कुराण न पहुंता कोय रै।
हरि हां जन कीटी तैं भृंग रहै तब होय रै॥ ८॥
सुमिरन सास उसास करै जै कोय रै।
मनिख न बिसरै नांव बड़ा है सोय रै॥
बिद्या बेद पुराण पढै सो बावरौ।
हरि हां सब फोकट जन ध्यान भरोसौ राव रौ॥ ९॥
राम सुमरि दिन राति बात सुनि मोर रै॥
राव रंक सुलतान गऐ करि जोर रै।
पैकंबर अर पीर गिनौं कहा और रै॥
हरि हां ध्यान कहे यौह ग्यान चलै कहा तोर रै॥१०॥

नारायन को नांव निरंतरि गाय रै ।।
लख चौरासी जूंनि परै नहीं आय रै ।।
ध्यानदास बिसवास राखि मन मांहि रै ।।
हरि हां ऐ लाखो का सास अबिरथा जाहि रै ।।११।।
सारूं सार बमेकै मनी मन त्याग है ।।
जाकै अंतरि होय यहि वैराग है ।।
ध्यान कहै जुग मांहि कौण बड़ तास की ।।
हरि हां बिमरन जाय साध अलप की आसकी ।।१२।।
मन माया में लीन भगति कहां होय है ।।
काल गहै कर केस तवै नर रोय है ।।
झपटि सिचांणा कालि पकड़ि ले जायगा ।।
हरि हां ध्यानदास वह मूंढ तबै पछितायगा ।।१३।।
जब लग बिषै विकार कहा मन सुधरै ।।
अजा कंठ अस पान नहीं टुक दूधरै ।।
महकी सुत ज्यूं मार दसूं दिस खांयगे ।।
हरि हां ध्यानदास जमदूत पकड़ि ले जाँहिगे ।।१४।।
ऐको ऐको ऐक अनेकर ऐक रै ।।
जाणै जाणणहार बरण नहीं भेप रै ।।
साखा पत्र न मूल मूल नहीं डाल रै ।।
हरि हां ब्रह्म असौ बिण देह करै प्रितपाल रै ।।१५।।
माया मेल्हिन बीर बड़ा उरि साल है ।।
जो परच्या हरि हेत किता ही माल है ।।
धन संच्या जन ध्यान कहौ कोई खात है ।।
हरि हां सिरलीयां कहूँन चल्या ही जात है ।।१६।।
माया मुकती राखि वंधी दुप पाय है ।।
हरि कूँ अरपि गंवार देह पणि जाय है ।।

ध्यान कहै वरीयांम बस्या वेगांन रें ।।
हरि हां मुनि करें उपदेस मुनींह किंन कानि रें ।।१७।।
परमेस्वर के साध संवां कलि कौन है ।।
करि सारी कौ त्याग मनौं बन मौंन है ।।
कबहू विसरन जाय धनी कौं नांव रें ।।
हरि हां ऐक जीव की कहा तिरें सब गांवरें ।।१८।।
साषी ध्रू प्रहलाद धनौं रैदास रें ।।
जे लागा हरिनांव गिनांऊं तास रें ।।
अनंत कोटि जन ध्यान बंदा भगवंत का ।।
हरि हां उन धरणी सिरमौर चरण जहां संत का ।।१९।।
काहे कूं वेकाम कीया गढ़ मालिया ।।
जो रहता इन मांहि स जंगल जालिया ।।
जीव संचत है आथि और ही खायगा ।।
हरि हां यौह पंथी जन ध्यान विदा ह्वै जायगा ।।२०।।
बसती नगरी छांडि, ऊंदानि बसाहुगे ।।
धणी न कीया यादि, अंति पछिताहुगे ।।
बसुधा कपारि काल, खलक कूं खात है ।
हरि हां ध्यानदास भजि राम, भला छक जात है ।।२१।।
पातिसाह सुलितानक, रांना राव रें ।।
भजन बिहूंणा बादि, सवै धंध बावरें ।।
दिन दस डौर डंफाण, अंति चलि जाहिगे ।।
हरि हां ध्यान कमाई खोट, पछै पछितांहिगे ।।२२।।
मठ देवल गढ़ कोट, छत्र सिर धारने ।।
गैंवर किलकै बारि, पिसण चढ़ि मारने ।।
गरद भऐ ते जोध, नहीं सहनांण रें ।।
हरि हां ध्यानदास जम जोर, चलै क्या पाण रें ।।२३।।

हसम घरट घमसांण, चढ्या चढ़ि छूटना ॥
मैंवामा मैं मन, अड़ि गढ़ लूटना ॥
हाल धजा फहराइ, ये करि तेगला ॥
हरि हाँ ध्यानदास भजि राम, सकल मैं से भला ॥२४॥
सूंघौ तेल फुलेल, नास अंगि लावते ॥
हरम सहेली साथि, सेज सुप पावते ॥
राग रंग सुर ग्यान, सकल रस भोग रै ॥
हरि हाँ ध्यानदास करि सोच, कहाँ पै लोग रै ॥२५॥
चोवा चंदन बास, अंगि लपटावते ॥
हरम महैलां साथि, कलांवत गावते ॥
ध्यानदास वै लोग, मुसांणौं मांहि वे ॥
हरि हाँ हैडो मैडौ छांड़ि, अकेले जाहि वे ॥२६॥
सोला सै सिणगार, रहैं डिग भामनी ॥
लीयां पीयालां हाथि, दसौं दिस कांमनी ॥
चीधडिया लष कोड़ि, षड़ा दरबार मैं ॥
हरि हाँ ध्यानदास विणि राम, गये मिलि छार मैं ॥२७॥
ऊँचा पलौटे पांव, बहौत रुचि मानते ॥
मो सर भर नहि कोइ, महा यूं जानते ॥
रथ हसती दल साजि, पड़ै रिन मांहि रै ॥
हरि हाँ ध्यानदास बिण रामस, पाली जांहि रै ॥२८॥

पद—

सषी री वधावणो आज म्हानैं गुरु मिलिया गोपाल ॥
अकल नेतर षोल दीन्हा, मैटि माया जाल ॥टेक॥
समता त सूकडी अगर आरति, स्वांत सुरति विसाल ॥
कँवल दल लपटाइ राषूं, आइए प्रतिपाल ॥१॥

चित चंदन घसि तिलक काढ़ों, मात मगनि गुलाल ॥
अर्थ अबीर उड़ परत मन पगि, पेम उर धर माल ॥२॥
प्रीति पहुप बिछाइ दाह दिसि, रमों दीनदयाल ॥
तेज नूर अरु तूर बाजै, सबद घेरा ताल ॥३॥
दीनता करि सदा रापूँ, जगतगुर मेरे लाल ॥
जन ध्यानदास उदास तातें, मिल बिछुरन उर साल ॥४॥

सषी री क्यूं मन लागै हो,
आडा डूँगर बीच वनी, यौ जीवन जागै हो ॥टेक॥
दसों दसा क्रीडा घना, वटपाडा लूटै हो ॥
सतगुर सीषां संचरै, तेई जन छूटै हो ॥१॥
काचर चोरां लागिया, कोई पंथ न काटे हो ॥
सूरवीर सांचै मतै, पहुँचे सिर साटे हो ॥२॥
जोगी जंगम तपसी, कोई वचणन पावे हो ॥
दूती माया मोहनी, ताहि दया न आवे हो ॥३॥
स्रषिम मारग और है, साधूं मौ पाया हो ॥
सौनों जाय उछालता, गुरु भेद बताया हो ॥४॥
ध्यान कहै सेवा सही, मनसा घर आने हो ॥
भीतर भेद अगाध का, मन भूल पिछाने हो ॥५॥

॥ इति ॥

४. महात्मा मोहनदासजी तथा उनकी रचना

महात्मा हरिदासजी की तरह वांणी रचयिताओ मे महात्मा मोहनदासजी भी आते है। इनका समय सोलहवी का उत्तरार्ध व सतरहवी सदी का प्रथम पाद कहा जा सकता है। राघोदासजी व हरिरामदासजी के मत मे मोहनदासजी द्वादश निरजनी महन्तो मे आते है। भाऊदासजी के विचार से ये महाराज हरिदासजी के प्रमुख शिष्यो मे आते है। निरजनी सम्प्रदाय के भक्तमालकार प्यारेरामजी के मत ये देवपुर मे विशेष रहने वाले थे तथा ये भी इनका बारह महन्तों मे उल्लेख करते है। मोहनदासजी की परम्परा अब भी विद्यमान है। इनका स्थान डीडवाणे मे है और वह पर्याप्त प्राचीन है। इसी थांभे के महात्मा बालकिसनजी (लोटनजी) जो मोहनदासजी की पाचवी पोढी मे थे जिनके उपनाम के कारण ही अब तक यह स्थान लोटनजी के बाडे के नाम से प्रसिद्ध है। लोटनजी का स्वर्गारोहण सम्वत् अठारैसो चौदह मे हुवा उनके शिष्य जयरामदासी ने उनका स्मारक छतरी व उसमे चरण-प्रतिष्ठा सम्वत् अठारह सौ पैसठ मे की। इसीसे सिद्ध होता है कि इस थांभे की परम्परा का सम्बन्ध डीडवाणे मे ही चल रहा है। देवपुर का पता नही है कि यह कौन सा स्थान था। भाटकी बही मे मोहनदासजी के स्वर्गारोहण का काल सम्वत् सोलह सौ नौ लिखा है। इसको प्रामाणिक माना जाय या नही तो भी मोहनदासजी का समय उपर्युक्त होने मे संशय नही है।

मोहनदासजी की रचना मुझे मेरे भ्रमण तथा प्रमुख स्थानो के संग्रह मे कही नही मिली। राजस्थान मे जैन साहित्य के प्रमुख संग्राहक तथा प्राचीन साहित्य के प्रेमी अगरचन्दजी नाहटे के अभयग्रान्थागार मे एक गोटका इनकी रचना का मिला। इस गुटके का लेखनकाल सम्वत् १८८२ माह सुदी ८ है। लेवक रामजोदास स्थान कालख है। इस गुटके में इनकी वाणी का जो संग्रह है उसमे पाचो अगो की करीब एक हजार साषियाँ हैं अकेले विरह के अंग की चार सौ तेरह साषियाँ है। चार अंगों की साठ चन्द्रायण है। आठ रेषते पांच सवद पाँच आरती है। यह रचना अपूर्ण प्रतीत होती है। इनकी और कितनी रचना है यह अभी कुछ नही कहा जा सकता। इसी गुटके में इनके शिष्य रामजीदासजी की भी कुछ रचना है। रचना कैसी है-यह रचना पढकर पाठक स्वयं निर्णय कर ले।

॥ महात्मा मोहनदासजी की रचना का कुछ अंश ॥

चन्दना छप्पय

नमो निरंजन राम, नमो देवन के देवा।
निराकार निरलेप, नमो तुम अलष अभेवा॥

नमो सर्व व्यापीक, थूल सूक्षम सब मांही।
नमो जगत आधार, नमो जगदीश गुँसाही॥
सचराचर भरपूर हो, घाट बाध नहीं कोय।
मोहनदास वन्दन करै, मन आनन्द घन होय॥१॥

साखी- दौड थकी संसा भगा, दूर हुई सब आस॥
अब हरि में हरिदासवी, निसदिन करै निवास॥२॥
मोहन वो घट देह को, जांणै हरि का दास॥
जिन पै गुरु किरपा करै, ताको घर में वास॥३॥
मोहन का महबूब तो, है सब का सिरमौर॥
सबी उसी के आसरे, उस पै नांही और॥४॥
मोहन के महबूब का, कोई न पावै पार॥
ब्रह्मा विष्णु महेशवी, थकै विचारि विचारि॥५॥
पूरे से परचा भया, दुष सुष मेल्या दूर॥
मोहन सदा आनन्द में, झिलमिल झिलमिल नूर॥६॥
पूरे से परचा भया, पाई पूरण मौज॥
अविनासी से मिल रह्या, गेरयो सिर से बोझ॥७॥
पूरे से परचा भया, पाया पद निरवाँण॥
दौड़ थकी संसा भगा, मिट गई खैंचाताँण॥८॥

रेषता-- गाफिल होय मत हरि ध्याय नर तन सुफल करिये पाय।
हो जा गरक सब छिटकाय जम तोय निकट नहिं आवे॥
मोहन है यही सार आपा मेटि मन को मार।
आपा मैटि हरि उर धार क्यूं ना परमपद पावे॥९॥

चान्द्रायण-हिरदै हरि का भाव आन नहिं चावबी।
मिथ्या दीषै सरब रंक ज्यूं राव बी॥
सब जग सूं विरकत कछू न सुहाय है।
हरि हां— मोहन मन हरि तजि कहीं नहिं जाय है॥१०॥

सतगुरु दीनदयाल परम किरपाल हैं।
निरधन को धनवंत करैं ततकाल हैं॥
जगत मांहि गुरु और जहाँ लग स्वारथी।
हरि हाँ—मोहन एसा नांहि कोई परमारथी॥११॥

हरि हरि निमदिन करै न भ्यासै आनवी।
ज्यूं चकोर विन चंद कँवल बिन भानवी॥
चात्रक ज्यूं विन स्वाति कंथ विन नारि है।
हरि हाँ—मोहन जैसे बाल मातु विन ख्वारि है॥१२॥

हरी मिलन की चिंत कछू न सुहाय है।
विरह अगनि दिन रैन धुंधवि मांहि है॥
धुँवा पिरगट नांहि लगी सोई जांणि है।
हरि हाँ—मोहन कोई नांहि और पहिचाणि है॥१३॥

हिरदै हरि का चाव आन नहि चाववी।
मिथ्या दीषै सरव रंक ज्यूं राववी॥
सब जग सूं हो विरक्त कछू न सुहाय है।
हरि हाँ—मोहन मन हरि छाडि कहीं नहि जाय हैं॥१४॥

सन्तन को अधिकार जगत सें तरक है।
रांम मिलन की प्यास प्रेम में गरक है॥
निसदिन षोजत फिरै कोई एसा मिलै।
मोहन दे परसाद कँवल मेरा षिलै॥१५॥

पद—होरी—

षेलत फाग प्राणपति पिव सूं, सोई सुहागणि नारी हो॥
अन्तर्यामी सूं होय हिलमिल, आपो देय विसारी हो॥टेक॥
अपणे पिव संग फाग रच्यो है, सुरति सदा मतवारी हो॥
पाँच पचीस सषी संग लै के, रंग रस कीन्हो भारी हो॥१॥

बाजा अनन्त बजै नाना विधि , फाग बरय्यो अतिभारी हो ।।
प्रभु पति सूं सब ही जाय लपटी , संग सखी मति टारी हो ।।२।।

भर भर रंग डारे प्रभु पति में , रस छकि भई मतवारी हो ।।
सो सुष कह्यो जाय नहिं मुष में , अगम अगाध अपारी हो ।।३।।

प्रभु पति मिल आनंद भयो भारी, जनम मरन दुष टारी हो ।।
"मोहनदास" सतगुरु कृपा से , फाग रच्यो सुषकारी हो ।।४।।

परम गुरु खेलो होरी , मैं तो भीज गई सारी ।।
सोधी रही नहीं मोरे तन की , लोकलाज खोई सारी ।।टेक।।

प्रेम को रंग लगन पिचकारी , मेरे भक्तां भर मारी ।।
ग्यांन गुलाल मल्या मुष मेरे , दूर हुई अंधियारी ।।१।।

भर्म कर्म के गढ कों तोड्या , सराप सकल निवारी ।।
मेवा मोक्ष फाग मोहे दीया , जम की त्रास निवारी ।।२।।

मोहनदास तासु बलहारी , जिन सब विपति निवारी ।।३।।

आरती—

निरमल आरती देव निरंजन , तुम ही में उपजै सब भंजन ।।टेक।।

तुम ही सब के करता हरता , तुम ही में सब फिरै विचरता ।।
तुम ही में सब नाचै गावै , तेरी भणक सब तोहि सुनावै ।।१।।

तुम में तीरथ तुम ही जाती , तुमही देव और तुम ही पाती ।।
तुम ही पिंड ब्रह्मंडा अधारा , तेरा ही यो सकल पसारा ।।२।।

तेरीं आरती तूँ ही गावै , तेरी भक्ति तो कूँ तूँ ध्यावै ।।
तूँ ही जगजीवन जगत उजारो , मोहनदास को सिरजनहारो ।।३।।

।। इति ।।

।। रामजीदासजी की रचना ।।

सवैया—

तुम दयाल मैं दास हूँगा स्वामी दीन ही जान गरीब निवाजै ।
वीषरी सुरति समेट करो घर द्यो हे दीदार सरैं सब काजै ।।
सतगुरु दयाल किये हैं निहालज और उपाधि सवै भ्रम भाजै ।
रामजीदास कहै कर जोरि जू मोहन स्वामीजी सीस विराजै ।।१।।

मनहर—

अवधि अलप जामें जीव सोच पोच करै
जानें कछु करूँ अब कहा कहा कीजिए ।।
पार न पुरान को कुरान हू को अन्त नांहि
वांणी हू बहुत कहाँ कहाँ चित दीजिए ।।
काव्यकी कला अनेक छन्द के प्रबन्ध अति
रांग हू रसीले रस कहाँ लग पीजिए ।।
वीसों वाता एक वात "मोहन" बताये जात ।।
सबही सुधार जो पै रांम नांम लीजिए ।।२।।

सवैया—सतगुरु सहायक ब्रह्म मिलायक नायक है सब भक्तन केरो ।
है सुपसागर भक्ति उजागर ग्यांन को आगर भरम निवेरो ।।
बाहर भीतर एक सदा रस वार न पार न अंत न नेरो ।
रामजीदास कहै कर जोरि जू मोहन स्वामी को हूँ नित चेरो ।।३।।
मोहनलाल लष्यो सो निहाल कटे जमजाल सो लाल ही पइये ।
पूरण ग्यांन भक्ति के भांन मिले ब्रह्म जांनि सो सहज समइये ।।
आवन जाय रह्यौ सब छाय सदा एक भाय से आनन्द थइये ।
रामजीदास प्रकाश करे गुरु मोहन शरण अभै पद लइये ।।४।।

पद— मोहन रांम सहाय, सदा गुरु मोहनराम सहाय ।।टेक।।
सब सुषदाता दुष के भंजन, इक रस रहे समाय ।।
सेवग के स्वामी अन्तर्जामी, अपणो विडद निभाय ।।१।।

शरण गहे की लाज तुम्ही को, अबके लेहु बचाय ।।
स्वार्थ जगत में माप देख्यो, ना में रहे लुभाय ।।२।।
संत भरम कैं फंद काटे, वासना मिट जाय ।।
भूल को सब भरम उपज्यो, मान ले बह जाय ।।३।।
रामजीदास गुरु मोहन मिलिया, मेर मिटी सुष पाय ।।४।।

।। इति ।।

५. महात्मा षेमदासजी बडे

महाराज हरिदासजी के बावन शिष्यो में दो षेमदासजी थे। इनमे बडे षेमदासजी के नाम के साथ हजूरी विशेषण का प्रयोग किया जाता था। दूसरे षेमदासजी छोटे या खाटरे विशेषण के साथ सम्बोधित होते थे। जिनकी कुछ रचनाएँ प्राप्त है, ये बडे या हजूरी षेमदासजो है।

राघोदासजी की भक्तमाल के अनुसार षेमदासजी द्वादश निरजनी महन्तो मे थे। उन का प्रमुख क्षेत्र सिवाड माना गया था। प्यारेरामजी ने भी उनका यही स्थान माना है। प्राणिमात्र से प्रेम, निर्गुण उपासना, परमत्याग, भिक्षा मे निर्वाह ये उनकी विशेषतायें थी। षेमदासजी अधिक समय महाराज हरिदासजी के सान्निध्य में रहे थे। इसीसे उनकी हजूरी सज्ञा पडी थी। डीडवाणे मे जहाँ महाराज हरिदासजी का स्मारक स्थान समाधि है, उसी के संमुख षेमदासजी का भी आवासस्थान बना हुआ है जिसको षेमदासजी का झरोखा कहते है। स्थान काफी प्राचीन है।

षेमदासजी द्वादश निरंजनी महन्तों मे कथन किये गये है पर वे महाराज हरिदासजी के शिष्य थे यह बात स्वय उनने अपने लघु ग्रन्थ "विरागलछी" की समाप्ति पर "गुरु मेरे हरिदास, जिन किया वुधिप्रकाश" इस उक्ति से व्यक्त की है। निरंजनी सम्प्रदाय में सबसे अधिक साधुओ की संख्या उन्ही की परम्परा मे रही है। वर्त्तमान मे भी इन्हीं की परम्परा के साधु सबसे अधिक है। षेमजी की छठी पीढी मे महाराज अमरपुरुषजी हुए थे उनके शिष्य-प्रशिष्यो का प्रसार बहुत अधिक रहा। डीडवाणे का विरक्तवाडा उन्ही की परम्परा का है। सेवजी की बगीची हरनामदासजी का वाडा भी उन्ही की परम्परा का है। वैसे षेमजी की परम्परा का निरूपण भूमिका मे है। अमरपुरुषजी महाराज अधिक समय का लिये विराजे थे। उनका स्वर्गारोहण भी वही हुआ। उनके स्मारकरूप समाधि-स्थान भी

कोलिये मे बना हुआ है। अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य नारायणदासजी वाडे के महन्त के रूप मे आसीन हुए। कोलिये मे उनके शिष्य कुशालदासजी रहे। उनकी परम्परा इस तरह है—१. कुशालदासजी २. चेतनदासजी ३. भीषमदासजी ४ सूरदासजी ५. रामकिसनजी ६. भोलादासजी वर्त्तमान मे।

षेमजी महाराज की रचना यह अत्यल्प प्राप्त है। १ चितावणी २ विराग लछी एक पद। और रचना है या नही रचना जिस पुस्तक से उद्धृत की है उसका लेखन काल सम्वत् १८२३ है। भाट की बही के अनुसार इनका स्वार्गारोहण सम्वत् १६१२ जेठ सुदी ६ है।

॥ षेमदासजी की रचना ॥

चितावणी—१

दोहा—

काहू पूरब पुन्य करि, तैं पाई नर देह ॥
कै महरवांन हो मौजदी, जन्म सुफल कर लेह ॥१॥
दस महीनां गर्भवास में, तहां रह्यौ मुष मूंदि ॥
जहां तात मात की गम नहीं, वहां राषनहारा कौन ॥२॥
नष चष सौंज बनाय करि, प्रभु आन्यो मुक्ती ठौर ॥
निपजी में साभी घणा, धनी भए तब और ॥३॥
सावधान होय चुप रहे, चितयौ है चहुँ और ॥
वाट बीचि ही ले गए, बसत साह की चोर ॥४॥
पंचकै तन काहू रच्यो, बच्यो अगन मंझार ॥
जब इनमें कहू कौन था, जो अब कहै हमार ॥५॥

चौपाई—

माता कहे सुत मेरोक, राषूँ जीवतैं नेरौक ॥
ना रहूँ नेकहूँ न्यारीक, पुत्र कै वदन पर वारीक ॥
पिता कूँ बहुत ही प्यारोक, करे नहिं द्रष्टि तैं न्यारोक ॥
हरषै देष करि नैंनाक, मेरो अंग है औनांक ॥

बहन कहै है म्हारो ही वीर , रापूँ हीये लपट शरीर ॥
म्हारै प्रांग को प्रांणीक , पीऊं वारिकै पांनीक ॥
भइया कहै मुजि भावैक , अति गति प्रीति मिलावैक ॥
कहुंबै सकल अपनायो , गोदयां गोद पिलायो ॥

दोहा—

अब कहूँ गोद कहूँ पालनै , कहूँ हासी कहुँ रोज ॥
गिर्यो पड्यो घुटने चल्यो , नहीं ग्यांन को पोज ॥१॥

चौपई—

अग्यांनी ग्यांन विन षेल्योक , चल्यो पग हाथ तैं मेल्योक ॥
घुटणौं चाल अति चालैक , माया फंद पग घालैक ॥
मनसा ममता मांहि लागीक , पांचो इन्द्रियाँ जाणीक ॥
हलाहल कांम उर जाग्यौक , मानूं भूयंग पग लाग्योक ॥
उतरै चढै लहर अनंत , फाटो तिमर तंत न मंत ॥
करारी निजर ऊंचौ बहु , टेढौ कंध मोडे महुं ॥
अब सूझैन माघ अमाघ , प्रबल प्रगट आय अभाग ॥
नेकी बदी नहिं सूझैक , हलाहल रांम नहिं बूझैक ॥
जिभ्या लठरसी वांणीक , हलाहल विगत या जांणीक ॥
रोम ही रोम विष छायौक , जोवन जहर मम आयोक ॥
घूमै विप चढ्या माताक , सुनैं नहिं ग्यांन की वातांक ॥
पुकारे साध सब अरु वेद , सुनि रे मूढ भेद अभेद ॥

दोहा—

साध वेद सब टेरि हैं , सुनैंन विपिया प्रांन ॥
पिंड पाप कै वस पडै , कहि कहि हारे ग्यांन ॥२॥

चौपई—

ग्यांनी ग्यांन कहि हाराक , न माने वेदका काराक ॥
वहै विन नीर अहंकारी , ले सिर मार अति भारी ॥

हमारे मात पिता सुत भाई, हमारे सजन सुषदाई ॥
हमारे महल त्रिया चेरे, सिंहासन जरत ही हीरे ॥
हमारे गांव गढ घोडाक, खजाना मुलक नहिं थोडाक ॥
हमारे घणां परवार साथीक, हमारे सजे हैं हाथीक ॥
हमारे हीर चीर कपूर, बहौ गुन राग रंग हजूर ॥
हमारे जोर दरव अनंत, हिरदै नही है भगवंत ॥
अंधे तरस क्यों नहीं कीजैक, एता बोझ क्यों लीजैक ॥
न देषै अकेलो जाऊँ, काया कर्म क्यौं लाऊँ ॥
न देषै मोत है ठाढीक, न कीजै बहु अति गाढीक ॥
न देषै काल सर सांधैक, न फिरिये ऐंठ तै कांधैक ॥
न देषै जम है बैरीक, न कीजै गुरु की गैरीक ॥
न देषै पिंड है पोचाक, गुसांइ्या क्यों नहीं सोचाक ॥

दोहा—

अब सोचन करिहै बावरे, फिरै अंध मत कंध ॥
एक दिन एसा होइगा, पडै काल कै फंध ॥३॥

चौपई—

अब की काल द्रष्टि कैरीक, पहुँच्यो आयकै बैरीक ॥
मानूं गह्यो मृग ज्यूं चीतैक, नैडो चरत है नीकैक ॥
प्रथम तो सास तै पकर्योक, सिर सिर बात्र तैं जकर्योक ॥
कहै घट आज है माराक, लगै है अन्न जल षाराक ॥
कहूं ही निकट ही डोल्योक, न भावै निकट की बाल्योक ॥
पासी घात करि सटक्योक, मांजी षाट में पटक्योक ॥
अब मइया दौरि कर आवैक, मेरो नोज दुष पावैक ॥
त्रिया कहै प्रांण की प्यारीक, मेल्हौ वार कै थारीक ॥
दो सब राज कोई देषौक, करौ मत षरच को लेषोक ॥
वैद बुलाइ कै लीजैक, औषदि जुगति कर दीजैक ॥

दारा दार अति माचीक, पिता पुनि पकरि है छातीक।
है कोई बतावै उपगारीक, न दीसै नेक करारीक॥
दे दे थके बहु बूटीक, अब सबल के हाथ तें टूटीक।
करो कोई तंत मंत अंत, लागू भयो जम बलवन्त॥
भाई बन्ध पहौरे पूरि, निसदिन रहै पलंग हजूरि।
के ते आवो फिर फिर जांहि, बटावै दुष कोई नांहि॥
पुकारै दुष जीव भारीक, देषे सकल नर नारीक।

दोहा—

अब लाप लोक देषत रहे, अर पिंड किए सतपंड।
पकर प्रांण कूं ले चलें, जम एकला प्रचंड॥४॥

चौपई—

अब रहे रोवते ठाढेक, पटकै भाल अति गाढेक।
त्रिया कहै तन ही त्यागूंक, मिलौंगी पीवकै आगूंक॥
मइया कहै क्यों जीऊंक, न पाऊं अन्न जल पीऊंक।
मरूंगी पुत्र के सोगाक, कहौ क्यों वरजि है लोगाक॥
बहन तो रोय है धाहांक, करै आकास कूं बांहाक।
पिता तो जहर ही पाईक, पटकै भाल अति भाईक॥
अब सकल परिवार माच्योसोर, विचै उचक ले गयो और।
तो अब सनेही क्या कीजैक, दोसत जान क्यों दीजैक॥
यारो बैसने संगाक, आछे ज्वान ते चंगाक।
छोडी परीहै देहीक, करो ले जालके षेहीक॥
अब हांडी षोपरी ल्यावोक, अगनि किन तासमें वाहौक।
पछेवरी आन गज पांचैक, अधपाव चून कूं जाचैक॥
दीन्हौ माल संग एताक, कह्यो अब भयो है प्रेताक।
काढ्यौ पकरकै प्यारोक, कियो परिवार तें न्यारोक॥

छूटै महल गढ़ गांवैक, तुरी गज संग नहिं आवैक।
षजाना मुलक सब छूटैक, जगत पुनि आयकै लूंटैक॥
धागा रहण नहिं पायाक, नगन कर अगनि में लायाक।
षूवी जरत है सारीक, देषै सकल नर नारीक॥
तेल फुलेल के केसाक, जलै सो ज्वांन के वेसाक।
नैना कुसमसी भारीक, टेढा भौंह भी थारीक॥
दांता मेषसी लाईक, नासा अधर जर जाईक।
गलै में कनक सी मालाक, जलै सुअगनि की झालाक॥
सुरंगी देह मद जरदीक, गई मिल पलक में गरदीक।
भुजा नष अंगीली छीनीक, सिर में ईस की दीन्हीक॥
मानूं दहीडी फूटीक, सगाई इसी विधि तूटीक।

दोहा—

अब हाथ परत गयों प्रानिया, तन में बीती येह।
घर आया प्रीतम सवै, जालि वालि करि षेह॥
इत काया में दुष पडै, वहां संकट पड़ै प्रांन।
षेम कहै सुनज्यौ सवै, भजिल्यो केवल रांम॥५॥

॥ इति चितावणी सम्पूर्ण ॥

॥ अथ वैरागलछी ग्रन्थ ॥

प्रभू को सीस नवावहूँ, वैरागलछी गावहूँ।
रत्ता है राम रंग में, रहै तो सतसंग में॥
जनूं कूं मत सार है, उदारता अपार है।
गंभीर वानू मत्त ही, सुधीरता अनंत ही॥
तजत क्रोध काम कूं, जपत एक रांम कूं।
लोभ मोह त्यागही, उनूं का भाग जागही॥

त्रिमना अहंकार हीं, उतार दिया भाग ही।
कुटलाई दूर की नहीं, संतोष व्रत ली नहीं॥
भरमना निवारी, सीलवंत अति भारी।
दयावंत है अति दीन, बुधि जानहीं परवीन॥
सबन सूं रहे निरवैरी, बात बोले नहिं गैरी।
आपां रंच नहि थरपैं, सदा करतार सूं डरपै॥
तन मन हरी कूं दीया, गलतान मता लिया।
बचन सत भाषही, विसवास हीये राषही॥
परधन लागैं छार सो, कुसंग वाकै पार सो।
परनिंदा नहीं भावै, दिनां रैन राम गावैं॥
दोह द्रोहता नसाई, नहिं आपणी बडाई।
नरमी सूं लपेटिये, कपट सब मेटिये॥
मछरता नहि कोई, वाकै ईरषा न होई।
मनी को कीयो त्याग ही, रहै तो वीतराग ही॥
जतन है जुगति है, विवेक है सति है।
नेक भी न गरव धन, गावै सब धन धन॥
ते गुमान तजि देवे, निह केवल नांव लेवे।
भलाई सूं भरे हैं, हरि नांव सूं सिरे हैं॥
नवणी षवणी गाई, नहिं जाणिए जबराई।
हीये सबूरी को वास, रहै दासन के दास॥
दिलगीरी नहिं आनूं, आनंद रूप मौज मानूं।
जाकै आई है परतीति, सो तो बैठे जनम जती॥
दुरमति ही विडारे, रोग दोष दुष टारे।
रहनी कहनी सार, दूर किये हैं विकार॥

हिरदौ कोमल देषो, सोक सांसा को न लेषो।
जाकै ररंकार वांणी, गति जाय नहिं जांणी॥
वन में रहे वाल जनी, ताकै आप दान रती।
रहै तो निसप्रेही, एन जानै दिव देही॥
वचन बोले मीठा, रांम नाम करता दीठा।
करै तो धुनि ध्यांन ही, सुनै तो नहिं आन ही॥
आरंभ सब त्यागै, एक नांव ही सूं लागै।
तन अमीरस पेषै, ब्रह्म सबही में देषै॥
जाके आनंदी है ब्रत, सो तो काहू नहिं रत।
गयो मन हीये ल्यावे, दूजी बात नहिं भावै॥
प्रभु नांव हीं कूं जाने, दुष सुष सम माने।
अनुराग हीया मांही, जाकै घटी वधी नांही॥
उनमनी भी साधै, राम आपही में लाधै।
जाकै वास है एकंत, नांव धार लिया तंत॥
सुनि मारग सूं हेत, दुष काहू कूं न देत।
पंथ अधोगति तजै, एक करता ही कूं भजै॥
बन्या पारषद आप, सब मेटिया संताप।
जन बंदगी करत, हरि नांव सूं तिरत॥
रिषव्रत है निदान, आवै सोई व्रत मांन।
जन ब्रह्म ही कूं आपै, सो तो काहूकूं न थापै॥
शत्रु मित्र मित्र एक, काहूसूं न कर टेक।
सम मान अपमान, सोई देत अभैदान॥
सोई करै गुरु सेवा, भजै नारायण देवा।
एसा सन्त का सुभाव, कोई साधै भगति भाव॥
मिल्या पूरा गुरु आंनि, जाकै साधिवो आसांनि।
सीस संतन कूं नाऊं, कथा कीरतन गाऊं॥

मन ही कूं देना सिष्या , पर्दे जन राम रिष्या ।
बंनै एक इकवार , करै आप ही विचार ॥
धीरजवंन है वडाजी , परदुप सूं न गाजी ।
बोदी आसा नहि धारै , केवल राम ही विचारै ॥
सवारै लछन सार , सीष्या सुन्यां उतरै पार ।
गुरु मेरे हरिदास , जिन किया बुधि प्रकाश ॥

॥ इति विराग लछी ग्रन्थ सम्पूर्ण—२ ॥

॥ षेमजी के पद ॥

हरि विन जगत सपनौं जानि ,
संसार सार विकार पर हरि , भजिल्यो सारंग प्रांन ॥टेर॥
रांक सारो सहर जाच्यो , सूतो वड तल जाय ।
देस देस के भूपति आये , मिलकर लागै पाय ॥१॥
देस देस का नृपति आया , मिलिकर ल्याया भेट ।
यूं करतां नर जागियो तब , ठीकरो सिर हेठ ॥२॥
बाँझरै घर तूर वाजै , जानि उपनो वाल ।
बुलाय जोसी लगन बूझो , होयसी भूपाल ॥३॥
यो सुत पाटसी म्हे पावस्यां , वहोत बान्धी आस ।
एवो करतां त्रिया जागी , तब नांपियो नेसास ॥४॥
निरधन जाणै भयो धनवंत , जोडि लाप करोडि ।
एक पदमणि पांव चांपै , एक रही कर जोड ॥५॥
रांक सूतो मालिये , कौडी नांहि पास ।
षेमदास यूं वीनवै , हरि बडो विसवास ॥६॥

---

६. महात्मा नरीदासजी

महात्मा नरीदासजी हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे थे। इनके नाम का उल्लेख भाऊदासजी को गुदडी मे है तथा खेडापा पीठ के संस्थापक महाराज रामदासजी के शिष्य दयालदासजी ने भी स्वरचित भक्तमाल मे किया है। साधु परम्परा तथा ब्रह्मभाट की बही से भी इसकी पुष्टि होती है। महाराज हरिदासजी मे इनने कब शिष्यत्व ग्रहण किया व किस सम्वत् तक इनका शरीर रहा इसका यथार्थ पता नही लग सका है।

नरीदासजी ने अपना आवास फतहपुर मे किया यह स्थान सीकर जिले मे है। फतहपुर मे नरीदासजी का असथल नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है तथा वर्तमान मे मस्तरामजी इस स्थान के अधिपति है। नरीदासजी की परम्परा के आज भी अनेको स्थान शेखावाटी मे है। नरीदासजी की समाधि भी फतहपुर मे है।

नरीदासजी के इसी फतहपुर के स्थल मे उनका रचना ग्रन्थ है। वह अपूर्ण हे उसमे साषी भाग तो कतई नही है। राग भाग मे उन्नीस रागो मे करीब बारह सौ पद है, अन्तिम राग मारू के पद चल रहे है, वह पूरी नही है। इस स्थान से भिन्न, मै अन्य स्थानो मे गया तथा वहॉ के सग्रह देषे पर किसी भी स्थान के संग्रह मे इनकी रचना नही मिली। अब तक के प्राप्त साहित्य मे इनकी रचना की एक मात्र यही पुस्तक है। इनकी पद्य रचना सरस है, भाव स्पष्ट है, भाषा उस समय की हिन्दी है देशिक शब्दो का भी कही कही प्रयोग है। उनके कुछ पद आगे उद्धृत किये गये है।

॥ महाराजा हरिदासजी के शिष्य नरीदासजी की रचना ॥

राम सुमर हरि का गुण गावे, हरि हरि सुमर परम पद पावे ॥टेर॥
हरि है अघमोचन सुख रासी, हरि जरामरण की काटै फांसी।
राम सुमर भवसागर तरिये, हरि सुमरत भव पार उतरिये ॥
राम सुमर छूटै भ्रम पास, चरण शरण जन कहे नरिदास ॥१॥

पार ब्रह्म हरि पार उतारण, दूतर तारण राम हरे ॥टेर॥
सकल शिरोमणि हरि सुष सागर, सन्तन को विसरांम हरे।
राम अहो निसि सुमरसि प्राणी, निस वासर आठों याम हरे ॥

तेज पुंज प्रकाश परम पद, जोति सरूपी धाम हरे।
जरामरण तहाँ काल न काया, तहाँ कर्म काम नहि राम हरे॥
धरणि गगन तहाँ सूरज शशि हर, तहाँ उदै अस्त नहिं राम हरे।
अबरण राम अकल अविनासी, अपरम्पार अनेत हरे॥
केवल रांम नरी ल्यो लाई, प्रांण उधारण रांम हरे॥२॥

रे, मन भूला काहे डरिये, रांम नाम हरि हिरदै धरिये॥टेर॥
झूठ मरम तज साच पकरिये, भूला भ्रमत कहां क्यूं फिरिये।
रसना रांम रमैं रम जीजैं, रांम रसायन अमृत पीजे॥
हरि कै चरण कँवल चित दीजै, चरण शरण हरि स्वामी रीजै।
सुरति पवन मन पंथ गहीजैं, सतगुरु सबदैं प्राण पतीजैं॥
प्रेम मगन हरि जल जन भीजैं, नरीदास तासों मन धीजैं॥३॥

कब देखूं हरि दरसण तोरा, बिन दरसण जीव कलपै मोरा॥टेर॥
रैंण दिवस निस वासर भोरा, मिलि विरहणि अति करैं निहोरा।
निरबल को बल कहा बसाई, तुम बिन काह कहैं सुपदाई॥
तुम कहियो सुप सागर सांई, मिलो कृपा करि रांम गुसांई।
कहे नरीजनदास विचारा, तुम बिन को है राम हमारा॥४॥

रे ! मन भूल्यो भ्रम अज्ञानी, आँन भ्रम चितवन क्यूं ठानी॥टेर॥
राम विसार बह्यो अभिमांनी, केवल रांम भगति नहिं जानी।
साध संगति गुरु सीष न मांनी, चिन्हित देपै शारंगपाणी॥
रांम नाम छूटै दुःख द्वन्दा, रांम नाम भजि होय अनंदा।
भरम विगूत्यो रे ! मन गन्दा, धृग् अपराधी मन मति मन्दा॥
घेरे काल पडै जम फन्दा, तब तोहि कोण छुडावे अन्धा।
राम सुमर सुष होय अनन्ता, नरी कहै भजले भगवन्ता॥

हरिजी के चरणन की बलिहारी !
चितवत चरण होय चितनिर्मल, हिरदै ज्योति उजारी॥टेर॥

भाजै भ्रम मिटै माया मोह, नासै तम अंधियारी।
राम को नांम अनंत अघ जारै, कलि मल पाप विकारी॥
कामादिक काटण कै ताँई, राम को नाम कुठारी।
कर्मादिक वन पाप जाय जरि, ब्रह्म अग्नि पर जारी॥
तारया अधम पाप परचंड दह, लिये पापी पतित उधारी।
अजामेल गज गणिका तारे, सोई रांम संभारी॥
जिन जिन शरण गही हरि जीकी, ते जन लिये उवारी।
दीन जान निम तार नरी कहै, आयो शरण तुम्हारी॥६॥

सन्तो पंडित पढ वोरांणा?

स्मृति पुराण वेद व्याकरण, पढ गुण भरम भुलांना॥टेर॥
तर्क शास्त्र पढी वहु विद्या, वाद विवाद ही ठांना।
अति अभिमान वदै नहि काहू, आत्म तत्व न जांणा॥
अभिमानी अहंकार अलूंधा, भगवत भक्त न चीन्हा।
हरि विन शुद्ध हृदय नहिं होई, पढि पुराण कहा कीन्हा॥
छाडहू भ्रम भक्ति करि हरिकी, कहै नरी सुण लोई।
हरिकों नांव रटै निसवासर, पंडित कहिये सोई॥७॥

रमता राम रह्या भरपूर, निकट निरंजन नाहिन दूर॥टेर॥
तासूँ लागि रहो किन जाइ, सकल वियापी रह्या समाइ।
गुरु विन अलष लष्यो नहिं जाइ, सतगुरु मिलै तौ सहज वताइ॥
रमताराम निरंजन राई, नरी निराकार ल्यौ लाई॥८॥

सन्त जनन की हूं बलिहारी, साधु संगति उतरो पारी॥टेर॥
साधु संगति मिलै मुरारी, साधु संगति छूटै संसारी।
साध संगति कर हरि रस पीजै, हरि रस पीवत जुग जुग जीजै॥
हरि रस पीजै अमृत सार, पीवत कीजै विलंबन वार।
नरी कह्यो गुरु ग्यांन विचार, हरि ही दूतर तारनहार॥९॥

सीतल सन्त सकल सुखदायक, जिनके दरसण पाप नसायक ।।टेर।।
दरसण देषत सब दुःष जाइ, अति आनंद न अंग समाइ ।
जाके चरण परम सुष होइ, पाप पटल भ्रम रहे न कोइ ।।
निर्मल उज्वल निज निहकाम, जिनके हिरदै केवल राम ।
सन्त शिरोमणि सब सुषरासि, कहै नरी दासन को दास ।१०।

अनहद झालर बाजै देवा, आरती राम निरंजन सेवा ।।टेर।।
अविगत राम अलष अभेवा, ताल मृदंग धुनि अन्तर सेवा ।
शंख शब्द अनहद घंटा बाजै, आरती भक्ति करत भ्रम भाजै।।
चँवर दुलै महाराज मुरारि, शिव विरंचि करे सेव तुमारी ।
सुरनर मुनि गन्धर्व गुण गावै, राम तुम्हारे पार न पावें ।।
आरति सेवा आरति पूजा, नरी राम बिन और न दूजा ।।११।।

मन रे ? भूल्यो भरम जंजारी ?
विसर्यो राम परमपद दाता, पारब्रह्म बनवारी ।।टेर।।
केवल राम कलह दुष काटण, पाप भरम सो जारै ।
शरणाई आपो प्रति पालै, जन की त्रास निवारै ।।
अन्तर्जामी आतम को सुष, सो प्रांणी मूढ विसारै ।
ओसर इसो बहुरि नहिं लाभै, मनुष जन्म तन हारै ।।
सतगुरु मेरे कहि समझायो, हरि लागै वारम्वारा ।
नरी निरंजन रट नारायण, राम नाम तत सारा ।।

।। इति ।।

७. दास पींपाजी

हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे "दास पीपाजी" परम साधक महात्मा थे। भाऊदासजी की गुदडी सन्त परम्परा तथा ब्रह्मभाट की नामावलि मे इनका नाम आया है। दयालदासजी ने भी अपनी भक्तमाल मे दासपीपाजी का नामोल्लेख किया है।

एक जनश्रुति से यह ज्ञात हुआ है कि आपका जन्म सम्वत् १५६५ मे आमेर नगर मे छीपा दरजी जाति मे हुआ था। आपके पिता का नाम सेवारामजी माता का नाम भाना (भानुमति) व स्वयं का नाम परमानन्द था। महाराज हरिदासजी भ्रमण करते नागौर पधारे तथा भूता बावडी पर विराजे उस समय उनके अनेकों चमत्कार देखने से परमानन्दजी ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया और परमानन्द से दासपीपा कहलाने लगे। आप वीतराग निरभिमानी नाम चिन्तन मे निमग्न रहने वाले सन्त थे। पीपाजी का स्वर्गारोहण कब हुआ इसका पता नही लगता। इनका काल सोलहवी सदी का उत्तरार्द्ध तथा सत्तरहवी सदी का पूर्वार्द्ध मानना चाहिये।

दास पीपाजी साधना के पश्चात् नागौर के छीपाओं के अति आग्रह से नागौर मे ही निवास करने लगे। छीपावाडी मुहल्ले मे ही आपका स्थल बना हुआ है। आपकी परम्परा अब तक चल रही है। जैसा कि परिशिष्ठ मे उद्धृत आपकी परम्परा से स्पष्ट हे।

आपने अधिक रचना की हो ऐसा प्रतीत नही होता। निरंजनी सम्प्रदाय के सग्रह ग्रन्थो मे आपकी जो रचना मिलती है उसमे १–चितावणी, २–फुटकरसाषियें तथा २०—पद है। आप साधक सन्त थे। अत· आपकी रचना मे पांडित्य या प्राञ्जलता की तलाश करना उचित है न संगत।

॥ मंगलाचरण ॥

सुरगुरुसमपूज्यः , सर्वलोकैकवन्द्यो ।
निजशुभचरितेन , ध्वस्तमोहान्धकारः ॥
सधरणितलभाजां , रत्नमेवाविरासी ।
लिविड़तमनिशायां , शोभवच्चन्द्रमेव ॥
शमयतिदुस्सहतापं , दवयति दुरितं शुभं तनुते ।
अव्ययधनमिवपच्छति , साधु वरस्यास्य वागियं लोके ॥२॥

अद्वितीयो यथा विष्णोः, स्वरूपे कोस्तुभो मणिः ।
तथैव हरिशिष्येषु, पीपाख्यः साधुसत्तम ।।३।।
पाषण्डखण्डितं वीक्ष्य, धर्मं तत्राण हेतवे ।
आविरासीत्स्वयं लोके, पीपा नाम्नैव नारदः ।।४।।
दुर्भिद्यमोह तिमिरान्तकदर्शनाय, संसारसागरसमुत्तरणोडुपाय ।
संसारिदीनजनताप निवर्हणाय, पीपाख्य साधु वर्यायनमः प्रियाय ।५।

ये दोनो मंगलाचरण माधव शास्त्री कृत हैं तथा साखिये बालोतरा निवासी विरक्त प्रभाकर माधवदासजी ने लिखकर भेजी है—

१—सीताविभूषिततनुं नवनीरदाभं
कोदण्डधारिणमहं प्रणमामि रामम् ।
यस्याऽनुकूल कमनीयकृपाऽवलम्बी
विघ्नव्यथां न समुपैति नरः कदाचित् ।।१।।

दोहा— पीपा परचे पवन के, किता मिलेंगे आय ।।
सबही परचा भाजसी, तब पवन काया तें जाय ।। १ ।।
'पीपा' दास कहावनो कठिन है, मन ही माने मान ।।
सतगुरु सों परचो नहीं, कलियुग लागौ कान ।। २ ।।
पीपा पानी रहन बिनु, रहे न ऊँची ठाइ ।।
राम भगति बिनु दास को, जतन करंता जाइ ।। ३ ।।
पीपा थोरे आंतरे, घणी विगुती लोय ।।
महमाई मारया घणा, तारया नांहि कोय ।।४।।
पीपा माया नारी परि हरे, चितसूं धरे उतार ।।
ते नर गोरषनाथ ज्यूं, अमर भये संसार ।।५।।
पीपा पर नारी परतष छुरी, विरला बंछे कोय ।।
नाऊं पेटि संचारिये, जो सोने की होय ।।६।।
पीपा पारस परसतां, लोहा कंचन होय ।।
सिद्ध के कांठे बैठे संता, साध कहीं सिद्ध होय ।।७।।

पीपा धोका निजर का, जती सती कूं होय ॥
मन अरु नैन विगूंचना, विरला राखे कोय ॥८॥
पीपा परमेश्वर तणां, मता न जाणे कोय ॥
आरंभिया यूं ही रहै, और अचिन्त्या होय ॥९॥
पापी पाप कियो नहीं, पुन्य कियो सोवार ॥
जो काहू को लियो नही, (तो) दियो वार हजार ॥१०॥

॥ चिन्तामणि योग ग्रन्थ ॥

यह उपदेश सुनो मन मींत, बडचिंता बनि करलै चींत ॥
जाके गुसे हैं यमराई, ताकों नींद कैसें आई ॥११॥
मारग चलणा हैं तोहीं, अंधे क्यौंना चेतन होई ॥
पाया नाहीं दूरि हैं तेरा, मघन वन बहोत उरझेरा ॥१२॥
जामें वहोत ओघट घाट, अधिक कठिन विषमी बाट ॥
जासी सुभट वीर सावंत, अति रणजीत पूरा ममंत ॥१३॥
षांडा धार मारग वीर, कायर बधसीं नांही धीर ॥
सूरा पहुँचसी एक आध, नटवर कला जाने साध ॥१४॥
जामें मोह सरिता धार, भौ को समुद् अधिक अपार ॥
जामें हरिनाम नौका लार, सतगुरु खेवे उतरे पार ॥१५॥
आडे पांच अरावर पार, पुनि पचीस ताकी लार ॥
लालच लोभ खाद् अनेक, बहोत जोधा एका एक ॥१६॥
अरि बलवंत अति अहंकार, तृष्णा काम क्रोध विकार ॥
मारग मांही मान गुमान, सनमुख खड़े साधे वान ॥१७॥
ता में सिंह सांचो सांई, आप अंते मारै धाई ॥
मन्मथ जोधो मारग मांही, कायर कहो किसविध जाँही ॥१८॥
कायर लाख कहो किस काम, सूरा भलो एक वीर धाम ॥
सूरो सोई सौंपें शिर ईश, भगवंत मेलो भुजा वीश ॥१९॥

पहरो सहज वक्तर अंग, सतगुरु शब्द को कर संग ॥
गुरु की ज्ञान करी तरवार, षेड़ी पिम्या लेहु विचार ॥२०
अजपा जपकरि जयडाढ़, तो तूं सही अंति जो गाढ़ ॥
चेतन तुरिया षर घाली, षत्री और परे सुंचाली ॥२१॥
रात शंतोष आवधशील, सुंध बुध सुरति राखो डील ॥
देय विवेक को सिरटोप, रंगावलि अधिक अनोप ॥२२॥
राषो संग साथ विचार, गहो विश्वास बडो हथियार ॥
भाव भगती प्रेम प्रीती, ए आयुध गहि शत्रु जीती ॥२३॥
यह वैराग्य दृढ़ मति धार, सूरा सुगम कायराँ हार ॥
सजीवन जड़ी है जगदीश, सो ले राषे अपने शीश ॥२४॥
वज्र शरीर देह हरि आण, वैरि का नहिं लागे बाण ॥
दुजो कोई नहीं उपाई, हरि गुण मगन व्है करि गाई ॥२५॥
पीपा हेतकरि सुण बात, हरिबिनु सब वे दीसे जात ॥
सुणिये हेत करि चितलाय, गयेशो देऊं तोही बताय ॥२६॥
कहूँहूं अपने अनुमान, गिणती को नहि परवान ॥
जादव गये छप्पन क्रोड, केरु पांडव दल बड जोड़ ॥२७
जिन संग लाष चौहणी पूरी, जोधा तें मिले सब धूरी ॥
चाले कंस केसी चाणोर, कहूँ शिशुपाल के कोते और ॥२८॥
वहतो जरासंघ अतिजोर, डारयो तिनकला ज्यूं तोर ॥
जाके शीश दश भुज बीश, सो रावण गयो दयंता ईश ॥२९॥
दलबल जोरा अति अधिकार, सूरावण गयो लंका हार ॥
चकवे मंडली कंस कबंध, ते सब पड़े जमों के फंध ॥३०॥
केते कहो दानव देव, गिनती को नहिं आवै छेव ॥
सांवत सुभट सूरा जुंझार, आखिर गये सबेही हार ॥३१॥
जेते हैं तेते सब जांही, जावेंगे तेऊ थिर नांही ॥
न रहसी स्वर्ग मृत्यु पाताल, कूरम सहस पुनि दिगपाल ॥३२॥

न रहसी माड के सब थंभ, जे घट घरे करि आरंभ ॥
न रहसी अपनी नीर हुताश, जासी पाणी पवन प्रकाश ॥३३॥
न रहसी तीन गुण विस्तार, माया आदी बो औंकार ॥
न रहसी जुरा मोत अरु काल, ओ जमराई जीव के जाल ॥३४॥
रहसी आप अवगति नाथ, ऐका ऐकी संग न साथ ॥
घरि घरि कह्यो तोसूं टेरी, निशदिन मांही सांठ्यौ बैरी ॥३५॥
एको शब्द कान कराई, घरि हू घरी अवध घटजाई ॥
सूरज चंद है दोऊं साखी, पूरब जोई पछिम साखी ॥३६॥
निशदिन घटे आवत जात, सो गति आपणी सुण बात ॥
तरुवर देख फिरती छांही, ऊगे आंथवे सोई नांही ॥३७॥
सलिता नीर थिर नहीं होई, सरवर क्यों ना देखो जोई ॥
यो जग देषतां सब जाई, सो गति निरषि तन निरताई ॥३८॥
यो सब जानों अंजुलिनीर, जासी देषतां नांही थीर ॥
ऐसें धन जोवन आथी, कहो धू चले किसकी साथी ॥३९॥
सुरगे पंच दियां बताई, जम्बक तीन कह्यो समुझाई ॥
इहि विधि जाम बीते आठि, घरी पुनि तीस इणी साठि ॥४०॥
वासर रेण इंहि विधिजाइ, अंधे उमरिये तेसें पाई ॥
पशु पणि पंष कह्यो पुकारी, मिनषा जन्म जाणि नहिं हारी ॥४१॥
चाले स्याम आये श्वेत, मस्तक चढ़े हेला देत ॥
ऊंचे चढ़ि सुण कह्यो तोहीं, पींपा क्योंना चेतन होई ॥४२॥
आडे तात मात नहि भ्रात, जोरो देषतां लैजात ॥
देषे कुल कुटुम्ब परिवारा, समरथ नहीं छुडावन हारा ॥४३॥
दोसत यार हित अरि मीत, चकित भये सकल भै भीत ॥
ऐसो को नहिं बलवन्त, जमसूं राषे जीव जन्त ॥४४॥
ऐसो कौ नही कलि मांही, राषे चालतां गहि बांही ॥
स्वारथ के सगे सब कोई, संकट निकट नहीं लोई ॥४५॥

बहो विधि कह्यो में समुझाई , औसर जाणि हरि हित लाई ॥
सुण सो गत की एक बात , पीपो सुमरै त्रिभुवन त्रात ॥४६॥

॥ इति श्री चिन्तामणि ग्रन्थ समाप्त ॥

पद १–राग धनाश्री

देवा भ्रमत भ्रमत तव सरणे आया ॥
सरणे आया विजैपंजर , राख लै रामैया राय ॥
लोह को संकल पाई , तूटेहो घणा चौथाई ॥
मोह को संकुल कैसे टूटे , हां राम रमैया राई ॥१॥
देषी विद्या देष्यो दान , देषी काया कृतम तन ॥
साध संगति विनु मेरे , नहीं माने मन ॥२॥
देष्यो पुण्य देख्यो पाप , सकल जग देष्यो सताप ॥
प्रणवत पीपा नरहरि , उधार लै आपै आप ॥३॥

पद २–राग आसावरी

तूं मेरे तीरथ तूं मेरे काशी , सेइये गोविन्दराई सकल अविनाशी ॥१॥
गगन गंगा भवन गंगा , त्रिविध गंगा नारायण संगा ॥२॥
अड़सठ तीरथ जो मन चंगा , राम का नाम पषालिवे अंगा ॥३॥
पीपा कहै जोगेश्वर सोई , मुष हृदो जाको एक होइ ॥४॥

पद –३ राग आसावरी

काया गढ़ खोजतां मैं नौ निधि पाई ॥
अनत न जाऊं राजा राम की दुहाई ॥टेर॥
काया देवल काया देव काया पूजा पाती ॥
काया धूप दीप नैवेद्यक काया तीरथ जाती ॥१॥
काया में है अड़सठ तीरथ काया में है कासी ॥
काया में है कमलापति काया मैं वैकुण्ठवासी ॥२॥
जो ब्रह्माण्डे सोइ है पिंडे , जो षोजे सोई पावै ॥
पीपा प्रणवे परम ततरे , सतगुरु मिलै लषावै ॥३॥

पद–४

क्या मेरा क्या तेरा मना, जैसे तरवर पंछी बसेरा मना ॥टेर॥
चंदा न होता सूर न होता, होता दिवस न राती ॥
ब्रह्मा न होता रुद्र न होता, करता कौन भराती ॥१॥
माई न होती बाप न होता, होता कर्म न काया ॥
हम नहीं होता तुम नहीं होता, कहो कहां तें आया ॥२॥
वरण न होता विचार न होता, मोह न होती माया ॥
राजस सात्विक तामस न होता, अवगत आप उपाया ॥३॥
षेचर भूचर सीगीं मुद्रा, गुरु प्रसाद तें पाया ॥
पीपा प्रणवे परमतत्व, सब जग धंधे लाया ॥४॥

पद–५ राग सोरठी

तूं मेरा तरवर मैं जन पंषी, अंवरीक ध्रु नारद साषी ॥टेर॥
तूं जो गिरवर तो मैं मोरा, जो तुम चंदा तो मैं चकोरा ॥१॥
जो तुम तीरथ तो मैं जात्री, जो तुम देवारांम तो मैं पाती ॥२॥
पीपा प्रणवे अंतरजामी, मैं तेरा सेवग तूं मेरो स्वामी ॥३॥

पद–६

मन रे कहा भूल्यो मति हीना ॥
तूं काहू का ना कोई तेरा, ज्यूं उपना त्यूं षीणा ॥टेर॥
राज पाट अवला बहु तेरी, होते घोड़ा हाथी ॥
परमहंस जब किया पयाना, बिछड़ गये सब साथी ॥१॥
जे नर छाँह छत्र की चलते, दुनि मानी महाराणा ॥
नवणी करते जालण लागे, जब तन भया विडाणा ॥२॥
पीपो कहै पदारथ पाया, अंध न देषे कोई ॥
अमृत नाम राम का मीठा, मैं पीऊंगा सोई ॥३॥

॥ अथ पींपाजी महाराज की अमृतवाणी ॥

दोहा—

पीपा राम दुवार में, कमी वस्तु को नांह ॥
विना भजन पावै नंहो, चूक भजन के मांह ॥१॥
पीपा देर न कीजिये, भज्ज लीजै हरिनाम ॥
कुण जाणे क्या होवसी, छूट जाँयगे प्रान ॥२॥
राम नाम सुमरत भये, रंक बंक बजरंग ॥
ध्रुव प्रह्लाद रु गीध्र गज, तज कुल को परसंग ॥३॥
पीपा भज श्री राम को, परिहर अखिल विचार ॥
आलस तज या मनुज तनु, क्यो गिरता संसार ॥४॥
पीपा राम प्रताप तें, सागर जल के मांह ॥
पथर तिरे तरु पात ज्यूं, नर की बातें कांह ॥५॥
राम राम रटिवो भलो, जिनतें इणभव मांह ॥
सुजस सुभाजन जन भये, जे थे जग कुल नांह ॥६॥
राम कृपा तें होत सुष, उत्तम होत कुजात ॥
पीपा परिहर जगत को, भजतो क्यो विलपात ॥७॥
राम नाम सन्मुख हुओ, देय जगत को पीठ ॥
पीपा ज्यों अहिचोलि तज, होता उज्वल दीठ ॥८॥
भक्त दुःष मोचन करण, हरण सकल जंजाल ॥
पीपा क्यों नहि भजत नर, निशदिन राम कृपाल ॥९॥
पीपा देष विचार हिय, है यह मतो प्रवीन ॥
सम चित रह संसार में, राम रसायण लीन ॥१०॥
वन्यो वनायो रहै सदा, काटत है नहिं शूल ॥
अरुण वरण क्या काम को, वास विना को फूल ॥११॥
निज को जौ चाहै सुषी, हुवो चहै दुष हीन ॥
तो भजलै श्री राम को, पीपा रहै न दीन ॥१२॥

भटकत पद अद्वैतता, अटकत ज्ञान गुमान ॥
लटकत मान कुज्ञान में, राम विना नादान ॥१३॥
निज सुत को माता पिता, करे भलो उपदेश ॥
पीपा एकण राम विनु, मिटे न जग को क्लेश ॥१४॥
पीपा हरिसा गुरु विना, होत न विशद विवेक ॥
ज्ञान रहित अज्ञान युत, कठिन कुमन की टेक ॥१५॥
स्वारथ के सब ही सगा, जिनसों विपद न जाय ॥
पीपा हरि उपदेश विनु, राम न जान्यो जाय ॥१६॥
पीपा राम समान जग, स्वपने अपरन आन ॥
तासु भजन रति हीन अति, चाहसि सम्यक ज्ञान ॥१७॥
जिनतें उद्भव सब विभव, ब्रह्मादिक संसार ॥
सुगति तासु पद तस कृपा, पीपा कहै विचार ॥१८॥
पीपा कहैत विचार हृदि, राम सरिस नहि आन ॥
जासु कृपा उपजै हृदय, विशद बिवेक सुजान ॥१९॥
रामस्वरूप अनूप अति, हरे सकल अघमूल ॥
पीपा रामहि जो भजै, ताके सब अनुकूल ॥२०॥
परमारथ पुनि स्वारथ सब, सुलभ नाम परताप ॥
द्वार दूसरे दीनता, जातां लागे पाप ॥२१॥
हितस न हितरवि रामसन, रिपुसन बरै विहाय ॥
उदासीन संसार सन, पीपा तब सुख थाय ॥२२॥
चतुराई चूले पड़ो, भट्टी मां आचार ॥
पीपा कुछ नहिं राम विन, आगो लग ससांर ॥२३॥
तिल पर राखे सब जगत, निजर मांहि संसार ॥
पीपा महिमा राम की, है जग अपरंपार ॥२४॥
स्वामी होनो सहज है, दुरलभ होणो दास ॥

पीपा हरि के नाम विनु, मिटै न जमकी त्रास ॥२५॥
पीपा परतष देखले, थाली मांहि मुसाण ॥
ज्ञान विना जाणे नहीं, झूठो करे बषाण ॥२५॥
पीपा अगत न जावसी, जो जपता हरि नाम ॥
एक घड़ी आधी घड़ी, राति दिवस अवसान ॥२७॥
पीपा हरि परसाद तें, पायो ज्ञान अनन्त ॥
जाता भव मझधार में, दुख को आयो अन्त ॥२८॥

॥ इति ॥

---

८. महात्मा कल्याणदासजी

महात्मा कल्याणदासजी का नाम हरीदासजी के बावन शिष्यो मे आता है भाट की बही की नामावलि मे भी कल्याणदासजी का नाम आता है। भाऊदासजी की गुदडी की नामावलि मे इनका नाम नही है। इन के स्थान जन्म तथा निधन की जानकारी का कोई सूत्र सामने नही है। इनकी रचना से ही यह अनुमान है कि ये महाराज हरीदासजी के शिष्यो मे ही जो नामोल्लेख इनका है वे यही है। इन का काल महाराज के अपर शिष्यो की तरह ही सोहलवीसत्रहवी सदी मानना संगत है। इन के थाभे की परम्परा का भी निश्चय नही है।

इनकी रचना दो स्थानो की पुस्तको मे प्राप्य हुई है। एक कोलिये की पुस्तक मे जिसका लेखनकाल १८३० है। दूसरी पुस्तक जाँवले मे पडित घनश्यामदासजी के संग्रह मे है। इसका लेखन काल सम्वत् १८२६ है। इसके लेषक ने कल्याणदासजी की वांणी की पूर्नि पर लिखा है कि वाणी बहुत विस्तृत है उसी मे से कुछ अश यहाँ लिखा गया है। वह अंस साषी भाग अंग ४५ मे ६३० सापी० लघुग्रन्थ १० राग १७ पद २१२ है। पूरी वाणो कितनो विस्तृत है यह कहा नही जा सकता। किन्तु उपरोक्त उल्लेख से इतना तो सिद्ध होता ही है कि इनकी वाणो अच्छी विस्तृत है। वाणो की रचना से प्रतीत होता है कि यह साधक महात्मा होते हुये भी कुछ शिक्षित भी थे। इनकी शब्द योजना से इनका शिक्षत होना सिद्ध होता है।

इनकी वाणी मे निरंजन तथा रामनिरंजन शब्द का अनेको स्थलों पर प्रयोग हुआ है। रामनिरंजन शब्द निरंजनी सम्प्रदाय का रूढ़ नाम जपने का शब्द है।

इनके ग्रन्थ निराकार की महिमा मे बीसवी साषी मे प्रयुक्त शब्द दयालरामजी भी विचारणीय है । हरिदासजी की साधना सिद्धि के पश्चात् दयाल नाम से ही ख्याति थी आज भी इनके स्मारक स्थान को दयालधाम नाम से कहा जाता है इनकी वाणी का समावेश निरंजनी सम्प्रदाय की ही संग्रह पुस्तको मे है अन्य सम्प्रदाय की पुस्तको मे नही । अत उपरोक्त विवरण इन्ही आधारो के आश्रित है ।

॥ अथ महात्मा श्री कल्यांणदासजी महाराज की वाणी ॥

कबीर नाम दे पींपा रैदासा, भवसागर की काटी पासा ॥
गोरख भरथरी गोपीचन्द, जन कल्याणदास मिल करे आनंद।१।
काया नगरी मनवा राजा, पवन करै कुटवारा ॥
आतम ज्ञान राम रस हीरा, सुरती सहज घर धारा ॥२॥
काया नगरी मन उपदेशा, बलिहारी गुरु तेरी ॥
कल्याणदास जन बुद्धि कर बूझया, नांव निरंजन जेरी ॥३॥
जन कल्याणदास पलटे नहीं, गुरु अपना की साषि ॥
सांचा सतगुरु पाइया, राम रसायन चाषि ॥४॥
ऐसी सतगुरु तैं करी, तैसी करै न कोई ॥
काया भेद बताय करि, रह्या ज प्रगट होई ॥५॥
गुरु जाणै कै आतमा, दूजा जाणै नाहिं ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, अमी महारस षाहिं ॥६॥
करुणा सहित डंडोत है, निशि दिन सुमिरन होई ॥
गुरु गोविन्द हिरदै बसे, विरला जानै कोई ॥७॥
मूल मन्त्र सतगुरु दिया, आतम कूं उपदेश ॥
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, ब्रह्म हमारा देश ॥८॥
तन मन वारूं आतमा, निशि दिन न्हाऊं शीश ॥
गुरु गोविन्द हृदय बसै, गुरु ही है जगदीश ॥९॥
सांचा इस्ट सांचे मतै, सांचा गुरु शिष ऐक ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरण ब्रह्म अलेष ॥१०॥

कन फूंका गुरु बहोत है, सतगुरु विरला जाणि ॥
जन कल्याणदास कूं गुरु मिल्या, सुरति सहज घर आणि ॥११॥
साधां पाया एक रस, सब ही साधु एक ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरण ब्रह्म अलेप ॥१२॥
सांचा मन छाडूं नहीं, दूजा पकडूं नांहिं ॥
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, अगम तहां चलि जाहि ॥१३॥
जाति हमारी वैष्णो, सुमरि अगम अलेप ॥
दरबेस मसत हरि नांव में, ऊपर पहरया भेष ॥१३॥
सतगुरु पहराई गूदड़ी, पत्तर दीया हाथ ॥
जन कल्याणदास सुमिरे राम कूं, रहै राम के साथ ॥१५॥
ज्ञान ध्यान की गूदड़ी, मन्त्र दीया विचार ॥
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, सांइ अनन्त अपार ॥१६॥
निराकार निरंजना, अविनाशी गुरुदेव ॥
जन कल्याणदास विसरै नहीं, करै अलष की सेव ॥१७॥
मनवा के उपजनि भई, आत्म कूं गुरु राषि ॥
सतगुरु ज्ञान विचारदे, राम रसाइण चाषि ॥१८॥
मन दीयां सतगुरु मिलै, तन दीयां गुरु नाहिं ॥
आतम तो मन सूं कहै, समझि देषि मन मांहि ॥१९॥
सतगुरु तो कसणी करी, फेरि न करै जवाब ॥
आतम तो मन सूं कहै, ता चेला के भाग ॥२०॥
गुरु गोविंद कसणी करी, गुरु का भया गुलाम ॥
आतम तो मन सूं कहै, सरे हमारे काम ॥२१॥
निर्बल व्है गुरु सूं मिल्या, गुरु गोविन्द सहाय ॥
आतम तो मन सूं कहै, निश दिन बलिबलि जाय ॥२२॥
भेष शबद बाला दई, सतगुरु किया निहाल ॥
गुरु गोविंद कूं त्यागि दे, ताका बुरा हवाल ॥२३॥

अज्ञानी गुरु कूं मेटिये, ज्ञानी गुरु का दोष ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, कदे न पावै मोष ।।२४।।
करुणा सेवा बंदगी, सतगुरु य्रोह बताय ।।
शरणै आयो बापजी, मेरी करौ सहाय ।।२५।।
गुण इन्द्र्यां कूँ त्याग दूं, त्यागूं सब संसार ।।
गुरु भक्ता गुरु में रहै, सुमिरे सिरजन हार ।।२६।।
गुरु भक्ता गुरु में रहै, सोई चेला वीर ।।
सुमिरे राजा राम कूँ, भरि भरि पीवे नीर ।।२७।।
चेला गुरु कूँ बूझि करि, मूंड मूडावै वीर ।।
गुरु भक्ता गुरु में रहै, मिटै जन्म की पीर ।।२८।।
गुरु मिल्या तब जानिये, भेद बतावै एह ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, हरि सुं वधै सनेह ।।२९।।
ज्ञान दिया है रामजी, महरबान व्है राम ।।
समझ पड़ी सतगुरु मिल्या, मन पाया विश्राम ।।३०।।
राम षजाना दम दिया, खाली काहै षोवे ।।
साहिब लेषा मांगिसी, तब मूंड धुनि धुनि रोवै ।।३१।।
सुष अगध है राम का, मन पवना लै जोड़ि ।।
मार सहेगो जीवड़ो, साहिब से मति तोड़ि ।।३२।।
मन पवना है राम का, दे करि ऊरण होई ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, विरला जाणै कोई ।।३३।।
मन है पूंजी राम की, तूं मति षोवै वीर ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, लेषा मांगे पीव ।।३४।।
जेता दम षाली पड़ै, तेती षाजे मार ।।
जन कल्याणदास सुमिरै राम कूं, निशिदिन बारंबार ।।३५।।
साध्यां तें सिद्ध होयगा, काल न घाले चोट ।।
कल्याणदास जन यूं कहै, सबल राम को ओट ।।३६।।

जे कब हूँ काची पड़े, और जनम है राम ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, पूरन सिद्धि व्है काम ॥३७॥
कहा शक्ति है जीव की, दुलंभ सुमिरण राम ॥
राम सुमिरावै जीव कूं, पड़्या धणी सूं काम ॥३८॥
कहा शक्ति है जीव की, जीवन समझे पीव ॥
पीव समझावै जीव कूं, तो सुष पावै जीव ॥३९॥
नांव दिया है राम जी, हिरदे सुमिरण जानि ॥
समझ पड़ी सतगुरू मिल्या, सुरति सहज घर आनि ॥४०॥
नांव दिया है राम जी, यह पूरी बकसीस ॥
सुमिरण सेवा ध्यान करि, यूं करमां कूं पीस ॥४१॥
भाग बिना क्यों पाइये, सुमिरण सासों सास ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, परम ज्योति प्रकास ॥४२॥
कण छाडै कूकस गहै, ऐसा सब संसार ॥
जन कल्याणदास विचार करि, सुमिरै सिरजन हार ॥४३॥
कर्म भर्म कूकस भया, कण है सुमिरण सार ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, सुमिरै सिरजन हार ॥४४॥
चारि बेद है मांड में, पंचम बेद है न्यारा ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, ऐसा राम पियारा ॥४५॥
चारि बेद का मूल है, पंचम बेद का जाप ॥
कल्याण दास जन यू कहै, तहां पुण्य नहीं पाप ॥४६॥
साध सबद में समझ करि, समझर कीजे और ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, हरि में नाहिं ठौर ॥४७॥
करणी भिष्ट चाल है ऊंची, पांचू इन्द्री ज्ञान सूं मूछी ॥
अंतर मीठा ऊपर खारा, जन कल्याणदास वे हरिका प्यारा॥४८।
हाथ दिया पांव दिया, नयन दिया कान ॥
मुष दीया जीभ दई, सुमिरे क्यों नहीं राम ॥४९॥

गति मति में पाउं नहीं , समर्थ सिरजनहार ॥
साहिब तेरी साहिबी , मौकूं द्यौ दीदार ॥५०॥
दुर्लभ महा वैराग है , देषिर दीजे पांव ॥
दुर्लभ सेवा साधु की , दुर्लभ हरि सूं भाव ॥५१॥

—इति साखी फुटकर—

॥ अथ श्री निराकार की महिमा जोग ग्रन्थ ॥

सन्तो घट में राम अपारा , अब सुमिरो सिरजन हारा ॥
धरती गगन अधर करि राषी , चंद सूर इन्द्र से राजा सकल मांड है तेरी॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेश विचारे , समझि समझि सब हारे ॥
अगम अपार पार नहिं कोई , संत जनां कूं तारे ॥२॥
हरि गंगा जमुना सृष्टि उपाई , सकल कला भरपूर ॥
सब कछु करि सब ते न्यारा , ऐसा हरि का नूर ॥३॥
इकलस एक कहा कहि बरणे , सिरजनहार गंभीरा ॥
झूलै षेलै राम हमारा , तहां रती न ब्यापै पीरा ॥४॥
जहां तहां राम हरि तुम मांही , सकल दुनी कू पोषै ॥
अंतर गति सूं सेवा लागी , साधन पड़ ही धोषे ॥५॥
सबकूं देखे सब कूं पोषे , अंतरजामी सांई ॥
पांच पचीस तीन गुण त्यागे , सोई देषे मन मांही ॥६॥
साधु जन के नाव आधारा , लूटे विलसे षांही ॥
अगम अगाध पार नहीं कोई , समझि रहे मन मांही ॥७॥
हांसी षेल राम नहिं पावे , कठिन पंथ है धारा ॥
जापर कृपा सोई भल जाने , अगमनार नहीं पारा ॥८॥
विराट रूप अबगति अविनाशी , सकल लोक परिछाया ॥
आवै जाय धरै नहीं काया , राम रमत सुष पाया ॥९॥

अविनाशी के रूप न रेखा, धरणी गगन भी नांही ॥
अन्तरजामी सबतें न्यारा, व्यापि रह्या सब मांही ॥१०॥
हरि हे दूर नेड़ा भी नांही, हरि भक्त न तें नेड़ा ॥
पर आतम सुं आतम मेला, जम करि सकै न फेरा ॥११॥
सब सूं ऐक सांच सूं पावै, सांच विना नहीं पावै ॥
उलटी सुरति ब्रह्म कूं भेटै, निराकार कूं गावै ॥१२॥
उद्‌बुद् कथा कौन सूं कहिये, समर्थ सांई मेरा ॥
अगम अथाध पार नहीं कोई, करौं राम में केला ॥१३॥
हरि आप मिलावै आप कूं, अंतर ज्यौति जगाय ॥
समर्थ सांई दर्शन दीया, अमी महारस पाय ॥१४॥
निराकार अबगति अविनाशी, जम नहिं घालै पासी ॥
सेवग होइ कै सेवा लागै, सदा रहै अविनाशी ॥१५॥
घटै बधै रूप भी नांही, ब्याप रह्या सब मांही ॥
भेदी होय सु भेदै जाणें, निराकार ल्यौ लाई ॥१६॥
निराकार निरंजना, सकल भवन पतिराया ॥
जामण मरण जुरा सब भागा, घर ही में घर पाया ॥१७॥
अविनाशी कूं विरला जाणै, केवल ब्रह्म अपारा ॥
अरस परस मिल सुमिरण लागा, सो है राम हमारा ॥१८॥
एकमेव होइ सेवा लागा, हितकरि प्रीति विचारी ॥
रमता राम चांदणा मेरे, सुरति सहज धरि धारी ॥१९॥
महर करी दयाल रामजी, हमसे पतित उधारे ॥
दे दर्शन अपना करि लीया, आवागमन निवारे ॥२०॥
एक शब्द सूं सब जग किया, तीन लोक विस्तारा ॥
अपरम्पार पार नहीं आवै, सो है राम हमारा ॥२१॥
निराकार अबगति अविनाशी, निर्मल ज्यौति अपारा ॥
ज्ञान दृष्टि जाका घट मांही, सुमरै बारंबारा ॥२२॥

सेवा अगम अपार गुसाईं, आप आप कूं जाणै ॥
भरि भरि प्रेम पियाला पीवै, हरि सूं बाणिक बाणै ॥२३॥
जहां तहां सेवक की सेवा, सेवा बिना न जीवै ॥
हालत चालत सूतां बैठां, अमी महारस पीवै ॥२४॥
सेवग होइ करि सेवा लागै, बिन सेवा नहीं पावै ॥
रमता राम सकल घट दीसै, सेवग हरि कूं भावै ॥२५॥
आनंद रूप अगह अविनाशी, अंतर ज्योति प्रकासी ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवै, निशिदिन रहै उदासी ॥२६॥
अवरण बरण रूप रंग नांही, सकल बर्ण तैं रहता ॥
साधु सुमिरे राम निरंजन, तीन लोक का करता ॥२७॥
ओछा बासण राम अगोचर, दया भाव करि आया ॥
अगम अगाध पार नहि कोई, साहिब सूं मन लाया ॥२८॥
आपै आवै आपै गावै, आपै पंथ चलावै ॥
जहां तहां राम अविनाशी, साधू सन्मुख पावै ॥२९॥
आपै सांई आपै मांही, आप ही अगम अपारा ॥
साधूजन कै घट में षेलै, और दुनियां तै न्यारा ॥३०॥
मेरी जीवनि राम अपारा, मन ही सूं मन लाया ॥
अनहद किंगुरी बाजा बाजै, गुरु गमतें हरि पाया ॥३१॥
हरि सबकी जानें सेवग की मानैं, सबतैं रहै निराला ॥
साधु जन का हृदा मांही, बरसे अमृत धारा ॥३२॥
द्रोह प्रमोह ष्याल एक रचिया, रचि करि भया निराला ॥
साधु सुमिरै राम निरञ्जन, गावै राम पियारा ॥३३॥
तेरी बाजी तैं ही साक्षी, दूजा का बल नांही ॥
साध जंबूरा राम ही जाणै, ढूंढ लिया घट मांही ॥३४॥
साधू रमै राम ही जाणै, राम हीं हिरदै आणैं ॥
राम ही राम जपै निशिवासुर, रामहिं राम पिछाणै ॥३५॥

परमारथ की कथा सुणावै, सुणि करि चालौ लोई ।।
ऊंच नीच राम कै एकै, ऐसा समरथ सोइ ।।३६।।
साध संगति राम की सेवा, भाग बड़ै सो पावै ।।
भजै राम कूं संक न मानै, हरि मैं जाय समावै ।।३७।।
सुमिरण सेवा ध्यान हरि पूजा, नांव निरंजन लागा ।।
सतगुरु हमकूं सांच बताया, जुरा मरण भौ भागा ।।३८।।
सतगुरु पाया हरि जन गाया, रमता राम हमारा ।।
अंतर गति में सेवा लागी, निरमल ज्यौति अपारा ।।३९।।
में हूं जीव राम है शीव, महर करि सुष दीया ।।
अगम अगाध पार नहिं कोई, अगम पियाला पीया ।।४०।।
ऐसी धरणि धरि हरि तुमहीं, हरि विना दूजा नांही ।।
एकमेव व्है सेवा लागा, अमी महारस खांही ।।४१।।
सब कछु कीया राम सुष दीया, रामैं राम पुकारै ।।
रामै राम रह्या भरपूर ही, रामैं राम हमारै ।।४२।।
निराकार की वाणी वोली, निराकार नांही आकारा ।।
हरिजन होइ सो हरि ही जाने, सुमिरे बारंबारा ।।४३।।
सुरनर मुनिजन पीर अवलिया, तिन हूं नहीं पाया ।।
अगम अगाध पार नहीं पावै, माया सुं मन लाया ।।४४।।
हरि की भक्ति साध भल जाणै, सुमिरैं अगम अगाधा ।।
अवर्ण वर्ण रूप रंग नांही, बिरला साधां लाधा ।।४५।।
अवर्ण वर्ण धूप नहिं छाया, दुष सुष तै भी न्यारा ।।
अगम अपार पार नहिं कोई, सो है राम हमारा ।।४६।।
एका एकी रहै निराला, संग न कोई रापै ।।
हरिजन हरि मैं सुमिर समावै, राम रसाइण चापै ।।४७।।
बे परवाही सब का करता, मेरी जीवनि सोई ।।
अबगति की गति क्या कही बरणूं, जाके मांस न लोई ।।४८।।

ज्योति ही ज्योति रही भरपूरा , ज्योति न बरणी जाई ।।
हरिजन व्है सो ज्योति ही जाणै , ज्योति ही रह्या समाई ।।४९।।
हरि है चोर सकल कूँ देखै , हरि कूँ कोई न पेखै ।।
साधू चोर चोर कूं जाणै , उदबुद कथा अलेखै ।।५०।।
हरि है सांई देख्यां मांही , तेज रूप हरि हीरा ।।
अंतर जागै सुमिरण लागै , पाये राम सधीरा ।।५१।।
निराकार की महिमा बरणी , रमता राम ही आपै ।।
साधू सुमरै रामनिरंजन , सुमर सुमर मन धापै ।।५२।।
तीन जाकी ज्योति फिरत है , जल थल रह्या समाई ।।
जन कल्याणदास राम है ऐसा , जांका हरषि हरषि गुण गाई ।।५३।।

इति निराकार की महिमा जोगग्रन्थ सम्पूर्णम् :—ग्रन्थ १

।। अथ ज्ञानसार आत्मा विचार ग्रंथ प्रारम्भ ।।

पर आतम सूँ आतम होई , आतम सेती मनवा सोई ।।
मनवा लेकर कर्म कमावै , कल्याणदास ऐसै समझावै ।।१।।
ज्ञाननिजर करि जाकूं सूझै , सो ही हरिजन ऐसी बूझै ।।
षोज बूझि जन करै विचारा , सांई सुमरै अनंत अपारा ।।२।।
बंकागढ़ कूँ कोइक लागै , कनक कामिनि दोनूँ त्यागै ।।
त्यागि समझि करि सेवा कीजै , राम रसाइण भरि भरि पीजै ।।३।।
ऐसा साधू बिरला पाऊँ , निशिवासुर मैं बलि बलि जाऊं ।।
ऐसा साधू राम सनेही , मैं तैं ममता त्यागै देही ।।४।।
क्या मेरा क्या तेरा भाई , काहे कीजै बहोत बड़ाई ।।
बहोत बड़ाई कछु हाथ न आवै , गोविंद कहे गुण काहै न गावै ।।५।।
दुनियां औघट घाटी जाई , मैं तो हरि की बात सुनाई ।।
हरि का मारग सिरके साटै , राम बिना दूजी मत पाटै ।।६।।

मैंर कहूँ तूँ सुणलै भाई , प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाई ॥
ऐसा अवसर बहुरि न पावै , हीरा जन्म अमोलक जावै ॥७॥
देही सेती देही जावै , काम क्रोध विषया मन भावै ॥
जा विषया केहू लाडू , अबला कछू न आवै सादू ॥८॥
माया त्यागि हरी कों बूझै , पांचौं इन्द्री सेती झूझै ॥
ऐसा मनके होय विचारा , तौ भौजल तिरत न लागै बारा ॥९॥
बदन बिलौके हरि कूँ सोधै , सुरति सुरति सूँ मन पर मोधै ॥
परमोध्यां इन्द्री आनंद होई , काल जाल लागै नहिं कोई ॥१०॥
साहिब सांई अनंत अपारा , ऐसैं भजिये सिरजनहारा ॥
हरि का मारग मति ही भूलै , नहींतर चौरासी मैं झूलै ॥११॥
ज्ञान निशरनि मनवै पाई , प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाई ॥
सबही दिन है लेषा मांही , राम रसाइण भरि भरि पाई ॥१२॥
या दुनिया तैं मनकू फेरै , निशिवासुर साहिब कूँ टेरै ॥
प्रेम पियाला भरि भरि पीवै , अपनौ जन्म सुफल करि जीवै ॥१३॥
बहिरमुषी सूँ कछू न कहणा , अपनें दिल में चुप व्है रहणा ॥
दिलहि दिलमें सुमिरै सांई , राम रसाइण अमृत पांई ॥१४॥
बहिरमुखी जो मोपै आवै , मेरे मनको कबहु न भावै ॥
दुनियां कीर चलावै बाता , समझै नांही हरि की गाथा ॥१५॥
जोरी करै जुलम गुदारै , मूँड मुडाई लाठी सूँ मारे ॥
ते तो जगमैं कहिए बुरवा , साध संगति चलि आवै गरवा ॥१६॥
हरि का मार्ग मांही मरिये , पाछा पग कबहूँ नहिं धरिये ॥
ऐसीं मनकै उपजै करुणां , सबही बातां आवै जरणां ॥१७॥
मूंड मुडाई पर घर कूँ भाजै , काल सदा ही शिर पर गाजै ॥
ऐसै भौंदू लोक हँसावै , हीरा जन्म अमोलक जावै ॥१८॥
बाहर जाता भीतर आनै , मनहीं मांहीं राम पिछानै ॥
ऐसै हरि की कीजै सेवा , राम निरंजन अलप अभेवा ॥१९॥

साधां मांही आवै गावै, मैं तैं ममता मर्म नसावै ॥
या की कछु किम्मत नांहीं, ऐसी समझ पड़ी मन मांही ॥२०॥
जन कल्याणदास या हरि की गाथा, जीवड़ा रहिये हरि के साथा ॥
मेरा मनकै उपज्या भेवा, ऐसे कीजे हरि की सेवा ॥२१॥
भजन करै कै टूका दीजै, और भर्म कोई नहीं कीजै ॥
एक वैर हरि मारग पावै, कल्याणदास जन कहि समझावै ।२२
मारग पाय रव्है वैरागी, कनक कामनी दोन्यूं त्यागी ॥
त्यागिर आवै हरि की ओटा, तो जन्म २ का भाजै टोटा ॥२३॥
सांचा साहिब सांची बाणी, या दुनियाँ तैं उलटी ताणी ॥
परम ज्योति में कीया बासा, ऐसै निपजै हरि का दासा ॥२४॥
हरि का मारग सबतैं नीका, और धर्म सब लागै फीका ॥
कर्म भर्म कोई नहीं लागै, राम नाम में निशदिन जागै ॥२५॥
साची सेवा साचा साधू, साहिब सुमिरौ राम अगाधू ॥
जामैं नहीं मरै कोइ नही आवै, साहिब मांही जाय समावै ॥२६॥
उद्बुद सांई उद्बुद खेला, अपना साहिब रहै अकेला ॥
नष शिष सेवा सुमरण राम, ऐसे मन पाया विश्राम ॥२७॥
ऊजल निर्मल अमृत नीर, जन्म २ की मिट गई पीर ॥
जोग मूल का मारग पाया, प्रेम प्रीति अंतर ल्यौ लाया ॥२८॥
साची सेवा साचा राम, लोभ मोह व्यापै नहिं काम ॥
ऐसी कथा और नहिं जाणै, साहिब अपनां मांहिं पिछाणै ॥२९॥
हरिजी आया मारग पाया, मनहीं मनमें गोविंद गाया ॥
मनही मनमैं सुमिरण कीया, तन मन जोबन हरि कूँ दीया ॥३०॥
त्यागै पांचू और पचीस, हरि कूं सौपै तन मन शीश ॥
शबद अनाहद बाजै तूरा, सोइ हरिजन हरि का पूरा ॥३१॥
त्यागै माया त्यागै देही, तौ मन पावै राम सनेही ॥
जुरा न ब्यापै काल न खाई, हरिजन हरि में रह्या समाई ॥३२॥

नगरी मांहीं आनंद देव, राम निरंजन अलख अभेव ॥
कल्याणदासजन देखि हिरानी, आतम पाया उदबुद ज्ञानी ॥३३॥

इति श्री ज्ञानसार आत्माविचारग्रंथ संपूर्णम्

संतो सतगुरु कहै विचारा, सुमिरो सिरजन हारा ॥टे०॥
बहु संगति में मन फूटि है, बहु संगति नहीं कीजै ॥
गुरु गोबिद के शरणै रहिये, अमी महारस पीजै ॥१॥
बहु बिधि बाणी बहु बिधिजानी, बहु बिधि बाणी फूटै ॥
गुरु गोबिंद का सुमिरण कीजै, राम रसाइण लूटै ॥२॥
गुरु गोबिंदकूँ बंदि करि, ग्रंथ पद कहि साषि ॥
गोरख भरथरी कबीर नामदेव, हदा भीतर राषि ॥३॥
गुरु गोबिद के शरणे रहिये, गुरु गोबिंद है सार ॥
जन कल्याणदास भजि राम निरंजन, अगम वार नहीं पार ॥४॥

चित लागो रमता राम सूँ, मन बिरच्यो विषया वाम सूँ ॥टेर॥
जीव साध संगति मिल बूझै, ऐसै अविनाशी हरि सूझै ॥१॥
ऐसै भाव भक्ति मन धीरा, मिटि जन्म २ की पीरा ॥२॥
जन कल्याणदास सुख पाया, सुख सागर मांहि समाया ॥३॥

जिन पाया साहिब सांई, वै घटि बधि बोलै नांहीं ॥टेर॥
घटि बधि बोलै झूठा, वै साहिब सेती रूठा ॥१॥
जीव ऊपर भेष बनावै, साहिब कबहू न पावै ॥२॥
साच सबद लै तोलै, हरिजन झूठ न बोलै ॥३॥
जन कल्याणदास अब डरिये, अब साहिब शरणौ रहिये ॥४॥

राम रस मीठा रे, अमली बिन पीया न जाय ॥टेर॥
काम क्रोध तृष्णा तजि, पांचूँ इन्द्री और ॥
सोई पीवै राम रस, पावै हरि मैं ठौर ॥१॥

तन मन आतम सूं पीयै, सुरति निरति सब शीश ॥
राम रसाइण भरि पीया, पूरण है जगदीश ॥२॥
राम रसाइण सार है, ताका वर्णों विस्तार ॥
कल्याणदास जन पीजिये, मेरे जीव का प्राण आधार ॥३॥

राम रस वंकारे, कोई पीवै साधु सुजाण ॥टेक॥
तन मन सौंपै सो पीवै, दूजा पीवै नांय ॥
राम रजाइण पीवतां, आतम हो सुष मांय ॥१॥
यह साधां की रीत है, साहिब सेती प्रीति ॥
राम रसाइण पीवतां, तन मन बैठे जीत ॥२॥
जापै हरि कृपा करी, पीवत रहै अघाय ॥
कल्याणदास जन वीनवै, प्रेम प्रीति ल्यौ लाय ॥३॥

राम रस पीवै रे, पीवै जीवै सोई ॥टेक॥
सब साधां कीमति करी, कीमति लषै न कोई ॥
राम रसाइण पीवतां, जीव अविनाशी होई ॥१॥
तन मन देकरि पीजिये, सिर के साटै राम ॥
कल्याणदास जन यूं कहै, म्हारे मन पाया विश्राम ॥२॥

हरि की कथा सुनि रे प्राणी, साध देय उपदेश ॥
साध बिना पावै नहीं, तेरा ब्रह्म कहींजे देश ॥टेक॥
साधू मांई साधू भाई, साधू पिता हरि देव ॥
साधां बिन पावै नहीं, सांई अलष अभेव ॥१॥
साधू सूरा साधू पूरा, साधां कूं मन देह ॥
साध बिना पावै नहीं, तू राम भजन सुष लेह ॥२॥
गोरष भरतरी कबीर नामदेव, सुनि साधन की साषि ॥
साध बिना पावै नहीं, तूं रामहिं हृदै राषि ॥३॥

प्रमाण गोरष भरतरी , कबीर नामदेव वीर ।।
साध बिना पावै नहीं , राम भक्ति की सीर ।।४।।
साधू हीरा साधू पीरा , साधू अवगति राम ।।
जन कल्याणदास शरणे आया, साधू सारे काम ।।५।।

गरज रहै अंतर राम अलेख ,
पांच पचीस तीन गुण भागा , अन्तर रही न रेष ।।टेक।।
हिरदा कंवल में हरि अविनाशी, साहिब अनन्त अपार ।।
ता आनन्द में आनन्द बिलसै , अन्तर राम अधार ।।
एकमेक अन्तर कछु नांही , साहिब है महबूब ।।
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, पाया साहिब खूब ।।२।।

हम घर आये हरि का जना , राम रतन धन पायो मना ।।टेक।।
दर्शन परसन ज्ञान बिचार , राम रतन धन पायो अपार ।।१।।
चार मुक्ति सहजै घर पाई , प्रेम प्रीति अन्तर ल्यौ लाई ।।२।।
सबद साधन को दर्शन पावै , इडा पिंगला सुषमन गावै ।।३।।
कल्याणदास जन बलि२ जाई , दर्शन परसन रहै समाई ।।४।।

सषी हो दास कबीर गुरु राष्या,
सकल शिरोमणि नाथ निरंजन, अमी महारस चाख्या ।।टेक।।
मैं बलि जाऊं गुसांई तेरी , शरणै ताकिर आया ।।
गुरु गोबिंद का सुमिरण कीया , नाथ निरंजन गाया ।।१।।
तन मन देकरि शीश भी दीया , गुरु गोबिंद मिलि जीया ।।
महिमा कहा कहूँ जन केरी , अमी महारस पीया ।।२।।
ज्यूं ही कह्या रह्या मन त्यूंही , ऐसा मन का धीरा ।।
कल्याणदास जन सुमिरण लागा , दास कबीर जन हीरा ।।३।।

सषी हो गुरु के शरणै रहिये,
गुरु गोबिंद हाथ जब पकड़ै , बहु मारग नहि बहीयो ।।टेक।।

गुरु की साजै फेर निवाजै, हरि चरणा में राषै ॥
गुरु गोबिंद की कृपा हुई, राम रसाइण चाषै ॥१॥
असली गुरू का भाव हमारे, भरमी गुरू न कीजै ॥
कल्याणदास जन सुमिरण लागा, यूं मेवासा लीजै ॥२॥

अपनो जानि मोहि देष हरि,
अगम अपार पार कछु नांही, सो साहिब मैं ध्यान धरी ॥टे०॥
तुम्हारी गति मति तुमही जानो, मैं बपरा परमौज ढरी ॥
हरि चरणां में आय दुरे हैं, अभरा आतम राम भरी ॥१॥
अलष बिनांणी अन्तरजामी, राम नाम कहि छाडि मनी ॥
जन कल्याणदास कीमति कछु नांही, सकल निरन्तर राम धनी ॥२॥

परमसाधक सिद्धपुरुष महात्मा सेवादासजी

हरिदासजी महाराज के शिष्यो मे तो अनेको-अनेको सिद्ध पुरुष महात्मा थे। उनके पश्चात् जो शिष्यो की परम्परा चली उनमे भी समय समय पर अनेको सिद्ध साधक महापुरुष हुए है उन्ही मे महाराज सेवादासजी की गणना है। आप महाराज हरीदासजी की छटी पीढी मे हुये जैसा भूमिका मे षेमजी बडो की परम्परा के निरूपण से सिद्ध है। आप दयालदासजी महाराज के शिष्य थे।

आपका जन्मकाल १६८७ चैत सुदी ६ का था ऐसा आपके पोता शिष्य स्वामी रूपदासजी ने आपकी परचई मे लिखा है। रूपदासजी अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य थे, अमरपुरुषजी सेवादासजी महाराज के शिष्य थे। रूपदासजी ने सेवादासजी की परचई मे उनकी साधना, भ्रमण तथा प्रदर्शित चमत्कारो का निरूपण किया है। जैसा परचई की निम्न दो साखियो से सिद्ध होता है।

सोलह सौ सत्ताणवे, चैत सुदि नौमी दिन ॥
ता दिन बाजे बाजिये, प्रगटे सेवा जन ॥
सतरा सौ अठाणवे, वद पडवा जेठ मास ॥
जन सेवा स्वर्ग सिधाइया, कियो ब्रह्म में वास ॥२॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि महाराज सेवादासजी का शरीर एक सौ एक वर्ष रहा। उनका रचनाकाल अठारहवी सदी के दूसरे तीसरे चरण ठहरते हैं। निरजनी सम्प्रदाय के रचनाकारो मे महाराज तुलसीदासजी व सेवादासजी को ही वाणी रचना मे अग्रणी कह सकते है। जितनी विस्तृत वाणियें इन महापुरुषो की है उतनी विस्तृत और किसी रचनाकार की नहीं है। वाणी रचना मे तुलसीदासजी व सेवादासजी के पश्चात् कल्याणदासजी आत्मारामजी रूपदासजी का स्थान है। कल्याणदासजी की पूरी वाणी अभी ा त नही है।

सेवादासजी महाराज ने तीव्र तितिक्षा तथा त्याग वैराग के साथ अपनी साधना को सफल किया। उनकी वाणी मे सर्वत्र अनुभूति का स्रोत प्रवाहित है। उनने जिन बातो को अपने जीवन मे उतार लिया उन्ही का वाणी मे उपदेश दिया है। रचना से प्रतीत होता है कि वे सर्वथा निरक्षर नही थे। वे प्रकाण्ड पण्डित नही थे पर वे शास्त्रीय ग्यान से शून्य भी नही थे। उपासना उनने भी निर्गुण भक्ति को अपना कर की। नाम स्मरण तो उसका अवलम्बन होता ही है। व्यवहार मे वे किन्ही सामाजिक रूढियो तथा वर्ग विशेषो की प्रथा के समर्थक नही थे। उनकी वाणी पूरी प्रकाशित हो तभी उनके मनोभावो का रूप सम्यक् सामने आये। यहा तो उनकी वाणी का दिग्दर्शन मात्र ही सामने आयेगा। उनने वाणी रचना मे साषी, कुंडलिये, छप्पय, मनहर, सवैया, चान्द्रायण छन्दो का प्रयोग किया है। सबसे अधिक रचना साषियो की है ५७ अगों मे ३५६१ साषिये लिखी गई है। दस ग्रन्थो मे दोहे चौपाई पाचसौ पिचहत्तर के करीब है। कुण्डलिये चौतीस अगो पर चारसौ है। छप्पय, मनहर, सवैये चौबीस है। बारह अंगो पर एकसौ चौतीस चान्द्रायण है। अग नौ पर चमालीस रेषते है। राग २१ मे चारसौ दो पद है। सम्पूर्ण रचना का योग दोहे छन्द से सात हजार से ऊपर होता है। सेवादासजी महाराज से सम्प्रदाय की परम्परावृत्ति मे भी बहुत अधिक योगदान मिला आपके शिष्यो मे ही महाराज अमरपुरुषजी हुए, जिनके शिष्य प्रशिष्यों की संख्या सैकडो मे थी। उक्त स्थिति से यह कहा जा सकता है कि महाराज हरिदासजी के पश्चात् सेवादासजी महाराज का आगमन सभी दृष्टियों से निरंजनी सम्प्रदाय की समुन्नति का हेतुरहा आपके समकालीन और भी कई योग्यतम महात्मा निरंजनी सम्प्रदाय मे आये जिनका आगे दिग्दर्शन कराया जायगा।

॥ अथ श्री गुरूदेव को अंग ॥

॥ अथ वन्दना ॥

नमो नमो निरंजनम् , निराकार निरलेपकम ॥
सहजानन्द अषण्ड ब्रह्म , अजरौ, अमर, अनूपकम ॥१॥

गुरु पूर्ण परमानन्द है, गुरु अवगति आप अनंत ।।
गुरु व्यापक सब ही मांड मैं, गुरु निराकार भगवन्त ।।
अनन्त कला प्रकास गुरु, भयो तिमर को नास ।।
जन सेवादास बन्दन करै, हिरदै चरण निवास ।।३।।
गुरु गोबिंद की वन्दना, द्वैत भेद कछु नांहि ।।
ऐसो जाणि प्रणाम करि, सबै बिघन मिटि जाहिं ।।४।।
गुरु पूरण आप अनन्त है, सब विधि पुरवै काज ।।
पार उतारे सिष्य कूं, बैठे अजर जहाज ।।५।।

साषी—जन सेवादास सतगुरु मिल्या, पाया आतम ज्ञान ।।
पूरण एक लषाइया, दूसर नांही आन ।।६।।
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, पाया आतम भेव ।।
सांसा भागा भरम गया, भज अलष निरंजन देव ।।७।।
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, अन्तर पट खोले ।।
बहरा फिरि चेतन किया, गूंगा मुख बोले ।।८।।
गुरु समदर सिष्य तरंग है, उल्टि समाना मांहि ।।
जन सेवादास रलि एक होय, सहजे सुष बिलसांहि ।।९।।
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, मेहल्या मस्तक हाथ ।।
जाता उल्टा फेरिया, अब सुमिरण लागे नाथ ।।१०।।
सतगुरु सिष्य पर द्रवे, मलचर दे धोवै ।।
जन सेवादास दुरमति सब हरै, सांसा सब षोवै ।।११।।
सतगुरु दरवै सिष्य परि, तब सुमिरण लै लागै ।।
जनम मरण दुःख सब मिटै, सूता फिरि जागै ।।१२।।
सतगुरु दरवै सिष्य परि, तब सुमिरण लै लागै ।।
जन सेवा सुष होवै प्राण मैं, सांसा सब भागै ।।१३।।
सतगुरु दरवै सिष परि, सांसा सब षोवै ।।
तनमन पांचो उल्टि करि, जन सेवा सुध होवैं ।।१४

दिल दरपण मंजन करे, गुरु सिकली गर ऐन ॥
जन सेवा भ्रम सारा मिटै, तब आतम पावै चैन ॥१५॥
गुरु सिकली गर सारिया, भरम मिटावै दाग ॥
जन सेवा पूरा गुरु मिलै, तब ही माथे भाग ॥१६॥
सब्द मसकला लाय करि, भरम भगावै दूरि ॥
जन सेवा अन्तरि सुष भया, दरस्या राम हजूरि ॥१७॥
गुरु सिकलीगर कीजिए, सब्द मसकला लाय ।
दुबध्या दूरनिवारि करि, एक रूप दरसाय ॥१८॥
गरु सिकली गर कीजिए, सब्द मसकला बांहि ॥
कर्म काट सब झड़ि पडै, तब दरसै उर माहि ॥१९॥
गुरु सिकलीगर कीजिए, षोवै दाग अपार ॥
जन सेवा मन उजल करै, तब दरसै अपरंपार ॥२०॥
रवि गुरु एक समान है, प्रगट्या जुग मांही ॥
जन सेवा गुरुदेव तै, तिमर अज्ञान मिटाही ॥२१॥
रवि गुरुदेव तै तिमर, अज्ञान होय होय नास ॥
रवि जग माहिं उजास करि, गुरु उरि करै प्रकास ॥२२॥
अन्तर करै उजास गुरु, करम भरम सब षोय ॥
मन की दुबध्या दूर करि, जन सेवा निर्भय होय ॥२३॥
जन सेवा गुरुदेव की, महमा अनन्त अपार ॥
कर गहि राषै डूबतां, लष चौरासी धार ॥२४॥
जन सेवादास गुरुदेव की, महमा अनन्त अपार ॥
तन मन फेरि सँवारि करि, अमृत पाया सार ॥२५॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, दीया अजपा जाप ॥
तन मन पवना फेरि करि, अलष लषाया आप ॥२६॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, महिमा कही न जाय ॥
आप ससीषे करि लिये, हरि अमृत रस पाय ॥२७॥

जन सेवादास सतगुरु मिल्या, सब कुसमल रालै धोई ॥
मैला ऊजल करि लिया, काम कल्पना षोई ॥२८॥
जन सेवादास गुरुदेव की, महिमा कछु अनन्त ॥
पूरणब्रह्म लषाइया, आदि मध्य नहिं अन्त ॥२९॥
पवन प्रवेस न करि सकै, चन्द नहीं तहाँ सूर ॥
सतगुरू तहाँ पठाइया, जहाँ बाजै अनहद तूर ॥३०॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, कीया बहु उपगार ॥
रंका हीरा बगसिया, जन सेवा गुरु दातार ॥३१॥
जन सेवा दास सतगुरु मिल्या, दीपक दीया जगाय ॥
रोम रोम मैं रमि रह्या, अलष निरंजन राय ॥३२॥
देखो दया दयाल की, हम सूँ कही न जाय ॥
अधम उधारे डूबताँ, लिये सुमारग लाय ॥३३॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, डूबत काढ़ै कूप ॥
सूता जीव जगाय करि, दीन्ही वस्त अनूप ॥३४॥
सगा एक संसार मैं, सतगुरु सिरजनहार ॥
कर गहि काढै डूबतां, सलिल मोह की धार ॥३५॥
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, अगम तहाँ गम कीन्ह ॥
तन मन फेरि संवारि करि, रंका हीरा दीन्ह ॥३६॥
जन सेवादास के सीस परि, एक निराकार की छाप ॥
सतगुरु की किरपा भई, तब पाया पूरण आप ॥३७॥
चौरासी कर जीव था, तन मन फेरि सँवारे ॥
जन सेवा सतगुरु महर करि, भौसागर पार उतारे ॥३८॥
सतगुरु भाण प्रकासिया, हिरदै भया उजास ॥
जन सेवादास सांसा गया, हुआ भरम का नास ॥३९॥
गुरु मोज कृपा गुण क्या कहूँ, दीया भेद बताई ॥
अनन्त सेस मुख रसनहि होई, महिमा कही न जाई ॥४०॥

जन सेवादास गुरुदेव कूँ, क्या लै कीजैं पेस ।।
बलिहारी गुरुदेव की, कीया तत उपदेस ।।४१।।
बिन सेवा बिन बन्दगी, गुरु भये परम कृपाल ।।
जलता सीतल करि लिया, बिषम मोह की झाल ।।४२।।
जगत कूप बिष धार में, बूड़े था यो जीव ।।
पर उपगारी गुरु भये, आप सरीषा कीव ।।४३।।
आपे अपणे जाणि करि, गुरु भये परम कृपाल ।।
सूते लिये जगाय करि (पल मै), पल मैं किये निहाल ।।४४।।
जग अंधियारी रैन मैं, सोवत लिये जगाय ।।
मृतक लिये जिवाई करि, राम अमी रस पाय ।।४५।।
जग झल मैं केते जले, ताका वार न पार ।।
गुरु के सरणे ऊबरे, नहिं बूड़े थे बिषधार ।।४६।।
बूड़े थे पणि ऊबरे, गहि गुरुचरण जिहाज ।।
जन सेवादास दुःख सब ही मिटै, सरे सबै ही काज ।।४७।।
जन सेवादास सतगुरु मिल्या, किया और ही घाट ।।
बिषया ते मन फेरि करि, अगम दिषाई वाट ।।४८।।
वेद कतेब पुराण तैं, वा राह लषी न जाई ।।
जन सेवा अन्तर मैं लही, सतगुरु दई लषाई ।।४९।।
साचाँ सतगुरु जब मिलै, तब प्रगटै पूरण भाग ।।
कसणी दे कंचन करै, तब पावै परम सुहाग ।।५०।।
बा राह अति बारीक है, गुरु बिण लही न जाई ।।
जन सेवा सतगुरु जब मिले, तब अन्तर देह लषाई ।।५१।।
जन सेवादास सतगुरु मिले, तब ही उतरे पारि ।।
भौ सागर संसार है, नाँव नाव मँझारि ।।५२।।
गुण, इन्द्री, मन के कहै, भरे नहीं जन बिष ।।
जन सेवादास सहजे तिरे, गहि सतगुरु की सीप ।।५३।।

सतगुरु काढे काल मुखि, लोचन आंजे ऐन ॥
जीव सीव समि हो गया, सुणि सतगुरु के बेंण ॥५४॥
सतगुरु सब्द स्रवण सुने, सोवत थे जागे ॥
काल मुखते ऊबरे, निरंजन नांव लागे ॥५५॥
उल्टा सुल्टा करि लिंया, मृतक लिये जिवाय ॥
बहरा चेतन करि लिया, हरि अमृत रसपाय ॥५६॥

॥ अथ वीनती को अंग प्रारम्भ ॥

सब जग तेरा कहत है, तेरा करि माने ॥
मेरा मन की चोरियाँ, तुम सूं नहिं छाने ॥१॥
पाँचो सर नहिं होत है, मैं तो अबला नाथ ॥
तुम सांई समरथ हो, कर गहि राखो नाथ ॥२॥
मैं तो निबल सबल हैं पांचो, उर अन्तर गाजै ॥
तुम किरपा ते रामजी, दूंदर सब भाजै ॥३॥
जन सेवो कह सुण बापजी, मैं बिषे मगन बुद्धि हाँणि ॥
पार उतारो रामजी, बिरद आपणो जाँणि ॥४॥
बिषै मगन मो मन रत, नांव न तेरा लेह ॥
पतित उधारण हम सुणे, बिड़द तुम्हारो एह ॥५॥
हम तो निर्बल बल नहीं, ज्ञान जोग को ईस ॥
जनसेवा अपणा जाण करि, पार करो जगदीस ॥६॥
मन, इन्द्री निग्रह तप नहीं, न मेरे साधन और ॥
एक तुम्हारो आसरो, तुम बिन नाहीं ठौर ॥७॥
ना मेरे शील न सांच है, ना मैं लीया नांव ॥
बिड़द निबाहण जगत गुरु, जन सेवा मैं बलि जांव ॥८॥

संतोष न जरणा त्याग है, मोवल नाहीं ईस ॥
सेवादास जन बीनवै, तुम शरणे जगदीस ॥६॥
गुन्हां अनंत गुसांई मुझ मैं, गुन्हा न आवै ओड़ ॥
मुझ देखत तो अनन्त हैं, तुम देखत हैं थोड़ ॥१०॥
तुम हो तैसी महर करि, तुर्म तैसा दे नांव ॥
जन सेवादास की बीनती, बाप राम बलि जाँव ॥११॥
राषो दयाल दया करि, सरणे सिरजनहार ॥
सेवादास जन बीनवै, मेरे प्रीतम प्राण अधार ॥१२॥
षानाजाद गुलाम की, अर्ज सुणो जगपति ॥
बिषिया तें मन फेरिकरि, तुम मांहि करि रति ॥१३॥
बन्दा कहत पुकारि करि, सुनो अनंत भवन के ईस ॥
जहां तहां ले राषियो, तुम सरणे जगदीस ॥१४॥
बन्दे का कछु जोर ना, जहां पठवो तहां जाहि ॥
जहां तहां ले राषिया, बन्दा तुम ही मांहिं ॥१५॥
नरक पठावो तो सही, भावै चरणा मांहि ॥
सेवादास जन बीनवे, बन्दे का बल नांहि ॥१६॥
सूली द्यो भावै सहज सुख, सेवो जन कह टेरि ॥
एक रमैया तुम बिना, ओर न जांचू फेरि ॥१७॥
चेरा तेरा नाथजी, तेरे सारे नाथ ॥
भावै मारि बहाय द्यो, भावै गहि राखो हाथ ॥१८॥
भावै मारो तारो सांईया, तेरे नांइ बिकांहि ॥
सेवादास जन बीनवै, दखल और का नाहिं ॥१६॥
मेरे ओगुण हैं घणे, तुम हो गुणा अछेह ॥
महर तुम्हारी जगतगुरु, नांव दया करि देह ॥२०॥
नांव दया करि दीजिये, अन्तरि लै उपजाइ ॥
सेवादास जन बीनवै, तुम सुणो निरंजन राइ ॥२१॥

मोहे काल ग्रासे जगत गुरु, कीजै ऊपर मोर ॥
चोटी कटा गुलाम है, सेवादास जन तोर ॥२२॥
तुम बिन मेरे नाथजी, नाहीं कोई और ॥
जन सेवादास की बीनती, कर पकड़ो हरि मोर ॥२३॥
मैं तो तेरा नाथ जी, तुम मेरा करतार ॥
सेवादास जन बीनवे, मोहि उतारो पार ॥२४॥
मैं तो तेरा नाथ जी, कर पकड़े हरि मोर ॥
जन सेवादास की बीनती, तुम बिन नाहीं ठोर ॥२५॥
मैं अपराधी जनम का, कीया बहुत अपराध ॥
सरण गह्यां की लाज है, करुणा सिंधु अगाध ॥२६॥
मैं अपराधी जनम का, कीया पाप अघाय ॥
तुम तजि लागे आन सूं, अब राखो हरि सरणाय ॥२७॥
मैं अपराधी जनम का, अजहूं पाप करन्त ॥
जन सेवादास की बीनती, तुम सरणे उबरन्त ॥२८॥
मैं अपराधी जनम का, मन मैं पाप घणा ॥
मैं जीव निर्बल राम जी, बैरी पांच जणां ॥२९॥
मैं अपराधी जनम का, मोसा बुरा न ओर ॥
तुम तजि लागै आन पथि, ताकूं है कहां ठौर ॥३०॥
मैं अपराधी जनम का, कीये बहुत गुनाह ॥
सब्द बाण लागे नहीं, पहरी कर्म सनाह ॥३१॥
देही मैं अरि, रिपु घणा, हम बल कछु न बसाइ ॥
करुणानिधि करतार तुम, तुम ते सब कछु थाइ ॥३२॥
काम क्रोध बैरी सबल, मैं जन दुर्बल एक ॥
जन सेवादास की बीनती, दीजै सुमिरण भाव अनेक ॥३३॥
तुम दाता मैं जाचगी, दया करो हरि मोहि ॥
जन सेवादास की बीनती, मैं सरण रहूं हरि तोहि ॥३४॥

फूटो मन भटकत फिरै , तुम जाणो सब गति ॥
तुम आगे मैं नाथ जी , कहा दुराऊं पति ॥३५॥

मैं दुर्वल जन एकला , बहु वैरी वलवन्त ॥
मो वल कछु पहुँचे नहीं , तुम वल वहु भगवन्त ॥३६॥

जिहिं तुम राषो राम जी , तिहिं लगे न ताती वाय ॥
जन सेवादास की वीनती , मेरी करो सहाय ॥३७॥

ओगुण वगसो नाथ जी , अपणा करि हरि लेह ॥
महर तुम्हारी जगत गुरु , अपणा सुमिरण देह ॥३८॥

चितवो कृपा कटांछि करो , जिहि साम्हो तुम पीव ॥
जन सेवादास सुख मैं रमे , सो दुष क्यों पावे जीव ॥३९॥

तुम हो तैसी कीजिये , मैं हूं तैसी नाहिं ॥
तुम सुष सागर दुष मेटणा , मैं अनीति भरया मन माहिं ॥४०॥

तुम तो तैसी कीजिये , तुम परम सनेही पीव ॥
मैं ओगुण भरया अनीति , चौरासी का जीव ॥४१॥

साहव तो सव ही लषो , कपट कूड़ जीव वाँणि ॥
जन सेवादास तब ऊवरे , हरि ओगुण वकसो जाणि ॥४२॥

मैं ओगुण ही का पूतला , तुम गुणवन्ता पीव ॥
जगजीवण ओगुण वगसियो, तव ही ऊवरे जीव ॥४३॥

हिरदा माहिं हरि बसो , लषो जीव की घात ॥
तुमसों कहा छिपाइये , तुम जाणो सव वात ॥४४॥

तुम जाणराय हो जगत गुरु , तुम ते कहां दुराइ ॥
जन सेवादास की वीनती , मेरा ओगुण सव वगसाइ ॥४५॥

जन सेवादास की वीनती , सायव करो मया ॥
सायव अपणा जाणि करि , ओगुण करो गया ॥४६॥

जन सेवादास की बीनती, याही मोज द्यो मोहि ॥
पात्र पालक बिसरूँ नहीं, हिरदा सूँ हरि तोहि ॥४७॥
जन सेवादास की बीनती, तेरी तिवणि देह ॥
जित देषूं तित तू ही तू, नैना यों ही सनेह ॥४८॥
कहि समझाओ बाप जी, मैं बालक बुद्धि हीन ॥
सेवादास जन बीनवै, मन करि तुम मैं लीन ॥४९॥
जन सेवादास की बीनती, सुनों अनन्त भवन पतिराइ ॥
भाव भक्ति विस्वास द्यो, मन तुम मैं रह्यो समाइ ॥५०॥
ना सुष चाहूँ स्वरग को, नहीं मुक्ति की आस ॥
सदक सबूरी भजन तुम, मांगे सेवादास ॥५१॥
रिद्धि सिद्धि हुं मांगू नहीं, न करूँ मुक्ति की आस ॥
चरण सरण राषो सदा, जन सेवादास कै प्यास ॥५२॥
आसण अचल तहां रहूं, तुम साहब मैं दास ॥
जन सेवादास की बीनती, दीजै चरण निवास ॥५३॥
हरि महर करो तुम नाम द्यो, तुम पै मांगत एह ॥
और कछू नहि चाहिये, अन्तरि हरि हरि देह ॥५४॥
दया तुम्हारी जगत गुरू, दीजै भक्ति पसाव ॥
सब हिरदे ते दूरि करि, एक रमैया आव ॥५५॥
जन सेवादास की बीनती, मेरे चाहि न और ॥
हिरदा माहीं आव तू, तुम देषूं सब ठौर ॥५६॥
समरथ सिरजन हार सुणि, जन सेवो करे पुकार ॥
सब ही ओगुण माफ करि, हिल मिल दे दीदार ॥५७॥
नैन बैन हिरदे कपट, रोम रोम भरपूरि ॥
विष कूँ अमृत करि पिवे, अमृत छाड़े दूरि ॥५८॥
नैन बैन हिरदे कपट, रोम रोम के मांहि ॥
जन सेवादास की बीनती, गुन्हा मेटि बलि जाहिं ॥५९॥

नैन बैन हिरदे कपट, सब घट कपट अनन्त ॥
जन सेवा साहिब क्यों करिमिलै, सब ही भापत सन्त ॥६०॥
नैन बैन हिरदे कपट, कहौ क्यों करि पाऊँ तोहि ॥
काम क्रोध अरि उर बसे, कहि समझाओ मोहि ॥६१॥
सील सांच सन्तोष गहि, सब घट आतम जाणि ॥
मन सुरति पवन समेट करि, इहिं बिधि मिलिये आणि ॥६२॥
मन पवना सुरति समि करि, अन्तरि हरि गुण गाइ ॥
जन सेवादास तव सहज मैं, सकल करम झड़ि जाइ ॥६३॥
साहिब मन कूँ फेरि करि, तेरा सुमिरण देह ॥
मैं चौरासी का जीव हूँ, हरि अपणा करि लेह ॥६४॥
जन सेवा कुटिल कठोरता, उर ते सब छुटि जाइ ॥
तब साहिब सहजै पाइये, साधु कहे समझाइ ॥६५॥

॥ इति विनती को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सजीवनि को अंग प्रारम्भ ॥

जन सेवादास सतगुरू दई, ओषद एक अनूप ॥
पीवत मिटे विकार सब, पलटि किये सुपरूप ॥१॥
जन सेवादास व्यापे नहीं, जुरा मरण भय काल ॥
ऐसी ओषद गुरु दई, पीवत भये निहाल ॥२॥
रोग बड़ा दारु बड़ी, जाणि दई गुरुदेव ॥
जन सेवादास वेदन गई, पाया अलप अभेव ॥३॥
ओषद अजब अनूप गुरु, हिरदे दई लपाई ॥
जन सेवादास अब सुप भया, सुप मैं रह्या समाइ ॥४॥
राम नाम ओषद अजब, रमे तो टूटे रोग ॥
ता घट मैं भेदे नहीं, जा घटि सांसे सोग ॥५॥

राम सजीवन ओषदी, ले राषे मन माहिं ॥
जन सेवा सुष होय प्राण में, कोटि विघन टलि जाहिं ॥६॥
राम सजीवन ओषदी, ले राषे मन माँहिं ॥
और विघन व्यापे नहीं, चौरासी दुःष जाँहिं ॥७॥
जन सेवादास हरि सुमिरतां, कोटि विघन का नास ॥
याही ओषदी सति है, जे मनि आवे विस्वास ॥८॥
जतन करे नहिं पौन का, तो ओषद दोस न नाहिं ॥
जन सेवादास व्यापै नहीं, बूरी विथा मन माहिं ॥९॥
राम नाम निज औषदी, रुचि पीवे जे कोई ॥
जन सेवा मरे न जनम ले, कलि अजराव्र होई ॥१०॥
राम अमी रस जिहि पिया, ते अमर भये संसार ॥
जन सेवा सब दुःष कटि गये, नाव तणैं आधार ॥११॥
जेहिं मुख राम रह्यो नहीं, ते मरि मरि जाहिं संसार ॥
जन सेवा ज्यांही हरि भज्यो, ते अमर भये भौपार ॥१२॥
राम बिमुष केते मरे, मरि मरि आवें जाहिं ॥
जन सेवा ज्यां हरि रस पीयो, ते हरि ही माहिं समाहिं ॥१३॥
अषै अमर अविगति है, अषे अमर होइ दास ॥
जन सेवा हरि रस पीजिये, करि करि मन मैं प्यास ॥१४॥
हरि अमृत रस जिहि पिया, करि करि मन मैं प्यास ॥
जन सेवा मरे न जन्म ले, अमर भये निजदास ॥१५॥
लीन भये हरि नाँव मैं, भये सजीवन दास ॥
जन्म मरण दुःष सब कटे, अभै अमरपुर बास ॥१६॥
नाम सजीवनि जिहि पिया, ते भये सजीवन प्रान ॥
जन्म मरण दुःष तनि सहे, जे हरि तजि लागे आन ॥१७॥
राम कहत राम ही मिलें, जन सेवा अन्तर रहे न काइ ॥
जैसे बूंद समंद मैं, मिल भये एक भाइ ॥१८॥

सकल अघ सहजै कटे, रटे ज रसना राम ॥
जन सेवा निर्भय होइ रहे, सुधरे सब ही काम ॥१६॥
राम विमुष जब सब मरे, भजै न केवल राम ॥
जन सेवा केवल हरि भज्यो, सुधरे तिन के काम ॥२०॥
नाम कबीर रैदास कूँ, देषो नर निरताइ ॥
नाँव प्रताप निरभै भये, फिरि जग नहि जनमे आइ ॥२१॥
नाँव न छाड्यो पषवंध्यो, असुरां कै घरि आइ ॥
पिसणजि केते पच गये, दियौज अगनि जलाइ ॥२२॥
जे कोई पीवे राम रस, जे रसनां पावै स्वाद ॥
कबीर कसौटी ना लगी, देखो जन प्रह्लाद ॥२३॥
साध साहब एक ही, अमर होय नहिं नास ॥
नाँव संजीवन अघहरण, कटे जीव की पास ॥२४॥
आतम राम न बीसरे, सदा रहै ल्यो लाइ ॥
जीव ब्रह्म मैं यों मिले, ज्यों दरिया बूंद समाइ ॥२५॥
ओषद हरि का नाम है, रोगी सब संसार ॥
जन सेवादास गोविंद भजे, तब ही मिटे विकार ॥२६॥
जन सेवादास ओषद भली, जे कोई जाणे पाय ॥
पीवत ही सुष ऊपजै, जुरा, मरण, भै जाय ॥२७॥
जन सेवादास ते ही मुये, जिनहिं न जान्या राम ॥
राम जिन्होंने जानिया, तिन के सरे सब काम ॥२८॥

चौपाई :—

राम रसायण भरि भरि पीया, सेवा ते जन जुग जुग जीया ।
अजर, अभय, अविनाशी गाया, गाय गाय तामाहिं समाया ॥
राम रसायण त्रिभुवन सारा, पीया तिन के कटे विकारा ।
जन सेवादास सुप सागर भूले, पीवत छक्या नाँव तहिं भूले ॥

॥ इति श्री सजीवन के अंग सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ तत्व निर्णय जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

सतगुरु का चरण चित धरहूं, नित अनित को सोधन करहूं ।
नित आतमा देह अनित्ता, याही समझि कहैं सब संता ॥
असुचि, अनित, अमंगल देही, सत, चित, आनन्द आतम येही ।
षट विकार देह संजुक्ता, आतम सदा जाणिये मुक्ता ॥
सतगुरु सबदां बुद्धि लुभाणी, आतम सदा मुक्त ही जाणी ।
गुरु किरपा ते मारग पाया, अंजन मांहि निरंजन राया ॥
दिष्टि पड़े सबही सो माया, तत् स्वरूप गुरुदेव बताया ।
अलिप असंष ससि घट मांही, यो आतम अलिप लिये कहुँ नांहीं ॥
यूँ घट घट मांही अघट है स्वामी, नमो नमो तोहि अन्तर्यामी ।
जोग नहिं भोग, मोह नहिं मायां, अगम, अपार, निरंजन राया ॥
रूप न रेष बर्ण वप नाहीं, अलष पुरुष रमै सब माहीं ।
स्वेत न पीत स्याम नहि राता, रूप विवरजित आप विधाता ॥
वर्णा वर्ण नहीं आश्रमा, नाहीं करम नहीं अकरमा ।
ऐसा अलष निरंजन राया, जोंति जनम नहीं हरि आया ॥
जोनी जनम संकट नहिं आवै, हरि अगम अथाह थाह नहि पावै ।
षट दरसन पावै नहि भेवा, हरि अचिंत, अजोनि, अलष अभेवा॥
षट दरसन षोजे कहुं दूरा, सोतो राम रह्यो भरपूरा ।
ज्यों नभ एक पूर्ण सब ठोरा, ऐसे राम बिना नहिं औरा ॥
अषण्ड, अभंग, अचल, अविनासी, सकल भवन मैं ज्योति प्रकासी ।
अस्थिर अमित अमूरती देवा, सुर, नर, मुनि कोइ लहै न भेवा ॥
अडिग, अडोल अधर अविनासी, अलिष अवीह स्वयं प्रकासी ।
अतीत, अजीत, अगह, अपारा, सबके माहिं सकल ते न्यारा ॥
अवीज, अछीज, अषीज, गुसांई, सब तै असंग रमै सब ठांई ।
अद्वैत, अतीत, अनन्त, अपारा, दुःष सुष रहित सिरजनहारा ॥

ज्यों घन बिजरी बरषे मेहा, नाहि हाणी नभ के येहा।
ऐसे जगत ब्रह्म में होई, हाणि वृद्धि नहीं ताँ कोई ।।
पाप पुन्य नहिं बन्धन होई, ज्यों का त्यों ही जाणैं सोई।
ज्युँ रजु मैं सर्प मुकर में झांई, ऐसे हरि में जगत दिषाई ।।
मन मैं सुपनौ जाय होइ आवै, ऐसें यो जग होय बिलावै।
अज्ञान दृष्टि तैं यो जग भाषै, ज्ञान भये पूर्ण प्रकासै ।।
बाहिर भीतर व्यापक सारा, है सब मांहि सकल ते न्यारा।
ज्यूं नभ पूर्ण है इक सारा, घट बाहिर भीतर हैं नहिं न्यारा ।।
जैसे ससी रहे आकाशा, अनन्त धरा में किया प्रकासा।
व्यापक असंग अघट घट मांहि, ऐसे राम रमै सब मांही ।।
अगम अगम नेति नित गावै, कहां ता को पार कहां ते पावै।
बाणी अनन्त अनन्त अवतारा, जल थल जीव अनंत विसतारा ।।
जल थल जीव अनन्त त्रिस्तारा, जल ससि ज्यों देषो तत सारा।
दीरघ लघुता है कछु नाहीं, व्यापक ब्रह्म सकल घट माहीं ।।
लघु दीरघ या उपाधि दिषाई, चेतन घट बध है कछु नाहीं।
सोई ससी सरोवर आहीं, सोई ससी सरावां माहीं ।।
कीड़ी कुंजर है चेतन सम भाई, लघु दीरघ या उपाधि बणाई।
बाजी माँडै फेर उठावै, तिण ब्रह्मा लों रहण न पावे ।।
बाजीगर माया बिसतारी, सकल जीव बन्धे नर नारी।
ता बाजी तैं न्यारा कोइ नाहीं, ब्रह्मा विष्णु महेस हुँ माहीं ।।
तू है कारण कारज थारा, पाँच तत्व गुण तीन पसारा।
बीज रूप आदि भगवाना, ताही ते सब जीव उपाना ।।
माटी एक बहु भाण्डा होय आया, फिर कारज कारण मांहि समाया।
जैसे बीज मैं वृक्ष होय आया, बहुड़ि वृक्ष ता मांही समाया ।।
अनेक आभूषण कनक के होई, गाल्या एक रह गया सोई।
ऐसे सब घटि तत् विचारा, ज्यों कंचन भूषण नहिं न्यारा ।।

हरि सब मैं सब हरि के मांही , ज्यों तरंग बुद् बुदा जल वरतांही ।
तरंग बुदबुदा है जल केरा , पवन मिल्यां जल माहीं बसेरा ॥
पवन वासना जब ही मिटाई , तब रिलि मिलि एक हुआ मिल मांहीं ।
ज्यो पट तन्तु न्यारा नाहीं , ऐसे ब्रह्म सबै बरताहीं ॥
रमता राम सकल घट मांहीं , ऊँच नीच अन्तर कछु नाहीं ।
पाँच वर्ण की गऊ दुहाई , सब मैं दूध एक सो भाई ॥
बामण, चत्री, वैस्य अर सूदा , बीज विगति एक जल बूंदा ।
नीर एक बीज है जूवा , जा मैं पड्या ताहि रंग हवा ॥
थावर जंगम जीव चौरासी , सब मैं व्याप रह्या अविनासी ।
नर, सुर, जल, थल, कीट, पतंगा , रहे सब के माहिं सब ही के सगा ॥
आदि अन्ति मधि तू ही देवा , अगाध, अपार, कोई लहे न भेवा ।
गुरु किरपा ते ये तत् पाया , ऊगो भाण सब भरम मिटाया ॥
करता हरता एक तूं और न दूजा कोइ ,
सुमरि सुमरि जन निर्मला रहे आनन्दी होइ ॥

सांची माला सुरति की , फेरे बिरला कोई ।
सुमरि सुमरि रस पीजिये , जन सेवादास सुष होई ॥
जन सेवादास सांची कथा , सत गुरु दई सिषाई ।
अन्तर के पटि दूरि करि , गुरु दीया अलष लषाई ॥
निरबिकार सो ब्रह्म है , सबिकारी जीव ।
जन सेवादास यूँ जाण करि , सुमिरो अपणा पीव ॥
गुरु मूंदे नैन उघाड़ियै , सूते लिये जगाई ।
जन सेवादास आनंद भया , सुष मैं रहे समाई ॥

॥ इति तत्व निर्णय जोग ग्रंथ सम्पूर्ण ॥

———

॥ अथ कुण्डलिया बिरकताई को अंग ॥

धन सब जाणै धूलि समि, संसारी सुष सूल ।
मान जगत की सीप समि, तब होवै हरि अनुकूल ॥
तब होवै हरि अनुकूल, बासना रहै न कोई ।
सुरग मृतक पाताल, देंष सुष दाभै लोई ॥
जन सेवा सिद्ध सब रींट सम, तजि नाम गहै निज मूल ।
धन- सब जाणे धूलि समि, संसारी सुख सूल ॥१॥

मण्डी मसाणों जहाँ तहाँ, रुंखे वृच्चे बास ।
आठ पहर गोबिंद भजे, जग ते रहे उदास ॥
जगते रहे उदास, कल्पना सब बिसरावै ।
जो आवै सहज सुभाइ, नहीं मांगरि भिच्छा खावै ॥
सेवग परमोदे नहीं, जन सेवला एक रहे विस्वास ।
मण्डी मसाणा जहाँ तहाँ, रुंखे वृच्चे बास ॥२॥

करवो कटारी तूमड़ी, जल पातर राखै जन ।
निस दिन हरि सुमरण करै, कर कर निरमल मन ॥
करकर निरमल मन, दरव कै हाथ न लावै ।
फासू लेह अहारजो, रांम अग्या मैं आवै ॥
उदिम जनसेवा ना करै, निर उदिम रहे तन ।
करवो कटारी तूमड़ी, जल पातर राखै जन ॥३॥

छाजन भोजन सहज मैं, करता चिन्त करे है ।
सर्व परिग्रह त्यागि करि, निर्भय हरि सुमिरेह ॥
निर्भय हरि सुमिरेह, आन आसा सब तोड़े ।
जग सुष सपनौ जांणि छाडि, मन हरि सूं जोड़े ॥
हरि बिन दूजी आथि सब, जन सेवा चितन धरेह ।
छाजन भोजन सहज मैं, करता चिन्त करेह ॥४॥

राम दया तैं पाइये , निरगुण दसा वड़ भाग ।
करि करवो गलि गूदड़ी , अन्तरि अति अनुराग ।।
अन्तरि अति अणराग , परम सुप लागा जीवै ।
तन मन पवना फेरी , अगम का प्याला पीवै ।।
जन सेवा निज तत् उरि लहै , कनक कामणी त्याग ।
राम दया ते पाइये , निरगुण दसा वड़ भाग ।।५।।
निरगुण मत धारचा रहै , ते जन धनि जग माहिं ।
अपे, अमर वर सीस परि , आन भरोसा नाहिं ।।
आन भरोसा नाहि , भयै सब तैं अणरागी ।
लोभ मोह मैंमत मांनि , माया सब त्यागी ।।
जन सेवादास जन निर्मला , सदा परम रस पाहि ।
निरगुण मत धारचा रहे , ते जन धनि जग माहिं ।।६।।
निरगुण मत धरि हरि भजै , सब मानि विडारे काम ।।
हरि पाव पलक बिसरे नहीं , सिमरे आठो जाम ।
सिमरे आठों जाम , आन आसा सब तोड़े ।।
इक भजो निरंजन देव , जगत सुष कबहुन लोड़े ।
जन सेवादास छाड़े नहीं , हिरदा ते हरि नाम ।।
निरगुण मत धरि हरि भजै , सब मानि विडारे काम ।।७।।
बिरकत माया मोह सो , परमेस्वर सूँ प्रीत ।
जग सुप देपे छार समि , या सन्ता की रीत ।।
या सन्ता की रीति , जीत गुण नाँव संभारे ।
काम क्रोध मद लोभ , मोह मैमंता डारै ।।
जन सेवादास बैराग बृत , सब देही का गुण जीत ।
विरकत माया मोह सूँ , परमेस्वर सूँ प्रीत ।।८।।
निरगुण मति धरि हरि भजै , सो जन समझ सयांण ।
जन सेवादास सोधि बिना , सो नर मूढ अयांण ।।

सो नर मूढ अयाण, तीन गुण माहि अलूधा।
चोथा की नहिं गम, समझि षथलिया न सूधा॥
तीरथ बरत तपस्या लगै, केई लगै पपाण।
निरगुण मति धरि हरि भजै, सो जन समजि सयाण॥६॥

गुण तजि निरगुण जे भजै, सो निरगुण माहिं समाइ।
गुण पोषै निरगुण कहे, सो निरगुण कदे न पाइ॥
सो निरगुण कदे न पाइ, ईष्ट जहाँ जाय समावै।
जैसा बाहै बीज, बहोड़ी फल तैस पावै॥
जन सेवा आसै पहुंच सी, आगे कदे न जाय।
गुणि तजि निरगुण सो भजै, सौ निरगुण माहिं समाय॥१०॥

सोधि करि सांई भजै, सो जन पहूँचै पारि।
सोधि विन जनसेवला, रहसी वैलि वारि॥
रहसी वैली वारि, पार कोई पहुंचे सूरा।
जाकी आदि अन्त मधि नाहिं, लहै कोई गुरु गमि पूरा॥
ब्रह्मा विष्णु महेश कूँ, तजी एक निरंजन धारि।
सोधि करि सांई भजै, सो जन पहुँचे पारि॥११॥

सुर सिद्ध दस अवतार, ईस्वरी माया जाणों॥
ब्रह्मा विष्णु महेस, ताही के परै पिछाणौ।
ताहि के परे पिछाणौ, ज्ञान सोधि करि लीजै॥
रमि रह्यो रमता राम, सुमिरि सुद्धि कारज कीजै।
जन सेवादास साचो सब्द, सोधि हिरदा मै आणो॥
सूर सिद्ध दस अवतार, ईस्वरी माया जाणों।

॥ इति विर कताई को अंग सम्पूर्ण॥

॥ अथ सांच को अंग ॥

साँच बताया सत गुरु, किया भरम सब दूरि ।
सब घटि एको राम है, सो रह्या सकल भरपूरि ॥
सो रह्या सकल भरपूरि, भेद सतगुरु तैं पाया ।
ता सुप लागा भेन, छाड़ी सब वोछी छाया ॥
जन सेवादास साँचा लह्या, और तजी झक जूरि ।
साँच बताया सतगुरु, किया भरम सब दूरि ॥१॥
नाथ निरंजन एक है, सब दूजा धन्ध अपार ।
सांचे साहब सेइये, सब झूठां भरम निबार ॥
सव झूंठा भरम निवार, सांच लै हिरदे धारै ।
लोभ, मोह अर ममत, झूंठ तजि साँच संभारे ॥
जन सेवादास अनभै जड़ी, काटै कोटि विकार ।
नाथ निरंजन एक है, सब दूजा धन्ध अपार ॥२॥
सकल सिरोमणि राम रस, ता सुषि लागा जीव ।
अब मन अनत न चलि सके, अन्तर पाया पीव ॥
अन्तर पाया पीव, भेद सतगुरु जब दीया ।
करम भरम सब छांड़, नाँव निरभय रस पीया ॥
जन सेवादास उरि सुष भया, अर भया पाप सब षीव ।
सकल सिरोमणि राम रस, ता सुष लागा जीव ॥३॥
॥ इति सांच को अंग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ रेषते प्रारम्भ ॥

॥ अथ भेप को अंग प्रारम्भ ॥

भेप कूँ पहर करि फूल बैठे सही, भजन का भेद तो हाँथि नाहीं ।
कनक अरु कामणी कीच माया कले, काम अर क्रोध बिप भरे माहीं ॥

कहति साँची कहै रहत काची रहै, एक नाँव निरबाण बिन काल पावै ।
दास सेवो कहे सुष तब ही लहै, कहे ज्यूँ रहे तो पार पावै ॥१॥

भेष कूँ पहरि करि जगत धूते सबै, साँच कूँ छाडि करि काँच लीया ।
मन अरु पवन उरि सुरति सिमटी नहिं, लोभ अरु मोहरस जहर पीया ॥
कहे अरु सुणे कछु काज सीझै नहीं, जै करै करतूति तो पार पावै ।
दास सेवो कहे दादि दरगाह लहै, बहुड़ि संसार मैं नाहिं आवै ॥२॥

राम राजी सदा रहती मैं जन कहे, कहे अरू सुणे कछु सिद्धि नाहीं ।
पद साषी कवित्त सीषि लोक कू ठगी, दूनिया सबै डिंभ माहीं ॥
रहती न्यारी रही कहण कूँ सर षरू, माहि त्रिष्ना घणी फिरत भूल्या ।
दास सेवो कहै साँच कूँ नाँ लहै, काल गहि ग्रासि है झूँठ फूल्या ।३।

सांग तो सिंह को स्याल साँचा नहीं, जोग की राह कूँ नाहि पावै ।
भेड़ भागी नहीं छूटि हूं कितहूँ, करम सब कूकरा फाडि पावै ॥
भजन की वोट जम चोट लागै नहीं, सोभ जन तो बिसरे भरम माहीं ।
दास सेवो कहै सुख कैसे लहै, वहुत तृष्णा धणी मित नाहीं ॥४॥

घर, खेत, कूवाँ चलै ब्याज बटो करै, गाय घोड़ो घराँ ठाण देवै ।
हाथि षुरपौ लियाँ दोब षोदै सदा, कहो जू कौण विधि नाँव लेवै ॥
मन माया मिल्यो तन जोगी कियो, जोग की जुक्ति तो नाहिं पाई ।
दास सेवो कहे अबरे कौण विधि, भेड़ ज्यों कूकरा फाडि खाई ॥५॥

मन अरु पवन सुरति बंधिउलटा चलौ, त्रिवेणी तटि जाइ ध्यान धारो ।
पिसण पाँचो पकड़ि ज्ञान का षड़ग धरि, काम अरु क्रोध अरु लोभ मारो ।
सील अरु साँच सन्तोष हरदै धरो, परषि जरणां जडी सीस रापो ।
दास सेवो कहै हरि रस साराँ सिरे,
और रस छांडि सब हरि रस चापो ॥६॥

मन, अरु, पवन, कूँ समटि साँई भजो, पांचो को जीत पच्चीस न्यारे ।
तीन को त्यागि करि चित्त चौथे धरो, प्रीत सूँ पीव कूँ परस प्यारे ॥

सुरति सुलझाय करि छाडि सब देह गुण , पीव संग जीवकूँ लाइ लीजै ।
दास सेवो कहै भजि भरम जीव का , जीव अरु सीव मिल एक कीजै ॥७॥

॥ इति ॥

॥ अथ साध को अंग प्रारम्भ ॥

साध की राह तो बहुत बारीक है , लहै कोई सिष्य मन सुद्ध पूरा ।
काम अरु क्रोध, मद लोभ लालच तजे , मानि अमानि सब करे दूरा ॥
मन अरु पवन कूं फेरि उलटा चलै , सकल मन बासना जाणि षोवै ।
दास सेवो कहै सुख तब ही लहै , उलटि करि आप मैं आप जोवै ॥१॥
अलष की राह तो चलै कोई जोगिया , मन अरु पवन जिन सम कीया ।
चन्द अरु सूर कूँ एक घर आणिया , सुषमणा फेरि करि रस पीया ॥
सील अरु सांच सन्तोष हिरदै धरै , लोभ अरु मोह रस जहर धोवै ।
दास सेवो कहै नूर निरखत रहै , सुरति अरु निरति मिलि माहि पोवै ॥२॥

चान्द्रायण

॥ अथ चिन्तामणि को अंग प्रारम्भ ॥

जीव सींव को भूलि माया चित धरत है ।
यौ आप आपणो नास मुगध नर करत है ॥
चेते नहीं लगार भार सिरि धर रहे ।
हरि हाँ जन सेवा संवारी सोज करता सूँ फिरि रहे ॥१॥
रे फिट फिट जीव अचेत जगत पति भूलियाँ ।
हरि सुषसागर छाड़ि बिषे जलि भूलिया ॥
समझे नहीं अचेत सु जढ निराट रे ।
हरि हाँ जन सेवा बारोड़ी मैं बास पुरानी षाटि रे ॥२॥
प्रीति पुरानी भई न समझे मूरि रे ।
अण आदर की टूक बसायो दूरि रे ॥

तोहूँ प्रीति अचेत न छाड़े बावरो ।
हरि हाँ जन सेवा बिन सुमिरयाँ भगवन्त सहे सिरतावरो ॥३॥
मरणा आजिक कालि चलाऊ हुइ रह्या ।
प्रीति घणी परिवार न तो हूं हरि कहया ॥
यों करियो यों नाहिं सीष सब देत है ।
हरि हाँ जन सेवा आपण भूल्या जाय नाँव नहिं लेत है ॥४॥
सबे जीव जगत माहिं अलूधा आप ही ।
ज्यां बातां होय नास सोई नर थाप ही ॥
साधु सेवा सांच सिमरण जगदीस रे ।
हरि हाँ जन सेवादास जड़ जीव यह सब बीसरे ॥५॥
ओर भोर सब छाड़ि राम गुण गाइये ।
यो ही बड़ो वबेक न बिष फल खाइये ॥
सतगुरु सबद बिचारि समझि हिरदे धरो ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम मरण का डर करो ॥६॥
तरणापै भयो अन्ध न चेत्यो मूरि रे ।
जन सेवा सिरजनहार बिसारयो दूरिरे ॥
वें दिन खोया बादि दियो मन आन रे ।
हरि हाँ वारोड़ी मैं बास नहीं तिहि मान रे ॥७॥
अन्ध अबुद्धी जीव मगन बिप पायरे ।
बेड़ी अपणे हाथि स घाली पाय रे ॥
खाट पुराणी बास दीयो बारोड़ियाँ ।
हरि हाँ जन सेवा सुमरियाँ नाहिं पीव सुँ जमघट तोड़ियाँ ॥८॥
मन शक्ति थकां तूँ सुमर सनेही राम कूँ ।
या मनिषा देही देषि धरिये इस काम कूँ ॥
तैं सुत वनिता सुँ मुगध लगाया नेह रे ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम पलक मैं षेह रे ॥९॥

मन शक्ति थका तूँ सुमर सनेही राम रे ।
हरि बिन सब ही झूँठ तेरे धन धाम रे ।।
काल करत है घात न चेते अन्ध रे ।
हरि हाँ जन सेवादास यह जीव अलूधा धन्ध रे ।।१०।।
मन शक्ति थका तूँ सिमर सिरजन हार कूँ ।
तेरे जम की बांहर सबल षडी है लार कूँ ।।
फिरि जुरा पेग कफ बाय बुढ़ापै घेरसी ।
हरि हाँ जन सेवादास सोई सूर सो मन कूँ फेरसी ।।११।।
मन सिमरो सिरजनहार भला छक येह रे ।
बहुडि न लाभे सोंज मिनिष नर देह रे ।।
है बड़ी निधि नर देह क लाहा लीजिये ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि रामक कारज कीजिए ।।१२।।
जत, सत, सुमिरण काज दई नर देह रे ।
तूँ विषय विकाराँ लागि करी तन षेह रे ।।
या सोंज सुफल करि लेह जपो भगवन्त रे ।
हरि हाँ जन सेवादास सब कहे पुकारचा संत रे ।।१३।।
तूँ रसना हरि के नाम अहो निसि गाय रे ।
तेरे काल अहेड़ी लार षरच नित षाय रे ।।
तू सूतो नीन्द अघाय अल्प सा जीवणा ।
हरि हाँ जन सेवादास छकि एह राम रस पीवणा ।।१४।।
ज्यों अंजली का नीर वीर तन जात है ।
हरि सुमिरण बिन थिर नाहिं काल नित षात है ।।
तूँ हरि भजि लाहाँ ले डांव भल येह रे ।
हरि हाँ जन सेवादास फिरि नहीं लहै नर देह रे ।।१५।।
तूँ नांव निरंजन गाय के जनम सुधारिये ।
यो रतन अमोलिक याहि कहो क्यों हारिये ।।

यो नर नायक ओतार फेरि नहिं पावसी ।
हरि हाँ जन सेवादास यो डॉव बहूडि नहिं आवसी ।।१६।।
या जग हटवाड़े आयक सोदा कीजिये ।
लीजै सारा परषि षोटा तज दीजिये ।।
सुणि सतगुरू की सीप गहो निज तत रे ।
हरि हाँ जन सेवादास भौ पारि कहे सब संत रे ।।१७।।
षोलि ज्ञान के नैन चेति तूँ बीर रे ।
क्यों रे तूँ नर षाहि बिषे करि पीर रे ।।
कनक कामणी त्यागि लागि हरि नाँव रे ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम बिसरि मति जांहि रे ।।१८।।
सब कनक कामणी गालि बिगूते जीव रे ।
भई विपरजै बुद्धि बिसारयो पीव रे ।।
ये दोइ बेड़ी सबलक बन्ध्यो जिहान रे ।
हरि हाँ जन सेवादास एक नांव बिना तन हानि रे ।।१९।।
है माटी की भीति पवन का बंध रे ।
माहीं भिष्टा हाड़ और दुरगन्ध रे ।।
ता सुष मुगध लुभाई नीन्द भरि सोइया ।
हरि हाँ जन सेवादास ते अन्ध जुगं जुग होइया ।।२०।।
वेद साध की सीष एक नहि रापही ।
विष रस पीवै अन्ध अमृत करि चाषि ही ।।
मरणे का नहि भै भरम में भूलिया ।
हरि हाँ जन सेवादास ते मुगध विषै में भूलिया ।।२१।।
तात मात परिवार दुलहनि नारि रे ।
तूँ झूठाँ सुख सूँ लागि चल्यो तन हारि रे ।।
ऐसे बटाऊ मीत प्रीति क्यों कीजिये ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम जहाँ लगि जीजिये ।।२२।।

मिनप जलम धारि देह बिणज की होस है।
सब उलझि रहे बिचि माहि काल की धोस है ॥
जब पकड़ि लिया गढ़ घेरि पछै पछताइये।
हरि हाँ जन सेवादास या सोंज बहुड़ि नहिं पाइये ॥२३॥
पकड़ि लेह जम काल पछै पछिताइ हो।
रे हरि सुमिरयो नहिं वीर नरकि यूँ जाइ हो ॥
रे झूठे जग के नेह बन्ध्यो नर बावरा।
हरि हाँ जन सेवादास हरि ते विमुख सहे सिर तावरा ॥२४॥
सब नर कोठी वाल दिरब करतार का।
षाय सके नहिं परचि पाप है लार का ॥
तन, मन, धन, हरि हेत समर्पण कीजिये।
हरि हाँ जन सेवादास सुप होई राम रस पीजिये ॥२५॥
जीवन अल्प जग मांहिक क्यों थिर होइ रह्या।
मोह मेहल में बास मगन होइ सो रह्या ॥
नित काल करत है घात न संगी सज्जना।
हरि हाँ जन सेवादास जीव एकक बैरी है घणा ॥२६॥
चूना कलि लगाइक महल बणाईया।
फिर सुत बनिता के हेत मुगध लपटाईया ॥
सब छाड़ि चलै परिवारक नेहा फिर दहै।
हरि हाँ जन सेवादास यह जीवक नीचा यूँ वहै ॥२७॥
हरि परम स्नेही छाडक आन सगाइयाँ।
जब कोपे जमरायक मारस झाँइयाँ ॥
रे तूँ क्यों भूलो अन्ध सनेही पीव कूँ।
हरि हाँ जन सेवादास यूँ मार पड़े हो जीव कूँ ॥२८॥
यो विप रुपी संसारक प्रीति न कीजिये।
रे सुत वनिता के नेह कबहुँ न धीजिये।

मोह पासि गलि बन्धे पगां में बेड़ियां ।
हरि हाँ जन सेवादास भजि राम कूँ जम सिर खेड़ियाँ ।।३०।।
नाना विधि के नेह देह सूँ त्यागिये ।
रे सोवे कहाँ अचेत ज्ञान ले जागिये ।
कहो या में तेरा कोण समझि मन मांहि रे ।
हरि हाँ जन सेवादास कहाँ देखि लुभाणो ताहि रे ।।३१।।
मन मानि लिया सुख गेह न्याय दुःख सहत है ।
सब स्वार्थ के सग लागि अधो गति बहत है ।
फिरि लख चौरासी जूनि देह जब धरत है ।
हरि हाँ जन सेवादास यो नास आपणा करत है ।।३२।।
तू सुमिरि सनेही राम कहो क्यों आलसे ।
वो सदा गिणत है सांस ऊभो सिर काल से ।
तू छीलर जग सुख छाड़ि करो सिंध सीर रे ।
हरि हाँ जन सेवादास या घात भली है वीर रे ।।३३।।
मन शक्ति थका तूँ सुमर सनेही पीव कूँ ।
या परबस होमी देह कहत हूं जीव कूँ ।
रे नैना ऊपरि हाथ गहे कर डांगड़ी ।
हरि हाँ जन सेवा थर हर कांपै देह लटक जाइ चामड़ी ।।३४।।
तूँ परम सनेही राम सिमिर मन बावरा ।
यो जग बादल की छांह बिषरि होइ तावरा ।
सब स्वारथ के मीत हितु नहिं कोइ रे ।
हरि हाँ जन सेवा तात परिवार देख्या सब जोइ रे ।।३५।।
कुटुम्ब स्वार्थ समझया जीव का नास रे ।
झूँठ साँच करि उद्यम गांठि पासरे ।
फिरि पड़े सांकड़े जीव हितू जब को नहीं ।
हरि हाँ जन सेवादास कहां देखि भुलाणों ताम ही ।।३६।।

सब स्वारथ के मीत हितू नहीं कोइ रे।
तात, मात, सुत नारि देष्या जोइ रे।
सज्जन, बन्धु, परिवार, सबै ही स्वारथी।
हरि हॉ जन सेवादास तूं देखि ज्ञान की आरसी ॥३७॥
मुगध रहे गरकाव गुमानी गरब मैं।
नर सूते नींन्द अथाय रचे गृह दरब मैं।
काल तके है निति नहीं तोहि सुधि रे।
हरि हॉ जन सेवादास यो मुगध बिसरी बुधि रे ॥३८॥
पढ़त गुणत अरु कहत भूला सब जीव रे।
जग सुख सुपने राचि बिसारे पीव रे।
मृग तृष्णा ज्यों जुगि मिटै नहिं प्यास रे।
हरि हां जन सेवा भरमि पड़े जग मांहि समझि बिन नास रे ॥३९॥
कहत सुणत जग मांहि अलूधा जीव रे।
बिप रंगि राचे जीव बिसारचा पीव रे।
साध वेद सब कहे पुकारचो एह रे।
हरि हां जन सेवा दूसर नांहिं और संगी हरि छेह रे ॥४०॥

॥ इति चिन्तामणि को अङ्ग सम्पूर्ण ॥

॥ अथ बन्दना जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

नमो नमो निरंजनम्, अभै करण भौ भंजनम्।
निराकारम् निरविकारम्, निरलेप निराधारम्॥
निरच्छर निरालम्ब, चिदानन्द अरुपकम्।
परमतत्वं परमतेजं, परम शान्तिश्वरूपकम्॥
परम ज्ञानं परम ध्यानं, परानन्द परमादि पुरुष।
अजरो अमर अनूपकं, परम जोगं परम जापं॥

स्वयं ज्योति प्रकासितं, परमपदं परम अरचितं ।
अचर अकुल अजनमयं, अगह अरचित निरगुण ब्रह्म ॥
रमता राम अचल देव, परमपावन पापहरण परमदेव ।
सुख निधान अच्छेद अविनासी, अलप रूप सर्व व्यापक ॥
जन सेवादास बन्दन करै, नमो नमो निज देव ।
सुर नर गति पावै नहीं, अलह अलप अभेव ॥
जन सेवादास करि बन्दना, ज्ञान ध्यान धरि देप ।
वार पार कीमति नहीं, अपरमपार अलेख ॥

॥ इति वन्दना जोग ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥

॥ अथ गुरु मन्त्र जोग ग्रन्थ प्रारम्भ ॥

मन्त्र नाम गुरुदेव सुनाया, सनमुख करि सतगुरु समझाया ।
पांचों उलटि अगम रस पाया, ऊजड़ जाता मारग ल्याया ॥१॥
ऊजड़ ही कूँ चलतो वौरा, सतगुरु फेरि लगायो ठौरा ।
यो मन दसों दिसा को बहता, सतगुरु फेरि किया है रहता ॥२॥
रहता के संग बहता ल्याया, अस्थिर भया परम सुप पाया ।
ज्यों पी पारा मूसा थिर होई, यूं मन अब चलण न पावै मोई ॥३॥
सतगुरु सोधि लिया सब संघणा, मारचा बाण नहीं अब चलणा ।
सतगुरु मनवा घायल कीया, निर्भय एक अमर फल दीया ॥४॥
तिस फल का कछु अगम विचारा, सबके सिरे राम रस सारा ।
षाता रोग बिथा सब गई, ऐमी ओपद सतगुरु दई ॥५॥
रोग असाध बड़ ओपद ल्याई, अब सुष में दिन रेण बिहाई ।
सतगुरु बिथा सोधि सब षोई, किया अमल नहीं मल कोई ॥६॥
तन मन सतगुरु ऊपरि वारूं, चरण कमल हिरदे ले धारूं ।
तन मन आतम अरपण कीजै, सतगुरु के चरणा चित दीजै ॥४॥

दरसण करतां उपज्या भाऊ, भया समान रंक अरु राऊ।
सतगुरु मन्त्र दिया उपदेसा, सोई मन्त्र रटै सिव सेषा ॥८॥
तारिग राम हृदय मैं धारा, ये तो सतगुरु के उपकारा।
ररंकार रमिया घट माहीं, तब दूजा और नजरि नहिं आही॥६॥
ररंकार सूं जब धुनि लागी, नृभै भया रहे विष त्यागी।
नृभै भया काल भय भागा, केवल नांव निरन्तरि लागा ॥१०॥
समरथ के सरणे जे आवै, तो जम की ताप लगण नहि पावे।
सतगुरु सिर पर राखि कबीरा, हरि सुमरो भौ सागर तीरा ॥११॥
बांकी धार डूबण नहि पावै, सीस कबीर राषि ल्यौं लावै।
मैं तैं आपा गर्व निवारै, हरि भजि साधु प्राण उधारै ॥१२॥
आपा गर्व गुमान अहंकारा, ए सब तजै भजै करतारा।
जोग मूल गहि तजै पसारा, तब जग तिरत न लागै बारा ॥१३॥
सास उसासे नांव संभारे, गुरु गोविंद हृदय मैं धारे।
गुरु गोविंद की आज्ञा से ही, सास उसास संभाल सनेही ॥१४॥
सास संभाल तोहि निकट बतावै, बाहरि भरम भूलि मति जावै।
नाभी नासा विच पन्थ गहीजै, प्रेम पियाला भरि भरि पीजे ॥१५॥
जब काल जाल लागै नहि कोई, हरिजन हरि भजि निरभै होई।
ज्ञान विचार विवेक सुनाया, सतगुरु अन्तर सांच लषाया ॥१६॥
करम भरम जाल जुग जेते, उनै सतगुरु मेटे रहे न तेते।
इड़ा पिङ्गला सुषमणि मेला, तब आतम सुख बिलसे बेला ॥१७॥
इड़ा पिंगला सुषमणि संगा, तब आतम जाणि रंगी हरि रंगा।
गुरु ब्रह्म अग्नि अन्तर प्रजाली, दोई दोई लकड़ी जुगती करि जाली।१८।
ब्रह्म अग्नि मैं करम दहाया, तब जीव जोगी धरै न काया।
मनसा जोगणी उलटी समाणी, नो द्वार फिरि भरै न पानी ॥१९॥
उल्टी नेज अगम तहां लागी, सीतल भया त्रिषा सब भागी।
बरषै अमी अषण्डित धारा, सुषमणि सींचे बाग हमारा ॥२०॥

आतम फूले रुचि बसंता, काम, क्रोध, विष रस रहंता ।।
अनहद बाजा अन्तरि बाजै, परम ज्योति निरषै चढ़ि छाजै ।२१।
परम ज्योति सुष वार न पारा, वो सुख निरषै साधु सारा ।।
वा सुष या सुष अन्तर भारी, इक दिन इक रैणि अंधारी ।।२२।।

वा सुष का है अगम विचारा, विलसेगा कोई संत पियारा ।
बिलसे जागता कोई जोगी सूरा, जाके बाजै अनहद तूरा ।।
पाँचो चेला बसि करि राषै, सुणे सब्द सतगुरु यूँ भाषै ।
पछिम किवाड़ी षोले जोगी, सो अमर जुग जुग रस का भोगी ।।
अमर जड़ी बटवै धरि मेल्हे, परचै लागा जोगी षेले ।
सील मुद्रा जोगी सति धारे, सींगी सुरति हरि नांव उचारै ।।
काया कंथा धीरज झोली, साठै तार इकीसूँ कोली ।
छैसै सहस इकीसूँ धागा, अन्तरि बैठा बणनै लागा ।।
तांणि बांणि बणि गाढ़ी भाई, ऐसी बणि फिर काटि न जाई ।
सहज सील की भिक्षा पावै, सो जोगी यमपुरी न जावै ।।
गगन मंडल में मंढ़ी संवारै, निर्भै रहे काल भै मारै ।
अमर पुरुष सूं जब ध्वनि लावै, तब काल जाल निकट नहिं आवै ।।
हरि सुषसागर कीया बासा, जग छीलर तजि भये उदासा ।
जग सुष तजि हरि सुष गहि लीना, तन मन उल्टि राम रस पीना ।।
तन मन पवना सुरति मिलावै, तब वो सायब का दरसण पावै ।
अलष निरंजन अवगति रामा, संत सुमिरि भये निहकामा ।।
राम मंत्र जपत भय भागा, सब तज संत एक सूँ लागा ।
राम कहत कापै सब पापा, सो सतगुरु दिया अन्तरि जापा ।
काल जाल करि सकै न चोटा, गुरु गोविंद का सरणा मोटा ।
मछा सिध गहै सरणाई, सो काल जाल तै नहिं डराई ।।
निरभै सुमिर भये अवधूता, नां कबहूँ ताकै जम दूता ।
राम मंत्र का बहो विसतारा, सुमिरि सुमिरि केते भये पारा ।।

मंत्र जपत भये अविनासी, हृदा मांहिंज्योति प्रकासी।
राम मन्त्र जप लीजै भाई, प्रेम प्रीति अन्तर लो लाई॥
तन मन सतगुरु ऊपरै, जन सेवा दीजै वारि।
राम नाम हृदय धर्या, काम क्रोध विष जारि॥
ररंकार निज मूल है, सतगुरु दिया लखाइ।
जन सेवादास लैं उर धरचा, सुष मैं रह्या समाइ॥

॥ इति गुरु मंत्र जोग ग्रंथ सम्पूर्ण ॥

॥ कवित ॥

हेवर गेवर भोमि हेम, संग देह तूं लीजै।
अड़सट तीरथ न्हाइ बरत लै, बिधि सूं कीजै॥
करे तप बहु भाँन्ति, दान छाया लै दीजै।
ऐ सब वेलि देड मानि, ममता रस पीजै॥
जन सेवादास काची बिथा, फिर रोग बढ़तो जाई।
सब तजि भजि रमता राम कूँ, ज्यों सुष मैं रहे समाई॥१॥
राजवर्ग सो बिप्र न्योति, मिस्टान्न जीमावै।
बड़ा बड़ा धनवान, ताही लै दान दीवावै॥
करे संग तीरथ घाट, तहां जाय बन्धावै।
बहु देवल दरब लगाय, मांहि मूरति पधरावैं॥
जहां जहां मान बधे घणो, तिंह तिंह गैलै जाइ।
जन सेवा आतम राम जाण्या बिना, काज न कबहूँ थाइ॥२॥
भावै अड़सट तीरथ न्हाइ, दान बिप्र कूँ देहु।
भावै गलो हिमालै जाइ, कासी जाय करवत लेहु॥
भावै करो जिग अस्वमेध, सब नाम बिन फीके येहूँ।
सकल धरम सिर ताज, नांव निहचै है छेहु॥

जन सेवादास सति नांव है, ऐ वेलै व्योहार।
जब तक नांव न जाणियो, तब लग वादि भँवै संसार ॥४॥
नहीं सीत उसन के रूप, चरण सूँ अनभौ कर ही।
पवन निरंजन रूप, त्वचा को मालूम पर ही॥
सब्द निरंजन रूप, श्रवण को अनुभव होइ।
रस वासना अरु रुप होई, अनभो जिह्वया नासा कूँ सोई॥
हरष सोख दुःष सुप को, यो मन ही कूँ अनभौ फुरै।
जन सेवा निरगुण ब्रह्म को, यो आतम हीं अनभौ करै ॥५॥
पारस पलटे लोह, ताहि कछु जाणे नाहीं।
सबै कल्पना मिटे, कलपतरु नीचै जाही॥
जाय सरोवर तीर, प्यास तन मैल मिटावे।
कामधेनु सब कामना, चिन्तामणि चितवत सब पावै॥
अग्नि सीत भै हरत है, तिमर करै सब दूरि।
जन सेवादास निरगुण ब्रह्म, सकल सुखां भरपूरि ॥६॥
पारस लोहा पलटि करि, कचन ही करि लेह।
कल्पवृक्ष तलि जाय करि, जो मांगे सो देह॥
कामधेनु सब कामना, पूर्ण करै परमाण।
चिन्तामणि दलदर हरै, जाणै सबै सयाण॥
जन सेवा दीपग तम हरे, जल पीयां त्रिसा बुझाइ।
यों सुमिरया निरगुण ब्रह्म कूँ, सहजै ही सुप थाई ॥७॥
पारस पल्टे लोह, लोह कूँ जाणे नाहीं।
सबै कल्पना मिटै, कल्पतरु नीचे जांही॥
अग्नि हरे तम सीत, संक भै रहण न पावै।
सरवर के ढिंगि जाय, प्यास तन मैल मिटावै॥
काम धेनु, सब पूर्ण कामना।
चिन्तामणि, दलीदर सब पोई॥
जन सेवा सुमिरयां निरगुण ब्रह्म कूँ, यो मुक्ति सहज ही होई ॥८॥

चार जुग जब जाहि, घड़ी तब एक गिणीजे।
बोतरी चोकड़ी जब जाही, तब इन्द्र को राज भणीजै।
अठाईस इन्द्र जब गिरे, तब विरंची दिन रात कहीजै।
सो वरस जब होय तब, ब्रह्मा की आरवल छीजै॥
दस हजार ब्रह्मा चले, घड़ी विष्णु की कहिये।
द्वादस लाप जब विष्णु होई, तब घड़ी आध सिव की लहिये॥
पांच हजार जब सिव उठे, तब सक्ति सिगार कहीजै।
जब माया अनन्त लाप होई जाई, तब टुक ब्रह्म की ध्यान सुणीजै॥
साधो अकथ कथा है राम की, कहो कहिये काहँ वणाइ।
तुम सेवो पूरण ब्रह्म कूँ, जन सेवा सब सुप थाइ॥९॥
नमो नमो परब्रह्म, परम गुरु आतम रामा।
निराकार निरवाण, सकल सुपसागर धामा॥
अलिप अछिप निराधार, स्वयं ब्रह्म सकल प्रकामी।
अधर अमर अरंग, भग नहिं तोही अविनासी॥
अथिर अचर अछीज, राम रमता सब माहीं।
जन सेवादास सोहि परसपति, जहाँ काल मै व्यापै नाहीं॥१०॥

॥ स्वामीजी श्री सेवादासजी महाराज का फुटकर पद प्रारम्भ ॥

॥ राग गौड़ी ॥

मन रे तूं भरम भुलाना भाई रे।
ना कोई तेरा नां तूं काहूका, ज्यूं आवै त्यूं जाई रे॥टेक॥
तात मात बनिता सुत बंधु, तेरा नाहि कोई रे।
राम बिसार ताहि तूं रातो, यूं ही जन्म बिगोई रे॥मन०॥
आपा बिसरि बंध रहे प्राणी, ज्यूं नलनी का सूवा रे।
हरि भज सफल करी नहिं दही, यूं ही पाच पचि मूवा रे॥

यौ अवसर जात है बीतो, बहौरिन पावै माई रे।
जन सेवादास पुकार कहत है, तूं राम सुमर सुपदाई रे ॥१॥

मन तूं क्यों सूतो रे भाई रे।
सदा सिराने काल तकत है, ज्यों मूसे सदा बिलाई रे ॥टेक॥
होय हुसियार राम भजि भाई, अब ढ़ीलन कीजे काँई रे।
ज्यू प्यासे नीर भूखे भोजन की, यूं हरि से प्रीति लगाई रे ॥
ज्यूं कामी काम चोर मन चोरी, यूं हरि सूं मन तूं रापी रे।
बस्ती रहो भावै बनषंड मांही, साध कहै सब सापी रे ॥
जैसे पतंग अंग नहि मोड़े, वो पड़तन पाछो जोवे रे।
यूं सेवक साहिब के कारण, तन मन अपना पोवे रे ॥
जैसे कुरंग बधिक शर खावै, यूं जन तन से सुरति चुकावै रे।
जन सेवादास सो होय अविनाशी, सहज परम पद पावैं रे ॥२॥

राम रस पीयारे पीया ही आनंद होय ॥टेक॥

ध्रुव पीयो प्रह्लाद प्रेम सूं नामदेव पीयो अघाईरे।
दास कबीर पीयो होय निर्भै अगम सुरति ठहराई रे ॥
सौंझे सैन पियो रैदासा मीरा प्रेम बढ़ाई रे।
पीयो पीपै धनै धीर ज्यूं शुकदेव रहीन तमाई रे ॥
गोरष पियो सदा मतवालै ये रस का है भोगी रे।
पीयो रंकै बंकै मुरारी मलूके और सनकादिक नव जोगी रे ॥
शेष सहस मुख रुचि रुचि पीयो शिवनारद मुनि ज्ञानी रे।
हनुमान हटताली पीयो अनंत संत धरि ध्यानी रे ॥
पीयो भरतरि गोपीचन्दै और मेणावती माई रे।
सेष फरीदै नानक पीयो, पी सुप मांहि समाई रे ॥
पीयो कान्है दादू पीयो और पीयो हरिदासा रे।
तुलसीदास पियो सब सन्ता वै पहुंता अगम निवासा रे ॥

चंद सूर जहाँ पवन न पाणी परम जोती प्रकाशा रे ।
जन सेवादास मिल एक भये है हिलमिल हरि हरिदासा रे ॥

संतो सांच बिनां सुख नाँहीं ।
जब लगि विषय बिकारन छूटै तब लगि सुख नहि माँही रे ॥टेक॥
साषी शब्द बणाय कहत है, पण उरतें लोभ न छूटै ।
कहया सुण्यां बिन काजन सीझै तृष्णा दिन दिन लूटै ॥
फिर पूछयाँ साष बेद की लावे अपनी गति न पिछानै ।
करे होड़ हंस की कउवो वो माया करक लुभानै ॥
मोह महल के मांही सूता फिर कहै कथा बिस्तारे ।
जन सेवादास तत कैसे दरसे अंतर रैनि अंधारे ॥४॥

अब कलियुग आयो भाई रे ।
परमेश्वर सूं परचो नांहीं तो सूधो जमपुर जाई रे ॥टेक॥
ज्ञान कथे अरू विषै कमावै तो साचन पावै भाई रे ।
संता सेती करे षेचरी ते नर नरकां जाई रे ॥
कथणी कथे रहणी रही न्यारी, सब झूठी करै बड़ाई रे ।
यां बांता तो छूटणा नाँही फिर दोजिक चाल्यो जाई रे ॥
परम तत्व चिह्नै बिन प्राणी सब झूठे वाद विवादा रे ।
हरि मार्ग तो हाथ न आयो चल्यो चौरासी बाधा रे ॥
मोह पास गल ते नहि छूटी, सुत वित नारी नेहा रे ।
राम भजन बिन पारन पहुँचै योंही खो दी नर देहा रे ॥
जन सेवादास जे दुष्ट प्राणिया तिन सैं दीजै टालो रे ।
वह रामजनां का निन्दा ठाने तांको मुख करि कालो रे ॥

राग सोरठ

मन रे राम भजन करि लीजे ।
बार बार समझाय कहुं तोहि, आव घटै तन छीजै ॥टेक॥

साधु संगति मिल सोधन कीजै रसना राम रटीजै ।।
तीर्थ जाई चढै जनि पर्वत तन मन पवना छीजै ।
आसन बैठि ध्यान धरि मन थिर अनहद को रस पीजै ।।
निर्भय होय निरंतर मेला, बेगम नगर बसीजै ।
पूर्ण ब्रह्म परम सुपदाता गाय्य गाथ जुग जीजै ।।
जन सेवादास भव समद तरन कूं नौका नाम गहीजै ।

नर कौन ठिकाने जासी रे ।
समझ न पड़ी साध न पूछया, फिर पाछैंही पछितासी रे ।।टेक।।
फूटी सुरति दशों दिश भटकै, मनमें माया वासी रे ।
गुणां रहित गोविन्द न गावै, तोहि काल पकड़ ले जासी रे ।।
जहां जहां जाय तहां जम मारे, इक विन शरणे अविनाशी रे ।
जो आकार सो छूटे नाहीं कहो निभैं कैसे थासी रे ।।
शरणो एक गहो अवगति को, तो जमलोक न पासी रे ।
सेवादास जन टेर कहत है जूणी बहुरि न आसी रे ।।

साधो सापणी सब जग षाया हो
गहि गुरुज्ञान जाग जुग देष्या, ते निकसे बिलमन लाया हो ।
आमरकरि मोहे जग ठगनी, सुरनर सब डहकाया हो ।।
जल थल जीव सबै बस कीये मोह विषय लपटाया हो ।
तीन लोक भगजाल पसार्या, कोई जन बन्धन न आया हो ।।
और सकाम बन्धन बाँधा, भूखी भामिनी माया हो ।
भाँति भाँति करि आडी आई, नाना रूप बनाया हो ।।
माता बहन रु भुआ भारिजा दे पासी उलझाया हो ।
अमर जड़ी ले जोगी जागे विष नहिं लागे काया हो ।।
जन सेवादास संतगुरु के शरणे अमर अभय पद पाया हो ।

साधो भाई ऐसा इष्ट हमारा ।
सबमें व्यापक सब की जाने वो रहे सकल ते न्यारा ।।टेक।।

जैसे अग्नि अरूप दारक में, यो रमता सब घट माँही।
आतम ही आतम करि अनुभव नैना दीषै नाँही ॥
वर्ण न वपु रूप नहि जाके, दृष्टि न देष्या जाही।
जिन जाण्यां सो ही भल जाणे कह्या न को पतियाही ॥
छिति जल तेज नहीं आकाशा मारुत कबहु न होई।
उदय न अस्त सूर नहि शशि हर नांव निरंजन सोई ॥
उपजै न विनसै अपिल पिरै नहि, जाकी अकथ कहानी।
जैसे कुम्भ धरयो जल मांही, बाहर भीतर पानी ॥
काल अतीत सकल घट रमता, बसै सबन के मांही।
जन सेवादास घरजामा चेरा ता साहिब की बांही ॥
भाई रे सतगुरु कूं शिर दीजै ॥
तन मन धन सब सूंप आपणो शिरदै सौदा कीजै ॥टेक॥
ज्ञान ध्यान सत सुमिरण आवै, पाँचू कसि कसि लीजै।
तन मन पवना फेरि अपूठा रसना अमृत पीजै ॥
काया पलटि कंचन ज्यूं तावै, चित पवना समटीजै।
जन्म मरण का सांसा खोवै, बास अमरपुर कीजै ॥
दिल की दुविधा दूर निवारे, तब यों प्राण पतीजै।
जन सेवादास मन ही समझावै तबजाइ कारज सीझै ॥

मन रे यूं ही जन्म गमायो।
साहिब साध कहै सो न कीयो जो कीयो सो मन को भायो ॥टेक॥
इन्द्रया अर्थ सबै कुछ कीयो, ते जो कियो आपनो भायो।
लालच लोभ विषय मन कीन्हो, तें गोविन्द कबहूं न गायो ॥
दश वर्ष बालापन खोया, बीसां विषय चित लायौ।
चालीसा चालण जब लागो, तब पीछै पछितायौ ॥
बहुत कष्ट कर द्रब्य उपायो, सुकृत कछू न लायो।
जब जमदूत आन के पहुंचा, पल मैं भयो परायो ॥

सुत वनिता भाई सब रोवै अरु लूटैं जोति बलायो ।
जन सेवादास भगवन्त भजन बिन, जन्म जन्म डहकायो ।।

माधव मन महमंत हमारा ।।
विष धन धसै जहां जाय बसै हरि नांव गहै नहीं सारा ।।टेक।।
सार तजै जाय छार गहै मन, ऐसो मुग्ध दिवाना ।
उबट चाले राह तजि हरि की, ऐसो मन सैताना ।।
मान बड़ाई यो मन चावै, फिर माया के दिसि दौड़े ।
निकट निरंजन छाड़ निलज मन, अंतर तांणे तौड़े ।।
मन सैनान करै सैतानी, मैं जतन करत ही हारया ।
मेरो बल पहुंचे नहिं माधव, इह मन केता मारया ।।
शृङ्गी ऋषि शिव नारद ब्रह्मा, इह मन नाच नचाया ।
मैं तो निबल सबल है यो मन, कहा करूं राम राया ।।
तुम देष्या बिन दषल बहोत है, तुम देष्यां आसांना ।
जन सेवादास चित चरणां मांहीं, तहां मन रहे लुभाना ।।

माधव अब मन अनत न नाचै ।।
हरि हरि कहि हरि माँय समाया और रंग नहि राचै ।।टेक।।
मन हरि रंग रगे राचै नहि औरे, फिर आन रंग नहि भावै ।
ज्यूं सूरज के प्रकाश भये ते, सबै प्रकाश विलावै ।।
दीप चिराग तबै लग सोहै, जब लग रवि न प्रकाशै ।
यूं आत्मज्ञान उदय भयो अन्तर, सकल भरम सा भासै ।।
तीर्थ व्रत जप तप सब धम्मा, ऐ सब ही व्यवहारा ।
निर्मल नांव भजै ते मुक्ता, ते सहज भये भव पारा ।।
सकल धर्म धमों शिर अवगति, जन गाय गाय गति मांही ।
जन सेवादास सागर मिलि सलिला, दूजी रही कुछ नांहीं ।।१३।।

संतो सो सतगुरु मोहि भावै ।
भव जल डूबत कर गहि तारै, राम अमीरस पावै ।।टेक।।
कनक कामिणी कीच सबल है, तामें कलि नहिं जावै ।
आप तिरै तारै सिष सतगुरु, नाम जिहाज चढ़ावै ।।
आपो समझ भये है मुक्ता, एक अवगति सूं ल्यौ लावै ।
कर्म भर्म सब दूर निवारे, सूधा पंथ बतावै ।।
तन मन पवना सम कर राषै, कबहुं न तार चुकावै ।
इडा पिगला सुषमन मेला, त्रिबेणी संग न्हावै ।।
काल जाल बंधे नहिं कबहूं, अनहद बैण बजावै ।
जन सेवादास जुगति गहि जोगी, हंस को हंस मिलावै ।।

संतो राम कहै सो सूरा ।
तन मन मार स्वाद तजि हरि भजि, तब दरशे अलष हजूरा ।।टेक।।
लोभ रू मोह सबल है वैरी, ज्ञान षड़ग करि दूरा ।
दुःष सुष मांय रहै रस ऐकै, तब सुष पावे पूरा ।।
पाँचौ चोर करै बस अपने, तब सुष आवै नूरा ।
लौ लागे छूटै नहि कबहूं, बाजै अनहद तूरा ।।
मान अमान अग्नि दोय सौषे, गढ़ पड़ि सकैन चूरा ।
लड़ै स्याम के हेत शूरवां काम क्रोध करि दूरा ।।
शूरो सदा स्याम के आगे, भाजि न जावै दूरा ।
जन सेवादास मौज तब पावै निसिदिन रहे हजूरा ।।१५।।

।। इति ।।

प्रेमदासजी

प्रेमदासजी महाराज हरिदासजी के पोता शिष्य व महरवानजी के शिष्य थे। इनका समय सोलहवी शताब्दी का अन्तिम चरण व सत्रहवीं का पूर्वार्ध समझना चाहिये। ये साधक सन्त थे। इनकी सिद्धवन्दना से भिन्न और कोई रचना देखने मे नही आई है। सिद्ध वन्दना मे इनने हरिदासजी महाराज तथा महरवांनजी का उल्लेख किया है। इनकी परम्परा अब भी प्रचलित है।

॥ प्रेमदासजीकृत सिद्ध वन्दना ॥

नमो नमो निरंजनं, भरम को विडत्रनं ॥
नमो गुरुदेवं, अगम पंथ भेवं ॥१॥
नमो आदिनाथं, भए है सुनाथं ॥
नमो सिद्ध मछिन्द्रं, बड़े जोगीन्द्रं ॥२॥
नमो गोरष सिद्धं, जोग जुगति विद्धं ॥
नमो चरपट रायं, गुरु ज्ञान पायं ॥३॥
नमो भरथरी जोगी, ब्रह्म रस भोगी ॥
नमो बाल गुसांई, कियो कर्म पाई ॥४॥
नमो पृथीनाथं, सदा नाथ साथं ॥
नमो हांडी भडंगं, कियो कर्म षंडं ॥५॥
नमो ठीकरनाथं, भये हैं सनाथं ॥
नमो सिद्ध जलंधरी, ब्रह्मबुद्धि संचरी ॥६॥
नमो कान्हीपायं, गुरु शब्द मायं ॥
नमो गोपीचन्दं, रमत ब्रह्मानन्दं ॥७॥
नमो ओघड़ देवं, गोरष शब्द लेवं ॥
नमो वालनाथं, निराकार साथं ॥८॥
नमो अजैपालं, जीत्यौ जम कालं ॥
नमो हनुमानं, निरंजन पिछानं ॥९॥

नमो नृसिंहदेवं , अलष अभेवं ॥
नमो हालीपावं , निरालंब ध्यावं ॥१०॥
नमो मुकुन्दभारथी , निरंजन सारथी ॥
नमो भालीपावं , बिमल शुद्ध भावं ॥११॥
नमो गोडकीपावं , काल को अभावं ॥
नमो सिद्ध हटताली , काल कंटक टाली ॥१२॥
नमो सिद्ध कणेरी , लीयो मन फेरी ॥
नमो धूंधलीमलं , अबीहं अकलं ॥१३॥
नमो कुरकट नामं , रमत राम रामं ॥
नमो सिद्ध टनटनी , लागी अनहद धुनी ॥१४॥
नमो सिद्ध चौरंगी , परम जोति संगी ॥
नमो कंथडपायं , नहीं मोह मायं ॥१५॥
नमो बुध सिद्धं , लियो मन ऊरधं ॥
नमो सिद्ध कपाली , नहीं चित चाली ॥१६॥
नमो कागभुसंडं , त्रिविध ताप षंडं ॥
नमो कागचंडं , कल्पना विहंडं ॥१७॥
नमो वीर पछी , उदै ग्यांन लछी ॥
नमो सूरानंदं , प्रकृति निकंदं ॥१८॥
नमो भैरूनंद , रहै निद्वंन्द ॥
नमो सांवरानंद , पूरण कला चन्द ॥१९॥
नमो चुणकर नाथं , अगम पंथ पथं ॥
नमो पूरन धीरं , भये अनभै सीरं ॥२०॥
नमो आतमारामं , परमशून्य धामं ॥
नमो गरीव सिधं , गुरु शवद विधं ॥२१॥
नमो भडंगनाथं , पकड नाथ हाथं ॥
नमो दडगडनाथं , सदा ब्रह्मसाथं ॥२२॥

नमो देवदत्तं , मिले तत्र तत्रं ॥
नमो सुषदेवं , अलष अभेवं ॥२३॥
नमो सिद्ध चौरासी , विग्यांन प्रकाशी ॥
नमो नो जोगेश्वरं , राते परमेश्वरं ॥२४॥
नमो कपिलदेवं , लह्यो ब्रह्मभेवं ॥
नमो सतक सनंदनं , कर्मकाल पंडनं ॥२५॥
नमो हस्तामलं , सुनै सिद्ध अमलं ॥
नमो अष्टावक्रं , नही कालचक्रं ॥२६॥
नमो रामनन्दं , नहिं कालफन्दं ॥
नमो कबीर कान्हं , निर्मल शुद्ध ग्यानं ॥२७॥
नमो दास कमालं , भए ब्रह्मलालं ॥
नमो हरीदासं , कीयो ब्रह्मवासं ॥२८॥
नमो महरवानं , निरंजन ध्यानं ॥
नमो ध्रू प्रहलादं , अगम अगाधं ॥२९॥
नमो नमो पींपा , प्रगट सत्य दीपा ॥
नमो सर्व साधं , अगाधं अगाधं ॥३०॥

दोहा—

काम दलन कलि मलहरन , अरि गंजन भव भंजनं ॥
अनंत कोटि सिध साधने , प्रेमदास कर वन्दनं ॥३१॥
सिद्ध वन्दना जो पढ़ै , संभ्या अरु पुनि प्रात ॥
रोम रोम पातग झरै , तिमिर अंध मिट जात ॥३२॥
सिध साधने वंदना , नित प्रति करै जो सन्त ॥
प्रेम कहै जब सहजह्, दरसै जोति अनन्त ॥३३॥

॥ इति ॥

॥ स्वामी भगवानदासजी निरंजनी ॥

स्वामी भगवानदासजी निरजनी सम्प्रदाय की परम्परा में अच्छे योग्य विद्वान् सन्त थे। आप के जन्म स्थान तथा जन्म काल का व स्वर्गारोहण का ठीक पता नही लगा है वैसे आप के रचना काल मे ही आप के समय का अनुमान किया जा सकता है वह अनुमान सत्तरहवी शताब्दी का उत्तरार्ध जन्म काल होना चाहिये। मेरे संग्रह मे आप की चार रचनाये है। १ अमृत धारा (वेदान्त), २ अध्यात्म रामायण पद्यानुवाद, ३ वैराग्यवृन्द भर्तृहरिशतकका पद्यानुवाद, ४ कार्तिक महात्मय। उनकी और भी रचनाये हैं जैसे सरस्वती भंडार उदयपुर में पंची करण मनोरथ मंजरी, अगरचन्दजी नाहटा के संग्रह मे गीता महात्मय भाषा। जैमनी अश्वमेध तथा प्रेम पदार्थ आप की रचना है ऐसा डाक्टर वडथ्वालजी ने उल्लेख किया है। मेरे संग्रह की चारो पुस्तको मे निर्माण काल का उल्लेख है तथा स्थान का भी जैसे अमृत धारा रचना काल सम्वत् १७२८ स्थान क्षेत्रवास।

वैराग्य वृन्द के पद्यानुवाद का स्थान लिखा नही काल सम्वत् १७३० है। अध्यात्म्य रामायण के पद्यानुवाद का स्थान मऊ सम्वत् १७४१ है। कार्तिक महात्म्य गद्य पद्यात्मक रचना काल सम्वत् १७४३ स्थान वालवेद लिखा है। अमृतधारा की समाप्ति मे गुरु नाम अर्जुनदासजी लिषा है।

उक्त उद्धरणों मे अनुमान यह होता है कि भगवानदासजी का मुख्य स्थान क्षेत्रवास (यह प्रचलित नाम न होकर उनने बदल लिया है) होना चाहिये। गुरु नाम अर्जुनदासजी का उल्लेख है ही प्रथम रचना उनकी "अमृत धारा है", इसका काल १७२८ लिखा है। उस समय वे तीस वर्ष के हो तो उनका जन्म १६९८ के आस पास होना चाहिये। कार्तिक महात्म्य के पश्चात् उन को कौन सी रचना है उनमे यदि सम्वत् का उल्लेख हो तो उससे उनके आगे का ठीक ज्ञान हो सकता है।

इनकी रचना मे स्पष्ट है कि ये अच्छे विद्वान् सन्त थे अमृत धारा वेदान्त का ग्रन्थ है वेदान्त का विषय वैसे अति गभीर है उसका भाषा पद्यो मे यथोचित निरूपण इनको विशिष्टता का द्योतक है। अध्यात्म रामायण का विषय भी निवृत्ति परक है। वैराग्य शतक आदि का अनुवाद अपनी विशेषता रखता है। पंचीकरण की रचना भी दर्शन मे सम्बन्धित हैं।

भाषा परिमार्जित तथा रचना मे विविध छन्दो का प्रयोग भी इनकी विज्ञता का पोषक है। ये परम साधक महात्मा सेवादासजी के समकालीन भी थे। इनके काल से भो हरिदासजी के काल निर्णय मे सहायता मिलती है आगे इनकी रचना का कुछ कुछ अंश दिया जा रहा है।

॥ स्वामी भगवानदासजी की रचनाओं का दिग्दर्शन ॥

१ ग्रन्थ अमृतधारा

दोहा—

मंगल रूप स्वरूप मम, विजानन्द पद जास ॥
लह्यौ मंगलाचरन यह, सौहं हंस प्रकास ॥१॥

मनहर—

जीव सींव एक करो असि असि भावधरो
अहं अहं पास हरो अमृत प्रमानिये।
मरनको भै नसायो अव्रय सरूप पायो
बेद बेद जोलषायो गुरु ग्यांन जानिये ॥
मान तजि मान लैरे तेरोही सरूप है रे
सबही अभेदानन्द अमीजू वषानिये।
भगवान भयभान मो बिनान लहै आन
विषया विष समान विद्वत वषानिये ॥२॥

दोहा—

धी पीयूष जीव जुगति सौं, तजि अयुक्त अज्ञांन ॥
अखंड धार ज्यूं तैल की, सो अमृत परमांन ॥३॥

सोरठा—

श्री गुरु सन्त प्रताप, वरनौं बुद्धि विलास कछु ॥
तजूं आंन को जाप, जग जोई मोई सही ॥४॥

अरिल—

जासों अमृत होइ सु जुगति बताइये।
प्रथम चार अनुबंध तहाँ मन लाइये ॥
अधिकारी अरु विषै लषै सम्बन्ध रे।
परिहाँ! परमप्रयोजन जानि और सब धन्धरे ॥५॥

दोहा—

जगके वंधन ज्ञान तैं, मुक्त होन की आस ॥
आस वास विस्वास तजि, सो मुमुक्षु परकास ॥६॥
अर्थ धर्म अरु कांम पुनि, त्याग पदारथ तीन ॥
सो अधिकारी मोक्ष को, महाज्ञान परवीन ॥७॥

सोरठा—

कहि अधिकारी भाव, श्री गुरु ग्यांन प्रताप तैं ॥
पुनि आनंद गुनाव, भगवान भाषिये हरषसौं ॥८॥

दोहा—

द्वितिय प्रभाव प्रभाव को, मनमैं भयो हुलास ॥
कहत सुनत सुष पाइये, निरमल ब्रह्म विलास ॥९॥

अरिल—

जाग्रत बुधि की वृत्ति भोग भ्रम रहत है।
सुषुप्ति सुष को मूल ब्रह्मपद लहत है॥
जगदाकार विकार वृत्ति उलटाइये।
परिहाँ ! प्राप्त शुद्ध स्वरूप विषय यह गाइये ॥१०॥

दोहा—

अमृत धारा ग्रन्थ यह, कह्यौ वेद प्रमांन ॥
अर्जुनदास प्रकासगुरु, तत सेवग भगवान ॥११॥
साधू संग प्रताप तैं, श्री गुरु ग्यांन प्रकाश ॥
शुद्धनिरंजन ग्यांन लहि, कीन्हौं वचन विलास ॥१२॥
परंब्रह्म परमात्मा, है परोक्ष पद जास ॥
ग्यान अज्ञ प्रत्यक्ष को, कीन्हौ ग्रन्थ प्रकाश ॥१३॥
सत्रह सै अठाईसा, सम्वत् संख्या जान ॥
कातिग तृतिया प्रथम ही, पूरण ग्रन्थ प्रमान ॥१४॥
थांन मुकाम प्रमांन यह, क्षेत्रवास सु नाम ॥
तहाँ ग्रन्थ पूरण प्रगट, जो भाषै भगवान ॥१५॥

तीन ग्रन्थि निरुपण–सोरठा—

तीन ग्रन्थि को भेद, कहिये गुरु समझाय कै ॥
तुम सुप वांणी वेद, ज्यूँ को त्यूँ समझाइये ॥१६॥

संशय ग्रन्थि–सवैया—

जीव ही सींव समान कहै कहि ग्यांन लहै वह दाह दहे है ।
आदि कछु कहि पुनि अंत कछु कहिं मध्य कछु यह कौन कहे है ।
जो यह एक कहो क्यूं अनेक यहे अविवेक सों पाग रहे हैं ।
संशय ग्यांन तजै यहजान भजै भगवान सुलाभ लहे हैं ॥१७॥

दोहा—

यह संशय की ग्रन्थि है, कही अल्प कर सोइ ॥
गुरु शास्त्र प्रतीति नहि, निश्चय कछु न होइ ॥१८॥

कर्मग्रन्थि वर्णन–कवित्त—

कर्मग्रन्थि कहों ग्रन्थि वा में भूल्यो महापंथ,
ग्यानरुअग्यान मथ दधि के मो घोल है ।
संचित संचय प्रमाण प्रारब्ध भोग मान
क्षीयमाण कृतठानैं झूले झक झोल है ॥
वरण वरण धर्म आश्रम है महाश्रम
शुभा शुभ कर्म धर्म डोले डग डोल है ।
भगवान भर्म झूठै कर्म को भंडार फूटै
सबै आस वास टूटै ज्ञान सो अमोल है ॥१६॥

सोरठा—

कर्मग्रन्थि यह जान, बहुत कर्म अभिमान लहै ॥
निश्चय बन्ध प्रमाण, सब छूटै तैं छूटि है ॥२०॥

अहं ग्रन्थि वर्णन–मनहर—

अहं ग्रन्थि यह जान अहं अहं कै वपान,
पंडित सुजान जान और ऊ अनेक है ।
अहं राज अहं रंक अहं ताहि सबै संक,
अहं अह पग्यौ एक स्वप्न सुष जे कहै ॥

अहं साध अहं चोर अहं जान अहं भोर,
अहं सर्व धर्म धार दूजा को एसे कहै ।
अहं अहं मान वन्ध भूलै जग जाल धंध,
भगवान ग्यांन संध तत्र सो विबेक है ॥२१॥

दोहा—
जीव ग्रन्थि वन्धन सही, कह्यौ मुक्ति को भेद ॥
परे उरे सुष एक है, यों भाषत है वेद ॥२२॥

॥ इति ॥

॥ अध्यात्म रामायण पद्यानुवाद ॥

चौपई—
आत्म तत्वको ग्यांन लषावे, अध्यात्म सो नांम कहावे ।
ताकों टीका है को करै, क्यूँ दादुर भवसागर तिरे ॥

दोहा—
यथाशक्ति वर्णन करो, मन की ममता षोइ ॥
कहत सुनत सुष ऊपजै, अरु परमारथ होइ ॥१॥

चौपई—
कौन वात पूछन की तेरे, सो सब कहो हरष भयो मेरे ॥
एसी सुनि ब्रह्मा की वांनी, तब वोले नारद मुनि ग्यांनी ॥२॥

नारद उवाच—
वन्धमोच्छ की जेती बात, ते तुम कहो कृपा कर तात ॥
अब मैं एक प्रश्न करों और, सो तुम कहौ सकल सिरमोर ॥
या रहस्य को उत्तर दीजै, निज जन जान अनुग्रह कीजै ॥३॥
घोर अंधेर महा कलि होई, तामें प्रण विहीन नर सोई ॥
बुरो चलन सब कै मन मानें, सांच शब्द नांही पहिचानें ॥४॥
अन होनी पर निन्दा करै, अरु परद्रव्य लैन मन धरै ॥
पर अस्त्री मन सदा अधीन, परहिंसा को महा प्रवीन ॥५॥

आतम बुद्धि दे हमें माने, उदर किश्न मति पशु प्रमानें ॥
मात पिता को वैरी देषे, अस्त्री को निज देव विसेषै ॥६॥

दोहा—
किंकर कहिये तास को, सो अति कांमी जांनि ॥
ज्यों राशभ वश राशभि, ज्यूँ सुनहि वस श्वांनि ॥७॥

ब्रह्मा–उवचा–चौपई—
नारद साधु साधु तव वांनी, में भाषों तुम करो प्रमानी ॥
गुरु जो कहै कृपा के वैन, सिष कै होइ ग्यांन के नैंन ॥८॥

श्रीराम उवाच—
ग्यांनी गुरु सो ग्यांन लषावै, क्रिया कर्म तैं आलस पावै ॥
साभिमान जो क्रिया करै, तातें देह विविध विधि धरै ॥६॥
कर्म शुभाशुभ करै सकाम, ऊँच नींच पावै सो धाम ॥
कर्म किये तै पावे देह, देह करै फिर कर्म सनेह ॥१०॥
जैसे फिरै रहट की घरी, कबहू रीति कबहू भरी ॥
यों ही जीव भ्रमै संसारा, पाप पुन्य के कर्म अपारा ॥११॥
सबको मूल जान अग्यांना, अग्यांन गये तैं प्रगटै भांना ॥
कर्म किये अग्यांन न नासै, विद्या ग्यांन अग्यान विनासै ॥१२॥
निहकाम कर्म सो कीजै तातें, विद्या ग्यांन उदय होइ जातैं ॥
बहुरि नही साधन सों काम, प्रगट्यौ ग्यांन महा सुपधाम ॥१३॥
तातै बुध जन करो विचार, आप मांहि आपौ निरधार ॥
जबै कर्म को त्याग करायो, तब मीमांसक लरने आयो ॥१४॥
क्रिया कर्म श्रुति पहिले भाषी, तुम तो याहि दूर क्यूँ नांषी ॥
वेदान्ती ताकौ समझावे, कर्मी को सब भरम नसावै ॥१५॥
मन वांणी ताकों नहि पावे, ताकों कर्म कहाँ ठहरावे ॥
नेति नेति सो जान्यों सबै, तीनों देह नाश भई तबै ॥१६॥
जीव ब्रह्म भेद जब नासै, पूर्ण ग्यांन सूरसम भासै ॥
माया नास सहज ही होइ, कारज कारण रहे न कोइ ॥१७॥

समाप्ति मे—

मूल ग्रन्थ सोसंकर गायो, भाषा सो भगवान बनायो ॥
मूल अंक सौ छसै प्रमांन, नोसे दश भाषा के जांन ॥१८॥
मूल अंक सो चार हजार, चार सैकरा ऊपर धार ॥
अरु तिरानवे और बषान, शिवशंकर सो किये प्रमांना ॥१९॥
भाषा रूपक पांच हजार, दोइ सो चौसठ ओर विचार ॥
ताको करता है भगवान, जो समझै सो होइ सुजांन ॥२०॥
संवत् सत्रह सो इकताला, तीज जेठ की चंद उजाला ॥
पूरण भयो मउ मैदान, यहई जानोंथान मुकाम ॥२१॥

॥ इति ॥

॥ वैराग्य वृन्द-प्रारंभ ॥

दोहा—

स्वतः प्रकाश स्वरूप मम, वंदौ शीश निवाय ॥
बुद्धि शुद्ध प्रकाश होय, विन्ध नाश सब जाय ॥१॥

सोरठा—

ग्रन्थ नाम परमान, वैरागवृन्द सो जानिये ॥
भाषों बुधि अनुमान, मूल भर्तृहरि भासतैं ॥२॥

मनहर—

देश काल भेद नांहि वस्तु सो प्रछेद कांही
अनंत स्वरूप ओही चिदानंद रूप है।
आप ही को आप जानैं आप अनभौ प्रमानें,
जैसे मणि ज्योति नामै निर्मल अनूप है ॥
तेजहूतै तेज रूप शीतल सदा अनूप,
व्यापक विविध भूत महाराज भूप है।
करले नमस्कार भगवान उरधार
नीकै कै निहार सो तौ तेरोही स्वरूप है ॥३॥

जासों मेरो मन लागो मुझ से विरक्त वह,
रतमानी और ही सुँ सोतो अन्य रत है ।
में तो जानी मेरी तीया तियाहु न मेरी यह,
तजि मोसो पुरुष पुरुष आन चित है ॥
तरुणि तिया को त्याग एसो महा मंदनर,
वस्यो जाइ वेश्या घरि अघता उचित है ।
धिग काम धिग बाम धिग नार नारी नाम,
भगवान विना ग्यांन धिग मोकूँ नित है ॥४॥

छप्पय—

जो कछु उपजत देषिये जगत जाल के कर्म ।
उत्तमता तामैं नंही सवै द्रसैं विभ्रम ।
मेरे पुण्य प्रताप मोहिं यह डर उपजायो ।
पुनि में किये विचार तवै यह निश्चय आयो ॥
करै कर्म सहकामता लहै सु विषयन भोग ।
विषय वियोगनि तपत है त्रिविध ताप के जोग ॥५॥

मनहर—

भोजनसु भीषमांग रसहीन एक वेर,
सोयवेको सैज सुतो भूमि निरधारी है ।
सेवग की ठौर सुतो सेवग सो आप ही है,
शतषंड जोर सो तो कंथा उरधारी है ॥
हा ! हा ! इति कष्ट जान विषमन छाडि सकै,
भोग अभिलाष होत यह भ्रम भारी है ।
जेता विषै विषजानें अमृत सो आप मानैं
भगवान लहै ग्यांनै सो तो ब्रह्मचारी है ॥६॥

सवैया—

जवैहम किंचित् ज्ञानहुतें सुतवै गजमत्त महा गति चालें ।
हों सर्वअभिमान भयो यह गर्व गुमान भये मतवाले ॥

विद्वद्संग भयो मन निर्मल ज्ञान विचार अग्यांन सु जाले।
निर्मल ग्यांन भयो भगवान सु आप ही में प्रभु आप संभाले।७।

अन्त-सोरठा—

सम्वत् संख्या जान, सत्रह सै अरु तीस पुनि ॥
वैशाष मास प्रमांभि, शुक्ल पक्ष अरु पंचमी ॥८॥

दोहा—

देह बुद्धि सो अज्ञता, ब्रह्म बुद्धि सो ग्यांन ॥
अंजन रंजन ता नही, सो स्वरूप भगवान ॥६॥
मूल भर्तृ शतक यह, एकै शत प्रमांन ॥
और पद्य जो बीस है, प्रस्तावी सो जांन ॥१०॥
भाषा कृत टीका यहै, शत तीन्यूं परकास ॥
दोहा सवैया चौपई, कुंडलि कवित्त विकास ॥११॥
छपै छंद अरु सोरठा, अरिल रूप यह जान ॥
अति निर्मल वैराग्यतर, सार सार प्रमांन ॥१२॥

॥इति॥

॥ ४ कार्तिक महात्म्य ॥

प्रारभ दोहा—

प्रथम हि गुरु गोविन्द को, सुमरण सीस नवाइ ॥
वाकपति गणपति सहित, कविजन भलो मनाइ ॥१॥
यह कार्तिक महिमादि पुल, भक्ति धर्म प्रमांन ॥
रामकृष्ण की सुरति सों, भाषत है भगवांन ॥२॥

पार्वती उवाच-चौपई—

पारवती तव दर्सन पायो, स्तुति कर भगवान रिझायो।
कृपासिन्धु सुनी यह रीति, जालंधर कीन्हौ विपरीत ॥
तुमसों बात कहा है छानी, अब प्रभु जतन करो यह जानि।
भगतवछलता विरद सम्हारो, महादुष्ट या असुर हि मारो ॥

भगवान उवाच—

तव नारायन बोले वानी, हमरी वात सुनो कल्यांनी।
पहिले असुर कियो छल आई, अब हम हूं करि हैं छल जाई॥
पतिव्रता को छलने आये, वाही न यहु पंथ बताये।
पतिव्रता वाकै घर मांहि, तातैं जीत सकै कोइ नांहि॥
पतिव्रता को धर्म घटाऊँ, ता पीछे यहु असुर नसाऊँ।
याकी त्रिया धर्म व्रत धरै, तातै यहु मार्यो नहिं मरै॥३॥

नारद उवाच-दोहा—

नारद मुनि पृथु सों कहै, विष्णु गये ता धाम॥
वृंदा रानी असुर की, जालंधरपुर नांम॥४॥
रुद्र आदि दे सुर सवै, युद्ध करै रण मांहि॥
असुरनि माया अति करी, सो शिव जानी नांहि॥५॥
दानव देव लरै मरै, करै परस्पर घाव॥
एकौ हारन मानते, लरने ही को चाव॥६॥
असुर काम कै वश भयो, गयो गौरि के पास॥
उलटि काम कांमी ठग्यो, भई न पूरन आस॥७॥

समाप्ति मे-दोहा—

धर्म रूप है शास्त्र यह, पृथु नारद सम्वाद॥
सतभामा अरु कृष्ण को, सुनै गुनै तव स्वाद॥८॥
भाषाकृत को नेम यह, सवै कहै भगवान॥
वैराग विशेषण है प्रगट, इष्ट निरंजन ग्यांन॥९॥
सम्वत् सत्रह सै प्रगट, तयांलीस पुनि और॥
फागण कृष्णा अष्टमी, वुधवार शिरमौर॥२०॥
वालवेद सुकाम हैं, शुभ विप्रन को वास॥
तहाँ ग्रन्थ पूरन भयो, निर्मल धर्म विलास॥११॥
यामै कछु थोथो नहीं, सत्य वचन प्रमांन॥
ईश्वर वांनी वेद है, कहयौ भाषि भगवांन॥१२॥

॥इति॥

॥ विज्ञ महात्मा मनोहरदासजी निरंजनी ॥

निरंजनी सम्प्रदाय के विज्ञ रचनाकारो मे मनोहरदासजी का अपना स्थान है। ये स्वामी हरिदासजी के शिष्य प्रशिष्यो के पश्चात् होने वाले रचनाकारो मे है। जन्म काल, जन्म स्थान तथा देहावसान का इनका भी कोई पता नही लगा है। इनके प्रमुखतया प्राप्त्य ग्रन्थ वेदान्त विषय से ही सम्बन्धित है। इनका रचना काल अठारहवी शदी का पूर्वार्द्ध है। उससे इनके जन्म का अनुमान सतरहवी शताब्दी का अन्तिम चरण मानना चाहिये। इनकी प्रथम रचना कौनसी है इसका निश्चय तो तभी होता जब इनकी सब रचनाओ मे काल का उल्लेख होता पर ऐसा है नही।

अब तक इन के छै ग्रन्थ देखने मे आये है उनके नाम इस तरह है।

१ ज्ञान मंजरी, २ वेदान्त परिभाषा, ३ षट् प्रश्नोत्तरि, ४ शत्त प्रश्नोतरि, ५ ज्ञान वचन चूर्णिका, ६ सप्तभूमिका।

ज्ञान मंजरी वेदान्त परिभाषा पद्यात्मक रचनाये है। शेष गद्य पद्यात्मक है। ज्ञान मजरी की रचना का काल सम्वत् १७१६ वैशाख शुक्ला पूर्णिमा है। वेदान्त परिभाषा का रचना काल सम्वत् १७१७ आसोज बुदी चतुर्दशी शनिवार है। अन्य रचनाओ मे काल का उल्लेख नही है। इनने अपनी किसी रचना मे स्थान तथा गुरु नामका कहीं उल्लेख नही किया हे। हां ? अपना निरजनी होना स्वय लिखा है जैसा आगे रचना के उद्धरणो मे आप देखेगे।

वेदान्त परिभाषा वेदान्त का प्रक्रिया ग्रन्थ है उसका पद्यानुवाद किया है इसमे इनकी विज्ञता स्वत सिद्ध हो जाती है। इनका रचना काल स्वामी सेवादासजी व भगवानदासजी के रचनाकाल के समकक्ष है। इनका निधनकाल अठारहवी सदी का उत्तरार्ध कहा जा सकता है।

इनकी रचना में भाषा परिमार्जित तथा शब्द सौष्ठव के साथ भावाभिव्यक्ति भी सुस्पष्ट है। ग्रन्थानुसार विषय प्रतिपादन सम्यक् रूप से हुवा है। ये हरिदासजी के पश्चात् किस शिष्य की परम्परा मे कितनी पीढी मे हुये यह तो अज्ञात है। पर इतना तो सिद्ध है ही कि ये किसी शिष्य की परम्परा मे पाचवी या छट्टी पीढी मे थे। इनके रचनाकाल से भी हरिदासजी महाराज के काल निर्णय मे सहायता पहंचती है। ग्रन्थ विस्तार के कारण इनकी रचना के अत्यल्प अंस आगे दिये जा रहे है पाठक तण्डुल न्याय से उसके महत्व पर विचार करेंगे ऐसी आशा है।

स्वामी मनोहरदासजी की रचनाओं का दिग्दर्शन
१ ज्ञानवचन चूर्णिका प्रारम्भ

दोहा—

रवि गुरु द्वै सम तुल्य ज्यौं, तम अज्ञान करै दूर ॥
जग उरमें प्रकाश करि, वन्दन को निज मूर ॥१॥
जीवेश्वर चैतन्य महि, कहिये है द्वै नाम ॥
सर्वज्ञता अल्पज्ञ पुनि, संसारी सुषधाम ॥२॥
कर्म सहित पुनि रहित है, सहित कर्म कह्यौ जीव ॥
संसारी तातै भयो, रहित भयो सोई सींव ॥३॥
जीवेश्वर द्वै जगत मंहि, प्रगट कहैं सब कोई ॥
वाह्य दिष्टि विवेक बिन, अन्तर्दिष्टि न होई ॥४॥

गद्य—अरु पंच ख्याति कहिये है—

१. "एक ख्याति" सो न कदाचित् अनिन्द्रिय संयुक्त किन्तु प्रवाह रूप से इन्द्रिय संयुक्त। ये मीमासी प्रभाकर माने। २. अन्यथा ख्याति। सो कहुंक साचो सर्प है तो सर्प की प्रतीति होत है जेबरी मंहि। अरु कहुंक रूपो साचो है तो सीप माहि भासत है यह नैयायिकादिकनकै मत मानै। ३ आत्मख्याति। देह आत्माकौ मानै प्रत्यक्ष प्रमाणवादी चारवाक के मतमानै ४ असतख्याति। माध्यमिक मत मानै शून्य आत्मवादी। इति प्रस्ताव वार्ता कही। अब अपने मत की वात कहिये है। अनिर्वचनीय ख्याति वेदान्त मत माने। सुविवर्तवादी वेदान्ती अज्ञानकाल अनिर्वचनीय ख्याति अरु विवर्तवाद माने। ज्ञान विद्याकाल विपय स्वरूप नाही। जीवन मुक्ति देह प्रतीत महि स्वप्न तुल्य मानिये। जैसें उत्पत्ति स्वप्न महि कहिये तैसे यह कारणतैं उत्पत्ति संक्षेप तै कही।

अन्त मे दोहा—

भाषा ग्रन्थ यह वचनिका, औषध चूर्ण सोइ ॥
ज्ञानचूर्ण यह वचनिका, नामजु या को होइ ॥१॥
तप्त नीर चूर्ण भषै, उदर रोग सब जाइ ॥
त्यौं साधन सहित विचारतैं, संसार रोग नसाइ ॥२॥

संसै रोग संसार सब, नासै करै विचार ॥
कहै मनोहर निरंजनी, यह निहचै निरधार ॥३॥
॥ इति ॥

---

२ षट् प्रश्नोत्तरी गद्य पद्यात्मक—

प्रारम्भ दोहा—

द्रष्टा एक स्वरूप है, जीवेश्वर नहिं भेद ॥
सो स्वरूप उर वंदि कै, विघ्न सर्व तजि षेद ॥१॥
गुरु पूर्ण अद्वैत है, द्वैत भेद नहिं ताहि ॥
ताको करै प्रणाम, विघ्न नाश सब जाहि ॥२॥

सोरठा—

अक्षर तीन ऊँकार, अकार उकार मकार है ॥
सोहं प्रणव उचार, ब्रह्मंड पिंड मैं प्रगट है ॥३॥
सव्यंजन कर लोप, ऊतै औ है समझिले ॥
हं व्यंजन कर लोप, अं अकार मकार मिलि ॥४॥
मिले परसपर तीन, उकार अकार मकार ए ॥
ऊँकार जो कीन, सोहं प्रणव उचार सब ॥५॥

दोहा—

सोहं श्वास उसास है, पुरुष असंग मिल्यो देष ॥
अन्वय स्वप्न जाग्रत फुरै, व्यक्तिरेक सुषुप्ति पेष ॥६॥
परावाक् अव्यक्त रहै, व्यक्त पश्यंति और ॥
मध्यमावाक् तीजी तवै, वैषरी चौथी दौर ॥

सोरठा—

भई वैषरी वाक्, चार वेद त्रैकांड सब ॥
जीवेश्वर सम भाक्, तत्त्वं त्वंतत् वैषरी ॥८॥

दोहा—

मन वांछै पूरण इहै, भाषा कवित्त प्रकाश ॥
दोहा सवैया चौपई, करो ग्यांन की राशि ॥६॥

सोरठा—

समझै सुष व्है तास, नासै मोह अज्ञान तम ।।
ज्यौं रवि कै प्रकाश, नांहिं अंधेरो पाइये ।।१०।।

दोहा—

ततवेता सो जानिये, तजै अतत सब दूर ।।
हँस नीर ज्यूं छाडि कै, पीवै जीवन मूर ।।११।।

मनहर—

शुद्ध जो प्रकास बोध प्रापत भयो है जाको,
ग्यांनी जो कहीजै मान ज्ञानी सुपराशि है ।
भवके समुद्र मांझ फूले हैं वे अरविन्द,
मोक्ष मकरन्द जामें एकही प्रकाशि है ।।
विषै भोग वनवासी पै उदासी मोक्ष प्यासी,
अलि वेई जांण लेत मति के उजासि हैं ।
धर्म अर्थ काम कीच दादुर सो याही वीच,
निपटन जानै नीच कीच कौ निवासि है ।।१२।।

सोरठा—

निर्विशेष सो जान, विधि निषेध तैं रहित है ।
पुनि प्रकार कहि मान, साक्षी जीवेश्वर मोइ ।।१३।।

चौपई—

अग्यांन मिल्यो सो व्यंव कहावै, व्यंवनाम सोई ईश्वर पावे ।।
अन्तःकरण अग्यांन मिल रहै, संस्कार पुनि तामें गहै ।।
कारण देह कहावे सोई, स्थूल सूक्ष्म व्है लै जहाँ होइ ।।
तहाँ प्रतिविंव जीव सो कहिये, दोऊ मध्य साक्षी सो लहिये ।।
एक पक्ष एसैं कहै कोई, विवरण नाम मुनि सो होई ।
दूसरी पक्षकौं समझो सोई, संक्षेप शारीर करता कहे जोई ।।
कारण प्रतिविंव को ईश्वर कहै, वुधि प्रतिविंव जीव पुनि लहै ।
विंव कह्यौ ताकों शुध कहिये, साक्षी नाम पुनि ताही लहिये ।।१४।।

अन्त मै दोहा—

षट् प्रश्नीनिरनै नाम है, भाषा ग्रन्थ प्रकाश ।।
मनोहरदास निरंजनी, कर्यो जु वचन विलास ।।१५।।
षोजे में सच पाइये, षोजे में है मुक्ति ।।
मन त्यागे अहंकार को, छाडै सब की युक्ति ।।१६।।
शुद्ध मुमुक्षु होइ कै, खोजै भाषा ग्रन्थ ।।
पावे मोक्ष स्वरूप को, छूटै उर की ग्रन्थि ।।१७।।
।।इति।।

---

३ शत प्रश्नोत्तरी प्रारम्भ

सोरठा—

वाच्य लक्ष करि जान, निर्गुण सगुण यों कह्यौ ।।
करि नमस्कार वषांन, वाच्य त्याग कर लक्ष कूँ ।।१।।

चौपई—

अग्यांन शक्ति आतम की कहिये, आतम अज्ञान अनादि मिले लहिये ।
अग्यांन अमिल रह्यो शुद्ध वषांना, ताको ब्रह्म करि कैसो जाना ।।२।।
अग्यांन मिल्यो सो साक्षी कहिये, दोइ भाग अज्ञान सु लहिये ।।
जीवेश्वर पुनि कहिये तामहि, साक्षी नाम कह्यौ है जा महि ।।३।।
कारण अज्ञान एक कहि भागा, कार्य अज्ञान दूसरै विभागा ।।
कारण भाग तै ईश्वर जाना, माया वृत्ति तहाँ कही वषाना ।।४।।
कार्य भागतैं जीवजु कहिये, अन्तःकरण वृत्ति ताको लहिये ।।
मलिन सत्य पुनि कहिये सोई, आतम एक भिन्न भिन्न होई ।।५।।
माया वृत्ति सर्वज्ञ विशेष, प्रमातादि तहाँ नहिं देष ।।
एकै ईश्वर कहिये जाको, जगत उपादान व्है ताको ।।६।।
अन्तःकरण वृत्ति अल्पता लीने, जीव विशेष भिन्न भिन्न कीने ।।
ज्ञांनी अज्ञानी कहिये सोई, हौ जानूं तूं जानन होई ।।७।।

गद्य प्रश्नोत्तर—

प्रश्न शरीर कौण-स्थूल सूक्ष्म कारण इति व्यष्टि शरीर । विराट्, सूक्ष्म, अव्ययकृत इति समष्टि शरीर ।

प्रश्न अभिमानी कौण ? विश्वतेजस प्राज्ञ इति व्यष्टि के अभिमानी । ईश्वर हरिण्यगर्भ वैश्वानर ये समष्टि के अभिमानी कहिये है ।

प्रश्न अधिष्ठानकौण ? अस्पष्ट तेजसै भुजंगादि जेवरीमहि सीप रूपो कल्पित तैसे चैतन्य ब्रह्म आत्मा अधिष्ठान मै यह अज्ञान कल्पित सब अधिष्ठान कहिये है ।

प्रश्न प्रलय कौण—। पंचीकृत भूत अपंचीकृत मे विलीन होइ, अपंचीतकृ भूत अव्याकृत मे विलीन होइ, स्थूलभूत लय को दैनदिन प्रलय नाम ।

सूक्ष्मभूतलय कौ प्राकृत-प्रलय नाम । ब्रह्मज्ञान कर के सबको अभाव करे जेवरी सीपग्यान तैं जैसे सर्प रूपो नहीं तैसे अधिष्ठान ज्ञान तें सबको अभाव ताको ज्ञान प्रलय कहिये ।

प्रश्न उत्पति कौण—? अपचीकृत भूत कार्य सहित अरु पचीकृत भूत कार्य सहित उपजै ताको उत्पत्ति कहिये ।

प्रश्न धर्म कौण ? जोई अविभिचारी अतिवर्णाश्रमी ब्रह्मनिष्ट सोई आत्म-धर्म कहिये ।

प्रश्न अधर्म कौण ? जो आत्मधर्म रहित अनात्मधर्म मे रत रहै सोई अधर्म कहिये ।

दोहा—

मलिन तजै शुध को भजै, शुद्ध तजे निर्विकल्प एक ॥
गुरु गमतैं सो पाइये, जीवन्मुक्त विदेह ॥१॥

चौपई—

तुरिया ब्रह्म आतमा जानों, ब्रह्म सो साक्षी रूप वषांनो ॥
साक्षी अहं लक्षण लहिये, अहं ब्रह्म सो एकै कहिये ॥२॥
लक्ष्यार्थ कह्यौ यह सोई, जामैं द्वैत भान नहिं होई ॥
द्वैत भांन बाध कह्यो जा महि, फल फल नाम दोइ नहिं तामहि ॥३॥
फल चिदाभास परमाता, अहंब्रह्म फल कह्यौ विष्याता ॥
स्वरूप माँझ द्वै फल ए नाही, विकल्प रहित रहै सो ताही ॥४॥
हौं मैं हौं तूं नाही, हौं तू हों में हौं कही ॥
सब है हौं तू मांही, हों तू होंतू एक है ॥५॥

॥ इति ॥

४ वेदान्त परिभाषा पद्यमय भाषा में

दोहा—

मंगल दे मौंहि देव गनेश, मंगल दे मोहे सरस्वती ॥
मंगल दे मोंहि देव महेश, मंगल दे मोहि पारवती ॥१॥

चौपई—

आतम लाभ तैं और न कोंइ, यह भाषत है मुनि सब सोइ ॥
लाभ अर्थ कवि करै वषांण, आतम को ईश्वर करि जांण ॥२॥

प्रश्न—

शिष्य मन ही संसै भयो आय, आतम ईश्वर भिन्न सुभाय ॥
आतम अज्ञ ईश्वर सर्वज्ञ, कैसे एक व्है अज्ञ रु तज्ञ ॥३॥
नियंता जग कर्त्ता है ईश, जीव अकर्त्ता सदा अनीश ॥
क्यों ? आतम परमातम एक, सो हमको कहि देहु विवेक ॥४॥

उत्तर—

समाधान करै गुरुदेव, चैतन्य एक है अषंड अभेव ॥
महावाक्य नहीं कहै वषांण, आतम को परमातम जांण ॥५॥
वाक्य अर्थ अनुभव तैं होइ, जा अनुभव में नांही दोइ ॥
शिष्य कहै सुनिये गुरुदेव, हम अनुभव क्यों ? पावे भेव ॥६॥

प्रश्न—

कैसे वाक्य अर्थ को लहैं, यह संशय उरमैं ते दहै ॥

उत्तर—

गुरु सो कहै सुनो शिष्य सोई, पद पदार्थ समझै दोई ॥७॥
पद अरु पद के अर्थ ही लहो, ता लहिवे को अनुभव कहो ॥
जब यह अनुभव थिर व्है रहे, उरको संशय सगरो दहै ॥८॥

प्रश्न—

शिष्य कहे पद हमसों कहो, पद के संग अर्थ निर्वहो ॥

उत्तर—

गुरु कहै तत् पद त्वपद दोइ, वाच्य लक्ष्य अर्थ तिहिं होइ ॥९॥

तत पद ईश्वर त्वंपद जीव , असिपद तहाँ भेद नहिं कीव ।।
तत्पद वाच्य अर्थ यह भाणि , कारणउपाधि करि ताहि वषाणि ।।१०।

त्रिषुटि निरुपण सोरठा—

ध्याता ध्यान रु ध्येय , कर्त्ता क्रिया कर्म सब ।।
ज्ञाता ग्यान रु ज्ञेय , त्रिपुटि पिंड ब्रह्मंड सब ।।११।।
अन्तःकरण वृत्ति तीन , कर्त्ता क्रिया कर्म सबै ।।
सुषुप्ति महि सब लीन , ज्ञेय ज्ञान ज्ञाता सबै ।।१२।।
सुषुप्ति तैं उत्थान , कर्त्ता क्रिया कर्म सब ।।
त्रि प्रकार वषांण , देह इन्द्रि विषै व्यापकैं ।।१३।।
त्रिधा तहाँ चिदभास , ज्ञाता ज्ञान रू गेय कहि ।।
साक्षी तहां प्रकाश , तीन वृति के संग मां ।।१४।।
साक्षी जीवन्मुक्त , गुणातीत ब्रह्म एकसो ।।
प्रारब्ध संयुक्त , देह भाव तें बोधिये ।।१५।।
अध्यात्म अधिभूत , अधिदैविक सोजान सब ।।
त्रिपुटि त्रिधा अभूत , दृश्य पदार्थ जानिये ।।१६।।
विश्व अध्यात्म जान , ब्रह्मांड सबै अधिभूत है ।।
विष्णु अधिदैविक मान , त्रिधा दृश्य तें जानिलें ।।१७।।

ग्रंथांत में दोहा—

अधिकारी या ग्रन्थ को , कहिये साधना सिद्ध ।।
सो समझै या ग्रन्थ को , लहै मोक्षसी निद्ध ।।१८।।
मनोहरदास निरंजनी , करीजु भाषा सार ।।
थोरी सी विस्तार नहि , अर्थ सबै विसतार ।।१९।।
संवत् सतरह सोमहि , सोरह वर्ष वितीत ।।
वर्ष सत्रह महि करी , षट्मास जांहि व्यतीत ।।२०।।
आसोज वदि चतुर्दशी , शुभ सुवार शनिवार ।।
भाषा पूरण सब भई , एक मास कृतकार ।।२१।।

।। इति ।।

ज्ञा । मंजरी-प्रारंभ

दोहा—

आतम के अज्ञांन तें, संशय उपजै जांन ॥
ज्ञान भये तें लीन सब, नमस्कार तिहिं मांन ॥१॥

मनहर—

प्रमथ मुक्त कहिये दूसरे मुमुक्षु सोऊ
तीसरो विषयी चौथौ पामर विचारो है ।
चारों पुरुष संसार मांझ कहे निरधार,
बन्धन मुक्त डारि मुक्ततो नियारो है ॥
बन्धनतें छूट्यो चाहे मुक्ति हित जो ऊमाहै,
सोई तो मुमुक्षु आहे मोक्ष निरधारो है ।
भोग विषै सुष चाहै सो तो विषयी कहावे,
पांमर सो पेट भरि मेढरा पियारो है ॥२॥

प्रश्न-दोहा—

वेद आमना कौन पारे, हमसौं कही सो भाष ॥
यथा अर्थ है वेद को, गोपि कछू जन राष ॥३॥

उत्तर—

वेद सबै त्रैकांड है, कर्म उपासना ज्ञांन ॥
मुक्त पर कोई कांड नहिं, सोहे ब्रह्म समान ॥४॥
विषई परि नहिं आमना, भोग को साधन नांहि ॥
नासवंत सब भोग है, झूठे सुष ता मांहि ॥५॥
तात्पर्य सब वेद को, एक मोक्ष पर जांनि ॥
भोग लोक परलोक के, तापरि नांहि बषानि ॥६॥
साचो ईश्वर जानिये, साची वांणी वेद ॥
साचो चाहे मोक्ष सुष, लह्यौ वेद को भेद ॥७॥

अथ लक्षणा-दोहा—

अजहत लच्छणा जांन यह, वाचि त्याग नहिं कोइ ॥
परोच्छ प्रत्यच्छ यह वाचि है, ताकौ त्यागन होइ ॥८॥
ब्रह्मंड पिंड अपरोच्छ करि, ब्रह्मंड पिंड नहि दोइ ॥
पंचीकृत सब देषिये, ता मैं भेद न होइ ॥९॥
चेतन जाति अभेद है, ब्रह्मंड पिंड में सोइ ॥
जाग्रत में सब देषिये, ता में भेद न होइ ॥१०॥
चेतन भेद तैं रहित है, ब्रह्मंड पिंड में सोइ ॥
जाग्रत में सो देषिये, समष्टि विष्टि सम लोइ ॥११॥
पुनि स्वप्नै मैं जानिये, सूच्छम भूत कृत येह ॥
समष्टि विष्टि तहाँ परमपर, सूच्छम लिंग तहाँ देह ॥१२॥
चेतन तहां सजाति है, जीवेश्वर तहाँ देष ।।
उपाधि उपाधि समतहाँ, तामैं नही विशेष ॥१३॥
पुनि सुषुप्ति में पाइये, प्रलय को व्यवहार ॥
प्रलय सुषुप्ति सम तहाँ, द्वै समसर इकसार ॥१४॥
कारण कारज परसपर, समष्टि व्यष्टि तहाँ नाम ॥
चेतन चेतन समतहाँ, सम सम तहाँ धांम ॥१५॥
विंब तहाँ प्रतिविंब है, प्रतिविंब है तहाँ विंब ॥
विव तहाँ सत जानिये, सत सोई प्रतिविंब ॥१६॥
अजहत है तहाँ लच्छणा, वाच भेद सम सोइ ॥
अलप तहाँ जहाँ महत है, महत अल्प तहाँ होइ ॥१७॥

अन्त मे—

निरंजन अजन रहित है, अंजन सो प्रकाश ॥
मनोहरदास निरंजनी, वैस निरंजन पास ॥१८॥
सम्वत् सतरैसौ मंही, वरस सोरहै मांहि ॥
वैशाष मास है शुक्ल पच्छ, तिथि पुन्यौं है ताहि ॥१९॥

सोरठा—

भाषा ग्रन्थ कहये येह, सबै वैषरी वाक है ॥
प्रायसंती जेह, मध्यमा पीछे पाइये ॥२०॥

दोहा—

मनोहरदास निरंजनी, सो स्वामी सो दास ॥
स्वामीदास भयो एक सौ, महाकाश घटाकाश ॥२१॥

॥ इति ॥

॥ अमरपुरुषजी महाराज की संक्षिप्त जीवनी ॥

अमरपुरुपजी सेवादासजी महाराज के प्रमुख शिष्य थे। उनका जन्म सारस्वत ब्राह्मण कुल मे १७५५ मे हुआ था। कुल परम्परानुसार उनने व्याकरणादि संस्कृत विषयो का अध्ययन किया था। वे बाल्यावस्था मे ही चिंतनशील व उपरति प्रधान थे। निरंजनी सम्प्रदाय मे उस समय परमयोगी तथा परमत्याग वैरागमय महात्मा सेवादासजी प्रसिद्ध थे। अमरपुरुषजी ने सम्वत् १७७५ मे इन्ही से दीक्षा ग्रहण करली।

और उन द्वारा निर्दिष्ट साधनामे तत्परता से लग गये। दीक्षा ग्रहण किस स्थान मे किया इसका निश्चयात्मक प्रमाण नही है। जन्म स्थान आपका थावरिया ग्राम बताया जाता है जो नागोर के पास है। काल पाकर अमरपुरुषजी महाराज भी साधना की सिद्धि से सिद्ध कोटी मे आ गये। सेवादासजी महाराज की तरह ही इनका भी नाम डीडवाणे के चारो ओर प्रसिद्ध हो गया। इन के सानिध्य मे रहे इनके प्रभाव से बहुत अधिक व्यक्तियो ने इनका शिष्यत्व ग्रहण किया। ज्ञानराय चारण ने इनके छिनमे शिष्यो के नाम कवितावद्ध किये है जो कि भूमिका विवेचन षंड मे उद्धृत है।

इनके छिनमे शिष्यों के कितने शिष्य हुये इनकी कोई संख्या नही है। इनसे पहिले हरिदासजी, तुरसीदासजी, ध्यानदासजी, कल्याणदासजी, सेवादासजी आदि की वाणियो की प्रतिये बहुत ही न्यून सख्या मे थी। इनने अपने सभी शिष्यो को वाणी की पुस्कक लिखने का निर्देश दिया तथा पर्याप्त सख्या मे वाणी की पुस्तकें अपने शिष्यों से लिखाई। इन्ही के प्रयास का परिणाम है कि निरंजनी सम्प्रदाय की रचनाओ की अब तक कुछ रक्षा रही।

ये प्रमुखतया साधक पुरुष थे अतः इनकी रचना की ओर कोई प्रवृत्ति नहीं थी। परम्परानुसार तथा ग्रन्थ गत उल्लेख के अनुसार इनके मात्र सात आठ पद्य रचे हुये है जिनमे रचियता के स्थान मे इनने अपना नाम न देकर अपने गुरु सेवादासजी के नाम का प्रयोग किया है इनकी यही रचना हे। निरंजनी सम्प्रदाय की संख्या वृद्धि तथा क्षेत्र विस्तार मे आपका अद्वितीय सहयोग मिला।

आप प्रमुखतया कोलियाग्राम मे विराजते थे जो कापडोद, डूगरी तथा डीडवाणे के समीप पडता है। आपकी समाधि कोलिये मे ही बनी हुई है। स्मारक रूप मै आपकी समाधि विरक्त वाडे डीडवाणे मे भी बनी हुई है। आपकी परम्परा मे आपके पश्चात् भी त्यागी वैरागी साधक महात्मा होते आये है। वह परम्परा अब तक प्रचलित है महात्मा रामाकिसनजी आपही की परम्परा मे थे। उनके उत्तराधिकारी सन्त भोलादासजी है। वाडे के महन्तजी भी अमरपुरुषजी महाराज की शिष्य परम्परा मे है। आज भी आपके शिष्यो की परम्परा के राजस्थान के विभिन्न भागों मे बहुत अधिक स्थान है।

॥ अमरपुरुषजी महाराज के पद ॥

(राग सोरठि)

साधो सतगुरु की बलिहारि हो १
भोजल मांहि जात जीव देष्या, करंगहि कीया पारा हो ॥टेक॥
जन्म मरण का रोग सबल था, तब गुरु बोपद दीया हो ॥
रांमनाम निज भेद बताया, तातें रोगी जीया हो ॥१॥
सतगुरु साहिब पर उपगारी, रंका हीरा दीया हो ॥
आदू पंथ बताइ जुगति सूँ, आप सरीषा कीया हो ॥२॥
करम भरम सब दूर निवारे, मेटी मन की आसा हो ॥
रोम रोम आनन्द उपजाया, सुष में सहज निवासा हो ॥३॥
अगमवस्त अन्तर दिषलाई, देष्या अगम तमासा हो ॥
जन सेवादास सतगुरु के सरणै, पूरी मन की आसा हो ॥४॥
समरथ साँइया समरथ साँइया, मेरे राम पकडो बांहिया ॥टेक॥
औगुण बहु कीया, नाँव न में लीया ॥
नांव न में लिया मेरे राम, विष में रुच रुच पीया ॥१॥

श्री अमर पुरुष जी महाराज जी

यो औसर फिर आवै नांही , दरसौ उर मांही ॥
दरसौ उरमांही मेरे राम , यो छक लाभै नांही ॥२॥
साहिब मेरडा , मैं हू तेरडा ॥
मैं हूं तेरडा मेरे रांम , राषो मोहे नेरडा ॥३॥
अन्तर आइये हो , प्रेम चषाइये ॥
प्रेम चषाइये मेरे रांम , ज्यूं जग तिरजाइये ॥४॥
जन सेवा कूँ सुष दीजिए , अपना कीजिए ॥
अपना कीजिए मेरे रांम , सरनि दत्त दीजिए ॥५॥

अबला हों अपणी जानि कै , दरसन दीजै आइ ॥टेक॥
तुम अलष निरंजन होय रह्या , अकल अयोनी देव ॥
सकल मांडमें मिल रह्या , किस विधि कीजै सेव ॥१॥
तुम रोम रोम में रम रह्या , नैनाँ दीखो नांहि ॥
विरहनि जिवडै जक नहीं , तो कहा रह्या व्है मांहि ॥२॥
जग जल तो भावे नहीं , सुनिहो दीनदयाल ॥
औगण वगसो रांमजी , काढौ जीव जंजाल ॥३॥
करुणा हो सुन करता घणी , हरि परम सनेही पीव ॥
जन सेवादास कूं दरसद्यो , ज्यूं सुष पावे जीव ॥४॥

आवो हो रामैया मेरे आंगणे , हरि अकल भवन के राइ ॥
तुम विन घडी न आलगै , हरि महल विराजो आइ ॥टेक॥
अबला के वल को नहीं , तुम सकल वियापी राइ ॥
दरस दिषावो आपनो , दिन दिन घटती जाइ ॥१॥
औगण सबही मेटिए , मेरा कछून पांन ॥
दरदन भाजै तुम विना , साहिब कत सुजान ॥२॥
मेरे तुम विन को नहीं , वोड निवाहन हार ॥
दाद सुनो हो मेरडा , मिलिए सिरजन हार ॥३॥

जन सेवादास यूं वीनवै, सुनिए देव मुरार ।।
आरतवंती जानिकै, हिल मिल द्यो दीदार ।।४।।

निरंजन आइये !
ए ! मेरे आदि अन्त के पीव, सहज सुप लाइये ।।टेक।।
वाल्हा तुम विन व्याकुल जीव, धीरन धरत हैं ।।
क्या ! जानू क्या ! होइ, अब मन डरत हैं ।।१।।
अवधि वदीती जाइ, साहिब कहाँ अटे ।।
वाल्हा तुम दरसन की चाह, नैन प्रभु यूं फटे ।।२।।
जो दिन है प्रभु आज, सो लाभै नही ।।
बाल्हा सब औगण कर माफ, दरसो उर मंही ।।३।।
अन्तरजांमी आव, दरसन दीजिए ।।
जन सेवा तन सुप होइ, अपणां कीजिए ।।४।।

राग काफी—

एसै प्रगट पीव संगि षेलिये हो, हां हो होइ मगन मन मांहि ।।टेक।।
होइ निसंक पीव संगि षेलूं, संकन आंणै कोइ ।।
निर्भय हो कै षेलिये हो, षेलिर मांहि समोइ ।।१।।
सषी सहेली साथ ले हो, निसदिन रहूँ हजूर ।।
सेझ सनेही आइ बिराजे, निरखूं में निसदिन नूर ।।२।।
को गति लोग नगर को आयो, षेल वण्यों अति झींण ।।
अनहद बाजा बाजै है हो, मधुरी वाजै हो वींण ।।३।।
इसो फाग हम कबहुन देष्यो, आनन्द वढ्यो अपार ।।
जन सेवादास अब सुष भया हो, सहजि लंघै भवपार ।।४।।

(राग गौड)—

साधु आया मेरे द्वार, में तन मन वारि करो मनवारि ।।टेक।
वाँ साधां की बलिहारि रे ! , वाँ केती आतम तारी रे ।।
वे साधु मेरा भाई रे, वाँ तन की तपत बुझाइ रे ।।१।।

वे साध सुषां की रासी रे, काटै जन्म जन्म की पासी रे ॥
जन सेवादास सुष पायारे, जब साधां दरस दिषायारे ॥२॥

(रागमारु)—

आवो हो रांम सनेहिडा, दरसण दीजै मोहि ॥
तुम विन जिवडे जक नहीं, निसदिन निरषूं तोहि ॥टेक॥
विरह विथा सब मेट सनेही, पकडो साहिब बांही ॥
यो औसर फिरि तांहि गुसांई, दरसन दीजै मांही ॥१॥
तुम रोम रोम में व्यापक स्वामी, हमकूं नैनन दीसै ॥
अबला तो दरसन नहिं पावे, कहा रह्या कर रीसै ॥२॥
तुम अन्तर जामी मनकी जांणो, वेगि विलंबन कीजै ॥
यो सांसो हरि दूर निवारो, अपणी कर हरिलीजै ॥३॥
अबकै औगण दूर निवारो, समरथ साहिब मेरा ॥
सरण गह्यां की लाज दयानिधि, सेवा जन है तेरा ॥४॥

॥ इति ॥

॥ कवि विज्ञ साधक महात्मा हरिरामदासजी ॥

हरीदासजी महाराज के परवर्ति रचनाकारो मे हरिरामदासजी का उल्लेखनीय स्थान है। ये हरिदासजी महाराज के बावन शिष्यो मे प्रमुख स्थानीय एकादश निरंजनी महन्तो मे नाथजी की परम्परा मे हुये ऐसा प्रतीत होता है। इनका स्थान डीडवाणा प्रमुखतया माना जा सकता है। काल इनका अठारहवी सदी है। इनकी रचना साहित्यक गुणो से अन्वित है। जैसे दादूजी महाराज के शिष्य सुन्दरदासजी की रचना से विद्वत्ता व्यक्त होती है इसी तरह इनकी रचना से भी इनकी बहुविज्ञता प्रतीत होती है। भाषा, भाव, छन्द, अभिव्यक्ति अलंकारादि सब रचना मे स्पष्ट सामने आते है। सुन्दरदासजी महाराज ने प्रमुखतया सवैयो की रचना की तदवत् इनने प्रमुखतया कुंडलिये लिखे है। वैसे इनने अपनी परमार्थ सतसई मे अनेको छन्दो का प्रयोग किया है।

इनकी प्राप्त रचना मे छन्द रत्नावलि, परमार्थ शतसई, तथा महाराज हरिदासजी की परची तथा पर्याप्त फुटकर रचनाये है। मेरे कुचामन के स्थान से

प्राप्त गुटके मे परमार्थ शतसई के ५३७ छन्द है। स्वामी श्री नरोत्तमदासजी एम ए के गुटके मै जो कि उनने अगरचन्दजी नाहटा बीकानेर को दे दिया है उनमे परमार्थ शतसई की छन्द सख्या साढे आठसौ के करीब है। उनके उस गुटके म और भी उनकी रचना है। मेरे गुटके मै भी कुशलाष्टक, विरह के कुंडलिया, तथा व्यापक विषय पर भी नये कु डलिये और मिलते है।

हरिदासजी की परची कोलिये ग्राम के सग्रह मे तथा छन्द रत्नावलि की प्रति लक्ष्मणगढ मे है। छन्द रत्नावलि प्रकाशित हो चुकी है। उक्त पुस्तक मे इन का छन्द शास्त्र का उत्कृष्ट ज्ञानव्यक्त होता है। छन्दरत्नावलि कि समाप्ति पर इनने डीडवाणे स्थान का तथा सम्वत् १७९५ का उल्लेख किया है।

इनकी परमार्थ शतसई की रचना इससे पहिले की होनी चाहिये एसी मेरी मान्यता है। उपरोक्त काल निर्देश के अनुसार ही इनका समय अठारहवी शती सिद्ध है परमार्थ शतसई का स्वतंत्र प्रकाशन हो तभी इनकी रचना की सम्यक् जानकारी पाठक को प्राप्त हो सकती है। आगे तो तदुल न्याय के अनुसार ही इनकी कुछ रचना का दिक्मात्र दिया जा रहा है पर उसी म इनकी रचना वैशिष्ट्य का अनुमान किया जा सकेगा।

॥ महात्मा हरिरामदासजी की रचना ॥

गुरुदेव की स्तुति

छन्द निसानी—

किभा अन्ध अज्ञान ने, सुभ रूप भुनाया ॥
ग्यांन कज्जल दृग अंजि, जिनां अप्पा दिखलाया ॥
तिसां गुरु हन्दे पायनूं, कीज्जै परणांमा ।
दुर मेंडी ज्यंद वारिया, अष्षै हरिरांम ॥१॥
गुरु दाता महामोषदा, गुरु दीनदयाला ।
वहु जन्मोंदा संचिया, गुरु हरै मयल्ला ॥
गुरु से होरन जगत में, सुन सिष धपल्ला ।
गुरुदा मरम न जांनही, सो द्वय पद चपल्ला ॥२॥

छन्द त्रिभंगी—

सिष कमल दिनेशं घृत शुभवेशं विगत कलेशं दुपहारं ।
गुन निकरस्थानं दयानिधानं हृत अज्ञानं सुपकारं ॥

भंजित भवजालं जित कलिकालं वचन रसालं सतसारं ।
भवसागर पोतं ज्ञान उद्योतं हरिजनगोतं गतपारं ॥३॥
अद्भुत आकारं रुचिराचारं करनउधारं जगसारा ।
मतधर्म ही लीनं लाप अधपीनं जिन धरलीनं अवतारा ॥
एसे गुरुदेवं अलिपितभेवं जित अहमेवं परणामा ।
शरणं अवरष्पय ममतम धष्पय गूं सिष अष्षय हरिरांमा ॥४॥

इन्दव छन्द—

आगम अर्थ सुनावत वे नित और अज्ञांन हरे दिलकेरा ।
उत्तम नीच बतावै उभै मग पापरु पुण्य का देत निवेरा ॥
कृत अकृत को भेद बतावत आतमरांम जनावत नेरा ।
भवजल षेवट श्री गुरुदेव के पाद पद्म्म गहो मन मेरा ॥५॥

छन्द दुर्मिला—

रस रीति लेए जेई छन्द रचे तजिमंद मनो अनुप्रास धरे ।
तिनकोजु सदगुरु तुझ गह्यौ कर गुज्ज हिये यह गुंज्जभरे ॥
गुरुदेव अथाह कथा चहुँ गुंथन थाह लहूकिन हिये डरे ।
शरणागति जांणि गहो ममपांणि प्रणाम तुम्है हरिरांम करे ॥६॥

दोहा—

तव आज्ञा जिनकिन लई, सरे सकल तिन कांम ।
या तैं सतगुरु करि दया, नमैं दास हरिरांम ॥७॥

(सन्त स्तुति)

इन्दव छन्द

ज्ञान कला अटला दिल मांहि जगी जिनकै विमला सुषदानी ।
सुख स्वरुप अनूप जग्यो जिनकी दुषदा भव त्रास विलांनी ॥
भोग लगे विष से जिनकूं निकसे गृह त्याग चले हरिकांनी ।
संतदासा तिनकी अवलोक करै हरिरांम प्रणाम वषानी ॥१॥

(ब्रह्म स्तुति)

मनहर छन्द—

गावत तुमारे गुन शेषजु सहस मुख
मुष अरु जीभ द्वै यै पार नहिं पायो है ॥
शारद महेश अज नारद दिनेश शशि
ऋपि सनकादिने भी अगम बतायो है ॥
सदा ही अभेद भेद भांति भांति वेद कहै
वांणी मनगोचर न एसो कहि गायो है ॥
कहै हरिरांम देव भेव तिन जान मकूँ
मैं तो मति मेरि सम तोसू मन लायो है ॥१॥

ग्रन्थ परमार्थ सतसइ से उद्धरण—

दोहा—

यह परमारथ सतसई, भापा ग्रन्थ भुजंग ॥
जाकी जिह्वा को लगै, सो न धरे फिर अंग ॥१॥
यह परमारथ सतसई, औपध अजब अमोघ ॥
जो पीवै जीवै सदा, मिटै तास भवरोग ॥२॥
यह परमारथ सतसई, कल्पवृक्ष उपमांन ॥
मोक्ष पदार्थ देत है, कहा पदारथ आंन ॥३॥

मनहर छन्द—

मंगल सुग्यांन सर फूल्यो है सघन वर
छंदते अमंद कंज मंजुलर कीनी है।
अर्थ गुन मांनरु विचित्र व्यंग रंगवहु
श्रेष्ट भक्ति मधु गंध अतिरस भीनी है ॥
माली हरिरांम माला गूंथकै बनाई यह
नेक न मलीन होत नितही नवीनी है।
चढी हरिगुरु संत चतुर सुविज्ञ कवि।
हित करि कंठ धरो संतन को दीनी है ॥४॥

गीतिका छन्द—

कलिकाल व्याल विहाल जिनकै जानि मन दुष गंजनी ।
भवभीत इन्द्रियजित जुजाकै है क्रिया भव भंजनी ॥
यूं भनत हरि के जनन सूं हरिरांमदास निरंजनी ।
सुष पाइ सारे सुनहु प्यारे गाथ यह मनमंजनी ॥५॥

कुंडलिया—

कानन सुन सव सन्तजन इस अधिकारी जांनि ।
कहियो शुचि श्रोतान प्रति ज्यूं व्है ग्रन्थ सुमांनि ॥
ज्यूं व्है ग्रन्थ सुमांनि यहै तुमही तें होई ।
मों तें होतन मूरि सुनु द्रष्टान्तस कोइ ॥
जल में उपजत कमल तदपि व्है गन्ध वितानन ।
पवन ही प्रेरित ताहि सकल पुर कानन कानन ॥६॥

छन्द मनहर—

सुनियो प्रवीण संत वीनती विनीत करूँ
गिनती न कोऊ मेरी चमा सव कीजियो ।
ब्रह्म को विलास जांन तिहारो प्रताप मांन
चूक माफ करिकै चरित्र चित दीजियो ॥
रंक हाथ रतन जतन विन लगै रज
अपनो सुधार लेहु अधिक न पीजियो ॥
वचन सदोष कोई तीरथ समान तुम
कृपा करि वुध सव सुध कर लीजियो ॥७॥

दोहा—

दूहा कुंडल्या छन्द चौपई , पदरु रेषता नांम ॥
सव ही सन्त सुधार ज्यो , कहै दास हरिरांम ॥८॥

छन्द कुंडलिया—

डरिये रे मन कुवुद्धि तैं , सुवुधि राह पग धारि ।
कुवुधि काल की पासि है , सुवुधि सुधा निरधारि ॥

सुबुधि सुधा निरधारि , पार पहूंचो किन भाई ।
भवसागर अति कठिन , नांव विन पार न जाई ।।
कहै दास हरिरांम सीप यह , उरमें धरिये ।
निसदिन जप हरिनांम , कांम तैं निसदिन डरिये ।।९।।

काहू को मत याच मन , कमी नांहि जग मांहि ।
नदी ताल जल संचरे , वन फल बन बहु आहि ।।
वन फल बन वहु आहि , चीर वलकल बहुमारे ।
सैया भूमि निवास , वाहु गैंदुक उनहारे ।।
मंदिर दरियन मांहि , राम भज लीजै लाहू ।
निश्चय उर हरिरांम , राम भूलै नहिं काहू ।।१०।।

मेरा तेरा पारका , जाके कोऊ नांहि ।
जोई षालिक षलक मैं , व्याप रह्या सब मांहि ।।
व्याप रह्या सब मांहि , नहीं किसही का जाया ।
किया न किसका होइ , छिपै नहि कहूँ छिपाया ।।
चंद इंद रवि मंद , इसा जाकैं बहुतेरा ।
कहै दास हरिरांम , सोई साहब है मेरा ।।११।।

मेरे करणी को नहीं , नहिं रहणी का लेस ।
देषादेषी भेष की , में भी धारया भेष ।।
मैं भी धारया भेष , भेष का लेस न पाया ।
उक्ति युक्ति उपजाइ , जगत कूँ वहु भरमाया ।।
पतित उधारण विरद , तौर जग वेदहु टेरे ।
कहै दास हरिरांम , आस इक यह उर मेरे ।।१२।।

आया जे हरि आसरे , पाया तिन दीदार ।
मन चाहा कारज भया , गया मोह अंधियार ।।
गया मोह अंधियार , पार भवसागर पाया ।
पींपा नांम कबीर , धना वहु संतनि गाया ।।

अवर रीझ कहा देत, देत हरि अपनी काया।
में परिया हरि रांम, रीझ सुनि शरणै आया ॥१३॥

रेषता—

नाम परताप त्रय ताप प्रहलाद की मिट गई झटक दे चटक मांही।
नाम परताप ध्रू पाप सब कांपि करि छाप सब ऊपरै अटल पांही॥
नाम परताप जन नाम कबीर से राम ही व्है गये न गये कांही।
कहत हरिरांम हरिरांम भज बावरे नाम बिन आसरा तिहुँ लोक नांही।१४

छन्द वेताल—

निरद्वन्द व्है सुषदुष मन्न अरु अचल धैर्य धारि।
विन मिली सबही वस्तु की चाह देहु निवारि॥
त्याग कर चांचल्य सब राषि मन इक ठांम।
यह धारि लै परमातमा मम पूरि है सब कांम ॥१५॥

छन्द पद्धरी—

लषि विषय दोष वैराग्य धारि तिन सबहिन तहाँ तै वहि निकार।
करि भ्रूमधि चक्षु धरि सुबोध जिमि लय विषय वृत्ति व्है निरोध ॥१६॥

पद राग सोरठी—

मन रे देवल अजब बताऊँ!
या देवल को देवा धोकै, तो निज पद को पाऊँ ॥टेर॥
देवल एक षंभ द्वै जाके, द्वै दरवाजा भारी।
गोपे द्वै द्वै वाके झांकी, द्वै वारी इक नारी॥
ना कछु लांबा ना कछु चौड़ा, ऊँचा भी कुछ नांहि।
जो रचना ब्रह्मांड विषै है, सो सब या कै मांहि॥
आपही देव चुणया चूने बिन, टांची नांहि लगाई।
फिरता फिरै फिरंग पुतरी सूँ, ऐसी कला बनाई॥
देव निरंजन ता में देवा, बैठा बिन पधरायां।
आपही सेवक व्है करि सेवै, जीव नाम जब पाया॥

अजपा जाप जपै निसवासर, नीर निरासा न्हावै।
ग्यांन गंग जल बुधि अर्घा भर, देवाकूँ सपडावै॥
कपड़ा गहना करम धरम सब, चित चंदन चरचावे।
अहंकार मनसा मन व्यंजन, भोजन भोग लगावे॥
ऐसे अद्भुत देवल देवा, सुर नर कृत को नांही।
कर हरिरांम सेव याही की, मत भटकै जग मांही॥१७॥

छंद वेताल—

यह लगै साचो जगत जौ लौं, ग्यांन उपजै नांहि।
ब्रह्म ग्यांन को जब भानु प्रगटे, लीन व्है छिन मांहि॥
सब वर्ण आश्रम धर्म तारे, लसै निसहि मांहि।
जब ज्ञान भानु प्रकाश व्है, तब भास सब मिट जांहि॥

छंद चौपई—

परमातम को ध्यान जू धरै, तन मन इन्द्री निश्चल करै।
परमातम दशहू दिस ध्यावै, तब समाधि सुपको जनपावै॥
सो समाधि सायुज्य कहावे, भेद भाव तहं सर्व नसावै।
स्वामी सेवक मिले स्वभावा, बूंद मिली जल जल ही समावा॥१६॥

छंद अरिल—

वेरी कंचन लोह, एक कर जांनिये।
कहै वेद गुरु संत, सोई सत मांनिये॥
स्वर्ग नर्क दोऊं त्यागि, कांमना परिहरो।
हरिहाँ! कहै दास हरिराम, यहै निश्चय धरो॥२०॥

छंद रेषता—

रंग कै महल मैं गंग उलटी वहै संग सरवंग को तहां पावै।
सुन्दरि सुरति पति पाइ उर लाइ इक भाइकूँ युक्ति ऐसी उपावै॥
साधि समाधि आराधि आनंदघन आधिरु व्याधि को पद गमावै।
झिलमिले नूर भरपूर वहु सूरज्यूं सूर हरिरांम कोऊ तंह समावै॥२१॥

प्रकीर्ण रचना

छद मनहर—

जन हरिदास हरि सुमरिदास तुरसी तत पाया।
श्याम लही सब स्यामता पद पूरण ध्याया ॥
ध्यान धरत हरि मिले नाथ मिल नाथ ही गाया।
कान्हड़दास कृपालु षेम पुनि षेम समाया ॥
मोहन भजि मुरार दास जगजीवन सिद्धवर।
आनदास जगन्नाथ भये ये प्रभु के अनुचर ॥
घाट वाध इनमें नहीं अधिकारी निजधाम के।
द्वादश महन्त निरंजनी उर बसहु सदा हरिराम के ॥२२॥
हरिपुरुष दयाल जीवन को किये निहाल।
गुरु गोरष प्रताप तैं गिरा यह उचारी है ॥
वेद रु पुराण सब कतेब कुरांण काव्य।
सोधि सोधि जंत्र मंत्र बान्ध्यो भ्रम भारी है ॥
ऋपीश्वर तपेश्वर मुनीश्वर जोगेश्वर।
ठाढेश्वर ऊर्ध्वबाहु भ्रमवश ख्वारी है ॥
गोरष सिष दयाल प्रगटै हरि पुरुष।
बावन सिप्र सहित हरि प्रीति धारी है ॥२३॥
मीठे मीठे बैन ऐसे सूक्ष्म को मिठास तैसे।
सारा सार सोधिके कुंडलिये बनाये हैं ॥
दूहा पद छंद बड़ो ग्यान को प्रबंध सो तो।
जीवन की दया देपि आप मुष गाये हैं ॥
चौपई रु रेषता हू कहे हैं विशेप अति।
संत जन तत्वशोध हृदै हू धराये हैं ॥
जन हरिरांम निज ब्रह्म मांहि कियो धाम।
एसो जु प्रभाव सुनि मेरे मन भाये हैं ॥२४॥

छन्द रत्नावलि

दोहा—

गुरु गनपति गोविन्द को, नाय शीश हरिरांम ॥
पिंगल मत भाषा विषै, रच तरु चिर परकांम ॥१॥
मत्ता वर्ण विभेद करि, द्वै विधि लौकिक छन्द ॥
पिंगल आदि अचारि जनि, कहैं वान्ध्र परवन्द ॥२॥
तिनके लच्य लचन सहित, सुने जिसे हैं नांम ॥

मात्रिक छन्द—

प्रगट करत इस ग्रन्थ में, भाषा करि हरिराम ॥३॥

गीति छन्द लक्षण—

प्रथम आर्या दल जिसे, दल दोनों जो होय ॥
"गीति" नाम ता को कहै, कवि पंडित सब कोय ॥४॥

उदाहरण—

अपने मन ही विचारो, हित अनहित जुत सपि वचन हमारो ॥
फिर पीछे पछितै हो, अलि अवसर यो सु फेरि नहिं पै हो ॥५॥

पद्धरि लक्षण—

सवकला चरनि षोडश प्रमानि, नितिपरत जगन अवसानि आनि ॥
हरिरांम सवै कवि विदुष वृन्द, तिहिं कहत पद्धरि नाम छन्द ॥६॥
सुनि दूती अति स्यावास तोहि, अति सुखी करी अलि आज मोहि ॥
तैं सहे दन्त नख मोर कज्जि, इमि स्तुति व्याज निंदा प्रसज्जि ॥७॥

चौवोला लक्षण—

तीस कला सब व्है यक दल की, दल दल में यति वेद गना ॥
गुरु अचर अवसान निरन्तर, वह चौवोला समझ मना ॥८॥

उदाहरण—

जित वरणत उपमान सुकवि वहि, रूपकातिशय उक्ति कहै ॥
नील कमल तैं निरष अली री, वहु विधि तीक्षण वांण वहै ॥९॥

छन्द ललित लक्षण—

प्रथम चरण में है षोडश कल, दूजे रवि कल जानों ॥
उत्तर दल की कल याहि विधि, ताहि ललित पद मानों ॥१०॥

उदाहरण—

मधु तैं सुधा सुधातैं कवि के, वायक मीठे मानों ॥
यों उत्तरोत्तर सार अधिक गहि, ताको सार वषानों ॥११॥

छन्द कडखा लक्षण—

दशदश सचिह कलन पर, होत जहाँ विश्राम ॥
सब पद काल सैतीस लखि, कडखा ताको नाम ॥१२॥

उदाहरण कडखा—

जन्म अरु मरण द्वै थम्भगाढे गडे वासना भींन कडियां अखूलै ।
नारि सुत मात पितु पालना पालना मौलि धन देहजो देषिभूलै ॥
डोलना चित्त को डोलना जानिये ममतामांनि रस चाषि फूलै ।
कहत हरिरांम मन अधिप इत भूलना मोह के भूलना जगत भूलै ।१३।

वर्ण छन्द–तोमर लक्षण—

मुख चन्द जित सगन्न, फिर दोय दोय जगन्न ॥
कवि चित्र चेतन चन्द, हरिरांम तोमर छन्द ॥१४॥

इन्द्रवज्रा लक्षण—

जामें करीद तत आदि आनैं, जो गोग ज्ञाता अवसानि ठानैं ॥
औरन कोई यति भेद जानै, सो इन्द्रवज्रा वृतज्ञा वषानैं ॥१५॥

दोधक लक्षण—

जासु विषै हरनेत्र भजाना, आतम उभै गुरु फेरि समांना ॥
सो शुभ दोधक नाम सुछन्दा, भाषत है हरिरांम फनिंदा ॥१६॥

मालनी लक्षण—

आदौ आत्मा मो नदी तीर नोहै, फेरयौ जाकै अन्त में पाद गौहै ॥
यती वर्णत लोक वर्णत लहीजै, छंदा मांहि मालनी सो कहीजै ।१७।

दोहा—
ग्रन्थ छन्दरत्नावालि, सारथ या वो नाम ॥
भूषन भरती तैं भयो, कहै दास हरिरांम ॥१८॥
सम्वत् शर नव मुनि शशि, नभ नवमी गुरुमांनि ॥
नगर डीड द्रढ कूपतहिं, ग्रन्थ जन्म थल जांनि ॥१६॥

कुशलारटक—
मेरें तन हीमें रहे पंच चोर बलवांन ।
मेवासी इस मुरि रह्यौ कह्यौ न मांने आंन ॥
कह्यौन माने आन प्रांण यातै दुप पावैं ।
षिन षिनतैं नर आइ जाइ विरथा न रहावै ॥
एते पर कुशलात मित्र पूछै लग केरै ।
कहा कुशल हरिरांम दशा ऐसी मैं मेरे ॥२०॥

नीति के कुंडलिये—
रोवो कूटो जग करै निज प्रिय मूँवो जानि ।
गयो जीव जांसूँ कवै तुमरे भई पिछांनि ॥
तुमरे भई पिछांनि सुतो तन परियो आगै ।
निज हाथनि तजि लगनि अगनि धरमैं तिहिंदागै ॥
जीव अमर हरिरांम देह चण भंगुर जोवो ।
यह अचरज बड़ आहि काहि किस कारण रोवो ॥२१॥
तेरी नर नित परमपद दाता मानुप आव ।
चली जात लषिये नहीं ज्यों जल मांही नाव ॥
ज्यों जल मांही नाव चलत जामें जे प्रानी ।
चलत लषत गिरि वनी आपनी थिरता मांनी ॥
यों निज थिरता मान तजत नहिं मेरी मेरी ।
भजै न हरि हरिरांम कहो जड़ को बहुतेरी ॥२२॥
पढियो कहा विचार विन मढियो माया मोह ।
जोलों मिटै न जीव कै दुरति ईरषा दोह ॥

दुरति ईरषा दोह वधै क्यों यह फल पायो ।
ज्यूं मृग सिंघ वधाय पास में जाय वधायो ।।
जो अभिमान पहाड़ सिषर ऊपर नर चढियो ।
लषैन दुरगतिगमन ज्योंहि मूरष त्यों पढियो ।।२३।।
तेरे सिरजनहार की तोपै षवर कछु नांहि ।
सुत वित वनितादिक निरप हरषि रह्यो घरमांहि ।।
हरषि रह्यो घर मांहि जाहि लष सो न रहासी ।
रदन माल विकराल काल चुनचुन सब षासी ।।
जियत स्वारथीं सर्व भूलि तूं भाषत मेरा ।
इक हरिविन हरिरांम सगा कोई नहि तेरा ।।२४।।
सारा जन स्वारथ सगा दगादार सुत दार ।
माया छाया अभ्रकी विनसत लगै न वार ।।
विनसत लगैनवार देह क्षण भंगुर गावे ।
गज घोडा गढ़ गाँव ठांव के ठांव रहावे ।।
चले अकेलो आप बांध सिर पाप के भारा ।
तातैं भज हरिरांम वृथा सब आस पसारा ।।२५।।
भेरा भव तिरनां घणा मान्या मति उनमान ।
जप तप तीरथ शील व्रत योग यज्ञ पुनिदान ।।
योग यज्ञ पुनिदान इते करि मांन न आंनै ।
पढे वेद अरू भेद लहै कछु षेदन मांनै ।।
उपजत आन अचान विघ्न इन मांहि घनेरा ।
भवतारक हरिरांम नामसा कोउन भेरा ।।२६।।
जाकै तिलकन टोपियां माला मुद्रा नांहि ।
भगवाँ वसनन सीस पर इष्टलिंग नहिं आंहि ।।
इष्टलिंग नहिं आंहि नाहि उर्धातिन पनियाँ ।
गरै जनेऊ नांहि भेप धरि कछू हि न बनियाँ ।।

पाय जुगादिक भेस नांहि गिरही को ताकै ।
निरपष सो हरिरांम राम यह उरि घनि जाकै ॥२७॥
काया माया कोथरीं सदा थोथरी आहि ।
पीपर पान समान गति घरिभर थिर न रहांहि ॥
घरि भरथिरन रहाँहि आह ज्यूं बीज उजारी ।
सीत कोट मृगनीर भूत दीपक उन हारी ॥
वास भीतसु रीति अभ्रकी जैसी छाया ।
गरवन कर हरिरांम थिरन यो काची काया ॥२८॥
एकादश गीता पढ़ै पढ़ै वेद अरु भेद ।
चढे न पैडी तनकही गडै मोह मद पेद ॥
गडै मोह मद पेद छेद कस कर्म लहावे ।
छाज बजायाँ ऊंठ बूँट षातो न रहावे ॥
गूढ मंत्र मनमीत सन्त कथ गये अनेका ।
मुक्ति गढन पर चढन नाँर नीसरनी एका ॥२९॥
पापी तेरे पाप में नांहि किसी का सीर ।
सावै में सामिल सबै चेते किन वेपीर ॥
चेते किन वेपीर षेत पर यूं सब षाया ।
कहा शाहको लाह कहेगो मूल गँवाया ॥
भयो सबनतैं चोर ढोर ज्यूं फिरयो सुरापी ।
पापहरन हरिरांम नाम रुचि लियो न पापी ॥३०॥
हारो सबतैं दीनहो उरधारो गुरु ग्यांन ।
सारो कारज आपनों भज प्यारो भगवांन ॥
भज प्यारो भगवांन जुपै तूं चहै भलाई ।
चली जात नर आव नांव जो लष्योन जाई ॥
छण भंगुर नर तोर ओर हरिरांम निहारो ।
मूंवा मूंवारे मूढ़ जूवाज्यों जनमज हारो ॥३१॥

परचई दोहा—

वन्दन कर गुरुदेव को, चन्दन चरचत गात ॥
श्री गणपति कै पडत पग, विघन तुरत टर जात ॥१॥
चितवत चित में चातुरी, करण दोहरा छन्द ॥
वुध जन का यह काम है, मैं हूँ अति मति मंद ॥२॥
डीडपुर विख्यात है, मानों सुरपर धांम ॥
लोक हितारथ रहत है, हरीदास यति नाम ॥३॥
तिनके दरसन करन कूँ, आवत सव ही लोग ॥
दरस करत पातक भरत, अणदारु षत रोग ॥४॥
एक समै नागोर की, श्रुति भई है आय ॥
ज्यों बैठे त्यौं उठि चले, मनवत पहुंचे जाय ॥५॥

सोरठा—

वापी एक अनूप, पूर्व दिसि है नगर सूँ ॥
आस पास हैं कूप, सो साहव सूनो करी ॥६॥
दीर्घ योनि अग्यांन, वित्र जोनि तामें रहे ॥
नर नहि पावे जान, जाइ ताहि प्राणन हरे ॥७॥
बैठे तामें जाइ, गोरष वत धारे धारणा ॥
निश्चल चित लगाइ, हरीपुरुष हरि नाम सों ॥८॥
रजनी गत इक याम, वित्र योनि की वेर भई ॥
कहै दास हरिरांम, कर्म करण अपनो लग्यो ॥९॥

छन्द भुजंगी—

तवै भूत वोल्यो सुनो सिद्ध रामा, कहाँ कू सिधाया कहाँ ते जू आया।
उधारो सुखा कृपा मोहि कीजै, गुनो भेट मेरो अभैदान दीजे ॥१०॥

दोहा—

उदै भाग ताको भयो, छूटणहार अग्यांन ॥
मुख छादन छिटकाय करि, वोले कृपा निधान ॥११॥

भूत जोनि के कर्म तजि , अन्तर जपि हरि नांम ।।
दया दीन की दिल धरो , तब पै हो निज धाम ।।१२।।
दरस करत ही मति फिरी , लइ शिक्षा तिन पास ।।
टहल करन को चित धरयो , भयो जन्म अघ नास ।।१३।।

समाप्ति मे—

इहै श्री दयालजी की , पंच परचई नांम ।।
अनंत और परचा भया , कहै दासहरि रांम ।।१४।।
छन्द अर्थ इनको परषि , शुद्ध होइ जो नाम ।।
सब ही संत सुधार ज्यों , कहै दास हरिरांम ।।१५।।
।। इति ।।

।। महात्मा सिद्ध पुरुष स्वामी आत्मारामजी ।।

महात्मा हरिदासजी महाराज के पश्चात् होने वाले सिद्ध महात्माओ मे स्वामी आत्मारामजी का भी प्रमुख स्थान है। आपके जन्म का काल व आप किस शिष्य परम्परा के थांभे मे हुये तथा आपका आवास स्थान अनिर्णीत है। आपकी कृति जो प्राप्त है वह अपूर्ण है। आपका काल अठारहवी के द्वितीय चरण से उन्नीसवी सदी के प्रथम चरण तक का है। आपका देहावसान सम्वत् १८१६ फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा को जोधपुर के किले में हुआ था। ऐसा उल्लेख जोधपुर राज्य का इतिहास भाग २ के पृ० ७०६ पर उद्धृत है। यह इतिहास पुरातत्व के परम प्रेमी माननीय गौरीशंकरजी हीराचन्दजी ओझा द्वारा लिखित है।

यह प्रसंग महाराजा विजयसिंहजी के राज्य काल की घटनाओं के निरूपण मे आया हैं। महाराज विजयसिहजी का राज्यकाल सम्वत् १८०६ से १८५० तक का है। वे सम्वत् १८०६ मे तेईस वर्ष की अवस्था मे जोधपुर की राज गद्दी पर आसीन हुये थे। महात्मा आत्मारामजी से उनका परिचय उनके पिता बखतसिंहजी के साथ आते-जाते रहने से वचपन मे ही हो गया था। और वे महात्मा आत्मारामजी में गुरु भाव रखते थे। उनको जोधपुर का राज्य मिलने का हेतु भी महात्मा आत्मरामजी की कृपा माना गया है। जोधपुर की राज्य गद्दी पर बैठने के पश्चात् विजयसिंह जी ने महाराज आत्मारामजी के प्रति अपनी और भी श्रद्धा प्रदर्शित की। उनका जोधपुर किले मे देहावसान तथा वही किले मे उनका दाह संस्कार तथा समाधि

निर्माण ही इसके पुष्ट प्रमाण हैं कि महाराज विजयसिहजी की उनमे परम श्रद्धा थी महाराज विजयसिहजी ने जोधपुर राज्य के उस समय के प्रमुख अन्य किलो मे भी उनकी समाधि स्थापित कराई थी जो आज तक विद्यमान हे। डीडवाणे मे उनका भडारा भी महाराजा ने इस वर्ष के फा. शु. मे कराया जिसका उल्लेख भडारीजी की रसोईयो की बही मे मिलता है। उनके इस निधनकाल से उनका जन्म अठारहवी सदी के प्रथम चरण के अन्त का माना जा सकता है। उनका रचनाकाल अठारहवी का उत्तरार्द्ध तथा उन्नीसवी सदी का प्रथम चरण स्पष्ट है। महात्मा आत्मारामजी की रचना सुसम्वद्ध तथा अनेको व्यावहारिक व पारमार्थिक सिद्धान्तो का निरूपण करती है भाषा परिमार्जित है।

रचना मे विविधता भी है साषी, कुन्डलिये, शब्दो, रेषते, छन्द, मनहर चान्द्रायण, झूलने पद मिलते है। रचना मे कुन्डलियो का आधिक्य है। अपूर्ण व अल्प प्राप्त रचना जो मिली है उसी का अंस आगे दिया गया है। उससे आप जान सकेंगे कि वे केवल सिद्ध महात्मा ही नही. अच्छे रचनाकार भी थे।

॥ आत्मारामजी की कृति ॥

कुण्डलिया :—

आतम के गुरु परमात्म, कीन्हें सारे थोक ॥
सर्वसुखी तुम शरणतें, तें न्हाठे सारे शोक ॥
नाठे सारे शोक प्रभु, तुम कृपा कीन्ही ॥
राम नाम सी चीज, काढि हिरदे तें दीन्ही ॥
आत्म राम नाम को सुमरे, मिटै जन्म के जोग ॥१॥
आत्म के गुरु परमात्मा, कीन्हे सारे थोक ॥

इंदव—

नमो गुरुदेव दयाल दया करि, ज्ञान की चाल बताय कह्यो घर हेरो ॥
काहे को तीर्थ जायर खेद करे तु, काहे को काशी मथुरा वास वसेरो ॥
अडसठ तीर्थ है तन मांहि जू, वाहर भरमें दुःख घनेरो ॥
जन आतम गुरुदेव मिल्या विन, भ्रम न भाजै अधिक अंधेरो ॥

साषी—

आत्मराम सुखी किया, सोरा रहु सारै ॥
अवरूँ सारू कछु नहीं, सतगुरु शिर म्हारै ॥

कुण्डलिया :—

राम हमारे शाह जी, अवर राम के जन ॥
निशदिन हरि सुमिरण करे, करि करि निर्मल मन ॥
करि करि निर्मल मन, ताहि को सुमिरण कीजै ॥
रसना सूँ ल्यो लाइ, शब्द मुष अमृत पीजै ॥
आतम सतगुरु सेव सूँ, फिर नहि धारु तन ॥
राम हमारे शाह जी, अवर राम के जन ॥२॥
सन्त शब्द न्यारे नहीं, राषो हृदय मांहि ॥
सत्य प्रमाणी भाव सूँ, नांव नांव लग जाहि ॥
नांव नांव लगि जाहि, पाइये मुक्ति वसेरा ॥
निज तत परसै जाय, काल का पड़े न घेरा ॥
आत्म सुमरण सुखलिया, दूजा दो जग जाहि ॥
सन्त शब्द न्यारे नहीं, राषो हृदय मांहि ॥३॥
करसिर धरिये साध के, सेवग चरणों लाय ॥
द्रष्टि देत शीतल भया, दोन्यूं एकही भांय ॥
दोन्यों एकही भांय, पांय सतगुरु के लाया ॥
निशदिन सुमरैं राम, झूठ दरसै सब माया ॥
आतम कान फूंकजे सिष करे, धन ठगने का डाय ॥
कर सिर धरिये साध के, सेवग चरणों लाय ॥४॥
सकल सन्त है राम के, कुछ करनी में भेद ॥
सबही मिल सुमरण करो, करो काल का छेद ॥
करो काल का छेद, वेद इक याही पुकारे ॥
सुमरण निर्मल होय, साष इक रांम सँवारे ॥
आत्म साध तहां निर्वैरता, द्रोह राम विच्छेद ॥
सर्व सन्त है राम के, कुछ करणी में भेद ॥५॥
उत्तम कहि कहि डूबिये, नहीं पायो तत सार ॥
शूद्र वर्ण के में सुण्यो, राम नाम अधिकार ॥

राम नाम अधिकार, कलू में सार बतायो ॥
एकादश में कृष्णदेव, अपने मुख गायो ॥
आत्म युग युग के धर्म, समै समै अधिकार ॥
उत्तम कहि कहि डूबिये, नहीं पायो तत सार ॥६॥
षट् कर्म कीजै माँहिला, हत काम क्रोध अभिमान ॥
मोह जीत साचा मनाँ, द्रोह लोभ मद पान ॥
द्रोह लोभ मद पान, राम भजिये इक तारा ॥
मैला सब परिणाम, झाड़ कर कीजै न्यारा ॥
आत्म यह शिक्षा षट्कर्म की, ब्रह्म होइ करि ध्यान ॥
षट्कर्म कीजै माँहिला, हत काम क्रोध अभिमान ॥७॥
ऐ दोऊँ डरता भला, हरिजन भगता नारि ॥
खान पान रस भोग तजि, मन चांचल्य निवारि ॥
मन चांचल्य निवारि, मारि दूजा दुष दाई ॥
सतगुरु गाया साच, और की वात न काई ॥
आत्म रमता राम पति, निसदिन हृदय धारि ॥
ऐ दोऊँ डरता भला, हरिजन भगता नारि ॥८॥
हणूं घनूं कर गाइयो, राम नाम तत सार ॥
ता प्रसाद तैं लंघिया, गया समंदा पार ॥
गया समंदा पार, सार सोधी इक सीता ॥
हुआ लंक परवेश, दास तहां भये वदीता ॥
आत्म नांव सुमरण किया, बहुत पतित भये पार ॥
हणू घणूं कर गाइयो, राम नाम ततसार ॥९॥
राम कहै सो साध है, दूजा साधन झूठ ॥
राम नाम साधन विना, होसी सब नर ऊंठ ॥
होसी सव नर ऊंठ, वूंट काँटन को चरहीं ॥
ऊपर मुक्ता भार, धार ढोते बहु फिरहीं ॥

आत्म नाम सुमिरण किया, प्रगट चारयूं पूंठ ॥
राम कहै सो साध है, दूजा साधन झूंठा ॥१०॥
मुष मीठा मैला मना, परनामों की बांणि ।
झूंठ कपट अरू डिंमता, वै साधु मत जांणि ॥
वै साधु मत जांणि, वाँणि ठग केरी दरसे ॥
छुप छुप हैस स्वरूप, जाय माया को परसे ॥
आत्म धर्म हीन जगमे फिरे, तजि हरि गुरु की काणि ॥
मुष मीठा मैला मना, परनामों की वांणि ॥११॥
जैसो कालो कोयलो, मूढ़ हृदय यों जांणि ॥
मन ममता में कल गयो, फेर लेण की वांणि ॥
फेर लेण की वांणि, वांणि सुमिरण की नांहि ॥
वाहर हां हां करै, वादलो वीवज मांहि ॥
आत्म सौ कोड़ पात्र कर पूज्या, पाँडव जिग में आंणि ॥
जैसो कालो कोयलो, मूंढ हृदय यो जाणि ॥१२॥
संतन डाकी क्यूं कहौ, डाकणि षाया तोहि ॥
घर बाहर सबको दल्या, रह्या न वाकी कोहि ॥
रह्या न बाकी कोहि, हाथ सूं करी पवारी ॥
राम राय का कौल, गई चूक्या बहु भारी ॥
आत्म संतजन मोर रहे, राम आसरै होइ ॥
संतन डाकी क्यूं कहो, डाकणि षाया तोइ ॥१३॥

साषी—

राम कहै ताका मुष मीठा, थूक तुम्हारे मुंह ॥
देख राम की आत्मा, पापी थूक्यो क्यूंह ॥

कुण्डलिया—

कहते केवल राम ही, लडै भेष बहु भाइ ॥
गोला गोली सेल सिर, झूठ मोरछै आइ ॥
झूंठ मोरछै आइ, ढ़ाल तरवार संजोई ॥

छुरी कटारी साज सूज, चरचा बहु होई ॥
शब्द एक निरवाण, छूटै हरिजन हृदय ते ॥
कर्म दुष्ट गये भागि, राम ही केवल कहेते ॥१४॥

कीगर वाजै भैंस पर, रूँथि रूँथि षड षांहि ॥
स्वर्ग नर्क की गम नहीं, षेलै नरकाँ मांहि ॥
षेलै नरका माँहि, रडक पय पीवे मीठा ॥
टको पईसो देष, नैन इमृत रस बूठा ॥
आत्म रामजनां सूँ वैरता, आप लेण की चाहि ॥
कीगर बाजै भैंस पर, रूँथि रूँथि षड षाँहि ॥१५॥

जगत भगत सब एकसे, विरली जगह विवेक ॥
मांहि मांहि से राम जन, जहां भक्ति की रेष ॥
जहां भक्ति की रेष, सेष दूजो नहि जाणे ॥
तन मन आपो अरप, राम सूं वाणक वांणे ॥
आत्मराम उपास में, रहे राम ही एक ॥
जगत भगत सब एकसे, विरली जगह विवेक ॥१६॥

राम कहै सो निरंजनो, दूजा अंजन मांहि ॥
भेष भला भगवन्त का, शरणे पेट भरांहि ॥
शरणें पेट भरांही, जाइये तीरथ न्हावा ॥
बाहर हरि क्यूं पाय, षोजिये अपणा आपा ॥
जन आत्म भज राम कूं, बहुत सन्त गये जाहि ॥
राम भजै सो निरंजनी, दूजा अंजन मांहि ॥१७॥

शवदी—

आत्मराम भेष बहु बिगड्या, लागो सेवा पूजा ॥
मांहि बाहर सबही देष्या, राम बिना नहिं दूजा ॥
आत्म राम भेष बहु भरमी, पाथर पांणी पूजै ॥
साध कहावे कई कसाई, जीव दया नहीं सूझै ॥१८॥

आत्म हरिजन ह्वै सौ परिहरे, निस दिन राम उछाव ॥
वाल्मीक था सरगरा, अन्तर ऊजल भाव ॥२७॥
जांति पांति जन कै नहीं, सुमरण निर्मल होइ ॥
दया ज्ञान द्रढ़ इन्द्रियां, साधु कहिये सोइ ॥
साधु कहिये सोइ, वेद पुराणन में गावे ॥
अंजन भंजन ना करै, हाथ नहीं द्रव्य लगावे ॥
आत्म ममता आठ प्रकार की, उरमें राषे गोय ॥
जाँति पाँति जन कै नहीं, सुमरण निर्मल होय ॥२८॥
विरक्त गृही नजीम है, काहू जाचै नाँहि ॥
अण इच्छा का टूकडा, ल्यावे वसती माँहि ॥
ल्यावे वसती माँहि, छाँणि जल भोजन लेवे ॥
रूँषे विरछे वासकरे, राम रसना सूं सेवे ॥
आत्म ऐसा सन्तजन, वास करै हरि माँहि ॥
विरक्त गृही नजीमि है, काहू जाचै नांहि ॥२९॥
गावँ का गुवाडा घना, नहिं सिंघा का बाग ॥
जिहि मार्ग जब अणसरे, तिहिं तिहिं होइ आवाज ॥
तिहिं तिहिं होइ आवाज, गाज सोही पुर होइ ॥
हम शरणागत जीव, तारिये हरिजन मोहि ॥
आत्म सतगुरु हंदा सूरवाँ, कर्म बांध सिर पाग ॥
गावँ का गुवाडा घणां, नहिं सिंघा का बाग ॥३०॥
भड भाजै भड ही लडै, भड ही करे प्रकाश ॥
भड भाने सब कर्म कूं, एक शब्द के जास ॥
एक शब्द के जास, आस सतगुरु की जीवे ॥
रसना सूं लिब लाइ, शब्द मुष अमृत पीवे ॥
आत्म सतगुरु सूरिवां, वसै राम के वास ॥
भड भाजै भड ही लडै, भड ही करे प्रकाश ॥

रेषता—

सन्त के लक्षण की बात अब कहत हूँ , देषकर मान अरु धार उर मांहि
काम अरु क्रोध मद लोभ लालच नहीं, जगत के सुष में रंच चित नांहि
इन्द्र के लोक की वासना ना करे , विधिलोक वैकुंठ पुनि नाँहि धावे।।
कहत आत्म याह सन्त के लक्षणा , राम कृप करे ताहि पावे ।।३२।।

खान अरु पान सू रुचि अधिकी रहे, बोलवे चालवे वहुत ठंडा ।।
तन जोगी कियो मन रह्यो जगत में , भाई रु बन्धु जाइ मंडा ।।
जोग की जुगति की नकल लीयां फिरे, राम के नांव को छाडि ठंडा ।।
कहत आत्म इक शब्द निर्वाण विन , खूड में फिरत ज्यूं बैल डूंडा।।३३।।
ऊंच अरु नीच फिर षैच चर चातणी, वचन ही वचन से वाढ़ वाढ़े ।।
साच को छाड करि झूठ आगे करे , ज्ञान देवाल सूँ त्यौर चाढ़े ।।
तास कूँ दोष दे मन पाप पूरवतणां , पोट आपैतणी नांहि छाढ़े ।।
कहत आत्म इक राम कृपां विनां , विप्र द्विज रोढ़ियो लात काढ़े।।३४।।
कामना मारियो जगत भरम्यों फिरे , कामना राम विना कौन पूरे।।
राम कूं छाडि के आन पूजै सदा , तास का दोष सूं गर्भ झूरे ।।
साच कूं छाडि के झूट कूं केवले ,साच अरु झूंठ को नांहि हेरे।।
कहत आत्म कोई राम जन सूरमाँ , राम ही राम कहै आन फेरे ।।३५।।

सांच की राह को छाडि के छाडि के , झूट की राह ही जहांन चाले।।
साध की संगत सों दूर भागौ फिर , जगत ही जगत में बहुत म्हाले।।
ओर विक्रम गीत गावे घणां , राम की भक्ति को देडि पाले ।।
कहत आत्म एसी आलम अंध है , इमृत की सीर में जहर घाले ।।३३।।

पद —

सतगुरु कहिये पद अविनाशी , जाके दरस कर्म सन्यासी ।।टेर।।
तीर्थ के तीर्थ प्रति दाता , नव नाथ पर है हरिनाथा ।।
घट पट राम सकल भरपूरा , भ्रमत फिरत वताते दूरा ।।
मात पिता सुत वंधु दारा , स्वार्थ हेत कहै म्हारा ।।

परमार्थ नहिं अपणा, सतगुरु में हरि चौरासी तजणां ॥
आत्म राम राम रस पीवै, फिर फिर मरता मृतक जीवे ॥१॥

राग बिलावल —

थारो विडद संभालियेजी, नांह्न होइये न्यारा ॥
वेर वेर संतन मई, प्रगट्यो वहु वारा ॥टेक॥

भंजारी सुत राषिया, अगनि वहु धारा ॥
जन प्रहलाद उवारिया, हिरणाकुश मारा ॥
में मति हीणा वापजी, मनका अनत पसारा ॥
मैं जाणू मने हरि मिले, यों लोटत छारा ॥
अरणी मेरे कछु नहिं, शरणागत थारा ॥
अलियुग धर्म अपार है, राषो सिरजन हारा ॥
कहै आत्म क्यूं वरणिये, तव गुण वेचारा ॥
आदि अंत अरु मध्य में, तारे पतित अपारा ॥२॥

कर पकरो करुणामई, या के नहिं कोई ॥
सुषिया या संसार में, कर पकर्यो सोइ ॥टेक॥
पांच तत्व का पूतला, मोटा मोह पसारा ॥
जहाँ जाऊँ जहाँ संग रहे, क्यूं छूटे वेचारा ॥
काम क्रोध भवजल भरया, सोइ तन म्हारा ॥
स्वर्ग देव मधि मानवी, पाताल पसारा ॥
उलट पलट मन यूं फिरै, तनका नहिं सारा ॥
अगम नदियों की गम नहीं, जाणे संत पियारा ॥
ढूंढ ढूंढ वहु हेरिया, नहिं कोऊ शरणा ॥
सतगुरु ही की महरतें, पाये तव चरणा ॥
सो सो तन अपणां किया, सो मतलव ल्याही ॥
आत्मराम व्यापी कहो, तुम वैठे माँही ॥

रे तमचर जन वोलना , रहु रहु तूं छाने ।।
तै वोल्या तन थर हरे , प्रभु तोही जाने ।।टेर।।
महल वण्या निज नेमका , प्रेमा सेज विछाने ।।
सुमरण कर सहाँई मिली , ऐसा सुष विलसाने ।,
झूठा सुख संसार का , वुद् वुद् सा जाने ।।
जे जन हरि सूं रत भया , सतगुरु निज ग्याने ।।
कह आत्म हरि विरहणी , पिया मन माने ।।
या विरहा कोई जन लहै , आवागमन न आने ।।४।।
धिक् धिक् जिनका जीवणा, जिहिं गमत न जाँणि ।।
जाका जीवण सफल है , सुमरण रति माँणि ।।टेर,।
काम क्रोध मद मोह मई , लोभन की पासा ।।
नरतन विडही विगोइया , नरकन में वासा ।।
शील दया संमुख रहे , बहु ज्ञान विचारा ।।
सुमरण सूं हिलमिल रहे , जाका जीत बसारा ।।
जैदेव सकल शिरोमणि , ब्राह्मण कुल ऊंचा ।।
सकल भरमना मेट करि , साधी ब्रह्म सूचा ।।
मात पिता तज व्यास से , मेटी कुल पासा ।।
शुकदेव रंभा परिहरी , किया ब्रह्म विलासा ।।
राजपाट तज भरथरी , सोला सै रांणी ।।
सांई को सिदकै करी , नगर उजैणी ।।
गुरु भक्ता समता मता , विरकत संसारा ।।
आत्म राम रामे मिल्या , उतरे भव पारा ।।५।।
ऐसी भक्ति न कीजिऐ , नर तन विडद् जांही ।।
सुमरण केवल सार है , हिलमिल हरि मांही ।।टेर।।
लोभ मोह द्रोह नांव नाव में, वैठे फल कांही ।।
सेवत ही वहि जायगा , पार पावे नाँही ।।

जोग जिज्ञ तपस्या तुला, तीर्थ व्रत आँही ॥
तन सुष कीर्ति कारणे, सबके मन मांही ॥
न्हाणा धोणा गावणा, छापा तिलक वणाही ॥
गल माला मन भावती, भ्रमत जग मांही ॥
रामदयाल सतगुरु भया, राषो उर मांही ॥
भूलाँछूं कोई मत मिलो, भूल्यो भरमांही ॥
दया त्याग सुमरणरता, इकतारी सासा ॥
आत्मराम रामे मिल्या, दूजी नहिं आशा ॥६॥

राग रामगिरि—

सुण्यो में भगत सहाय विड़द तेरो,
स्वर्ग पयाल जमीं भरपूरा, जहां ध्यायो तहां नेरो ॥टेर॥
द्रुपद सुता को चीर वधायो, अनत कियो अधीकेरो ॥
भीड़ पड्या पहलाद् उबारयो, धर वपु नाहर केरो ॥
केवल कूवा सैन धना से, सबको कारज सेरयो ॥
घाटम वचन सत्य करि भाष्यो, वर्ण तुरी को फेरयो ॥
नरसी के माहेरो ल्यायो, तांन मान सुण गहरो ॥
सात कमीण नगर सब सारो, चारूं फलसा पहरो ॥
त्रिलोचन के हल तै वाह्यो, धना को षेत निपायो ॥
पांच ग्रास पंचायण वाज्यो, विपरा मान मरायो ॥
झूठे वेर भिलनी के पाये, पट मीठो नहिं फेर्यो ॥
दुर्योधन के महल त्याग करि, विदुर झूपड़ो हेर्यो ॥
सब देवन कूं भीड़ लंकपुर, भगत विभीषण भेरो ॥
जाके हित रावण कुल विनश्यो, चरित जान की केरो ॥
मैं मति हीन अल्प बुद्धि मेरी, मांहि ममता को घेरो ॥
कहैं आत्मराम विन कोण छुड़ावे, जन्म मरण को फेरो ॥७॥

राग कानडो—

तुम भली भली करि राम राई, शरणागत पत रही सदाई ॥टेर॥

तेरे विडद को कहा वषाणो, वाल्मीकि शिवरी जग जाणो ॥
अजामेल गणिका सदन कसाई, कींता धाठम रैदास बलाई ॥
अति उद्यम कर उदर भरते, अति आधीन रहत सब नरते ॥
तब प्रताप कमी नहि कांही, हरिगुरु बिन ऊणा रति नांहि ॥
मैं मेरे मनको कृत जान्यो, भांति भांति सतगुरु परवान्यो ॥
मन सूं डरे सुमरण ल्यो लावे, ताते सहज परम पद पावे ॥
आगे करी अवै तुम करल्यों, पतित उधारन हरि नहिं बीसरस्यो ॥
आत्म राम राम तुम शरणें, कोन बेर लागे तुम करने ॥८॥

राग मारू—

राम धन षरा षरी का दाम,
सूरा है ताही मिलै, नाहिं है कायर काम ॥टेर॥
कागद केरी कोटड्यां, कुण जीत्या कर राड़ ॥
एक फटुकै उठ चल्यां, चौरासी वे पाडि ॥
अकडोड्या गेढ़े भरचा, धरि रेसम का भाव ॥
जाइ दिसाबर षोलिया, लाभ मिल्यो नहिं पाव ॥
हरिजन चढ़े दिसावरों, राम नगां भरि नांव ॥
चौरासी चौकी चुकी, आत्म आनंद हुवा वधाव ॥९॥

राम तुम गुणवंता हो,
प्रीति निभावण प्रीतमाजी, रमता सकल मांहीं ॥टेर॥
तालावेली विरहणीजी, जोवे पीवकी बाट ॥
कब आवो घर आंगणे रामा, कब लंघो औघट वाट ॥
नैणा नीर झरहरैजी, रजनीं नींद न थाइ ॥
पड़त पुरांणों पीजरो रामा, कब सुष दोगे आइ ॥
काम क्रोध मद मोह कोजी, आंण पड्यो झकजोल ॥
जीव भवै तुम देशडेजी, इहां पड़ी है षोल ॥
पडदा पोसी कर रह्याजी, मोहि कुचीली जांणि ॥

नेड़ा कसणां दूर हैजी, सुति कठिनाई पीव ॥
करमा पड़ोसण क कह्या, मति तरसावो जीव ॥
आवण भावण हो रह्याजी, दुष पावत तन मांहि ॥
आत्म के परमात्मा जी, दुख मेटि करो क्यूं नांहि ॥१०॥

साषी—

जाकै सेवग रामजी, कमी नहीं कांई ॥
आत्म दशूं दिशा भरपूर है, अण चाह्या आई ॥१॥
सब कोई चाहे मान कूं, मांगी मिले न मान ॥
आत्म राम रीझै बिना, हरिजी सुणे न कान ॥२॥
माया की महिमा करे, राम जनां सूं पूठि ॥
आत्म ऐसे जगत सब, गये नरक में ऊठि ॥३॥
आत्म दुनिया दोगली, आदि अंत सो जानि ॥
मुख सूं मीठा बोलिये, मांहि कपट की खानि ॥४॥
आत्म दुनिया दोगली, याने क्यूं मति मति कहो ॥
सुमरण करो राम को, चुपचाप बैठ रहो ॥५॥
आत्म निद्रा नागणी, शीश बैठ करि खाइ ॥
मिणियो तोडी आवती, सकैक नांव भुलाइ ॥६॥
बिना कमाइ धन घणां, ठांम ठांम कूं जाँहि ॥
आत्म सुमरे राम कूं, राम निधि घर माँहि ॥७॥
हरिजन राजी राम सूं, रूंष रेत अरु वास ॥
सीत निवारण गूदड़ी, षुध्या निवारण गास ॥८॥
डाल पात फल फूल में, सब ठैं व्यापक राम ॥
आत्म जोडो राम सूं, नाहिं तोडण सूं काम ॥९॥
आत्म सुमरो राम कूं, चेत करो जीव देपो ॥
ऊंच नीच सब जीव राम के, भिन भिन लेसी लेपो ॥१०॥
आत्म माडा चाहिये, जबही जागै भूप ॥
जैसो भेजे रामजी टालै, सोइ चूक ॥११॥

हिरदै राचे राम सूं, सतगुरु राषे शीश ॥
आत्म एवा जीव सूं, हरि मिले बिसवा बीस ॥१२॥
सतगुरु का सारा नहिं, नहीं शब्द का जोर ॥
आत्म उलट गुरांसूं फिर मंडे, सो वड़ा हरामी घोर ॥१३॥
अपणैं अपणैं पेट की, परी सबन को चिंत ॥
आत्म हरि विन और को, पूरणहारा नित ॥१४॥
तेरा रक्षक राम है, वलवन्ता जोधा ॥
आत्म निंदक क्या ? करे, तिणहुँ सों वोदा ॥१५॥
जैन धर्म की वातडी, सवै रही षाली ॥
आत्म यूं मनि वांध्या हरि मिले, तो मैं वांधू राली ॥१६॥
हम चेतन आगे किया, टाले सबही दोप ॥
आत्म जननी ज्यूँ रमता वसै, हम कूं देवे पोष ॥१७॥

चौपई—
अग्नि न टाले जल नहि दहे, राम अमल में माता रहे ॥
अन भै वसै ब्रह्म का वास, आत्म नहि रांधै कहिये निज दास ॥

॥ इति श्री आत्मारामजी को कृत सम्पूर्ण ॥

॥ स्वामी आत्मारामजी के शिष्य जगरामजी की रचना ॥

जन आत्मराम दयाल, अधिक महिमां घन लायक ॥
इंमरत वरसै मेह, ज्ञान वैराग्य मुक्ति के दायक ॥
सुषदेव ज्यूं सन्तोप, त्याग जनक ज्यूं सब कुछ जाणे ॥
कवीर ज्यूं निहकपट, गोरप ज्यूं ज्ञान वषाँणें ॥
माँनो धूज्यूं ध्यान प्रहलादज्यूं, प्रतिज्ञा पकर कहै सुषराम ॥
जगरामदास वन्दन करे, वारंवार प्रणाम ॥१॥
नमो नमो गुरुदेव, पशु सूं मनुषजू कीया ॥
हरया पाप संत्ताप, सुबुद्धि दे अपणा कीया ॥

काया कागसूं हंस, ज्ञान की गाथा गाई ॥
राम नांम रस पाय, विपति सब दूर भगाई ॥
समदृष्टि रहे सर्व पर, दीनन के रिछपाल ॥
जगरामदास कर जोर वीनवे, नमो आत्मराम दयाल ॥२॥
नमो आत्मराम दयाल ज्ञान, मुक्ति वैरागज भरिया पूरा ॥
नही आस असलाक, भजन में निसदिन सूरा ॥
रच्या धणी सूं साच, झूठ कपट की पासी त्यागी ॥
जीत्या तन का दोष, तपत तृष्णा सब भागी ॥
घणा गहर गंभीर, सरवर ज्यूं शीतल ही करै ॥
जगरामदास गुरु चरण परसता, ताप तप्त सवही हरै ॥३॥
सतगुरू सा दातार, तीन लोक में नजर न आया कोई ॥
जिन दियो राम रूपधन, हर्ष प्रसन्नता होई ॥
मौज दई अनमोलसी, दुख दारिद हरिया ॥
कलह कल्पना मेट सब, सुषसूं सूभर भरिया ॥
वार वार कहिये कहा, बहुत किया उपगार ॥
जगरामदास वंदन करै, नमोगुरू सिरजन हार ॥४॥
भया काग से हंस, कृपा यह सतगुरू कीन्ही ॥
मन पाया विश्राम, जड़ी संजीवन दीन्ही ॥
कीया सुष प्रवेश, लेश दुषका नहिं जाणों ॥
मुष सूं जपिये राम, वचन सत शुभग बषांणों ॥
घणा दुषी हा जगत में, होता बहुत वेहाल ॥
जन आतम कृपा करी, कीन्हा तुरत निहाल ॥५॥
नमो नमो महाराज, अयोनी अलिपत देवा ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, शेषहू लषेन भेवा ॥
घणों तेज प्रकाश, वर्ण कछु कहत न आवे ॥
नैण नासिका नांहि, दास निज बुधि सम गावे ॥

उत्पति प्रलय सबकरो, न्यारा रहो निरधार ॥
जगरामदास वन्दन करे, नमो नमो निराकार ॥६॥

पद—

पतित उधारन प्रगट भये, जन आत्मराम दयाल हो ॥
जाके सिरपर यह सतगुरु है, ताहे लगेन जमकी ज्वाल हो ॥टेर॥
भवताप निवारन जन्म सुधारन, करुणानिधि कृपाल हो ॥
राम नाम निज नाम द्रिढ़ावत, केई कियेजु निहाल हो ॥
अशरण शरण सदा सुषसागर, ज्ञान सिन्धु गंभीर हो ॥
भजै निरंजन अंजन तजि कै, वसुधा ज्यूँ मन थीर हो ॥
नर नारी सबही पद परसत, भाव भरया उरमांही हो ॥
मेटो कर्म भर्म मम जीवके, उभय दीर्ध दुख फंदा हो ॥
तुम हो अगम कहा में गाऊँ, जगरामदास तव वंदा हो ॥
आत्मराम दयाल के, शरणों मन रषिये ॥
जिनकी कृपा भगवान भज, आनंद रस चषिये ॥टेर॥
भ्रम कोटि मम उर वसे, मांही फंद चौरासी ॥
तुमरी कृपा सों टूटि है, यह गढ़ मेवासी ॥
तृष्णा तपत तन में घणी, वहु ताप जरावे ॥
तुम चरणोदक पीवतां, तन शीतल हुय जावे ॥
कवहुन वंछत स्वर्ग में, ना मुक्ति सुहावे ॥
तुम शरणे है सुष इसो, कछु कहत न आवे ॥
गरीबनवाज गुरुदेव है, निरंजन अनुरागी ॥
जगरामदास एसे संत कूँ, कोई सेवे बड़भागी ॥२॥

राग गुड—

गुरु देवन के देवारे, जाकी तनमनदे कर सेवा रे ॥टेर॥
जिन राम नाम धन देवा, जासूँ काल करे नहीं केवा ॥
गोरष शेष शिव संगा रे, वे गुरु की शरण अभंगा रे ॥

सनकादिक नारद वरणे रे, गुरु चरणां नित शरणें रे ॥
धू प्रहलाद कवीरा रे, गुरु की शरण मधीरा रे ॥
जन हरीदास हरि पूता रे, वह गुरुचरणां अवधूता रे ॥
सर्व साध सुष पावे रे, सव गुरुहू के गुण गावे रे ॥
वेद पुराण बनावे रे, हरि गुरु कृपा तें पावे रे ॥
जन आत्म से गुरु देवा रे, जगरामदास करि सेवा रे ॥

॥ आत्मारामजी के अन्य शिष्य चतुर्भुजजी की ॥

* वन्दना *

प्रथम चरण सतगुरु के लागूँ, दुनिये संत अपारा ॥
गुरु प्रताप नांव कूँ पाया, मेट्या भ्रम हमारा ॥
सतगुरु मेरे शीश विराजै, मैं सतगुरु का चेरा ॥
नाम दीप दे किया उजाला, मेट्या भ्रम अंधेरा ॥
सतगुरु सेती उरणां नाही, अब कहो कहा चढ़ाऊँ ॥
तन मन लेकर अर्पण कीन्हो, चरणां शीश नवाऊँ ॥
नव निरंजणी ओर कहावे, ऐसी करणी नांहि ॥
जन आत्म तो भये उजागर, सकल भेप के मांहि ॥
इच्छा आया टुकड़ा पावे, नहीं जगत की आशा ॥
कर करवा कोपीन गूदड़ी, राम नाम विश्वासा ॥
सतगुरु सहजां आप विराज्या, हेरयां कबहू न पावे ॥
राम नाम की टेक बँधावे, वार वार समझावे ॥
जे आत्म को कह्यो करे तो, पाप रती नहिं राषै ॥
कर्मी जीव कछू नहि जाणे, दास चतुर्भुज भाषै ॥३॥

॥ इति ॥

सन्त कवि रूपदासजी

निरंजनी सम्प्रदाय के परवर्ति रचनाकारों में रूपदासजी का भी उचित स्थान है। रूपदासजी सेवादासजी महाराज के शिष्य सिद्धपुरुष महाराज अमर-पुरुषजी के शिष्य थे। रूपदासजी हरिदासजी महाराज के शिष्य वड़े षेमजी की सातवी पीढ़ी मे हुये।

अमरपुरुषजी का जन्म सत्रहसौ पचपन वैराग्य धारण सत्रहसौ पिचहत्तर अवसान काल १८४२ है। वैराग्य धारण के पश्चात् साधना सिद्धि मे भी समय लगा है अतः इनकी शिष्य परंपरा का आरभ सत्रहसौ नव्वे के आस-पास माना जा सकता है। रूपदासजी का दीक्षाकाल भी अठारहवी सदी का अन्तिम चरण है। रूपदासजी ने स्वामी सेवादासजी की परची लिषी उसकी पूर्ति का काल उनने १८३२ लिखा है। अतः इनका रचनाकाल उन्नीसवी शताब्दि का पूर्धाद्ध सिद्ध होता है। उनका शिष्यत्व तथा जन्मकाल अठारहवी का उत्तरार्ध प्राप्त होता है। रूपदासजी ने वाणी की रचना की है अत. वे साधक सन्त थे एसा माना जाना असंगत नही। उनकी प्राप्त वाणी की रचना पूरी है या नही उससे स्पष्ट प्रतीत नही होता। उनकी रचना का उल्लेख संग्रह की कई पुस्तको मे प्राप्त है। सबसे प्राचीन इनकी रचना वडू के संग्रह को पुस्तक नं० ५ मे है जिसका लेखन काल सम्वत् १८२६ है। इसमे इनकी फुटकर रचना तथा सेवादासजी की परची लिखी हुई है। मैने इनकी रचना के उद्धरण लाधडिये ग्राम से प्राप्त उस गुटके से लिये है जिसका लेखन काल १८६६ श्रावण शुक्ला एकादशी है। इसमे वाणी के प्रारभ तथा अन्त मे फुटकर शब्द का प्रयोग है इसी से पूरी वाणी यही है इस मे भ्रान्ति है।

समाप्ति पर वाँणी का जोड सवा दो हजार लिखा है। इनने साषी, सवैये रेखते, कुण्डलियें चान्द्रायण, कवित्तो मे रचना की है अन्त मे पद है। रचना से प्रतीत होता है कि यह साधक सन्त होते हुये भी शिक्षित व विज्ञ भी थे।

।। अमरपुरूजी के शिष्य रूपदासजी की रचना ।।

साषी भाग गुरूदेव का अंग

वन्दना—

नमो नमो गुरुदेव तत्ववेत्ता भ्रमभंजन।
निरविकार निजरूप विपुल अघ मेटण कारन ।।

सुष सागर निहिं पार दरद दुष सबै निवारन ।
पूर्ण परमदयाल सरणदे काज सुधारन ।।
निर्मल ग्यान विचार सार सत हृदय धारण ।
परमदेव परब्रह्म परमसुषदे निसतारण ।।
परसे पूर्ण कांम पार भवैंसिन्धु उतारन ।
ज्ञातन तेरा पार अगमगति देव निरंजन ।।
दीन हीन जगजीव पीव हो तुमही तारन ।
अन्तर्यामी देव चरनरज मम सिर धारन ।।
जन रूपदास बलिजाई भगति दे जीव उधारन ।।१।।

साषी—

गुरू गोविन्द वन्दन करै, नित प्रति वारंवार ।।
रंक जीव धनवंत करै, सतगुरू वड़ दातार ।।२।।
जन रूपदास वंदन करै, चित चरनां उर भाव ।।
भक्ति ग्यांन वैराग की, सतगुरु करो पसाव ।।३।।
आदू सन्त परगट हुये, करी कृपा कलि मांहि ।।
अमरपुरुष गुरुदेव की, वेर वेर वलि जांहि ।।४।।
अडिग रहे साचे मते, इष्ट एक विसवास ।।
रूपदास सतगुरु मिले, निह केवल निज दास ।।५।।
सतगुरु मेरे सिर तपे, अमर इसा दरवेस ।।
जन रूपदास अघ सब हरै, काटै करम कलेस ।।६।।
पूरा सतगुरु पाइया, जाकै मस्तग भाग ।।
दर्पण ज्यूं दिल सुध करै, मेटै मनकै दाग ।।७।।
वलि वलि जाऊँ दरस की, सतगुरु अमर दयाल ।।
निर्वल दुर्वल देष करि, आइ करी प्रतिपाल ।।८।।
जन रूपदास सतगुरु विना, वही जांहि सव लोइ ।।
राम भजन की सुधि नहीं, चाले जनम विगोइ ।।९।।

सतगुरु दरबै दुष मिटै, देवे सील सन्तोष ॥
राम भजन सुष ऊपजै, तब जीव पावे मोच्छ ॥१०॥
जन अमरदास गुरुदेव की, मेरे सिरपर छाप ॥
जन रूपा उन परताप सूँ, जपूं निरंजन जाप ॥११॥

सुमरण को अंग—

राम राम सतगुरु कह्या, सुमरण सास उसास ॥
जन रूपदास जप जुगत सूँ, कोटि कर्म का नास ॥१॥
सुमिरण सुष सतगुरु दिया, रांम नाम तत सार ॥
रांम रटत जन रूपला, लगैन जमकी मार ॥२॥
गम पाई गुरुदेव तैं, सब तजि वाद विवाद ॥
रांम रटत जन रूपदास, रसना पायो स्वाद ॥३॥
नांम बिना नर देहड़ी, कहो वीर कुण कांम ॥
पसवाँ सम प्राणी सबै, जन रूपा रटे न रांम ॥४॥
रांम तुम्हारौ नांवद्यो, अंतरि हरि हरि जाप ॥
जन रूपदास हरिनांवतैं, थरहर काँपै पाप ॥५॥

विरह को अंग—

प्यारा म्हारा आव घरि, सब सुष थारा येह ॥
जन रूपा तुम पर वारनै, वारों तन मन देह ॥१॥
जैसे चन्द कमोदनी, मीन दुषी विन नीर ॥
जन रूपदास हरिकारणैं, अब मन धरतन धीर ॥२॥
विरहनि को भावै नहीं, भवसागर के भोग ॥
अंतरजामी एक कौ, अन्तर मांहि वियोग ॥३॥
रैन न आवे नींदडी, दिवसन भूष पियास ॥
तुम दरसन विन देवजी, जन रूपा बहुत उदास ॥४॥
कहाँ जाऊँ किनको कहूँ, मेरे जीव की झाल ॥
साहिब तुमही सांभलो, आप करो प्रतिपाल ॥५॥

॥ इति ॥

॥ समथाई लीला जोग ग्रन्थ ॥

दोहा—

गुरु सम्रथ सिरजनहार है, गुरु गुण अनंत अपार ॥
गुरु अधम आपणे कर लिये, राषे चरण मंझार ॥१॥

पद्धरी—

गुरु दातारे गुरु दातारे, गुरु रांम अमीरस मातारे ।
गुरु अगम पंथ कूँ जातारे, गुरु परम तेज रंग रातारे ॥
गुरु मेरे त्रिभुवन तातारे, गुरु पार किये गहि हाथारे ।
गुरु निरषै निरगुण नाथारे, जनरूपा ऊजड जातारे ॥२॥
गुरु जाण्यां रे गुरु जाण्यां रे, गुरु अन्तर अलष पिछांण्या रे ।
गुरु पांच एक घर आंण्या रे, गुरु पूर्णब्रह्म पिछांण्यारे ॥
गुरु अगम सुषकी षांण्यारे, जन रूपदास कुरवांण्या रे ॥३॥
गुरु तारन हो गुरु तारन हो, गुरु भवजल पार उतारन हो ।
गुरु बिगरी षेप सुधारन हो, गुरु मेरे नरक निवारण हो ॥
जन रूपा पतित उधारन हो, गुरु ग्यांन ध्यान के कारण हो॥४॥

॥ इति ॥

॥ कुंडलियें गुरूदेव को अंग ॥

सतगुरू की कृपा भई सूते लिये जगाइ ।
मोह विषय की नींद में जाग्या कबहूँ न जाई ॥
जाग्या कवहू न जाइ टेरि गुरू सबद सुनाये ।
सुनकरि भये सचेत हेत दे पोष लगाये ॥
जन रूपदास धन सतगुरु लिये सु अंग लगाय ।
सतगुरू की कृपा भई सूते लिये जगाय ॥१॥
केते पतित उधारिया हमसे अधम अपार ।
जे सतगुरु मिलते नहीं तो जीव होते ख्वार ॥

तो जिव होते ख्वार मार कुण मेटे मेरी ।
निरधारचा आधार बाप बलिहारी तेरी ।।
जन रूपा वहतेजीवकूँ सतगुरु राषणहार ।
केते पतित उधारिया हम से अधम अपार ।।२।।

सुमरण को अंग—

निराकार के नाँव को तिलक विराजे सीस ।
मन माला मुझ करदई सतगुरु की बगसीस ।।
सतगुरु की बगसीस सुरति कै नाके पोई ।
निस दिन सहज सुभाइ रांम को सुमरन होई ।।
रूपदास जन पाइये अन्तर मांही ईस ।
निराकार के नांव को तिलक विराजै सीस ।।३।।
डोरी तेरे नाँव की है मेरे मन मांहि ।
रामसनेही बाहरा दूजा भावै नांहि ।।
दूजा भावै नांहि एक अंतर ठहराया ।
अनन्त कोटि निज सन्त रांम जिन सुमरचा गाया ।।
जन रूपदास मन मानिये अब इत उत नाहें जांहि ।
डोरी तेरे नाम की है मेरे मन मांहि ।।४।।

विरह को अंग—

रोऊँ किस विधि रामजी जोऊँ कित मैं जाइ ।
प्रीतम तुझ पाऊँ नहीं विरह विथा तन पाइ ।।
विरह विथा तन पाइ याहि पति आइ बुझावो ।
सब संतन सुप सीर पीर क्यूँ मोहि सतावो ।।
जन रूपदास ओसर गये कहा करोगे आइ ।
रोऊँ किस विधि रांमजी जोऊँ कित मैं जाइ ।।५।।
सदा संगाती संग रहौ प्रगटौ नांही पीव ।
घूँघट पट षोले नहीं यूँ तरसै मम जीव ।।

यूं तरसै मम जीव जोर कोई तुमसूं नांहि ।
निरधारथा आधार यार अब पकरौ बांहि ।।
जन रूपा विरहनी वीनवै सुनि हो संगी सांय ।
सदा संगाती संग रहौ प्रगटौ नांही पीव ।।६।।

साध को अंग—

साधुजन सीतल सदा संगति रूप सधीर ।
निरद्वन्दी निरवैरता जांणत जन की पीर ।।
जांणत जन की पीर दया दिल अंदर आई ।
निसप्रेही निरधार सार सज्जन सुपदाई ।।
जन रूपा प्रगट पेपिये गरवा गहर गंभीर ।
साधु जन सीतल सदा संगति रूप सधीर ।।७।।

।। इति कुँडलिया ।।

चान्द्रायण—

सतगुरु सबद सुनाइ कियो मन धीर रे ।
मन चलतो ऊजड़ वाट पाँच की भीर रे ।।
अब साचौ सबद विचारि लगे सुप सीर रे ।
हरिहाँ ! ये उन को उपगार अमर गुरु पीर रे ।।१।।
विन मिलए भगवंत दुषी दिन जाहि रे ।
कैसे जियै में जीव पीव घर नांहि रे ।।
किन कूँ करूँ पुकार नहिं कित ठौर रे ।
हरिहाँ तुम मिलो सनेही आइ सवन सिर मोर रे ।।२।।
विरहनि व्याकुल जीव पीव के कारणें ।
कव मुष निरषूं नाह जाऊँ तेरे वारणें ।।
बहुत दिनन की प्रीति पीव क्यूँ वीसरे ।
हरिहाँ ! जन रूपदास विन दरस वहुत दिन नीसरे ।।३।।

कलि में कीरति आइ कमध करडी करी ।
सूरत छाडी सींव आगली आपरी ।।
दोइ वल पेल प्रचंड पाँव माँडे षरे ।
हरिहाँ ? जन करडी टेक कबीर और नहिं दूसरे ।।४।।
जन हरीदास हरिराइ सुमर साचे मते ।
करम किये चकचूर जीति जंग कर फते ।।
अलष तणें अवधूत गिगन मठ छाइये ।
हरिहाँ ? स्याम सवाँरे काम परमपद पाइये ।।
सूरवीर सुष मांहि धसे धर भेलि रे ।
चढे ब्रह्मतरु जाइ करैं अति केलि रे ।।
जहाँ अनंत कोटि विश्राम सदा सुष वासजी ।
हरिहाँ ? जन रूपदास तहाँ विराजे आइ साध हरिदासजी ।।६।।
कर साध संग भजि राम भलो छक आइयो ।
भरमि भरमि वहु ठाँव रतन तन पाइयो ।।
सुण सतगुरु की सीप हिरदा में धारि रे ।
हरिहाँ ? जन रूपा यो अवसर ये वार समै चलि जाइ रे ।।

।। इति अरिल ।।

सवैया—

सन्तहि मात पिता पुनि सन्तही संतही प्रीतम प्राण अधारा ।
सन्त ही जीवन जीव हमारे सन्त ही काटन कर्म अपारा ।।
सन्त ही देव दयालहु संतही सन्त ही देवत ग्यांन विचारा ।
सन्त ही पार करे भवसागर जन रूपदास गुरुदेव हमारा ।।१।।
साध को संग किये बुधि निर्मल साध को संग किये अघनासै ।
साध को संग किये अति आनंद साध संगतै ग्यांन प्रकासै ।।
जे कोइ जाइ गहे सतसंगहि तो दुष जाई सदा सुष वासै ।
जन रूप कहै एसो साध समागम आइ सदा हिरदै हरि भासै ।।२।।

साध दयाल सदा दिल अंदरि राग न द्वँद्रन मोह्न द्रोहे।
सील संतोष विवेक विचार जू धीरज ध्यांनरु ग्यांन उदोहे॥
प्रेमरु प्रीति प्रतीति प्रकाशजू सदा सुप वास इहै गुन मोहे।
जन रूप कहै यह साध के लक्षण वहोत विलक्षण मोमन मोहे॥३॥

कवित्त—

जीव के लग्यो है जाल भूलि रहयो माया लागि,
निकट न सूझै काल धंध लागि ध्यायो है।
पाछली नहीं संभाल कूँण करै प्रतिपाल,
फिरियो है चौरासी नाल भ्रमि भ्रमि आयो है॥
मार कै करै वेहाल कौन करे प्रतिपाल,
छूटि जाइ सबमाल काल फंद लायो है।
जग को एसो है ख्याल रांम न जपै दयाल,
रूप जन जीवरे कूँ वहु समझायो है॥१॥

व्याकुलता भई मोहि पीर नहिं जाने तोहि,
वहु दिन वीते पीव अजुं नहि आए है।
मोहि तो अंदेसो और लागि रह्यो निसि भोर,
जींव को नहीं है जोर पीव क्यूँ रिसाए है॥
प्रांण के पियारे लाल अव तो भई वेहाल,
मेरे उर यह साल किन विलमाए है।
अवधि गई सिराइ धीरज धरीन जाइ,
रूप कहै कव आय अंग तैं लगाए है॥२॥

रेषता—

नाव नृवाण ततसार तिहु लोक में
नाम विन आन सकल मत काचा।
संत मत सोधिकरि मन प्रमोधिकरि
प्रेम प्रतीतिधरि सुमरि साचा॥

रांम रस जिन पिया धन तिन का जिया
परस पावन भये बहुत प्रांणी ।
दास रूपा रता षाइ पूरा मता
रांम रटि रांम रटि संत वांणी ॥१॥

हरि नाँव बिन समझि नर कर्म छूटै नहीं
कहे नहीं जाइ कहो कर्म केता ।
जन्म के जन्म लग संग के संग रहै
जाइ यह जीव तहां दुष देता ॥

साध को संग करो पाप सब पर हरो
तर्क करि त्याग दे आंन हेता ।
जन रूप हरि नाँव लै कूडमें क्या ? मिले
कूडतैं किते नर भये प्रेता ॥२॥

त्याग वैराग की बात झींणी घणी धार षांडा तणी कूं'ण धारे ।
चले सन्त सूरवाँ सीसकूं सोंप कर कांम अरु क्रोध मद लोभ मारै ॥
तोड गढ़ मोहको पकडि मन मीरकूँ मलैं मन मांनिको गरव गारै ।
दास रूपा जिके संत साचै मतै स्यांम सनमुष सदा काज सारे ॥३॥

पद–राग रामकली—

वे जन पावन रूप हैं ज्यां हरि रस पीयारे
भज भगवंत निर्भेभया आपा तजि दियारे ॥टेक॥
दास कबीरा नामदेव गोरषसा ग्यातारे
अमृत पिया अघायकै मतिबारा मातारे ॥१॥

गोपीचन्द अरु भर्थरी सुमरत सुष पायारे
निरष लिया नृवांणपद त्यागी सब मायारे ॥
सुषदेव दत्त सिरोमणि सत वसत कमाईरै ॥
अलष भज्या सब सुष तज्या पूरी थिति पाईरे ॥२॥

पीपा जन रैदास पुनि सुमरे सुषदायीरे ॥
पीया पियाला प्रेम का उर तपत बुझाईरे ॥
सोझाँ सैनां अरुधनां नानक निज दासारे ॥
भगति करी विश्वास सूं हरि पूरी आसारे ॥३॥

दादू जन हरिदासजी सुष लेष निरालारे ॥
करम तजै कर्ता भजै जीते जम कालारे ॥
सेवा जन सुष विलसिया भगतां वड नांमीरे ॥
अमरापुर आसण किया मिलि अन्तर जांमीरे ॥४॥

अनंत कोटिजन ऊधरे जुग जुग में भोगीरे ॥
राम सुमर रामै भया इंम्रत रस भोगीरे ॥
त्रिगुण तजि निर्मल भये तत तेग समाईरे ॥
कांम क्रोध मद लोभ की ले ठौर उठाईरे ॥५॥

साध साहब एक है भजतां भव भाजेरे ॥
जन रूपदास परि करि दया गुरुदेव निवाजेरे ॥६॥

राग सोरठी—

मनरे रतन जन्म क्यूं षोयो !
गुरु साधां को कह्यो न कीयो कै पायो कै मोयो ॥टेक॥
सील सन्तोष ह्रदै नहिं धारयो तन मन विष में बोयो ॥
निरभै होय रह्यो निसवासर पापी पाप संजोयो ॥१॥
अचवत जहर सवै दिन वीते उलटिन पूठो जोयो ॥
हरि विमुषन सों करी दोसती हरिजन तैं सुष गोयो ॥२॥
झूठे तन को ले सिनगारयो नित उठि मलमल धोयो ॥
जम की झीक पड़ी तब झटक्यो पटक्यों पाछे रोयो ॥३॥
संकन मानी साहिबकेरी हरि सुमिरन नहिं होयो ॥
जन रूपदास अव क्या कहि उवरे नरकन मांहि डुबोयो ॥४॥

राग सिंधू—

हरिपुरस हरिका मतवाला त्यागी अणरागी अवधूत ।।
कलि में भगति करी अति भारी सकल सुधारी सत सपूत ।।टेक।।
जुगजुग भगत हुआ कहो केता एक एक सूं चढती चाल ।।
अवधू एक अरणयां के आगै सुरधर मंडियो आप दयाल ।।१।।
सांवत घर किन्ही सरसारी मांझी मार किये चकचूर ।।
इसडी ओर करे कुंण बीजो तनमन तोल वजाया तूर ।।२।।
अंजन छाडि निरंजन ध्यायो अरि गंजन रहियो इक भाइ ।।
उलटो षेल अगम सूं लागो निरगुण नाथ मनाइ मनाइ ।।३।।
रांम तणां रजपूत रंगीला हरिदास जन सूर सधीर ।।
रूपदास जन सरण तुम्हारी गाऊँ गुण पाऊँ सुष सीर ।।४।।

।। इति ।।

॥ श्री स्वामी रघुनाथदासजी ॥

स्वामी रघुनाथदासजी महामना महात्मा अमरपुरुषजी के शिष्य थे। इनका जन्म स्थान तथा जन्म काल अज्ञात है। ये रूपदासजो के गुरुभाई थे। रूपदासजो ने महाराज सेवादासजी की परचई लिखी है। उसका रचनाकाल सम्वत् १८३२ है। महाराज अमरपुरुसजी का काल १७५६ से १८६२ तक का है। जैसा कि निम्न साषियो से सिद्ध होता है —

सतरहसौ छप्पन समय, महासुदि चवदस राज ॥
सारस्वत घर अवतरे, श्री स्वामी अमर महाराज ॥१॥

सतरहसौ पिचोतरे, मिंगसर सुद आठम दिन ॥
अमरपुरुष महाराजजु, लियो वैराग सुदिन ॥२॥

अठारहसै बासठ समय, रूप चतुर्दशी दिन ॥
परमजोति भये प्रापति, श्रीगुरु परम प्रसन्न ॥३॥

इससे रघुनाथदासजी के समय का अनुमान किया जा सकता है कि वे अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध मे उत्पन्न हुये तथा उनका रचना काल उन्नीसवी का पूर्वार्द्ध माना जाना चाहिये। उनने परचई से भिन्न और भी कोई रचना की है। यह स्पष्ट नही है पदो मे इनके भी पद आये है पर यह कहना कठिन है कि वे पद इन्ही के है या अन्य किन्ही रघुनाथदासजी के बडू के स्थान की संग्रह पुस्तको म एक पुस्तक इन्ही रघुनाथदासजी की लिखी हुई है जिसका लेखनकाल १८२३ है। इससे व्यक्त होता है कि इनने जो परचई लिखी है वह १८३० के आसपास की रचना है। परचई मे विशेषतया महाराज हरिदासजी के चमत्कारो का निरूपण है पर उससे उनके परिभ्रमण क्षेत्रों का भी परिचय मिल जाता है। परचई मे महाराज हरिदासजी के स्वर्गारोहण का काल लिखा है तथा चमालोस वर्ष घरमे रहने का तथा चमालीस वर्ष गृहत्याग के पश्चात् साधना मे रहने का उल्लेख है।

हरिदासजी महाराज की प्रथम परचई महात्मा हरिरामदासजी कृत है। पर वह अति संक्षिप्त है रघुनाथदासजी की परचई विस्तृत है इसमें पन्द्रह विश्राम है। रघुनाथदासजी का स्वर्गारोहण कब हुआ यह ज्ञात नहीं। परचई पूरी आगे दी जा रही है।

॥ रघुनाथदासजी कृत ॥

॥ अथ श्री स्वामीजी हरिदासजी की परची लिख्यते ॥

दोहा—

नमो नमो निज देवकूं सतगुरुकूं सिर न्वाइ ।
सब सन्तन कूं वंदि कै परचा कहूँ सुनाइ ॥

चौपई—

नाम कबीर सुकदेव सयाना धू प्रहलाद सबै सिर जाना ।
सबही संग कृपा मोहि कीजै बुधि तुछ है दीरघ करि दीजै ॥
गोरखनाथ भरथरी चरपट सबही संत करौ बुद्धि प्रगट ।
श्री अमरदास गुरुदेव प्रणामा भगति हेत दीजै मोहि स्वामा ॥
स्वामी सेव पुरुषकूं ध्याऊं ता परसाद अकिल अति पाऊं ।
ऐसी सक्ति नांहि कछु मेरी चाहत कृपा संतन केरी ॥
परचा करनै की मनि भई देव निरंजन आज्ञा दई ।
फुनि सब संत कहैं विधि ऐसी बुधि तेरी अनुसार जु तैसी ॥
तातें सबहिन कूं सिर नाऊं जन हरिपुरुष की परचई गांऊं ।
करै करावै आपन स्वामी चाकर पिदमति करै गुलामी ॥
हरीदास है हरि उनहारा जीव तारन कूँ लियो अवतारा ।
आए आप निरंजन सांईं हरिजन हरीदास अंतर कछु नांही ॥
निरगुन ग्यान लिये मतिवारा भरम करम तजि झूठ पसारा ।
ग्यान ध्यान की उचरै वाता निरगुण ध्यान सही मन राता ॥
अलष पुरुषसूं चितवित लायो गोरषज्ञान समझि कै पायो ।
सब घटि व्यापक ब्रह्म हि देखै अंतर मांहि निरंजन पेखै ॥
कलिजुग मांहि इसो मत लीयो ब्रह्म ग्यान उपदेस जु दीयो ।
ज्यूं पहुमी सूरज उजियारा त्यूं जन हरीदास अवतारा ॥
जब हीं जीव अग्यान बंधावै ज्यूं सोवत सपनै भरमावै ।
दुख सुख पाइ राजी कहुं डरै तवही तुरत साहि कोउ करै ॥

तैसे हरीदास अवतरिया दुषी जीव सुखमें करि धरिया ।
अवगति आप अलेष विधाता प्रगट देव निरंजन राता ॥
जोग जुगति धारना पूरी अलख पुरुष सूं सदा हजूरी ।
भगति ज्ञान वैराग बखानौं सब जीवन सुखदाई जानौं ॥
आगे संत सुणे सब कानां जन हरिदास तैसे परवाना ।
सील साच संतोष सबूरी काम क्रोध सब कीया दूरी ॥
तन मन पवन सबें सरि कीया देव निरंजन अन्तर लीया ।
मैं मेरी सूं प्रीति न राखै राग द्वेप त्यागि हरि भाखै ॥
निरलोभी निरदइक स्वामी अलख अरूप अंतर के जामी ।
त्रिगुण त्यागि निरगुण चित दीया बेहद पदमें वासा कीया ॥
अणकही महा अति गहरी जाने मरम संत कोऊ महरी ।
मत अवधूत पणै को लीयो हरष सोक को त्याग जु कीयो ॥
अन्तर गति में ध्यान लगावै मौन महातप कहत न आवै ।
जो कोऊ प्रश्न करै संसे की ताको संसो हरै बिवेकी ॥
जे बोले तो हरिजस कहि है अणबोले अंतर में गहि है ।
ऐसी दसा बिदेह अगाधू वेद कहैं पुनि सब ही साधू ॥
अनहद रस अभि अंतर पीया परचै जोति मांहि मन दीया ।
ऐसी चाल अगाध अपारू सबतैं उत्तम अगम विचारू ॥
सबही कहैं अपणे उनमानां जन हरिदास बेहद प्रवानां ।
जीव अज्ञानी करणकूं पारी आए स्वामी परम उपगारी ॥
सब जीवनकूं ज्ञान बतावैं ज्ञान सुनाइ मुक्ति पहुँचावैं ।
आप सदा निरगुण उनिहारा देव निरंजन अलख अपारा ॥
इहि अस्तुति कही कछु थोरी जैसी बुधि उनमान जु मोरी ।
आगे परचै कहूँ सुनाई कृपा करि जो देह लखाई ॥
महिमा अगम अगाध अपारा बरणै कोण जु परम विचारा ।
ऐसी बुधि उनमान जु सारू जन रुघनाथदास सो कियो विचारू ॥

दोहा—

वेद पार पावै नहीं नाग न जाणै भेव ।
अपणै वित उनमान तूं जन रुघा वरणेव ।।

चौपई— विश्राम १

प्रथम डीडपुर प्रगटै आई *बरस चमाल गृह मांहि रहाई ।
पछिम दिसा भाखर है सोई तहाँ जंगल में रहते जोई ।।
एक दिनां प्रभुकी गति भई अंतर जामी आग्या दई ।
गोरख ग्यान देणकूं आए अपणो जाणि कृपा करि धाये ।।
जब देखे गोरषकूं आवत तब आए नेडे समझावत ।
गोरख बुधि फेरी तिहि काला वचन एक तब कह्यो दयाला ।।
हूं तेरा कपड़ा हरि लेऊं पीछे तोकूं जावण देऊं ।
तब गोरष बोले हरि बाता कौण भरोसे हरैं विख्याता ।।
त्रिया पुत्र बूझिकै आई पीछैं पेवन लै तुम जाई ।
जब उहैं हम तेरे संगा तो तूं करि हरणै को ढंगा ।।
तब उन कह्यो पह्ले तुम जावो इहि औलाब हमहि समझावो ।
तब गोरष बोले सुण भाई हूं जाऊं तो अलख दुहाई ।।
तब ए घर पूछणकूं आए त्रिया पुत्र बैठे तहां पाए ।
देखि इनैं ए बचन उचारा बुरी भली के संग हमारा ।।
तब उन कह्यो संगकी जे है जौष पडै तो आंगिर दैहै ।
हम तो तेरे बांसे आए बुरी भली में नांहि पराये ।।
तब इन ग्यान अंतर में पाया गोरषनाथ पै दोडिर आया ।
दरसण करत फिरी मति जब ही अंतर ध्यान भए प्रभु तब ही ।।
जब ए चलि भाषर में आए गुफा हेरि करि ध्यान लगाए ।
ध्यान धरत केते दिन भयऊ लारैं षबरि हुई कहां गयऊ ।।
तब हेरत हेरत भाषर आए जन हरिदास बैठे तहां पाए ।
अब तुम क्यूं छाड्यो है गेहा वृध भए मनि आई केहा ।।

तब इन कह्यो झूठ संसारा पुत्र कलत्र राज दरबारा ।
सबै नरक की है नीसानी राम भगति बिन बूडे प्राणी ।।
मैं मेरी करि करि गरबावैं माता पिता झूठ कुल ध्यावैं ।
सासू ससुर न सारा कोई स्वारथ अरथ लगे कुल दोई ।।
तातें हूँ हरि सरणैं आयो गोरषज्ञान गह्यो मन भायो ।
तब सबहि न के इह मन आई हरीदास हरिसूं ल्यो लाई ।।
सब ही चलिजु अपूठे आए दीन बचन प्रणाम कराए ।
सब तजि हरि सूं हेत लगायो ध्यान समाधि जोग अवगाह्यो ।।
ज्ञान वैराग भजन हरिकेरो असे मिटि है जग को फेरो ।
सब तजि भ्रम कीयो हरि साथा सो जस गावै जन रुघनाथा ।।

दोहा—

संग तज्यो सब जगत को कियो अलष को साथ ।
हरिदास हरि का थका गावै जन रुघनाथ ।।

चौपई— विश्राम २

गोरष ग्यान समझि कैं लीयो हिरदै हरि को सुमिरण कीयो ।
बहुत दिनां डूंगर में रह्या प्रेम प्रीति सूरापन गह्या ।।
देवी एक सहर में होई पाढा नाम जाणिलै सोई ।
सो दयाल कै सनमुष आई करि प्रणाम चरन लपटाई ।।
स्वामी मो कूं दछ्या दीजै भौ बूडत कछु सहाइ करीजै ।
ऐसी करणां देखी जब ही प्रसन्न भये दयालजु तबही ।।
कृपा करि माथै कर दिया ग्यान ध्यान उपदेशजु दीया ।
दया दीनता दिल में लीजै काहू कूं दुप नाहिंन दीजै ।।
सबै सिष्टि साहिब की करी तामैं देखो केवल हरी ।
यह उपदेश दियो माता कूं देवी सिर न्वायो दाता कूं ।।
करि प्रणाम सहर मैं आई टहल करन की मन रुचि भाई ।
एक महाजन द्वारो नांव देवी आई ताके ठांव ।।

अरध रात को हेलो दियो द्वारे तुरत श्रवण सो कियो ।
ऊठिर आयो बाहरि भौने हेलो दीयो मोको कौने ।।
तब देवी बोलै सुणि द्वारा हूं पाढा आई तो सारा ।
हरीदास मोरे गुरु देवा मनसा वाचा करि तूं सेवा ।।
तब द्वारौ बूझै एक बाता कहां विराजै गुर तुम माता ।
तब देवी बोले समझाई पीर पहाडी मांझ रहाई ।।
ताके मांझ गुहा अदभूता तहां बैठे गोरख के पूता ।
द्वारै वचन सत्ति मन भाई माता उलटि दिवालै आई ।।
भोर भये द्वारौ उठि आयो पाणी अर परसाद जु ल्यायो ।
गुफा बताई जहां चलि गयो तहां दयाल को दरसन भयो ।।
जाइ द्वारै बीनती करी दीन वचन सुणि बोले हरी ।
आव राम का बैठि भलाई तेरे मन में अंछ्या कांई ।।
तब द्वारो कहै अंछा दरसन की मेरे मनमें पद परसण की ।
कृपा करि भोजन यह पावो मेरो जनम सफल करवावो ।।
तब दयाल जल छांणिर लीयो ता पीछे सूं भोजन कीयो ।
भोजन करि बैठे जु विधाता द्वारै ज्ञान की बूझी बाता ।।
कैसी भांति जीवन सूँ तरि हैं गिरही जनम सफल क्यों करि हैं ।
तब दयाल बोले समझाई गिरही कूँ सेरी नहि काई ।।
माया सेती लायो नेह छीजै ज्यूँ लाहाला लोह ।
तब द्वारौ मनमैं अति डरियो करना बहौत रुदन हीं करियो ।।
फिर दयाल बोले उपगारी सेरी एक गृसत कूँ भारी ।
संतजनां की संगति करै मनमैं हरिको सुमरन करैं ।।
कथा कीरतन हरि जस गावै प्रेम प्रीति प्रवाह बढावै ।
ऐसी भांति होइ निसतारा कहै दयाल तू सुणि हो द्वारा ।।
तब याकै प्रतीति जु आई द्वारो सेव करै चित लाई ।
पाढा करै दीद गुर केरा जनम सफल कीयो यह बेरा ।।

द्वारै यूँ उपदेश जु लीयो सतगुरु जाण चरण मन दीयो ।
भाग बडे दरवेस जु दयाला सो जस कहि हैं जन रुघ वाला ।।

दोहा—

दया भई दयाल की द्वारो पायो ग्यान ।
अब परचो गागरि तणो कहै रुघनाथ बखान ।।

विश्राम ।।३।।

चौपई—

एक समै द्वारो चलि आयो गागरि भरि पाणी की ल्यायो ।
ऊँचे पाहड़ वैठे जाई तहां गगरी मेल्ही आई ।।
हाथ तजत गागरि सो गुडी गुडत गुडत नीचे जाइ पडी ।
महा सघन बृष था तहियां अटकी नहीं कहूँ ता महियां ।।
लच्मीसुत गागरी कहिये परबत सुत पथर में लहिये ।
इन दोऊ मिलि मांड्यो जंग हरि परताप सूँ रही अभंग ।।
गागरि रही साबती भाई मांहि नीर सो चुप न गिराई ।
द्वारे जाण्यो जल सब गिरयो तबही सोच बहुत मन करयो ।।
अबगति गति जाणै नहिं कोई रीता भरे निमिख में जोई ।
तब दयाल बोले सुण द्वारा जाइ गागरी क्यों न संभारा ।।
तब याके मन ऐसी आई कैसे गागरी थीर रहाई ।
वहौ सूँ फेरि कहैं सुण प्यारे राम धणी है रापण हारे ।।
जब जाइ गागरि आंख्यां देखी बचन सुणै सो किये विसेखी ।
तुरत हाथ में लेकर आयो जन हरिदास को परचो पायो ।।
एसी विधि तहाँ रहे दयाला , जे कब गोरष होइ कृपाला ।
इच्छा दरसन की मन भई , और वात सब परिहरि दई ।।
रात दिवस ध्यान गुरु केरो , दरसन देऊ अति आतुर चेरो ।
माया छल बल वहुत उठाए , नाथ रूप धरि धरि के आए ।।
पर हरीदास छल सबही आने , नाथ प्रसाद अगम बषियाने ।
मुषसै कहै गोरषहूँ सोई , कृपा करिकै आयो जोई ।।

तब बोले हैं आप विधाता , झूठे छल करि हैं क्यूं माता ।
एसे वचन सुणे जब कानां , तब माया फिरि चली निदानां ।।
तब गोरष अपणौं कर लियो , दरसन आय आप कै दियो ।
हरीदास उठ पांइ पराई , दीन वचन सूं विनय कराई ।।
तुम बिन हमें कौण प्रतिपारै , कौण हमारे कारज सारै ।
तुम दयाल देवन के देवा , गण गंधर्व सब करि है सेवा ।।
मानष पारन तुमरो जांनै , अगम अगम सब देव बषानें ।
जन हरीदास डंडोतजू कीन्हा , माथे हाथ नाथ तब दीन्हा ।।
गोरष ग्यांन की कथा सुनाई , हरीदास तूं सुणि चित लाई ।
पिंड ब्रह्मण्ड में सिद्ध ह्वै जाणों, ग्यांन अरु गोरष परवाणों ।।
देह भरम सब दूरि उठाई , ग्यांन गोरष सूं चित्त लगाई ।
हरीदास गोरष की गाथा , रुचि रुचि गावै जन रुघनाथा ।।

दोहा—

ग्यांन दियो हरिदास नें , मेल्हयौ माथै हाथ ।।
गोरषनाथ जू रमि गए , सति भाषै रुघनाथ ।।१।।

।। इति विश्राम ४ ।।

चोपई—

गोरषनाथ ग्यांन यह दीन्हो , जनहरीदास हिरदै धरि लीनों ।
आन भरम सब दियो उठाई , देव निरंजन सूं ल्यो लाई ।।
ग्यांन ध्यांन पूरण धन पाया , जोग भगति वैराग सवाया ।
अरस परस आतम सुख मांही, जनहरीदास मिल रहे सदाही ।।
ता पीछै ऐसी मति धारी , भाषर तजि विचारैं संसारी ।
नगर नजीक डीडपुर आये , दरसण करि सबही सुष पाये ।।
परमारथ पर जन उपगारी , आप सदा हरिनांम मंझारी ।
जैसे कवल अम्ब में रहै , कबहू न लिपै यह पणगहै ।।
ऐसे हरीदास जग न्यारे विचरें, महा निरगुण मत धरे ।
सहर नजीक जाइगा देषी , तहाँ विराजे चतुर विवेकी ।।

लोग महाजन दरसण करि है, निसदिन सीसचरन तन धरिहैं ।
ऐसे रहें डीडपुर मांही, बहुत दिवस हुए हैं तांही ।।
अब तुम सुणो ग्यांन की चरचा, हुयो दूसरो जिहि विधि परचा ।
एक नगर में ऊगो पीपर, सबै महाजन बोले भैं करि ।।
या कूं अबै खोद ही डारो, होंई दीरघ तब करे बिगारो ।
तबै महाजन काटन लागै, वहां दयाल बैठे थैं आगे ।।
कह्यो उनाकूं काटो मति ही, मेरी बात तुम मानों मत ही ।
एसीं बात कही है तिन सूं, वहोरयूं अरज करि हरिजन सूं ।।
हे दयाल पीपल दुख दाई, जड़ सब नीव मांझ यह जाई ।
तब ही ग्रह होई है दूरा, तुम उपगारी करो कछु पूरा ।।
जन हरीदास बोले यह बानी, पीपर रहसी एती जांनी ।
देव निरंजन के जस गावो, मन वंछित तब ही फल पावो ।।
पीपर मांहि पांव परधारै, हाथ धोय के पांणी डारे ।
यह परचौ प्रत्यख में जानों, जन हरीदास प्रताप बखानो ।।
डीडपुरेत मांझि यूं रहें, निरगुण ग्यांन सबनि को कहें ।
परम दयाल परम उपगारी, मूरख मर्म न लखें लगारी ।।
जो काहू पर कृपा व्है है, तांकू ग्यांन आपणों देहै ।
पर ग्यांनी मत एसो धारयो, सत्रु मित्र समिसबै विचारयो ।।
ज्यूं सूरज समद्रष्टि सारै, राव रंक कूं एक निहारे ।
यूं जन हरीदास हरि मांहि, राग दोष काहू सूं नांहि ।।
एसे सदा आनंदी दासा, माया मोह तजी सब आसा ।
भरम करम छाडै सब दूरा, तब हरीदास पायो पद पूरा ।।
एक दिनां बैठे सब कोई, रांम नाम की चरचा होई ।
एसे करत बात एक कहि है, नागपुरेत भूत यह कहि है ।।
सोई दुष्ट दुष सबकूं देवे, कठिन महा कोई लहेन भेवे ।
एसी बात सुनीजु दयाल, यो हम मेटैं दुष तत काला ।।

अपने मनमें राषी वाता, वाहिर कूं काहून लषाता ।
परमारथ की वुधि नित रहि है, सो जस जन रुघनाथजु कहि है ॥

दोहा—

कारन कोऊन देषिए, विचरन जगत मंझारि ।
दुषमेटण सुष करण कूं, हरिजन करै सेवारि ॥१॥

॥ इति पंचम विश्राम ॥

चौपई—

तव दयाल उठि चले सँवारा, ग्यांन ध्यान निगुंण मन धारा ।
ऐसे रमता रांम के प्यारे, सनै सनै नागोर पधारे ॥
पूर्व दिसा नगर सूं वापी, तहाँ वित्रवो रहतौ पापी ।
आस पास कूवा अरु सरवर, सवही सूनां कीया तरवर ॥
मिनष न कोई जावण पावे, जोर जाइतो गोता पावै ।
तातें महा भयानक ठौरा, प्रेत विना नहि दीसे औरा ॥
तहाँ आइ उभे रहे स्वामी, यो तो वित्र है महा हरांमी ।
जाय वावडी मांही पैठा, कर सिध आसन ध्यान में बैठा ॥
यो तो कहूँ गयो हतो भूता, दिवस तीसरै आयो दूता ।
आव तमासो देषियो नैना, तवै वित्र बोल्यो यह वैना ॥
कुण वैठो है मम ग्रह मांही, मेरी संक कछु मानी नांही ।
तव दयाल बोले सुण प्रांणी, हूं छू हरीदास निरवांणी ॥
इतने बचन सुनें जव वित्रा, नाटिक करन लग्यो अनंत्रा ।
पहिले आन्धी अर मीटौरा, भैसो रूप धारि है वोरा ॥
वहौत भांति चेटक वहाँ करे, महा निडर स्वामी क्यूं डरै ।
ल्यावे अगनि उछाले पीरा, जैसे वहै सघन घननीरा ॥
लघु दीरघ बहु देह दिषावे, उभौ दूर निकट नहिं आवै ।
ऐसे झूठे गइये लाजा, जाइ पुकारयो अपने राजा ॥
एक मानई वैठा आई, मेरो गृह उन लियो छिनाई ।
नृपति पास षडे वहौ भूता, दीये साथ चले उठ दूता ॥

उनको मार परौ काढीजै , ठौर आपनी वस करि लीजै ।
यूं कहि राजा दूत विदाये , चले चले वापि ढिग आये ॥
आवत सवाँ चरित वहौ करि है , लम्बे दान्त देषि कै डरि है ।
स्वामी पलक षोलि नहिं देषै , सवै चिरत मिथ्या करि लेपै ॥
रात गई सव हुवो उजालो , तव उन भूत कह्यौ तुम चालो ।
दूत गयो सो फिरकर आया , जन हरिदास का थाहन पाया ॥
तव वो विप्र निकट चलि आयो , डरत डरत मन में पछतायो ।
दरसन करत फिरी मति जवही , करण वीनती लागो तवही ॥
हे दयाल ! देवन के देवा , मैं अग्यांन जाण्यो नहि भेवा ।
गुन्हो मेटि दिच्या मोहि दीजै , अभैदान दे अपणो कीजै ॥
तुम कृपाल सवन सुषदाई , पतित जीव के करन सहाई ।
पाप ताप सव दूरि निवारौ , पाट षोलि करि द्यौ दीदारौ ॥
तव दयाल दया मन आई , पलक षोलि करि दरस दिषाई ।
ऐसे कह्यौ प्रेत सुंण वांणी , हूँ तोहे सीष देऊँ मन जाणी ॥
काहू को दुष नाहि न दीजै , निर्मल नाँव प्रेम रस पीजै ।
दया दीनता दिल में ल्यावो , याहूं वेग अभै पद पावौ ॥
ऐसी दयाकरी हरिदासा , करम भरम के कह गये पासा ।
निर्मल बुद्धि भई है जवही , टहल करन मन आई तवही ॥
हे दयाल इहाँ कवै पधारे , षांन पान नहिं मिल्यौ हमारे ।
तव दयाल बोले परवींणा , आयाँ भये यहाँ दिन तीना ॥
तव फिरि विप्र कहै मुरझावत , मेरे डर यहाँ कोउन आवत ।
भोजन भूष तुम्हें अव लागी , वहौ अपराध किये मंद भागी ॥
करो कृपातो भोजन ल्याऊँ , तुम्हें पवाइर हूं सव पाऊँ ।
तव दयाल ऐसे समझावे , तेरो भोजन काम न आवे ॥
फिरकै विप्र बोलियो वैना , भोजन ल्याऊँ उत्तम ऐनां ।
जन हरीदास बोले विधि ऐसी , ज्यूं तेरे इच्छा कर तैसी ॥

दोहा—

आग्या लई दयाल की, आयो नगर मंझारि।
सुन्दर भोजन कूँ रुषा, भूत करै उपचार ॥२४॥

छठा विश्राम

चौपई—

एक महाजन चले परदेसा, वणवायों भोजन अति वेसा।
तडको घडी चार को रह्यौ, तव उन ले माता कूं कह्यौ ॥
ल्याव कचोलो भोजन केरो, हूँ चालूं अव्र होइ निहोरो।
तव उन हाथनि करि कह्यौ, भूत विचाले हीसूँ गह्यो ॥
कहे महाजन दे क्यूं नाही, माता कह्यौ दियो कर मांही।
ऐसे वित्र प्रसाद जू ल्यायो, छिनक माहि वापी चलि आयो ॥
लेय वाटको आगे धरियो, स्वांमी कूं प्रणाम जु करियो।
तव दयाल जल छांण्यो सोई, महा कृपाल पापी पर होई ॥
पाय प्रसाद प्रसादी दीन्ही, नमसकार करि वित्रही लीन्ही।
जन्म जन्म के कटि गये पापू, महा अगाध स्वामी परतापू ॥
तब कह्यौ वाटको देकर आऊँ, जहाँ ल्यायो तहां धरि दे नाऊ।
वित्रै जाइ वाटको धरियो, ठालो हाथ महाजन परियो ॥
सोधत सोधत नीठ जु पायो, भली भई वट को घरि आयो।
ऐसे मात पुत्र मन आई, वित्र तुरत पूठो फिर जाई ॥
आप दयाल कें सनमुष भयो, हाथ जोंरि चरनन मनदयो।
तब दयाल बोले कृपाला, मन पवना करि सुरति ही माला ॥
एकं जीव राषि सुणि भाई, जन हरीदास हरि कथा सुनाई।
ग्रन्थ नाम है ब्रह्म सतूता, सो सरवण करवायो भूता ॥
सुणत सुणत जब भोगजु आयो, जोति सरूप हो दरस दिषायो।
तेज पुंज में मिल गयो प्राण, प्रेम मुक्ति रुघनाथ वषांणी ॥
जन हरीदास वहौ कृपा करी, वित्र ताप निमष में हरी।
पूरण परमानंद दयाला, पर उपगारी जीवन प्रतिपाला ॥

तब सबहिन सूँ कहै उपदेसू , जाइ बावडी करां प्रवेसू ।
सवही ठौडजु वसती होइ , हरि प्रताप बोलै सब कोइ ।।
एसे दुष सब काढ्यो स्वांमी , जांणु राइ सब अन्तर्यामी ।
अब तुम सुणो सिलाकी वाता , छल छिद्रहि प्रगट दिपराता ।।
एक मानइ दोषी थाई , वीर मंत्र करि सिला उडाई ।
चली चली सिल आई जहां , जन हरीदास बैठे थे तहाँ ।।
आवत सबी नजर जब देषी , तब बोले हैं चतुर विवेकी ।
हरि को हुकम नही है तोही , चली कहाँ जात है सोई ।।
बोल सबा अधर सो रही , हरि प्रताप एसी विधि कही ।
रहे वहौत नागपुर (नागौर) माही , सबै लोग दरसन करि जांही ।।
निर्गुण ग्यान को करै प्रमोधू , दया दीनता दिल में सोधू ।
ऐसी विधि सब सहर चितायो , ग्यांन ध्यान उपदेश बतायो ।
ता पीछे रामत की धारी , परम दयाल आप उपगारी ।।

दोहा—

रहे वहौत नागोर में , सबहिन पायो ग्यान ।
अब परचो अजमेर को , ताको करूं वपान ।।

।। इति सप्तम विश्राम ।।

चौपई—

नागपुरे तै रामत कीनी , आग्या निराकार की लीनी ।
सनै सनै सूँ चाले नितही , जोप पडै तब बैठे कितही ।।
ऐसे रमत वहौत दिन लागे , दरसन कियो भाग तिन जागे ।
सहर मांहि हाथी इक होइ , ताकी बात सुनाऊ सोइ ।।
महामद मातो फिरै अग्यांनी , ढाहै कोट दसू दिसि कानी ।
जो कोइ मांनिष आँख्यां दीसै , तो तन चींर दांत सूं पीसै ।
ऐसे सबही डरि हैं लोइ , सनमुष रहन न पावे कोइ ।
कष्ट नगर कर देष दयाला , चले अजमेर होइ कृपाला ।।

चलते चलत सहर में आए, दिष्टि मुष्टि हरि मांझ लगाए ।
फिर सामाहू हसती आवत, मारे मिनष कोट सब ढावत ।।
तब यूं लोक कहत है वाता, स्वामी टरौ गेंद मद माता ।
एसे कहि भागे सब लोगू, हाथी हरिजन बण्यो संजोगू ।।
जनकूं देषि मसतग निवायो, दरसन करत ग्यांन मन आयो ।
जन हरीदास माथै कर दियो, आतम द्रष्टि आपनो कीयौ ।।
तब तैं हाथी समझ बहाइ, जन हरीदास की आग्या पाइ ।
आपन वहौरि चले है आवो, काल जाल दुष सबही भागो ।।
रहे सहर मैं दिहस सवाया, लोगनि दरस कीयो मन भाया ।
रांम नाम उपदेशजू देहैं, करम धरम सब दूर करै हैं ।।
ता पीछे उठ चले दयाला, अजैपाल मन मांहि संभाला ।
नाग पाड मांही वे रहि हैं, वचन कहैं सो अन्तर गहि हैं ।।
चलत चलत आगे जब आये, उभै साध बहौरयूं ज मिलाये ।
परसरांम अरु षोजि कहिए, जन हरीदास मिलि तीनूँ भइये ।।
रांम रांम तीनां मिल कीन्हा, ऐसे कहे दरस हरि दीन्हा ।
चलो भाषर कै ऊपर जावाँ, संग मिले हरि के गुण गावाँ ।।
तब दयाल कहै चलो भलांइ, जो तु इच्छा तुमरे मन मांई ।
तीनों चलत भाषर मैं आये, अजैपाल बैठें तहाँ पाये ।।
चार पांचि बकरी ढिग चरै, आप विराजे सुमरिन करे ।
इन दूरांसू दरसन पाया, जूवा जूवा मता कराया ।।
जन हरीदास कै यह मन आइ, सति अवधूत दीसत है भाइ ।
परसरांम मन मांहि बिचारी, यह तो माया पातर भारी ।।
अरु षोजिकै इह मन वैसा, दीषत है संजोगी तैसा ।
तीनू मता मन मांहि कराया, बाहरकूं कछु कहिन जनाया ।।
चलत चलत नैडा जब गए, अजैपाल कै सनमुष भये ।
तब अजैपालयूं बोल्यो सोइ, जैसी मनसा तिसी सिध होइ ।।

जन हरिदास प्रश्न यूं करि है, मनसा को रांम क्यू करि परि है।
तुमसूँ मालुम है सब देवा, कृपा करिजु लपावो भेवा ।।
तब अजैपाल बोले इह बांनी, गुपत बात हम प्रगट जांनी।
सो अब कहूं सुणो तुम बाता, तीनाकूं भिन्न भिन्न लपाता ।।
हरीदास तुम ऐसी धारी, यों अवधूत दीसत है भारी।
तो मनसाइहु सति है पूता, नाथ प्रसाद तुम प्रगट अवधूता ।।
परसरांम मन में इहु धारी, माया पातर दीसै भारी।
तो या के माया बहु होइ, षावो विलसो सुपसूं सोइ ।।
षोजी जांण्यो है संजोगी, ता मनसा पूरण भल भोगी।
तेरे सत्री होइ है भाई, ये सबकूं हम सत सुनाई ।।
जो अजैपाल कही विधि एसी, सबकै सिधि भइ है तैसी।
जन हरिदास अवधूत कहाया, ग्यांन ध्यान पूरण सुप पाया ।।
करि प्रणाम दयाल पधारे, सनै सनै नीचेजु सिधारे।
आप अकेले हरि हैं साथू, नमसकार कहि है रुघनाथू ।।

दोहा—

अरध उरध मध लोकलों, देषी सबही ठौर।
जन रूपा हरिदास समि, नांही कोइ और ।।२५।।
गोरष कहूँक भरथरी, कहूं सन्त सुपदेव।
जन हरीदास हरि एक है, और न जांणू भेव ।।२६।।

॥ विश्राम आठ ॥

चौपई—

वहौरयूं रमे माषर सूँ भाइ, सनै सनै हरिसू ल्यौ लाइ।
महा अडिग अडोल अभेवा, मूरष पसून जांणे भेवा ।।
एक गांव के मांही आए, नीची द्रष्टि चलन चितलाए।
लोग बहुत बैठे थे तँहियां, उन मिल बात करी मन महियां ।।
यो हेरौ दीसत है भाइ, पकडो वेग भाग नहिं जाइ।
जन हरिदास प्रगट सब जानें, अंतरजामी सूँ कहा छाने ।।

हम हेरूँ है अविगत केरो, अंतरमांहि निरंजन हेरो।
मन मनसा को उलटी ल्यावत, इहै ग्यान उन को समझावत ॥
अष्टपदी ग्रन्थ उँहाही होई, कर उपदेस दियो सुष सोइ।
सबकै मन अचरजसो भयऊ, आइ प्रीति भरम सब गयऊ ॥
पांवां आप दयाल कै पर्यां, चरणां मांही मस्तक धरया।
हे दयाल म्हे समझे नांहीं, तुमतौ रांमरूप हो साँई ॥
तबै दयाल संतोषे सबही, सुन उपदेस भक्ति हरि गही।
सन्तजनां की सेवा करौ, रांम नाम हिरदा में धरौ ॥
इहै उपदेस दियो मन जानी, करि प्रसाद रामत की ठांनी।
सनै सनै चले हरि जना, निरगुण इष्ट निरंजन मना ॥
ऐसे चलत आए इक गांऊ, तहां की बात सब तुम्हे सुनाऊँ।
टीबे ऊपर ध्यान लगायो, तबे गाँव में सुण सब पायो ॥
एक साध बैठो है आइ, ताहि प्रसाद ले जांणो भाइ।
तुरत महाजन भोजन ल्याये, तब हीदास जन भोग लगाये ॥
इतने मांहि एक चारण आयो, देषत पांण तुरत बतलायो।
चौडे बैठ चपेटे रोटी, याकी गरदन दीसै मोटी ॥
इतनौ गुणत बोले जु दयाला, रोटी रटण गहै ततकाला।
आलस तुछ कीजै नहिं भाइ, निसदिन अवधि घटत घटिजाइ ॥
यूं दयाल याकूं समझायो, बचन सुणे जब निकटै आयो।
वारापदी ग्रन्थ है सोइ, सो ततकाल प्रगट उहाँ होइ ॥
वाकै आयो ग्यांन अपारू, बहुरचो महमा करत विचारू।
स्वाद वाद सबही छिटकाया, पांच पिसणकूँ जीति सवाया ॥
महमां किताए कउ वरौं वीर, कलिमें प्रगटै जेसे कवीर।
एसी भांति विनती कीन्ही, चारण दिच्छ्या दयाल की लीन्ही ॥
दे उपदेस रमे ततकाला, ग्यांन ध्यान गुरु वचन सम्हाला।
गोरष कूँ सद मसतक राषे, ऐसे रमत रांम रस चाषै ॥

हवरे हवरे धरि है पांऊ, मनमें अलष निरंजन ध्याऊँ ।
जोग जुगति ध्यांन मन धारे, परमारथ करि जीव उधारे ॥
ऐसे रमत रमत चलि जांइ, टोडे निकट पहूँचे आइ ।
एक सर्प ताखो तिंहि नांऊ, सो भोग्यौ होतौ उसगांऊ ॥
बहुत द्रव्य सांच्यौजू ठौरा, षरच्यौ पायो नाहिन बौरा ।
रांम जनां कै मुष नहिं डारचौ, एसे जनम आपनो हारचौ ॥
सोधन ले धरती में गाड्यौ, आयौ काल प्रांण तब छाड्यौ ।
षौड बिछोहौ करदियौ तंहियाँ, मन तौ निकस्यौ नाँही मंहियां ॥
प्रगटै प्रबल आइ अभागू, ता धन पर हूवा है नागू ।
महादीरघ कछु कहत न आवे, वीघा मांहि घास जर जावे ॥
ऐसौ जहर कहा कौऊ करि है, निकट जाय सौ प्रांणी मरि है ।
बम्बइ ऊपर घासन हौइ, ठौड महा अद्भुत है सोइ ॥
तहाँ आइ महाराज विराजे, ग्यांन ध्यान संपूरण साजे ।
अलष निरंजन सदइ साधू, सौ जस गावै जन रुघनाथू ॥

दोहा—

बम्बइ ऊपरि ध्यान धरि, बैठे जन हरिदास ॥
निसक महातप ध्यान रत, सदा नाथ हैं पास ॥२७॥

॥ विश्राम न ॥

चौपई—

इतने माँहि सरप सुधि पांइ, वास मिनष की तब ही आइ ।
बम्बइ निकस्यौ करत फूंकार, हरिजन कौ पायौ दीदार ॥
दरसन करते मन आइ और, उभौ रह्यौ नाग तिंहिं ठौर ।
गई पाप बुधि हिये केरी, तबै सरप सिर नायौ फेरी ॥
दरसन करत मन निर्मल भयऊ, करम पटल दूर हौइ गयऊ ।
करन वीनती लागौ साँपा, हे दयाल काटौ मम पापा ॥

कृपा करि हरिनाँव सुनावो , जन्म जन्म के कर्म गमावो ।
दिच्या नाथ दीजिये मोही , हूँ दयाल बलिजाऊं तोही ।।
इतनी सुनत आप यूँ बोले , महा महर करि अंतर षोले ।
सुंणरे जीवराम की गाथा , अलष पुरष को करिये साथा ।।
पाप बुद्धि सब दूर करीजे , हरि के जन मांही मनदीजै ।
ऐसी भांति उपदेस जू दिया , साप मगन होइ सरवण कीया ।।
तब दयाल चरणांमृत दीयो , नाग तुरत अमृत जूं पीयो ।
पीवत पांणि मुक्ति व्है गयो , सो जस जन रुघनाथ कह्यो ।।
पीछे षवर सहर में होई , दरसण करण आये सबलोई ।
सब कूँ ग्यान कथा समझावें , यूँ दयाल सब कै मनभावे ।।
ऐसी बात कहत है स्वांमी , सबै भजो तुम अन्तरजामी ।
साध सगतिसूं लावो हेतु , ऐसे निपजै काया षेतू ।।
सील साच जरणा कूँ लहिए , ऐसी भांति परमपद पइये ।
सबकूँ उत्तम दियो उपदेसू , सनकादिक संकर ज्यूं सेसू ।।
इहैबात टोडा की गाई , जो कछु भई सैन समझाई ।
अलष पुरष को ध्यांन अपारु , कहत न आवे परम विचारु ।।
सबकूं साची बात बतावे , आप सदा अलिपत जु रहावे ।
परमारथ विचरै संसारु , गोरषनाथ समझ उरधारु ।।
इहि विधि फेर तहाँ ते चलिया , साध सन्त बहौतेरा भिलिया ।
ग्यांन ध्यांन हरि कथा सुनावे , संगति करै सो जीव तिरावे ।।
महा निर्लोभी त्याग मत लीये , विचरैं सदा त्रिगुण तज दीये ।
निर्गुण इष्ट निरंजन ध्यावे , कथा कीर्तन हरि जस गावे ।।
एक दिनां आगे इक गाँऊ , गुप्त ग्यान की कथा सुनाऊँ
उत्तम ठौर जाइगां देषी , स्वामी तहाँ विराजे एकी ।।
तहाँ एक आइस को आसन , रात षेचरी कीवी जासन ।
सिंह रूप आयस कर आयो , स्वामी वचन षर कहि बतलायो।।

बोलत पांण षर ही होइ गयो, तब सब ही मन संमो भयो।
आय परे दयाल के पांवा, हम मूरष तुम थाहन पावा॥
तुम हो सिभू नाथ अविनासी, होय दयाल कटै मम पासी।
तब स्वामी मन दयाजु आई, कर फेरत मानष हुइ जाई॥
करी वीनती दिक्षा दीजै, मूढ़ जीव अपणा कर लीजै।
तब दयाल माथै कर दीया, आइस सबै सिष कर लीया॥
जुग जुग जन थापे भगवाना, एसौ कौनजू ताहि उठाना।
जन हरीदास हरि सदई साथा, बलि बलि जावे जन रुघनाथा॥

दोहा—

जन रुघा हरिदास की, महिमा कहीन जाइ।
भगति करनकूँ कलि मंही, स्वामी प्रगटें आइ॥२८॥

॥ विश्राम दम ॥

फेर तहाँ सू रमे दयाला, अलष ध्यांन महा बुद्धि विशाला।
बहुत दिवस मारग में लाए, जोवनेर के मांही आए॥
सुन्दर ठौर देषिकै वारै, तहाँ विराजे ग्यांन संभारे।
एक वैरागी गाँवजु मांही, रांम नांम उर अंतर नाँही॥
झूठ कपट करि जगत भुलावे, सबकूँ ठग ठग द्रव्य उपावे।
जन हरीदास हरि ध्यान जू मांही, राग दोष काहू सूं नाही॥
लोग महाजन दरसन करि है, तिन कूँ देष भगत अति जरिहैं।
जाता सबकूँ त्रास दिषाऊँ, पूजा मेरी आन लगाऊँ॥
यूं धरि मनमें विस ले गयो, जाइ दयाल कै सनमुष भयो।
मेरे गृह अब गोरष आए, चरणामृत ताको हम लाए॥
कै पीवो कै ढोरो स्वांमी, विगरे काज जाऊँ मैं ग्रामी।
ढोरयां तुमरौ इष्ट विनासा, पीयां इष्ट रहत है दासा॥
इतनो वचन भगत तव कह्यौ, स्वांमी तुरत हाथ में गह्यौ।
लेय नाम गोरष का सांई, पीयो जहर इम्रत की नांई॥

पीवत पांण चढ्यो वैरागी, त्राहि त्राहि हूं महा अभागी।
हैं दयाल तुम पूरण जोगी, ग्यांन रस के महाभोगी॥
में मूरष जान्यों नहि भेवा, तुमतो करो अलष की सेवा।
गोरष सदा सहाइ तुम्हारै, काल झाल सब दूर निवारै॥
मेरी ताप अब वेग बुझावो, गुन्हो मेटि हरि नाँव सुणावो।
अभै दान दीजै मोहे स्वामी, बकसो सबै जीव की षांमी॥
तब दयाल चरणामृत दियो, पीवत सवाँ सीतल होइ गयो।
कहै दयाल सुणरे वैरागी ऐसा कांम क्यूं करे अभागी॥
ठग्यो ठगायो द्रव है तेरे, सो सब षरच चरण हरि केरे।
सन्त बुलाइ महोछा कीजै, भली भांति पहरावण दीजै॥
तवही तेरो उतरि है पापू, नहितर मांहि होइगो सापू।
सुने वचन सो कीए प्रवाना, तवै भगत मेले की ठांना॥
देस देस के साध बुलाए, नीकी भांति सू तिन्है जिमाए।
करी रसोई पूजा दीन्ही, दिच्या भगत दयाल की लीन्ही॥
कृपा करी माथै करदीया, गुन्हौ मेटि अपणा कर लीया।

दोहा—

ठग्यो ठगायो जन रुषा, दीयो माल लगाइ।
जन हरीदास के चरण सूँ, रह्यो भगत लपटाइ॥२६॥

॥ विश्राम ग्यारह ॥

चौपई—

ऐसे रहे जोवनेर मांही, रतमत सदा रामसूं आंही।
रमे तहांसूं आप अकेला, पहुँता और लारसूं चेला॥
रमत रमत आंवेर पधारया, कारज और सर्व ही सारया।
तहाँ एक नाहर दुषदाई, सहर मांहि कूँ मांनिष षाई॥
महा निडर संक नहि मांनै, सबै लोग तिणका सै जानै।
भाषर मांहि रहत है सोई, दूजो जांणन पावै कोई॥

आप दयाल उहाँ चलि आए , गुफा देषकै ध्यांन लगाए ।
तवै सिघ कू वासज आई , निकस्यो तुरत गहर नहि लाई ।।
जाण्यों आज इहां भष मिल्यौ , आयो और दिनां को हिल्यौ ।
दरसन करत मतो फिर गयो , सनमुष आइ दयाल के भयो ।।
नाक नवर्णा करबैठो जबही , स्वांमी दिच्या दीन्ही तबही ।
मिनष गाई हतिए नहिं भाई , और न जांणू रांम दुहाई ।।
पीछे सव लोगन सुणि पाए , दरसन करण दयालकै आए ।
नाहर सूँ छिन संकन माने , पुत्र समान सवनहीं जानें ।।
सव जन कै पावां तलि लुटि है , कवहुक सोवे कवहुक उठि हैं ।
ऐसे सोच की मिट गई तापा , जन हरीदास पूरण परतापा ।।
तवतें आऐ सहर मंभारा , जहाँ फकीर इक रहे विचारा ।
ताकै तो सव कुछ व्योहारौ , सिपसापां सेवग जू अपारो ।।
तीर कवांण षाटली कहिए , रचै सांग अचरज सो लहिए ।
जव हरिदास तहाँ चलि आए , घर वैठे फकीर जु पाए ।।
इनके हुवो सम्वाद जू तवही , सोजस प्रगट कहिहू अवही ।
तव दयाल ऐसे कहि दइया , आडा पड़दा पोलदे भइया ।।
इतने मांहि वोले जू फकीरा , एतो द्वार अतीत के वीरा ।
सहजैं षुलि है पाट हमारे , आवो वैसो तुम हो प्यारे ।।
जन हरिदास ऐसे समभावे , अगम ग्यांन तोकूँ नहि भावे ।
नामदेव पडदा कव दीया , कद कवीर मांही लुक रहिया ।।
तव फकीर यह वात कहावे , वात विवेक हिरदै नहिं आवे ।
तव दयाल ऐसे फुरमायो , वात विवेक कहण कूँ आयो ।।
हूँ तोहि सीष देतहूँ साची , वातां सवै छाडदे काची ।
सेवक सती दुष के मूला , इन सूँ लागि रांम कूँ भूला ।।
तीर कवाँण तोड सव डारो , हिरदै हरि को नांव संभारो ।
तव फकीर कहै समभाई , तुम तो हठी करो हठ भाई ।।

तव दयाल कहै सुन प्यारे, हठ साचो है सही हमारे।
दोय हठ पिरतषही जानो, साचे हठ कूँ मनह प्रमानो ॥
एक हठ है कामरु क्रोधा, इन सूँ उपजै नांही बोधा।
एक हठ गुण जीते भाई, यासूँ साहिब मांहि मिलाई ॥
एती सुण उपज्यौ है ग्यांना, छाडि माया तुरत निदानां।
फकीर दयाल की लीन्ही आग्या, सीतल भयो दुष सव भग्या ॥
माया छाडि ब्रह्म सूँ रातो, दयाल प्रताप राम रस मातो।
महातीवर वैराग जू आया, तव फकीर अलष कूँ ध्याया ॥
ऐसे ग्यांन दियो मन जानी, सति बात रुघनाथ वषानी।
तहाँ रहे वहौतलग स्वांमी, टहल करी सव ही मन जानी ॥
ता पीछै रमणी की कीन्ही, सनै सनै निगुंण मत लीन्ही।
पूरव दिसा चलै जू जावे, दरसन दे सव जीव तिरावे ॥
एक गाँव सूँ रमे संवारे, अपंग विप्र वैठे जु विलारे।
करी वेगार राल ते गया, मारग मांहि विप्र दुष भया ॥
तहाँ आइ हरिदास षडे हैं, वांमण आइर पाइ पडे हैं।
कहै दयाल ऊँचे उठि भाई, जंगल मांहि क्यूँ पड्यो रहाई ॥
तवै विप्र बोलियो यह वैना, पाँव नहीं दुष वहौत अचेना।
तव फिर हरीदास कर लाये, कृपा करी ताके पग आये ॥
विप्र उठि जु गाँव कूँ ध्यायो, सोजस जन रुघनाथ जु गायो ॥

दोहा—

जन हरीदास प्रताप तैं, अपंग विप्रपग होइ।
आप सिंघाँणै कूँ चले, काल झाल दुष षोइ ॥२०॥

॥ विश्राम वारह ॥

चौपई—

द्वै दिन मांहि सिंघाँणे आऐ, तहाँ भाषर परिध्यान लगाए।
उत्तर दिसा सहर सूँ सोई, तहाँ विराजे जग मल षोई ॥

सबही सहर मांहि सुण पाए, स्वामी हरीदास यहाँ आए।
चलो सबैही दरसन करि हैं, मसतक जाइ चरण तरि धरि हैं॥
सबही आय करे हैं दरसण, फिर फिर उत्तम पूछै परसण।
हे दयाल सहर में आवो, कृपाकरी हरि भक्ति बढावो॥
तब दयाल ऐसे समझावे, इहै ठौर उत्तम मन भावे।
तब उन कह्यौ रसोई लीजै, कृपाकरि अरु भोजन कीजै॥
जन हरिदास बोले यह बाता, जाय रसोई करो विख्याता।
तबै महाजन पूठे आए, जन हरिपुरष की अग्या ल्याए॥
करी रसोई साध बुलाया, आप दयाल कृपाकरि आया।
बैठे सबै कीर्तन करि हैं, ग्यांन ध्यांन की बात उचरि हैं॥
जा कै घर बालक इक होई, वाको अन्त भयो है सोई।
माता तबै कह्यौ हा बाला, तुरत ही वचन कह्यौ है दयाला॥
कह्यौ उनां कूँ क्या? है माई, हो वो कहा सो द्योह बताई।
कहै महाजन क्यू ही नहिंया, झूठो सोर करै घर मंहियाँ॥
फेरि दयाल घणो सो पूछायो, साची बात कहै हम भायो।
कहै महाजन सुनो दयाला, एक पुत्र ताको भयो काला॥
इतनी सुनत बोले हरिवंदा, यो सूतो है नींद उनींदा।
तब उन कह्यो नही महाराजा, या को अन्त होय गयो आजा॥
तब दयाल उठि निकट गए हैं, गोरखनाथ को नाम लए है।
उठरे भाई तूँ कहा सोवे, तेरे कुटंब दुषी अति होवे॥
करसूँ कर पकर्‌यो जु दयाला, उठयो तुरत साह को बाला।
सब दिन जै जै कार बषान्यां, जन हरीदास हरि हिलमिल जांन्या॥
हुई रसोई सन्तन पाई, सबै महाजन पांइ परांई।
स्वामी चल डेरा कूँ आए, ग्यांन ध्यांन उर मांहि बसाए॥
सब ही कै परतीत जु आई, सेवा सन्त करो चित लाई।
ऐसी विधि दीयो उपदेसू, जैसे नाम कबीर अरु सेसूँ॥

दोहा—

रहे सिंघाणे बहुत दिन, सब कूँ दीयो ग्यांन।
जन रुघा हरिदास हरि, सही एक उनमान ॥३०॥

॥ विश्राम तेरह ॥

तहाँ ते रमे अपूठे सोई, आदू सहरकूँ रामत होई।
सनै सनै चलि है हरि साधु, निरगुण दास विदेह अगाधु ॥
बहौत दिनांलौ रामत करी, पहुँते आप डीडपुर हरि।
सब कूँ षबर हुई ततकाला, कृपाकरी आयेजु दयाला ॥
दरसन आय करे सब कोई, देव निरंजन को जस होई।
सब कूँ बाँट प्रसादी देहें, नमसकार करि करि कै लै हें ॥
हूवो उछाव कह्यौ नहिं जांवै, मानों देव स्वर्ग थैं आवै।
करें वीनती सेवग सब ही, जाग्यौ भाग हमारो अबही ॥
मोडे बहुत पधारे देवा, रमे कहाँ नहिं पायो भेवा।
तब कृपाल कहै रे भाई, रांम सिस्टि में रमां सदाई ॥
ताके सरणैं करमन लागे, काल जाल दुख सब ही भागे।
साचो अलष पुरष को साधू, सो जस गावै जन रुघनाथू ॥
ऐसे भई वधाई सबकै, हुई कृपा दयाल की अबकै।
दरसन करकर आग्या मांगी, सेवग अरु चाले वैरागी ॥
आप विराजै सुमरन करें, देव निरंजन हिरदै धरे।
ग्यांन भगति वैराग सवायो, अरस परस पूरण पद पायो ॥
रहे वहाँ डीडपुर स्वांमी, निस दिन सुमरै अन्तरजांमी।
अडिग अडोल सदा निरवांना, और भरम उठ गये जु नाना ॥
विरकत महा त्याग तप साधे, अलष निरंजन उर आरांधे।
ऐसी विधि नित रहे दयाला, गहर गंभीर सबनि प्रतिपाला ॥
दयावंत सुषदाई धीरू, अमर पुरस सूँ कीयो सीरू।
अष्टौं अंग जोग कै साधे, तप बनवास किये अति गाढे ॥

जो कोई सीष सुने हरिजन की, दुबध्या दूर करै ता मनकी ।
ग्यांन ध्यांन उपदेश बतावे, नरक छुडाइ मुक्ति पहुंचावे ॥
सदई ध्यांन भजन हरिजी को, और सबै रस लागै फीको ॥
ऐसे कांम क्रोध रिप दहिया, आमौ इष्ट निरंजन महियाँ ॥
तीन लोक में प्रगट स्वांमी, उदै भए उर अन्तरजांमी ।
प्रकृति गुण न्यारे कर दूरा, पुरुष लीन भये स्वामी सूरा ॥
जो कोई जीव सरण चलि आवे, ताकूं निश्चय ब्रह्म बतावे ।
ग्यांनरु ध्यान जोग वैरागा, अरपै स्वामी भगति सभागा ॥
अरु दयाल के सिषथे बावन, सबही करै जगत कूं पावन ।
ब्रह्मग्यांन हिरदा में धरिया, गुरु परसाद अनिर भव तरिया ॥
सबही आए सतगुरु पासा, कर दीदार मगन सुष वासा ।
देव निरंजन को जस गावै, सतगुरु के चरणां चित लावे ॥
स्वांमीं आप सदा मन धीरा, मगन ग्यांन गुण गहर गंभीरा ।
सेवग सती करे नित दरसन, ग्यांन ध्यांन की बूझै परसन ॥
स्वामी देवे सत उपदेसा, भजौ निरंजन मिटै अन्देसा ।
सन्त जनां की सेवा करो, ऐसे दूतर सहजै तिरो ॥
सिष सदा सनमुष जु रहि हैं, गुरु की आग्या अन्तर गहि हैं ।
सबहिनको सारयौ है काजू, पर उपगार आप महाराजू ॥
साधू कथा कीरतन करि हैं, हरीपुरस पद हिरदै धरि है ।
पुरवासी सब कारज करिया, जिन दयाल कूँ हिरदै धरिया ॥
गुण अनंत कहतां नहिं आवै, ऐसो कौन मर्म मल पावे ।
बुधि बौछी पूरा गुरुदेव, वित उनमांन लखाया भेव ॥

दोहा—

निरगुण ग्यान विचार कै, उतरया भोजल पारि ।
जन हरीदास हरिसूं मिल्या, कहै रुघनाथ विचारि ॥३२॥

विश्राम चौदह

चौपई—

प्रथम वहौत दिन यूंही गइया , वरस चमालतै चेतन भइयां ।
चमाल वरष वैराग कमाया , ता पाछे हरि मांहि समाया ॥

सम्वत् सोलेसैजु सईका , ऋतु वसन्त आनन्द लईका ।
फागण सुदि षष्टमी जांनां , जन हरिदास हरि मांहि समाना ॥

मिले निरंजन मांही दासू , काल झाल सबकाटी पासू ।
आए तहाँ पधारे देवा , मनसा वाचा सनमुष सेवा ॥

तेज पुंज तहां प्रान पियारे , तेजपुंज होइ आप पधारे ।
अरस परस हरि मांहि समाया , सोजस जन रुघनाथ जु गाया ॥

सहर डीडपुर उत्तम धामू , तहाँ स्वामी कीयो विश्रामूँ ।
सबै सिष विवोग अति करि हैं , सेवग चित चरणां में धरि है ॥

एक सुने सुन धरती परिया , काहू वहौत रुदन ही करिया ।
केई कहैं सूनो है गांऊ , दूषै सबै लेतही नांऊ ॥

जैसे रात चन्द विन होई , त्यूं दयाल विन नगरी जोई ।
जहाँ जहाँ आपन चले गये , सबै देव सनमुष जु भये ॥

कहै विराजो यहाँ गुंसाई , दरसन द्यो नित बलिबलि जांई ।
देव सबन मिल विनती कीन्ही , जन हरिदास मन मांहिन चिन्ही ॥

सिध साधिक सनकादिक नारद , संकर सहित मिली है सारद ।
सबहिन जै जै कार बढाया , जन हरीदास हरि मांहि समाया ॥

इतनी कथा कही में देवा , तुम अगाध में लख्योन भेवा ।
तुमरी गतिमति तुम ही जानों , अलप बुद्धि हूँ कहा बषांनों ॥

इह गुन कथन लह्यो सुष भारी , कृपा करी निज देव मुरारी ।
अरु जे फिरि गावे जस कोई , ताकै दुष सब डारै पोई ॥

सत्रु दूर रोग हू जावै , जो जन परचा सूं चित लावे ।
अपढ होय विद्यावत मानों , निरधन धनपंत होय सुजानों ॥

मूरष लहै ग्यांन गुण आगर, दीन होइ या वे सुषसागर।
गूंगो ग्यान विग्यांन ही पावे, जो दयाल गुण रुच रुच गावे॥
जन हरिदास हरि के उणहारा, भगति करणें प्रगटै संसारा।
निरगुण ग्यांन समझिकै लीयौ, दूजो कर्मकांड तजि दीयौ॥
कर्मकांड सांसो नहिं जावै, जोलूँ निरविकार नहिं गावै।
निरगुण व्रत हरिदास विचारा, तातें उतर गये भवपारा॥
इतनी महिमां वरनी तेरी, तुम अगाध वोछी मति मेरी।
घाटि वाधि कछु बोलनि आया, ताकूँ समझ सुधारो राया॥
पुत्र दोष पिता सब जानौ, ताकौ औगुण कछू न आनौं।
अलप बुद्धि हूं वोल न जानौं, तातें यह बीनती मानौं॥
अरु तेरा गुण बहुत अपारा, वरणत पार न आवे मारा।
परचे और अनंत है घणे, हम तो इतने कानां सुणे॥
बहुरि गुप्त जे रह्या गुसांई, ता को पारन पाऊँ मांई।
जे हम सुणे सो कियो वषानों, और तुम्हारे तुम ही जानों॥
वसुधा सब कागद कर लीजै, लेषणि भार अठारा गणीजै।
सात समद कीजै रुसनाई, हरिजन हरि रस कथ्यो न जाई॥
निराकार की किरपा भई, सन्त समागम परची कही।
जन अमरपुरस के मस्तग हाथू, रुचरुच गावै जन रुघनाथू॥

दोहा—

रुघनाथदास जन का कहै, हरिगुण अनंत अपार॥
अमरपुरष परताप तैं, कछु इक कियो विचार॥३३॥
श्री अमरपुरष गुरुदेव की, किरपा पूरण थाइ॥
वेरि वेरि आनंद सूँ, जन रुघो बलि जाइ॥३४॥
परची हरिदास की, भई संपूरण सोइ॥
घाट वाध या में कही, सुध कर लीजो जोइ॥३५॥

॥ विश्राम पन्द्रह ॥

॥ इति परचई सम्पूर्ण ॥

महात्मा प्यारेरामजी

महात्मा प्यारेरामजी अमरपुरुषजी महाराज के शिष्य दर्शनदासजी के शिष्य थे। इनका काल उन्नीसवी सताब्दि का उत्तरार्ध प्रमाणित होता है। आपकी रचना भक्तमाल है उसके अन्त मे आपने सम्वत् १८८३ मे उसको बनाने का संकेत किया है। भक्तमाल से भिन्न आपकी ओर कोई रचना सामने नही आई है।

भक्तमाल की रचना का स्थान मोरेड लिखा है जो आज भी मौजूद है जहा दरसणदासजी महाराज विराजे थे। अब इनकी परम्परा का मुख्य स्थान वडू ग्राम है। प्राय. ही जो भी उच्च महात्मा हुये है उनको परम्परा मे भक्तमाल के भी प्राय. रचनाकार होते रहे है। नाभाजी ने वैष्णव सन्तो से भिन्न अन्य सम्प्रदायो के महात्माओ का उल्लेख नही किया है राघोदासजी ने द्वादश निरंजनी महन्तो का निरूपण किया है।

रामदासजी महाराज के शिष्य दयालदासजी ने जो भक्तमाल बनाई उसमे उनने सभी प्रचलित पन्थो के महात्माओ का निरूपण किया है। प्यारेरामजी ने स्वय यह व्यक्त भी किया है कि दर्शनदासजी महाराज ने उनको भक्तमाल निरूपण की आज्ञा दी तो उनने विशेष निर्देश किया कि उसमे अपने इष्ट पन्थ का विशेष निरूपण किया जाय।

तदनुसार आपने अवतारों का निरूपण कर भक्तों का निरूपण प्रारंभ किया तब सर्वप्रथम हरिदासजी महाराज का विस्तार से निरूपण किया। पश्चात् षेमजी चत्रदासजी, पोकरदासजी, दयालदासजी, सेवादासजी, अमरपुरुषजी व दर्शनदासजी तक का निरूपण किया पश्चात् अन्य भक्तो का विवेचन किया गया है। दो सो चार मनहर कवित्त प्यारेरामजी की भक्तमाल के है अन्त मे चार दोहे है मूल प्रति सीथल ग्राम मे है जिसकी प्रतिलिपि मेरे पास है। उसी मे से कुछ उद्धरण आगे दिये जा रहे है।

॥ प्यारेरामजी कृत भक्तमाल का कुछ अंस ॥

मनहर—

नमो नमो गुरुदेव प्रभु जो परमातमा,
संता आगे हाथ जोड वीनती कराइये।
सन्ता को में जस गाऊँ कृपा करो मोहि पर,
बुद्धि में प्रकाश करो तवही तो गाइये॥

सन्ता को अगाध मत मेरी है अलप बुद्धि,
आपही की कृपा हो तो कछुक सुनाइये ।
कवि की बडाई तामें बर्णे मात गण सुच,
देश काल प्रचा मिलै सव मन भाइये ॥१॥
रामजी ओतार आप वडे ही विख्यात भये,
राक्षसां कूं मार कर संता काज मारे हैं ।
कृष्णजी ओतार धार संताको सहाय करी,
कलाजु दिखाई वहु लीला विसतारे हैं ॥
हयग्रीव रूप धार ब्रह्मा के जो वेद ल्याये,
कमठ ओतार धार पृथ्वी पीठ धारे हैं ।
प्रथु अवतार धर पृथवी को दूही ताहि,
नृसिह ओतार धार प्रहलाद उतारे हैं ॥२॥
रिषभ औतार आप वडे ही विख्यात भये,
भरत पुतर गृह त्याग जोग लियो हैं ।
नव भये जोगेश्वर जग में प्रसिद्ध अति,
इक्यासि जू कर्मकांडी सोई पुत्र भये हैं ॥
व्यासजी औतार धर रचे हैं पुराण पुनि,
भारत दर्शन, गीता वेद कथ गये हैं ।
परशुराम वन आप क्षत्री षपाय दिये,
भूमि प्राप्य कर सव विप्रन को दिये हैं ॥३॥

हरिदासजी—

आप जो अकेले होय और होय लाखों दल,
सामे होय सके नहीं भाजि सव जाइये ।
डीडवाणे कोल्या वीच खोसल्यो जू कूवो कहे,
तहाँ आप बैठे रहे घोडे चढ आइये ॥

माल जो लेजावे कोऊ ताहितै भरावे डांण ,
वणिया को रूप धरि गोरष तहाँ आइये ।
हरिसिंह देख आप आडे जो फिरे हैं जाइ ,
तब दिव्य रूप धरि पगां में पराइये ॥४॥
गोरष वचन बोले इता तुम पाप करो ,
आगे लेषो लेहिं तब छूटो कैसे जाइये ।
और जो कुटम्ब सब याही सूँ उदर पालै ,
एकले कूँ भार क्यूं है बांटे बांटे आइये ॥
पूछो क्यों न घर जाय कौन तेरा संगी होय ,
तब घर जाय करि बूझना कराइये ।
आप कियो पुण्य पाप आप ही भोगेंगा सब ,
और केजु कै से आवे ऐसे जू कहाइये ॥५॥
होयके उदास जब पीछे आये आप वहां ,
आवत ही पांव परै चरण चित्त लाइये ।
अब करो आज्ञा आप सोई में तो शीश धरूं ,
गोरष बोले घर त्याग तीखी पर जाइये ॥
तब आप घर त्याग बैठे जाइ तीखीं पर ,
आसण लगाय द्रढ ध्यान जू कराइये ।
गाढे जू सुणी है बात सेवा में लगायो चित ,
बारै वर्ष एकतार तीखी पर आइये ॥६॥

दयालदासजी—

दयालदास सन्त जित इन्द्रीसूं जु दूध पीयो ,
लघुशंका करि तासू दीपक रखाइये ।
जगरो लागो बारणें तबही जु मेह आयो ,
मेह दीनो टाल जिन जगरो बचाइये ॥

सेवादासजी—

सेवादास संत को जु वडो मत वीतराग,
परचों का पार नांहि कहाँ लग गाइये।
पुरोहित कुल मांही लियो अवतार आप,
वर्ष गये सात सन्त दर्शन कूँ आइये ॥७॥
बारे वर्ष एकतार गुरु की जू सेवा करी,
वीतराग रहे नेम भिचा को ममाइये।
शाह की उवारी नाव समद बीच फाटी जब,
हजारों जे जीव तिन्हे डूबतां बचाइये ॥
सीकर के रावजी को परचो दिखायो जब,
साह रूप धारि आप भोजन जू लाइये।
फतहपुर गांव सूं दूर जो विराजै आप,
पठाण कूँ फतै पर दूसरो दिखाइये ॥८॥
कालैडहरे में आय त्राटक जू ध्यान कीनो,
कृपाजू कबीर कीन्हीं छाप जो धराइये।
सतरासै चोहत्तर बीकाणे विराजे आप,
भूतों का उद्धार कीया ज्ञान जु सुनाइये ॥
ऊदो भाटी खारड्या में मेले को विचार कियो,
ताकूँ दियो ताले मांहि छुडाइ के लाइये।
रूपाणे में नाग आय पींडी जिन तोड लई,
लोगां सोच करयो तब फेर के बुलाइये ॥९॥

सेवादासजी का तन त्याग—

सवा दोपहर आप ध्यान जो लगाय बैठे,
दसम दुवार होय ब्रह्म में समाइये।
सतरासै अठाणमें जेठबदी पडवा कूँ,
त्याग तन आप हरिधाम जू सिधाइये ॥

अमरपुरुषजी—

अमर औतार धार जीवांको उधार कियो,
एक सौतो चार जाकै सिष जो कहाइये।
गुरां कही तीन बात सोई आप धार लई,
फिर आज्ञा करी तब सिष जो कराइये ॥१०॥
दरशन गुरु दया की प्यारे को आज्ञा दीन्ही,
ईष्ट अनुक्रम से जू भक्तमाल गाइये ॥
भक्तमाल वर्णी और सन्ता किन्ही ठौर ठौर,
इष्ट विहूणी वहतो मन नहिं भाइये ॥
गुरु आप आज्ञा दिये ताते भक्तमाल किये,
अठारेसै तियासी की वात ये कहाइये।
मोरेड नगर मांहि आधी रात होती ताहि,
गुरां आप रीझ कर प्रचा जो वताइये ॥११॥

दोहा—

जन प्यारे रामकी वीनती, सुण लीज्यो सब संत ॥
पक्षी पीवे चूंच भरि, सागर को नहिं अन्त ॥१२॥

॥ स्वामी उदयरामजी ॥

स्वामी उदयरामजी सेवजो महाराज की शिष्य परम्परा मे थे एसा अनुमान होता है। आपका कार्यकाल बीसवी सदी प्रतीत होता है। आपका एक संग्रह ग्रन्थ सार संग्रह नाम मे प्राप्त है। इसमे एकसौ पिचहत्तर अंग है। प्रति अंग मे हरिदासजी कबीरजी, सेवजी तुरसीदासजी आदि महात्मो के वचन संग्रहीत किये है साथ मे अपनी रचना भी समिलित है। आपकी ओर कोई रचना जो कि स्वतंत्र विषय पर हो अब तक प्राप्त नहो हुई है। आप का यह संग्रह ग्रन्थ पुजारी परमानन्दजी डीडवाणे के यहा है। इस सग्रह मे से अन्तिम अविहडका अग दिया जाता है इससे इसकी उपयोगिता प्रतीत होगी। यह अंग पूरा का पूरा उदयरामजी कृत ही है। अन्य अंगो मे उपरोक्त रूप मे अनेको महात्माओ के वचनो का संग्रह किया गया है।

॥ उदयरामजी कृत सारसंग्रह का अंस ॥

॥ अविहड अंग ॥

साषी—

संगी येही जीवकै, कै माधव कै माथ ॥
लष दोषां विरचै नहीं, या तो बात अगाध ॥१॥
संगी सोई कीजिये, कदेन विहडै सोय ॥
किरतम को क्या ? पूजिये, पल में परलै होय ॥२॥
संगी सोई कीजिए, सदा अपंड थिर सोय ॥
जन्म मरण जाकै नहीं, सो हम लीया जोय ॥३॥
सदा अपंड थिर एक रस, लगै नहीं पुन पाप ॥
संगी सोई कीजिये, सहज झडै दुप ताप ॥४॥
संगी सोई कीजिये, अचल अपै भगवन्त ॥
रूप रेष जाकै नहीं, लाग रहे सब मन्त ॥५॥
ऐसा लिया विचार मन, सदा अपंड थिर जोय ॥
स्वामी तुम परसाद तैं, अविहड़ रहेजु सोय ॥७॥
अविहड अंग राजा रामजी, सब संतों का भरतार ॥
उदयरांम का सो धनी, सिमरथ सिरजणहार ॥८॥
सिमरथ सिरजणहारजी, सुणजे दीनदयाल ॥
उदयराम के तुम धणी, सब संतन के रिछपाल ॥९॥

चौपई—

प्रभु सब संतन के प्रतिपाला, बहु साध उधारे दीनदयाला ॥
जन उदयराम प्रभु तिनही पाये, जिन मन अविहड़ राम लगाये ।१०।
अविहड़ राजा राम राई, उदयराम ताका गुण गाई ॥
हरिपुरष सेवा गुण गावा, अविगत रमता मांहि समावा ।११।
अविहड राम कबहू नहिं घटई, उदयराम नित ताकू रटही ॥
रह रह सन्त भयेजु अपारा, रामनाम सुमरै इकतारा ॥१२॥

रामही रामजु करत पुकारा, तिनकूं नित नित नमन हमारा ॥
क्या गिरही ? क्या साधज सन्त, राम रटत तिहिं नमन करंत ॥१३॥
नमो शेष ध्रुव पुनि प्रहलादा, राम रटत उनको हरि लाधा ॥
नमो नमो गोरष दत ध्यानी, नमो नमो नामा कवीर ग्यानी ॥१४॥
नमो नमो श्री दयालु हरिदासा, जीव अनन्त किये प्रभु पासा ॥
कितने जीव तिरै उन संगा, जो सुन वचन लगै हरि रंगा ॥१५॥
हरि रंग रंगे तिनही के प्राणा, जिन सुने वचन हरिपुरष सुवाणा ॥१६॥
हरिपुरष कै वचन सुहाये मोही, इहि सुष सम सुष औरन कोही ॥१७॥
हरिपुरष सेवा वचन सुहावा, सुणत ही जग को होय अभावा ॥
मनही जगत जन्मै संसारा, नाम तुम्हार न वूढा वारा ॥१८॥
नमो नमो सेवा जन स्वामी, नमो नमो तोहि अन्तरजामी ॥
सेवा जन ऐसै सुषदाई, जिन जग जीवां ताप मिठाई ॥१९॥
तिनके अमरपुरष सिष भयेऊ, जो निज पद सव सिषले गयेऊ ॥
और हू सन्त भये वहु ज्ञानी, अगम द्रष्टि कोऊई अति ध्यानीं ॥२०॥
तिनहि हित चित बन्दन हमारा, जे जन ब्रह्म कूँ जाणनहारा ॥
तुरसीजु ध्याना जगजीवनदासा, जगन्नाथ परब्रह्म निवासा ॥२१॥
अन्य हु सन्त निरंजन ध्यानी, निर्मल हरिमय जिनकी वांणी ॥
जो नित करहीं ब्रह्म विचारा, में वपुरा क्या ? कहन हारा ॥२२॥
ब्रह्म विचार यहो है भाई, राम भजै विन किन गति पाई ॥

साषी—

सतगुरु जब किरपा करै, मेटै सव अज्ञान ॥
विन सतगुरु शरणे गये, होयन आतम ध्यान ॥२३॥
राम नाम तत सार है, कहै वेद अरु साध ॥
सव सन्ता की साप सुणि, सव में योही लाध ॥२४॥

चौपई—

सव सन्ता की साष मिलाईं, नाम समानन आन उपाई ॥
रामही नाम कवीरै गाया, नामा हरिपुरष नामही ध्याया ॥२५॥

कलजुग नाम समान न कोई, सब ग्रन्थन को षोजो जोई ॥
नानक कबीर हरिदास दयाला, सेवाजन बताये नाम उजाला ॥२६॥
नाम उजियाला सूर्य प्रकाशा, रटें ते करही आनंद विलासा ॥
नाम बिना भव रैंण अंधारी, नरक षाड में पडहिं विकारी ॥२७॥

साषी—

नाम तुमारो रामजी दीजै, अन्तर में उपजाइ ॥
जन उदयराम की वीनती, ग्यांनी सन्त मिलाइ ॥२८॥
में तो तेरो बालक रामजी, तुम जाणों जगदीश ॥
में हू निपट अबोध अति, खोटो विसवा वीश ॥२९॥
सुणो निरंजन वीनती, इस बालक की बात ॥
षात पीत बीते दिवस, सोवत रजनी जात ॥३०॥
स्वास स्वास हरि नाम विन, जन्म अमोलक जाय ॥
जन उदयराम यूँ कीजिये, भजिये निरंजन राय ॥३१॥

सोरठा—

भजिये निरंजन रांम, वेद शास्त्र कहते हैं अज ॥
गोरष कबीर कहि रांम, उदयराम भज राम भज ॥३२॥
निश दिन भजिये राम, झूठ कपट संसार तज ॥
भजिया येही नाम, तब आप उधारे नाथगज ॥३३॥
सत्य निरंजन राम, है अगाध परब्रह्म वह ॥
सबका वहीं विराम, वह सबमें व्यापक सदा ॥३४॥

साषी—

ग्यांनी ध्यांनी गम नहीं, पारन पावै कोय ॥
उदयराम भजताहि कूँ, सब सुष सहजै होय ॥३५॥
सब सुष सेवादास जी, कथ गये आतम ग्यांन ॥
ऊदा द्रढ कर राषिये, तब उर उपजै ध्यांन ॥३६॥
पाप पुन्य दुष सुष सदा, तेरे नांही जोय ॥
करता भोक्ता तूँ नहीं, तूँ परकासी सोय ॥३७॥

ग्यांन जगावे जीव कूँ, ज्यूँ वंदीजन नरपत ॥
सुपने दाड्यो वैरियां, जागत भयो नरपत ॥३८॥
सब में व्यापक आतमां, ज्यूँ कुंभ मृत्तिका मांय ॥
भूषण कंचन भेद नहिं, यूँ आतम मत भिन नांय ॥३९॥
सब साधां की राह एक है, कहने को पंथ चार ॥
जिहिं पंथ कबीर गोरष गये, तिहिं गह्यो सेवा हरिदास विचार ॥४०
दादू नानक तिहिं घर पहुँचे, जहाँ पारब्रह्म की जोत ॥
ऊदा उस घर जाइये, जहाँ नहिं माया की छोत ॥४१॥
जहाँ माया छाया नहीं, नहि गुण तीन प्रवेश ॥
उदयराम तहाँ जाइये, जहाँ निरंजन देश ॥४२॥
नमो नमो गुरुदेवजी, कीन्हों ब्रह्म प्रकाश ॥
जन उदयराम के सीस पर, श्री स्वामी सेवादास ॥४३॥

चौपई—

इसमें संशय संत न करिये कोई, हम तो भक्ता सेवाजन के होई ॥
पाप पुण्य कर्त्ता हम भैया, तातें यह न रतन हम धरिया ॥४४॥

साषी—

जो कर्म किये इस जीवनें, सुभरु असुभ पाप पुनि पुन्य ॥
सो सबही में जा रहूँ, गहि गुरु ग्यांन अनन्य ॥४५॥
एक राम यह वीनती, सुणजे दीनानाथ ॥
धर्मराज कागद लिख्यो, सो फाडो अपने हाथ ॥४६॥
में तो तेरा चोटी कटा, घर का जांन गुलाम ॥
भावे मारो तारो सइयां, उदय तुमारा रांम ॥४७॥
उदयराम के तुम धणी, और न दूजा कोय ॥
मारो तारो रामजी, वंदा हाजिर होय ॥४८॥
जोर नहीं कुछ दास का, सुण लीजै साहब ॥
सहस्र जन्म वीते मिलो, भावै मिलो अब ॥४९॥

चौपई—

रिध सिध की नहिं चाह न कोई , वैकुंठ लक्ष्मी स्वप्ने जोई ।।
इच्छा नहीं अपर कोई रामा , दे वरदान भक्ति हरि नामा ।।५०।।
नाम निरंजन निसदिन गाऊँ , गुणातीत के दर्शन पाऊँ ।।
आन लालसा है नहिं कोई , नाम रटण दे प्रभु निन मोइ ।।५१।।

साषी—

तुम विन राजा रामजी , और न जांचू कोय ।।
जन उदयराम की वीनती , सब कारज तुम तें होय ।।५२।।
मेरे ओर न काम है , राम तुम्हारी आंण ।।
वेग मिलो हरि आय कै , नहि तर तजूँ पिरांण ।।५३।।
उद्यराम का संगी सोई , अविहड़ राजा राम ।।
आदि अन्त तुमही धर्णीं , दीजै भक्ति विराम ।।५४।।

।। इति अविहड़ अंग सम्पूर्ण ।।

।। स्वामी कोमलदासजी ।।

महाराज हरीदासजी की परचई कई महात्माओं ने लिखी है उनका उल्लेख भूमिका मे कर दिया गया है। कोमलदासजी की परचई भूमिका छप चुकने के पश्चात् प्राप्त हुई। अतः प्रसंगानुसार इसका कही उल्लेख नही किया गया है। यह वीसवी शताब्दी की रचना है इसका आधार परम्परागत चली आई व मानी गई घटनाये है। इसके रचनाकार हैं, वालोतरा निवासी स्वामी रामकृष्ण जो के शिष्य कोमलदासजी रचनाकाल है सम्वत् १६४०।

आपने यह रचना दोहा चौपाई सोरठा तथा छन्दों में की है कुल पद सख्या सत्तर है। इसमे हरिदासजी महाराज द्वारा दिखाये गये वारह चमत्कारों का विवरण है। रचना को देखने से प्रतीत होता है कि रचनाकार सुशिक्षित है। छन्द, भाषा, भाव, का सम्यक् रचना मे निर्वाह किया गया है। इस की मूल-प्रति इन्ही की परम्परामे स्वामी जानकीदासजी माधोदासजी वालोतरा निवासी से प्राप्त हुई है स्वामी जानकीदासजी ने भी दोहे चौपाई में दयालु चरित्र की रचना की है तथा उसको मुद्रित कर वितीरण करा दिया गया है। कोमलदासजी की परचई मे से पाडा देवी को शिष्य बनाने तथा भूत वावडी नागौर के चमत्कार का विवरण आगे दिया जा रहा है जिससे इनकी रचना की वास्तविकता प्रतीत हो सकेगी।

॥ कोमलदासजी कृत हरिदासजी की परचई ॥

दोहा—

गुरु गणेश गोविन्द पद, शीश नवाँइ नवाँइ ॥
कथूं चरित्र हरिपुरुष का, द्वादश परचा लाइ ॥१॥

चौपई—

श्री हरिपुरुष संत शिर टीका, रंदो उनकी पदरज नीका ।
सो स्वामी को वास हमेशा, नगर डीडवाना मरुदेशा ॥
पुर से सिषरी पश्चिम आसा, आश्रम कंदर तपहि प्रकाशा ।
गोरषनाथ शीश गुरुधारी, रामनिरंजन नाम उचारी ॥
सुरति अखंड धारणा ध्याना, योगाभ्यास विरत भगवाना ।
परम ज्योति देषत लिवल्याई, जिमि चकोर शशि रूप लुभाई ॥
प्रेम अमीरस प्याला पीवे, ब्रह्मानन्द सुष मगन अतीवे ।
भये मूकवत गरक रहाई, अनहद शब्द श्रवण रति लाई ॥२॥

छन्द—

सुनि शब्द अनहद वेणु भेरिहि ताल झींझ मृदंगजे ।
जो हैं अगोचर नयन गोचर नूर निरख उमंग जे ॥
निजश्वास दशवें द्वार भँवरहि गुफा ध्यान धराइयो ।
साक्षात हरि को नूर निर्मल ज्योतिरूप लषाइयो ॥३॥

सोरठा—

अरस परस हरि आप, मिल्या तउं हरिदासजू ॥
टारन जग की ताप, करी तपस्या काल बहु ॥४॥

दोहा—

हरीदास योगी पुरुष, चिदानंद हरि ध्यान ॥
रामनिरंजन जाप उर, शम दम दया निधान ॥५॥

चौपई—

एक बार देवी निज याना, वैठ कहूं ही करत पयाना ॥
जात डूँगरी ऊपर होई, जहाँ सन्त हरिपुरुषजु सोई ॥

तिहिं तप तेज ही गिरथो विमाना, पाढा तब ही हृदय डरपाना ।।
आई तुरत ही स्वामी पासा, हाथ जोरि ठाडी भरि श्वासा ।।
क्षमा माँग बोली अरदासा, प्रभु अब हुकम करहू ममपासा ।।
शिष्या करिये गुरु ऽहै मोरा, अब में शरण लियां प्रभु तोरा ।।
स्वामी अति ही नम्रता देखी, कीं देवी पर कृपा विशेषी ।
बोले संत दया तूं लीजै, जीवघात नहिं कोई कीजै ।।६।।

छन्द—

कोउ जीव को नहिं हनन कीजै आपसे पर जानिये ।
सब जीव अपने धर्म में रहि मगन मोद पिछानिये ।।
जगदया सम नहिं धर्म अवरहु अभैदानसु दीजिये ।
अब सीष देकरि शिष्य प्रभु कहिं शांति चित धर लीजिये ।।७।।

सोरठा—

सुन स्वामी की सीष, आई देवी निज भवन ।।
गुरु आज्ञा शुभ लीष, धरी शीश उर दयालहि ।।८।।

दोहा—

देवी परचो कह दियो, वरणों परचा और ।।
श्रोता सुनियो सुचित मन, तजहु सकल झकझोर ।।९।।

चौपई—

नाथ विराज डूंगरी आश्रम, हरत ताप जग के नाना श्रम ।
व्याप्यौ संत सुयश सब देशा, आवत दर्शही बहुत नरेशा ।।
पुर नागौर प्रेत दुप जानि, चले प्रभु सब सुख की खानि ।
पुर से रही प्राक्दिशि वापी, बसहिं जहाँ प्रेत बहु पापी ।।
आस पास हैं कूप घनेरा, जहाँ वसि भूत दुखद बहु तेरा ।
आया नाथ सबहि सुख शासन, सो प्रभु किया वापि में आसन ।।
दशवैं द्वार लगाय समाधि, बैठे मेटन भूत उपाधि ।
आये दुष्ट वेर जब आई, प्रभु ही देख बहु धूम मचाई ।।१०।।

छन्द—

प्रभु देषि धूम मचाई खल मब छार हाड उछारही ।
तम कीन्ह तनु विकराल धरि शिल अस्त्र शस्त्रहु डारहीं ।।
सब अफल व्है ज्यूँ अनल नीर ही प्रेत जब डरने लगे ।
करजोर प्रेत वहोरि कहि प्रभु दर्श अब हमरे भगे ।।११।।

सोरठा—

अधम उधारण नाथ, तारहु अब तारण तरण ।।
बूडि रहे भव पाथ, हाथ पकरि काढो हमें ।।१२।।

दोहा—

आरत वाँणी प्रेत की, सुनकर दीनदयाल ।।
पार किये भव सिन्धु सें, मुक्त किये तत्काल ।।१३।।

चौपई—

स्वप्न भयो नागौर नृपाला, आयो तहाँ प्रातही काला ।
सबही सुप्रजा लई बुलाई, उच्छव करि करि बटी बधाई ।।
डंड प्रणाम भूप नरनारी, करत सबै निज जन्म सुधारी ।
पट्ट पाँवडे धरत सुहाये, कर सत्कार भूप गृह लाये ।।
पद पषार निज भवन सिचाई, नाना भोजन प्रभु ही जिमांई ।
राख्या भूप कालबहु स्वामी, आय विराज्या अन्तर्यामी ।।
एक दिवस ज्वर सन्त शरीरा, आयो तब ही नाथ मतिधीरा ।
कंथा में निज ताप बसाई, वहुविधि हरियश नृपही सुनाई ।।१४।।

छन्द—

हरि सुयश सुनि नृप देख कंथा धूजती विसमय रह्यौ ।
कहि नाथ कंपति गूदडी क्यूं श्रवण कर प्रभु हँसि कह्यौ ।।
तन ताप मेरो गूदडी में याहि सो कम्पित रही ।
सुनि भूप कहि प्रभु आपको क्यूं डंड है स्वामी कही । १५।।

सोरठा—

देह धरी को डंड, भोग्यां विन छूटै नहीं ।।
अवतारी ब्रह्मंड, तनुधर भोगे डंड सब ।।१६।।

दोहा—

वचन श्रवण करि भूप तब, गुरुपद वन्दन कीन्ह ॥
हाथ जोरि नृप दासवत, रह्यो सन्त आधीन ॥१७॥

समाप्ति पद छन्द—

निज गिरापावन करण कारण सन्त यश वर्णन करयो ।
नहिं पार पाऊँ सन्तमहिमा कछुक गुरु गुण ऊचरयौ ॥
कहै दास कोमल जोरि करयुग अनुग मौकों कीजिये ।
यहु मांगहूँ गुरुदेव स्वामी दर्श आपन दीजिये ॥१८॥

सोरठा—

द्वादश परचा गाय, मेला को परसंग सब ।
कह्यौ मोद उरलाय, अपनी मति सारू सही ॥१९॥

दोहा—

सम्वत् उन्नीसै जानिये, चालीसै की साल ।
फागन शुक्ला षष्टी को, गायो सुयश रसाल ॥२०॥
शुभ नगर वालोतरा, रामनिवास सुथान ॥
रामकृष्ण गुरुदेवजी, शिष्य मैं कोमल जान ॥२१॥
मुरधर देश जिला जोधाणां, पुर वालोतरा मान ॥
परची श्री हरिपुरुष की, कोमलदास बखान ॥२२॥

॥ इति परचई संपूर्ण ॥

॥ प्रकीर्ण रचना ॥

(हरियानन्द कृत)

मनहर—

डीडपुर थान हरिदासजी विराजमान,
सन्तों के समाज देश देश हूते आत है ।
करत प्रणांम हरि सन्त सेवा आठों याम,
कथा कीर्तन सो तो जगमें विख्यात है ॥

ढोलक बजावे ताल दशों दिशा सोहे साल,
अरस परस मिल हरि गुण गात है।
हरि दरबार जाकी महिमा अपार रांम,
एसो जू आनंद मेरे उरन समात है ।।१।।
जिनां की समाधि बणी कहूँ कहूँ तम्बू तणी,
सुन्दर बगीची जामें हँसन की जात है।
सब ही विचारवान निस दिन धरै ध्यांन,
ऊठत बैठत एक ब्रह्म ही की बात है ।।
सकल अचाही जाकैं चली आवे दुनी चाही,
लाडू पकवान मेवा भोजन करात है।
ऐसे जूँ प्रभाव देख देख सुधि सन्त जन,
हरियानन्द कहै मेरो मन हुलसात है ।।२।।
गाढै को सिनान जामें गोमती विराजमान,
पूजा पाठ ध्यांन मानों झरीसी लगाई है।
नागों के अखाडे और विरक्तों से भरे बाडे,
अभ्यागत साधु तामें बडे सुषदाई है ।।
प्रेमवान प्रीतवान गोटकों का करै दान,
टूटी फाटी कंथा ताकै थेगरी लगाई है।
ऐसे केउ साध ताको मतो है अगाध रांम,
हरियानन्द प्रीति रीति मेरे मन भाई है ।।३।।

उदयराम कृत छप्पय—

गोरष ज्यूँ द्रढ ग्यांन ध्यान धुनि शुक समजानों।
दत्त ज्यूँ मत आरूढ शील गांगेय परवानो ।।
त्रिगुण जीत निहकांम जानि सनकादि कुमारा।
ब्रह्म द्रिष्टि प्रहलाद दान ज्यूँ दधीचि उदारा ।।

ऊजल गुण आक्रांतितन भव निसतारन वपुधरै ।
पतित जीव पावन करन जन हरीदास कलि अवतरै ।।

ब्रह्मदास कुंडलिया—

तीवर तीषी डूँगरी जहाँ जलका नहीं निवास ।
हरीदास हरि मिलन कूँ कीया सिषर पर वास ।।
किया सिषर पर वास इन्द्रिया तन मन त्यागी ।
कर कर प्राणयाम सुषम्ना दशम सूँ लागी ।।
जन ब्रह्मदास जी दास के इक रांम मिलन की आस ।
तीवर तीषी डूँगरी जहाँ जलका नहीं निवास ।।१।।

अज्ञात छप्पय—

श्री महरवान अरु षेमदास राघव नारायण ।
विष्णुदास वोहिथ नरी भये ब्रह्म परायण ।।
बालकदास ब्रह्मदास दास गोविन्द उजागर ।।
शारंगदास हरिरांम भये हरि सुष के सागर ।
श्री गुरु पदरज परस जै हरिमाया अलिपत गये ।।
जन हरीदास पद परस कै कलियुग नौका येभये ।।१।।

अज्ञात कुंडलिया—

पन्द्रह सै पिचाणवे कीयो जोति में वास ।
फागणसुद छठ तिथि भली परम जोति प्रकाश ।।
परम जोति प्रकाश शब्द सतगुरु का जाण्यां ।
अलष पुरुष निज इष्ट रूप में ताहि पिछाण्यां ।।
वीसा सो वपु राषियो परम सन्त हरिदास ।
पन्द्रह सै पिचाणवे कीयो ज्योति में वास ।।१।।

रूपदास छप्पय—

नामा जन रैदास कवीरा गोरष दत्त सुषदेवा ।
गोपीचंद भरथरी जोगी लगे अलष की सेवा ।।

पीपा धना सैन मिल सोंझा नानग रामानंदा ।
हरींपुरुष सेवा जन सागे वह साहब का पंदा ॥
अनत कोटि जुग जुग के मांहि हरि सुमरत सुष पायो ।
अमरपुरुष सतगुरु के शरणै जन रूपराम गुण गायो ॥१॥

रतनदास होरी—

गाढे में बरसै रंगजी जहाँ संतन को सतसंग जी ॥टेक॥
गाढो धाम बण्यो अति सुन्दर गोमति जामै गंग जी ॥
देश देश का सन्त पधारे मनमें धरत उमंग जी ॥१॥
ढोलक ताल तम्बूरा बाजै अरु बाजै मृदंग जी ॥
गुणि गंधर्व मिलि गावे बजावे सुरकी उठै तरंग जी ॥२॥
व्यवहारी विरकत सब आये ओर आये बहु संग जी ॥
ब्रह्म विलास होत है जहँ तहँ नाना विधि परसंग जी ॥
सब संतन की पदरज लेकर रतन करत बहुरंग जी ॥३॥
चालो गाढे में खेलां होरी जहां सन्त समाज मच्यो री ॥टेक॥
हरिपुरुष महाराज विराजे दरसन गुदडी कोरी ॥
देश देश के सन्त पधारे हंसन की सी टोरी ॥
ढोलक ताल तंबूरा बाजै नौबत की घनघोरी ॥१॥
व्यवहारी विरक्त सब आये अरु आये नागोरी ॥
सब सन्तन की पदरज लेकर रतन कहत कर जोरी ॥२॥
गाढे की अजब बहार छवि कहत न आवे पार ॥टेक॥
हरिपुरुष महाराज विराजे मुक्तिदेव दातार ॥
गावत सेव अमर महाराजा है निर्गुण अवतार ॥१॥
उडत गुलाल लाल भयो अम्बर रंग की पडत फुँवार ॥
ऐसी छवि निरखन को सुरपति धारे दृगन हजार ॥२॥
गुणि गन्धर्व मिल गावे बजावे रांम नाम ततसार ॥
सब सन्तन की पदरज लेकर रतन कहत गुणसार ॥३॥

परमानंद होरी—

राजा हो होरी खेलें हरि के संग अरस परस मिल ऋतु वसन्त ॥टेक॥
अनहद धुनि बाजे रसाल जहाँ ररंकार जै जै उचार ॥
पाँच सहेली खडी हैं पास जहाँ फागर में जन हरीदास ॥१॥
कबीर नामदेव बन्यो है संग मिल्र पीये सूंधे बढ्यो हैं रंग ॥
सैन जयदेव रैदास दास जहाँ फागर में जन तुरसीदास ॥२॥
गोपीचन्द भरथरी चरपटीनाथ लिये सती घनेरी गुलाल हाथ ॥
ऐसो षेल मच्यो कछु कह्यो न जाय ॥
जहाँ अधिक विराजे बाबो गोरष राय ॥३॥
सिध चौरासी नऊँ ही नाथ जहाँ हिल मिल षेलै सकल साथ ॥
षेलत गावत भयो अनंद ऐसी महिमा गावै परमानंद ॥४॥

दरसनदास पद—

हरिजन हरिरस का मतवाला, जिन पिया रांम रस प्याला ॥टेक॥
नाथ मछंदर गोरष जैसा, अजैपालजी आछा ॥
नो जोगेश्वर जनक विदेही, ऐसा जोगी साचा ॥१॥
दत्त दिगंबर राघवानन्दजी, रामनन्द से साधू ॥
दास कबीर नामदे छींपा, ये उस घर के आदू ॥२॥
नऊँ नाथ अरु सिध चौरासी, भरथरी गोपीचन्दा ॥
साह सुलतानी सेष फरीदा, ये साहब का बन्दा ॥३॥
जन प्रहलाद रांका वंका, नानक दादू जैसा ॥
तुरसीदास और सब सन्तन, हरि में कियो प्रवेशा ॥४॥
हरीदास हरि के मतवाला, सेवादास जन सूरा ॥
अमरपुरुष अविनासी जोगी, बाजै अनहद तूरा ॥५॥
पींपा धना सैन रैदासा, सुषदेव पीयो अघाई ॥
अमर गुरु पीयो हुए निरभै, अगम सुरति ठहराई ॥६॥
महरवानजी षेम हजूरी, चतरदास पोकरदासा ॥
जगजीवन जालम जन जोगी, हरि में कीया वासा ॥७॥

गुरु गोविंद की करूँ वीनती, अनंत कोटि संत सारा ॥
दरसणदास दीन हो गावै, हरिजन हरि का प्यारा ॥८॥

दासजी कुण्डलिये—

विनय करूं कर जौरिकै, सुनिये दीनदयाल ।
हरिपुरुष हरि आपूहो, संतन के प्रतिपाल ॥
संतन के प्रतिपाल, कृपानिधि सुषके सागर ।
ग्यांन भक्ति वैराग्य, ध्यान के परम उजागर ॥
दास कहै सुनो बापजी, वेग करो प्रतिपाल ॥
विनय करूँ कर जोर के, सुनिये दीनदयाल ॥१॥
दास कहै सुनो बापजी, मो पापी को तार ॥
मम करणी देषो नहीं, सुष सम्पति दातार ॥
सुष सम्पति दातार, ग्यांन अरु भक्ति दृढाओ ॥
जान आपनो भक्त, जगत में मति भरमाओ ॥
स्वामी सुणज्यो वीनती, तारो जगत् मंझार ॥
दास कहै सुनो बापजी, मो पापी को तार ॥२॥
अमरगुरु महाराज कूं, विनवहुँ बारम्बार ॥
कलियुग में अवतार लै, किये जीव भावपार ॥
किये जीव भवपार, कलपना सकल निवारी ॥
जब अधोग जिव जाइ, शरण लै करिया पारी ॥
रांम नाम ततसार दे, काटे कोटि विकार ॥
अमरगुरु महाराज कूं, विनवहुँ वारम्वार ॥३॥

सदाराम छप्पय—

ब्रह्म ग्यांन के पुंज ध्यान हिरदै में राजै ॥
निराकार को इष्ट ब्रह्म गलतान विराजै ॥
निर्द्वन्दी निष्काम तत्व उर मांहि विचारचो ॥
भवको करकै त्याग अखंड वैरागहि धारचो ॥
श्रीदयाल महाराज जू सन्तन पर राखों दया ॥
सदाराम की वीनती हरिपुरुष कीजै मया ॥१॥

दशा देष निज जनन की सेवा करिये सोय ।।
शीलवंत वैराग गुण महापुरुष कलि जोय ।।
महापुरुष कलि जोय रांम रटतां दिन जावै ।।
सोई इन्द्री पीड़ तिनोंको नीद न आवै ।।
ये लच्छण जिन संत के तिनूको संगति होय ।।
दशा देख निज जननकी सेवा करिये सोय ।।२।।

प्यारेराम कुण्डलियां—

श्री हरिपुरुष हिरदै बसो सेव विराजो शीश ।
अमरपुरुप महाराज कूँ करूँ शीश बगसीस ।।
करूँ शीश बगसीस सुमति मोहे ऐसी दीजै ।
जगतें उलटा फेर रामरस अमृत पीजै ।।
प्यारेरांम की वीनती मानों विसवा बीस ।
श्री हरिपुरुष हिरदै बसो सेवा विराजो शीश ।।१।।

अज्ञात कुण्डलियां—

पील पाडया पिछम दिशा नगर कोलिया ग्राम ।
अमरपुरुप आसण जहाँ मानों तीरथ धांम ।।
मानों तीरथ धाम नाम चहुँ दिश में चावो ।
हरषित आवे सन्त मान मन घणों उमावो ।।
ऋतु बसन्त सन्त जन आवत पावत है विर्श्राम ।
पीलपाडया पिछम दिशा नगर कोलिया ग्रांम ।।१।।

रूपदास—कलियुग में कृपाल दया करि दरस दिपायो ।
प्रगटै आदू सन्त तत्व दे तिमिर मिटायो ।।
कियो ग्यांन परकाश भक्ति वैराग्य बधारयो ।
अमर आप महाराज काज पर तन मन धारयो ।।१।।
गोरष कहूँ कबीर कहूं या दत सुषदेवा ।
इसडी चाल अगाध साध कहों सागी सेवा ।।
नाँव अमर महिमा अमर अमर अषै गुरु आप ।
जन रूपदास मस्तग रहे सदा अमर गुरु छाप ।।२।।

।। इति ।।

अथ श्री दयालुस्तोत्रम्

श्री रामचन्द्र गुर्जर प्रणीतम्

(तत्रादौ सूचनापद्यानि)

अन्येयं डैडवानाभिधपुरधरणिभूर्मिदेवैरुपेता
श्रीमत्पाढायदेव्याः सदनमिह हरेः श्यामदेवस्य चैव ।
यत्रोदग्भाग आस्ते जनपदविदितं सेवितं साधुसङ्घै-
स्तीर्थं गाढाभिधानं हृतदुरितचयं श्रीदयालोः प्रभावात् ॥१॥

गाढं यस्मिन् शमसुखपरो यस्तपस्तप्तुमास
स्वश्रेयोऽर्थी गुरुजनवचो गाढमङ्गीचकार ।
यः स्वीचक्रे विविदिषुजनान् गाढमात्मावबोधात्
तीर्थं गाढाभिधमिदमतः श्रीदयालोः प्रसादात् ॥२॥

मासेऽत्रागत्य तत्तज्जनपदविपुलासक्तचित्तास्तपस्ये
सन्तः सर्वेऽपि दर्शप्रभृतितिथिषु वै प्रारभन्तेऽत्र सत्रम् ।
गायन्तो गीतवाद्यैः प्रमुदितमनसः साधवः केऽपि भक्तया ।
प्रेमोद्रेकान्महान्तः सदसि कत्तिचन श्रीदयालुं स्तुवन्ति ॥३॥

तदित्थम्

पुण्यैर्जन्मान्तरीयैः समधिगतमहासाधुसत्सङ्गलब्ध-
स्वात्मानन्दावबोधोदयसरणिरलं शान्तमानान्तरायः ।
अध्यासीनो विविक्तं बहुदिनममलं यो जपन् रामनाम
प्रापत् सद्योगसिद्धिं गुरुमहमनघं संश्रये तं दयालुम् ॥१॥

वाणीं वेदान्तसारां गहनतरमहाज्ञानरत्नोज्ज्वलां यः
व्यातेनेऽव्याहतात्मा ग्रथितगुणभरां स्वानुभूतिप्रचाराम् ।
संसाराम्भोधिभीतांश्चरणशरणगान् मानवान् वीतमानान्
उद्धर्तुं साधुवर्यं शमसुखनिरतं तं दयालुं भजेऽहम् ॥२॥

यदीयमधिगम्य वै गुरुकृपोपदेशामृतं
हृताखिलमनोमलः विगलितत्रितापो जनः ।
निरञ्जनपदाश्रयानुभवमालभेतानिशम्
गुरुं तमहमाश्रये किल दयालुसंज्ञं मुनिम् ॥३॥

प्रसङ्गात् साधूनां परिहृतनिजाज्ञानवितति:
पुराजन्माभ्यासात् सपदि भवबन्धं विजितवान् ।
भजन् रामं प्रेम्णा विमलहृदयो योऽजनितराम्
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥४॥

सुखासीनं शान्तं भवजलधिदुःखप्रशमनम्
जनैः सेव्यं शश्वद्धृदि कृतहरिध्यानममलम् ।
अखण्डज्ञानौघं रहितगुणदोषं सुखकरं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥५॥

यदीया सद्वाणी श्रुतिवचनसारं निदधती
हृदज्ञानं हन्ति श्रवणपथगा शुद्धमनसाम् ।
नृणां भक्तिश्रद्धाऽऽदरपरधियां सौख्यजननी
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥६॥

परित्यज्य प्राज्यां सुतधनयुवत्यादिममताम्
भवाम्भोधेर्भीताः शरणमुपयाताः कतिचन ।
दयार्द्रालोकेनामितसुखयुतास्तेऽपि विहिता
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥७॥

दुरन्ते संसारे दुरितनिलये दुःखजनके
विरक्तिं, सद्भक्तिं ह्युपदिशति यो रामपदयोः ।
यदीयं स्वच्छान्तः करणमनिशं त्यक्तविषयं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥८॥

विपज्जालग्रस्तोद्धरणकृतयत्नः शुचिमनाः
विविक्ते देशे यो भजति किल नैरञ्जनपदम् ।
सदानन्दं शान्तं निरवधिगुणं सुन्दरतनुं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥९॥

पदं यत् सौख्यानां स्वयमखिलदीनावनपरं
जपन्तं रामाख्यं परमपरमं ब्रह्मनिलयम् ।
निराकारं नित्यं प्रशमिततमःस्तोममभितं
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥१०॥

तपःसिद्धेर्भावात् स्फुरदनुभवो बुद्धिजलधिः
कृतोपेक्षः श्रीमान् स्वयमधिगते सिद्धिनिकरे ।
जनान् सर्वज्ञो यः सुखयति च सद्बोधवचनैः
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥११॥

युगादौ योगीन्द्रा भवजलधिमग्नान् हतधियो
दुराशाभूयिष्ठान् स्वशरणगतांश्चक्रुरनघान् ।
कलौ तद्वद्दीनोद्धरणपरवान् योऽजनि महान्
दयालुं तं वन्दे निजगुरुमहं साधुसरणिम् ॥१२॥

मनोवाक्कायैर्ये विहितबहुभावाश्चरणयो-
र्दयालोर्दासत्वं मनसि दधतो नित्यमनघाः ।
महान्तः संतस्ते जगति विदिता ज्ञानविभवै-
स्त्रिसन्ध्यं स्तोत्रस्य प्रपठनपराः संतु सुधियः ।

श्री श्रीमद्द्रविडसहस्रोदीच्याचार्येत्युपपदवाचक-
गुर्जरदेशीयवृहत्समास्थद्विजवररामचंद्रपण्डितप्रणीतं
श्री दयालुस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्री दयालु स्तोत्रम्

श्री कालिदासकविकृतम्

दयालुं तं वंदे हरिमिव गुरुं बोधवचनम्
जनानामज्ञानां भवजलधिविश्रामतरणिम् ।
विशेषात् साधूनां श्रमजनितमोहादिहरणं
शरण्यं विज्ञानां, प्रथितमहिमानं स्वयशसा ।।१।।

सुखावासं वंदे तमिह हरिदासं सुचरितं
समाधिस्थं रम्यं त्रिगुणरहितावस्थमचलम्
हरेः रूपं साक्षादजमनुपमज्ञानविभवम्
निजानां शिष्याणां प्रभवति विबोधाय य इह ।।२।।

तमीडेऽहं हंसोचितपरमयोगैकनिलयं
विधिज्ञं योगानां स्मृतनिजजनं लोकरमणम् ।
कवीनां यः स्वामी दिशति नितरां ज्ञानममलं
चिदानंदे सत्ये प्रणिहितमतिर्ब्रह्मणि सदा ।।३।।

रसज्ञः सेर्वेषां जगति तनुभाजां रसनया
यदुक्तं तद्विज्ञस्त्वमसि भगवन् ! भावभणितः ।
कथं त्वां स्तोतुं वै प्रभवति जनः शास्त्ररहितः
अतस्तेऽहं वाचा प्रणतिमनुतिष्ठामि सततम् ।।४।।

दया चेद् भूयात् ते सकलजनतायाः शिवकरी
तदाऽयं संसारः परम इह भक्तोऽपि भवति ।
दयालुस्त्वं भूया अहमपि चिदानंदसरसी–
निमग्नः संसारोपहितमनुतापं न हि भजे ।।५।।

दयालो ! त्वं दीनान् प्रभुरसि भवाम्भोधिपतनात्
समुद्धतुं, लोके न हि भवति तादृक् त्वदितरः ।
न ये त्वां सेवन्ते हरिपदसमर्चाविरहिताः
कथं तेषां न स्याज्जननमरणोपद्रवभयम् ।।६।।

निजानां संस्थाने गुरुवर ! मनोज्ञे सुविदिते
अखण्डैश्वर्यत्वादचलसुखसम्पत्तिभरिते ।
तवास्मिन् सौभाग्यं लसतु सततं "गाढ" निलये
वसन्ते सत्संमेलनमनुपमं यत्र नियतम् ॥७॥

सदा सेव्यः सद्भिः परमनिरवद्यैर्यतिवरैः
निजानंदोत्कण्ठैर्विविदिषुसमूहैः परिवृतः ।
त्वमस्मिन् संसारे प्रभवसि रवीन्दूपमतया
परब्रह्माभासोज्ज्वदमलभासां वितरणे ॥८॥

वरैर्वर्णै रम्यं सकलनिगमोपासनफलं
परप्रीत्या स्तोत्रं कविकृतमिदं गायति तु यः
पुमान् वाचा धन्यः स भवति सदैवात्र भुवने
मुनीनां वै पूज्यो भवति नितरां कण्ठपठनात् ॥९॥

इति श्रीमत्कालिदासकविकृतं
श्रीदयालुस्तोत्रं समाप्तम् ।